CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क़ुर्आन शरीफ़

तफ़सीर माजिदी

जिल्द पहली

(पार: १—५)

मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी

प्रकाशक

लखनऊ किताबघर

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क़ुर्आन शरीफ़

तफ़सीर माजिदी

जिल्द पहली

(पार: १—५)

मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी

प्रकाशक

लखनऊ किताबघर

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण
१९८३ ई०

सफ़ः—५१२

हद्यः—५०·०० रुपया मात्र

क्र० संख्या 5762
प्राप्ति तिथि
विभाग
श्रेणी
STATE MUSEUM, LUCKNOW.

मुद्रकः—
वाणी प्रेस
'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ—२२६००३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

پیش لفظ

(از۔مولانا سید ابوالحسن علی ندوی)

عصر حاضر میں جن علماء اور اہل‌قلم نے قرآن‌مجید کے ترجمہ و تفسیر کی قابل‌قدر خدمات انجام دی ہیں اور قرآن کے پیغام کو عصری اسلوب میں پیش کرنے کی کامیاب کوشش کی ہے ان میں سب سے ممتاز نام مولانا عبدالماجد دریابادی کا ہے جنہوں نے اپنی عمر کا نصف سے زاید حصہ قرآن کی خدمت ہی میں گزار دیا اور اردو و انگریزی میں قرآن مجید کے عظیم‌الشان ترجمہ و تفسیر کی ایک مثال قائم کر دی۔

مولانا کی تفسیر کی خصوصیات کے بارے میں میں انکی کتاب ‘‘مشکلات القرآن’’ (مدراسی لکچرز) اور انگریزی تفسیر کے مقدمے میں تفصیل سے اظہار خیال کر چکا ہوں۔ یہاں مختصراً یہ کہوں گا کہ اس تفسیر کی سب‌سے بڑی خصوصیت یہ ہے کہ یہ مسلک اہل سنت اور صحیح‌الخیال مسلمانوں کے فکر و فہم قرآن کی آئینہ‌دار ہے اور اسے انکا اعتماد حاصل ہے کیونکہ مولانا مرحوم نے عربی تفسیر کے بہترین و منتخب ذخیرے سے استفادہ کیا ہے اور سلف کی رائے کا احترام ملحوظ رکھا ہے۔

دوسرے یہ کہ اس کے ساتھ ہی انہوں‌نے عصری علوم سے بھی پورا فائدہ اٹھایا ہے اور قرآن کے مفہوم کی تشریح و توضیح میں جغرافی، تاریخی معاشرتی، مزہبی و فلسفیانہ ہر طرح کی جدید تحقیقات سے برمحل استفادہ کیا ہے، مگر قرآن کو انکے تابع کرنے کی کوشش نہیں کی ہے۔ قرآنی شخصیات و واقعات کی تحقیق کے سلسلہ میں انہوں‌نے بڑی دقت نظر سے کام لیا ہے، اہل کتاب کے افکار و عقاید کے جایزے کے ساتھ مستشرقین کی غلطفہمیوں کا ازالہ بھی کیا ہے۔

ان سب خصوصیات کے ساتھ یہ تفسیر تجدد و مغربزدگی اور معزرت خواہانہ اسلوب سے پاک ہے اور قرآن کو اسکے حقیقی شکل اور عصری اسلوب میں پیش کرنے کی سب‌سے بہتر کوشش ہے۔

مجھے بڑی مسرت ہے کہ جناب نندکمار اوستھی صاحب (جو قرآن مجید کے ہندی مترجم ہیں اور جنہوں‌نے قرآن کے عربی متن کو صحیح طور پر ناگری رسم‌الخط کا لباس پہنایا ہے) اب انکی نگرانی میں انکے صاحب زادے ونےکمار اوستھی از خود اب مولانا مرحوم کی اس عظیم تفسیر کو ہندی کا جاما پہنا رہے ہیں اور قرآن کا پیغام ہندی داں‌وں تک پہونچانے کی لایق تحسین کوشش کر رہے ہیں۔ امید ہے کہ ہندی داں طبقہ اسے ہاتھوں ہاتھ لیگا اور اسے اسکے ذریعہ قرآن کو سمجھنے میں خاطرخواہ مدد ملیگی۔ اوستھی صاحب اپنی اس خدمت کے لئے سبب ہندی اردو دونوں حلقوں کی طرف سے لائق مبارکباد ہیں۔

مخلص
(مولانا) ابوالحسن‌علی (مدظلہ‌و)
۱۱ جنوری ۱۹۸۳ء

पेशलफ़्ज़

(अज़्-मौलाना सैय्यद अबुल-हसन अली नदवी)

अस्रॅ हाज़िर में जिन उलमा और अहलॅ-क़लम ने क़ुर्आन मजीद के तर्जुमे व तफ़्सीर की क़ाबिलॅ-क़द्र ख़िदमात अंजाम दी हैं और क़ुर्आन के पैग़ाम को अस्री अस्लूब में पेश करने की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कामयाब कोशिश की है उनमें सबसे मुम्ताज़ नाम मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी का है जिन्होंने अपनी उम्र का निस्फ़ से ज़ाइद हिस्सा क़ुर्आन की खिद्मत ही में गुज़ार दिया और उर्दू व अंग्रेज़ी में क़ुर्आन मजीद के अज़ीमुश्शान तर्जुमे व तफ़्सीर की एक मिसाल क़ायम कर दी।

मौलाना की तफ़्सीर की ख़ुसूसियात के बारे में मैं उनकी किताब "मुश्किलातुल्-क़ुर्आन" (मद्रासी लेक्चर्स) और अंग्रेज़ी तफ़्सीर के मुक़द्दमे में तफ़्सील से इज़्हारे ख़याल कर चुका हूँ। यहाँ मुख़्तसरन् यह कहूँगा कि इस तफ़्सीर की सबसे बड़ी ख़ुसूसियत यह है कि यह मस्लके अह्ले-सुन्नत और सहीहुल्ख़याल मुसलमानों के फ़िक्रो-फ़ह्मे-क़ुर्आन की आइनादार है और उसे उनका एतिमाद हासिल है क्योंकि मौलाना मर्हूम ने अरबी तफ़्सीर के बेहतरीन व मुंतख़ब ज़ख़ीरे से इस्तिफ़ाद: किया है और सलफ़ की राय का एहतिराम मल्हूज़ रखा है।

दूसरे यह कि उसके साथ ही उन्होंने अस्री उलूम से भी पूरा फ़ायदा उठाया है और क़ुर्आन के मफ़्हूम की तश्रीह व तौज़ीह में जुग़राफ़ी, तारीख़ी मुआशरती, मज़हबी व फ़ल्सफ़ियान: हर तरह की जदीद तहक़ीक़ात से बर महल इस्तिफ़ाद: किया है मगर क़ुर्आन को उनके ताबे करने की कोशिश नहीं की है। क़ुर्आनी शख़्सियात व वाक़िआत की तह्क़ीक़ के सिल्सिले में उन्होंने बड़ी दिक़्क़ते-नज़र से काम लिया है, अह्ले किताब के अफ़्कार व अक़ायद के जाइज़े के साथ मुस्तश्रिक़ीन की ग़लतफ़ह्मियों का इज़ाल: भी किया है।

इन सब ख़ुसूसियात के साथ यह तफ़्सीर तजद्दुद व मग़्रिबज़दगी और माज़िरत ख्वाहाना अस्लूब से पाक है और क़ुर्आन को उसके हक़ीक़ी शक्ल और अस्री अस्लूब में पेश करने की सबसे बेहतर कोशिश है।

मुझे बड़ी मसर्रत है कि जनाब नन्दकुमार अवस्थी साहब (जो क़ुर्आन मजीद के हिन्दी मुर्तजिम हैं और जिन्होंने क़ुर्आन के अरबी मत्न को सही तौर पर नागरी रस्मुल्ख़त का लिबास पहनाया है) उनकी निगरानी में उनके साहिबज़ादे विनयकुमार अवस्थी अज़् ख़ुद अब मौलाना मर्हूम की इस अज़ीम तफ़्सीर को हिन्दी का जामा पहना रहे हैं और क़ुर्आन का पैग़ाम हिन्दीदानों तक पहुँचाने की लायक़े-तह्सीन कोशिश कर रहे है। उम्मीद है कि हिन्दीदाँ तब्क़: इसे हाथों-हाथ लेगा और उसे उसके ज़रीए क़ुर्आन को समझने में खातिरख्वाह मदद मिलेगी। अवस्थी साहब अपनी इस खिदमत के लिए हिन्दी-उर्दू दोनों हल्क़ों की तरफ़ से लायक़ मुबारकबाद हैं।

मुख़्लिस
११ जनवरी, १९८३ मौलाना अबुल्हसन अली (मद्दज़िल्लहू)

تفسیر ماجدی ہندی میں

(از حکیم عبدالقوی دریابادی)

مولانا عبدالماجد دریابادی ایک زمانہ میں مسٹر عبدالماجد اور ایک نامور فلسفی کی حیثیت رکھتے تھے- بالکل نوجوانی کے زمانہ میں نفسیات پر آپکی ایک کتاب سائکالوجی آف لیڈرشپ کے نام سے انگلستان سے شایع ہوی - اس دور میں وہ مغرب سے بہت دور تھے اور انکی تحریروں میں الحاد نمایاں تھا - ایک عرصہ کے بعد انکی زندگی میں زبردست انقلاب آیا، اور رفتہ رفتہ وہ مولانا بن گے اور انکی زندگی ایک سچے اور پختہ مسلمان کی ہو گئی - انھوں نے قرآن مجید کا مطالعہ بڑے غور سے کیا اور اسکی ضرورت محسوس کی کہ اسکے مطالب کی تفصیل جدید

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

تعلیم‌یافتہ اور یوروپزدہ طبقہ کے سامنے پیش کریں، تاکہ اسلام سے متعلق انکی غلط‌فہمیاں اور شبہات دور ہوں ۔ اس مقصد کے پیش‌نظر انہوں نے پہلے انگریزی میں ایک ضخیم تفسیر لکھی جسے بڑی مقبولیت حاصل ہوئی اور اسکے بعد ہی انہوں نے اردو تفسیر کا کام بڑی محنت، تلاش و انہماک سے شروع کیا اور کئی سال کی محنت کے بعد ایک اردو تفسیر شایع ہوکر انگریزی تفسیر سے بھی زیادہ مقبول ہوئی ۔ اس میں ایسی خوبیاں ہیں جو جدید تعلیم‌یافتہ طبقہ اور قدیم اور پرانے طرز کے تعلیم‌یافتہ طبقہ دونوں کے لئے پرکشش ہیں ۔ انہوں نے قرآنی تعلیمات کو بڑے اچھے اسلوب سے موجودہ زمانہ کے مزاق طبیعت کے مطابق پیش کرتے ہوئے تاریخ، جغرافیہ، علم فلسفہ جدید و سائنس کی تحقیقات سے پورا فائدہ اٹھاتے ہوے ساتھ میں پرانی اور مستند تفسیروں کے ضروری اور اہم اجزا بھی اپنی اس تفسیر میں پیش کر دے ہیں ۔ انکا طرزتحریر بہت سلیس اور دل‌نشیں ہے ۔ انکی اس تفسیر کو اسلامی علوم کی ایک چھوٹی-موٹی انسائکلوپیڈیا قرار دیا جا سکتا ہے ۔

بڑی مسرت کی بات ہے کہ ہندی کے ایک نامور ناشر جناب نندکمار اوستھی صاحب جو اس سے قبل قرآن مجید کے ایک مشہور ترجمہ کو، جو اردو اور انگریزی کے مستند ترجموں کی بنیاد پر ہے، ہندی میں اصل متن کو عربی و ناگری دونوں رسم‌الخطوں میں بڑے اہتمام کے ساتھ شایع کرا کے قومی یکجہتی کی ایک اہم خدمت انجام دے چکے تھے جسکے لئے مسلمان آپکے انتہائی ممنون ہیں اور اب انہوں نے اس تفسیر-ماجدی کے ہندی ترجمہ کا اہم کام اپنے ہاتھ میں لیا ہے ۔ اور انکے صاحبزادہ ونےکمار اوستھی از خود بڑی محنت و صحت کے ساتھ اسکی طباعت و اشاعت کا آغاز کر رہے ہیں ۔ امید ہے کہ انکی اس اہم خدمت کی سارے ملک میں قدر کی جایگی ۔ اور اسکے ذریعہ ایک طرف ہندی اور اردو میں نیا رابطہ قائم ہوگا اور دوسری طرف اس ملک کے بسنےوالے خصوصاً ہندی داں مسلم و غیرمسلم اسلام کے پیام اور قرآن کی تعلیمات کا صحیح مطلب و مفہوم سمجھ سکینگے ۔

حکیم عبدالقوی دریابادی
ایڈیٹر صدق جدید

तफ़्सीर माजिदी हिन्दी में

(अज़्-हकीम अब्दुल क़वी दर्याबादी)

मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी एक ज़माने में मिस्टर अब्दुल माजिद और एक नामवर फ़ल्सफ़ी की हैसियत रखते थे। बिलकुल नौजवानी के ज़माने में नफ़्सियात पर आपकी एक किताब 'साइकालोजी ऑफ़ लीडरशिप' के नाम से इंगिलस्तान से शाया हुई। इस दौर में वह मग़रिब से बहुत दूर थे और उनकी तहरीरों में इल्हाद नुमायाँ था। एक अर्से के बाद उनकी ज़िन्दगी में ज़बरदस्त इन्क़िलाब आया और रफ़्त:-रफ़्त: वह मौलाना बन गये और उनकी ज़िन्दगी एक सच्चे और पुख़्ता मुसलमान की हो गयी। उन्होंने क़ुर्आन मजीद का मुतालिअ: बड़े ग़ौर से किया और उसकी ज़रूरत महसूस की कि उसके मतालिब की तफ़्सील जदीद तालीमयाफ़्ता और यूरोपज़द: तब्क़े के सामने पेश करें, ताकि इस्लाम से मुतअल्लिक़ उनकी ग़लतफ़हमियाँ और शुब्हात दूर हों। इस मक़सद के पेशे-नज़र उन्होंने पहले अंग्रेज़ी में एक ज़ख़ीम तफ़्सीर लिखी जिसे बड़ी मक़्बूलियत हासिल हुई और उसके बाद ही उन्होंने उर्दू तफ़्सीर का काम बड़ी मेहनत, तलाश व इन्हिमाक से शुरू किया और कई साल की मेहनत के बाद एक उर्दू तफ़्सीर शाया होकर अंग्रेज़ी तफ़्सीर से भी ज़ियाद: मक़बूल हुई। उसमें ऐसी ख़ूबियाँ हैं जो जदीद तालीमयाफ़्त: तब्क़े और क़दीम और पुराने तर्ज़ के तालीमयाफ़्त: तब्क़े दोनों के लिए पुर-कशिश हैं। उन्होंने क़ुर्आनी तालीमात को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़े अच्छे अस्लूब से मौजूदा ज़माने के मज़ाक़े तबीयत के मुताबिक़ पेश करते हुए तारीख़, जुग़राफ़िया, इल्मे-फ़ल्सफ़ये-जदीद व साइंस की तहक़ीक़ात से पूरा फ़ायदा उठाते हुए साथ में पुरानी और मुस्तनद तफ़्सीरों के ज़रूरी और अहम अज्ज़ा भी अपनी इस तफ़्सीर में पेश कर दिये हैं। उनका तर्ज़े-तहरीर बहुत सलीस और दिलनशीं है। उनकी इस तफ़्सीर को इस्लामी उलूम की एक छोटी-मोटी इन्साइक्लोपीडिया क़रार दिया जा सकता है।

बड़ी मसर्रत की बात है कि हिन्दी के एक नामवर नाशिर जनाब नन्दकुमार अवस्थी साहब जो इससे क़ब्ल क़ुर्आन मजीद के एक मश्हूर तर्जुमे को, जो उर्दू व अंग्रेज़ी के मुस्तनद तर्जुमों की बुनियाद पर है, हिन्दी में, अस्ल मत्न को अरबी व नागरी दोनों रस्मुल्ख़तों में बड़े इहतिमाम के साथ शाया करा के क़ौमी यक्जहती की एक अहम ख़िदमत अंजाम दे चुके थे जिसके लिए मुसलमान आपके इन्तिहाई मम्नून हैं और अब उन्होंने इस तफ़्सीर-माजिदी के हिन्दी तर्जुमे का अहम काम अपने हाथ में लिया है। और उनके साहिबज़ादे विनयकुमार अवस्थी अज़्ख़ुद बड़ी मेहनत व सेहत के साथ उसकी तबाअत व इशाअत का आग़ाज़ कर रहे हैं। उम्मीद है कि उनकी इस अहम ख़िदमत की सारे मुल्क में क़द्र की जायेगी और उसके ज़रीए एक तरफ़ हिन्दी और उर्दू में नया राबितः क़ायम होगा और दूसरी तरफ़ इस मुल्क के बसनेवाले ख़ुसूसन् हिन्दी दाँ मुस्लिम व ग़ैरमुस्लिम इस्लाम के पयाम और क़ुर्आन की तालीमात का सही मत्लब व मफ़्हूम समझ सकेंगे।

हकीम अब्दुल क़वी दर्याबादी
(एडीटर सिद्क़े जदीद)

"صدق جدید" ۵ ستمبر ۱۹۶۹ء مولانا عبدالماجد صاحب دریابادی کی رائے

ترجمہ تمامتر پنڈت (نندکمار اوستھی) صاحب کا کارنامہ ہے......مستند ترجموں کی بنیاد پر ہے — ......اپنی خدرائی کو بالکل دخل نہیں دیا ہے — حاشیے تمام تر ہمدردانہ ہیں — عربی متن ہندی لکھاوٹ میں اس طرح لکھا ہے کہ بالکل عربی ہی کی طرح ادا ہو —

सिद्क़ जदीद ५ सितम्बर, १९६९ ई० में

मौलाना अब्दुल् माजिद साहिब दर्याबादी की राय

तर्जुमः तमामतर पण्डित (नन्दकुमार अवस्थी) साहिब का कारनामा है……मुस्तनद तर्जुमों की बुनियाद पर है।…… अपनी ख़ुदराई को बिलकुल दख़ल नहीं दिया है। हाशिये तमामतर हमदर्दाना हैं। अरबी मत्न हिन्दी लिखावट में इस तरह लिखा है कि बिलकुल अरबी ही की तरह अदा हो।

ناشر کی طرف سے

ایک روایت ہے کہ "علم عالم سے پڑھنا چاہیے"— محض ترجمہ یا از خود پر بھروسہ رکھنے پر بعض اوقات غلطفہمی کا اندیشہ رہتا ہے— لیکن دشواری یہ ہے کہ عالم ہر بشر کو ہر وقت میسر نہیں — اس دشواری کا علاج تفسیر ہے— علماء تفسیر تیار کرتے ہیں اور تفسیر کی مدد سے ناظرین کو پتہ چلتا ہے کہ جس چیز کو وہ معمولی سمجھکر نظرانداز کر دیتے تھے وہ کتنی اہمیت رکھتی

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ہے اور جسکو وہ کبھی سمجھکر لاعلم رہ جاتے تھے وہ کتنی کشادہ اور خلاصہ ہوکر ان کی سمجھ میں آ جاتی ہے ۔ قرآن جیسی علم الکتاب کے لئے اسی نظریے سے ہم نے ہندی داں طبقے کے لئے مرحوم موصوف جناب عبدالماجد صاحب دریابادی کی بیش بہا "تفسیر ماجدی" کا ہندی ایڈیشن شایع کرنا مناسب سمجھا ۔

پرم پتا پرماتما کی رحمت سے اس اہم کام کی ایک منزل طے ہوی ۔ قرآن شریف تفسیر ماجدی کی یہ پہلی جلد پارہ ایک سے پانچ تک عوام کے پیش نظر ہے ۔ اسی طرح پانچ پانچ پاروں کی کل چھہ جلدوں میں اس ضخیم مکمل کتاب کا سلسلہ طباعت چل رہا ہے ۔ اس اہم کام کی ایک تواریخ ہے اور وہ ناظرین سے گزارش کرنا مناسب ہوگا ۔

میرے پتا (پدم شری نندکمار اوستھی) جی نے سولہ سترہ سال کی مسلسل محنت کے بعد سن ۱۹۶۹ ء میں قرآن شریف کا ایک بیش بہا ہندی ایڈیشن شایع کیا تھا ۔ اس بے نظیر ایڈیشن میں قرآن شریف کا عربی متن دیتے ہوے اسکو ناگری رسم الخط میں بھی انتہائی صحت کے ساتھ منتقل کیا گیا تھا ۔ متن کے مقابل انگریزی و اردو کے مستند ترجموں کی بنیاد پر ہندی انواد (ترجمہ) بھی دیا گیا ہے ۔ اس محنت کو ملک کے جانے مانے علماء نے سراہا اور عوام میں عظیم خیر مقدم ہوا ۔ محترم بزرگوار جناب مولانا علی میاں صاحب ندوی نے پیش لفظ لکھکر اس محنت کو زینت بخشی ۔ جنتنشیں معروف و موصوف مولانا قاری محمد صدیق صاحب جو ساتھ ہی ساتھ شروع تا اختت دوران طباعت نظرثانی کرتے رہے ۔ انکے اور جناب مولانا علی میاں صاحب ندوی کے پیش لفظ بجنسہی موجدہ تفسیر کے صفحہ ۲۵-۲۸ پر موجود ہیں ۔

جنتنشیں مرحوم موصوف مولانا عبدالماجد صاحب دریابادی نے بھی اپنے اخبار صدق جدید میں ۵ ستمبر ۱۹۶۹ ء کو اس ہندی قرآن شریف کی بڑی تعریف چھاپی تھی ۔ دیکھئے صفحہ ۶ ۔ غرض وہ ایک نایاب چیز مانی گئی ۔

عرض کرنا بے موقع نہ ہوگا کہ پتا جی کے ساتھ پروف پڑھنے اور عربی کو ناگری رسم الخط میں ڈھالنے میں احقر کو بھی اپنی خدمت پیش کرنے کا موقع ملا تھا ۔ اور آج جناب حکیم عبدالقوی صاحب کے حکم کی تعمیل میں تفسیر ماجدی کا موجودہ ہندی ایڈیشن چھاپتے وقت میں نے ان قواعد اور اصطلاحات پر پورا عمل کرنے کی کوشش کی ہے ۔

موجودہ ہندی تفسیر ماجدی میں حسب ذیل برکتیں موجود ہیں ۔

(۱) عربی رسم الخط میں قرآن شریف کا متن ۔

(۲) ناگری رسم الخط میں متن ۔ مشتبہ الصوت (ملتی جلتی آواز والے) حروف، جو ناگری میں نہیں ہیں انکی ایجاد ۔ شمار منزل، پارہ، آیت، وقف، رکوع، ربع، نصف، ثلث، وصل فصل کے لئے ہدایت، معانقہ، نون قطنی، ہمزہ ساکن، ہمزہ خاموش، ہمزہ وصل، سورتوں کی تلاوت و نزول کا سلسلہ، رموز اوقاف، نیز تمام جانکاری و انکے صفحہ انڈیکس دےکر پورا احتیاط کیا گیا ہے کہ عربی نہ جاننےوالا ہندیداں طبقہ فیضیاب ہو ۔

(۳) ناگری رسم الخط میں صحیح تلاوت کے امکان کے لیے ایک قواعدنامہ صفحہ ۲۹-۳۹ پر دیا گیا ہے ۔
(۴) ایک فہرست مضامین و پارہ، سورہ و متعلق اطلاعات کے انڈیکس صفحہ ۱۰ سے ۱۲ پر موجود ہیں ۔
(۵) صفحہ ۱۳ سے ۲۴ تک میں ابتدائی عربی گرامر بھی ہندیداں صاحبان کے لے فراہم کی گئی ہے ۔
(۶) تفسیر ماجدی کے اس ہندی ایڈیشن پر بزرگوار جناب مولانا علی میاں صاحب ندوی اور جناب مولانا حکیم عبدالقوی صاحب نے پیش لفظ میں جو دعا بخشی ہے وہ بھی صفحہ ۳-۶ پر

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

دیتے ہوے ناظرین سے درخواست کرتا ہوں کہ احقر اس ضخیم کام کو پایہ تکمیل تک پہونچا سکے، اسکی دعا دیتے رہیں ۔

آج ایک افسوس کی بات بھی ہے، جو اس موقع پر بار بار یاد آ رہی ہے ۔ فیض آباد کے جناب محمد حنیف فاروقی، پی-آئی ایس نے ترجمہ و تفسیر کو ہندی کا جامہ پہنانے میں بڑی مدد کی۔ صد افسوس کی بات رہی کہ گزشتہ دسمبر ۱۹۸۱ میں ۶۱ سال کی عمر میں ہی انہوں نے اس فانی دنیا سے رخصت لی ۔ تفسیر ماجدی کا نصف کام ہی وہ کر پاے تھے ۔ پرماتما انکو نیکبختوں والا انجام دے ۔

جناب حبیب احمد قدوائی، ڈاکٹر محمد ہاشم قدوائی، پروفیسر علی گڑھ یونیورسٹی اور عبدالعلیم قدوائی صاحبان کے ہم نہایت مشکور ہیں ۔ انہوں نے جس محبت و عنایت سے ہمارے کام میں ہمیشہ مدد کی ہے وہ تحریر کے بس کا نہیں ۔

لکھنؤ کتاب گھر، لکھنؤ　　　　　احقر

رنے کمار اوستھی

नाशिर की ओर से (प्रकाशकीय)

एक रिबायत है कि "अ़िल्म आ़लिम से पढ़ना चाहिए"। महज़ तर्जुमः या अज़् ख़ुद पर भरोसा रखने पर बाज़ औक़ात ग़लतफ़हमी का अन्देशा रहता है। लेकिन दुश्वारी यह है कि आ़लिम हर बशर को हर वक़्त मयस्सर नहीं। इस दुश्वारी का इलाज "तफ़्सीर" है। उलमा तफ़्सीर तैयार करते हैं और तफ़्सीर (भाष्य) की मदद से नाज़िरीन को पता चलता है कि जिस चीज़ को वे मामूली समझकर नज़रअन्दाज़ कर देते थे वह कितनी अहम्मीयत रखती है, और जिसको वे गुत्थी समझकर लाअ़िल्म रह जाते थे वह कितनी कुशादः और ख़ुलासः होकर उनकी समझ में आ जाती है। क़ुर्आन जैसी अ़िल्मुल्किताब के लिए इसी नज़रिये से हमने हिन्दीदाँ तब्क़े के लिए मर्हूम मौसूफ़ जनाब अब्दुल् माजिद साहिब दर्याबादी की बेशबहा "तफ़्सीर माजिदी" का हिन्दी एडिशन शाया करना मुनासिब समझा।

परमपिता परमात्मा की रहमत से इस अहम काम की एक मंज़िल तय हुई। क़ुर्आन शरीफ़ तफ़्सीर माजिदी की यह पहली जिल्द पारः एक से पाँच तक अवाम के पेशे नज़र है। सफ़: 10 से 12 पर एक विषय-सूची यानी मज़ामीन व पारः, सूरः व मुतअ़ल्लिक़ इत्तिलाआत की एक फ़िह्रिस्त मौजूद है। इसी तरह पाँच-पाँच पारों की कुल छः जिल्दों में इस ज़ख़ीम मुकम्मल किताब का सिल्सिलः तबाअ़त चल रहा है। इस अहम काम की एक तवारीख़ है और वह नाज़िरीन से गुज़ारिश करना मुनासिब होगा।

मेरे पिता (पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी) जी ने सोलह-सत्रह साल की मुसलसल मिहनत के बाद सन् १९६९ ई० में क़ुर्आन शरीफ़ का एक बेशबहा हिन्दी एडिशन शाया किया था। उस बेनज़ीर एडीशन में क़ुर्आन शरीफ़ का अ़रबी मत्न देते हुए उसको नागरी रस्मुल्ख़त में भी इन्तिहाई सेहत के साथ मुंतक़िल किया गया था। मत्न के मुक़ाबिल अंग्रेज़ी व उर्दू के मुस्तनद तर्जुमों की बुनियाद पर हिन्दी अनुवाद (तर्जुमः) भी दिया गया है। इस मिहनत को मुल्क के जाने-माने उलमा ने सराहा और अवाम में अज़ीम ख़ैरमक़्दम हुआ। मुह्तरम बुज़ुर्गवार जनाब मौलाना अली मियाँ साहब ने पेशलफ़्ज़ लिखकर उस मिहनत को ज़ीनत बख़्शी। जन्नत-नशीं मारूफ़ व मौसूफ़ मौलाना क़ारी मुहम्मद सिद्दीक़ साहब भी साथ ही साथ शुरू ता अख़ीर दौरान तबाअ़त नज़रसानी करते रहे, उनका और जनाब मौलाना अली मियाँ साहब नदवी के पेश-लफ़्ज़ बिजिन्सिही मौजूदा तफ़्सीर के सफ़: 25-28 पर मौजूद हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्नतनशीं मर्हूम मौसूफ़ मौलाना अब्दुल् माजिद साहब दर्याबादी ने भी अपने रिसाला सिद्क़ जदीद में ५ सितंबर, १९६९ ई० को उस हिन्दी क़ुर्आन शरीफ़ की बड़ी तारीफ़ छापी थी। देखिये सफ़ः 6। ग़रज़ वह एक नायाब चीज़ मानी गई।

अर्ज़ करना बेमौक़ा न होगा कि पिताजी के साथ प्रूफ़ पढ़ने और अरबी को नागरी रस्मुल्ख़त में ढालने में अह्क़र को भी अपनी ख़िदमत पेश करने का मौक़ा मिला था। और आज जनाब हकीम अब्दुल क़वी साहब के हुक्म की तामील में, तफ़्सीर माजिदी का मौजूदा हिन्दी एडीशन छापते वक़्त मैंने उन क़वाइद और इस्तलाहात पर पूरा अमल करने की कोशिश की है।

मौजूदा हिन्दी तफ़्सीर माजिदी में हस्बज़ैल बरकतें मौजूद हैं:—

१ अरबी रस्मुलख़त में क़ुर्आन शरीफ़ का मत्न (मूल आयतें)।

२ नागरी रस्मुल्ख़त में मत्न। मुश्तबहुस्सौत (मिलती-जुलती आवाज़ वाले) हुरूफ़, जो नागरी में नहीं हैं, उनकी ईजाद। शुमार मन्ज़िल, पारः, आयत, वक़्फ़, रुकूअ, रुबअ, निस्फ़, सुलस, वस्ल-फ़स्ल के लिए हिदायत, मुआनक़ः, नूनक़ुत्नी, हम्ज़ः साकिन, हम्ज़ः ख़ामोश, हमज़ः वस्ल, सूरतों के तिलावत व नुज़ूल का सिल्सिलः, रुमूज़ औक़ाफ़, नीज़् तमाम जानकारी व उनके सफ़ा-इण्डेक्स देकर पूरा एहतियात किया गया है कि अरबी न जाननेवाला हिन्दीदाँ तब्क़ः फ़ैज़्याब हो।

३ नागरी रस्मुल्ख़त में सही तिलावत के इम्कान के लिए एक क़वाइदनामा सफ़ः 29-39 पर दिया गया है।

४ सफ़ः 13 से 24 तक में इब्तिदाई अरबी ग्रामर भी हिन्दीदाँ साहिबान के लिए फ़रहम की गई है।

५ तफ़्सीर माजिदी के इस हिन्दी एडीशन पर बुज़ुर्गवार जनाब मौलाना अली मियाँ साहिब और जनाब मौलाना हकीम अब्दुल क़वी साहब ने पेशलफ़्ज़ में जो दुआ बख़्शी है वह भी सफ़ः 3-6 पर देते हुए नाज़रीन से दर्ख़्वास्त करता हूँ कि अह्क़र इस ज़ख़ीम काम को पाये तक्मील पर पहुँचा सके। इसकी दुआ देते रहें कि बक़िआ २५ पारों का भी नश्र जल्द अज़् जल्द हो।

आज एक अफ़्सोस की बात भी है, जो इस मौक़े पर बार-बार याद आ रही है। फ़ैज़ाबाद के जनाब मुहम्मद हनीफ़ फ़ारूक़ी, पी०ई० एस० ने तर्जुमः व तफ़्सीर को हिन्दी का जामा पहनाने में बड़ी मदद की। सद् अफ़्सोस की बात रही कि गुज़श्तः दिसम्बर, १९८१ में ६१ साल की उम्र में ही उन्होंने इस फ़ानी दुन्या से रुख़सत ली। तफ़्सीर माजिदी का निस्फ़ काम ही वह कर पाये थे। परमात्मा उनको नेकबख़्तों वाला अंजाम दे।

जनाब हबीब अहमद क़िदवई, डॉ० मुहम्मद हाशिम क़िदवई, प्रो० अलीगढ़ यूनीवर्सिटी और अब्दुल् अलीम क़िदवई साहिबान के हम निहायत मश्कूर हैं। उन्होंने जिस मुहब्बताना तबीयत से हमारे काम में हमेशा मदद की है, वह तहरीर के बस का नहीं।

लखनऊ किताबघर
लखनऊ—३

अह्क़र
विनयकुमार अवस्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

फ़िहरिस्त मज़ामीन

	सफ़ः
पेशलफ़्ज़, क़वाइद, अरबी ग्रामर वग़ैरः	१-४०
सूरतुल् फ़ातिहति मूल (मत्न)	४१
सूरतुल् फ़ातिहति तर्जुमः	४१
सूरतुल् फ़ातिहति तफ़्सीर	४१-४९
१ पारः अलिफ़् लाम् मीम्	४९-१७१
सूरतुल् बक़रति मूल (मत्न) आयात १-४	४९
तर्जुमः सूरतुल् बक़रति आयात १-४	४९
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात १-४	४९-५५
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ५-१९	५६
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ५-१९	५७
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात ५-१९	५७-६३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात २०-२७	६४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात २०-२७	६५
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात २०-२७	६५-७१
सूरतुल् बक़रति मूल आयात २८-३९	७२
तर्जुमः सू० बक़रति आयात २८-३९	७३
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात २८-३९	७३-८१
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ४०-५४	८२
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ४०-५४	८३
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात ४०-५४	८३-९१
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ५५-६२	९२
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ५५-६२	९३
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात ५५-६२	९३-१०३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ६३-७३	१०४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ६३-७३	१०५
तफ़्सीर सू०बक़रति आयात ६३-७३	१०५-१११
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ७४-८३	११०
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ७४-८३	१११
तफ़्सीर सू० बक़रति आयात ७४-८३	१११-११७
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ८४-९१	११८
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ८४-९१	११९
तफ़्सीर सू०बक़रति आयात ८४-९१	११९-१२३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात ९२-१०१	१२४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात ९२-१०१	१२५
तफ़्सीर सू०ब० आयात ९२-१०१	१२५-१३१
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १०२-११०	१३२
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १०२-११०	१३३
तफ़्सीर सू०ब० आयात १०२-११०	१३३-१४३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १११-१२०	१४४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १११-१२०	१४५
तफ़्सीर सू० बक़रति १११-१२०	१४५-१५१
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १२१-१३१	१५२
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १२१-१३१	१५३
तफ़्सीर सू० ब० आयात १२१-१३१	१५३-१६३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १३२-१४१	१६४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १३२-१४१	१६५
तफ़्सीर सू० ब० आयात १३२-१४१	१६५-१७१
२ पारः सयक़ूलु	१७२-२८७
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १४२-१४७	१७२
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १४२-१४७	१७३
तफ़्सीर सू०ब० आयात १४२-१४७	१७३-१७७
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १४८-१५८	१७८
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १४८-१५८	१७९
तफ़्सीर सू० ब०आयात १४८-१५८	१७९-१८५
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १५९-१६७	१८६
तर्जुमः सू० ब० आयात १५९-१६७	१८७
तफ़्सीर सू० ब० आ० १५९-१६७	१८७-१९३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १६८-१७६	१९४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १६८-१७६	१९५
तफ़्सीर सू० ब० आयात १६८-१७६	१९५-१९९
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १७७-१८३	२००
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १७७-१८३	२०१
तफ़्सीर सू० ब० आयात १७७-१८३	२०१-२०७
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १८४-१८७	२०८
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १८४-१८७	२०९
तफ़्सीर सू० ब० आयात १८४-१८७	२०९-२१९
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १८८-१९५	२२०
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १८८-१९५	२२१
तफ़्सीर सू० ब० आयात १८८-१९५	२२१-२२९
सूरतुल् बक़रति मूल आयात १९६-२०१	२३०
तर्जुमः सू० बक़रति आयात १९६-२०१	२३१
तफ़्सीर सू० ब० आयात १९६-२०१	२३१-२३७
सूरतुल् बक़रति मूल आयात २०२-२१२	२३८
तर्जुमः सू० बक़रति आयात २०२-२१२	२३९
तफ़्सीर सू० ब० आ० २०२-२१२	२३९-२४३
सूरतुल् बक़रति मूल आयात २१३-२१६	२४४
तर्जुमः सू० बक़रति आयात २१३-२१६	२४५
तफ़्सीर सू० ब० आयात २१३-२१६	२४५-२४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २१७-२२१ २५०
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २१७-२२१ २५१
तफ़्सीर सू० ब० आयात२१७-२२१ २५१-२५७
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २२२-२२८ २५८
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २२२-२२८ २५९
तफ़्सीर सू० ब० आयात २२२-२२८ २५९-२६३
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २२९-२३२ २६४
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २२९-२३२ २६५
तफ़्सीर सू० ब० आयात २२९-२३२ २६५-२६९
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २३३-२३७ २७०
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २३३-२३७ २७१
तफ़्सीर सू० ब० आयात २३३-२३७ २७१-२७३
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २३८-२४६ २७४
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २३८-२४६ २७५
तफ़्सीर सू० ब० आ० २३८-२४६ २७५-२७९
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २४७-२५२ २८०
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २४७-२५२ २८१
तफ़्सीर सू० ब० आ० २४७-२५२ २८१-२८७
३ पारः तिल्कर्रुसुलु २८८-३७३
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २५३-२५६ २८८
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २५३-२५६ २८९
तफ़्सीर सू० ब० आयात २५३-२५६ २८९-२९३
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २५७-२६० २९४
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २५७-२६० २९५
तफ़्सीर सू० ब० आ० २५७-२६० २९५-३०१
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २६१-२६६ ३०२
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २६१-२६६ ३०३
तफ़्सीर सू० ब० आयात २६१-२६६ ३०३-३०५
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २६७-२७४ ३०६
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २६७-२७४ ३०७
तफ़्सीर सू० ब० आयात २६७-२७४ ३०७-३११
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २७५-२८१ ३१२
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २७५-२८१ ३१३
तफ़्सीर सू० ब० आ० २७५-२८१ ३१३-३१५
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २८२-२८४ ३१६
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २८२-२८४ ३१७
तफ़्सीर सू० ब० आ० २८२-२८४ ३१७-३२१
सूरतुल् बक़रत्ति मूल आयात २८५-२८६ ३२२
तर्जुमः सू० बक़रत्ति आयात २८५-२८६ ३२३
तफ़्सीर सू० ब० आ० २८५-२८६ ३२३-३२५
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात १-६ ३२२
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात १-६ ३२३
तफ़्सीर सू०आलि अ़ि० आ० १-६ ३२५-३२७
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ७-१६ ३२८
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात ७-१६ ३२९
तफ़्सीर सू०आलि अ़ि० आ० ७-१६ ३२९-३३३
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात १७-२५ ३३४
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात १७-२५ ३३५
तफ़्सीर सू० आ० अ़ि० आ० १७-२५ ३३५-३३७
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात २६-३५ ३३८
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात २६-३५ ३३९
तफ़्सीर सू०आलि अ़ि०आयात २६-३५ ३३९-३४३
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ३६-४४ ३४४
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात ३६-४४ ३४५
तफ़० सू०आलि अ़ि० आ० ३६-४४ ३४५-३४९
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ४५-५३ ३५०
तर्जुमः सू०आलि अ़ि० आयात ४५-५३ ३५१
तफ़० सू० आलि अ़ि० आ० ४५-५३ ३५१-३५७
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ५४-६४ ३५८
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात ५४-६४ ३५९
तफ़० सू० आलि अ़ि० आ० ५४-६४ ३५९-३६३
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ६५-७४ ३६४
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात ६५-७४ ३६५
तफ़्सीर सू०आलि अ़ि०आयात ६५-७४ ३६५-३६७
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ७५-८१ ३६८
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात ७५-८१ ३६९
तफ़० सू०आलि अ़ि० आ० ७५-८१ ३६९-३७१
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ८२-९१ ३१२
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात ८२-९१ ३७३
तफ़्सीर सू० आलि अ़ि० आयात ८२-९१ ३७३
४ पारः लन्तनालू ३७४-४४३
सूरतु आलि अ़िम्रान मूल आयात ९२-१०१ ३७४
तर्जुमः सू०आलि अ़ि० आयात ९२-१०१ ३७५
तफ़० सू०आलि अ़ि० आ० ९२-१०१ ३७५-३७७
सूरतु आलि अ़ि० मूल आयात १०२-११० ३७८
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आ० १०२-११० ३७९
तफ़०सू०आलि अ़ि० आ० १०२-११० ३७९-३८१
सूरतु आलि अ़ि० मूल आयात १११-११८ ३८२
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आ० १११-११८ ३८३
तफ़्सीर आलि अ़ि० आ०१११-११८ ३८३-३८५
सूरतु आलि अ़ि० मूल आ० ११९-१२९ ३८६
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आ० ११९-१२९ ३८७
तफ़० सू०आलि अ़ि० आ०११९-१२९ ३८७-३९१
सूरतु आलि अ़ि० मूल आयात १३०-१४१ ३९२
तर्जुमः सू० आलि अ़ि० आयात १३०-१४१ ३९३
तफ़०सू०आलि अ़ि० आ०१३०-१४१ ३९३-३९५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूरतु आलि अि० मूल आयात १४२-१५१ ३९६
तर्जुमः सू० आलि अि० आयात १४२-१५१ ३९७
तफ़्सीर आलि अि० आ० १४२-१५१ ३९७-४०१
सूरतु आलि अि० मूल आयात १५२-१५५ ४०२
तर्जुमः सू०आलि अि० आयात १५२-१५५ ४०३
तफ़्० सू०आलि अि० आ० १५२-१५५ ४०३-४०५
सूरतु आलि अि० मूल आयात १५६-१६४ ४०७
तर्जुमः सू० आलि अि० आ० १५६-१६४ ४०७
तफ़्सीर सू०आलि अि०आ०१५६-१६४ ४०७-४०९
सूरतु आलि अि० मूल आयात १६५-१७३ ४१०
तर्जुमः सू०आलि अि० आ० १६५-१७३ ४११
तफ़्सीर सू०आलि अि०आ०१६५-१७३ ४११-४१३
सूरतु आलि अि० मूल आयात १७४-१८१ ४१४
तर्जुमः सू० आलि अि० आ० १७४-१८१ ४१५
तफ़्० सू०आलि अि०आ० १७४-१८१ ४१५-४१७
सूरतु आलि अि० मूल आयात १८२-१९० ४१८
तर्जुमः सू० आलि अि० आ० १८२-१९० ४१९
तफ़्० सू० आलि अि० आ० १८२-१९० ४१९
सूरतु आलि अि० मूल आयात १९१-१९९ ४२०
तर्जुमः सू०आलि अि० आ० १९१-१९९ ४२१
तफ़्०सू०आलि अि०आ० १९१-१९९ ४२१-४२५
सूरतु आलि अिम्रान मूल आयात २०० ४२६
तर्जुमः सू० आलि अिम्रान आयात २०० ४२७
तफ़्सीर सू० आलि अि० आयात २०० ४२७
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १-५ ४२६
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात १-५ ४२७
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० १-५ ४२७-४३१
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ६-११ ४३२
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ६-११ ४३३
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० ६-११ ४३३-४३७
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १२-१७ ४३८
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात १२-१७ ४३९
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० १२-१७ ४३९-४४१
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १८-२३ ४४२
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात १८-२३ ४४३
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आयात १८-२३ ४४३

५ पारः वल्मुह्सनातु ४४४-५१२

सूरतुन्निसा'अि मूल आयात २४-२८ ४४४
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात २४-२८ ४४५
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ०२४-२८ ४४५-४४९
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात २९-३६ ४५०
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात २९-३६ ४५१
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० २९-३६ ४५१-४५५
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ३७-४३ ४५६
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ३७-४३ ४५७
तफ़्० सूरतुन्निसा'अि आ० ३७-४३ ४५७-४५९
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ४४-५२ ४६०
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ४४-५२ ४६१
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० ४४-५२ ४६१-४६३
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ५३-६० ४६४
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ५३-६० ४६५
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० ५३-६० ४६५-४६७
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ६१-७१ ४६८
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ६१-७१ ४६९
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० ६१-७१ ४६९-४७१
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ७२-७७ ४७२
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ७२-७७ ४७३
तफ़्सीर सरतुन्निसा'अि आ० ७२-७७ ४७३-४७७
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ७८-८५ ४७८
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ७८-८५ ४७९
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० ७८-८५ ४७९-४८१
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ८६-९१ ४८२
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ८६-९१ ४८३
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आयात ८६-९१ ४८३
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ९२-९७ ४८४
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ९२-९७ ४८५
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ०९२-९७ ४८५-४८९
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ९८-१०३ ४९१
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ९८-१०३ ४९१
तफ़्० सूरतुन्निसा'अि आ० ९८-१०३ ४९१-४९३
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १०४-११३ ४९४
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात १०४-११३ ४९५
तफ़्० सूरतुन्निसा'अि आ०१०४-११३ ४९५-४९७
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात ११४-१२४ ४९८
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात ११४-१२४ ४९९
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ० ११४-१२४ ४९९
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १२५-१३१ ५००
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आ० १२५-१३१ ५०१
तफ़्सीर सूरतुन्निसा'अि आ०१२५-१३१ ५०१-५०५
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १३२-१३९ ५०६
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात १३२-१३९ ५०७
तफ़्सीर सूरतुन्नि० आ० १३२-१३९ ५०७-५०९
सूरतुन्निसा'अि मूल आयात १४०-१४७ ५१०
तर्जुमः सूरतुन्निसा'अि आयात १४०-१४७ ५११
तफ़्सीर सूरतुन्नि० आ० १४०-१४७ ५११-५१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ़रबी भाषा का प्रारम्भिक व्याकरण (Grammer)

सबक़ (अध्याय)—१

अ़रबी को नागरी लिपि में पढ़ने के लिए संकेताक्षरी और पठन-विधि आगे पृष्ठ २९-३९ पर दी गई है। यहाँ से अ़रबी के क़वाइद (व्याकरण) का कुछ बयान दिया जाता है। नागरी रस्मुल्ख़त में अ़रबी मत्न (मूल) को समझने के लिए मौज़ूँ साँचे में प्रारम्भिक व्याकरण (ग्रामर) को पेश किया जा रहा है। मंशा यह है कि अ़रबी न जाननेवाले अगर नागरी रस्मुल्ख़त के ज़रीये क़ुर्आन पढ़ना चाहें तो क़ुर्आन की आयतों के पढ़ने-समझने में आसानी हो। और साथ ही इस आरम्भिक व्याकरण से शब्दों के जोड़ समझने व हिन्दी से अ़रबी, और अ़रबी से हिन्दी के छोटे-छोटे वाक्यों को बना सकने की मश्क़ हो। इसके बाद ज़ियादः शौक़ होने पर अ़रबी ज़बान के या क़ुर्आन के आलिमों से मदद लें। यहाँ तो आरम्भिक मश्क़ (अभ्यास) करने के लिए एक सहारा दिया जा रहा है।

मुब्तिदा (उद्देश्य)—Subject, ख़बर (विधेय)—Predicate

हर जुम्ले (वाक्य) में दो हिस्से होते हैं। (१) वाक्य में कर्त्ता, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है उसको मुब्तिदा (उद्देश्य) कहते हैं। यह हमेशा विशेष वस्तु या व्यक्ति के लिए आता है। वस्तु के शब्द को विशेष (मअ़्रिफ़ः) बनाने के लिए 'अल्' शुरू में लगाना ज़रूरी है। (२) और जो कुछ कहा जाता है उसको ख़बर (विधेय) कहते हैं।

अल्लाह ख़ालिक़ है, मुहम्मद नबी हैं, तारिक मुजाहिद है। इन वाक्यों में अल्लाह, मुहम्मद, तारिक मुब्तिदा (उद्देश्य) हैं, और बाक़ी शब्द ख़बर (विधेय) हैं। इन जुमलों को अ़रबी बनाना हो तो हर लफ़्ज़ के आख़ीर में अुन् शामिल कर दीजिए। लेकिन जिस शब्द में अल् जुड़ा हो जैसे अल्+लाह, उसमें बजाय अुन् के सिर्फ़ 'उ' की मात्रा यानी अल्लाहु रहेगा।

अल्लाहु ख़ालिक़ुन्, मुहम्मदुन् नबिय्युन्, तारिक़ुन् मुजाहिदुन्

कितनी आसान बात है। इस पहले सबक़ के आख़िर में जो अल्फ़ाज़ और उसके मअ़्ने दिये गये हैं, उन्हें अच्छी तरह याद कर लीजिए और फिर इन जुम्लों का, जो नीचे दर्ज हैं, तर्जुमः (अनुवाद) कीजिए:—

अल्अ़ब्दु स़ालिहुन्, अल्अिब्नु सग़ीरुन्, अल्जुन्दु कबीरुन्, अर्रजुलु जकिय्युन्, ह़ामिदुन् आ़लिमुन्, ख़ालिदुन् क़विय्युन्।

सफ़ः १४ पर अ़रबी-शब्दों को याद करके तर्जुमः कीजिए:—

रास्ता सीधा है, मामूँ नेक है, घर बड़ा है, दोस्त नेक है, बेटा सच्चा है, भाई अ़िबादतगुज़ार है, ख़ालिद बेटा है, ह़ामिद चचा है।

यह तमाम अल्फ़ाज़ मुज़क्कर (पुल्लिंग) थे, अब मुअन्नस (स्त्रीलिंग) शब्दों की अ़लामत ज़ेह्ननशीन कर लीजिए। आसान बात यह है कि जिस तरह हम उर्दू में आदमी के लिए जमील और औरत के लिए जमीलः इस्तेमाल करते हैं उसी तरह अ़रबी में भी कोई लफ़्ज़ मुअन्नस (स्त्रीलिंग) हो तो उसकी अ़लामत तु और लगा दी जाती है, जैसे:—

पुल्लिंग—राशिदुन्, स़ालिहुन्, ख़ालिदुन्, आ़बिदुन्

स्त्रीलिंग—राशिदतुन्, स़ालिह़तुन्, ख़ालिदतुन्, आ़बिदतुन्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मश्क़ (अभ्यास) कीजिये

अल्‌अबु जमीलुन्, अल्‌बिन्तु जमीलतुन्; अल्‌अबु सालिहुन्, अल्‌अुम्मु सालिहतुन्; अल्‌अख़ु ज़कीय्युन्, अल्‌अुख़्तु ज़किय्यतुन्; अल्‌ख़ालु ज़किय्युन्, अल्‌ख़ालतु ज़किय्यतुन् ।

ऊपर लिख चुके हैं कि किसी लफ़्ज़ में ख़ुसूसिय्यत पैदा करने के लिए "अल्" इस्तेमाल किया जाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह अंग्रेज़ी में THE का इस्तेमाल होता है । और किसी लफ़्ज़ में "अल्" के लगा देने से दो पेश (अुन्) लगाने की जगह एक पेश अर्थात् 'उ' की मात्रा लगाई जायगी ।

मिसाल के तौर पर इन शब्दों पर ग़ौर कीजिये; बात समझ में आ जायेगी ।

हुम्दुन्, अल्‌हुम्दु; अिन्सानुन्, अल्‌अिन्सानु; रसूलुन्, अर्रसूलु ।

मश्क़ (अभ्यास)

अबुन् सालिहुन्, अल्‌अबु सालिहुन्; रजुलुन् क़विय्युन्, अर्रजुलु क़विय्युन् ।

ऊपर के जुम्लों में दिखाया गया है कि "अल्" के लगने से दो पेश (अुन्) की जगह एक पेश (उ की मात्रा) बाक़ी रहती है ।

ध्यान रखने योग्य बातें:—

१— मुब्तिदा (उद्देश्य) और ख़बर (विधेय), हर एक पर नागरी में दो-दो पेश (अुन्) लगाया जायगा ।

२— "अल्" के इस्तेमाल पर दो की जगह सिर्फ़ एक पेश यानी (उ) की मात्रा बाक़ी रहेगी ।

३— मुअन्नस (स्त्रीलिंग) की अलामत "तु" होती है ।

४— पहला लफ़्ज़ यानी मुब्तिदा अगर मुअन्नस है तो उसकी ख़बर भी मुअन्नस होगी । मिसाल के तौर पर—

बाप नेक है—अल्‌अबु सालिहुन्; माँ नेक है—अल्‌अुम्मु सालिहतुन्

इन शब्दों को याद करके उद्देश्य और विधेय के वाक्य (जुम्ले) बनाने का अभ्यास कीजिए:—

ख़ालिक़ुन्-पैदा करनेवाला, अब्दुन्-बन्दः, सालिहुन्-नेक, अिब्नुन्-बेटा, सग़ीरुन्-छोटा, सग़ीरतुन्-छोटी, जुन्दुन्-लश्कर, कबीरुन्-बड़ा, कबीरतुन्-बड़ी, रजुलुन्-आदमी, ज़किय्युन्-जहीन, क़विय्युन्-क़वी, ताक़त-वाला, सिरातुन्-रास्ता, मुस्तक़ीमुन्-सीधा, ख़ालुन्-मामूँ, ख़ालतुन्-ख़ाला, सादिक़ुन्-सच्चा, बैतुन्-घर, सदीक़ुन्-दोस्त, अख़ुन्-भाई, आबिदुन्-अिबादत करनेवाला, अम्मुन्-चचा, अम्मतुन्-फूफी-चची, जमीलुन्-ख़ूबसूरत, जमलतुन्-ख़ूबसूरत (मुअन्नस यानी स्त्रीलिंग के लिए), बिन्तुन्-बेटी, अबुन्-बाप, अुम्मुन्-माँ, अुख़्तुन्-बहिन, हुम्दुन्-तअ़रीफ़, रफ़ीअुन्-ऊँचा, दीनुन्-बदलः, क़ानून, मजीदुन्-बुज़ुर्गी वाला, आबिदतुन्-अिबादत करनेवाली, नबिय्युन्-ख़बर देनेवाला ।

सबक़ (अध्याय)—२

सम्बन्ध कारक—possesive Case

मुज़ाफ़-अिलैह व मुज़ाफ़

सम्बन्ध कारक में एक तो पद वह होता है जिसका किसी पर अधिकार होता है; उसको अरबी में मुज़ाफ़-अिलैह कहते हैं । हिन्दी में इस शब्द के आगे का, की, के या रा, री, रे लगाये जाते हैं । दूसरा पद या शब्द जिसपर मुज़ाफ़ अिलैह का सम्बन्ध या अधिकार मालूम होता है उसको मुज़ाफ़ कहते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीचे लिखे तीनों पदों में पहला शब्द यानी क़ुर्आन का, हूद की और रसूल की, तो मुज़ाफ़-अलैह हैं; और हुक्म, क़ौम व दअ़्वत मुज़ाफ़ हैं।

क़ुर्आन का हुक्म, हूद की क़ौम, रसूल की दअ़्वत

इस तरह के अल्फ़ाज़ की अरबी बनाते वक़्त हिन्दी क्रम को उलट दीजिए यानी हुक्म पहले और क़ुर्आन बाद में लाइये; और फिर पहले लफ़्ज़ के आख़िरी हूरफ़ को एक पेश यानी 'उ' की मात्रा और दूसरे लफ़्ज़ के आख़िर में दो ज़ेर अर्थात् अिन् लगा दीजिये। इन इन् से "का" और "की" के मअ़्ने हो जायेंगे। जैसे:—

हुक्मु क़ुर्आनिन्, क़ौमु हूदिन्, दअ़्वतु रसूलिन्,

क़ुर्आन का हुक्म, हूद की क़ौम, रसूल की दअ़्वत।

अब इसी क़ाअ़िदः के अधीन अल्फ़ाज़ बनाने के लिए पहले इसी सबक़ में नीचे दिये हुए शब्दों व उनके मअ़्ने (अर्थ) याद कर लीजिये। फिर तर्जुमे की मश्क़ कीजिये। ध्यान रखिये जिस शब्द में "अल्" लगा होगा, पहले सबक़ की तरह उसमें भी "अल्" के आने के कारण दो ज़ेर यानी अिन् की जगह एक ज़ेर अर्थात् 'इ' की मात्रा लगाइये। जैसे:—

अ़िबादुल्लाहि बैतुल्लाहि ख़ल्क़ुल्लाहि

अल्लाह के बन्दे अल्लाह का घर अल्लाह की मख़्लूक़ (सृष्टि)

तर्जुमः (अनुवाद) कीजिये

किताबुल्लाहि कलामुल्लाहि सुन्नतुर्रसूलि रैबुल्‌अिन्सानि जिक्रुर्रह्मानि फ़ज़्लुल्लाहि यौमुद्दीनि अिक़ामतुस्सलाति रह्मतुल्लाहि अिताअ़तुल्‌वालिदैनि।

इन शब्दों की अरबी बनाइयेः—

अल्लाह की ज़मीन, लोगों की सर्कशी, आख़िरत का घर, गुनहगार का खाना, हामिद का घर।
ध्यान रखने योग्य बातें:—

१— मुज़ाफ़ को अंग्रेज़ी में (Possessed) और मुज़ाफ़-अिलैह को (possessor) कहते हैं।

२— 'का, की, के' के मअ़्ने (अर्थ) पैदा करने के लिए नागरी लिपि में अरबी लिखते समय पहले शब्द के आख़िरी हूरफ़ पर पेश (उ की मात्रा) और दूसरे लफ़्ज़ के आख़िर में दो ज़ेर (अिन्) लगाये जाते हैं।

३— "अल्" के इस्तेमाल से मुज़ाफ़-अिलैह के नीचे सिर्फ़ एक ज़ेर बाक़ी रहेगा, अर्थात् अिन् के बजाय सिर्फ़ इ (ि) की मात्रा लगाएँ।

अल्फ़ाज़ के मअ़्ने (अर्थ)

हाकिमुन्-बादशाह, मुन्सिफ़, अिज़्नुन्-हुक्म, माअुन्-पानी, बह्रुन्-समुद्र, लब्नुन्-दूध, बक़रुन्-गाय, रैबुन्-शक, अ़िक़ामतुन्-क़ायम करना, अिताअ़तुन्-अिताअ़त करना, कहा मानना, अर्ज़ुन्-ज़मीन, तुग़्यानुन्-सर्कशी, आख़िरतुन्-आख़िरत, असीमुन्-गुनहगार, तआ़मुन्-खाना, ख़ैलुन्-घोड़ा, सुन्नतुन्-आदत, तरीक़ः यौमुन्-दिन, दीनुन्-इन्साफ़, मज़्हब।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबक़ (अध्याय)—३

फ़िऽल (क्रिया)——Verb

फ़िऽल (क्रिया) का सबक़ समझने से पहले नीचे लिखे अरबी शब्द और उनके हिन्दी व अंग्रेज़ी माने याद कर लीजिये:—

फ़िऽल—क्रिया (Verb); ज़मानः—काल (Tense); ज़मानः माज़ी—भूतकाल (past Tense); ज़मानः ह़ाल—वर्तमानकाल (Present Tense); ज़मानः मुस्तक़्बिल—भविष्यकाल (Future Tense); मऽरूफ़—कर्तृवाच्य (Active Voice); मज्हूल्—कर्मवाच्य (passive Voice); ग़ाइब—अन्यपुरुष (Third person); हाज़िर—मध्यमपुरुष (Second person); मुतकल्लिम—उत्तमपुरुष (First person); मुज़क्कर—पुल्लिग (Masculine Gender) मुअन्नस—स्त्रीलिंग (Feminine Gender); वाहिद—एक वचन (Singular); तस्नियः— द्वि० वचन (संस्कृत में भी होता है); जमा—बहुवचन (plural)।

माज़ी (भूतकाल)

पुरुष	वचन	अनुवाद	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
ग़ाइब (अन्य पुरुष)	एक वचन	उस एक ने किया	फ़अल	फ़अलत्
	द्वि० व०	उन दो ने किया	फ़अला	फ़अलता
	बहु व०	उन सब ने किया	फ़अलू	फ़अल्न
हाज़िर (मध्यम पुरुष)	एक वचन	तू एक ने किया	फ़अल्त	फ़अल्ति
	द्वि० व०	तुम दो ने किया	फ़अल्तुमा	फ़अल्तुमा
	बहु व०	तुम सब ने किया	फ़अल्तुम्	फ़अल्तुन्न

मुतकल्लिम (उत्तम पुरुष) एक वचन मैंने किया फ़अल्तु; बहुवचन हमने किया फ़अल्ना

नोट— उत्तम पुरुष में औरत और मर्द एक वचन, द्वि वचन और बहु वचन के लिए एक ही रूप बनता है।

ऊपर टेबिल में तमाम सीग़ों (रूपों) को अच्छी तरह याद करें। लफ़्ज़ 'फ़िऽल' यानी 'करना' पर तमाम सीग़ों (रूपों) की ढलाई वज़न के ख़ानों में बताई गयी है। क्रिया के रूप कर्ता के लिंग, वचन, पुरुष और काल के अनुसार बनाये जायँगे। 'फ़अल' व 'कतब' क्रियाओं (फ़िऽलों) के गर्दान याने बदलते रूपों पर ध्यान देकर, दूसरे क्रिया शब्दों पर अभ्यास कीजिए।

अरबी के कुछ क्रिया-शब्द नीचे नागरी में दिये जा रहे हैं। उनको हिफ़्ज़ (कण्ठाग्र) कर लीजिये। फिर 'फ़िऽल' क्रिया के जो रूप ऊपर टेबिल में दिये गये हैं। उन्हीं के मुताबिक़ इनके रूप भी बनाने की मश्क़ कीजिये। एक शब्द 'कतब' (लिखना) की गर्दान भी नीचे दे रहे हैं। उसी तरह क़रअ (पढ़ना), नस़र (मदद देना) वग़ैरः के रूप बनाइये:—

फ़अल-करना; कतब-लिखना; क़रअ-पढ़ना; नस़र-मदद देना; ज़रब-मारना, बयान करना; तलब-माँगना; जहब-जाना; फ़तह़-खोलना; दख़ल-दाख़िल होना; शरिब-पीना; वजद-पाना; कफ़र-इन्कार करना; वसल-मिलना; खलक़-पैदा करना; क़तल-क़तल करना; जअल-बनाना; बअस-भेजना; रज़क़-रिज़्क़ (रोज़ी) देना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'कतब' लिखना

मुतकल्लिम हाज़िर ग़ाइब
उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष

वचन	अनुवाद	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
एक वचन	उस एक ने लिखा	कतब	कतबत्
द्वि० व०	उन दो ने लिखा	कतबा	कतबता
बहु व०	उन सब ने किया	कतबू	कतब्न
एक वचन	तू एक ने लिखा	कतब्त	कतब्ति
द्वि० व०	तुम दो ने लिखा	कतब्तुमा	कतब्तुमा
बहु व०	तुम सब ने लिखा	कतब्तुम्	कतब्तुन्न

एक वचन मैंने लिखा कतब्तु; बहुवचन हमने लिखा कतब्ना

अब तक क्रिया 'फ़अ़ल' और 'कतब' के माज़ी (भूतकाल) के रूप लिंग, वचन और पुरुष के मुताबिक़ दिये गये। अब नीचे टेबिल में इन्हीं क्रिया-शब्दों के वर्तमान तथा भविष्यकाल के रूप दिये जा रहे हैं। अरबी में ज़मानः ह़ाल (वर्तमानकाल) और ज़मानः मुस्तक़्बिल् (भविष्यकाल) के रूप एक ही होते हैं। वह करता है और वह करेगा, दोनों के लिए 'यफ़्अ़लु' लिखा जायगा। अब ऊपर दिये हुए क़रअ, नस़र, त़लब आदि अरबी क्रिया शब्दों के, वर्तमान, भूत और भविष्य, तीनों कालों में स्त्रीलिंग, पुल्लिग; एकवचन, द्विवचन और बहुवचन; व अन्य पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष में रूप बताइये।

मुज़ारिअ़ (वर्तमान-भविष्य)

ज़मानः ह़ाल-वर्तमानकाल और ज़मानः मुस्तक़्बिल-भविष्यकाल

फ़अ़ल	पुल्लिग	फ़अ़ल	स्त्रीलिंग
यफ़्अ़लु	वह करता है, करेगा	तफ़्अ़लु	वह करती है, करेगी
यफ़्अ़लानि	वे दो करते हैं, करेंगे	तफ़्अ़लानि	वे दो करती हैं, करेंगी
यफ़्अ़लून	वे सब करते हैं, करेंगे	यफ़्अ़ल्न	वे सब करती हैं, करेंगी
तफ़्अ़लु	तू एक करता है, करेगा	तफ़्अ़लीन	तू एक करती है, करेगी
तफ़्अ़लानि	तुम दो करते हो, करोगे	तफ़्अ़लानि	तुम दो करती हो, करोगी
तफ़्अ़लून	तुम सब करते हो, करोगे	तफ़्अ़ल्न	तुम सब करती हो, करोगी
अफ़्अ़लु	मैं करता हूँ, करूँगा	अफ़्अ़लु	मैं करती हूँ, करूँगी
नफ़्अ़लु	हम (लोग) करते हैं, करेंगे	नफ़्अ़लु	हम (लोग) करती हैं, करेंगी

कतब	पुल्लिग	कतब	स्त्रीलिंग
यक्तुबु	वह लिखता है, लिखेगा	तक्तुबु	वह लिखती है, लिखेगी
यक्तुबानि	वे दो लिखते हैं, लिखेंगे	तक्तुबानि	वे दो लिखती हैं, लिखेंगी
यक्तुबून	वे सब लिखते हैं, लिखेंगे	यक्तुब्न	वे सब लिखती हैं, लिखेंगी
तक्तुबू	तू एक लिखता है, लिखेगा	तक्तुबीन	तू एक लिखती है, लिखेगी
तक्तुबानि	तुम दो लिखते हो, लिखोगे	तक्तुबानि	तुम दो लिखती हो, लिखोगी
तक्तुबून	तुम सब लिखते हो, लिखोगे	तक्तुब्न	तुम सब लिखती हो, लिखोगी
अक्तुबु	मैं लिखता हूँ, लिखूंगा	अक्तुबु	मैं लिखती हूँ, लिखूंगी
नक्तुबु	हम लोग लिखते हैं, लिखेंगे	नक्तुबु	हम लोग लिखती हैं, लिखेंगी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़मानः ह़ाल (वर्तमानकाल) व मुस्तक़्बिल् (भविष्यकाल) के अरबी में एक ही रूप बनते हैं और इनको 'मुज़ारिऽ' कहते हैं। फ़िअ़्ल् व कतब मुज़ारिऽ, जो ऊपर दिये गये हैं, उनको अच्छी तरह याद कीजिये। जिस क़दर याद होंगे उसी क़दर आपकी हिम्मत अरबी सीखने में बढ़ेगी। यह तमाम गरदान 'फ़िऽल्' व 'कतब' पर बताई गयी है। अधिक अभ्यास के लिए दूसरे-दूसरे अल्फ़ाज़ को 'फ़िऽल्' की जगह रखकर तर्जुमः कीजिये। हर लफ़्ज़ का वज़न भी मालूम कीजिये कि यह किस वज़न पर है। स्थान कम होने से सिर्फ़ कुछ मिसालें दी जा रही हैं:—

यफ़्अ़लु-वह करता है; अफ़्अ़लु-मैं करता हूँ; यफ़्अ़लून-वे (सब) करते हैं; यश्रिबु-वह पीता है; अफ़्तहु-मैं खोलता हूँ; यज्अ़लून-वे (सब) बनाते हैं; यफ़्तहु-वह खोलता है; अश्रिबु-मैं पीता हूँ; यस्मअ़ून-वे (सब) सुनते हैं; यज्मअ़ु-वह जमा करता है; अज्मअ़ु-मैं जमा करता हूँ; यक्रिहून-वे (सब) नापसन्द करते हैं।

ऊपर की मिसालों को सामने रखकर नीचे लिखे शब्दों का अनुवाद कीजिये:—

यश्कुरून, यक्फ़ुरून, यत्लून, तत्लून, यअ़्लमून, हुव यक्तुबु-किताबन्, यक़्रअ़ूनल्क़ुर्आन, नऽबुदु, अऽबुदु, ला नस्मअ़ु, ला अक्फ़ुरु, ला यऽलमून, अऽलमु, तऽलमु, यऽमहून।

सबक़ (अध्याय)—४

फ़िऽल् (क्रिया) Verb फ़ाअ़िल् (कर्त्ता) Subject मफ़्अ़ूल् (कर्म) Object

अरबी वाक्य में पहले फ़िऽल् (क्रिया) फिर फ़ाअ़िल् (कर्ता) और बाद में मफ़्अ़ूल् (कर्म) आता है, कर्ता को दो पेश (अुन्) और कर्म को दो ज़बर (अन्) लगाये जाते हैं। जैसे— ह़मीद ने क़ुर्आन पढ़ा। यह जुमला अरबी में इस तरह होगा।

फ़िअ़्ल्	फ़ाअ़िल्	मफ़्अ़ूल्
क़रअ	ह़मीदुन्	क़ुर्आनन्

इस जुमले में पढ़ना क्रिया है; ह़मीद कर्त्ता है इसलिए कि उसने क़ुर्आन पढ़ने का फ़िऽल् (काम) किया है; क़ुर्आन मफ़्अ़ूल् (कर्म) है इसलिए कि उस पर पढ़ने का कार्य किया गया है।

सबक़ नं० (४) के शब्दों के माने याद कर लीजिये:—

क़रअ पढ़ना; कतब-लिखना; ख़दअ़-धोका देना; जअ़ल-बनाना; फ़रक़-फाड़ना; बह़्रुन्-समुन्दर; माअ़ुन्-पानी; ख़लक़-पैदा करना; जमअ़-जमा करना; मालुन्-माल, असबाब; अन्ज़ल-उतारना।

कतब	अिक़्बालुन्	किताबन्

इसका अनुवाद हुआ— अिक़्बाल ने किताब पढ़ी।

इनका अनुवाद कीजिये:—

ख़लक़ल्लाहुन्नास; ख़दअ़श्शैतानुल्अिन्सान; जअ़लल्लाहु मुह़म्मदन् रसूलन्; शरिब तारिक़ुन् माअन्; अन्ज़लल्लाहु किताबन्; फ़रक़नल्बह़्र; जमअ़ मालन्।

नोटः— 'अल्' के बाद दो पेश (अुन्) के बजाय एक पेश यानी सिर्फ़ उ की मात्रा रहती है, यह क़ाअ़िदः पहले की तरह इस सबक़ में भी याद रखिये। जैसे आप देख रहे हैं कि 'रसूलन्' पर दो ज़बर हैं तो 'अल्बह़्र' पर एक यानी अन् के बजाय सिर्फ़ अकार। 'तारिक़' पर दो पेश (अुन्) हैं तो 'अश्शैतानु' पर एक पेश यानी उ की मात्रा, यह वजह है 'अल्' के लगने की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबक़ (अध्याय)—५

मऽरूफ़्-कर्तृवाच्य (Active Voice) मज्हूल्-कर्मवाच्य (Passive Voice

यह तो आपको मालूम है कि 'फ़अ़ल' के माने हैं उसने किया, अब अगर इस लफ़्ज़ को 'फ़ुअ़िल' पढ़ेंगे तो मतलब होगा वह किया गया, इसे फ़िऽल मज्हूल (कर्मवाच्य) कहा जाता है।

'वह काम करता है' इस वाक्य में 'वह' कर्ता (फ़ाअ़िल) है, 'करता है' क्रिया (फ़िऽल) है, और काम' कर्म (मफ़्ऊ़ल) है।

इसी जुमले को हम अगर यूँ कहें, 'काम किया जाता है उसके द्वारा (ज़रीये)', तो कर्त्ता यानी 'वह' उलटकर कर्म, और कर्म 'काम' उलटकर कर्ता हो जाता है। जैसे:—

(१) फ़िऽल माज़ी मऽरूफ़-(भूतकाल कर्तृवाच्य) ख़लक़्तुम्-तुमने पैदा किया; क़तल-उस एक ने क़त्ल किया; जअ़ल्तु-मैंने बनाया।

(२) फ़िऽल माज़ी मज्हूल-(भूतकाल कर्मवाच्य) ख़ुलिक़्तुम-तुम पैदा किये गये; क़ुतिल-वह एक क़त्ल किया गया; जुअ़िल्तु-मैं बनाया गया।

मश्क़ कीजिये:—

बअ़स	उसने भेजा;	बुअ़िस	वह भेजा गया;
बअ़स्तु	मैंने भेजा	बुअ़िस्तु	मैं भेजा गया
रज़क़्ना	हमने रिज़्क़ दिया	रुज़िक़्ना	हम रिज़्क़ दिये गये
रज़क़ू	उन्होंने रिज़्क़ दिया	रूज़िक़ू	वह रिज़्क़ दिये गये

'किया था' या 'किया' और 'करता है' तथा 'करेगा' —ये रूप कर्तृवाच्य (मऽरूफ़) हैं। क्रिया (फ़िऽल) के इन्हीं रूपों को यदि क्रमश. 'किया गया था' या 'किया गया', और 'किया जाता है' तथा 'किया जायेगा'—इन शब्दों में बदल दिया जाय तो यह कर्मवाच्य (मज्हूल्) हो जाते हैं। ये दोनों बोलने के ढंग हैं; परन्तु दोनों का मतलब एक ही होता है।

फ़र्क़ यह है कि हिन्दी-उर्दू में कर्मवाच्य वाक्य को, जैसे 'काम किया जाता है उसके ज़रीये (द्वारा)' कहते समय कर्ता और कर्म, उलटकर कर्म और कर्ता हो जाते हैं, और जुमले में (कर्त्ता-कर्म) दोनों का इस्तेमाल होता है। इसके विपरीत, अरबी में कर्मवाच्य वाक्य में कर्म को उलट कर कर्ता (फ़ाअ़िल) के रूप में और क्रिया (फ़िऽल-मज्हूल) तो देते हैं, लेकिन कर्मवाच्य जुमले में कर्ता, क्रिया और कर्म अगर तीनों हैं तो हिन्दी-उर्दू की तरह कर्मवाच्य (मज्हूल्) वाक्य न बनाकर कर्तृवाच्य (मऽरूफ़्) वाक्य ही बोलते हैं। 'काम किया जाता है' तो कर्मवाच्य (मज्हूल्) जुमला है। लेकिन अगर 'काम किया जाता है उसके ज़रीये' वाक्य है तो अरबी में उसको उलटकर कर्तृवाच्य (मऽरूफ़्) ही बनायेंगे, जैसे 'वह काम करता है', न कि कर्मवाच्य (मज्हूल्) जुमला 'यानी काम किया जाता है उसके ज़रीये'।

नीचे 'फ़अ़ल' और 'कतब' शब्दों के माज़ी (भूतकाल) और मुज़ारिऽ (वर्तमान, भविष्य) रूपों का गर्दान नीचे दे रहे हैं। लिंग, वचन, पुरुष के सभी रूप दिये जा रहे हैं। इन पर क़ाबू पाने के बाद २०-२१ पृष्ठ पर दिये शब्दों को याद करके कर्तृवाच्य (मऽरूफ़्) और कर्मवाच्य (मज्हूल्) के वाक्य बनाने की मश्क़ कीजिये। नीचे लिखे शब्दों को भी याद कर लीजिये:—

समिअ़-सुनना; अमह-भटकते फिरना; सअल-पूछना; नस़र-मदद देना; हुज़न-ग़मगीन होना; अैदी-दोनों हाथ; सुम्म-फिर; क़ौलुन्-कहना; हाजा-यह; मिन्-से; अ़िन्द-नज़दीक, पास; करह-नापसन्द करना; जमअ़-जमा करना; शकर-शुकर करना; अ़लिम-जानना, अ़िल्म रखना; अ़िल्ला-मगर; औमानुन्-ईमान लाना (आ-म-न); मा-जो कुछ; लिमा-क्यों, किसलिए; क़तअ़-काटना; हुज़र-डरना; फ़क़ह-समझना; जहल-जिहालत, नासमझी करना; सख़र-हँसना; तिलावतुन्-तिलावत करना (पाठ करना); ला-नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़बर ज़ेर पेश की तरतीब यानी अकार, इकार, उकार की मात्राओं को हमेशा ध्यान में रखें। सिर्फ़ ज़रा सी मात्रा की तबदीली में एक लफ़्ज़ के मऽरूफ़् के बजाये मज्हूल् के मऽने होने का भय है। कर्तृवाच्य का कर्मवाच्य बन जायगा। मज्हूल् (कर्मवाच्य) के उदाहरण:—

माज़ी (भूतकाल)

'फ़अ़ल' करना

	वचन	अनुवाद	पुंल्लिग	अनुवाद	स्त्रीलिंग
ग़ाइब, अन्य पुरुष	एक वचन	वह किया गया	फ़ुअ़िल	वह की गई	फ़ुअ़िलत्
	द्वि० व०	वे दो किये गये	फ़ुअ़िला	वे दो की गईं	फ़ुअ़िलता
	बहु व०	वे सब किये गये	फ़ुअ़िलू	वे सब की गईं	फ़ुअ़िलन
हाज़िर, मध्यम पुरुष	एक वचन	तू किया गया	फ़ुअ़िल्त	तू की गई	फ़ुअ़िल्ति
	द्वि० व०	तुम दो किये गये	फ़ुअ़िल्तुमा	तुम दो की गईं	फ़ुअ़िल्तुमा
	बहु व०	तुम सब किये गये	फ़ुअ़िल्तुम्	तुम सब की गईं	फ़ुअ़िल्तुन्न
मुतकल्लिम, उत्तम पुरुष	एक वचन	मैं किया गया या की गई		फ़ुअ़िल्तु	
	बहु वचन	हम किये गये या की गईं		फ़ुअ़िल्ना	

'कतब' लिखना

	वचन	अनुवाद	पुंल्लिग	अनुवाद	स्त्रीलिंग
ग़ाइब, अन्य पुरुष	एक वचन	वह लिखा गया	कुतिब	वह लिखी गई	कुतिबत्
	द्वि व०	वे दो लिखे गये	कुतिबा	वे दो लिखी गईं	कुतिबता
	बहु व०	वे सब लिखे गये	कुतिबू	वे सब लिखी गईं	कुतिब्न
हाज़िर, मध्यम पुरुष	एक वचन	तू लिखा गया	कुतिब्त	तू लिखी गई	कुतिब्ति
	द्वि० व०	तुम दो लिखे गये	कुतिब्तुमा	तुम दो लिखी गईं	कुतिब्तुमा
	बहु व०	तुम सब लिखे गये	कुतिब्तुम्	तुम सब लिखी गईं	कुतिब्तुन्न
मुतकल्लिम, उत्तम पुरुष	एक वचन	मैं लिखा गया या लिखी गई			कुतिब्तु
	बहुवचन	हम लिखे गये या लिखी गईं			कुतिब्ना

मुज़ारिऽ (वर्तमान-भविष्यकाल)

ग़ाइब, अन्य पुरुष	एक वचन पुंल्लिग	युफ़्अ़लु	वह किया जाता है, किया जायगा
	द्वि० व०	युफ़्अ़लानि	वे दो किये जाते हैं, किये जायँगे
	बहुवचन	युफ़्अ़लून	वे सब किये जाते हैं, किये जायँगे
	एक वचन स्त्रीलिंग	तुफ़्अ़लु	वह की जाती है, की जायगी
	द्वि० व०	तुफ़्अ़लानि	वे दो की जाती हैं, की जायँगी
	बहुवचन	युफ़्अ़ल्न	वे सब की जाती हैं, की जायँगी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाज़िर मध्यम पुरुष	एक वचन पुल्लिग	तुफ़अ़लु	तू किया जाता है, किया जायगा
	द्वि० व०	तुफ़अ़लानि	तुम दो किये जाते हो, किये जाओगे
	बहु वचन	तुफ़अ़लून	तुम सब किये जाते हो, किये जाओगे
	एक वचन स्त्रीलिंग	तुफ़अ़लीन	तू की जाती है, की जायगी
	द्वि० व०	तुफ़अ़लानि	तुम दो की जाती हो, की जाओगी
	बहु वचन	तुफ़अ़ल्न	तुम सब की जाती हो, की जाओगी
मुतकल्लिम उत्तम पुरुष	एक वचन पुल्लिग	अुफ़अ़लु	मैं किया जाता हूँ, किया जाऊँगा
	द्वि०, बहु व०	नुफ़अ़लु	हम किये जाते हैं, किये जायेंगे
	एक वचन स्त्रीलिंग	अुफ़अ़लु	मैं की जाती हूँ, की जाऊँगी
	द्वि०, बहु व०	नुफ़अ़लु	हम की जाती हैं, की जायँगी
ग़ाइब अन्य पुरुष	एक वचम पुल्लिग	युक्तबु	वह लिखा जाता है, लिखा जायगा
	द्वि० व०	युक्तबानि	वे दो लिखे जाते हैं, लिखे जायँगे
	बहु वचन	युक्तबून	वे सब लिखे जाते हैं, लिखे जायँगे
	एक वचन स्त्रीलिंग	तुक्तबु	वह लिखी जाती है, लिखी जायगी
	द्वि० व०	तुक्तबानि	बे दो लिखी जाती हैं, लिखी जायँगी
	बहु वचन	युक्तब्न	वे सब लिखी जाती हैं, लिखी जायँगी
हाज़िर मध्यम पुरुष	एक वचन पुल्लिग	तुक्तबु	तू लिखा जाता है, लिखा जायगा
	द्वि० व०	तुक्तबानि	तुम दो लिखे जाते हो, लिखे जाओगे
	बहु वचन	तुक्तबून	तुम सब लिखे जाते हो, लिखे जाओगे
	एक वचन स्त्रीलिंग	तुक्तबीन	तू लिखी जाती है, लिखी जायगी
	द्वि० व०	तुक्तबानि	तुम दो लिखी जाती हो, लिखी जाओगी
	बहु वचन	तुक्तब्न	तुम सब लिखी जाती हो, लिखी जाओगी
मुतकल्लिम उत्तम पुरुष	एक वचन पुल्लिग	अुक्तबु	मैं लिखा जाता हूँ, लिखा जाऊँगा
	द्वि०, बहु व०	नुक्तबु	हम लिखे जाते हैं, लिखे जाएँगे
	एक वचन स्त्रीलिंग	अुक्तबु	मैं लिखी जाती हूँ, लिखी जाऊँगी
	द्वि०, बहु व०	नुक्तबु	हम लिखी जाती हैं, लिखी जायँगी

नोट— ऊपर लिखे 'फ़अ़ल' व 'कतब' के भूतकाल व वर्तमान-भविष्यकाल के कर्मवाच्य वाक्यों में ग़ौर कीजिये कि उत्तम पुरुष (मुतकल्लिम्) में औरत और मर्द, एक वचन, द्विवचन और बहु वचन के लिए एक ही रूप बनता है।

सबक़ (अध्याय)—६

हुरूफ़ि जार् (सम्बन्धसूचक अव्यय)—Preposition

हुरूफ़ि जार्	तरीक़ः इस्तेमाल (प्रयोगविधि)
फ़ी—में; बीच	फ़ी बैतिन्—घर में
मिन्—से	क़रअ्ना मिनल् क़ुर्आनि—पढ़ा हमने क़ुर्आन में से
अला—ऊपर	अला जबलिन्—ऊपर पहाड़ के
क—मिस्ल, मानिंद, तरह	करजुलिन्—मर्द के जैसा, मानिन्द
अन्—मुतअ़ल्लिक़	समिअ्तु अनिस्सलाति फ़िल्मस्जिदि — सुना मैंने मस्जिद में नमाज़ के मुतअ़ल्लिक़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब—साथ	दख़ल्तु बिसलामिन्—दाख़िल हुआ मैं सलाम के साथ
ल—लिए	लिन्नसि—लिए लोगों के
अिला—तरफ़	अिला बलदिन्—तरफ़ शहर के
हृत्ता—यहाँ तक	हृत्ता अिजा बलग़—यहाँ तक कि पहुँचा वह
व—क़सम	वल्लाहि—क़सम अल्लाह की

नोट—१ इनका इस्तेमाल स़िल: (एक शब्द का दूसरे से सम्बन्ध बताने) के तौर पर होता है।

२ और यह हुरूफ़ जार जब किसी लफ़्ज़ के पहले आते हैं तो उसके आख़िरी हृरफ़ को दो ज़ेर यानी (इन्) लगा देते हैं। ऊपर के ख़ाने में देखिये, तमाम अल्फ़ाज़ के आख़िरी हृरफ़ के नीचे ज़ेर (f) या इन् लगा हुआ है।

३ जहाँ 'अल्' का इस्तेमाल होता है वहाँ एक ज़ेर (f) और बाक़ी मक़ामात पर दो ज़ेर (यानी अिन्)।

तर्जुमः कीजियेः—

मिनल्कुफ़्रि अिलल्अिस्लामि, मिनल् बैति अिलल्मस्जिदि, अल्हृम्दुलिल्लाहि, बिल्वालिदैनि अिह्सानन्, कतब्तु बिल्क़लमि, मताअुन् अिला हीनिन्, अला अब्सारिहिम् ग़िशावतुन्, आमन्ना बिल्लाहि, नज़्ज़ल्ना अला अब्दिना, हाज़ा बयानुन् लिन्नासि।

इनकी अरबी बनाइयेः—

क़ुर्आन में हिदायत है लोगों के लिए; मैंने आदमी को देखा मस्जिद पर; अिल्म का तलब करना फ़र्ज़ है ऊपर तमाम मुस्लिम मर्द और मुस्लिम औरत के।

सबक़—६ के सम्बन्ध में ये शब्द याद कीजियेः—

हृम्दुन्-तारीफ़, वालिदैनि-माँ-बाप, अिह्सानन्-अच्छा सुलूक, मताअुन्-फ़ायदा, हीनुन्-वक़्त, अब्सारुन्-आँखें, ग़िशावतुन्-पर्दा, बयानुन्-बयान, अन्नासु-लोग, हुम्-उनका, उनको, हुदन्-हिदायत, रआ-देखना, रजुलुन्-आदमी, तलबुन्-तलब करना, फ़रीज़तुन्-फ़र्ज़, मुस्लिमुन्-मुस्लिम मर्द, मुस्लिमतुन्-मुस्लिम औरत, कुल्लुन्-तमाम (कुल), आमन-ईमान लाना।

इस सबक़ में आप पढ़ चुके हैं कि मुसलमान मर्द के लिए 'मुस्लिमुन्' और मुसलमान औरत के लिए 'मुस्लिमतुन्' इस्तेमाल किया गया है। अरबी ज़मान में वाहिद (एक वचन), तस्नियः (द्वि॰ वचन), और जमअ़ (बहुवचन) की एक ख़ास तरतीब भी है जिसको समझना ज़रूरी है। नीचे उसे दर्ज किया जा रहा है उसी के अनुसार दूसरे अल्फ़ाज़ भी बनाकर देखिये।

	एक वचन (वाहिद)	द्वि॰ वचन (तस्नियः)	बहु वचन (जमअ़)
	एक मुस्लिम	दो मुस्लिम	सब मुस्लिम
पेश की सूरत (उकार)	मुस्लिमुन्	मुस्लिमानि	मुस्लिमून
ज़बर की सूरत (अकार)	मुस्लिमन्	मुस्लिमैनि	मुस्लिमीन
ज़ेर की सूरत (इकार)	मुस्लिमिन्	मुस्लिमैनि	मुस्लिमीन

ऊपर के शब्दों में देखने पर कोई ख़ास फ़र्क़ महसूस नहीं होता, लेकिन यह बात आपको मालूम होगी कि फ़ाअिल् (कर्त्ता) और मफ़्अूल (कर्म) की हालत में अल्फ़ाज़ पर क्रमशः पेश (उकार) व ज़बर (अकार) रखे जाते हैं। फ़ाअिली (कर्ता की) हालत में 'ज़ैदुन्', मफ़्अूली (कर्म की) हालत में 'ज़ैदन्'। इ, उ और अ की मात्रा (या शक्ल) के अन्तर से ही माने में बड़ा फ़र्क़ आ जाता है।

इस तरह हरफ़ जार (प्रिपोज़ीशन) भी किसी लफ़्ज़ के पहले आकर उस लफ़्ज़ के आख़िरी हरफ़ को ज़ेर (इकार) कर देता है। मिसाल के तौर पर अला मुस्लिमिन्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबक़ (अध्याय)—७

ज़मीर (सर्वनाम)—Pronoun

ज़मीर सर्वनाम	तरीक़ः इस्तेमाल (प्रयोग)
हू—उस एक मर्द का, की	किताबुहू—उसकी किताब
हुमा—उन दो मर्दों का या उन दो औरतों का	बैतुहुमा—उन दोनों का घर
हुम्—उन सब मर्दों का	ईमानुहुम्—उनका ईमान
हा—उस एक औरत का	अुम्मुहा—उस (एक औरत) की माँ
हुन्न—उन सब औरतों का	बैतुहुन्न—उन (सब औरतों) का घर
क—तेरा, तुझको (पुल्लिग)	किताबुक—तेरी किताब
कुमा—तुम दोनों मर्दों का या तुम दो औरतों का	बैतुकुमा—तुम दोनों का घर
कुम्—तुम सब मर्दों का	रसूलुकुम्—तुम्हारा रसूल
कि—तू एक औरत का	बैतुकि—तू एक (औरत) का घर
कुन्न—तुम सब औरतों का	बैतुकुन्न—तुम सब (औरतों) का घर
य—मेरा	रब्बी—मेरा रब
नी—मुझे, मुझको	रज़क़नी—रिज़्क़ दिया उसने मुझे
ना—हमारा-हमको	किताबुना—हमारी किताब

इस तरह वाक्य बनाकर अभ्यास कीजिये। चन्द जुमलों का अनुवाद उदाहरण के लिए दिया जाता है:—

लिसानुकुम्-तुम्हारी ज़बान, अिब्नी-मेरा बेटा, नसर्तुहू-मदद दी मैंने उसको, मिन्क-तुझसे, अिलैना-हमारी तरफ़, अिलैकुम्-तुम्हारी तरफ़, लहू-लिए उसके, अिलय्य-मेरी तरफ़, अिलैहिम्-उनकी तरफ़, लना-लिए हमारे (हमको), अिन्नकुम्-बेशक तुम, अिन्नना—बेशक हम।

तर्जुमः (अनुवाद) कीजिये:—

समअुकुम्, रब्बुकुम्, दुक्कानुना, बैतुना, रसूलुना, क़ौमुना, मिल्लतुकुम्, अस्हाबुना, मिन्क, मिन्कि, लहुमा, अिमामुकुम्, खलक़लकुम्, मा फ़िल्अर्ज़ि जमीअन्, व लक़द् नसरकुमुल्लाहु, लहुम् अज्रुहुम् अिन्द रब्बिहिम्, अह्ली।

इन शब्दों को याद कर लीजिये:—

समिअ-सुनना, दुक्कानु-दुकान, अस्हाबु-साथी, रफ़ीक़, मिल्लतु-दीन, मिल्लत, जमीअन्-सब, व-और, लक़द्-अलबत्तः, तह्क़ीक़, अिन्द-नज़दीक़, पास, ल-अलबत्तः, के, लिये, अिन्न-बेशक, रब्बुन्-पालनेवाला, अज्रुन्-बदलः, अज्र, अह्लुन्-घर वाले।

फ़ाअिली ज़मीरें (कर्ता सर्वनाम)

इन फ़ाअिली ज़मीरों को अच्छी तरह याद कर लीजिये। आइन्दः इस्तेमाल के मौक़े आयेंगे:—

हुव-वह एक मर्द; हुमा-वह दो मर्द, वह दो औरतें; हुम्-वह सब मर्द; हिय-वह एक औरत; हुन्न-वह सब औरतें; अन्त-तू एक मर्द; अन्तुमा-तुम दो मर्द या दो औरतें; अन्तुम्-तुम सब मर्द; अन्ति-तू एक औरत; अन्तुन्न-तुम सब औरतें; अना-मैं एक मर्द या औरत; नह्नु-हम सब।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तरीक़: इस्तेमाल:—

हुव मुस्लिमुन्-वह मुस्लिम है। अन्त आलिमुन्-तू आलिम है। अना आबिदुन्-मैं बन्दगी करनेवाला हूँ।

सबक़ (अध्याय)—८

आज्ञाकाल (अम्र) Imperative Mood और

निषेध (नहीं)-प्रयोग—Negative

अम्र और नहीं—अिफ़्अल्-तू (एक मर्द) कर; अिफ़्अला-तुम (दो मर्द) या (दो औरतें) करो; अिफ़्अलू-तुम (सब मर्द) करो; अिफ़्अली-तू (एक औरत) कर; अिफ़्अल्न-तुम (सब औरतें) करो; ला तफ़्अल्-तू (एक मर्द) मत कर; ला तफ़्अला-तुम (दो मर्द या दो औरतें) मत करो; ला तफ़्अलू-तुम (सब मर्द) मत करो; ला तफ़्अली-तू (एक औरत) न कर; ला तफ़्अल्न-तुम (सब औरतें) न करो।

ऊपर दी हुई गरदानें (रूप) किसी काम के करने के लिए कहना या किसी काम को मना करने के माने बता रही हैं।

तरीक़: इस्तेमाल (प्रयोगविधि):—

अिज़्हब्-तू जा, ला तज़्हब्-तू मत जा, अिअ़्मलू-तुम अमल करो, ला तस्मअू-तुम मत सुनो, अिअ़्लम्-तू जान, ला तह्ज़न्-तू ग़म मत कर, ला तफ़्अल्-तू मत कर, ला तज्अल्-तू मत बना, अिफ़्अल्-तू कर, अिश्रह्-तू खोल, ला तफ़्अलू-तुम मत करो, ला तफ़र्रिक़ू-तुम मत तफ़रक़: करो।

तर्जुम: कीजिये:—

ला तक़्रबा, ला तस्अल्नी, अिश्रह्ली, अिश्रिबू, वस्मअू व लिल्काफ़िरीन अज़ाबुन् अलीमुन्, अिर्कबू।

सबक़—८ के शब्द याद कर लें।

अमल-अमल करना, काम करना; अलिम-जानना; शरह्-खोलना, कुशाद: करना; फ़र्रक़-तफ़रक़: डालना; क़रब-क़रीब होना; सअल-पूछना, सवाल करना; शरिब-पीना; अज़ाबुन् अलीमुन्-दर्दनाक अज़ाब; रकब-सवार होना।

नोट—आरम्भिक (इब्तिदाई) व्याकरण (ग्रामर) का बयान खत्म हुआ। किसी आलिम से थोड़ी भी मदद लेकर मश्क़ करेंगे तो बड़ी आसानी से समझ में आ जायगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Foreword by

Maulana Syed Abul Hasan Ali Al-Hasni Al-Nadvi Janab Ali Miyan Saheb

پیش لفظ

ابوالحسن علی الحسنی الندوی
ندوۃ العلماء لکھنؤ — الہند
تحریر آفی ۱۹ ذی الحجہ ۱۳۸۸ء   بسم اللہ الرحمان الرحیم

نند کمار اوستھی جی سے اگرچہ میرا تعارف براہ راست نہیں تھا۔ ان کا تعارف مجھ سے مولانا محمد منظور نعمانی صاحب نے کرایا جن کے متعلق میرا تجربہ ہے کہ وہ قرآن مجید کے سلسلے کے کاموں اس کی نزاکتوں اور ذمہ داریوں اور اس راہ کی مشکلات سے واقف ہیں اور وہ آسانی سے ہر ایک کے کام کو نہیں سراہتے۔ پھر رفتہ رفتہ ان کا مجھسے براہ راست ربط قائم ہو گیا۔ میں نے دیکھا کہ ان کو اپنے کام کی بڑی لگن اور دھن ہے اور ان کے اندر طالبعلمانہ روح اپنے مضمون پر محنت کرنے اور اس میں زیادہ سے زیادہ کامیابی حاصل کرنے کا وہ جذبہ پایا جاتا ہے جو اس زمانے میں بہت کمیاب اور قریب قریب نایاب ہے۔ اسی جذبہ اور تلاش نے ہم دونوں کے درمیان (جذکو طالب علم کہلانے میں فخر ہے) ایک علمی رشتہ قائم کر دیا۔ کچھ تو ان کی محنت اور جستجو دیکھکر اور کچھ اس خیال سے کہ خدا کا کلام اور پیغام ان لوگوں تک پہنچیگا جو ہندی کے سوا کسی اور زبان میں لکھ پڑھ نہیں سکتے۔ میں نے ان کے کام میں ان کی اخلاقی مدد کرنے کو اپنی خوش قسمتی اور سعادت کی بات تصور کی۔ اب مجھے اس بات کی بڑی خوشی ہے کہ ان کی محنت ٹھکانے لگی اور بیس سال مسلسل محنت کرنے کے بعد آج انکی کوشش کا نتیجہ سامنے آ رہا ہے۔

ان کے اس قابل قدر کام کے دو حصے ہیں — ایک قرآن مجید کا ہندی میں ترجمہ اور تشریحی نوٹس۔ یہ کام بھی خاصہ مشکل اور نازک تھا۔ وہ کس ترجمہ کو اختیار کریں اور کس کو نہ اختیار کریں، کس عربی لفظ کے لئے کون سا ہندی لفظ رکھیں، اسلامی اصطلاح دینی مفہوم کو کن عام فہم آسان لیکن فصیح اور طاقتور ہندی الفاظ میں ادا کریں، اس کام کی دشواری کا وہی لوگ اندازہ کر سکتے ہیں جو دونوں زبانوں کے فرق اور دو الگ الگ مذہبی ماحول میں پھلنے پھولنے والی زبانوں اور پروان چڑھنے والی طبیعتوں کے فرق سے واقف ہیں۔ جہانتک عربی الفاظ کے ممکن حد تک صحیح ترجمے اور مستند تشریح کے پیش کرنے کا تعلق ہے جو مسلمانوں کے سبسے بڑے گروہ کے عقیدہ کے مطابق ہو اسکے بارے میں ہم نے مولانا حافظ قاری محمد صدیق صاحب کی رائے پر اعتماد کیا ہے جو خود ایک مستند عالم، قرآن مجید سے شغف رکھنے والے اور محتاط و ذمہ دار آدمی ہیں اور جنھوں نے اول سے آخر تک ترجمہ اور تشریحی نوٹس کو لفظ بہ لفظ پڑھنے کا اہتمام رکھا ہے۔

کام کا یہ جز ہر طرح سے قابل قدر اور قابل ستائش ہے۔ لیکن اوستھی جی کا اصل کارنامہ اور انکی محنت و قابلیت کا اصل میدان یہ ہے کہ انہوں نے متن قرآن کو ہندی رسم الخط میں لکھا ہے۔ اسکے لئے انہوں نے ہندی رسم الخط میں ایسے اضافے کئے ہیں اور ایسی اصطلاحیں مقرر کی ہیں جن سے عربی کے وہ حروف جو عربی زبان کی خصوصیت ہیں زیادہ سے زیادہ حد تک ادا ہو سکیں اور صحیح طور پر پڑھے جا سکیں۔ ان حروف کو ان کے صحیح مخارج سے ادا کرنے کے لئے ظاہر ہے کہ اس زبان میں پہلے سے کوئی اشارے یا اصطلاحیں نہیں تھیں

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

اور نہ اسکی ضرورت تھی - لیکن اوستھی جی اپنے مقصد کی تکمیل میں دن رات لگے رہے اور جتنی مشکلات اس میں پیش آئیں انہوں نے ہار نہیں مانی - فارسی کی مثل ہے کہ ہمت مرداں مدد خدا - آخر اس میں انہوں نے کامیابی حاصل کی - یہ سب جانتے ہیں کہ کسی علمی کوشش کو آخری طور پر مکمل اور سو فیصدی کامیاب کہنا صحیح نہیں ہے اور یہ کسی علمی کام کی برائی اور تحقیر نہیں تعریف ہے - ایک سچے طالب علم کو اپنے کام سے فراغت پا جانے سے خوشی نہیں بلکہ رنج ہوتا ہے کہ اسکی محنت اور جستجو جس کے سہارے سے اس کی زندگی اور زندگی کا لطف قائم تھا کنارے الگ گئی اور اسکا کام ختم ہوا - اسلئے اس کام میں بھی اگر کچھ کمی رہ گئی یا کہیں کہیں خود اوستھی جی کی طبیعت مطمئن نہیں تو یہ بات بالکل قدرتی ہے اور اس سے ان کی محنت و کامیابی پر کچھ میل نہیں آتا - انہوں نے یہ بہت اچھا کیا کہ ہندی رسم الخط کے ساتھ ساتھ قرآن مجید کے اصلی رسم الخط (عربی) کو بھی ساتھ ہی ساتھ چھاپا ہے - اس کے بغیر خالص ہندی رسم الخط میں بہت سے خطرے تھے -

یہ حقیقت ہے کہ ان ہندو بھائیوں کے علاوہ جو ہندی کے سوا کسی اور زبان سے فائدہ نہیں اٹھا سکتے خود مسلمانوں میں بھی بڑی تعداد ہے جو اب ہندی ہی میں لکھتے پڑھتے ہیں - انکو ان کے مذہب سے بھی واقف کرانے کا ذریعہ اب بہت جگہ ہندی ہی رہ گئی ہے - اللہ کا کلام اور اللہ کا پیغام ہر انسان تک ہر زبان میں پہنچنا چاہئے اسلئے بھی ہم اوستھی جی کے شکرگزار ہیں کہ انہوں نے ایک مفید خدمت انجام دی - خدا اس سے سبکو فائدہ پہنچائے اور اوستھی جی کی محنت ٹھکانے لگائے -

ابوالحسن علی

पेशलफ़्ज़ (भूमिका)

मौलाना सय्यद अबुल् हसन अ़ली अलूहसनी अलूनदवी (जनाब अ़ली मियाँ साहब)

दारुल् अुलूम नदवतुल्अुलमा, लखनऊ—१

ता० १९ ज़िलहिज्ज १३८८ हि० (९ मार्च, १९६९ ई०)

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीमि ।

नन्दकुमार अवस्थी जी से अगर्चे मेरा तअ़ारुफ़ बराहरास्त नहीं था—इनका तअ़ारुफ़ मुझसे मौलाना मुहम्मद मन्ज़ूर नोमानी साहब ने कराया जिनके मुतअ़ल्लिक़ मेरा तज्रिबा है कि वह क़ुर्आन मजीद के सिलसिले के कामों, उसकी नज़ाकतों और ज़िम्मेदारियों और उस राह की मुश्किलात से वाक़िफ़ हैं और वह आसानी से हर एक के काम को नहीं सराहते । फिर रफ़्त: रफ़्त: उनका मुझसे बराहरास्त रब्त क़ायम हो गया । मैंने देखा कि उनको अपने काम की बड़ी लगन और धुन है और उनके अन्दर तालिब-अ़िल्माना रूह व अपने मज़मून पर मिहनत करने और उसमें ज़ियाद: से ज़ियाद: कामयाबी हासिल करने का वह जज़्ब: पाया जाता है जो इस ज़माने में बहुत कमयाब और क़रीब-क़रीब नायाब है । इसी जज़्ब: और तलाश ने हम दोनों के दरम्यान (जिनको तालिबअ़िल्म कहलाने में फ़ख़् है) एक अ़िल्मी रिश्त: क़ायम कर दिया । कुछ तो उनकी मिहनत और जुस्तजू देख कर और कुछ इस ख़याल से कि ख़ुदा का कलाम और पैग़ाम उन लोगों तक पहुँचेगा जो हिन्दी के सिवा किसी और ज़बान में लिख पढ़ नहीं सकते, मैंने उनके काम में उनकी इख़्लाक़ी मदद करने को अपनी ख़ुशक़िस्मती और सआ़दत की बात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तसव्वर की। अब मुझे इस बात की बड़ी ख़ुशी है कि उनकी मिहनत ठिकाने लगी, और बीस साल मुसल्सल मिहनत करने के बाद आज उनकी कोशिश का नतीजा सामने आ रहा है।

उनके इस क़ाबिले क़द्र काम के दो हिस्से हैं—एक क़ुर्आन मजीद का हिन्दी में तर्जुमा और तशरीही नोटस—यह काम भी ख़ासः मुश्किल और नाज़ुक था। वह किस तर्जुमे को इख़्तियार करें और किसको न इख़्तियार करें, किस अरबी लफ़्ज़ के लिए कौन सा हिन्दी लफ़्ज़ रखें, इस्लामी इस्तिलाह और दीनी मफ़्हूम को किन आम फ़हम आसान लेकिन फ़सीह और ताक़तवर हिन्दी अल्फ़ाज़ में अदा करें, इस काम की दुश्वारी का वही लोग अन्दाज़ः कर सकते हैं जो दोनों ज़बानों के फ़र्क़ और दो अलग-अलग मज़्हबी माहौल में फलने-फूलने वाली ज़बानों और परवान चढ़ने वाली तबीयतों के फ़र्क़ से वाक़िफ़ हैं। जहाँ तक अरबी अलफ़ाज़ के मुमकिन हद तक सही तर्जुमे और मुस्तनद तशरीह के पेश करने का तअल्लुक़ है जो मुसलमानों के सबसे बड़े गरोह के अक़ीदः के मुताबिक़ हो, उसके बारे में हमने मौलाना हाफ़िज़ क़ारी मुहम्मद सिद्दीक़ साहब की राय पर एतमाद किया है जो ख़ुद एक मुस्तनद आलिम, क़ुर्आन मजीद से शग़फ़ रखने वाले और मुहतात व ज़िम्मेदार आदमी हैं और जिन्होंने अव्वल से आख़िर तक तर्जुमे और तशरीही नोटस को लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ पढ़ने का एहतमाम रखा है।

काम का यह जुज़ हर तरह से क़ाबिले क़द्र और क़ाबिले सतायश है। लेकिन अवस्थी जी का अस्ल कारनामा और उनकी मिहनत व क़ाबिलीयत का अस्ल मैदान यह है कि उन्होंने मतन क़ुर्आन को हिन्दी रस्मुल्ख़त में लिखा है। इसके लिए उन्होंने हिन्दी रस्मुल्ख़त में ऐसे इज़ाफ़े किये हैं और ऐसी इस्तलाहें मुक़र्रर की हैं जिनसे अरबी के वह हुरूफ़ जो अरबी ज़बान की ख़ुसूसीयत हैं ज़ियादः से ज़ियादः हद तक अदा हो सकें और सही तौर पर पढ़े जा सकें। इन हुरूफ़ को उनके सही मख़ारिज से अदा करने के लिए ज़ाहिर है कि इस ज़बान में पहले से कोई इशारे या इस्तलाहें नहीं थीं और न उनकी ज़रूरत थी। लेकिन अवस्थी जी अपने मक़सद की तकमील में दिन रात लगे रहे और जितनी मुश्किलात उसमें पेश आईं उन्होंने हार नहीं मानी। फ़ारसी की पुरानी मसल है कि 'हिम्मते मरदाँ मददे ख़ुदा'। आख़िर इसमें उन्होंने कामयाबी हासिल की। यह सब जानते हैं कि किसी अिल्मी कोशिश को आख़िरी तौर पर मुकम्मिल और सौ फ़ी सदी कामयाब कहना सही नहीं है और यह किसी अिल्मी काम की बुराई और तहक़ीर नहीं तारीफ़ है। एक सच्चे तालिबअिल्म को अपने काम से फ़राग़त पा जाने से ख़ुशी नहीं बल्कि रंज होता है कि उसकी मिहनत और जुस्तजू जिसके सहारे से उसकी ज़िन्दगी का लुत्फ़ क़ायम था किनारे लग गई और उसका काम ख़त्म हुआ। इसलिए इस काम में भी अगर कुछ कमी रह गई, या कहीं ख़ुद अवस्थी जी की तबीयत मुतमइन नहीं, तो यह बात बिलकुल क़ुदरती है और इससे उनकी मिहनत व कामयाबी पर कुछ मैल नहीं आता। उन्होंने यह बहुत अच्छा किया कि हिन्दी रस्मुल्ख़त के साथ-साथ क़ुर्आन मजीद के असली रस्मुल्ख़त (अरबी) को भी साथ ही साथ छापा है। इसके बग़ैर ख़ालिस हिन्दी रस्मुल्ख़त में बहुत से ख़तरे थे।

यह हक़ीक़त है कि उन हिन्दू भाइयों के अलावा जो हिन्दी के सिवा किसी और ज़बान से फ़ायदा नहीं उठा सकते, ख़ुद मुसलमानों में भी बड़ी तादाद है जो अब हिन्दी ही में लिखते-पढ़ते हैं। उनको उनके मज़्हब से भी वाक़िफ़ कराने का ज़रीयः अब बहुत जगह हिन्दी ही रह गई है। अल्लाह का कलाम और अल्लाह का पैग़ाम हर इन्सान तक हर ज़बान में पहुँचना चाहिए इसलिए भी हम अवस्थी जी के शुक्रगुज़ार हैं कि उन्होंने एक मुफ़ीद ख़िदमत अंजाम दी। ख़ुदा इससे सब को फ़ायदः पहुँचाये और अवस्थी जी की मिहनत ठिकाने लगाये।

अबुल् हसन अली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्जुमन हिदायतुल् मुस्लिमीन व दारुल् मुबल्लग़ीन, लखनऊ—३

तक़रीबन् दो साल का अरसा हुआ जब मुहतरमी जनाब मौ० मुहम्मद मंज़ूर नोमानी साहब ने मेरे जिम्मे यह खिदमत की थी कि मैं जनाब नन्दकुमार अवस्थी जी का हिन्दी तर्जुमा क़ुर्आन शरीफ़ और उसके तफ़्सीरी नोटस देखकर इत्मीनान कर लूँ कि वह सही हैं और उनमें कोई ऐसी ग़लती तो नहीं है जो इस्लामी अक़ायद के खिलाफ़ या ग़लत हो। अगर कोई ऐसी ग़लती मिले तो उसकी इस्लाह कर दूँ। चुनांचे मौलाना मौसूफ़ के हुक्म के मुताबिक़ मैंने पूरी तवज्जु: के साथ क़ुर्आन मजीद का हिन्दी तर्जुमा और उसके तफ़्सीरी नोट्स देखना शुरू किया। जहाँ भी मुझको इसमें इस्लाह् की ज़रूरत मालूम हुई उसको अपने इल्म के मुताबिक़ दुरुस्त कर दिया। अवस्थी जी एक-एक पारे का प्रूफ़ मुझको देते, उसको देखकर दुरुस्त करता, फिर वह तबा होता—इस तरह पूरे क़ुर्आन मजीद का तर्जुमा और उसके तफ़्सीरी नोट्स शुरू से आखीर तक मैंने देख डाले। अब मुझको पूरा इत्मीनान है कि यह तर्जुमा सही और क़ाबिल एतमाद है। मुस्तनद मुफ़स्सरीन के तर्जुमों और तफ़्सीर के मुताबिक़ ही हिन्दी में तर्जुमा व तफ़्सीरी नोट्स लिखे गए हैं। और उसमें कोई ऐसी ग़लती नहीं है जो इस्लामी अक़ाइद के खिलाफ़ हो और उससे गुमराही फैलने का अन्देशा हो। जनाब मौलाना अबुल हसन अली नदवी साहब ने भी अहक़र पर अपने एतमाद का इज़्हार फ़र्माया है।

अवस्थी जी ने तर्जुमे में बहुत एहतियात से काम लिया है। ज़बान सहल व आसान है इसकी वजह से हिन्दीदानों के अलावा वे उर्दूदाँ भी फ़ायद: उठा सकते हैं जो हिन्दी रस्मुलूखत से वाक़िफ़ हैं। इस दौर में ऐसे तर्जुमे व तफ़्सीर की अशद ज़रूरत थी जो नन्दकुमार अवस्थी जी की मेहनत व कोशिश से बड़ी हद तक पूरी हुई है। अल्लाह का शुक्र है कि यह काम पूरा होकर अब अवाम के सामने आ रहा है। अवस्थी जी ने हिन्दी तर्जुमा व तफ़्सीर के साथ क़ुर्आन मजीद का मतन भी अरबी व देवनागरी दोनों रस्मुलूखत में शाया किया है और इस काम में उनको बड़ी जाँफ़िशानी करना पड़ी। इसलिए कि एक ज़बान को दूसरी ज़बान के रस्मुल्ख़त में लिखना हमेशा दुश्वार होता है। अरबी ज़बान को देवनागरी में लिखने में ख़ास दुश्वारी यह थी कि अरबी की बाज़ आवाज़ों के लिए देवनागरी में ऐसे हुरूफ़ नहीं थे जो एक आवाज़ को दूसरी आवाज़ से मुमताज़ कर सकें। इस दुश्वारी को दूर करने के लिए अरबी की सही आवाज़ को ज़ाहिर करने के लिए अवस्थी जी को बड़ी काविश करना पड़ी। उन्होंने हर आवाज़ के लिए अलाहिद: अलाहिद: हुरूफ़ मुक़र्रर किये और उनमें ख़ास अलामतें क़ायम कीं। इस काम में उन्होंने अपनी उम्र के बीस साल सर्फ़ किए और लगन के साथ काम करते रहे।

हिन्दी के मत्न में लफ़्ज़ों के वस्ल व फ़स्ल, क़ल्ब व इदग़ाम वग़ैरह में क़ुर्आन मजीद के मामूर व मन्क़ूल रस्मुलूखत की पाबन्दी की है। और औक़ाफ़ की रायज अलामतें भी क़ाएम रखी हैं। निस्फ़, रुबअ, सुल्स, रुकूअ, सज्द: वग़ैरह के लिए भी अलामतें मुक़र्रर की हैं। और हिन्दी में अरबी के मुताबिक़ तिलावत करने के लिए क़वाएद बयान किये हैं। हुरूफ़ के मखारिज और इदग़ाम के क़वाएद, वस्ल व फ़स्ल व इदग़ाम के तरीक़े भी दिए हैं ताकि हिन्दी मत्न भी अरबी के सही तलफ़्फ़ुज़ के साथ पढ़ा जा सके और उसके पढ़ने का अन्दाज़: अरबी के तर्ज़अदा के मुताबिक़ हो। इसमें कोई शुबहा नहीं कि यह काम बड़ा दुश्वार था जिस पर अवस्थी जी ने अपनी मेहनत और लगन से बड़ी हद तक क़ाबू पाया है। मैं उम्मीद करता हूँ कि अरबाबे-इल्म इस काम की क़द्र करेंगे। और अपने मशविरों से उनको मदद पहुँचायेंगे और अवाम उससे फ़ायद: उठा कर उनकी हिम्मत अफ़ज़ाई करेंगे।

व अस्सलामु अला मनित्तबअल्हुदा

ता० ८ जनवरी, १९६९ — नाचीज़ मुहम्मद सिद्दीक़ मुफ़्ती

दारुल्मुबल्लग़ीन, लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क़ुर्आन शरीफ़ की तिलावत (पाठ) के लिए ज़रूरी है कि पढ़नेवाला हो या सुननेवाला, उसको तन-मन-वाणी से पवित्र होना चाहिए। बिना इसके, पाठ का पुण्य (सवाब) दुर्लभ है। अलबत्ता गुनाह और अज़ाब की सम्भावना है। (१) तन-मन को पवित्र करने के लिए 'ग़ुस्ल-वज़ू' अर्थात् स्नान-मार्जन कर लेना चाहिए; बिला वज़ू हाथ लगाना मना है। (२) मन—श्रद्धा, विश्वास और ध्यान (ईमान, यक़ीन और तवज्जुह) अल्लाह की ओर होना ही मन को पाक रखना है। (३) वाणी—शुद्ध उच्चारण (तलफ़्फ़ुज़) और सही पठन-विधि, यही वाणी की पवित्रता है। इसके सही-सही अपनाने के लिए क़िरअत (उच्चारण शास्त्र) के आलिमों से हिदायत लेना चाहिए। वैसे साधारण तरीक़े पर पाठकों की जानकारी के लिए नीचे लिखे अनुसार कुछ निर्देश दिये जाते हैं:—

अ़रबी लिपि में उच्चारण की दृष्टि से २८ अक्षर होते हैं। इनके लिए नागरी लिपि में इस्तेमाल होनेवाले हुरूफ़ भी उन अ़रबी अक्षरों के साथ दिये जा रहे हैं। इन अक्षरों के सही मख़रज (उच्चारण संस्थान) के जानने के लिए क़िरअ़त (क़ुर्आन पाठ) के विद्वानों से सीखना-समझना चाहिए:—

इनके अलावा (ۃ) गोल त़ के लिए त़ लेना चाहिए। त़ का प्रयोग शब्द में प्रायः आख़ीर में होता है। इस शब्द पर वक़्फ़ (विराम) करने पर त़ को 'ह्' या विसर्ग (:) पढ़ा जाता है। देखिये सन्धि-प्रकरण। इन २८ अक्षरों में ते, से, दाल, ज़ाल, रे, ज़े, सीन, शीन, स़ाद, ज़ाद, तो, ज़ो, लाम, नून—ये १४ अक्षर हुरूफ़े शम्सी (सौराक्षर) और बाक़ी १४ अक्षर हुरूफ़े क़मरी (चान्द्राक्षर) हैं। इनका ज़िक्र बयाने-वस्ल (सन्धि-प्रकरण) में आयेगा। अक्षरों के उच्चारण-संस्थान जानने के लिए देखिये पृष्ठ १८। अलबत्ता जब तक अक्षरों के उच्चारण का सही ज्ञान न हो, तब तक लाअ़िल्म के लिए यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि वह ज (ज़ाल), ज़ (ज़ाद), ज (ज़ो) और ज़ (ज़े) को ज (जीम) की तरह हरगिज़ न पढ़ ले। बजाय (ज) के ये अक्षर (ज़) के ज़ियादः नज़दीक हैं।

अ़रबी फ़ारसी (देवनागरी वर्णमाला)			
स ث	त ت	ब ب	अ ا ء
द د	ख़ خ	ह़ ح	ज ج
स س	ज़ ز	र ر	ज ذ
त़ ط	ज़ ض	स ص	श ش
फ़ ف	ग़ غ	अ़ ع	ज ظ
म م	ल ل	क ك	क़ ق
य ي	ह ہ ھ	व و	न ن
अ़रबी लिपि के फ़ारसी अक्षरों के लिए उर्दू-नागरी वर्णमाला का चार्ट देखना चाहिए			त़ ۃ

● सब जानते हैं कि किसी भाषा को विदेशी लिपि में बिलकुल सही व्यक्त करना नामुमकिन है। फिर भी बरसहाँ बरस के यत्न और परिश्रम से हासिल यह "अध्याय", देवनागरी लिपि में अ़रबी आयतों के पठन (तिलावत) के लिए सही रास्ता पेश करता है। हिन्दी और अ़रबी में समान पैठ रखनेवाले विद्वानों ने इस "संकेताक्षरी और पठन-विधि" की बड़ी सराहना की है। शुद्ध पाठ की पूरी सुविधा देते हुए भी अ़रबी आयतों के देवनागरी लिपि में लेखन (तहरीर) में अभी तौसीअ़ (प्रशस्तता) की गुन्जाइश है। पाठकों की आसानी के लिए पहले संस्करण की बनिस्बत इस मौजूदः दूसरे संस्करण में लेखन-विधि को और सँवारा गया है; और ईश्वर ने चाहा तो रफ़्तः रफ़्तः अगले एक दो एडिशनों में मज़ीद इज़ाफ़े व इस्तिलाहें पैदा करके, अ़रबी न जाननेवाले हिन्दीदानों के लिए तहरीर (लेखन) का भी रास्ता उसी हद तक पूरा कर दिया जायगा जिस हद तक तिलावत (पाठ) का रास्ता आज इस अध्याय द्वारा सुगम हुआ है।

—नन्दकुमार अवस्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस ग्रंथ में 'अरबी लिपि' से हमेशा क़ुर्आन में अपनाई गई अरबी लिपि को समझना चाहिए। बात यों है कि प्रचलित अरबी और प्राचीन अरबी के लिखने की विधि में अन्तर है। वैसे ही पुराने समय की अरबी लिपि और क़ुर्आन की लिपि में भी अन्तर है। सबसे पहले इस्लाम के तीसरे खलीफ़ा हज़रत उस्मान र० के ज़माने में क़ुर्आन के लेख को जमा किया गया और इसकी पाबन्दी की गई कि पैग़म्बर की सभा में जो शब्द जिस तरह लिखा गया था उसी तरह बाक़ी रखा जाय और जो क़ुर्आन में मुख़्तलिफ़ क़िरअतें (पढ़ने के तरीक़े) हैं वह बाक़ी रहें। इस उद्देश्य को लेकर विद्वानों की मजलिस बैठी और मौजूदा क़ुर्आन का स्वरूप देकर बाक़ी लिखी पाण्डुलिपियों को नष्ट कर दिया गया ताकि भविष्य में लिखी या छपी किसी भी प्रति में एक नुक़्ते का भी अन्तर न रहे। हासिल यह कि आज तक वही परिपाटी चली आ रही है—यहाँ तक कि विद्वत्परिषद से स्वीकृत उस क़ुर्आन में जहाँ अलिफ़ छोटे आकार में लिख गया था वहाँ छोटा और जहाँ बड़े आकार में लिख गया था वहाँ बड़े ही आकार में लिखा जाता है, भले ही दोनों के उच्चारण में कोई भेद नहीं। यही नहीं, जहाँ 'सीन' के स्थान पर 'स्राद' लिख गया था, वहाँ आज भी 'स्राद' ही लिखा या छापा जायगा और पाठ को शुद्ध पढ़ने के लिए उस 'स्राद' के ऊपर एक छोटा सा 'सीन' संकेत के लिए लिख दिया जाता है जो हुक्म देता है कि यहाँ पर 'सीन' जैसा उच्चारण करना चाहिए। किसी ग्रंथ में आगे चलकर ज़रा भी घट-बढ़ न हो सके, इसका यह प्रयत्न शायद दुनिया में बेजोड़ है। लेकिन उस ज़माने में भी ज़ेर, ज़बर, पेश, जज़्म, तशदीद, वक़्फ़ व वस्ल के निशानों के लिखने का आम चलन न था। मातृभाषा अरबी होने के कारन अरब के लोग बिना इन निशानों के भी, अभ्यास से पढ़ लिया करते थे। लेकिन जब इस्लाम और क़ुर्आन दुनिया के अजमी हिस्सों यानी विदेशों में फैल चला तब ज़रूरत समझी गई कि अब अरबी न जाननेवालों के लिए बिलकुल शुद्ध पाठ पेश करने के लिए क़ुर्आन को इन निशानों से सम्पन्न किया जाय। यह काम लगभग ७५ हिजरी में हज्जाज इब्ने यूसुफ़ के हुक्म से किया गया।

एऽराब (मात्राएँ) जज़्म व तन्वीन्

अरबी में भी नागरी की तरह तीन स्वर (वावेल) होते हैं—अलिफ़, वाव, ये। 'अ' के व्यंजन (कान्सोनेन्ट) जैसे इस्तेमाल को ही हम्ज़: कहते हैं और 'अ' के स्वर (वावेल) जैसे इस्तेमाल को अलिफ़। उसी तरह वाव और ये जब व्यंजन हैं तब क्रमश: 'व' और 'य' की आवाज़ होती है और यही जब स्वर की जगह इस्तेमाल होते हैं तब क्रमश: 'उ' और 'इ' स्वरों का काम देते हैं। इन अ, इ, उ, तीन स्वरों की मदद के बिना ब्, ज्, द् जैसे अरबी के अट्ठाईसों व्यंजनों में हरकत (गति) यानी ध्वनि नहीं पैदा हो सकती। ऐसी सूरत में व्यंजन ब, ज, द, आदि के नीचे जज़्म (हलन्त) का निशान लगाकर ब्, ज्, द् लिखेंगे। अब इनको हरकत देने के लिए स्वरों की मदद ली जायगी। अरबी लिपि में अ, इ, उ, इन तीन स्वरों के लिए क्रमश: ज़बर, ज़ेर और पेश के एऽराब दिये जाते हैं। तब जज़्म ग़ायब होकर हरफ़ में हरकत पैदा होती है। इसी तरह नागरी लिपि में अरबी अक्षर लिखते समय जज़्म (हलन्त) का निशान हट जायगा। ज़बर यानी 'अ' स्वर होने पर ब् का ब लिखा और पढ़ा जायगा। ज़ेर यानी 'इ' की मात्रा (ि) लगने पर बि और पेश यानी 'उ' की मात्रा (ु) लगने पर बु लिखा और पढ़ा जायगा। इन एऽराबों को मात्रा कहा जाता है। यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है—ज़बर यानी अकार का अरबी में उच्चारण, 'हिन्दुस्तानी हिन्दी' या 'उर्दू' से कुछ भिन्न है लेकिन संस्कृत के समान है। ज़बर के 'अकार' को अरबी में कुछ ज़ियादः बढ़ाकर यानी 'अ' और 'आ' के बीच की आवाज़ से बोलते हैं। दूसरी बात यह है कि हिन्दी का नियम है कि शब्द के या शब्द के किसी खण्ड (स्लेबिल) के अन्तिम अक्षर का ज़बर यानी 'अ' के स्वर सहित लिखा होने पर भी साकिन यानी हलन्त जैसा बोलते हैं। जैसे लिखते हैं जल, राम, पनघट लेकिन बोलते हैं जल्, राम्, पन्घट्। अरबी में मुतहर्रिक (सस्वर) लिखकर वैसा ही पढ़ेंगे यानी हलन्त नहीं; और ज़बर यानी अकार को बढ़ाकर पढ़ेंगे। जैसे अंग्रेजी में Jala, Rama, Panaghata। संस्कृत में भी यही नियम है। 'राम' को राम् न पढ़कर Rama की तरह 'रा+म' पढ़ेंगे। अरबी में 'म' का अकार 'अ' और 'आ' की ध्वनि के बीच में बोला जायगा। और ज़बर+अलिफ़ यानी 'आ' की मात्रा को हिन्दी की अपेक्षा और ज़ियादः खींचकर पढ़ा जायगा। ज़ेर और पेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यानी इकार और उकार की मात्रा का उच्चारण अरबी में संस्कृत या हिन्दी के समान ही है। ज़ेर या (ि) अरबी ह्रस्व (ॆ) जैसी और पेश या (ु) की मात्रा अरबी में ह्रस्व (ॊ) जैसी आवाज़ अरबी का तरीक़: नहीं है। यह उर्दू का शायद फ़ारसी के ज़रीये हासिल एक तर्ज़ है। बाज़ लोग अक्सर 'मुहम्मद' में म के (ु) यानी उकार को (ॊ) के नज़दीक 'मोहम्मद' जैसा पढ़ते हैं। ध्यान रहे कि यह आवाज़ ह्रस्व (ॊ) की, न कि दीर्घ (ो) जैसी होती है। इसी तरह 'इहतमाम' को ऐतहमाम जैसा बोलते हैं। ध्यान रहे कि 'ए' की आवाज़ ह्रस्व (ॆ) जैसी बोलते हैं न कि दीर्घ (े) की तरह। यह उच्चारण भेद भौगोलिक या अन्य कारणों से है—जैसे बंगाली 'अ' लिखकर 'ओ' जैसा उच्चारण करते हैं। इसलिए सही अरबी पाठ के लिए हमें ज़बर-ज़ेर-पेश यानी अ-अि-अु की मात्राओं को अरबी या संस्कृत की पद्धति पर ही उच्चारण करना चाहिए।

दीर्घ स्वर—तीन स्वर ज़बर, ज़ेर, पेश यानी अकार, इकार, उकार, को ज़ियादः विस्तार (बढ़ाव) देने पर तीन दीर्घ स्वर बनते हैं—ज़बर+अलिफ़ = 'आ' ज़ेर+ये साकिन = 'ई' पेश+वाव साकिन = 'ऊ'। पहले लिखा जा चुका है कि 'साकिन' हलन्त को कहते हैं। इन तीन दीर्घ स्वरों के लिए देवनागरी लिपि में क्रमशः ा, ी, ू मात्राएँ (ऐऽराब) इस्तेमाल होती हैं। मालूम हो कि क़ुर्आन में ज़ेर+ये साकिन और पेश+वाव साकिन को क्रमशः 'खड़ी ज़ेर' और 'उल्टा पेश' जैसा लिखने का भी चलन है लेकिन (ी) और (ू) के लिखने के इन दोनों तरीक़ों के उच्चारण में कोई भेद नहीं है। इस हिन्दी क़ुर्आन में इस लिपि-भेद को पहचानने के लिए ज़ेर+ये साकिन को (ी) व पेश+वाव साकिन को (ू) और खड़ी ज़ेर के लिए ؚ व उलटा पेश के लिए ٗ लिखा गया है। लेकिन पाठकों को अरबी लिपि ही के समान नागरी लिप्यन्तर में भी (ी) और (ؚ) व (ू) और (ٗ) के उच्चारण में भेद न समझना चाहिए।

संयुक्त स्वर (Dipthong) —३ ह्रस्व और ३ दीर्घ स्वरों के अलावा अरबी में दो संयुक्त स्वर होते हैं। ज़बर+ये साकिन = (ै) और ज़बर+पेश साकिन = (ौ) यानी हिन्दी में 'ऐ' और 'औ' की मात्राएँ। जिस तरह ज़बर यानी अकार के स्वर को बोलने में हिन्दी व अरबी में फ़र्क़ है और संस्कृत व अरबी में समानता है, उसी तरह (ै) और (ौ) की मात्राओं में भी है। हिन्दी-उर्दू में (ै) की आवाज़ 'अए' (ऐनक) और (ौ) की आवाज़ 'अओ' (औरत) की तरह बोली जाती है। 'अएनक' और 'अओरत' ऐसी आवाज़ निकलती है। लेकिन अरबी में (ै) को 'अइ' (अइनक) और (ौ) को अउ (अउरत) की तरह बोलते हैं। फ़िर्औन को 'फ़िर्अओन' न कहकर 'फ़िर्अउन' कहेंगे। संस्कृत में भी 'शौर्य्य' को 'शउर्य्य' जैसा उच्चारण करते हैं न कि 'शओर्य्य'; 'शय्या' को 'शइया' न कि 'शएआ'।

क़ुर्आन की मूल आयतों के नागरी लिप्यन्तरण में इसी भ्रम में पड़कर बाज़ साहबान ने मैंयक़्नुत (मंय्यक़्नुत) की सही तिलावत में शक महसूस किया है। अगर हमारे "संयुक्त स्वर" (Dipthong) के पैराग्राफ़ को ग़ौर से पढ़ लेते तो जल्दबाज़ी के सबब इस शुबहे में वे न पड़ते। मीम ज़बर ये साकिन नून अर्थात् मै (मय्) के उर्दू-हिन्दी तलफ़्फ़ुज़ को भूल कर इनके अरबी-संस्कृत तलफ़्फ़ुज़ (उच्चारण) को समझना चाहिए। 'मैं' को उर्दू-हिन्दी वाले 'मंए' और अरबी-संस्कृत वाले मंइ (मंय्) पढ़ते हैं—क़ुर्आन में यही उच्चारण सही है।

स्वर (वावेल) के इस बयान की समाप्ति पर एक बात उल्लेखनीय है। क़ौरानिक अरबी लिपि में 'अ' के व्यंजन जैसे प्रयोग को ही हम्ज़: नाम दिया गया है। इसलिए 'अ' को हिन्दी की तरह स्वर मानकर किसी व्यंजन से मिलाया नहीं जा सकता। 'अ्' का भी प्रयोग वैसे ही होगा जैसे ब्, स् आदि दूसरे व्यंजनों का। जैसे 'क़ुर्आन'—शब्द में हिन्दी की पद्धति पर 'र्' व्यंजन को 'आ' स्वर में मिलाकर 'क़ुरान' पढ़ा जाना चाहिए। लेकिन अरबी में 'आ' स्वर नहीं बल्कि (हम्ज़:) व्यंजन है इसलिए, व्यंजन में व्यंजन जज़्ब (विलीन) नहीं हो सकता और 'क़ुर्आन' ही शुद्ध पाठ होगा न कि 'क़ुरान'। इस तरह जब हम्ज़: 'अ' स्वर न होकर व्यंजन ही रहा तब दूसरे व्यंजनों की तरह ही (ि) (ी) (ु) (ू) (ै) (ौ) मात्राएँ तथा जज़्म (हलन्त) के निशान 'अ' में भी प्रयुक्त होंगे—जैसे, अि अी अु अू अै औ अ्। 'मुअ्मिनु' में अ् में झटका देकर साफ़ अलग पढ़ा जायगा और स्वर की तरह 'मु' में 'अ्' विलीन न होगा। हालांकि हिन्दुस्तान में कुछ लोगों ने 'मूमिनु' पाठ को भी चलन में दाखिल कर लिया है। हम्ज़: साकिन यानी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'अ्' अलग पढ़ लिया जाय इस सावधानी के लिए ही मुऽमिनु न लिखकर 'मुअ्मिनु' लिखा गया है। क्योंकि ऽ इ ई उ ऊ ऐ औ—यह अक्षर स्वरों के प्रतिनिधि समझ लिए जाँयगे न कि व्यंजन के, और पाठ में उनके दूसरे व्यंजनों से मिल जाने का डर है; इसलिए "अ् अि अी अु अू अै औ" अपनाए गये हैं। कुछ छपाई की सुविधा का भी ध्यान रखा गया है। क्योंकि हम्ज़: 'अ' में नीचे नुक़्ता देकर 'अ़' को ऐन अक्षर माना गया है। अ़ को अ़ि व अ़ी में कम्पोज़ करना सरल है। लेकिन इ ई के टाइप लम्बान में साइज़ में नहीं बैठते कि उनमें नीचे बिन्दु लगाया जा सके।

हम्ज़ए वस्ल 'अ्'—अब स्वरों के अध्याय में सिर्फ़ एक बात जोड़नी है। हमज़ए वस्ल 'अ' का वह स्वरूप है जो किन्हीं दो शब्दों के जोड़ते समय तो स्वर का काम करता है और जुड़ने वाले शब्दों में पहले शब्द के अन्तिम अक्षर में जज़्ब (विलीन) हो जाता है, लेकिन जब वही दोनों शब्द जुड़ते नहीं और अलग रहते हैं तब वही 'हमज़ए वस्ल' अगले शब्द के शुरू में 'अ' अक्षर का काम देता है। इस अजूबा इस्तेमाल के कारन 'हमज़ए वस्ल' को अलग पहचान लिए जाने के लिए पुरानी लिपि के 'अ्' को चुना गया है। उदाहरण—आलमीन-अ्र्रह्मानिर्रहीमि। इन दो कलमों (पदों) की सन्धि करने पर 'अ्' पहले शब्द के आखिरी अक्षर 'न' में स्वर की तरह मिल कर 'नर्रह्मानि' हो जायगा। और दोनों कलिमों को अलग-अलग पढ़ने पर यानी 'आलमीन' पर रुक जाने पर 'अ्' हलन्त न रहकर सस्वर हम्ज़: यानी 'अ' हो जायगा और अलग 'अर्रह्मानि' पढ़ा जायगा। और सन्धि-नियम (१) के अनुसार 'आलमीन' के 'न' की ज़बर की हरकत यानी अकार ख़तम होकर हलन्त 'न्' अर्थात् 'आलमीन्' पढ़ा जायगा।

ऊपर के दो पैराग्राफ़ों में यह समझाया गया है कि 'अ' स्वर को 'ब' वग़ैर: की तरह व्यंजन जैसा मान कर हिन्दी की तरह मिलने नहीं देते; अलाहद: हरकत देकर पढ़ते हैं। लेकिन यह अरबी क़ौरानिक पठन-पद्धति की एक खुसूसीयत और खुशनुमाई ही है। उसूलन (सिद्धान्तत:) अरबी लिपि में हम्ज़: भी स्वर ही माना गया है। मिसाल के तौर पर हम्ज़ए वस्ल की ऊपर चर्चा की जा चुकी है, जिसके मुताबिक़ हम्ज़: (अ) दूसरे व्यंजनों में मिल जाता है। और भी मिसालें हैं— सुफ़हाअु पर वक़्फ़ (विराम) करने पर अु को सन्धि नियम (१) के अनुसार हलन्त अ् न पढ़ कर सुफ़हाऽ पढ़ेंगे। हा की ा में अ् मिलकर ाऽ जैसा विस्तार हो जाता है।

साकिन (हलन्त)—पाठकों को मालूम है कि व्यंजन (कान्सोनेन्ट) में बिना स्वर (वावेल) की मदद के हरकत (गति) नहीं पैदा होती। बिना गति के व्यंजन को अरबी में साकिन (हलन्त) कहते हैं और 'साकिन' प्रकट करने के लिए जज़्म का एक निशान साकिन व्यंजन के ऊपर लगाते हैं। उसी तरह हिन्दी में साकिन अक्षर को लिखने की दो विधियां हैं, जैसे 'रब्बिल' और 'रब्‌बिल'। इनमें पहले 'ब' को आधा 'ब' लिखा है और दूसरे में ब में (्) हलन्त लगाकर यानी आधा 'ब्' इस प्रकार लिखा है। दोनों शुद्ध होने पर भी हिन्दी में चलन है कि शब्द के अन्तिम अक्षर में हलन्त का चिह्न लगाते हैं और बीच में प्रयोग होने पर आधा अक्षर लिखते हैं। लेकिन हिन्दी क़ुर्आन में शब्द के बीच में भी अक्सर हलन्त का प्रयोग सही उच्चारण के हित में समझा गया है। 'अहरलयून' सूत्र के अनुसार अ, ह, र, ल, य, व और न—ये सात अक्षर कुछ ऐसे कोमल व्यंजन हैं जो अपने से पहले आये आधे अक्षर के साथ मिलकर एक संयुक्त अक्षर के समान ही बोले जा सकते हैं जैसे फ्रा फ्रा, क्या, क्वा, द्वा आदि। लेकिन अरबी में आधा अक्षर किसी भी दूसरे अक्षर में मिलकर एक सपाट में फिसलता हुआ नहीं बोला जाता। इसलिए 'कुफ़्रान' लिखने पर यह अंदेशा (आशंका) नहीं रहता कि कोई कु-फ़ान पढ़ ले। याने 'कु' में मामूली सा सक्ता देकर फ्रांस जैसा फ़्रा पढ़ ले। अ और ह भी ऐसे अक्षर हैं जिनके पहले आधा अक्षर लिखने से, पढ़ते समय अशुद्धि हो सकती है। जैसे 'सुब्हान'—हिन्दी उर्दू के अनुसार ब+ह मिलकर 'भ' जैसी आवाज़ पैदा करता है और उसी चलन में लोग 'सुभानल्लाह' कहने लगते हैं। इससे बचने के लिए 'सुब्हान' के बजाय 'सुब्‌हान' लिखना ज़ियाद: मुनासिब है। हासिल यह हुआ कि अरबी को देवनागरी लिपि में लिखते समय साकिन (आधे) अक्षर को 'न' और 'न्' दोनों लिखना जाइज़ है। लेकिन जहां ऊपर दिये सूत्र 'अहरलयून' के अनुसार कोमल व्यंजन हों वहां उनसे पहले आधा अक्षर के बजाय हलन्त लगाकर ही लिखना निरापद है। बाक़ी जगहों पर हलन्त लगाएँ चाहे आधा अक्षर लिखें, कोई हर्ज नहीं है। 'अहरलयून' के अक्षरों से पहले साकिन (आधा अक्षर) अगर वही है जो आगे है तो हलन्त लगाएँ, चाहे आधा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखें, फ़र्क़ नहीं पड़ता। जैसे अन्+न=अन्न अथवा अन्न। अन्न लिखना ज़ियादः सुन्दर है। यहाँ यह फिर याद दिलाना ज़रूरी है कि अरबी में हर हरफ़ की तरह हम्ज़ः यानी 'अ' को भी 'अ्' हलन्त लिखा जायगा। सिर्फ़ अ़ैन का साकिन 'ऽ' इस प्रकार लिखा जायगा। कारण यह सावधानी है कि 'हम्ज़ः साकिन' यानी 'अ्' की तरह अ़ैन साकिन को 'अ़्' लिखने पर कहीं अ़ैन साकिन भी झटके के साथ न पढ़ लिया जाय। 'अहरलयून' सूत्र की रचना मैंने इसी सुविधा के लिए की है।

द्वित्व (तश्दीद)— 'ये' (य) और 'वाव' (व) की तश्दीद यानी डबल आवाज़ (द्वित्व) के लिए इतना और ध्यान में रखना ज़रूरी है—"इय्याक" और "ईयाक" व "फ़सव्वा" और "फ़सौवा" ये दो तर्ज़-तहरीर राइज हैं, और सही तौर पर पढ़ने पर दोनों सही हैं। लेकिन खिलने में "इय्याक" व "फ़सव्वा" ज़ियादः सही हैं। सिर्फ़ "वाव" की तश्दीद में ध्यान रखना है कि हिन्दोस्तान में वाव (व) को लोग अक्सर फ़े (फ़) की तरह बोलते हैं जो कि ग़लत है। 'व' को बोलते वक़्त 'फ़' की तरह होंठ आपस में बिलकुल न छूना चाहिए। उसी सूरत में "फ़सव्वा" का सही तलफ़्फ़ुज़ (उच्चारण) मुमकिन है! वरना "फ़सौवा" ही लिखना-पढ़ना मुनासिब होगा। "फ़सौवा" में (ौ) की मात्रा को सही पढ़ने के लिए क़वायदनामा में मात्राओं (एऽराब) का बयान देखिए।

तन्वीन्—अनुस्वार पैदा करनेवाला। शब्द के अन्तिम अक्षर पर ज़बर, ज़ेर, पेश की तन्वीन् यानी अन्, इन्, उन् की ध्वनि को 'न्' से प्रकट किया गया है। जैसे जमीअन्, अुम्मतिन्, अज़ीमुन् में क्रम से अन्, इन्, उन् की तन्वीन् है। इनका विशेष हाल संधि-प्रकरण में पढ़िये। न् (नून साकिन) से तन्वीन् को अलग ज़ाहिर करने के लिए मौजूदः जदीद एडिशन में न् इख्तियार किया गया है।

सन्धि-प्रकरण

सन्धि-प्रकरण—क़ुर्आन-पाठ में 'सन्धि' की दो शक्लें हैं। (१) एक तो जब दो शब्द आपस में मिलाकर पढ़े जायँ तब पहले शब्द का आखिरी अक्षर और दूसरे शब्द का पहला अक्षर आपस में मिलकर एक नई शक्ल इख्तियार कर लेता है। जैसे मिन्+बऽदि = मिम्बऽदि, अल्+रहीमि = अर्रहीमि। अगर दोनों शब्दों को मिलाया न जाय और पहले शब्द पर रुका जाय तो दोनों शब्द अपनी असली शक्ल में पढ़े जायँगे। जैसे मिन् और बऽदि वग़ैरः। (२) दूसरे, किसी शब्द पर साँस लेना या रुक जाना या फिर बराबर पढ़ते चले जाना। बराबर पढ़ते जाने पर शब्द जैसा लिखा है वैसा ही पढ़ा जायगा और किसी शब्द पर रुक जाने पर उस शब्द के आखिरी अक्षर को लिखा जैसा न पढ़कर कुछ फ़र्क़ के साथ भी पढ़ा जा सकता है। जैसे रहीमि, ग़िशावतुन् और ग़र्क़न् को बराबर इबारत में पढ़ते चले जाने पर तो वैसा ही पढ़ा जायगा जैसा तहरीर (लेख) में है। लेकिन अगर आगे इबारत पढ़ते चले जाने के बजाय इन्हीं शब्दों पर वक़्फ़ (विराम) किया जाय या साँस रोकी जाय तो क्रमशः इनको रहीम्, ग़िशावः और ग़रक़ा पढ़ा जायगा। इन दो तरह की सन्धि-विग्रह की विधि को क़ारी आलिम (क़ुर्आन-पाठ के आचार्य) से सीखना चाहिए। सर्वसाधारण के लिए मोटे तौर पर कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं। रुमूज़-औक़ाफ़ यानी विरामाविराम चिह्न जो इस अध्याय में पृष्ठ १६-१८ पर दिये गये हैं उनके आने पर ठहराव लिया जाय या बिना चिह्न हुए यों भी कहीं ठहराव लिया जाय, तो दोनों सूरतों में ये नियम लागू होंगेः—

(१) जिस शब्द पर विराम (ठहराव) लिया जाय उसके आखिरी अक्षर में ज़बर, ज़ेर, पेश यानी अकार, इकार, उकार की गति (हरकत) या मात्रा है तो वक़्फ़ (ठहराव) करने पर वह मात्रा गिर जायगी और वह आखिरी अक्षर हलन्त पढ़ा जायगा। जैसे अिय्याक, अक्रमनि, नस्तअीनु को क्रमशः अिय्याक्, अक्रमन् और नस्तअीन् पढ़ा जायगा। लेकिन अगर अन्तिम अक्षर अ, अि, अु हैं तो वह हलन्त न पढ़े जाकर पिछले अक्षर के स्वर में मिल जायँगे। जैसे सुफ़हाअु का 'अु' (अ) स्वर होकर पिछले अक्षर 'हा' में जज़्ब (विलीन) हो जायगा और कुछ बढ़ा कर पढ़ा जायगा—जैसे सुफ़हाऽ।

हिय, हुव—इसी सन्धि (वस्ल) नियम (१) में यह भी समझना ज़रूरी है कि किसी लफ़्ज़ में ज़ेर वाले हरफ़ के बाद 'य' और पेश वाले हरफ़ के बाद 'व' होने पर वक़्फ़ करते वक़्त य् साकिन और व् साकिन हरफ़े इल्लत (स्वरों) जैसा काम करेंगे, और उस सूरत में य् पिछले हरफ़ के ज़ेर (ि) में और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व् पिछले हरफ़ के पेश (ु) में मिल कर दीर्घ ई (ी) और ऊ (ू) की आवाज़ों में बदल जायँगे। मसलन हिय और हुव पर वक़्फ़ (विराम) करने पर हिय् और हुव् होकर क्रमश: 'ही' और 'हू' पढ़ा जायगा। ऐसे ही मिलते-जुलते दूसरे अलफ़ाज़ भी।

(२) जिस शब्द पर ठहराव किया जाय उसका आख़िरी अक्षर अगर 'न्' (न हलन्त) है और उससे पहले के अक्षर अकार (ज़बर) है तो 'न्' अकार में बदलकर पिछले अक्षर में मिल जायगा। जैसे ग़र्क़न् का ग़र्क़ा, फ़ौरन का फ़ौरा।

(३) इसी तरह अगर 'न्' के पहले के अक्षर में इकार (ज़ेर) या उकार (पेश) है तो 'न्' ग़ायब (लुप्त) हो जायगा और उससे पहले का इकार व उकार वाला अक्षर हलन्त पढ़ा जायगा। जैसे क्रमशः मिन्खअुफ़िन् का मिन्खअुफ़् और लशहीदुन् का लशहीद्।

(४) ठहराव से पहले शब्द का अन्तिम अक्षर अगर गोल ते (त़) है तो विराम लेते समय त़ को विसर्ग (:) पढ़ा जायगा और विराम न लेने व पढ़ते चले जाने पर त़ ('त' के समान) पाठ होगा। जैसे शफ़ाअत़ पर विराम होने पर शफ़ाअः पढ़ा जायगा। अगर किसी शब्द में गोल ते यानी त़ हो और उसके बाद का अक्षर किसी नियम के अधीन ख़ामोश (मौन) हो जाय तो फिर त़ अन्तिम अक्षर रह जाने के फलस्वरूप विराम लेते समय : में बदल जायगा। जैसे 'ग़िशावतुन्' में नियम (३) के अनुसार न् ग़ायब हो जायगा और तब आखिरी बचे अक्षर त़ को विराम लेते समय : में बदल कर 'ग़िशावः' पढ़ा जायगा।

(५) यरमलून (य, र, म, ल, व और न) यह एक अरबी व्याकरण का सूत्र है। जब किसी शब्द का अन्तिम अक्षर 'न्' है और उसके अगले शब्द का पहला अक्षर इन यरमलून के छः अक्षरों में से कोई एक है तो दोनों शब्दों को मिलाकर पढ़ते समय न् उस अगले अक्षर की ही शक्ल इख़्तियार कर लेगा। यरमलून के छः अक्षरों के उदाहरण (नज़ीर) क्रमशः इस प्रकार हैं:—जैसे अिन्+यकुन्, = अिंय्यकुन्, यकुन्+रब्बुक = यकुर्रब्बुक, अहदन्+मिन् = अहदम्मिन्, लाकिन+ला = लाकिल्ला, ग़िशावतुन्+व = ग़िशावतुंव्व, मिन्+ना = मिन्ना।

जब शब्द का अन्तिम अक्षर (न्) हो और उसके आगे के शब्द का पहला अक्षर 'य' और 'व' हो तो कुछ और बातें ध्यान में रखना चाहिए। एक तो यह कि न् जब र, म, ल और न में मिलता है तो वह अपनी तन्वीन (अनुस्वार) की ध्वनि को बिलकुल त्यागकर अगले अक्षर का रूप ले लेता है। लेकिन जब 'न्' के आगे 'य' और 'व' आते हैं तो सन्धि करने पर न् क्रमशः य् और व् में बदल जाता है सही, पर अनुस्वार की झलक क़ायम रहती है। जैसे ग़िशावतुव्व न होकर ग़िशावतुंव्व और अिय्यकुन् न होकर अिंय्यकुन् होता है।

दूसरी बात 'न्' को उसके बाद वाले य और व से मिलाते समय यह भी देखना पड़ता है कि 'न्' के पहले के अक्षर में अ, अि और अु कौन सी मात्रा है। उसी के अनुसार मात्रा का य् और व् से संयोग होगा। न् के य् में बदलते समय न् से पहले वाले अक्षर के अकार, इकार, उकार होने पर क्रमशः अंय्य, अिंय्य और अुंय्य हो जायगा। जैसे अन्+यकुन् = अंय्यकुन् (अेंयकुन्); अिन्+यकुन् = अिंय्यकुन् (अींयकुन्); अुन्+यकुन् = अुंय्यकुन्। इसी प्रकार न् के व् में बदलते समय न् से पहले वाले अक्षर के अकार, इकार, उकार होने पर क्रमशः अंव्व, अिंव्व और अुंव्व हो जायगा। जैसे अन्+व = अंव्व (औंव), अिन्+व् = अिंव्व, अुन्+व = अुंव्व (अूंव)। पाठकों को याद दिला देना मुनासिब होगा कि स्वर प्रकरण में यह समझाया जा चुका है कि (आधी य) और (आधी व) पिछले अक्षर के स्वर से मिलते समय स्वयं भी क्रमशः इकार (ि) और उकार (ु) में बदल जाते हैं और व्यंजन नहीं रहते। हासिल यह कि इससे पहले पैरा में 'ग़िशावतुंव्व' और 'अिंय्यकुन्', जो समझाने के लिए लिखा गया है, उनका अब इस पैरा के अनुसार 'ग़िशावतूंव' और 'अींयकुन्' में भी लिखा जा सकता है, लेकिन उच्चारण एक जैसा ही होगा। हिन्दी रस्मुल्खत के अनुसार इन दोनो ही तरीक़ों में क्रमशः (व) और य की तशदीद (द्वित्व) मौजूद है।

(६) हुरूफ़े शम्सी (सौराक्षर)—शुरू में हुरूफ़े शम्सी (सौराक्षर) और हुरूफ़ क़मरी (चान्द्राक्षर) का जिक्र हो चुका है। अरबी वर्णमाला के अनुसार देवनागरी लिपि में चौदह सौराक्षर ये हैं:— त, स, द, ज, र, ज, स, श, स, ज़, त, ज, ल और न। बाक़ी चौदह अक्षर क़मरी (चान्द्राक्षर) होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। दूसरी बात यह कि 'अल्' शब्द अरबी में डिफ़िनिट आर्टिकिल 'दी' (The) के लिए आता है। जातिवाचक संज्ञा (Common Noun) के पहले 'अल्' लग जाने पर वह व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper Noun) हो जाती है। अब 'अल्' से मिलने वाले अगले शब्द का पहला अक्षर अगर इन चौदह सौराक्षरों में से कोई होता है तो उससे मिलने पर 'अल्' का 'ल्' भी उसी सौराक्षर यानी शम्सी हरफ़ में बदल जाता है यानी 'ल्' की आवाज़ लोप होकर अगले हरफ़ को मुशद्दद (डबल) अर्थात् दोहरा कर देगी। जैसे अल्+शम्स = अश्शम्स, अल्+रहीमि = अर्रहीमि, अल्+निसा = अन्निसा, मिनल्+ज़ालिमीन = मिनज़्ज़ालिमीन, अल्+दारि = अद्दारि, अल्+सादिक़ीन = अस्सादिक़ीन, वल्+ज़ैतून = वज़्ज़ैतून आदि। इसके बरअक्स (विपरीत) अगर 'अल्' के आगे वाले शब्द का पहला अक्षर हुरूफ़ क़मरी में से है तो लिखे जैसे ही पढ़ा जायगा—कोई सन्धि नहीं होगी। जैसे अल्+क़मर = अल्क़मर।

(७) एक शब्द के अन्त में 'न्' है और उससे अगले शब्द का पहला अक्षर 'ब' या 'म' है तो 'न्' को 'म्' में बदल दिया जायगा। जैसे मिन्+बड़दि = मिम्बड़दि, मिन्+मा = मिम्मा। संस्कृत में भी यह नियम लागू है।

(८) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब किसी शब्द का अन्तिम अक्षर 'ब्' है और उसके आगे के शब्द का पहला अक्षर 'म' है तो 'ब्' भी 'म्' में बदल जायगा। देखिये पृष्ठ ३८० आयत ४२ में याबुनैयर्कब्+मअना = याबुनैयर्कम्मअना।

(९) नूनक़ुतनी 'नि'—नूनक़ुतनी 'नि' का नियम समझने के पहले यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि अरबी में साकिन यानी आधा अक्षर जैसे ब्, म् आदि कभी उच्चारण नहीं किया जा सकता जब तक कि उससे पहले कोई सस्वर (मुतहर्रिक) अक्षर न हो और वह उस अपने आगे वाले अक्षर को सहारा न दे। संस्कृत या हिन्दी के बरअक्स अरबी में आधा अक्षर अपने आगे आने वाले अक्षर से मिलकर क्र, फ़्र, द्र की तरह संयुक्त अक्षर नहीं बन सकता। ऐसी सूरत में यह स्वाभाविक है कि अरबी में दो हलन्त (साकिन) अक्षर एक साथ नहीं बोले जा सकते। तब अरबी शब्द का अन्तिम अक्षर अगर 'न्' है और उससे अगले शब्द के शुरू में भी हलन्त अक्षर है तो मिलाकर पढ़ने में 'न्' को 'नि' पढ़ा जायगा। जैसे फ़ख़ूरन्+अ्ल्लज़ीन, इसमें न्+ल् दोनों हलन्त या आधे अक्षर अरबी में एक साथ नहीं बोले जा सकते। ध्यान रहे कि हमज़ए वस्ल 'अ्' दोनों शब्दों को मिलाकर पढ़ते समय खामोश है लिहाज़ा उसका हलन्त में यहाँ शुमार नहीं है। इसलिए दोनों शब्दों को मिलाकर पढ़ने के लिए न् का नि हो जायगा और पढ़ा जायगा 'फ़ख़ूरनिल्लज़ीन'। लेकिन अगर पहले शब्द पर ठहरना है तब फ़ख़ूरन् = फ़ख़ूरा पढ़ेंगे (देखिये नियम २); और दूसरे शब्द का हमज़ए वस्ल 'अ्' ज़िन्दः होकर हमज़ः 'अ' की तरह पढ़ा जायगा यानी 'अल्लज़ीन'। याद रहे कि अगर दूसरे शब्द का तीसरा अक्षर ज़बर (अकार) होगा जैसे ऊपर की मिसाल में 'अ्ल्लज़ीन' में तीसरे अक्षर 'ल' में ज़बर (यानी अकार) है तो हम्ज़ः खामोश 'अ्' में भी अकार की हरकत पैदा हो जायगी और अल्लज़ीन पढ़ा जायगा। उसी प्रकार अगर तीसरे अक्षर में इकार (ज़ेर) या उकार (पेश) है तो हमज़ः खामोश में भी क्रमशः इकार और उकार की हरकत पैदा हो जायगी। जैसे क्रमशः

नि'
नुफ़ूरन्+अ्स्तिक्बारन्—अ्स्तिक्बारन् में तीसरा हरफ़ 'ति' इकार होने के कारन अिस्तिक्बारन् पढ़ा जायगा और दोनों शब्द शामिल में नुफ़ूरनिस्तिक्बारन् पढ़े जायंगे। और इसी तरह मुबीनिन्+अ्क़्तुलू—अ्क़्तुलू में तीसरा हरफ़ 'तु' उकार होने के कारन अुक़्तुलू पढ़ा जायगा और दोनों शब्द शामिल में 'मुबीनिनिक़्तुलू' पढ़े जायँगे। ऐसे मौक़ों पर अरबी क़ुरआन में 'न्' के ऊपर छोटा सा 'नि' संकेत के लिए लिख दिया जाता है ताकि पाठ करनेवाले दोनों शब्दों के बीच में ठहरने या मिलकर पढ़ने में हस्बहिदायत (निर्दिष्ट) नियमों के अधीन पाठ करें। देवनागरी लिप्यन्तरण में पाठ की सुविधा के लिए हमने आम तौर पर ऐसे मौक़ों पर दोनों शब्दों को मिलाकर ही लिखा है और वह सहज ही सही पढ़ा जा सकता है। लेकिन जहाँ कहीं ऐसे मौक़ों पर दोनों शब्दों के बीच में कोई विराम चिह्न मौजूद है तो वहाँ हमने भी 'न्' के आगे ऊपर को छोटा सा (नि') 'एपास्टफ़ी कामा' के साथ दे दिया है। पाठ करनेवाला अगर पहले शब्द पर ठहरता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है तब इस (नि') से कोई प्रयोजन नहीं और अगर अगले शब्द से मिलाकर पढ़ता है तब ऊपर दिये नियमों के अनुसार 'न्' के बजाय (नि') पाठ करना चाहिए।

अरबी क़ुर्आन में कहीं-कहीं पहले शब्द के अन्त का 'न्' नहीं लिखा गया है और ऊपर छोटा 'नि' दे दिया है। उस दशा में भी पहले शब्द के अन्त में 'न्' को समझना चाहिए और ऊपर दिये क़ायदों के

नि'

बमूजिब पढ़ना चाहिए। जैसे देखिये पृष्ठ ५६० आयत ३९ में लक़दीरु (३९) अल्लजीन। इनमें आयत पर वक़्फ़ (विराम) करने पर लक़दीरुन् समझना चाहिए जो सन्धि के नियम (३) के अनुसार 'लक़दीर्' पढ़ा जायगा। शामिल दोनों शब्द पढ़ने पर 'लक़दीरुनिल्लजीन' पढ़ा जायगा।

(१०) मित्रवर्गीय अक्षरों की सन्धि (इद्ग़ाम)—हम-मखरज या क़रीबुल्-मखरज (मित्रवर्गीय) अक्षरों में से जब किसी साकिन (हलन्त) के आगे उसी वर्ग का दूसरा मुतहर्रिक (सस्वर) अक्षर आता है तो वह हलन्त या आधा अक्षर अपनी आवाज़ को छोड़कर आगे वाले मित्रवर्गीय अक्षर की आवाज़ में बदल जाता है और वह मुशद्दद यानी डबल ध्वनि पैदा करता है। जैसे:—अरद्+तुमुसतिब्दाल = अरत्तुमुसतिब्दाल, अिज़्+जलमू = अिज़्ज़लमू, लहम्मत्+ता'अिफ़तुन् = लहम्मतता'अिफ़तुन्, फ़र्रत्+तु = फ़र्रत्तु। ऊपर दिये उदाहरणों में दाल (द्) का ते (त्), ज़ाल (ज़्) का जो (ज़्), ते (त्) का तो (त्) और तो (त्) का ते (त्) हो गया है। इसी तौर पर और भी मित्रवर्गीय अक्षर हैं जिनका क़ारी विद्वान अथवा क़िरअत की पुस्तक से ज्ञान हासिल करें।

विशेष—संधि नियम (५) से (१०) तक में एक शब्द के अंतिम और दूसरे शब्द के प्रथम अक्षर के मिलाप से तीसरी शक्ल बनती है। हिन्दी क़ुर्आन शरीफ़ में हमने ऐसे मौक़ों पर उन्हें मिलाकर ही लिखा है ताकि पाठक को असुविधा न हो। लेकिन जहाँ कहीं ऐसे दो शब्दों के बीच में कोई रुमूज़ औक़ाफ़ (विरामाविराम चिह्न) है और वहाँ दोनों शब्दों को मिलाकर लिखा ही नहीं जा सकता तो वहाँ नीचे लिखे अनुसार लेख में संकेत कर दिया गया है:—

अज़ीमुन्+य़'यौम; ग़िशावतुन्+व़'व; मरीदन्+ल़'लअअनहु आदि। इनमें अगले शब्द में मुशद्दद (डबल) अक्षरों के बीच एपास्टफ़ी (ऊपर का) कामा दिया है। मिलाकर पढ़ने पर (न्) अगले (य़), (व़) और (ल़) में बदलकर अगले शब्द से मिलकर क्रमशः अज़ीमुय्यौम, ग़िशावतुव्व और मरीदल्लअअनहु हो जायगा। न मिलने पर अगले शब्द के इन आधे सांकेतिक अक्षरों का कोई प्रयोग नहीं होगा। क्रमशः यौम, व, और लअअनहु पढ़े जायँगे। इसी प्रकार देखिये पृष्ठ १८४ आयत (१५७)—यक़ीनन् के (न्) के ऊपर (म्') लिखा है। इसका मतलब यह है कि अगर यहीं ठहरना है तो यक़ीनन् को नियम (३) के अनुसार यक़ीना और अगला शब्द "बर्रफ़अहुल्" पढ़िये। और अगर सन्धि करके पढ़ना है तो नियम (८) के अनुसार (न्) को ऊपर दिये (म्) में बदल कर "यक़ीनम्बर्रफ़अहुल्" पढ़िये। यह लिपि के संकेतमात्र हैं, जैसे अरबी लिपि में भी अनेक लिपि के संकेत दिये जाते हैं।

रुमूज़ औक़ाफ़—विरामाविराम चिह्न

रुमूज़ औक़ाफ़ (विरामाविराम चिह्न)—बोलने या लिखने में अपने विचारों को सही बयान करने की ग़रज़ से विराम (Punctuation) का हर भाषा में चलन है। कहीं अधिक ठहरना, कहीं कम और कहीं बिलकुल न ठहरना, हमारे मतलब को समझने-समझाने में बड़ी मदद करता है। लिखने में इसके लिए कुछ निशान—कामा, सेमीकोलन जैसे क़ायम कर लिए जाते हैं। चुनांचे अरबी-लेख में भी कुछ चिह्न माने गये हैं, जिन्हें 'रुमूज़ औक़ाफ़' कहते हैं। ध्यान रखने की बात है कि आम तौर पर सभी ज़बानों में ठहराव के निशान होते हैं, लेकिन क़ुर्आन में ठहरने और न ठहरने (विराम-अविराम) दोनों तरह के निशान होते हैं जिनका ब्यौरा नीचे दे रहे हैं। क़ुर्आन-पाठ में इनका लिहाज़ रखना बहुत ज़रूरी है ताकि किताब की मंशा में फ़र्क़ न आने पाये। ला, म्, त् वग़ैरः ठहराव के निशान मूल आयतों के अक्षरों के मुक़ाबले छोटे हैं। उनको निशान समझें और आयतों में शामिल पढ़ लेने की भूल से सावधान रहें:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

( ) यह एक आयत के पूरी होने का निशान है। इस पर ठहरना चाहिए। मौजूदा हिन्दी संस्करण में इन आयत के निशानों के बीच पाठकों की सुविधा के लिए आयत की संख्या भी दे दी गई है जैसे आयत (१)।

म् मीम्—वक़्फ़ लाज़िम—यहाँ ज़रूर ठहरना चाहिये। न ठहरने पर मतलब उलट जाने का भय है। उदाहरण के तौर पर कोई कहे—आओ, जाओ मत। इस कहने में आने की दावत है और जाने की मनाही। लेकिन अगर 'आओ' पर विराम न किया जाय तो मतलब होगा कि आने-जाने दोनों की मनाही है।

त् तो—वक़्फ़ मुत्लक़—इस निशान पर ठहरना चाहिए। फिर भी यह ठहराव वहाँ होता है जहाँ ठहरने के बावजूद अभी कहनेवाला कुछ और बात कहना चाहता है।

ज् जीम—वक़्फ़ जाइज़—यहाँ ठहरना ज़ियादः मुनासिब है, लेकिन न ठहरने को भी जाइज़ (अनुमत) माना गया है।

ज़् ज़े—वक़्फ़ मुजव्वज़—यहाँ न ठहरना ज़ियादः अच्छा है। वैसे ठहरना भी वर्जित नहीं है।

स् स़ाद—यहाँ न ठहरना यानी मिलाकर पढ़ना चाहिये। लेकिन अगर कोई थककर रुक जाय तो इसकी छूट है। ध्यान रहे कि ज़् की अपेक्षा स् पर मिलाकर पढ़ने पर ज़ियादः ज़ोर है।

स़ला यहाँ मिलाकर पढ़ना बेहतर है।

क़ क़ाफ़—यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।

सिल् यहाँ कभी ठहरा भी जाता है, कभी नहीं। लेकिन ठहरना ज़ियादः मुनासिब है।

क़िफ़् यानी ठहर जाओ। यह ठहराव का निशान वहाँ सचेत करने के लिए होता है जहाँ पढ़नेवाले को मिलाकर पढ़ते चले जाने का अंदेशा हो।

स् सक्तः—यहाँ साधारन सा ठहरना है, लेकिन उस बीच साँस न टूटने पाये।

वक़्फ़: यहाँ सक्तः के मुक़ाबले ज़ियादः ठहरना चाहिये, लेकिन साँस न टूटने पाये इसका यहाँ भी ध्यान रखना है।

ला 'ला' के माने हैं 'नहीं'। यह जब किन्हीं दो शब्दों के बीच में हो तो वहाँ हरगिज़ न ठहरना चाहिये।

ला 'ला' जब आयत के निशान से सटा हुआ और शब्दों में ऊँचाई पर छपा हो तब वहाँ रायों में मतभेद है; एक राय है 'ठहरा जाना', दूसरी है 'न ठहरना'। लेकिन ठहरा जाय या न ठहरा जाय इससे मतलब में फ़र्क़ नहीं आता।

क् जहाँ यह निशान हो वहाँ समझना चाहिए कि इससे पहले जो निशान आ चुका हो उसी के अनुसार यहाँ भी विराम या अविराम करना मुनासिब है।

٥ यह कूफ़ी आयत का निशान है और इसका आशय भी वही है जो ( ) आयत का है।

नोट—पाठकों को ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ कहीं कई निशान एक साथ हों वहाँ उनमें से किसी भी निशान पर अमल किया जा सकता है लेकिन बाद वाले निशान का हुक्म मानना ज़ियादः मुनासिब है।

∴ यह 'मुआनिक़ः' का निशान है। हमेशा यह दोहरा यानी दो जगह नज़र आयेगा। इसका मतलब यह है कि इनके बीच में लिखे शब्दों को चाहे इनसे पहले की इबारत के साथ जोड़कर पढ़ें और चाहे इनसे बाद वाली इबारत के साथ। दोनों मतलब जाइज़ (मान्य) हैं। हासिल यह हुआ कि दोनों निशानों में से एक जगह ठहरे तो दूसरी जगह मिलाकर पढ़े। न दोनों जगह ठहरा जा सकता है और न दोनों जगह मिलाया जा सकता है। यह मुआनिक़ः दो तरह का होता है (१) अ़िन्दल् मुतअख़्ख़िरीन और (२) अ़िन्दल् मुतक़द्दमीन।

ı l मद—इसको संस्कृत में 'प्लुत' कहते हैं। जिस अक्षर पर यह चिह्न लगा हो उस अक्षर को दीर्घ मात्राओं से अधिक खींचकर यानी स्वरविस्तार से पढ़ा जायगा। स्वर-विस्तार तीन हदों तक होता है। ı l ये छोटी और बड़ी मदें हैं। शुद्ध पाठ के इच्छुकों को क़ारी विद्वानों से सहायता लेना चाहिये।

- हैफ़िन—हैफ़िन का चिह्न जिन दो शब्दों या शब्दखण्डों के बीच में दिया हो उन दोनों को संयुक्त समझकर एक में मिला कर ही पढ़ना चाहिए। अलग-अलग पढ़ना अशुद्ध होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

★ यह रुकूअ (विराम) का चिह्न है। मुआनिक़:, रुब्अ, निस्फ़, सुल्स, वक़्फ़ नबी स०, व. लाज़िम, व. ग़ुफ़रान, व. मंज़िल और सज्द: के निशान भी इबारत के बीच, और पाठक को पहले से सूचना देने के लिए हाशिये पर भी दिये गये हैं। उसी तरह रुकूअ का निशान ★ भी इबारत के बीच में देने के अलावा हाशिये पर भी दिया गया है। उदाहरण में क़ुर्आन के पृष्ठ ५५८ या ५५९ का हाशिया। २५ वीं आयत पर समाप्त होनेवाली रुकूअ सूर: हूज्ज की तीसरी रुकूअ है और चल रहे पार: १७ की वही रुकूअ शुमार से १० वीं है। और पिछली रुकूअ से इस रुकूअ तक ३ आयतें हैं। यों ही सूर: और पार:, दोनों क्रम से रुकूअ का शुमार नम्बर हाशिये पर दर्ज है।

रु.
३
१०
आ
३

● हर पार: को पढ़ने की सुविधा के लिए चार बराबर हिस्सों में बाँट दिया गया है। रुब्अ (चौथाई), निस्फ़ (आधा) और सुल्स (तीन चौथाई) पर यह निशान दिया गया है। इसी प्रकार पाठ की सुविधा के लिए समग्र ग्रंथ को सात मंज़िलों में बाँटा गया है जो हर पृष्ठ पर अंकित हैं।

✢ निस्फ़ुल्क़ुर्आन (आधा ग्रंथ) का चिह्न है। देखिये पृष्ठ ४९२ सूर: कह्फ़ि आयत (१९)।

● वक़्फ़ लाज़िम, वक़्फ़ नबी स०, वक़्फ़ ग़ुफ़रान, वक़्फ़ मंज़िल—इन विराम के मौक़ों पर यह निशान दिया गया है।

▲ सज्द: का निशान है। क़ुर्आन मजीद में चौदह मुक़ाम ऐसे हैं जहाँ सज्द: करने की हिदायत है। पढ़ने और सुननेवाले दोनों पर सज्द: करना लाज़िमी है। इसके अलावा रुकूअ और सज्द: के लिए देखिये फ़ुटनोट ♦, ७ पृष्ठ ५१। दो सज्दों में मतभेद है। सूरत २२ आयत ७७ पृष्ठ ५६८ पर शाफ़ओ के नज़दीक सज्द: है लेकिन अबू हनीफ़ा के नज़दीक नहीं है। और सूरत ३८ आयत २४ पृष्ठ ७५० पर अबू हनीफ़ा के नज़दीक सज्द: है लेकिन शाफ़ओ के नज़दीक नहीं है। बहरहाल दोनों आलिमों के नज़दीक सज्दों की तादाद कुल चौदह ही है।

अक्षरों के उच्चारण संस्थान:—

अ, ह—हलक़ (कण्ठ) का अगला भाग।

ख, ग़—हलक़ का अन्तिम भाग।

क़—ज़बान जड़ और तालू की मदद से 'क' के स्थान से कुछ कण्ठ की ओर हट कर।

ज़—ज़बान बाईं करवट और ऊपर की बाईं दाढ़ों की जड़ की रगड़ से।

र—ज़बान का सिरा और ऊपर वाले सामने के दाँतों के नीचे से 'न' के स्थान से कुछ आगे।

ज,ज,स—ज़बान की नोक और अगले दाँतों के किनारे से मिलकर।

स,स़,ज़—ज़बान की नोक और अगले दाँतों के बीच से निकलते हैं।

अ, ह़—हलक़ का मध्य भाग।

क—ज़बान की जड़ और तालू की मदद से।

ज,श,य—ज़बान के बीच के हिस्से और तालू के बीच के हिस्से के संयोग से।

ल—ज़बान की नोक और तालू के संयोग से।

न—ज़बान का सिरा और ऊपर के दाँतों के नीचे से मिलकर।

त,द,त—ज़बान की नोक और ऊपर के दाँतों की जड़ से मिलकर।

फ़—नीचे के होठ के अन्दर ऊपर के दाँतों के सिरे जब छूते हैं।

ब, म,—दोनों होठों के स्पर्श से।

व—दोनों होठों को समीप लाकर भी 'फ़' की तरह छूना न चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

याद-दहानी :—

(१) पारः १० में शुरू होनेवाली नवीं सूरः सूरतुत्तौबः ही एक ऐसी सूरः है जो 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीमि' से शुरू नहीं है। देखिए फ़ुटनोट दूसरी जिल्द। इसके लिए हिदायत है कि अगर पिछली सूरः से बराबर पढ़ना जारी है तो यहां 'बिस्मिल्लाह' न पढ़ा जाय। और अगर इसी सूरः से पाठ शुरू किया जाय या सूरः का कुछ अंश पढ़कर किसी कारण से रुक जाय तो फिर 'बिस्मिल्लाह' से पाठ शुरू किया जाय।

(२) याद रहे अरबी ज़ुबान में 'याये' मझोल नहीं होती। मगर क़ुर्आन शरीफ़ में सिर्फ़ एक जगह पारः १२ सूरः हूद रुकूअ ४, आयत ४१ में एक लफ़्ज़ "मज्रीहा" लिखा है उसका उच्चारण मज्रीहा नहीं है "मज्रेहा" है।

(३) नीचे लिखी दोनों लफ़्ज़ों में जो 'स़' है इसमें (हफ़्स़) स्ाद (स़) के नज़दीक सीन (स) पढ़ना चाहिए:— युब्सुतु—पारः २ सूरः बक़र आयत २४५ पृ० २७४ में। बस्ततन्—पारः ८ सूरः अऱ्राफ़ि आयत ६९, दूसरी जिल्द में।

(४) नीचे लिखी दोनों लफ़्ज़ों में जो 'स़' है इनमें सीन (स) और स्ाद (स़) दोनों पढ़ने का इख़्तियार है:— हुमुल् मुस़ैतिरून—पारः २७ सूरः तूरि आयत ३७, छठी जिल्द में। बिमुस़ैतिरित्—पारः ३० सूरः ग़ाशियः आयत २२, छठी जिल्द में।

(५) क़ुत्बुजद्—क़, त, ब, ज और द के हलन्त अक्षर आने पर भी इनमें मामूली सा क़लक़लः (सस्वर जैसी हरकत) पढ़ना चाहिए। जैसे 'अिब्राहीम'। इसमें ब् को थोड़ा सा हिला कर उच्चारण करना चाहिए।

(६) अनुवाद में जो शब्द कोष्ठबद्ध ( ) है, वह मूल अरबी के शब्दों के हिन्दी अनुवाद में आशय (मफ़्हूम) को खुलासा करने के लिए क्षेपक हैं।

तिलावत क़ुर्आन मजीद के वक़्त रुमूज़ (विरामाविराम), अलामत (चिह्न) और हरकत (गति) व स्थिरता पर पूर्ण सावधानी से अमल करना चाहिए। क़ुर्आन मजीद में बीस मुक़ामात ऐसे हैं कि सही लिखा होने पर भी पढ़ने की ज़रा सी असावधानी से बिना जाने-समझे आज्ञाओं के विरुद्ध आचरण ग्रहण हो जाता है, और जान-बूझकर पढ़ने से महान दोष बल्कि कुफ़्र तक नौबत पहुँच जाती है। मगर लाअिल्मी (अनभिज्ञता) में माफ़ है, क्योंकि लाअिल्मी में और तालीम की अवस्था में अल्लाह की तरफ़ से माफ़ी है। नीचे वह तमाम मुक़ाम दर्ज किये जाते हैं; पाठक ध्यान रखें:—

सं०	सूरः	आयत	पृष्ठ	सही	ग़लत
१	सूरतुल्-फ़ातिहः (१)	४	४१	अिय्याक नऽ्बुदु	अियाक नऽ्बुदु (बिलातश्दीद)
२	,, ,, (१)	६	४१	अन्अम्त अलैहिम्	अन् अम्तु अलैहिम्
३	सूरः बक़रः (२) रुकूअ १५	१२४	१५२	अिब्राहीम रब्बुहू	अिब्राहीमु रब्बहू
४	,, ,, ,, ३३	२५१	२८०	क़तल दावूदु जालूत	क़तल दावूद जालूतु
५	,, ,, आयतल्कुर्सी ,, ३४	२५५	२८८	अल्लाहु ला अिलाह	आल्लाहु लाअिलाह (बिलामद)
६	,, ,, ,, ३६	२६१	३०२	वल्लाहु युज़ाअिफ़ु	वल्लाहु युआअफ़ु

क़ुर्आन शरीफ़ में वह मुक़ामात जिनमें अलिफ़् ज़ायद होने पर भी ख़ामोश है जिनका पढ़ना ज़रूरी नहीं है।

सं०	पारः	सूरः	रुकूअ	आयत	पृष्ठ	अरबी लिपि में	अरबी और नागरी में पढ़िये
१	तिल्करंसुलु (३)	(जुज़) आलि अिम्रान	१	१	३२२	अलिफ़् लाम् मीम् ला (१) अल्लाहु	अलिफ़् लाम् मीम् ला (१) ल्लाहु
२	लन्तनालू (४)	आलि अिम्रान	१५	१४४	३६६	अफ़ा अिम्मात	अफ़ अिम्मात
३	,, ,,	,, ,,	१७	१५८	४०६	ला अिलल्लाहि	ल अिलल्लाहि

'अना'—क़ुर्आन शरीफ़ मूल (मत्न) में जहाँ पर अलिफ़् सहित 'अना' लिखा हुआ है, जो ज़मीर (सर्वनाम) है, वहाँ नून (न) के साथ का आख़िरी अलिफ़् (ا) छोड़कर 'अन' पढ़ना चाहिए। पाठक वहाँ कोई निशान लगा लें ताकि उसे 'अन' पढ़ें न कि 'अना'। फिर ध्यान दिलाना ज़रूरी है कि 'अन' को हिन्दी-उर्दू के तर्ज़ पर 'अन्' न पढ़ें बल्कि अरबी-संस्कृत के तर्ज़ पर 'अ-न' सस्वर ही पढ़ें। लेकिन सूरत २५ आयत ४९ में 'अनासीय' में जो 'अना' है उसको 'अना' यानी अलिफ़् के साथ पढ़ना चाहिए, क्योंकि यह 'अना' ज़मीर (सर्वनाम) नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दी में इस्लामी ग्रन्थ

क़ुर्आन शरीफ़ हिन्दी सटीक (मुतर्जमः)—बीस साल की मुसलसल ख़िल्मी मिहनत के बाद तैयारकर्दः, नागरी रस्मुल्ख़त में आयतों के साथ, क़ुर्आन शरीफ़ छपकर अवाम की पेशेनज़र है। इसमें मिलते-जुलते हुरूफ़ मसलन् ज़ाल, ज़े, ज़ाद, ज़ो, वग़ैरः को अलाहदः मुमताज़ करते हुए रुमूज़ औक़ाफ़ (विरामाविराम चिह्न), आयत संख्या, वक़्फ़ नबी स०, व० मंज़िल, व० ग़ुफ़रान, वक़्फ़ लाज़िम, हर पारे के रुब्अ, निस्फ़, सुल्स, रुकूअ, सज्दः, मद्द, हम्ज़: साकिन, हम्ज़ए वस्ल, हम्ज़: ख़ामोश, मुआनक़ः, हर सफ़े पर आयत ख़त्म, शुमार मंज़िल, पारः और सूरः, ग़रज़ कि शास्त्रीय अरबी पद्धति पर इमकानी सूरत में सही तिलावत का पूरा इहतियात मुहय्या किया गया है। हिन्दी रस्मुल्ख़त में आयतें लिखने के साथ-साथ हर सफ़े पर अरबी ख़त में इन्तहाई सही ब्लाक भी देकर नक़्स की गुन्जाइश ही ख़त्म कर दी गई है। साथ-साथ आसान आमफ़हम ज़बान में मुस्तनद उर्दू तर्जुमों की बुनियाद पर, आलिमों की नज़रसानी के बाद, हिन्दी तर्जुमा व तफ़सीरी नोट्स को भी मत्न (मूलपाठ) के मुक़ाबिल दिया गया है।

हिन्दी रस्मुल्ख़त में क़ुर्आन शरीफ़ को पढ़ने-लिखने के क़वायद, तलफ़्फ़ुज़, इदग़ाम, वस्ल-फ़स्ल व अनेक याद-दहानियों का एक वसीअ चार्ट, और मज़ामीन की फ़िहरिस्तों ने हिन्दी में तरीक़े तिलावत को निहायत आसान कर दिया है। अलावा, मौलाना सय्यद अबुल हसन अली अल्हसनी अल्नदवी जनाब अली मियाँ साहब ने इस हिन्दी क़ुर्आन शरीफ़ पर 'पेशलफ़्ज़' लिख कर इस मिहनत को ज़ीनत बख़्शी है। काग़ज़ वग़ैरः की इन्तिहा महँगाई के बावजूद जदीद एडिशन का हद्यः महज़ ४६·००। डाक ख़र्च ७·५० अलाहदः।

क़ुर्आन शरीफ़ मुअर्रा (सिर्फ़ मूल)—ऊपर दी हुई रविश पर सम्पूर्ण क़ुर्आन शरीफ़ का सिर्फ़ मत्न (मूल पाठ)। हद्यः २३·००। पारः अम्म मअ क़ायदः २·००। पहला पारः हद्यः १·००।

क़ुर्आन शरीफ़ महज़ तर्जुमा—प्रामाणिक उर्दू अनुवादों के आधार पर—हद्यः २३·००।

क़ुर्आन शरीफ़ नागरी व अरबी रस्मुल्ख़तों में मअ तर्जुमः व **तफ़सीर माजिदी** अज़् मौलाना अब्दुल् माजिद साहिब दर्याबादी—

जिल्द अव्वल— १ से ५ पारः तक। हद्यः ४०·००।
आगे पारः ६ से ३० तक छापे जा रहे हैं।

ज़ादे सफ़र—(रियाज़ुस्सालिहीन) अरबी हदीस का प्रामाणिक अनुवाद (भु०वा०द्र०) १५·००।

अरब एक संक्षिप्त इतिहास—प्रो० हिट्टी हिन्दी अनुवाद, मूल्य १५·००।

जीवन चरित्र—पैग़म्बरे इस्लाम १·००; हज़्रत अबूबकर १·००; हज़्रत उमर १·००; हज़्रत उस्मान १·००; हज़्रत अली १·००।

क़ौरानिक कोश (लुग़ातुल्-क़ुर्आन)—[तिलावत (पठनक्रम) के सिल्सिले से] १०·००।

सहीहू बुख़ारी शरीफ़—कामिल हिन्दी में (सानुवाद सटिप्पण)— छः जिल्दों में (फ़ी जिल्द पाँच पारः)।

बेशबहा लुग़ात (कोश) जो छप रहे हैं :—

क़ौरानिक कोश—(रदीफ़वार—वर्णानुक्रम से)।

विश्वनागरी उर्दू-हिन्दी कोश—जिसमें अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी के आम फ़हम शब्द, उर्दू व हिन्दी—दोनों रस्मुल्ख़तों में देकर आसान मआने (अर्थ) दिये गये हैं। नागरी अक्षरों में भी ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़ाद; सीन, से, साद; छोटी हे, बड़ी हे; तो, ते वग़ैरः का प्रयोग करके हाजी-हाजी और अलीम-अलीम जैसे मुश्तबहुस्सौत (मिलते-जुलते) शब्दों के मआने में भ्रम पड़ने की गुन्जाइश ख़त्म की गई है।

लखनऊ किताबघर——'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तफ़सीर व तर्जुमः माजिदी

(क़ुर्आन शरीफ़)

१ सूरतुल्[१] - फ़ातिहति[२]

(मक्की[३]) इस सूरत में १ रुकूअ[४], ७ आयतें[५], २५ शब्द[६] और १२३ अक्षर[७] हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रह़्मानिर्रह़ीमि[८] ●

अल्ह़म्दु लिल्लाहि रब्बिल्-आलमीन ला (१)
अर्रह़्मानिर्रह़ीमि ला (२) मालिकि यौमिद्दीनि त (३)
अिय्याक नअ्बुदु व अिय्याक नस्तअीनु त (४)
अिह्दिनस्-सिरातल्मुस्तक़ीम ला (५) सिरातल्लज़ीन
अन्अम्त अलैहिम् ला ۵ (६) ग़ैरिल्-मग़्ज़ूबि ★ रु. १ आ ७
अलैहिम् वलज़्ज़ाल्लीन (७) ★

शुरू अल्लाह निहायत मेहरबान बार-बार रहमत करने-वाले के नाम से[८]।

(सारी) तारीफ़ अल्लाह[९] के लिए है[१०] (वह) जहानों का मुरब्बी[११] (१) (वह) रहमान[१२] (वह) रहीम[१३] (२) (वह) मालिक रोज़े जज़ा का[१४] (३) हम बस तेरी ही इबादत करते हैं[१५] और बस तुझी से मदद चाहते हैं[१६] (४) चला हमको सीधा रास्ता[१७] (५) उन लोगों का रास्ता जिन पर तूने इनआम किया[१८] (६) न वह लोग जो ज़ेरे ग़ज़ब आ चुके हैं[१९] और न जो भटके हुए हैं[२०] (७) ★ ★ रु. १ आ ७

१ सूरत का शाब्दिक अर्थ ऊँचाई या ऊँची मंज़िल के हैं। जिस तरह दुनिया की दूसरी किताबें विभिन्न अध्यायों में विभाजित होती हैं, क़ुर्आन के हर अध्याय को सूरत कहते हैं। इस प्रकार हर सूरत एक ऊँची मंज़िल का नाम है, और हर सूरत दूसरी सूरत से एक ऊँची मंज़िल की ओर से दूसरी ऊँची मंज़िल की ओर ले जाती है। सूरत के दूसरे माने शहरपनाह की दीवार के भी हैं। सूरए क़ुर्आनी को सूरा इसलिए भी कहा जाता है कि गोया वह शहर की चारदीवारी की तरह अपने विषय का घेरा किये हुए है। क़ुर्आन मजीद को विभिन्न सूरतों में रसूल उल्लाह सल्लअम स्वयं विभाजित एवं व्यवस्थित कर गये थे। आँ हुज़ूर ही (रसूल ही) के कथनानुसार एक सूरत शुरू की जाती थी और दूसरी खत्म! और जब कोई आयत आप पर उतरती थी तो आप फ़रमा देते थे कि इसको अमुक सूरत में लिख लो। हज़रत उस्मान का कहना है कि जब हुज़ूर पर कोई आयत उतरती थी तो आप फ़र्माते कि इसको अमुक सूरत में रखो। (जामे तिरमिज़ी तफ़्सीर सूरए बक़र) कुल क़ुर्आनी सूरतों की तादाद एक सौ चौदह है। (फ़ुटनोटों का सिलसिला अगले सफ़ों में जारी रहेगा।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२ फ़ातिहा के शाब्दिक अर्थ हैं आरम्भ करनेवाली के। क़ुर्आन मजीद की इस आरम्भ की सूरत को भी 'अल्फ़ातिहा' इसीलिए कहते हैं। यह गोया क़ुर्आन की भूमिका है। सूरतों के नाम भी रसूल सल्लअम के ही रखे हुए हैं। अक्सर एक-एक सूरत के कई-कई नाम भी बयान हुए हैं। इस फ़ातिहतुल् किताब के भी बहुत से नाम हदीसों में आये हैं। 'सूरतुश्शिफ़ा', 'सूरए वाक़िआ', 'उम्मुल् क़ुर्आन' आदि। क़रतबी ने बारह नाम गिनाये हैं। सबसे मशहूर नाम यही अल्फ़ातिहा है। सूरत की प्रशंसा में अनेकों हदीसें पाई जाती हैं। इसकी अहमियत इसी से ज़ाहिर है कि नमाज़ की हर रक्अत♦ में इसका पढ़ना वाजिब है। बल्कि शाफ़ईया (इमाम शाफ़ई के माननेवालों के लिए) की तो यह राय है कि यह फ़र्ज़ है। कोई नमाज़, बग़ैर क़ुर्आन के इस अंश के पूरी नहीं होती। एक हदीस में आया है कि शैतान चार मरतबा ख़ास तौर पर रोया-चिल्लाया है और उन चार में से एक मौक़ा वह है जब सूरए फ़ातिहा उतरी है। सूरए फ़ातिहा अगर्चे शक्ल के लिहाज़ से संक्षिप्त है, परन्तु अपने अर्थ एवं फैलाव के लिहाज़ से गोया गागर में सागर को बन्द कर दिया है। विरोध करनेवाले और ख़ुदा के वजूद एवं उसके अस्तित्व का इन्कार करनेवाले भी इस सूरत के कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक वर्णन करने के कमाल को तस्लीम करते हैं। इन्साक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में है— "हम्देबारी (ख़ुदा की तारीफ़) की यह महान आराधना······स्पष्ट एवं साफ़ इतनी कि और अधिक अर्थ बताने की आवश्यकता ही नहीं। इस पर सारगर्भित एवं अर्थ से परिपूर्ण विवरण (भाग १५ पृष्ठ ६०३, ग्यारहवाँ संस्करण) देखिये।"

३ सूरतों की सबसे अहम तक़्सीम वह है, जो 'हिजरत' (वह समय, जब रसूल सल्लअम ने मक्के की सुकूनत छोड़ दी और मदीना चले गये) को बीच का फ़ासला मानकर उसके पहले और उसके बाद के आधार पर की गई है। जो सूरतें हिजरत के पहले यानी रसूल सल्लअम के मक्का में रहने के ज़माने में उतरीं, चाहे वह मक्का के शहर की सीमाओं से बाहर ही उतरीं हों, मक्की कहलाती हैं; और जो सूरतें बाद हिजरत यानी मदीने में क़याम के ज़माने में उतरीं, वह मदनी कहलाईं; चाहे वह मदीना शहर के बाहर ही उतरी हों। लेकिन यह विभाजन साधारण रूप से है, वरना अक्सर ऐसा हुआ है कि रसूल सल्लअम ने मदनी सूरत के अन्दर मक्की आयतें रखा दी हैं या इसका उल्टा भी। विषय की मुनासिबत और पारस्परिक सम्बन्ध एवं स्थान का सही एवं सुन्दर ज्ञान रसूल सल्लअम से अधिक और किसको हो सकता था? इसलिए किसी निश्चित आयत के विषय में उसके मक्की या मदनी होने का फ़ैसला सही तौर पर करना कठिन है। जो कथन इस सम्बन्ध में मिलते हैं, वह शुद्ध सिलसिले तक नहीं पहुँचे हुए हैं। वह ज़्यादातर लाभप्रद आभास हैं, लाभप्रद विश्वास नहीं हैं। और इस प्रकार की अक़्ली एवं आभास पर आधारित मेयार जैसे 'ऐ ईमानवालो' से आरम्भ होनेवाली आयतें आवश्यक रूप से मदनी होंगी और 'ऐ लोगो' से शुरू होनेवाली लाज़िमी तौर पर 'मक्की', केवल क़यास पर आधारित हैं। इन्हें निश्चित नहीं कहा जा सकता और केवल इन कथनों एवं दृष्टिकोणों के अन्तर्गत किसी आयत पर विश्वासपूर्ण रूप से कोई निर्णय लेना सम्भव नहीं है। और इससे बढ़कर यह कि क़ुर्आन मजीद की किसी जदीद तरतीब पर उसे यह कहना कि इसी क्रम में यह उतरा है, बड़े साहस का काम है। असल में यह बला ईसाइयों के यहाँ से आई है कि उन्होंने अपने यहाँ की पुरानी तथा नई दोनों पुस्तकों को, जो न निकटतम प्रमाण के साथ पहुँची हैं न जिनके वर्णन करनेवालों का ही किसी को ज्ञान है और जो न अपनी असली भाषा में मौजूद हैं बल्कि केवल अनुवाद हैं, इस प्रकार की शुरू से आख़िर तक ख़याली बल्कि वहमी शोध का अभ्यासपट्ट बना रखा है और पश्चिम के मारे हुए मुसलमानों ने नादानी से यह ख़याल कर लिया है कि जैसे यह भी कोई बड़ी दलील ज्ञान, योग्यता एवं शोध की है।

४ सूरत के अन्दर की एक बड़ी तक़्सीम का नाम 'रुकूअ' है। बड़ी सूरतों में अक्सर दस-दस आयतों पर रक्खे गये हैं और इतनी मिक़्दार है, जो एक रक्अत में आसानी से पढ़ी जा सकती है। सूरए फ़ातिहा के अलावा पारा ३० की ३४ छोटी सूरतों में भी कुल एक ही एक रुकूअ है।

५ आयत का शाब्दिक अर्थ निशान है, नियमतः सूरत के अन्दर की सबसे छोटी तक़्सीम का नाम है। हर फ़िक़रा, जिसमें कोई हुक्म हो या एक पूरी इबारत हो, एक आयत है। क़ुर्आन मजीद की कुल आयतें गिन डाली गई हैं और उनका जोड़ असह के अनुसार ६६१६ है (अतक़ान)।

६ क़ुर्आन मजीद के शब्दों को भी गिन लिया गया है और उनका जोड़ असह के अनुसार ७७६३४ है (अतक़ान)।

७ कुल हुरूफ़ क़ुर्आनी भी गिन डाले गये हैं और उनका जोड़ असह के अनुसार ३२३७६० है (अतक़ान)। अल्लाह-अल्लाह! कलामे इलाही के आशिक़ कैसा-कैसा परिश्रम इसके वास्ते कर गये हैं।

♦ नमाज़ में एक क़याम (खड़ा होना) एक रुकूअ और दो सज्दों में झुकना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८ क़ुर्आन मजीद का यह प्रारम्भिक फ़िक़रा सिवाय एक सूरत के, हर सूरत के आरम्भ में दोहरायां गया है यानी ११३ बार और सूरे अल्नम्ल के अन्दर इबारत में क़ुर्आनी आयत के रूप में भी आया है और इसीलिए इसके क़ुर्आन का अंश होने या न होने की बाबत तो कोई सवाल ही नहीं पैदा होता। अलबत्ता यह बात हुई है कि आया हर सूरत के आरम्भ में भी इसकी हैसियत एक स्थायी आयत के रूप में है? इमाम अबू हनीफ़ा का मज़हब है कि नहीं है, बल्कि यह सूरतों के बीच केवल एक अलामत या चिह्न के अन्तर या पहचान के और हर सूरत के आरम्भ में एक आरम्भिक फ़िक़रे के रूप में है। इमाम मालिक भी इसी मत के हैं। इस पर सम्पूर्ण रूप से बहस हसास राज़ी हनफ़ी की अहकामुल् क़ुर्आन में मौजूद है। हर काम की शुरूआत बिस्मिल्लाह से करने की बड़ी बड़ाई हदीस में आई है। और ख़ुद रसूल सल्लअम की आदते मुबारक यही थी कि खाना खाते, पानी पीते, जानवर ज़िबह करते, ग़रज़ इस क़िस्म के सारे कामों की शुरूआत बिस्मिल्लाह ही से करते थे। और है भी यही कि जो शख़्स किसी काम को ख़ुदाए रहमान व रहीम का नाम लेकर शुरू करता है, वह अपनी अक़्ल से इस बात का एलान करता है कि मेरी अन्तरात्मा पाक एवं शुद्ध है, मेरी नीयत स्वच्छ है, मेरा मक़सद ऊँचा है, और मैं तौहीद का उपासक हूँ। एक तरफ़ शिर्क से (अल्लाह के साथ किसी अन्य को सम्मिलित करना), दूसरी तरफ़ इलहाद (नास्तिक होना) से ख़ुद को अलग रखना। अर्थात् बिस्मिल्लाह से बढ़कर शक्तिवर्धक और इससे अधिक आत्मा एवं व्यौहार को ऊँचाई प्रदान करनेवाली आराधना और कोई नहीं। नियमों की यह बहसें जो कुछ भी हों, बहरहाल पढ़नेवाला गोया यह कहता है कि मैं शुरू करता हूँ इस कलाम को अल्लाह के नाम से मदद चाहते हुए और यह कहकर कि बिस्मिल्लाह पढ़नेवाला गोया अपनी और सबकी तरफ़ से हटकर अल्लाह की ज़ात पर और उसकी दया एवं उसके ही गुणों पर सम्पूर्ण रूप से भरोसा कर लेता है।

९ 'अल्लाह' ख़ुदा के लिए 'इस्में ज़ात है' किसी और हस्ती से इसका अर्थ लिया ही नहीं जा सकता। फ़ारसी के 'ख़ुदा' या अंग्रेज़ी के 'गाड' की तरह इस्में नकिरः♦ नहीं कि माबूदे वाहिद (केवल एक ख़ुदा जिसकी आराधना की जाये) के अलावा दूसरों के लिए भी बोला जा सके। इसका न बहुवचन आया है, न स्त्रीलिंग, न यह किसी शब्द से बना है और न इसका अनुवाद किसी दूसरी भाषा में होना सम्भव है। रहमान का सही अनुवाद कठिन है। मस्दर रहमत से बढ़ाकर बयान करना है, जिससे अधिक होने की सम्भावना ही न हो। इस्में ज़ात अल्लाह की तरह इस्में सिफ़त* रहमान से भी ख़ुदा की ही ज़ात समझा जाता है। यह बात इत्तिफ़ाक़ी नहीं, बहुत सारगर्भित है कि क़ुर्आन मजीद में इस्में ज़ात के बाद जो सबसे पहला इस्में सिफ़ाती बयान हुआ है, वह सिफ़ते रहमानियत (दयालुता) को ज़ाहिर करता है। लेन पूल (Lane pool) अंग्रेज़ इसीलिए अपनी क़ौम को सुनाकर कहता है कि "लोग यह बात बराबर भूल जाते हैं कि क़ुर्आन के अन्दर रहमत यानी दयालुता के गुण पर कितना ज़ोर दिया गया है" गोया रहमत व शफ़क़त यानी दयालुता एवं स्नेह की अधिक से अधिक शक्ति का परिचय 'रहमान' से मिलता है और अत्यन्त बड़ी संख्या एवं अधिकता का परिचय 'रहीम' से। इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए 'रहमान' का अनुवाद "बहुत दया करनेवाले" और 'रहीम' का अनुवाद "बार-बार रहम करनेवाले" किया गया है। 'रहमान' में कृपा की शान सबके लिए है चाहे मोमिन हो या काफ़िर और इसीलिए इसको इसी दुनिया में देखा जा रहा है। 'रहीम' में उसकी दयालुता और क्षमा करने के गुण की विशेषता है ईमानवालों के साथ। इसलिए इसको सम्पूर्ण रूप से आख़िरत (मरने के बाद वाले ज़माने) में ही देखा जा सकेगा। और इसी माने में यह हदीस 'सही मुस्लिम' सहाबी इब्ने मसअद के द्वारा आई है। और इसी माने में जाफ़र सादिक़ का कथन भी बयान हुआ है। सूफ़ियाना मज़ाक़ पर एक स्पष्टीकरण यह भी हुआ है कि रहमानियत वह तरबियत है, जो साधनों और सम्बन्धों के साथ हो और रहीमियत वह तरबियत है, जो बराह रास्त अर्थात सीधे और बिना सम्बन्ध के हो। रहमानियत वह स्नेह है, जो एक हकीम अपने रोगी के साथ रखता है और 'रहीमियत' ख़ालिस स्नेह है (रूह)। इस्लाम के इस ख़ालिस या शुद्ध तौहीदी कलमे के मुक़ाबले में अब मसीहियत का आरम्भिक फ़िक़रा देखें— "शुरू बाप-बेटे और रूहुल् क़ुदुस के नाम से" इस खुली हुई शिर्क की बात (ख़ुदा के साथ दूसरों को शरीक करने) से इस्लाम की शुद्ध तौहीद को वज़न करें। इस गुनहगार लिखनेवाले के विचार में यह बात आती है कि अजब नहीं जो ख़ालिक़े अकबर की यही सिफ़तें रहमानियत तथा रहीमियत की बिगड़कर मसीहियत में बेटा और रूहुल् क़ुदुस बन गई हों।

१० अल्हम्दु में 'अल्' कलमए इस्तिग़राक़ है यानी सम्पूर्ण प्रशंसा (हम्द) कोई सी भी हो, किसी प्रकार की भी हो और ज़ाहिर में किसी के लिए भी हो। हम्द का दर्जा शब्दकोष के एतबार से तारीफ़ और आकार दोनों से ऊँचा है। शुक्र तो किसी विशेष नेमत के मुक़ाबिले में बोला जाता है और मदह यानी

♦ जातिवाचक संज्ञा * गुण।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तारीफ़ में गुणों का इरादे से तथा विकल्प से होना ज़रूरी नहीं। केवल हम्द ही ऐसी चीज़ है, जो महमूद (जिसकी तारीफ़ की जाये) की आम वैकल्पिक बड़ाइयों और अच्छाइयों के आधार पर की जाती है। गोया क़ुर्आन मजीद की सबसे पहली शिक्षा ख़ुदा को एक मानने की सभी क़िस्मों पर हावी है। मदह और तारीफ़ किसी की भी हो, किसी भी नाम से हो, सिर्फ़ अल्लाह की होती है और उसी को पहुँचती है। और यही मानी हैं उस हदीसे नबवी के भी कि हाकिम अगर आदिल है तो उसके मानी यह हैं कि अल्लाह ने इन्साफ़ की सिफ़त उसके अन्दर रख दी है; हकीम अगर अच्छा है तो उसकी हक़ीक़त केवल इतनी है कि अल्लाह ने उसे यह कमाल दे दिया है। कोई सुन्दर शक्ल रखता है, किसी का चरित्र स्वच्छ है; तो हर मौक़े पर आराधना, तारीफ़ और प्रशंसा का अधिकारी केवल अल्लाह है, जिसने वह ख़ूबसूरती और कमाल प्रदान किया है। हम कहीं भी सिज्दः करें, चौखट उसी की होती है और सिज्दः वहीं पहुँचता है।

११ रब जो यहाँ संज्ञा के रूप में प्रयोग हुआ है वह एक अंश है, जिसका अर्थ है 'प्रशिक्षण' और 'प्रशिक्षण' के मानी हैं किसी वस्तु को एक हालत से दूसरी हालत की तरफ़ उन्नति देना, यहाँ तक कि वह कमाल की सीमा को पहुँच जाये। उर्दू में इसका अर्थ पालनहार भी सही है, लेकिन निकटतम शब्द इस अर्थ के लिए 'पालनेवाला' है और मौलाना थानवी ने यही अर्थ लिया है। 'प्रोन्नति' के जिस नियम पर यूरोप वालों को बड़ा गर्व है, ज़रा ख़याल किया जाये तो मालूम होगा कि उसका सम्पूर्ण अर्थ, शब्द 'रब' में आ गया है। रूबूबियत का अर्थ है, किसी वस्तु को दरजा-ब-दरजा धीरे-धीरे कमाल की सीमा तक पहुँचाना। यही प्रोन्नति है। यहाँ उसी वास्तविक नियम से अर्थ लिया गया है, न कि 'डारविन' आदि के द्वारा बयान किये हुए क़ायदे तथा नियम। अरबी में इससे बिना किसी परिवर्तन के केवल 'अल्लाह' का ही अर्थ निकलता है। बिस्मिल्लाह से अगर दृष्टि हटा ली जाये, तो क़ुर्आन के मतन में सबसे पहले अल्लाह की सिफ़ते रूबूबियत ही प्रकट होती है; गोया यह सिफ़त सब सिफ़तों का स्रोत है और आगे जितने भी अल्लाह के नाम आयेंगे, सबके अर्थों का उद्देश्य रूबूबियत के ही अन्तर्गत होगा और मसीहियों के आस्मानी बाप से कहीं ज़्यादा स्नेह, कहीं ज़्यादा शक्ति और क़ुदरत और कहीं ज़्यादा हिक्मत शब्द 'रब' से ज़ाहिर होती है। **आलमीन**— आलम का लफ़्ज़ स्वयं बहुवचन की संज्ञा है। कोई इसका एक वचन नहीं आता और इसका अर्थ है ब्रह्माण्ड या मौजूदात अर्थात् सृष्टि। आलमून यदि बहुवचन हो तो उसका अर्थ है, सृष्टि की हर क़िस्म तथा ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण सिलसिला। और अब इस ज़मीन के गोले के अलावा जिससे हम परिचित हैं, जितने भी आलम 'चन्द्रमा', 'मंगल गृह' आदि की जानकारी होती जायेगी, सब इसी क़ुर्आनी अर्थ के अन्तर्गत आते जायेंगे। **रब्बिल् आलमीन** का शब्द लाकर क़ुर्आन मजीद ने गोया बता दिया कि प्रत्येक क़िस्म, जो इस ब्रह्माण्ड में अपना एक अस्तित्व रखती है, उसकी एक स्थायी व्यवस्था है और सबका आख़िरी सिरा उसी सर्वशक्तिशाली, अकेले एवं यकता (अद्वैत) अल्लाह के हाथ में है। ब्रह्माण्ड की कोई भी क़िस्म, कोई भी अस्तित्व, उसकी पकड़ और उसकी रूबूबियत एवं प्रशिक्षण से आज़ाद तथा पृथक् नहीं है। यह शिक्षा भी इसी एक शब्द से मिल गई कि इस्लाम का ख़ुदा किसी विशेष नस्ल, विशेष क़ौम या क़बीले का ख़ुदा नहीं है —यह सच्चाई मज़हबों के इतिहास में बड़ा महत्व रखती है। इस्लाम के पहले मज़हब जिस सूरत में मौजूद थे, वह इस विचार की विशालता से अनविज्ञ थे। हर क़ौम ख़ुदा को केवल अपना ख़ुदा मानती थी। गोया ख़ुदा की हैसियत केवल क़ौमी ख़ुदा की रह गई थी। बाबुल, मिस्र, हिन्द, यूनान, अरब आदि मुल्कों की 'मुश्रिक' (जो ख़ुदा की ज़ात के साथ दूसरों को सम्मिलित करें) क़ौमों का ज़िक्र नहीं। बनी इसराईल जैसी एक ख़ुदा को माननेवाली क़ौम भी ख़ुदा की इस शक्ति के माननेवाले नहीं थे कि वही सृष्टि की रचना करनेवाला है। क़ुर्आन ने एक शब्द **'रब्बिल् आलमीन'** लाकर इन सारे मुश्रिकाना और गुमराहाना अक़ीदों एवं मान्यताओं का खंडन कर दिया। मुश्रिक क़ौमों की सबसे ज़्यादा ठोकर 'सिफ़ते रूबूबियत' के समझने में लगी है। इसीलिए क़ुर्आन ने शुद्धता करने में उसी को प्रथम स्थान दिया। आलिमों के एक गरोह ने कहा है कि कलमा **'अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन'** तमाम कलमों से बढ़कर है, यहाँ तक कि 'ला इलाह इल्लल्लाह' से भी। इसलिए कि इसमें केवल तौहीद (एक होना) और उसमें तौहीद के साथ आराधना और हम्द भी है (क़रतबी)।

१२ (जो दुनिया में सबको रोज़ी पहुँचा रहा है, सबको राहत दे रहा है, लाभ का रास्ता सबके लिए खोले हुए है)। हाशिया ९ भी देखिये।

१३ [जो आख़िरत (मरने के बाद की दुनिया) में ईमान लानेवालों को उनके हक़ से ज़्यादा उनको बदला देगा।] सिफ़तों के बयान में रूबूबियत की सिफ़त को सबसे पहले लाना और उसके तुरन्त बाद रहमानियत और रहीमियत की सिफ़तों पर बल देना ख़ुद इस बात का खुला हुआ सुबूत है कि इस्लाम के अक़ीदों में इन सिफ़तों का दर्जा कितना ऊँचा है और इनका मरतबा कितना अहम है। इस स्पष्टता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होते हुए और इसके बार-बार कहते रहने के बावजूद मसीही पादरियों का यह कहे जाना कि इस्लाम का ख़ुदा केवल शक्ति और क्रोध एवं तबाही का ख़ुदा है, सच्चाई पर कैसा अत्याचार करने के बराबर है।

१४ **मालिकि**— हाकिम या क़ाज़ी चाहे कैसे ही बड़े अधिकार रखता हो, बहरहाल उसके अधिकार सीमित ही होते हैं और वह अपराधी को नियमों के अन्तर्गत रहकर ही सज़ा देने पर मजबूर होता है। इसके माने यह हुए कि हाकिम पर नियम और क़ानून की हुकूमत होती है। इसके बरखिलाफ़ मालिक वह होता है, जिसे सम्पूर्ण अधिकार होते हैं; वह अपराधी को चाहे क्षमा कर दे, चाहे सज़ा दे। कोई उससे पूछ-गछ करनेवाला नहीं होता और न कोई उस पर हुक्म चला सकता है। हदीसे-मुस्लिम में आ चुका है कि अल्लाह तआला के सिवा कोई भी मालिक नहीं है। और शोध करनेवालों का भी वर्णन यही है कि अल्लाह के अतिरिक्त और किसी को मालिक कहना या पुकारना जायज़ नहीं। इस शब्द का फ़ारसी अनुवाद भी इसीलिए सुफ़्यान ताबेई ने 'सम्राट' किया है। और तफ़्सीर करनेवालों ने भी इसका अर्थ सम्पूर्ण अधिकारों का मालिक बताया है। हिन्दुस्तान की कुछ मशहूर मुश्रिक क़ौमों का अक़ीदा है कि कर्म के क़ानून तथा नियम के विरुद्ध ख़ुदा भी नहीं जा सकता और किसी ख़तावार को क्षमा नहीं कर सकता। मसीहियों का भी अक़ीदा है कि ख़ुदा इन्साफ़ करने पर मजबूर है और इसीलिए क्षमा करने एवं दया करने की सिफ़त को ज़ाहिर करने के लिए उसे अपने इकलौते 'बेटे' को प्रायश्चित्त के रूप में सभी गुनहगार व्यक्तियों के लिए पेश करना पड़ा। क़ुर्आन मजीद के एक शब्द **'मालिक'** में इन सब ग़लत अक़ीदों का खंडन हो गया। उसे सम्पूर्ण अधिकार है कि जिस अपराधी को चाहे सज़ा दे और जिसको चाहे सिफ़ारिश या बिना सिफ़ारिश के बिल्कुल ही माफ़ कर दे। **यौमिद्दीन**— दीन के माने शब्दकोष में बहुत आते हैं और क़यामत को भी रोज़े जज़ा इसीलिए कहते हैं कि वह पूरे हिसाब और हर अमल के बदले का दिन होगा। यहाँ भी यौमिद्दीन का अर्थ रोज़े हश्र है। अल्लाह तआला मालिक तो आज भी है। रोज़े जज़ा के साथ विशेषता का अर्थ यह है कि उस रोज़ उसकी मालिक होने की सिफ़त का अन्दाज़ा और उसकी सच्चाई को देखने का अवसर बड़े-बड़े इन्कार करनेवालों को भी होकर रहेगा। इब्ने क़य्युम ने कहा कि सूरत में पाँच नाम अल्लाह के आये हैं। और पाँचों का अर्थ अलग-अलग बताया है। सारांश यह है कि संज्ञा अल्लाह उसकी शान और उसके सौन्दर्य के अर्थ से परिपूर्ण है और इसके अन्दर संक्षेप में वह सब कुछ आ गया है, जिसको फैलाकर उसके अन्य सभी नामों में बयान किया गया है। और संज्ञा 'अर्रब' के अन्तर्गत उसकी सारी सिफ़तें, कार्य एवं शक्ति, लाभ एवं हानि, वरदान एवं वंचित करना इत्यादि आ जाती हैं। और संज्ञा **'अर्रह्मान'** के अन्तर्गत उसकी कृपा एवं मेहरबानी, उसकी बख़्शिश और दया और उसका स्नेह एवं प्यार आ जाते हैं। और संज्ञा **अर्रहीम** का अर्थ है, अपने बन्दों पर रहम करनेवाला और संज्ञा मालिक के अन्तर्गत सिफ़तें इन्साफ़, बदला एवं सज़ा, इज़्ज़त देना या ज़लील करना इत्यादि आ जाती हैं।

१५ (न कि किसी और की, ए अल्लाह !) **इय्याक**— शब्द इय्या ख़ुद विशेषता एवं सीमित करने के लिए प्रयोग होता है और फिर कर्म के रूप में इसके पूर्व प्रयोग से **'नअ्बुदु'** की कृपा पर इसकी विशेषता एवं बल होने से और ताकीद हो जाती है। यानी हम तेरी इबादत में किसी की शिरकत या किसी के सम्बन्ध का लेशमात्र सन्देह नहीं रखते। कर्म का यह पूर्व प्रयोग सही है। इसके विपरीत यदि कृपा को महत्व देकर प्रयोग करें यानी **'नअ्बुदु इय्याक'** की तरकीब का इस्तेमाल उचित नहीं है। अब यहाँ से प्रार्थना एवं दुआ की शिक्षा दी गई है, गोया बन्दे अपनी ज़ुबान से दुआ कर रहे हैं। इससे पहले केवल दुआ की तम्हीद थी। अनुपस्थित से उपस्थित की ओर या मुख़ातिब से ग़ायब की तरफ़ यकायक परिवर्तन करने का नाम अरबी लेख में कोई बुराई की बात नहीं। इसे एक अच्छाई समझा जाता है। कश्शाफ़ के लेखक ने इस मौक़े पर उदाहरणार्थ उमराउल्क़ैस जाहिली के तीन शेर नक़ल किये हैं। तीनों में यह गुण मौजूद है। प्रस्तावना में यह बात आ चुकी है कि किसी साहित्यिक लेख की सुन्दरता की जाँच और परख के लिए स्वयं उस भाषा के साहित्य का स्तर सामने होना आवश्यक है न कि किसी दूसरे के साहित्यिक स्तर का। अरबी के लेखों की सुन्दरता की जाँच उसी भाषा के साहित्यिक नियमों से जाँची जा सकती है न कि उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, हिन्दी, चीनी, जापानी, किसी और भाषा के स्तर से। बुज़ुर्गों ने कहा है कि क़ुर्आन मजीद का सारांश **'सूरए फ़ातिहा'** है और **सूरए फ़ातिहा** का सारांश यह आयत है। **नअ्बुदु**— इबादत नाम है स्वयं को तुच्छ समझने, विनम्रता तथा ख़ुद को नाचीज़ और कम से कम समझने की अन्तिम श्रेणी का। और इसीलिए इसका हक़दार अल्लाह की ज़ात के अलावा और कोई नहीं। मुश्रिक क़ौमें ख़ुदा न मालूम छोटे-बड़े कितने देवी-देवताओं को इबादत में शरीक करती रहती हैं। बल्कि उनकी इबादतों में तो ख़ुदा की शिरकत रहने भी नहीं पाती। माबूद सभी अग्नि देवता,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूर्य देवता, काली माई और लक्ष्मीजी इत्यादि बन जाती हैं। मसीहियों के यहाँ नमाज़, जैसी और जब कभी भी होती है, उसमें बराबर ख़ुदा के साथ ख़ुदा के बेटे की शिरकत रहती है (अंग्रेज़ी तफ़्सीर कृपया देखें)। आयत के एक शब्द **'इय्याक'** से सारे धर्मों के मुश्रिकाना इबादत के तर्ज़ की काट हो जाती है। **'नऽबुदु'** का बहुवचन भी ध्यान में रहना चाहिए। दुआ एक अकेला व्यक्ति नहीं कर रहा है। सारा इस्लामी-समूह एक साथ मिलकर सामूहिक रूप में दुआ कर रहा है और इस सामूहिक अन्दाज़ की झलक क़ुर्आन तथा हदीस दोनों की दुआओं में दिखाई देगी। पीरो मुर्शिद मौलाना थानवी ने कहा है कि बन्दगी का यह सम्बन्ध बन्दे के मुक़ाम एवं स्थान की हद है। कोई स्थान इससे बढ़कर नहीं हो सकता।

१६ (न किसी और से, उसे आवश्यकताओं का पूरा करनेवाला समझकर ऐ अल्लाह) आयत के प्रथम अंश में 'शिर्क' से अलाहदगी और उससे स्वयं को दूर रखना पाया जाता है (शिर्क— अर्थात् अल्लाह की ज़ात में अन्य को सम्मिलित करना) और इस अन्तिम अंश में बन्दे की ज़ुबान से इक़रार है अपनी तुच्छता का और अपनी निर्बलता एवं अपने को कम क़ीमत और दीन-हीन मानने का और अपने को सहायता, सुरक्षा एवं मदद हेतु अल्लाह के हाथ में सुपुर्द करने का। **'नऽबुदु'** के तुरन्त बाद **'नस्तईन'** लाना, गोया बन्दों की ज़ुबान से यह कहलाना है कि हम इबादत तक में तेरी ही सहायता, साहस देने और तेरी ही कृपा के मुहताज हैं। **'इय्याक'** का दुबारा प्रयोग तौहीद (अद्वैत) और शिर्क की काट करने की अहमियत को दुबाला कर रहा है। **'नऽबुदु'** का सम्बन्ध अल्लाह की बड़ाई, उसकी बरतरी और बुज़ुर्गी से है और **'नस्तईन'** का रबूबियत अर्थात् पालनेवाले की सिफ़त से सम्बन्ध है। इस आयत ने हर प्रकार की मख़्लूक़ अर्थात् दुनियावी चीज़ों और दुनिया में दिखाई देनेवाली शक्तिशाली हस्तियों तथा जानदारों की पूजा करने से क़तई रोक दिया। शिर्क की छोटी से छोटी राहें बन्द कर दीं और कोई मामूली-सा रास्ता पीर-परस्ती, पयम्बर-परस्ती, फ़रिश्ता-परस्ती आदि को बाक़ी नहीं छोड़ा। मौलाना थानवी ने कहा है कि बन्दे का स्थान **'इय्याक नऽबुदु'** पर समाप्त हो जाता है। **'इय्याक नस्तईन'** से वह ख़ुदा की बारगाह में प्रवेश पाने एवं उसके निकट पहुँचने की भीख माँगता है।

१७ यानी वह राह जिसमें कोई टेढ़ापन नहीं, कोई ऊँच-नीच नहीं, कहीं ठोकर लगने का भय नहीं। इसका अर्थ 'शरीअ़त' की राह है क्योंकि यही जीवन की परिपूर्ण, मुकम्मल एवं सही व्यवस्था है। जीवन के हर कोण, हर विभाग और हर मोड़ के लिए यह एक मुकम्मल विधान है और इसी पर चलते रहने में, व्यक्ति एवं समूह दोनों के हक़ में दुनिया एवं मृत्यु के बाद वाली ज़िन्दगी में दोनों जगह बेहतरी ही बेहतरी एवं भलाई ही भलाई है। 'सहाबा' (रसूल सल्लअम के साथियों) एवं ताबेईन (जिन्होंने सहाब के बाद उनकी राह अख़्तियार की) ने ऐसा ही कहा है। **'इह्दिना'** यह गोया बन्दों की ज़ुबान से प्रार्थना है कि ऐ हमारे हादी अर्थात् हमें सही राह दिखानेवाले और ऐ सच्चाई का रास्ता बतानेवाले! अपना सीधा रास्ता हम पर खोल दे। उस पर चलने का हमको हौसिला दे और अपनी कृपा एवं स्नेह को हमारा सँभालनेवाला रख। सही राह के लिए यही दो तरीक़े हैं। एक यह कि पथिक भटका हुआ है और वह रास्ता ज्ञात करना चाहता है। वह राह पूछ रहा है। दूसरे यह कि राह तो मिल चुकी है, अतः प्रार्थना यह है कि उसी पर अडिग रहे। यहाँ इसी दूसरी प्रकार की सहायता मानी गई है। जो पूर्व ही से सही रास्ता पा गये हैं, उनकी ओर से यह निवेदन है कि वह उस पर जमे रहें और अधिक सीख मिलती रहे। और चूँकि आध्यात्मिक (रूहानी) उन्नति की कोई सीमा नहीं होती, इस कारण जो जिस स्थान पर पहुँचा हुआ है उसकी प्रार्थना यही होती है कि उससे भी ऊँचे स्थान की ओर तरक़्क़ी पाये और उससे भी उसका दर्जा ऊँचा हो जाये। और मोमिन (ईमान लानेवाला) की तृष्णा एवं प्यास और अधिक हिदायत एवं सीख तथा ज्ञानार्जन की कमी बुझती नहीं। यह आपत्ति बड़ी बचकाना है कि हिदायत पाये हुए को हिदायत एवं सीख की प्रार्थना की आवश्यकता नहीं। **नऽबुदु, नस्तईन, इह्दिना,** सबमें सम्बोधन करनेवाले सर्वनाम का प्रयोग बहुत सारगर्भित है, चाहे बन्दगी का प्रदर्शन करनेवाला अकेला ही व्यक्ति क्यों न हो। इसमें यह शिक्षा भी आ गई कि व्यक्ति का सम्पर्क उम्मत (समूह एक मत का) से किसी दशा में न छूटने पाये। **'सिरात'** इसका अर्थ शाह-राह और आम रास्ते का है, केवल गली या गुज़रगाह नहीं है। **इबादत** करते हैं तो एक 'मैं' नहीं बल्कि 'हम सब', सहायता माँगते हैं तो 'हम सब', हिदायत तथा सीख चाहते हैं तो 'हम सब'। उम्मत तथा मिल्लत की यह हर समय की सामूहिकता तथा एकता की भारी इच्छा केवल इस्लाम की ही विशेषता है। मौलाना थानवी ने कहा है कि **सिराते मुस्तक़ीम** अर्थात् सीधे रास्ते का अर्थ शरीअ़त का रास्ता है न कि विश्व का आम रास्ता, जिस पर अल्लाह की बनाई हुई हर चीज़ चलती है; चाहे वह जानवर हो या मनुष्य, पक्षी हों या चन्द्रमा एवं सूर्य, दरिया हों या पहाड़।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८ (बारवें हिदायत में) यह उसी सीधे रास्ते या **सिरातॆ मुस्तक़ीम** की शिक्षा का और स्पष्टीकरण है। शिक्षा और सीख तो सारी की सारी क़ुर्आन मजीद के शब्दों और उसकी इबादत में आ गईं, लेकिन अल्लाह् की मर्ज़ी और कृपा एवं स्नेह यह अधिक हुआ कि इन शिक्षाओं एवं सीखों के क्रियात्मक नमूने मनुष्य के रूप में और उन्हीं की शक्लों-सूरत में भारी तादाद में भेज दिये ताकि इस सीधे रास्ते पर चलना आसान हो जाये। यह इनआम पाये हुए लोग नबी और रसूल हैं। उनकी ज़िन्दगी के हालात तथा उनकी जीवन-घटनाएँ क़ुर्आन मजीद में बहुत अधिक बयान हुई हैं और उनमें भी विशेष रूप से इस पाकीज़ा तथा पवित्र समूह के सबसे पवित्र एवं पाकीज़ सरदार मुहम्मद रसूल उल्लाह सल्लअम हैं। उनकी पवित्र चरित्रिका (सीरत) का एक-एक भाग एवं अंश सुरक्षित है। फिर इसके बाद आपके जो सहयोगी और सही नायब तथा सहायक आपके तुरन्त बाद हुए हैं और हर ज़माने में होते आये हैं, यानी औलियाये उम्मत, सिद्दीक़ीन (सच्चे लोग) या शहीद, जो सच्चाई की राह में शहीद हो गये और दूसरे सिद्धि पाये हुए लोग, क्योंकि यह भी अपने-अपने दर्जे में नमूने का काम अपने बाद आनेवालों के लिए दे सकते हैं। **'अन्अ़म्त अ़लैहिम्'** के शब्द से इमाम इब्ने ज़दीद ने यह नुक्ता निकाला है कि जिन लोगों को यह मरतबा नसीब हुआ है, उसकी तह में अस्ल वस्तु केवल अल्लाह् का इनआम और उसकी कृपा है। अभी सीधे रास्ते के लिए प्रार्थना हो चुकी थी। अब उसकी और अधिक तश्रीह यानी स्पष्टीकरण करके गोया यह संकेत भी कर दिया कि वह सीधा रास्ता कोई फ़र्ज़ी, खयाली (काल्पनिक) एवं वहमी वस्तु नहीं है, बल्कि वह ऐसी राह है जिस पर अल्लाह् के बन्दे अब तक चल भी चुके हैं और कामयाब हो चुके हैं और इसमें बड़ा सन्तोष एवं तस्कीन नये चलनेवालों के लिए है। **'सिरातल्लज़ीन अन्अ़म्त अ़लैहिम्'** पर ख़ूब ध्यान दिया जाये। केवल सीधे रास्ते की तालीम अकेली काफ़ी न होती, इसीलिए निश्चित रूप में इनआम पाये हुए हुओं की निश्चित मिसाल दी गई। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि दीन (धर्म) केवल किताब पर अमल का नहीं, बल्कि किताब लानेवाले की सुन्नत एवं तरीक़ों की पैरवी तथा अनुसरण भी लाज़िमी है। व्यक्तियों, पवित्र एवं फ़रिश्तों जैसी स्वच्छता रखनेवालों की पैरवी करना और उनके पद-चिह्नों पर चलना आवश्यक है। इब्ने क़ुय्यम ने सवाल उठाया है कि अल्लाह् की नेमत क्या काफ़िरों के नसीब में भी आती है या केवल ईमानवालों के? फिर स्वयं जवाब दिया है कि ख़ालिस नेमत तो केवल ईमानवालों का ही हिस्सा है और वह अस्थायी भलाई की बात होती है। हाँ, आम नेमत में काफ़िर तथा मोमिन, सभी शरीक होते हैं। मौलाना थानवी ने कहा है कि **'अल्लज़ीन अन्अ़म्त अ़लैहिम्'** से इशारा इस तरफ़ हो गया कि सीधा रास्ता नसीब नहीं होता बिना इसके कि अनुसरण किया जाये उन लोगों का, जो सीधे रास्ते पर चले हैं और इसलिए केवल किताबों के पन्ने काफ़ी नहीं हैं।

१९ (अपनी जान-बूझकर कजरवी के कारण अर्थात् जान-बूझकर ग़लत राहों पर चलने के कारण) **'ग़ैरिल् मग़्ज़ूबि अ़लैहिम्'** में केवल इशारा है, ऐसे व्यक्तियों की ओर जिन पर ग़ज़ब हुआ। यह एक अरबी बातचीत का सुन्दर अन्दाज़ है। दूसरा अनुवाद, जो बिल्कुल साफ़ और स्पष्ट है वह, वह है जो यहाँ अपनाया गया। "ज़ेरे ग़ज़ब" का अर्थ अल्लाह् का ग़ज़ब है। अल्लाह के इनआम का वर्णन ऊपर हो चुका है। यहाँ ग़ज़ब के मौक़े पर कर्म को स्पष्ट किया है, कर्ता को छुपा दिया है। यह अल्लाह की रहमत और उसकी कृपा पर बल देने का कारण है। अल्लाह् के ग़ज़ब का वर्णन अगली आस्मानी पुस्तकों इंजील तथा तौरेत में भी स्पष्ट रूप में हो चुका है। तौरेत में है कि "अब तू मुझको छोड़ कि मेरा ग़ज़ब उन पर भड़के और मैं उन्हें भस्म कर दूँ" (ख़ुरूज ३२, ११, एवं ख़ुरूज ३२, १२, १३, इस्तिस्ना ६, २०, २१ इत्यादि। 'इंजील' को आमतौर पर आरम्भ से अन्त तक बर्दाश्त तथा कृपा तथा स्नेह की पवित्र पुस्तक समझा गया है, परन्तु वह भी इस वर्णन से ख़ाली नहीं है। देखें 'मत्ता' ३, ८ व १०, मुकाशिफ़ा १६, १५ आदि आदि। **'सिरातॆ मुस्तक़ीम'** की व्याख्या ऊपर हो चुकी है। इसी अर्थ को दूसरी शक्ल में बयान किया गया है, गोया जिस प्रकार अल्लाह् के निकटतम तथा उसके प्यारों और मित्रों की पैरवी करना जैसा आवश्यक और अच्छा है, उसी प्रकार उसका इन्कार करनेवालों और उसका कहना न माननेवालों का साथ देना भी मना और नाजायज़ है। आश्चर्य की बात है कि बाज़ नये लिखने वालों ने मसीही पादरियों के ताना देने और उनके रोब से दबकर इस्लाम में अल्लाह् के ग़ज़ब के मौजूद होने से ही इन्कार करना चाहा है। गोया अल्लाह् तआ़ला इन नासमझों के विचार में एक बड़े पैमाने पर कोई साधू, संन्यासी या महात्मा है, जो भी व्यक्ति चाहे उसके बनाये और अवतरित किये हुए क़ानूनों और नियमों को, जो बन्दों के ही लाभ एवं उन्हीं की भलाई के लिए हैं, आज़ादी से तथा अपनी स्वेच्छा से तोड़ता-फोड़ता, चीरता-फाड़ता रहे और वह अहिंसा पर अमल करके शान्ति के साथ निर्जीवता एवं स्थगन के साथ सारा तमाशा देखता रहे और इसके सुधार के लिए न अपनी असीमित शक्ति और बेशाह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताक़त को हरकत में लाये और न फ़साद को समाप्त करने के लिए कोई अमली क़दम उठाये। पादरियों की आपत्तियों की बुनियाद एवं उसका स्रोत ही ग़लत है। उन्होंने अल्लाह के ग़ज़ब को मानव के गुस्से और क्रोध पर आँका है जो कि मानव की एक शर्मिन्दगी की क्रिया या दशा है। अल्लाह इस प्रकार की शर्मिन्दगी एवं प्रभाव से पाक है। वह केवल करता है और प्रभावकारी है। उसके सुधारक कार्य और सज़ा देने एवं दण्डित करने के इरादे का नाम बन्दों की भाषा में अल्लाह का ग़ज़ब है। उसकी हाकिमाना शक्ति, बुज़ुर्गाना स्नेह, दोनों का यही तक़ाज़ा है कि वह पापियों, विद्रोहियों, मुज्रिमों को उनके जुर्म तथा बग़ावत के अन्तिम अमली नतीजों तक पहुँचाये। उसका क्रोध एवं ग़ज़ब इस बात का पूरक कि वह बेहिसाब मेहरबानी एवं रहम करनेवाला है और अपने क्रोध के पश्चात् वह बड़ी अथाह मुहब्बत और स्नेह का प्रकट करनेवाला होगा। अर्थ बतानेवाले लोग आमतौर पर इस ओर गये हैं कि **'अल् मग़ज़ूबि अलैहिम्'** से मतलब है यहूद। हदीसों और आसारों से भी इसी की ताईद एवं समर्थन होता है और आयते करीमा के शब्दों से भी यही अर्थ निकाला गया है, लेकिन एक गरोह ने इसका अर्थ मुश्रिक बताया है। कोई अजब नहीं कि आयत उन सबके हक़ में हो, जो शरारत और अपनी अन्तरात्मा की दुष्टता तथा गन्दगी के कारण अल्लाह से जान-बूझकर मुख़ालिफ़त करते रहते हैं और उससे बग़ावत करते हैं।

२० यानी उनकी राह भी नहीं जो अपनी लापरवाही, ग़फ़लत तथा नादानी के कारण हक़ की ओर रुख़ भी नहीं करते। तफ़्सीर (अर्थ) बतानेवाले आमतौर पर इस ओर गये हैं कि **'अज़्ज़ाल्लीन'** से मुराद नसारा (ईसाई) हैं। हदीस तथा आसार भी इसी का समर्थन करते हैं और आयत करीमा के **'क़द्ज़ल्लू मिन् क़ब्लु व अज़ल्लू कसीरन्'** के शब्द से भी यही नतीजा निकाला गया है, लेकिन हक़ीक़त यह है **'मग़ज़ूबि अलैहिम्** और **ज़ाल्लीन'** के अर्थ में इन्हीं दो क़ौमों को घेरे में ले जाना सही नहीं है जो खुले हुए मुश्रिक तथा नास्तिक हैं। ज़ाहिर है कि वह गुमराही में उनसे भी बढ़े हुए और अल्लाह के ग़ज़ब के उनसे भी बड़े अधिकारी हैं। अल्लामा राज़ी की राय में बेहतर यह है कि सभी क्रियात्मक ग़लती करने वालों को **'मग़ज़ूबि अलैहिम्'** की सीमा में रखा जाये और अक़ीदे की ग़लतियों वालों को **'ज़ाल्लीन'** के गुट में रखा जाये। 'ला' उन अतिरिक्त अक्षरों में से है, जो बात को आरम्भ करने के लिए आते हैं। सूरत के ख़त्म पर 'आमीन' कहना अच्छा है। आमीन स्वयं एक दुआ है। इसका अर्थ है 'इस्तजिब' यानी ऐ रब! क़ुबूल फ़रमा। यह केवल अक़ीदे की बात नहीं है बल्कि सच्चाई है कि जिस क़दर मुकम्मल और कम से कम शब्दों में सूरए **फ़ातिहा** की सात आयतों में अल्लाह की तौहीद (अद्वैतता) और उसकी सिफ़तों के कमाल का वर्णन किया गया है, उसकी मिसाल दुनिया की किसी दीनी पुस्तक में नहीं है। इससे बढ़कर तो क्या इसके बराबर भी मिसाल मज़हबों की दुनिया में नहीं मिलेगी। मसीही दुनिया को अपनी इंजीली दुआ पर बड़ा गर्व है (Lords Prayer)। लेकिन स्वयं मसीही आलिमों की भी यह बात मान्य है कि उसका प्रमाण सन्देहजनक है यानी इसकी सत्यता में शक है कि यह शब्द स्वयं हज़रत ईसा मसीह के हैं भी। फिर चीज़ जहाँ से भी आई हो यहाँ उसके शब्दों को सूरए **फ़ातिहा** के मुक़ाबिले में दिया जाता है। हर मुन्सिफ़-मिज़ाज स्वयं फ़ैसला कर सकता है कि क़ुर्आन मजीद की **फ़ातिहा** और इस इंजीली दुआ के बीच क्या लगाव है:—

सूरतुल् फ़ातिहः	इंजीली दुआ
१ सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए है (वह) सारे जहानों का पालनेवाला।	१ ऐ हमारे बाप! जो तू आसमानों पर है। तेरा नाम पाक माना जाये। (मता, ६, ९, १४)
२ वह निहायत रहम करनेवाला (वह) बार-बार रहम करनेवाला।	२ ,, ,, ,,
३ वह मालिक रोज़े-जज़ा का।	३ तेरी बादशाहत आये, तेरी मर्ज़ी जैसी आसमान पर पूरी होती है, ज़मीन पर भी हो।
४ हम बस तेरी ही इबादत करते हैं और तुझी से मदद माँगते हैं।	४ ,, ,, ,,
५ चला हमको सीधा रास्ता।	५ हमारी रोज़ की रोटी हमें आज दे और।
६ और उन लोगों का रास्ता जिन पर तूने इनाम किया।	६ जिस तरह हमने अपने क़र्ज़दारों को माफ़ किया है, तू हमारे क़र्ज़ को माफ़ कर।
७ न उनका (रास्ता) जो ज़ेरे ग़ज़ब हैं और न भटके हुओं का।	७ और हमें आज़माइश में न ला और हमें बुराई से बचा।

(देखें फ़ुटनोट अगले सफ़े पर)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

पहला पारः

अलिफ़् ला॑म् मी॑म्

२ सूरतुल् - बक़रति[२१]

(मदनी[२२]) इस सूरत में ४० रुकूअ़, २८६ आयतें, ६०२१ शब्द और २०००० अक्षर हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीमि ●

अलिफ़् ला॑म् मी॑म् ज (१)
ज़ालिकल्किताबु ला रैब ज क़ला ∴ फ़ीहि ∴ ज ∴ मु.
हुदल्लिल्मुत्तक़ीन ला (२) अ़ल्लज़ीन युअ्मिनून अ़ि
बिल्ग़ैबि व युक़ीमूनस्सलात व मिम्मा रज़क़्ना- मु
हुम् युन्फ़िक़ून ला (३) वल्लज़ीन युअ्मिनून ता
बिमा॑ उन्ज़िल अिलैक व मा॑ उन्ज़िल मिन् ख़.
क़ब्लिक ज व बिल्-आख़िरति हुम् यूक़िनून त (४) १

शुरू अल्लाह निहायत मेहरबान बार-बार रहमत करनेवाले के नाम से[२३]।

अलिफ़् ला॑म् मी॑म्[२४] (१) यह किताब[२५] (कि) कोई शुबहा नहीं[२६] ∴ इसमें ∴ हिदायत है (अल्लाह से) डर रखनेवालों के लिए[२७] (२) जो ग़ैब (अदृष्ट-अनदेखे) पर ईमान रखते हैं[२८] और नमाज़ की पाबन्दी करते हैं[२९] और जो कुछ हमने उनको दिया है, उसमें से ख़र्च करते रहते हैं[३०]। (३) और जो लोग ईमान रखते हैं उस पर जो आप पर उतारा गया[३१] (और उस पर) जो आपके पहले उतारा गया[३२] और यक़ीन तो बस आख़िरत ही पर रखते हैं[३३]। (४)

∴ मु. अ़ि मु ता ख़. १

[सफ़ा ४८ से आगे] (१) कहाँ जहानों के पालनेवाले की लामहदूद और असीमित विशालता और फैलाव, और कहाँ आसमान पर बैठे रहनेवाली दूर और सीमित और फिर बाप जैसी दुनियावी सम्बन्ध रखनेवाली हस्ती। (२) एक तरफ़ एलान हो रहा है सर्व ब्रह्माण्ड पर हावी पालनेवाले की सिफ़त का, उसके अथाह स्नेह का, उसकी रहीमी और मालिकिय्यत का और दूसरी ओर उनके स्थान पर ज़िक्र है सिर्फ़ ज़मीन पर आसमानी बादशाहत के आने का। (३) क़ुर्आनी इबारत में जो बल केवल तौहीद (अद्वैतता) पर है और जिस प्रकार ग़ैर अल्लाह की इबादत से मना किया गया है, इंजीली दुआ में कहीं उसका पता नहीं। (४) इंजीली दुआ की आयत न० ३ में रोटी की इस दर्जा अहम्मीयत माद्दीयत की हद है। (५) केवल बुराई से बचने की दुआ सीधे रास्ते पर क़ायम रहने की निस्बत से कहीं ज़्यादा हल्की है।

२१ इस सूरत के और भी अनेकों नाम हैं। सबसे ज़्यादा मशहूर यही नाम है। बक़रः के शाब्दिक अर्थ गाय के भी हैं और बैल के भी। लफ़्ज़ बक़रः के आठवें रुकूअ़ में आया है और वहीं एक क़िस्सा भी इसके विषय में दर्ज है। सूरत का यह नाम भी इसी के अनुसार पड़ा। क़ुर्आन की हर सूरत बुज़ुर्ग और आदरणीय है, लेकिन इस सूरत की गिनती बड़ी आदर वाली सूरतों में है। अक़ीदे और शिक्षा दोनों दृष्टियों से इस्लाम की सबसे महत्वपूर्ण शिक्षाओं में कहना चाहिए कि सब की सब इसके अन्दर आ गई हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यह जो बाज़ रिवायतों (जो बातें बड़ों ने बयान की हैं।) में आया है कि अमुक 'सहाबियों' की इसके सीखने में कई-कई साल लग गये तो यहाँ सीखने से केवल पढ़ना या उसके शब्दों को कण्ठस्थ करना नहीं बल्कि उसके आदेशों एवं मसलों पर हावी होना और क़ाबू पाना है। हदीसों में इस सूरत की बड़ी प्रशंसा और बड़ाई आई है। एक यह कि शैतान और सूरए बक़र: एक जगह जमा नहीं हो सकते। शैतान बना है गुमराही और अँधेरे से; ज़ाहिर है कि वह नूर (आलोक) और नेक शिक्षाओं के साथ क्यों कर इकट्ठा हो सकता है। यदि थोड़ी देर को मान लिया जाये कि यह रिवायतें न मौजूद होतीं, जब भी सूरत के विषयों की बुलन्दी, उसका सारगर्भित होना, अर्थ से परिपूर्ण होना, सूरत को स्वयं इस बड़ाई का अधिकारी बनाने के लिए काफ़ी था।

२२ यानी इस सूरत की ज़्यादातर बल्कि लगभग सभी आयतें रसूल सल्लअम के मदीना में रहने के ज़माने में बाद-हिजरत (मक्का छोड़ने पर) अवतरित हुई। कहीं-कहीं मक्की आयत का सम्मिलित हो जाना सूरत के मदनी होने के विरुद्ध नहीं।

२३ अल्लाह और रहमान और रहीम —सब पर हाशिये गुज़र चुके हैं।

२४ **'अलिफ़' 'ला'म्' 'मी'म्'** शब्द के तीनों अक्षरों को पढ़ने में पूरी-पूरी आवाज़ अदा होनी चाहिए, जैसा कि शुरू क़ायदे में मद या प्लुत का पढ़ना स्पष्ट कर दिया गया है और यह अक्षर 'मुक़त्तेआत' कहलाते हैं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास सहाबी और बाज़ ताबेईन का क़ौल है कि **'अलिफ़् ला'म् मी'म'** संक्षेप है और क़ायम मक़ाम है; पूरे फ़िक़रे 'इन्नल्लाह आलमु' का (इब्ने जरीर) ज़ुजाज लुग़वी ने यही क़ौल माना है और कहा है कि अक्षर मुक़त्तेआत में से हर अक्षर किसी विशेष माने की ओर संकेत करता है और 'अरबी शायरी' से इसकी मिसालें पेश की हैं— (क़रतबी)। बाज़ ने कहा है कि यह सूरत का नाम है। अक्सर आलिम और खलील नहवी और सैबूया नहवी इसी तरफ़ गये हैं। अबु अुबैद लुग़वी ने कहा है कि इसके माने बात के आरम्भ करने के हैं और यह सूरत का नाम है। बाज़ का क़ौल है कि यह क़ुर्आन ही का एक नाम है और क़ौल भी नक़ल हुए हैं। बाज़ सूफ़ियों ने इन्हें अल्लाह की पहचान के संकेतों तथा इसी से सम्बन्धित गहरे भेदों का होना बताया है और इनसे नाना प्रकार के नुक्ते (रहस्य)और लतीफ़े पैदा किये हैं। एक क़ौल यह भी नक़ल हुआ है कि अरबों के भाषणों के दस्तूरानुसार यह अक्षर केवल बात के आरम्भ करने के लिए लाये जाते हैं और यह बात इस कारण दिल को लगती है कि अरब अगर इस सम्बोधन के अन्दाज़ और भाषण के इस्टाइल को न जानते होते तो इस पर आपत्ति होती, ज़रूर करते। एतराज़ के लिए तो विरोधी बहाना ही ढूँढ़ते रहते थे। परन्तु भाषाविदों से इस प्रकार की कोई भी आपत्ति जानकारी में नहीं आई है। बड़े सहाबियों तथा ताबेईन में से अक्सर का और तफ़्सीर करनेवालों के बहुमत का यही ध्येय है कि यह अक्षर क़ुर्आन के उन गूढ़ शब्दों में से है, जिनका ज्ञान किसी मस्लहत से आम बन्दों को नहीं बताया गया। क़रतबी तथा इब्ने कसीर आदि का यही मत है। यह एतराज़ कि क़ुर्आन के मुख़ातिब जब हम हैं तो इन अक्षरों का भी ज्ञान हमको दिया जाना चाहिए था, कुछ ज़्यादा बल नहीं रखता। क़ुर्आन मजीद के अन्दर और जो विषय तथा अर्थ हैं, क्या वह हर आम व्यक्ति की समझ में आ गये हैं? या इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ मौजूद है, क्या इन सबके कार्य एवं लाभ से हर आलिम, फ़ाज़िल एवं शोधकर्ता अवगत हो गया है?

२५ केवल ज़बानी याददाश्तों या रिवायतों का मजमूआ नहीं बल्कि नियमित एवं प्रमाणित लेखा, एक लिखित पुस्तक क़ुर्आन मजीद अपना पहला परिचय इसी हैसियत से कराता है कि वह लिखित रूप में आया हुआ, एक किताबी शक्ल में तरतीब किया हुआ आस्मानी सहीफ़ा (पुस्तक) है। वह दूसरे मज़हबों की इलहामी पुस्तकों की भाँति नहीं कि मज़हब वाले के दिमाग़ में उनके केवल अर्थ और सारांश हों। और कोई बयान करनेवाला इनसे कोई टुकड़ा नक़ल करे और कोई कुछ, और यहाँ तक कि सदियों बाद जब लिखने और जमा करने की नौबत आये तो शब्दों की शुद्धता एवं अक्षरों का प्रमाणित होना तो खैर बहुत दूर की चीज़ है अर्थ और मतलब तक बिगड़कर रह गये और नाम तो एक किताब का हो, लेकिन उसकी व्यवस्था और लिखाई में ख़ुदा मालूम कितने इन्सानी दिमाग़ और क़लम सम्मिलित हो जायें। दलीलों और गवाहियों को छोड़िये, केवल दावे की हद तक भी तो इस विषय में क़ुर्आन के मुक़ाबिले में दुनिया की कोई इलहामी किताब नहीं है। तौरेत, इंजील, वेद, किसी का भी यह दावा नहीं कि वह शब्द प्रति शब्द, हरफ़ ब हरफ़ अवतरित किताब है और न उनके पैरौ उन्हें इस रूप में पेश ही कर रहे हैं। यह दावा कि लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ क़ुर्आन का अवतरण हुआ है केवल उसी का है। आज दुनिया में इस काग़ज़ और क़लम के दौर में 'किताबें' चाहे जितनी तैयार कर ली जायें 'अकेली'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किताब के माने में केवल क़ुर्आन ही निकलेगा। ज़िमख़शरी का दर्जा ख़ुदा बुलन्द करे, कहता है कि किताब तो बस यही एक किताबे-कामिल है और इसके सामने जितनी भी किताबें लाई जायेंगी, नाक़िस ही रहेंगी। ज़िमख़शरी, जिनका देहान्त ११४४ ई० में हुआ, एक ईमानदार और क़ुर्आन के सेवक थे और आज से आठ या साढ़े आठ सौ साल पूर्व के मोमिन अगर वह यह कह गये थे तो उन्हें कहना ही चाहिए था। यह देखिये कि क़ुर्आन का इन्कार करनेवाला और माद्दीयत एवं अक़्ल की पूजा करनेवाला और वह भी बीसवीं सदी का क्या कह रहा है। इन्साइक्लो पीडिया ब्रिटैनिका ग्यारहवाँ एडीशन में अंकित है कि क़ुर्आन (The most widely read book in the world) वह किताब है जो दुनिया में सबसे ज़्यादा पढ़ी जाती है। (जिल्द १५ सफ़ा ८९८) और प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी (अमेरिका) के प्रोफ़ेसर हिट्टी का बयान है कि "क़ुर्आन अन्तिम ज़माने की किताबों में कमसिन है, लेकिन दुनिया में जितनी किताबें लिखी गई हैं, उनमें सबसे ज़्यादा पढ़ी जानेवाली यही है"— (तारीख़े अहले अरब सफ़ा १२६, १९३७ में मुद्रित)। **'ज़ालिक'** संकेतिक संज्ञा है और दूर के लिए उर्दू, हिन्दी में 'वह' कहा जाता है, लेकिन दूरी हमेशा ज़माने और स्थान से ही सम्बद्ध नहीं होती। दर्जा तथा सम्मानित स्थिति भी दूर की ही क़िस्में हैं और हाज़ा के मुक़ाबले पर **ज़ालिक** इसी सम्मान को ज़ाहिर करने को आता है। और अरबी मुहाविरों में जिसे सम्बोधित करते हैं, उसके लिए बराबर ग़ायब (अनुपस्थित) की क्रिया का प्रयोग करते हैं। उर्दू और फ़ारसी भाषाओं में भी संकेत जब दूर का प्रयोग करते हैं जैसे "आँ" तो इससे सम्मान ज़ाहिर होता है जैसे 'आँ हज़रत', 'आँ जनाब', 'आँ अज़ीज़' आदि आदि। सम्बोधन जिसको किया गया उसके तुरन्त बाद ही संज्ञा यानी **अलकिताब** है, गोया इस फ़िक़रे का सही उर्दू या हिन्दी अनुवाद यह हुआ "यह आदरणीय एवं सम्मानित पुस्तक"।

२६ (कि यह अल्लाह की किताब है। इसका हर मज़मून सत्य है और इसका हर शब्द सत्य ही पर आधारित है) यह अर्थ ताबेईन और सहाबा सभी को मान्य है और इसमें कोई मतभेद नहीं। इस सच्चाई को एक और दृष्टि से देखिये। क़ुर्आन स्वयं एक लोक है (एक आलम है)। इस पवित्र लोक में प्रवेश न किसी शंका का है न सन्देह का, न कोई भय और परेशानी का। यहाँ जो कुछ है केवल तस्कीन है, सन्तोष है, ज्ञान एवं सिद्धि है, एकान्त है और अल्लाह का जलवा है। हर दावे की दलील है और हर हक़ीक़त सिद्ध है। अब अगर किसी बदनसीब को इसके विपरीत नज़र आता है तो गुनाह सूर्य के प्रकाश-सागर का नहीं, क़ुसूर तो चिमगादड़ी नेत्र का है; इसलिए अल्लाह की ओर से यह नहीं कहा गया कि इस विषय में किसी को सन्देह होगा ही नहीं, बल्कि यह फ़र्माया गया कि ख़ुद यह किताब, इसके मज़मून शक व शुबहा से परे हैं। **'ला रैब फ़ीहि'** चूंकि सन्देह के इन्कार की बात पर ज़्यादा बल दिया गया है इसलिए वाक्य का क्रम **'ला फ़ीहि रैबुन्'** के स्थान पर **'ला रैब फ़ीहि'** रखा गया क्योंकि इसमें उससे ज़्यादा ज़ोर है। (कबीर)

२७ क़ुर्आन मजीद के अध्ययन के समय उसका स्वयं का बताया हुआ गुण आरम्भ से ही ध्यान में जमा लेना चाहिए कि वह कोई इतिहास की पुस्तक नहीं कि उसमें सन और क्रम के साथ पिछले ज़माने की घटनाओं को अंकित किया गया हो। कोई साइंस की पुस्तक नहीं कि वह कोई गणित एवं विज्ञान के मसलों का हल उसके सफ़ों में ढूंढ़ा जाये। यह कोई फ़लसफ़े का लेख नहीं कि उसके पढ़नेवाले इशराक़ियों, मशाइयों, यूनानियों, और हिन्दुस्तानी ज्ञानियों के नियमों एवं तर्क-वितर्क में उलझे रहें। यह क़िस्सा-कहानियों की भी किताब नहीं है कि पढ़नेवाले उसे तफ़रीह और मनोरंजन के लिए पढ़ें। उसकी वास्तविक एवं बुनियादी हैसियत केवल यह है कि वह पढ़नेवालों के लिए एक निर्देश है। जीवन का विधान है और ज़िन्दगी का ब्योरेवार एवं मुकम्मल चित्रण है। **'लिल् मुत्तक़ीन'** यह प्रतिबन्ध लगाकर स्पष्ट रूप से बता दिया कि इस आम क़ानून तथा मुकम्मल निर्देश से लाभ उठानेवाले केवल वही लोग होंगे, जिनके अन्दर ख़ुदा का भय होगा। यह किताब एक निर्देश के रूप में सम्पूर्ण विश्व के लिए अवतरित हुई है। सारी दुनिया को सम्बोधित कर रही है। परन्तु व्योहारिक रूप में इससे लाभ केवल वही लोग प्राप्त करेंगे, जिनके अन्दर हक़ एवं सत्य की तलब है और तलाश भी है और जिनकी अन्तरात्मा जीवित है। सूर्य सारी दुनिया को प्रकाश देनेवाला सही, परन्तु जिनके नेत्र समाप्त हो चुके हैं उनके लिए तेज से तेज किरणें व्यर्थ हैं। ज़मीन यदि मुर्दा है तो उसके लिए भारी से भारी वर्षा भी बेअसर ही होगी। भोजन अच्छा से अच्छा हो परन्तु हैजे के रोगी के लिए बेकार बल्कि हानिकारक है। क़ुर्आन मजीद से लाभ के लिए प्रथम शर्त दिल के भीतर की सफ़ाई और पवित्रता है। जिनके दिलों में ख़ुदा की हिदायत और उसके निर्देशों की कोई ख़ाहिश ही आरम्भ से नहीं, वह इस किताब से कोई नफ़ा नहीं उठा सकते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२८ (और वह भी रसूल की शिक्षा और उनके द्वारा स्पष्टीकरण के अनुसार न कि स्वयं अपने विचारों, आकांक्षाओं और अन्दाज़ों से) **'युअ्मिनून'** ईमान के दायरे के अन्दर जितनी चीज़ें हैं, उनको नबी सल्लअम के द्वारा स्पष्ट किया हुआ होना चाहिए। किसी और स्रोत से आया हुआ ज्ञान तथा इल्म इस दायरे में मान्य नहीं है। ईमान की हालत सन्देह, शक, शुबहे और भ्रमों से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। ईमान से दिमाग़ की शान्ति, दिल को इत्मीनान, आत्मा को तसल्ली प्राप्त होती है। दुनिया के इतिहास में आज तक किसी ईमानवाले को आत्महत्या करते नहीं पाया गया। ईमान के बिना दिल-दिल में एक प्रकार की बेकली, बेचैनी ही रहा करती है, लेकिन ईमानवाले को बड़ी से बड़ी मुसीबत के समय भी ढाढस बँधा रहता है। उसे अल्लाह का सहारा और उसका मज़बूत आसरा होता है। **'बिल्ग़ैबि'** यानी ईमान ऐसे आलम या लोक पर रखते हैं, जिसको अनुभव करना या महसूस करना अथवा अक़्ल लगाकर समझना सम्भव नहीं है और जिसके विषय में जो ख़बरें मिलती हैं, वे केवल नबी (अल्लाह के विशेष दूत) के द्वारा ही मिलती हैं। इस प्रतिबन्ध से यह बात साफ़ हो जाती है कि जिन लोगों की ज़ेहनियत और समझ केवल इसी विश्व की वस्तुओं तक सीमित है और जो ऊपर के आलम या परलोक तथा इस दुनिया की वस्तुओं के अलावा दूसरी अनदेखी दुनिया को नहीं मानते वह सच्चे और भलाई के रास्ते से वंचित ही रहेंगे। **'ग़ैब'** शब्दकोष में 'उपस्थित' का उलटा है; हर उस चीज़ को कहते हैं जो नज़र से छुपी हुई हो या जिसको देखना या अनुभव करना सम्भव न हो। आयत में यह शब्दकोष द्वारा दिया हुआ अर्थ था। **'अलग़ैब'** का अर्थ आलिमों ने वह लोक लिया है जो मनुष्य के हवास तथा अक़्ल से परे की चीज़ हो। उसके विषय में जो भी जानकारी होती है वह नबियों के द्वारा ही होती है। मसलन हश्र व नश्र, हूरो मलायक, जन्नत-दोज़ख आदि। और यही अर्थ सहाबा ने भी बताया है। ग़ैब का अर्थ इसी प्रकार बताया गया है, लेकिन इसे थोड़ा फैलाव देने से उसके अन्दर पयम्बर के सारे ज्ञान प्रवेश करते हैं और पयम्बर जिन-जिन बातों से 'वही' के प्रकाश में रोकता है, उनकी बारीक बुराइयों का उम्मत के नज़रिये से **'ग़ैब'** में प्रवेश होना साफ़ मालूम हो जाता है, अल्लाह की 'वही' (अल्लाह की ओर से पयम्बरों के पास आनेवाले पैग़ाम तथा सूचनाएँ और निर्देशों को 'वही' कहते हैं) एक ख़ुर्दबीन यन्त्र के समान है, जिसके द्वारा इन्सानों के ऐबों का पता चल जाता है। सूद, शराब, ज़िना आदि बुराइयों का 'वही' के द्वारा पयम्बरों को ज्ञान हो जाता है और यह एक प्रकार से ग़ैब की बात भी हुई। लेकिन जब ग़ैब की हक़ीक़त यह मालूम हो गई कि वह जानकारी या उपस्थिति के मुक़ाबले की चीज है तो ज़ाहिर है कि जिस तरह एक शख़्स का ज्ञान और उसके अवलोकन करने की शक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है उसी प्रकार हर एक का ग़ैब भी दूसरे से अलग होगा। एक हकीम तथा डॉक्टर के, लिए मरज़ एवं रोगी के विषय में बहुत सी बातें सामने दिखाई देती हैं, परन्तु दूसरों को नहीं मालूम होतीं, यानी उनके लिए वह ग़ैब की बात हुई। इसी तरह हर विद्या का ज्ञाता और माहिर ऐसी चीज़ें जानता है जो आम आदमी के लिए ग़ैब या छुपी हुई हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस व्यक्ति का जानकारी का दायरा जितना फैला हुआ होगा उसी हिसाब से उसका ग़ैब का दायरा तंग और छोटा होगा। यहाँ तक कि चूँकि अल्लाह तआला पर हर चीज़ ज़ाहिर और स्पष्ट है इसलिए कोई वस्तु उसके ग़ैब में प्रवेश ही नहीं रखती और इसीलिए जब उसको 'आलिमुल् ग़ैब' कहा जाता है, तो उसका अर्थ केवल यही होता है कि वह उन चीज़ों को भी जानता है, जो सब बन्दों के लिए ग़ैब में होती हैं। ग़ैबि में 'का' के माने में जो ज़ेर (ि) का प्रयोग हुआ है वह बन्दों के लिए है, वरना अल्लाह तआला के लिए दूर, नज़दीक, आसान और कठिन, बड़ा और छोटा सब एक समान हैं और उनके बीच का अन्तर कोई मानी नहीं रखता। इसी प्रकार उसके सामने ग़ैब और सामने, यानी अनुपस्थित एवं उपस्थित सब बराबर हैं। इसी प्रकार बड़े से बड़े ज्ञानी और अल्लाह को पहचाननेवाले बुज़ुर्गों के लिए उनके ज्ञान तथा ईश्वर-भक्ति के मर्तबे के बाद और उसी के अन्तर्गत तथा निस्बत से ग़ैब की सीमाएँ आरम्भ होती हैं। यहीं से यह भी ज़ाहिर होता है कि पयम्बर चूँकि तमाम दूसरे इन्सानों से कहीं अधिक ज्ञाता एवं आलिम होते हैं और उनकी समझने तथा जानने की शक्ति सारी दूसरी मख़लूक़ (जनजन्तु) से कहीं अधिक विशाल होती है, इस कारण उन्हें स्वाभाविक रूप में ऐसी बहुत सी छुपी हुई बातों का ज्ञान होता है, जो साधारण लोगों के लिए छुपी रहती हैं। लेकिन इस सारी विशालता के बावजूद एक ऐसा स्थान आता है, जहाँ उसकी भी सीमा आ जाती है और उनका भी **'ग़ैब'** का दायरा शुरू हो जाता है। ग़ैब पर ईमान लाना तो आयत में आस्था रखने की सबसे बड़ी अलामत तथा चिह्न है। अब अगर किसी का ग़ैब है ही नहीं तो वह ईमान किस चीज़ पर लायेगा। नबी या पयम्बर तो केवल पवित्र व्यक्ति ही नहीं बल्कि पवित्र व्यक्तियों के सरदार और पेशवा हैं, उनका ईमान भी अगर ग़ैब की बातों तथा छुपी हुई बातों पर न होगा तो और किसका होगा? हाँ, यह सही है कि उनका ग़ैब उनके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दर्जे और श्रेणी के अनुसार होता है; साधारण व्यक्तियों का जैसा ग़ैब नहीं होता। दीन का मग़ज़ कहें या ईमान की आत्मा, यही ग़ैब का लोक है जिस पर अक़ीदा और पक्का विश्वास रखना आवश्यक है यानी यह विश्वास कि इस लोक से जो माद्दी लोक है और इस महसूस की जानेवाली दुनिया से परे एक आलम या लोक है ज़रूर, और जो व्यक्ति उस लोक को नहीं मानता वह सिरे से मज़हब का क़ायल नहीं; और सबसे बड़ा ग़ैब तो स्वयं अल्लाह का अस्तित्व है, उसका वजूद है। वह सबसे बढ़कर प्रकाशित, रौशन, ज़ाहिर मगर सबसे ज़्यादा छुपा हुआ और स्पष्ट भी। जिस प्रकार ग़ैब से इन्कार करनेवाला और माद्दीयत का क़ायल व्यक्ति पवित्रता से सम्पर्क नहीं रखता, उसी प्रकार ईमान से भी उसका सम्बन्ध नहीं होता। यह बात भलीभाँति समझ ली जाये कि भलाई प्राप्त करनेवालों के लिए प्रथम और अहमतरीन शर्त यह है कि उनका ईमान ग़ैब पर हो। विज्ञान की खोजें, फ़लसफ़ियाना बारीकियाँ, तर्क-वितर्क और सारे दूसरे इल्मोफ़न और ज्ञान की इस राह में कोई पूछ नहीं है।

२९ (समय की पाबन्दी, स्वच्छ हृदय से, नियमों का पालन करते हुए और सभी ढके-छुपे एवं ज़ाहिरी शर्तों के साथ) **सलात** का शाब्दिक अर्थ है 'दुआ' जो शरीअत के नियम में एक विशेष प्रकार की मशहूर इबादत का नाम है और यह नाम भी इसी कारण पड़ा कि दुआ ही इस इबादत का सबसे बड़ा भाग है। शोध करनेवालों ने तो कहा है कि नमाज़ लगभग सारी की सारी दुआ है। दुआ ज़बान से भी, दिल से भी, बदन के अंगों से भी, यानी दुआ इक़रार से, हृदय से भी। **'इक़ामते सलात'** और केवल सलात को अदा करने में अन्तर है। 'इक़ामते सलात' में नमाज़ की ज़ाहिरी और आर्थिक सभी की शक्ल आ जाती है। किसी चीज़ की इक़ामत करने के मानी ही अरबी में यह होते हैं कि उसे इस तरह अदा किया जाये जो उसका हक़ है। और इक़ामते सलात को हर नियम का पालन करते हुए बताया गया है। अनदेखे ख़ुदा के आगे झुकने, सर झुकाने, उससे गहरा सम्पर्क रखने और स्वयं ईमानवालों के समूह में पारस्परिक व्यवस्था स्थापित करने का बेहतरीन साधन नमाज़ है। और जिस्मानी इबादतों में यही फ़र्ज़ सबसे आला और ईमान तथा तौहीद का सबसे बड़ा क्रियात्मक प्रदर्शन है। व्यक्ति के लिए नमाज़ बा जमाअत (सामूहिक नमाज़) के जो व्योहारिक, स्वास्थिक, दुनियावी लाभ हैं एवं क़ौम के लिए जो सांस्कृतिक, सामूहिक, एवं सामाजिक लाभ हैं और जो इसमें हिकमतें हैं उसकी झलक अन्य क़ौमें भी देखकर पसन्द करती हैं। उसकी प्रशंसा बड़े-बड़े आलिम, वैज्ञानिक एवं लेखकों ने बार-बार की है। (अंग्रेजी तफ़्सीर देखें)। **मुत्तक़ीन**— पवित्र लोगों का प्रथम प्रतीक यह बताया गया था कि वह ग़ैब पर विश्वास रखते हैं और दूसरी अलामत यह बयान हुई है कि असली ज़िन्दगी में वह नमाज़ के पाबन्द हैं।

३० (मुनासिब व ज़रूरी मौक़ों पर जायज़ और लाभप्रद कामों में) 'रिज़्क़' का शब्द अरबी बोलचाल के बड़े विशाल अर्थ में आता है। इसके अन्दर हर प्रकार की नेमतें (उम्दा चीज़ें) आ जाती हैं चाहे वह ज़ाहिरी व माद्दी हों जैसे धन-दौलत, स्वास्थ्य, औलाद, या आत्मा से सम्बद्ध हों जैसे ज्ञान, हिकमत, इल्म और सही बुद्धि आदि। **'रज़क़्नाहुम्'** में रिज़्क़ को अपने से सम्बद्ध करके बता दिया कि जो नेमत, जितनी और जिस क़िस्म की इन्सान को मिलती है, सब अल्लाह ही की कृपा एवं उसकी मेहरबानी का नतीजा है। इन्सान की अपनी कोई चीज़ भी नहीं होती। **'युन्फ़िक़ून'** पवित्र लोगों यानी मुत्तक़ी लोगों का तीसरा गुण यह बताया गया है कि अल्लाह के यहाँ से उनको जो भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में नेमतें मिली हुई हैं, उसे वह अल्लाह की ख़ुशी के लिए दीन पर सच्चाई की राह पर ख़र्च करते हैं। अल्लाह की मुख़ालिफ़त, गुनाह और अन्याय पर व्यय नहीं करते। मौलाना थानवी ने यह भी कहा है कि अल्लाह ने जो उनकी अपनी पहचान और निकटता का प्रकाश प्रदान किया है उसे वह नेक लोगों पर बढ़ाते रहते हैं।

३१ (ऐ हमारे रसूल) यानी उन पाक लोगों की चौथी सिफ़्त यह है कि वे रसूल के लाये हुए हर पैग़ाम पर चाहे क़ुर्आन हो या उसके अलावा, ईमान रखते हैं। आयत की इबारत से यह समस्या स्पष्ट हो जाती है कि तीन चीज़ें अलग-अलग हैं। (१) एक कलाम का अवतरित करनेवाला यानी अल्लाह तआ़ला। (२) दूसरे वह शख़्स, जिस पर कलाम उतरा यानी अल्लाह का रसूल और सच्चा रसूल। (३) तीसरे कलाम-ख़ुदा। यह अक़ीदा कि ख़ुदा अवतार के रूप में पैदा होता है या यह कि वह किसी जीव के अन्दर प्रवेश कर लेता है या यह कि वह अनेकों ख़ुदाओं का ख़ुदा है, यह सारी मुश्रिकाना बातें हैं, जिनकी जड़ क़ुर्आन ने काट दी है। न कलाम-ख़ुदा की मिसाल है, न नबी अल्लाह के अवतार हैं बल्कि वह एक अस्थायी इन्सानी व्यक्तित्व (शख़्सीयत) रखते हैं।

३२ (दूसरे पैग़म्बरों पर चाहे किसी मुल्क, किसी क़ौम या किसी ज़माने के हों।) पाँचवाँ गुण यक़ीन एवं विश्वास तथा सीख एवं सिद्धि पाये हुए लोगों का यह बताया गया है कि वह (यहूद एवं नसारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के बरखिलाफ़) दूसरे नबियों पर भी एतक़ाद एवं विश्वास रखते हैं। क़ुर्आन मजीद ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि यह हिदायत एवं सीख तथा शिक्षा देने का सिलसिला कोई नई पैदा हुई चीज़ नहीं है। यह उस समय से क़ायम है, जबसे मनुष्य जाति ने दुनिया में जन्म लिया है। 'वही' का सिलसिला उतना ही पुराना है जितनी कि मानव जाति, और ईमानवाले मोमिन के लिए केवल आखिरी नबी अर्थात् हज़रत मुहम्मद सल्लअम पर विश्वास करना ही काफ़ी नहीं है बल्कि सारे रसूलों तथा नबियों पर ईमान लाना आवश्यक है, चाहे वह मान्यता मात्र ही क्यों न हो। शोधकर्ताओं ने दोनों ईमानों के बीच यह फ़र्क़ किया है कि पहला ईमान तफ़्सीली (विस्तृत) होना चाहिए यानी सारे नियमों और छोटी-छोटी बातों को भी मानकर, और दूसरा ईमान केवल मान्यता मात्र होना काफ़ी है। मौलाना थानवी ने कहा है कि अल्लाह के रास्ते की तलाश करनेवाले को सभी बुज़ुर्गों पर एतक़ाद करना चाहिए, परन्तु पूरी पैरवी एवं अनुसरण केवल अपने गुरु या शेख की ही करना चाहिए, और यही आदेश नबियों के विषय में भी हैं।

३३ यह छठा और आखिरी गुण उन पवित्र और अन्तरात्मा रखनेवाले लोगों का बयान हुआ, जो क़ुर्आन से फ़ायदा उठाते हैं। **'अल् आख़िरत'** से मुराद है 'दारुल् आखिरत' या 'आलमे आखिरत' यानी वह आलम जो उपस्थित जीवन के सिलसिले के बाद आरम्भ होगा। उसे आखिरत कहा ही इस कारण जाता है कि वह इस नासूती, मिट जानेवाली ज़िन्दगी के खात्मे के बाद पेश आयेगा। क़ुर्आन शरीफ़ में इसका ज़िक्र कहीं आखिरत से आया है और कहीं दारुल् आखिरत कहा है। जज़ा (इनाम) तथा सज़ा के लिए एक स्थायी और भविष्य के 'आलम पर यक़ीन एवं आस्था रखना सच्चे दीन के लिए अनिवार्य है। यहीं से उन ग़लत मज़हबों की काट हो जाती है जो कहने को तो मज़हब हैं, लेकिन या तो कर्म तथा सज़ा के क़ायल ही नहीं, या क़ायल हैं तो उस इनाम या सज़ा का स्थान इसी आलमे नासूत अर्थात् इसी दुनिया को समझते हैं; चाहे एक ही काया में हो या कई-कई कायाओं में। बाज़ नये ग़लत मज़हब वालों ने **'अल् आख़िरत'** का अनुवाद किया है "आखिरी ज़माने की वही", लेकिन न तो यह अनुवाद ही सही है न तफ़्सीर। यह क़ुर्आन मजीद और अरबी शब्दकोष दोनों के साथ ग़लत बर्ताव है। **'यूक़िनून'** ईक़ान या यक़ीन के माने केवल यह नहीं है कि केवल अक़्ल किसी दलील से किसी अक़ीदे को मान ले या दिमाग़ उसके मान लेने का ऊपरी, रस्मी, सरसरी और लफ़्ज़ी इक़रार कर ले जैसा कि फ़लसफ़ियाना दृष्टिकोणों के साथ मामला रहता है, बल्कि यक़ीन यह है कि उस मसले पर दिलोजान से विश्वास जम जाये और अक़्ल, जज़्बात तथा इरादा सब पर वही छा जाये। यक़ीन का रास्ता, शक, आभास, विचार सबसे अलग है। यक़ीन का मर्तबा यूँ भी केवल इल्म से अधिक शक्तिशाली था फिर इस फ़िक़रे की तरकीब यानी क्रिया के पहले लाने और **'हुम्'** के बढ़ा देने से शक्ति एवं बल को कई गुना बढ़ा दिया है। मतलब यह हुआ कि मोमिनों एवं पवित्र लोगों के लिए **'आख़िरत'** इस दर्जा अहम है कि गोया वह बस उसी पर यक़ीन रखते हैं। यही अक़ीदा उनकी ज़िन्दगी में रचा-बसा रहता है। अक़ीदा आखिरत पर जितना बल इस्लाम में दिया गया है वह इसी से ज़ाहिर है कि उसका वर्णन एक स्थायी विषय के रूप में किया गया है और वह भी ऐसे सबल रूप में।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ५७ से)

गया। और व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप में, निजी एवं क़ौमी हर हैसियत से एक मुकम्मल जीवन-विधान ज़िन्दगी की मंज़िलों को तय करने का मिल गया। आख़िरत की भलाई यह कि वहाँ पूरा-पूरा बदला और फल मिलकर रहेगा। **'फ़लाह्'** अरबी में इस शब्द का अर्थ बड़ा विशाल एवं विस्तृत है। दुनिया और आख़िरत की हर प्रकार की बेहतरी का अर्थ इसमें निहित है। इसलिए पूरा अर्थ 'कामयाब' (सफल) या बामुराद आदि शब्दों से अदा नहीं होता है। आलिमों का विचार है कि अरबी में हर प्रकार की भलाई तथा बेहतरी के अर्थ में दूसरा शब्द है ही नहीं। मौलाना थानवी (अश्रफ़ अली थानवी) ने यह बात ख़ूब लिखी है कि 'हस्र' का अर्थ सम्पूर्ण रूप से भलाई के हैं, न कि केवल भलाई। बामुराद और भलाई पाने वाले लोगों में चाहे वह जमातें हों या जातियाँ या व्यक्ति, क़ुर्आन मजीद ने जो गुण बता दिये हैं, उनमें कहीं भी यह वर्णन नहीं आया है कि बड़े-बड़े व्यापारी, कारीगर, पूँजीपति, विजेता या बड़े-बड़े देशों के हाकिम होंगे। क़ुर्आन मजीद जिस भलाई की ओर बुला रहा है उसका आकार इन सबसे अलग है। अल्मिनार के लेखक ने यह कहा है कि भलाई पानेवालों से यह न समझें कि वह लोग जिनको कोई नेमत बिना परेशानी तथा मेहनत के मिल जाये बल्कि वह लोग हैं जिन्हें सम्पूर्ण भलाई, ईमान की शर्तें पूरी करके और अल्लाह् का हर कहना मानने के बाद प्राप्त हो।

३६ (और दलीलें पूरी होने के बावजूद उस पर अड़े हुए हैं।) ऐसे लोग ज़ाहिर हैं कि अल्लाह् के इल्म में कुफ़्र पर ही मरनेवाले हैं। जो लोग सच्ची दलीलों पर ध्यान नहीं देते और जमे रहते हैं अपनी ज़िद पर उनकी क्षमता और अहलियत सत्य को स्वीकार करने की दुर्बल होती जाती है यहाँ तक कि बिल्कुल मुर्दा हो जाती है। इस आयत में विशेष संकेत मदीने के यहूद की ओर है, जो आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद सल्लअम के विषय में पूर्ववाणी से परिचित और भविष्यवाणियों से यह जानते थे कि आख़िरी नबी की क्या निशानियाँ होंगी परन्तु जान-बूझकर यह बात छुपाते थे और ईमान नहीं लाते थे क्योंकि उससे उनकी अपनी दीनी सरदारी और दुनियावी बड़ाई की हानि का भय था।

३७ (परन्तु आपकी दावतेदीन और धर्म का प्रचार बराबर जारी रहे। आपका अज्र यानी बदला इससे साबित होता रहेगा।) आज मामूली प्रचारक भी अपनी धुन के पक्के होते हैं तो रसूल सल्लअम तो सारी दुनिया के लिए 'महान प्रचारक' थे। अल्लाह् के दीन और धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए आपकी तड़प का क्या कहना। आपको यदि कोई लालच था तो यही कि सभी काफ़िर इस्लाम के दायरे में आ जायें। यहाँ आपको इस आयत में यह हक़ीक़त बताई गई है कि आप कुछ भी प्रयास करें उनके लिए सब बराबर है। यह बदनसीब अपनी सच को पहचानने की क्षमता खो चुके हैं परन्तु आपको प्रचार करते रहने का बदला अवश्य मिलेगा। ज़ाहिर है कि यह केवल एक सूचना है, जो हर वस्तु हर चीज़ की सूचना रखनेवाला यानी ख़ुदा अपने बन्दे को दे रहा है। एक ख़बर है, जो सब कुछ जाननेवाला ख़ुदा अपने नबी को दे रहा है। अल्लाह् की मर्ज़ी से इसका सम्बन्ध नहीं है। "जानकारी" और 'मर्ज़ी' के बीच ज़मीन-आसमान का अन्तर है। आम और साधारण व्यक्ति इन दो चीज़ों और क़ानूनों के बीच बहस के घोलमेल में पड़कर ख़ुद को उलझन में डाल देता है। जो एक क़ाबिल हकीम या डाक्टर होगा वह अपने ज्ञान और जानकारी से ख़बर दे देता है कि अमुक बदपरहेज़ रोगी जो अपनी ही राय पर चलता है वह अच्छा न होगा। क्या इस भविष्य की ख़बर या आम लोगों से पोशीदा जानकारी में उस हकीम की मर्ज़ी का भी दख़ल है? मौलाना थानवी के कथनानुसार उस काफ़िर का ईमान के योग्य न होना अल्लाह् के इस सूचना देने से नहीं हुआ बल्कि स्वयं उसकी शरारत, सत्य के विरोध एवं ईमान से शत्रुता तथा दुश्मनी रखने के कारण हुआ। अल्लाह् तआ़ला ने हर शख़्स के अन्दर उसकी पैदाइश के साथ सत्य को स्वीकार करने की अहलियत एवं क्षमता रखी है। जैसा कि हदीस में आया है— मगर यह व्यक्ति स्वयं अपनी ग़लत इच्छाओं और ख़ुदग़र्ज़ी के कारण तथा अपनी स्वेच्छा से ग़लत काम लेकर सत्य का विरोध करता है यहाँ तक कि एक रोज़ वह क्षमता समाप्त हो जाती है।

३८ (इसलिए कि वह ईमान लाने का इरादा ही नहीं करते और न दिमाग़ को स्वच्छ करके वह इस्लाम की तालीमों पर विचार करते हैं) इससे पहले फ़िक़रे की और अधिक ताकीद एवं सत्यापन हो गया। जो दीन के दुश्मन हैं उनकी बेतवज्जुही और लापरवाही के कारण पर और प्रकाश पड़ गया।

३९ (कि वह न समझते हैं और न सुनते हैं।) अल्लाह् की तरफ़ से मुहर लग जाने की यह क्रिया बन्दे के कुफ़्र को अपनाने के बाद होती है न कि उसके पूर्व। बन्दे का कुफ़्र उसके स्वयं अपनाने का नतीजा होता है न कि कारण का परिणाम, जैसा कि दूसरी जगह और स्पष्ट रूप से अल्लाह् फ़रमाता है। सत्य की

(देखें सफ़ा ५८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अुला'अिक अला हुदम्-मिर्रब्बिहिम् क़ व अुला'अिक हुमुल्-मुफ़्लिहून (५)
★ रु. १/१ आ ७ अिन्नल्लजीन कफ़रू सवा'अुन् अलैहिम् अ अन्जर्तहुम् अम् लम् तुन्जिर्हुम् ला
युअ्मिनून (६) ख़तमल्लाहु अला क़ुलूबिहिम् व अला सम्अिहिम् त व अला'
अब्सारिहिम् ग़िशावतुन् ज व'व लहुम् अजाबुन् अज़ीमुन् (७) ★ व मिनन्नासि
● व. ला जि म मंय्यक़ूलु आमन्ना बिल्लाहि व बिल्यौमिल्-
आख़िरि व मा हुम् बि मुअ्मिनीन ज ● (८)
युख़ादिअूनल्लाह वल्लजीन आमनू ज व मा
यख़्दअून अिल्ला' अन्फ़ुसहुम् व मा यश्अुरून त
(९) फ़ी क़ुलूबिहिम् मरज़ुन् ला फ़
ज़ाद-हुमुल्लाहु मरज़न् ज व लहुम् अज़ाबुन्
म्'
अलीमुन् ला ५ बिमा कानू यक्जिबून (१०)
व अिजा क़ील लहुम् ला तुफ़्सिदू फ़िल्अर्ज़ि ला
क़ालू' अिन्नमा नह्नु मुस्लिहून (११) अला'
अिन्नहुम् हुमुल् - मुफ़्सिदून व लाकिल्ला
यश्अुरून (१२) व अिजा क़ील लहुम्
आमिनू कमा' आमनन्नासु क़ालू' अनुअ्मिनु
कमा' आमनस्सुफ़हा'अु त अला' अिन्नहुम्

الم ٤ البقرة ٢

أُولَٰئِكَ عَلَىٰ هُدًى مِّن رَّبِّهِمْ ۖ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ ۝ إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا
سَوَاءٌ عَلَيْهِمْ أَأَنذَرْتَهُمْ أَمْ لَمْ تُنذِرْهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ۝ خَتَمَ اللَّهُ عَلَىٰ
قُلُوبِهِمْ وَعَلَىٰ سَمْعِهِمْ ۖ وَعَلَىٰ أَبْصَارِهِمْ غِشَاوَةٌ ۖ وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيمٌ ۝
وَمِنَ النَّاسِ مَن يَقُولُ آمَنَّا بِاللَّهِ وَبِالْيَوْمِ الْآخِرِ وَمَا هُم بِمُؤْمِنِينَ ۝
يُخَادِعُونَ اللَّهَ وَالَّذِينَ آمَنُوا وَمَا يَخْدَعُونَ إِلَّا أَنفُسَهُمْ وَمَا
يَشْعُرُونَ ۝ فِي قُلُوبِهِم مَّرَضٌ فَزَادَهُمُ اللَّهُ مَرَضًا ۖ وَلَهُمْ عَذَابٌ
أَلِيمٌ بِمَا كَانُوا يَكْذِبُونَ ۝ وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ لَا تُفْسِدُوا فِي الْأَرْضِ
قَالُوا إِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُونَ ۝ أَلَا إِنَّهُمْ هُمُ الْمُفْسِدُونَ وَلَٰكِن لَّا
يَشْعُرُونَ ۝ وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ آمِنُوا كَمَا آمَنَ النَّاسُ قَالُوا أَنُؤْمِنُ كَمَا
آمَنَ السُّفَهَاءُ ۗ أَلَا إِنَّهُمْ هُمُ السُّفَهَاءُ وَلَٰكِن لَّا يَعْلَمُونَ ۝ وَإِذَا لَقُوا
الَّذِينَ آمَنُوا قَالُوا آمَنَّا وَإِذَا خَلَوْا إِلَىٰ شَيَاطِينِهِمْ قَالُوا إِنَّا مَعَكُمْ إِنَّمَا نَحْنُ
مُسْتَهْزِئُونَ ۝ اللَّهُ يَسْتَهْزِئُ بِهِمْ وَيَمُدُّهُمْ فِي طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُونَ ۝
أُولَٰئِكَ الَّذِينَ اشْتَرَوُا الضَّلَالَةَ بِالْهُدَىٰ فَمَا رَبِحَت تِّجَارَتُهُمْ وَمَا كَانُوا
مُهْتَدِينَ ۝ مَثَلُهُمْ كَمَثَلِ الَّذِي اسْتَوْقَدَ نَارًا فَلَمَّا أَضَاءَتْ مَا حَوْلَهُ
ذَهَبَ اللَّهُ بِنُورِهِمْ وَتَرَكَهُمْ فِي ظُلُمَاتٍ لَّا يُبْصِرُونَ ۝ صُمٌّ بُكْمٌ عُمْيٌ
فَهُمْ لَا يَرْجِعُونَ ۝ أَوْ كَصَيِّبٍ مِّنَ السَّمَاءِ فِيهِ ظُلُمَاتٌ وَرَعْدٌ وَبَرْقٌ
يَجْعَلُونَ أَصَابِعَهُمْ فِي آذَانِهِم مِّنَ الصَّوَاعِقِ حَذَرَ الْمَوْتِ ۚ وَاللَّهُ مُحِيطٌ

منزل ١

हुमुस्सुफ़हा'अु व लाकिल्ला यअ्लमून (१३) व अिजा लक़ुल्लजीन आमनू
क़ालू' आमन्ना ज सुला व अिजा ख़लौ अिला शयातीनिहिम् ला क़ालू' अिन्ना
मअ़कुम् ला अिन्नमा नह्नु मुस्तह्ज़िअून (१४) अल्लाहु यस्तह्ज़िअु बिहिम् व
यमुद्दुहुम् फ़ी तुग़्यानिहिम् यअ्महून (१५) अुला'अिकल्-लजीनश्-तरवुज़्-ज़लालत
बिल्हुदा ॥ फ़मा रबिहत् तिजारतुहुम् व मा कानू मुह्तदीन (१६)
मसलुहुम् ला क मसलिल्-लजिस्तौक़द नारन् ज फ़लम्मा' अज़ा'अत् मा हौलहू
जहबल्लाहु बिनूरिहिम् व तरकहुम् फ़ी ज़ुलुमातिल्ला युब्सिरून (१७)
सुम्मुम्-बुक्मुन्-अुम्युन् फ़हुम् ला यर्जिअून ला (१८) औ क सय्यिबिम्-
मिनस्समा'अि फ़ीहि ज़ुलुमातुंव्व रअ़्दुंव्व बर्क़ुन् ज यज्अलून असाबिअहुम् फ़ी'
आजानिहिम् मिनस्सवाअिक़ि हज़रलमौति त वल्लाहु मुहीतुम्-बिलकाफ़िरीन (१९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही लोग अपने परवरदिगार (पालनेवाला-अल्लाह) की तरफ़ से हिदायत पर हैं[३४] और बामुराद (उद्देश्य प्राप्त) (पूरे) बामुराद तो बस यही हैं[३५]। (५) बेशक जो लोग कुफ़्र (अख़्तियार) किये हुए हैं[३६] उनके हक़ में यकसाँ है, चाहे आप उन्हें डरायें या आप उन्हें न डरायें[३७] वह ईमान न लायेंगे[३८]। (६) मुहर लगा दी है अल्लाह ने उनके दिलों पर और उनकी सुनवाई या सुनने की शक्ति पर[३९] और उनकी आँखों पर परदा है[४०] और उनके लिए बड़ा ही अज़ाब है[४१]। (७) ★

1 ★ रु. १/१ आ ७ ● व. लाज़िम

और कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो कहते हैं[४२] कि हम ईमान रखते हैं अल्लाह और रोज़े आख़िरत पर; हालाँकि वह (बिल्कुल ही) ईमानवाले नहीं[४३] ●। (८) धोका देते रहे अपने ख़याल में अल्लाह को और ईमानवालों को[४४], हालाँकि (सत्य यह है कि) धोका किसी को भी नहीं देते सेवाय अपने को[४५] और इसका भी एहसास नहीं करते[४६]। (९) इन लोगों के दिलों में बीमारी है[४७], सो अल्लाह ने बढ़ा दी उनकी बीमारी[४८] और उनके लिए अज़ाब दर्दनाक (होना) है इसलिए कि वह झूठ कहते थे[४९]। (१०) और जब उनसे कहा जाता है कि ज़मीन पर बिगाड़ मत फैलाओ[५०], तो कहते हैं कि अरे! हम तो सुधार करनेवाले हैं[५१]। (११) क्या ख़ूब! यही लोग तो बिगाड़ पैदा करनेवाले हैं —और यह इसका भी एहसास नहीं रखते[५२]। (१२) और जब उनसे कहा जाता है कि ईमान ले आओ, जैसा कि लोग ईमान लाये हैं[५३], तो कहते हैं[५४] कि क्या हम (ऐसा) ईमान ले आयें, जैसा कि कम-अक़्ल ईमान लाये हैं[५५]? क्या ख़ूब! कम-अक़्ल तो ख़ुद ही यही लोग हैं —और इसकी भी जानकारी नहीं रखते[५६]। (१३) और जब उन लोगों से मिलते हैं जो ईमान ला चुके हैं[५७], तो कहते हैं कि हम भी तो ईमान ला चुके हैं[५८]; और जब अपने शैतानों के पास अकेले होते हैं[५९], तो कहते हैं कि हम तो तुम्हारे साथ हैं[६०], हम तो केवल बना रहे थे[६१]। (१४) उन्हें अल्लाह बना रहा है[६२] और वह उन्हें ढील दे रहा है[६३], (तो) वह अपनी सरकशी (बग़ावत) में घूम रहे हैं[६४]। (१५) यह वह लोग हैं कि इन्होंने गुमराही ख़रीद ली हिदायत के बदले[६५], सो उनका व्यापार ही मुनाफ़े का न हुआ और न उनको रास्ता ही मिला[६६]। (१६) उनकी (अजीब) मिसाल तो उनकी-सी (अजीब) मिसाल है[६७] फिर जब आग ने अपने पास-पड़ोस में प्रकाश फैला दिया[६८], तो अल्लाह ने उनका प्रकाश छीन लिया और उनको अँधेरों में छोड़ दिया कि कुछ देखते-भालते नहीं[६९]। (१७) वह बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं[७०] तो अब वह वापस न होंगे[७१]। (१८) या फिर जैसे आसमान से ज़ोर का मेंह बरस रहा हो[७२], उसमें अँधेरे हैं और गरज और बिजली[७३], वह ठूँसे हुए हैं अपने कानों में उँगली, कड़क के कारण और मौत के भय से[७४]; हालाँकि अल्लाह घेरे हुए है काफ़िरों को[७५]। (१९)

---

३४ **सूरए फ़ातिहः** में बन्दों की ज़बान से हिदायत की माँग थी कि सीधा रास्ता दिखा। दुआ तुरन्त क़ुबूल हुई। हिदायत की किताब उतरी। अब यह फ़र्माया गया कि अमुक अमुक अलामतें (निशानियाँ) जिनमें पाई जायें वही हिदायत पाये हुए लोग हैं। इन लोगों की विशेषताएँ क़ुर्आन मजीद ही से मालूम हो चुकी हैं। (१) उनकी अन्तरात्मा ज़िन्दा होती है। उनके दिलों में ख़ुदा का भय होता है। (२) उनका एतिक़ाद (विश्वास) इस माद्दी दुनिया से परे एक छुपे हुए लोक (आलम) पर होता है। (३) उनका सम्बन्ध अल्लाह से क्रियात्मक रूप में यूँ ज़ाहिर होता है कि वह नमाज़ पढ़ते रहते हैं और नमाज़ का हक़ अदा करते रहते हैं। (४) अल्लाह की दी हुई नेमतों को यह अल्लाह के बन्दों पर सर्फ़ करते रहते हैं। (५) यह रसूल के सच्चे नबी होने और बेहतरीन शिक्षक एवं सीख देनेवाले और क़ुर्आन के अल्लाह की वाणी होने का यक़ीन रखते हैं। (६) वही की पूरी श्रृंखला (सिलसिला) तथा नबियों की व्यवस्था और तरतीब (क्रम) पर विश्वास करते हैं। (७) और उनको सम्पूर्ण रूप से आख़िरत या रोज़े जज़ा अर्थात् दूसरी दुनिया और क़यामत पर यक़ीन होता है।

३५ (दुनिया और आख़िरत दोनों में) दुनिया की भलाई तो यह कि उनको सिद्धि का रास्ता मिल

(देखें फ़ुटनोट सफ़ा ५५ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ५५ से)

फ़ितरत या प्रकृति हर मनुष्य को दी गई है और इस प्रकृति में सत्य की दलीलों को स्वीकार करने की क्षमता भी शामिल है। परन्तु जब मानव अपने इरादों तथा बुद्धि का दुरुपयोग करने लगता है और आसमानी शिक्षा एवं निर्देशों तथा ख़ुदा की निशानियों से मुँह मोड़ने लगता है और शैतान के क़ानूनों पर चलना शुरू कर देता है, तो अल्लाह के ग़ज़ब के सिलसिले में आ जाता है। वह नबियों की रहमत एवं मेहरबानियों के सिलसिले में ख़ारिज हो जाता है। अल्लाह की मदद उसका साथ छोड़ देती है। अब हर रौशनी और प्रकाश उसको अँधेरा और हर अँधेरा उसे प्रकाश दिखाई देने लगता है। उसने अपने लिए स्वयं जो कुछ अपना लिया, अल्लाह तआला उसे अपनी सृष्टि के क़ानून के अन्तर्गत वही देने लगता है और यह अल्लाह के क़ानून सबब और नतीजे के फलस्वरूप होता है, उसकी मर्ज़ी व मेहरबानी से नहीं और यही अर्थ है इन्सान के अक़्लोहवास पर मुहर लग जाने के, वरना ज़ाहिर है कि यह मुहर-ख़ुदाबन्दी कोई माद्दी चीज़ नहीं है। **क़ुलूबिहिम्** क़ल्ब से मतलब सीने के अन्दर का वह मांस का अंश नहीं है जो हकीमों के शब्दों में दिल कहलाता है, बल्कि यहाँ दिल से मतलब है एहसास, अक़्ल तथा इरादे का केन्द्र। इन्सानी बोलचाल में हर भाषा में दिल उसी को कहा जाता है और जो भी कार्य मनुष्य करता है उसी के इरादे से कार्यान्वित होता है। क़ुर्आन मजीद ने इन्सानी मुहावरों का ध्यान हर स्थान पर रखा है। कहीं भी ज्ञान-विज्ञान की विशेष टेक्नीकी शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। तौरेत तथा इंजील में भी दिल का यही अर्थ है।

४० (चुनांचे खुली हुई सत्य की दलीलें और रौशन आयतें जो अल्लाह की तरफ़ से हैं उन्हें दिखाई नहीं पड़तीं) यह सब फल है उन काफ़िरों के इरादा करके सच्चाई से मुँह फेरने और जान-बूझकर टेढ़ा रास्ता अपनाने का। अल्लाह तआला की ओर से इन कार्यों का जो सम्बन्ध है वह केवल क़ुदरती क़ानून की वजह से है, यानी हर कारण का नतीजा और हर नतीजे का कारण। जिस प्रकार ज़हर खा लेने से मौत होना अल्लाह के इरादे की एक आम बात है, उसी प्रकार बन्दे के ग़लत रास्ता अख़्तियार करने से रूहानी मौत हो जाती है। अल्लाह की मर्ज़ी का सम्बन्ध न प्रथम से है न द्वितीय घटना से है। क़ुर्आन की इस शैली की और समझ तथा बुद्धि, सुनने की शक्ति एवं देखने की ताक़त से सज़ा के रूप में वंचित होने की मिसालें पुरानी धार्मिक पुस्तकों में अक्सर मिलती हैं। "ख़ुदा ने तुमको वह दिल जो समझे, वह आँखें जो देखें और वह कान जो सुनें आज तक नहीं दिये" (इस्तिस्ना २९ तथा ४०)। तुम सुना करो पर समझो नहीं, तुम देखा करो पर पूछो नहीं— तो उन लोगों के दिल को चरबा दे और उनके कानों को भारी कर दे (असियाह १०, २९)। "वह नहीं जानते और नहीं समझते कि आँखें लीपी गईं सो वह देखते नहीं और उनके दिल भी सो वह समझते नहीं" (असियाह १८, २४)। "तुम्हारी आँखें जो कि बनी हैं मूँदी हैं और तुम्हारे सरों पर जो कि ग़ैब में हैं हिजाब (पर्दा) डाला है" (असियाह ७, २९)। "मैंने उन्हें उनके दिलों के बस में छोड़ दिया" (ज़बूर १, ११, १२)। इंजील में इस प्रकार की मिसालों के लिए अवलोकित हों, रोमियोन ७, ११, १८ और २ थिस्लुनीकोन २, ११।

४१ (आख़िरत में) इस्लाम लगातार ज़िन्दगी का क़ायल है। यह दुनियावी ज़िन्दगी कुल ज़िन्दगी का एक भाग है। इसके शेष भाग को आख़िरत में ही पाया जा सकेगा। आख़िरत की ज़िन्दगी इस दुनियावी ज़िन्दगी का अवशेष है और इसका परिणाम है और यहाँ की लगातार नाफ़र्मानी और क़ानून से मुँह मोड़ना अल्लाह की ओर से अज़ाब की शक्ल में ज़ाहिर होगा। गोया जो बीज आज बोये गये हैं, कल वह बड़े वृक्षों के रूप में प्रकट होंगे। **अज़ीम—** आख़िरत के अज़ाब के सख़्त एवं भयंकर होने में तो कोई सन्देह ही नहीं और क़ुर्आन शरीफ़ में उसे विभिन्न पैरायों एवं शैलियों में समझाया और बताया गया है। फिर भी उसकी विस्तृत स्थिति एवं उसके रूप को समझना मनुष्य की क्षमता से बाहर की चीज़ है।

४२ (केवल ज़बान से, दिल के सम्मिलित होने के बग़ैर) **अन्नास—** नास बहुवचन है इन्सान का और वास्तव में यह उनास है। **मिन्—** एक वचन, बहुवचन एवं स्त्रीलिंग तीनों मौक़ों पर यह शब्द प्रयोग में आता है। जब व्यक्ति से सम्बन्ध होता है तो इसका शाब्दिक अर्थ लिया जाता है और बहुवचन में इसके अर्थ पर ध्यान रखा जाता है। अब तक क़ुर्आन मजीद ने दो प्रकार के इन्सानों का ज़िक्र किया है, एक मोमिन, कहना माननेवाला, आज्ञाकारी और अल्लाह के क़ानून को माननेवाला; दूसरा काफ़िर, नाफ़र्मान, क़ानून-इलाही का न माननेवाला, इन्कार करनेवाला और बाग़ी। अब एक तीसरी प्रकार के इन्सान का ज़िक्र हो रहा है। यह भी काफ़िर और मुनकिर ही हैं, लेकिन अपने ख़ालिस कुफ़्र पर मक्र और फ़रेब का पर्दा डाले रहते हैं यानी ज़बान से इस्लाम का दावा करते हैं लेकिन दिल में ख़ालिस कुफ़्र होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इक़रार ऐसा है कि जिसमें दिल की गवाही किसी अंश की नहीं होती। ऐसे मानवता के दुश्मनों को इस्लाम की शरीअत के शब्दों में 'मुनाफ़िक़' कहा गया है। निफ़ाक़ की हक़ीक़त यह है कि इन्सान ऊपर से एलान करता फिरे भलाई का और बुराई तथा फ़साद को अन्दर ही अन्दर छुपाये रखे। फिर निफ़ाक़ की भी दा क़िस्में हैं। एक हक़ीक़ी निफ़ाक़ या एतक़ाद का निफ़ाक़, जिसमें सिरे से ईमान होता ही नहीं और उसकी सज़ा हमेशा के लिए जहन्नम है। दूसरा निफ़ाक़ अमली। उसमें ईमान हाज़िर नहीं होता और इन्सान गुनाह पर बेखटके चलता है और गुनाह का डर नहीं रखता। सूरए 'बक़र' मदनी है और मदीने में मुनाफ़िक़ों का बहुमत था। इस्लाम से अदावत और रसूल सल्लअम से दुश्मनी में यह लोग खुले हुए काफ़िरों से कुछ कम नहीं थे। शायद कुछ बढ़े ही हुए थे। निफ़ाक़ यानी झूठा इस्लाम मक्के में नहीं था बल्कि मक्के में इसके बरखिलाफ़ यह स्थिति थी कि लोग मोमिन होकर भी ईमान को छुपाये रखते और ज़ाहिर में काफ़िरों में शामिल रहते। निफ़ाक़ की बुनियाद मदीने में पड़ी। वह भी बद्र की लड़ाई के बाद जब इस्लाम को दिन ब दिन दुनियावी बड़ाई और शान प्राप्त होने लगी। उस वक़्त बाज़ लोगों ने ईमान का लेश मात्र दिल में न रखकर अपने को ऊपरी तौर पर मोमिन व मुस्लिम कहना शुरू कर दिया। इस पार्टी का सरदार खज़रज के क़बीले का सरदार अब्दुल्लाह बिन अबी बिन सलूल था। उसका प्रभाव क़बीला बनी आस पर भी था। यह अपने समय का बड़ा सफल लीडर था। यहाँ तक कि मदीने की सारी आबादी उसकी लीडरी और सरदारी पर सहमत थी। और क़रीब था कि उसकी बादशाहत का एलान हो जाये कि अचानक इस्लाम के क़दम मदीने में जम गये। जब उसने देखा कि उसकी दुकान उजड़ रही है तो लोगों से कहने लगा कि ज़बान से इस्लाम का कलमा पढ़ लो परन्तु दिल में अपना अक़ीदा जमाये रहो। ओस और खज़रज के अलावा यहूद को भी एक ग़द्दार और अन्तरात्मा को बेचनेवाली जमाअत ने खुशी से इस बात को मान लिया। मक्के का कोई मुहाजिर (मक्का से मदीने जानेवाले) इस बात में शरीक नहीं हुआ। इब्ने कसीर ने ब्योरावार लिखा है। **'आमन्ना'......अलआखिर'**— ईमान अल्लाह पर और ईमान आखिरत पर। यही दो अक़ीदे ईमान की जान हैं। अकेले खुदा और आखिरत पर ईमान, और रिसालत पर ईमान इन्हीं बुनियादी अक़ीदों की सबसे अहम कड़ी है।

४३ यानी उनके दिल में ईमान का गुज़र कण के बराबर भी नहीं है। ईमान उन्हें छू भी नहीं गया है। **'बिमुअ्मिनीन'**— अक्षर 'बा' ताकीद के लिए आया है।

४४ यानी केवल मुसलमानों से लाभ प्राप्त करने के लिए और उनकी पकड़ से बचने के लिए अपने को मुसलमान कह रहे हैं। और जुर्म यानी अपराध पर जो कुफ़्र के कारण है दूसरा जुर्म धोखा देने का भी कर रहे हैं। रसूल की रिसालत पर उनका ईमान ही कब था? यह तो उनको अपना ही जैसा एक साधारण मनुष्य समझ रहे थे और धोखे-धड़ी का मामला उनसे भी ऐसा ही रखना चाहते थे जैसे दुनिया में आम इन्सानों से रखा जाता है। क़ुर्आन मजीद ने पकड़ की और कहा कि देखो, बात कहाँ तक पहुँची है। यह तो सीधे अल्लाह को धोखा देने की कोशिश के बराबर है। यह भी हो सकता है कि खुद रसूल को धोखा देने की कोशिश को क़ुर्आन मजीद ने अल्लाह को धोखा देने के बराबर माना हो जैसा कि आगे की आयत से भी स्पष्ट हो रहा है। इस प्रकार की मिसालें और भी क़ुर्आन पाक में मिलती हैं। मौलाना थानवी ने कहा है कि अल्लाह वालों के साथ अदावत या फ़रेब करना ऐसा ही है जैसे अल्लाह के साथ करना।

४५ यानी उनके इस निफ़ाक़ या धोखा करने से किसी और को नुक़्सान न होगा स्वयं उन्हीं को नुक़्सान होगा। आखिरत में अज़ाब और दुनिया में रुस्वाई, बदनामी और मुनाफ़िक़त का पर्दा फ़ाश होगा तो बेइज़्ज़ती होगी।

४६ (कि इस धोखे का वबाल स्वयं उन्हीं पर होकर रहेगा।) **शअ्र**— बारीक और छुपी हुई चीज़ों को समझ लेने के गुण को कहते हैं। इस शब्द के प्रयोग का मंशा यह है कि धोखा देनेवालों को इस मक्रोफ़रेब से जो नुक़्सान पहुँच रहा है और पहुँचेगा, वह केवल माद्दी होने की भाँति स्पष्ट और साफ़ है। लेकिन यह नासमझ अपनी ग़फ़लत और भूल के कारण इसको महसूस नहीं करते।

४७ [कुफ़्र और निफ़ाक़ (कपट) की और शक की, जो उन्होंने अपने हाथों पैदा कर रखी है] दूसरा पहलू इन कम एतक़ादों की बीमारी का यह था कि जैसे-जैसे मुसलमानों को तरक़्क़ियाँ और सफलताएँ होती रहीं उनकी जलन और हसद में भी बढ़ोतरी होती रही। तफ़्सीर (अर्थ) करनेवालों ने यह पहलू भी समझ लिया है। **'मरज़ुन्'** शाब्दिक अर्थ यह है कि मनुष्य की अस्ली दशा से हटने की स्थिति। आत्मा की गन्दगी से भी यही अर्थ निकलता है और निफ़ाक़ तथा कुफ़्र को भी मरज़ ही समझा जाता है क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस मरज़ के कारण इन्सान अच्छी बातों के समझने और आख़िरत की ज़िन्दगी को सुधारने की क्षमता से महरूम हो जाता है।

४८ [इस्लाम के रसूल और उनकी पार्टी को और ज़्यादा तरक़्क़ियाँ देकर या अपने कलाम (निर्देशों) को लगातार अवतरित करके] मुनाफ़िक़ों के दिल के रोग को दो प्रकार से तरक़्क़ी मिलती रही। या तो यूँ कि जैसे-जैसे इस्लाम तरक़्क़ी और विजय प्राप्त करता रहा, उनके दिल की कुढ़न और जलन बढ़ती रही या यूँ कि क़ुरआन मजीद की हर-हर आयत के साथ उनके ग़ुस्से और जलन में बढ़ोतरी होती रही। **'फ़ज़ादहुम्'** में अक्षर 'फ़' बड़ा महत्व रखता है। यह इस बात का एलान है कि आगे जिस क्रिया का वर्णन होगा, वह केवल परिणाम और फलस्वरूप होगा। अल्लाह की ओर से इस प्रकार की क्रियाओं का सम्बन्ध मजाज़ी (उपमा-स्वरूप) हैसियत रखता है। यानी यह नहीं कि अल्लाह ने अकारण उनसे यह क्रिया करा लिया बल्कि उसने केवल ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिनसे इन अभागों ने अपनी बीमारी के बढ़ाने का काम लिया अन्यथा यदि वह अपनी बुद्धि और इरादे से सही काम लेते तो उनको कारणों और परिस्थितियों से सिद्धि एवं हिदायत की प्राप्ति भी हो सकती थी। यह सज़ा जो कुछ मिली, उनके अपराध के अनुकूल ही मिली। इस प्रकार की क्रियाओं का प्रयोग और उसका सम्बन्ध अल्लाह से होने का ज़िक्र पुरानी धार्मिक पुस्तकों का भी मुहावरा है। "इस्राईल ने मुझे न चाहा तब मैंने उन्हें उनके दिलों की सरकशी (बग़ावत) के बस में छोड़ दिया" (ज़बूर—८, ९, ११)। "बस ख़ुदा ने मुँह मोड़कर उन्हें छोड़ दिया कि आसमानी फ़ौज को पूजें"— (आमाल ७, ४२)। "ख़ुदा ने उनके दिलों की ख़्वाहिश के मुताबिक़ उन्हें नापाकी में छोड़ दिया कि उनके बदन आपस में बेहुरमत (बेइज़्ज़त) किये जायें" (रोमियों—१, ४)।

४९ यानी अपने मोमिन होने का झूठा दावा करते थे। यह 'अज़ाबे अलीम' जिसका यहाँ ज़िक्र है, मुनाफ़िक़ों पर केवल उनके कुफ़्र पर नहीं बल्कि उनके धोखे या झूठे ईमान पर होगा। काफ़िरों के लिए जिस अज़ाब की ख़बर ऊपर दी जा चुकी है (आयत ७ में) उसका गुण अज़ीम (बड़ा) आया है और यहाँ अलीम है जिसका अर्थ है दुख पहुँचानेवाला। गोया कष्ट और दुख का पहलू इसमें अधिक स्पष्ट है। ख़ूब समझ लिया जाये कि जो मुनाफ़िक़ थे वह काफ़िर तो थे ही, लेकिन इसके अलावा वह धोखेबाज़, झूठे भी थे। अज़ाब तो कुफ़्र की वजह से हुआ और मुनाफ़िक़त के कारण उनका अज़ाब और बढ़ गया। यानी मुनाफ़िक़ों पर दोनों प्रकार के अज़ाब होंगे। मुनाफ़िक़ों और धोखेबाज़ों से इंजील का सम्बोधन इस प्रकार है:— "तुम पर अफ़्सोस है कि तुम सफ़ेदी फिरी क़ब्रों के मानिन्द हो, जो ऊपर से ख़ूबसूरत दिखाई देती हैं मगर अन्दर मुर्दों की हड्डियों और हर प्रकार की नजासत (नापाकी) से भरी हुई हैं" (मत्ती—४३, ३७)। और यहूद के शेख़ों तथा सरदारों के शब्दों में उनकी जिविश इन्साइक्लोपीडिया में यूँ लिखा हुआ है— "जो औलिया की सोहबत में मुनाफ़िक़त के साथ रहते हैं ख़ुदा उन्हें ग़ारत करके रहे... जो कोई मुनाफ़िक़त बरतता है, वह ग़ज़ब ख़ुदाबन्दी दुनिया पर लाता है। उसकी दुआएँ क़ुबूल नहीं होतीं और जो बच्चे अभी माँ के गर्भ में हैं वह तक उसको धिक्कार करते हैं और उसकी जगह जहन्नम है।" (एवरी मैन्स तालमूद १०७)।

५० इससे मालूम हुआ कि शरीअत के क़ानून के अलावा किसी जाहिली दीन पर बने रहना और उसके तौर-तरीक़ों का प्रचार करना ज़मीन पर फ़साद फैलाने के बराबर है। दुनिया में अमन शान्ति जब ही रह सकती है और सारी इन्सानी जातियों में व्यवस्था उसी समय बनी रह सकती है, जब शरीअत के क़ानूनों पर अमल दरआमद हो। इस राह से हटना दुनिया में अव्यवस्था, बुराई, बेहयाई, ख़ून-ख़राबा, अत्याचार, हक़ मारना और हर प्रकार की आपसी लड़ाई और तनाव को दावत देना है। दुनिया इस बात का बराबर अनुभव कर चुकी है और इस समय भी कर रही है। **'व इज़ा क़ील लहुम्'** इस बात का क़ायल कौन था? बाज़ ने इसका क़ायल रसूल सल्लअम को माना है और बाज़ ने आम मोमिनों (ईमान वालों) को और किसी ने अल्लाह तआला को। शब्दों में इन सबकी गुंजाइश है। 'फ़साद' अरबी में उर्दू से ज़्यादा फैलाव रखता है। यह एक ही नहीं हर प्रकार की बुराई पर हावी है।

५१ (और उल्टा हम ही पर इल्ज़ाम, फ़साद और ख़राबी पैदा करने का लग रहा है) जवाब बिल्कुल वही है जो आज भी उम्मत के अन्दर कितने ही मुनाफ़िक़ों की ज़बान पर है। दीन में क़दम-क़दम पर विघ्न डाले जाते हैं और ज़बान पर दावा है सुधार, निर्माण एवं सरे नौ से बनाने का। **'नह्नु मुस्लिहून'** के ख़ास अर्थ यही हैं कि यह लोग ज़बानी दावा अपने सच्चे दीन पर जमे रहने का रखते थे। दूसरे माने यह भी हैं कि हम तो लोगों के बीच सुलह करानेवाले हैं। मुहम्मदी और ग़ैरमुहम्मदी के बीच जो तनाव है उसके मिटानेवाले हैं। **'इन्नमा'** उर्दू में ज़ोर देने के लिए "अरे" से यही अर्थ पैदा करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५२ (कि बिगाड़ तो सारा उन्हीं के कारण फैल रहा है) क्या ठिकाना है इस बिगड़े हुए दिमाग़ का कि सियाही को सफ़ेदी कह रहे हैं और अपनी जिहालत का एहसास नहीं करते। **'अला'** अरबी में चेतावनी देने का शब्द है "ख़बरदार रहो" के अर्थ में आता है। "क्या ख़ूब" से उर्दू में इसका अर्थ अदा हो जाता है।

५३ (इस्लाम और इस्लाम के रसूल पर सच्चे दिल के साथ) ईमान का दावा तो अब भी उन लोगों को था। समझानेवालों का मतलब यह था कि ईमान दिल से लाओ। सच्चाई के साथ रसूल की रिसालत को मानो। **'अन्नासु'** से यहाँ सारी मानव जाति का संकेत नहीं है बल्कि वह लोग हैं, जो सम्बोधित होनेवालों में विशेषता रखते थे। रिवायतों (बयानों) में अब्दुल्लाह बिन सलाम आदि सच को पहचाननेवाले यहूद के नाम आये हैं, जिन्होंने इस्लाम की सच्चाई को मान लिया था। यह भी उचित है कि **'अन्नासु'** को मुकम्मल इन्सान का अर्थ दे दिया जाये और यह मान लिया जाये कि वह लोग जो इन्सानियत में कामिल हैं, उनकी तरह ईमान लाओ। इससे यह भी संकेत होता है कि जो इन्कार करनेवाले हैं वह चौपाये हैं, अगर्चे देखने में मनुष्य हैं।

५४ (उसके जवाब और अपनी सफ़ाई में)

५५ यह एक प्रकार का ताना दिया गया है उस समय के पक्के और सच्चे मुसलमानों पर और रसूल के साथियों पर। यही सुन्नत आज तक चली आ रही है। आज भी ईमानवालों को 'प्रतिक्रियावादी', 'पुरानी विचारधारा वाले' और इसी प्रकार की पदवियों से याद किया जाता है।

५६ क्या ठिकाना है उनकी बेवक़ूफ़ी का। पहले फ़साद फैलाने को ही सुधार कहते थे और अब बेअक़्ली को अक़्ल और दूरदर्शिता कहते हैं। ईमानी सच्चाइयों से इन्कार करने का एक वबाल यह भी पड़ता है कि अक़्ल मारी जाती है और हर सीधी चीज़ उलटी दिखाई देती है। **'सफ़ीह'** उस कम-अक़्ल को कहते हैं, जिसको अपने हानि-लाभ की पूरी तमीज़ ही न हो। यहाँ पर यही ज़ोर दिया गया है कि मुनाफ़िक़ कितने कम-अक़्ल हैं कि अपने नफ़ा-नुक़्सान में तमीज़ नहीं करते।

५७ (और जो लोग प्रभावशाली और बड़े भी हैं) जैसे हज़रत अबूबकर जो जाहिलीयत के ज़माने में एक बड़े व्यापारी थे और अब ईमान ला चुके थे।

५८ (और आप ही जैसे मुसलमान हैं) यह बात यह लोग प्रभावशाली मुसलमानों को ख़ुश करने को कहते थे। मुनाफ़िक़ लोगों की एक यह भी ज़ेहनीयत थी कि ग़रीब और साधारण मुसलमानों के सामने तो अकड़ते थे, परन्तु जो बाअसर मुसलमान थे उनके आगे झुक जाते थे और उनकी ख़ुशामद करते थे। मुनाफ़िक़ों की मनोवृत्ति ऐसी होती ही है।

५९ यानी अपने शरारती मित्रों या सरदारों के पास। **'शयातीनिहिम्'** 'शतन' से बना है, जिसका अर्थ है सच्चाई और नेकी से दूरी। शैतान के अरबी में बड़े विशाल अर्थ हैं। हर सरकश और भड़काने वाले को शैतान कहते हैं। इन्सान, जिन और पशुओं पर भी यह अर्थ आ सकता है। अगर्चे शैतान एक नाम के रूप में इब्लीस को कहते हैं। शैतान के एक मानी इन्सान के व्योहारिक तथा मानसिक रोग के भी आते हैं और इस शब्द का यह प्रयोग हदीस में भी आया है। परन्तु यहाँ शयातीन का अर्थ यहूद के रईसों और मुनाफ़िक़ों का है, जो अपनी सरकशी और शरारत से स्वयं ही शैतान बने हुए थे। एक अर्थ यह भी होता है कि जब अपने भड़कानेवालों से यह लोग मिलते हैं। **'ख़लौ इला'** ख़ला का सिला जब इला आता है, तो मानी होते हैं किसी के साथ अकेले होना, या अकेले में मिलना।

६० (अपने अस्ली अक़ीदे और विचारों में) यानी हम मुसलमानों के साथ तो केवल दिखाने के लिए हैं और यह एक चाल है कि हम स्वयं को मुसलमान कहते हैं अन्यथा सत्य यह है कि हम तुम्हारे ही धर्म पर हैं।

६१ (उन मुसलमानों को और उनके पयम्बर और उनके साथियों को) इसका अर्थ यह हुआ कि मुनाफ़िक़ीन (जाहिर में मुसलमान और अन्दर से काफ़िर) जब अकेले में अपने सरदारों से मिलते हैं, तो कहते हैं कि हम दिलोजान से तो आप ही के साथ हैं और मुसलमानों को बनाने के लिए उनकी ऐसी कह देते हैं। **'इस्तह्ज़ा'** का अर्थ है हँसी उड़ाना और बनाना।

६२ (यानी उनके बनाने और हँसी उड़ाने को उन्हीं पर पलटे देता है। हँसी और हँसी उड़ाने का जिक्र बारी तआला की ज़ात के साथ पुरानी धार्मिक पुस्तकों में भी आता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६३ (अपने दुनियावी नियम के अनुसार) ख़ुदा ने बन्दों को जो आज़ादी और अख़्तियार दे रखा है, उसमें वह अकारण दखल नहीं देता। साँप को काटने की, ज़हर को मार डालने की, आग को जलाने की इजाज़त इसी नियम के अन्तर्गत है।

६४ यह स्वयं एक अर्थ है अल्लाह की हँसी उड़ाने का। **'अमहुन'** उस दशा को कहते हैं कि इन्सान को रास्ता सुझाई न दे और वह अन्धों की तरह टटोलता और हाथ-पाँव मारता फिरे। अल्लाह की (वही) ईश्वर-वाणी से वंचित रहना बड़े-बड़े अक़्लमन्दों की भी यही हालत कर देता है। अपनी सीमित अक़्ल के सहारे वह चारों ओर हाथ-पैर मारता है। नाना प्रकार के दृष्टिकोण, नियम और उसूल बनाता है। हर प्रकार का विचार और ख़याल तथा आभास करता है परन्तु खुला हुआ रास्ता जिससे उसको शान्ति हो और उसका हृदय शान्ति पाये, उसे दिखाई नहीं देता; वह शक, सन्देह और भ्रम-जाल में और वहम के दलदल में धँसता रहता है।

६५ उनकी बदनसीबी की इन्तिहा है कि उन्होंने ईमान, हिदायत और अल्लाह की पहचान जैसी अनमोल चीज़ के बदले में कुफ़्र और गुमराही का सौदा किया। **'इश्तरौ'** का अर्थ है खरीदना या किसी वस्तु के बदले में लेना। ईमान को स्वीकार करना उन मुनाफ़िक़ों के अख़्तियार में था परन्तु उसके बदले उन्होंने कुफ़्र का रास्ता अपनाया। अरब के बाशिन्दों का व्यापार ख़ूब फैला हुआ था और तिजारत के शब्द उनकी भाषा का अंश बन गये थे जैसा कि अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग आजकल हो रहा है।

६६ (और होते भी कैसे जब कि अपनी इरादे की शक्ति और निर्णय की ताक़त बरबाद करके गुमराही की ख़रीदारी कर रहे थे। तिजारत का अर्थ यह होता है कि मूलधन सुरक्षित रहे और नफ़े का धन बढ़ता रहे। नफ़े का तो क्या ज़िक्र, यहाँ मुनाफ़िक़ काफ़िरों ने अक़्ले-सलीम यानी अपनी सही बुद्धि ही बरबाद कर डाली।

६७ (महरूमी और हानि के विचार से) **अल्लज़ी,** शब्द के लिहाज़ से एक वचन है परन्तु अर्थ बहुवचन का है।

६८ यानी मसले और सच्चाइयाँ पूर्णरूपेण स्पष्ट और साफ़ हो गईं।

६९ (और तरह-तरह से ठोकरें खा रहे हैं) मतलब केवल यह है कि मुनाफ़िक़ों का भीतरी प्रकाश छिन गया है। यह वह लोग थे जिनके दिलों में सच्चाई की तलब क़तई नहीं थी और इस्लाम के क़ानून के मुक़ाबले में वह इन्कार और विरोध का रास्ता अपनाये हुए थे, लेकिन बहुत छोटी और तुच्छ विचार से ज़बानों से इस्लाम का नाम लिये जाते थे। यहाँ अल्लाह फ़र्माता है कि जब सच्चाई और हक़ की आग पूरी तरह प्रकाशित हो गई और हिदायत तथा अल्लाह की पहचान की रौशनी हर तरफ़ फैल गई, तो बजाय इसके कि स्वयं अपनी अन्दरूनी रौशनी से लाभ उठाते, उन्होंने उसे बरबाद कर दिया और उस प्रकाश से वंचित हो गये। इस प्रकाश का समाप्त होना अल्लाह की ओर से केवल एक क़ुदरती नियम की भाँति है। यानी जब मुनाफ़िक़ों ने अल्लाह की दावत को स्वीकार नहीं किया और गुमराह रहना चाहा, तो दुनियावी नियम के अनुसार उनको वही नतीजा मिला। इसका यह अर्थ नहीं है कि ख़ुदा ने उनका प्रकाश समाप्त किया।

७० यानी हक़ की आवाज़ गोया सुनते ही नहीं और हक़ के कलमे और ईमान की ध्वनि बोलने से उनकी ज़बान गोया गूँगी है और सत्य को देखने को गोया उनकी आँखें अन्धी हो चुकी हैं और यह सब कुछ उन्होंने जान-बूझकर गुमराही अख़्तियार करके पाया है।

७१ झूठ-ग़लत से सत्य की ओर, कुफ़्र से ईमान की ओर, अँधेरे से रौशनी की ओर न आयेंगे।

७२ मदीने के मुनाफ़िक़ों के दो ग्रुप थे। एक तो वह जो सर से पैर तक कुफ़्र में डूबे हुए थे, ईमान से कोई वास्ता ही न था। दूसरा ग्रुप ऐसा था, जो बिलकुल ही इन्कार तो नहीं करते थे, बल्कि आजकल के शोधकर्ताओं की तरह शक करनेवालों और सन्देह करनेवालों में थे। इस्लाम की सफलता देखकर पहले कुछ पग उसके साथ चलते फिर पीछे हट जाते थे। इस आयत में इसी प्रकार के मुनाफ़िक़ों की बयान हुई है। उपमा में इस्लाम के उदय होने की ओर संकेत किया गया है। **सय्यब** का अर्थ है वर्षा। **(अस्समा)**— इसका अर्थ है बादल।

७३ इशारा है उन परेशानियों और मुसीबतों की ओर, जो शुरू इस्लाम में उम्मत को बरदाश्त करनी पड़ीं। यह भी हो सकता है कि वह शरा (दीन-इस्लाम का क़ानून) इसका अर्थ हो, जो इस्लाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के प्रचार के पश्चात् मुनाफ़िक़ों पर भी लागू हो जाती थीं, जैसे कि नमाज़, जिहाद, पुरानी रईसी की बातों की समाप्ति और रसूल के आदेशों का पालन इत्यादि।

७४ यह कानों में उँगली ठूँसनेवाले वही अँधेरों में चलनेवाले हैं अर्थात् मुनाफ़िक़ और ऐसे लोग जो दोनों ओर रहते थे। मतलब यह है कि यह लोग अपनी कायरता, साहस न होने और गन्दी प्रवृत्ति के कारण हर समय ख़तरे में ही रहते थे। यह भी अर्थ लगाया गया है कि मुनाफ़िक़ क़ुर्आन मजीद के बयानों और आदेशों के स्पष्टीकरण को सुनने से ही बचना चाहते थे और कानों में उँगलियाँ दे लेते थे, इस भय से कि कहीं उन पर उसका असर न हो जाये और उनको इस्लाम को स्वीकार करना ही पड़ जाये। अल्मौत— मौत आम विचारानुसार जीवन की समाप्ति है, परन्तु क़ुर्आन उसे ज़िन्दगी की ही तरह एक अस्थायी अस्तित्व कहता है और अहल-सुन्नत यानी रसूल के रास्ते पर चलनेवाले इसका यही अर्थ लगाते और यही मानते हैं।

७५ (अपने इल्म से, क़ुदरत से, हर प्रकार) काफ़िर उसकी पकड़ से बचकर कहाँ जा सकते हैं। उसके सामने उनकी सारी तदबीरें, हीले, बहाने व्यर्थ हैं, जैसे कि किसी घेरे से वह वस्तु बच नहीं सकती जो उसके घेरे में आ गई। मौलाना थानवी ने कहा है कि अल्लाह अपनी पैदा की हुई हर वस्तु— जानदार, बेजान पर केवल अपनी जानकारी से ही नहीं बल्कि निजी रूप में घेरा डाले हुए है, जिसे महसूस नहीं किया जा सकता है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ६५ से आगे)

कि अस्ल प्रभावकारी केवल अल्लाह का इरादा है और ज़ाहिरी कारणों से जो असर उत्पन्न होता है, वह केवल अल्लाह की मर्ज़ी से होता है। स्वयं कुछ नहीं होता।

७६ (अतः वह अल्लाह उस पर पूरी शक्ति रखता है और अब भी यही कर सकता) **'क़दीरुन्'** बढ़ाकर बयान किया है, अर्थ यह है कि इस्लाम में ख़ुदा को हर चीज़ पर सम्पूर्ण रूप से क़ादिर अर्थात् शक्तिशाली माना गया है। वह मिस्री, यूनानी तथा हिन्दी ख़ुदा की भाँति सीमित शक्तियों का ख़ुदा नहीं है। अभी इशारा हुआ है कि ख़ुदा की यह मर्ज़ी नहीं है कि बन्दों के अधिकार समाप्त रखकर उनको बनाये रखा जाये। अब यह फ़र्माया गया कि अल्लाह की शक्ति किसी से विवश नहीं। उसका इरादा हर क़ानून पर भारी है। उसकी मुकम्मल शक्ति पर कोई धोखा न होना चाहिए।

८० क़ुर्आन मजीद सारी दुनिया को सम्बोधित करता है, कोई विशेष नस्ल, जैसे कि बनी इस्राईल (इसराईलियों की क़ौम) या और कोई विशेष क़ौम जैसे कि 'अरब' नहीं है। सम्बोधन करने की यह विध स्वयं एक दलील है उसके आम होने की और क़ुर्आन मजीद के विश्वव्यापी सम्बोधन की ओर पिछले दो रुकूओं में तीन प्रकार के विश्व के विभाजन का वर्णन हो चुका है यानी मोमिन (ईमानवाले), काफ़िर (नास्तिक) तथा मुनाफ़िक़ (जो पूरी तरह न इधर हैं न उधर)। अब सम्पूर्ण मानव जाति को सम्बोधन करने का अन्दाज़ आरम्भ हो रहा है।

८१ क़ुर्आन मजीद के अस्ल सन्देश का आरम्भ गोया कि अब हो रहा है और उसका प्रथम विषय है तौहीद (अद्वैत) का मसला क्योंकि वही जड़ है सारे इस्लामी अक़ीदों और मसलों की। **'रब्बकुम्'** अल्लाह के नामों में यहाँ सबसे पहले 'रब' का प्रयोग इस बात की दलील है कि अल्लाह के गुणों में रबूबियत (पालने-वाले) को कितना महत्व है।

८२ (अकेले बिना किसी की सहायता या मदद के) **'ख़लक़कुम्'** पैदा करना केवल ख़ुदा का काम है। बराबरी करना तो अलग रहा उसके सहायक और साथ देनेवाले की भी इस कार्य में कोई शिर्कत नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी बल दिया गया है कि सृष्टि की रचना हुई है। 'न होने से होने' की स्थिति में आई है। यह नहीं कि पहले से कोई सृष्टि का अंश मौजूद था और अल्लाह ने उसकी सूरत में कोई विशेष गुण या व्यवस्था उत्पन्न कर दी। झूठे धर्मों की काट इसी से होती है।

८३ (बस अल्लाह होने और इबादत के योग्य केवल एक है, जो तुम्हारा पालनेवाला भी है और तुमको पैदा करनेवाला भी) **'अल्लज़ीन मिन् क़ब्लिकुम्'** इससे पिछली नस्लों का अर्थ होना तो स्पष्ट है ही, लेकिन हो सकता है, मानव जाति की उत्पत्ति के पूर्व भूमि पर कोई अन्य जाति आबाद हो जैसा कि तौरेत में अंकित है। क़ुर्आनी शब्द इन सभी सम्भावी जातियों को घेर लेता है। "तुमको (यानी तुम जो इस वर्तमानकाल में मौजूद हो) और तुमसे पूर्व वालों को (यानी जो भूतकाल में रहे हों)" यह दो शब्द

(फ़ुटनोट सफ़ा ६६ पर देखें)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यकादुल्बर्क़ु यख़्तफ़ु अब्सारहुम् त कुल्लमा' अज़ा'अ लहुम् मशौ फ़ीहि क़ ला
★ रु. २/२ आ १३ व अिज़ा' अज़्लम अलैहिम् क़ामू त व लौ शा'अल्लाहु ल जहब बि सम्अिहिम्
व अब्सारिहिम् त अिन्नल्लाह अला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन् (२०) ★ या'
अय्युहन्नासुऽबुदू रब्बकुमुल्लजी ख़लक़कुम् वल्लजीन मिन् क़ब्लिकुम् लअल्लकुम्
तत्तक़ून ला (२१) अ्ल्लजी जअ़ल लकुमुल्अर्ज़
फ़िराशंव्वस्समा'अ बिना'अन् स व्व अन्ज़ल
मिनस्समा'अि मा'अन् फ़अख़्रज बिही
मिनस्समराति रिज़्क़ल्लकुम् ज फ़ला तज्अलू
लिल्लाहि अन्दादंव्व अन्तुम् तअ्लमून (२२)
व अिन् कुन्तुम् फ़ी रैबिम्मिम्मा नज़्ज़लना
अला अब्दिना फ़अ्तू बिसूरतिम् - मिम् -
मिस्लिही स वद्अू शुहदा'अ - कुम्
मिन्दूनिल्लाहि अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन (२३)
फ़अिल्लम् तफ़्अलू व लन् तफ़्अलू
फ़त्तक़ुन्नारल्लती वक़ूदुहन्नासु वल्हिजारतु ज सला
अुअिद्दत् लिल्काफ़िरीन (२४) व
बश्शिरिल्लजीन आमनू व अमिलुस्सालिहाति
अन्न लहुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिहल्-
अन्हारु त कुल्लमा रुज़िक़ू मिन्हा मिन्

الم ١ ٥ البقرة ٢

بالكفرين ﴿١٩﴾ يكاد البرق يخطف ابصارهم كلما اضاء لهم مشوا فيه و
اذا اظلم عليهم قاموا ولو شاء الله لذهب بسمعهم وابصارهم ان
الله على كل شيء قدير ﴿٢٠﴾ يايها الناس اعبدوا ربكم الذى خلقكم ع ٢
والذين من قبلكم لعلكم تتقون ﴿٢١﴾ الذى جعل لكم الارض فراشا
والسماء بناء وانزل من السماء ماء فاخرج به من الثمرت رزقا
لكم فلا تجعلوا لله اندادا وانتم تعلمون ﴿٢٢﴾ وان كنتم فى ريب مما
نزلنا على عبدنا فاتوا بسورة من مثله وادعوا شهداءكم من
دون الله ان كنتم صدقين ﴿٢٣﴾ فان لم تفعلوا ولن تفعلوا فاتقوا
النار التى وقودها الناس والحجارة اعدت للكفرين ﴿٢٤﴾ وبشر الذين
امنوا وعملوا الصلحت ان لهم جنت تجرى من تحتها الانهر كلما
رزقوا منها من ثمرة رزقا قالوا هذا الذى رزقنا من قبل واتوا
به متشابها ولهم فيها ازواج مطهرة وهم فيها خلدون ﴿٢٥﴾ ان الله
لا يستحى ان يضرب مثلا ما بعوضة فما فوقها فاما الذين امنوا
فيعلمون انه الحق من ربهم واما الذين كفروا فيقولون ماذا اراد
الله بهذا مثلا يضل به كثيرا ويهدى به كثيرا وما يضل به الا وقف لازم
الفسقين ﴿٢٦﴾ الذين ينقضون عهد الله من بعد ميثاقه ويقطعون ما
امر الله به ان يوصل ويفسدون فى الارض اولئك هم الخسرون ﴿٢٧﴾

منزل ١

समरतिर्रिज़्क़न् ला क़ालू हाजल्लजी रुज़िक़्ना मिन् क़ब्लु ला व अुतू बिही
मुतशाबिहन् त व लहुम् फ़ीहा' अज़्वाजुम् - मुतह्हरतुन् क़ ला व्व हुम्
फ़ीहा ख़ालिदून (२५) अिन्नल्लाह ला यस्तह्यी' अंय्यज़्रिब मसलम्मा
बअूज़तन् फ़मा फ़ौक़हा त फ़अम्मल्लजीन आमनू फ़ यअ्लमून अन्नहुल्हक़्क़ु
मिर्रब्बिहिम् ज व अम्मल्लजीन कफ़रू फ़ यक़ूलून माजा' अरादल्लाहु बि हाजा
● व. ला जि म मसलन् म ● युज़िल्लु बिही कसीरन् ला व्व यह्दी बिही कसीरन् त व
मा युज़िल्लु बिही' अिल्लल् - फ़ासिक़ीन ला (२६) अ्ल्लजीन यन्क़ुज़ून
अह्दल्लाहि मिम्बअ्दि मीसाक़िही स व यक़्तअून मा' अमरल्लाहु
बिही' अंय्यूसल व युफ़्सिदून फ़िल्अर्ज़ि त अुला'अिक हुमुल्ख़ासिरून (२७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

 1

क़रीब है कि बिजली उनकी देखने की शक्ति ही उचक ले जाये[७६], वह जब उन पर चमकती है, तो उसकी रौशनी में चलते हैं[७७] और जब उन पर अँधेरा हुआ (तो बस) खड़े रह जाते हैं; अल्लाह अगर चाहता तो उनके कान और देखने की शक्ति समाप्त कर देता[७८]। बेशक अल्लाह हर चीज़ पर पूर्ण अधिकार (क़ुदरत) रखता है[७९]। (२०) ★ ★ रु. २/२ आ १३

ऐ इन्सानो[८०]! इबादत (अख़्तियार) करो अपने पालनेवाले की[८१]; जिसने तुम्हें पैदा किया[८२] और तुमसे पहले वालों को (भी)[८३], अजब नहीं कि तुम उपासक (परहेज़गार) बन जाओ[८४]। (२१) वह वही (पालने-बनानेवाला) है, जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन को एक फ़र्श और आसमान को एक छत बना दिया[८५] और आसमान से पानी उतारा[८६], फिर तुम्हारी ग़िज़ा के लिए फल पैदा किये[८७]। सो तुम अल्लाह के बराबर न ठहराओ[८८] और तुम जानते (बूझते) भी हो[८९]। (२२) और अगर तुम उस (किताब) के विषय में सन्देह में हो[९०] जो हमने अपने बन्दे पर उतारी है[९१], तो कोई एक सूरत इस जैसी तुम भी ले आओ[९२]। और अपने हिमायतियों और साथ देनेवालों को भी अल्लाह के मुक़ाबिले में बुला लो[९३], अगर तुम सच्चे हो[९४]। (२३) और अगर तुम (यह) न कर सको और कदापि न कर सकोगे[९५] तो फिर आग से डरो[९६], जिसका ईंधन आदमी और पत्थर हैं[९७] (और) वह काफ़िरों के लिए तैयार की हुई है[९८]। (२४) और उन लोगों को शुभ समाचार सुनाइये, जो ईमान लाये और जिन्होंने नेक अमल किये[९९] कि उनके लिए (जन्नत) के बाग़ हैं, कि उनके नीचे नदियाँ बह रही होंगी[१००]; उन्हें उनमें से जब कोई फल खाने को दिया जायेगा, तो वह बोल उठेंगे[१०१] कि यह तो वही है जो हमें (इससे पहले) मिल चुका है[१०२] और उन्हें वह वास्तव में दिया ही जायेगा मिलता-जुलता हुआ[१०३] ख़ूब साफ़, स्वच्छ और पवित्र, जिस्म, रूह और आत्मा से— और उनके लिए उसमें पाकीज़ा बीवियाँ होंगी[१०४] और वह (उन बहिश्तों) में हमेशा के लिए होंगे[१०५]। (२५) अल्लाह इससे ज़रा नहीं शरमाता[१०६] कि मिसाल बयान करे मच्छर तक की या उससे भी बढ़कर (किसी और चीज़ की)[१०७], सो जो लोग ईमान लाये वह तो यही समझेंगे कि वह (मिसाल) आवश्यक रूप से सत्य है उनके पालने वाले की ओर से[१०८], अल्बत्ता जो लोग कुफ़्र अख़्तियार किये हुए हैं, वह यही कहते रहेंगे[१०९] कि अल्लाह का इस मिसाल से मतलब क्या था[११०] ●। गुमराह भी करता है बहुतों को इसी से[१११] और राह भी दिखाता है बहुतों को इसी से[११२]। हाँ, वह गुमराह किसी को (भी) उससे नहीं करता सिवाय बेहुक्मी करनेवालों के[११३]। (२६) जो अल्लाह से अपने मुआहिदे को उसके पक्के होने के बाद तोड़ते हैं[११४] और जिस चीज़ को अल्लाह ने हुक्म दिया था जोड़े रखने का, उसे काटते हैं[११५] और ज़मीन में फ़साद फैलाते हैं[११६], बस यही लोग तो हैं घाटे में रहनेवाले[११७]। (२७) ● व. ला जि म

---

७६ (और उनकी आँखें चकाचौंध होकर रह जायेंगी) यहाँ उपमा के रूप में बयान हो रहा है कि इस्लाम की उन्नति और शान से मुनाफ़िक़ों की आँखें चकाचौंध हुई जा रही हैं।

७७ यानी जब इस्लाम की दुनियावी विजय देखते हैं, तो मुनाफ़िक़ों के क़दम घबराहट में इस्लाम की ओर बढ़ते हैं। सत्य की तलब और इच्छा तो उनके दिल में होती ही नहीं। हाँ, रोब में आकर कुछ समय के लिए वह इरादा करते हैं। लेकिन जब मुसलमानों को परेशानी पेश आती है, तो फिर ठिठककर रह जाते हैं। उनका विश्वास डगमगा जाता है और उनके बढ़ते हुए क़दम रुक जाते हैं। मौलाना थानवी ने कहा है कि ख़ुदा की राह पर चलनेवाला भी ऐसा ही है, जो बैठकर इबादत करता है और परेशान होता है तो छोड़कर बैठ जाता है।

७८ (जैसा मामला कि बाज़ अगली जातियों और क़ौमों के साथ हो चुका है) तौरेत में है— "जब वह उसकी तरफ़ उतरे तो 'अल्यसअ़' (पयम्बर) ने ख़ुदा से दुआ माँगी और कहा, मेहरबानी करके उन लोगों को अन्धा कर दीजिये, सो उसने जैसा कि 'अल्यसअ़' ने कहा था उनको अन्धा कर दिया।" यानी ख़ुदा की मस्लहत अगर यही होती, तो दुनिया का नियम भी यही होता। इससे यह भी स्पष्ट हो गया

(फ़ुटनोट सफ़ा ६३ पर देखें)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ६३ से)

लाकर क़ुर्आन ने इशारा इधर भी कर दिया कि तौहीद (अद्वैत) का पाठ भूत एवं वर्तमान, इतिहास एवं जो हम देख रहे हैं, दोनों से प्राप्त किया जा सकता है।

८४ [कि तौहीद (ख़ुदा को एक मानना) ही से सत्य तक पहुँचना सम्भव है] **'लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून'** का अर्थ यह भी हो सकता है, "ताकि तुम इस प्रकार बच जाओ।" (अपने पालनेवाले से) **'लअ़ल्'** सन्देह को प्रकट करने और आशा की इच्छा के लिए आता है, लेकिन क़ुर्आन मजीद में जहाँ अल्लाह की तरफ़ से अदा हुआ है तो इससे शक तथा इच्छा के स्थान पर विश्वास का अर्थ पैदा होता है। "ताकि" के माने भी अदा होते हैं।

८५ आयत के इस टुकड़े की जान **'जअ़ल लकुम्'** है, जिसका अर्थ ज़मीन और आसमान की दशा और स्थिति बयान करना है या उनकी ज़मीनी और आसमानी स्थिति का बयान किसी दर्जे में भी नहीं बल्कि यह कहना है, ज़मीन हो या आसमान, कोई भी स्वयं नहीं उत्पन्न हो गये। वह जो कुछ और जैसे भी हैं अल्लाह के बनाये हुए हैं और उसी अकेले हाकिम की मातहती और आज्ञाकारिता में हैं। दूसरी तालीम साथ ही साथ यह मिली कि ज़मीन और आसमान इन्सान के ही लिए पैदा हुए हैं। इन्सान ज़मीन और आसमान के वास्ते नहीं पैदा किया गया। अस्ल मक़्सद और उद्देश्य एवं ध्येय मानव जाति है। ज़मीन तथा आसमान इसी अल्लाह के ख़लीफ़ा (वारिस) के सेवक हैं। फिर यह क्या मूर्खता है कि इन्सान अपने सेवकों के आगे झुकने लगे और उलटा उनकी ही इबादत का हक़दार बनाकर उनकी आराधना करने लगे। इसी प्रकार 'समा' हर उस चीज़ को कहते हैं, जो इन्सान के पैरों के नीचे हो। **'अर्ज़'** में अस्ल विचार नीचे होने का है और इन्सान के सामने उसका अर्थ यह है कि वह उसके नीचे फ़र्श की भाँति बिछी हुई चीज़ है। वह हमारे लिए ऐसी हमवार और बराबर वस्तु है, जिस पर हम पग धर सकते हैं, बैठ सकते हैं, लेट सकते हैं। वह ऐसी गीली पिलपिली चीज़ नहीं, जिस पर बैठना, चलना, लेटना सम्भव न हो। वह गोल हो या चिपटी। उसका परिचय फ़र्श से बेहतर नहीं हो सकता। यह काम उसे अल्लाह ने दिया है। अतः क़ुर्आन मजीद ने यहाँ उसका यह गुण बखाना है। इसी प्रकार समा में ऊँचाई का विचार रखा गया है। जिस प्रकार ज़मीन हमें नीचे फ़र्श बनकर सँभाले हुए है, आसमान हमें ऊपर से ढाँपे हुए है। ज़ाहिर है कि जो महसूस होनेवाली और दिखाई देनेवाली वस्तु इतनी ऊँची है कि बड़े-बड़े तारों की ऊँचाइयाँ, ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों की चोटियाँ, चिड़ियों की ऊँची से ऊँची उड़ानें, सब उसके अन्दर समा जायें और सब उससे नीचे ही रहें तो उसे छत न कहा जाये तो और क्या कहें। क़ुर्आन ने आसमान का केवल एक गुण बयान किया है। उसने आसमान को मुशरिकाना ख़यालों से दूर ही रखा है। उसका परिचय इस प्रकार दिया है कि वह जाहिलों के लिए पूजनीय न होने पाये।

८६ (उसी एक अल्लाह ने जो सच्चा है, किसी देवी-देवता ने नहीं) **अस्समा'अ** बिलकुल उचित है कि यहाँ बादल के माने में हो। इसका अर्थ यह है कि यह शिक्षा दी जा रही है कि आसमान और वर्षा सब अल्लाह ने बनाया है न कोई देवता हैं और न देवी। आसमान और वर्षा की पूजा अब भी दुनिया में बाक़ी है।

८७ (उसी अकेले ख़ुदा और अल्लाह ने, न किसी देवी और देवता ने) ख़ुदा जाने कितनी मुशरिक क़ौमें अलग-अलग देवी-देवता, खेती के, वनस्पति के, फलों-फूलों के मान चुकी हैं। क़ुर्आन मजीद का काम भूगोल की शिक्षा देना नहीं है बल्कि उन विश्वव्यापी मुशरिकाना विश्वासों और जाहिलाना विचारों का खण्डन करना है। इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ हो रहा है, सब उसी सर्वशक्तिमान के ही इशारे पर हो रहा है। **'बिही'** यानी पानी के माध्यम से। पानी मुख्य रूप से वर्षा के पानी को ज़मीन, उत्पादन और वनस्पति और फिर मनुष्य मात्र एवं पशुओं की ज़िन्दगी और उनके अस्तित्व पर जो प्रभाव है, उसके बयान करने की ख़ास ज़रूरत नहीं है।

८८ (किसी को किसी हैसियत से भी) मनुष्य जब अपने रुतबे से गिरा तो उसने पेड़ों, फलों और वर्षा के देवता के आगे सर झुकाया। क़ुर्आन मजीद इस मूर्खता पर चेतावनी देता है। **'फ़ला तज्अ़ल'** यानी जिसने तुम्हें इन नेमतों के साथ पैदा किया है, वह इसी योग्य है कि उसे किसी का बराबर न ठहराया जाये। **'अन्दादन्'** अरबी में मिलते-जुलते के लिए प्रयोग होता है। इस शब्द के सारगर्भित होने का यह बिन्दु है कि शिर्क इस दुनिया में दोनों प्रकार का रहा है। बहुत सी क़ौमों ने अपने देवताओं को एक छोटा ख़ुदा या मातहत ख़ुदा माना है। मजूसियों ने अह्रमन (बदी का ख़ुदा) को यज़्दाँ (नेकी का ख़ुदा) के मुक़ाबिल माना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८९ [अपनी बुद्धि और इलाहम (जो बात ख़ुदा इन्सान के दिल में डाल दे) के आधार पर कि सबका हाकिम, सबका पैदा करनेवाला बस वही एक मालिक है।] इतनी समझ-बूझ, जो ख़ुदा को एक मनवा ले, हर व्यक्ति को ख़ुदा ने दी है; यदि मनुष्य ग़लत शिक्षा और खराब वातावरण में इस सच्ची मनोवृत्ति को खराब न कर डाले। योरोप के शोधकर्ताओं ने यह बात मानी है कि मनुष्य का प्रथम विश्वास यही रहा है कि अल्लाह एक ही है।

९० (यानी उसके अल्लाह के कलाम होने के विषय में ऐ काफ़िरो ! और ऐ इन्कार करनेवालो !) यहाँ पर सम्पूर्ण मानव जाति को सम्बोधन हो रहा है केवल अरब और क़ुरैश से ही नहीं। फ़र्मा रहा है अल्लाह कि अगर तुम्हारे विचार में यह अल्लाह का कलाम नहीं है, तो फिर मानव ने ही लिखा होगा और यदि एक मानव ऐसा लिख सकता है, तो दूसरा भी ऐसा कर सकता है; न कि काफ़ी क़ाबिल और योग्य व्यक्तियों का एक पूरा समूह। इस्लाम के कलमे के दो अंश हैं। एक अल्लाह का अकेला होना, दूसरे रिसालते-मुहम्मदी। तौहीद का बयान पहले हो चुका, अब रिसालत की दावत दी जा रही है।

९१ (जिनका नाम मुहम्मद है) मौक़ा और हवाला स्पष्ट है कि रसूलुल्लाह सल्लअम के साथ विशेषता और निकट होने का संकेत है, साथ ही इस आयत में मुनकिरों को चुनौती दी जा रही है, परन्तु इतना बल देने पर भी जो नबियों के सरदार थे वह क़ुर्आन के शब्दों में एक 'अब्द' या चाकर हैं, न वह ख़ुदा के बेटे हैं, न उसके बराबर हैं, न उसके अवतार हैं न वज़ीर, केवल बन्दे। तौरेत में 'ख़ुदावन्द के ख़ादिमों' की पदवी ऐसे ही सम्मान के अवसर पर आई है और पयम्बर इब्राहीम, इसहाक़, याक़ूब, सभी को ख़ुदावन्द का ख़ादिम या सेवक ही ठहराया है। **'नज़्ज़ल्ना'** यानी जिस कलाम को हमने थोड़ा-थोड़ा करके आवश्यकता एवं अवसर के अनुसार अवतरित किया है उसमें शक और शुबहे का कारण इन्कार करनेवालों के लिए यही दर्जा ब दर्जा उतरना है। लोगों का विचार यह था कि शायरों और कवियों की भाँति यह "रसूल" भी समय-समय से गढ़ते रहते हैं। ख़ुदाई कलाम होता तो एकबारगी सब का सब न आ जाता। **'अब्दिना'** से यह बात भी साफ़ हो गई कि आप अब्दीयत (अल्लाह की भक्ति) में कामिल और ख़ुदा की आज्ञाओं के पालन करने में भी कामिल और परिपूर्ण थे।

९२ (विषय की ऊँचाई, अर्थ की परिपूर्णता और विचारों का अछूते अन्दाज के लिहाज से) क़ुर्आन मजीद अपनी भाषा की सुन्दरता, नवीनता एवं बयान की ख़ूबसूरती के लिहाज से बेमिसाल है, जैसा कि बड़े-बड़े साहित्यकार और भाषा-विशेषज्ञों ने स्वीकार किया है, परन्तु यहाँ जो ताकीद की जा रही है, उसका सम्बोधन सारी मानव जाति से है, केवल क़ुरैश या अरब के ही लोग नहीं हैं। क़ुर्आन की फ़साहत (तहरीर और लेख की सुन्दरता और सरलता) को सीमित नहीं करना है। क़ुर्आन ने अपनी हक़ीक़त स्वयं स्पष्ट कर दी। यानी वह सीख और शिक्षा एवं निर्देशों की पुस्तक है अर्थात् व्यक्तिक एवं सामूहिक दोनों ज़िन्दगियों का एक मुकम्मल हिदायतनामा, एक विधान और सर्वव्यापी नियमावली है। इसके अलावा उसकी और जो हैसियतें और रूप हैं, वह अलग हैं। यहाँ वह पुकार-पुकारकर कह रहा है कि निर्देश एवं सूझ-बूझ की बातें मेरे एक-एक सूरः के अन्दर मौजूद हैं। अब अगर तुम सब मिल-जुलकर प्रयास करके उसके मुक़ाबिले की कोई चीज़ पेश कर सकते हो तो लाओ और दिखाओ। **'बिसूरतिन्'** पूरा क़ुर्आन न सही, उसका आधा या तिहाई भी नहीं, उसकी एक सूरत के बराबर तुम लिखकर देखो। (शब्द सूरत का स्पष्टीकरण पूर्व ही में हो चुका है।) **मिस्लिही** का संकेत क़ुर्आन की ओर है।

९३ **'शुहदा'** का अर्थ सहायकों और मददगारों का है। परन्तु यदि इसका अर्थ गवाह का लिया जाये, तो भी यही मतलब निकलेगा कि उन लोगों को भी बुला देखो, जो तुम्हारे इस दावे की तस्दीक़ करें कि तुमने किसी क़ुर्आनी सूरत का जवाब लिख लिया है।

९४ (अपने इस दावे और गुमान में कि क़ुर्आन इन्सानी दिमाग़ की पैदावार है) क़ुर्आन का सीधा-सादा यह दावा है कि वह इन्सान का नहीं ख़ुदा का कलाम है और अपने इस दावे की दलील हर खासो-आम दोनों की समझ में आनेवाली यह पेश कर दी कि यदि कोई इसको इन्सानी कोशिश का नतीजा समझता है, तो इसका थोड़ा सा नमूना ही पेश करके दिखा दे। क़ुर्आन को उतरे हुए अब चौदह सौ साल हो रहे हैं, परन्तु दुनिया जहान के पुस्तकालय, इस किताबी युग में भी, क़ुर्आन के बराबर तो क्या मानी, इसकी लगभग बराबरी की किताब से भी ख़ाली हैं।

९५ अल्लाहु अक्बर ! किस जोर का दावा है और वह भी एक "उम्मी" (निरक्षर व्यक्ति) ! रसूल सल्लअम शिक्षित नहीं थे। अपनी बुद्धि, ज्ञान, भाषा तथा साहित्य एवं अपनी दक्षता तथा विज्ञान पर गर्व करनेवालों को कैसा-कैसा जोश उस समय भी आया होगा और आज भी आ रहा है। लेकिन ख़ुदा की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बात जहाँ थी, वहीं रही। कितने नये-नये धर्म रोज़-रोज़ पैदा हो रहे हैं। कैसी-कैसी 'Isms' बन रही हैं, यह सब गोया क़ुर्आन के जवाब हैं, परन्तु हर जवाब नाकाम और शर्मनाक हद तक व्यर्थ हैं।

९६ यह दुनिया की नहीं दोज़ख की आग होगी। वह दुनिया की आग से कहीं ज़्यादा तेज़ और जलानेवाली है, यहाँ तक कि हदीसों में आया है कि वह इससे सत्तर हिस्सा ज़्यादा तेज़ होगी। तौरेत में आखिरत के अज़ाब का वर्णन है। इंजील में भी बावजूद रहम, दया, स्नेह एवं क्षमा के भाषणों के दोज़ख का वर्णन है। **'फ़त्तक़ू'—** जवाब शर्त है और अक्षर 'फ़े' नतीजे की ओर संकेत कर रहा है, यानी जब क़ुर्आन की पेश की हुई दलील के जवाब से आजिज़ आ चुके हो और अपने इन्कार पर कोई दलील नहीं रखते, तो अब हक़ या सत्य से नकारना सिवाय अदावत और कीने और जलन के और क्या है? दोज़ख का अज़ाब इसी इन्कार और दुश्मनी का नतीजा है।

९७ जहन्नम की अस्ल ग़िज़ा तो शिर्क करनेवाले और नास्तिक या काफ़िर होंगे। सज़ा उन्हीं को मिलेगी, लेकिन इस सज़ा के साथ उनकी मूर्तियों और ठाकुरों को भी उनके पहलू में रख दिया जायेगा। मूर्तियों और बुतों को तो कोई एहसास होगा नहीं, हाँ उनकी पूजा करनेवालों को कुढ़न होगी। शिर्क और मूर्ति-पूजा में बड़ा पुराना सम्बन्ध है। दुनिया की हर मुशरिक क़ौम ने बुतों की पूजा ज़रूर की है। कलदानिया, मिस्र, अरब, यूनान, रोमा सभी बुत-परस्त रह चुके हैं और हिन्दुस्तान की बुत-परस्ती तो मशहूर ही है।

९८ यहाँ से अहले सुन्नत (रसूल सल्लअम के रास्ते पर चलनेवाले) ने यह नतीजा निकाला है कि जहन्नम की अस्ल आवश्यकता इसी कारण हुई कि काफ़िरों को सज़ा दी जाये, न कि केवल गुनहगारों और पापियों को। और इस मस्ले पर हदीसों के अलावा क़ुर्आन मजीद की कई आयतों पर प्रकाश पड़ता है। हाँ अस्थायी रूप से पापियों और गुनहगारों को भी उसमें भेजा जायेगा, परन्तु इससे केवल यही अन्तर होता है कि जहन्नम स्थायी रूप से इन्कार करनेवालों और शिर्क करनेवालों के लिए है।

९९ (ऐ हमारे पैग़म्बर!) **'बश्शिर'** गोया मोमिन और सीधी राह पर चलनेवाले इस बात के अधिकारी हैं कि उनको बधाई दी जाये और इसमें उनका सम्मान अधिक है बमुक़ाबिले इसके कि उन्हें सीधे ख़ुशख़बरी दी जाती। **अमिलुस्सालिहाति—** यानी शरीअत के अनुसार अमल। नेक अमल के समझने में बहुतों को धोखा हुआ है और यह भ्रम आजकल आम हो गया है कि नेकी और ईमान एक दूसरे से बिलकुल अलग-अलग चीज़ें हैं और फिर इस बात पर एक राय यह बना ली गई है कि कोई व्यक्ति मुमकिन है कि बड़ा नेक हो और उसके कर्म बड़े ही अच्छे हों, लेकिन ईमान से पूरी तरह वंचित हो। यह विचारधारा क़तई ग़लत है। नेकी ईमान से अलग नहीं। नेकी की अमली शक्ल का नाम ईमान है। अच्छे अमल का अर्थ यह है कि वह ऐसा हो जो ख़ुदा को पसन्द हो। जिस प्रकार नमाज़ की नक़्ल नमाज़ नहीं है, इसी प्रकार किसी नेकी की नक़्ल नेकी नहीं है। नेक अमल के मानी ही यह हैं कि वह अमल शरीअत के क़ानून के आधार पर हो।

१०० यह आख़िरत के इनआम का वर्णन है। जन्नत के जितने भी इनआम इस प्रकार के बयान हुए हैं, वह एक आम बयान है कोई नियम नहीं है। आम तौर पर मनुष्य को नदी और उपवन में शान्ति मिलती है इसलिए यह सामान आख़िरत में भी मौजूद होगा, परन्तु यदि कोई आदमी ऐसा है जिसको जंगल और मैदान पसन्द है, तो उसे यह भी मिल जायेगा। आयत यह ज़ाहिर करती है कि जन्नत की ख़ुशख़बरी के अधिकारी वह लोग हैं, जो ईमान और अमल दोनों गुण रखते हैं। **'लहुम्'** में लाम् से अधिकार ज़ाहिर होता है यानी जन्नत के लोग इन नेमतों को अपने अधिकार से पायेंगे और अधिकार का अर्थ निजी अधिकार नहीं बल्कि अधिकार, जिसका वादा ख़ुदा ने किया है। **'जन्नत'** के शाब्दिक अर्थ घने बाग़ के हैं, लेकिन क़ुर्आन करीम ने जिस जन्नत का वादा मोमिनों से किया है, वह विशेष स्थायी बाग़ हैं, जो आख़िरत में मिलेंगे।

१०१ (अत्यन्त प्रसन्नता और ख़ुशी के साथ) ध्यान रखा जाये कि इस्लाम ने जिस जन्नत का ब्योरा दिया है, वह माद्दी एवं रूहानी दोनों ही क़िस्म की नेमतों, राहतों तथा स्वादों का जोड़ होगी। जन्नत में मनुष्य हर प्रकार के आनन्द का अनुभव करेगा।

१०२ (दुनिया में या जन्नत में) यानी जन्नती लोगों को जो फल खाने को दिये जायेंगे, तो उनको पिछला मज़ा भी याद आ जायेगा और वह उन मेवों को देखकर कहेंगे कि अरे! यह तो वही मेवा है, जिसका मज़ा और स्वाद हमें याद है। यह बात भी ग़ौर करने की है कि दुनिया का खाना-पीना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़िन्दगी को क़ायम रखने के लिए है। जन्नत में इसकी जरूरत तो होगी नहीं, वहाँ केवल रसास्वादन हेतु यह फल आदि मिलेंगे।

१०३ यह जन्नत के फलों का दुनिया के फलों से मिलते-जुलते होना एक वास्तविकता होगी। यह मेवे और फल दुनिया के फलों से मिलते-जुलते होंगे। कुछ लोगों का विचार है कि जन्नत के फल एक दूसरे से मिलते-जुलते होंगे। वैसे यह मिलना-जुलना नाम मात्र होगा अन्यथा दुनिया के फलों से जन्नत के फल कहीं अधिक स्वादिष्ट होंगे।

१०४ ख़ूब साफ़, स्वच्छ और पवित्र, जिस्म, रूह और आत्मा से— बाज़ "रौशन-ख़यालों" को पाकीज़ा बीवियों के नाम से न जाने क्यों इतनी शर्म आई कि उन्होंने इस अर्थ ही से इन्कार कर दिया और पाकीज़ा बीवी का अर्थ बदल दिया है। जन्नत के मानी ही यह हैं कि वहाँ का हर आनन्द दुनिया के मज़ों और राहतों से कहीं बढ़-चढ़कर हैं।

१०५ सबसे बड़ी और आख़िरी बात जन्नत के विषय में यह कही गई है कि उसका मज़ा और आनन्द कभी समाप्त न होगा। दुनिया की बड़ी से बड़ी आनन्द की बातें उसके मुक़ाबिले में नहीं लाई जा सकती हैं। **'ख़ालिदून'**— अर्थ यह है, ऐसी दशा में रहना होगा जिसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होगा और यह आनन्द समाप्त न होगा। लाफ़ानी होगा।

१०६ (जैसा कि बाज़ कम-समझ और बुरी तबीअत के लोगों के विचार में शरमाना चाहिए।) **'ला यस्तह्यी'** यह शब्द सम्भव है कि स्वयं आपत्ति करनेवालों ने ही प्रयोग किया हो कि यह मुहम्मद (सल्लअम) का ख़ुदा कैसा है, जो ऐसी छोटी चीज़ों को पेश करते नहीं शरमाता और क़ुर्आन करीम ने वही लफ़्ज़ दोहरा दिया है। क़ुर्आन मजीद में अपने-अपने मौक़े और स्थान पर बड़ी से बड़ी मख़्लूक़ का बयान हुआ है और छोटी से छोटी का भी। जानवरों में एक तरफ़ हाथी, ऊँट, शेर का, दूसरी ओर चींटी, मक्खी और मच्छर का। मुख़ालिफ़त और विरोध करनेवालों ने और नासमझों ने कहना शुरू कर दिया कि वाह दावा तो है कलाम-इलाही होने का और विषय उसके अन्दर ऐसे मामूली। बाज़ रिवायतों (बयानों) में आया है कि यह नासमझ आपत्ति करनेवाले यहूदी थे और मुशरिक तथा मुनाफ़िक़ भी हो सकते हैं। यद्यपि वास्तविकता यह है कि चीज़ें छोटी या बड़ी तो इन्सान की निस्बत से होती हैं। ख़ुदा के नज़दीक छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी मख़्लूक़ यकसाँ है।

१०७ मिसाल का मंशा ही यह होता है कि वह समस्या का हल स्पष्ट करके बयान कर दे। इमाम राज़ी ने बड़ी सुन्दर बात कही है कि विश्व के रचयिता ने कोई चीज़ भी हक़ीर और बेहक़ीक़त नहीं बनाई। जो चीज़ जितनी ज़्यादा छोटी और कमज़ोर होगी, उसका बयान उतना ही कमाल और हिकमत का होगा। (तफ़्सीरें कबीर) **"फ़मा फ़ौक़हा"** यानी मच्छर से भी बढ़कर हो यानी अपने जिस्म के छोटे होने या ज़ाहिरी तुच्छता के विचार से। मौलाना थानवी ने कहा है कि आयत में उस आदतें सूफ़िया कि मिसाल लाने में हया की परवाह नहीं करते।

१०८ (और अपने मक़्सूद एवं उद्देश्य में और अर्थ के स्पष्टीकरण में बिलकुल काफ़ी और आवश्यकतानुसार)।

१०९ (पूछने के लिए बल्कि ताना देने की नीयत से)।

११० यानी वह इसी में उलझे रहेंगे कि ऐसी मिसालों से कुछ भी प्राप्त न होगा। **"हाज़ा"** के शब्द में एक पहलू बेइज़्ज़ती एवं अपमानित करने का पैदा होता है।

१११ (दुनिया के क़ानून के अनुसार) अल्लाह को बुराइयों का पैदा करनेवाला मानने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, चुनांचे उनको यह फ़र्ज़ कर लेना पड़ा कि एक भलाइयों का पैदा करनेवाला भी है, परन्तु इस कठिनाई का कारण यह है कि भलाई की भाँति बुराई को भी एक वास्तविक अस्तित्व दे दिया गया है यद्यपि बुराई तो केवल नाम है सृष्टि के, हर उपस्थित वस्तु के तथा अपने हाथों-पैरों, आँखों, कानों आदि के ग़लत प्रयोग का और नाजायज़ इस्तेमाल का। ख़ुदा ने इन्सान को आज़ादी दे दी है कि वह विभिन्न रास्तों में से एक का चयन कर ले। इसी का नाम इरादा है। अब अगर मनुष्य अपने ही इरादे से और अपने अख़्तियार से ग़लत काम लेकर ग़लत राह का चयन करता है, तो उसी को बुराई में पड़ जाना कहते हैं। अल्लाह हाकिमों का हाकिम, मुल्क का मालिक, अन्तिम और वास्तविक विधाता होने के अतिरिक्त दुनियावी रूप में हर चीज़ का अन्तिम कारण और परिणाम का देनेवाला भी तो है। वह बदी का ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला) केवल इसी अर्थ में है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिस अर्थ में ज़हर, और ज़हरीले, खून पीने और चीर-फाड़ करनेवाले जानवरों का पैदा करनेवाला है। 'युज़िल्लु बिही' के मानी केवल यही हैं कि बन्दा जब अपनी राय और इरादे से गुमराही अख्तियार करने लगता है, तो अल्लाह उसकी भी व्यवस्था करा देता है। यह नहीं करता कि सामान तो एकत्रित हो जायें और नतीजा न बरामद होने दे। **'कसीरन्'** बहुतों को यह "बहुत" वह हैं, जो अपनी सूझबूझ से सही काम नहीं लेते और इसलिए अपने इरादे से कुफ़्र और गुमराही का रास्ता अपनाए रहते हैं। अल्लाह की मर्ज़ी उनके कुफ़्र में ज़रा भी दखल नहीं देती।

११२ (अल्लाह अपने उसी दुनियावी क़ानून के अनुसार) **'कसीरन्'** यह बहुत वह हैं, जो अपनी सोचने-समझने की शक्ति से सही काम लेते हैं। मोमिनों और नेक लोगों की संख्या काफ़िरों और गुमराहों से कम हो फिर भी वह काफ़ी संख्या में हैं। इसी कारण **कसीर** का शब्द प्रयोग में आया है।

११३ आयत ने ख़ुद इस विषय को स्पष्ट कर दिया कि गुमराही तो उन्हीं के भाग में आता है, जो स्वयं गुमराह होना चाहते हैं। अल्लाह तआला गुमराही किसी पर चिपका नहीं देता। बार-बार की नाफ़र्मानियों और ख़ुदा की आज्ञा का उल्लंघन करने से अन्तरात्मा का प्रकाश बुझ जाता है और तबीअत में सत्य की तलाश और अल्लाह की तलब बाक़ी नहीं रह जाती है और इस प्रकार कुफ़्र और इन्कार पर समाप्ति हो जाती है। **'फ़िस्क़'** आज्ञा के घेरे से बाहर प्रवेश करने को कहते हैं अर्थात् जो अल्लाह के दायरे से बाहर हो जाये और उसके हुक्मों को न माने। अंग्रेज़ी में इतना फैलाव है और उसका शब्दकोश बड़ा विशाल है, परन्तु जाहिली अरबी की भाँति हिल्लत, हुरमत, तिहारत और तक़्वा की श्रृंखला के शब्द उसमें नहीं हैं।

११४ **'अह्दल्लाहि'** यानी जो वादा आज्ञापालन का, ईमान पर रहने का, ख़ुदा को एक मानने का था और जो इतना सीधा रास्ता है कि हर मनुष्य की मनोवृत्ति उसकी गवाही देती है। ग़लत राह पर चलनेवाला स्वयं अपने को भटका लेता है और बग़ावत करता है। इसलिए फ़ासिक़ीन के अन्तर्गत यहाँ हर प्रकार के काफ़िर आ गये। इस वादे की तस्दीक़ हर ज़माने में पैग़म्बरों की शिक्षाओं के ज़रिये होती रही है।

११५ आयत के अर्थ के फैलाव में अल्लाह के सारे अधिकार और बन्दों के सारे हक़ सम्मिलित हैं अर्थात् वह सारे कर्तव्य और फ़र्ज़, जो हर मनुष्य पर ख़ुदा और उसके बन्दों दोनों से सम्बद्ध होते हैं। इमाम राज़ी ने एक मानी यह बताए हैं कि अल्लाह का हुक्म तो मोमिनों के साथ नाता जोड़े रखने का है, परन्तु यह ग़लत लोग काफ़िरों से अपना सम्बन्ध स्थापित रखते हैं।

११६ (अपना विश्वास कुफ़्र पर, जो ग़लत है झूठा है।) इस फ़साद के अन्दर मानसिक एवं माद्दी हर प्रकार के फ़साद सम्मिलित हैं। इस्लाम की हक़ीक़त ही चूँकि यह है कि वह ज़िन्दगी का एक मुकम्मल विधान है और एक सर्वव्यापी जीवन व्यवस्था है, इसलिए उससे मुँह मोड़ने और बचने का अर्थ यह होता है कि किसी अधूरे और ग़लत विधान को स्वीकार कर लिया गया है, जिसका परिणाम यह होगा कि जीवन में अव्यवस्था और सामूहिक उथल-पुथल होता रहेगा। देखने में आ रहा है कि इतनी उन्नति के बावजूद और ज्ञानवृद्धि के होते हुए विश्व में कितनी अशान्ति है और वातावरण कितना दूषित है। दुनिया भटक रही है केवल इसलिए कि उसने व्यक्तिक एवं सामूहिक जीवन में इस्लामी ज़िन्दगी के तरीक़े को छोड़ दिया है।

११७ इस हानि में दोनों प्रकार की हानि है अर्थात् यह कि इस दुनिया में मन की शान्ति ग़ायब हो जायेगी और बदइख़्लाक़ी दुराचार और परेशानियाँ फैलेंगी, दूसरे यह कि आखिरत में हर नेमत से महरूम होना पड़ेगा।

(फ़ुटनोट सफ़ा ७३ से)

(आत्मा) से ख़ाली कर देगा। यहाँ केवल एक अल्लाह का पाठ दिया जा रहा है कि ज़िन्दा करना और मारना सब काम अल्लाह का ही है। यह नहीं कि पैदा करनेवाला कोई एक ब्रह्मा हैं और इसको क़ायम रखनेवाला विष्णु के नाम से कोई दूसरे हैं और फ़ना करनेवाले महेश और शिव के नाम से कोई तीसरे।

१२२ (हश्र में) हश्र का विश्वास इस्लाम का बुनियादी विश्वास है कि जब तक हश्र न होगा, इस सीमित एवं संक्षिप्त जीवन में न्याय की व्यवस्था सम्भव नहीं होगी।

१२३ (न कि किसी और की ओर हिसाब-किताब के लिए।) इन्सान की सज़ा और बदले के लिए सीधे अल्लाह के समक्ष पेश होना है। मसीही अक़ीदे का खण्डन किया गया है कि हश्र में पेशी मसीह के सामने होगी। इस एक आयत में पूरा बयान इन्सान की उत्पत्ति का आ गया कि इन्सान पहले बेजान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था, उसमें रूह से जान डाली गई, एक मुद्दत, जो निश्चित थी, तक जीवित रखा गया, रूह के निकल जाने पर वह फिर बेजान हो गया और आखिरी बार फिर हश्र में नये सिरे से जीवित किया जायेगा।

१२४ समस्त मानव जाति से सम्बोधन है। उनसे फ़र्माया जा रहा है कि तुम सारी सृष्टि के, जो इस ज़मीन पर है, स्वयं उद्देश्य एवं उन पर आज्ञा चलानेवाले हो। फिर यह क्या मूर्खता है कि तुम किसी अन्य वस्तु को अपना उद्देश्य बना लो और उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करो। आयत हर प्रकार की दुनियावी चीज़ों या दुनिया के जानदारों या ग़ैरजानदारों की पूजा से रोकती है, क्योंकि इस भूमि पर जो कुछ भी है सब मनुष्य मात्र के ही लिए है। सब पर उसी का हुक्म चलता है। हदीस में आया है कि "दुनिया तुम्हारे लिए पैदा की गई है और तुम आखिरत के लिए पैदा किये गये हो।" ज़मीन पर मनुष्य ख़ुदा का नायब है और उसकी यही शान है। यही बात इस्लाम ने पैदा की है और इन्सानियत का दर्जा यही है। डार्विन की गुमराही तो वैसी ही बनी रहेगी। **'लकुम्'** यानी तुम्हारे ही नफ़े के लिए। **'अल्अर्ज़'** का अर्थ ज़मीन ही नहीं बल्कि निम्न कोटि भी हो सकता है। इसी प्रकार **'अलस्समाअ'** का अर्थ आला दिशा के हैं। **'जमीअन्'** इन सबमें गंगा भी आ जाती है और नंगा पर्वत भी, गऊ माता भी और हनूमान भी, पत्थर की पूजा भी और वृक्षों की आराधना भी तथा दरिया और नाग की पूजा भी। यह सारी पूजाएँ मानव मात्र को अपमानित करने के बराबर हैं।

१२५ **'सुम्म'** का प्रयोग साधारण रूप में हुआ है, समय के अन्तर को ज़ाहिर करने के लिए। इसमें प्रथम और द्वितीय का अर्थ नहीं है। समा एक वचन तथा बहुवचन दोनों मानों में आता है। **अस्तवा—** यानी इरादा किया, ध्यान दिया, व्यवस्था कर दी।

१२६ आसमान की संख्या का ७ होना तौरेत और इंजील में भी अंकित है। हैस्टिंग्स की डिक्शनरी आफ़ दि बाइबिल में है— "नवीन एवं पुरातन दोनों ज़मानों में आसमानों का जो विचार है, वह सात आसमानों का है" (वालूम २, सफ़ा ३६२) **'सव्वाहुन्न'** के मानी हैं पूर्ण करने के, दुरुस्त करने के। यानी उन्हें ठीकठाक कर दिया। **'सबअ समावात'** का अर्थ पुराने वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि आसमान के सात होने का अर्थ है सात मशहूर सय्यारों अर्थात् चन्द्रमा, मंगलग्रह आदि का घेरा और यह सब पृथ्वी को अपने घेरे में लिये हुए है। स्वयं आसमान कोई हरकत नहीं करता। यहाँ केवल एक इशारा किया गया है।

१२७ ख़ुदा को अपने बन्दों की ज़रूरतों का पूरा ज्ञान है। उसने उन्हें केवल पैदा ही नहीं किया, बल्कि उनकी सभी ज़रूरतों को पूरा करने की भी व्यवस्था कर दी है। पैदा करने के गुण के पश्चात् जानकारी के गुण की भी आवश्यकता ज़रूरी थी। जाहिल क़ौमों ने अपने देवी-देवताओं की जानकारी को अधूरी माना है।

१२८ **'इज़्'** किसी पिछली घटना को याद दिलाने के अवसर पर प्रयोग होता है।

१२९ (आदम की पैदाइश के समय) इस सूरत के प्रथम रुकूअ में मानव की मनोवृत्ति का वर्णन था कि क़ुर्आन का सम्बोधन दो प्रकार के लोगों से था। एक उसके सन्देश को स्वीकार करनेवाले लोग जो शरीफ़ और नेक मनोवृत्ति के हैं, और दूसरे वह लोग जो गन्दी मनोवृत्ति के हैं। दूसरे रुकूअ में एक तीसरी प्रकार के लोगों को सम्बोधन हो, रहा है। तीसरे रुकूअ में अस्ल सन्देश का सारांश सुना दिया गया यानी **'तौहीद'** और रिसालत का प्रचार हो गया। अब इस चौथे रुकूअ में इस प्रचार का इतिहास आरम्भ होता है। अर्थात् यह सन्देश मानव जाति के बानी हज़रत आदम को दिया गया और उनसे एक के बाद दूसरी पीढ़ी को वह परिवर्तित होता रहा। यहाँ पर **'रब्बुक'** कहकर अल्लाह की पैदा करनेवाली सिफ़त को विशेष प्रकार से याद दिलाना है। **'मला'अिकति'** मलक का बहुवचन है, जिसका अर्थ है पैग़ाम ले जानेवाले के। मलायका इसीलिए कहते हैं कि उनका वास्तविक कार्य पयाम ले जाना है और यह पैदा करनेवाले के पयाम उसके बन्दों को पहुँचाते हैं। यह अल्लाह के एजण्ट हैं। उर्दू में इनको फ़रिश्ता कहते हैं। वह नूरी मख़्लूक़ हैं, ज़ाहिरी अस्तित्व रखते हैं। देखने में नहीं आते, लेकिन आवश्यकतानुसार रूप बदल सकते हैं। उनकी संख्या क्या है, यह अल्लाह ही को ज्ञात है। अस्तित्व में वह मानव से पहले आये। वह मासूम हैं यानी बदी उनसे उत्पन्न हो ही नहीं सकती। वह ख़ुदा के आज्ञाकारी सेवक हैं। इस अर्थ में वह मानव जैसे हैं परन्तु उनका स्वरूप देवी-देवता आदि की भाँति नहीं है।

१३० (शीघ्र ही अपनी हुकूमत की स्थापना हेतु यानी दुनिया में अपनी आज्ञाओं को लागू करने के

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ७४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कैफ़ तक्फ़ुरून बिल्लाहि व कुन्तुम् अम्वातन् फ़ अह़्यकुम् ज सुम्म युमीतुकुम्
सुम्म युह़्यीकुम् सुम्म अिलैहि तुर्जअून (२८) हुवल्लज़ी ख़लक़ लकुम् मा
फ़िल्अर्ज़ि जमीअन् क़ सुम्मस्तवा अिलस्समा अि फ़ सव्वाहुन्न सब्अ समावातिन् त
रु. ३/३ आ ८ व हुव बि कुल्लि शैअिन् अलीमुन् (२९) ★ व अिज़् क़ाल रब्बुक लिल्मला अिकति
अिन्नी जाअिलुन् फ़िल्अर्ज़ि ख़लीफ़तन् त क़ालू
अ तज्अलु फ़ीहा मंय्युफ़्सिदु फ़ीहा व
यस्फ़िकुद्दिमा अ ज व नह़्नु नुसब्बिह़ु बि ह़म्दिक
व नुक़द्दिसु लक त क़ाल अिन्नी अअ्लमु मा
ला तअ्लमून (३०) व अल्लम आदमल्अस्मा अ
कुल्लहा सुम्म अरज़हुम् अलल्मला अिकति ला
फ़ क़ाल अम्बिअूनी बि अस्मा अि हा अुला अि
अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन (३१) क़ालू सुब्ह़ानक
ला अिल्म लना अिल्ला मा अल्लम्तना त
अिन्नक अन्तल्-अलीमुल्-ह़कीमु (३२) क़ाल
या आदमु अम्बिअ्हुम् बिअस्मा अिहिम् ज
फ़ लम्मा अम्बअहुम् बिअस्मा अिहिम् ला क़ाल
अलम् अक़ुल्लकुम् अिन्नी अअ्लमु ग़ैबस्समावाति
वल्अर्ज़ि ला व अअ्लमु मा तुब्दून व मा कुन्तुम्

كيف تكفرون بالله وكنتم امواتا فاحياكم ثم يميتكم ثم يحييكم ثم اليه
ترجعون ﴿٢٨﴾ هو الذي خلق لكم ما في الارض جميعا ثم استوى الى السماء
فسوىهن سبع سموت وهو بكل شيء عليم ﴿٢٩﴾ واذ قال ربك للملئكة اني
جاعل في الارض خليفة قالوا اتجعل فيها من يفسد فيها ويسفك
الدماء ونحن نسبح بحمدك ونقدس لك قال اني اعلم ما لا تعلمون ﴿٣٠﴾ و
علم ادم الاسماء كلها ثم عرضهم على الملئكة فقال انبـٔوني باسماء
هؤلاء ان كنتم صدقين ﴿٣١﴾ قالوا سبحنك لا علم لنا الا ما علمتنا انك
انت العليم الحكيم ﴿٣٢﴾ قال يادم انبئهم باسمائهم فلما انباهم باسمائهم
قال الم اقل لكم اني اعلم غيب السموت والارض واعلم ما تبدون
وما كنتم تكتمون ﴿٣٣﴾ واذ قلنا للملئكة اسجدوا لادم فسجدوا الا ابليس
ابى واستكبر وكان من الكفرين ﴿٣٤﴾ وقلنا يادم اسكن انت وزوجك الجنة
وكلا منها رغدا حيث شئتما ولا تقربا هذه الشجرة فتكونا من الظلمين ﴿٣٥﴾
فازلهما الشيطن عنها فاخرجهما مما كانا فيه وقلنا اهبطوا بعضكم لبعض
عدو ولكم في الارض مستقر ومتاع الى حين ﴿٣٦﴾ فتلقى ادم من ربه كلمت
فتاب عليه انه هو التواب الرحيم ﴿٣٧﴾ قلنا اهبطوا منها جميعا فاما ياتينكم
مني هدى فمن تبع هداي فلا خوف عليهم ولا هم يحزنون ﴿٣٨﴾ والذين كفروا
وكذبوا باياتنا اولئك اصحب النار هم فيها خلدون ﴿٣٩﴾ يبني اسراءيل اذكروا

तक्तुमून (३३) व अिज़् क़ुल्ना लिल्-मला अिकतिस्जुदू लि आदम फ़ सजदू
अिल्ला अिब्लीस त अबा वस्तक्बर क़ ज़ व कान मिनल्काफ़िरीन (३४) व क़ुल्ना या
आदमुस्कुन् अन्त व ज़ौजुकल्जन्नत व कुला मिन्हा रग़दन् ह़ैसु शिअ्तुमा स व ला
तक़्रबा हाज़िहिश्शजरत फ़ तकूना मिनज़्ज़ालिमीन (३५) फ़ अज़ल्लहुमश्-शैतानु अन्हा
फ़ अख़्रज-हुमा मिम्मा काना फ़ीहि स व क़ुल्नह्बितू बअ्ज़ुकुम् लि बअ्ज़िन् अदुव्वुन् ज
व लकुम् फ़िल्अर्ज़ि मुस्तक़र्रुंव्व मताअुन् अिलाह़ीनिन् (३६) फ़तलक़्क़ा
आदमु मिर्रब्बिही कलिमातिन् फ़ ताब अलैहि त अिन्नहू हुवत्तव्वाबुर्रह़ीमु (३७)
रु. ४/४ आ १० क़ुल्नह्बितू मिन्हा जमीअन् ज फ़अिम्मा यअ्तियन्नकुम् मिन्नी हुदन् फ़ मन् तबिअ
हुदाय फ़ ला ख़ौफ़ुन् अलैहिम् व ला हुम् यह़्ज़नून (३८) वल्लज़ीन कफ़रू व
कज्ज़बू बि आयातिना अुला अिक अस्ह़ाबुन्नारि ज हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (३९) ★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

तुम लोग किस तरह कुफ़्र कर सकते हो अल्लाह से[११८] ऐसी दशा में कि तुम बेजान थे[११९], सो उसने तुम्हें जानदार किया[१२०] फिर वही तुम्हें मौत देगा[१२१] फिर वही तुम्हें ज़िन्दा करेगा[१२२] फिर उसी की तरफ़ वापस किये जाओगे[१२३]। (२८) वह वही (ख़ुदा) है, जिसने पैदा किया तुम्हारे लिए जो कुछ भी ज़मीन में है सब का सब;[१२४] फिर उसने आसमान की ओर ध्यान दिया[१२५] और उन्हें सात आसमान दुरुस्त करके बना दिये[१२६]। और वह हर चीज़ का जाननेवाला है[१२७]। (२९) ★ ★ रु. ३/३ आ ६

और वह समय याद करो[१२८] जब तेरे पैदा करनेवाले ने फ़रिश्तों से कहा[१२९] कि मैं ज़मीन पर अपना नायब बनानेवाला हूँ[१३०]। वह बोले, क्या तू उसमें ऐसे को बनायेगा जो उसमें फ़साद बरपा करेगा और ख़ून बहायेगा ? ऐसी स्थिति में कि हम तेरी आराधना करते रहते हैं[१३१] और तेरी पवित्रता का वर्णन करते रहते हैं। (अल्लाह ने) फ़र्माया, वास्तव में मैं वह जानता हूँ, जो तुम नहीं जानते[१३२]। (३०) और अल्लाह ने आदम को संज्ञाएँ सिखला दीं सारी की सारी[१३३], फिर उन्हीं फ़रिश्तों के सामने पेश किया[१३४], फिर फ़र्माया कि बतलाओ तो उनके नाम अगर तुम्हारी बात सच्ची है[१३५]। (३१) वह बोले— तू पाक है[१३६], हमें तो कुछ जानकारी नहीं सिवाय उस ज्ञान के जो तूने हमें दे दिया[१३७], बेशक तू ही तो है ज्ञानवाला[१३८], हिकमतवाला[१३९]। (३२) (अल्लाह ने) फ़र्माया, ऐ आदम ! बतला दो इन्हें इनके नाम[१४०]; फिर जब उन्होंने उन्हें उनके नाम बतला दिये[१४१], तो फ़र्माया (अल्लाह ने)[१४२], मैंने तुमसे कहा न था कि मैं आसमानों और ज़मीन की छुपी हुई चीज़ें जानता हूँ और जो कुछ तुम ज़ाहिर करते और जो कुछ तुम छुपाते हो, वह सब जानता हूँ[१४३]। (३३) और (वह वक़्त याद करो) जब हमने फ़रिश्तों से कहा[१४४] कि आदम के आगे झुको[१४५], तो वह सब झुके मगर इब्लीस न झुका[१४६]। उसने इन्कार किया और घमण्ड में आ गया[१४७] और काफ़िरों में से हो गया[१४८]। (३४) और हमने कहा ऐ आदम ! तुम और तुम्हारी बीवी बहिश्त में रहो सहो और उसमें जहाँ से चाहो ख़ूब खाओ[१४९] और उस दरख़्त के पास न जाना[१५०] वरना तुम गुनहगारों में से हो जाओगे[१५१]। (३५) फिर शैतान ने दोनों को फिसलाया उसी दरख़्त के कारण[१५२] और जिसमें थे उससे उन्हें निकलवा दिया[१५३], और हमने कहा, (अब) तुम सब नीचे उतर जाओ[१५४] एक दूसरे के दुश्मन होकर[१५५], और तुम्हारे लिए ज़मीन ही पर ठिकाना है और एक निश्चित समय तक नफ़ा उठाना है[१५६]। (३६) फिर आदम ने अपने परवरदिगार (पालनेवाले) से कुछ शब्द सीख लिये[१५७], फिर अल्लाह ने उनकी तौबा स्वीकार कर ली[१५८]। वह तो है ही बड़ा तौबा स्वीकार करनेवाला[१५९], बड़ा मेहरबान[१६०]। (३७) (और) हमने हुक्म दिया कि तुम सब इससे नीचे उतर जाओ[१६१], फिर अगर तुम्हें मेरी तरफ़ से कोई आदेश एवं निर्देश पहुँचे[१६२], तो जो कोई अनुसरण मेरी हिदायत (सीख, शिक्षा) की करेगा, सो उनके लिए न कोई ख़ौफ़ होगा और न वह दुखी ही होंगे[१६३]। (३८) और जो लोग कुफ़्र करेंगे और हमारी आयतों को झुठलायेंगे, सो वही दोज़ख़ी हैं[१६४] और वह उसमें हमेशा पड़े रहेंगे[१६५]। (३९) ★ ★ रु. ४/४ आ १०

---

११८ (ऐ काफ़िरो, इन्कार करनेवालो !) यानी कुफ़्र और इन्कार का साहस कैसे करते हो ? प्रश्न का उद्देश्य उनके साहस पर आश्चर्य प्रकट करना है।

११९ यानी अभी तुमको कोई रूप भी नहीं दिया गया था। यहाँ पर मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन हो रहा है।

१२० (माता के गर्भ में) नेमतों में सर्वश्रेष्ठ जीवन-गुण है क्योंकि दूसरी सभी नेमतों से लाभान्वित होना इसी के बाद सम्भव है। इसलिए पहले इसी का ज़िक्र आता है।

१२१ यानी इस दुनिया की ज़िन्दगी की मुद्दत के बीतने के बाद इस काया को निर्जीव एवं रूह

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ७० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ७१ से)

लिए) अल्लाह की पैदा की हुई अनेकों जानदारों की संख्या थी, परन्तु अब मानव का दर्जा ऊँचा हो रहा है और उसको अल्लाह अपना नायब बनाता है। जिन, फ़रिश्ते, मलायका सभी पैदा हुए, परन्तु मनुष्य के पैदा किये जाने का वर्णन क़ुर्आन विशेष रूप से करता है। यह बड़ाई केवल आदम के हिस्से में आई कि उनकी पैदाइश का मक़्सद बताया जा रहा है। इसी कारण मानव सर्वश्रेष्ठ है। 'ख़लीफ़ा' जो किसी का नायब हो। और अल्लाह का ख़लीफ़ा ज़मीन पर वह है, जो ज़मीन पर अल्लाह की शरीअत से हुकूमत चलाये। यहीं से यह भी स्पष्ट हो गया कि मनुष्य को जो हाथ-पैर, आँखें, नाक, कान मिलेंगे वह ऐसे होंगे, जो 'ख़लीफ़ा' के दर्जे के अनुसार हों। मानव जाति अपनी भलाई और उन्नति के लिए स्वयं सिद्ध नहीं थी। इसी कारण 'नबूवत' (पैग़म्बरी) का सिलसिला स्थापित हुआ। विश्व के किसी भी मज़हब ने इन्सान को ख़ुदा के ख़लीफ़ा होने का दर्जा नहीं दिया। यहूद और मसीही भी पीछे हैं। बाइबिल में इस अवसर पर यूँ लिखा हुआ है— "ख़ुदावन्द ख़ुदा ने ज़मीन पर पानी न बरसाया था। और आदम न था कि ज़मीन पर खेती करे और ज़मीन से बुख़ार (भाप) उठता था और तमाम भूमि को पानी देता था और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने ज़मीन की ख़ाक से आदम को बनाया और उसके नथुनों में ज़िन्दगी का दम फूंका, सो आदम जीती-जान हुआ।" पैदाइश, २, ५, ७) गोया जिस प्रकार और सब पशु-पक्षी पैदा हो रहे थे, एक जानदार—आदम— भी पैदा हो गया। उसका काम ज़्यादा से ज़्यादा यह था कि "ज़मीन की खेती करे", कहाँ यह कमज़ोर सा बयान, जो मनुष्य को खेती करने तक सीमित करता है और कहाँ क़ुर्आन का बयान संक्षिप्त होते हुए भी मनुष्य को ख़ुदा का ख़लीफ़ा बना रहा है। इन्सान मिट्टी से बना ज़रूर है परन्तु उसको ख़ुदा ने अपना ख़लीफ़ा बनाया और अपनी पहचान का ज्ञान और नूर बख़्शा। इन्सान माद्दी, मशीनी तरक़्क़ियाँ जितनी भी करता जायेगा, वह सब उसकी ख़िलाफ़त की गवाहियाँ होंगी।

१३१ अल्लाह माफ़ करे, यहाँ अस्ल बात को समझने में बाज़ बड़ों से कुछ भ्रम प्रकट हो गये हैं। फ़रिश्तों ने यह बात आपत्ति या गुस्ताख़ी के रूप में नहीं कही। फ़रिश्ते तो गुस्ताख़ी कर ही नहीं सकते। "विरोधी या विद्रोही फ़रिश्तों" का विचार केवल मसीही है और हो सकता है कि उसी का कुछ प्रभाव मुसलमान आलिमों पर पड़ा हो। वास्तविकता यह है कि फ़रिश्तों का यह विचार केवल विनम्रता के साथ था और उनकी वफ़ादारी और जान-निसारी के जोश का नतीजा था, जैसा कि इस विषय पर बाज़ शोधकर्ताओं ने ख़याल ज़ाहिर किय. है। इस सम्बन्ध में मौलाना थानवी की व्याख्या नक़्ल की जाती है। "मतलब यह है कि हम तो सब के सब आपके आज्ञाकारी हैं और उनमें कोई-कोई फ़साद करनेवाला एवं निर्दयी भी होगा। सो अगर यह काम हमारे सुपुर्द किया जाये, तो हम सब लिपटकर उसे पूरा करेंगे और वह लोग सब इस काम के न होंगे सिवाय उनके जो आज्ञाकारी होंगे। वह तो दिलोजान से उसमें लग जायेंगे। परन्तु जो फ़सादी और अत्याचारी होंगे उनसे क्या आशा कि वह इस काम को पूरा करेंगे। यानी जब काम करनेवालों का एक गरोह मौजूद है तो एक नई जाति को जिनमें कोई काम का होगा कोई न होगा, इस सेवा हेतु नियुक्त करने से क्या लाभ? आपत्ति के रूप में नहीं कहा न ही अपना अधिकार जताया, जिससे इन पवित्र सेवकों पर सन्देह पैदा हों, बल्कि यह ऐसी बात है कि कोई हाकिम नया काम तजवीज़ करके उसके लिए एक स्थायी स्टाफ़ बढ़ाना चाहे और अपने पुराने स्टाफ़ से यह बात बयान करे और वह लोग अपनी वफ़ादारी से यह निवेदन करें कि हुज़ूर! जो लोग इस कार्य हेतु तजवीज़ हुए हैं, हमको किसी प्रकार जानकारी हुई है कि बाज़-बाज़ तो इसको बख़ूबी और भलीभाँति पूरा करेंगे और बाज़ बिलकुल ही काम बिगाड़ देंगे, जिनसे हुज़ूर का मिज़ाज नाख़ुश होगा और हुज़ूर अप्रसन्न होंगे। आख़िर हम किसलिए हैं। हर समय हुज़ूर पर जान निछावर करने को तैयार हैं। कैसा ही काम क्यों न हो, हुज़ूर के इक़बाल से उसको पूरा कर सकते हैं। कभी किसी सेवा में हम ग़ुलामों ने उज़्र नहीं किया। अगर वह नई सेवा भी हमको दी जायेगी तो उज़्रोइन्कार हरगिज़ न होगा। यह आपकी हम पर कृपा ही होगी। इसी प्रकार फ़रिश्तों की प्रार्थना केवल एक निवेदन था और यह बात किसी प्रकार उनको ज्ञात हो चुकी होगी कि मानव जाति में भले-बुरे सभी प्रकार के होंगे।" फ़रिश्तों के इस क़ौल से यह भी स्पष्ट हो गया कि ख़लीफ़ा का संकेत केवल हज़रत आदम के निजी व्यक्तित्व की ओर नहीं था क्योंकि उन्होंने स्वयं तो कोई ख़ूंरेज़ी की नहीं, न ज़मीन पर फ़साद ही किया। यहाँ ख़लीफ़ा का संकेत आदम जाति की ओर है, उनकी नस्ल मनुष्य जाति। **'अ तज्अलु फ़ीहा'**— अर्थ यह है कि यह नई मख़्लूक़ यानी मानव जाति और उसके बच्चे और औलादें आपके क़ानूनों का उल्लंघन करेंगी, जिसका परिणाम यह होगा कि भूमिस्थल पर माद्दी और आत्मिक दोनों रूप से उपद्रव होगा। फ़रिश्ते ग़ैब की बात नहीं जानते थे और उनका निवेदन ग़ैब की बातों को जानने के कारण नहीं था बल्कि मनुष्य जिस प्रकार उत्पन्न होनेवाला था और जैसे उसके हाथ-पैर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाये जानेवाले थे, उनसे यही अन्दाज़ा हो गया था कि ज़मीनी मख़्लूक़ की मनोवृत्ति ऐसी ही होगी कि वह ज़मीन पर फ़साद करेगा। उनमें विद्रोही और आज्ञाकारिता की कमी होगी। यह भी कहा गया है कि इन्सानी आबादी के पूर्व पृथ्वी पर जो जिन्नात आबाद थे, उनकी मनोवृत्ति पर विचार करके फ़रिश्ते इन्सानों के बारे में यही सोचने लगे थे। तौरेत में इस मख़्लूक़ का वर्णन बड़ी स्पष्टता से किया गया है। तस्बीह और तक़दीस के बीच यह फ़र्क़ रखा गया है कि तस्बीह से इबादत करना समझा जाता है और तक़दीस का अर्थ है विश्वास से सम्बन्धित। **"नह्नु'''लक"** दुनिया में देवताओं की पूजा की बीमारी फ़रिश्तों के कर्तव्यों को ग़लत समझने से उत्पन्न हुई है। आग के फ़रिश्तों को जाहिली क़ौमों ने अग्निदेवता मान लिया, वर्षा के फ़रिश्तों को वर्षा का देवता या इन्द्रदेवता आदि आदि। क़ुर्आन ने यह बात फ़रिश्तों से कहलवाकर उनके केवल सेवक होने की बात को उन्हीं से कहलाया है। फ़रिश्ते स्वयं यह निवेदन कर रहे हैं कि हम आपके सेवक तो अपनी प्रवृत्ति ही से हुज़ूर की आराधना के अलावा तो कुछ कर ही नहीं सकते। फ़रिश्ता और देवता दोनों के दृष्टिकोणों में यही बुनियादी अन्तर होता है। फ़रिश्ता केवल मख़्लूक़ और सेवक है। वह अल्लाह की तरफ़ से इस ब्रह्माण्ड में अपनी ड्यूटी पर लगा हुआ है। अपनी ड्यूटी से न ग़ाफ़िल हो सकता है न लापरवाही कर सकता है। देवता का दृष्टिकोण यह पेश किया गया है कि वह स्वयं एक हस्ती है। खुद मुख़्तार है और सेवक नहीं बल्कि उसकी सेवा और आराधना होनी चाहिए।

१३२ (सृष्टि की आवश्यकतानुसार) मतलब यह हुआ कि तुमको इस बात की क्या खबर है कि सेवकीयता और बन्दगी के अतिरिक्त नया काम नियाबत और खिलाफ़त का, जो इस नई मख़्लूक़ से लिया जानेवाला है और उसके लिए जिस क्षमता एवं योग्यता की आवश्यकता है, वह तुम्हारे अन्दर कहाँ तक पाई जाती है। देवता-परस्ती पर यह एक चोट है। मलायका-परस्तों को उनकी नासमझी पर एक चेतावनी और दी गई कि शक्ति और उत्पत्ति का गुण होना तो दूर रहा, वह भेद भी उनको क्या मालूम जो अल्लाह ही जानता है। अल्लाह के इल्म और जानकारी की कोई सीमा नहीं, फ़रिश्तों की मालूमात तो बिलकुल सीमित होती हैं।

१३३ यानी आदम को सृष्टि की संज्ञाओं, नामों और उनके आसार एवं गुणों का ज्ञान दे दिया। आदम ही सबसे पहले मनुष्य थे इसलिए 'अबुल् बशर' (मनुष्य के बाप) कहलाते हैं और 'खलीफ़तुल्लाह' यानी अल्लाह के 'नायब अव्वल' हैं। जन्नत से जब ज़मीन पर आये तो सम्भवतः दजला तथा फ़ुरात नदियों के दोआबे में आबाद हुए, जो अब इराक़ कहलाता है। तौरेत में तीन पुत्रों का नाम आता है। हाबील, क़ाबील, शीस। तौरेत ही के अनुसार ९३ वर्ष की आयु पाई। अरबी में उनका यह नाम कैसे पड़ा? किसी ने कहा, ज़मीन की खाल (अदीम) से पैदा हुए इसलिए आदम कहलाये। किसी ने कहा कि अपनी खाल की सुर्ख़ी के कारण। **'अस्मा'अ'** का अर्थ उर्दू में 'नाम' से कहीं ज़्यादा विशालता रखता है। संज्ञा या इस्म वह है, जिसके द्वारा कोई वस्तु जानी-पहचानी जाये। और यह बात जब तक गुण, कारण, आसार आदि की जानकारी न हो जाये, सम्भव नहीं है। उसी के साथ जिसका नाम रखा गया है, उसकी भी पूर्ण जानकारी आवश्यक है। आयत का अर्थ बताने में तफ़्सीर करनेवालों ने यह कहा है कि संज्ञा या नाम का अर्थ अल्लाह के नामों का है। उन नामों की जानकारी हज़रत आदम को दे दी गई और उनके गुण आपको ज्ञात हो गये। आप जिस नाम को याद करते उसकी खूबी आप पर स्पष्ट होकर प्रकट हो जाती थी। उदाहरणार्थ जब पहला नाम आपने याद किया, तो उसका प्रकाश आप पर पड़ा और हर गुज़री हुई चीज़ आप पर ज़ाहिर हो गई। इसी प्रकार जब आखिरी नाम का प्रकाश पड़ा तो हर आनेवाली चीज़ मालूम हो गई। इसी प्रकार अल्लाह के सारे ९९ नामों के विषय में जानकारी की जा सकती है कि क्या-क्या इल्म आपको हुआ होगा। यह मर्तबा और दर्जा है मानव की बड़ाई का। यह मानव यदि देवता और फ़रिश्तों की पूजा करने लग जाये, तो बड़े दुख का अवसर है। **'कुल्लहा'** कि सृष्टि की सारी चीज़ों का ज्ञान धीरे-धीरे मनुष्य को होकर रहेगा और इसीलिए ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में अभी उसे बहुत मंजिलें तय करनी हैं।

१३४ (ताकि इन्सान की आला सलाहियत एवं उसकी ऊँची क्षमताओं और खिलाफ़त के दर्जे की जानकारी फ़रिश्तों को भी हो जाये) **अरज़हुम्**— प्रश्न यह है कि क्या चीज़ अब फ़रिश्तों के सामने पेश की जा रही है। क्या केवल नाम पेश हो रहे हैं? बल्कि दलील यह है कि केवल नाम नहीं पेश हुए बल्कि अस्ल जो चीज़ें अस्तित्व रखती हैं, वह और उनके नाम एवं उनके गुणों को आदम पर प्रकट कर दिया गया और उन सभी को फ़रिश्तों के सामने भी पेश कर दिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१३५ (अपने इस भ्रम में कि तुम हर स्थान की क्षमता और हर सेवा के साथ मुनासिबत रखते हो) फ़रिश्तों से सम्बोधन हो रहा है। **'अस्मा'अि हा'अुला'अि'** पर हाशिया अभी गुज़र चुका है। अर्थ यहाँ केवल नाम नहीं, बल्कि गुण और आसार भी हैं। **'सादिक़ीन'** 'सिद्क़' का अर्थ जान-बूझकर सच्चाई का नहीं है क्योंकि फ़रिश्ते सच के अलावा तो कुछ बोल ही नहीं सकते। अर्थ यह है कि उनका विचार सही है या उनके ख़याल के अनुसार घटना का सत्य होना है। 'सिद्क़ व किज़्ब' अरबी के इन दो शब्दों के सही माने पर विचार न करने के कारण उर्दू जाननेवाले बड़े भ्रम में पड़ जाते हैं। उर्दू में सच और झूठ का सम्बन्ध कर्ता के हृदय और उसकी नीयत से होता है और किसी इन्सान का सच्चा या झूठा होना उसके व्योहारिक गुण में दाखिल समझा जाता है। अरबी में ऐसा नहीं है; यहाँ केवल यह अर्थ होता है कि घटना सत्य है या असत्य। हो सकता है, कर्ता की नीयत में और उसके इरादे में इसका कोई भी प्रवेश न हो। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि खिलाफ़त अमल से नहीं बल्कि ज्ञान और समझ से है, शर्त यह है कि अमल बुरे न हों।

१३६ (हर त्रुटि और त्रुटि की छाया से भी और उससे बुलन्द और पवित्र कि तेरा कोई भी कार्य हिकमत और ज्ञान से खाली नहीं हो सकता) मलायका या फ़रिश्तों की ज़बान से बार-बार सेवकाना अन्दाज़ और विनम्रता प्रकट करना, देवता-परस्ती पर एक चोट है।

१३७ (और हम तुच्छ एवं नाचीज़ सेवकों की तेरे ज्ञान और असीमित तथा बेथाह ज्ञान के आगे क्या बिसात है?) पैदा करने का गुण, शक्ति का गुण तथा दूसरे अनेकों गुणों का तो कहना ही क्या है केवल ज्ञान और जानकारी के स्तर में ही कहाँ फ़रिश्ते, कहाँ अल्लाह तआला जो हर चीज़ पर शक्ति रखता है। नूर (ईश्वरीय प्रकाश) के बने हुए फ़रिश्ते निवेदन करते हैं और किस सादगी एवं सच्चाई से अर्ज़ करते हैं कि हमारा ज्ञान ही क्या है, हाँ वही बस थोड़ा सा जो तूने हमें दिया है। इन्सान हल्के पेट का है, वह अपने इल्म पर नाज़ करने लगता है। ग़ौर करने का मुक़ाम है कि फ़रिश्ते किस विनम्रता के साथ निवेदन कर रहे हैं कि ऐ रब! हमारे पास ज्ञान कहाँ है! जो कुछ है, वह तेरा ही बख़्शा हुआ तो है। अस्ल जाननेवाला तो तू स्वयं ही है। हमको तो जो कुछ ज्ञान मिला है, वह तो केवल तेरी ही कृपा एवं अनुकम्पा है।

१३८ (जिसके ज्ञान के लिए वर्तमान, भूत, दूर, निकट, हाज़िर, ग़ायब सब एक हों और जो हर जानदार, ग़ैरजानदार की क्षमता, अहलियत एवं उसकी हर स्थिति का ज्ञान रखता हो) **'अलअ़लीम'** का अर्थ है वह जाननेवाला, जिसकी जानकारी सारी ही वस्तुओं की अन्दरूनी, बाहिरी, मुंदी, ढकी हर जानकारी को घेरे हुए हो।

१३९ (और उसी हिकमत के अन्तर्गत मानव एवं फ़रिश्ता तथा हर जानदार में उसकी क्षमतानुसार और उसकी गहराई के मुताबिक़ इल्म तथा ज्ञान को बाँटनेवाला और काम लेनेवाला) **'अलहकीम'** वह हिकमत वाला है और उसको हर वस्तु का ज्ञान बेहतर से बेहतर तरीक़े पर है। बारीक से बारीक बात उसको ज्ञात हैं। फ़रिश्ते कह रहे हैं कि ऐ रब! तेरी हर आज्ञा में न्याय और हिकमत ही होती है।

१४० (या गुण) यानी सृष्टि के आसार और गुण फ़रिश्तों को बता दो। जब फ़रिश्ते विनम्रता का प्रदर्शन कर चुके तो अब आदम से फ़र्माया गया कि तुम अपनी मालूमात ज़ाहिर करो। आदम का सम्मान सृष्टि के ज्ञान की ही वजह से तो था।

१४१ (और इस प्रकार आदम की बड़ाई स्पष्ट रूप से फ़रिश्तों पर साबित हो गई) **'अम्बिअ्हुम्'** यहाँ संकेत फ़रिश्तों की ओर है। **'बिअस्मा'अिहिम्'** 'उनके' का संकेत सृष्टि की ओर है। फ़रिश्तों को मानव की इस क्षमता का ज्ञान नहीं था और परीक्षण का उद्देश्य यही था कि मानव की क्षमता को खोलकर दिखा दिया जाये।

१४२ यहाँ सीधे फ़रिश्तों से सम्बोधन ज़ाहिर ही है, लेकिन दूसरी तरह इसमें वह सारे जानदार भी आ गये, जो फ़रिश्तों से दर्जे में कम हैं।

१४३ आयत सं० ३० में जो बात ज़्यादा ब्योरेवार नहीं थी, अब वह ब्योरेवार कर दी गई और यह बात भी इसी प्रसंग में आ गई कि सारा ज्ञान तो केवल अल्लाह ही को है और उसके ज्ञान से आला से आला जानदार को कोई निस्बत नहीं है। अर्थ बतानेवालों ने यहाँ एक रिवायत (बताई हुई घटना) नक़्ल की है कि आदम का मिट्टी का पुतला तैयार हुआ था और अभी उसमें आत्मा का प्रवेश नहीं किया गया था कि फ़रिश्तों की एक पार्टी के साथ इब्लीस उधर से गुज़रा। साथियों से पूछा कि यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नई मख्लूक़ (सृष्टि) अगर हम सब पर हाकिम बना दी गई तो क्या करोगे ? फ़रिश्ते बोले कि जानोदिल से आज्ञा मानेंगे और क्या करेंगे। इस पर इब्लीस ने अपने दिल में कहा कि मुझसे तो आज्ञा न मानी जायेगी। मैं तो स्वयं इस पर ग़लबा और क़ाबू हासिल करूँगा। अर्थ बयान करनेवालों का विचार है कि इस आयत में इस घटना की ओर संकेत है। ग़ैब का अर्थ वह चीज़ें हैं जो जानदारों की दृष्टि से छुपी हुई हैं, वरना अल्लाह् तआला के लिए तो उपस्थित (दृष्ट) तथा अनुपस्थित (अदृष्ट) दोनों बराबर हैं।

१४४ यहाँ केवल फ़रिश्तों की ओर इशारा है, लेकिन जब यह हुक्म फ़रिश्तों को मिल रहा था तो जिन्नात इत्यादि, जो दर्जे में कम थे, वह इस हुक्म में सम्बोधन में प्रथम ठहरे। बादशाह का हुक्म जब नायब को या मन्त्री को होता है तो निम्न श्रेणी के लोगों की ओर उसका सम्बोधन प्राथमिकता रखता है।

१४५ (विनम्रता को प्रकट करने हेतु) **अस्जुदू—** सज्दे का अर्थ नमाज वाला सज्दा नहीं है, केवल अपने को कमतर समझना, अदब करना और विनम्रता से पेश आना है। नमाज के सज्दे को भी सज्दा इसीलिए कहते हैं कि इस प्रकार स्वयं को कमतर और विनम्र समझा और दिखाया जाता है। क़ुर्आन के मुहावरों में भी यही अर्थ ज़्यादा आया है जैसे एक जगह आता है, "ऐ मुख़ातिब ! क्या तू नहीं देखता कि आसमान व ज़मीन में जो भी मख्लूक़ है, सब अल्लाह के आगे झुकी होती है। और आज भी यही सही माना जाता है कि यह हुक्म सज्दे का ज़मीन पर माथा टेक देने का नहीं था बल्कि केवल झुकने के मानी में था। जिन लोगों ने इस सज्दे को ज़मीन पर माथा रखने के मानी दिये हैं, उनका विचार है कि यह सज्दा सम्मान के रूप में था, जो अगली शरीअतों में नाजायज़ नहीं था। यह सज्दा इबादत वाला सज्दा नहीं था। उसका मंशा केवल आदम की ताज़ीम और सम्मान कराना था, उनकी पूजा कराना नहीं था। और सबसे बड़ी बात यह है कि यह घटना इस विश्व की नहीं, बल्कि परलोक की है; और शरीअत का सम्बन्ध इसी लोक से है। सज्दा आदम की ओर था, जैसे आज काबे की ओर होता है। काबे को सज्दा नहीं होता बल्कि काबे के रब को होता है, इसी प्रकार उस समय भी ख़ुदा की ज़ात मौजूद थी, जिसको सज्दा होता।

१४६ **'इब्लीस'** का शाब्दिक अर्थ है निराशा का मारा हुआ। यहाँ इसको शैतान के लिए इस्तेमाल किया गया है। यह इब्लीस कोई फ़रिश्ता नहीं था बल्कि जिन्न था, जैसा कि क़ुर्आन मजीद में आया है— नूर का बना हुआ फ़रिश्ता नहीं जो नाफ़र्मानी की शक्ति ही नहीं रखता, बल्कि आग का बना हुआ जिन्न था।

१४७ **'अबा'** इन्कार किया आज्ञापालन से। **'वस्तक्बर'** उसने साफ़ इन्कार कर दिया, कि वह ख़ुदा के हुक्म में किसी सन्देह या ग़लत समझने से नहीं बल्कि स्वयं को बड़ा समझने और अपने घमण्ड के कारण इन्कार कर रहा है। ख़ुदा की मुहब्बत में उसने ऐसा नहीं किया जैसा कि बाज़ शायरों ने पेश किया है। **'अस्तक्बर'** का अर्थ यह है कि इब्लीस में यह ग़ुरूर और घमण्ड पैदाइशी नहीं था, बल्कि उसने स्वयं में यह ग़ुरूर पैदा किया।

१४८ यानी इस आज्ञा को न मानने ने उसे काफ़िरों में सम्मिलित करा दिया, इसका यह अर्थ नहीं कि वह पूर्व से ही काफ़िरों में था। **'कान'** के मानी केवल 'था' के नहीं "हो गया" के भी आते हैं। जिन लोगों ने 'कान' को 'हो गया' का अर्थ दिया है, उन्होंने (अल्लाह् की जानकारी) को इसी में निहित माना है। इब्लीस केवल सज्दे को छोड़ने के कारण नहीं काफ़िर बना।

१४९ **'जन्नत'** के मानी हैं ऐसा बाग़, जिसके दरख़्त ज़मीन को छुपा लें, परन्तु यहाँ मतलब है वह शानदार बाग़, जिनमें अनगिनत आनन्द होंगे और जो आख़िरत में नेक लोगों को मिलेगा। 'अन्त' अस्ल सम्बोधन आदम की तरफ़ था। हज़रत 'हव्वा' केवल मातहत थीं। **'ज़ौजक'** का इशारा हज़रत हव्वा हैं, जो उस समय पैदा हो चुकी थीं। वह रिवायत कि हज़रत हव्वा आदम की पस्ली से पैदा हुईं, वास्तव में तौरेत की है। "और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने कहा कि अच्छा नहीं कि आदम अकेला रहे, मैं उसके लिए एक साथी उसी की भाँति पैदा करूँगा। और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने आदम पर भारी नींद भेजी और वह सो गया और उसने उसकी पस्लियों में से एक पस्ली निकाली और उसके बदले गोश्त भर दिया। और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने उस पस्ली से जो उसने आदम से निकाली थी, एक औरत बना के आदम के पास लाया और आदम ने कहा कि अब यह मेरी हड्डियों से हड्डी और मेरे गोश्त में से गोश्त है, इस कारण से वह नारी कहलायेगी कि वह नर से निकाली गई।" (पैदाइश—२, १८, २४) बाज़ हदीसें और रिवायतें जो इस विषय की हैं, उनमें से कोई ऐसी नहीं हैं, जिनको बिलकुल अन्तिम और सही माना जाये। **'हैसु शिअतुमा'** इससे जन्नत की विशालता की ओर संकेत है। आयत के शब्दों से भी इस बात पर प्रकाश पड़ा कि बीवी का होना या ख़ूब खाना-पीना रूहानी या आदमीयत की बड़ाई के लिए कमी का कारण नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५० **'हाज़िहिश्शजरत'** ज़ाहिर है कि यह दरख़्त जन्नत के दरख़्तों में से कोई विशेष और हज़रत आदम के लिए मालूम एवं बड़ी जानकारी का दरख़्त नहीं था। क़ुर्आन ने ज़्यादा तफ़्सील बयान नहीं किया है और न हदीसों से कोई स्पष्ट बात सिद्ध होती है। क़ौल और कहावतें अनेकों हैं कि वह दरख़्त क्या था, परन्तु सही नहीं कहा जा सकता कि कौन सा दरख़्त था। तौरेत में यह बयान एक बड़ी लम्बी इबारत में आया है। उसका अन्तिम टुकड़ा यह है— "और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने हुक्म दिया कि तू बाग़ के हर दरख़्त का फल खाया कर, लेकिन नेक तथा बद की पहचान के दरख़्त से न खाना क्योंकि जिस दिन तू इससे खायेगा ज़रूर मरेगा।" (पैदाइश—१६, १७, २०) यह बात भी स्पष्ट नहीं हुई। हमारी तफ़्सीरों में दरख़्तों में से गेहूँ, ख़ुर्मा (छुहारा), काफ़ूर (कपूर), इंजीर, हंज़ल इत्यादि से लेकर मुहब्बत का दरख़्त, इल्म का दरख़्त आदि-आदि के नाम गिनाये गये हैं।

१५१ **'मिनज़्ज़ालिमीन'** अर्थात् वह लोग जो अपने ऊपर ज़ुल्म करते रहते हैं, और अल्लाह के हुक्म न मानने से अधिक ज़ुल्म अपने ऊपर क्या होगा? इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जन्नत उस समय बदला पाने और इनाम की चीज़ नहीं थी जो विचार अब है, बल्कि उस समय वहाँ रहने के कुछ नियम थे और शैतानी सन्दिग्धता का वहाँ पहुँचना क़तई ग़लत था। मौलाना थानवी ने कहा है कि दरख़्त के निकट जाना भी मना था इसी कारण जो चीज़ें 'मुबाह' हैं, यानी न उनसे गुनाह न सवाब उनके पास भी जाने से रोका जाता है कि कहीं वही चीज़ बढ़कर गुनाह की ओर न घसीट ले जाये।

१५२ शैतान वह है, जो ख़ैर और बरकत, भलाई और सफलता और अल्लाह की रहमत से दूर हो गया। इब्लीस का वर्णन ऊपर हो चुका है। वही जब जन्नत से निकाला जा चुका और हर प्रकार के ख़ैर और भलाइयों से वंचित हो गया, तो उसका नाम शैतान हो गया। यह शैतान आदम की औलाद यानी मानव जाति से जलता है और दिन-रात उन्हें गुमराह करने और भड़काने में लगा रहता है। उसके पास शक्ति नहीं है। वह इन्सान को मजबूर नहीं कर सकता केवल बहला, फुसला सकता है। सियाह को सफ़ेद दिखा सकता है। दिलों में सन्देह डाल सकता है। नज़दीक हो या दूर, अपना काम हर प्रकार से कर सकता है। फ़ासला या माद्दी रुकावटें उसे रोक नहीं सकतीं। उस समय वह जन्नत में भी आ-जा सकता था क्योंकि तब जन्नत की वह स्थिति नहीं थी, जो अब हो गई है। **'अज़ल्ल'**— मानी हैं जगह से हटा दिया, डिगा दिया, फिसला दिया। क़ुर्आन मजीद ने पैग़म्बरों की ग़लतियों, भूल होने और उनसे त्रुटि हो जाने का ज़िक्र अक्सर किया है, परन्तु बाइबिल के विरुद्ध किसी नैतिक अपराध जान-बूझकर आज्ञा की अवहेलना या अस्ली पाप कभी उन पर सिद्ध नहीं किया है, न इसका संकेत उनकी ओर किया है। यह विवाद भी उत्पन्न हो गया कि क्या किसी नबी की तरफ़ 'त्रुटि होने' का संकेत हो भी सकता है? सर्नाम 'हा' से संकेत जन्नत की तरफ़ समझा गया है। इसका अर्थ यही होगा कि शैतान उन्हें जन्नत से दूर ले गया। रिवायतों में आया है कि शैतान ने पहले तो क़सम खाकर आदम और हव्वा को अपनी दोस्ती और स्नेह का विश्वास दिलाया। वह बेचारे यह समझ भी नहीं सकते थे कि ख़ुदा की क़सम भी झूठी खाई जा सकती थी। उसके बाद कहा कि "इस दरख़्त का फल अगर खा लोगे तो जन्नत का रहन-सहन स्थायी हो जायेगा। इसमें यह तासीर है कि फिर यहाँ से हटाये न जा सकोगे और वह जो मना किया गया था, वह तो एक अस्थायी आदेश था क्योंकि उस समय तक तुम्हारी क्षमता परिपक्व नहीं थी।" हज़रत आदम तो ख़ुदा की नज़दीकी (जन्नत) से अधिक क्या चाहते थे, मक्कार के फ़रेब में आ गये। जान-बूझकर आज्ञा-अवहेलना नहीं की, बल्कि वह दरख़्त के फल को ख़ुदा के निकट आने के विचार में खा गये। यहउनका पाप नहीं था, समझ की ग़लती कही जा सकती है। और रिवायतों के अलावा क़ुर्आन मजीद भी इसी बात की ताईद करता है। बाइबिल में है कि यह बहकानेवाला साँप की सूरत में गया। उसने हव्वा को बहकाया और फिर उन्होंने हज़रत आदम को चाव दिलाया। हमारे तफ़्सीर करनेवालों ने भी लम्बी कहानियाँ साँप, मोर, शैतान, सबके विषय में लिखी हैं। यह सब कहाँ तक सही है, इससे कुछ बहस नहीं करना है, क्योंकि यह सब चीज़ें इस्लाम का अक़ीदा नहीं हैं, बल्कि इसराईली रिवायात हैं। इसलिए इन बातों में पड़ने से बड़ों ने मना किया है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि वह लोग जो कामिल हैं, वह भी शैतान के मक्रोफ़रेब से बच नहीं सकते। हज़रत आदम भी कामिल थे, परन्तु शैतान के फ़रेब में आ ही गये।

१५३ **'मिम्मा काना फ़ीहि'** अर्थ दो हो सकते हैं, "उस हालत से जिसमें वह थे।" या "उस मुक़ाम से जिसमें वह थे", दोनों बातें लिखी हुई हैं और दोनों दशाओं का अर्थ भी एक ही निकलता है। यह भी खयाल रहे कि यहाँ जिन क्रियाओं का वर्णन है, शैतान के लिए वह केवल कहने का एक तरीक़ा है वरना अस्ल कर्ता तो अल्लाह ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५४ (ज़मीन पर) **'अिह्बितू'** यह जन्नत ज़मीन के किसी हिस्से में नहीं, आसमान पर थी। हबूत का अर्थ है ऊँचाई से नीचे उतरना। यहाँ इसका अर्थ अब केवल आदम व हव्वा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि आदम की औलाद को भी 'तुम सब' कहकर सम्बोधित किया गया है। यानी आदम की पूरी नस्ल।

१५५ थोड़े शब्दों में पूरी ज़मीनी ज़िन्दगी का नक़्शा आ गया। यानी यहाँ जन्नत का सुख, शान्ति नहीं है; जलन, हसद, शरारत, ख़ुदग़र्ज़ी और दुश्मनी का ज़ोर रहेगा।

१५६ (और उसके बाद वापस आना।) **''फ़िलर्अज़ि मुस्तक़र्रुन्''** आयत का यह अंश प्रकट कर रहा है कि आदम पहली बार अब ज़मीन पर भेजे जा रहे हैं और अब तक जिस जन्नत में वह थे, वह ज़मीन पर नहीं आसमान पर थी और उस वक़्त से उनकी ज़िन्दगी का नया दौर शुरू हो रहा है। नई ज़िन्दगी और नया माहौल और यहीं अब उन्हें रहना, सहना है। **''मताअुन् अिलाहीन''** यानी यह ज़मीन पर क़याम स्थायी न होगा केवल एक विशेष मुद्दत तक रहना होगा। 'मता' का अर्थ स्वयं एक सीमित लाभ का है। गोया आरम्भ से ही हज़रत आदम के कानों में यह बात डाल दी गई कि मौत किसी दुर्घटना का नाम नहीं, वह तो स्वाभाविक और मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य है। हाँ, ज़मीनी जीवन एक अस्थायी दशा का नाम अवश्य है।

१५७ (तौबा और क्षमा) ख़तावार को तौबा के शब्द की सीख देना स्वयं अल्लाह की बड़ी रहमत है और फिर यह कहना कि स्वयं आदम ने यह अल्फ़ाज़ सीख लिये, यह अल्लाह का ऐन कर्म और उसकी बन्दानेवाज़ी है। वह शब्द स्वयं क़ुर्आन मजीद में अंकित हैं। **'मिर्रब्बिही'** ऐसे अवसर पर अल्लाह की 'रबूबियत' (पालनेवाले) के गुण का बयान होना बड़ी सारगर्भित बात है। बन्दे की त्रुटि को उसका रब नहीं क्षमा करेगा तो और कौन करेगा ?

१५८ (और उनकी ख़ता माफ़ कर दी) **'ताब अलैहि'** यानी तौबा की क्षमता दी या तौबा के कारणों को आसान कर दिया। एक प्रश्न यह उठाया गया है कि गुनहगार तो दो थे— आदम और आदम की स्त्री। फिर यह पुल्लिग का रूप क्यों आया ? जवाब यह है कि स्त्री पुरुष के मातहत है अतः उसका अर्थ भी इसी में निहित है।

१५९ यहाँ बात को बढ़ाकर वर्णन हुआ है। इस्लाम का ख़ुदा यही नहीं कि तौबा (गुनाह का पश्चाताप) स्वीकार करता है, बल्कि उसके कारण और उसके लिए आसानियाँ भी पहुँचाता है।

१६० अर्थ केवल यही नहीं कि अल्लाह केवल ख़ताओं को माफ़ करनेवाला ही है बल्कि वह अपनी ओर से और मेहरबानी करनेवाला भी है। यही वह रहम करनेवाला, तौबा स्वीकार करनेवाला और माफ़ करनेवाला ख़ुदा है, जिसको दुश्मनी करनेवालों ने कहा है कि इस्लाम का ख़ुदा बड़ा कठोर, गुस्सेवर और बड़ी सज़ा देनेवाला है।

१६१ (ऐ आदम की सन्तान !) **'जमीअन्'** का अर्थ है आदम की नस्ल। **'मिन्हा'** में सर्नाम जन्नत की तरफ़ है यानी जन्नत से नीचे उतरो। यह आदेश सज़ा के रूप में नहीं है, बल्कि मना किये हुए फल को खा लेने के बाद अब जन्नत में रहने की गुंजाइश नहीं रही। यदि कोई आदमी ज़हर खा ले तो उसके रोने-धोने और माफ़ी माँगने से कि उससे ग़लती हो गई, गुनाह तो माफ़ हो सकता है परन्तु ज़हर का जो असर उसके जिस्म में है वह तो अवशेष ही रहेगा। यह माद्दी असर तो बाक़ी ही रह जायेगा।

१६२ (और वह अवश्य पहुँचेगी पयम्बरों या उनके नायबों के माध्यम से) अब इस दुनिया में गुज़र-बसर करने, रहने-सहने का ख़ुदाई नियम तथा क़ानून बताया जा रहा है।

१६३ (रोज़े जज़ा में अर्थात् बदले के दिन) **'हुदाय'** जो पैग़ाम अच्छी शिक्षा और हिदायत का रसूलों के माध्यम से आता है उसे सीधे ख़ुदा से भी सम्बद्ध किया जा सकता है। **'ला ख़ौफ़ुन्'** यानी उनके ऊपर कोई ख़ौफ़नाक घटना न घटेगी यानी उनके निज के लिए कोई ख़तरा या चिन्ता नहीं है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह लोग निश्चिन्त हो जायें। **'व ला हुम् यह्ज़नून'** डर का सम्बन्ध भविष्य से है और रंज का सम्बन्ध भूत से। अर्थ यह है कि हश्र में नेक ईमानवालों को न सज़ा मिलनेवाली है और न वह अपनी दुनियावी ज़िन्दगी पर पश्चाताप करेंगे।

१६४ यानी जो लोग शरीअत के विधान से इन्कार और अल्लाह के क़ानून को झुठलाने में लीन रहते हैं, उन्होंने अपना भविष्य दोज़ख़ के साथ सम्बद्ध कर लिया। आख़िरत में यही सम्बन्ध जो अभी छुपा हुआ है साफ़ दिखाई दे जायेगा। आख़िरत के अज़ाब से डराना केवल क़ुर्आन मजीद में ही नहीं आया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाँ यह सही है कि क़ुर्आन मजीद ने इसका वर्णन बड़ी ज़ोर से किया है। ज़बूर में आया है, "ख़ुदावन्द सल्तनत करता है......एक आग उसके आगे-आगे जाती है और उसके दुश्मनों को हर तरफ़ जलाती है" (ज़बूर १, २, ९७)। "फ़रिश्ते निकलेंगे और शरीर लोगों (फ़सादियों) को नेक लोगों से अलग कर देंगे। और उन्हें आग की भट्ठी में डाल देंगे। वहाँ रोना और दाँतों को पीसना होगा।" (मत्ती—१३, ४९, ५०) "ऐ मलऊनो! मेरे सामने से इस हमेशा की आग में चले जाओ, जो इब्लीस और उसके फ़रिश्तों के लिए तैयार की गई है......और यह हमेशा की सज़ा पायेंगे।" (मत्ती—२५, ४१, ४६) "जहन्नम में डाला जाये जहाँ उसका कीड़ा नहीं मरता और आग नहीं बुझती।" (मत्ती—२५, ४१, ४६) **'कज्जबू बि आयातिना'** जन्नत वालों के वर्णन में सर्नाम प्रथम ऊपर आ चुका है। **'अस्हाबुन्नारि'** यानी दोज़ख वाले। वह लोग जो दोज़ख के हो चुके। गोया वह दोज़ख ही की आबादी हैं।

१६५ ख़ुलूद का सही अर्थ है किसी चीज़ का एक हाल पर स्थिर रहना और उसके अन्दर किसी परिवर्तन का न होना अर्थात् हमेशा के लिए। यहाँ इसका अर्थ यह है कि जन्नत और दोज़ख में जो लोग होंगे, वह अपनी-अपनी जगह पर हमेशा रहेंगे।

(फ़ुटनोट सफ़ा ८३ से)

जनरल भी हुए, लेकिन जब क़ुर्आन का अवतरण हुआ तो इस क़ौम की उन्नति का ज़माना समाप्त हुए काफ़ी समय बीत चुका था। यह अपने देश से निकलकर मिस्र और इराक़ के अलावा अन्य कई दिशाओं में फैल गये थे। इनके बाज़ क़बीले हिजाज़ और यसरब (बाद में मदीना नाम पड़ा) में आबाद हो चुके थे। बनी इसराईल तो एक नस्ली या क़ौमी शब्द है। धर्म के लिहाज़ से यह लोग यहूद थे। किताबवाले थे। तौरेत इनकी मज़हबी किताब थी, परन्तु उसकी शक्ल बिगड़ चुकी थी और उसकी इबारत में भारी परिवर्तन तथा अदला-बदली हो चुकी थी। लेकिन किताब मौजूद थी। 'वही', नबूवत, क़ियामत और बदले तथा दण्ड और सज़ा के अब भी माननेवाले थे। नबियों के ज्ञान, ख़ुदा की पहचान और औलिया को मान रहे थे। काफ़ी धनवान और साहूकार थे। इसी के साथ जादू, टोना, नजात और भविष्यवाणी के बड़े ज्ञाता थे। हिजाज़ की आबादी में दीनी और दुनियावी बड़ाई के कारण उनको अहमियत थी। देश की अम आबादी मुशरिकों की थी और वह बुत-परस्त थे। वह यहूद के दबाव में भी थे और उनके क़र्ज़दार भी। जैसा कि आमतौर पर होता है, व्यवस्थित एवं संघटित क़ौमें अव्यवस्थित तथा पिछड़ी क़ौमों को अपने रोब में ले ही आती हैं। अरब के मुशरिक भी इसराईली अक़ीदों और उनकी रिवायतों से काफ़ी प्रभावित थे। वह यहूद को काफ़ी मामलों में अपना गुरु समझते थे। यहूद की पुस्तकों तथा उनके भविष्यवाणी से सम्बन्धित लेखों में एक नये नबी के पैदा होने की सूचना मौजूद थी और यह लोग उस नबी की आमद की प्रतीक्षा कर रहे थे। यही वजह है कि क़ुर्आन मजीद में इस क़ौम से बड़ी तफ़सील से सम्बोधन होता है। यहाँ तक पहुँचने के बाद यह मुनासिब है कि क़ुर्आन मजीद के वर्णन के क्रम पर भी एक नज़र डाल ली जाये। क़ुर्आन मजीद का वास्तविक सम्बोधन तो सारी कायनात और सम्पूर्ण सृष्टि से है। इसी मुनासिबत से प्रथम रुकूअ में यह बयान हुआ कि मानव जाति की सही तक़सीमें दो हैं, एक अच्छे या मोमिन, दूसरे बुरे या काफ़िर। मोमिन या नेक वह, जो क़ुर्आन मजीद के दस्तूर-हयात अर्थात् जीवन के विधान को स्वीकार करते हैं और काफ़िर या बद वह हैं, जो इससे इन्कार करते हैं। दूसरे रुकूअ में एक विशेष प्रकार के छुपे हुए काफ़िरों का वर्णन हुआ और यह बताया गया कि यह लोग भी ईमान तथा नजात या मुक्ति से वंचित रहेंगे। तीसरे रुकूअ में सारी मानव जाति को सम्बोधित किया गया और क़ुर्आन मजीद का वास्तविक सन्देश यानी ख़ुदा को एक मानना (तौहीद) या अद्वैत तथा रिसालत (ईश्वर के विशेष धार्मिक दूत) का बयान किया गया। चौथा रुकूअ मानव जाति की नस्ल का इतिहास है। इसमें यह कहा गया है कि इन्सान के पैदा होने का अस्ल उद्देश्य दुनिया में अल्लाह के क़ानून को लागू करना है और ज़मीन पर अल्लाह की हुकूमत की नियाबत (प्रतिनिधित्व) करना है। ज़रा सी भी ग़फ़लत होने पर इन्सान का पुराना दुश्मन उसको पछाड़ सकता है और सत्य से झूठ, प्रकाश से अन्धकार की ओर मोड़ सकता है। परन्तु मनुष्य यदि तनिक भी साहस करता एवं ध्यान देता रहे और नबियों की बताई हुई और दिखाई हुई सीधी डगर पर बना रहे, तो वही विजयी रहेगा। अब पाँचवें रुकूअ में बयान इसका शुरू होता है (और इसका ब्योरा कई रुकूओं में चलता रहेगा) कि भारी समय बीता कि एक बड़े उच्च कोटि के बन्दे की सन्तान में एक विशेष नस्ल को तौहीद की नेमत बख़्शी गई थी, परन्तु वह क़ौम अयोग्य सिद्ध हुई। उसको कई अवसर प्रदान किये गये और बारम्बार सरलता बरती गई, परन्तु हर बार उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह नेमत अपने हाथों से खो दी, यहाँ तक कि अपनी नस्ल के आखिरी नबी यानी हज़रत ईसा की मुखालिफ़त और विरोध में तो हद से परे हो गई। इतने दिनों की रिआयतों और नर्मी के बाद अब अल्लाह की हुकूमत एक नया विधान अपनाती है। उस नाशुक्री, अपराधी एवं अनाज्ञाकारी क़ौम को उसके दर्जे से हटाया जाता है और यह नेमत एक इस्माईली पैग़म्बर के माध्यम से विश्व की समस्त क़ौमों और नस्लों के वास्ते आम की जा रही है।

१६७ अल्लाह के इस इनआम के विवरण में सं० १६६ तथा १८२ का अवलोकन करें। कोई इनआम ऐसा था, जो इसराईल की नस्ल पर इसी कारण से था।

१६८ तौरेत इसराईली नस्ल पर ख़ुदाई एहसानों के वर्णन से भरी पड़ी है। **'अह्दी'** यानी तुम्हारा वह वादा, जो मेरे साथ है और वह वादा ख़ुदा के तथा नबियों की आज्ञाकारिता का था। तौरेत में इसी का वर्णन कई जगह है। "तूने आज के दिन वादा किया है कि ख़ुदावन्द मेरा ख़ुदा है......और मैं उसकी राहों पर चलूँगा। और उसकी शर्तों, उसके अधिकारों और आदेशों की सुरक्षा करूँगा और उसकी आवाज़ को सुनूँगा।" (इस्तिस्ना १७, २६)। **'अह्दिकुम्'** यानी जो वादा मैंने तुमसे तुम्हारे ईमान तथा आज्ञाकारिता पर इनआम के लिए किया है। तौरेत में जगह-जगह इसका वर्णन है। जैसे— "और ख़ुदावन्द ने भी आज के दिन तुझसे इक़रार फ़र्माया।" (इस्तिस्ना १७, २६)। "अगर तुम मेरी आवाज़ के वास्तव में सुननेवाले होगे और मेरे वादे को याद करोगे, तो तुम सारी क़ौमों से ज़्यादा मेरे एक ख़ास ख़ज़ाना होगे।" (ख़ुरूज ५, १८)। **'औफ़ू'** मौलाना थानवी ने कहा है कि वादा पूरा करने का जो यहाँ वर्णन है, उसके दर्जों में बड़ी विशालता है। कम से कम दर्जा बन्दे की ओर से 'कलमए शहादत' है और अल्लाह की ओर से जान तथा माल की सुरक्षा।

१६९ (न कि अपनी ही जैसी दूसरी मख़्लूक़ से) तौहीद के लिए आम सम्बोधन समस्त मानव जाति से रुकूअ नं० ३ में हो चुका है, अब यहाँ उसी बनी इसराईल से ही सम्बोधन हो रहा है जो तौहीद रखने वाली विशेष जाति रही है, परन्तु यहाँ छुपे हुए कुफ़्र, शिर्क और बुत-परस्ती और ईमान की कमज़ोरी की ओर संकेत हो रहा है। यह मानसिक एवं नैतिक बीमारी सारी इसराईली क़ौम में फैली हुई थी और यहूद आलिमों का भी यह रवैया बन गया था कि वह ख़ुदा की ख़ुशी को न देखकर इन्सानों की रज़ामन्दी की खोज करने लगे थे। इंजील में हज़रत ईसा की चेतावनियाँ और नसीहतें इस प्रकार की अक्सर मिलती हैं। मुशरिकों और बुत-परस्तों के लिए जो आयतें है, उनका अन्दाज़ दूसरा है और यहाँ जो ख़ुदा-परस्त क़ौम को तम्बीह की जा रही है, उसका अन्दाज़ यह है कि तुम ख़ुदा की मेहरबानी और उसकी ख़ुशी के बजाय मख़्लूक़ की रज़ामन्दी के पीछे क्यों पड़े हो।

१७० (रसूलुल्लाह की रिसालत से इन्कार करके) **'बिमा' अन्ज़ल्तु'** यहाँ इशारा है क़ुर्आन की ओर। **'लिमा मअकुम्'** संकेत तौरेत की ओर है। **'अव्वल'** के मानी हमेशा पहले आनेवाले के नहीं होते। अव्वल के माने इस्लाम तथा ईमान में इमाम या रहनुमा के भी हो जाते हैं। **'अव्वल काफ़िरिम्-बिही'**— अरब के मुशरिक इसराईलियों की दिमाग़ी और ज़ेह्नी प्राथमिकता के पूरी तरह क़ायल थे। उनके विचारों तथा उनके विरोध को प्रमाण मात्र मानते थे। यहूद किताबवाले तो थे ही, आसमानी किताब की क़द्र भी वही कर सकते थे और अरब के नेता के रूप में उन्हीं की ज़िम्मेदारी बढ़ी हुई थी। यह भी कहा गया कि कुफ़्र की ओर पहेल मत करो।

१७१ हक़ और सत्य को दुनिया की मस्लहत और फ़ायदे के विचार से छोड़ देना। आख़िरत की हमेशा की दौलत को दुनिया की मामूली सी क़ीमत पर बेच डालना। यह अर्थ नहीं है कि उक़बा (मरने के बाद की दुनिया) को कम क़ीमत पर नहीं, ज़्यादा क़ीमत पर बेच डाला जाये। दुनिया की बड़ी से बड़ी दौलत भी आख़िरत की दौलत से कम ही है। इमाम राज़ी ने कहा है, 'इश्तिरा' का अर्थ तब्दील करना है यानी बदले में देना। यहूद सत्य को बेचने का कारोबार करते थे, उसका वर्णन 'अह्दनामा नवीन' में भी है जैसे— "यह लोग नाजायज़ लाभ की ख़ातिर गन्दी बातें सिखाकर घर के घर तबाह कर देते हैं।" (तीतमस १, ११)।

१७२ (न कि किसी मख़्लूक़ से) ख़ुदा के ख़ौफ़ की ताकीद से तौरेत और इंजील दोनों भरी पड़ी हैं। क़ुर्आन मजीद ने केवल ताकीद दोहराई है। आयत का सम्बन्ध केवल यहूद की हक़फ़रोशी (सत्य को बेच देने) से है, बाज़ आलिमों ने इस पर विवाद आरम्भ कर दिया कि दीनी तालीम पर मुआविज़ा लेना चाहिए या नहीं। 'रूहुल् मआनी' में सही जवाब मिलेगा।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ८४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या बनी॑ इस्रा॑ईलज़्कुरू निऽमतियल्लती॑ अन्अ़म्तु अ़लैकुम् व औफ़ू बि अ़ह्दी॑
अूफ़ि बि अ़ह्दिकुम् ज व इय्याय फ़र्हबूनि (४०) व आमिनू बिमा॑ अन्ज़ल्तु
मुसद्दिक़ल्लिमा मअ़कुम् व ला तकूनू॑ अव्वल काफ़िरिम्-बिही॑ स व ला तश्तरू
बि आयाती समनन् क़लीलन् ज व इय्याय फ़-त्तक़ूनि (४१) व ला तल्बिसुल्-हक़्क़
बिल्बातिलि व तक्तुमुल्हक़्क़ व अन्तुम् तऽलमून
(४२) व अक़ीमुस्सलात व आतुज़्ज़कात
वर्कअ़ू मअ़र्राकिअ़ीन (४३) अतअ़्मुरूनन्नास
बिल्बिर्रि व तन्सौन अन्फ़ुसकुम् व अन्तुम्
तत्लूनल्-किताब त अफ़ला तऽक़िलून (४४)
वस्तअ़ीनू बिस्सब्रि वस्सलाति त व इन्नहा
ल कबीरतुन् इल्ला अ़लल्ख़ाशिअ़ीन ला (४५)
अल्लज़ीन यज़ुन्नून अन्नहुम् मुलाक़ू रब्बिहिम्
व अन्नहुम् इलैहि राजिअ़ून (४६) ★ ●
या बनी॑ इस्रा॑ईलज़्कुरू निऽमतियल्लती॑
अन्अ़म्तु अ़लैकुम् व अन्नी फ़ज़्ज़ल्तुकुम्
अ़लल्आ़लमीन (४७) वत्तक़ू यौमल्ला तज्ज़ी
नफ़्सुन् अन् नफ़्सिन् शैअंव्व ला युक़्बलु
मिन्हा शफ़ाअ़तुंव्व ला युअ्ख़ज़ु मिन्हा अ़द्लुंव्व
ला हुम् युन्सरून (४८) व इज़् नज्जैनाकुम्

البقرة ٢

نعمتى التى انعمت عليكم واوفوا بعهدى اوف بعهدكم واياى فارهبون ۝
وامنوا بما انزلت مصدقا لما معكم ولا تكونوا اول كافر به ولا تشتروا بايتى
ثمنا قليلا واياى فاتقون ۝ ولا تلبسوا الحق بالباطل وتكتموا الحق وانتم
تعلمون ۝ واقيموا الصلوة واتوا الزكوة واركعوا مع الركعين ۝ اتامرون الناس
بالبر وتنسون انفسكم وانتم تتلون الكتب افلا تعقلون ۝ واستعينوا بالصبر
والصلوة وانها لكبيرة الا على الخشعين ۝ الذين يظنون انهم ملقوا ربهم
وانهم اليه رجعون ۝ يبنى اسراءيل اذكروا نعمتى التى انعمت عليكم
وانى فضلتكم على العلمين ۝ واتقوا يوما لا تجزى نفس عن نفس شيئا
ولا يقبل منها شفاعة ولا يؤخذ منها عدل ولا هم ينصرون ۝ واذ
نجينكم من ال فرعون يسومونكم سوء العذاب يذبحون ابناءكم و
يستحيون نساءكم وفى ذلكم بلاء من ربكم عظيم ۝ واذ فرقنا بكم
البحر فانجينكم واغرقنا ال فرعون وانتم تنظرون ۝ واذ وعدنا
موسى اربعين ليلة ثم اتخذتم العجل من بعده وانتم ظلمون ۝ ثم
عفونا عنكم من بعد ذلك لعلكم تشكرون ۝ واذ اتينا موسى الكتب
والفرقان لعلكم تهتدون ۝ واذ قال موسى لقومه يقوم انكم ظلمتم
انفسكم باتخاذكم العجل فتوبوا الى بارئكم فاقتلوا انفسكم ذلكم
خير لكم عند بارئكم فتاب عليكم انه هو التواب الرحيم ۝ واذ قلتم

منزل

ह. ५ — ५ आ ७ ● रु ब. अ १ — ४

मिन् आलि फ़िर्औ़न यसूमूनकुम् सू॑अल्अ़ज़ाबि युज़ब्बिहून अब्ना॑अकुम् व यस्तह्यून
निसा॑अकुम् त व फ़ी ज़ालिकुम् बला॑उम्-मिर्रब्बिकुम् अज़ीमुन् (४९) व इज़् फ़रक़्ना
बि कुमुल्बह्र फ़ अन्-जैनाकुम् व अग़्रक़्ना॑ आल फ़िर्औ़न व अन्तुम् तन्ज़ुरून (५०)
व इज़् वाअ़द्ना मूसा॑ अर्बअ़ीन लैलतन् सुम्मत्तख़ज़्तुमुल्-इ़ज्ल मिम्बऽदिही॑
व अन्तुम् ज़ालिमून (५१) सुम्म अ़फ़ौना अ़न्कुम् मिम्बऽदि ज़ालिक लअ़ल्लकुम्
तश्कुरून (५२) व इज़् आतैना मूसल्किताब वल्फ़ुर्क़ान लअ़ल्लकुम् तह्तदून
(५३) व इज़् क़ाल मूसा लि क़ौमिही॑ या क़ौमि इन्नकुम् ज़लम्तुम् अन्फ़ुसकुम्
बित्तिख़ाज़िकुमुल्-इ़ज्ल फ़ तूबू॑ इला बारिइकुम् फ़क़्तुलू॑ अन्फ़ुसकुम् ज़ालिकुम्
ख़ैरुल्लकुम् इ़न्द बारिइकुम् त फ़ ताब अ़लैकुम् त इन्नहू हुवत्तव्वाबुर्रहीमु (५४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ बनी इसराईल[१६६] ! मेरा वह इनआम याद करो जो मैंने तुम पर किया[१६७], और मुझसे वादा पूरा करो तो मैं तुमसे वादा पूरा करूँ[१६८] । और तुम सिर्फ़ मुझी से डरते रहो[१६९] । (४०) और इस (किताब) पर ईमान लाओ, जो मैंने (अब) अवतरित की है[१७०], तस्दीक़ करती हुई उस (किताब) की जो तुम्हारे पास है और मत बनो उसके साथ कुफ़्र करनेवालों के रहनुमा और मेरी आयतों को बेच मत डालो थोड़ी-सी क़ीमत पर[१७१] और सिर्फ़ मुझी से डरो[१७२] । (४१) और सत्य को असत्य के साथ मत मिलाओ[१७३] और सत्य को मत छुपाओ[१७४], हालाँकि तुम जान भी रहे हो[१७५] । (४२) और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दिया करो और (नमाज़ में) झुकनेवालों के साथ झुकते रहो[१७६] । (४३) क्या तुम दूसरे लोगों को नेकी का हुक्म देते हो और अपने को भूल जाते हो[१७७] ? हालाँकि तुम अल्लाह की किताब पढ़ते रहे हो[१७८], सो क्या तुम अक़्ल से काम ही नहीं लेते ? (४४) और सब्र और नमाज़ से मदद चाहो[१७९] कि वह निस्सन्देह कठिन है, मगर ख़ुदा से लौ लगानेवालों पर नहीं। (४५) जिन्हें इसका ख़याल रहता है कि उन्हें अपने परवरदिगार से मिलना (भी) है और इसका कि उन्हें उसकी तरफ़ वापस होना है[१८०] । (४६) ★ ●

★ रु. ५/५ आ ७ ●

ऐ बनी इसराईल ! मेरा वह इनआम याद करो, जो मैंने तुम पर किया[१८१] और तुम्हें दुनिया जहानवालों पर बड़ाई दी[१८२] । (४७) और उस दिन से डरते रहो, जब न कोई किसी के हक़ में बदल बन सकेगा और न किसी के हक़ में सिफ़ारिश स्वीकार होगी और न किसी से बदला स्वीकार किया जायेगा और न उन्हें मदद ही पहुँच सकेगी[१८३] । (४८) और (वह वक़्त याद करो) जब हमने तुम्हें फ़िरऔन वालों से नजात दी थी, जो तुम्हारे ऊपर बड़ा अज़ाब तोड़ रहे थे[१८४] । तुम्हारे लड़कों को क़त्ल कर डालते थे[१८५] और तुम्हारी औरतों को ज़िन्दा रहने देते थे[१८६] और इसमें तुम्हारे परवरदिगार (परवरिश करनेवाला) की तरफ़ से तुम्हारी बड़ी परीक्षा थी[१८७] । (४९) और (वह वक़्त याद करो) जब हमने तुम्हारे लिए समुद्र को फाड़ दिया था[१८८], फिर हमने तुम्हें नजात दे दी । और फ़िरऔन वालों को डुबा दिया यद्यपि तुम देख रहे थे[१८९] । (५०) और (वह वक़्त याद करो) जब हमने मूसा से चालीस रातों का वादा कर लिया था[१९०] । फिर तुमने उनके पीछे गौसाला को अपना लिया[१९१] और तुम सख़्त ज़ालिम थे[१९२] ।(५१) फिर हमने तुमको इसके बाद भी माफ़ कर दिया[१९३] कि शायद तुम शुक्रगुज़ार बन जाओ[१९४] । (५२) और (वह वक़्त याद करो) जब हमने मूसा को किताब और फ़ुरक़ान दिये ताकि तुम रास्ता पा जाओ[१९५] । (५३) और (वह वक़्त याद करो) जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा[१९६] कि ऐ मेरी क़ौम ! तुम लोगों ने अपने ऊपर (बड़ा) ज़ुल्म किया अपनी गोसालागीरी से[१९७], सो अब अपने ख़ुदा से तौबा करो[१९८] फिर अपने लोगों की हत्या करो[१९९] । यही बेहतर है तुम्हारे हक़ में, तुम्हारे ख़ुदा के नज़दीक[२००], फिर उसने तुम्हारी तौबा स्वीकार कर ली[२०१], निस्सन्देह वह है ही बड़ा तौबा स्वीकार करनेवाला बड़ा मेहरबान[२०२] । (५४)

रु ब अ १/४

---

१६६ 'बनी इसराईल' प्रसिद्ध पैग़म्बर हज़रत इब्राहीम, जो इराक़, शाम और हिजाज़ तीनों जगहों में रहे और बसे (२१६० से १९८५ मसीह के पूर्व), उनसे दो नस्लें चलीं । एक बीबी हाजिरा मिस्री से हज़रत इस्माईल की नस्ल, जो बनी इस्माईल कहलाई और आगे चलकर क़ुरैश इसी की एक शाखा से पैदा हुई । उनका वतन अरब रहा । दूसरी बीबी सारा इराक़ी के बेटे इस्हाक़ के बेटे हज़रत याक़ूब उर्फ़ इसराईल से जो नस्ल चली, वह बनी इसराईल कहलाई । इसका वतन शाम रहा । पुरानी भूगोल में फ़िलस्तीन कोई अलग देश नहीं था, शाम का ही भाग था । तीसरी बीबी क़तूरा से जो नस्ल चली, वह बनी क़तूरा कहलाई, परन्तु इतिहास में उसकी अहमियत नहीं है । बनी इसराईल सैकड़ों वर्ष तक बड़े दर्जों में रहे । दुनिया में 'एक ख़ुदा' को माननेवाली यही क़ौम रही । इनके बीच कई नबी और रसूल पैदा होते रहे । इनमें बड़े-बड़े इबादत करनेवाले बुज़ुर्ग पैदा होते रहे । इनमें बड़े-बड़े बादशाह और फ़ौजी

(देखें फ़ुटनोट सफ़ा ८० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ८१ से)

१७३ (अल्लाह के कलाम में अर्थ या अक्षरों में अदला-बदली करके) **'ला तल्बिसू'** तल्बीस के अस्ली मानी हैं किसी चीज़ को ढाँप लेना, छुपा लेना। यानी अधूरी बात कहना कि अर्थ कुछ का कुछ हो जाये या झूठ को शाब्दिक और ज़ाहिरी सच्चाई का रंग दे देना। गढ़े हुए झूठ से बड़ा धोखा हो जाया करता है। अंग्रेज़ों की तरह यहूद भी इस कला के माहिर थे।

१७४ ख़ुदा के आदेशों को बदलने की दो शक्लें हैं। एक उनके भीतर अक्षरों में हेरा-फेरी, मिलावट और हर्फ़ों से अर्थ को छुपाना, दूसरे उनकी सच्चाई को छुपा लेना और तोड़-मरोड़ देना। यहूद ने अपने धार्मिक ग्रन्थों में दोनों प्रकार की हेरा-फेरी की थी। तौरेत की अस्ली प्रतिलिपि दो बार खोई गई और उसकी अस्ल इबारत के कितने ही हुक्म ग़ायब हो गये थे। जो अवशेष था, उसमें भी तौरेत पर जिन लोगों का प्रभुत्व था, उन्होंने अपने स्वार्थों और फ़ायदों के अनुसार उसकी असलियत को कहीं से कहीं पहुँचा दिया।

१७५ (यानी तुम हेरा-फेरी और अदल-बदल कर रहे हो) यानी यह हेरा-फेरी तुम जान-बूझकर कर रहे हो। यह भी अर्थ है कि तुम अपनी इन ग़लत हरकतों से पूरी तरह परिचित हो।

१७६ यानी ईमान के बाद अमल से भी इस्लाम के नियमों का पालन करो। ईमान लाने का हुक्म अभी एक आयत के पहले मिल चुका है, अब जो दूसरी बातें हैं, उनकी शिक्षा दी जा रही है। **'अक़ीमुस्सलात'**— यानी नमाज़ के पाबन्द हो जाओ क्योंकि इससे दौलत के लालच का इलाज हो जायेगा। **'आतुज़्ज़कात'** ज़कात देते रहो क्योंकि इससे धन की मुहब्बत का सुधार हो जायेगा। **'अर्कअ़ू मअ़र्राकिअ़ीन'** झुकनेवालों के साथ झुको क्योंकि इस प्रकार तुमको सही लोगों का साथ मिलेगा और तुम्हारी इस्लाह होगी। **'अर्कअ़'** रुकूअ़ इस्लामी नमाज़ के एक विशेष नियम का नाम है— सारी बात का अर्थ यह है कि जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ो। जमाअत में मुसलमानों के साथ शामिल रहो। आलिमों ने विवाद पैदा किया है कि क्या काफ़िरों को यहाँ सम्बोधित करना उचित है? एक गरोह सही बताता है, लेकिन दूसरे गरोह का जवाब यह है कि इस आयत के सारे हुक्म एक आयत के मातहत हैं, यानी पहले ईमान लाओ फिर इन हुक्मों पर अमल करो।

१७७ यानी कैसे ग़ज़ब की बात है कि दूसरों को तो ईमान लाने का मशविरा दे देते हो और ख़ुद ईमान नहीं लाते हो। सम्बोधन बनी इसराईल ही से है। ऊपर गुज़र चुका है कि इसराईली अपने साहिब-किताब और इल्मवाले होने के कारण अरब के मुशरिकों की निगाह में बड़ा सम्मान रखते थे। वह अक्सर इनके पास आकर पूछते कि रसूल सल्लअम नबूवत का दावा कर रहे हैं, इसमें कहाँ तक सच्चाई है? हम इसकी तस्दीक़ करें या न करें? कुछ ऐसे यहूद थे, जो ऐसे अवसरों पर कहते थे कि बेशक कुछ अलामतें तो उनमें ऐसी हैं, जो हमारे यहाँ की भविष्यवाणियों के अनुसार ही हैं। अन्तरात्मा और ईमानदारी के लिहाज़ से तो उनका मशविरा यह था, लेकिन अपने अमल के समय लालच और दुनिया का ख़याल उनको रोकता था कि इस्लाम लाने के बाद उनको मातहती और प्रतिबन्धों का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। फिर सरदारी का यह दर्जा कहाँ रहेगा। **'अल्बिर्र'** के मानी हैं नेकी। हर प्रकार की नेकी। यहाँ इशारा इस्लाम के स्वीकार करने और रिसालत-मुहम्मदी को मानने की ओर है। **'अतअ्मुरून** हमज़ा यहाँ आश्चर्य और मलामत करने के लिए आया है।

१७८ यानी किताब तौरेत, जिसमें आख़िरी नबी के आने के संकेत दर्ज हैं।

१७९ (कि ईमान पर अडिग रहो और कुफ़्र के तरीक़े छूट जायें) ईमान लाने और सीधी राह अपनाने के बाद नाना प्रकार के कष्ट और प्रतिबन्ध लाज़िमी हैं। इन परेशानियों का इलाज यहाँ यह बताया जा रहा है कि सब्र की आदत डालो और नमाज़ें पढ़ते रहो। **'अस्सब्र'** की एक तफ़्सीर सौम (व्रत) या रोज़े की आई है।

१८० **इन्नहा**— सर्नाम नमाज़ की तरफ़ है। नमाज़ का आदेश अभी-अभी मिला है। अब बयान उन तरीक़ों का हो रहा है, जिनसे ख़ुद नमाज़ की पाबन्दी आसान हो जाये। यहाँ दिल के सही प्रकार से ख़ुदा की तरफ़ ध्यान लगाने के दो विशेष प्रभावों का वर्णन हो रहा है। पहला असर यह है कि नेक बन्दों को यह ख़याल रहता है कि यह इबादतें बेकार जानेवाली नहीं हैं। अपने मेहरबान और रहम करनेवाले ख़ुदा के हुज़ूर में हर हाल में उपस्थित होना है। उस वक़्त यह सारी मेहनत वसूल हो जायेगी। इससे कहीं ज़्यादा इसका फल मिलेगा। दूसरी बात यह है कि दिल से नमाज़ पढ़नेवालों के मन में यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बात जम जाती है कि आखिर तो अस्ली मालिक के सामने वापसी होगी। हिसाब जिस प्रकार हर अमल का होगा, अमल के छोड़ देने का भी होगा। नमाज़ छोड़ने की आदत इन बातों से स्वयं ही छूट जायेगी। नये मनोविज्ञान में काम करने की इच्छा दो चीज़ें मानी गई हैं। प्रेरणा दी जाये या यह भय हो कि सवाल किया जायेगा। दोनों बातों का उत्तर ऊपर मिल गया। **'लकबीरतुन्'** तबीअत पर भारीपन या गरानी का होना। **'यज़ुन्नून'** शक और विश्वास दोनों के अर्थ में आया है। 'ज़न' दोनों ओर के अर्थ में आ जाता है। कमज़ोर हो तो वह्म और शक्तिशाली हो तो यक़ीन बन जाता है।

१८१ सं० १६६ तथा १८२ का अवलोकन करें। ध्यान रहे कि यहाँ यहूदों के धर्म का वर्णन नहीं हो रहा है। एक विशेष क़ौम और नस्ल का ज़िक्र हो रहा है।

१८२ बनी इसराईल किसी धर्म या फ़िरके या अक़ीदे का नाम नहीं है, यह एक विशेष नस्ल का नाम है। यहाँ यहूदी धर्म की नहीं, इसराईली नस्ल की बड़ाई का बखान हो रहा है। प्रश्न यह है कि इस नस्ल की बड़ाई सारे विश्व पर कैसे हुई और यह किस अर्थ में अल्लाह ने फ़र्माया है? वह कौन सी ऐसी नेमत थी, जिसमें कोई और शरीक या हिस्सेदार नहीं था? यदि इसका अर्थ धन, हुकूमत या व्यापार या आबादी की ज़्यादती है, तो अव्वल तो यह इनआम इस दर्जे के नहीं हैं कि इनका वर्णन इस शान से किया जाये और इन चीज़ों को बड़ाई का मापदण्ड माना जाये। दूसरे यह कि यह नेमतें तो अन्य बहुत सी क़ौमों को मिल चुकी हैं। कल्दानियाँ, मिस्र और हिन्दुस्तान की सभ्यता और शान इसराईलियों के उन्नति पर आने के पूर्व ही बड़ी ऊँचाई पर पहुँच चुकी है। इतिहास बताता है कि इन क़ौमों की उन्नति और भौतिक ज्ञान इसराईलियों से कहीं बढ़-चढ़कर रहा है। फिर आखिर इसराईलियों की श्रेष्ठता का अर्थ क्या था? इतिहास ही बताता है कि वह दौलत वास्तव में तौहीद की दौलत थी। जब सारी दुनिया की क़ौमें शिर्क और गुमराही में लीन हो रही थीं, तो यही इसराईली क़ौम तौहीद का झण्डा ऊँचा कर रही थी। तौहीद के साथ रिसालत का चोली-दामन का साथ है। रिसालत को माननेवाली केवल वही क़ौम होगी, जो तौहीद पर पक्का विश्वास रखती होगी। जहाँ तक नबियों और रसूलों का सम्बन्ध है, इसराईली नस्ल में नबी बराबर पैदा होते रहे। दूसरी क़ौमों में एक, दो नबी पैदा हुए हैं। यहाँ पर वर्णन व्यक्तियों का नहीं, नस्ल और क़ौमों का ज़िक्र हो रहा है। जब दुनिया की दूसरी क़ौमों में "अवतारों" की उत्पत्ति हो रही थी और वह क़ौमें, देवताओं, आग, सूर्य, वर्षा, बुत और दरख़्तों की पूजा कर रही थीं, तो भी रसूलों और नबियों की चर्चा इसराईली क़ौम में हो रही थी। वह उन्हीं की शिक्षा-प्राप्ति कर रहे थे। हिन्दुस्तान की आर्य क़ौम में, फ़लसफ़ा, गणित, मनोविज्ञान आदि में बड़ी उन्नति थी, परन्तु वह भी शिर्क में फँसे हुए थे और केवल सामी नस्ल की क़ौम इसराईली ऐसी थी, जो तौहीद और रिसालत की दावत दे रही थी। मौजूद यहूद को भी अपने पूर्वजों की यह बातें याद हैं। 'जिविश इन्साक्लोपीडिया' में लिखा है— "बनी इसराईल का यह मुख्य कर्तव्य बना हुआ था कि वह सूर्य, चन्द्रमा और सितारों की पूजा के विरुद्ध 'जिहाद' करते रहें।" (जिल्द ६, सफ़ा ५)। "बनी इसराईल का अकेला कर्तव्य खुदा का गवाह बनना था।" (जिल्द६, सफ़ा२)। "इन्सानों में श्रेष्ठ हैं और हीन हैं। दूसरी क़ौमों में बनी इसराईल सबसे बेहतर हैं।" (जिल्द६, सफ़ा११)। "राजनैतिक क़ौमों में सबसे पहले इसराईलियों की ही पहुँच अपने नबियों की तालीम से खुदा तक हुई।" (जिल्द ८, सफ़ा ६५६)। मसीही अंग्रेज इतिहासकारों ने भी इसी सच्चाई को दोहराया है। 'हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ़ दि वर्ल्ड' में है, "एक खुदा के धर्म की नीव बनी इसराईल ही में पड़ी।" (जिल्द २, सफ़ा ३)। "मानव जाति की मौजूदा रूहानी एवं मानसिक दौलत चाहे वह मसीही हो या इस्लामी, सबकी तलहटी में उसी अद्वैत की गूंज मिलती है, जिसका निमन्त्रण सबसे पहले इसराईलियों ने दिया था।" (जिल्द २, सफ़ा ३)। स्वयं तौरेत ने जो स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है, उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। "तू खुदावन्द, अपने खुदा के लिए एक पाक क़ौम है। खुदावन्द, तेरे खुदा ने चुन लिया कि तू सब गरोहों की निस्बत जो ज़मीन पर हैं, उसके खास गरोह हो। खुदावन्द ने तुमसे मुहब्बत रखी और तुम्हें बड़ाई दी, इसलिए नहीं कि और गरोहों से तुम गिनती में ज़्यादा थे क्योंकि तुम तो सब गरोहों से कम ही थे। बलिक इसलिए कि खुदावन्द आलम ने तुमसे मुहब्बत रखी।" (इस्तिस्ना ७, ६, ७)। "खुदावन्द को अच्छा मालूम हुआ कि तुम्हारे बाप-दादाओं से मुहब्बत रखे, इसलिए उनके बाद उनकी सन्तान को यानी तुमको सारे गरोहों की अपेक्षा पहले बड़ाई दी जैसा कि आज है।" (इस्तिस्ना १०, १५)। "तुम मेरे गवाह हो और मेरा बन्दा भी, जिसको मैंने बड़ा बनाया⋯⋯सो तुम मेरे गवाह हो।" (यसियाह १, २, ४२)। बनी इसराईल और उम्मत-मूसवी दो बिलकुल अलग चीज़ें हैं। इसलिए इस आयत की तफ़्सीर में मूसा की उम्मत और उम्मत-मुहम्मदी के ब्योरे और उनके मुक़ाबिले की आवश्यकता नहीं है। यहाँ इस प्रश्न को उठाना बिलकुल बेमौक़ा है। लोगों ने क़ौम बनी इसराईल और उम्मत-मूसवी को एक समझ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया, इसलिए यह आवश्यकता पड़ गई कि एक विशेष ज़माने में बनी इसराईल की बड़ाई को सीमित किया गया। उम्मत-मुहम्मदी की बड़ाई दीन, धर्म और अक़ीदे के विचार से है न कि नस्ल या क़ौम के विचार से। आयत में वर्णन एक विशेष नस्ल की बड़ाई का है। यह कोई दृष्टिकोण और शोध की समस्या नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि जिस समय सभ्यता की दुनिया शिर्क और भ्रम में लीन थी, अद्वैत के सम्राट हज़रत इब्राहीम की नस्ल की एक शाखा तौहीद का झण्डा ऊँचा किये हुए थी। हमारे तफ़्सीर करनेवालों ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि इसराईली नस्ल की बड़ाई उसमें नबूवत की श्रृंखला के कारण थी।

१८३ उस दिन का अर्थ है 'क़यामत का दिन'। क़यामत की याद बड़े विशेष स्थान पर दिलाई गई है। हश्र व नश्र (मिट जाना और उसके बाद फिर पैदा होने) सज़ा और बदले की बात का अक़ीदा, जो मनुष्य के हृदय में ज़िम्मेदारी और उत्तरदायित्व की आत्मा है, वह न केवल इसराईलियों के दिलों से ही बल्कि उनकी पवित्र पुस्तकों और लेखों तक से मिट चुका था। आगे जो क़यामत के दिन के गुणों की व्याख्या हो रही है, वह इसराईलियों के ही किसी न किसी अक़ीदे की काट है। **'ला तज्ज़ी नफ़्सुन् अन् नफ़्सिन्'** इसका अर्थ इसराईली अक़ीदे की वह काट है, जो आज तक 'जिविश इन्साक्लोपीडिया' में इस प्रकार लिखा चला आता है। "बहुत से लोग अपने पूर्वजों और बहुत से लोग अपने उत्तरदाइयों के कारण बख़्श दिये जायेंगे।" **'व ला युक़्बलु मिन्हा शफ़ाअतुन्'** (जबकि मौत कुफ़्र की हालत में और ईमान लाए बिना हुई हो।) यहाँ भी इसराईली अक़ीदे की काट की गई है कि अमल और अक़ीदे कैसे ही हों, हर दशा में अपने पूर्वजों की सिफ़ारिश कराके बख़्शिश हो जायेगी। सिफ़ारिश और सिफ़ारिश करनेवाले के स्थायी होने का यही वह बढ़ा-चढ़ा हुआ विचार है, जिसकी मसीहियत में आकर हद हो गई है और प्रायश्चित्त की ही भाँति सिफ़ारिश के अक़ीदे पर मसीहियत की नीव रखी हुई है। **'ला युअ्ख़ज़ु मिन्हा अद्लुन्'** यहाँ यहूदी और मसीही प्रायश्चित्त के अक़ीदे पर चोट की गई है। मसीही तो इस विश्वास में थे ही, यहूद भी इस अक़ीदे के प्रभाव में आ गये थे (जिविश इन्साक्लोपीडिया। जिल्द २, सफ़ा २७८)। **'व ला हुम् युन्सरून'**— ईमान न रखनेवालों को किसी भी तरफ़ से मदद या सहायता न पहुँचेगी कि सज़ा में कुछ कमी हो जाये। नजात का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बेराह और भटकी हुई क़ौमों ने नाना प्रकार की बातें गढ़ ली थीं कि अमुक और अमुक अल्लाह के अज़ाब और उसकी पकड़ से बचा लेंगे। यहाँ सबकी काट कर दी गई है।

१८४ (जिस पर तुम्हारे इतिहास के पन्ने स्पष्ट गवाही दे रहे हैं) **'आलि'** शब्दकोश में इसका अर्थ बाल-बच्चे, साथी, एक धर्म के उपासक और एक गोत्र के होते हैं। अन्तर यह है कि अहल का आम तौर पर प्रयोग होता है और 'आल' का प्रयोग विशेषता के लिए ही होता है। **'फ़िर्औन'** यह किसी ख़ास बादशाह का निजी नाम नहीं है। पुराने मिस्री बादशाहों की यह पदवी होती थी, जैसे जर्मनी के बादशाह को क़ैसर, रूस के सम्राट को ज़ार, तुर्की के बादशाह को सुल्तान, मिस्र के बादशाह को खदेववे मिस्र कहते थे। इतिहासकारों का विचार है, हज़रत मूसा के ज़माने के दो बादशाह एक के बाद दूसरे हुए हैं। यदि यह सत्य है, तो यह भी क़ुर्आन का एक एजाज़ (वह शक्ति-प्रदर्शन, जो हर एक के वश की बात न हो) ही कहना चाहिए कि वह व्यक्तिक नाम के स्थान पर आम शब्द का प्रयोग करता है, जिसके बाद व्यक्तियों के एक या दो या चन्द होने का सवाल ही नहीं रह जाता। मिस्र से निकलकर बनी इसराईल ने सिनाई के भूखण्ड में जो प्रस्थान किया है, उसका एक नवीन पश्चिमी आलिम ने अपनी छानबीन से एक नक़्शा प्रस्तुत किया है, जो सफ़ा ८७ पर दिया जा रहा है।

यानी अत्याचारी और अन्याय करनेवाले बादशाहों की भाँति तुमको अपनी प्रजा बनाये हुए तुम्हारे ऊपर नाना प्रकार की सख़्तियाँ करते थे। "मिस्रियों ने सेवा करवाने में बनी इसराईल पर सख़्ती की और उन्होंने कड़ी मेहनत से गारा और ईंट का काम और सब सेवा खेतों की करवाके उनका जीवन दुखी किया और उनकी सारी सेवा में, जो वह कराते थे, कड़ी मेहनत की थीं।" (ख़ुरूज १, १३, १४)। सबसे पुरातन-काल का इसराईली इतिहासकार जोज़ेफ़स का इतिहास 'हिस्ट्री आफ़ जिविश ऐण्टीक़ुईटीज़' में और भी ज़्यादा विवरण पाये जाते हैं। क़ुर्आन और तौरेत के बयानों का यह अन्तर भी ध्यान देने योग्य है कि तौरेत ने हाकिमाना अत्याचारों को सारे मिस्रियों से सम्बद्ध कर दिया और क़ुर्आन ने अपने उसी लिहाज़ और अन्दाज़ को अपनाये हुए बड़ी सच्चाई और एहतियात से केवल फ़िर्औनियों का नाम लिया। दोनों चीज़ें ऐसी ही हैं जैसे अंग्रेज़ी क़ौम और अंग्रेज़ी साम्राज्य। हिन्दुस्तान पर पकड़ अंग्रेज़ी हुकूमत की थी, न कि अंग्रेज़ी क़ौम की। बाज़ इतिहासकारों का विचार है कि सारे इसराईली मिस्र से एकायक नहीं निकले, बल्कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धीरे-धीरे टोलियों में निकलते रहे और आखिरी दस्ता वह था, जो हज़रत मूसा के नेतृत्व में रवाना हुआ और राह भटककर समुद्र को पार किया। हैस्टिंग्स की डिक्शनरी आफ़ दि बाइबिल में है। "मुमकिन है कि मिस्री इसराईलियों के गरोह समय-समय से मिस्र से निकलकर अपने पूर्वजों के मक़बरों के आसपास आबाद हो गये हों।" (जिल्द ३, सफ़ा ८६०)। यदि इतिहास ने इस मानी हुई बात की तस्दीक़ कर दी तो क़ुर्आन मजीद के लफ़्ज़ **'नज्जैना'** की क़द्र उस समय होगी कि कैसी ऐतिहासिक सच्चाई बयान की थी।

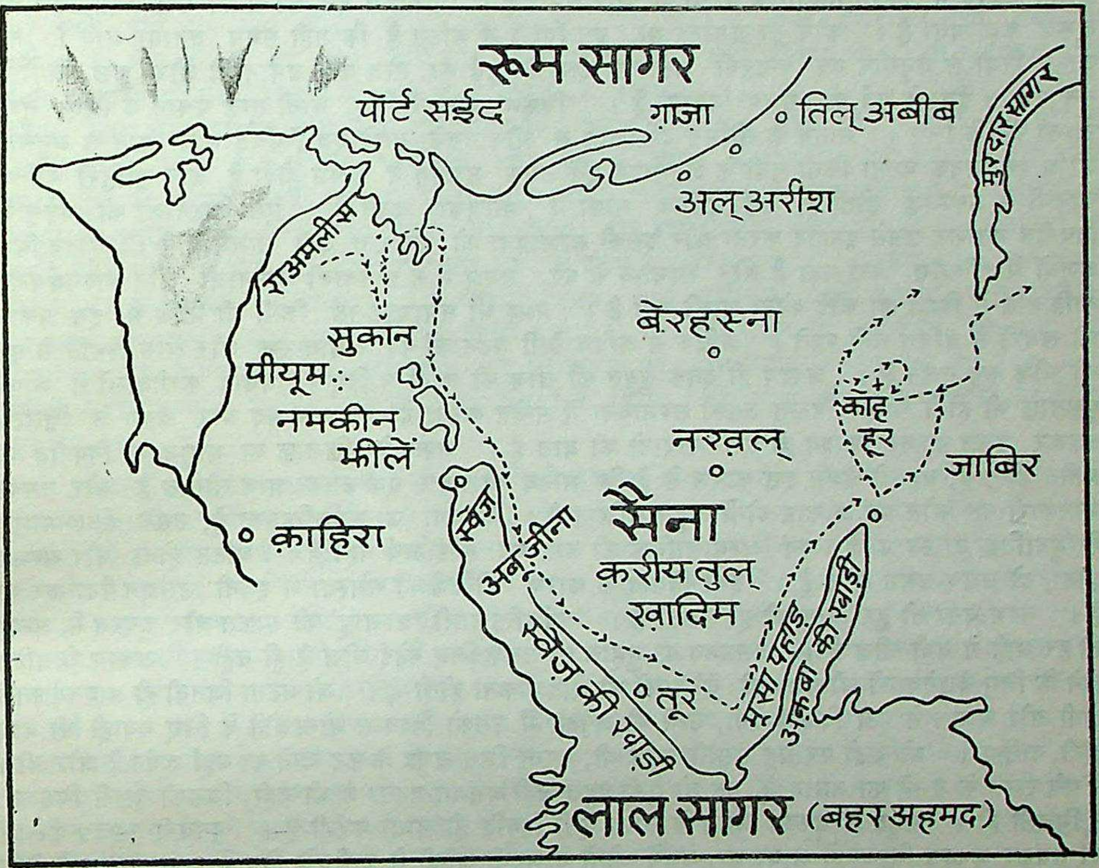

१८५ तौरेत में है— "अगर बेटा हो तो उसे हलाक कर दो·····और फ़िर्औन ने अपने सब लोगों को बल देकर कहा कि इनमें जो बेटा पैदा हो, तुम उसे दरिया में डाल दो।" (ख़ुरूज—१, ५, २२)। फ़िर्औन सरकार का यह आदेश जारी हुआ था कि इसराईली प्रजा की कोई भी नर-सन्तान जीवित न रहने पाये।

१८६ यह लड़कियों का क़त्ल न करना और उन्हें औरत बनने के लिए ज़िन्दा रखना सम्भवतः इस कारण था कि उन्हें फ़िर्औनी दरबारी और अमीर अपने हरम में दाखिल करें। (मिल् मैन की 'हिस्ट्री आफ़ दि जिउज़' जिल्द प्रथम, सफ़ा १७७)। तौरेत में क़ुर्आन के वर्णन की तरह केवल उनके जीवित रखने का बयान है, कारण और रहस्य अंकित नहीं किया गया है। "अगर बेटा हो तो उसे हलाक कर दो और अगर बेटी हो तो उसे जीने दो·····उनमें जो बेटा पैदा हो तुम उसे दरिया में डाल दो। और जो बेटी हो जीती रहने दो।" (ख़ुरूज—१, १५, २२)।

१८७ प्रसिद्ध और पुरातनकाल का यहूदी इतिहासकार (जिसका समय हज़रत ईसा के तुरन्त पश्चात् का है) के शब्द भी लगभग यही हैं— "यह एक बड़ी भयंकर परीक्षा थी।" (तारीख़ आसारे यहूद— भाग ६, अध्याय २)। इस कड़ी परीक्षा के विवरण से इसराईलियों का इतिहास भरा पड़ा है।

१८८ फ़िर्औन और मिस्री सरकार के अत्याचारों को वर्षों तक झेलने के पश्चात् अन्त में हज़रत मूसा के नेतृत्व में सारी इसराईली क़ौम ने मिस्र में रहना छोड़कर अपने पूर्वजों के वतन शाम तथा फ़िलस्तीन वापस चले जाने का निर्णय किया। मिस्री सरकार से छुपकर रात को सफ़र आरम्भ किया। ज़माना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह था कि लैम्प या लालटेन आदि तो थीं ही नहीं, आजकल की तरह सड़कें भी न थीं। रात के अँधेरे में इसराईली रास्ता भूल गये और उत्तर की ओर कुछ बढ़कर पूरब की तरफ़ बढ़ने के स्थान पर वह पहले ही उधर घूम पड़े। उधर फ़िर्औन को सूचना मिल गई और वह अपनी सेना की कमान स्वयं करता हुआ तेज़ी से आ पहुँचा। अब इसराईलियों के समक्ष यानी पूरब की ओर लाल सागर का उत्तरी छोर था और दायें-बायें अर्थात् उत्तर-दक्षिण में पहाड़ियाँ थीं और पीछे यानी पश्चिम में फ़िर्औन की सेना। क़ुर्आन मजीद में इसी ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत है। तौरेत में इस घटना को बनी 'इसराईल का ख़ुरूज' कहा गया है। कौन सा ज़माना था, इस विषय में कठिन है कि सही समय बताया जाये। नई जानकारियों के अनुसार यह पन्द्रहवीं शताब्दी ईसा के पूर्व का, बीच का ज़माना है और कुछ लोगों ने सन् १४४७ ईसा के पूर्व का समय बताया है। **'बिकुम्'** तुम्हारे लिए, यानी तुम्हें बचाने के लिए, तुम्हें रास्ता देने के लिए। मानव के सीमित दृष्टिकोण से और उसके अधूरे एवं किंचित मात्र ज्ञान के अनुसार जो आश्चर्यजनक घटना किसी नबी के अनुमोदन एवं उसके समर्थन में उत्पन्न होती है और ज़ाहिरी भौतिक कारणों से असम्बद्ध होती है, उसे धार्मिक भाषा में 'मोजिज़ा' कहते हैं। ऐसी घटनाओं को अक़्ल के विपरीत बताकर उससे इन्कार करना और इसकी सम्भावना को नकारना बड़ी नासमझी है। ऐतिहासिक अजूबों से इतिहास भरा पड़ा है और सामान्य से परे, समझ में न आनेवाली घटनाओं और आश्चर्यजनक वाक़िआत से विश्व का कोई कोना ख़ाली नहीं है। आज भी समाचार-पत्र किसी भी तिथि में इस प्रकार की ख़बरों से वंचित नहीं रहते। अधिक से अधिक ऐसी घटनाओं को असाधारण और आम स्थिति से परे की चीज़ कह सकते हैं। अवश्य ही इनके सुबूत की खोज की जानी चाहिए। बयान करनेवालों से काफ़ी पूछताछ भी होनी चाहिए, परन्तु उनकी सम्भावना में सन्देह करना या उसे असम्भव और अक़्ल के ख़िलाफ़ कहकर ग़लत कहना अवश्य ही एक नादानी की बात है। अक़्ल के ख़िलाफ़ या मामूल के विपरीत जो प्रतीत होता है, वह तो केवल इस कारण से है कि मानव की अक़्ल एवं उसका ज्ञान सीमित है और उसकी जानकारी का स्रोत एवं आकार दोनों बहुत संक्षिप्त हैं। अन्यथा जो सर्वशक्तिमान है, उसके लिए मामूल के मुताबिक़ या स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक की बात का कोई अर्थ नहीं है। घटित होना और सम्भव होना, दो अलग-अलग चीज़ें हैं। इसी विवाद के कारण मोजिज़े की समस्या में इतनी उलझन पैदा कर दी है। सम्भावना तो हर बात की हो सकती है। सर्वशक्तिशाली 'अल्लाह' की ताक़त और क़ुदरत के अन्दर तो हर बड़ी से बड़ी चीज़ है। असम्भव या मुहाल तो उसके लिए कोई चीज़ है ही नहीं। अवश्य ही घटित होने के लिए देखनेवालों और गवाही देनेवालों की आवश्यकता होती है। जो घटना जितनी ही आश्चर्यजनक होगी और मामूल से हटी दिखाई देगी, उसी की अपेक्षा में उसको विश्वास योग्य होने के लिए गवाही भी बड़ी होनी चाहिए। मोजिज़ों पर यह उसूली बहस थी, परन्तु जिस समुद्र के फट जाने का यहाँ वर्णन है और बीच में सूखे रास्ते के बनने का बयान है, वह तो ऐसी बहुत बड़ी असंगत घटना है भी नहीं, जिसकी दूसरी मिसाल न मिलती हो। समुद्र में भूकम्प आने के समय ऐसी स्थिति हो जाया करती है। जनवरी १६३४ ई० में जो भयंकर भूकम्प बिहार में आया था, उसमें लोगों ने अपनी आँखों से ढाई बजे दिन में पटना नगर में देखा कि पलक झपकाते में गंगा जैसे भारी दरिया का जल ग़ायब हो गया और उतने चौड़े पाट में सूखी भूमि निकल आई और यह आश्चर्यजनक घटना तथा यह दृश्य चार-पाँच मिनट तक दिखाई देता रहा, यहाँ तक कि अचानक दरिया उसी विद्युत की गति से फिर भूमि के अन्दर से उबल पड़ा और फिर पूर्व की भाँति बहने लगा। इस घटना का आँखों देखा हाल २० जनवरी १६३४ ई० के 'पानियर' में अंकित है। **'अल्बह्र'** का अर्थ यहाँ नील की नदी नहीं है जैसा कि बाज़ अच्छे आलिमों को धोखा हो गया है, बल्कि यह लाल सागर था। नील तो बनी इसराईल के निवास के इलाक़े से पश्चिम में था और इसराईलियों का शाम का रास्ता पूरब की ओर था। नील से उस रास्ते का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मिस्र से शाम की राह के निकट लाल सागर था। उसी के तंग उत्तरी सिरे की ओर यहाँ संकेत है। मिस्र के पूरब में, जहाँ बाद में नहर स्वेज़ खुद गई और पहले वहाँ सूखी भूमि थी। उसके सन्निकट दक्षिण में समुद्र दो त्रिकोणों की शक्ल में विभाजित दिखाई देता है। (नक़्शा देखें) यहाँ इन दो में से पश्चिमी त्रिभुज समझा गया है। इसराईलियों ने इसी को पार करके सैना के उपद्वीप में पग धरे थे।

१८६ इसराईलियों ने अपने को हर तरफ़ से घिरा हुआ पाकर स्वाभाविक रूप से परेशानी का अनुभव किया, परन्तु नेतृत्व अल्लाह के एक बड़े पयम्बर कर रहे थे। आपने वहीए-इलाही (अल्लाह की ओर से आनेवाले शब्द एवं निर्देश, जो नबियों पर अवतरित होते हैं) के संकेत पर कहा कि निःसन्देह और बिना रुके हुए समुद्र में चल पड़ो। समुद्र का पानी दोनों ओर पर्वत की भाँति सिमटकर खड़ा हो गया। बीच में सूखा रास्ता उत्पन्न हो गया। इसराईलियों का क़ाफ़िला समुद्र पार कर गया। इतने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

में फ़िर्औनी भी समुद्र के तट पर पहुँच गये और यह दृश्य देखकर वह भी पैदल और सवार सूखे सागर में घुस पड़े, परन्तु अभी बीच में ही थे कि पानी की वह खड़ी दीवारें पलक झपकते में परस्पर मिल गईं और समुद्र का पानी पूर्व की भाँति बहने लगा। देखते-देखते फ़िर्औन की सेना अपने सारे सामान के साथ डूब गयी। तौरेत में निम्न प्रकार ब्योरा मिलता है:— "फिर मूसा ने दो बार हाथ बढ़ाया और ख़ुदावन्द ने पूर्वी बड़ी आँधी के कारण तमाम रात में दरिया को चलाया और दरिया को सुखा दिया और पानी को दो भाग कर दिया और बनी इसराईल दरिया के बीच में से सूखी ज़मीन पर होकर गुज़र गये और पानी की उनके दायें और बायें दीवार थी।" (ख़ुरूज—१४, २२, २९)। "बनी इसराईल सूखी ज़मीन पर दरिया के बीच में चले गये और पानी की उनके दाहिने और बायें दीवार थी। सो ख़ुदावन्द ने उस दिन इसराईलियों को मिस्रियों के हाथ से यूँ बचाया।" (ख़ुरूज—१४, २९, ३०)। "और मिस्रियों ने पीछा किया और उनका पीछा किये हुए वह और फ़िर्औन के सब घोड़े और उसकी गाड़ियाँ और उसके सवार दरिया के बीचोबीच तक आये और मूसा ने अपना हाथ दरिया पर बढ़ाया और दरिया सवेरा होते ही अपनी अस्ली शक्ति में लौटा और मिस्री उसके आगे भागे और ख़ुदावन्द ने मिस्रियों को दरिया में हलाक किया और पानी फिरा और गाड़ियों और सवारों और फ़िर्औन की सब सेना को, जो उनके पीछे दरिया में आई थी, छुपा लिया और एक भी उनमें से बाक़ी न छूटा।" (ख़ुरूज—१४, २४, २८)। इस घटना का ज़माना नवीनतम शोध के अनुसार १४४७ पूर्व मसीह या उसके लगभग माना गया है। **'व अन्तुम् तन्ज़ुरून'** यह टुकड़ा यूँ ही नहीं लिखा गया है। बनी इसराईल पर बल देकर यह सत्य प्रकट किया जा रहा है कि अपने ऐसे बलशाली शत्रु की तबाही का दृश्य केवल अल्लाह की मदद से अपनी आँखों से देख लिया। तौरेत में है कि इसराईलियों ने मिस्रियों की लाशें दरिया के किनारे पर देखीं। (ख़ुरूज—१४, २१)।

१९० जब हज़रत मूसा अपनी क़ौम को मिस्री हुकूमत के अत्याचारी पंजों से बचाकर निकाल लाये, तो अब ख़ुदा की मर्ज़ी यह हुई कि इस क़ौम को एक पूरी शरीअत की व्यवस्था और जीवन का विधान बख़्शा जाये। अत: हज़रत मूसा उपद्वीप सैना के एक पहाड़ की चोटी पर ग़ैबी-लेखा (ईश्वरीय-लेख) प्राप्त करने के लिए एक चिल्ले के लिए आमन्त्रित हुए। मूसा इमरान के सुपुत्र इसराईली शृंखला के सबसे बड़े एवं महान पयम्बर का नाम है। तौरेत में है कि "आयु १२० वर्ष की पाई।" (इस्तिस्ना—७, २४)। आपका समय इतिहासकार मसीह के पूर्व पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी था। जन्म का सन् सम्भवत: १५२० पूर्व मसीह एवं वफ़ात का सन् शायद १४०० पूर्व मसीह है। **'अर्बओन लैलतन्'** चालीस रात-दिन का अर्थ है। चाँद के हिसाब से २४ घण्टे वाला दिन सुबह के बजाय सायंकाल से आरम्भ होता है। इस कारण अरबी मुहावरे में चालीस दिन के स्थान पर ४० रात आता है। तौरेत में है— "और मूसा पहाड़ पर चालीस दिन-रात ख़ुदावन्द के पास रहा।" (ख़ुरूज—२८, ३४)। इस्लामी बयानों में आता है कि यह ज़माना ज़ीक़ादा के पूरे महीने और ज़िलहज के प्रथम १० दिनों का था। मौलाना थानवी ने जो बुज़ुर्गों के यहाँ चिल्ले की मुद्दत है, उसे इसी कारण से परिचित बताया है।

१९१ (यानी अपने पूजनीय के रूप में) **'मिम्बड़दिही'**— यानी हज़रत मूसा की अस्थायी अनुपस्थिति में। उधर हज़रत मूसा पहाड़ को गये और इधर उनकी क़ौम ने, जो एक ख़ुदा की माननेवाली थी, आसपास की मुशरिक क़ौमों की देखादेखी एक गौसाले की मूर्ति सोने की बनाकर उसकी पूजा करना शुरू कर दिया। तौरेत में ख़ुरूज का अध्याय ३२ पूरा इसी गौसाला की पूजा के वर्णन से परिपूर्ण है।

१९२ क़ुर्आन मजीद ने इस प्रकार की गुमराही और कड़े पाप को अक्सर 'ज़ुल्म' ही कहा है। और वास्तव में मनुष्य का स्वयं अपने ऊपर इससे बड़ा ज़ुल्म और हो ही क्या सकता है। इसराईलियों में यह गुमराही आई कहाँ से? इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर दिये गये हैं। एक विचार यह है कि यह मिस्रियों की गाय-परस्ती का प्रतिबिम्ब था। दूसरी राय यह है कि फ़िलस्तीन के मुशरिकों के साथ का यह प्रभाव था। तीसरा ख़याल यह है कि गौसाला चन्द्रमा देवता की मूर्ति थी और गौसाला की पूजा गोया चन्द्रमा की पूजा थी। जो कुछ भी हो क़ुर्आन ने इसे शिर्क ही कहा है, चाहे वह मूर्ति किसी की भी हो। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि ख़ुदा की बारगाह में कोई जा नहीं सकता, वरना अगर केवल ग़लती होती तो इसराईलियों को विवश मान लिया जाता।

१९३ (तुम्हारे तौबा करने और माफ़ी माँगने के बाद और तुममें से एक विशेष गरोह की सज़ा के बाद) गौसाला की पूजा की और शिर्क करने की सज़ा तो सारी क़ौम को मिलनी चाहिए थी। शिर्क करनेवालों को शिर्क की, और तमाशा देखनेवालों को इस कारण से कि वह चुप क्यों रहे और जुर्म में सहायक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्यों हुए, परन्तु वास्तव में सज़ा एक गरोह को मिली जैसा कि अभी आता है और बाक़ी सारी क़ौम तौबा और पश्चाताप करने के बाद बच गई।

१६४ (शुक्रगुज़ारी, आभारी होना और विनम्रता बरतना तो शराफ़त का जौहर है और मानवता का द्योतक है) तौहीद और आज्ञाकारिता ही इस अवसर पर अमली रूप में आभार-प्रदर्शन था।

१६५ (और छोटी-छोटी बातों के लिए भी जीवन का विधान हाथ आ जाये) इसराईलियों को तौहीद की शिक्षा सरसरी प्रकार तो पहले से ही मिली हुई थी और पयम्बर उनके बीच मौजूद थे ही। अब किताब इसलिए उन पर अवतरित हुई कि एक स्थायी एवं सुव्यवस्थित जीवन का विधान हर छोटी से छोटी बात का भी उनको मिल जाये और वह भविष्य में सही राह से भटकने न पायें। **'अल्किताब'** यानी तौरेत। क़ुर्आन मजीद में केवल 'अल्किताब' तौरेत के लिए भी आया है। **'अल्फ़ुर्क़ान'** शाब्दिक अर्थ यह है कि वह चीज़, जिससे सत्य एवं असत्य के बीच फ़र्क़ किया जा सके। अल्फ़ुर्क़ान, क़ुर्आन का भी नाम है क्योंकि वह भी सत्य, असत्य, हराम व हलाल के बीच फ़र्क़ बताता है और इसी विचार से अलावा क़ुर्आन के तौरेत तथा इंजील भी इसी अर्थ में आ जाती हैं। यह किताबें भी सच और झूठ के बीच क़ौल के विचार से, कर्म के लिहाज़ से, नेक तथा बद और अक़ीदे के लिहाज़ से सत्य और असत्य के बीच फ़र्क़ बताती हैं। इस स्थान पर अल्फ़ुर्क़ान की कई तफ़्सीरें (अर्थ) नक़्ल हुई हैं:—

(१) एक यह कि अल्किताब और अल्फ़ुर्क़ान से मतलब एक ही है। यानी तौरेत की दो सिफ़तें हैं। एक गुण किताब के रूप में, दूसरा गुण फ़ुर्क़ान होने में प्राथमिकता का। प्रथम वह किताब है और दूसरे यह कि वह फ़ुर्क़ान है।

(२) दूसरे यह कि इसका अर्थ उसके आदेशों और शरा (धार्मिक विधान) के विचार से किया जाये। इब्ने अब्बास और बहुत से ताबेईन का यही मज़्हब है।

(३) उन मोजिज़ों से मतलब लिया गया है, जो हज़रत मूसा को ख़ुदा से मिले। जैसे असा (लाठी) का मोजिज़ा, यदे बैज़ा का मोजिज़ा।

(४) वह विजय और क़ाबू, जो बनी इसराईल को फ़िर्औनी सरकार के मुक़ाबिले में मिला।

यहूद का अक़ीदा है कि तौरेत के अलावा ज़बानी रूप में भी अनेकों रहस्य एवं भेद की बातें हज़रत मूसा को बताई गई थीं और वह उनके बाद उनकी नस्ल में एक के बाद दूसरे व्यक्ति को प्राप्त होती रहीं। यहूद के दृष्टिकोण से फ़ुर्क़ान का अर्थ, उस किताबी ज्ञान के अलावा व्यक्तिक रूप में जो ज्ञान मिला, वह है।

१६६ (जब बनी इसराईल शिर्क और गौसाला की पूजा में फँस चुके थे, उसके बाद)।

१६७ (कि तौहीद जैसी अनमोल दौलत पाने के पश्चात् फिर शिर्क और जानदारों की पूजा करने की नीचता पर उतर आये)।

१६८ यानी न उन्होंने ज़ुल्म किया होता, न आज तौबा की नौबत आती। तौरेत में इस स्थान पर है— "और मूसा ने कहा, आज ख़ुदावन्द के लिए स्वयं को अर्पित करो। हर एक मर्द अपने बेटे और भाई पर प्रहार करे, ताकि वह तुम्हें बरकत देवे।" (ख़ुरूज—२६, ३२)।

१६९ (अपने हाथ से यानी जो अपराधी नहीं हैं, वह अपराधियों को क़त्ल करें) ह० मूसा की शरीअत में शिर्क अलावा धार्मिक अपराध के फ़ौजदारी का भी एक संगीन जुर्म था, जिसको क़त्ल किया जाना चाहिए था। तौरेत की क़ानूनी आयतों में मुशरिक स्त्री-पुरुषों के लिए यह स्पष्टीकरण है कि "उस स्त्री या पुरुष पर यहाँ तक पथराव कीजियो कि वह मर जायें……गवाहों के हाथ उस पर पहले उठें, ताकि उसको क़त्ल करें और उनके बाद बाक़ी सब लोगों के साथ तुम यूँ ही अपने बीच से शरारत को समाप्त कीजियो।" (इस्तिस्ना, ५, ७, १७)। और ज़ाहिर है कि शरीअत का लागू किया जाना शरीअत के चलाने वाले के समक्ष भी न होता तो और कब होता। शिर्क के अपराधी पकड़-पकड़कर सामने लाये गये और अपने ही भाई-बन्दों के हाथों मौत के घाट उतरे। तौरेत में है— "तुममें से हर पुरुष अपनी कमर पर तलवार बाँधे और एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े तक तमाम सेनास्थल में गुज़रता फिरे और हर पुरुष तुममें से अपने भाई को और हर आदमी अपने दोस्त को और हर एक आदमी अपने निकट वाले को क़त्ल करे और बनी-लावा ने मूसा के कहने के अनुसार किया। उस दिन लोगों में से लगभग तीन हज़ार आदमी मारे पड़े।" (ख़ुरूज—२७, २८, ३२)। **"फ़क़्तुलू अन्फ़ुसकुम'** में क़त्ल का अर्थ यही हलाक करना है, जिसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब जानते हैं और शोधकर्ताओं ने इसी मानी को स्वीकार किया है। इस खुले हुए मानी को छोड़कर अन्य अर्थ लगाना, यानी तप और तपस्या आदि व्यर्थ है। क़त्ल की यह घटना बनी इसराईल की एक मानी-जानी घटना है। तौरेत की सनद अभी गुज़र चुकी है। इतिहास की सारी किताबें इस घटना को दोहरा रही हैं। इसके ख़िलाफ़ और कोई चीज़ नहीं मिलती। रही अक़्ल, सो ख़ुदा जाने दुनिया के पर्दे पर आज भी वह कौन सी सरकार है, जो अपने फ़ौजदारी क़ानून के कड़े अपराधियों, डाकुओं, लुटेरों इत्यादि को केवल क्षमायाचक होने पर माफ़ कर देती है।

२०० (और इस भलाई और बेहतरी को आख़िरत में देखा जा सकेगा) ख़ैर से यहाँ संकेत नजात, मुक्ति, गुनाहों की गन्दगी से पाकसाफ़ होने से है। यहाँ इस्लामी शरीअत का नहीं, इसराईली शरीअत के नियमों की व्याख्या हो रही है।

२०१ (पूरी क़ौम की हैसियत से) **'ताब अलैकुम'** यानी तुम्हारी तौबा क़ौम की हैसियत से स्वीकार कर ली। सज़ा केवल उन लोगों को मिली, जो शिर्क के अपराधी वास्तविक रूप में और अपने कर्म से थे। आबादी का बड़ा भाग, जो केवल अपनी ख़ामोशी से अपराध में सम्मिलित रहा, उसकी ख़ता माफ़ हो गई।

२०२ दुनिया की बहुत सी भटकी हुई क़ौमों का यह अक़ीदा रह चुका है और अब भी है (जैसे बुद्ध धर्म वालों का) कि ख़ुदा को माफ़ कर देने का कोई अख़्तियार ही नहीं क्योंकि वह स्वयं अमल और कर्म के नतीजे के क़ानून के अधीन है। मसीहीयत भी इसी बुनियादी गुमराही में है। ख़ुदा चूँकि स्वयं किसी को माफ़ नहीं कर सकता और अपनी दयालुता के कारण माफ़ करना चाहता है, इसलिए उसने अपने बेटे को सबकी ओर प्रायश्चित्त के रूप में सज़ा दे दी और दूसरों को माफ़ कर दिया। यहूदीयत ने भी ख़ुदा की क़हारियत (ग़ुस्से और सख़्ती) पर इतना बल दिया कि उसकी रहमत, स्नेह और मेहरबानी का चित्र मन्द हो गया। क़ुर्आन मजीद ने तौबा और उसकी स्वीकृति और अल्लाह की रहमत की विशालता पर बार-बार ज़ोर दिया और इन सारी गुमराहियों की काट कर दी। **'अत्तव्वाब'** व **'अर्रहीम'** दोनों की व्याख्या हो चुकी है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ९३ से)

२०४ (अपनी इन्हीं भौतिक तथा ज़ाहिरी आँखों से) जैसे कि अल्लाह तआला भी कोई भौतिक जिस्म रखता है, जिसको हर व्यक्ति देख सके और जैसे कि रसूल के हवास साधारण मनुष्य के हवास से किसी प्रकार भी बढ़-चढ़कर न होते हों। इसलिए जो कुछ वह देख और सुन सकता है, वही सभी देख और सुन सकते हैं।

२०५ (इस गुस्ताख़ाना माँग की सज़ा के तौर पर) **'अख़ज़त्कुम्'** "पकड़ लिया तुमको" यानी उन्हीं सत्तर बड़ों को। मोतज़ला (एक धार्मिक समूह) ने यह दलील की है कि ख़ुदा को देखना सम्भव ही नहीं है, अन्यथा यदि यह उचित और जायज़ होता, तो इस प्रश्न पर इसराईली सरदारों को इतनी कड़ी सज़ा न मिलती, लेकिन सुन्नत वालों का यह मज़हब है कि जन्नत में अल्लाह की ज़ियारत मोमिनों को होकर रहेगी और दुनिया में भी उसकी बड़ी मेहरबानी जिन लोगों पर होती है, उनको भी हक़ की ज़ियारत हो सकती है; हाँ, हर दिशा, जिस्म और भौतिक दशा से पाकसाफ़। रही उनकी यह सज़ा, तो इसके कारण दूसरे हैं। जैसे यह कि वह पैग़म्बर की बात को झुठला रहे थे (हालाँकि मोजिज़े के ज़ाहिर होने और तर्क-वितर्क के बाद पयम्बर पर ईमान लाना फ़र्ज़ हो जाता है) या यह कि वह सवाल अपनी जिहालत को दूर करने के लिए नहीं, बल्कि इन्कार के रूप में दुश्मनी की वजह से ऐसा कर रहे थे।

२०६ तौरेत में है— "और यूँ हुआ कि तीसरे दिन सुबह को बादल गरजे और बिजलियाँ चमकीं और पहाड़ पर काली घटा उमड़ी और क़रनाई की आवाज़ बुलन्द हुई। चुनांचे सब लोग डेरों में काँप-काँप गये।" (ख़ुरूज—१६, १६)। **'साइक़ः'** का अस्ल अर्थ सख़्त वायुमण्डलीय आवाज़ यानी कड़क और गरज के हैं। इसका भी वही अर्थ यानी मृत्यु और अज़ाब और आग का पैदा हो गया है।

२०७ यह दुबारा जीवन-दान वाली बात हज़रत मूसा की सिफ़ारिश पर हुई है, इसराईली लेख इस विषय में चुप हैं। **'बअस्नाकुम्'** "जिला उठाया तुमको" यानी उन्हीं सत्तर बड़ों को। मौत और बेस दोनों के खुले हुए अर्थ, मरने और जी उठाने के हैं, और तफ़्सीर करनेवालों ने आम तौर पर यही समझा है, बल्कि यह कह दिया है कि बाद मौत की पाबन्दी इसीलिए लगाई है कि कोई ग़शी या नींद के बाद न

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ९४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व अिज़् क़ुल्तुम् या मूसा लन् नुअ्मिन लक हत्ता नरल्लाह जह्रतन् फ़
अख़ज़त्कुमुस्साअिक़तु व अन्तुम् तन्ज़ुरून (५५) सुम्म बअस्नाकुम् मिम्बअ्दि
मौतिकुम् लअ़ल्लकुम् तश्कुरून (५६) व ज़ल्लल्ना अलैकुमुल् - ग़माम व
अन्ज़ल्ना अ़लैकुमुल्मन्न वस्सल्वा त कुलू मिन् तय्यिबाति मा रज़क़्नाकुम् त
व मा ज़लमूना व लाकिन् कानू अन्फ़ुसहुम्
यज़्लिमून (५७) व अिज़् क़ुल्नद्ख़ुलू
हाज़िहिल् - क़र्यत फ़ कुलू मिन्हा हैसु शिअ्तुम्
रग़दंव्वद्ख़ुलुल्बाब सुज्जदंव्व क़ूलू हित्ततुन्
नग़्फ़िर् लकुम् ख़तायाकुम् त व स
नज़ीदुल्-मुह्सिनीन (५८) फ़ बद्दलल्लज़ीन
ज़लमू क़ौलन् ग़ैरल्लज़ी क़ील लहुम् फ़ अन्ज़ल्ना
★ रु. ६/६ आ १३ अलल्लज़ीन ज़लमू रिज्ज़म्-मिनस्समाअि बिमा
कानू यफ़्सुक़ून (५९) ★ व अिज़िस्तस्क़ा
मूसा लि क़ौमिही फ़ क़ुल्नज़्रिब् बि अ़साकल्-
हजर त फ़न्फ़जरत् मिन् हुस्नता अश्रत अैनन् त
क़द् अलिम कुल्लु अुनासिम् - मश्रबहुम् त
कुलू वश्रबू मिर्रिज़्क़िल्लाहि व ला तअ़सौ
फ़िल्अर्ज़ि मुफ़्सिदीन (६०) व अिज़् क़ुल्तुम्

يموسى لن نؤمن لك حتى نرى الله جهرة فاخذتكم الصعقة وانتم
تنظرون ﴿٥٥﴾ ثم بعثنكم من بعد موتكم لعلكم تشكرون ﴿٥٦﴾ وظللنا عليكم
الغمام وانزلنا عليكم المن والسلوى كلوا من طيبت ما رزقنكم وما
ظلمونا ولكن كانوا انفسهم يظلمون ﴿٥٧﴾ واذ قلنا ادخلوا هذه القرية فكلوا
منها حيث شئتم رغدا وادخلوا الباب سجدا وقولوا حطة نغفر لكم خطيكم
وسنزيد المحسنين ﴿٥٨﴾ فبدل الذين ظلموا قولا غير الذي قيل لهم فانزلنا
ع على الذين ظلموا رجزا من السماء بما كانوا يفسقون ﴿٥٩﴾ واذ استسقى
موسى لقومه فقلنا اضرب بعصاك الحجر فانفجرت منه اثنتا عشرة
عينا قد علم كل اناس مشربهم كلوا واشربوا من رزق الله ولا تعثوا
في الارض مفسدين ﴿٦٠﴾ واذ قلتم يموسى لن نصبر على طعام واحد
فادع لنا ربك يخرج لنا مما تنبت الارض من بقلها وقثائها وفومها
وعدسها وبصلها قال اتستبدلون الذي هو ادنى بالذي هو خير
اهبطوا مصرا فان لكم ما سالتم وضربت عليهم الذلة والمسكنة
وباءو بغضب من الله ذلك بانهم كانوا يكفرون بايت الله ويقتلون
ع النبين بغير الحق ذلك بما عصوا وكانوا يعتدون ﴿٦١﴾ ان الذين امنوا
والذين هادوا والنصرى والصبين من امن بالله واليوم الاخر
وعمل صالحا فلهم اجرهم عند ربهم ولا خوف عليهم ولا هم

या मूसा लन् नस्बिर अ़ला तआमिंव्वाहिदिन् फ़द्अु लना रब्बक युख़्रिज् लना
मिम्मा तुम्बितुल्-अर्ज़ु मिम्बक़्लिहा व क़िस्साअिहा व फ़ूमिहा व अदसिहा
व बसलिहा त क़ाल अ तस्तब्दिलूनल्लज़ी हुव अद्ना बिल्लज़ी हुव
ख़ैरुन् त अिह्बितू मिस्रन् फ़ अिन्न लकुम् मा सअल्तुम् त व ज़ुरिबत्
अलैहिमुज़्ज़िल्लतु वल्मस्कनतु क़ व बाअू बि ग़ज़बिम् - मिनल्लाहि त ज़ालिक
★ रु. ७/७ आ २ बिअन्नहुम् कानू यक्फ़ुरून बि आयातिल्लाहि व यक़्तुलूनन्नबिय्यीन बिग़ैरिल्-
हक़्क़ि त ज़ालिक बिमा अ़सव्व कानू यअ़तदून (६१) ★ अिन्नल्लज़ीन
आमनू वल्लज़ीन हादू वन्नसारा वस्साबिअीन मन् आमन बिल्लाहि
वल् - यौमिल् - आख़िरि व अमिल सालिहन् फ़ लहुम् अज्रुहुम् अिन्द
रब्बिहिम् ज व ला ख़ौफ़ुन् अलैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (६२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और (वह वक़्त याद करो) जब तुमने कहा था कि ऐ मूसा ! हम कदापि न विश्वास करेंगे तुम्हारे कहने से[२०३] जब तक हम ख़ुदा को देख न लें अलानिया[२०४]; सो (उस पर) तुमको आ लिया कड़क ने[२०५] और तुम उसका आना देख रहे थे[२०६]। (५५) फिर हमने तुमको जिला उठाया तुम्हारे मरे पीछे[२०७] कि शायद तुम शुक्रगुज़ार बनो[२०८]। (५६) और हमने तुम्हारे ऊपर अब्र (बादल) का साया कर दिया[२०९] और हमने तुम्हारे ऊपर मन व सलवा उतारा[२१०], खाओ इन पवित्र चीज़ों में से जो हमने तुमको दे रखी है[२११] और उन्होंने ज़ियादती हम पर नहीं की बल्कि ज़ियादती अपनी ही जानों पर करते रहे[२१२]। (५७) और (वह वक़्त याद करो[२१३]) जब हमने कहा था कि इस बस्ती में दाखिल हो जाओ और इसमें जहाँ से चाहो ख़ूब खाओ, पियो[२१४] और शहर के दरवाज़े में विनम्रता से झुके हुए प्रवेश करना[२१५] और कहते जाना 'तौबा' है (क्षमायाचक होना)[२१६]। हम तुम्हारी ख़ताएँ माफ़ कर देंगे और हम नेक लोगों को ज़्यादा ही देते हैं[२१७-२१८] (उर्दू अनुवाद में २१८ फ़ुटनोट-संख्या नहीं है, लेकिन इसका सम्बन्ध २१७ फ़ुटनोट से है।)। (५८) परन्तु उन ज़्यादती करनेवालों ने जो उन्हें बताया गया था उसके ख़िलाफ़ एक और बात बदल डाली[२१९], सो हमने उन ज़्यादती करनेवालों पर एक बला आसमान से उतार दी[२२०] इस कारण से क्योंकि वह आदेशों की अवहेलना करते रहे थे[२२१]। (५९) ★ ★ रु. ६/६ आ १३

और (वह वक़्त याद करो) जब मूसा ने अपनी क़ौम के लिए पानी की दुआ माँगी[२२२], सो हमने कहा (ऐ मूसा !) अपनी लाठी (अमुक) पत्थर पर मारो[२२३]। तो उसमें से बारह चश्में फूट निकले[२२४] और हर गरोह ने अपना घाट मालूम कर लिया[२२५]। खाओ-पियो अल्लाह के दिये हुए रिज़्क़ (भोजन आदि) में से और ज़मीन पर शरारती बनकर मत फिरो[२२६]। (६०) और (वह वक़्त याद करो) जब तुमने कहा था कि ऐ मूसा ! हम कदापि एक खाने पर बस नहीं कर सकते[२२७], सो अपने परवरदिगार (ख़ुदा) से हमारे लिए दुआ कर दीजिए— उन चीजों की जिन्हें ज़मीन उगाती है[२२८] साग हुआ, ककड़ी हुई, गेहूँ हुआ, मसूर हुई, पियाज़ हुआ[२२९]। (मूसा ने) कहा तो क्या जो चीज़ अदना है, तुम उसे लेना चाहते हो उस चीज़ के मुक़ाबिले में जो बेहतर है; (तो ख़ैर) किसी शहर में उतर पड़ो (वहीं) मिल जायेगा जो तुम माँगते हो[२३०]। और उन पर जमा दी गई, ज़िल्लत (अपमान) और मोहताजी (तंगी तथा ग़रीबी)[२३१] और वह अल्लाह के ग़ज़ब के अधिकारी हो गये[२३२]। यह (सब) इसलिए हुआ कि वह अल्लाह की निशानियों से इन्कार करते रहते थे[२३३] और नबियों को अकारण क़त्ल (तक) कर डालते थे[२३४]। यह (सब) इसलिए हुआ कि आज्ञा-अवहेलना करते और हद से बढ़-बढ़ जाते थे[२३५]। (६१) ★ ★ रु. ७/७ आ २

निस्सन्देह जो लोग ईमान ला चुके हैं[२३६] और जो लोग यहूदी हुए[२३७] और नसारा[२३८] और साबी[२३९] (गरज़) जो कोई भी अल्लाह और आख़िरत पर ईमान ले आये[२४०] और नेक अमल करे,[२४१] सो उन (सब) के लिए उनके परवरदिगार के पास उनका अज्र (बदला) है और न कोई अंदेशा उनके लिए है और न वह कोई ग़म करेंगे[२४२]। (६२)

---

२०३ (कि जो सम्बोधन तुमसे हुआ, वह अल्लाह का सम्बोधन था और जो बात तुम हमें सुना रहे हो, वह अल्लाह की ही बात है) **'क़ुल्तुम्'** "तुमने कहा था"। यानी तुम्हारी क़ौम के सत्तर बड़े-बूढ़ों ने, जो तुम्हारे नुमाइन्दे थे। यहाँ इसराईली इतिहास के महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन हो रहा है और उनकी क़ौमी तारीख़ (इतिहास) से इसराईलियों को क़ायल किया जा रहा है। अब यह बयान उस समय का है, जब हज़रत मूसा उपद्वीप सैना के सत्तर बड़े-बूढ़ों को लेकर तूर पर्वत पर गये हैं। पहाड़ के दामन में उन्हें छोड़कर ख़ुद आगे बढ़ गये हैं और अल्लाह से बातचीत करने के बाद इस बात की ख़ुशख़बरी और सूचना उन क़ौम के बड़े-बूढ़ों को पहुँचाई है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ९१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ९१ से)

समझे, परन्तु बाज़ लोगों ने यह भी कहा है कि मौत वास्तविक नहीं थी, बल्कि बेहोशी की प्रकार की यह मजाज़ी मौत थी और बेस का अर्थ उसी बेहोशी से नजात लगाया है।

२०८ (और भविष्य में तौहीद और ईमान पर पूरी तरह क़ायम रहो) बाज़ तफ़्सीरों में यह भी नक़्ल हुआ है कि यह सत्तर व्यक्ति बाद को हज़रत मूसा की दुआ से नबी हो गये, परन्तु यह क़िस्सा व्यर्थ का है।

२०९ (तुम्हें सूर्य की तपिश से बचाने के लिए, जब कि तुम सैना के बियाबान में भटक रहे थे।) उपद्वीप सैना जैसे रेतीले और चटियल मैदान की धूप में साये का मिलना वास्तव में रहमत का साया है। तौरेत में सुतून और आग के सुतून का वर्णन मोजिज़े के रूप में है। क़ुर्आन के हवाले में मोजिज़े का पहलू नहीं पैदा होता। यहाँ पर वर्णन उन नेमतों का हो रहा है, जो बनी इसराईल पर उनकी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थिति में उनको मिलती रहीं। क़ुर्आन करीम ने इस प्रकार की नेमतों को मोजिज़े की ही अहमियत दी है। तौरेत में आया है— "और ख़ुदावन्द दिन को बदली के सुतून में ताकि उन्हें राह बताये और रात को आग के सुतून में हो के ताकि उन्हें रौशनी प्रदान करे, उनके आगे चला जाता था ताकि दिन-रात चले जायें और बदली का सुतून दिन को और आग का सुतून रात को उनके आगे से हरगिज़ न उठाता था।" यहूद की पुस्तक 'जिविश इन्साइक्लोपीडिया' (जिल्द ४, १२३) में यह स्पष्टीकरण मौजूद है कि बनी इसराईल जब गुनाहों में लीन हो जाते थे, तो यह बादल उन पर साया करना छोड़ देता था। **'अल्ग़माम'** क़ुर्आन मजीद ने इसे बादल बताया है। यहूद इसे ख़ुदावन्दी तख़्त समझते थे; ग़माम केवल बादल नहीं है। वह बादल की हल्की शक्ल है।

२१० (उसी सैना के बियाबान में) **'अन्ज़ल'** "उतारा" से यह अर्थ नहीं होता कि वह चीज़ मोजिज़े के रूप में उतरी हो। पानी, लिबास, लोहा, खाने के सामान इत्यादि जो अपने मामूली और नेचुरल तरीक़ों पर मनुष्य के काम के लिए पैदा होते रहे हैं, उन सबके लिए क़ुर्आन मजीद की भाषा में उतारने का ही शब्द आया है। शब्दकोष वालों ने भी यही कहा है कि नेमत हो या मुसीबत, बन्दों पर अल्लाह की तरफ़ से आती है, उसे अता कहते हैं। यह अता चाहे सीधे हो या किसी कारण द्वारा, उसे अन्ज़ाल ही कहते हैं। **'मन्न'** यह एक मीठी बहती हुई वस्तु थी, जो पेड़ों पर गिरा करती थी। कई अर्थ इसके बताये गये हैं— मीठा गोंद, शहद, शर्बत इत्यादि। बाज़ लोग इसे तुरंजबीन कहते हैं। तुरंजबीन के विषय में हकीमों ने कहा है कि यह शहद की तरह दानेदार आसमान से गिरनेवाली ओस की भाँति एक वस्तु है। इतनी बात सच्ची है कि यह कोई मज़ेदार क़ुदरती ग़िज़ा थी, जो बनी इसराईल को बराबर बिना मेहनत लगातार यात्रा के ज़माने में मिल जाया करती थी। तौरेत का वर्णन इस विषय में निम्न प्रकार है:— "सुबह को सेना के पास ओस पड़ी और जब ओस पड़ चुकी तो क्या देखते हैं कि जंगल में एक छोटी-छोटी गोल सफ़ेद चीज़, ऐसी सफ़ेद जैसे बर्फ़ का टुकड़ा, ज़मीन पर पड़ी है और बनी इसराईल ने देखकर आपस में कहा, 'मन्न' है क्योंकि उन्होंने न जाना कि वह क्या है। तब मूसा ने उनसे कहा कि यह रोटी है, जो ख़ुदावन्द ने तुम्हें दी है।" (ख़ुरूज—१६, १४, १५)। "इसराईल के घराने ने इसका नाम 'मन्न' रखा और वह धनिये के बीज की तरह सफ़ेद थी और उसका मज़ा शहद में मिली हुई फुलौरी का था।" (ख़ुरूज—६१, ३१)। "और 'मन्न' सूखे हुए धनिये की तरह था और उसका रंग मोती के दाने का-सा था। लोग इधर-उधर जाकर उसे जमा करते थे और चक्की पीसते थे या ओखली में कूटते थे और तवों पर पकाते थे और फुलकियाँ बनाते थे। उसका मज़ा ताज़ा तेल का-सा था और रात को जब ख़ेमों पर ओस पड़ती थी, तो 'मन्न' भी उन पर पड़ता था (गिन्ती—११, ८-११)। **'सल्वा'** एक प्रकार की बटेर है। बटेर सैना उपद्वीप की विशेष चिड़िया है। बहुत ज़्यादा पाई जाती है। गर्मी में उत्तर को प्रस्थान कर जाती है और जाड़ों में दक्षिण की ओर आ जाती है। ऊँची नहीं उड़ती, बहुत नीचे रहती है। जल्द थक जाती है। आसानी से शिकार हो जाती है। (जिविश इन्साइक्लोपीडिया, जिल्द १०, सफ़ा २८५)। इसका उत्तरी सफ़र मिस्र से फ़िलस्तीन की ओर मार्च में होता है और दक्षिणी फ़िलस्तीन से मिस्र की ओर आम तौर पर नवम्बर में। यह इसराईली बटेर वह थे, जो मार्च-अप्रैल में रात के समय अपनी उत्तरी उड़ान में होते थे। लाल सागर के उत्तर में, जहाँ वह दो भागों में बँट गया है, वहाँ तक यह अपनी सालाना उड़ान में आते हैं और वहाँ से उपद्वीप सैना का रास्ता लेते हैं। समुद्र की हवा उनकी भारी संख्या आसानी से इसराईलियों के डेरे तक ले आती थी। (डिक्शनरी आफ़ दि बाईबिल—डॉ॰ हेस्टिंग्स, जिल्द ४, सफ़ा १७९)। उनका गोश्त चर्बीदार होता है। रखने से शीघ्र खराब हो जाता है। (इन्साइक्लोपीडिया बिबलिका कालम ३९९९)। ध्यान रहे कि सारे रुकूअ में और उसके बाद भी बनी इसराईल के साथ अल्लाह तआला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मामलों का वर्णन है और इन मामलों को अल्लाह तआला ने अपने एहसानों के रूप में गिनाया है। यह आवश्यक नहीं है कि यह सभी हालात तथा मामले मोजिज़े के रूप में ही घटे हों। अस्ल उद्देश्य यहाँ एहसानों और इनामों को गिनाना है और उनकी याद करानी है। अक्सर तफ़्सीर करनेवालों ने इन सारी बातों को मोजिज़ा ही बताया है, परन्तु यदि इन चीज़ों को आज की भाषा में साइंटिफ़िक पोज़ीशन या नेचुरल हालात कहें, तो इससे क़ुर्आन की ईश्वरीय भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह एहसान और इनआम तो हर दशा में है। यही क़ुर्आन का उद्देश्य है। तौरेत का बयान उन हालात को मोजिज़े का ही रूप देता है। मन्न व सल्वा के सम्बन्ध में जो आम विचार यह है कि इसराईलियों को इसके अतिरिक्त और कोई भोजन नहीं मिलता था, इस विषय पर क़ुर्आन मजीद में कोई दलील नहीं पाई जाती है। वहाँ केवल यह है कि यह दो वस्तुएँ भोजन के लिए वहाँ आम थीं, परन्तु अन्य कोई भोजन नहीं मिलता था, ऐसी कोई बात लाज़िमी नहीं है। इसराईलियों के पास काफ़ी जानवर और रेवड़ थे, उनसे भी वह भोजन का काम लेते होंगे। इसके विरुद्ध कोई दलील नहीं है। हाँ, वह रेगिस्तान में वनस्पति के भोजन से अवश्य ही वंचित रहे होंगे। इसी की उन्होंने अपने पैग़म्बरों से फ़र्माइश की होगी।

२११ (और इन चीज़ों का ज़ख़ीरा जमा न करो। रोज़ की रोज़ ख़र्च करते रहो) इसराईलियों को यह आदेश मिला था कि इन वस्तुओं को भोजन हेतु जमा करके न रखो। ऐसा मालूम होता है कि जमा करने और ज़ख़ीरा करने की आदत यहूदियों की बड़ी पुरानी है। **'तय्यिबाति'** पर शोध आगे होगा। यहाँ केवल इतना ज्ञात होना काफ़ी है कि इसके अन्तर्गत सारी पाकीज़ा और स्वादिष्ट वस्तुएँ आ गईं। इस्लाम ने बाज़ रूखे धर्मों की भाँति मानव जाति को अकारण भूखे रहने की शिक्षा नहीं दी है। बल्कि दुनिया की लज़्ज़तों से लाभान्वित होने का संकेत किया है। शर्त यह है कि उससे अल्लाह के नियमों और क़ानूनों का उल्लंघन न होता हो।

२१२ (इस आदेश का उल्लंघन करके) जो लोग बनी इसराईल में लालची थे, शान्ति और धैर्य से अपरिचित थे और आज्ञा-उल्लंघन करने के आदी थे, उन्होंने इतने साधारण आदेश की भी अवहेलना की। उन्होंने इस स्वच्छ भोजन को जमा करना शुरू कर दिया और बासी भोजन सड़ने लगा। तौरेत में है— ''और अगर्चे मूसा ने कहा कि कोई इसमें से सुबह के लिए बाक़ी न छोड़े। वह इसके सुननेवाले न हुए और बाज़ों ने सुबह तक कुछ रहने दिया, सो उसमें कीड़े पड़ने लगे और सड़ गया।'' (ख़ुरूज—१६, २०)। यहूद, जो मुशरिक क़ौमों के प्रभाव से जिस्म होने के क़ायल थे, यानी ख़ुदा को भी मानव की तरह जिस्म वाला जानते थे और इसी प्रकार की बातों पर विश्वास रखते थे कि ख़ुदा भी हानि, लाभ का असर लेता है, उनको बार-बार यह याद कराने की आवश्यकता थी कि ख़ुदा तआला किसी ऐसी चीज़ का असर नहीं लेता। यह केवल मनुष्य ही है, जो ख़ुदा के हुक्मों का पालन न करके नुक़्सान उठाता है या नफ़ा पाता है, तो उसका असर लेता है। यह हानि-लाभ उसे दुनिया में भी होता है और आख़िरत में भी होगा। मौलाना थानवी ने लिखा है कि गुनाहों के बावजूद नेमतों का जारी रहना सख़्त ख़तरनाक है और उसमें जाहिल सूफ़ियों को बड़ा धोखा हुआ है। वह धन-धान्य की बढ़ोतरी को ख़ुदा की बारगाह में मक़्बूलियत की अलामत समझते हैं और यह जानते हैं कि ख़ुदा धन वालों से बड़ा प्रसन्न है।

२१३ (बनी इसराईल से उनके पयम्बर के माध्यम से) यह घटना यदि हज़रत मूसा के समय की है, तो उन्हीं से मुराद है (उन्हीं को समझा जाये) और अगर उनके बाद की है तो उनके जानशीन नबी हज़रत यूसा को समझा जायेगा। क़ुर्आन मजीद, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, तौरेत के कुछ भागों की भाँति इतिहास की किताब नहीं है। अतः उसके वर्णन में समय का लगातार होना और ऐतिहासिक क्रम का पाया जाना आवश्यक नहीं है। उसका उद्देश्य परिणाम और उन परिणामों से सीख प्राप्त करना, रूहानी और नैतिक शिक्षा है, न कि घटनाओं का वर्णन और उल्लेख। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में न रखने के कारण यहूद और नसारा आज क़ुर्आन को समझने में ठोकरें खा जाते हैं। यह घटना, जिसका बयान अब आरम्भ हो रहा है, बनी इसराईल के इतिहास का एक माना-जाना वाक़िआ है। उसका ऐतिहासिक समय जो भी रहा हो।

२१४ बस्ती यह कौन सी थी। सम्भव है कि यह फ़िलस्तीन का मशहूर नगर 'अरीहा' हो, जो मौजूदा नक़्शों में Jericho के नाम से मिलेगा। यह मुर्दार सागर के उत्तरी तट से पाँच मील के फ़ासले पर स्थित है। इसको इसराईलियों ने हज़रत मूसा की वफ़ात (देहान्त) के बाद हज़रत यूसा के ज़माने में जीता था। पुराने तफ़्सीर करनेवाले बड़े इमामों को 'बैतुलमुक़द्दस' के बाद इसी नगर की ओर संकेत करते देखा जा सकता है। इसके अलावा और भी अनेकों नगरों तथा स्थानों के नाम लिये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाज़ शहरों के नाम बदल गये हैं जैसे कि 'एला' को अब 'अक़बा' कहते हैं। यह भी सम्भव हो कि शहर 'सतीम' से अर्थ लिया गया हो। यह इलाक़ा दोआब में स्थित है, जो मुर्दार सागर के पूर्व में है। नगर, यरून नदी के उस ओर पूर्व (बायें) किनारे पर है। बनी इसराईल जब रेगिस्तान में फिर रहे थे, तो यह नगर उनका सरहदी नाका था। अरबी में उसे आग की घाटी (वादियुन्नार) भी कहते हैं। वादी 'सती मरयम' भी पुकारते हैं। 'अज्दुन' से भी यही अर्थ है।

२१५. इससे ज्ञात होता है कि नगर काफ़ी विशाल और ख़ूब आबाद था और उसमें बड़ी चहल-पहल थी। आयत से यह बात भी स्पष्ट हो गई कि खाने-पीने की आज़ादी शरीअत में हमेशा रही है। शर्त यह है कि हद से बाहर न हुआ जाये।

२१६ (बन्दे के रूप में विनम्रता प्रकट करने के रूप में) क्योंकि ईमान की और मोमिन की यही शान होती है। **'अल्बाब'** दरवाज़े से शहर का फाटक समझा जाये। पुराने नगरों में एक चारदीवारी हुआ करती थी और उसे शहरपनाह कहते थे। शहर में प्रवेश के समय उसी शहरपनाह के फाटक से गुज़रना होता था। **'सुज्जदन्'** यानी विनम्रतापूर्वक। नमाज़ वाला सज्दा नहीं। तौरेत इस महत्वपूर्ण अंश के वर्णन में मौन है।

२१७ गोया ज़बान भी हृदय और हाथ-पैरों की भाँति विनम्रता का प्रदर्शन करती रहे, यह फ़र्क़ है अल्लाह वालों की सेना और दुनियादार बादशाहों की सेना में। एक के यहाँ क़ौमी बैण्ड और तराने बजते हैं, यानी पग-पग पर अपनी बड़ाई और क़ौमी घमण्ड का प्रदर्शन। दूसरे के यहाँ दिल ख़ुदा के शुकराने से परिपूर्ण और ज़बान पर उसके नाम की तस्बीह एवं गुणगान। **'क़ूलू हित्ततुन्'** का यह अर्थ नहीं कि शब्द **'हित्तत'** को कण्ठस्थ करो। अर्थ यह है कि अपनी ज़बान से तौबा करते जाओ और ख़ुदा से क्षमा की याचना करते रहो। ऐसा ही साहिबुल् बह्र (लेखक) ने भी कहा है। यह विवाद का विषय है कि शरीअत के शब्दों में परिवर्तन जायज़ और उचित है या नहीं। सारांश यह है कि जहाँ शब्द ही इबादत के हों यानी हुक्म उन्हीं शब्दों का ही हो वहाँ परिवर्तन उचित नहीं, लेकिन जहाँ अस्ल उद्देश्य 'क्षमा' हो, वहाँ शाब्दिक परिवर्तन जायज़ है। शर्त यह है कि अर्थ न बदलने पाये।

२१८ यानी उन लोगों को, जो नेकी के कार्यों में सच्चे हृदय से लीन हैं। क्षमा और माफ़ कर देने का वादा तो सब ही तौबा करनेवालों से हो चुका है। उसके बाद यह और अधिक मेहरबानी और कृपा का वर्णन हो रहा है।

२१९ यानी जो शब्द उनको सिखाये गये थे, उनको छोड़कर कुछ और शब्द हँसी-मज़ाक़ के ज़बान पर लाने लगे। यह शब्द क्या थे, इस मामले में अलग-अलग बातें कही गई हैं, परन्तु अर्थ सभी का एक ही है यानी तौबा के बजाय वह हँसी-मज़ाक़ और दिल्लगी पर उतर आये।

२२० **'रिज्ज़न्'** रिज्ज़ आम है हर अज़ाब के लिए, चाहे किसी शक्ल में, किसी रूप में हो। शब्द की तन्वीन (दो ज़बर लगाना) अज़ाब की कड़ाई की ओर संकेत है। **'मिनस्समाइ'** का अर्थ यह नहीं है कि वह अज़ाब बर्फ़ या वर्षा की भाँति आसमान से आता हुआ दिखाई पड़ा, परन्तु यह टुकड़ा यह ज़ाहिर करता है कि वह अज़ाब आसमानी हाकिम की तरफ़ से हुआ था। ज़मीन में क़ुदरती ढंग से उत्पन्न नहीं हुआ था। **'अल्लज़ीन ज़लमू'** को आयत में उन अत्याचारियों के अत्याचार को विशेष रूप से ज़ाहिर करने के लिए लाया गया है। यह एक अज़ाब था, जिसको इस्लामी रिवायतों (बयानों) में ताऊन कहा गया है। बनी इसराईल के इतिहास में आया है कि इस क़ौम पर ताऊन बार-बार आया। बाइबिल में यह ज़िक्र बार-बार आया है। बाइबिल में इसका ज़िक्र तफ़्सील के साथ मौजूद है— "सो इसराईली सतीम में ठहरे और उन लोगों ने मूआबियों की बेटियों से हरामकारी शुरू की। उन्होंने अपने माबूदों की क़ुर्बानी पर लोगों की दावत की। लोगों ने खाना खाया और उनके माबूदों को सज्दा किया और इसराईली 'बअ्ल् फ़गू' से मिले। तब ख़ुदावन्द का क़हर बनी इसराईल पर भड़का।" (गिन्ती—२५, २, ४)। "वह जो इस वबा में मरे, चौबीस हज़ार थे" (गिन्ती—२५-९)।

२२१ **बिमा कानू यफ़्सुक़ून—** यानी उनकी लगातार नाफ़र्मानी के कारण। यहाँ यह बात स्पष्ट हो गई कि ताऊन का अस्ली कारण तिब्बी या प्राकृतिक नहीं था। रूहानी या नैतिकपतन या आज्ञा-उल्लंघन था। शरीअत-मूसवी (हज़रत मूसा का धार्मिक विधान) की अवहेलना थी। शरीअत की दृष्टि गुनाहों और बीमारियों की मुँदी-ढकी बातों तक आसानी से पड़ जाती है। ऐसी बीमारी, जिसको हकीम या वैद्य जान नहीं पाते, शरीअत जान जाती है। मज़हबी आलिमों ने आयत से 'बिदअत वालों' का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्याचारी और सज़ा के अधिकारी का अर्थ निकाला है। 'बिदअ़त' दीन (धर्म) में ऐसी नई बातों को पैदा करने को कहते हैं, जो अस्ल शरीअत में न पाई जाती हों। क़रतबी ने लिखा है कि जब शाब्दिक परिवर्तन से यह नौबत होती है, तो अमली परिवर्तन की बुराई का क्या ठिकाना ?

२२२ अब इसराईली क़ौम फ़िलस्तीन से दूर और मिस्र से अलग दोनों के बीच उपद्वीप सैना के भयंकर बियाबान रेगिस्तान में अपने ख़ेमों के साथ कूच दर कूच करके एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही है। पुरानी गिल्लाबान रेवड़ लेकर फिरनेवाली क़ौमों का यही दस्तूर था और आज भी काफ़ी ख़ानाबदोश क़ौमों का यही चलन है। सूखा देश, भूगोल से अपरिचित चलते-चलते यह लोग एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ पानी बिलकुल नहीं था, और जो पानी का ज़ख़ीरा साथ था वह ख़त्म हो गया था। इस स्थिति का ध्यान कीजिये। प्यास से बेहाल और बेदम तो हो ही रहे थे। मरने-मारने पर आमादा हो गये और अपनी झुँझलाहट और ग़ुस्सा अपने नेता और राहबर हज़रत मूसा पर उतारने लगे। तौरेत में है— "तब सारे बनी इसराईल के समूह ने अपनी यात्राओं में ख़ुदावन्द के आदेश के अनुसार सैना के बियाबान से कूच किया और क़ैदम में डेरा किया। वहाँ लोगों के पीने को पानी नहीं था, सो लोग मूसा से झगड़ने लगे और कहा कि हमको पानी दें कि पीवें······मूसा ने ख़ुदावन्द से फ़र्याद करके कहा कि मैं इन लोगों से क्या करूँ ? वह सब तो मुझे अभी संगसार करने को (पत्थरों से मारकर ख़त्म करने को) तैयार हैं।" (ख़ुरूज— १७, १, ४)। और सबसे पुराने यहूदी इतिहासकार जोज़ेफ़्स के इतिहास आसार-यहूद में है— "वह मुक़ाम 'रक़ीदियम' में पहुँचे, जहाँ प्यास की शिद्दत से बेताब हो रहे थे······यहाँ की सरज़मीन में पानी की एक बूंद न मिली। इस पर यह लोग ग़ुस्से में भरकर फिर मूसा पर टूट पड़े······लेकिन वह ख़ुदा के आगे रोकर दुआ करने में व्यस्त हो गया।" (अध्याय ३, भाग २)। पयम्बर भी ग़ैब की बातें और हर चीज के जाननेवाले नहीं होते हैं। जब तलाश के बाद निराशा हो चुकी, तो सिवाय दुआ और विनती के और क्या करते ? तौरेत ही में उस स्थान का नाम रक़ीदियम के बजाय क़ादिस (क़दीश) अंकित है और ब्योरा लगभग वही है। "बाद उसके बनी इसराईल की सारी जमाअत पहले सैना के जंगल में आई और क़ादिस में रहने लगी— वहाँ जमाअत के लिए पानी न था, सो वह जमा होके मूसा व हारून के विरुद्ध हुए और उन लोगों ने मूसा से झगड़ा किया और कहा······यहाँ तो पीने को पानी ही नहीं। तब मूसा व हारून जमाअत के ख़ेमे के दरवाज़े पर गये और मुँह के बल गिर पड़े।" (गिन्ती—२०, १, २)। इस कारण किताबवालों के आलिमों में बड़ा विवाद उत्पन्न हो गया कि जहाँ यह घटना घटी, वह स्थान कौन सा था। स्थान जो भी रहा हो और एक हो या दो, परन्तु इस घटना के होने के विषय में विवाद नहीं है। और बनी इसराईल के इतिहास की यह बात मानी हुई है। **'इस्तिस्क़ा'** इसका अर्थ है, पानी माँगा, पानी की तलाश की और सारांश यह है कि पानी की दुआ की। सर फ़िलिण्डर पेटरी (Petrie), जो प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञान के विशेषज्ञ हैं, तीस व्यक्तियों के क़ाफ़िले के साथ १९०४, ५ ई० में इसी उपद्वीप सैना में शोध की मुहिम पर रवाना हुए, उनके शोध का वर्णन एक दूसरे इसी विषय के माहिर की ज़बानी सुनिये— "यह विशाल बियाबानी इलाक़ा सियाह और सुर्ख़ रंग की पहाड़ियों से भरा हुआ है, जिसमें कहीं-कहीं हरे-भरे टुकड़े और गहरी-गहरी वादियाँ हैं और भारी गढ़े भी हैं। जगह-जगह नख़लिस्तान के साथ ऐसे स्थान हैं, जो नक़्शे पर क़रीब मालूम होते हैं, इन बीहड़ों के कारण वैसे बड़े लम्बे फ़ासले पर हैं। पीनेवाले पानी के काफ़ी ज़ख़ीरे का मिलना कठिन है। जो कठिनाई इसराईलियों को इस बियाबान में फिरने के ज़माने में पेश आई थी, आज भी उनका अनुभव हो रहा है।"

२२३ (ताकि इसी चट्टान से पानी का चश्मा जारी हो जाये।) पहाड़ी चश्मा। पहाड़ों के अन्दर से पानी के उबलते हुए धारे हर एक को देखने में मिले हैं। हज़रत मूसा ने जब पानी के लिए ख़ुदा से दुआ की, तो उन्हें संकेत हुआ कि फ़ुलाँ पहाड़ी के पास जाओ, वहाँ चट्टान पर अपना डण्डा मारो। पानी उबलने लगा। तौरेत के बयान से मालूम होता है कि यह पहाड़ी, जिससे चश्मा उबला, हूरब या हुरब में स्थिति थी। "ख़ुदावन्द ने मूसा को फ़र्माया कि लोगों के आगे जा और बनी इसराईल के बड़ों को अपने साथ ले और अपनी लाठी, जो तूने दरिया पर मारी थी, अपने हाथ में ले और जा। देख कि वहाँ हुरब की चट्टान पर तेरे आगे खड़ा हूँगा। तू उस चट्टान को मारियो। उससे पानी निकलेगा, ताकि लोग पीवें। चुनांचे मूसा ने बनी इसराईल के बड़ों के सामने यही किया।" **'असा'** के मानी लाठी या डण्डा के हैं। मूसा के इस असा का वर्णन क़ुर्आन शरीफ़ में बहुत बार आया है। अन्य मानी निकालना ग़लत है। **'अलहजर'** का मतलब किसी विशेष चट्टान से है, जो हज़रत मूसा जानते थे। **'नज़्रिब्'** ज़र्ब के मानी हैं मारना। बाज़ लोगों ने आयत का अनुवाद "ऐ मूसा ! अपनी जमाअत के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ पहाड़ पर चले जाओ" किया है। यह बात शब्दकोष और इतिहास दोनों के विरुद्ध है और इसके समर्थन में कोई तर्क या दलील नहीं है।

२२४ यानी उस पहाड़ी से बारह धारे या बारह टोटियाँ अलग-अलग जारी हो गईं, बनी इसराईल के बारह क़बीलों (गोत्रों) के अनुसार। बाज़ नासमझ मसीहियों ने इस संख्या पर एतराज़ किया है कि यह तो बाइबिल में मौजूद नहीं है। क़ुर्आन ने कहाँ से गढ़ लिया ? क़ुदरत ने सवाल का जवाब मसीहियों की ही ज़बान से दिलवा दिया। जार्ज सेल अंग्रेज़ी में क़ुर्आन करीम के पुराने अनुवादक, ने आयत के हाशिये में लिखा है— "एक मसीही सैलानी, जो वहाँ हो आया है, स्पष्टता के साथ बयान करता है कि चट्टान से पानी बारह स्थानों से निकलता था।" और एक दूसरे मसीही सैलानी का देखा हुआ हाल बयान करता है— "चट्टान में इस समय चौबीस सूराख़ मौजूद हैं, जो आसानी से गिने जा सकते हैं, बारह एक तरफ़ हैं और बारह उनके सामने।" पादरी डीन स्टैन्ली (Dean Stanley), जो उन्नीसवीं शताब्दी में मसीहीयत के एक जाने-माने सदस्य थे, ने शताब्दी के मध्य में बाइबिल के पवित्र स्थानों के भौगोलिक शोध के लिए स्वयं फ़िलस्तीन और उससे लगे हुए स्थानों की यात्रा की और अपनी खोज एवं जानकारी पर एक पुस्तक 'Sindi and Palestine' के नाम से प्रकाशित की। उसमें इस चट्टान का ज़िक्र करके लिखते हैं— "यह चट्टान दस और पन्द्रह फ़िट के बीच ऊँची है। आगे को ज़रा झुकी हुई है और इस 'सफ़सफ़ा' के क़रीब लीजा की चौड़ी घाटी है। जगह-जगह खड्ड और दरारें पड़ी हुई हैं। कुछ मिटे हुए हैं, कुछ छोटे। गिन्ती में अगर सबको लिया जाये, तो बीस होते हैं। अगर बाज़ को छोड़ दिया जाये तो दस। सबसे पहले क़ुर्आन ने ही स्पष्ट रूप में इसराईल के बारह क़बीलों के लिए बारह चश्मों की संख्या का वर्णन किया है। यह इशारा इन्हीं दरारों की तरफ़ है।" अरब के उम्मी (निरक्षर) की लाई हुई किताब के एजाज़ (अनोखेपन) पर बलि-बलि जाइये। शताब्दियाँ बीत गईं, पर उसके बयान के छोटे-छोटे अंशों पर शोध हो रहा है और उनकी तस्दीक़ विरोधियों और इन्कार करनेवालों की ओर से होती है।

२२५ **'उनास'** यानी इसराईल के बारह गरोहों में से हर गरोह ने। उनास बहुवचन है, इसका एक वचन देखने में नहीं आया। **'मश्रबहुम्'** यानी अपने लिए पानी लेने की जगह।

२२६ जब पूरी क़ौम ईश्वरीय विधान को छोड़कर अपनी इच्छानुसार कोई रास्ता अपना लेती है, तो उसका परिणाम आवश्यक रूप से दंगा-फ़साद, लड़ाई और युद्ध और अपराधों की बढ़ोतरी के रूप में प्रकट होता है और हर प्रकार की अशान्ति फैल जाती है। मेहरबानी और इनाम देकर ख़ुदा का हुक्म यह था कि बनी इसराईल के लोग इत्मीनान एवं शान्ति को ग़नीमत जानें और ईश्वरीय क़ानून की पाबन्दी करें और इस क़ानून को तोड़कर विश्व की व्यवस्था में अवरोध न उत्पन्न करें। **'रिज़्क़िल्लाहि'** रोज़ी को अपने से सम्बद्ध करके गोया यह जताया गया कि जो कुछ मिल रहा है, अल्लाह ही की तरफ़ से मिल रहा है। मनुष्य की भुजाओं के बल से नहीं मिल रहा है। **'ला तअ्सौ फ़िल्अर्ज़ि'** असी के माने हैं स्वयं फ़साद में हद से गुज़र जाना। **'मुफ़्सिदीन'** जो तरग़ीब में वर्तमान दिखाया है, उसके माने हैं फ़साद के पहलू पर बल देने के। **'कुलू......अल्मुफ़्सिदीन'** इस्लाम सख़्तियों का मज़हब नहीं है। सीमा के अन्दर रहकर खाने-पीने की पूरी आज़ादियाँ हैं। क़ुर्आन करीम ने न केवल इसकी आज्ञा दी है, बल्कि इसकी ओर संकेत किया है। मना किया है तो इस बात से कि हद से बाहर न जाओ और इस प्रकार फ़साद और झगड़े का कारण न बनो।

२२७ (और इसे खाते-खाते उकता गये हैं) यह वर्णन भी उसी सैना के बियाबान में मारे-मारे फिरने के समय का किसी और स्थान का है। क़ुर्आन मजीद ऐसी घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम और लगातार होने का पावन्द नहीं। बनी इसराईल एक ज़माने तक वही भोजन करते-करते उकता गये थे और अब अपने पयम्बर से फ़र्माइश कर रहे थे कि इस बियाबान से निकालकर कहीं और ले चलें, जहाँ नाना प्रकार के देहाती और शहरी खाने मौजूद हों। **'तआमि वाहिदिन्'** यानी एक ही प्रकार का खाना— बटेर और तुरंजबीन, जो हमें हर रोज़ मिले जाता है। ऐसा मालूम हो रहा है कि जानदारों की ग़िज़ा तो उन्हें रोज़ मिल रही थी, अब उससे उकताकर ग़ल्ला, सब्ज़ी इत्यादि चाहते थे, चुनांचे अपनी फ़र्माइश में उन्हीं चीज़ों के नाम गिनवाये हैं।

२२८ (और जिनके हम मिस्र में आदी रह चुके हैं) मिस्रियों की पसन्दीदा ग़िज़ा यही ज़मीन से पैदा होनेवाली चीज़ें थीं, जो खेती करनेवालों की होती हैं। "मिस्र में आज की तरह उस वक़्त भी बड़ी माँग सब्ज़ी, पियाज़, हल्दी इत्यादि की थी।" (इन्साइक्लोपीडिया बाइबिलिका, कालम ६-१२)। और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही चीज़ें इसराईलियों की भी अस्ल ग़िज़ा बन चुकी थीं। "इसराईलियों की अस्ल ग़िज़ा सब्ज़ी थी, विशेष रूप से ग़ल्ले की क़िस्में।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ५, सफ़ा ४३०)। "क़दीम इसराईली सब्ज़ तरकारियों और फलों पर बसर करते थे।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ५, सफ़ा, ५९६)।

२२९ तौरेत का बयान इससे मिलता-जुलता, लेकिन कितना विभिन्न भी है। "और बनी इसराईल भी फिरे और रोते हुए बोले— कौन है, जो हमें मांस खाने को देगा। हमको वह मछली याद आती है, जो हम मुफ़्त मिस्र में खाते थे और वह खीरे, वह खरबूज़े और वह पियाज़ और वह लहसुन। पर अब तो हमारी जान सूखने लगी। यहाँ तो हमारी आँखों के सामने कुछ भी नहीं है मगर यह 'मन्न'।" (गिन्ती ११, ४, ६)। **'फ़ूम'** माने हैं गेहूँ के। लहसुन भी इसी माने में है।

२३० (क्योंकि बड़े शहरों में सब्ज़ियाँ और फल अलावा फ़स्ल और मौसम के भी मिल जाया करते हैं) **'मिस्रन्'**— कोई शहर— यहाँ इसका अर्थ है उपद्वीप सैना या उसके आसपास का कोई आबाद शहर। मिस्र के शाब्दिक अर्थ शहर के हैं। ग़लती से लोगों ने इसको 'मिस्र का देश' समझ लिया है। हज़रत मूसा ने पहले तो उन्हें समझाया कि तुम्हारी फ़र्माइश अनुचित है और बेजा है। जब देखा कि आग्रह बराबर जारी है, तो फिर यह कहा कि अच्छा अगर यह मंज़ूर है, तो शहरी रहन-सहन अख्तियार कर लो। सारी वार्ता को समझने के लिए इसराईली क़ौम के उस समय के रहन-सहन को सामने रखना चाहिए। स्थिति यह है कि मिस्र जैसे प्रगति पाये हुए उच्च सभ्यता के देश से यह निकल तो आये हैं और अभी दूसरे सभ्य एवं प्रगतिशील देश फ़िलस्तीन (या कनआन) तक नहीं पहुँच पाये हैं, बल्कि दोनों के मध्य यानी उपद्वीप सैना में अटके हुए हैं। यह इलाक़ा उस समय तक असभ्य है। मकान, बाग़, इमारतें, खेत इत्यादि जो सभ्यता के अंश हैं, इस लक़ोदक़ बियाबान में कहीं मौजूद नहीं हैं। इसराईलियों की दशा यह है कि वह अपने खेमों में रहते हैं और आये दिन सफ़र और यात्रा। आज यहाँ, कल वहाँ। इसी प्रकार बियाबान में फिर रहे हैं। अल्बत्ता, बियाबान की समाप्ति के बाद मुल्क बियाबान नहीं। जो ग़ैरबियाबानी इलाक़े थे, वह अच्छे आबाद थे और शहरी सभ्यता जगह-जगह मौजूद थी, यह क्षेत्र मिस्र की हुकूमत में था। **'अ तस्तब्दिलून'** किसी चीज़ के बदले में दूसरी चीज़ माँगना।

२३१ **'ज़ुरिबत्'** के मानी हैं लेस देना, चिपका देना। मुसल्लत करना— (लाद देना) और ज़िल्लत के मानी हैं— ख्वारी, रुस्वाई, अपमान। मस्कना का अर्थ है मुहताजी और ग़रीबी। **'अलैहिम्'** यह कौन लोग हैं, जिन पर ज़िल्लत और अपमान थोप दिया गया है। यह हैं इसराईली नस्ल के कुछ विशेष लोग। इससे यहूदी मज़हब के लोगों या किसी अक़ीदे के लोगों का अर्थ न लेना चाहिए। इसका मतलब यह है कि जो ज़िल्लत, रुस्वाई, ग़रीबी और ख़ुदा के क़हर की अधिकारी लगभग १४०० वर्ष व्यतीत होने के बाद भी एक हद तक चिपकी, लिपटी चली आ रही है, उसकी उठानेवाली एक विशेष नस्ल तथा क़ौम है, न कि किसी विशेष मज़हब या धर्म के माननेवाले। स्वयं Anti Semitism का शब्द बता रहा है कि यहूद से जो मुस्तक़िल अदावत नाज़ी जर्मनी को विशेष रूप से इटली, हंग्री और रोमानिया को रही है, उसकी बिना नस्ली या क़ौमी थी, न कि दीनी या अक़ीदे की। ग़रीबी और मुहताजी से सम्बद्ध होने पर पाठकों को सम्भवतः आश्चर्य होगा कि दौलतमन्दी और धनवान होना तो यहूद के लिए एक मसल है, फिर उस क़ौम को ग़रीब और मुहताज कैसे माना जा सकता है, परन्तु यह केवल धोखा है और आम तौर से एक ग़लत-फ़हमी चली आ रही है। धन और दौलत जो भी है, वह क़ौम यहूद के बड़ों तक सीमित है अन्यथा यहूद के आम लोग विश्व की सबसे ग़रीब क़ौमों में हैं। यह बयान यहूद के शोधकर्ताओं का है। जिविश इन्साइक्लोपीडिया में है— "यद्यपि यहूद का धनवान होना एक मसल की भाँति मशहूर हो चुका है, परन्तु शोधकर्ताओं की सम्मति यह है कि यहूद योरोप के जिस-जिस मुल्क में आबाद हैं, वहाँ की आबादी में उन्हीं के ग़रीबों का अनुपात अधिक है।" (जिल्द १०, सफ़ा १५१)। "यहूदी जनता दूसरी क़ौमों से कहीं ज्यादा ग़रीब है। यह और बात है कि उनके कुछ गिन्ती के व्यक्ति बहुत ज्यादा धनवान हैं।" (जिल्द १, सफ़ा ६१)।

२३२ (इसी दुनिया में अपने ही जैसे जानदारों के हाथों) इसराईली नस्ल पर इस क़ुदरती ग़ज़ब का प्रकट होना लगातार मनुष्यों के ही हाथों होता चला आ रहा है। इस आख़िरी ज़माने में हिटलर जैसे हाकिम की यहूद-दुश्मनी लोगों की नज़रों से छुपी हुई नहीं है। मौलाना थानवी ने कहा है कि अल्लाह वालों के लिए इस क़िस्से में बड़ी ज़बरदस्त शिक्षा है। उन लोगों के हाल से सबक़ लेना चाहिए, जिन्होंने न बला पर सन्तोष किया न नेमत मिलने पर शुक्र किया और न अल्लाह के हुक्म पर ही राज़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए। ऐसों पर अपमान और बदनसीबी चिपका दी गई। दुनिया की मुहब्बत उनके दिल में चिपका दी गई और जमा दी गई और उनको ऊँचे दर्जों से नीचे गिरा दिया गया।

२३३ किसी खास स्थिति का वर्णन नहीं है, बल्कि उनकी स्थायी क़ौमी प्रवृत्ति का बयान हो रहा है कि वह इन्कार ही करते रहते थे। इन्कार को ही अपना वतीरः (तरीक़ा) बना लिया था। **'ज़ालिक'** यानी उनका अल्लाह के ग़ज़ब का अधिकारी हो जाना। **'बिअन्नहुम्'** यानी यह सज़ा उनको कुफ़्र की आदत होने और लगातार नबियों को क़त्ल करते रहने के कारण मिली थी।

२३४ "क़त्ल तक" यानी दूसरी बेहूदगियाँ तो करते ही थे। शरारतें भी, फ़ित्ना, फ़साद भी करते थे। हद यह है कि हत्या तक से न चूके। यसियाह नबी की हत्या, बरमियाह नबी का क़त्ल, ज़किरिया नबी का क़त्ल, यहया नबी का क़त्ल और ईसा मसीह नबी को क़त्ल करने की व्यवस्था (बल्कि अपने खयाल में क़त्ल ही), यह इसराईली इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण सुर्खियाँ हैं। क्या यह क़ौम इस योग्य थी कि उसके साथ कोई भी रिआयत की जाती? उसे ज़िन्दा रहने की भी मुहलत दी जाती? **"बिग़ैरिल्हक़्क़ि"** नबी का क़त्ल जब भी होगा, नाजायज़ ही होगा, नाहक़ होगा। नबी का क़त्ल कभी जायज़ नहीं हो सकता, फिर क़ुर्आन, जिसमें कोई लफ़्ज़ ज़ायद या फ़ाज़िल नहीं है, उसे क्यों लाया। क़ुर्आन ने यह शब्द इसलिए बढ़ाया कि खुद उन क़ातिलों के स्तर से भी यह क़त्ल नाहक़ और नाजायज़ थे। यानी न्याय के विरुद्ध तो होते ही, उस समय के क़ानून और नियम के भी खिलाफ़ ही थे। बाज़ लोगों ने कहा है कि इस विवरण से यह उद्देश्य माना जाये कि क़त्ल के नाहक़ होने पर बल दिया गया है। इसराईली श्रृंखला के आखिरी नबी हज़रत ईसा थे। आपका समय भी अन्य नबियों की अपेक्षा बहुत निकट का है यानी ऐतिहासिक समय के भीतर का। उस समय का इतिहास काफ़ी हद तक सुरक्षित है। हाल ही में इटली के एक एडवोकेट रोज़ेडी (Rosedi) और इंगलैण्ड के एक बैरिस्टर इन्स (Innes) ने पुराने पत्रज़ात की छानबीन करके आपके मुक़दमे की कार्यवाही अलग-अलग प्रकाशित की हैं। यह अवलोकन योग्य हैं। उनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि आपके मुक़दमे में यह नहीं हुआ कि रूमी हाकिम अदालत ने जो सलीब की सज़ा का फ़ैसला सुनाया, तो उसमें कोई नियमों के सम्बन्ध में ग़लती हो गई। बल्कि यह हुआ कि यहूद ने एक बिलकुल झूठा इस्तिग़ासा गढ़ा और पहले अपनी धार्मिक अदालत में और मुल्क की आम फ़ौजदारी अदालत में बिलकुल ही अनियमित कार्यवाहियाँ कर-करके सज़ाएँ दिलाने में समर्थ हो गये। रूमियों में और जो कुछ भी बुराइयाँ हों, वह नियम और क़ानून-परस्ती में मशहूर हैं। जब उनकी हुकूमत में यह अन्धेर हुआ, तो क़दीम और पुरातत्वकाल में नबियों के साथ जो भी अन्याय हुए हों, उनका क्या ठिकाना। हो सकता है, उनकी हत्या में ज़ाब्ते और क़ानून की दिखावे की बातों पर भी ध्यान न दिया गया हो।

२३५ इसराईलियों की लगातार सरकशी, आज्ञा-अवहेलना, शरारत और बेहूदगियों के तज़्किरों से तौरेत और इंजील दोनों के पन्ने भरे पड़े हैं। सबको लिखने का स्थान कहाँ है। केवल दो-चार नमूने देखते चलें। "उन्होंने खुदा के पैग़म्बरों को ठठ्ठे में उड़ा दिया और उनकी बातों को व्यर्थ जाना। नबियों के साथ दुर्व्यवहार किया, यहाँ तक कि खुदा का ग़ज़ब ऐसे लोगों पर ऐसा भड़का कि कोई रास्ता न रहा।" (२, इतिहास ३६, १७)। तुम्हारी ही तलवार फाड़नेवाले शेर बबर की भाँति तुम्हारे नबियों को खा गई है।" (बरमियाह २, ३)। "ऐ याक़ूब और इसराईल के सब परिवारो! खुदावन्द की बात सुनो। खुदा यूँ फ़र्माता है कि तुम्हारे बाप-दादों ने मुझमें कौन सी नाइन्साफ़ी और अन्याय पाया, जो वह मुझसे दूर भागे और झूठों के पैरौ हुए और स्वयं झूठे हो गये।" (बरमियाह २, ४, ५)। "वह नाफ़र्मान निकले और तुझसे फिर गये और उन्होंने तेरी शरीअत को अपनी पीठ के पीछे फेंका और तेरे नबियों को, जो नसीहत देते थे कि उन्हें तेरी तरफ़ लौटा लायें, क़त्ल किया और उन्होंने अपने कार्यों से तुझे गुस्सा दिलाया।" (निहमियाह ९, २६)। यह बड़े संक्षिप्त लेखों के नमूने पुरातत्वकाल की पुस्तकों में से प्रस्तुत किये गये, अब नये ज़माने के ऐसे ही संक्षिप्त नमूने अवलोकित करें। "ऐ गुस्ताखो! और दिल और कान के नामख्तूनो! (सही बात न समझने और न सुननेवालो!) नबियों में से किसको तुम्हारे बाप-दादों ने नहीं सताया?" (आमाल—७, ५१, ५२)। "तुम अपने विषय में गवाही देते हो कि हम नबियों के हत्यारों के पुत्र हैं......देखो, मैं नबियों, बुद्धिमानों और धर्म के आलिमों को तुम्हारे पास भेजता हूँ, इनमें से बाज़ की हत्या करोगे और सलीब पर चढ़ाओगे और बाज़ को अपने इबादतखानों में कोड़े मारोगे और नगर-नगर सताते फिरोगे, ताकि सभी सत्य के प्रेमियों का खून, जो ज़मीन पर बहाया गया है, तुम पर आये...... ऐ यरोशलम! ऐ यरोशलम! तू नबियों को क़त्ल करती है, और जो तेरे पास पहुँच गये हैं, उन्हें पत्थरों से मारकर जान ले लेती है।" (मत्ती—२३, २९, ३७—लूक़ा—१२, ३४, ३५)। ग़रज़ रसूलों और नबियों पर हँसने, उनकी तौहीनी करने और उनकी हत्या करने का आरोप यहूद पर क़ुर्आन करीम ने प्रथम बार नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगाया है। उनके पापों का लेखा तो पुरातत्वकाल के लेखों में मौजूद चला आ रहा है, क़ुर्आन मजीद ने केवल उसका सत्यापन और तस्दीक़ की है। **'व कानू यअ्तदून'** यानी यह बुराइयाँ और शरारत इस क़ौम की आदत बन गयी है। मौलाना थानवी ने कहा है कि किसी गुनाह को हल्का न समझना चाहिए। एक गुनाह बराबर दूसरे गुनाह का कारण बन जाता है यहाँ तक कि कुफ़्र का। यहाँ भी गुनाह हद से बढ़ गया था, जो उन लोगों को कुफ़्र और नबियों की हत्या तक ले आया। बैज़ावी ने भी यहाँ यही कहा है कि जिस प्रकार छोटी इताअ़त यानी इबादत बड़ी इबादत की ओर ले जाती है, उसी प्रकार छोटा गुनाह बड़े गुनाह तक पहुँचा देता है, और यहाँ भी गुनाह की आदत ने नबियों की हत्या तक पहुँचा दिया।

२३६ (आख़िरी रसूल और आख़िरी किताब पर यानी मुसलमान हो चुके हैं।) ईमान लाने का अर्थ है सब आवश्यक अक़ीदों को स्वीकार करना। तौहीद, रिसालत, फ़रिश्तों, आसमानी किताबों पर ईमान —सभी इसमें शामिल हैं। **'अल्लज़ीन आमनू'** क़ुर्आन मजीद में जहाँ भी आया है, उसके मानी मोमिन यानी मुसलमान हैं। इमाम राज़ी ने भी यही कहा है कि जो लोग ईमान लाये और उस पर अडिग रहे।

२३७ जो लोग यहूदीयत के दीन के पैरौ हैं। चाहे पूर्व से यहूदी चले आ रहे हों। नस्ल से यहूदी हों या पहले मुशरिक इत्यादि कुछ और हों और अब यहूदी अक़ीदे और उन्हीं के तौर-तरीक़े अपना लिये हों। अब तक बनी इसराईल नामक एक विशेष नस्ल और परिवार का ज़िक्र चला आ रहा था और उनके इतिहास के महत्वपूर्ण दृश्य सामने लाये जा रहे थे। अब उनके धार्मिक अक़ीदों और उनके मज़हबी तरीक़े का बयान शुरू होता है और पहली बार **'अल्लज़ीन हादू'** आया है। बनी इसराईल एक नस्ली नाम था, यह किसी कुन्बे या क़बीले या क़ौम का नाम नहीं था, जिसको अपने उच्च परिवार का सदस्य होने पर घमण्ड रहा हो। अपने पूर्वजों के सर्वप्रेमी होने पर नाज़ था। इतिहास को दोहराते समय ज़रूरी था कि उस नस्ली नाम को लिया जाये। अब एक धार्मिक रास्ते और एत्क़ाद एवं विश्वास की व्यवस्था का बयान आरम्भ होता है। यह आवश्यक हो गया कि अब नाम ऐसा लिया जाये और कोई ऐसा गुण बयान किया जाये, जो नस्ल के स्थान पर और नसब तथा गोत्र की जगह अक़ीदे और धर्म की ओर संकेत करे। **'अल्लज़ीन हादू'** इसी आवश्यकता को पूरा करनेवाला है। क़ुर्आन मजीद के वर्णन की सुन्दरताएँ अनेक हैं, उन्हीं में से एक यह भी है कि निकट परन्तु विशेषता के साथ अर्थ बयान करने के लिए वह विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग करता है। साथ ही उनके गहरे पारस्परिक अन्तर का विचार भी करता है। यहूदी मज़हब एक नस्ली धर्म है, वह प्रचार वाला धर्म नहीं है। किसी ग़ैर इसराईली को नियमित रूप से यहूदी बनाने की विधि उसके यहाँ नहीं पाई जाती। अरब में अनेक ऐसे क़बीले आबाद थे, जो न जन्म से यहूदी थे और न नस्ल से इसराईली, बल्कि अरब या बनी इस्माईल थे, परन्तु यहूद की सोहबत से प्रभावित तथा उनके दबाव में होकर पहले उनके ही रंग-ढंग सीख लिये और बाद में उन्हीं का अक़ीदा अपना लिया। धीरे-धीरे वह भी यहूदी आबादी में गिने जाने लगे। **'अल्‌यहूद'** के स्थान पर **'अल्लज़ीन हादू'** लाने में एक बिन्दु यह भी है कि इन लोगों के अपनाये हुए अक़ीदे की ओर संकेत स्पष्ट हो जाये। बनी इसराईल की क़ौमी हुकूमत तथा उनके आनबान का ख़ात्मा, इस्लाम के प्रकाशित होने के पूर्व ही बल्कि सन् ७० ई० में रूमी मुशरिकों द्वारा हो चुका था, जब उन्होंने 'बैतुलुमुक़द्दस' (पुराना काबा) बरबाद कर डाला था। और जो यहूद रसूलुल्लाह सल्लअम के ज़माने में मौजूद थे, वह केवल एक धार्मिक गिरोह थे, इसीलिए यह बात समझ ली जाये कि क़ुर्आन मजीद ने जहाँ-जहाँ बनी इसराईल के शब्द का प्रयोग किया है, वहाँ इबारत (लेख) का हवाला और संदर्भ ऐतिहासिक है, और जहाँ भी 'अल्‌यहूद' का वर्णन है, उनकी दीनी और एत्क़ादी हैसियत को दृष्टिगोचर किया गया है। मदीना और उसके पड़ोस बल्कि यमन में जो यहूद थे, वह नस्ल के एतबार से बनी इसराईल नहीं थे, बनी इस्माईल ही थे, परन्तु इसराईलियों की सोहबत में रहकर उनका रहन-सहन और उनकी सभ्यता यहाँ तक कि उनके अक़ीदे भी बनी इसराईल जैसे हो गये थे। **'अल्लज़ीन हादू'** में इसी बात की ओर इशारा हुआ है।

२३८ **'नसारा'** बहुवचन है नसरानी का। शाम के देश में (मौजूद फ़िलस्तीन) में एक क़स्बा है नासिरा (Nazareth) जो बैतुलमुक़द्दस से ७० मील उत्तर, रोम सागर के पूर्व में बीस मील के फ़ासले पर गलीली के इलाक़े में है। इस समय की आबादी आठ, नौ हज़ार है। हज़रत ईसा का पैतृक वतन यही है और आप 'यसू नासिरी' इसी सम्बन्ध से कहलाते हैं। अरबी में नासिरा का उच्चारण नासिरान होता है। नसरानी का सम्बन्ध इसी क़स्बे की ओर है। अच्छी तरह समझ लिया जाये कि क़ुर्आन यहाँ मसीहियों का नहीं, नसारा का वर्णन कर रहा है, और क़ुर्आन हकीम का हर शब्द हिकमत से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिपूर्ण होता है। मसीही वह हैं, जो 'अनाजील अरबआ' पर ईमान रखते हैं। मसीह को ख़ुदा का नबी नहीं, ख़ुदा का बेटा मानते हैं या यह समझते हैं कि ख़ुदा उनके जिस्म में समा गया था। आख़िरत में नजात या मुक्ति देनेवाला (Saviour) ख़ुदा को नहीं, मसीह, ख़ुदा के पुत्र को मानते हैं और ख़ुदाई (सृष्टि) को तीन अक़नूमों (विशेष भागों में) बाँटते हैं, और एक ऐसा समझ में न आनेवाला फ़लसफ़ा प्रस्तुत करते हैं कि हर अक़नूम स्वयं एक ख़ुदा है और तीनों अक़नूम मिलकर भी एक ख़ुदा बनते हैं। ऐसे खुले हुए शिर्क को माननेवालों का यहाँ ज़िक्र नहीं है, इसीलिए नाम भी, जो प्रसिद्ध और प्रचलित था, उसे छोड़कर नसारा लाया गया है। नसरानी को वास्तव में Nazarene का अरबी बनाया गया है। हज़रत मसीह के सच्चे पैरौ, नबी को माननेवाले शुरू के ज़माने में Nazarene ही कहे जाते थे। यह तौहीद के माननेवाले थे और 'अनाजील अरबआ' के स्थान पर केवल इंजील मत्ती को मानते थे। आगे चलकर यही लोग एबोनिया (Ebonites) भी कहे जाने लगे और जब पोलूस पर अदालत में आरोप लगा, तो वकील तिरतलस ने उसे नासिर या फ़िरक़े का व्यक्ति कहकर अपना भाषण शुरू किया— "हमने इस व्यक्ति को फ़सादी और विश्व के यहूदियों में फ़साद पैदा करनेवाला और नासिरियों के बिदअती (दीन में नई बातों को प्रचलित करनेवाला) फ़िरक़े का सरदार पाया।" (आमाल २४ : १६)। मसीह के साथ शब्द नासिरी इसी आमाल में कई स्थानों पर आया है। (२ : २२, ३, ४ : १०)। और स्वयं इंजील मत्ती में भी यह बात यूँ आ गई है— "युसुफ़ ख्वाब में हिदायत पाकर गिलील के इलाक़े को रवाना हो गया और नासिरा नाम एक शहर में जा बसा, ताकि जो नबियों के माध्यम से कहा गया था, पूरा हो— कि वह नासिरी कहलायेगा।" (मत्ती २ : २३)। लेकिन जब मुशरिकाना विश्वास का प्रचलन हो गया और अस्ली मसीहीयत, तीन ख़ुदा और ख़ुदा का जिस्म के अन्दर समा जाना ही बन गई, तो स्वाभाविक रूप में नसरानियत को ज़वाल आ गया, और नसरानी तथा नसरानियत के शब्दों का प्रयोग सम्मान के स्थान पर बुराई और अपमान के लिए होने लगा। मौजूदा मसीहीयत वास्तव में पोलूसियत है और सारी की सारी पोलूस (Poul) तरतूसी की शिक्षाओं पर ही आधारित है। यह शिक्षा हज़रत मसीह के कुछ ही समय बाद आरम्भ हो गई थी और नसरानी इससे क़तई इन्कार करते थे। क़ुर्आन मजीद ने प्रशंसा के स्थान पर एक जगह भी तीन ख़ुदाओं की मसीहीयत का ज़िक्र नहीं किया है, बल्कि उसका ज़िक्र जब कभी आया है, तो हमेशा बुराई और घृणा के साथ किया है।

२३९ साबी का शाब्दिक अर्थ है जो कोई भी अपने दीन को छोड़कर दूसरा धर्म अपनाये या उसकी ओर झुकाव रखे। स्वयं रसूल सल्लअम को शुरू में साबी इसलिए कहा जाने लगा था कि आपने क़ुरैश के धर्म को छोड़कर इस्लाम धर्म को अपना लिया। साबियों (Sabions) के नाम का एक मज़हबी फ़िरक़ा, जो अरब के उत्तर-पूर्व में शाम तथा इराक़ की सीमा पर आबाद था। यह लोग तौहीद और रिसालत के माननेवाले थे और अस्ल में किताबवाले थे, उन्हीं को नसाराए यहया भी कहा जाता था, यानी वह एक पैग़म्बर हज़रत यहया से सम्बन्ध रखते थे। हज़रत उमर, जो तीसरे ख़लीफ़ा थे, और हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास जैसे शोध करनेवाले रसूल सल्लअम के मित्रों ने साबियों को किताबवालों में गिना है और हज़रत उमर ने उनका ज़बीहा भी हलाल माना है। शब्दकोष वाले तथा ताबेईन में से काफ़ी संख्या में लोगों ने साबियों को किताबवाला और एक ख़ुदा का माननेवाला स्वीकार किया है। इब्ने ज़ैद भी उनको ऐसा ही मानते थे और क़तावा तथा हसन बसरी ने यहाँ तक कहा है कि वह क़िब्ला वाले और पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़नेवाले थे। इमाम अबू हनीफ़ा और इब्ने जरीर ने साबियों के हाथ के ज़बीहे को हलाल और उनकी स्त्रियों से निकाह को जायज़ बताया है। ईरान के इतिहास का एक अनुवाद, जो फ़्रेंच से उर्दू में हुआ है और जो एक बड़े योग्य शोधकर्ता का है (अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू— देहली से), उसके सफ़ा ४७ पर अनुवादक शेख़ मु० इक़बाल मरहूम प्रधानाचार्य ओरियण्टल कालेज, लाहौर, ने शब्द मेण्डियन (Mandeon) पर हाशिया दिया है— "मेण्डियन इराक़ी भाषा में बड़े ज्ञान वाले को कहते हैं। इस फ़िरक़े के लोग इराक़ में अब भी मौजूद हैं और साबियोन कहलाते हैं। वह लोग अगर्चे ईसाई नहीं हैं, फिर भी जोन दि बैपटिस्ट को मानते हैं। इराक़ में आम लोग उनको हज़रत यहया की उम्मत कहते हैं।" (ईरान सासानियों के समय में)। और यहाँ स्वयं क़ुर्आन मजीद उनके नाम दो किताबवालों के साथ जोड़ रहा है। इससे उनके किताब वाले और तौहीदवाले होने की ओर इशारा है। 'जिविश इन्साइक्लोपीडिया' में उनकी पदवी "नसाराए यहया" को यद्यपि एक ग़लत नाम ठहराया गया है, फिर भी यह ब्योरा उसमें अंकित है। मेण्डीना (Mandeans) पूर्वी धार्मिक फ़िरक़ा है, जिनका अक़ीदा और जिनके आमाल मसीहियों, यहूदियों और मुशरिकों के धर्म का मेलजोल है, मिलावट है। यह लोग दक्षिणी बाबुल यानी वासित तथा बसरा के इलाक़े में ख़ोज़िस्तान के निकट आबाद हैं और स्थानीय भाषाएँ यानी अरबी, फ़ारसी बोलते हैं। उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धार्मिक ग्रन्थ आरामी भाषा में हैं, जो बाबुल के तालमूद से काफ़ी मिलती-जुलती है······यह स्वयं को दूसरे फ़िरक़ों के सामने साबी ही कहते हैं। (जिल्द ८, सफ़ा २८८)। उसी किताब में आगे यह है कि यह लोग अगर्चे और नबियों को, जो सच्चे हैं जैसे हज़रत इब्राहीम, हज़रत मूसा इत्यादि को नहीं मानते, परन्तु हज़रत यहया के क़ायल हैं। 'इन्साइक्लोपीडिया आफ़ रेलीजन्स ऐण्ड एथिक्स' में इस फ़िरक़े के इतिहास, अक़ीदों इत्यादि पर लेख बड़े ब्योरे के साथ अंकित हैं। (जिल्द ८, सफ़ा ३८०-३९२)। इनका दूसरा नाम मुग़तस्ला भी लिखा हुआ है क्योंकि यह ग़ुस्ल (नहाना), बैपतिस्मा देने और ग़ोता देने के बड़े क़ायल हैं। इनकी तादाद लगभग ४००० बताई है। उनके यहाँ नमाज़ पाँच वक़्त की अनिवार्य है। तीन बार दिन में और दो-बार रात में और उनका क़िब्ला ध्रुव तारा यानी उत्तर में है। चैम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया में उनकी आबादी इराक़ में ६ हज़ार बताई गई है। (नया एडीशन जिल्द ७, सफ़ा ७०५)।

२४० **'मन् आमन बिल्लाहि'** यानी अल्लाह की ज़ात और सिफ़ात पर ईमान लाये जैसा कि होना चाहिए और वह ईमान हर प्रकार के शिर्क की मिलावट से पाक हो। इस अल्लाह पर ईमान लाने के अन्तर्गत उसकी सारी मान्यताएँ तथा नियम भी आते हैं अन्यथा ख़ुदा पर केवल ईमान तो किसी न किसी रूप में लगभग हर मनुष्य रखता ही है। और इन शर्तों में तौहीद के साथ रसूलों पर ईमान लाना अत्यावश्यक है क्योंकि बन्दों का सही सम्बन्ध अल्लाह के साथ स्थापित करनेवाले और सीधा रास्ता बताने वाले रसूल ही होते हैं। **'वल्-यौमिल्-आख़िरि'** आख़िरत के दिन पर ईमान लाने के मानी हैं यह कि सारे आख़िरत के हुक्मों पर ईमान लाया जाये। पुनर्जन्म, जिस्म में समाना इत्यादि की गुमराही की बातों की बुनियाद केवल यही है कि दूसरे मज़हबों में हश्र के दिन का सही ईमान बाक़ी नहीं रह गया और उन्होंने सज़ा तथा बदले और इनाम के दूसरे रूप प्रस्तावित कर लिये।

२४१ [और सही और अच्छे कर्म की परिभाषा ही यह है कि वह कर्म अल्लाह की 'वही' (पैग़म्बरों पर ख़ुदा की ओर से भेजे जानेवाले आदेश एवं निर्देश) अर्थात् शरीअत-इस्लामी के अन्तर्गत हो] वर्तमान समय की प्रचलित गुमराहियों में से एक सवाल, जो बार-बार पेश होता रहता है, वह यह है कि एक व्यक्ति ईमानवाला है परन्तु उसके कर्म ख़राब हैं, और दूसरा शख़्स अच्छे अमल वाला है, मगर ईमान से ख़ाली है, तो इन दो में नजात किसकी होगी ? आलिम लोग इसके जवाब विभिन्न देते हैं, परन्तु सबसे सीधा और नि:संकोच जवाब यह है कि अच्छे अमल का एक अनिवार्य अंश तो स्वयं अमल ही है। बग़ैर ईमान को शुद्ध किये और अल्लाह की ख़ुश्नूदी की तलाश किये बिना कोई भी अमल अच्छे अमल की परिभाषा में आ ही कब सकता है। ईमान से ख़ाली व्यक्ति का अमल जो अच्छा होगा, वह केवल सूरत से होगा, अन्यथा उसकी हक़ीक़त (यानी ख़ुदा की ख़ुशी की तलाश) तो उससे ख़ारिज ही होगी।

२४२ सही एतक़ाद और सही अमल, बस यही नजात की दो शर्तें हैं, गोया मसीही दुनिया को यह सन्देश खुले शब्दों में प्रथम बार पहुँचा कि अस्ल चीज़ अक़ीदा और अमल हैं और इन दो को सही करने के बाद क़ौम या नस्ल के सारे सम्बन्ध व्यर्थ हैं। **'अिन्द रब्बिहिम्'** में **'अिन्द'** का अर्थ स्थान से नहीं है क्योंकि अल्लाह तआला दिशाओं और स्थान से पाक और नि:सम्बद्ध है। इसका अर्थ है बदले और इनाम का विश्वसनीय और आवश्यक होना। क़ुर्आन मजीद की एक सुन्दरता बयान करने की यह भी है कि आंशिक वर्णन के साथ सामूहिक वर्णन भी कर जाता है। बनी इसराईल का ही लगातार बयान हो रहा था कि वह कई पीढ़ियों से आज्ञा-उल्लंघन के अपराधी चले आ रहे थे और बराबर सरकशी कर रहे थे। सम्बोधित व्यक्तियों पर यह असर पड़ना स्वाभाविक ही था कि ऐसे अपराधियों के लिए अब नजात की कोई गुंजाइश हो ही नहीं सकती। अचानक यह आयत बीच में लाकर इस निराशा को दूर कर दिया गया है कि जो कोई भी अपना अक़ीदा और अमल दुरुस्त रखेगा, चाहे मुसलमान हो या यहूदी या नसरानी या साबी चाहे जो कोई भी हो, रहमत और मुक्ति की राहें सबके लिए खुली हुई हैं। काम की चीज़ें केवल ईमान का सही होना और अमल का सही होना है। बयान आख़िरत का हो रहा है, यानी क़यामत के दिन का जो सच्चाई और सही जानकारी का दिन होगा। जो ईमानवाले हैं, उनको न अपने भूतकाल पर अफ़्सोस होगा और न अपने भविष्य की चिन्ता। डर और चिन्ता का सम्बन्ध भविष्य से है और ग़म तथा रंज का भूतकाल से। **'मन् आमन······यहज़नून'** सवाल यह है कि 'मन्' एक वचन में ग़ायब की गरदान है फिर उसकी ख़बर बहुवचन में कैसे हुई ? जवाब यह है कि 'मन्' शब्द में एक वचन है, परन्तु इसका प्रभाव सब पर होता है और इसकी मिसालें स्वयं क़ुर्आन में पाई जाती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व अिज़् अख़ज़्ना मीसाक़कुम् व रफ़ऽना फ़ौक़कुमुत्तूर ᵀ ख़ुज़ू मा॑ आतैनाकुम् बिक़ुव्वतिंव्वज़्कुरू मा फ़ीहि लअ़ल्लकुम् तत्तक़ून (६३) सुम्म तवल्लैतुम् मिम्बऽदि ज़ालिक ᴶ फ़ लौला फ़ज़्लुल्लाहि अ़लैकुम् व रह्मतुहू लकुन्तुम् मिनल्ख़ासिरीन (६४) व लक़द् अ़लिम्तुमुल्लज़ीनऽतदौ मिन्कुम् फ़िस्सब्ति फ़ क़ुल्ना लहुम् कूनू क़िरदतन् ख़ासिईन ᴶ (६५) फ़ जअ़ल्नाहा नकाललिलमा बैन यदैहा व मा ख़ल्फ़हा व मौअ़िज़तल् - लिल् - मुत्तक़ीन (६६) व अिज़् क़ाल मूसा लि क़ौमिही॑ अिन्नल्लाह यअ्मुरुकुम् अन् तज़्बहू बक़रतन् ᵀ क़ालू॑ अ तत्तख़िज़ुना हुज़ुवन् ᵀ क़ाल अऊ़ज़ु बिल्लाहि अन् अकून मिनल्जाहिलीन (६७) क़ालुद्अ़ु लना रब्बक युबय्यिल्लना मा हिय ᵀ क़ाल अिन्नहू यक़ूलु अिन्नहा बक़रतुल्ला - फ़ारिज़ुंव्व ला - बिक्रुन् ᵀ अ़वानुम्बैन ज़ालिक ᵀ फ़फ़्अ़लू मा तुअ्मरून

الۤمّۤ ١ البقرة ٢

يَحۡزَنُوۡنَ ۝ وَاِذۡ اَخَذۡنَا مِیۡثَاقَکُمۡ وَرَفَعۡنَا فَوۡقَکُمُ الطُّوۡرَ ؕ خُذُوۡا مَاۤ اٰتَیۡنٰکُمۡ
بِقُوَّۃٍ وَّاذۡکُرُوۡا مَا فِیۡہِ لَعَلَّکُمۡ تَتَّقُوۡنَ ۝ ثُمَّ تَوَلَّیۡتُمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ ذٰلِکَ ۚ فَلَوۡلَا
فَضۡلُ اللّٰہِ عَلَیۡکُمۡ وَرَحۡمَتُہٗ لَکُنۡتُمۡ مِّنَ الۡخٰسِرِیۡنَ ۝ وَلَقَدۡ عَلِمۡتُمُ
الَّذِیۡنَ اعۡتَدَوۡا مِنۡکُمۡ فِی السَّبۡتِ فَقُلۡنَا لَہُمۡ کُوۡنُوۡا قِرَدَۃً خٰسِـِٕیۡنَ ۝
فَجَعَلۡنٰہَا نَکَالًا لِّمَا بَیۡنَ یَدَیۡہَا وَمَا خَلۡفَہَا وَمَوۡعِظَۃً لِّلۡمُتَّقِیۡنَ ۝
وَاِذۡ قَالَ مُوۡسٰی لِقَوۡمِہٖۤ اِنَّ اللّٰہَ یَاۡمُرُکُمۡ اَنۡ تَذۡبَحُوۡا بَقَرَۃً ؕ قَالُوۡۤا اَتَتَّخِذُنَا
ہُزُوًا ؕ قَالَ اَعُوۡذُ بِاللّٰہِ اَنۡ اَکُوۡنَ مِنَ الۡجٰہِلِیۡنَ ۝ قَالُوا ادۡعُ لَنَا رَبَّکَ
یُبَیِّنۡ لَّنَا مَا ہِیَ ؕ قَالَ اِنَّہٗ یَقُوۡلُ اِنَّہَا بَقَرَۃٌ لَّا فَارِضٌ وَّلَا بِکۡرٌ ؕ عَوَانٌۢ
بَیۡنَ ذٰلِکَ ؕ فَافۡعَلُوۡا مَا تُؤۡمَرُوۡنَ ۝ قَالُوا ادۡعُ لَنَا رَبَّکَ یُبَیِّنۡ لَّنَا مَا لَوۡنُہَا ؕ
قَالَ اِنَّہٗ یَقُوۡلُ اِنَّہَا بَقَرَۃٌ صَفۡرَآءُ ۙ فَاقِعٌ لَّوۡنُہَا تَسُرُّ النّٰظِرِیۡنَ ۝ قَالُوا
ادۡعُ لَنَا رَبَّکَ یُبَیِّنۡ لَّنَا مَا ہِیَ ۙ اِنَّ الۡبَقَرَ تَشٰبَہَ عَلَیۡنَا ؕ وَاِنَّاۤ اِنۡ شَآءَ
اللّٰہُ لَمُہۡتَدُوۡنَ ۝ قَالَ اِنَّہٗ یَقُوۡلُ اِنَّہَا بَقَرَۃٌ لَّا ذَلُوۡلٌ تُثِیۡرُ الۡاَرۡضَ
وَلَا تَسۡقِی الۡحَرۡثَ ۚ مُسَلَّمَۃٌ لَّا شِیَۃَ فِیۡہَا ؕ قَالُوا الۡـٰٔنَ جِئۡتَ بِالۡحَقِّ ؕ
فَذَبَحُوۡہَا وَمَا کَادُوۡا یَفۡعَلُوۡنَ ۝ وَاِذۡ قَتَلۡتُمۡ نَفۡسًا فَادّٰرَءۡتُمۡ فِیۡہَا ؕ ع
وَاللّٰہُ مُخۡرِجٌ مَّا کُنۡتُمۡ تَکۡتُمُوۡنَ ۝ فَقُلۡنَا اضۡرِبُوۡہُ بِبَعۡضِہَا ؕ کَذٰلِکَ
یُحۡیِ اللّٰہُ الۡمَوۡتٰی ۙ وَیُرِیۡکُمۡ اٰیٰتِہٖ لَعَلَّکُمۡ تَعۡقِلُوۡنَ ۝ ثُمَّ قَسَتۡ قُلُوۡبُکُمۡ
مِّنۡۢ بَعۡدِ ذٰلِکَ فَہِیَ کَالۡحِجَارَۃِ اَوۡ اَشَدُّ قَسۡوَۃً ؕ وَاِنَّ مِنَ الۡحِجَارَۃِ

منزل ١

(६८) क़ालुद्अ़ु लना रब्बक युबय्यिल्लना मालौनुहा ᵀ क़ाल अिन्नहू यक़ूलु अिन्नहा बक़रतुन् सफ़्रा॑अु ला फ़ाक़िअ़ुल्लौनुहा तसुर्रुन्नाज़िरीन (६९) क़ालुद्अ़ु लना रब्बक युबय्यिल्लना मा हिय ला अिन्नल् - बक़र तशाबह अ़लैना ᵀ व अिन्ना॑ अिन्शा॑अल्लाहु ल मुह्तदून (७०) क़ाल अिन्नहू यक़ूलु अिन्नहा बक़रतुल्ला - ज़लूलुन् तुसीरुल्अर्ज़ व ला तस्क़िल्हर्स ᴶ मुसल्लमतुल्ला - शियत फ़ीहा ᵀ क़ालुल्आन जिअ्त बिल्हक़्क़ि ᵀ फ़ज़बहूहा व मा कादू

★ रु. ८/८ आ १० यफ़्अ़लून (७१) ★ व अिज़् क़तल्तुम् नफ़्सन् फ़द्दारअ्तुम् फ़ीहा ᵀ वल्लाहु मुख़्रिजुम्मा कुन्तुम् तक्तुमून ᴶ (७२) फ़ क़ुल्नज़्रिबूहु बि बऽज़िहा ᵀ कज़ालिक युह्यिल्लाहुल्मौता ला व युरीकुम् आयातिही॑ लअ़ल्लकुम् तऽक़िलून (७३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और (वह वक़्त याद करो) जब हमने तुमसे वादा लिया[२४३] और हमने तुम्हारे ऊपर (कोह) तूर बुलन्द किया[२४४] मज़बूती के साथ इस किताब को पकड़ रखो जो हमने तुमको दी है[२४५] और जो कुछ उसमें है उसे याद रखो ताकि तुम मुत्तक़ी (पाकसाफ़ और दीनदार) बन जाओ[२४६]। (६३) फिर तुम उस (वादे) से उसके बाद (भी) फिर गये[२४७], सो अगर तुम पर अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी रहमत न होती तो तुम ज़रूर तबाह होनेवालों में से होते[२४८]। (६४) और तुम ख़ूब जान चुके हो उन लोगों को, जिन्होंने तुमसे 'सब्त' के बारे में तजावुज़ किया था (हद से बढ़ गये थे)[२४९], तो हमने उनसे कहा कि ज़लील बन्दर हो जाओ[२५०-२५१] (उर्दू अनुवाद में २५१ फ़ुटनोट-संख्या नहीं है, लेकिन इसका सम्बन्ध २५० फ़ुटनोट से है।)। (६५) फिर हमने उसे दूसरों के लिए सीख प्राप्त करने का कारण बना दिया। उस ज़माने के और उसके बाद के लोगों के लिए और एक नसीहत का सबब (बना दिया) ख़ुदा का ख़ौफ़ रखनेवालों के लिए[२५२]। (६६) और (वह वक़्त याद करो) जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा कि तुम्हें अल्लाह हुक्म देता है कि एक गाय ज़िबह करो[२५३]। वह बोले, आप हमसे हँसी कर रहे हैं क्या?[२५४] (मूसा ने) कहा, अल्लाह मुझे इससे पनाह में रखे कि मैं जाहिलों में हो जाऊँ[२५५]। (६७) वह बोले, हमारी तरफ़ से अपने परवरदिगार से प्रार्थना कीजिये कि वह हमें बताये कि वह कैसी हो[२५६]? कहा कि वह फ़र्माता है कि वह गाय न बूढ़ी हो और न बिन बियाई (बल्कि) दोनों उम्रों के मध्य में हो[२५७]। सो अब कर डालो, जो कुछ तुम्हें हुक्म मिला है। (६८) वह बोले, हमारी तरफ़ से अपने परवरदिगार से दरख़्वास्त (निवेदन) कीजिये कि वह हमें बताये कि उसका रंग कैसा हो[२५८]? कहा कि वह फ़र्माता है कि वह गाय ख़ूब गहरे ज़र्द रंग की हो[२५९], देखनेवालों को अच्छी मालूम होती हो[२६०]। (६९) वह बोले, अपने परवरदिगार से हमारी तरफ़ से प्रार्थना कीजिये कि वह हमें बताये कि (वह) और कैसी हो? इसलिए कि गाय में हमेशा शुबहा पड़ गया है[२६१] और ख़ुदा ने चाहा तो हम ज़रूर राह पा जायेंगे[२६२]। (७०) कहा कि वह फ़र्माता है कि वह गाय मेहनत करनेवाली न हो, जो ज़मीन को जोतती हो और न खेती को पानी देती हो[२६३], सालिम उसमें (कोई) दाग़, धब्बा न हो[२६४]। ★
वह बोले, अब आप ठीक पता लाये[२६५]। फिर उन्होंने उसे ज़िबह किया और वह ऐसा करते मालूम नहीं होते थे[२६६]। (७१) ★ रु. ८ । ८

और (वह वक़्त याद करो) जब तुमने एक शख़्स को क़त्ल कर डाला था[२६७], आ
फिर तुम इस मामले में लड़ने-झगड़ने लगे थे[२६८]। और अल्लाह को वह ज़ाहिर १०
कर देना था, जिसे तुम छुपा रहे थे[२६९]। (७२) तो हमने कहा कि इस लाश पर इस गाय का कोई टुकड़ा मारो[२७०], यूँ ही अल्लाह मुर्दों को ज़िन्दा करेगा[२७१] और वह तुमको अपनी निशानियाँ[२७२] दिखाता है, ताकि तुम बुद्धि से काम लो[२७३]। (७३)

---

२४३ (ऐ बनी इसराईल! तुम्हारे नबी के माध्यम से इस विषय का कि तुम तौरेत पर अमल करोगे) यहाँ इसराईली तारीख़ का वर्णन लगातार चल रहा है और सम्बोधन उन्हीं से है।

२४४ **'अत्तूर'** स्वयं तूर के अर्थ पहाड़ के हैं और उपद्वीप सैना के एक पहाड़ का नाम भी तूर है। नवीन भूगोल लिखनेवालों का कहना है कि तूर का अर्थ उपद्वीप सैना की अनेकों पहाड़ियों से होता है, परन्तु हज़रत मूसा और बनी इसराईल के विषय में तूर के पहाड़ का अर्थ सैना के पहाड़ से होता है, परन्तु जबल् सैना (सैना पहाड़) की कोई एक चोटी नहीं, अनेक चोटियाँ हैं। उन्हीं में से किसी का नाम तूर होगा! क़ौम के ऊपर पहाड़ बुलन्द करने से क्या समझा जाये? तौरेत में कुछ धुँधली दशा अंकित है— "वह पहाड़ के नीचे आ खड़े हुए और कोह सैना पर नीचे-ऊपर धुआँ था, क्योंकि ख़ुदावन्द शोले में होकर वहाँ उतरा और शोर का सा धुआँ उस पर उठा और पहाड़ सरासर हिल गया।" और तालमूद, जो तौरेत की प्रसिद्ध एवं मानी हुई बड़ी मोटी शरह (अर्थ) यहूद के यहाँ मौजूद है, उसमें इस धुँधली तस्वीर का ब्योरा भी अंकित है— "हक़ तबारक व तआला (ख़ुदा) ने उनके ऊपर कोह सैना को उलट दिया, जिस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार कोई बड़ा बर्तन उलट दिया जाता है और कहा कि अगर तुम तौरेत को स्वीकार करते हो तो ख़ैर, वरना सब यहीं दफ़्न होकर रह जाओगे ।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया, जिल्द ४, सफ़ा ३२१) । "ख़ुदा ने पहाड़ को उन लोगों पर उलटकर औंधा कर दिया और उनसे कहा कि तौरेत को क़ुबूल करते हो जब तो ख़ैर, वरना यहीं तुम्हारा मद्फ़न बनेगा ।" (जैसा ऊपर है) । हमारे तफ़्सीर करनेवालों ने जो आसार सहाबा और ताबेईन से नक़्ल किये हैं, वह भी इसी बयान से मिलते-जुलते हैं ।

२४५ यह पूरी बात उसी वक़्त की है जब किताब उतरी थी । किताब के साथ यह निर्देश भी हुए थे कि इस किताब की सुरक्षा करना और उसके निर्देशों पर अमल करना । **'मा'आतैनाकुम्'** से मतलब है तौरेत और उसके आदेशों पर जमने की ताकीद और उसको छोड़ने पर तम्बीह । स्वयं तौरेत में स्थान-स्थान पर अंकित है, "जो कोई इस शरीअत की सब बातों पर क़ायम न रहे कि उन पर अमल करे, उस पर धिक्कार । सब लोग कहें आमीन ।" (इस्तिस्ना—२६, २७) । "अगर तू कोशिश करके ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा की आवाज़ सुने, ताकि उन सब हुक्मों पर, जो आज के दिन मैं तुझसे फ़र्माता हूँ, ध्यान रखके अमल करे तो ख़ुदावन्द, तेरा ख़ुदा ज़मीन की क़ौमों की बनिस्बत तुझे बढ़ाई देगा ।" (इस्तिस्ना—१ : २८) । लेकिन अगर तू ख़ुदावन्द, अपने ख़ुदा की आवाज़ को न सुनेगा कि उसकी सारी शरओं को और हुक्मों को, जो आज के दिन मैं तुझको बताता हूँ, ध्यान रखके अमल करे तो ऐसा होगा कि यह सारी लानतें तुझ पर उतरेंगी और तुझ तक पहुँचेंगी ।" (इस्तिस्ना १५ : २८) ।

२४६ (और तक़्वा की राह यही है कि अल्लाह की किताब पर अमल किया जाये) याद रखो उसके मज़मूनों को, ताकि उन पर अमल कर सको । ख़ुदा के हुक्मों को याद रखना वास्तव में इसी कारण से होता है कि उन पर अमल किया जा सके । हुक्म के अन्तर्गत क़ुर्आन को याद करना, ठीक प्रकार से पढ़ना इत्यादि भी आता है, परन्तु अस्ल उद्देश्य वही अमल है । **'लअ़ल्ल'** के लिए पूरा विवरण ऊपर बयान हो चुका है कि इसका इस्तेमाल जब अल्लाह की तरफ़ से होता है, तो इसका अर्थ शक और सन्देह नहीं होता, बल्कि अर्थ यक़ीन का पैदा हो जाता है ।

२४७ (पूर्व की भाँति फिर आज्ञा-उल्लंघन करने लगे) **'मिम्बअ़्दि ज़ालिक'** यानी इस वादे और किताब के पाने के पश्चात् ।

२४८ यानी तुरन्त हलाक कर दिये गये होते और सारी क़ौम की क़ौम दुनिया से इस प्रकार बरबाद कर दी गई होती जैसे और पुरानी क़ौमें बरबाद की गई हैं । बनी इसराईल के हक़ में ख़ुदा की मेहरबानी यही थी कि उनकी ख़ताओं और उनके अपराधों की ओर निगाह नहीं डाली गई और उन्हें ख़ुदा को सुधारने और सँभलने का अवसर प्रदान किया गया । यह एक और स्पष्टीकरण क़ुर्आन मजीद ने पेश किया कि क़ौम इसराईल पर ख़ुदा की विशेष कृपा हमेशा रही है ।

२४९ इल्म का शब्द स्वयं ही शोध के अर्थ में क़ुर्आन मजीद में इस्तेमाल हुआ है । गोया क़ुर्आन बनी इसराईल को उनके इतिहास की कोई घटना उनके लिए भलीभाँति जाना-बूझा हुआ याद दिला रहा है और उनसे कह रहा है कि ऐ बनी इसराईल ! जिस घटना का वर्णन आगे आ रहा है, वह तुम्हारी तारीख़ की एक अच्छी तरह जानी-बूझी घटना है और तुम उसे निःसन्देह जानते हो । **'मिन्कुम्'** यानी तुम्हारे पूर्वजों में से । **'फ़िस्सब्ति'** यानी सब्त के आदेशों के बारे में । **'अस्सब्त'** सब्त के लफ़्ज़ी मानी हैं हफ़्ते का सातवाँ दिन । सनीचर या शम्बा । यहूदियों की भाषा में यह एक पवित्र दिन है मसीहियों के इतवार की तरह । यह दिन केवल ख़ुदा की याद और इबादत के लिए निश्चित था और इस दिवस को तिजारत, खेती-बाड़ी, शिकार इत्यादि हर प्रकार के दुनियावी काम मना थे, और इस सख़्ती के साथ मना थे कि जो उस आज्ञा को तोड़े, उसकी सज़ा क़त्ल थी । तौरेत के शब्द यह हैं— "पस सब्त को मानो, इसलिए कि वह तुम्हारे लिए पवित्र है । जो कोई उसको पाक न जाने, वह ज़रूर मार डाला जाये ।" (ख़ुरूज—३१ : १४, १५) । **'अ़तदौ'** आगे बढ़ जाते थे, मूसा की शरीअत के आगे और उसकी सीमा से परे । रिवायतों में आता है कि हज़रत दाऊद के ज़माने में यहूद की एक बड़ी आबादी ऐला में थी । यह ज़िक्र उन्हीं का है । हज़रत दाऊद का ज़मानए-हुकूमत १०१३ पूर्व मसीह से ९७३ पूर्व मसीह का है । अगर ऐला वही है, जिसका ज़िक्र तौरेत में ऐलात (Elath) के नाम से आता है (इस्तिस्ना—२ : ८) तो यह फ़िलस्तीन के दक्षिण में अरब की उत्तरी सीमा पर लाल सागर की पूर्वी खाड़ी में समुद्र के तट पर स्थित है । वर्तमान भूगोल में उसे अक़बा कहते हैं और अक़बा, अक़बा की खाड़ी का प्रसिद्ध बन्दरगाह है । ऐला के यहूदी अपनी शरीअत के क़ानून की लगातार नाफ़र्मानी करते रहे और मछली का शिकार एक विशेष चालाकी से और ज़ाहिर में जायज़ बनाकर सब्त के दिन किया करते थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२५० इस लगातार नाफ़र्मानी पर सज़ा तो उन मुजरिमों को अवश्य मिली, रहा यह कि क्या मिली ? इसका विवरण इतना स्पष्ट नहीं है। आम तौर पर तफ़्सीर करनेवालों का यह खयाल है कि जैसा कि क़ुर्आन ने लिखा है, वह इन्सान बन्दर बना दिये गये और फिर तीन दिन के बाद हलाक कर दिये गये। इस तफ़्सीर पर अक़्ल से कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। जो लोग अल्लाह के नियमों को तोड़ने में इतने निर्भय हों, उनको सज़ा देने के लिए क़ुदरती नियमों में तब्दीली अगर खुदा करता है और अगर कोई बात उलटी हो जाये तो इसमें कोई असम्भव होने की बात नहीं है। फिर भी सभी रिवायतें इस बात पर सहमत नहीं हैं, बल्कि ऐसा क़ौल ताबेईन का भी है कि शक्लें बिगड़ गई थीं और उनकी आदतें और व्योहार बन्दरों की तरह हो गये। वह बन्दरों के जिस्म और बनावट में तब्दील नहीं हुए थे। 'अलूमनार' के लेखक का भी यही खयाल है कि बिगड़कर बन्दर नहीं हुए थे। लेकिन तफ़्सीर करनेवालों के बहुमत का विचार है कि यह क़ौल विचित्र और क़ुर्आनी तारतम्य के विरुद्ध है। क़रतबी में आयत ७६ के अन्तर्गत हुज़ूर सल्लअम की एक वार्ता यहूद तथा क़रीज़ा से खैबर के युद्ध के दिन की दर्ज है, जिसमें क़रवता व खनाज़ीर साफ़ मजाज़ी (ज़ाहिरी रंग-रूप में नहीं) मानी में आया है। फ़िक़रे का अनुवाद यह है कि— "ऐ बन्दरो ! और सुअरों के भाइयो ! तुमने अ़हद (वादा) तोड़ डाला, अल्लाह तुम्हें ग़ारत करे और तुम पर अपना अज़ाब नाज़िल करे।"

२५१ सज़ा का विवरण कुछ भी हो, बहरहाल वह कोई भयंकर सज़ा थी। क़ुर्आन का उद्देश्य उस सज़ा का ब्योरा देना नहीं है, बल्कि उससे डरने और सबक़ लेने के पहलू को स्पष्ट किया है। घटना जो भी रही हो यहूद की जानी-बूझी थी, क़ुर्आन उसे केवल याद दिला रहा है। **'नकालन्'** वह सज़ा, जो दूसरों के लिए भय और सबक़ बन जाये। **'मा बैन यदैहा'** एक समय के लोगों के माने में आया है और **'मा ख़ल्फ़हा'** बाद के आनेवालों के माने में। गोया सज़ा ऐसी थी कि मुद्दतों तक कई नस्लों में उसका चर्चा रहे और लोग उसका तज़्किरा सुनकर खौफ़ खाते और डरते रहें।

२५२ यानी ताकि दीनदारों को और नेक लोगों को इस घटना को सुनकर नेक रास्ते की चाह और बढ़े, क्योंकि नसीहत को स्वीकार करनेवाले और इससे फ़ायदा उठानेवाले तो मुत्तक़ी लोग यानी नेक और अल्लाह से डरनेवाले लोग ही होंगे। 'रूहुल् मआनी' के लेखक ने खुदा की पहचान करनेवालों के लिए यह विशेष बात लिखी है कि अल्लाह ने इबादतों को विशेष रूप में विशेष समयों के लिए निश्चित किया है, जिससे क़ुदरती अन्धकार दूर हो। अतः जो शख्स इन रूपों की ओर ध्यान नहीं देता, उसकी क्षमता का प्रकाश समाप्त हो जाता है और सब्त के लोगों की भाँति बिगाड़ दिया जाता है। यानी जिस पशु की आदतें उनमें हों, उन्हीं की मनोवृत्ति उनमें उत्पन्न कर दी जाये। पस मनुष्य को चाहिए कि शरीअत की दवाओं से अपनी इन्सानियत को सुरक्षित रखे। इस समय ऐसे अन्दरूनी दशा को जाननेवाले ऐसे बुज़ुर्ग मौजूद हैं कि वह मनुष्य को उसी रूप में देखते हैं, जिस पशु की मनोवृत्ति उसमें पाई जाती हो। जैसे कि जो व्यक्ति अत्याचारी और कठोर हृदय का हो, उसे देखकर पुकार उठते हैं कि भेड़िया आ रहा है। जिस पर हरामखोरी की गन्दगी छा गई हो, उसे देखकर बोल उठते हैं कि सुअर आ रहा है। यह विशेषता केवल इन्हीं पर ही सीमित नहीं है।

२५३ इसराईलियों में एक घटना क़त्ल की हो गई थी और हत्यारे का पता नहीं चल रहा था। गाय को ज़िबह करने का आदेश इसी सम्बन्ध में मिला था। उसका ब्योरा अगले रुकूअ में आ रहा है। यह वह ज़माना था कि मिस्रियों के साथ रहते-रहते बहुत सी मुशरिकाना रस्में तौहीद के माननेवाले इसराईलियों में फैल चुकी थीं और गाय की बड़ाई उनके दिलों में रच गई थी। हिन्दुस्तान की भाँति मिस्र में भी गाय की पवित्रता मुशरिकाना मज़हब का एक अंग था। तौरेत में इसराईलियों की गाय के ज़िबह करने का आदेश विशेष प्रतिबन्धों के साथ बार-बार मिला है। जैसे कि— "बनी इसराईल को कहो कि एक लाल गाय, जो बेदाग़ और बेऐब हो और जिस पर कभी जुवा न रखा गया हो, तेरे पास लायें। तुम उसे अलीअज़र काहिन को दो कि उसे खेमागाह से बाहर ले जाये। और वह उसके हुज़ूर ज़िबह की जाये।" (गिन्ती—१६ : २)। "जो शहर मक़्तुल (जिसको क़त्ल किया गया हो) से ज़्यादा नज़दीक है, उसी शहर के बुज़ुर्ग से एक बछिया लें, जिससे अभी कोई सेवा न ली गई हो और जुवे-तले न आई हो और उस शहर के बुज़ुर्ग उस बछिया को एक बीहड़ घाटी में, जो न जोती गई हो और न उसमें कुछ बोया गया हो, ले जायें और उस घाटी में उस बछिया की गरदन काटें।" (इस्तिस्ना—२१ : ३, ४)। **'बक़रः'** अस्ल में गाय के लिए है और सौर इसका स्त्रीलिंग है। बाज़ तफ़्सीर करनेवालों ने इस शब्द का प्रयोग गाय और बैल दोनों के माने में किया है। यहाँ इसका अर्थ बैल का है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२५४ बनी इसराईल "गऊ माता" को पवित्र मानते थे। उनको विश्वास ही नहीं हुआ कि ऐसे पवित्र पशु को ज़िबह कर डालने का आदेश मिला होगा। वह बस यह समझे कि मूसा हँसी और मज़ाक़ की राह निकाल रहे हैं।

२५५ (और ख़ुदाई आदेशों को पहुँचाने में हँसी-दिल्लगी से काम लेने लगूँ) कोई नासमझी और जाहिलीयत इससे बढ़कर क्या होगी कि अल्लाह् की तरफ़ से पैग़ाम पहुँचाने में बन्दा अपनी तरफ़ से हँसी-मज़ाक़ करने लगे। **'जाहिलीन'** 'जह्ल' के शाब्दिक अर्थ हैं किसी काम को उसके विपरीत पूर्ण करना, जो उसके अदा करने का हक़ है। अल्लाह् की तरफ़ से पैग़ाम गढ़ लेने की हिम्मत वही कर सकता है, जो स्वयं अल्लाह तआला से ग़ाफ़िल और जाहिल हो। या वह कर सकता है, जो दीनी कामों में हँसी करने के परिणाम से बेख़बर हो। मज़हबी आलिमों ने आयत से यह नतीजा निकाला है कि दीन (मज़हब) और दीन की बड़ी बातों के साथ हँसी जह्ल और बड़ा भयावह गुनाह है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ख़ुशमिज़ाजी या मिज़ाह (ऐसी हँसी, जिसमें ज़रा भी तौहीन या मज़ाक़ उड़ाने का पहलू न आता हो) को मज़ाक़ और हँसी उड़ाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों में बड़ा अन्तर है। ख़ुशमिज़ाजी तो स्वयं रसूल सल्लअम और इमामों में प्रचलित रही है।

२५६ (आयु के लिहाज़ से) **'मा हिय'** से हक़ीक़त का बयान मुराद नहीं है। उद्देश्य केवल अधिक स्पष्ट कर देने का है।

२५७ न ऐसी बूढ़ी हो, न बिलकुल बच्चा हो। **'फ़ारिज़'** वह है, जिसके बच्चा जनने का सिलसिला ख़त्म हो गया हो। **'बिक्र'** वह है, जिसके अभी बच्चा न हुआ हो। यहीं से ख़याल होता है कि **'बक़रः'** से मुराद बैल नहीं, बल्कि गाय है। **'अवान'** के मानी हैं मध्य की आयु रखनेवाली।

२५८ मिस्र वाले बैल को पवित्र जानते थे, परन्तु उसकी क़ुर्बानी भी करते थे, परन्तु क़ुर्बानी के बैल में बड़ी बाल की खाल निकाला करते थे। उसका रंग ज़्यादातर सफ़ेद हो, उसके बदन पर बाल एक भी काला न हो, दुम बिलकुल सही और क़ुदरती हालत में हो। कोई दाग़-धब्बा न हो, ग़रज़ कि नाना प्रकार के प्रतिबन्ध लगाया करते थे। यह सब शर्तें पूरी हो जातीं, तब कहीं क़ुर्बानी की नौबत आती थी। इसराईलियों ने जो इतनी बहस की, सम्भवतः यह मिस्रियों के साथ रहने का असर रहा हो।

२५९ यानी रंग ख़ूब शोख खुलता हुआ हो। फ़िलस्तीन तथा सैना की बाज़ गायें अवश्य ही इसी रंग की होती होंगी। मौलाना थानवी स्वयं अन्तरात्मा को भी ज़र्द रंग का बुज़ुर्गों की जानकारी में बताते हैं। और सूफ़ियों ने जो अन्तरातमा को गाय से उपमा दी है, उससे वह मिलना-जुलना लगभग बढ़ जाता है।

२६० यानी वह गाय देखने में अच्छी शक्ल की और अच्छे रंग की हो, ख़राब रंग की, बुरी दिखाई देनेवाली और बदसूरत न हो।

२६१ यानी ज़रा और स्पष्ट एवं सीमित कीजिये और उसकी विशेषताएँ बयान कीजिये, इस हुलिये और इस रंग की गायें तो बहुत सी हैं।

२६२ (गाय तक— और उसे ज़रूर ज़िबह करके रहेंगे।)

२६३ हिन्दुस्तान में आम तौर पर केवल बैल से खेती का काम लिया जाता है गाय से नहीं, परन्तु दूसरे देशों में यह काम गाय से भी लिया जाता है।

२६४ हाशिया सं० २५८ का अवलोकन करें। इसराईलियों के यहाँ किसी ऐबदार या दाग़दार जानवर को क़ुर्बानी के लिए ज़िबह करना जायज़ नहीं था। "तो ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा के बैल या भेड़, बकरी, जिसमें कोई ऐब हो या बुराई हो, ज़िबह मत कीजियो, क्योंकि ख़ुदावन्द तेरे ख़ुदा को इससे घृणा है।" (इस्तिस्ना—१७ : १)। "तुम्हारा जानवर बेऐब चाहिए।" (ख़ुरूज—१२ : ५)। "अगर उसकी 'क़ुर्बानी' सोख़तनी गाय, बैल है, तो बेऐब नर लावे।" (अहबार—१ : ३)।

२६५ (यानी ब्योरेवार और पूरा अब बताया है।)

२६६ यानी उनके लगातार बाल की खाल निकालने से आज्ञापालन की सम्भावना कम ही मालूम होती है।

२६७ (अपने ही में से) "तुमने" यानी तुममें से कुछ लोगों ने। अभी बनी इसराईल ही का ज़िक्र चल रहा है। यहाँ भी संकेत उनकी क़ौमी तारीख़ के किसी वाक़िये की ओर है। परन्तु इस विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घटना के समझने एवं उसे निश्चित करने के लिए उनके इतिहास के भण्डार की कुरेद करने की आवश्यकता पड़ेगी। कोई और भविष्य का तफ़्सीर करनेवाला उसकी खोज करेगा। हमारे तफ़्सीर करनेवालों ने जो राय क़ायम की है, वह यह है कि ऊपर जो गाय के ज़िबह करने का आदेश है, वह इसी क़त्ल की घटना से सम्बद्ध है। क़ुर्आन मजीद ने केवल क्रम, जो घटना का है, उसको आगे-पीछे कर दिया है।

२६८ (और एक दूसरे पर इल्ज़ाम रखने लगे) यानी अस्ली हत्यारे का पता नहीं लग रहा था। कोई कहता कि क़ातिल फ़ुलाँ है, कोई कहता कि फ़ुलाँ है। एक दूसरे पर आरोप लगा रहे थे। **'फ़द्दारअ्तुम्'** 'दरा' के मानी झगड़े के भी हैं और दफ़ा करने के भी। क़ुर्आन मजीद में कई स्थानों पर दफ़ा करने ही के मानी में आया है। यहाँ **'अद्दारअ्तुम्'** से मुराद है एक दूसरे पर इल्ज़ाम डालने के।

२६९ यानी अस्ली क़ातिल का पता। पिछले रुकूअ में जो गाय के ज़िबह करने का आदेश मिला है, वह जैसा कि तफ़्सीर करनेवालों का विचार है, सम्भवतः इसी अवसर के लिए था।

२७० ब्योरे की जानकारी तो ग़ैब वाले को है, परन्तु इतना पता तो यहूद के शरीअत के क़ानून (तौरेत) के पढ़ने से चलता है कि क़त्ल के मौक़े पर, जब क़ातिल की खोज हो रही हो, कुछ शर्तों की पाबन्दी के साथ एक जवान गाय को, जिससे कोई सेवा न ली गई हो, ज़िबह किया जाता था और उसकी लाश पर क़ौम के बड़े-बूढ़े एक खास तरीक़े से दुआ करके खून के गुनाह से अपनी बख़्शाइश (मुक्ति) चाहते थे। किताब इस्तिस्ना के अध्याय २१ में आयत १, ९ में यह विवरण अंकित है। यहाँ कुछ सतरें नक़्ल की जाती हैं— "अगर इस सरज़मीन में जिसका ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा तुझे इर्शाद करता है, किसी मक़्तूल (जिसकी हत्या की गई हो) की लाश खेत में पड़ी हुई मिले और मालूम न हो कि उसका क़ातिल कौन है, तब तेरे बुज़ुर्ग और तेरे क़ाज़ी बाहर निकलें और उन बस्तियों के चारों ओर मध्य को नापें और यूँ होगा कि जो शहर मक़्तूल से ज़्यादा नज़दीक है, उसी शहर के बुज़ुर्ग एक बछिया लें, जिससे अभी कोई ख़िदमत न ली गई हो और जुये-तले न आई हो······और वहाँ उस वादी (घाटी) में उस बछिया की गर्दन काटें······फिर उस शहर के सारे लोग, जो मक़्तूल से नज़दीक हैं, उस बछिया के ऊपर, जिसकी उस घाटी में गर्दन मारी गई है, अपने हाथ धोयें और जवाब देके कहें कि हमारे हाथों ने यह खून नहीं किया, न हमारी आँखों ने देखा।" तफ़्सीरी रिवायतों में आता है कि मक़्तूल ज़िन्दा हो गया था और क़ातिल का नाम और पता बताकर फिर मर गया— वल्लाह आलम बिस्सवाब।

२७१ (क़यामत के दिन) क़ुर्आन मजीद ने अपनी आम विशेषता यानी विशेष से साधारण की शिक्षा यहाँ भी न छोड़ी और एक छोटी सी घटना से अपनी शक्ति और किसी घटना के होने की सम्भावना यानी दुबारा जीवित होने की सम्भावना का पहलू दरशाया।

२७२ (और नमूने अपनी शक्ति तथा निःसन्देह अधिकार के)।

२७३ (और कम से कम इस मिसाल से क़यामत के होने और दुबारा जीवित होने के इन्कार करने से बाज़ आ जाओ)।

(फ़ुटनोट सफ़ा १११ से)

२७७ (और उनसे भी किसी दर्जे तक अल्लाह के बनाये हुए जानदार लाभान्वित होते हैं।) इस प्रकार के पत्थर या चट्टान की मिसालें उम्मत के वली, बुज़ुर्ग और नेक बन्दे हैं, जिनसे मनुष्यों का एक बड़ा हिस्सा लाभ उठाता है।

२७८ (और इस प्रकार स्वयं अपने प्रभाव को सिद्ध करता रहता है) इस प्रकार के पत्थर की मिसाल आम मोमिन और सिद्ध पुरुष हैं कि अगर दूसरों का सुधार न कर सकें जब भी अपना ईमान तो सलामत ले ही जाते हैं और यह प्रमाण दे जाते हैं कि उन्होंने सत्य को स्वीकार किया। ऊपर से वर्णन केवल पत्थरों का ही हो रहा है। पत्थरों का जमा हुआ होना तो माना ही गया है और उनकी कठोरता भी देखने में आती ही है। फिर उनमें अल्लाह की मुहब्बत और उन पर अल्लाह के भय का प्रभाव कैसे होता है? सुन्नत माननेवालों का एक गरोह का कहना है कि अल्लाह के डर का ज़िक्र पत्थरों में अपने वास्तविक अर्थ और शाब्दिक अर्थ में आया है यानी बाज़ पत्थरों में नर्मी का अंश होता है और उनमें समझने और महसूस करने की क्षमता होती है, परन्तु उतनी ही जितने के वह पत्थर होने की हैसियत से हो सकते हैं। तूर पहाड़ पत्थर का ही था, लेकिन ईश्वरीय प्रकाश से तथा ख़ुदा के जलाल (तेज) से चूर-चूर

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ११२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुम्म क़सत् क़ुलूबुकुम् मिम्बऽदि ज़ालिक फ़ हिय कल्हि़जारति औ अशद्दु क़स्वतन् ط व अिन्न मिनल्हि़जारति लमा यतफ़ज्जरु मिन्हुल्अन्हारु ط व अिन्न मिन्हा लमा यश्शक़्क़क़ु फ़ यख़्रुजु मिन्हुल्मा॑अु ط व अिन्न मिन्हा लमा यह्बितु मिन् ख़श्यतिल्लाहि ط व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तऽमलून (७४) अफ़ततमअून अंय्युअ्मिनू लकुम् व क़द् कान फ़रीक़ुम् - मिन्हुम् यस्मअून कलामल्लाहि सुम्म युहर्रिफ़ूनहू मिम्बऽदि मा अक़लूहु व हुम् यऽलमून (७५) व अिज़ा लक़ुल्लज़ीन आमनू क़ालू॑ आमन्ना ج ص‍لے व अिज़ा ख़ला बऽज़ुहुम् अिला बऽज़िन् क़ालू॑ अतुहद्दिसून-हुम् बिमा फ़तहल्लाहु अ़लैकुम् लियुहा॑ज्जू कुम् बिही॑ अिन्द रब्बिकुम् ط अफ़ला तऽक़िलून (७६) अव ला यऽलमून अन्नल्लाह यऽलमु मा युसिर्रून व मा युऽलिनून (७७) व मिन्हुम् अुम्मिय्यून ला यऽलमूनल् - किताब अिल्ला॑ अमानिय्य व अिन् हुम् अिल्ला

नि. १/२ यज़ुन्नून (७८) ● फ़वैलुल् - लिल्लज़ीन यक्तुबूनल्किताब बिऐदीहिम् ق सुम्म यक़ूलून हाज़ा मिन् अ़िन्दिल्लाहि लियश्तरू बिही॑ समनन् क़लीलन् ط फ़ वैलुल्लहुम् मिम्मा कतबत् ऐदीहिम् व वैलुल्लहुम् मिम्मा यक्सिबून (७९) व क़ालू लन् तमस्सनन्नारु अिल्ला॑ अय्यामम् - मऽदूदतन् ط क़ुल् अत्तख़ज़्तुम् अ़िन्दल्लाहि अ़हदन् फ़ लंय्युख़्लिफ़ल्लाहु अ़हदहू॑ अम् तक़ूलून अ़लल्लाहि मा ला तऽलमून (८०) बला मन् कसब सय्यिअतंव्व अहा़तत् बिही॑ ख़ती॑अतुहू फ़ अुला॑अिक अस्हा़बुन्नारि ج हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (८१) वल्लज़ीन आमनू व अ़मिलुस्सालिहा़ति अुला॑अिक अस्हा़बुल्जन्नति ج हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (८२) ★ व अिज़् अख़ज़्ना

रु. ९/९ आ ११ मीसाक़ बनी॑ अिस्रा॑ईल ला तऽबुदून अिल्लल्लाह ق‍ف व बिल्वालिदैनि अिह्सानंव्व ज़िल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनि व क़ूलू लिन्नासि हु़स्नंव्व अक़ीमुस्सलात व आतुज़्ज़कात ط सुम्म तवल्लैतुम् अिल्ला क़लीलम्-मिन्कुम् व अन्तुम् मुऽरिज़ून (८३)

الٓمّٓ ۱ ۱۰ البقرة ۲

لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ الْاَنْهٰرُ ؕ وَاِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَّقَّقُ فَيَخْرُجُ مِنْهُ الْمَآءُ ؕ وَ
اِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝
اَفَتَطْمَعُوْنَ اَنْ يُّؤْمِنُوْا لَكُمْ وَقَدْ كَانَ فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ يَسْمَعُوْنَ كَلٰمَ
اللّٰهِ ثُمَّ يُحَرِّفُوْنَهٗ مِنْۢ بَعْدِ مَا عَقَلُوْهُ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ۝ وَاِذَا لَقُوا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا قَالُوْٓا اٰمَنَّا ۚۖ وَاِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ اِلٰى بَعْضٍ قَالُوْٓا اَتُحَدِّثُوْنَهُمْ بِمَا
فَتَحَ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ لِيُحَآجُّوْكُمْ بِهٖ عِنْدَ رَبِّكُمْ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۝ اَوَلَا يَعْلَمُوْنَ
اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّوْنَ وَمَا يُعْلِنُوْنَ ۝ وَمِنْهُمْ اُمِّيُّوْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ
الْكِتٰبَ اِلَّآ اَمَانِيَّ وَاِنْ هُمْ اِلَّا يَظُنُّوْنَ ۝ فَوَيْلٌ لِّلَّذِيْنَ يَكْتُبُوْنَ الْكِتٰبَ
بِاَيْدِيْهِمْ ۗ ثُمَّ يَقُوْلُوْنَ هٰذَا مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ لِيَشْتَرُوْا بِهٖ ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ
فَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا كَتَبَتْ اَيْدِيْهِمْ وَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا يَكْسِبُوْنَ ۝ وَقَالُوْا
لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا مَّعْدُوْدَةً ؕ قُلْ اَتَّخَذْتُمْ عِنْدَ اللّٰهِ عَهْدًا فَلَنْ
يُّخْلِفَ اللّٰهُ عَهْدَهٗٓ اَمْ تَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝ بَلٰى مَنْ كَسَبَ
سَيِّئَةً وَّاَحَاطَتْ بِهٖ خَطِيْٓـَٔتُهٗ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا
خٰلِدُوْنَ ۝ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ ۚ هُمْ
فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا
اللّٰهَ ۟ وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّذِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَقُوْلُوْا لِلنَّاسِ
حُسْنًا وَّاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَاَنْتُمْ

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पर भी तुम्हारे दिल और इसके बाद भी सख़्त ही रहे[२७४], चुनांचे वह पत्थर की भाँति हैं बल्कि सख़्ती में उनसे भी बढ़कर[२७५]। और पत्थर तो कोई ऐसा भी होता है कि उससे नदियाँ भी फूट निकलती हैं[२७६] और कोई उनमें ऐसा भी होता है कि फट जाता है और उसमें से पानी निकलता है[२७७] और कोई उनमें ऐसा भी होता है कि अल्लाह की हैबत (भय) से नीचे आ गिरता है[२७८]। और जो कुछ भी तुम करते हो अल्लाह उससे बेख़बर नहीं[२७९]। (७४) तो क्या तुम इसकी आशा रखते हो[२८०] कि वह लोग तुम्हारे कहने से ईमान ले आयेंगे[२८१] ? ऐसी दशा में कि उनमें ऐसे लोग भी हैं कि अल्लाह का कलाम सुनते हैं फिर उसे कुछ का कुछ कर देते हैं, बाद उसके कि उसे समझ चुके हैं, और वह उसे ख़ूब जानते भी हैं[२८२]। (७५) और जब वह उनसे मिलते हैं जो ईमान ला चुके हैं, तो कहते हैं कि हम भी ईमान ले आये हैं[२८३]; और जब आपस में तनहा होते हैं,[२८४] तो कहते हैं कि अरे ! क्या तुम उन्हें वह बता देते हो जो ख़ुदा ने तुम पर प्रकाशित कर दिया है,[२८५] जिससे वह तुम्हें तुम्हारे परवरदिगार के सामने क़ायल कर देंगे[२८६], सो क्या तुम नहीं समझते ? (७६) क्या यह (इतना भी) नहीं जानते कि अल्लाह को इसकी भी ख़बर है,[२८७] जिसको यह छिपाते हैं[२८८]। (७७) और उनमें अनपढ़[२८९] (भी) हैं, जो किताब (इलाही) का कोई इल्म नहीं रखते सिवाय झूठी आरज़ुओं के; और ये फ़क़त ख़यालात में ही पड़े रहते हैं। (७८) ● सो (बड़ी) ख़राबी है उन लोगों के लिए जो अल्लाह की किताब को अपने हाथ से लिखते हैं, फिर कह देते हैं कि यह ख़ुदा की ओर से है[२९०] ताकि उससे थोड़ बहुत पावना प्राप्त करें[२९१]; सो ख़राबी है उनके लिए इसके कारण जो वह अपने हाथों से लिखते हैं[२९२] और ख़राबी है उनके लिए उसकी बदौलत जो वह प्राप्त कर रहे हैं[२९३]। (७९) और वह कहते हैं कि हमको तो दोज़ख़ की आग छुएगी भी नहीं सेवाय कुछ गिने-चुने दिनों के[२९४]। आप कहिए कि तुम अल्लाह के यहाँ से कोई वादा पा चुके हो, जो अब अल्लाह अपने वादे के ख़िलाफ़ न करेगा ? या (यूँ ही) अल्लाह पर वह जोड़ रहे हो जिसका ज्ञान तुम नहीं रखते[२९५]। (८०) (नहीं) बल्कि अस्ल यह है कि जो कोई भी बदी अख़्तियार करेगा और उसका गुनाह उसको घेर लेगा, सो यही लोग तो दोज़ख़ वाले हैं[२९६] उसमें हमेशा पड़े रहनेवाले[२९७]। (८१) और जो लोग ईमान लायें और नेक अमल करें, तो यही लोग जन्नत वाले हैं। उसमें हमेशा रहनेवाले[२९८]। (८२) ★

● नि. १/२

★ रु. ९/९ आ ११

और (वह वक़्त याद करो) जब हमने बनी इसराईल से वादा लिया[२९९] कि इबादत न करना किसी की सेवाय अल्लाह के[३००] और अच्छे व्योहार से पेश आना (अपने) माँ-बाप से, रिश्तेदारों और यतीमों से और मोहताजों (से) भी[३०१] और लोगों से (आमतौर पर) भली बात कहना[३०२] और नमाज़ क़ायम रखना और ज़कात देते रहना[३०३]। फिर तुम सब इन हुक्मों से फिर गये सेवाय तुममें से कुछ थोड़े लोगों के और तुम ही सरकश (आज्ञा न माननेवाले) हो[३०४]। (८३)

---

२७४ यानी स्वीकार करने की ओर ज़रा भी तैयार न हुए। **'सुम्म'** जो नतीजा न निकलना चाहिए था, वह निकला।

२७५ (सच्चाई को स्वीकार करने के विषय में) इसराईली पुस्तकों में यह मज़मून बार-बार आया है जैसे— "उन्होंने सीख न स्वीकार की। उन्होंने अपने चेहरे को चट्टान से भी सख़्त बनाया। उन्होंने फिरने से इन्कार किया।" (बरमियाह—३ : ५)। "सारे इसराईली बेशर्मी की पेशानी (माथा) रखते और संगदिल (कठोर) हैं।" (हिज़क़ील—७ : १३)। "औ" यहाँ सन्देह के अर्थ में नहीं आया है —इस पर सभी आलिम सहमत हैं।

२७६ (और उनसे एक आलम की प्यास बुझती है) इस क़िस्म के पत्थर या चट्टान की मिसाल इन्सानी आबादी में नबी और रसूल हैं कि उनकी दुआओं और उनके प्रताप से एक आलम अपनी मानसिक तृष्णा को बुझाता है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १०६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १०६ से)

हो गया। लेकिन अहल-सुन्नत का ही एक दूसरा गिरोह यह कहता है कि अल्लाह से डर का अर्थ यहाँ मजाज़ी है यानी प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत— उसका सम्बन्ध समझ, बुद्धि, इरादे और अच्छे-बुरे की परख करने से नहीं है, फिर भी हक़ यह है कि प्राकृतिक एवं विवशता के रूप में सृष्टि का कण-कण ईश्वरीय नियमों के अन्तर्गत ही है। इसी को यहाँ ख़िशीयत-इलाही यानी ख़ुदा की मुहब्बत में लीन होना बताया गया है। जैसे कि स्वयं क़ुर्आनी मुहावरे में एक दूसरी जगह इरादे को बेजान तथा बेरूह दीवार की ओर सम्बद्ध किया गया है, हालाँकि सब जानते हैं कि दीवार में कोई शक्ति न इरादे की होती है और न इच्छा की ही। दोनों गरोह हक़ वालों के ही हैं और दोनों ने अपने-अपने स्थानों पर जो अर्थ लगाये हैं, ठीक हैं।

२७६ अल्लाह न अनभिज्ञ है, न बेख़बर, न बिना शक्ति का है, न ही बेइख़्तियार है। और उसके ज्ञान एवं शक्ति का हाल शीघ्र ही स्पष्ट एवं देखने में आकर रहेगा। यहाँ पर सम्बोधन इसराईलियों से नहीं।

२८० [ऐ मुसलमानो ! इसराईलियों की इन सारी बदचलनियों की रूदाद (हाल) सुनने के बाद भी] यहाँ इस आयत में इसराईलियों से नहीं, मुसलमानों से सम्बोधन है। हसन बसरी ताबेई का कहना है कि इसका सम्बोधन रसूल और मोमिन हैं। (कबीर)। बल्कि विशेष रूप से यहाँ सम्बोधन अन्सार से है, जो हमवतनी और हमअहदी (साथ-साथ वह एक ही वादा किये हुये थे) के कारण यहूद के ईमान ले आने के लिए विशेष रूप से इच्छुक थे। **'अफ़ततमअ़न'** यानी भला ऐसा भी कहीं हो सकता है ? **'ततमअ़न'** लालच के आम मानी में आता है। दूसरा अर्थ उम्मीद और आशा रखना भी है और यहाँ वही अर्थ है। शाह वली उल्लाह देहलवी ने फ़ारसी में अनुवाद "उम्मीद" से और मौलाना थानवी ने उर्दू में "तवक़्क़ो" से किया है— आशा के मानी दोनों के हैं।

२८१ वह लोग यानी रसूल सल्लअम के समय के यहूद, जिनके हृदय की कठोरता की इतनी ब्योरेवार और लगातार कहानी बयान हो चुकी है। **'लकुम्'** यानी तुम्हारे कहने से, तुम्हारे निमन्त्रण पर और तुम्हारी ख़ातिर से।

२८२ कि कैसी बड़ी हिम्मत और कितना कड़ा साहस कर रहे हैं। **'व क़द् कान फ़रीक़ुम्-मिनहुम्'** **'कान'** के दो अर्थ हो सकते हैं, और शब्दकोष एवं व्याकरण दोनों इसकी आज्ञा देते हैं। एक यह कि एक ऐसा भागीदार था इसराईलियों के बीच में— गोया ज़िक्र भूतकाल का, और यहूद जो उस समय के थे उनके पूर्वजों का हो रहा है। दूसरे यह कि एक ऐसा भागीदार रहा है उनके बीच— गोया ज़िक्र वर्तमानकाल का, और उस समय के यहूद का हो रहा है। तफ़्सीर के इमामों से दोनों प्रकार के क़ौल बयान हुए हैं, परन्तु यहाँ परिपेक्ष दूसरे अर्थ के ज़्यादा मुवाफ़िक़ (अनुसार-सहमति में) है, क्योंकि जो तर्क होता है वह उस समय वालों से ही सम्भव है और उन्हीं पर इल्ज़ाम लागू करना ज़्यादा उचित होगा। **'फ़रीक़ुम्-मिनहुम्'** शब्द 'फ़रीक़' पर हाशिया ऊपर हो चुका है। **'कलामल्लाहि'** यानी यहूद की आसमानी पुस्तकें और ग्रन्थ। यहूद ने अपने ग्रन्थों में परिवर्तनों को स्वयं स्वीकार किया है। बरमियाह नबी अपनी क़ौम को सम्बोधित करके कहते हैं— "तुमने ज़िन्दा ख़ुदा 'रब्बुलअफ़वाज', हमारे ख़ुदा की बातों को बिगाड़ डाला है।" (बरमियाह— २३, ३७)। क़ुर्आन मजीद की एजाज़ी (ईश्वरीय शक्ति से कोई अनोखी घटना का होना) सफलताओं में से एक सच्चाई यह भी है कि अब स्वयं यहूद भी अपने आसमानी ग्रन्थों के शब्दों का ज्यों का त्यों अवतरित होना नहीं मानते और उनके आलिम और बड़े साफ़-साफ़ स्वीकार करते हैं कि हमारे नबियों पर केवल अर्थ और विषय ही अवतरित होते थे और वह अपनी सूझ-बूझ के प्रकाश में इन बातों को शब्दों का लिबास और वाणी प्रदान करते थे। **'मिम्बअ़दि मा अक़लूहु'** यानी अनजाने में नहीं, जान-बूझकर और समझ लेने के बाद। आयत से विरोधी आलिमों के भटकने और रास्ता भूलने की बात और स्पष्ट हो जाती है।

२८३ अब उन यहूद का वर्णन आरम्भ हो रहा है, जो ऊपरी दिल से मुसलमान थे, परन्तु भीतरी तौर पर ईमान नहीं लाये थे। यहूद की भारी संख्या मदीने में स्पष्ट रूप से इस्लाम की दुश्मन थी, लेकिन उनके अलावा कुछ इस प्रकार के भी थे कि मुसलमानों के सामने अपने को मुसलमान ज़ाहिर करते थे। यह उन्हीं का ज़िक्र हो रहा है।

२८४ यानी यह देख लेते हैं कि आसपास कोई मुसलमान तो नहीं सुन रहा है।

२८५ यानी वह रहस्य और भेद की बातें, जो तुम्हारी पवित्र पुस्तकों में और आसमानी ग्रन्थों में सुरक्षित हैं, जैसे कि आख़िरी नबी के विषय में भविष्यवाणी और निशानियाँ। यहूद जब आपस में मिलते तो एक दूसरे को क़ायल करते थे कि तुम अपने यहाँ की भविष्यवाणी के विषय में और विशेष शिक्षाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को मुसलमानों पर क्यों ज़ाहिर करते हो और इस प्रकार अपने खिलाफ़ उनके हाथ में हथियार देते हो। उन्हीं जानकारियों से वह हमको क़ायल करते हैं। यही तर्क वह तुम्हारे विरुद्ध प्रयोग में लायेंगे, गोया यह ऐसे कुबुद्धि वाले थे कि यह समझते थे कि रसूल-इस्लाम और इस्लाम के माननेवालों को जो भी इल्म होगा, केवल उनके ही बताने से होगा और उनके अलावा उनके ज्ञान का दरवाज़ा बन्द है। यह वही नादानी है, जो आज अंग्रेज़ों में फैली हुई है। यह जब क़ुर्आन मजीद पर टिप्पणी करने बैठते हैं, तो यह पूर्व ही से मान लेते हैं कि इसमें जो भी वर्णन है, वह यहूद की तौरेत और मसीहियों की इंजील से ही लिया गया है, और यह तो सम्भव है ही नहीं कि इसमें कोई ग़ैबी सहायता या 'वही' और 'इल्हाम' भी सम्मिलित है। शब्द 'अल्लाह' अब तो एक इस्लामी चिह्न है, लेकिन पहले भी इसका प्रयोग केवल अरब वालों की ज़बान में होता था। यहाँ ऐसे लोगों की ज़बान से नक़्ल हुआ है, जो न मुस्लिम थे, न अरब। इसलिए उसी को ज्यों का त्यों लिखने के स्थान पर उसका अनुवाद यहाँ 'ख़ुदा' अंकित किया गया। यह बात भी नक़्ल हुई है कि कुछ यहूद मुसलमान हो गये थे। एक दिन वह अपने पूर्वजों पर अज़ाब होने की कहानी मुसलमानों से बयान कर रहे थे, इस पर बाक़ी यहूद ने उन्हें टोका कि यह क्या ग़ज़ब की बातें मुसलमानों को सुना रहे हो। उन्हें यह सब जानकारी हो जायेगी, तो वह हमारे ऊपर और प्रहार करेंगे। (क़रतबी)।

२८६ **'अ़िन्द रब्बिकुम्'** का एक अर्थ तो यह है कि यह लोग क़यामत के दिन और आखिरत में तुम्हें क़ायल करेंगे, चुनांचे एक गरोह ने यही अर्थ लिया है। लेकिन ज़्यादा लगते हुए मानी यह हैं कि इसी दुनिया में तुमको क़ायल कर देंगे, इसलिए कि अव्वल तो यहूद आखिरत के पूरी तरह क़ायल नहीं थे, दूसरे वहाँ तर्क-वितर्क की स्थापना के लिए किसी ऐसे ज़ाहिरी सहारे की आवश्यकता भी न थी। वहाँ तो सत्य अपने आप ही ज़ाहिर होकर रहेगा।

२८७ (जो मुसलमानों को अपने भेदों से अपनी ज़बान से परिचित किये देते और उनके हाथों में अपने खिलाफ़ हथियार दिये देते हो। अब यहाँ पर यहूद के बड़ों का भाषण अपने क़ौम वालों से समाप्त हुआ।

२८८ (और वही अल्लाह जब चाहे रसूल और मोमिनों को सूचना दे सकता है।) मोटी सी बात है कि अल्लाह के लिए ऐसी बातों की सूचना अपने नबी को दे देना कठिन ही क्या था, लेकिन यहूद इस सम्भावना की ओर अपना ज़ेहन नहीं ले जाते थे कि शायद नबी होने के इस दावेदार का ख़ुदा के साथ कोई सम्बन्ध वास्तव में हो। ठीक उसी प्रकार जैसे आज के फ़िरंगी इस सम्भावना की ओर अपना दिमाग़ नहीं ले जाते कि कहीं क़ुर्आन मनुष्य की रचना होने के बजाय ख़ुदा की ही किताब न हो।

२८९ ("कि हमारे बुज़ुर्ग हमें बख़्शवा लेंगे"। "हम ख़ुदा के ख़ास महबूबों की सन्तान हैं। हमें क्या ग़म"।) इत्यादि संकेत इसी प्रकार के ग़लत अक़ीदों की ओर महसूस होता है। यह ज़िक्र यहूद के साधारण जनों का है। यह न पढ़े, न लिखे, बाप-दादा की लकीर के फ़क़ीर। अपने दिल की गढ़ी हुई आशाओं और मन को प्रसन्न करनेवाली कहावतों में मस्त रहते थे। इंजील में कहीं तो मसीह की ज़बान से और कहीं उससे बढ़कर पोलुस की ज़बान से यहूद की इन्हीं झूठी बातों की पूजा की और इन्हीं बेअक़्ली की बातों का बार-बार वर्णन हुआ है। **'अमानिय्य', 'उम्नियतुन्'** का बहुवचन है। मानी यह हैं कि यह केवल आरज़ूओं को पालते रहते हैं, जिन्हें वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरा यह भी एक अर्थ है कि यह झूठी बातों, बेसुबूत तथा अप्रमाणित ख़ुराफ़ात में पड़े रहते थे और यही अर्थ बड़ों ने लगाया है।

२९० पिछली आयत में साधारण यहूद का ज़िक्र था, अब यहूदियों के बड़ों और मुख्य व्यक्तियों का ज़िक्र हो रहा है। तौरेत में हेराफेरी हुई है, यह अब किसी विवाद का प्रश्न नहीं है। मित्र एवं शत्रु, सभी यह बात स्वीकार कर चुके हैं कि यह अल्लाह का कलाम नहीं रह गया है। और जो दोस्त हैं, वह यह कहने लगे हैं कि यह ख़ुदा को पहुँचे हुए बुज़ुर्गों ने लिख दिया है। अब पक्के से पक्के यहूदी में भी यह साहस नहीं है कि तौरेत को क़ुर्आन की भाँति शब्द आसमानी अवतरण कहे। अब अधिक से अधिक जो कहा जाता है वह यह है कि ख़ुदा के ख़ास बन्दों ने 'इल्हामें' ख़ुदावन्दी (ख़ुदा की ओर से हृदय पर धार्मिक उपदेशों का अवतरण) से लाभान्वित होकर उसे निजी रूप से अपने शब्दों में सुव्यवस्थित एवं लिखित रूप प्रदान किया और ख़ुदा से इसका सम्बद्ध होना केवल एक माध्यम मात्र है, प्रत्यक्ष या सीधे के अर्थ में नहीं है। फिर जो समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं, वह किसी मस्लहत या आवश्यकतानुसार होते रहे हैं, परन्तु यह बात सभी को मान्य है कि अस्ल इबारत में अदला-बदली होती रही है। बाइबिल की उच्च टिप्पणी (Higher Criticism) एक स्थायी आर्ट का रूप धारण कर चुकी है। जर्मन, फ़्रेंच और अंग्रेजी इत्यादि में छोटी-बड़ी सैकड़ों पुस्तकें और लेख इस विषय पर तैयार हो चुके हैं। अनगिनत मज़मून लिखे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा चुके हैं। आर्ट भी कई शाखाओं में विभाजित हो चुका है। मतन की टिप्पणी (Textual Criticism) ऐतिहासिक टिप्पणी (Historical Criticism) इत्यादि और हर शाखा के अलग-अलग विशेषज्ञ पैदा हो रहे हैं— काश सय्यद अहमद ख़ाँ मरहूम (अल्लाह उनकी त्रुटियों को माफ़ फ़र्मायें) आज ज़िन्दा होते और अपनी आँखों से देखते कि यहूद एवं नसारा की तरफ़ से जिस इल्ज़ाम की सफ़ाई अनायास उन्होंने अपने सर ले रखी थी, उस अपराध को अब वही लोग कितनी बड़ी संख्या में स्वीकार कर रहे हैं। योरोप अब जाकर चौंका है और यह कला अभी पिछली शताब्दी अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी से पैदा हुआ है। अरब के उम्मी (बिना पढ़े-लिखे) नबी के लाये हुए कलाम का यह एजाज़ है कि उसने किताबवालों की किताब (जो बाइबिल का शाब्दिक अनुवाद है) को तेरह सदी पूर्व ही अदला-बदली वाली एवं अविश्वसनीय घोषित कर दिया था। **'बिऐदीहिम्'** ज़ोर और बल देने के लिए उसे बढ़ाया गया है इसलिए कि लिखाई हाथों से तो हर दशा में होती ही है, जैसा कि उर्दू में भी मुहावरे में ज़ोर और ताकीद के अवसर पर बोलते हैं, "मैंने अपनी आँखों से देखा है", "अपने कानों से सुना है", यद्यपि देखना और सुनना तो हमेशा अपनी आँखों और कानों से होता है। ख़ुद क़ुर्आन मजीद में भी इसके उदाहरण मौजूद हैं। 'अल्लाह' का शब्द यहूद की ओर से कहा गया है इसलिए अनुवाद 'ख़ुदा' किया गया है।

२६१ इमाम राज़ी ने लिखा है कि आयत के अन्दर दो सच्चाइयों की ओर संकेत है। एक यहूद की अत्यन्त कठोरता की ओर कि अल्लाह के कलाम में भी हेराफेरी से न चूके, दूसरे इस बात की ओर कि इस अदला-बदली का उद्देश्य भी कोई दीनी सेवा नहीं था, केवल धन और दौलत के लिए ऐसा किया। **'समनन्'** 'समन' के मानी केवल नक़द या मूल्य धन नहीं, बल्कि जो चीज़ भी किसी चीज़ के बदले में प्राप्त हो, वह उसकी 'समन' है। तफ़्सीर करनेवालों ने भी यही विशाल अर्थ लगाया है यानी केवल दुनियावी लाभ। **'क़लीलन्'** अल्लाह के कलाम में हेराफेरी करने से जो भी लाभ होगा, स्पष्ट है कि वह तुच्छ और न्यून ही होगा। बाज़ ज़ाहिरी चीज़ों को देखनेवाले लोगों ने केवल शब्दों को सामने रखकर यह फ़तवा दे दिया है कि क़ुर्आन मजीद का क्रय-विक्रय दोनों नाजायज़ हैं, परन्तु सही बात यह है कि दोनों जायज़ हैं। क्रय-विक्रय यहाँ जो भी होता है, वह काग़ज़ और लिखाई आदि का होता है, न कि अल्लाह की आयतों का। आयत से अगर कोई जवाबदेही लाज़िम आती है, तो वह झूठे मसअले बतानेवालों और मौज़ूए हदीसें बयान करनेवालों के हक़ में है।

२६२ क़ुर्आनी और इस्लामी सच्चाई और ईमानदारी के स्तर से ख़ुदा के कलाम में कोई भी शब्दों या इबारतों का परिवर्तन सख़्त धिक्कार का विषय है। और यह हद से बढ़ा हुआ साहस है। इसी कारण यह बात मुसलमानों की समझ में नहीं आती है कि कोई व्यक्ति इतना साहस कैसे कर सकता है कि अल्लाह के कलाम को अल्लाह की ओर से स्वीकार करके उसमें परिवर्तन करेगा, परन्तु दूसरी क़ौमें इस मेयार को जानती ही नहीं हैं, बल्कि बाज़ किताबवालों के यहाँ भलाई के लिए हर बुराई उचित और "ख़ुदा की सच्चाई" और "ख़ुदावन्द के तेज" के लिए हर झूठ जायज़ है। आज दुनिया में मसीहीयत के नाम से तीन ख़ुदाओं का जो शिर्क फैला हुआ है, उस मज़हब के बानी पोलूस (Paul) इसराईली हुए हैं। उनका यह क़ौल आज भी इंजील में अंकित है— "अगर मेरे झूठ के कारण ख़ुदा की सच्चाई उसके तेज के वास्ते अधिक प्रतीत हुई, तो फिर क्यों गुनहगार की तरह मुझ पर हुक्म दिया जाता है? और हम क्यों न बुराई करें ताकि भलाई पैदा हो।" (रोमियों— ३ : ७)।

२६३ (अपनी हेराफेरी के साहसों से) **'मिम्मा यक्सिबून'** से क्या मतलब है? यानी वह क्या वस्तु है, जो अपनी हरकतों से प्राप्त करते रहते हैं? इसके दो जवाब दिये गये हैं और दोनों अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। एक यह कि उनके गुनाहों का ढेर मुराद है, यानी वह लोग अपनी हरकतों से अपने गुनाहों का ढेर बढ़ाते चले जाते हैं। दूसरे यह कि जो माली लाभ वह अपनी इच्छानुसार अदला-बदली और (अपने कहे के अनुसार) मस्लहत के झूठ से प्राप्त करते हैं, वही यहाँ समझा जाये। **'फ़वैलुल्'** यहाँ इस शब्द को दोहराने से अदला-बदली के गुनाह की अहमियत पर बल देना है।

२६४ और यह चन्द दिन वही हैं (जैसा कि पादरी राडवेल ने अपने अंग्रेज़ी अनुवाद में क़ुर्आन मजीद के हाशिये में यहूद के बड़ों के हवाले से लिखा है), जिनमें इसराईली क़ौम गोसाला-परस्ती (गो-पूजा) में लीन रही थी, यानी लगभग चालीस दिन। यही बात हमारे तफ़्सीर के इमामों ने भी लिखी है। एक और मसीही अनुवादक ने यह समय ग्यारह महीने या एक वर्ष बताया है। इसी प्रकार एक समय सात दिन का भी नक़्ल हुआ है। हर दशा में वह कोई सीमित और निश्चित एवं संक्षिप्त समय ही रहा होगा। बाज़ यहूदी लेखों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि गोया इसराईली अपने को दोज़ख़ की आग से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिल्कुल ही सुरक्षित और बाहर समझ रहे थे। 'जिविश इन्साइक्लोपीडिया' में यह अक़ीदा यूँ लिखा है— ''दोज़ख की आग यहूद के गुनहगारों को छुयेगी भी नहीं, इसलिए कि वह जहन्नम पर पहुँचते ही अपने गुनाहों को स्वीकार कर लेंगे और ख़ुदा के पास वापस आ जायेंगे।'' (जिल्द ५, सफ़ा ५८३)। और यहूद के बड़े पवित्र ग्रन्थ 'तालमूद' के कुछ चयन किये हुए विषय, जिसको अंग्रेज़ी में डॉ० कोहेन (Kohen) ने Everyman's Library Series में प्रकाशित किया है, उसमें यूँ आया है— ''क़यामत के दिन हज़रत इब्राहीम दोज़ख के दरवाज़े पर विराज रहे होंगे और किसी गुनहगार इसराईली को उसमें गिरने न देंगे।'' सफ़ा ४०४। ''जहन्नम की आग इसराईली गुनहगारों पर कोई शक्ति नहीं रखती।'' सफ़ा ४०५। सारांश यह है कि बनी इसराईल अपनी क़ौम को ख़ुदा की लाडिली और दुलारी समझे हुए थे और इस पर उनको हद से ज़्यादा गर्व था।

२६५ यहूद से हुज्जत के रूप में इल्ज़ामी प्रश्न हो रहा है कि यह जो तुमने अपनी क़ौम की महबूबियत-खास का और आखिरत के अज़ाब से सुरक्षित होने का अक़ीदा क़ायम कर रखा है, तो आखिर यह यूँ ही अपने दिल से गढ़ लिया है या इसका कोई प्रमाण भी है, जो तुम अपनी पवित्र किताबों में दिखा सकते हो? आखिर यह विश्वास तुमने कहाँ से क़ायम कर लिया है? **'तक़ूलून अलल्लाहि'** किसी पर कोई बात जोड़ ली। किसी पर आरोपण कर दिया।

२६६ नजात या मुक्ति और मुक्ति न होने का नियम अब वर्णन हो रहा है कि उसे नस्ल और क़ौम से कोई वास्ता नहीं। **'बला'** ऐसे इक़रार के अवसर पर आता है, जहाँ कोई इन्कार पहले से न हुआ हो। **'अहातत् बिही ख़ती'अतुहू'** इरादा करके बदी का रास्ता अख्तियार करना और गुनाहों से पूरी तरह घिर जाना कि ईमान के लिए गुंजाइश ही बाक़ी न रहे। यह केवल उन्हीं लोगों के लिए सम्भव है, जो सिरे से झूठे हों और उनकी मृत्यु कुफ़्र और बेदीनी ही पर हो जाये। मोमिन कैसा ही बदअमल हो, इस आयत की हद में न आयेगा। कम से कम ज़बान से इक़रार और हृदय से तस्दीक़ की श्रेणी तो उसे प्राप्त होगी ही। सभी सुन्नत के माननेवाले बड़ों ने यहाँ कुफ़्र का अर्थ यही लगाया है। बाज़ झूठे लोगों ने, जो बेदीन हैं, और जिन्होंने इस आयत का अर्थ यह निकाला है कि गुनहगार मोमिनों की भी नजात न होगी, वह क़तई ग़लत है। **'सय्यिअ'** के मानी शिर्क के हैं।

२६७ 'खुलूद' के मानी हैं लम्बी मुद्दत, परन्तु जन्नत और दोज़ख वालों के लिए जहाँ-जहाँ इस शब्द का प्रयोग क़ुर्आन मजीद में हुआ है, उसके विषय में अहल-सुन्नत की आम सहमति है कि इसका अर्थ है हमेशा के लिए और इसकी ताईद 'अब्द' कहकर हुई है यानी हमेशा के लिए।

२६८ दोनों आयतों में नजात का पूरा क़ानून संक्षेप में आ गया कि उसका सम्बन्ध किसी नस्ल या क़ौम से नहीं है। जो कोई अपने इरादे और अख्तियार से बदअक़ीदा और बदचलन बनेगा उसका ठिकाना जहन्नम है, और जो कोई अपने इरादे से और अपने अक़ीदे से ईमान और अच्छे अमल का रास्ता चुनेगा, उसका ठिकाना जन्नत में होगा। **'उला'इक'** **'फ़उला'इक'** ऊपर की आयत के शब्द थे **'फ़ उला'इक अस्हाबुन्नारि'** और इस आयत में है **'उला'इक अस्हाबुल्जन्नः'** गोया एक ही प्रकार का हुक्म लगाने में एक जगह 'फ़े' के साथ है और एक जगह बग़ैर 'फ़े' के। यह अन्तर यद्यपि हल्का और शाब्दिक ही नहीं केवल आक्षरिक है, लेकिन इतना अन्तर भी आखिर क्यों? जवाब में शोधकर्ताओं ने कहा है कि पहला अवसर सज़ा का है जहन्नम वालों के लिए और सज़ा में इस बात की सम्भावना है कि सज़ा न दी जाये, इसलिए उस पर ज़ोर दिया गया है, और दूसरे अवसर पर केवल वादा था जन्नत वालों के लिए, जिसके विरुद्ध होने की कोई सम्भावना ही नहीं है। और **'उला'इक'** बिना 'फ़े' के काफ़ी हो गया। इसी नमूने पर क़ुर्आनी फ़िक़रे में नेक लोगों को जन्नत मिलना आवश्यक है। (रूह)। **'अल्लज़ीन आमनू व अमिलुस्सालिहाति'** का जो क्रम यहाँ है, क़ुर्आन ने हर जगह उसका लिहाज़ रखा है। और इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि नेक अमल अपने स्थान पर अत्यन्त अहम और आवश्यक है, परन्तु ईमान उससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण है और बिना ईमान के केवल अमल-नेक का कोई अर्थ नहीं। ईमान की हक़ीक़त नीयत अमल के लिए जो की जाती है और सही सोच-विचार है और क़ुर्आन मजीद ने बिलकुल क्रम के अनुसार सही सोच-विचार को सही अमल पर प्राथमिकता दी है। केवल अमल, यदि नीयत पर ध्यान न दिया जाये तो केवल अमल की शक्ल बनकर रह जाता है, अमल की हक़ीक़त नहीं।

२६९ (उनके नबियों के माध्यम से) **'अह्द'** जब इसका सम्बन्ध अल्लाह तआला से होता है, तौरेत के मुहावरे में आदेश के माने में आता है जैसे— ''और उसने अपना अहद तुम्हारे आगे बयान किया,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिस पर अमल करने का हुक्म भी उसने तुम्हें दिया यानी दस आदेश।" (इस्तिस्ना—१३ : १४)। बाज़ क़ुर्आन की शरह (अर्थ) लिखनेवालों ने भी यहाँ 'अ़हद लेने' को 'अ़हद देने' के अर्थ में लिया है।

३०० तौरेत तौहीद के सुबूतों और शिर्क को मना करने के आदेशों से भरी पड़ी है, केवल दो-एक स्थान नमूने के रूप में अवलोकित करें। "मेरे हुज़ूर तेरे लिए दूसरा ख़ुदा न होवे। तू अपने लिए तराशी हुई मूर्ति या किसी चीज़ की सूरत, जो ऊपर आसमान पर या नीचे ज़मीन पर या पानी पर ज़मीन के नीचे है, मत बना। तू इनके आगे स्वयं को मत झुका और न उनकी इबादत कर।" (ख़ुरूज—२० : २, ५)। "मेरे आगे तेरा कोई दूसरा ख़ुदा न होवे। तू अपने लिए तराशी हुई मूर्ति या किसी चीज़ की सूरत, जो ऊपर आसमान पर या नीचे ज़मीन पर या ज़मीन के नीचे पानी में है, मत बना। तू उन्हें सज्दा न कर, न उनकी बन्दगी कर।" (इस्तिस्ना—५ : ७-८)। "सुन ले ऐ इसराईल! ख़ुदावन्द हमारा ख़ुदा अकेला ख़ुदावन्द है।" (इस्तिस्ना—६ : ४)। "तुम और माबूदों की क़ौमों के माबूदों में से जो तुम्हारे आसपास हैं, पैरवी न करो, क्योंकि ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा, जो तुम्हारे मध्य में है, ग़ैरत रखनेवाला ख़ुदा है, न हो कि ख़ुदावन्द तेरे ख़ुदा के ग़ुस्से की आग तुझ पर भड़के और तुम्हें ज़मीन के चेहरे से मिटा दे।" (इस्तिस्ना—६ : १४, १५)। **'तअ्बुदून'** हुक्म के रूप में आया है यानी इससे यह निकलता है कि आदेश का पालन हो चुका।

३०१ इसी से मिलते-जुलते आदेश मौजूदा तौरेत में अब भी पाये जाते हैं— "तू अपने माँ-बाप को सम्मान दे।" (ख़ुरूज—२० : १२)। अपने बाप और अपनी माँ को इज़्ज़त दे।" (इस्तिस्ना—५ : १६)। और अपने ग़रीब भाई की तरफ़ से अपने हाथ बन्द मत कीजियो, बल्कि तू उस पर अपना हाथ खुला हुआ रखियो, और उसकी आवश्यकतानुसार किसी कार्य में जो वह चाहे उसको क़र्ज़ दीजियो, जैसा ख़ुदावन्द, तेरे ख़ुदा ने फ़र्माया है।" (इस्तिस्ना—१४ : २९)। "ग़रीब लोग ज़मीन पर से कभी जाते न रहेंगे इसलिए यह कहके मैं तुझे हुक्म करता हूँ कि तू अपने भाई के वास्ते और अपने ग़रीब के लिए और अपने मुहताज के वास्ते जो तेरी ज़मीन पर है अपना हाथ खुला रखियो।" (इस्तिस्ना—१५ : ११)। "और मुसाफ़िर और यतीम और बेवा, जो तेरे फाटकों के अन्दर हैं, आवें और खावें और उनका पेट भरे।" (इस्तिस्ना—१५ : ८, ९)।

३०२ बातचीत में अच्छी तरह पेश आना सबसे आसान और सबसे साधारण मानवता का कर्तव्य है। इसलिए यह आम आदेश है, यानी अच्छे व्योहार से सबके साथ पेश आना चाहिए, चाहे वह नेक व बद, गुनहगार या नेक, कैसा ही इन्सान हो। बस इतनी एहतियात रखी जाये कि इस अच्छे व्योहार से कहीं जो आदमी सम्बोधन पा रहा है, उसकी बिदअ़त या बद-मज़हबी की ताईद और समर्थन न होता हो। कुछ लोगों ने कहा है कि इस हुक्म की तामील 'आयात-क़िताल' से मन्सूख़ हो गई परन्तु हज़रत अबू जाफ़र बाक़र से मरवी है (उन्होंने कहा है) कि यह अब भी एक आम हुक्म है और इससे विशेषता और सीमित किये जाने के लिए कोई दलील नहीं है। यही मज़हब शक्तिशाली है। मौजूदा तौरेत में अब अच्छे व्योहार के जो भी हुक्म मिलते हैं, उनका घेरा सीमित है बनी इसराईल के साथ। इसलिए या तो उस हुक्म को तौरेतवालों ने बदल डाला और या हुक्म है ही ख़ास शरीअत-मुहम्मदी का हुक्म, जैसा कि अनेकों तफ़्सीर करनेवालों का विचार है। **'व बिल्वालिदैनि अिह्सानन्'** माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक यह है कि उनके साथ सुन्दर रहन-सहन का तरीक़ा अपनाया जाये। उनको सम्मान दिया जाये। उनके आदेशों को माना जाये और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके लिए ख़ैर की दुआ की जाये और उनके दोस्तों से अच्छा व्योहार रखा जाये। तौहीद (अल्लाह को एक मानना) के आदेश के तुरन्त बाद बन्दों के साथ इन अच्छे व्योहारों और ठीक प्रकार से रहन-सहन के आदेशों का ले आना इस बात की दलील है, इस्लाम के ख़ुदा के यहाँ बन्दों के अधिकारों का कितना महत्व है।

३०३ सलात, इक़ामति सलात, ज़कात —यह सब अब विशेष इस्लामी तकनीकी शब्द हैं। यह न समझना चाहिए कि इसराईलियों को यह आदेश उन्हीं विशेषताओं और उन्हीं निश्चित प्रतिबन्धों के साथ मिले थे। वह थे उन्हीं इबादतों से सम्बद्ध, लेकिन उनकी विशेष बोली में और उनके हालात तथा वातावरण के अनुसार। ख़ुदा की राह में ख़र्च करने, दुआ करने और इबादत करने की ताकीद अब भी तौरेत में विभिन्न विषयों के अन्तर्गत मौजूद है।

३०४ अब सम्बोधन क़ुर्आन के समय के यहूद से है कि अब तुम सारे क़ौल और वादों से फिर गये और तुममें से केवल इने-गिने लोग ही सच्चे दीन पर स्थिर रह गये। (अब्दुल्लाह बिन सलाम आदि)। **'व अन्तुम् मुअ्रिज़ून'** चन्द शहादतें इसी विषय की स्वयं तौरेत से अवलोकित करें। "वह उस राह से, जो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मैंने उन्हें फ़र्माई, जल्द फिर गये।" (ख़ुरूज—८ : ३२)। "मैं उस क़ौम को देखता हूँ कि एक सरकश क़ौम है।" (ख़ुरूज—९ : ३२)। "इसलिए कि तुम सरकश लोग हो।" (ख़ुरूज—३ : ३३)। "बनी इसराईल को कह दो कि तुम सरकश लोग हो।" (ख़ुरूज—५ : ३३)। यह चन्द हवाले केवल नमूने के रूप में दिये गये हैं वरना तौरेत का यह एक विशेष विषय ही है। **'तवल्लैतुम् मुऽरिज़ून'** तवल्ला और एराज़ के बीच अन्तर यह किया गया है कि तवल्ला जिस्मानी और एराज़ मानसिक या रूहानी होता है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ११६ से)

भी दो बड़े क़बीले बनी नुज़ैर, बनी क़ुरैज़ा यही किया करते कि उनमें से एक मुशरिकों के एक जत्थे के साथ हो जाता, और दूसरा मुशरिकों की दूसरी पार्टी के साथ, और फिर जंग जब शुरू हो जाती तो वह सब कुछ होता जो जंग में हुआ करता है। देश निकाला, इसराईली की हत्या इसराईली के हाथ से इत्यादि। यह नबवी ज़माने के इसराईलियों की यही विशेषताएँ बेपरदा की जा रही हैं। **'बिल्-अिस्मिवल्-अुद्वानि'** यह टुकड़ा बढ़ाकर क़ुर्आन ने बता दिया कि फिर यह नहीं कि इस गृह-युद्ध और मुशरिकों पर कृपा का कारण कोई अच्छी भावना और सही तथा अच्छी नीयत से की जा रही हो, बल्कि जिन नैतिक गन्दगियों में दुनिया के राजनीतिज्ञ व्यस्त रहा करते हैं और मुशरिक विशेष रूप से उसमें लीन थे, वही इन जंगों के कारण थे। 'जिविश इन्साइक्लोपीडिया' में लिखा है कि जंग बेआस मुशरिकों की आपसी लड़ाई थी। यहूद उसमें भागियों की ओर से सम्मिलित हो गये और खुलकर भाग लिया। बनी नुज़ैर और बनी क़ुरैज़ा ने औस का साथ दिया और बनी क़नीक़ा ख़ज़रज की तरफ़दारी में निकल पड़े। जंग काफ़ी लम्बी हो गई और बड़े घमसान का रन पड़ा। अन्त में ख़ज़रज के भागियों की हार हुई। (जिल्द ८, सफ़ा ४२३)। उसी इन्साइक्लोपीडिया में यह ब्योरा भी पाया जाता है कि यहूदी क़बीले मदीने के मुशरिकों से शादी-ब्याह करते थे और जंग में दोनों भागीदारों के साथ शरीक हो-हो जाते थे।

३०८ (और उसको अपने नज़दीक धार्मिक कार्य समझकर उस पर घमण्ड करते और एहसान जताते हो)।

३०९ तौरेत में, जिसमें बड़े परिवर्तन किये जा चुके हैं, इसी प्रकार के आदेश लिखे चले आते हैं— "तू अपने पड़ोसी के घर का लालच मत कर।" (ख़ुरूज—७ : २०)। परन्तु मान लिया ऐसे आदेश स्पष्टता के साथ न मिलें तो भी अकारण और शरअ़ के विरुद्ध वतन से बेवतन करना कठोरता की भयंकर शक्ल है। **'हुव'** सर्नाम निकालने के लिए है।

३१० मतलब है कि इसराईलियों की किताब तौरेत। यहूद पर आरोप सिद्ध किया जा रहा है कि क़ुर्आन पर ईमान लाना तो अलग रहा, तुम स्वयं तौरेत के ही कहाँ पाबन्द हो? बल्कि जिस निर्भयता से तुम्हारे बड़े उसके आदेशों का उल्लंघन कर रहे हैं, उससे तो स्पष्ट यह होता है कि तुम तौरेत के कुछ ही भाग को कार्यान्वित करने योग्य समझते हो और कुछ भागों पर तुम्हारा ईमान नहीं है।

३११ यह भविष्यवाणी थोड़े ही दिनों में शब्द-शब्द पूरी होकर रही। हिजाज़ में यहूद के तीन बड़े क़बीले रहते थे, बनी नुज़ैर, बनी क़ुरैज़ा, बनी क़नीक़ा। तीनों धन, शानदारी, शक्ति, ज्ञान और कलाओं में बढ़े-चढ़े हुए थे। तीनों चन्द वर्षों में ही रसूलुल्लाह सल्लअम के जीवनकाल में ही तहस-नहस होकर रहे।

३१२ इसराईलियों के लिए जहन्नम की सज़ा स्वयं एक इसराईली नबी और बनी इसराईल के आख़िरी नबी हज़रत ईसा मसीह की ज़बान से इंजील में मौजूद है— "तुम अपने विषय में गवाही देते हो कि हम अपने नबियों के हत्यारों के पुत्र हैं। ग़रज़ अपने बाप-दादों का पैमाना भर दो। ऐ साँपो! और ऐ साँप के बच्चो! तुम जहन्नम की सज़ा से क्योंकर बचोगे?" (मत्ती—२४ : २३)।

३१३ (और वह सबको सज़ा मुनासिब वक़्त पर देता है, या आख़िरत में ज़रूर देगा।) आयत में संकेत यहूद के ख़ुफ़िया कार्यों की विधि और साज़िशी कार्यवाहियों और शरारतों से सम्बन्धित है।

३१४ (यद्यपि आख़िरत का सौदा भी सस्ता था, ईमान तथा आज्ञाकारिता से उसे बड़ी आसानी से क्रय कर सकते थे) यहूद की धार्मिक पुस्तकों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि उनमें आख़िरत की चिन्ता बाक़ी ही नहीं थी। उनके पवित्र धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षाओं का सारांश यही रह गया था कि धर्म के मार्ग पर चलो, जिससे दुनिया की भलाई प्राप्त हो, क़ौम को आज़ादी मिले और तुम एक बलशाली

(फ़ुटनोट सफ़ा १२० पर देखें)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व अिज़् अख़ज़्ना मीसाक़कुम् ला तस्फ़िकून दिमा॑अकुम् व ला तुख़्रिजून अन्फ़ुसकुम्
मिन् दियारिकुम् सुम्म अक़्रर्तुम् व अन्तुम् तश्हदून (८४) सुम्म अन्तुम् हा॑अुला॑अि
तक़्तुलून अन्फ़ुसकुम् व तुख़्रिजून फ़रीक़म्-मिन्कुम् मिन् दियारिहिम् ज़ तजाहरून
अलैहिम् बिल्-अिस्मि वल्-अुद्वानि त व अिंय्यअ्तूकुम् अुसारा तुफ़ादूहुम् व हुव
मुहर्रमुन् अलैकुम् अिख़्राजुहुम् त अफ़तुअ्मिनून
बिबअ्ज़िल्-किताबि व तक्फ़ुरून बिबअ्ज़िन् ज फ़
मा जज़ा॑अु मंय्यफ़्अलु ज़ालिक मिन्कुम् अिल्ला
ख़िज़्युन् फ़िल्-हूयातिद्दुन्या ज व यौमल्-
क़ियामति युरद्दून अिला॑ अशद्दिल्-अज़ाबि त
व मल्लाहु बि ग़ाफ़िलिन् अम्मा तअ्मलून (८५)
अुला॑अिकल्लज़ीनश्तर-वुल्हूयातद्दुन्या बिल्-
★ रु. १०/१० आ ४
आख़िरति ज फ़ला युख़फ़्फ़फ़ु अन्हुमुल्-अज़ाबु
व ला हुम् युन्सरून (८६) ★ व लक़द्
आतैना मूसल्किताब व क़फ़्फ़ैना मिम्बअ्दिही
बिर्रुसुलि ज व आतैना ओसब्न मर्यमल्बय्यिनाति
व अय्यद्नाहु बि रूहिल्क़ुदुसि त अफ़कुल्लमा
जा॑अकुम् रसूलुम्बिमा ला तह्वा॑ अन्फ़ुसुकुमुस्-
तक्बर्तुम् ज फ़ फ़रीक़न् कज़्ज़ब्तुम् ज़ व फ़रीक़न्

البقرة ٢ — ١١ — الٓمّٓ ١

معرضون ۝ واذ اخذنا ميثاقكم لا تسفكون دماءكم ولا تخرجون انفسكم
من دياركم ثم اقررتم وانتم تشهدون ۝ ثم انتم هؤلاء تقتلون انفسكم
وتخرجون فريقا منكم من ديارهم تظهرون عليهم بالاثم والعدوان
وان ياتوكم اسرى تفدوهم وهو محرم عليكم اخراجهم افتؤمنون ببعض
الكتب وتكفرون ببعض فما جزاء من يفعل ذلك منكم الا خزي في الحيوة
الدنيا ويوم القيمة يردون الى اشد العذاب وما الله بغافل عما تعملون ۝
اولئك الذين اشتروا الحيوة الدنيا بالاخرة فلا يخفف عنهم العذاب ولا
هم ينصرون ۝ ولقد اتينا موسى الكتب وقفينا من بعده بالرسل واتينا
عيسى ابن مريم البينت وايدنه بروح القدس افكلما جاءكم رسول بما
لا تهوى انفسكم استكبرتم ففريقا كذبتم وفريقا تقتلون ۝ وقالوا قلوبنا
غلف بل لعنهم الله بكفرهم فقليلا ما يؤمنون ۝ ولما جاءهم كتب من
عند الله مصدق لما معهم وكانوا من قبل يستفتحون على الذين
كفروا فلما جاءهم ما عرفوا كفروا به فلعنة الله على الكفرين ۝ بئسما اشتروا
به انفسهم ان يكفروا بما انزل الله بغيا ان ينزل الله من فضله على
من يشاء من عباده فباءو بغضب على غضب وللكفرين عذاب مهين ۝
واذا قيل لهم امنوا بما انزل الله قالوا نؤمن بما انزل علينا ويكفرون
بما وراءه وهو الحق مصدقا لما معهم قل فلم تقتلون انبياء الله من

منزل ١

तक़्तुलून (८७) व क़ालू क़ुलूबुना ग़ुल्फ़ुन् त बल् लअनहुमुल्लाहु बि कुफ़्रिहिम्
फ़ क़लीलम्मा युअ्मिनून (८८) व लम्मा जा॑अहुम् किताबुम्मिन् अिन्दिल्लाहि
मुसद्दिक़ुल्लिमा मअहुम् ला व कानू मिन् क़ब्लु यस्तफ़्तिहून अलल्लज़ीन कफ़रू ज क़ला
फ़ लम्मा जा॑अहुम् मा अरफ़ू कफ़रू बिही ज फ़ लअ्नतुल्लाहि अलल्-काफ़िरीन
(८९) बिअ्समश्तरौ बिही॑ अन्फ़ुसहुम् अंय्यक्फ़ुरू बिमा॑ अन्ज़लल्लाहु बग़्यन्
अंय्युनज़्ज़िलल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही अला मंय्यशा॑अु मिन् अिबादिही ज फ़ बा॑अू
बि ग़ज़बिन् अला ग़ज़बिन् त व लिल्काफ़िरीन अज़ाबुम्-मुहीनुन् (९०) व अिज़ा
क़ील लहुम् आमिनू बिमा॑ अन्ज़लल्लाहु क़ालू नुअ्मिनु बिमा॑ अुन्ज़िल अलैना
व यक्फ़ुरून बिमा वरा॑अहू क़ व हुवल्हूक़्क़ु मुसद्दिक़ल्लिमा मअहुम् त क़ुल्
फ़ लिम तक़्तुलून अम्बिया॑अल्लाहि मिन् क़ब्लु अिन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (९१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और (वह वक़्त याद करो) जब हमने तुमसे वादा लिया कि अपनों का ख़ून न बहाना[३०५]
और अपने लोगों को अपने वतन से न निकालना, फिर तुमने इसका वादा कर लिया और तुम
(इसके) गवाह हो[३०६]। (८४) फिर तुम ही वह हो कि अपनों को क़त्ल भी करते हो और
अपने ही एक गरोह को उनके वतन से निकाल भी देते हो (और) उनके मुक़ाबिले में गुनाह
तथा अत्याचार के साथ उनके विरोधियों की सहायता भी करते हो[३०७]। और अगर वह तुम तक
बन्दी बनकर पहुँच जाते हैं तो तुम फ़िद्य: (मआविज़ा) देकर छुड़ा लेते हो[३०८]। हालाँकि
उनका वतन से निकालना ही तुम पर हराम था[३०९], तो क्या तुम किताब के एक भाग को मानते
हो और एक भाग से इन्कार करते हो[३१०] ? पस तुममें से जो ऐसा करे, उसकी सज़ा क्या है
सेवाय दुनियावी ज़िन्दगी में रुसवाई के[३११] ? और क़यामत के दिन यह बहुत कड़े अज़ाब में भी डाले
जायेंगे[३१२] और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उससे बेख़बर नहीं[३१३]। (८५) यही लोग हैं, ★
जिन्होंने दुनियावी ज़िन्दगी ख़रीद ली है आख़िरत के बदले में[३१४]; सो उन पर से न अज़ाब रु.
हल्का किया जायेगा[३१५] और न उन्हें मदद ही पहुँचेगी[३१६]। (८६) ★ १०
और हमने मूसा को किताब प्रदान की[३१७] और उनके पीछे हमने एक के बाद एक कई —१०
नबी भेजे[३१८] और मर्यम के पुत्र ईसा को हमने उज्ज्वलित निशानियाँ प्रदान कीं[३१९] और हमने आ ४
'रूहुल् क़ुदुस' (के ज़रिये) से उनका समर्थन किया[३२०]। तो क्या जब कभी कोई पयम्बर तुम्हारे पास
इन (हुक्मों) के साथ आया, जो तुम्हारी आत्मा को नहीं भाये[३२१], तो तुम अकड़ने लगे[३२२]? फिर
बाज़ को तुमने झुठलाया[३२३] और बाज़ को तुम क़त्ल ही करने लगे[३२४]। (८७) और यह
कहते हैं कि हमारे हृदय सुरक्षित हैं[३२५], (नहीं) बल्कि अल्लाह ने उन पर लानत कर रखी है
उनके कुफ़्र के कारण[३२६] और वह ईमान बहुत ही थोड़ा रखते हैं[३२७]। (८८) और जब उनके
पास एक किताब अल्लाह के पास से पहुँच गई तस्दीक़ करनेवाली उसकी जो उनके पास (पहले
से) मौजूद है[३२८] और इसके पहले यह (ख़ुद ही) काफ़िरों से बयान किया करते थे[३२९],
फिर जब उनके पास वह आ गया जिसको ख़ूब पहचानते थे तो उसी से कुफ़्र कर बैठे[३३०]; सो
अल्लाह की लानत हो काफ़िरों पर[३३१]। (८९) बुरी है वह चीज़ जिसके बदले में उन्होंने
अपनी जानों को बेच डाला है[३३२] कि इन्कार करते हैं उस (कलाम) का जो अल्लाह ने उतारा
है (केवल) इस ज़िद पर कि अल्लाह ने अपने बन्दों में से जिस पर चाहा अपनी (विशेष)
कृपा की[३३३]। सो वह अधिकारी हो गये ग़ज़ब पर ग़ज़ब के[३३४] और काफ़िरों के लिए अज़ाब
अपमानवाला है[३३५]। (९०) और जब उनसे कहा जाता है कि ईमान लाओ उस कलाम पर
जो अल्लाह ने उतारा है[३३६], तो कहते हैं कि हम उस पर तो ईमान रखते हैं जो हमारे ऊपर
उतरा है[३३७] और जो कुछ उसके अलावा है उससे यह कुफ़्र करते हैं[३३८]। हालाँकि वह (ख़ुद भी)
हक़ है और उसकी भी तस्दीक़ करनेवाला है जो उनके पास है[३३९]। आप कहिए कि अच्छा तुम
इससे पहले नबियों को क्यों क़त्ल करते रहे हो, अगर तुम वाक़ई ईमानवाले थे[३४०] ? (९१)

---

३०५ 'अह्द लिया' यहाँ भी हुक्म दिया के माने में है। ख़ून बहाने से तौरेत में भी अनेकों जगह मना किया गया है, जैसे "तू ख़ून मत कर।" (ख़ुरूज—१३ : २०)। "बेगुनाह का लहू तेरी ज़मीन पर, जिसे ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा तेरी मीरास कर देता है, बहाया न जाये कि ख़ून तुझ पर हो।" (इस्तिस्ना—१० : १६)।

३०६ यानी इन आदेशों के मानने का वादा तुमने साफ़-साफ़ किया, जो आज तक तुम्हारे ग्रन्थों में लिखा चला आता है। और तुम्हें इससे इन्कार की मजाल नहीं। तौरेत में है— "वह बोले कि सब कुछ जो ख़ुदावन्द ने फ़र्माया है, हम करेंगे और कहना मानेंगे।"

३०७ यहूद के जो क़बीले रसूलुल्लाह सल्लअम के ज़माने में मदीना और उसके पड़ोस में आबाद थे, उनकी एक आदत यह भी थी कि आपस में जंग किया करते थे। मदीने के मुशरिक दो बड़ी टुकड़ियों में आजकल की सभ्य दुनिया की तरह बँटे हुए थे। एक गँठजोड़ औस का था, दूसरा ख़ज़रज का। इसराईलियों के

(देखें फ़ुटनोट सफ़ा ११७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ११७ से)

क़ौम बन जाओ। आख़िरत की सज़ा और इनाम, जिससे क़ुर्आन भरा पड़ा है, उससे हद यह कि तौरेत तक लगभग ख़ाली है।

३१५ ऊपर ही वाली आयत में कड़े अज़ाब की बात आ चुकी है, अब ताकीद के साथ फ़र्माया जा रहा है कि उस भयंकर अज़ाब से बचने का तो ज़िक्र क्या है, उसमें कमी होने की भी कोई राह नहीं है। फ़ला की 'फ़े' का अनुवाद "सो" से किया गया है। अर्थ यह है कि अज़ाब नबियों को झुठलाने और उसके परिणाम में ईमान न लाने की सज़ा के कारण होगा।

३१६ (कि उनके पूर्वज और बड़े ही आकर सिफ़ारिश कर दें) यहूद का इस बात का बड़ा नाज़ और घमण्ड था कि हम ख़ुदा के प्रिय नबियों की सन्तान हैं। हमें क्या चिन्ता है ? हमारी सहायता और सिफ़ारिश के लिए यह पूर्वज पर्याप्त हैं। क़ुर्आन को इस कारण से बार-बार इस विश्वास की काट करनी पड़ी और विभिन्न विधियों से उन्हें चेतावनी देनी पड़ी कि ख़ुदा के क़ानून का कोई बाग़ी किसी नबी या वली की सिफ़ारिश एवं सहानुभूति नहीं पा सकता, और जो ईमान से ख़ाली हैं, उनकी सहायता किसी भी ओर से सम्भव न होगी।

३१७ (और एक स्थायी शरीअत के विधान से इसराईली क़ौम को इनाम के रूप में सम्मान दिया गया।) 'अल्किताब' का अर्थ वही तौरेत है। हज़रत मूसा कौन थे, किस ज़माने में थे ! यह सारी बातें ऊपर आ चुकी हैं।

३१८ (तुम्हारी ही नस्ल इसराईल में) इतिहास में यह बात मौजूद है कि हज़रत मूसा के बाद इसराईलियों में भारी संख्या में बराबर नबी पैदा होते रहे। हज़रत यूशा, दाऊद, ज़िकिर्या और हज़रत यहया के नाम से उर्दू वाले परिचित हैं, कितने ही नबियों के ग्रन्थ, चाहे वह कितने ही अदल-बदल गये हों, 'अह्दनामा अतीक़' के वर्तमान संग्रह में मौजूद हैं।

३१९ (उनकी पैग़म्बरी तथा सच्चाई के) **'अल्बय्यिनाति'** इसमें तर्क-वितर्क, मोजिज़े और आम नियमों के अतिरिक्त सभी घटनाएँ आ गईं। (हज़रत) 'ईसा' आप बनी इसराईली श्रृंखला के आख़िरी नबी हैं, सन् ईस्वी आपके ही नाम से प्रचलित है। आपके बाद केवल नबूवत-मुहम्मदी हुई, जो आख़िरी नबूवत थी। मुल्क शाम के इलाक़े में अर्ज़े गुलील में एक क़स्बा नासिरा नामक है। वही हज़रत ईसा का पैतृक वतन है। आपकी पैदाइश बैतुल्मुक़द्दस के एक कोने में हुई। ख़ानदान यूसुफ़ बिन याक़ूब बिन माशान नामक एक वैद्य था। जनाब यूसुफ़ लकड़ी का काम करते थे, इसी कारण यूसुफ़ नज्जार के नाम से प्रसिद्ध थे। शाम उस समय रूमी साम्राज्य का एक आधा-स्वराज्य प्रान्त था और उस समय शाम का गवर्नर हेरोद था। मसीही सन् में तीन वर्ष की त्रुटि आरम्भ से ही चली आ रही है। इस कारण आपके जन्म का वर्ष वह नहीं है जिससे मसीही सन् आरम्भ हुआ है, बल्कि उससे तीन वर्ष बाद का है। बल्कि इस लिहाज़ से कहना यह चाहिए कि आपका जन्म सन् ४ पूर्व मसीह में हुआ। ३३ साल की आयु पाकर आप उम्मत के अधिकांश व्यक्तियों के विश्वासानुसार जीवित और मसीही विश्वासानुसार तीन दिन के लिए मृत्यु पाकर आसमान पर उठा लिये गये। इस अक़ीदे से इन्कार केवल बाज़ नये फ़िरक़ों ने किया है। (हज़रत) 'मर्यम' इमरान की बेटी, जो माशान के सुपुत्र थे, इसराईली क़ौम के एक बड़े सम्मानित परिवार से थीं और स्वयं भी बड़ी पवित्र चरित्रवान एवं सुन्दर थीं। मृत्यु का सन्, जैसा कि बयानों में आया है, सन् ४८ है। 'ईसा सुपुत्र मर्यम' इस शब्द सुपुत्र में संकेत है कि ईसा मसीह अपनी पैग़म्बराना बड़ाई के होते हुए भी इन्सान ही थे और एक स्त्री की कोख से उत्पन्न हुए। वह ख़ुदा या ख़ुदा के नमूने या ख़ुदा के बेटे नहीं थे।

३२० 'रूहुल् क़ुदुस' इस्लामी तकनीकी शब्दों में प्रसिद्ध, सम्मानित एवं ख़ुदा के बहुत ही निकट रहनेवाले फ़रिश्ते हज़रत जिब्रील को कहते हैं। मसीही तकनीकी शब्दों में रूहुल् क़ुदुस "तीन पवित्रों" के तीसरे भाग को कहते हैं, उससे यहाँ कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसे तकनीकी शब्दों के एक ही प्रकार के होने से अक्सर बड़ी ग़लतफ़हमी और भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। हज़रत ईसा का जन्म चूंकि ख़ुदा के रहस्य के अनुसार आम मानव जाति की विधि से नहीं बल्कि एक नये विधान के अन्तर्गत मलकूती (दैवी) सम्पर्क से हुआ था इसलिए कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि आपको मलायका लोक से अधिक लगाव रहा हो और इसी लगाव के कारण आपको मलायका से ज़्यादा फ़ैज़ (लाभ) पहुँचता रहा हो। **'अय्यद्नाहु'** में यह संकेत पाया जाता है कि आप अपनी मानवता के कारण ख़ुदा की मदद के मुहताज थे और वह मदद एक फ़रिश्ते के माध्यम से होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३२१ (और इसी प्रकार के आदेश तो लगभग सभी पयम्बर लाये) यहाँ पर सम्बोधन उन्हीं बनी इसराईल से है। यह भी एक प्रकार की भाषा की कला है कि अभी मौजूद से हटकर नामौजूद की ओर सम्बोधन का परिवर्तन हो जाये। अरबी में यह लेख का ऐब नहीं बल्कि एक सुन्दरता है। क़ुर्आन मजीद में ऐसे उदाहरण अनेकों हैं।

३२२ (और उस नबी की आज्ञाकारिता एवं उसकी पैरवी से मुकरने लगे) इन्सान की यह शामत और बदनसीबी शुरू से ही रही है कि अल्लाह की वही के मुक़ाबिले में वह अपनी ही आत्मा को हाकिम और क़ाज़ी रखना चाहता है और जो हुक्म उसको अपनी इच्छाओं और अपनी सीमित बुद्धि के ख़िलाफ़ दिखाई पड़ते हैं, झट उनसे इन्कार कर बैठता है और उनसे बग़ावत करने लगता है। आज जिस चीज़ का नाम "रौशनख़याली" है, यदि ख़ूब विचार और ध्यानपूर्वक ढंग से देखा जाये तो उसकी तह में वास्तव में यही चीज़ मिलेगी। अपनी इच्छाओं की बड़ाई और पयम्बर की पैरवी और उसकी आज्ञाकारिता से मुकरना और बचना।

३२३ (और हर प्रकार से उनको कष्ट देने और तकलीफ़ देने में लग गये)।

३२४ जैसे हज़रत ज़िकिर्या, हज़रत यहया इत्यादि पर रुकूअ ७ के अन्तर्गत हाशिया ऊपर दिया जा चुका है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि घमण्ड ही अकसर गुनाहों की बुनियाद होता है। यहाँ पर इसी कारण नबियों को झुठलाने और उनकी हत्या करने को घमण्ड का ही परिणाम माना है।

३२५ (और इस्लाम की दावत हमारे ऊपर प्रभावित नहीं हो सकती) यहूद बड़े फ़ख़्र और नाज़ से खुल्लमखुल्ला तौर पर कहते थे कि यह नये पयम्बर कुछ भी कर डालें, हम उनके कहने में नहीं आयेंगे। **'ग़ुल्फ़'** 'ग़िलाफ़' का बहुवचन है, जिसका अर्थ यह है कि हमारे हृदय इल्म का खज़ाना हैं। मूसा की ख़ुदा की पहचान और उनके ईश्वरीय ज्ञान से प्रचुर हैं। हमें किसी नई शिक्षा को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। 'मख़्तून' तथा 'नामख़्तून' कहने का मुहावरा यहूद की ज़बान पर आम तौर से चढ़ा हुआ था। कभी अपने को 'नामख़्तून' कहते, कभी अपने दिल और जिस्म को या कभी अपने जिस्म के हिस्सों को। तौरेत में बार-बार इसका प्रयोग हुआ है। (मख़्तून— जिसका खतना हुआ हो)। "बस मैं जो नामख़्तून होंठ रखता हूँ, फ़िर्औन मेरी क्योंकर सुनेगा?" (ख़ुरूज—६ : १२)। "तब दिल के नामख़्तून और जिस्म के नामख़्तून अजनबी लोगों से पैदा होनेवालों को मेरे मुक़द्दस में लाये।" (हिज़क़ील ७ : ४४)। कहीं-कहीं इंजील में भी आया है— "ऐ गरदनकशो! (घमण्डियो!) और दिल और कान के नामख़्तूनो! तुम हर समय रूहुल् क़ुदुस का विरोध करते हो।" (आमाल—७ : ५१)। क़ुर्आन की यह बयान करने की विधि भी बड़ी जादूबयानी रखती है कि जब यहूद का क़ौल नक़्ल किया तो भाषा भी उन्हीं की इस्तेमाल की।

३२६ क़ुर्आन मजीद यहूद की घमण्डी बातों के जवाब में कहता है कि जिस "सुरक्षा" का उनको बड़ा घमण्ड है, वह कोई गौरव और नाज़ की बात नहीं है। यह तो एक निशानी है सत्य से उनके दूर हो जाने और सच्चाई से परे हो जाने की, और यही हक़ीक़त है वास्तव में धिक्कार और लानत की। **'लअ्नत'** नाम है अल्लाह की रहमत और उसकी मेहरबानी से दूरी का। **'बिकुफ़्रिहिम्'** इसमें यह बता दिया कि यह लानती होना और ख़ुदा के ग़ज़ब में आना, जो उन पर होगा, उनके जान-बूझकर कुफ़्र करने के कारण होगा, और यह सज़ा उनको अल्लाह के नबी से दुश्मनी करने और उनका विरोध करने के कारण होगा। लानत का मुहावरा तौरेत में बहुत आम है। एक स्थान का नमूना देखें— "यह सारी लानतें तुझ पर उतरेंगी और तुझ तक पहुँचेंगी। तू शहर में लानती होगा और तू खेत में भी लानती होगा। तेरा टोकरा और तेरा कठरा (काठ का सन्दूक), तेरे बदन का फल और तेरी ज़मीन का फल, तेरी गाय-बैल की बढ़ती और तेरे भेड़-बकरी के गल्ले लानती हो जायेंगे। तू भीतर आने के समय लानती होगा और तू बाहर जाने के समय लानती होगा। ख़ुदावन्द, उन सारे कामों में जिनमें तू करने के लिए हाथ लगावे, तुझ पर लानत और दुख और बुराई उतारेगा।" लानत इंजील में हज़रत मसीह की ज़बान से भी नक़्ल हुई है, न केवल काहिनों (भविष्यवाणी करनेवालों के लिए) बल्कि इंजीर के सूखे वृक्ष के लिए भी।

३२७ (और यह थोड़ा या नामचार का ईमान नजात के लिए पर्याप्त नहीं है।) **'क़लीला'** क़लील यहाँ ईमान का गुण है, जो ईमान नजात के लिए आवश्यक है और जिसका हुक्म हर व्यक्ति के लिए है। इसके बहुत भाग हैं। यहूद का ईमान, जो कुछ भी था, केवल उनमें से कुछ पर था। **'मा युअ्मिनून'** 'मा' ईमान की कमी पर ज़ोर देने के लिए है यानी अत्यन्त कम ईमान केवल नाम मात्र को। **'क़लीलन्'** मोमिन की भी सिफ़त हो सकती है। अर्थ इस दशा में यह होगा कि उनमें से बहुत ही थोड़े ईमान लाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३२८ **'किताबुम्मिन् अिन्‌दिल्लाहि'** यानी क़ुर्आन, **'लिमा मअ़हुम्'** यानी तौरेत। क़ुर्आन मजीद ने अपनी सिफ़त जगह-जगह बयान की है कि वह स्वयं सच्चा है और साथ ही वह पिछली आसमानी किताबों की सच्चाई को माननेवाला और उनकी तस्दीक़ करनेवाला भी है और इन पिछली किताबों में सबसे प्रसिद्ध तौरेत है।

३२९ (कि निकट भविष्य में आखिरी नबी, जो नजात देनेवाले हैं, प्रकट होनेवाले हैं) **'अल्लज़ीन कफ़रू'** इस तारतम्य में अरब के मुशरिक लोग हैं। एक नौ मुस्लिम अन्सारी सहाबी ने बयान किया है कि इस्लाम के ज़ाहिर होने के पहले जब हम यहूद को हराते थे तो वह कहा करते कि अच्छा ठहर जाओ, जल्द ही एक नबी प्रकट होनेवाला है, हम उसके साथ होकर तुम्हें क़त्ल करके रख देंगे। (सीरत इब्ने हुशाम— बाब खबर अन्दाज़ यहूद बरसूल)। यहूद ने हज़रत ईसा को मसीह मानने से तो इन्कार कर दिया था, लेकिन उसके बाद से बराबर एक मसीह (नजात देनेवाला) के प्रकट होने की प्रतीक्षा करते रहते थे और उसका ज़िक्र मक्का के मुशरिकों से अक्सर करते रहते थे। **'यस्तफ़्तिहून'** फ़तेह के मानी अरबी में खबर देने और बयान करने के हैं। लेकिन यह शब्द अपने आम और प्रसिद्ध अर्थ में विजय और फ़तेह की माँग के माने में है। ऐसी दशा में यह मतलब होगा कि इसके पूर्व यहूद उस भविष्य के पयम्बर का वास्ता दिला-दिलाकर खुदा से मदद माँगा करते थे और तफ़्सीर के बड़ों ने ज़्यादातर यही मतलब लिया है।

३३० (और उसी से इन्कार करने लगे कि यह अल्लाह का कलाम है या यह व्यक्ति अल्लाह का पयम्बर है।) **'मा अरफ़ू'** का इशारा क़ुर्आन की ओर भी हो सकता है और स्वयं रसूलुल्लाह की ओर भी। दोनों सूरतों में बात वही पैदा होती है। अर्थ यह है कि यहूद उस आखिरी नबी और उसकी नबूवत की निशानियों से अपनी ही धार्मिक पुस्तकों के माध्यम से भलीभाँति परिचित हो चुके थे। नबी बिना उनकी जानकारी और पूर्व ज्ञान के अचानक नहीं प्रकट हुये। इंजील यूहन्ना में हज़रत यहया नबी (इंजीली भाषा में उनका नाम यूहन्ना ही है) के प्रकट होने का हाल इस प्रकार अंकित है कि— "जब यहूदियों ने यरोशलम से काहिन यह पूछने को उसके पास भेजे कि तू कौन है? तो उसने इक़रार किया और इन्कार न किया, बल्कि इक़रार किया कि मैं तो मसीह नहीं हूँ। उन्होंने उससे पूछा कि फिर कौन है? क्या तू ईलियाह है? उसने कहा, मैं नहीं हूँ। क्या तू वह नबी है? उसने जवाब दिया कि नहीं, पस उन्होंने उससे कहा, फिर तू है कौन?" (यूहन्ना—१ : १९-२०)। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि यहूद सदियों से एक जाने-बूझे हुए नबी "वह नबी" की प्रतीक्षा में थे।

३३१ यानी उन पर, जो जान-बूझकर दुश्मनी और पक्षपात के कारण कुफ़्र और इन्कार कर बैठें। लानत के विषय पर अभी लिखा जा चुका है।

३३२ यानी कैसी बुरी वह हालत है, जिसे अपनाकर वह अपने विचार में अपनी जानों को आखिरत के अज़ाब से छुड़ाना चाहते थे। **'इश्‌तिरा'** खरीदने और बेचने दोनों मानों में आता है। यहाँ बेचने के माने में आया है।

३३३ क़ुर्आन ने इस सच्चाई को बार-बार साफ़ किया है कि यहूद का यह इन्कार किसी शोध की त्रुटि के कारण या चिन्तन एवं अध्ययन के धोखे या ग़लत समझने के कारण नहीं था, बल्कि उस ग़ुस्से और दुश्मनी का नतीजा था कि नबूवत इसराईल के परिवार से निकलकर बनी इस्माईल के एक व्यक्ति को क्यों मिल रही है। यह वही नस्ली और क़ौमी पक्षपात है, जो आज तक दुनिया पर छाया हुआ है। इमाम राज़ी की खुदा की दी हुई दृष्टि क़ुर्आन के कैसे-कैसे बिन्दुओं तक पहुँच जाती है। इस स्थान पर लिखा है कि यहूद तो नबूवत को अपना पैतृक अधिकार समझते थे। एक अरब को उसका दावेदार पाकर उलटे उसको ही यह समझने लगे कि वह बनी इसराईल से जलने के कारण ऐसा कर रहा है। क्या हद है इस ज़िद और दुश्मनी की कि नस्ली और खानदानी पक्षपात के कारण नबूवत की तस्दीक़ से भी इन्कार कर दिया। **'मिन् फ़ज़्‌लिही'** में **'फ़ज़्ल'** का मतलब वही है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि इस प्रकार के हालात केवल अल्लाह की मेहरबानी के अन्तर्गत होते हैं। प्रयास और सीखने की कोशिश का कोई लाभ नहीं होता, जब तक अल्लाह की मर्ज़ी का दखल न हो।

३३४ **'ग़ज़बिन् अला ग़ज़ब'** इसकी तफ़्सीर में बहुत से क़ौल नक़्ल हुए हैं। इनमें से ताबेई बुज़ुर्गों का एक क़ौल यह है कि यहूद पर पहला ग़ज़ब ईसा मसीह की रिसालत से इन्कार के कारण और दूसरा ग़ज़ब रिसालत-मुहम्मदी से इन्कार के कारण आया। यह तफ़्सीर अच्छी है, लेकिन इससे ज़्यादा अच्छी तफ़्सीर यह की गई है कि पहला ग़ज़ब उनके अकारण सही दलीलों और स्पष्ट निशानियों के बावजूद इन्कार और रिसालत के झुठलाने पर आया और दूसरा उनके जलने की भावना और दुश्मनी के कारण आया। यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ भी निकाला गया है कि कलाम का उद्देश्य ग़ज़ब का दोहराना नहीं है, बल्कि उसकी कड़ाई और सख्ती पर बल दिया गया है।

३३५ अल्लाह के अज़ाब का भयंकर और सख्त होना तो स्पष्ट है ही, फिर उस अज़ाब का कारण चूँकि यहूद की क़ौमी और नस्ली अस्बीयत (पक्षपात) है, इस परिपेक्ष से यह सज़ा उनके ग़ुरूर को तोड़ने वाली, उनका अपमान, तौहीन और रुस्वाई को बढ़ानेवाली भी होगी।

३३६ (अपने बन्दे और आखिरी रसूल मुहम्मद स० पर) अभी वही बनी इसराईल का ही ज़िक्र चल रहा है और उन्हीं से कहा जाता था कि आखिरी अल्लाह की किताब पर ईमान लाओ।

३३७ (और वह हमारे लिए बिलकुल काफ़ी है) **'उनज़िल अलैना'** हमारे ऊपर यानी हमारी क़ौम और नस्ल के ऊपर उतारा गया है। यहूद कहते थे कि हम 'वही' और रिसालत के मस्ले के इन्कार करनेवाले तो हैं नहीं। हम भी तो मोमिन हैं और अपनी इसराईली नस्ल के रसूलों को मानते हैं।

३३८ यह यहूद के क़ौल का अवशेष है। क़ुर्आन मजीद ने यह बढ़ा दिया कि यह लोग अपने इसराईली सिलसिले के बाहर किसी और नबूवत के माननेवाले नहीं हैं। एक ज़माने तक खुदा की विशेष कृपा एवं मेहरबानियों के पात्र बने रहे और इसी नस्ल के अन्दर बराबर नबियों के जन्म लेते रहने से उनके दिल में यह बात जम गई थी कि नबूवत इसराईली नस्ल के बाहर जा ही नहीं सकती। **'वरा'अहू'** यहाँ 'वरा' के मानी हैं अलावा, अतिरिक्त।

३३९ **हुवलहक़्क़ु'** सर्वनाम **'हुव'** क़ुर्आन की ओर है। उसकी सच्चाई दलीलों से साबित और गवाहियों से रौशन है, स्पष्ट है। **'मुसद्दिक़लिलमा मअहुम्'** यानी वह तस्दीक़ करता है तौरेत की और बनी इसराईल के दूसरे नबियों की किताबों की। क़ुर्आन यहाँ यहूद के मुक़ाबिले में अपने दो गुणों का वर्णन कर रहा है। (१) एक यह कि वह स्वयं सत्य है। उसकी सच्चाई दलीलों से साबित है इसलिए उस पर ईमान लाना स्वयं फ़र्ज़ है, आवश्यक है। (२) दूसरे यह कि तौरेत और दूसरी इसराईली किताबों से उसका सम्बन्ध नहीं का और नकारने का नहीं है, बल्कि उसका सम्बन्ध मेलजोल और तस्दीक़ एवं सत्यापन का है।

३४० तीसरा जवाब क़ुर्आन मजीद ने यहूद को यह दिया कि स्वयं यही दावा तुम्हारा कब सही है कि तुम अपनी क़ौम के नबियों पर ईमान रखते हो? ईमान एवं सत्यापन अलग रहा, तुमने खुद इस ज़ोर-शोर से उनको झुठलाया और उनका विरोध एवं उनकी दुश्मनी की कि उन्हें क़त्ल कर डाला और तुम्हारी क़ौमी तारीख के पन्ने तो नबियों के खून से रंगीन हैं। इसराईल और नबियों के क़त्ल पर विवरण सहित हाशिए रुकूअ (७) के अन्तर्गत गुज़र चुके हैं। बाइबिल के उन हवालों के अलावा एक तारतम्य और अवलोकित हो। निहमियाह नबी के ज़माने में स्वयं बनी इसराईल के बड़े लोग अपने बाप-दादों से सम्बद्ध प्रार्थना में कहते हैं— "वह आज्ञा के उल्लंघन करनेवाले निकले और तुझसे फिर गये और उन्होंने तेरी शरीअत को अपनी पीठ के पीछे फेंका और तेरे नबियों को, जो उनको नसीहत देते थे कि उन्हें तेरी ओर लौटा लायें, क़त्ल किया और उन्होंने अपने कामों से तुझे ग़ुस्सा दिलाया।" (निहमियाह—९ : २५, २६)। स्पष्ट है कि क़ुर्आन के सम्बोधन वाले उसके समय के लोगों ने नबियों को क़त्ल नहीं किया था बल्कि वर्तमान इसराईलियों के पूर्वजों ने उन्हें क़त्ल किया था, लेकिन चूँकि वर्तमान यहूद की नस्ल भी अपने पूर्वजों की इस विधि से सहमत थी अतः उसे भी क़त्ल के जुर्म में सम्मिलित समझा गया।

(फ़ुटनोट सफ़ा १२५ से)

फ़र्माया जा रहा है कि और ज़मानों में तो तुमने जो कुछ किया वह तो खैर किया ही, शिर्क तो तुमने खुद हज़रत मूसा ही के ज़माने में शुरू कर दिया और शिर्क भी कैसा खुला हुआ। गोसाला की पूजा और वह भी पयम्बर की सिर्फ़ चन्द दिनों की ग़ैरहाज़िरी में। तुमको इस बात ने भी न रोका कि वह निशान और दलीलें लाये थे और न इस बात ने रोका कि वह तो अभी जीवित और सलामत तुम्हारे बीच मौजूद हैं। अर्थात् नाफ़र्मानी में और आज्ञा-उल्लंघन करने में तुम आज से नहीं, सदैव से वीर हो।

३४४ (तुम्हारे ऊपर शरीअत के उतरने के समय) तूर और उसकी बुलन्दी पर हाशिया रुकूअ (७) में गुज़र चुका है।

३४५ यानी यह आदेश तथा शरीअत के निर्देश, जो अभी तुम पर उतारे गये हैं।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १२६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व लक़द् जा'अकुम् मूसा बिल् - बय्यिनाति सुम्मत्तख़ज़्तुमुल्‌ञिज्ल मिम्बड़दिही
व अन्तुम् ज़ालिमून (९२) व अिज़् अख़ज़्ना मीसाक़कुम् व रफ़ड़ना
फ़ौक़कुमुत्तूर त ख़ुज़ू मा' आतैनाकुम् बिक़ुव्वतिंव्वस्मञ़ू त क़ालू समिड़ना व असैना क़
व अुश्‌रिबू फ़ी क़ुलूबिहिमुल्-ञिज्ल बिकुफ़्‌रिहिम् त क़ुल् बिअ्‌समा यअ्‌मुरुकुम्

बिही' ओमानुकुम् अिन् कुन्तुम् मुअ्‌मिनीन
(९३) क़ुल् अिन् कानत् लकुमुद्दारुल्-
आख़िरतु ञिन्दल्लाहि ख़ालिसतम्-मिन्दूनिन्नासि
फ़ तमन्नवुल् - मौत अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन
(९४) व लंय्यतमन्नौहु अबदम् - बिमा
क़द्दमत् अैदीहिम् त वल्लाहु ञ़लीमुम्-
बिज़्ज़ालिमीन (९५) व लतजिदन्नहुम्
अह्रसन्नासि ञ़ला हयातिन् ज ∴ व
मिनल्लज़ीन अश्‌रकू ∴ ज यवद्दु अहदुहुम्
लौ युञ़म्मरु अल्फ़ सनतिन् ज व मा हुव
बि मुज़ह्ज़िहिही मिनल्-अज़ाबि अंय्युञ़म्मर त
वल्लाहु बसीरुम् - बिमा यञ़्मलून (९६) ★
क़ुल् मन् कान ञ़दुव्वल्लिजिब्रील फ़ अिन्नहू

البقرة ١٢ الم

قل ان كنتم مؤمنين ۝ ولقد جاءكم موسى بالبينت ثم اتخذتم العجل
من بعده وانتم ظلمون ۝ واذ اخذنا ميثاقكم ورفعنا فوقكم الطور خذوا
ما اتينكم بقوة واسمعوا قالوا سمعنا وعصينا واشربوا في قلوبهم العجل
بكفرهم قل بئسما يامركم به ايمانكم ان كنتم مؤمنين ۝ قل ان
كانت لكم الدار الاخرة عند الله خالصة من دون الناس فتمنوا الموت
ان كنتم صدقين ۝ ولن يتمنوه ابدا بما قدمت ايديهم والله عليم
بالظلمين ۝ ولتجدنهم احرص الناس على حيوة ومن الذين اشركوا
يود احدهم لو يعمر الف سنة وما هو بمزحزحه من العذاب ان يعمر
والله بصير بما يعملون ۝ قل من كان عدوا لجبريل فانه نزله على
قلبك باذن الله مصدقا لما بين يديه وهدى وبشرى للمؤمنين ۝
من كان عدوا لله وملئكته ورسله وجبريل وميكل فان الله عدو
للكفرين ۝ ولقد انزلنا اليك ايت بينت وما يكفر بها الا الفسقون ۝
اوكلما عهدوا عهدا نبذه فريق منهم بل اكثرهم لا يؤمنون ۝ و
لما جاءهم رسول من عند الله مصدق لما معهم نبذ فريق من الذين
اوتوا الكتب كتب الله وراء ظهورهم كانهم لا يعلمون ۝ واتبعوا ما تتلوا
الشيطين على ملك سليمن وما كفر سليمن ولكن الشيطين كفروا
يعلمون الناس السحر وما انزل على الملكين ببابل هاروت وماروت وما

منزل

∴ मु. ख़ि मु. ता ख़. २ ★ ह. ११ / ११ आ १०

नज़्ज़लहू ञ़ला क़ल्बिक बि अिज़्निल्लाहि मुसद्दिक़ल्लिमा बैन यदैहि व हुदंव्व
बुश्‌रा लिल्मुअ्‌मिनीन (९७) मन् कान ञ़दुव्वल्लिल्लाहि व मला'अिकतिही
व रुसुलिही व जिब्रील व मीकाल फ़ अिन्नल्लाह ञ़दुव्वुल् - लिल्काफ़िरीन (९८)
व लक़द् अन्ज़ल्ना' अिलैक आयातिम् - बय्यिनातिन् ज व मा यक्फ़ुरु बिहा'
अिल्लल्फ़ासिक़ून (९९) अव कुल्लमा ञ़ाहदू ञ़ह्दन् नबज़हू फ़रीक़ुम्मिन्हुम् त
बल् अक्सरुहुम् ला युअ्‌मिनून (१००) व लम्मा जा'अहुम् रसूलुम् - मिन्
ञ़िन्दिल्लाहि मुसद्दिक़ुल्लिमा मञ़हुम् नबज़ फ़रीक़ुम् - मिनल्लज़ीन ऊतुल् -
किताब क़ ला किताबल्लाहि वरा'अ ज़ुहूरिहिम् कअन्नहुम् ला यञ़्लमून ज (१०१)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और अवश्य ही मूसा तुम्हारे पास खुले हुए चिह्न लेकर आये[३४१] इस पर भी तो तुमने गोसाला को अपनाया[३४२] और तुम तो हो ही ज़ालिम[३४३]। (९२) और (वह वक़्त भी याद करो) जब हमने तुमसे क़ौलोक़रार लिया था और तुम्हारे ऊपर तूर पहाड़ को बुलन्द किया था[३४४] (कि) जो कुछ हमने तुम्हें दिया है[३४५] उसे मज़बूती के साथ पकड़ो और सुनो[३४६]। यह (उस वक़्त) बोले थे कि (हाँ) हमने सुन लिया मगर हमने माना नहीं[३४७] और उनके दिलों में गोसाला उनके पिछले ज़माने के कुफ़्र के कारण घुस गया था[३४८]। आप कह दीजिए (कैसी) बुरी है वह बात, जिसका हुक्म तुम्हारा ईमान तुम्हें दे रहा है अगर तुम (वाक़ई) ईमानवाले हो[३४९]। (९३) आप कह दीजिए कि अगर आखिरत का आलम ख़ास तुम्हारे ही लिए है दूसरों को छोड़कर[३५०], तो मौत की आर्ज़ू कर देखो अगर तुम सच्चे हो[३५१]। (९४) लेकिन वह इसकी इच्छा कदापि न करेंगे उन बुरे कार्यों के कारण जो यह अपने हाथों समेट चुके हैं[३५२]। और अल्लाह ज़ालिमों से ख़ूब परिचित है[३५३]।(९५) और आप उन्हें जीवन का लालची सब लोगों से बढ़कर पायेंगे[३५४] ∴ (यहाँ तक कि) मुशरिकों से भी बढ़कर[३५५] ∴ उनमें से एक-एक यह चाहता है कि हज़ार (हज़ार) वर्ष की आयु पाये[३५६]। हालाँकि अगर इतनी आयु वह पा भी जाते तो यह (बात) उन्हें अज़ाब से नहीं बचा सकती[३५७]। और जो कुछ वह कर रहे हैं, अल्लाह उसे ख़ूब देख रहा है[३५८]। (९६) ★

आप कह दीजिए कि जो कोई जिबराईल का विरोधी है[३५९], तो उन्होंने इस (क़ुर्आन) को आपके हृदय पर अल्लाह के हुक्म से उतारा है[३६०], वह सत्यापन करनेवाला है उस (कलाम) का जो उसके पूर्व से है और प्रकाश है और ईमानवालों के लिए शुभ समाचार है[३६१]। (९७) जो कोई विरोधी हो अल्लाह का या उसके फ़रिश्तों का या उसके पैग़म्बरों का या जिबराईल का या मीकाईल का[३६२], तो अल्लाह (भी) अवश्य ही ऐसे काफ़िरों का मुख़ालिफ़ है[३६३]। (९८) और अवश्य ही हमने आप पर रौशन निशान उतारे हैं[३६४] और उनसे कोई भी इन्कार नहीं करता सेवाय नाफ़रमानों के[३६५]। (९९) क्या यह है कि उन्होंने जब कभी भी कोई अहद (वादा) किया है[३६६] तो उन्हीं में से किसी (न किसी) जमाअत ने उसे तोड़ ही फेंका है[३६७]? अस्ल यह है कि उनमें से ज़्यादातर तो विश्वास ही नहीं रखते[३६८]। (१००) और जब उनके पास आये पैग़म्बर अल्लाह की तरफ़ से तस्दीक़ करते हुए उस (किताब) की, जो उनके पास मौजूद थी[३६९], तो उन किताबवालों में से एक जमाअत ने किताब-अल्लाह को अपनी पीठ के पीछे फेंक मारा,[३७०] गोया वह जानते ही बूझते नहीं[३७१]। (१०१)

∴ मु. ख़ि मु ता ख़. २ ★ रु. ११/११ आ १०

---

३४१ (और उन खुले हुए निशानों का असर स्वाभाविक रूप से यह होना चाहिए था कि तुम ख़ुदा और नबी की आज्ञाओं का पालन करते और हृदय से इबादत में लगते।) हज़रत मूसा के खुले हुए निशान और मोजिज़े, जो फ़िर्औन के मुक़ाबिले में थे, 'असा', 'यदे बैज़ा' इत्यादि वह तो मशहूर ही हैं, लेकिन 'जाअकुम्' से यह संकेत होता है कि कुछ हज़रत मूसा के मोजिज़े स्वयं बनी इसराईल के लिए भी थे।

३४२ [परमेश्वर के रूप में (माबूद की शक्ल में) पूजा करने के लिए] यह है तुम्हारे तौहीद के दावे की सच्चाई। गोसाला की पूजा पर हाशिए रुकूअ़ (६) में गुज़र चुके हैं। 'सुम्म' यहाँ केवल ज़माने के आख़िरी होने के लिए नहीं, बल्कि यह भी ज़ाहिर करने के लिए है कि तुम कितनी निचाई और उतार में उतर गये हो और यह कि तुमने यह उस वक़्त किया जब तुम्हारे पास दलीलें और गवाहियाँ इसके ख़िलाफ़ पहुँच चुकी थीं। 'मिम्बअ़दिही' यानी हज़रत मूसा की अस्थायी अनुपस्थिति में। हज़रत मूसा उस समय अपनी क़ौम को मैदान में छोड़कर सत्तर चुने हुए व्यक्तियों को लेकर तूर पहाड़ पर गये हुए थे। रुकूअ़ (६) के अन्तर्गत गुज़री हुई तफ़्सीलें।

३४३ (अपने हक़ में) यानी तुम्हारा इतिहास गवाह है कि तुम अपनी जानों पर, अपनी आत्माओं पर और अपनी रूहों पर ज़ुल्म करने के कैसे आदी हो। यह पिछले जवाबों का अवशेष है। इसराईलियों से

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १२३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १२३ से)

३४६ (इन आदेशों और शर्ई बातों को ध्यानपूर्वक सुनो और इन पर अमल करो।

३४७ आयत से यह आवश्यक नहीं है कि शब्द (हमने नहीं माना) उन लोगों ने ज़बान से भी दोहराया हो या कहा हो। यह भी कहा गया है कि यह क़ौल मजाज़ी अर्थ में आया है, यह नहीं कि ज़बान से बोलकर कहा गया हो। चूंकि वास्तव में यह बात दिल से नहीं थी इसलिए जैसे कि अन्तरात्मा की भाषा में यही कह रहे हों। (मौ० थानवी)। शब्द 'क़ौल' यूँ भी अरबी भाषा में बड़ा विशाल अर्थ रखता है। ज़बान से अदा करना इसके लिए आवश्यक नहीं है। राग़िब ने स्वयं क़ुर्आन से इसके कई अर्थ नक़्ल किये हैं और चौथे नम्बर पर इसके मानी सामयिक तर्क भी लिखा है। और ताजुलउरूस में सैबोया इत्यादि जो शब्दकोष के विशेषज्ञ हुए हैं, उनके हवाले से इससे भी विशाल अर्थ बयान किये हैं। लेकिन इन नाफ़र्मानों और गुस्ताख़ों ने यह शब्द ज़बान से निकाला हो तो उनकी आदत और लगातार नाफ़र्मानियों को देखते हुए आश्चर्य की बात नहीं है। बरमियाह नबी की किताब में एक स्पष्टीकरण बिल्कुल इससे मिलती-जुलती, को एक दूसरे अवसर के लिए मौजूद ही है— "ख़ुदावन्द यूँ कहता है कि राहों पर खड़े हो और देखो और पुराने रास्तों के विषय में पूछो कि पहली राह कहाँ है ? इसी पर चलो कि तुम अपने जीवन में आराम पाओगे, पर उन्होंने कहा कि हम इसमें न चलेंगे। और मैंने तुम्हारे ऊपर निगरानी करनेवाले भी ठहराये और कहा कि नरसिंघे की आवाज़ सुनो, पर उन्होंने कहा कि हम न सुनेंगे।" (बरमियाह—६ : १६, १७)।

३४८ चुनांचे बैल की पवित्रता का अक़ीदा बनी इसराईल में मुद्दत तक बना रहा। (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ५, सफ़ा ४५२)। **'अल्‌अिज्‌ल'** का अर्थ 'हुब्बुल् अज्‌ल' है और अरबी में इस प्रकार शब्द के एक अंश को छोड़ देने का आम रिवाज है। **'अुश्‌रिबू फ़ी क़ुलूबिहिम्'** अर्थ यह है कि गोसाला की मुहब्बत उनकी रग-रग में रची हुई थी जैसे पानी रग-रग में पहुँचकर बदन का अंश बन जाता है। **'बिकुफ़्‌रिहिम्'** यानी उनके कुफ़्र के कारण, कुफ़्र के नतीजे के रूप में।

३४९ बनी इसराईल के मुक़ाबले में इल्ज़ामी तर्क है। क़ुर्आन का कहना गोया यह है कि दावा तो यह है कि हम ईमानवाले और तौहीदवाले हैं और अमल यह है कि गोसाला को पवित्र और मुक़द्दस मानकर उसकी इबादत में लगे हुए हो। क्या अच्छा तुम्हारा ईमान है।

३५० (जैसा कि तुम अपने ज़ोम और घमण्ड में समझ रहे हो।) बनी इसराईल के इस बुनियादी विश्वास का आरम्भ का चित्रण तो स्वयं तौरेत में मौजूद है— "तुम ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा के पुत्र हो।" (इस्तिस्ना—१४ : १)। "तू ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा के लिए पवित्र क़ौम है और ख़ुदावन्द ने तुझको चुन लिया, ताकि सब क़ौमों की अपेक्षा जो भूमि पर हैं, तू उसके लिए ख़ास क़ौम हो।" (इस्तिस्ना—१४ : २)। धीरे-धीरे यह विश्वास तरक़्क़ी करके इस दर्जे तक पहुँच गया कि यहूद अपने अलावा और किसी को ख़ुदा की मेहरबानी का अधिकारी ही नहीं समझते थे। आख़िरत की नजात को अपना हक़ समझने लगे थे। अपने को ख़ुदा का प्रिय और उसका लाडला और चहेता पुत्र जानने लगे थे और यह ख़याल जमा लिया था कि ख़ुदावन्द ख़ुदा का जो मामला हमारी क़ौम और नस्ल के साथ एक न बदलनेवाले ढंग से है, वह दुनिया भर में किसी और के साथ नहीं है। नस्ली पवित्रता की यही बीमारी है, जो हिन्दुस्तान में बरहमनियत के नाम से उपस्थित है। **'अद्दारुल-आख़िरतु अिन्दल्लाहि'** अर्थ है जन्नत और नजात का हासिल होना। 'नास' का अर्थ मानव जाति है और 'दूनिन्नास' का अर्थ है अपनी क़ौम और नस्ल की विशेषता को ज़ाहिर करना और उसमें दूसरों के सम्मिलित होने से इन्कार करना।

३५१ (अपने इस दावे में कि हमारी नजात आवश्यक और क़तई है) पुराने तफ़्सीर करनेवालों ने यहाँ यह सवाल उठाया है कि यही माँग यहूद भी उलटकर मुसलमानों और रसूलुल्लाह सल्लअम से कर सकते थे और फिर अपने-अपने अन्दाज़ में उसके जवाब दिये हैं, लेकिन वास्तव में यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता। कोई मुसलमान कब यह समझता है कि उसकी नजात इसलिए हो जायेगी कि वह मुसलमान घराने में पैदा हुआ है। मुसलमान तो ख़ुद ही ईमान और नेक-अमल के दोहरे-दोहरे अख़्तियारी मेयार और स्तर से डरता-काँपता रहता है कि देखा चाहिए, हश्र में इस परीक्षा में पूरा उतरता भी है, या नहीं। यह इत्मीनान और ज़ोम (धारणा) कि चूँकि हम अमुक परिवार में पैदा हो गये हैं इसलिए बिना किसी प्रयास एवं परिश्रम के हमारी नजात तो यक़ीनी हो चुकी। यह अक़ीदा इसराईलियों के साथ ही विशेषता रखता था। मुसलमान इसके निकट ही कब गया, जो यह सवाल उस पर उठे ? इस्लाम इस नस्ली पवित्रता और इस प्रकार की नजात को मिटाने के लिए है। मुसलमान तो स्वयं ही कहता है कि मुझे अपना अंजाम नहीं मालूम है। मैं ख़ुदा के हुक्मों को मानकर और ईमान की राह पर चलकर आगे ख़ुदा की मेहरबानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रतीक्षा में हूँ। मुसलमान के सामने इस सवाल को पेश करने का कोई स्थान ही नहीं, फिर यह भी है कि यह माँग हर इसराईली से हर ज़माने के लिए है भी नहीं, इसका दायरा केवल उन दुश्मनी करनेवाले यहूद तक सीमित है, जो रसूल (स०) के ज़माने में थे और सारी गवाहियों के बाद भी इन्कार करते थे। इब्नुल् क़य्यम ने आयत का एक दूसरा ही अर्थ लिया है। उनका कहना है कि यह माँग उसकी नहीं है कि यहूद स्वयं अपने हक़ में मौत की दुआ करें, बल्कि इसका है कि अगर रसूल (स०) को काज़िब (झूठे दावे करनेवाला) मानते हैं तो काज़िब के हक़ में बद्दुआ करें. लेकिन इसकी हिम्मत उनको नहीं पड़ी और वह रसूल के हक़ में बद्दुआ न कर सके और यह एक अतिरिक्त एवं उज्ज्वल सुबूत एजाज़-मुहम्मदी (हज़रत रसूलुल्लाह के मोजिज़े) का है। और सीरत इब्ने हुश्शाम में स्वयं एक रिवायत (बयान की हुई घटना) भी इसके विषय में मौजूद है, जिसमें आयत के बाद उसका अर्थ यूँ अंकित है— "मौत की दुआ करो उस पार्टी के लिए, जो अल्लाह के यहाँ झूठ पर हो।" मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि मौत की मुहब्बत चाहे व्योहारिक हो या अक़्ली, वली होने की निशानियों में से है।

३५२ यानी उनका दिल स्वयं चोर है और उनकी अन्तरात्मा उनको बुरा कहती है। रब की हमेशगी का कोई जोश, कोई भावना उनमें अवशेष ही कहाँ है, जो यह आख़िरत की तमन्ना कर सकें। **'अबदन्'** के मानी भी यही होंगे कि यह अपने जीवन भर ऐसा न करेंगे।

३५३ यानी उन लोगों के हथकण्डों से, जो स्वयं अपने हक़ में ज़ुल्म करते रहते हैं।

३५४ यानी उस जीवन का लालच, जो अपवित्रता एवं गन्दगी से परिपूर्ण है। ज़िन्दगी से मुहब्बत और मौत से घबराहट तो एक हद तक स्वाभाविक है और इन स्वाभाविक सीमाओं तक इस्लाम में इस बात की बुराई नहीं की गई है, परन्तु यहूद की दुनियावी मुहब्बत इन सीमाओं से आगे बढ़ चुकी थी। दुनिया-परस्ती ही अस्ल जीवन का उद्देश्य बन गया था और रूहानियत (आत्मा सम्बन्धी बातों) का शौक़ बिल्कुल मर चुका था। हिन्दुस्तान में भी जिन क़ौमों ने 'जन्तर-मन्तर' इत्यादि दिखावे की रस्मों में विश्वास कर रखा है और उस पर बेहद भरोसा करते हैं, उनके हृदय भी आख़िरत से लगाव से वंचित हो जाते हैं। यहूद की दुनिया की मुहब्बत तो मिसाल बन चुकी है। 'जिविश इन्साइक्लोपीडिया' में तालमूद के हवाले से इस विषय के अनेकों क़ौल नक़्ल किये गये हैं कि दुनियावी ज़िन्दगी स्वयं एक नेमत है। गुनाहों को बरदाश्त कर लेना चाहिए, लेकिन मौत न गवारा करना चाहिए। अंग्रेज़ी तफ़्सीर देखिये।

३५५ [जो बेचारे आसमानी किताब और नबियों के पयामों (ख़बरों एवं सूचनाओं) से वंचित हैं] अर्थ यह है कि मुशरिक तो सिरे से आख़िरत की नेमतों के मज़े को जानते ही नहीं, वह अगर उधर से मुँह मोड़कर अपनी दृष्टि जीवन और उसकी प्राकृतिक लज़्ज़तों पर केन्द्रित करें तो कुछ ज़्यादा आश्चर्यजनक नहीं होगा। ग़ज़ब तो यह यहूद कर रहे हैं कि पयम्बरों के निर्देशों और आसमानी किताबों के होते हुए भी मुशरिकों से बढ़कर दुनिया से लिपटे हुए हैं। एक अजीब बात यह है कि आयु बढ़ाने के लिए जो नुस्ख़े और क्रियाएँ की जा रही हैं, उनमें सबसे आगे-आगे जो डाक्टर और वैज्ञानिक योरोप में पाये जाते हैं, वह आम तौर पर यहूद ही हैं।

३५६ **'अहदुहुम्'** सर्नाम **'हुम्'** का संकेत यहूद की ओर ही है। बाज़ों ने यह इशारा मुशरिकों की ओर बताया है, परन्तु तारतम्य से साफ़ यहूद की ओर इशारा है। **'अल्फ़सनः'** आवश्यक नहीं है कि अलिफ़् से पूरे दस सौ का ही अर्थ लिया जाये। केवल अलिफ़् भी बहुत बड़ी आयु के लिए प्रयोग में आ सकता है।

३५७ मान लिया जाये कि इतनी लम्बी आयु प्राप्त भी हो जाये तो क्या नतीजा? हर दशा में लम्बी से लम्बी आयु का अन्त तो एक रोज़ होना ही है और फिर उसी आख़िरत की पूछताछ का सामना होगा, फिर ऐसी व्यर्थ की तमन्ना के फेर में कोई धार्मिक व्यक्ति क्यों पड़ेगा? यह सम्भव ही कहाँ है? **'बिही'** का सर्नाम उसी अहद की ओर है जो ऊपर गुज़र चुका है।

३५८ (और हर प्रकार की सज़ा और बदला तथा इनाम देना उसके ही अधिकार में है) यह विश्वास कि ख़ुदा हर चीज को हर समय देख रहा है, हर बात को जानता है और हर शक्ति उसी की है, और हर जगह, हर समय मौजूद है, मनुष्य को सीधी राह पर चलाने के लिए बहुत लाभकर है। मनुष्य गुनाह, लापरवाही और ग़फ़लत की ओर तब ही पग बढ़ाता है, जब उसके मस्तिष्क से यह विचार ग़ायब हो जाता है कि हर जगह मौजूद और हर कुछ देखनेवाला ख़ुदा उसे देख रहा है। यही रहस्य है इस बात का कि क़ुर्आन मजीद में अल्लाह की इन सिफ़तों का कि वह हर चीज़ देखता है, सब कुछ जाननेवाला है, बार-बार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन हुआ है। **'बसीर'** यानी हर छोटी और पोशीदा बात भी उसकी नज़र के समक्ष स्पष्ट और प्रकाशित है। एक अर्थ यह भी बताया गया है कि वह देखने की शक्ति देनेवाला भी है और जानदारों को देखनेवाला उसी ने बनाया है।

३५९ 'जिब्रील' इस्लामी तक्नीकी शब्दों में एक सबसे बड़े फ़रिश्ते का नाम है। उनके ज़िम्मे एक अहम सेवा नबियों के पास 'वही' ले जाने की है। इन्सान चाहे वह कितना ही ख़ुदा तक पहुँचा हुआ हो, इन्सान है, मानव है और उसका जिस्म मिट्टी का होता है। उसके सीमित और मैले मिट्टी के अज़ो इस योग्य नहीं होते कि वह सीधे ख़ुदाई दरबार के प्रकाशों और तजल्लियों की किरणों को वहन कर सकें। इस कार्य के लिए स्वच्छ एवं साफ़ नूर के बने हुए फ़रिश्तों को माध्यम बनाया गया है और फ़रिश्ते ही यह कार्य संचालित करते हैं। यहूद भी मलायका (फ़रिश्ते) के होने को मानते थे बल्कि स्वयं हज़रत जिब्रील को महान फ़रिश्ता स्वीकार करते थे। उनका वर्णन तौरेत में आज तक है, लेकिन नादानी से यह विचार जमा लिया था कि वह अज़ाब लानेवाले फ़रिश्ते हैं। उनका काम वही लाना नहीं है, अज़ाब लाना है। वही लाना तो मीकाईल नामक फ़रिश्ते का है। इन बातों को मानते हुए वह रसूल (स०) पर एतराज़ करते थे कि यह नबूवत के नये मुद्दई अपनी 'वही' के विषय में हज़रत जिब्रील का नाम क्यों लेते हैं। यहाँ यहूद की इसी ग़लत समझ पर एतराज़ किया जा रहा है। मौजूदा तौरेत में बार-बार एक ऐसे फ़रिश्ते का ज़िक्र आता है, "जो लोगों को मारता था।" (२, सैमुऐल—१७, १६ : ४४)। और यहूद आलिमों ने इसका अर्थ "जिब्रील" ही निकाला था। आज भी यहूद हज़रत जिब्रील को हज़रत मीकाईल के बराबर ही नहीं, उनसे कमतर जानते हैं।

३६० (फिर उनसे दुश्मनी, विरोध और बग़ावत का क्या अर्थ है ?) **'अन्नहू'** सर्नाम जिब्रील की ओर है। **'नज़्ज़लहू'** सर्नाम क़ुर्आन की ओर है। **'अला क़ल्बिक'** इमाम राज़ी ने यहाँ यह प्रश्न उठाया है कि क़ुर्आन तो मुहम्मद (स०) पर उतरा है, फिर यहाँ मुहम्मद (स०) के हृदय को विशेषता क्यों दी है ? और फिर जवाब दिया है कि इस अवतरण (तंज़ील-क़ुर्आन) की सुरक्षा आपके हृदय ने ही की, इसलिए विशेषता के साथ उसका वर्णन हुआ है। यहाँ यहूद की नादानी और जिहालत को रफ़ा किया गया है और बताया गया है कि हज़रत जिब्रील के नाम से चिढ़ने के क्या माने हैं, वह तो ख़ुदा के एक विश्वासपात्र एलची हैं और दूत की सेवा पर नियुक्त हैं। **'बि इज़्निल्लाहि' 'इज़्न'** के मानी लुग़त में अलावा इजाज़त के हुक्म या इर्शाद के भी हैं। यहाँ भी इसके माने हैं अल्लाह के हुक्म या इर्शाद ही के।

३६१ यहाँ कलाम मजीद ने अपने तीन गुण नियत रूप से बताये हैं। एक यह कि वह पिछले नबियों और उनकी किताबों की तस्दीक़ करता है। उसका पयाम कोई निराला या अनोखा नहीं है, वही तौहीद का पुराना पाठ है जो सारी वही की श्रृंखला में संयुक्त रहा है। दूसरे यह कि वह स्वयं एक निर्देश है, और तीसरे यह कि वह ईमानवालों के लिए सच्चाई और ईश्वरीय ज्ञान और ख़ुदा की पहचान की एक शुभ सूचना है और ऐसे इल्म का भण्डार है।

३६२ यानी जो व्यक्ति भी अल्लाह या उसके पयम्बरों या उसके फ़रिश्तों, विशेष रूप से जिब्रील या मीकाईल जैसे ख़ुदा के निकटतम फ़रिश्तों से वह सम्बन्ध स्थापित करता है, जो उनके उचित रुतबे के विपरीत है। **'अदुव्व'** अरबी में यह दोस्ती और मुहब्बत के उलटे अर्थ में आता है। दूसरे माने इसके संज्ञा के रूप में दोस्त के मुक़ाबिले में आते हैं। इसके अर्थ में केवल दुश्मनी और अदावत ही नहीं, बल्कि आज्ञा-उल्लंघन, सत्य को न पहचानना और न मानना, संक्षेप में दोस्ती और स्नेह के उलटे मानों में सभी कुछ अर्थ आ जाता है। मीकाल या मीकाईल, जिब्रील की तरह एक ख़ुदा के निकटतम फ़रिश्ते का नाम है। खास रिवायतों में आया है कि उनके ज़िम्मे ख़ुदा के पैदा किये हुए हर जानदार को भोजन पहुँचाना और वर्षा की व्यवस्था करने की ज़िम्मेदारी है। अर्थात् जिस प्रकार शरई आदेशों के लिए जिब्रील एक विशेष माध्यम हैं, उसी प्रकार सृष्टि के आदेशों के लिए मीकाईल एक खास ज़र्या हैं। पहले का सम्बन्ध खास अल्लाह के दरबार से है, दूसरे का पालनहार के कार्यालय से वास्ता है, और दोनों का नाम एक साथ लाने से यह संकेत है कि दोनों अपने वास्तविक प्रवृत्ति के विचार से एक ही हैं। तौरेत में इनका वर्णन बड़े सम्मानपूर्वक अन्दाज़ में किया गया है। यहूद ने अपने सारे सम्बन्ध उन्हीं से जोड़ रखे थे और उन्हें अपना क़ौमी संरक्षक समझते थे। जब उन्होंने हज़रत जिब्रील के वही लाने के विषय में इन्कार किया था (देखें हाशिया ३५९), तो अपनी दुश्मनी और पसन्द को इन्हीं दो फ़रिश्तों का नाम लेकर प्रकट किया था, इसी कारण क़ुर्आन ने अपने उत्तर में भी स्पष्टीकरण इन्हीं दोनों के नाम का दिया है और साथ ही, जैसा कि क़ुर्आन मजीद का आम दस्तूर है कि किसी विशेष घटना से एक आम निर्देश और पाठ देता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, एक आम क़ायदा तमाम मासूमों (गुनाह से पाकसाफ़) यानी नबियों और मलायका के विषय में बयान कर दिया गया। 'व' शब्दकोष वालों ने लिखा है कि जोड़नेवाले इस अक्षर के अर्थ सदैव 'और' के नहीं होते 'या' के माने भी आते हैं। यहाँ भी इन नामों का जोड़ नहीं, बल्कि मुराद यह है कि जो कोई इनमें से किसी का भी विरोधी है। यहाँ यह सवाल न पैदा हो कि जिब्रील और मीकाईल तो आम शब्द मलायका में दाखिल हो ही चुके, फिर अब अलग से इनका ज़िक्र क्यों किया गया। नाम के साथ यह ज़िक्र केवल विशेषता और विवरण के विचार से है। आयत से यह दलील भी दी गई है कि जिब्रील और मीकाईल मलायका की सारी जमाअत में विशिष्ट हैं।

३६३ ऐसा हर व्यक्ति काफ़िर समझा जायेगा और उसके साथ वही व्योहार होगा, जो दुश्मन के साथ दुश्मन करता है। फ़क़ीहों ने (जो इल्म फ़िक़्ह के ज्ञाता हैं) कहा है कि मासूमों का कहना मानना गोया अल्लाह का कहना मानना और उनकी मुख़ालिफ़त अल्लाह की मुख़ालिफ़त है। फ़रिश्तों के आदेशों को पूरा करना गोया 'रब' का कहा मानना है, यह बात तौरेत में भी आई है— "देख मैं एक फ़रिश्ता तेरे आगे भेजता हूँ कि राह में तेरा संरक्षक हो और तुझे उस जगह, जो मैंने तैयार की है, ले आवे। इसके आगे होशियार रह और उसका कहा मान। उसे मत चिढ़ा क्योंकि वह तेरी ख़ता न बख़्शेगा कि मेरा नाम उसमें है। पर अगर तू सचमुच उसका कहा माने और सब, जो मैं कहता हूँ, कर ले तो मैं तेरे दुश्मनों का दुश्मन और तेरे बैरियों का बैरी हूँगा" (ख़ुरूज—२३ : २१, २०)। यह भी कहा गया है कि चारों ख़लीफ़ाओं और रसूल (स०) के असहाब, जिनकी बड़ाई लगातार बयान हुई है, उनकी दुश्मनी और मुख़ालिफ़त भी इसी हुक्म के अन्तर्गत आती है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि अल्लाह वालों से अदावत रखना ख़ुद अल्लाह तआला की अदावत का कारण बन जाता है।

३६४ (आपकी सच्चाई और नबूवत के) यानी क़ुर्आन स्वयं एक मोजिज़ा है, फिर दूसरी गवाहियाँ, जो ताईद करती हैं, दलीलें हैं, मोजिज़े हैं और शुभ सूचनाएँ हैं। **'आयातिम्-बय्यिनातिन्'** का अर्थ यहाँ क़ुर्आन की आयतें भी हैं, जो बेमिसाल शिक्षा से परिपूर्ण हैं। इन पर ध्यान देकर बाज़ शोधकर्ताओं ने यही पहलू अपनाया है। लेकिन शब्द 'आयात' आम भी है और विशाल भी, इसलिए दूसरे बुज़ुर्गों ने सारे क़ौल जमा करके लिखा है कि इससे मुराद सभी कुछ है यानी क़ुर्आन भी, मोजिज़े भी, पिछली किताबें भी और उनके विषय में सूचना भी और क़ुर्आन की व्यवस्था भी। यहूद, जो अपने-अपने पैग़म्बरों के मोजिज़ों की बातों के आदी हो चुके थे, बार-बार माँग करते थे कि यह कैसे नबी हैं? नबी हैं तो कोई निशानी तो दिखलायें। जवाब मिला कि तुम एक निशानी को कहते हो, हम तो उन्हें अनेकों निशानात दे चुके हैं और वह भी मुँदे-ढके नहीं हैं, खुले हुए हैं, प्रकाशित हैं और सबको दिखाई देनेवाले।

३६५ यानी इन गवाहियों से और खुली हुई दलीलों से कोई सही अक़्ल वाला तो इन्कार नहीं करता, बस वही लोग करते हैं जो ख़ुदा के क़ानून को तोड़ रहे हैं और उसकी शरीअत से बग़ावत करने के आदी हो चुके हैं। इंजील में यहूद के हृदय की कठोरता के विषय में है कि मसीह ने, "अगर्चे उनके सामने इतने मोजिज़े दिखाये तो भी वह उस पर ईमान न लाये।" (यूहन्ना—१२ : ३७)। **'अल्फ़ासिक़ून'** का अथ **'अल्काफ़िरून'** ही है क्योंकि यहाँ आमाल की ख़राबी का ज़िक्र नहीं है, अक़ीदे की ख़राबी का वर्णन है।

३६६ (ख़ुदा या उसके किसी नबी की आज्ञा का) वर्णन उन्हीं गुनाहों का पेशा करनेवाले यहूद का चल रहा है।

३६७ बनी इसराईल का इतिहास, ग़द्दारी, वादाख़िलाफ़ी, नाफ़र्मानी, बग़ावत इत्यादि का एक लगातार इतिहास है। तौरेत के पृष्ठ, इंजील के पन्ने, पिछले इतिहासकारों जैसे यहूद जोज़ेफ़्स इत्यादि के दफ़्तर सब इसी कहानी से भरे हुए हैं और यहाँ इशारा उनकी इसी क़ौमी विशेषता की ओर है। **'फ़रीक़'** का अनुवाद इस तारतम्य में टुकड़ी या टोली ही हो सकता है। **'फ़रीक़'** को अरबी में एक वचन ही में प्रयोग करते हैं। ज़्यादा और कम दोनों के लिए प्रयोग होता है।

३६८ (अपने किसी आज्ञाकारिता के वादे का) **'ला युअ्मिनून'** यानी वादे को पूरा करना तो अलग रहा, उनमें से बहुत से तो इसी के क़ायल नहीं मिलते कि कभी आज्ञाकारिता का वादा किया भी था। यहाँ यह शब्द अपने तक्नीकी अर्थ में नहीं, शाब्दिक अर्थ में प्रयोग हुआ है। दूसरा अर्थ यह भी होता है कि यह लोग ख़ुद अपनी किताबों ही पर कब ईमान रखते हैं। सारांश दोनों शक्लों का यही है कि वह वादे के पास ख़ास तौर पर आख़िरी नबी की तस्दीक़ करने के वादे का अपने आप को पाबन्द ही कब समझते हैं। यह मसला भी समझ लिया जाये कि अल्लाह की किताब की किसी एक आयत से भी इन्कार या अल्लाह के लिए हुए वादों में से किसी एक वादे से भी मुँह फेर लेने से इन्सान काफ़िर बन सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३६९ यानी किताब तौरेत की। यहूद को बताया यही जा रहा है कि नये नबी जो आये हैं, यह तुम्हारी किताब और उसके दीन को मिटाने के लिए नहीं, यह तो ऐन उसको ताज़ा बनाने और उसे नया जीवन प्रदान करने के लिए आये हैं। **'रसूल'** यह किस पयम्बर की ओर संकेत है और किसका ज़िक्र है? इससे किसी भी पयम्बर को समझा जा सकता है। बेहतर है कि इससे आख़िरी नबी ही को समझा जाये।

३७० किताब को पीठ के पीछे फेंकने का अर्थ है उसकी ओर बेतवज्जोह होना और उसका विरोध करते रहना। **'किताबल्लाहि'** से यहाँ क्या अर्थ लिया है? यहूद की बेतवज्जोही क़ुर्आन की ओर से तो स्पष्ट ही है और यह कोई बात ऐसी ध्यान दिलानेवाली और वर्णन योग्य न थी। ग़ज़ब यह था कि क़ुर्आन और साहिब-क़ुर्आन से मुख़ालिफ़त की धुन में स्वयं अपनी आसमानी किताब से भी वह लापरवाह हो गये और उससे भी सम्बन्ध तोड़ बैठे थे कि आख़िर तौरेत में आख़िरी नबी के विषय में भविष्यवाणियाँ, उनकी निशानियाँ और चिह्न और उन पर ईमान लाने की ताकीद अंकित थी। इस कारण शोधकर्ताओं ने इस बात को प्राथमिकता दी है कि यहाँ 'किताबल्लाह' का इशारा तौरेत की ओर है।

३७१ (कि इस किताब के अन्दर भी कोई लेख इस प्रकार का मौजूद है) यह भी कहा गया है कि उपमा इस आयत में उन लोगों से दी गई है, जो जाहिल हैं, गोया वह जान-बूझकर जाहिलों की-सी हरकत कर रहे हैं।

(फ़ुटनोट सफ़ा १३३ से)

इल्म में पड़े हुए हैं और इस सम्बन्ध में क़ुर्आन करीम बाज़ महत्त्वपूर्ण और दीनी सच्चाइयों को ज़बरदस्त प्रकाश में ले आया है। इस इल्म का अर्थ जादू की कला है। जादू-टोने की प्रवीणता के सम्बन्ध में यहूद की तारीख़ मान्यता पाये हुए है। उनके बड़ों ने इसका न केवल वर्णन ही किया है, बल्कि उस पर उनको बड़ा घमण्ड था। क़ुर्आन मजीद ने उनके विवरण को छोड़ते हुए केवल संकेत करना ही काफ़ी समझा है। यहूद का यह शौक़ रसूल (स०) के ज़माने में भी क़ायम था। आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय का यहूदी नस्ल का प्रोफ़ेसर मार्गोलीस, जिसको इस्लाम से सख़्त दुश्मनी थी, अपनी अंग्रेज़ी सीरतें-रसूल (स०) में उनके समय के यहूदें अरब के विषय में लिखता है— "यह लोग जादू की कला के विशेषज्ञ थे और रणभूमि में आने के बजाय सिफ़ली अमलयात (जादू-टोने) को प्राथमिकता देते थे।" (सफ़ा १८६)। अस्ल लेख और दूसरे हवालों हेतु अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित करें। और हमारे तफ़्सीर करने वालों ने इस जादू-टोने के लिए सुलैमानी ज़माने और मुहम्मदी (स०) समय को शरीक समझा है? **'शयातीन'** चूँकि यहाँ बहुवचन में यह शब्द आया है अतः इब्लीस की ओर इशारा नहीं है, यहाँ अर्थ है ख़बीस, गन्दे और सरकश जिन्नात, जो हज़रत सुलैमान के ताबे थे। लेकिन स्वयं जिन्नात क्या हैं? जिन्नात से अर्थ है वह समझ और बुद्धि रखनेवाली हस्तियाँ, जिनका जन्म आग से हुआ है। यह इन्सानी आँखों को आम तौर पर दिखाई नहीं देते हैं। इन्सान की तरह वह भी पाबन्द हैं, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि उनकी शरीअत भी अपने हर विवरण एवं अंशों के लिहाज़ से इन्सानी शरीअत हो। इस मख़्लूक़ का होना गवाहियों और देखनेवालों के बयानों से पूरी तरह सिद्ध है। इनके वुजूद (अस्तित्व) से इन्कार पर कोई तर्क नहीं है, न अक़्ली, न नक़्ली। कुछ लोगों का विचार है कि 'शयातीन' का अर्थ वह सरकश और ख़बीस इन्सान हैं जो हज़रत सुलैमान के विरोधी थे और आप पर नाना प्रकार के आरोप लगाया करते थे और जादू-टोने के भी माहिर थे। फ़रक़ा मोतज़िला (एक इस्लामी फ़िरक़ा) और राग़िब ने भी दोनों ओर का अर्थ उचित समझा है। अहल-सुन्नत के तफ़्सीर करनेवालों ने भी दोनों बातें उचित मानी हैं। अगर इन्सान ही माने जायें यानी सुलैमानी दरबार के बाग़ी सरदार और नायक तो उनका पूरा वर्णन अतीक़ी समय की बाज़ किताबों में पाया जाता है। अवलोकित हो— सलातीन—अध्याय ११, १२। **'अला मुल्कि सुलैमान'** यानी आपकी हुकूमत के समय में। 'सुलैमान बिन दाऊद' (६६० पूर्व मसीह ता ६३० पूर्व मसीह) इसराईली श्रृंखला के एक नामवर पयम्बर गुज़रे हैं और अपने पिता के समान एक बड़े बादशाह भी थे। शाम तथा फ़िलस्तीन के अतिरिक्त आपकी हुकूमत, पूर्व की ओर इराक़ की फ़ुरात नदी के किनारे तक और पश्चिम में मिस्र तक फैली हुई थी। आपकी हुकूमत की बड़ाई दोस्त, दुश्मन सभी को मान्य है। इस्लाम में आला से आला रूहानी एवं नैतिक मर्तबा यानी नबूवत तथा रिसालत के साथ जिस तरह फ़क़ीरी एवं ग़रीबी एकत्र हो सकती हैं, उसी प्रकार दौलत एवं अमीरी और हुकूमत तथा रियासत भी। इस्लाम का ख़ुदा ग़रीबों, अमीरों, कमज़ोरों और मालदारों, सबका यकसाँ ख़ुदा है। आयत का सारांश यह है कि जिस प्रकार यहूद के पूर्वज सुलैमानी समय में शैतानी कार्यों में (यानी जादू-टोने में) लगे हुए थे, उसी प्रकार आज भी बजाय नबी की हिदायतों पर चलने के उन्हीं जादू-टोने की हरकतों में पड़े हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३७४ आयत के इस स्थान पर पहुँचकर मोमिन के दिल में खटक पैदा होती है कि यह कहनेवाली कौन सी बात थी जो क़ुर्आन ने यहाँ कही। जब हज़रत सुलैमान सच्चे पैग़म्बर थे, तो ज़ाहिर है कि यह खुली हुई मोटी बात है कि वह कुफ़्र से क़तई दूर थे। पैग़म्बर के हक़ में यह बात अवतरित हो कि वह कुफ़्र से दूर थे, यह तो कुछ ऐसी बात ही नहीं हुई। खटक बजा है। क़ुर्आन मजीद कभी कोई छोटा सा बयान भी बेज़रूरत नहीं देता। मगर यहाँ क़ुर्आन को इस ऐलान और सूचना की ज़रूरत थी। इस ज़रूरत का ज्ञान एक सादा-दिल मुसलमान को नहीं हो सकता। इसका इल्म तो केवल सब कुछ देखने वाले एवं सब कुछ जाननेवाले परवरदिगार को ही हो सकता है। सुलैमान को पैग़म्बर माननेवाली दो क़ौमें पहले भी हो चुकी हैं। यह दोनों वही हैं जो किताबवाली कहलाती हैं, यानी यहूद तथा नसारा। इन दोनों के बड़ों ने अजीब कमाल दिखाया है कि एक तरफ़ तो उनकी पैग़म्बरी को मानती हैं और दूसरी ओर उनके कार्यों में गन्दे से गन्दे अपराध भी जोड़ दिये हैं, यहाँ तक कि कुफ़्र तथा शिर्क भी, कि अल्लाह की अदालत में कोई जुर्म इससे बड़ा है ही नहीं। यहूदी क़िस्सों और मसीही रिवायतों को छोड़िये, खास बाइबिल यानी अतीक़ी ज़माने की पुस्तकों में, जिन पर यहूद एवं नसारा दोनों का ईमान है, देखिये कि इस संग्रह में आज तक क्या विवरण पाये जाते हैं— "जब सुलैमान बूढ़ा हुआ तो उसकी दम्पत्तियों ने उसके हृदय को ग़ैरमाबूदों (अल्लाह के अलावा पूजनीय हस्तियों) की ओर प्रेणित किया और उसका दिल अपने खुदा की तरफ़ से कामिल न था।" (सलातीन—४, ६, १०, ११)। यानी केवल लापरवाही या कम तवज्जोही के कारण अमल में कमी या गुनाह नहीं, खुली हुई बदअक़ीदगी (अविश्वास), तौहीद की तरफ़ से बेयक़ीनी— आगे अवलोकन करें— "सो अज़बस (चूँकि) उसका दिल खुदावन्द इसराईल के खुदा से फिर गया इसलिए खुदावन्द सुलैमान पर ग़ुस्सा हुआ कि उसने आदेश दिया था कि वह अजनबी माबूदों की पैरवी न करे, पर उसने अपने खुदावन्द के हुक्म को याद न रखा।" (सलातीन—९, १०, ११)। मआज़ल्लाह ! खुदा का पयम्बर और कुफ़्र एवं शिर्क में लीन। यदि काबे से ही कुफ़्र पैदा हो तो मुसलमानी कहाँ रही ? दुनिया सैकड़ों वर्ष तक, हज़ार डेढ़ हज़ार वर्ष तक इन्हीं यहूदी हेराफेरी और नई बातों के तोड़-जोड़ के कारण इस तौहीद के बड़े पैग़म्बर को काफ़िर एवं मुशरिक समझती रही, यहाँ तक कि क़ुर्आन ने यह एलान किया, जो हर ज़माने और हर क़ौम के पैग़म्बरों की इज़्ज़त एवं नामूस का संरक्षक है और उसने विश्वास न करनेवाली दुनिया को बताया कि सुलैमान को मआज़ल्लाह काफ़िर कहते हो, वह तो कुफ़्र के निकट भी नहीं गये। क़ुर्आन की सत्य की आवाज़ वातावरण में गूँजी और खामोश हो गई। जिनके कान थे उन्होंने सुना, दुनिया अपने कारोबार में लगी रही, फँसी रही। बाइबिल वालों ने बाइबिल की परस्तारी न छोड़ी, यहाँ तक कि तेरह साढ़े तेरह सौ शताब्दियाँ बीत गईं और अब खुदा की क़ुदरत का मोजिज़ा देखिये कि अब जो बाइबिल की तहक़ीक़ और शोध करनेवाले हैं उन्हीं के क़लम से यह बात निकल रही है कि बाइबिल के इल्ज़ाम की तस्दीक़ नहीं होती, क़ुर्आन के जवाब की सफ़ाई हो रही है। 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, बरतानी प्रयास एवं खोज का सारांश होती है। उसके सबसे आखिरी एडीशन में एक लेख 'सुलैमान' के अन्तर्गत निकालकर देखें, साफ़ यह लेख मिलेगा— "सुलैमान खुदाए-वाहिद के सच्चे परस्तार थे।" (जिल्द २, सफ़ा ९५२, चौदहवाँ एडीशन)। इन्साइक्लोपीडिया बिबलिका, खास मसीही आलिमों और बाइबिल के परस्तारों ने शोध करने के पश्चात् लिखा है। उसमें यहाँ तक अंकित है कि बाइबिल की जो आयतें अभी ऊपर नक़्ल हो चुकी हैं, उनका हवाला देकर यह लिख दिया है कि यह इबारतें बाद को बढ़ायी गई हैं और जोड़ी हुई हैं और फिर लिखा है— "यह तो ग़ालिबन सही है कि सुलैमान की कई स्त्रियाँ थीं, इसराईली भी और ग़ैरइसराईली भी, लेकिन उन्होंने न तो सबके लिए बलिदान-गृह तैयार कराये और न स्वयं अद्वैत अल्लाह की परस्तिश (आराधना) के साथ अपनी बीवियों के देवताओं की पूजा का अनुभव होने दिया।" खैर यह तो अल्लाह के कलाम का एजाज़ था। इससे बढ़कर भी तो हो सकता था, लेकिन सीमित और त्रुटिपूर्ण बुद्धि वाले और समय एवं स्थान से बँधे हुए ज्ञान रखनेवाले बन्दों ने अपनी ईमानी सूझ-बूझ से और खोज से जो काम कर दिखाया है, वह भी मोजिज़े से कुछ कम नहीं। तफ़्सीर करनेवालों के सरदार इमाम इब्ने जरीर आज के नहीं, आज से एक हज़ार साल पूर्व के शख्स हैं और यहूद तथा नसारा की किताबों से सम्भवतः ज़्यादा परिचित भी न हों, आज नहीं, उस वक़्त अपनी तफ़्सीर में इब्ने इसहाक़ के हवाले से यह रिवायत विवरण सहित अंकित कर गये हैं कि उपर्युक्त आयत यहूद के गन्दे अक़ीदों और इल्ज़ामों को रद करने के लिए अवतरित हुई है, जो आपस में कहते थे कि— "इन नये नबूवत के मुद्दई की नादानी तो देखो कि इब्ने दाऊद को यह अल्लाह के नबी के रूप में पेश कर रहे हैं यद्यपि वह तो बस एक जादूगर था। अल्लाह ने उन्हीं के विचार को रद करने हेतु यह आयत

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १३४ पर)

CC-0. Agamnidam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वत्तबअ़ू मा तत्लुश्शयातीनु अ़ला मुल्कि सुलैमान ज व मा कफ़र सुलैमानु व
लाकिन्नश्शयातीन कफ़रू युअ़ल्लिमूनन्नासस्-सिह्र क़ व मा॑ उन्ज़िल अ़लल्मलकैनि
बिबाबिल हारूत व मारूत त व मा युअ़ल्लिमानि मिन् अह़दिन् ह़त्ता यक़ूला॑ अिन्नमा
नह़्नु फ़ित्नतुन् फ़ ला तक्फ़ुर् त फ़ यतअ़ल्लमून मिन्हुमा मा युफ़र्रिक़ून बिही बैनल्-
मर्अि व ज़ौजिही त व मा हुम् बिज़ा॑र्रीन
बिही मिन् अह़दिन् अिल्ला बिअिज़्निल्लाहि त
व यतअ़ल्लमून मा यज़ुर्रुहुम् व ला यन्फ़अ़ु-
हुम् त व लक़द् अ़लिमू लमनिश्तराहु मा लहू
फ़िल्आख़िरति मिन् ख़लाक़िन् क़िफ़ त व
लबिअ्स मा शरौ बिही॑ अन्फ़ुसहुम् त लौ कानू
यअ़लमून (१०२) व लौ अन्नहुम् आमनू
वत्तक़ौ लमसूबतुम्मिन् अ़िन्दिल्लाहि ख़ैरुन् त
★ रु. लौ कानू यअ़लमून (१०३) ★ या॑
१२ अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तक़ूलू राअिना व
१२ आ क़ूलुन्ज़ुर्ना वस्मअ़ू त व लिल्काफ़िरीन अ़ज़ाबुन्
७ अलीमुन् (१०४) मा यवद्दुल्लज़ीन कफ़रू
मिन् अह्लिल्-किताबि व लल्मुश्रिकीन
अंय्युनज़्ज़ल अ़लैकुम् मिन् ख़ैरिम्-मिर्रब्बिकुम् त
वल्लाहु यख़्तस्सु बिरह़्मतिही मंय्यशा॑अु त वल्लाहु ज़ुल्फ़ज़्लिल्-अ़ज़ीमि (१०५)
मा नन्सख़् मिन् आयतिन् औ नुन्सिहा नअ्ति बिख़ैरिम्मिन्हा॑ औ मिस्लिहा त
अलम् तअ़लम् अन्नल्लाह अ़ला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन् (१०६) अलम् तअ़लम्
अन्नल्लाह लहू मुल्कुस्समावाति वल्अर्ज़ि त व मा लकुम् मिन् दूनिल्लाहि मिंव्वलिय्यिंव्व
ला नसीरिन् (१०७) अम् तुरीदून अन् तस्अलू रसूलकुम् कमा सुअिल मूसा मिन्
क़ब्लु त व मंय्यतबद्दलिल्-कुफ़्र बिल्ओमानि फ़ क़द् ज़ल्ल सवा॑अस्सबीलि (१०८)
वद्द कसीरुम्मिन् अह्लिल्किताबि लौ यरुद्दूनकुम् मिम्बअ़्दि ओमानिकुम् कुफ़्फ़ारन् ज ह़ला
ह़सदम्मिन् अ़िन्दि अन्फ़ुसिहिम् मिम्बअ़्दि मा तबय्यन लहुमुल्ह़क़्क़ु ज फ़अ़्फ़ू वस्फ़ह़ू
ह़त्ता यअ्तियल्लाहु बिअम्रिही त अिन्नल्लाह अ़ला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन्
● सू. (१०९) ● व अक़ीमुस्सलात व आतुज़्ज़कात त व मा तुक़द्दिमू लिअन्फ़ुसिकुम्
३ / ४ मिन् ख़ैरिन् तजिदूहु अ़िन्दल्लाहि त अिन्नल्लाह बिमा तअ़मलून बसीरुन् (११०)

الم ١ ١٣ البقرة ٢

يُعَلِّمٰنِ مِنْ اَحَدٍ حَتّٰى يَقُوْلَآ اِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ فَلَا تَكْفُرْ فَيَتَعَلَّمُوْنَ مِنْهُمَا
مَا يُفَرِّقُوْنَ بِهٖ بَيْنَ الْمَرْءِ وَزَوْجِهٖ وَمَا هُمْ بِضَآرِّيْنَ بِهٖ مِنْ اَحَدٍ اِلَّا بِاِذْنِ
اللّٰهِ وَيَتَعَلَّمُوْنَ مَا يَضُرُّهُمْ وَلَا يَنْفَعُهُمْ وَلَقَدْ عَلِمُوْا لَمَنِ اشْتَرٰىهُ مَا لَهٗ
فِي الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا بِهٖٓ اَنْفُسَهُمْ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ۝
وَلَوْ اَنَّهُمْ اٰمَنُوْا وَاتَّقَوْا لَمَثُوْبَةٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ خَيْرٌ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ۝
يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقُوْلُوْا رَاعِنَا وَقُوْلُوا انْظُرْنَا وَاسْمَعُوْا وَلِلْكٰفِرِيْنَ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝ مَا يَوَدُّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ وَلَا الْمُشْرِكِيْنَ اَنْ
يُّنَزَّلَ عَلَيْكُمْ مِّنْ خَيْرٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَاللّٰهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ يَّشَآءُ وَاللّٰهُ
ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۝ مَا نَنْسَخْ مِنْ اٰيَةٍ اَوْ نُنْسِهَا نَاْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَآ اَوْ
مِثْلِهَا اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ لَهٗ مُلْكُ
السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ۝ اَمْ
تُرِيْدُوْنَ اَنْ تَسْـَٔلُوْا رَسُوْلَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوْسٰى مِنْ قَبْلُ وَمَنْ يَّتَبَدَّلِ
الْكُفْرَ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيْلِ ۝ وَدَّ كَثِيْرٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ
لَوْ يَرُدُّوْنَكُمْ مِّنْ بَعْدِ اِيْمَانِكُمْ كُفَّارًا حَسَدًا مِّنْ عِنْدِ اَنْفُسِهِمْ مِّنْ
بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمُ الْحَقُّ فَاعْفُوْا وَاصْفَحُوْا حَتّٰى يَاْتِيَ اللّٰهُ بِاَمْرِهٖ اِنَّ اللّٰهَ
عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَمَا تُقَدِّمُوْا
لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوْهُ عِنْدَ اللّٰهِ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यह लोग पीछे लग गये[३७२] उस (इल्म) के जो सुलेमान (अ०) की बादशाहत में शैतान
पढ़ा करते थे[३७३] और सुलेमान ने तो कभी कुफ़्र नहीं किया[३७४], अलबत्ता शैतान (ही) कुफ़्र किया
करते थे[३७५] लोगों को जादू की शिक्षा देते[३७६] और (वह पीछे लग गये)[३७७] उस (इल्म) के भी
जो बाबुल में दो फ़िरिश्तों हारूत व मारूत पर उतारा गया था[३७८]। और वह दोनों किसी को
भी (इस) कला की बातें न बतलाते थे[३७९] जब तक यह न कह देते[३८०] कि हम तो बस एक
(माध्यम) हैं परीक्षा के[३८१], सो तुम कहीं कुफ़्र न अख़्तियार कर लेना[३८२]। मगर (लोग)
इन दोनों से वह (जादू) सीख ही लेते[३८३] जिससे वह जुदाई डाल देते मर्द और उसकी पत्नी
के बीच[३८४]। यद्यपि वह (वास्तव में) किसी को भी उसके माध्यम से हानि न पहुँचा सकते,
मगर हाँ अल्लाह के इरादे से[३८५] और यह वह चीज़ सीखते हैं जो उन्हें नुक़्सान तो पहुँचा सकती
है और उन्हें नफ़ा नहीं पहुँचा सकती[३८६]। और (यह भी) ख़ूब जानते हैं[३८७] कि जिसने उसे अपना
लिया उसके लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं[३८८]। और बहुत ही बुरी चीज़ है जिसके बदले में
उन्होंने स्वयं को बेच डाला है[३८९]। काश वह (इतना ही) जानते[३९०]। (१०२) और अगर ★
वह लोग ईमान ले आते और तक़वा (पवित्रतापूर्ण जीवन) अख़्तियार करते तो उसका सवाब रु.
अल्लाह के यहाँ कहीं बेहतर होता। काश वह (इतना) जानते[३९१]। (१०३) ★ १२/१२

ऐ ईमानवालो ! "राअिना" मत कहा करो[३९२] और 'उन्ज़ुर्ना' कहा करो और सुनते रहा आ
करो[३९३] और काफ़िरों के लिए अज़ाब दर्दनाक है[३९४]। (१०४) जो लोग काफ़िर हैं (चाहे) ७
एहलेकिताब (किताबवाले) में से हों या मुशरिकों में से[३९५], वह उसे ज़रा भी पसन्द नहीं करते
कि तुम्हारे ऊपर कोई भी भलाई तुम्हारे परवरदिगार की तरफ़ से उतरकर रहे[३९६]। हालाँकि
अल्लाह अपनी रहमत से जिसे चाहे विशेषता दे[३९७] और वह बड़े ही फ़ज़्ल (मेहरबानी) वाला
है[३९८]। (१०५) हम जिस निशान को मौक़ूफ़ कर देते हैं या उसे भुला देते हैं[३९९] तो कोई उससे
बेहतर ही[४००] या उसी की तरह का ले आते हैं। क्या तुझे ख़बर नहीं कि अल्लाह हर चीज़
पर क़ादिर (शक्ति रखनेवाला) है[४०१]। (१०६) क्या तुझे ख़बर नहीं कि अल्लाह के लिए
सल्तनत आसमानों और ज़मीन की है[४०२] और अल्लाह के सिवा कोई भी तुम्हारा यार तथा
मदद करनेवाला नहीं[४०३]। (१०७) तुम तो यह चाहते हो कि अपने रसूल से सवाल कर
डालो[४०४] जैसा कि (इसके) पूर्व मूसा से सवाल किये जा चुके[४०५] और जो कोई ईमान के
बदले में कुफ़्र अख़्तियार कर लेगा[४०६], सो वह अवश्य ही सीधी राह से भटक गया। (१०८)
बहुत से अहले किताब तो दिल ही से चाहते हैं कि तुम्हें ईमान (ले आने के बाद) फिर से
काफ़िर बना लें[४०७]। हसद (जलन) की राह से जो उनके मनोवृत्ति में है[४०८] (और
यह भी) बाद उसके कि उन पर सच्चाई ज़ाहिर हो चुकी[४०९], सो क्षमा करते रहो और
माफ़ करते रहो[४१०], यहाँ तक कि अल्लाह अपना हुक्म भेज दे[४११]। अवश्य ही अल्लाह हर सु.
चीज़ पर अख़्तियार रखता है[४१२]। (१०९) ● और नमाज़ की पाबन्दी रखो और ज़कात ३/४
देते रहो[४१३] और जो कुछ भलाई तुम अपने वास्ते आगे भेज दोगे, उसे अल्लाह के पास पा
लोगे[४१४]। अवश्य ही तुम जो कुछ कर रहे हो, अल्लाह उसका ख़ूब देखनेवाला है[४१५]। (११०)

---

३७२ ज़िक्र इसराईलियों का चल रहा है और वही यहाँ संकेत में हैं, खासकर अरब के यहूद। 'वत्तबअ़ू'— तस्दीक़ करने लगे, पैरवी करने लगे।

३७३ यानी इसके बजाय कि सच्चे नबी की तस्दीक़ करते और 'वही' की पैरवी करते, यह यहूद तो एक और ही इल्म के पीछे लग गये और वह इल्म भी किसका ? शैतान का। क़ुर्आन मजीद उस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण क़ौम यहूद के पत्तरे तो खोल ही रहा है, अब उसने उनके अपराध-पत्र में एक इस विषय को भी बढ़ा दिया कि यह लोग अल्लाह की 'वही' की पैरवी करने के स्थान पर एक दूसरे शैतानी

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १३० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १३१ से)

उतारी है और हिसास राज़ी ने इस प्रकार की रिवायत में अलावा मुहम्मद बिन इसहाक़ के, इब्ने अब्बास सहाबी और सईद बिन जबीर और क़तावा ताबेईन का भी हवाला दिया है।

३७५ (और उसको हज़रत से सम्बद्ध कर देते थे) इन शैतानों की (चाहे वह जिन हों या इन्सान) एक शैतनत (शरारत) यह भी कि अपनी काफ़िराना हरकतों और जादू-टोने की बातों को हज़रत सुलैमान की ओर घुमा देते थे। मशहूर यह कर देते थे कि हम तो जो कुछ कर रहे हैं उनके इशारे से ही कर रहे हैं, वरना ज़ाहिर है कि अल्लाह के सच्चे नबी को इन गन्दगियों से क्या वास्ता हो सकता था। क़ुर्आन करीम ने किस-किस प्रकार से दूसरी उम्मतों के नबियों की सफ़ाई पेश की है। उन्हीं के उम्मतियों के लगाये हुए दाग़-धब्बे उनके पाक चरित्र से दूर किये हैं और यह नाशुक्रगुज़ार क़ौमें हैं कि उलटी क़ुर्आन की ही दुश्मनी पर तुली हुई हैं।

३७६ **'अस्सिह्‌र'** इसकी हक़ीक़त, अस्लीयत और क़िस्में और इसके शर्ई हुक्मों पर बाज़ पुराने तफ़्सीर करनेवालों ने बड़ी ब्योरेवार बात की है। विशेषकर अबू बक्र हिसास राज़ी, इमाम फ़ख़रुद्दीन और इब्ने कसीर ने। यहाँ संक्षिप्त रूप में बस इतना जान लेना काफ़ी है कि यह नाम है छुपे हुए कारणों का, जैसे सितारों के प्रभाव, शैतानों और जिनों इत्यादि से काम लेकर अजीब-अजीब मश्क़ें करने और रियाज़तों से यह कला प्राप्त होती है। मुशरिक जाहिली क़ौमों में इसका रिवाज पहले भी ज़ोरोशोर से रह चुका है और अब भी है। शरीअत-इस्लाम ने इसको हराम क़रार दिया है। **'युअल्लिमूनन्नास'** 'युअल्लिमून' का कर्ता 'शयातीन' का होना ज़ाहिर ही है। अक्सर तफ़्सीर करनेवालों ने इसी तर्कीब को अपनाया है और यहाँ भी अनुवाद इसी आधार पर किया गया, लेकिन इसकी भी गुंजाइश है कि कर्ता शैतानों के बजाय यहूद को ही समझा जाये— यानी यह यहूद लोगों को तालीम देते रहते हैं जादू की। जादू-टोना बनी इसराईल के इतिहास का एक माना हुआ और अकाट्य अंश है। स्वयं अहद-अतीक़ की पुस्तकों में इसकी गवाही मौजूद है— "उन्होंने अपने बेटे-बेटी को आग में गुज़ारा और फ़ालगीरी और जादूगरी की……इन कारणों से ख़ुदावन्द बनी इसराईल पर गुस्सा हुआ और अपनी नज़र से उन्हीं को गिराकर दूर कर दिया।" (२१, सलातीन—१७ : १७, २१)। तफ़्सीर करनेवाले जनाब हिसास राज़ी ने 'अहकामुल् क़ुर्आन' में इबारत की तर्कीब सबसे विभिन्न मानकर माने भी स्वाभाविक रूप में बिल्कुल अलग लिये हैं। इस पर भी वह पहुँचे उसी नतीजे पर, जिस पर और अहल-सुन्नत पहुँचे हुए हैं। आयत का अर्थ यह लिखा है कि अल्लाह ने अपने दो फ़रिश्ते भेजे कि वह दुनिया पर जादू का अर्थ रौशन कर दें और यह बता दें कि यह सब झूठ और कुफ़्र है, जिससे बचना ज़रूरी है।

३७७ बयान उन्हीं अरब-यहूद का चल रहा है। क़ुर्आन जो कुछ भी कहता है, ख़ालिस सत्य की शान के साथ बिल्कुल निर्भयता के साथ कहता है। उसको किसी बाहरी सहारे की तलाश नहीं होती। बाहरी सहारे अपने आप उसकी तरफ़ खिचते चले आते हैं। उसे अपनी जगह पर पूर्ण विश्वास है कि उसके किसी बयान की काट सम्भव नहीं है और सत्य की तलाश करनेवाले को उसके बयान में सन्देह और भ्रम पैदा ही न होगा। अरब-यहूद के जुर्मों का लेखा ऊपर से चला आ रहा है। अभी-अभी उनके फ़िलस्तीनी जादू का ज़िक्र आ चुका है (सुलैमान नबी फ़िलस्तीन के बादशाह थे, उनके समय का जादू फ़िलस्तीनी जादू ही कहा जायेगा)। अब वह यह भी कहे डालता है कि यह तौहीद के पुराने अमानतदार और किताब एवं सुन्नत (रसूल की बताई हुई राहें) के पुराने क़दर पहचाननेवाले यही नहीं कि सुलैमानी समय के शैतानों, जिन एवं इन्सानों की जादू और टोने की रिवायतों का हक़ अदा कर रहे हैं, बल्कि उस फ़िलस्तीनी जादू के अलावा बाबुल या इराक़ के भी जादू के वारिस बने हुए हैं। दावा करते हैं रूहानियत, इल्म और बड़ाई का, लेकिन अमलन जादू-टोने की नयी-नयी क़िस्मों में डूबे पड़े हैं। पुराने इतिहास के जाननेवालों से यह हक़ीक़त छुपी हुई नहीं है कि रसूल (स०) के ज़माने में और इस्लाम के शुरू होने से शताब्दियों पूर्व बनी इसराईल की क़ौम दो हिस्सों में बँट चुकी है। एक टुकड़ा वह, जो बख़्त नसर के हाथों जिलावतनी या जबरी हिजरत (वतन छोड़ना) के बाद कल्दानिया या बाबुल (मौजूदा इराक़) में रह पड़ा था और वहीं बस गया था। दूसरी शाख़ वह, जो एक मुद्दत के बाद वहाँ से वापस आकर फिर फ़िलस्तीन में आबाद हुई। आयत इस तारीख़ी राज़ को खोल रही है कि रसूल (स०) के ज़माने के यहूद फ़िलस्तीनी और बाबुली दोनों क़िस्मों की गन्दगियों और कमीनगियों से परिपूर्ण थे। पुरातत्वकाल के इतिहास के यह नाज़ुक नुक्ते और अपनी जगह पर मानी-जानी सच्चाइयाँ, जो आम तौर पर अच्छे-अच्छे जानकारों की जानकारी में भी नहीं हैं, अदा कराये जा रहे हैं। किसी इतिहासकार की ज़बान से नहीं, अरब के एक निरक्षर (उम्मी) की ज़बान से— अल्लाह ! अल्लाह !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३७८ (किसी खास हिकमत एवं मस्लहत के अन्तर्गत) इस सम्बन्ध में दो बातें याद रहनी चाहिए। इसके बाद इन्शा अल्लाह आयत की तफ़्सीर में कोई उलझन ज़ेह्न में पैदा नहीं होने पायेगी। (१) एक यह कि अल्लाह की ओर से आदेशों का उतरना केवल शरई आदेशों में नहीं होता, दुनियावी मामलों में भी होता है। (२) दूसरे यह कि दुनियावी मामलों में जो काम गन्दे से गन्दा भी किया जाता है, उसके लिए माध्यम और ज़र्या केवल फ़रिश्ते ही होते हैं और यह बात उनकी पवित्रता एवं बेगुनाही के ज़रा भी विरुद्ध नहीं है। **'अुन्ज़िल'** अल्लाह की तरफ़ से 'नाज़िल' (अवतरण) केवल किताब एवं हिकमत, 'वही' और 'इल्हाम' (खुदा की ओर से दिल में किसी बात का आना) ही नहीं होता। क़हत (अकाल), बीमारी, या मौत सबका अवतरण, चूंकि अल्लाह ही सब अस्बाबों का पैदा करनेवाला है, अतः उसी की ओर से होता रहता है। क़ुर्आनी मुहावरे में अंज़ाल का शब्द रोज़ी, पानी, कपड़ा, लोहा, चौपाये के विषय में विवरण के साथ आया है यहाँ तक कि 'रिज्ज़' यानी अज़ाब और बला के लिए भी यह शब्द प्रयोग में आया है। इसलिए जिन लोगों ने जादू का उतरना अल्लाह तआला की जानिब से सम्बद्ध किये जाने को उसकी बड़ाई और पाकीज़गी के खिलाफ़ समझा, वह एक बड़ी ग़लतफ़हमी में पड़ गये हैं। केवल जादू ही क्या, सृष्टि में समस्त अच्छा-बुरा, सत्य एवं झूठ, ईमान तथा कुफ़्र, इबादत और गुनाह जो कुछ भी मौजूद है, सबका अस्तित्व दुनियावी रूप में सारे कारणों के पैदा करनेवाले ही के उतारने से तो हुआ है। अंज़ाल का यहाँ वही विशाल अर्थ है यानी उन्हें यह बात बता दी गई— उनके दिल में डाल दिया गया। बड़ाई और सम्मान को ज़ाहिर करने का उद्देश्य नहीं है। **'अल्मलकैनि'** शब्द 'मलक' पढ़ा जाता है, लेकिन 'मलिक' भी सहाबा और ताबेईन के ज़माने से चला आ रहा है, चुनांचे इसी दूसरी तरह पढ़ने से तफ़्सीर करनेवाले इस विचार में हो गये कि यह दोनों वास्तव में फ़रिश्ते नहीं थे, इन्सान थे और बादशाह और उन्हें जो दूसरी रिवायतों में फ़रिश्ता कहा गया है तो वह केवल मजाज़न (अर्थ में) यानी उनके मलकूती गुणों के कारण। लेकिन बहुमत का विचार 'मलक' पढ़े जाने के कारण उनको फ़रिश्ता ही मानता है। सृष्टि के नियम एवं व्यवस्था में फ़रिश्तों के ऊपर जादू की हक़ीक़त का उतरना उनकी स्वच्छता एवं पाकीज़गी के विरुद्ध नहीं है, खासकर ऐसी दशा में, जबकि उनके दिल पर जादू की हक़ीक़त के उतारने का मंशा ही जानदारों का सुधार करना था। यानी लोगों को जादू-टोने से बचाना, सुरक्षित करना; न कि उस पर आमादा करना। मैजिस्ट्रेटों, पुलिस के अफ़सरों को जुर्मों से अमली वाक़िफ़ीयत और जानकारी करते किसने नहीं देखा? ज़ाहिर है कि यह इसलिए नहीं होता कि वह स्वयं जुर्म करें, बल्कि इसलिए होता है कि अमली जानकारी से वह मुजरिमों को जुर्म करने से रोकें। 'बाबुल' जिस पुराने देश का नाम है, वह मौजूदा नक़्शे में इराक़ अरब कहलाता है। मुल्क की राजधानी का भी यही नाम था। यह नगर फ़ुरात नदी के किनारे आबाद था और मौजूद बग़दाद से दक्षिण में साठ मील के फ़ासले पर था, लगभग वहीं जहाँ आजकल हुल्ला की आबादी है। नगर बहुत बड़ा था, मीलों की चौहद्दी थी। देश अपनी उन्नति के ज़माने में बड़ा हरा-भरा, खुशहाल, सभ्य एवं सुन्दर रह चुका है। नहरों, पानी के नलों, शाही महलों, क़िलों आदि के आसार अब भी पाये जाते हैं। उनसे इतना तो बहरहाल साबित होता है कि देश में माहिर इंजीनियरों की कमी नहीं थी। दजला और फ़ुरात दो नदियाँ इस इलाक़े को सेराब (जल से सींचकर तृप्त) करती थीं। इस राज्य की तरक़्क़ी का ज़माना लगभग ३०० पूर्व मसीह का समझा गया है। देश की शोहरत विशेष रूप से जन्तर-मन्तर एवं जादू-टोने के कारण भी थी, जिनको अंग्रेज़ी में (इल्मे नेरुजात) Oecult-Sciences कहते हैं। इसी देश का क़दीम नाम कालिडया (कल्दानिया) है और अंग्रेज़ी में आज तक शब्द काल्डीन (कल्दानी) जादूगर के माने में आता है। यहूद एवं नसारा की किताबों में इस देश का नाम बराबर लिया जाता रहा है। यह वर्णन इस देश की बड़ाई का भी है और उसकी तबाहकारियों और बदअमली का भी है। अवलोकित हो दानियाल—३ : ४, मुकाशिफ़ा—१० : ५, १८ : ३० इत्यादि, लेकिन इस लिस्ट में जुर्मों का प्रथम विषय जादूगरी का था। बाइबिल की गवाही अवलोकित हो। "तेरे सौदागर ज़मीन के अमीर थे। तेरी जादूगरी से ज़मीन की सारी क़ौमें गुमराह हो गईं और नबियों और पवित्र लोगों और ज़मीन के और सब मक़्तूलों का खून उसमें बहाया गया।" (मुकाशिफ़ा—१८ : २३, २४)। पुराने लेख और तहरीरें, जो मालूमात में आई हैं, उनकी यह संयुक्त गवाही है कि बाबुली धर्म का सबसे बड़ा अंश जादूगरी और टोना और जन्तर, मन्तर, टोटके इत्यादि थे। "बाबुली धर्म का सबसे बड़ा अंश जादू-टोना की विभिन्न क़िस्में हैं······बाबुली मजहब की किताबों को उठाकर देखिये तो हर तरफ़ जादू-टोने के मन्तर ही मन्तर दिखाई देंगे।" (इन्साइक्लोपीडिया आफ़ रेलीजन्स ऐण्ड एथिक्स—जिल्द २, सफ़ा ११६)। एक और आलिम की खोज है— "बाबुल के मज़हब और नैनवा के धर्म का सबसे बड़ा भाग भूत-परेत का उतारना, झाड़ना था।" (राजर्स की रेलीजन आफ़ बैबीलोनिया ऐण्ड

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असीरिया, सफ़ा १४५)। यह जादू का पेशा करनेवाली क़ौम जब सन् ३८ पूर्व मसीह में ईरान के बादशाह के हाथों बरबाद एवं तबाह हुई, तो बिखरकर यह जहाँ-जहाँ पहुँची अपने साथ जादू-टोने की कला भी लेती गई। तारीख़ का बयान है— "यह लोग जहाँ-जहाँ गये, अपने इल्मों को अपने साथ लेते गये। उनकी शिक्षा देते रहे और कमज़ोर अक़ीदे के लोग हर जगह उनको हाथों-हाथ लेते रहे।" (रीगोज़ीन की काल्डीया, सफ़ा २५५)। यहूद इन उस्तादों और गुरुओं के ख़ास चेले साबित हुए। "बाबुल के मेलजोल ने इसराईलियों के मलायका और शैतानों के विषय में जो अक़ीदे थे उन पर प्रभाव डालना आरम्भ किया।" (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—जिल्द १३, सफ़ा १८७, ग्यारहवाँ एडीशन)। यहूद के बड़ों ने स्वीकार किया है कि "बाबुल का मज़हबी सम्मान हर क्षेत्र के यहूद में बना रहा।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया, जिल्द ६, सफ़ा ४१३)। हमारे पुराने तफ़्सीर करनेवालों की तुर्बतें (क़ब्र) अल्लाह ठण्डी रखे। बग़ैर इसके कि उनके कान में भनक पड़े उन आवाज़ों की कि उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िर में सर हेनरी रालेन्स को और बीसवीं शताब्दी में सर लेवनार्ड वूली और दूसरे आसारों के माहिरों को बाबुल के खँडहरों में कैसे-कैसे कतबे (पत्थरों पर लेख) अभ्यास और नक़ूश (तावीज़ के प्रकार के नक़्शे) मिले हैं, केवल अपनी ईमानी शक्ति की प्रदान की हुई रौशनी और खोज से काम लेकर **'मा उनुज़िल अलल् मलकैनि'** को जोड़नेवाले अक्षरों, **'मा ततलुश्शयातीन'** पर ध्यान देकर इस तारीख़ी सच्चाई को स्पष्ट और बेनक़ाब कर गये कि यहूद की फ़र्दे जुर्म दोनों अपराधों से सियाह है फ़िलस्तीन और बाबुल के जादू पर अमल करने से। ख़ुद क़ुर्आन का मोजिज़ा तो ख़ैर बड़ी चीज़ है, हक़ बात यह है कि क़ुर्आन वालों का एजाज़ भी अपनी जगह दिलों को हिला देने के लिए बिल्कुल काफ़ी है। जादू-टोने का परवान चढ़ानेवाली भूमि में जब गन्दे ज्ञानों और जादू-टोने का ज़ोर हद से बढ़ गया और आम जनता के ज़ेहन में सच्चाई के पुकारनेवाले और उसका प्रचार करनेवाले नबियों और वलियों की हैसियत मिल-जुलकर और उन्हीं के वस्त्रों में छुपकर जादूगरों, काहिनों, अमलियात करनेवालों और शोब्दा बाज़ों की होकर रह गई तो अल्लाह की हिकमत ने सत्य एवं झूठ के इन दो प्रचारकों के गरोहों में विशेष फ़ासला एवं अन्तर कराने के लिए और लोगों के विचारों में सुधार कराने के विचार से दो फ़रिश्तों को मनुष्यों की शक्ल और जिस्म में भेजा। "हारूत तथा मारूत" यह उन दोनों फ़रिश्तों के नाम हैं। दोनों अपनी अस्ल हक़ीक़त के लिहाज़ से फ़रिश्ते थे, परन्तु जब एक विशेष उद्देश्य से मनुष्यों के बीच रहने-बसने के लिए भेजे गये थे तो ज़ाहिर है कि उनकी शक्लोसूरत, जिस्म तथा रंग-रूप इन्सानों का ही होगा, और उनकी आदतें और भावनाएँ भी मनुष्यों की ही होंगी। बाज़ तफ़्सीर वालों ने एक क़िस्सा यहूद का बयान किया है। इराक़ की प्रसिद्ध नर्तकी और बेस्वा ज़ोहरा का नक़्ल किया है। लेकिन अव्वल तो आयत की तफ़्सीर इस क़िस्से पर निर्धारित नहीं है, दूसरे स्वयं हदीस के माहिरों और तफ़्सीर की खोज करनेवालों ने इसके सच होने से बिल्कुल इन्कार कर दिया है और स्पष्ट लिख दिया है कि यह क़िस्सा गढ़ा हुआ है और बिल्कुल बकवास है। इस गरोह में क़ाज़ी अयाज़ मालिकी, इमाम राज़ी, शहाबुद्दीन इराक़ी इत्यादि शामिल हैं और इब्ने कसीर ने तो बड़ी लम्बी बहस के बाद यह कह दिया है कि अगर्चे यह क़िस्सा बड़े-बड़े ताबेईन ने नक़्ल किया है, लेकिन इसकी सनद सही हदीस से ज़रा भी नहीं मिलती, बल्कि इसराईलियात पर ही समाप्त होती है। लेकिन मान लिया जाये कि सही भी हो तो जब किसी ख़ास हिकमत या रहस्य के अन्तर्गत किसी फ़रिश्ते के इन्सानी जिस्म और भावनाएँ दब गईं तो अगर किसी समय वह वास्तव में फ़रिश्ता, अगर मनुष्यता की भावनाओं से प्रभावित भी हो जाये तो उसमें न कोई शरई आपत्ति है, न बुद्धि की।

३७९ **'युअल्लिमानि'** इस शब्द के मानी हैं शिक्षा, परन्तु इस बात से यह सन्देह न होना चाहिए कि मलायका जादू की तालीम या पाठ दिया करते थे। तालीम का अर्थ अलावा सिखाने और सबक़ देने के, बतलाने या आगाह करने का भी होता है। क़ुर्आन के माहिरों में कुछ लोगों ने यहाँ भी यही माने लगाये हैं। **'मिन् अहदिन्'** में 'मिन्' ज़्यादा है ताकीद के लिए, मानी हैं "किसी को भी" या "किसी एक को भी"।

३८० (और अधिक सतर्कता हेतु) मलायका इस विषय में इतनी सतर्कता रखते थे कि स्वयं तो किसी को क्या बतलाते, सिखाते, जो लोग पूछने आते उन्हें भी पहले सचेत करते थे।

३८१ परीक्षा यानी वह चीज़ जिससे खुल जाये कि जादू-टोने से बचा कौन-कौन रहा और उसमें लीन कौन हो गया। **'फ़ितनतुन्'** के मानी परीक्षा, जाँच-पड़ताल और आज़माइश के हैं और यहाँ भी इसका अर्थ आज़माइश ही है। सारांश यह हुआ कि इन्सान जैसे फ़रिश्ते किसी पर भी जादू की हक़ीक़त को न बताते और किसी को जादू के शब्दों से परिचित नहीं करते थे, जब तक कि उसे सचेत न कर देते। होता यह था कि ख़ुराफ़ात का धन्धा करनेवाले लोग आकर 'हारूत' तथा 'मारूत' को घेरते और उनसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आग्रह करके ज्ञात करते कि आप हमें जादू से रोक तो रहे हैं, लेकिन यह तो बताइये कि जादू कहते किसे हैं ? वह हैं कौन से अमल और शब्द, जिनको जादू कहा जाता है ? फ़रिश्ते उनको इस चेतावनी और याददेहानी के बाद कि इस कला से काम लेना कुफ़्र है, जब उन्हें सचेत एवं ख़बरदार करने के लिए उन क्रियाओं और शब्दों की नक़ल और वर्णन उनके सामने करते तो वह गुनाह का धन्धा करनेवाले उससे यह लाभ उठाते कि स्वयं उस कला ही के सीख जाने का काम लेने लगते— बिल्कुल ऐसी ही बात जैसे आज किसी आलिम से कोई यह पूछे कि रिश्वत और सूद किन आमदनियों को कहते हैं और फिर उनसे बचने के बजाय उलटा उन्हीं तरीक़ों पर अमल करना शुरू कर दे ।

३८२ (इन क्रियाओं और शब्दों को अपनाकर, जो जादू से सम्बद्ध थे) आलिमों ने यहीं से यह मसला निकाला है कि क्रियाओं और बुरे जादू के शब्दों को अक़ीदे के रूप में अपनाना कुफ़्र के बराबर है । आलिमों की राय इस मामले में अलग-अलग है कि क्या जादू को सीखना या स्वयं जादू हराम है या केवल उस पर अमल करना हराम है । शुरू से दोनों प्रकार के क़ौल मिलते हैं । बाज़ ने सीखने को जायज़ कहा है, अमल को हराम बताया है और बाज़ ने सीखने को भी हराम बताया है । बाज़ ने यहाँ तक लिख दिया है कि जादू का सीखना हर हालत में हराम है । चाहे काफ़िर जादूगरों को रद करने के लिए सीखा जाये, तो भी हराम है, इसलिए कलाम-इलाही **'फ़ला तक्फ़ुर'** इस बात की दलालत करता है कि जादू हराम है, लेकिन 'हनफ़िया' (एक फ़िरक़ा मुसलमानों का) इस पर सहमत नहीं हैं और 'शाफ़िइया' को इससे बिल्कुल विरोध है । मौलाना थानवी की तहक़ीक़ इस अवसर पर सराहनीय है— ''जादू के गुनाह या कुफ़्र होने में विवरण यह है कि अगर उसमें कुफ़्र के कल्मे हों या शैतान और सितारों की सहायता इत्यादि की माँग हो तो कुफ़्र है, चाहे उससे किसी को हानि या लाभ पहुँचाया जाये, और अगर मुनासिब शब्द हों तो अगर किसी को ख़िलाफ़ शर्ई इजाज़त किसी प्रकार की हानि पहुँचाई जाये या किसी और नाजायज़ ग़रज़ में इस्तेमाल किया जाये तो वह गुनाह और मासियत है, और अगर हानि न पहुँचाई जाये और न किसी नाजायज़ ग़रज़ में इस्तेमाल किया जाये तो उसे आम शब्दों में जादू नहीं कहते, बल्कि अमल या अज़ीमत या तावीज़-गण्डा कहते हैं, और वह मुबाह (जायज़) है और शब्दों के अर्थ न हों तो इस भय से कि कहीं कुफ़्र न हो जाये, उससे बचना बेहतर है बल्कि ज़रूरी है, और हर नाजायज़ पर अमल करना कुफ़्र ही की भाँति नाजायज़ है ।''

३८३ अर्थात् वह गुनाह और पाप का पेशा करनेवाले जादू सीख ही जाते थे । फ़रिश्तों की नीयत तो स्पष्ट थी । वह जादू की वास्तविकता का वर्णन करते थे और उसे हराम कहते थे, परन्तु जिन लोगों का अक़ीदा ख़राब था, वह उसे सीखकर उससे काम लेते थे ।

३८४ ज़िक्र [एक बार फिर हाफ़िज़े (याददाश्त) को ताज़ा कर लें] यहूद का चल रहा है । यहूद सुलैमानी समय का और उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी का । क़ुर्आन, एक उम्मी (न पढ़े-लिखे) का लाया हुआ क़ुर्आन, उनके अपराधों का लेखा सुनाते-सुनाते यक ब यक यह भी कह डालता है कि यहूद जादू-टोने में तो व्यस्त रहते ही थे, उनमें विशेषकर उन अमलयात में, जिनका सम्बन्ध पति-पत्नी को अलग करने से था । क़ुर्आन ने लपेट में रवारवी में एक बात कह डाली । अब देखें कि बीसवीं शताब्दी के यहूद आलिम और खोज करनेवाले अपने पूर्वजों के जादू-टोने के शग़्ल (कार्य) के विषय में क्या कहते हैं— ''जादू की सबसे ज़्यादा प्रचलित और आम शक्ल उस नक़्श की थी, जो इश्क़ो-मुहब्बत के लिए दिया जाता था, ख़ासकर वह नक़्श जो नाजायज़ आशनाइयों के लिए लिखा जाता था । इस प्रकार के जादू की माहिर स्त्रियाँ ही ज़्यादा होती थीं । अतः ज़िक्र भी जादू और हरामकारी का आम तौर पर साथ ही साथ आया है ।'' (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ८, सफ़ा २५५) ।

३८५ (यानी जब तक दुनियावी रहस्य न हो) इस्लाम ने शिर्क की जड़ जिस-जिस प्रकार से काटी है, उसके लिए यह स्पष्टीकरण ज़रूरी भी था । यह कदापि न समझना कि इन अमलयात, जन्तर, मन्तर और टोने-टोटकों में कोई असर है । उनमें कोई शक्ति नहीं है । दुनियावी हालात में जो मर्ज़ी अल्लाह की होती है, उसके अनुसार ही इस अवसर पर भी केवल अल्लाह का ही प्रकाश प्रकट होता है । **'अिज़्निल्लाह'** का अर्थ यहाँ अल्लाह के ज़र्ये मुक़द्दर हो जाना है और उसकी दुनियावी मस्लहत । यह याद रखना चाहिए कि यह अल्लाह की क़ुदरत, उसकी मर्ज़ी और क़ुदरती नियम की बात है । इसे अल्लाह का हुक्म और उसकी राय न समझना चाहिए । ज़हर के असर से बेगुनाहों की मौत, काफ़िरों के हाथों औलिया और नबियों की अहानत या अपमान। मुशरिकों का मुसलमानों पर क़ाबू पा जाना, जिस क़ुदरती नियम के अनुसार यह सब कुछ होता रहता है उसी के अन्तर्गत जादू भी अपना असर दिखलाता है, और अल्लाह की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रज़ामन्दी से दूरी जिस क़दर कुफ़्र को क़ाबू है, उसी क़दर जादू में असर है। अल्लाह के हर इरादे में कैसी-कैसी हिकमतें छुपी हुई हैं, इसकी जानकारी उस हर चीज़ को जाननेवाले को ही है, और किसी को नहीं। पुराने लोगों का मज़हब सारे कारणों और कारणों को उत्पन्न करनेवाले के विषय में यही रहा है कि अस्ल प्रभाव डालनेवाला केवल अल्लाह है। वही जब चाहता है, कारण और परिणाम के मध्य आ जाता है और जब नहीं चाहता, नहीं आता।

३८६ (जैसा कि हर गुनाह का क़ायदा है कि उससे सदैव हानि ही होती है। फ़ायदा नहीं होता।) अर्थात् यह बदनसीब यहूद अपना समय और अपनी शक्ति व्यर्थ में खराब करते हैं, इन ज्ञानों और कलाओं की प्राप्ति में लगे रहते हैं, जो उनके लिए लाभप्रद ज़रा भी नहीं हैं, हानिकारक अवश्य ही हैं। साथ ही यह अर्थ भी निकला कि यह इल्म और कलाएँ न सीखी जायें, क्योंकि उनसे गुमराही की राहें खुलती हैं। **'यज़ुर्रुहुम्-यन्फ़अुहुम्'**— हानि की हक़ीक़त यह है कि यह वह दुख है कि जिसके बदले में कोई फ़ायदा न हो। और नफ़ा की हक़ीक़त यह है कि जिसके पीछे न कष्ट होता हो और न उसके कारण अज़ाब हो। जादू में हानि और नफ़ा का न होना दोनों बातें एकत्रित होती हैं।

३८७ (खुद अपने मज़हबी लेखों के विवरण से) यहाँ संकेत रिसालत के समय के यहूद की ओर है, यानी वह यहूद जो रसूलुल्लाह (स०) के समय में मौजूद थे। क़ुर्आन ने किस दावे के साथ कह दिया कि **'लक़द् अ़लिमू'** ? यह यहूद ही खूब जानते हैं कि जादू-टोना कैसी गन्दी चीज़ें हैं। वह कह सकते थे कि हम कहाँ जानते हैं ? किसने हमें यह खबर दी ? हमारे पवित्र लेखों में यह चीज़ कहाँ मौजूद है ? परन्तु वह ऐसा न कह सके, इसलिए कि आज की बदली की हुई, बिगाड़ी हुई तौरेत तक में यह विवरण मौजूद है और अभी बाक़ी है— "तू जादूगरी को बसने मत दे।" (खुरूज—२२ : १८)। "और जादू न करो और साइतों पर लिहाज़ मत करो।" (अहबार—१६ : २६)। "और न रम्माल और जादूगर हो क्योंकि वह सब जो ऐसे काम करते हैं, खुदावन्द की नफ़रत के कारण हों।" (इस्तिस्ना—१८ : १२)।

३८८ यानी आखिरत में नेकी और बदले का क़तई कोई हिस्सा नहीं। **"अिश्तराहु"** 'सर्नाम' जादू की ओर है। जानकारों ने कहा है कि यह संकेत फिर उसी सत्य की ओर है कि जादू कुफ़्र है। यहूद को सच्चाई की दावत दी जा रही थी। उनके पास तौहीद के मज़हब का पैग़ाम पहुँच रहा था और वह थे कि उधर से ग़ाफ़िल और लापरवाह और बेतवज्जोह अपने उन्हीं जादू-टोने के ज्ञान में लगे हुए थे और उन्हीं ग़लत बातों को उन्नति दे रहे थे। यहाँ पर उनकी इसी बदनसीबी और महरूमी की ओर संकेत है।

३८९ "अपने आप को बेच डाला" यानी अपनी जान को अज़ाब और तबाही में डाला। **'बिअ्स मा शरौ बिही'** वह बुरी चीज़ें कुफ़्र और जादू के अमलयात हैं, जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। बन्दों के हाल पर बड़ी हमदर्दी और अफ़सोस एवं दुख के लहजे में फ़र्माया जा रहा है कि सच्चे दीन जैसी बहुमूल्य चीज से मुँह मोड़े हुए और इस नेमत को छोड़कर यह लोग जादू और टोने को अपनाये हुए हैं अर्थात् दोज़ख का सौदा कर चुके हैं।

३९० यानी अफ़सोस है कि इस हद तक भी उन्होंने अल्लाह की दी हुई सुबुद्धि से काम नहीं लिया।

३९१ (और अपनी मौजूदा कुफ़्र और झूठ तथा गुनाह के रास्ते से तौबा कर लेते।) गुनहगार बल्कि सरकश, नाफ़र्मान और ग़द्दार बन्दों के हक़ में इतना अफ़सोस उसी सच्चे मालिक और पालनेवाले ही का हिस्सा है। क्या हद है इस शफ़क़त, स्नेह और बेहिसाब मेहरबानी और करम की। **'व लौ अन्नहुम् आमनू'** से बाज़ आलिमों ने जादू के कुफ़्र होने के बारे में तर्क दिया है। तफ़्सीर इब्ने कसीर में इब्ने हुबैरा की किताब **'अल् अशराफ़ अला मज़हबुल् अशराफ़'** के हवाले से है कि सिवाय इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ि०) के जो जादू की हक़ीक़त को ही नहीं मानते, दूसरे आलिम जादू की हक़ीक़त को मानते हैं।

३९२ [मज्मे में रसूलुल्लाह (स०) को सम्बोधित एवं मुतवज्जेह करते समय] रसूलुल्लाह (स०) जब मज्मे में क़ुर्आन सुनाते या दीन का प्रचार (तब्लीग़) करते होते और लोग कोई बात सुन न पाते तो स्वाभाविक रूप में दोबारा आपको अपनी ओर आकर्षित करना चाहते। यहूद ने ऐसे अवसर के लिए शरारत से शब्द **'राअ़िना'** इस्तेमाल करना शुरू किया था। इसका अस्ल अर्थ तो यह है कि हमारी 'रिआयत कीजिये' लेकिन **'राअ़िना'** के 'ऐन' को ज़रा खींचकर पढ़ने से इसके माने में एक गुस्ताखी का अर्थ पैदा होता है। मुसलमान शरारत से ग़ाफ़िल, बेखबरी और बेखयाली में स्वयं भी यह शब्द बाज़ दफ़ा बोलने लगते। यहाँ उन्हें मना किया जा रहा है। यहूद तो उसे मज़ाक़ उड़ाने और व्यंग्य करने के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचार से प्रयोग करते ही थे। यूँ भी अरब में यह कलमा बुराई का पहलू लिये हुए था। **'उन्ज़ुरना'** के मानी हैं 'हमारे ऊपर नज़र कीजिये'। और इसमें बुराई का पहलू निकला है। आयत का अर्थ यह है कि 'रिसालत' के दर्जे का सम्मान न केवल अर्थ में बल्कि शब्दों में भी किया जाना आवश्यक है। आलिमों का कहना है कि जिन शब्दों से तौहीन का ज़रा भी शुबहा होता हो, उनसे बचाव आवश्यक है। बल्कि इमाम मालिक का क़ौल यह है कि ऐसे शब्दों पर पाबन्दी ज़रूरी है। हनफ़ी आलिमों का ख़याल है कि यह मसला इतना अहम है कि इस विवाद का फ़ैसला कि फ़ुलाँ स्थान पर बेहतर या बुराई का क्या मेयार होगा, इसके लिए उसे बनानेवाले की नीयत का लिहाज़ करना होगा। जिस पर वह लागू होगा उसकी राय पर फ़ैसला न होगा। ज़ाहिर है कि सहाबा तो कभी बेअदबी का इरादा कर ही नहीं सकते थे। मना किया गया है यहूद की नीयत पर हुक्म करके। इब्ने कसीर ने कहा है कि इस हुक्म से मुसलमानों को अमल और बोलने में काफ़िरों के साथ ज़रा भी मिलने की मुशाबहत न होनी चाहिए और आगे हदीस दर्ज करके उससे यह दलील पेश की गई है कि मुसलमानों के क़ौल, अमल, लिबास और फ़ैशन इत्यादि के अख़्तियार करने में काफ़िरों से मेल न खाना चाहिए।

३६३ [रसूल (स०) के इर्शादात, अदब एवं सम्मान के साथ] वर्तमानकाल के बाज़ गुमराह फ़िरक़ों ने ईमान और इस्लाम के लिए रसूल (स०) के व्यक्तित्व से बिल्कुल अलाहदगी करके केवल क़ुर्आन पर अमल करने को पर्याप्त समझ लिया है। उनकी गुमराही आयत से स्पष्ट है।

३६४ (सच्चे नबी का अपमान और अपने कमीने व्योहार की सज़ा में) विशेषकर उन काफ़िरों के लिए, जो रसूल (स०) के साथ कीना और दुश्मनी में इस हद तक पहुँच जायें और आम इन्सानियत तथा सभ्यता की सीमाओं का विचार भी न करें। ऐसे दुश्मनों के सुधार की क्या उम्मीद हो सकती थी।

३६५ **'अल्लज़ीन कफ़रू'** काफ़िरों यानी इस्लाम के नियमों से इन्कार करनेवालों की बड़ी क़िस्में दो हैं। एक मुशरिक, जो सिरे से तौहीद, रिसालत, मलायका और हश्र के क़ायल नहीं, बल्कि उनके स्थान पर विभिन्न प्रकार के विचारों और वहमों के गढ़ने में लगे हुए हैं। दूसरे अहल-किताब (जिन उम्मतों पर किताब उतरी हैं), जो इन बुनियादी सच्चाइयों पर शाब्दिक रूप से ईमान रखते हैं, लेकिन अमल में और अर्थ में इनमें से हर सच्चाई का रूप बिगाड़ चुके हैं। ज़्यादा स्पष्टता के लिए इसकी दोनों क़िस्मों को खोलकर बयान कर दिया है। **'अह्लिल्-किताब'** यह शब्द क़ुर्आन में प्रथम बार आया है। क़ुर्आनी तक्नीकी रूप में यह शब्द मोमिनों और मुशरिकों के बीच का दर्जा रखता है और इससे यहूद और नसारा समझे जाते हैं, जो वास्तव में तौहीद और रिसालत और आख़िरत के क़ायल थे, और आसमानी किताबें भी अपने पास रखते थे, अगर्चे मानी और शब्दों के लिहाज़ से उसे बिल्कुल बिगाड़ चुके थे और क़ुर्आन से इन्कार करते थे यानी मनमानी को मानते थे। **'अल्मुश्रिकीन'** मुशरिक वह थे, जो सिरे से तौहीद के क़ायल नहीं थे और न नबूवत को ही मानते थे। बजाय एक ख़ुदा के विभिन्न फ़रिश्तों को विभिन्न हाथ-पैरों का मालिक और शक्तिशाली जानते थे। उनको देवियों, देवताओं के नाम से पुकारते थे और उन्हीं की पूजा करते थे और विभिन्न क़ुदरती शक्तियों और क़ुदरती चीज़ों को भी ख़ुदा मानते थे यानी 'वही' के सिलसिले को सरे से नहीं मानते थे। दुख और आश्चर्य की बात है कि अंग्रेज़ी के सभी अनुवादकों और उर्दू की शरह करनेवालों ने अक्सर शायद 'रौशन-ख़यालो' में इबारत की तर्कीब को छोड़कर यूँ अनुवाद कर दिया— "अहल-किताब में से जो काफ़िर हैं, वह, और मुशरिक (ज़रा भी) पसन्द नहीं करते।" हालाँकि यह अनुवाद किसी प्रकार भी सही नहीं है। अव्वल तो अहल-किताब का अर्थ ही 'काफ़िर अहल-किताब' है। अगर वह इस्लाम स्वीकार कर लें तो अहल-किताब कहे ही क्यों जायें। मोमिन ही न कहलाने लग जायें। इसलिए यह कहना कि 'उनमें से जो काफ़िर हैं', ख़ुद ही बेमानी है।

३६६ (ऐ मुसलमानो !) मतलब यह है कि काफ़िरों को तो, चाहे वह अहल-किताब हों या मुशरिक, यह किसी प्रकार गवारा ही नहीं, बल्कि उनको दिल से बुरा लग रहा है कि ख़ैर तथा बरकत मुसलमानों पर उतरे और उन पर ख़ुदा की मेहरबानियाँ हों। **'अल्ख़ैर'** से अर्थ आम तौर पर 'वही' और नबूवत लिया गया है। लेकिन बेहतर यह है कि इससे हर प्रकार की दुनियावी और आख़िरत की भलाई समझा जाये और इसके अन्तर्गत ज्ञान, ग़ैबी मदद और मुल्की फ़तेह इत्यादि सबको सम्मिलित कर लिया जाये। **'कुम'** सम्बोधन आम इस्लामी उम्मत से है और आयत के शब्दों से साफ़ ज़ाहिर होता है कि ग़ैरमुस्लिम चाहे वह किसी वर्ग के हों, मुसलमानों के सच्चे हमदर्द और वफ़ादार नहीं हो सकते, मुसलमानों से कीना (द्वेष) रखना और उनसे दुश्मनी रखना उनकी आदत है।

३६७ (अपनी हिकमत के नियमों और क़ुदरती मस्लहतों के अन्तर्गत) यहूद को अस्ल जलन यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी कि नबूवत के अस्ल अधिकारी तो हम हैं, यानी इसराईल की सन्तान, अरब के लोग, जो इस्माईल की सन्तान हैं, उनको यह दौलत कहाँ से मिल जाती है और कैसे मिल सकती है ? और 'अहलिल्-किताब' का संकेत ज़्यादातर यहूद की तरफ़ है और हमारे पुराने तफ़्सीर करनेवालों ने भी इस आयत को इसी अर्थ में लिया है।

३६८ (वह जिस व्यक्ति, जिस जमाअत को चाहे, अपनी मेहरबानियाँ एवं कृपा प्रदान करे) और अब किसी क़ौम या नस्ल को वंचित किया जा रहा है तो इसका कारण यह नहीं है कि उधर से मेहरबानी और कृपा में कुछ कमी हो गई है, बल्कि यह इसलिए है कि स्वयं उस क़ौम ने अपनी लगातार नालायक़ हरकतों से अपने को उस मेहरबानी और करम के लिए अयोग्य साबित कर दिया और अब उसे उस नेमत का प्रदान होना हिकमत के नियमों के विपरीत होगा।

३६९ (लोगों के मस्तिष्क या याद से) आयत का अर्थ बड़ा विशाल है, उससे जो आयत लिखी हुई है उसका भी अर्थ समझा जाये और निशान, तर्क और मोजिज़ों पर भी यह अर्थ लागू होता है। अगर इसका अर्थ तर्क एवं मोजिज़ों पर लागू किया जाये, तब तो आगे प्रश्न ही नहीं उठता। क़ुर्आन की सच्चाई और उसकी हक़्क़ानियत का परिचय अब भी किसी न किसी निशान से मिलता ही रहता है और जब क़ुर्आन उतर रहा था, उस ज़माने में तो आम हालात से अलग निशानों की भी कमी न थी। अलबत्ता यदि लिखी हुई आयत का अर्थ लिया जाये तो भी दो प्रतिबन्ध मौजूद हैं। आयतें या क़ुर्आन मजीद की होंगी या पुरानी किताबों की। अगर पुरानी किताबों की आयतें मानी जायें, जैसा कि अबू मुस्लिम असफ़हानी का खयाल है, तब भी तर्क आगे नहीं बढ़ता। पुरानी आयतों का तो क़ुर्आनी आयतों से मन्सूख होना तो एक खुली हुई सच्चाई है, जिसमें न कोई विरोध है, न आपत्ति। हाँ ! अगर इससे क़ुर्आनी आयतों का अर्थ लिया जाये तो प्रश्न यह है कि उनकी मन्सूखी का क्या अर्थ है ? मन्सूखी से यह अर्थ तो किसी ने निकाला नहीं कि अमुक अक़ीदा किसी ज़माने में वाजिब था और वह ईमान के विरुद्ध मान लिया गया। या झूठ, चोरी, ज़िना, क़त्ल पहले हराम था फिर हलाल हो गये। या अमुक क़िस्सा क़ुर्आन में जिस प्रकार बयान हुआ था, बाद को उसको रद्द कर दिया गया। अर्थ यह हुआ कि मन्सूख होने की बात अक़ीदे में या सुशीलता के नियमों में, महसूस होनेवाले कार्यों में, पिछले क़िस्सों और बीते ज़माने की कहानियों में या ग़ैब की सूचनाओं में अर्थात् क़ुर्आन मजीद के अधिकतर भाग में तो कोई भी नहीं मानता। मन्सूखी की गुंजाइश जो भी है, वह आदेशों और हुक्मों के विषय में ही है। हुक्मों की मिसाल हकीम के नुस्खे के समान है। हकीम ने जो कुछ भी मरीज़ के विषय में तजवीज़ किया होगा, वह तो अपने स्थान पर रहता है। मरीज़ की दशा में परिवर्तन होता रहता है और मौसम तथा जलवायु में भी तब्दीली होती रहती है। ऐसी दशा में कैसा ही अच्छा हकीम होगा, वह अपने नुस्खे में बाज़ अंशों में तब्दीली आवश्यकतानुसार करने में संकोच न करेगा। क़ुर्आन के बाज़ नियम के हुक्मों के मन्सूख होने के मानी केवल इस क़दर हैं कि स्वयं क़ानून बनाने वाले और क़ानून के पैदा करनेवाले के क़लम से ठीक क़ानून के बनने के समय में बाज़ क़ानून, जो अस्थायी और सामयिक रूप रखते हों, बदल दिये गये और उनकी जगह स्थायी और सदैव रहनेवाले क़ानूनों ने ले ली। इन्सान के दाँत और जबड़े स्थायी रूप से भोजन-सामग्री के चबाने, पीसने, चीरने, काटने और फाड़ने ही के कार्य हेतु हैं, लेकिन दूध पीने के आरम्भ के समय में दूसरे प्रकार की पीनेवाली और इसी क़िस्म की, पानी की क़िस्म की भोजन-सामग्री ही उसके लिए उचित होती हैं। इस मोटी और सीधी सी बात में खुदा जाने इतना घबराने का कौन सा पहलू है कि आज के बाज़ तफ़्सीर करनेवाले नये लोग इस मन्सूखी के मसले ही से इन्कार पर तुल गये हैं। यह भी स्पष्ट रहे कि यह मन्सूखी जो कुछ भी होगी केवल मनुष्य के अधूरे ज्ञान और उसकी सीमित जानकारी के कारण होगी, अन्यथा अल्लाह की जानकारी में तो हर हुक्म अज़ल (सृष्टि के आरम्भ) से नियत समय के लिए मुक़र्रर एवं सिद्ध है ही। बहुमत का मज़हब इसी प्रकार की मन्सूखी के उत्पन्न होने का है, यद्यपि एक गरोह ऐसा भी है जो मन्सूख न होने की बात ही को माननेवाला रहा है। इब्ने कसीर ने अबू मुस्लिम असफ़हानी का क़ौल क़ुर्आन में मन्सूखी के उत्पन्न न होने का नक़्ल करके, बड़ी सख्ती के साथ उसकी काट की है। फ़क़ीह जेसास ने किसी महानुभाव का क़ौल भी नक़्ल किया है, जो फ़िक़्ह में विशेषज्ञ नहीं थे, परन्तु साहित्य एवं व्याकरण के माहिर थे, जिसका अर्थ यह होता है कि शरीअत-मुहम्मदी के अन्दर कोई मन्सूखी नहीं है। स्वयं शरीअत-मुहम्मदी सारी शरीअतों को मन्सूख करनेवाली है। (फ़िक़्ह— वह इल्म जिसका सम्बन्ध इस्लाम धर्म के बारीक बिन्दुओं से होता है, और जिसके माहिर फ़क़ीह कहे जाते हैं, जो ऐसे मसलों पर विवाद का निर्णय करने के अधिकारी होते हैं)। शब्द 'मन्सूखी' उर्दू में जिन मानों में प्रयोग में आता है उन मानों में यहाँ नहीं इस्तेमाल हुआ है। वास्तविक शब्द 'नस्ख' है जो तक्नीकी शब्द है। नस्ख को मन्सूखी के मानी में प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने से ग़लतफ़हमी पैदा होती है। 'नस्ख़' के मानी मिटा देने या दूर कर देने के नहीं हैं, बल्कि किसी स्थिर एवं अप्रतिबन्धित को सीमित एवं प्रतिबन्धित करने को 'नस्ख़' कहेंगे। और नस्ख़े-किताब का अर्थ अरबी में किताब के मिटा देने के नहीं होते हैं, बल्कि उसके रूप को दूसरा रूप देने के होते हैं। 'नस्ख़' के जो अर्थ फ़क़ीहों के तक्नीकी शब्दों में हैं, वह तो बहुत के तक्नीकी शब्द हैं और ख़ुद "आयत" भी क़ुर्आनी आयत के माने में बाद का तक्नीकी शब्द है, अतः सबसे साफ़ और स्पष्ट अनुवाद यह होगा कि "हम जो मौक़ूफ़ (त्यक्त) करते हैं किसी निशान को" और शब्द 'मौक़ूफ़' भी बहुत पुराने देहलवी अनुवादों में आया है।

४०० (यानी समय और मौसम बदले हुए हालात के ज़्यादा मुताबिक़) मौलाना थानवी ने कहा है कि आयत से यह इशारा भी निकलता है कि जो दशा या घटना बन्दे के अख़्तियार के बिना घटित हो या क़ाबू में आ जाये, अल्लाह तआला उससे बेहतर या उसी की भाँति का दूसरा प्रदान कर देता है, अतः उस पर रंज और अफ़्सोस न करना चाहिए।

४०१ (सो ऐसे निर्विरोध अधिकारी के लिए क्या कठिन है कि स्थितियों एवं हिकमत के अनुसार बराबर रिआयत करता रहे।) यहाँ पर उन लोगों को सम्बोधित किया गया है, जो आपत्ति करते हैं और 'नस्ख़' से इन्कार करते हैं। बाज़ ने यह कहा है कि यहाँ श्रोताओं को ही सम्बोधन हुआ है।

४०२ (और उसी को हर प्रकार का सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त है) यहाँ सम्बोधन आम है हर सुनने वाले और मुख़ातिब के लिए। यह भी कहा गया है कि सम्बोधन रसूल (स०) से है और आपके माध्यम से उम्मत से।

४०३ (ऐ मनुष्य जाति!) यह आयत अपने स्थान पर स्वयं अद्वैत (तौहीद) और कामिल तौहीद का एक पाठ है। मुल्क, विलायत, मदद, सब अल्लाह के लिए हैं।

४०४ (दुश्मनी और एतराज़ के कारण) सम्भवतः यहाँ यहूद को सम्बोधन है। और क़ौल भी नक़्ल हुए हैं, परन्तु यही क़ौल प्राथमिकता पानेवाला है। **'रसूलकुम्'** का अर्थ इस दशा में उस समय के रसूल से होगा— तुम्हारे ज़माने के रसूल से। लेकिन अगर मुसलमानों से ख़िताब हो तो भी यह चीज़ पाठ देने हेतु उचित होगी।

४०५ अगर किसी मसले को गम्भीरता के साथ जाँच और खोज एवं शोध करने के लिए प्रश्न किया जाये तो यह बात ख़ुदा की मेहरबानियों की अधिकारी होगी, परन्तु यदि हठधर्मी, दुश्मनी और शरारत से हों और एतराज़ केवल एतराज़ की ग़रज़ से हो तो वही सवाल एक लानत बन जाते हैं। हज़रत मूसा से जैसे-जैसे गुस्ताख़ी के प्रश्न और बेहूदा फ़र्माइशें बनी इसराईल करते रहे, उनके वर्णन से इसराईली इतिहास और स्वयं बाइबिल के पन्ने भरे पड़े हैं। क़ुर्आन का उसको इतने खुले हुए तारीख़ी इशारे की भाँति ले आना स्वयं इस बात की दलील है कि क़ुर्आन भेजनेवाला इससे पूरी तरह वाक़िफ़ था और यह कलाम अरब के एक अनपढ़ इन्सान का लेख नहीं हो सकता।

४०६ (जिसकी एक शक्ल यही रसूल स० से दुश्मनी और गुस्ताख़ी के प्रश्न एवं उत्तर हैं) **'यतबद्दलिल्-कुफ़्र बिल्ईमानि'** के मानी ही यह हैं कि ईमान के बदले और मुक़ाबिले में कुफ़्र का रास्ता अपनाया। तारतम्य में ज़िक्र यहूद का है अतः उन्हीं के एक नबी की पुस्तक का एक टुकड़ा यहाँ पेश करना अनुचित न होगा— "सुनो ऐ आसमानो! और कान लगा ऐ ज़मीन! कि ख़ुदावन्द यूँ फ़र्माता है कि लड़कों को मैंने पाला-पोसा, फिर उन्होंने मुझसे सरकशी की। बैल अपने मालिक को पहचानता है और गदहा अपने साहब की चरनी को। बनी इसराईल नहीं जानते। मेरे लोग कुछ नहीं सोचते। आह! ख़ता करनेवाले गरोह। एक क़ौम, जो गुनाह से लदी हुई है। बदकारों की नस्ल ख़राब सन्तान, कि उन्होंने ख़ुदावन्द को छोड़ दिया। इसराईल के ख़ुदा ही को कमतर जाना, उससे बिल्कुल फिर गये।" (यसीईयाह— १ : ३ : ४)।

४०७ (ऐ ईमानवालो!) जब यह सूरत उतरी, उस समय के एक ख़ास वाक़िए के कारण आम तौर पर तफ़्सीर करनेवालों ने यहाँ अहल-किताब का अर्थ 'यहूद' या 'उनके साथियों' ले लिया है, लेकिन क़ुर्आनी शब्द एक आम शब्द है, जिसमें यहूद व नसारा दोनों शामिल हैं। मसीहियों की ओर से जो खुला हुआ और संघटित विशाल प्रोपैगैण्डा और यहूद आलिमों की ओर से कुछ हल्का और छुपा हुआ प्रोपैगैण्डा इस्लामी अक़ीदों के ख़िलाफ़ राजनैतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक लेखों के माध्यम से इस्लामी आबादियों के बीच जारी रहता है, वह सब इसी सच्चाई को प्रदर्शित करते हैं। इन सारे प्रयासों और कार्य-कलापों का कारण और उद्देश्य यही रहता है कि मुसलमान अगर यहूदीयत और मसीहीयत को न स्वीकार करें तब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी कम से कम अपने धर्म से बदगुमान और मुँह फेरकर तो रहें। पुराने तफ़्सीर करनेवालों ने भी कहा है कि इसमें मुसलमानों को एक ज़बरदस्त तम्बीह और चेतावनी मुस्लिम शत्रुता से सम्बद्ध है।

४०८ यानी यह प्रयास और सरगर्मियाँ (तन्मयता) भी मित्रता एवं दोस्ती की नीयत से नहीं हैं, जलन और रश्क से पैदा होती रहती हैं। यहूद तो ख़ुद अपने पैग़म्बरों से भी जलते रहे हैं और इस विषय में तो स्वयं 'अहद-अतीक़' बोल रहा है— "उन्होंने ख़ेमागाह में मूसा के भाई, ख़ुदावन्द के पवित्र नर हारून पर हसद किया।" (ज़बूर—१६० : १६)। और नये ज़माने की गवाहियाँ भी हसद के विषय में कुछ कम स्पष्ट और ब्योरा सहित नहीं हैं— "यहूदियों ने हसद में आकर बाज़ारी आदमियों में से कई बदमाशों को अपने साथ लिया और भीड़ लगाकर शहर में फ़साद करने लगे।" (आमाल— १७ : ५१)। "यहूदी इतनी भीड़ देखकर हसद में भर गये।" (आमाल— १३ : ५१)।

४०६ यानी अहल-किताब के इस इन्कार और विरोध का सबब कोई भ्रम या ग़लतफ़हमी नहीं है, बल्कि विशेष हठधर्मी, दुश्मनी और घमण्ड है। वह सच्चाई को पूरी तरह से जान चुके हैं।

४१० (इस वक़्त ऐ मुसलमानो! उनसे किसी तरह का बदला न लो।) यहूद की शरारतों पर मुसलमानों की नाराज़गी एक स्वाभाविक चीज़ थी। उनको हिदायत हो रही है कि फ़िलहाल माफ़ कर दो और बदला लेने की कार्यवाही न करो। सूरत और आयत मदनी है। मक्की जीवन काफ़ी समय हुआ समाप्त हो गया है और रसूल (स०) और सारे सहाबी फ़साद को दूर रखने के विचार से वतन से बेवतन हो चुके हैं और मदीना में आ चुके हैं। यहाँ आते ही फ़ौरन जंग करने का आदेश नहीं हुआ। सब्र के साथ प्रतीक्षा करने की हिदायत यहाँ भी काफ़ी समय तक मिलती रहती है।

४११ [जिहाद (मज़हबी जंग) एवं जंग के लिए] अक्सर सहाबा तथा ताबेईन से हुक्म की तफ़्सीर, जिहाद और जंग के हुक्म के साथ नक़्ल की गई है। जंग करने का हुक्म उस वक़्त तक नहीं आया था। आयत से साफ़ इशारा इस बात का होता है कि आइंदा ऐसा हुक्म होनेवाला है।

४१२ (पस ऐसे निर्विरोध अधिकार रखनेवाले के लिए क्या मुश्किल है कि सरकश और बलशाली काफ़िरों से पूरा बदला ले ले और उनका ज़ोर तोड़ दे और मज़लूम और सताये हुए मुसलमानों को देखते-देखते विजेता, हाकिम और बलशाली बना दे)।

४१३ (इस बीच में ऐ मुसलमानो!) अर्थ यह है कि जिहाद के ज़माने के हुक्म दूसरे हैं, जब तक वह लागू न हों, उनके इन्तिज़ार में जो साधारण इस्लामी हुक्म हैं उनकी पाबन्दी में ढीलढाल न होनी चाहिए। यह माली और बदनी इबादतें तो हर हाल में अमल में आती रहेंगी।

४१४ नेकी केवल जिहाद और जंग पर ही निर्भर नहीं है, जो कुछ भी नेक काम हो सकें सब यकसाँ ख़ुदा स्वीकार करता है। बराबर उनमें लगे रहो। **'लिअन्फ़ुसिकुम्'**— यानी अपने नफ़ा, अपनी नजात और गुनाहों से माफ़ी माँगने में लगे रहो। **'तजिदूहु'** उसे पा लोगे यानी उसके बदले और सवाब को पा लोगे।

४१५ (सो इसका खतरा ही नहीं कि कोई नेकी व्यर्थ जायेगी। हर नेकी का पूरा-पूरा बदला मिलेगा। इन आयतों में इस बात की काट की गई है कि दीन जिहाद और जंग के साथ विशेषता रखता है। जब दुनियावी हालात ऐसे हो जाएँ कि जिहाद और जंग पर कार्यान्वित होना सम्भव न हो, तो बाक़ी इस्लामी आदेशों पर अमल करने पर पूरा बदला अल्लाह देगा। **'बसीर'** पर पहले ही लिखा गया है।

(फ़ुटनोट सफ़ा १४५ से)

को आदेश होता है कि अहल-किताब से कहिये कि खाली ज़बानी दावों और खाली इच्छाओं से क्या होता है। अगर सच्चाई के दावेदार हो तो अपने समर्थन में कोई तर्क अक़्ली या नक़्ली लाओ। इमाम राज़ी ने आयत से यह मसला भी निकाला है कि दावा 'हाँ' का हो या 'नहीं' का, मुद्दई के ज़िम्मे हर दशा में सुबूत पेश करना होता है।

४१६ (यानी नजात का सही नियम वह है जो अब बयान हो रहा है)। **'बला'** यानी तुम्हारा दावा बिल्कुल ग़लत है। सही नियम वह है, जो आगे आ रहा है।

४२० (अपने इस ईमान और अक़ीदे में) यानी उसका अमल भी उसके तौहीद के अक़ीदे के अनुसार हो, यानी ईमान और अमल-नेक दोनों इकट्ठा हों। **'वज्ह'** के शाब्दिक अर्थ चेहरे के हैं। परन्तु अरब में इसका अर्थ 'निज' या खास वस्तु होता है और वही अर्थ यहाँ माना गया है। **'असलम वज्हहू लिल्लाहि'** यानी तौहीद को पूरी तरह मान ले और उसमें शिर्क की मिलावट बिल्कुल न हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४२१ ख़ौफ़ और चिन्ता का सम्बन्ध भविष्य से होता है और ग़म तथा रंज भूतकाल की घटनाओं पर होता है। यहाँ क़यामत का ज़िक्र है कि उस दिन ईमान लानेवाले अपने भूतकाल पर न रंज करेंगे और न पछतायेंगे और न आइंदा के लिए डरेंगे। इस पर पहले हाशिया लिखा जा चुका है।

४२२ यानी उनका दीन सारे का सारा झूठा और ग़लत है। यहूदी क़ौम अक़ीदे में एक ख़ुदा को माननेवाली थी। नसरानीयत का शिर्क और तीन ख़ुदाओं की बात वह नहीं बरदाश्त कर सकती थी और न इसको मान सकती थी कि ऐसे गढ़े हुए धर्म में कुछ भी सच्चाई है। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित करें)।

४२३ यानी उनका धर्म सारे का सारा ग़लत और झूठा है। शरीअ़त-मूसवी के बारे में मौजूदा इंजीलों में यह शब्द मिलते हैं— "आदमी शरीअ़त के कर्मों (आमाल) से नहीं बल्कि केवल ईसा मसीह पर ईमान लाने से सच्चा होता है और सच्चाई पर अमल करनेवाला माना जाता है।" (गलितियून—२ : १६)। "शरीअ़त के आमाल से कोई आदमी रास्तबाज़ (सच्ची राह पर चलनेवाला) न ठहरेगा।" (**ओज़न्**—२ : १७)। "रास्तबाज़ी अगर शरीअ़त के वसील: (माध्यम) से मिलती तो मसीह का मरना अ़बस (व्यर्थ) होता।" (**ओज़न्**—२ : २०)। अवलोकित करें अंग्रेज़ी तफ़्सीर। इंजीली इस्तिलाह (Term) में शरीअ़त (Law) का अर्थ शरीअ़त-मूसवी ही होता है।

४२४ **'अल्किताब'** यानी बनी इसराईल के नबियों की किताबों का जोड़ा। उसी को आज 'अ़हृदनामा अ़तीक़' कहते हैं। यहूद और मसीही दोनों इन किताबों के इल्हामी और पवित्र होने के क़ायल हैं। अफ़्सोस है कि इन्हीं गुमराह क़ौमों की देखादेखी मुसलमानों ने भी अपनी मुश्तरक किताब क़ुर्आन के कई-कई गरोह बनकर एक दूसरे को झूठा और गुमराह बनाना शुरू कर दिया और कुफ़्र की नौबत आ-आ जाती है। हद यह है कि शाफ़िईया, हनफ़ीया को ज़लील समझने लगे और अशअरिया मातरीदिया के निकट कमतर हो गये। हिदायत गोया उनके अपने-अपने छोटे-छोटे हल्क़ों में सीमित होकर रह गई।

४२५ (वही और नबूवत का) वह कहने लगे कि अहल-किताब में से कोई भी हक़ पर नहीं। **'अल्लज़ीन ला यअ़्लमून'** इल्म से आयत का अर्थ आसमानी किताब की जानकारी है। यह कहनेवाले कौन थे। आम तौर पर उनसे अर्थ है अरब के मुशरिक और हर ऐसे मज़हब के माननेवाले, जिसकी बुनियाद किसी आसमानी किताब पर न हो, यानी हर जाहिली दीन के माननेवाले इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। क़ुर्आन मजीद ने इल्म और उसके विभिन्न अंगों को जहाँ-जहाँ प्रयोग किया है, आम तौर पर उसका अर्थ 'वही' और 'नबूवत' का ही है। इन आयतों से आज के रिवाजी "इल्म एवं कला" और स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जानेवाले विषयों पर बहस और दलील देना क़ुर्आन मजीद पर ज़ुल्म भी है और सही बुद्धि के विपरीत भी है। **'मिस्ल क़ौलिहिम्'** यानी यहूद तथा नसारा जिस प्रकार एक दूसरे को झूठा समझते थे, उसी प्रकार अहल-अरब रसूल-इस्लाम (स०) को ग़लत कहने लगे।

४२६ फ़ैसले से अमली फ़ैसला का अर्थ लिया गया है, वरना जहाँ तक दलीलों और गवाहियों का सम्बन्ध है, सत्य एवं असत्य, कुफ़्र एवं ईमान के बीच यक़ीनी फ़ैसला तो इस दुनिया में भी मौजूद है। **'बैनहुम्'** का अर्थ है एक ईमान और सत्य के माननेवाले और दूसरा गरोह असत्य एवं कुफ़्र के माननेवाले।

४२७ (जैसा कि मक्का के मुशरिकों ने हरम काबा में अल्लाह की इबादत से मुसलमानों को रोक दिया था खासकर हुदैबिया की घटना में।) आश्चर्य है कि यहाँ बाज़ तफ़्सीर करनेवाले बराबर यह रिवायत नक़्ल करते गये हैं कि यहाँ इशारा मसीहियों की ओर है, जिन्होंने बख़्त नस्र कल्दानी के 'बैतुल्मुक़द्दस' पर हमले के समय उसकी सहायता करके बैतुल्मुक़द्दस, जो यहूद का क़िब्ला था, उसकी बरबादी में भाग लिया था, हालाँकि बख़्त नस्र का समय मसीह के जन्म से कई शताब्दी पूर्व का था। उस समय मसीही कैसे हो सकते थे। ख़ुशी की बात है कि इस रिवायत को एक पुराने तफ़्सीर करनेवाले जेसास राज़ी ने रद्द कर दिया, जो 'फ़िक़्ह' के विशेषज्ञ होने के साथ इतिहास पर भी हावी थे। इमाम राज़ी ने भी तफ़्सीर-कबीर में यही बात दोहराई है। बख़्त नस्र कल्दानी या बाबुली के बैतुल्मुक़द्दस की बरबादी की तारीख़ ५८६ पूर्व मसीह है। बाज़ ने बैतुल्मुक़द्दस का अर्थ लिया है कि वहाँ टाईटस (तैताऊस) रूमी के समय के रूमी मुशरिकों ने यहूद अहल-तौहीद को अल्लाह के ज़िक्र से रोक दिया था। हर दशा में यह हुक्म आम है। इस आयत के उतरने का कारण निकट में जो भी रहा हो, हुक्म को किसी ख़ास मस्जिद या ख़ास समय के साथ विशेषता देना ठीक नहीं है। **'मसाजिदल्लाहि'** के शाब्दिक अर्थ सज्दा के स्थान के हैं। मुराद इससे मुसलमानों की इबादतगाह होती है। मस्जिद की सुन्दरता, प्रभाव, आकर्षण, सफ़ाई, सादगी इत्यादि की स्वयं ग़ैरमुस्लिमों की ज़बानी प्रशंसा हुई है। **'अज़्लम्'** यानी बड़ा ज़ालिम, बड़ा ख़बीस और बड़ा

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १४६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व क़ालू लंय्यद्ख़ुलल्जन्नत अिल्ला मन् कान हूदन् औ नसारा ॒ तिल्क अमानिय्युहुम् ॒ क़ुल् हातू बुर्हानकुम् अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन (१११) बला ॒ मन् अस्लम वज्हहू लिल्लाहि व हुव मुह्सिनुन् फ़ लहू अज्रुहू अिन्द रब्बिहूी ॒ व ला ख़ौफ़ुन्

★ रु. १३ — १३ आ ९

अलैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (११२) ★ व क़ालतिल्यहूदु लैसतिन्नसारा अला शैअिन् ॒ ०व क़ालतिन्नसारा लैसतिल्यहूदु अला शैअिन् ॒ ०व हुम् यत्लूनल्-किताब ॒ कज़ालिक क़ालल्लज़ीन ला यअ्लमून मिस्ल क़ौलिहिम् ॒ फ़ल्लाहु यह्कुमु बैनहुम् यौमल्क़ियामति फ़ीमा कानू फ़ीहि यख़्तलिफ़ून (११३) व मन् अज़्लमु मिम्मम्-मनअ मसाजिदल्लाहि अंय्युज़्कर फ़ीहस्मुहू व सआ फ़ी ख़राबिहा ॒ अुलाअिक मा कान लहुम् अंय्यद्ख़ुलहा अिल्ला ख़ाअिफ़ीन ॒ ० लहुम् फ़िद्दुन्या ख़िज़्युंव्व लहुम् फ़िल्आख़िरति अज़ाबुन् अज़ीमुन् (११४) व लिल्लाहिल्-मश्रिक़ु वलमग़्रिबु ॒ फ़ अैनमा तुवल्लू फ़सम्म वज्हुल्लाहि ॒ अिन्नल्लाह वासिअुन् अलीमुन् (११५) व क़ालुत्तख़ज़ल्लाहु वलदन् ॒ सुब्हानहू ॒ बल्लहू मा फ़िस्समावाति वल्अर्ज़ि ॒ कुल्लुल्लहू क़ानितून (११६) बदीअुस्समावाति वल्अर्ज़ि ॒ व अिज़ा क़ज़ा अम्रन् फ़अिन्नमा यक़ूलु लहू कुन् फ़यकूनु (११७) व क़ालल्लज़ीन ला यअ्लमून लौ ला युकल्लिमुनल्लाहु औ तअ्तीना आयतुन् ॒ कज़ालिक क़ालल्लज़ीन मिन् क़ब्लिहिम् मिस्ल क़ौलिहिम् ॒ तशाबहत् क़ुलूबुहुम् ॒ क़द् बय्यन्नल्-आयाति लि क़ौमिंय्यूक़िनून (११८) अिन्ना अर्सल्नाक बिल्हक़्क़ि बशीरंव्व नज़ीरन् ॒ ०व ला तुस्अलु अन् अस्हाबिल्जहीमि (११९) व लन् तर्ज़ा अन्कल्यहूदु व लन्नसारा हत्ता तत्तबिअ मिल्लतहुम् ॒ क़ुल् अिन्न हुदल्लाहि हुवल्हुदा ॒ व लअिनित्तबअ्त अह्वाअहुम् बअ्दल्लज़ी जाअक मिनल्अिल्मि ॒

● व. मंज़िल

मा लक मिनल्लाहि मिंव्वलिय्यिंव्व ला नसीरिन् ● (१२०)

الٓمّٓ ١ — ١٣ — البقرة ٢

وَقَالُوا لَنْ يَدْخُلَ الْجَنَّةَ اِلَّا مَنْ كَانَ هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰى ۭ تِلْكَ اَمَانِيُّهُمْ ۭ قُلْ
هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿١١١﴾ بَلٰى ۚ مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ
مُحْسِنٌ فَلَهٗٓ اَجْرُهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ ۠ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿١١٢﴾ وَقَالَتِ الْيَهُوْدُ
لَيْسَتِ النَّصٰرٰى عَلٰى شَيْءٍ ۠ وَّقَالَتِ النَّصٰرٰى لَيْسَتِ الْيَهُوْدُ عَلٰى شَيْءٍ ۙ وَّهُمْ
يَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ۭ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ
بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ﴿١١٣﴾ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ
مَسٰجِدَ اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا ۭ اُولٰۗىِٕكَ مَا كَانَ لَهُمْ اَنْ
يَّدْخُلُوْهَآ اِلَّا خَاۗىِٕفِيْنَ ڛ لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ وَّلَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿١١٤﴾
وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ۤ فَاَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ اللّٰهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿١١٥﴾
وَقَالُوا اتَّخَذَ اللّٰهُ وَلَدًا ۙ سُبْحٰنَهٗ ۭ بَلْ لَّهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۭ كُلٌّ لَّهٗ
قٰنِتُوْنَ ﴿١١٦﴾ بَدِيْعُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۭ وَاِذَا قَضٰٓى اَمْرًا فَاِنَّمَا يَقُوْلُ لَهٗ كُنْ
فَيَكُوْنُ ﴿١١٧﴾ وَقَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ لَوْلَا يُكَلِّمُنَا اللّٰهُ اَوْ تَاْتِيْنَآ اٰيَةٌ ۭ كَذٰلِكَ
قَالَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ مِّثْلَ قَوْلِهِمْ ۭ تَشَابَهَتْ قُلُوْبُهُمْ ۭ قَدْ بَيَّنَّا الْاٰيٰتِ
لِقَوْمٍ يُّوْقِنُوْنَ ﴿١١٨﴾ اِنَّآ اَرْسَلْنٰكَ بِالْحَقِّ بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا ۙ وَّلَا تُسْــَٔـلُ عَنْ اَصْحٰبِ
الْجَحِيْمِ ﴿١١٩﴾ وَلَنْ تَرْضٰى عَنْكَ الْيَهُوْدُ وَلَا النَّصٰرٰى حَتّٰى تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ ۭ قُلْ
اِنَّ هُدَى اللّٰهِ هُوَ الْهُدٰى ۭ وَلَىِٕنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَاۗءَهُمْ بَعْدَ الَّذِيْ جَاۗءَكَ مِنَ
الْعِلْمِ ۙ مَا لَكَ مِنَ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ﴿١٢٠﴾ اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰھُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यह कहते हैं कि जन्नत में कोई हरगिज़ दाख़िल न होगा, मगर हाँ वही जो यहूदी और
नसरानी हों[४१६]; यह उनकी निरी आरज़ूयें हैं[४१७]। आप कह दीजिये कि अपनी सनद (प्रमाण)
लाओ अगर तुम सच्चे हो[४१८]। (१११) हाँ अलबत्ता[४१९] जो कोई अपनी ज़ात को अल्लाह के ★
आगे झुकाये और वह निस्स्वार्थ भी हो[४२०], तो ऐसे के लिए उसके परवरदिगार के पास उसका रु.
बदला है और ऐसों पर न कोई चिन्ता है और न वह दुखी होंगे[४२१]। (११२) ★ १३/१३

और यहूद कहते हैं कि नसारा किसी बुनियाद पर नहीं, और[४२२] नसारा कहते हैं कि यहूद आ
किसी बुनियाद पर नहीं[४२३], ऐसी दशा में कि वह सब एक ही किताब (आसमानी) पढ़ते हैं[४२४]। ६
उसी तरह वह लोग भी कहने लगे उन्हीं का-सा क़ौल जो (कुछ भी) इल्म नहीं रखते[४२५], सो
अल्लाह उनके बीच क़यामत के दिन इस विषय का निर्णय कर देगा जिसमें वह झगड़ते रहते
हैं[४२६]। (११३) और उससे बढ़कर ज़ालिम और कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों को इससे
रोक दे कि उनमें उसका नाम लिया जाये[४२७] और उनकी बरबादी का प्रयास करे[४२८] ? यह लोग
इस योग्य ही नहीं कि उनमें प्रवेश करें मगर हाँ यह कि डरते हुए[४२९] उनके लिए दुनिया में भी
(बड़ी) रुसवाई है और आख़िरत में (भी) बड़ा अज़ाब है[४३०]। (११४) और अल्लाह
का है पूरब (भी) और पश्चिम (भी)[४३१], सो तुम जिधर को भी मुँह फेरो[४३२] बस
उधर ही अल्लाह की ज़ात है[४३३]। बेशक अल्लाह बड़ी विशालता वाला है[४३४]
बड़ा इल्म वाला है[४३५]। (११५) और यह लोग कहते हैं कि ख़ुदा ने एक बेटा बना
लिया है[४३६] कैसा पाक है वह[४३७]। अस्ल यह है कि उसी के क़ब्ज़े की चीज़ है जो कुछ भी
आसमानों और ज़मीन में है[४३८] सब उसी के आज्ञाकारी हैं[४३९]। (११६) वह बनानेवाला है
आसमानों और ज़मीन का[४४०] और जब किसी काम का करना ठहरा लेता है[४४१], तो बस इतना
ही उससे कहता है (कि) 'हो जा'[४४२] बस वह हो जाता है[४४३]। (११७) और जिन्हें इल्म
(जानकारी) नहीं है[४४४] वह कहते हैं कि अल्लाह हमसे बात क्यों नहीं करता[४४५] या हमारे पास
कोई निशान (बड़ा) क्यों नहीं आ जाता[४४६], इसी प्रकार वह लोग कह चुके हैं जो उनसे
पहले हो चुके हैं उन्हीं का-सा कहना[४४७]। उनके हृदयों में संदेह भर गया[४४८]। हमने अपने
निशान तो खोल दिये हैं उन लोगों के लिए जो विश्वास रखते हैं[४४९]। (११८) हमने
आपको हक़ (सत्य) के साथ भेजा है शुभ समाचार सुनानेवाला और डरानेवाला बनाकर[४५०]
और आपसे दोज़ख़वालों के विषय में कुछ भी पूछ न होगी[४५१]। (११९) और आपसे
यहूद तथा नसारा हरगिज़ ख़ुश न होंगे[४५२], जब तक कि आप उनके मज़हब के पैरौ न हो
जायें[४५३]। आप कह दीजिये कि अल्लाह की (बतलाई हुई) यही तो बस राह है[४५४] और ●
अगर बाद इस इल्म के जो आपको पहुँच चुका है उनकी इच्छाओं की पैरवी करने लगे[४५५], तो व.
आपके लिए अल्लाह (की पकड़) के मुक़ाबले में कोई यार होगा, न सहायक[४५६] ●। (१२०) मंज़िल

४१६ यह कहनेवाले यहूद एवं नसारा थे। क़ुर्आन मजीद ने उन्हीं की बात कही है। यहूद का यह अक़ीदा था कि नजात उन्हीं की क़ौम और उनकी ही क़ौम से सम्बन्धित लोगों के लिए है। इंजील में यह क़ौल अंकित है— "नजात यहूद में है।" (यूहन्ना— ४ : २२)। यहूद तथा नसारा दोनों के यहाँ अन्य तारतम्य हेतु अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित करें। इस्लाम के आरम्भ के समय यहूद एवं नसारा कहते थे कि इस दीन को स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है। नजात तो हमारे दीनों से सम्बद्ध है।

४१७ (जो कभी पूरी होनेवाली नहीं और जिनके समर्थन में न कोई माक़ूल दलील है और न सनद और प्रमाण लिखी हुई है।) केवल बड़ों की सन्तान होना, और नस्ली शराफ़त जब पैग़म्बरों की सन्तान के काम न आ सकी, तो हमारे ज़माने के पीरज़ादों और मशायख़ज़ादों का अपनी नस्ली बड़ाई पर भरोसा किये रहना कितनी नासमझी की बात है।

४१८ (अपने इस दावे में कि नजात यहूदीयत और नसरानीयत के साथ सम्बद्ध है) पैग़म्बर (स०)

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १४२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १४३ से)

अपराधी। फ़क़ीहों ने स्पष्टीकरण दिया है कि अगर मस्जिदों में प्रवेश का निषेध किसी दीनी आवश्यकता या शर्ई हिकमत से हो तो ठीक है। ऐसे अवसरों पर यह कार्य मस्जिद की बरबादी और वीरानी के लिए नहीं माने जायेंगे। इस आयत के अन्तर्गत निम्न मसले फ़क़ीहों ने बयान किये हैं— (१) मस्जिद में आम इजाज़त होना शर्त है। (२) मस्जिद का दरवाज़ा किसी की मिलकियत की ज़मीन पर न हो। बाज़ अल्लाहवालों ने लिखा है कि ईंट और चूने की बनी हुई इमारत में अल्लाह के ज़िक्र को रोक देनेवाले के विषय में क़ुर्आन ने यह सज़ा और फटकार रखी है, तो उस क़ौम या व्यक्ति के जुर्म की अहमियत का क्या ठिकाना जो इन्सानी दिलों को, जो वास्तविक सज्दागाहें हैं अल्लाह की, अल्लाह के ज़िक्र से रोके। इस्लामी तालीम की रोकथाम करना, मज़हब के प्रचार में रोड़े अटकाना, सब इसी के अन्तर्गत आते हैं।

४२८ फ़क़ीहों ने कहा है कि जिस प्रकार अल्लाह के ज़िक्र से मस्जिद आबाद होती है, बिदअतों और मना की हुई बातों के करने से भी मस्जिद बरबाद होती है, और वह तमाम कार्य, जो नमाज़ियों की कमी और मस्जिद की वीरानी का कारण हों, आयत के अन्तर्गत आते हैं।

४२९ (मुसलमानों के रोब और दबदबे से) यानी प्रवेश की इजाज़त ग़ैरमुस्लिम को केवल इस दशा में दी जा सकती है कि वह मुसलमानों की हुकूमत में हो। और उसका दाख़िला सरकशी के साथ नहीं, बल्कि मातहती के साथ हो। क़ुर्आन मजीद में 'मसाजिद' बहुवचन में है, लेकिन एक क़ौल है कि 'मसाजिद' का संकेत यहाँ मस्जिद-हरम या हरम-काबा की ओर है। और यह सन्देह कि शब्द बहुवचन एक वचन के स्थान पर कैसे आया? जवाब यह है कि भाषा के मुहावरे में यह जायज़ है; जैसे अगर कोई एक ही नेक पुरुष को कष्ट दे तो यह कहना ठीक होगा कि नेकों का सतानेवाला बड़ा ज़ालिम है। एक क़ौल यह भी है कि आयत सारे काफ़िरों के लिए है कि इबादत से रोकनेवाले तो सारे ही काफ़िर हैं और 'मसाजिद' से मुराद समस्त धरती है। चुनांचे काफ़िरों को दारुस्सलाम में प्रवेश का कोई अधिकार नहीं सिवाय इसके कि मुसलमानों की ही शर्तों पर हो और यह क़ौल इमाम तिरमिज़ी का बताया जाता है। अगर इससे मस्जिद-हराम समझा जाये तो क़ानून और शरा की हैसियत को छोड़कर वाक़िआती रंग में बात बिल्कुल सही नज़र आयेगी, चुनांचे मस्जिद-हराम उस समय से आज तक मुसलमानों के ही अधिकार में चली आ रही है। 'मसाजिदल्लाह' की तर्कीब से फ़क़ीहों ने यह भी निकाला है कि जो स्थान इबादत के लिए विशेषता पा जाये और वहाँ हर व्यक्ति को इबादत की इजाज़त दे दी जाये, वह स्थान निजी या व्यक्तिक मिलकियत से खारिज हो जाती है। हाँ! अगर किसी ने अपने घर का कोई हिस्सा इबादत के लिए मख़्सूस कर दिया और उसके लिए आम इज़ाज़त नहीं रखता, तो उसे मस्जिद न माना जायेगा। वह उस आदमी की निजी मिल्क रहेगी। (इब्नुल् अरबी)।

४३० आख़िरत के अज़ाब का अनुभव तो आख़िरत में ही होगा। बाक़ी दुनिया में उन लोगों की बेइज़्ज़ती और अपमान का प्रदर्शन तो चन्द दिनों में सभी को हो गया। यहूद, मुशरिक, मुनाफ़िक़ और इस्लाम के सारे शत्रु अरब के उपद्वीप और उसकी सीमाओं से देखते-देखते ख़त्म होकर रहे और क़ुर्आन की भविष्यवाणी शब्द ब शब्द पूरी हो गई।

४३१ (मख़्लूक़ की हैसियत से और क़ब्ज़े की चीज़ की हैसियत से भी) **'लिल्लाह'** में 'लाम' विशेषता के लिए आया है, यानी पूरब, पश्चिम सब उसी के हैं। उम्मत-मुहम्मदी के लिए, जो सारी दुनिया के लिए उम्मत-आदिला बनाकर भेजी जा रही थी, लाज़िमी था कि उसको केन्द्रित करने और उस एक दिशा में रखने के लिए एक क़िब्ला भी हो और वह क़िब्ला अब खानए काबा नियत हो रहा था। अहल-किताब ने इस पर एतराज़ शुरू किये। यह नक़्ल एतराज़ और उसके जवाब की शुरूआत है। **'अल्-मश्रिक़ु वल्मग़्रिबु'** दोनों दिशाएँ और इन्हीं दो पर क्या, हर दिशा और हर ओर अल्लाह तआला के लिए एक ही चीज़ है। वह सबका पैदा करनेवाला है। हाकिम है, मालिक है। किसी दिशा विशेष में कोई भी ख़ालिस पवित्रता नहीं, कोई उलूहियत (अल्लाह की शान), कोई अल्लाह की ओर संकेत करने की शान नहीं है। यह बात अच्छी तरह दिमाग़ में जमा ली जाये, क्योंकि यह बात सरसरी नहीं है, बहुत गहरी है। जाहिली मज़हबों का इतिहास मनुष्यों की मूर्खता, नादानियों, जिहालतों और वहम-परस्तियों की एक लम्बी तारीख़ है। सभी मुशरिक क़ौमों में पाई जानेवाली एक गुमराही यह रही है कि ख़ुदा चूँकि एक जगह रहता है, रुका हुआ है और उसके जिस्म है, इसलिए आवश्यक है कि उसका अस्तित्व किसी न किसी नियत दिशा में हो और इस धोखे के कारण स्वयं वह दिशा पवित्र है। मिस्री, हिन्दी, रूमी, सभी मुशरिक क़ौमों ने ख़ुदा को किसी न किसी दिशा में मानकर उसी दिशा को पवित्र माना है और चूँकि सूर्यदेवता का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मर्तबा शिर्क वाले मज़हबों में बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है, अतः आसमान के बादशाह की कृपा से पूरब की दिशा पवित्र मानी गई और दुनिया के अक्सर देशों में उसी दिशा की पूजा होती रही। मुसलमान, जिसकी आँखें तौहीद की गोद में खुली हैं, उसके ख़याल में भी यह बात नहीं आ सकती कि दिशा और सिम्त (तरफ़) जैसी ख़याली चीज़ भी क़ौमों के लिए पूजनीय हो सकती है। मुशरिकों के ही असर से दिक्-पूजा का शिर्क अहल-किताब में भी घुस गया और मसीही मज़हब चूँकि अक़ीदों और इबादतों दोनों में अपने समय के प्रचलित रूमी मज़हब का ही प्रतिबिम्ब है, इसलिए वह तो खुल्लमखुल्ला पूरब की पूजा में लीन हो गया। यहूद, जिन्हें अपनी तौहीद पर नाज़ था, वह भी पूरी तरह सुरक्षित न रह सके, बल्कि उनके बाज़ फ़िरक़े पूरी तरह इसी लाइन में आ गये। बाज़ क़ौमों ने पूरब के जोड़ पर पश्चिम की पवित्रता का कलमा पढ़ना शुरू कर दिया। उन्होंने देखा कि पूरब अगर ज़िन्दगी का इलाक़ा है, तो पश्चिम मृत्यु का देश है। आसमान का राजा अगर निकला उधर से है, तो रोज़ाना मिटता और मौत पाता है पश्चिम में। अतः उसकी पवित्रता को भी क्यों न मान्यता दी जाये। चुनांचे यह दोनों दिशाएँ ख़ूब पूजी जाती रहीं। पूरब अधिक और पश्चिम उससे कुछ कम। अस्ल हवालों के लिए अंग्रेज़ी तफ़्सीर देखें। एक दुनिया इस पूरब और पश्चिम की पूजा की गुमराही में लगी रही, यहाँ तक कि इस्लाम की तौहीद-परस्ती ने सारी दुनिया के अक़ीदों को चुनौती दी और इन मुशरिकाना अक़ीदों पर चोट लगाई और एक आलम को चौंका दिया। पुराने धर्म यह आवाज़ सुनकर भौचक्के होकर रह गये।

४३२ (दुआ के लिए, नमाज़ के लिए या किसी इबादत की भी ग़रज़ से ऐ मुसलमानो!) सम्बोधन उस उम्मत से हो रहा है, जिसका काम ही दुनिया में अकेले ख़ुदा की परस्तारी थी, और शिर्क तथा हर उस कार्य से, जिस पर शिर्क का सन्देह हो, दूर रहना।

४३३ यानी वह अद्वैत वाला ख़ुदा, जो हर स्थान, हर जगह की क़ैद और प्रतिबन्ध से पाक, हर दिशा और सिम्त से अलग और बन्धन से दूर है। उसकी पाकज़ात का प्रकाश हर तरफ़ है, हर जगह है। जिधर भी मुँह करोगे उसका जलवा नज़र आयेगा। उसकी तजल्ली और उसके तेज को किसी दिशा विशेष में प्रतिबन्धित करना निःसन्देह नादानी और अज्ञानता है। **'वज्ह'** इसका शाब्दिक अर्थ है चेहरा। दूसरा अर्थ ज़ात या अस्तित्व या वुजूद है। जब 'वज्हिल्लाह' की तरकीब आयेगी, तो उसका अर्थ अल्लाह का चेहरा नहीं, उसके वुजूद का अर्थ होगा और वही अर्थ यहाँ भी है। आयत में इस अक़ीदे की पूरी काट आ गई कि ख़ुदा जिस्म रखता है, जिसके लिए अंग्रेज़ी में एक लम्बा सा नाम (Anthropomorphism) है। हमारे बड़ों ने भी आयत को यही मानी दिये हैं। मसीहियों के यहाँ आज तक एक मज़हबी तक्नीकी शब्द (Onientation) पूरब को 'मुँह फेरना' का चला आ रहा है और गिरजे आम तौर पर पूरब को मुँह करके बनाये जाते हैं। आयत इसकी भी काट कर रही है। **'फ़सम्म वज्हुल्लाहि'** बाज़ सूफ़ियों ने कहा है कि हम भी इसी कायनात (सृष्टि) में जिस चीज़ पर दृष्टि डालते हैं, ख़ुदा के ही पवित्र प्रकाश का दर्शन करते हैं।"

४३४ वह तो स्वयं ही अथाह विशालता रखनेवाला है। बड़ा से बड़ा फैलाव स्वयं उसके भीतर सम्मिलित है। उसे अपने भीतर कौन ले सकता है? उसकी समाई किस बड़े से बड़े स्थान या जगह में हो सकती है? हर दिशा और हर ओर तो ख़ुद ही उसकी मख़्लूक़ और उसी के क़ब्ज़े की चीज़ें हैं। वह अथाह है, उसकी कोई सीमा नहीं और न वह किसी दिशा से घिर सकता है। यहाँ मौलाना रूमी की चार पंक्तियाँ देख लें, जिनका अर्थ यह है— "पैग़म्बर ने कहा कि ख़ुदा ने फ़र्माया है कि मैं किसी ऊँचाई या गहराई एवं नीचाई में समा नहीं सकता। मैं ज़मीन, आसमान और अर्श में भी नहीं समा सकता, ऐ मित्र! इस बात का विश्वास करो।"

४३५ वह अपनी कामिल जानकारी और बालिग़ हिकमत से जो क़िब्ला, चाहे नियत कर दे। उसकी मस्लहतों और हिकमतों को कौन घेर सकता है। वह उम्मत को एक लड़ी में पिरोने की ख़ातिर क़िब्ले को नियत करने का कार्य जब करेगा, मुनासिब ही करेगा। उसमें किसी दिशा का पवित्र होना इस माने में कि वह ख़ुदा की दिशा है, व्यर्थ का विचार है।

४३६ यह कहनेवाले कौन थे? बहुत से असत्य के माननेवालों को समझा जा सकता है। परन्तु विशेष रूप से यह संकेत उस गढ़े हुए तीन ख़ुदाओं के मज़हब की ओर है, जिसका नाम एक सच्चे पैग़म्बर को सम्बद्ध करके मसीहीयत रखा गया है। यद्यपि इस मज़हब से हज़रत ईसा मसीह का कोई सम्बन्ध नहीं है। **'अित्तख़ज़'** का सही अनुवाद है "ले रखा है, एक बेटा" या "बना रखा है, एक बेटा" यहाँ मसीहियों का क़ौल यह नहीं नक़्ल हो रहा है कि ख़ुदा के एक बेटा है, बल्कि यह कि ख़ुदा ने एक बेटा बना लिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसका साफ़ अर्थ यह है कि खुदा ने किसी को मुतबन्ना कर लिया है (गोद ले लिया है)। क़ुर्आन मजीद के तारीखी संकेतों को पूरी तरह समझने के लिए क़ुर्आन के सैकड़ों स्थानों की भाँति यहाँ भी इसकी आवश्यकता है कि असत्य के माननेवालों पर और उनके अक़ीदों और विचारों पर गहरी नजर रखी जाये। मसीहियों के यहाँ एक बड़ा फ़िरक़ा Adoptionists यानी इत्तिखाज़ियों का गुज़रा है। उनके केन्द्रीय विश्वास के लिए तक्नीकी शब्द 'तबनीयत' या 'इत्तिखाज़ीयत' Adoptionism है। इस अक़ीदे का सारांश यह है कि मसीह पैदायशी खुदा नहीं हैं। वह खुदा पैदा नहीं हुए, वह खुदा शुरू से बने-बनाये और अपने आप खुदा नहीं हैं, बल्कि पैदायशी और वास्तव में वह मनुष्य ही हैं। अलबत्ता 'अक़नूमें सालिसा' यानी 'रूहुल् क़ुदुस' की मेहरबानी और उनका अच्छा प्रभाव उन पर आरम्भ से ही होने लगा था, इसलिए वह खुदा के ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँच गये और अल्लाह की आत्मा उनके अन्दर ऐसी व्याप्त हो गई कि प्रथम भाग यानी खुदा, जो सबसे बड़ा है, उसने उनको अपना बेटा बना लिया और खुदाईयत में उनको भागीदार कर लिया। अब वह रुबूबीयत (पालनेवाले), मालिकीयत (मालिक होना) इत्यादि खुदा की सभी सिफ़तों में हिस्सेदार हैं। इस अक़ीदे के मौजूद होने की गवाही इतिहास में सन् १८५ ई० में मिलती है। पापाए रूम ने इसको इल्हाद (बेदीनी) और ज़न्दीक़ (झूठे और मज़्हब से फिर जानेवाले) माना। बारहवीं सदी ईसवी में इसने फिर ज़ोर पकड़ा और फिर यह लोग ज़न्दीक़ क़रार पाये। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर देखें)। आयत में साफ़ इशारा मसीहीयत की इसी शाखा की ओर है। बड़े से बड़ा शोधक भी मनुष्य ही होता है। कोई न कोई पहलू उसकी दृष्टि से छूट ही जाता है। मसीहीयत के विषय में याद रखना चाहिए कि मसीही मज़्हब में बेटा होने की बात दूसरे नम्बर की बात नहीं है। मसीहीयत की आत्मा और जान, यही विश्वास है।

४३७ (हर प्रकार की इन्सानी रिश्तेदारियों से, जो उसके लिए हर हाल में नीची और उसके अपमान का कारण हैं) **'कल्मए सुब्हान'** के साथ अल्लाह की पाकी के सुबूत के साथ इसके विरुद्ध अक़ीदे पर आश्चर्य भी प्रकट किया गया है। यहाँ चेतावनी है मसीहियों को कि 'मआज़ल्लाह' खुदा को खुदा भी कहे जा रहे हो और फिर उसके लिए यह मानव स्तर वाली रिश्तेदारियाँ भी माने जाते हो। 'उलूहीयत' (खुदा होने) के विषय में तुम्हारा दृष्टिकोण कितना घटिया और गन्दा है।

४३८ मख्लूक़ (जानदारों) के साथ अपने पैदा करनेवाले का एक ही सम्बन्ध है और वह है मिलकियत और ममलूकियत केवल, यानी यह कि पैदा करनेवाले की पैदा की हुई और उसी के आधीन, उसी के क़ब्ज़े में। बेटा होना इत्यादि सब ग़लत, सब गुनाह। तौहीद की साफ़ और स्पष्ट शिक्षा यही है कि अल्लाह तआला उन सभी विशेषताओं और प्रतिबन्धों से पाक है, जो शिर्क करनेवालों ने उसके लिए गढ़ रखे हैं। साथ ही यह आयत शिर्क की दूसरी क़िस्मों पर भी चोट करती है। हर हस्ती अल्लाह के क़ब्ज़े की है। कोई भी हस्ती उसके क़ाबू से बाहर नहीं है और हर हस्ती केवल अल्लाह की ही मिलकियत है। ऐसा नहीं है कि कुछ हस्तियाँ अल्लाह की मिलकियत हों और कुछ किसी अन्य की।

४३९ (अगर इरादा करके नहीं तो आदत और मनोवृत्ति से) अल्लाह की क़ुदरती मातहती और दासता से एवं आज्ञाकारिता से किसी को मफ़र (बचाव) नहीं है। **'कुल्ल'** यानी समस्त जानदार, बेजान, मोमिन, काफ़िर, ऊँचे-नीचे, बड़े-छोटे। **'क़ानितून'** सब उसी के आगे झुके हुए हैं और सबकी तक़दीर उसी के इरादे से बँधी हुई है। 'क़ुनूत' का सबसे उत्तम अर्थ यही है कि अपने बदन की गवाही से और अन्तरात्मा की आवाज़ से अल्लाह के बन्दे होने का और उसकी आज्ञाकारिता को स्वीकार किया जाये। बड़ी या छोटी, जंगली या उन्नतिशील किस जानदार की मजाल है, जो अल्लाह के बनाये हुए दिन और अल्लाह की बनाई हुई रात के चौबीस घण्टों के अलावा कोई घण्टा, कोई मिनट, कोई पल अपने लिए पैदा कर सके? बड़े से बड़े वैज्ञानिकों में से किसी के लिए सम्भव है कि अल्लाह की नियत की हुई सृष्टि के वायुमण्डल के बाहर एक गज, एक फ़िट या एक इंच स्थान अपने लिए तलाश कर ले। कौन ऐसा है, जो अल्लाह का नियत किया हुआ समय और स्थान की सीमाओं के बाहर पग धर सके? कौन ऐसा है, जो उसके द्वारा पैदा किये हुए गर्मी, सर्दी, नमी के नियमों से परे रह सके? कौन है, जो उसके बाँधे हुए उन क़ानूनों का उल्लंघन कर सके जो ग्रहों को एक दूसरे की खींचने की शक्ति से रोके हुए हैं? अदद, वज़न, मिक़दार आदि के जो नियम खुदा ने बनाये हैं, किसमें इतनी हिम्मत है कि उसमें परिवर्तन ला सके? बड़े से बड़े अन्वेषणकर्ता, कारीगरों का कमाल क्या है सिवाय इसके कि उन्होंने क़ुदरती व्यवस्था के नियमों और क़ायदों की थोड़ी जानकारी कर ली है और अस्बाबों के पैदा करनेवाले के सामने वह अन्य लोगों की अपेक्षा कुछ ज़्यादा पहुँच पाता है। **'कुल्लुल्लहू क़ानितून'** इसमें हर मुशरिक क़ौम की काट आ गई कि जिन-जिन लोगों को तुम खुदा का बेटा या देवता या देवी मानते हो, वह उसके शरीक और बराबर या उसका साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देनेवाले तो किसी रूप में नहीं हो सकते, सब के सब उसके आधीन, उसके बनाये हुए और उसके क़ुदरती क़ानून के मातहत और क़ब्ज़े में हैं।

४४० [और इसी प्रकार सारी मख़्लूक़ (पैदा की हुई जानदार तथा बेजान चीजें) और उन सबसे पुराना और उनसे पूर्व का भी है] 'अब्दाअ' का अर्थ है न होने से होने की दशा में लाना। केवल न होने से अस्तित्व में लाना और बिना किनी नमूने या मिसाल के और बग़ैर किसी माद्दा या रूप के भी। 'बदी' वह है जो न किसी आले की आवश्यकता रखता है, न किसी माल-मसाले की ज़रूरत है उसको। न स्थान का पाबन्द है, न समय और ज़माने की पाबन्दी है उसको। न उसको उस्ताद या नमूने की आवश्यकता है। वह दस्तकार नहीं है, कारीगर नहीं है, अस्ली और सच्चे अर्थ में बनानेवाला और अन्वेषण करनेवाला है और बिना किसी की शिरकत या सहायता के वह वुजूद में लानेवाला है। 'बदी' का शब्द उन मुशरिक क़ौमों की काट के लिए आया है, जो ख़ुदा को केवल कारीगर का रूप देते हैं और रूह और माद्दा दोनों को किसी न किसी दर्जे में उसका शरीक और सहायक रखते हैं। यानी गोया माद्दा पहले से मौजूद था ही, वह हमेशा से है और न मिटनेवाला है या रूह भी उसके साथ न मिटनेवाली है। अब ख़ुदा ने केवल इतना किया कि एक आला दर्जे के केमिस्ट की भाँति उनमें पारस्परिक तरकीब और व्यवस्था से नई-नई शक्लें बनाकर पेश कर दीं। 'अब्दाअ' का शब्द इन सारे मुशरिकाना विचारों की काट के लिए काफ़ी है। निजी प्राथमिकता के अलावा समय की प्राथमिकता भी तमाम गुणों का कमाल उसकी ज़ात के लिए साबित है। वह समय के विचार से भी सबसे प्रथम है। एक ज़माना था कि केवल वही था और कुछ भी न था, न दिशाएँ, न देखने में आनेवाली कोई चीज़।

४४१ (केवल अपने इरादे और अपनी मर्ज़ी से और केवल अपनी अकेली हिकमत के तक़ाज़े से।) क़ुर्आन का ख़ुदा साहिबे-इरादा है, ज़िन्दा है, अधिकार रखता है। यूनान के फ़लसफ़ियों की भाँति वह एक बेजान, इरादे से ख़ाली और आख़िरी कारण नहीं।

४४२ यानी कुछ न होने से (अदम से) होने में आ जा, न होने से होने में आ जा। **'यक़ूलु'** "कहता है" का अर्थ यह नहीं है कि अल्लाह तआ़ला हमारी आपकी तरह दो हरफ़ी शब्द "कुन्" बोलता है। शब्द और अक्षर तो स्वयं मिट जानेवाले हैं। अल्लाह तआ़ला का उच्चारण ज़बान, होंठ या दूसरे जिस्म के भागों का मुहताज है। बन्दों की समझ के लायक़ आख़िर इसके सिवा क़रीब से क़रीब बयान और समझाने का तरीक़ा और क्या अपनाया जाये? शेर— "ऐ ख़ुदा! तू हमारी बहस तम्सील (उपमा) से परे है, मेरे सर पर ख़ाक, मैं स्वयं क्या और मेरी मिसालें क्या।" अर्थ केवल इतना है कि उधर अल्लाह का इरादा हुआ और उधर बिना किसी देर के बिना किसी माध्यम के वह चीज़ वास्तव में प्रदर्शित हो गई। **'लहू'** में सर्नाम उस चीज़ की ओर है, जिसका अस्तित्व अभी ख़ारिज में नहीं हुआ, परन्तु अल्लाह की जानकारी में तो है ही, और अल्लाह के हुक्म के एतबार से महकूम (जिसको आज्ञा दी जाये) मौजूद में कोई फ़र्क़ नहीं है समय के रूप में। हर वह जिसे हुक्म है, मौजूद है, और हर मौजूद हुक्म के अन्तर्गत आता है। **'कुन् फ़यकून'** यानी "हो जाओ" अस्तित्व में आ जाने के माने में है। इसका अर्थ यह नहीं है कि 'अमुक वस्तु हो जा' या 'बन जा'।

४४३ यानी वह चीज़ तुरन्त वुजूद में आ जाती है। उसके होने में न कुछ देर लगती है, न उसके लिए किसी मदद या सहयोग या माध्यम या सहायता की आवश्यकता है, यह भी गोया मुशरिकों ही से सम्बोधन है कि तुम ख़ुदा के पैदा करने की क्रिया को समझते भी हो? उसमें सिवाय अल्लाह के इरादे के और किसी चीज़ की शिरकत की आवश्यकता ही नहीं है और इससे तुम्हारे शिर्क की नीवें ही ढह जाती है।

४४४ यानी अस्ली इल्म से, आसमानी इल्मों से— मुशरिकों की तरफ़ इशारा है। **'अल्लज़ीन ला यऽलमून'** से यहाँ वही लोग मुराद हैं, जो हक़ीक़ी इल्म या सच्ची जानकारी से दूर हैं।

४४५ (सीधे और बिना नबियों और रसूलों के माध्यम के) **लौ ला—** उर्दू अनुवाद होगा "क्यों नहीं", क़ुर्आनी मुहावरों में यह शब्द इसी अर्थ में आता है। और सयूती ने भी **इतक़ान** (नौअ़ ४०) में यह क़ौल ख़लील नहवी और मालिक से नक़्ल किया है। मुशरिकों का यह एतराज़ था कि ख़ुदा अपने फ़ुलाँ-फ़ुलाँ बन्दों से उन्हीं के कहने के अनुसार बात कर सकता है, तो आख़िर हमसे क्यों नहीं करता। हम भी तो इन्सान हैं।

४४६ (जिससे हम किसी प्रकार उन पयम्बर के दावे की तस्दीक़ कर ही दें।) **'आयतुन्'** के शाब्दिक अर्थ हैं 'निशान', क़ुर्आन करीम में बहुत बार मोजिज़े के मानी में आया है। मोजिज़े से मतलब उस घटना का है, जो साधारणतः आम मामूल से हटी हुई हो और ज़ाहिरी कारणों के न होते हुए वह घटना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रसूल की ताईद यानी उनके समर्थन हेतु घटित हो। रसूल (स०) की सच्चाई पर गवाहियाँ और दलीलें यूँ तो अनेकों मौजूद थीं, लेकिन मुशरिकों की ओर से बराबर आग्रह होता था कि कोई बड़ा और आश्चर्य-जनक महसूस होनेवाला मोजिज़ा दिखाया जाये, जिसके बाद चूनोचरा (वाद-विवाद) की गुंजाइश ही न रह जाये। जिन लोगों की अक़्ली, रूहानी और नैतिक सतह नीची है, उनकी ओर से आज भी इसी प्रकार की आम हालतों से अलग करामात दिखाने की फ़र्माइश अल्लाह के वलियों से होती रहती हैं। **'आयतुन्'** बड़ाई प्रकट करने हेतु यह कहा गया है यानी कोई बड़ा और हैरत में डालनेवाला मोजिज़ा।

४४७ (अपने-अपने समय के पैग़म्बरों और सच्चे बुज़ुर्गों से) यानी उनकी यह फ़र्माइशें कोई अनोखी, और उनकी यह माँग कोई अनोखी चीज़ नहीं। जाहिलों ने हर दौर में और हर देश में ऐसी फ़र्माइशें की हैं। रिसालत-मुहम्मदी से नबियों में सबसे क़रीब का ज़माना हज़रत ईसा का गुज़रा है। आप अरब में नहीं, शाम में थे। आपसे भी तालीम और अस्ल पयाम को छोड़कर आसमानी निशानियों के तक़ाज़े होते थे। "फ़िरीसियून और सदूक़ियून ने पास आकर आज़माने के लिए उससे प्रार्थना की कि हमें कोई आसमानी निशान दिखा।" (मत्ती—१ : १६)। यहाँ तक कि ख़ुद अल्लाह तआ़ला को लाकर दिखाने की फ़र्माइश आरम्भ हो गई। "फ़िलीस ने उससे कहा कि ऐ ख़ुदावन्द ! हमें बाप को दिखा, बस हमें काफ़ी है।" (यूहन्ना—८ : १४)। **'अल्लज़ीन मिन् क़ब्लिहिम्'** से मुराद पुराने ज़माने के मुशरिक लोग हैं।

४४८ यानी अगलों और पिछलों के हृदय बिल्कुल एक से हैं सत्य को न पहचानने और अन्धेपन में। इंजील में यही मज़मून ग़ुस्से की शक्ल में मौजूद है— "इस ज़माने के बुरे और बदचलन लोग निशान की माँग करते हैं, मगर यूनुस के निशान की भाँति कोई और निशान उनको न दिया जायेगा।" (मत्ती—४ : १६)। "ऐ गर्दनकशो ! और दिल और कान के नामख़्तूनो ! तुम हर समय रूहुल्क़ुदुस का विरोध करते हो; जैसे तुम्हारे बाप-दादा करते थे वैसे ही तुम भी करते हो। नबियों में किसको तुमने नहीं सताया ?" (आमाल—५१, ५२ : ७१)।

४४९ माँग एक निशान की थी। जवाब यह मिला कि यहाँ तो निशान पर निशान पेश किये जा चुके हैं। तारीख़ और सीरत में जिन मोजिज़ों का वर्णन है, उनसे अगर दृष्टि हटा भी लें तो दो मोजिज़े तो बिल्कुल खुले हुए और सामने नज़र आ रहे थे। (१) रसूल (स०) का सच्चाई, धरोहर के विषय में, पवित्र जीवन, बुद्धि और अक़्ल तथा समझदारी में बेमिसाल होना। आपके चरित्र और जीवन की पाकी के एक-एक अंश का स्वयं एक मोजिज़ा होना। (२) क़ुर्आन मजीद का शाब्दिक, अर्थ के लिहाज़ से, ज़ाहिरी और छुपे तौर पर तथा शैक्षिक एवं साहित्यिक रूप में बेमिसाल होना। **'बय्यन्ना'** यानी यह निशान कुछ उनसे छुपे हुए नहीं हैं। हमने उन्हें बिल्कुल स्पष्ट एवं खुला हुआ बना रखा है, उनमें किसी प्रकार का छुपावा नहीं है। **'क़द् बय्यन्ना'** यहाँ 'क़द्' की ताकीद ने 'बय्यन्ना' की स्पष्टता को और ज़ोरदार बना दिया और उसी के बयान को उर्दू अनुवाद में "खोल-खोल" लाया गया। **'लि क़ौमिंय्यूक़िनून'** यानी यह खुले हुए निशान भी उनको ही दिखाई देते हैं, जिनके हृदय जिहालत, दुश्मनी और सन्देह तथा भ्रम की गन्दगी से पाक हैं। गवाहियाँ और तर्क चाहे अर्थ के हों या पदार्थ के, उनसे लाभान्वित होने के लिए देखनेवाली आँखें और समझनेवाला दिमाग़ ज़रूरी है कि मौजूद हो। आँख वाले के लिए पयम्बर (स०) की किताब ज़िन्दगी की एक-एक सतर मोजिज़ा है। मौलाना रूमी ने इसी बात को यूँ कहा है— "जिस व्यक्ति के दिल में समझदारी और परख करने का गुण है, उसके लिए पयम्बर (स०) के रूप और उनकी आवाज़ ही मोजिज़ा है।" **'यक़ीन'** शक का उलटा और इल्म तथा खोज के मानी में आता है। **'लि क़ौमिंय्यूक़िनून'** का अर्थ यह भी हो सकता है कि जिन लोगों में यक़ीन की तलब और प्यास है, यह उन लोगों के लिए है।

४५० (सारे विश्व के लिए ऐ हमारे पैग़म्बर !) **'बिल्हक़्क़ि'** हक़ के साथ यानी सच्चे दीन के साथ या सच्ची राह का रास्ता दिखानेवाला बनाकर। यह भी हो सकता है कि सच्चाई और सत्य के साथ उसकी सारी शक्तियों और तर्क के साथ। **'बशीर'** आज्ञाकारी मोमिनों के वास्ते, जो आपके पैग़ाम को मान लेंगे, उनसे दुनिया और आख़िरत दोनों की भलाई का वादा है। **'नज़ीर'** इन्कार करनेवालों और सरकशों के वास्ते, जो आपका विरोध करेंगे, उनकी आख़िरत तो अवश्य और दुनिया भी अक्सर बरबाद होगी। इक़्बाल फ़र्माते हैं— "उसकी मेहरबानी और उसका ग़ुस्सा सर से पैर तक रहमत और कृपा ही कृपा है। वह यारों और दोस्तों के लिए और यह दुश्मनों के लिए रहमत है।"

४५१ (और दोज़ख़ वाले वही होंगे जो आपके पयाम से इन्कार करते हैं) अर्थ यह है कि इन्कार करनेवालों की ज़िम्मेदारी आप पर क्या है। आप उनके लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हैं। आपका फ़र्ज़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो पयाम पहुँचा देने पर समाप्त हो जाता है। आगे की ज़िम्मेदारी आप पर ज़रा भी नहीं है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि जो कोई स्वयं अपना सुधार न चाहे, तो मुर्शिद (पीर) को उसका पीछा न पकड़ना चाहिए।

४५२ (चाहे आपकी तरफ़ से उनके लिए कितना ही खयाल रखा जाये और आप उनके साथ चाहे कितनी हमदर्दी और सहानुभूति करें।) यह आदेश नसरानियों के विषय में है, जो हर दशा में अहल-किताब तो थे ही, और मुसलमानों के साथ 'वही' और 'नबूवत' के अक़ीदे में मेल खाते थे। तो जो खुले हुए अहल-शिर्क हैं और इस्लामी अक़ीदे से किसी प्रकार का मेल नहीं रखते, तो उनसे सुलह रखने की आशा और उनकी रज़ामन्दी के विषय में जो हुक्म होगा वह ज़ाहिर ही है।

४५३ (यानी जब तक उनके गढ़े हुए मज़हब के माननेवाले न हो जायँ, और अपने सच्चे दीन से हाथ न उठा लें।) **'मिल्लत'** के मानी मज़हब और तरीक़े के हैं। दीन और मिल्लत में अन्तर यह है कि दीन का प्रयोग व्यक्तियों और उम्मत के लोगों के सम्बन्ध में होता है, जैसे दीन-अल्लाह या दीन-ज़ैद, और मिल्लत का इस्तेमाल नबी और जमाअत के तारतम्य में होता है, जैसे कि मिल्लत-इब्राहीम या मिल्लत-यहूद (राग़िब)। यहूदीयत और नसरानीयत, दो धर्मों के बावजूद उनके लिए शब्द 'मिल्लत' को एक वचन में लाने से बाज़ फ़क़ीहों ने यह नतीजा निकाला है कि कुफ़्र चाहे जिस प्रकार का हो, हर दशा में एक ही मिल्लत के अन्तर्गत आता है। और इसी वास्तविकता के कारण अक्सर फ़क़ीहों ने, जिनमें शाफ़िईया और हनफ़ीया भी सम्मिलित हैं, विरासत काफ़िरों और मुसलमानों के बीच जायज़ नहीं रखी है, लेकिन काफ़िरों-काफ़िरों के बीच जायज़ रखी है चाहे उनका कुफ़्र आपस में विभिन्न ही हो।

४५४ (सत्य और सच्चाई की, न कि किसी और की बतलाई हुई राह) इसी पर अक़्ल तथा नक़्ल की दलीलों की सहमति है और इसी अल्लाह की बतलाई हुई राह का नाम 'इस्लाम का तरीक़ा' कहलाता है।

४५५ (दीन के मसलों में और यह पैरवी अब उनके लिए असम्भव और कठिन है) **'लइन्'** में 'लाम' क़सम का है ताकीद करने और निस्सन्देह होने के अर्थ में। क़ुर्आन खुदा का कलाम है, परन्तु उसके मुहावरे इन्सानी भाषा और उसी के तर्ज़ के हैं। इन्सानी बातचीत और कलाम में, जहाँ क़सम का अवसर आता है, क़ुर्आन में भी उसकी रिआयत पाई जाती है। **'अह्वा'अ'** का अर्थ है वह रायें (मत) और विचार, जो इल्म तथा सच्चाई के स्थान पर निजी इच्छाओं की पूर्ति पर आधारित हों। **'अल्ञिल्म'** का अर्थ है 'वही' का इल्म। हर प्रकार से यक़ीनी, निस्सन्देह और हर शुबहे एवं भ्रान्ति से परे। गोया एक सिरे पर 'अल्ञिल्म' है सत्य से परिपूर्ण और दूसरे सिरे पर 'अह्वाअ' हैं सत्य से बिल्कुल खाली। क़ुर्आन के तर्क की मनोवैज्ञानिक शक्ल अब यह हुई— (१) यहूद तथा नसारा की रज़ामन्दी के लिए आवश्यक है कि आप उनका धर्म अपना लें, परन्तु उनका धर्म सरासर हेरफेर किया हुआ और असत्य है, अतः उनकी रज़ामन्दी तथा खुशी के लिए आवश्यक हुआ कि आप हेरफेर किये हुए असत्य धर्म को अख्तियार करें। (२) जो अल्लाह की रहमतों से मालामाल और खुदा की मेहरबानियों से इज़्ज़त पाये हुए और सम्मानित हो, उसके लिए असत्य का अनुसरण असम्भव है। आप खुदा की रहमतों से मालामाल और उसकी मेहरबानियों से सरबुलन्द थे, अतः आप असत्य की पैरवी कर ही नहीं सकते थे। (३) और जब आपके लिए असत्य का अनुसरण असम्भव हो तो यहूद तथा नसारा की मिल्लत की पैरवी, जो स्वयं एक असत्य एवं गुमराही का रूप है, आपके लिए मुहाल है। और इसलिए उन असत्य के माननेवालों की रज़ामन्दी की भी कोई सूरत आपके लिए नहीं। आगे असत्य की पैरवी करने के लिए जो तम्बीह और चेतावनी आई है और उसके पश्चात् **'बअ्दल्लज़ी जा'अक मिनल्ञिल्म'** की जो पाबन्दी लगी हुई है, इस पाबन्दी से इमाम राज़ी ने यह सारांश निकाला है कि चेतावनी हमेशा स्पष्ट दलीलों के बाद ही होगी, और उसके सम्बन्ध में होगी जो अमल करने की शक्ति भी रखता है, और यहीं से इस बात की काट भी हो गई कि अल्लाह कष्ट सहन करने की शक्ति भी देता है।

४५६ **'वली'** (यार) इस दुनिया में और नसीर (मददगार-सहायक) आखिरत में। अच्छी तरह खयाल रहे कि रसूल (स०) को सम्बोधित करके यह बात केवल फ़र्ज़ के रूप में कही गई है और जब अक़्ली तौर पर नामुमकिन चीज़ों के विषय में भी फ़र्ज़ कर लिया जाता है, तो रोज़ाना होनेवाली और शरअ के खिलाफ़ बात को भी फ़र्ज़ कर लेने में कोई शक न होना चाहिए। और इस प्रकार के सम्बोधन से केवल यही अर्थ है कि मसले की अहमियत पर बल दिया जाये, और इन्कार करनेवालों की ओर झुकाव पर जब स्वयं रसूल (स०) पर इतनी सख्ती से ताकीद है तो दूसरों का क्या ज़िक्र हो सकता है? बाज़ लोगों ने कहा है कि यहाँ सम्बोधन केवल शाब्दिक रूप में रसूल (स०) से है अन्यथा हुक्म उम्मत को है। इमाम राज़ी ने कहा है कि शफ़ाअत (क्षमा हेतु सिफ़ारिश) काफ़िर के हक़ में नहीं हो सकती।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

★ अल्लज़ीन आतैना-हुमुल्किताब यत्लूनहू हक़्क़ तिलावतिही त अुलाअिक युअ्मिनून
रु. बिही त व मंय्यक्फ़ुर् बिही फ़अुलाअिक हुमुल् - ख़ासिरून (१२१) ★ या
१४/१४ बनी अिस्राअीलज़्कुरू निअ्मतियल्लती अन्अम्तु अलैकुम् व अन्नी फ़ज़्ज़ल्तुकुम्
आ ९ अलल्-आलमीन (१२२) वत्तक़ू यौमल्ला तज्ज़ी नफ़्सुन् अन् नफ़्सिन् शैअंव्व
ला युक़्बलु मिन्हा अद्लुंव्व ला तन्फ़अुहा
शफ़ाअतुंव्व ला हुम् युन्सरून (१२३) व
अिज़िब्तला अिब्राहीम रब्बुहू बिकलिमातिन्
फ़ अतम्महुन्न त क़ाल अिन्नी जाअिलुक लिन्नासि
अिमामन् त क़ाल व मिन् ज़ुर्रिय्यती त क़ाल ला
यनालु अह्दिज़्ज़ालिमीन (१२४) व अिज़्
जअल्नल्बैत मसाबतल् - लिन्नासि व अम्नन् त
वत्तख़िज़ू मिम्मक़ामि अिब्राहीम मुसल्लन् त व
अहिद्ना अिला अिब्राहीम व अिस्माअील
अन् तह्हिरा बैतिय लित्ताअिफ़ीन वल्आकिफ़ीन
वर्रुक्कअिस्सुजूदि (१२५) व अिज़् क़ाल
अिब्राहीमु रब्बिज्अल् हाज़ा बलदन्
आमिनंव्वर्ज़ुक् अह्लहू मिनस्समराति मन्
आमन मिन्हुम् बिल्लाहि वल्यौमिल्आख़िरि त

الٓمٓ ١ ١٥ البقرة ٢

حق تلاوته اولئك يؤمنون به ومن يكفر به فاولئك هم الخسرون ﴿١٢١﴾
يبني اسراءيل اذكروا نعمتي التي انعمت عليكم واني فضلتكم على
العلمين ﴿١٢٢﴾ واتقوا يوما لا تجزي نفس عن نفس شيئا ولا يقبل منها
عدل ولا تنفعها شفاعة ولا هم ينصرون ﴿١٢٣﴾ واذ ابتلى ابرهم ربه
بكلمت فاتمهن قال اني جاعلك للناس اماما قال ومن ذريتي قال
لا ينال عهدي الظلمين ﴿١٢٤﴾ واذ جعلنا البيت مثابة للناس وامنا و
اتخذوا من مقام ابرهم مصلى وعهدنا الى ابرهم واسمعيل ان
طهرا بيتي للطائفين والعكفين والركع السجود ﴿١٢٥﴾ واذ قال ابرهم رب
اجعل هذا بلدا امنا وارزق اهله من الثمرت من امن منهم بالله
واليوم الاخر قال ومن كفر فامتعه قليلا ثم اضطره الى عذاب
النار وبئس المصير ﴿١٢٦﴾ واذ يرفع ابرهم القواعد من البيت واسمعيل
ربنا تقبل منا انك انت السميع العليم ﴿١٢٧﴾ ربنا واجعلنا مسلمين لك و
من ذريتنا امة مسلمة لك وارنا مناسكنا وتب علينا انك انت
التواب الرحيم ﴿١٢٨﴾ ربنا وابعث فيهم رسولا منهم يتلوا عليهم ايتك ويعلمهم
الكتب والحكمة ويزكيهم انك انت العزيز الحكيم ﴿١٢٩﴾ ومن يرغب عن
ملة ابرهم الا من سفه نفسه ولقد اصطفينه في الدنيا وانه في الاخرة
لمن الصلحين ﴿١٣٠﴾ اذ قال له ربه اسلم قال اسلمت لرب العلمين ﴿١٣١﴾ ووصى

منزل ١

क़ाल व मन् कफ़र फ़ अुमत्तिअुहू क़लीलन् सुम्म अज़्तर्रुहू अिला अज़ाबिन्नारि त
व बिअ्सलमसीरु (१२६) व अिज़् यर्फ़अु अिब्राहीमुल् - क़वाअिद मिनल्बैति
व अिस्माअीलु त रब्बना तक़ब्बल् मिन्ना त अिन्नक अन्तस्समीअुल्-अलीमु
(१२७) रब्बना वज्अल्ना मुस्लिमैनि लक व मिन् ज़ुर्रिय्यतिना
अुम्मतम् - मुस्लिमतल्लक त व अरिना मनासिकना व तुब् अलैना ज
अिन्नक अन्तत्तव्वाबुर्रहीमु (१२८) रब्बना वब्अस् फ़ीहिम् रसूलम्मिन्हुम्
★ यत्लू अलैहिम् आयातिक व युअल्लिमु-हुमुल्-किताब वल्हिक्मत व युज़क्कीहिम् त
रु. अिन्नक अन्तल् - अज़ीज़ुल् - हकीमु (१२९) ★ व मंय्यर्ग़बु अम्मिल्लति
१५/१५ अिब्राहीम अिल्ला मन् सफ़िह नफ़्सहू त व लक़दिस्तफ़ैनाहु फ़िद्दुन्या ज
आ ८ व अिन्नहू फ़िल्आख़िरति लमिनस्सालिहीन (१३०) अिज़् क़ाल
लहू रब्बुहू अस्लिम् ला क़ाल अस्लम्तु लिरब्बिल्आलमीन (१३१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिन लोगों को हमने किताब दी है और वह उसे उसी प्रकार पढ़ते हैं जिस प्रकार उसके पढ़ने का हक़ है[४६७], वह लोग उस पर ईमान ले आयेंगे[४६८] और जो कोई उससे कुफ़्र अख़्तियार कर लेगा तो यही लोग पूरा नुक़्सान उठानेवाले हैं[४६९]। (१२१) ★ ★ रु. १४/१४ आ ६

ऐ बनी इस्राईल ! मेरी वह नेमतें याद करो जो मैंने तुमको बख़्शीं[४६०] और यह कि मैंने तुम्हें दुनिया जहान वालों पर बड़ाई दी[४६१]। (१२२) और उस रोज़ से डरो जब न कोई किसी के भी काम आयेगा और न उसकी तरफ़ से बदला स्वीकार किया जायेगा और न उसे सिफ़ारिश नफ़ा पहुँचा सकेगी और न उन्हें मदद ही पहुँच सकेगी[४६२]। (१२३) और (वह वक़्त याद करो) जब इब्राहीम को[४६३] उनके परवरदिगार कुछ बातों में आजमाया[४६४] और उन्होंने वह पूरे कर दिये[४६५], कहा गया कि मैं अवश्य तुम्हें लोगों का पथप्रदर्शक बनानेवाला हूँ[४६६]। बोले और मेरी नस्ल से भी[४६७] इर्शाद हुआ (कहा गया) कि मेरा वादा नाफ़र्मानों को नहीं पहुँचता[४६८]। (१२४) और (वह वक़्त याद करो) जब हमने खानए (काबा को)[४६९] लोगों के लिए एक आकर्षित होने का स्थान और शान्ति का स्थान नियत किया[४७०]। और इब्राहीम के स्थान को नमाज़ की जगह बना लो[४७१]। और हमने इब्राहीम और इस्माईल की ओर हुक्म भेजा[४७२] कि तुम दोनों मेरे घर को पाकसाफ़ रखो[४७३] तवाफ़ करनेवालों और एतिकाफ़ करनेवालों और रुकूअ़ करनेवालों और सज्दा करनेवालों के लिए[४७४]। (१२५) और (वह वक़्त भी याद रखने योग्य है) जब इब्राहीम ने अर्ज़ की कि ऐ मेरे परवरदिगार ! इस शहर को शान्ति वाला बना दे और इसमें रहने बसनेवालों को रोज़ी दे फलों से[४७५] (यानी) उस रहनेवालों को, जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान लायें[४७६]। (अल्लाह ने फ़र्माया) जो कुफ़्र करेगा मैं उसे भी कुछ दिन मज़े उठाने दूँगा, फिर उसे घसीटते हुए जहन्नम के अज़ाब तक पहुँचा दूँगा और वह कैसा बुरा ठिकाना है[४७७]। (१२६) और (वह वक़्त भी याद रखने योग्य है) जब इब्राहीम और इस्माईल काबे की बुनियादें ऊँची कर रहे थे[४७८]। ऐ हमारे परवरदिगार! हमसे (यह) स्वीकार कर[४७९]। अवश्य ही तू ही (सब कुछ) सुननेवाला है, (सब कुछ) जाननेवाला है[४८०]। (१२७) ऐ परवरदिगार ! हम दोनों को अपना आज्ञाकारी बना दे[४८१] और हमारी नस्ल से अपनी एक आज्ञाकारी उम्मत पैदा कर[४८२] और हमको हमारे दीनी क़ायदे बतला दे[४८३] और हमारे हाल पर ध्यान रख[४८४]। अवश्य ही तू ही है बड़ा ध्यान देनेवाला, बड़ा कृपालु[४८५]। (१२८) ऐ हमारे परवरदिगार ! उनमें एक पैग़म्बर उन्हीं में से भेज[४८६], जो उन्हें तेरी आयतें पढ़कर सुनाये और उन्हें अल्लाह की किताब और ज्ञान की शिक्षा दे और उन्हें पाक (व साफ़) करे[४८७]। अवश्य ही तू ही बड़ा महान बड़ा हिकमतवाला है[४८८]। (१२९) ★ ★ रु. १५/१५ आ ८

और इब्राहीम के मज़हब से कौन फिरेगा मगर वही जिसने अपने को मूर्ख बना लिया हो[४८९]। और हमने तो उन्हें दुनिया में भी ईश्वर-भक्त बना लिया था[४९०] और आख़िरत में भी वह अल्लाह वालों में से होंगे[४९१]। (१३०) और (वह वक़्त याद करने के क़ाबिल है) जब उनसे उनके परवरदिगार ने फ़र्माया कि आज्ञाकारी बन जाओ[४९२] वह बोले मैं आज्ञाकारी हूँ सारे जहान के परवरदिगार का[४९३]। (१३१)

---

४५७ यानी दिल से उसकी ताज़ीम और उसका सम्मान करते हैं। उसके आदेशों पर अमल करते हैं। उसमें तब्दीली और हेरफेर नहीं करते। तिलावत (क़ुर्आन का पठन) के हक़ में सभी कुछ आ गया। 'अल्‌किताब' से मुराद तौरेत है। **'अल्लज़ीन आतैना-हुमुल्‌किताब'** से मुराद यहूद व नसारा हैं।

४५८ (और इस्लाम क़बूल कर लेंगे) मतलब यह है कि जो अहल-किताब, ज़िद, हठ-धर्मी और दुश्मनी से काम नहीं लेते, वह स्वयं अपनी किताब को पढ़कर क़ुर्आन की सच्चाई, सत्यता और उसकी सदाक़त (यथार्थता) को मान जायेंगे और रसूलुल्लाह (स०) पर ईमान ले आयेंगे। **'युअ्मिनून बिही'** में सर्नाम को रसूल (स०) की ओर भी फेरा जा सकता है इस कारण से कि ऊपर आपका वर्णन **'अिन्ना' अर्सल्नाक बिल्हक़्क़'** में छिपा हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४५९ (और उनकी गिन्ती काफ़िरों ही में होगी)।

४६० क़ौम बनी इसराईल और उन पर जो ख़ुदा के एहसान थे, उनके विषय में रुकूअ ५ में काफ़ी ब्योरेवार कहा जा चुका है। शुरू-शुरू में हज़रत मूसा के ज़माने से तारीख़ बयान की गई, यानी इसराईल के उस ज़माने से, जब वह स्थायी रूप से साहिब-किताब व शरीअ़त होकर आज़ाद और ख़ुदमुख़्तार क़ौम रहे और हर प्रकार की नाफ़र्मानी और सरकशी में लीन रहे। अब उसको उसके सबसे पुराने ज़माने यानी हज़रत इब्राहीम के समय की ओर आकर्षित किया जा रहा है। हज़रत इब्राहीम के ही ज़माने से तो आपकी नस्ल की दो शाखें हुईं और उनमें से एक का नाम दो पीढ़ियों के बाद बनी इसराईल पड़ा।

४६१ (तौहीद के अलम-बरदार और प्रचारक के रूप में) क़ुर्आन मजीद जो भी दावे करता है किसी की भी पर्वा (फ़िक्र) किये बग़ैर बेधड़क करता है। बनी इसराईल को उसने बिना किसी शर्त तथा प्रतिबन्ध के उस समय की तमाम क़ौमों से अफ़्ज़ल (उत्तम) और बढ़कर माना है। यह बड़ाई उसी नेमत यानी तौहीद के कारण थी। दुनिया की दुनिया शिर्क में फँसी हुई थी। तौहीद पर स्थिर केवल यही क़ौम थी और नबूवत की शृंखला को माननेवाली केवल यही नस्ल ली। रुकूअ ६ के हाशिए अवलोकित करें। बनी इसराईल को उनके उरूज (उत्कर्ष) और उन्नति और उनकी गुमराहियों की दास्तान सुनाकर याद यह दिलाया जा रहा है कि उनकी बड़ाई और शराफ़त का रहस्य क्या था? यही था कि वह अद्वैत के माननेवाले हज़रत इब्राहीम की नस्ल में थे। तौहीद तथा नबूवत की अमानत उन्हीं की नस्ल को सौंपी गई थी। अगर उनको उन्हीं इनामों से फ़ायदा उठाने की इच्छा है, तो उनको चाहिए कि उसी इब्राहीमी दीन की ओर लौट जायें।

४६२ (किसी तरफ़ से भी और न उनकी फ़र्याद को कोई पहुँच सकेगा) यह आयत भी रुकूअ ६ में गुज़र चुकी है और वहीं इस पर कई हाशिए दिये जा चुके हैं। बनी इसराईल ने उस समय एक तो क़यामत के अक़ीदे को क़तई भुला दिया था और सज़ा तथा बदला पाने की सभी शक्लें इसी दुनिया में सीमित समझ लिया था। इसी कारण वर्तमान तौरेत में जहाँ-जहाँ कठोरता और शराफ़त एवं मानवता के बदलों और फलों का वर्णन किया गया है, इसी दुनिया की ख़ुशहाली और बदहाली का बयान है। इसीलिए पहले तो उनको आख़िरत के दिन की याद दिलाई गई और फिर उनकी इस गुमराही की याद दिलाई गई कि शफ़ाअ़त और गुनाहों के बदले में प्रायश्चित्त से काम चल जायेगा। आयत का अर्थ इतना विशाल है कि यहूदीयत के साथ नसरानीयत की भी जड़ कट रही है। नसरानीयत की तो बुनियाद ही प्रायश्चित्त, बदले और शफ़ाअ़त (सिफ़ारिश) पर है और यह अक़ीदे क़तई असत्य हैं।

४६३ यह नाम प्रथम बार क़ुर्आन में आया है। क़ुर्आन के सम्बोधन में पहले अरब के लोग थे। जो व्यक्ति उनके लिए मशहूर और जाने-माने थे, क़ुर्आन उनके नाम उनके सामने बिना किसी परिचय के ले आता है और फिर इब्राहीम तो वह बुज़ुर्ग थे कि उनसे मुशरिकों के अलावा यहूद तथा नसारा भी भलीभाँति परिचित थे। उनका परिचय कराना और भी अनावश्यक था। यह इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम वही बड़े नबी हैं, जो इस्लामी अक़ीदे के अलावा यहूदी और नसरानी अक़ीदे में भी बड़े सम्मान वाले पैग़म्बर हुए हैं। तौरेत में आपका नाम 'अब्राम' और 'अब्राहम' दोनों प्रकार से आया है। तौरेत की रिवायत है कि आप और हज़रत नूह के बीच दस पीढ़ियों का फ़ासला है यानी आप उनकी ग्यारहवीं पीढ़ी में थे, लेकिन स्वयं तौरेत के अर्थ लिखनेवालों का विचार है कि तौरेत में नसबनामा की कुछ पीढ़ियाँ छूट गई हैं। सरचार्ल्स मार्स्टन, जो पुरातत्त्व काल का एक विशेषज्ञ है, उसकी खोजानुसार इनके जन्म का वर्ष २१६० पूर्व मसीह है और आपकी आयु तौरेत में १७५ वर्ष लिखी हुई है। देहान्त का सन् इस हिसाब से १९८५ पूर्व मसीह होता है। पिता का नाम तारेह था या अरबी में आज़र। नाम का उच्चारण पुरानी भाषाओं में कई-कई प्रकार से आया है। मुसलमानों के लिए क़ुर्आनी शब्द आज़र काफ़ी है। वतन पूर्वजों का बाबुल या कल्दानिया (अंग्रेज़ी में काल्डिया) था, नई भाषा में इसी को इराक़ कहते हैं। जिस नगर में आपका जन्म हुआ, उसका नाम तौरेत में अर (Ur) आया है। एक ज़माने तक यह नगर नक़्शे से ग़ायब था। अब नये सिरे से प्रकट हुआ है। खुदाई के काम की दाग़बेल १८५४ ई० ही में पड़ गई थी। १९२२ ई० में ब्रिटेन और अमरीका के पुरातत्त्व के विशेषज्ञों की एक मिली-जुली खोज की मुहिम ब्रिटिश मिउज़ियम और पेन्सिल वैनिया यूनिवर्सिटी के तत्त्वावधान में इराक़ को रवाना हुई और खुदाई का काम पूरे सात वर्ष तक जारी रहा। धीरे-धीरे पूरा नगर प्रकट हो गया और इराक़ सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने अजायबख़ाने के आदेश में लाकर इन खँडहरों को सुरक्षित कर दिया है। यह नगर फ़ारस की खाड़ी की नदी फ़ुरात के दहाने और इराक़ की राजधानी बग़दाद के लगभग बीच के फ़ासले पर है। इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुज़ुर्गी और नबूवत चूँकि मुसलमानों के अलावा यहूदियों और नसरानियों को भी मान्य है, अतः इन क़ौमों के आलिमों ने आपके जीवन से सम्बद्ध जानकारी और खोज में कोई कसर नहीं छोड़ी है। हेरफेर की हुई इंजील की तारीखी ग़लतियों से उकताकर कुछ नई रौशनी के खोज करनेवालों ने कह दिया कि इस नाम का कोई बुज़ुर्ग गुज़रा ही नहीं। परन्तु अब फिर खोज हो रही है और लोग आपके व्यक्तित्व के क़ायल होने लगे हैं। इस्राईली और इस्माईली नस्ल में एक मुद्दत से लाग-डाट और अदावत चली आ रही है। हज़रत इब्राहीम दोनों नस्लों के पूर्वज थे। अल्लाह की नेमत सर्वोपरि यानी तौहीद की सरदारी इसराईली नस्ल की लगातार नाफ़र्मानी की सज़ा में उनसे छिनकर एक इस्माईली पैग़म्बर के माध्यम से अब सारी दुनिया के लिए आम हो रही है, अतः इस बात की आवश्यकता थी कि इब्राहीमी व्यक्तित्व (और उनके साथ इस्माईली व्यक्तित्व) की केन्द्रीयता तथा महत्त्व से विश्व को परिचित करा दिया जाये अतः यहाँ यही हो रहा है। शब्द इब्राहीम के सुरयानी भाषा में कुछ भी मानी हों, अरबी शब्दकोष वालों ने **'अबुन् रहीम'** के माने में लिया है, क्योंकि आपका स्नेह बच्चों के मामले में बड़ा प्रसिद्ध है। हदीस-नबवी में भी यही आया है कि मुसलमानों के छोटे बच्चों का मृत्यु के बाद क़यामत तक पालन-पोषण और उनकी देखभाल हज़रत इब्राहीम के ज़िम्मे रहेगी।

४६४ (और वह कुछ बातें, आदेश थे कि क्या किया जाये और क्या करना मना है) **'अब्तला'** आज़माया, अपनी जानकारी के लिए नहीं क्योंकि वह तो स्वयं अलीम (जाननेवाला) है बल्कि खुल्लमखुल्ला, ताकि दूसरे भी उनके पूर्ण ईमान को देख लें। अल्लाह तआला के सम्बन्ध में आज़माने का शब्द जब भी प्रयोग होता है, तो उससे यही मुराद होती है। **'कलिमात'** यह 'कलमात' क्या थे, इनको नियत नहीं किया जा सका। इसमें बड़ा विवाद है और कोई अन्तिम निर्णय मौजूद नहीं है। विवरण कुछ भी हो, थे वह आदेश शरअ से ही सम्बद्ध।

४६५ यानी आप उन परीक्षाओं में पूरे उतरे और उन आदेशों का पालन किया। **'अत्माम'** नक़्स यानी त्रुटि के मुक़ाबिले का शब्द है यानी आपने उन आदेशों के पालन में कोई कसर न उठा रखी। और उन्हें पूर्णतः अंजाम दे दिया। यहूदी रिवायतों में भी यह वर्णन आया है। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर पढ़ें)।

४६६ **'अिमामन्'** इमाम कहते ही उसे हैं, जिसकी पैरवी की जाये, शब्दकोष में भी और शरीअत के तक्नीकी शब्दों में भी। तौरेत में भी इमामत का वादा इन शब्दों में मिलता है— "और मैं तुझको एक बड़ी क़ौम बनाऊँगा और तुझको शुभ और तेरा नाम बड़ा करूँगा और तू एक बरकत होगा और उनको, जो तुझे बरकत देते हैं, बरकत दूँगा, और उनको, जो तुझ पर लानत करते हैं, लानती करूँगा। और दुनिया के सारे घराने तुझसे बरकत पायेंगे।" (पैदाइस—१, २ : १२)। यह दीनी, सरदारी और इमामत पूरी एक विश्व की, आज तक आपके हिस्से में चली आ रही है और इस्लाम के अलावा जो मज़हब तौहीद से कुछ भी लगाव रखते हैं यानी यहूदीयत और नसरानीयत, वह आपकी इमामत पर सहमत हैं। एक नामी फ़िरंगी आलिम बीसवीं शताब्दी के शुरू तीसरे भाग में आपका परिचय इन शब्दों में देता है— "इब्राहीम की हस्ती किसी बद्दुवी सरदार की न थी कि वह लूटमार करते रहते। उनकी अस्ली अहमीयत मज़हब के क्षेत्र में है। वह वास्तव में किसी नस्ल के पूर्वज नहीं। वह इमाम और नीवें डालनेवाले मज़हबी तहरीक के थे। मुहम्मद (स०) की तरह, जो उनके दो हज़ार वर्ष बाद पैदा हुए, वह सामी क़ौमों और क़बीलों के पथप्रदर्शक की स्थिति रखते थे और तौरेत की रिवायत के अनुसार वह इसराईली मज़हब की बुनियाद रखनेवाले थे।" (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—जिल्द प्रथम, सफ़ा ६०, चौथा संस्करण)। योरोप की भाषा में अल्लाह के हबीब और अल्लाह के खलील (हबीब— मित्र, खलील— दोस्त) के मध्य यह मिलना-जुलना स्वीकार करना —बस अल्लाह की ही शान है। आयत से एक नतीजा फ़क़ीहों ने यह भी निकाला है कि आदेशों का पालन और ख़ुदा की परीक्षा में सफलता, इन्सान को दीनी, सरदारी और पेशवाई का अधिकारी बना देती है और नबियों के बाद उम्मत के वली अल्लाह और उम्मत के आलिमों की इमामत अपने-अपने रुतबे और दर्जे के अनुसार इसी नियम को प्रदर्शित करती है। (इमामत के जो अर्थ वर्णित हुए हैं उसके लिहाज से इमामत के ऊँचे दर्जे पर तो नबी हज़रात विराजमान होते हैं, उनके पश्चात् ख़ुलफ़ाए राशिदीन और फिर आलिमों और इन्साफ़ करनेवाले जजों का नम्बर आता है, और उनका, जिनकी पैरवी ख़ुदा ने अनिवार्य कर दी है, फिर नमाज़ की इमामत है आदि-आदि।)

४६७ (इमाम होते रहेंगे) विश्व की पेशवाई, सरदारी और इमामत की शुभ सूचना से इब्राहीम अलैहिस्सलाम का दिल स्वाभाविक रूप में प्रसन्न हो गया और प्रसन्नता के इस जोश में प्रश्न कर बैठे कि इस इनआम में मेरी सन्तान और मेरी नस्ल भी शरीक है न? **'ज़ुर्रिय्यत'** के मानी हैं औलाद और औलादों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

औलादें और इसमें सारी नस्ल आ गई। इस श्रृंखला में इस्राईली और इस्माईली दोनों शाखाएँ आ गईं। इस्राईलियों को जो विशेषता का दावा था, वह यहीं से कट गया। 'मिन् ज़ुर्रिय्यती' फ़िक़रे की तरकीब ने यह बात स्पष्ट कर दी कि हज़रत इब्राहीम की यह दुआ सवाल के रंग में अपनी सारी नस्ल से सम्बद्ध नहीं, उसके एक अंश से सम्बन्धित थी। आयत से मालूम हुआ कि प्रसन्नता और नेमत में अपनी औलाद को सम्मिलित करना एक स्वाभाविक बात तो है ही, नबियों की सुन्नत भी है।

४६८ यानी बरकत और खुदा की मेहरबानी का सिलसिला तुम्हारी नस्ल में अवश्य रहेगा, परन्तु उसके अधिकार के लिए केवल खानदानी होना और नस्ल से होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि ईमान और अच्छे अमल की भी आवश्यकता होगी। अर्थात् इब्राहीमी दुआ नेक सन्तानों के लिए पूरी हो गई। हज़रत को सूचना दे दी गई कि आपकी नस्ल में दोनों प्रकार के लोग होंगे, कुछ नेक और आज्ञाकारी और कुछ अत्याचारी और आज्ञा का पालन न करनेवाले नाफ़र्मान। नेक लोगों को इमामत की शुभ सूचना मिल गई और ज़ालिमों को उससे वंचित कर दिया गया। 'अह्दी' मेरा वादा यानी इमामत तथा पथप्रदर्शक होने का वादा। अ़हद के मानी सुरक्षा के भी लिये गये हैं। 'अज़्ज़ालिमीन' का अर्थ यहाँ कुफ़्र है। काफ़िर को दीनी इमामत न देना बिल्कुल स्पष्ट और सर्व-सहमति से है। ज़ालिम को झूठा भी माना गया है। फ़क़ीहों ने इस आयत से यह नतीजा भी निकाला है कि फ़ासिक़ यानी झूठे और असत्य पर चलनेवाले की इमामत जायज़ नहीं। इमाम को न्यायशील, नेक और शक्तिशाली होना चाहिए। जेसास ने 'अहकामुल् क़ुर्आन' में आयत के अन्तर्गत फ़ासिक़ की इमामत के नाजायज होने पर बड़ी तफ़्सील के साथ बहस की है। मौलाना थानवी ने आयत से यह नतीजा निकाला है कि अख्तियारी बदअमली के साथ अल्लाह की मेहरबानी और उसके इनामात एकत्र नहीं हो सकते।

४६९ 'बैत' के लफ़्ज़ी माने घर के हैं (जहाँ रात बसर की जाय)। 'अल्बैत' से सर्वसम्मति से यही माना गया है कि बैतुल्हराम या हरम-काबा। नगर मक्का के अन्दर की यह इमारत विश्व भर में एक खुदा की इबादत का सबसे पुराना गृह है और क़ुर्आन ने इस सच्चाई को खोलकर बयान कर दिया है। मसीहियों को काबे की पवित्रता के साथ-साथ काबे की यह क़दामत (पुरातन होना) भी बुरा लगा है, परन्तु पुराने होने के विरुद्ध कोई तर्क प्रयास के पश्चात् भी बन नहीं सका, बल्कि उन्नीसवीं शताब्दी की आखिरी चौथाई में एक अंग्रेज लेखक (स्मिथ) को लिखना पड़ा— "यह वह पूजा का स्थान है, जिसका पुराना होना इतिहास के ज़माने से परे है।" (मुहम्मद स० ऐण्ड मुहम्डनिज़म— सफ़ा १६६)। फिर आगे प्रसिद्ध एवं पुराने रूमी लेखक एवं इतिहासकार (Diodorus seculus), जिसका समय स्वयं हज़रत ईसा मसीह से एक शताब्दी पूर्व का है, का हवाला देकर लिखा है कि उस समय में भी यह पूजा का स्थान सबसे पुराना था और सारी अरबी नस्ल के आकर्षण का स्थान था (सफ़ा १६६)। अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित करें। 'अल्बैत' का अर्थ काबे का होना तो ज़ाहिर ही है जैसा कि तफ़्सीर करनेवालों के बहुमत का विचार है, लेकिन तफ़्सीर करनेवालों ने इसका भी संकेत किया है कि काबे के अलावा सारा हरम इसी माने में आता है, न कि केवल काबे की इमारत या खानए काबा।

४७० 'मसाबत' 'सौब' के माने हैं किसी वस्तु का अपनी अस्ली हालत या उद्देशित दशा की ओर लौटना। अर्थात् 'मसाबत' का अर्थ है वह स्थान, जिसकी ओर मनुष्य बार-बार मुड़े और फिर भी जी न भरे। यही अर्थ इमाम जरीर ने भी लिये हैं और यही इब्ने अब्बास सहाबी और मुजाहिद 'सदी' और 'अता' इत्यादि ताबेईन ने भी लिखे हैं और बैतुल्हराम का यह गुण देखने में आया है कि लोग हज पर हज और उम्रे पर उम्रा करते चले जाते हैं और इससे उकताते नहीं। फिर चूँकि 'अल्बैत' हज और उम्रा करनेवालों के बार-बार मुड़ने की जगह है अतः मजमा और मोड़ के साथ उसमें इबादत का भी अर्थ सम्मिलित हो गया। 'लिन्नास' आम ज़ियारत करनेवालों का ताँता काबे की ज़ियारत और उम्रे का, वर्ष के हर मौसम, हर फ़स्ल, हर ज़माने में लगा रहता है। इसके अलावा उन लाखों लोगों का विचार मन में कीजिए, जो केवल हज के अवसर पर खिंचे चले आते हैं। केवल हिजाज़ और अरब देशों से नहीं बल्कि विश्व के हर भाग हर देश से और फिर यह भी ध्यान में लायें कि यह सिलसिला दस-बीस वर्ष से नहीं, बल्कि हज़रत इब्राहीम के समय से यानी लगभग चार हज़ार वर्ष से चला आ रहा है, तब जाकर 'लिन्नास' की तफ़्सीर ज़ेह्न में आ पायेगी। 'अम्नन्' शान्त होना, इससे प्रकट होता है कि केवल काबे की इमारत या मस्जिद-हराम ही नहीं, बल्कि उसके इर्द-गिर्द मीलों तक की भूमि हरम में शामिल है, और हरम वह स्थान है जहाँ इन्सान की जान लेना अलग रहा, जानवर तक का शिकार नहीं किया जा सकता, और यह हुक्म तो शरीअत-इस्लाम का है, हरम की ज़मीन का शान्ति की भूमि होने को जाहिलों के द्वारा भी स्वीकार रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़े-बड़े अपराधी भी मुशरिकों के ज़माने में काबे की दीवारों के बीच आकर पनाह पा जाते थे। फ़िरंगी 'क़ामूसे इल्मोदानिश' में है— "इतना तो हर दशा में है कि मुहम्मद (स०) के समय से बहुत पूर्व, मक्के की दो हैसियतें हम मानी हुई पाते हैं। एक व्यापारिक केन्द्र होने की और एक पवित्र इबादत की जगह होने की, जिसके आसपास की भूमि भी हरम है।" (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका— जिल्द १५, सफ़ा १५०, चौथा संस्करण)। अर्थात् यह कि क़ुर्आन ने 'अल्बैत' के जो दो गुण यहाँ बयान किये हैं, वह अक़ीदे से ज़्यादा वर्तमान एवं भूतकाल की चीजें हैं। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने भी स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ केवल इसकी सूचना ही नहीं दी गई है, बल्कि शान्ति का आदेश भी दिया गया है।

४७१ (ऐ मुसलमानो!) **'अत्तख़िज़ू'** आदेश का रूप है और यह सम्बोधन रसूलुल्लाह (स०) के माध्यम से इस्लामी उम्मत से है। 'मुक़ाम-इब्राहीम' का अर्थ उस पत्थर का ही लिया गया है जिस पर खड़े होकर हज़रत इब्राहीम ने ख़ुदा के घर 'काबे' का निर्माण किया है और यह पत्थर ख़ानए काबा से चन्द फ़िट के अन्तर पर एक कमरे में अब भी सुरक्षित है। यह तक्नीकी शब्द अगर्चे क़ुर्आन के उतरने से बाद का है, लेकिन एक बड़े गिरोह ने यही माने लिये हैं। हज के अवसर पर इस कमरे के सामने 'तवाफ़' (परिक्रमा) के सात चक्करों के बाद दो रक्अत नमाज़ पढ़ी जाती है। हनफ़ीया और मालिकीया के यहाँ यह नमाज़ वाजिब है और शाफ़िईया के यहाँ केवल सुन्नत है। शोधकर्ताओं के दूसरे गरोह ने, जिसमें इब्ने अब्बास सहाबी, मुजाहिद, अता ताबेईन और इमाम-फ़िक़्ह नख़ई इत्यादि शामिल हैं, इसके मानी सारे हरम या कुल हज के स्थान के लिए हैं। **'मुसल्ला'** नमाज़ की जगह या दुआ की जगह। अस्ल मस्दर के एतबार से नमाज़ के स्थान और दुआ के स्थान में कुछ ज़्यादा अन्तर नहीं है। यह बात पहले भी कही जा चुकी है और अब इसको और अधिक स्पष्ट होना चाहिए कि क़ुर्आन करीम अपने सम्बोधनों में मानव इतिहास के क्रम का पाबन्द नहीं है। बार-बार निकट की आयतों में, बल्कि कभी-कभी स्वयं एक ही आयत में अर्थ के मेल के कारण दो ऐसी घटनाएँ एकत्र कर दी जाती हैं, जिनके बीच समय के एतबार से शताब्दियों का अन्तर होता है, और उसी में यह भी सम्मिलित है कि भूतकाल की घटनाओं के वर्णन के निकट ही और गोया उन्हीं के सन्दर्भ में कोई स्थायी आदेश वर्तमान एवं भविष्य के लिए दे दिये जाते हैं और आदेश का रूप लाकर उसका जोड़ भूतकाल के रूप से कर दिया जाता है। वास्तव में क़ुर्आन हिदायतों, शिक्षाओं और निर्देशों की पुस्तक है और वह अपने इस अस्ली उद्देश्य के आगे किसी इन्सानी सीमाबन्दी और बनावटी प्रतिबन्धों के लिए ठहरता नहीं है।

४७२ **'अहिद्ना'** के मानी हैं 'हमने हुक्म दिया' या 'हमने वही की'। 'अहिद', जिसका अर्थ आदेश देने के हैं, इस पर बनी इसराईल के 'अह्द' के सम्बन्ध में अर्थ दिया जा चुका है। 'इब्राहीम' पर हाशिया ऊपर गुज़र चुका है। इस्माईल, इब्राहीम के बड़े पुत्र थे। आपकी मिस्री बीवी हज़रत हाजिरा की औलाद हैं। जन्म का वर्ष सम्भवतः २०७४ पूर्व मसीह और देहान्त का वर्ष लगभग १९३७ पूर्व मसीह है। तौरेत में है कि आयु १३७ वर्ष की पाई। आपके बारह पुत्र हुए और उनसे बारह नस्लें चलीं। तौरेत में इन बारह पुत्रों के नाम अंकित हैं और यह दिया हुआ है कि "यह अपनी उम्मतों के बारह रईस थे।" (पैदाइश—१२ : २५)। अरब का प्रसिद्ध और ऊँचे नसब का क़बीला क़ुरैश आप ही की नस्ल से है, इसलिए आप रसूलुल्लाह (स०) के भी पूर्वज हुए। अहल-किताब कहलानेवालों ने आपके ख़िलाफ़ ज़हर उगलने और अपनी जलन और दुश्मनी को प्रकट करने में कोई कसर नहीं उठा रखी है। फिर भी अपनी किताब के बयानों को क्या करेंगे, जो हेरफेर की हर शरारत के बावजूद भी मिट नहीं सके। उनमें इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की दुआ भी शामिल है, ख़ुदावन्द करीम के वादे भी और तारीख़ का बयान भी— "और अब्राहम ने ख़ुदा से कहा कि काश इस्माईल तेरे हुज़ूर (बन्दा रहकर) जीता रहे।" (पैदाइश—१७ : १८)। "इस्माईल के हक़ में, मैंने तेरी दुआ सुनी— देख मैं उसे बरकत दूँगा और उसे फलदार करूँगा और उसे बहुत बढ़ाऊँगा।" (पैदाइश—१७ : २०)। "उसे अपने हाथ से सँभाल कि मैं उसको एक बड़ी क़ौम बनाऊँगा।" (पैदाइश—१८ : २१)। "और ख़ुदा उस लड़के के साथ था और वह बढ़ा और बियाबान में रहा किया और तीर-अन्दाज़ हो गया।" (पैदाइश—२१ : २१)। यहाँ हुक्म जो कुछ मिल रहा है वह आपको और आपके पिता को एक साथ मिल रहा है, गोया काबे की सेवा में आप अपने पिता के साथ बराबर शरीक थे।

४७३ (हर प्रकार के शिर्क और मूर्ति-पूजा की गन्दगी से) **'तह्हिरा'** तिहारत से यहाँ वास्तविक अर्थ यह लिया गया है कि हर प्रकार के अर्थ एवं विश्वास की नापाकी से दूर और एक ख़ुदा के ज़िक्र से तथा ख़ुदा की ही इबादत से परिपूर्ण रखो, साथ ही ज़ाहिरी सफ़ाई का भी उल्लेख हो गया है। **'तह्हिरा'**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में आदेश हज़रत इब्राहीम के साथ हज़रत इस्माईल को भी मिल रहा है और तौहीद की स्थापना में बराबर के शरीक बनाये जा रहे हैं। फ़क़ीहों* ने इस सम्बोधन से अर्थ साधारण का लगाया है, यानी सफ़ाई की ज़िम्मेदारी हर व्यक्ति की है चाहे वह इब्राहीम की तरह पथप्रदर्शक हो या इस्माईल की तरह उनके पथ पर चलनेवाला और आज्ञाकारी। **'तह्हिरा'** यानी खूब अच्छी तरह पाकसाफ़ रखो। फ़क़ीहों ने यहीं से निकाला है कि मस्जिद की सफ़ाई फ़र्ज़ है। **'बैतिय'** 'मेरे घर की' तरकीब को खूब समझ लेना चाहिए। इस्लाम का ख़ुदा कोई दिखाई देनेवाला जिस्म के साथ देवता या देवी तो है नहीं कि उसे रहने-सहने, उठने-बैठने के लिए मकान और घर की आवश्यकता हो, अतः 'मेरे घर' का अर्थ 'मेरे रहने-सहने का घर' तो हो ही नहीं सकता। केवल यह मुराद है कि यह घर मेरी इबादत और मेरे ज़िक्र के लिए नामज़द हो चुका है और केवल मेरी याद के लिए विशिष्ट हो चुका है। आयत में कोई संकेत विशेष रूप से काबे के लिए नहीं है। ज़िक्र केवल गुण यानी 'बैत' के साथ फ़र्मा दिया है। इससे फ़क़ीहों ने यह नतीजा निकाला है कि यही पाक रखने का आदेश हर इबादतखाने यानी मस्जिद के लिए रहेगा।

४७४ **'लित्ता'अिफ़ीन'** में 'लाम' विशेषता के लिए है यानी काबा (और इसी तरह हर मस्जिद) पर अधिकार उन्हीं लोगों का है, जिनका ज़िक्र आगे आ रहा है। इमारत बनकर तैयार हो चुकी तो अब उसके निर्माण का उद्देश्य बयान हो रहा है कि इसका मक़सद तौहीद की स्थापना और शिर्क का खात्मा है। **'अत्ताअिफ़ीन'** काबे का तवाफ़ (परिक्रमा) करनेवाले। तवाफ़ के मानी पर हाशिया अभी गुज़र चुका है। हज आदि के सिलसिले में तो काबे का तवाफ़ फ़र्ज़ है, लेकिन यूँ भी यह बड़े इनआम की चीज़ है और साथ ही बड़े लुत्फ़ और आनन्द की चीज है जैसा कि हर ईमान रखनेवाले का अनुभव है। मैंने इसका वर्णन अपने हिजाज़ के सफ़र में ब्योरावार किया है। खानए काबा को तमाम इस्लामी दुनिया की मस्जिदों बल्कि नमाज़ों से जो केन्द्रीय सम्बन्ध प्राप्त है उसी के अनुसार काबे के तवाफ़ की भी महत्ता है। काबा महान प्रतीक है तौहीद (अद्वैत) का। उसके चारों ओर चक्कर लगाना गोया यह इक़रार करना है कि हमारी सारी इबादतों का, सारे कर्म का और सारे जीवन का केन्द्र-बिन्दु ही अल्लाह की तौहीद है। **'आकिफ़ीन'** 'अकूफ़' के शाब्दिक अर्थ हैं किसी जगह के रहने को सम्मानपूर्वक ज़रूरी और अनिवार्य बना लेना। रमज़ान की आखिरी तिहाई में एतिकाफ़ सुन्नत-किफ़ाया पर ज़ोर है (जिसके लिए रसूल स० ने ताकीद की है)। इसमें रोज़ा भी शर्त है। एतिकाफ़ हर सूरत में खुदा के निकट होने का कारण है। **'रुक्कअिस्सुजूद'** रुकूअ और सज्दा नमाज़ की जानी-बूझी स्थितियाँ और क्रियाएँ हैं। 'ताअिफ़ीन', 'आकिफ़ीन' और 'रुक्का' एवं 'सुजूद', चार शब्दों के लाने के स्थान पर यह भी सम्भव था कि केवल 'आबिदीन' या 'ज़ाकिरीन' कह दिया जाता, लेकिन विवरण से एक-एक इबादत की विशेषता और बड़ाई को अलग-अलग प्रकट किया गया।

४७५ इब्राहीम खलीलुल्लाह की यह प्रार्थनाएँ जिस आश्चर्यजनक ढंग से पूरी हुईं, वह स्वयं एक मोजिज़ा है। प्रथम प्रार्थना यह थी कि शहर मक्का को शान्ति का घर बनाया जाये। आसपास के रहने वाले लुटेरे और खूँख्वार, लूट, मार, क़त्ल का बाज़ार गर्म और यात्रा के साधन बड़े सीमित तथा भयपूर्ण, मार्ग असुरक्षित, इस पर भी हज और ज़ियारत (तीर्थाटन) के लिए हाजियों का ताँता बँधा हुआ और अब अमनो-अमान एवं शान्ति के लिए मक्का और उसका पड़ोस स्वयं अपनी मिसाल है। न डाके पड़ते हैं, न क़ाफ़िले लूटे जाते हैं, न लाशें तड़पती हैं। शरीअत-इस्लामी ने तो शहर और उसके पड़ोस को "हरम" ही बना दिया यानी इन सीमाओं के भीतर जानवरों का भी शिकार नहीं किया जा सकता। खूनी भी अगर खानए काबा के अन्दर पनाह ले ले तो उसे वहाँ क़त्ल नहीं किया जा सकता। शहर और खानए काबा का सम्मान जाहिलियों ने भी क़ायम रखा। दूसरी दुआ यह थी कि मक्का वालों को फल-फलहारी खाने को मिलते रहें। मक्का ऐसी जगह पर स्थित है कि सारी भूमि रेतीली है या पथरीली। वर्षा बहुत ही कम होती है। ताज़े फलों और मेवों के वृक्षों का ज़िक्र ही क्या। मामूली फल-फूल के वृक्ष बल्कि ताज़ी एवं सब्ज़ घास भी अभी चन्द दिनों पूर्व तक नहीं पैदा होती थी। काश्तकारी और बाग़बानी को चन्द रोज़ पूर्व कोई जानता भी न था। एक बेपानी और बेघास की भूमि, कहीं रेतीला मैदान, कहीं गर्म एवं सूखी पहाड़ियों की चट्टानें। लेकिन इन सबके बावजूद ताज़ा फल और मेवे, सब्ज़ियाँ, अनाज चाहे जहाँ खरीद लीजिये और अब इस बीसवीं शताब्दी में तो ज़मीन तक अच्छी हरी-भरी हो गई है। **'बलदन् आमिनन्'** फ़क़ीहों का कहना है कि यहाँ भी केवल शान्ति की सूचना देना उद्देश्य नहीं है, बल्कि शान्ति का आदेश देना है।

४७६ अभी-अभी हज़रत इब्राहीम को बताया जा चुका है कि फ़ज़्लो-बरकत के खास वादे ईमान

* इस्लामधर्मवेत्ताओं, मसले-मसाइल के जाननेवाले।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अच्छे अमल के साथ सम्बद्ध हैं, उनके बिना नहीं। (आयत १२४)। **'ला यनालु अह्दिज़्ज़ालिमीन'** अल्लाह के पैग़म्बर ने अल्लाह के इस इर्शाद को गिरह बाँध लिया और अब जो दुआ की, उसमें स्वयं ही यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि शान्ति के नगर और रोज़ी के फलों की बरकतें केवल ईमान और इबादत के लिए हैं। नबियों की चेतना का क्या कहना। हक़ तआला ने तो केवल यह कहा था कि इमामत या दीनी सरदारी मख्सूस है ईमान और इबादत वालों के लिए। खलीलुल्लाह ने यह इशारा पाकर दुनियावी नफ़े और फ़ायदे को भी ईमान और ताअत (इबादत) के साथ विशिष्ट कर दिया, यद्यपि उसका सम्बन्ध पालनेवाले के साथ है, जो इस दुनिया में मोमिन तथा काफ़िर सबके वास्ते आम है। **'मन् आमन बिल्लाहि वल्यौमिल आख़िर'** ईमान के भाग यहाँ दो ही बयान किये गये हैं। अल्लाह पर ईमान और आखिरत के दिन पर ईमान। इसी के साथ ईमान के दूसरे अंश भी आ गये। इसकी आवश्यकता नहीं है कि जहाँ भी ईमान का वर्णन हो, वहाँ-वहाँ उसके सब ही अंश वर्णित हों।

४७७ **'क़लीलन्'** कुछ दिन, यहाँ मुराद है जीवन भर से, क्योंकि दुनियावी जीवन आखिरत के दिन से बहुत कम होते हैं। **'उमत्तिअुहू'** से खुद ही संकेत लाभ और नफ़े के अस्थायी और चन्द रोज़ा होने का होता है। **'क़लीलन्'** लाकर उसे और ताकीद की गई और वह और स्पष्ट हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अल्लाह की मेहरबानियाँ और उसकी रहमतें, जो अल्लाह तआला की तरफ़ से केवल ईमान और हिदायत वालों को ही विशेष रूप से नसीब होंगी, और जिससे गुमराह और काफ़िर वंचित रहेंगे। इसका सम्बन्ध आखिरत के लाभ से है और इमामत-दीन से है। जहाँ तक इस दुनिया की नेमतों, भोजन और रहन-सहन की आसानियों का सम्बन्ध है तो इनसे तो काफ़िरों को भी दुनिया में वंचित न किया जायेगा। क्योंकि यह पालनेवाले के नियमों का तक़ाज़ा है। दोज़ख जैसी जगह कोई शख्स खुशी-खुशी तो जायेगा नहीं, हर एक घसीटकर ही ले जाया जायेगा। क़ुर्आन ने, जो यहाँ उसको खोलकर कहा है, वह जहन्नम की भयंकर दशा को स्पष्ट करने के लिए कहा है।

४७८ **'अल्बैत'** से मुराद खानए काबा है और इसमें कोई मतभेद नहीं है। 'अल्किताब' जैसे क़ुर्आन करीम है, 'अन्नबी' जिस तरह 'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह (स०)' हैं, 'अल्बैत' उसी प्रकार 'काबतुल्लाह' है। **'यर्फ़अु'** का शब्द ग़ौर करने के लायक़ है। बुनियादें प्रथम बार नहीं रखी जा रही थीं। वह तो सम्भवतः हज़रत आदम ही अपने समय में रख गये थे। भवन के गिर जाने के बाद अब उन्हें सरे नौ से उठाया जा रहा था। मसीहियों को खानए काबा से जो ज़िद और उसके पुराने होने से जो दुश्मनी है, वह स्पष्ट है। वह हर सम्भव प्रयास इसके खिलाफ़ अपने क़लम से कर चुके हैं, लेकिन सच्चाई फिर भी सच्चाई है। क़ुर्आन के अनुवादक जार्ज सेल (Sale) अपने अंग्रेज़ी अनुवाद के आरम्भ में लिखता है— "मक्का, जिसे बक्का भी कहा गया है और यह दोनों शब्द एक ही अर्थ के हैं और उनके मानी हैं वह स्थान, जहाँ महान मज्मा एकत्रित हो, अवश्य ही विश्व के सबसे पुराने नगरों में से है और बाज़ का मत है कि तौरेत के नगर 'मसाय' का यही अर्थ है।" और फिर वही आगे लिखता है— "मक्का का इबादत-खाना अरब के लोगों के बीच पवित्र और एक इबादतगाह के रूप में बहुत ही पुराने ज़माने से और हज़रत मुहम्मद (स०) से बहुत सी शताब्दियों पूर्व से चला आता था।" बास्वर्थ स्मिथ अपने लेक्चरों में (Lectures On Mohammad and Mohammadanism) लिखते हैं— "काबे की बुनियाद रखने का सिलसिला रिवायतों के अनुसार इस्माईल और इब्राहीम तक पहुँचता है, बल्कि शीस तथा आदम तक और इसका नाम स्वयं इस बात की पुष्टि करता है कि इसे आरम्भ में किसी ऐसे ही बुज़ुर्ग ने निर्मित किया है।" (सफ़ा १६६)। सबसे बढ़कर गम्भीर मत सर विलियम मियोर के क़लम से है— "मक्का के मज़हब का इतिहास बड़ा पुराना मानना पड़ता है। रिवायतों से मालूम होता है कि काबा एक नामालूम ज़माने से अरब देश का केन्द्र चला आता है। जिस स्थान की पवित्रता इतने विशाल खण्ड में मानी जा रही हो, उसका अर्थ ही यह है कि उसकी बुनियाद सबसे पुराने समय से चली आती है।" (Life of Mohammad-Preface १०२-१०५)। यह गवाहियाँ विरोधियों की थीं। हमारे यहाँ की रिवायतों में खानए काबा की क़दामत की (पुराने होने की) जो बातें अंकित हैं, उनसे तो तफ़्सीर, हदीस और जीवनी की पुस्तकें भरी पड़ी हैं। **'इस्माईल'** की आयु और ज़माना इत्यादि पर ऊपर लिखा जा चुका है। एक सच्चे पैग़म्बर होने के रूप में आपका जो मर्तबा है, ज़ाहिर है, लेकिन आपका एक स्थायी मोजिज़ा यह है कि जिन क़ौमों ने आपकी और आपकी माताजी की बुराई करना अपनी आदत बना लिया है उनके भी लेखों में आपका सम्मान लिखा चला आ रहा है, चुनांचे बाज़ यहूद सरदारों का यह क़ौल यहूद ही की 'दायरतुल् मआरिफ़' में लिखा चला आता है कि— "जो कोई ख़्वाब में इस्माईल को देख ले, हक़ तआला के यहाँ उसकी दुआ क़बूल हो जायेगी।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ६, सफ़ा ४६८)। आपकी माताजी हज़रत हाजिरा मिस्र के बादशाह की सुपुत्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं और मिस्र का शाही परिवार हज़रत इब्राहीम के परिवार की एक शाखा था, जो इराक़ से स्थानान्तरित होकर मिस्र में आबाद हो गया था। जब हज़रत अपनी यात्रा में उधर से गुज़रे तो एक क़बीले के शेख (सरदार) की हैसियत से शाह-मिस्र ने अपना अतिथि बनाया और जब आप वहाँ से रुख़सत होने लगे तो आपके सम्मान और एजाज़ में अपनी सुपुत्री को उपहार समान आपकी सेवा में दिया और विनम्रता के अन्दाज़ में, जो पूर्वी मेहमानी एवं सत्कार की विशेषता है, कहा कि आपकी दासता (कनीज़ी) के रूप में यह उपहार है। उर्दू भाषा में यह मुहावरा आज तक चला हुआ है। शादी-ब्याह के अवसर पर बड़े से बड़ा सम्मानित व्यक्ति भी अपनी सुपुत्री को कनीज़ ही कहकर दामाद और समधी के समक्ष पेश करता है। पूर्वी सत्कार के इस आम शैली से जो लोग दुश्मनी करनेवाले थे, उनको गोया एक बड़ी विश्वसनीय सनद और प्रमाण हाथ आ गया और हज़रत इस्माईल की माताजी उनकी निगाह में कनीज़ (दासी) हो चली आ रही हैं। घटनाएँ हर सूरत में घटनाएँ और सत्य हमेशा सत्य ही है। उन्हें कोई कहाँ तक झुठला सकता है। उसी जिविश इन्साइक्लोपीडिया में यहूद के बड़ों के हवाले से है— "हाजिरा फ़रिश्ते ही को देखकर भयभीत हो गईं। उनकी पवित्रता इससे ज़ाहिर है कि इब्राहीम ने उन्हें अपने पास से अलग कर दिया, तब भी उनकी वफ़ादारी में फ़र्क़ न आया……उनके नाम का एक अर्थ 'सुसज्जित' भी आया है और यह इस कारण से है कि वह सुन्दर व्योहार, सुशीलता एवं अच्छे कर्मों से सुसज्जित थीं।" (जिल्द ६, सफ़ा १३८)। और उसी में एक स्थान पर यह रिवायत भी दर्ज है— "बादशाह ने ख़ुद अपनी साहबज़ादी उपहार के रूप में कनीज़ कहकर दे दी।" और यहूद के क़िस्सों का जो संकलन गिंज बर्ग (Ginz Berg) ने चार जिल्दों में तैयार करके प्रकाशित किया है, उसमें है— "बादशाह-मिस्र ने इरादा कर लिया कि वह इब्राहीम को हर प्रकार से शक्तिशाली और शानदार बनाकर रहेगा, अतः अपनी बेटी तक उपहार-स्वरूप दे दी। सारह की शिक्षा और देख-रेख में रहकर वह भी वैसी ही धार्मिक और हर प्रकार से इब्राहीम की साथी होने के योग्य बन गईं।" (जिल्द १, सफ़ा २२७, २२८)।

४७९ (केवल अपनी कृपा और अपनी मेहरबानी से) क्या ठिकाना है दिल की इस नर्मी और ख़ौफ़ का। सत्य एवं स्वच्छ तथा निस्स्वार्थता के पुतले हैं, इस पर भी डरते जाते हैं कि देखिए नज़राना स्वीकार होता है या नहीं। जब मनुष्य में विनम्रता होती है तो वह तकल्लुफ़ भी करता है, अतः कुछ बारीकियाँ पैदा करनेवालों ने शब्द 'तक़ब्बल्' से यह बिन्दु उत्पन्न किया है कि कोई कार्य या क्रम स्वयं कदापि स्वीकार नहीं होता। सब अधूरा और त्रुटिपूर्ण होता है। उसकी क़बूलियत केवल कृपा एवं मेहरबानी से हो रही है, न कि किसी अधिकार से। मज़दूर और मेमार जब काम करते हैं तो अक्सर कुछ गुनगुनाते भी जाते हैं, अल्लाह के घर के यह मेमार भी अल्लाह के घर की दीवारें उठाते समय चुप नहीं थे, यहाँ उनकी मुनाजात (प्रार्थना) का वर्णन हो रहा है। फ़क़ीहों का कहना है कि हर अच्छे कार्य के पश्चात् दुआ करना अच्छा है, चुनांचे नमाज़ की समाप्ति पर दुआ और रोज़े खोलने के समय दुआ इसी प्रकार की हैं।

४८० **'समीअुन्'** सुननेवाला ज़बान से निकले हुए शब्दों और बातों का। **'अलीमुन्'** जाननेवाला दिल के भीतर की निस्स्वार्थता का। मुशरिक क़ौमों के ज्ञानियों और फ़लसफ़ियों ने सबसे ज़्यादा ठोकर अल्लाह तआ़ला की सिफ़त 'ज्ञान' के ही विषय में खाई है और फ़र्ज़ किया है कि बारी तआ़ला का ज्ञान अधूरा और सीमित है। क़ुर्आन, जो अल्लाह के ज्ञान और इल्म के कामिल और हर वस्तु को घेरे में लिये हुए होने का सख़्ती के साथ दावा करता है और अल्लाह के देखनेवाला होने, जाननेवाला होने और सुननेवाला होने के विषय में बार-बार तकरार करता है, उसका एक उद्देश्य फ़लसफ़ियों के इस ग़लत भ्रम की काट करना भी है।

४८१ (और ज़्यादा) **'मुस्लिमैन'** के मानी यहाँ दो प्रकार से किये गये हैं। एक अल्लाह की तौहीद के माननेवाले किसी सन्देह के बिना और शिर्क का ज़रा भी शुबहा रखे बिना। दूसरे इस्लाम के साधारण आदेशों का पालन करनेवाले। लेकिन दोनों मानी एक दूसरे के उलटे कदापि नहीं। मुस्लिम के अनुवाद 'आज्ञाकारी' में न वह विशालता है, न वह आनन्द जो स्वयं शब्द 'मुस्लिम' में है। आज्ञाकारी बन्दे और मुस्लिम तो उस समय भी थे जब दुआ कर रहे थे। दुआ का अर्थ केवल इतना है कि हमारी फ़र्मांबरदारी (आज्ञाकारिता) में और बढ़ोतरी कर।

४८२ **'अुम्मतम्-मुस्लिमतन्'** का अर्थ है "फ़र्मांबरदार उम्मत" परन्तु उसमें वह सारगर्भिता और वह अर्थ की परिपूर्णता कहाँ है, जो क़ुर्आनी शब्द 'मुस्लिमा' में है। दुआ की स्वीकृति का प्रदर्शन इसी से हो रहा है कि वह उम्मत आज तक उसी नाम से मशहूर चली आ रही है। दोस्त-दुश्मन सबकी ज़बान पर। एक यहूदी टोरी (Towry) नामक अमेरिका की येल (yale) विश्वविद्यालय का अध्यापक,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनी इस्लाम दुश्मनी में आक्सफ़ोर्ड (Oxford) वाले मारगो, जो इसका पूरा जानशीन है (उसकी जगह लिये हुए है), परन्तु एक बात बड़े पते की उसकी ज़बान से भी निकल गई। कहता है— "इस्लाम की नीवें तो वास्तव में इस्माईल के हाथों पड़ी, जो अरब वालों के पूर्वज हैं।" (जिविश फ़ाउण्डेशन आफ़ इस्लाम—परिचय, पृष्ठ ६)। **'मिन् ज़ुर्रिय्यतिना'**— यानी इब्राहीम तथा इस्माईल की मिली-जुली नस्ल से। दुआ दोनों बड़े मिलकर कर रहे थे, अतः **'ज़ुर्रिय्यत'** का अर्थ बनी इस्माईल ही हो सकता है। बरनाबा (Barnaba) नामक हज़रत मसीह के एक सम्मानित मित्र गुज़रे हैं। उनकी इंजील को मसीहियों ने अपनी मनोवृत्ति के विपरीत पाकर उसकी वास्तविकता से ही इन्कार कर बैठे। इस इंजील की प्रतियाँ, अंग्रेज़ी, उर्दू और अरबी तीनों भाषाओं में पाई जाती हैं। उसमें स्पष्टता के साथ है कि अल्लाह का वादा इस्माईल के साथ था, न कि इस्हाक़ के साथ। और फिर है— "वादा इस्माईल से किया गया था, न कि इस्हाक़ से।"

४८३ **'मनासिकना'** यानी आम दीनी क़ायदे और नियम, विशेषकर काबे की ज़ियारत और हज के आदाब तथा तरीक़े। यह शब्द बहुवचन है 'मन्सक' का और 'नसक' हर इबादत है। **'अरिना'** के मानी आँख से दिखला देने के नहीं बल्कि सिखला देने, बतला देने के हैं।

४८४ रहमत, स्नेह और क्षमा के साथ, जैसी कि अब तक रखी है। नबियों की पवित्रता का विश्वास एक अलग चीज़ है और वह स्वयं एक मानी हुई सच्चाई है, लेकिन स्वयं नबी पर एक भय और बन्दा होने की भावना हर वली से भी बढ़कर होती है, वह तो हर दशा में अपने लिए क्षमा और माफ़ी और अल्लाह की कृपा ही माँगता रहता है। बाज़ ने कहा है कि यह तलब मेहरबानी और रहमत के स्थायित्व और सदैवता हेतु थी। यह भी कहा गया है कि आम लोगों की तौबा (क्षमायाचना) और है और ख़ास लोगों की और। और जो ख़ास लोगों में भी ख़ास होते हैं, उनका स्तर और भी ऊँचा होगा।

४८५ आयत से बड़ी शिक्षा आदाब की भी मिल रही है। इब्राहीम तथा इस्माईल जैसी पवित्र हस्तियाँ भी जब दुआ और याचना करते हैं तो बन्दे होने की किस अदा के साथ। किस विनम्रता के साथ।

४८६ **'मिन्हुम्'** यह प्रतिबन्ध ध्यान में रहे। अभी इब्राहीमी याचना चल रही है। अभी-अभी आप और इस्माईल दोनों मिलकर निवेदन कर चुके हैं कि ऐ परवरदिगार! हम दोनों की नस्ल में से 'उम्मत-मुस्लिमा', एक आज्ञाकारी उम्मत पैदा कर, और उसके तुरन्त बाद **'मिन्हुम्'** का शब्द लाते हैं। खुला हुआ अर्थ इस्माईली नस्ल से है। शब्द 'हुम्', **'ज़ुर्रिय्यत'** की ओर भी मुड़ता है और 'उम्मत-मुस्लिमा' की ओर भी। दोनों का सारांश एक ही है अर्थात् इस्माईली नस्ल और यह अंश इतिहास से अपने स्थान पर सिद्ध है कि सही इस्माईली नसब (गोत्र) की क़ौम अरब ही रह गये थे, अतः यह आवश्यक था कि यह नबी अरब ही में पैदा हो। **'रसूलन्'** इसका एक तो एक वचन होना और "अन्" का जोड़ यह संकेत करता है कि वह रसूल एक होगा, कई न होंगे। यहूद का दावा है (नसारा भी उन्हीं का साथ देते हैं) कि नबूवत तथा रिसालत तो बनी इसराईल के साथ ही विशेषता रखती थी, यह नया पैग़म्बर बनी इस्माईल में कैसे पैदा हो गया? परन्तु उन्हीं की तौरेत बावजूद एर-फेर के यह गवाही अब तक दे रही है। एक जगह हज़रत मूसा अपनी क़ौम को सम्बोधित करके कहते हैं— "ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा तेरे लिए तेरे ही बीच से तेरे ही भाइयों में से मेरी तरह का एक नबी पैदा करेगा। तुम उसकी तरफ़ कान धरो।" (इस्तिस्ना— १५ : १८)। अलावा इसके कि बनी इसराईल में तो एक नबी नहीं, ख़ुदा मालूम कितने नबी हज़रत मूसा के बाद पैदा होते रहे, "ख़ुद तेरे ही भाइयों में से" की बात यह स्पष्ट कर रही है कि इसका अर्थ बनी इस्राईल नहीं, बल्कि उनके ही पूर्वजीय भाई बनी इस्माईल हैं। अगर यही सूचना देनी होती कि इस्राईली नबी पैदा होगा तो बजाय "तेरे ही भाइयों में से" के इबारत "तुझ ही में से" होती। यह शब्द तो केवल सम्बोधित व्यक्तियों की घबराहट दूर करने और उनके अन्दर अपनत्व की और स्नेह की भावना जाग्रत् करने हेतु कहे गये कि ऐ मेरी क़ौम वालो! जब वह नबी आये तो उसकी आज्ञा मानना, वह भी तुम्हारा ग़ैर नहीं, तुम्हारे ही भाइयों में से होगा। और फिर दो ही आयतों के बाद तौरेत में यही मज़मून सीधे अल्लाह की ओर से कहा गया है— "ख़ुदावन्द ने मुझे कहा कि उन्होंने जो कुछ कहा, सो अच्छा कहा। मैं उनके लिए भाइयों में से तुझ-सा एक नबी पैदा करूँगा और अपना कलाम उसके मुँह में डालूँगा।" (इस्तिस्ना— १८ : १८)। अब देखिये कि "अपना कलाम उसके मुँह में डालूँगा" यानी शाब्दिक कलाम-इलाही होने की बात सिवाय क़ुर्आन के सारी आसमानी किताबों में और है ही कौन? लफ़्ज़ी कलाम-इलाही होने का दावा किस दूसरी किताब का है? फिर देखिये कि "तुझ-सा" यानी "मूसा का-सा" होने की बात विश्व के इतिहास में सिवाय "ज़ात-मुहम्मदी" के और कौन हुआ है? और क्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे भी निगाह बचाना सम्भव होगा कि यहाँ भी बजाय "उनमें से" के या "इसराईलियों में से" की स्पष्टता "उनके भाइयों में से" होने की मौजूद है। और फिर यही भविष्यवाणी उन्हीं शब्दों में मूसा नबी की ज़बान से निकली हुई नसारा की इंजील में भी दोहराई हुई मौजूद है— "मूसा ने कहा कि ख़ुदावन्द ख़ुदा तुम्हारे भाइयों में से तुम्हारे लिए मुझ-सा नबी पैदा करेगा, जो कुछ वह तुमसे कहे तुम उसे सुनना।" (आमाल ३ : २२)।

४८७ ज़रा सा ध्यान देने से नज़र आ जायेगा कि महान रसूल (स०) के सभी कर्तव्यों को बहुत संक्षिप्त करके इन चन्द फ़िक़रों में अदा कर दिया गया है। **'यत्लू अलैहिम् आयातिक'** रसूल का पहला कार्य अपनी उम्मत के समक्ष आयतों का पठन (तिलावत) होता है, यानी अल्लाह का कलाम पहुँचाना अर्थात् पहली हैसियत प्रचारक महान की होती है। **'युअ़ल्लिमु-हुमुल्-किताब'** रसूल का काम केवल प्रचार (तब्लीग़) और पयाम पहुँचा देने पर ही ख़त्म नहीं हो जाता। उसका काम अल्लाह की किताब के प्रचार के बाद उसकी शिक्षा देने का भी है। इस शिक्षा के भीतर उसकी शरह (व्याख्या) अनुवाद करना, अर्थ बताना, आम बातों में ख़ास बातों की ओर संकेत और ख़ास बातों में से आम नियमों को प्रदर्शित करना, सब कुछ आ गया, और यहीं से इस बात की काट भी हो गई, जो रसूल के मन्सब और पोज़ीशन को (मआज़ल्लाह) केवल डाकिया या पैग़ाम ले जानेवाले का समझे हुए हैं। इस प्रकार रसूल की स्थिति एक महान शिक्षक की हुई। **'वल्हिक्मत'** फिर रसूल केवल किताब की ही शिक्षा न देंगे, बल्कि वह ज्ञान और हिकमत की बातें बतायेंगे। हुक्म और मसले, दीन के क़ायदे और नियम आम तथा ख़ास सभी को समझायेंगे, सिखायेंगे और ख़ास व्यक्तियों को छुपे हुए राज़ों और रहस्यों की बातें स्पष्ट करेंगे और उनका पथप्रदर्शन करेंगे। इस प्रकार रसूल का तीसरा रूप हिदायत देनेवाले और पथप्रदर्शक का हुआ। **'युज़क्कीहिम्'** 'तज़कीया' का अर्थ है दिल की सफ़ाई। रसूल का काम केवल ज़ाहिरी आदेशों और शब्दों का स्पष्ट करना ही न होगा, बल्कि वह व्योहार की पवित्रता, और नीयतों की स्वच्छता के कर्तव्यों को भी पूरा करेंगे। इस प्रकार रसूल की चौथी हैसियत सुधारक महान की भी हुई।

४८८ (तू तो उस दुआ को क्यों न क़बूल करेगा) **'इन्नक अन्त'** अरबी में इस दोहरे सम्बोधन का अर्थ उर्दू में अवश्य 'तू तो' होता है। **'अल् अज़ीज़'** हर दुआ के क़बूल करने पर, हर आर्ज़ू के पूरा करने पर पूरा अधिकार रखनेवाला, जिसकी मर्ज़ी पर मना करनेवाली या अधिकार पानेवाली कोई चीज़ नहीं है। **'अलहकीमु'** वह सम्पूर्ण अधिकार रखने के साथ सम्पूर्ण हिकमत वाला भी है। बन्दों की आर्ज़ूएँ और इच्छाएँ वही पूरी करता है। दुआएँ वही क़बूल करता है जो हिकमत के अन्तर्गत और उसके अनुसार हों। **'अल्हकीमु'** का अर्थ हाकिम और क़ाज़ी का भी होता है और चीज़ों के परिपक्व एवं सम्पूर्ण और कामिल करने के भी माने होते हैं। स्वयं हिकमत के भी अर्थ में यह शब्द आता है यानी जिसको हर चीज़ के विषय में बेहतरीन ज्ञान हो। अल्लाहु अक्बर ! ख़लील (हज़रत इब्राहीम) और ज़बीह (हज़रत इस्माईल) से बढ़कर अदब और सम्मान की पहचान वाला कौन होगा ? दुआ में भी कैसी-कैसी बातें पैदा की हैं।

४८९ (और ख़ुद को हानि, लाभ की मोटी परख से भी वंचित कर लिया हो।) यानी मिल्लत-इब्राहीमी तो बिल्कुल स्वाभाविक दीन है। उनकी शिक्षाएँ तो ठीक सही तबीयतों को ही प्रकट करती हैं। उनसे अलाहदगी तो केवल वही करेगा जिसकी तबीयत ही सही न हो, सिद्ध न हो, बल्कि बिगड़ गई हो। इस बात की पुष्टि मनुष्य जब चाहे विश्वास से नहीं, आज़माइश से कर ले। इस्लाम ने जमाअत की जो व्यवस्था (सोसाइटी की व्यवस्था) बनाई है, वही सबसे अच्छी सामूहिक व्यवस्था है। हर व्यक्ति के लिए जो कार्यक्रम बनाया है, वही सबसे अच्छा व्यक्तिक नियम है। बुद्धि और भावना, व्यक्ति और समाज, हृदय और मस्तिष्क, जिस्म और आत्मा, आज़ादी और आज्ञाकारिता, मानव जीवन के विभिन्न अंशों की पारस्परिक रिआयत जितनी इस्लाम ने की है, दुनिया के किसी नियम में उसकी मिसाल नहीं दृष्टिगोचर होगी। इब्राहीमी दुआ समाप्त हुई, अब इब्राहीमी मिल्लत का बयान आरम्भ हो रहा है कि यह तो वही तौहीद का दीन है, जिसकी दावत आज इस्लाम दे रहा है, और जिसको तुम, बावजूद अपने मुश्तरक बुज़ुर्ग इब्राहीम की पैरवी का दावा करने के, छोड़े हुए हो। **'मिल्लति अिब्राहीम'** क़ुर्आन ने अजीब सारगर्भिता और अनोखेपन से काम लिया है। यहाँ अपने दीन-इस्लाम का सम्बन्ध न हक़ तआला की ओर किया, न समय के रसूल हज़रत मुहम्मद (स०) की ओर, बल्कि केवल इब्राहीम ख़लील की ओर किया। यहाँ वास्तव में सम्बोधित होनेवाले लोग हैं यहूद, नसारा और अरब के मुशरिक। यह तीनों क़ौमें मुसलमानों की भाँति हज़रत इब्राहीम को अपना पेशवा मानती थीं। इस तर्ज़े-बयान की शैली को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनाकर गोया यह कहा जा रहा है कि क़ुर्आन तुम्हें किसी नये दीन की दावत नहीं देता, वह तो ठीक तुम्हारे ही बुज़ुर्ग एवं पेशवा इब्राहीम के दीन की ओर तुम्हें बुला रहा है। मेहरबानी और प्रचार की सुन्दरता की शैली इससे बेहतर और क्या हो सकती थी। अरब के मुशरिकों के पास आसमानी पुस्तक कोई नामचार को भी मौजूद नहीं थी। हाँ, यहूद एवं नसारा के लेखों में इब्राहीम अलैहिस्सलाम की खूबियों, गुणों और बड़ाइयों का वर्णन उस समय में भी अंकित था और आज तक लिखा चला आता है। इस समय की तौरेत में है— "अपने बाप अब्राहम पर और सिरा पर, जो तुम्हें जनी, निगाह करो कि जब मैंने उसे बुलाया, वह अकेला था, फिर उसको बरकत दी और उसको बहुत बनाया।" (यसीयाह—२ : ५१)। "ऐ अब्राहम! मत डर, मैं तेरी ढाल हूँ और तुझे बहुत बड़ा बदला देनेवाला हूँ।" (पैदाइश—१ : १५)। "और वह खुदा पर ईमान लाया और यह उसके लिए सच्चाई में गिना गया।" (पैदाइश—६ : १५)। मसीहियों की इंजील में है— "अब्राहम खुदा पर ईमान लाया और यह उसके लिए रास्तबाज़ी (सच्चाई की राह पर होना) गिना गया। पस जान लो, जो ईमानवाले हैं वही अब्राहम के सुपुत्र हैं।" (गिलीयून—३ : ६) और (रूमियून—३ : ४)। **'मिल्लत इब्राहीम'** से यह भी दलील हुई है कि हमारी शरीअत वही शरीअत-इब्राहीमी है सिवाय उन हिस्सों के, जो अब समाप्त हो गये हैं (निरस्त हो गये हैं)।

४६० (उनकी इसी तौहीद-परस्ती और अल्लाह पर ईमान रखने के बदले में हर प्रकार की नेमतों और सम्मानों के लिए, यहाँ तक कि रिसालत और नबूवत के उच्च स्थान के लिए) एक मसीही इतिहासकार रेवरेण्ड विलियम डीन (Deane M. A.) ने एक स्थायी पुस्तक हज़रत इब्राहीम की चरित्र-गाथा पर अंग्रेज़ी में लिखी है। उससे आपके दुनियावी उन्नति और सम्मान पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। उन लामज़हब "रौशन-खयालों" के लिए वही काफ़ी है, जिन्होंने आपके अस्तित्व को उन्नीसवीं शताब्दी में फ़र्ज़ी बता दिया था।

४६१ (एक शानदार एवं बड़े पैग़म्बर की शान के अनुसार) यहूद व नसारा ने किताबवाले होने के बावजूद और नबूवत तथा 'वही' का सिलसिला मानने के बावजूद अपने-अपने लेखों में नबियों की पवित्रता को दाग़दार बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी, इसलिए क़ुर्आन मजीद ने जहाँ-जहाँ पिछले नबियों का ज़िक्र करता है, बराबर उन हज़रात की रूहानी एवं नैतिक बड़ाई पर बल देता है और इस प्रकार तौरेत तथा इंजील द्वारा लागू की हुई अपराध-सूची को खण्डित करता है और सच्चे नबियों की सहायता तथा सेवा करने के कर्तव्य को पूरा करता है। यह अजीब प्रकार के किताबवाले गोया किताब के केवल शब्दों को मानते थे और नबी एवं नबूवत के सही अर्थ में माननेवाले नहीं थे। उनका विचार यह था कि नबी वह है जो भविष्यवाणी करे, ग़ैब की बातें ज्योतिषियों और काहिनों की भाँति बताया करे, और इससे उनको सरोकार न था कि वह नैतिकता में किस स्थान पर है या उसकी आत्मिकता का कमाल किस श्रेणी में है, उसकी शिक्षाएँ क्या हैं इत्यादि। इब्राहीम खलीलुल्लाह (अल्लाह के मित्र) तो अक्सर नबियों के पिताओं के पिता हैं, आपकी पवित्रता की सुरक्षा की व्यवस्था तो क़ुर्आन ने और ज़ोरदार तरीक़े पर की है।

४६२ यानी वह इस्लाम ले आये। एक बार फिर यह सच्चाई दृष्टि में रख ली जाये कि क़ुर्आन में हर बयान आवश्यक रूप में ऐतिहासिक क्रम में नहीं होता। खुदा का यह फ़र्मान बहुत पूर्व का है और इब्राहीम उस समय ईमान ले आये थे। इस्लाम से मुराद कामिल-इस्लाम है और इब्राहीम जैसे शानदार पैग़म्बर के लिए उनकी शान के मुताबिक़। शाब्दिक अर्थ 'सर रख देने', 'झुक जाने', 'अपने को सुपुर्द कर देने' के हैं। ईमान का सम्बन्ध अन्तरात्मा से है और इस्लाम का प्रत्यक्ष से और अक्सर इस्लाम और ईमान एक ही माने में भी आते हैं।

४६३ यानी मैं उस खुदा पर ईमान ले आया, जो सारे विश्व का परवरदिगार है। यहाँ गोया हज़रत इब्राहीम ने संकेत में अपने ईमान लाने का कारण भी बयान कर दिया। यानी इस्लाम मैं क्यों न लाता? एक ही परवरदिगार, एक ही हर चीज़ का हाकिम, एक ही मालिक, परवरिश करने के सारे विभागों का व्यवस्थापक वही एक ही तो है। मैं उस पर ईमान क्यों न लाता! उसके क़ानून से बाग़ी कैसे रह सकता?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व वस्सा बिहा अिब्राहीमु बनीहि व यअ्क़ूबु त या बनिय्य अिन्नल्लाहस्तफ़ा लकुमुद्दीन फ़ ला तमूतुन्न अिल्ला व अन्तुम् मुस्लिमून त (१३२) अम् कुन्तुम् शुहदाअ अिज़् हज़र यअ्क़ूबल्मौतु ला अिज़् क़ाल लिबनीहि मा तअ्बुदून मिम्बअ्दी त क़ालू नअ्बुदु अिलाहक व अिलाह आबाअिक अिब्राहीम व अिस्माअील व अिस्हाक़ अिलाहंव्वाहिदन् ज क़ुला ०व नह्नु लहू मुस्लिमून (१३३) तिल्क अुम्मतुन् क़द् ख़लत् ज लहा मा कसबत् व लकुम् मा कसब्तुम् ज व ला तुस्अलून अम्मा कानू यअ्मलून (१३४) व क़ालू कूनू हूदन् औ नसारा तह्तदू त क़ुल् बल् मिल्लत अिब्राहीम हनीफ़न् त व मा कान मिनल् - मुश्रिकीन (१३५) क़ूलू आमन्ना बिल्लाहि व मा अुन्ज़िल अिलैना व मा अुन्ज़िल अिला अिब्राहीम व अिस्माअील व अिस्हाक़ व यअ्क़ूब वल्अस्बाति व मा अूतिय मूसा व अीसा व मा अूतियन्नबिय्यून मिर्रब्बिहिम् ज ला नुफ़र्रिक़ु बैन अहदिम्-मिन्हुम् ज़ क़ुला व नह्नु लहू मुस्लिमून (१३६) फ़ अिन् आमनू बिमिस्लि मा आमन्तुम् बिही फ़ क़दिह्तदौ ज व अिन् तवल्लौ फ़अिन्नमा हुम् फ़ी शिक़ाक़िन् ज फ़ सयक्फ़ीक-हुमुल्लाहु ज व हुवस्समीअुल्-अलीमु त (१३७) सिब्ग़तल्लाहि ज व मन् अह्सनु मिनल्लाहि सिब्ग़तन् ज़ ०व नह्नु लहू आबिदून (१३८) क़ुल् अतुहाज्जूनना फ़िल्लाहि व हुव रब्बुना व रब्बुकुम् ज व लना अअ्मालुना व लकुम् अअ्मालुकुम् ज व नह्नु लहू मुख़्लिसून ला (१३९) अम् तक़ूलून अिन्न अिब्राहीम व अिस्माअील व अिस्हाक़ व यअ्क़ूब वल्अस्बात कानू हूदन् औ नसारा त क़ुल् अ अन्तुम् अअ्लमु अमिल्लाहु त व मन् अज़्लमु मिम्मन् कतम शहादतन् अिन्दहू मिनल्लाहि त व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अम्मा तअ्मलून (१४०) तिल्क अुम्मतुन् क़द् ख़लत् ज लहा मा कसबत् व लकुम् मा कसब्तुम् ज व ला तुस्अलून अम्मा कानू यअ्मलून (१४१) ★

★ ब. १५ / १६ आ १२

॥ इति पहला पारः ॥

الم ١ — ١٦ — البقرة ٢

بِهَآ اِبْرٰهٖمُ بَنِيْهِ وَيَعْقُوْبُ يٰبَنِيَّ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰى لَكُمُ الدِّيْنَ فَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا
وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ۝ اَمْ كُنْتُمْ شُهَدَآءَ اِذْ حَضَرَ يَعْقُوْبَ الْمَوْتُ اِذْ قَالَ لِبَنِيْهِ
مَا تَعْبُدُوْنَ مِنْۢ بَعْدِيْ قَالُوْا نَعْبُدُ اِلٰهَكَ وَاِلٰهَ اٰبَآئِكَ اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ
وَاِسْحٰقَ اِلٰهًا وَّاحِدًا ۚ وَّنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۝ تِلْكَ اُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ لَهَا مَا
كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَّا كَسَبْتُمْ ۚ وَلَا تُسْـَٔلُوْنَ عَمَّا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝ وَقَالُوْا كُوْنُوْا هُوْدًا
اَوْ نَصٰرٰى تَهْتَدُوْا ۭ قُلْ بَلْ مِلَّةَ اِبْرٰهٖمَ حَنِيْفًا ۭ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝
قُوْلُوْٓا اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْنَا وَمَآ اُنْزِلَ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ
وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى وَعِيْسٰى وَمَآ اُوْتِيَ النَّبِيُّوْنَ مِنْ
رَّبِّهِمْ ۚ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۡ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۝ فَاِنْ اٰمَنُوْا
بِمِثْلِ مَآ اٰمَنْتُمْ بِهٖ فَقَدِ اهْتَدَوْا ۚ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا هُمْ فِيْ شِقَاقٍ ۚ
فَسَيَكْفِيْكَهُمُ اللّٰهُ ۚ وَهُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ۝ صِبْغَةَ اللّٰهِ ۚ وَمَنْ
اَحْسَنُ مِنَ اللّٰهِ صِبْغَةً ۡ وَّنَحْنُ لَهٗ عٰبِدُوْنَ ۝ قُلْ اَتُحَآجُّوْنَنَا فِي اللّٰهِ
وَهُوَ رَبُّنَا وَرَبُّكُمْ ۚ وَلَنَآ اَعْمَالُنَا وَلَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ۚ وَنَحْنُ لَهٗ مُخْلِصُوْنَ ۝ اَمْ
تَقُوْلُوْنَ اِنَّ اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطَ كَانُوْا
هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰى ۭ قُلْ ءَاَنْتُمْ اَعْلَمُ اَمِ اللّٰهُ ۭ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ كَتَمَ شَهَادَةً
عِنْدَهٗ مِنَ اللّٰهِ ۭ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝ تِلْكَ اُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ
لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَّا كَسَبْتُمْ ۚ وَلَا تُسْـَٔلُوْنَ عَمَّا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝ ع

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और इब्राहीम इसकी हिदायत कर गये अपने बेटों को[४९४] और ऐसी ही याक़ूब भी [४९५] (अपने बेटों को)[४९६]। ऐ मेरे बेटो! बेशक अल्लाह ने तुम्हारे लिए दीन का चयन कर लिया है[४९७], सो ऐसा कदापि न होने पाये कि तुम मरते समय सिवाय मुस्लिम के कुछ और हो[४९८]। (१३२) भला उस वक़्त तुम क्या मौजूद थे जब याक़ूब को मौत आ पहुँची[४९९] और उस वक़्त उन्होंने अपने बेटों से कहा कि तुम मेरे बाद किसकी इबादत करोगे[५००] ? वह बोला, हम इबादत करेंगे आपके ख़ुदा और आपके बाप-दादों इब्राहीम और इस्माईल और इसहाक़ के ख़ुदा की। (उस) उस अकेले ख़ुदा की, और हम तो उसी के आज्ञाकारी हैं[५०१]। (१३३) यह एक जमाअत थी जो गुज़र चुकी[५०२] उनके आगे उनका किया हुआ आयेगा और तुम्हारे लिए तुम्हारा किया हुआ। और वह जो कुछ करते रहे उसकी पूछगछ तुमसे न होगी[५०३]। (१३४) और यह लोग कहते हैं कि यहूदी हो जाओ या नसरानी हो जाओ तो रास्ता पा जाओगे[५०४]। आप कह दीजिये[५०५] कि नहीं बल्कि (हमने तो) इब्राहीम सीधी राह वाले का मज़हब पा लिया[५०६] और वह मुशरिकों में के न थे[५०७]। (१३५) कह दो कि हम तो ईमान रखते हैं अल्लाह पर और उस पर जो हम पर उतारा गया[५०८], और जो इब्राहीम और इसमाईल और इसहाक़ और याक़ूब और याक़ूब की औलाद पर उतारा गया[५०९], और जो मूसा और ईसा को दिया गया और उस पर जो दूसरे नबियों को उनके परवरदिगार की तरफ़ से दिया गया[५१०], और हम उनमें से किसी के दरमियान भी फ़र्क़ नहीं करते[५११] और हम अल्लाह ही के आज्ञाकारी हैं[५१२]। (१३६) तो अगर यह लोग ईमान ले आयें जिस तरह तुम ईमान रखते हो तो बेशक वह राह पा गये[५१३] और अगर वह मुँह मोड़े रहें तो बस वह बड़ी मुख़ालिफ़त में पड़े हैं[५१४], सो अब अल्लाह आपकी तरफ़ से उनके मुक़ाबले में है[५१५] और (बड़ा) सुननेवाला (बड़ा) जाननेवाला है[५१६]। (१३७) (हमारे ऊपर) अल्लाह का रंग है[५१७] और अल्लाह से बेहतर कौन रंग (देनेवाला) है[५१८] ? हम तो उसी की बन्दगी करनेवाले हैं[५१९]। (१३८) आप कहिये कि क्या तुम हमसे अल्लाह के विषय में हुज्जत किये जाते हो[५२०] ? ऐसी दशा में कि वह हमारा भी परवरदिगार है और तुम्हारा भी परवरदिगार है[५२१] और हमारे अमल हमारे लिए हैं और तुम्हारे अमल तुम्हारे लिए हैं और हम तो उसी के लिए ख़ालिस हैं[५२२]। (१३९) क्या तुम यह कहते हो कि इब्राहीम और इस्माईल और इसहाक़ और याक़ूब और याक़ूब की औलादें यहूदी या नसरानी थे[५२३]? आप कहिये कि तुम ज़्यादा जानकार हो[५२४] या अल्लाह[५२५] और उससे बढ़कर ज़ालिम कौन है जो उस गवाही (और साक्ष्य) को छुपाये जो उसके पास अल्लाह के यहाँ से पहुँच चुकी है[५२६]। और अल्लाह तुम्हारे करतूतों से बेख़बर तो है नहीं[५२७]। (१४०) यह एक जमाअत है जो गुज़र चुकी[५२८]। ★ रु. १६
उनका किया हुआ उनके आगे आयेगा और तुम्हारा किया हुआ तुम्हारे आगे आयेगा[५२९]। और १६ — १६
जो कुछ वह करते रहे उसकी पूछगछ तुमसे न होगी[५३०]। (१४१) ★ आ १२

॥ इति पहला पारः ॥

---

४९४ (जिनकी संख्या तौरेत के बयान के अनुसार आठ थी) **'बिहा'** (यानी उस तौहीद के दीन की, मिल्लत-इस्लाम की) सर्नाम चाहे **'मिल्लत'** की ओर हो, चाहे **'अस्लम्तु लिरब्बिल् आलमीन'** की ओर, दोनों का सारांश एक ही है। **'वस्सा'** अरबी का शब्द **'वसिय्यत'** उर्दू के शब्द **'वसिय्यत'** से कहीं अधिक विशाल अर्थ रखता है। मृत्यु-शय्या की इच्छाओं और मरनेवालों की अन्तिम हिदायतों तक यह शब्द सीमित नहीं है। हिदायत के मानी हो सकते हैं। **'वसिय्यतु हकजा'** का अर्थ है "मैंने उसको हुक्म दिया", "मैंने उससे यह करने को कहा"। और खोज करनेवालों का कहना यह है कि बजाय **'औसा बिहा'** के **'वस्सा बिहा'** लाने में नुक्ता यह है (रहस्य यह है) कि गोया उस हुक्म देने और वादा लेने का सिलसिला क़ायम रहा। **'बनीहि'** हज़रत इब्राहीम के आठ सुपुत्र थे (१) हज़रत इस्माईल, हज़रत हाजिरा के गर्भ से, (२) हज़रत इस्हाक़, हज़रत सारा अिराक़ी के गर्भ से, (३) ज़ुमरान,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(४) युफ़सान, (५) मदान, (६) मदियान, (७) इस्याक़, (८) सूख। यह सब हज़रत क़तूरा के गर्भ से थे। (पैदाइश—१, २ : २५)।

४९५ (हिदायत कर गये) **'यऽक़ूब'** हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह के पोते और नबी हज़रत इस्हाक़ के सुपुत्र थे, नबी के पुत्र होने के अलावा स्वयं भी नबी थे। तौरेत में इसराईल आपका ही दूसरा नाम है। तौरेत में है— "और खुदा ने उसे कहा कि तेरा नाम याक़ूब है, तेरा नाम आगे को याक़ूब न कहलायेगा, बल्कि तेरा नाम इसराईल होगा। सो उसने उसका नाम इसराईल रखा।" (पैदाइश—१, ११ : ३५)। तौरेत के बयानानुसार आयु एक सौ सैंतालीस वर्ष पाई। समय सम्भवतः २००० पूर्व मसीह से १८५३ पूर्व मसीह, जन्म कनआन (फ़िलस्तीन) में हुआ। १८७० पूर्व मसीह में अपने नामी सुपुत्र यूसुफ़ के पास मिस्र चले गये और वहीं मृत्यु हुई।

४९६ चार धर्मपत्नियों से आपके बारह बेटे थे। उनके नाम तौरेतानुसार निम्नवत हैं:— रोबिन, शमऊन, लावी, यहूदाह, अश्कार, ज़िबलून, यूसुफ़, बिन्यामीन्, दान, नफ़तानी, जद और अशर। (पैदाइश—२४, २५, २६)। (इन्हीं सुपुत्रों में से जहाँ तक खानदानी शजरा और नसबनामा से पता चला है, लावी की नस्ल से इस सतरों का लेखक भी है।)

४९७ **'अद्दीन'** यानी इस तौहीद के दीन का, यानी मिल्लत-इस्लाम या जाना-पहचाना हुआ दीन-इस्लाम। **'अस्तफ़ा'** के मानी हैं चुन लेना और मिलावट से पाक कर देना। **'लकुम्'** यहाँ 'ल' विशेषता हेतु आया है, यानी यह दीन तुम्हारे लिए है और तुम इस दीन के लिए हो। अर्थ यह हुआ कि हज़रत इब्राहीम ने, जो क़ौम-अरब और नस्ल-यहूद दोनों के पूर्वज हुए और नसारा के भी पथप्रदर्शक, और हज़रत याक़ूब, जो नस्ल-इसराईली के पूर्वज हुए हैं, यह दोनों तो अपनी सन्तान को ही खुद अपने अख्तियार किये हुए और खुदा के पसन्द किये हुए दीन को देकर ही गये और कह गये कि तुम्हें किसी अन्य की तलाश में परेशान होने की आवश्यकता ही नहीं, तुम्हारे लिए तो यह अल्लाह का बनाया हुआ और बताया हुआ दीन-तौहीद मौजूद ही है। जिन लोगों से क़ुर्आन का सम्बोधन है, वह सभी पूर्वजों की पूजा के बीमार थे। उनसे सम्बोधन की यह शैली सबसे बेहतर है कि अच्छा यदि दीन के मामले में अपने पूर्वजों को ही मध्यस्थ बना रहे हो तो देखो वही क्या कह गये हैं।

४९८ (और चूँकि मौत का समय मनुष्य की जानकारी में नहीं, इसलिए उसके लिए हमेशा और हर समय तैयार रहो।) अर्थ यह है कि हर समय मुसलमान बने रहो और ईमान को हर समय, हर पल हृदय में बसाये रहो। दीन में जो माँगें हैं, बस एक ईमान की माँग ऐसी है जो हर पल की है, हर हाल की है, वरना क्रम जितने भी हैं सब परिस्थितियों के अन्तर्गत हैं और परिस्थितियाँ स्वयं बदलती रहती हैं। साथ ही अहल-किताब को भी सचेत किया जा रहा है कि तुम जिस दीन को नया और अजनबी एवं अनोखा समझकर उससे बिदकते और भड़कते हो, वह नया पैदा नहीं। वह तो ठीक तुम्हारे ही बुज़ुर्गों का बताया हुआ दीन है। [इस लेखक से अगर कहा जाये कि सारे क़ुर्आन मजीद में से किसी एक आयत का अपने लिए चयन कर ले तो उसकी निगाह इसी आयत पर, बल्कि इसके अन्तिम अंश पर पड़ेगी। जी में है कि ज़िन्दगी की हर साअत (घड़ी) में यही आयत ज़बान पर जारी रहे और दिल में इसी के माने मौजूद रहें। मौत के समय यही दिलो-ज़बान पर हो और बाद मौत यही कफ़न पर भी लिख दी जाये। और क़ब्र के कत्बे (शिलालेख) पर भी खोद दी जाये। बारहा इस आयत पर जोश आ गया है, नशा-सा छा गया है। बारहा इस पर आँसू जारी रह चुके हैं और दिल यह कहता है कि हुक्मों की सीमा तक सारे क़ुर्आन का सारांश यही आयत है।]

४९९ (और आपको इसकी निशानियाँ और आसार महसूस होने लगे।) **'हज़रलमौतु'** यानी वादे का समय निकट आ गया, यह अर्थ नहीं है कि खुद मौत ही आप पर छा गई। क़ुर्आन मजीद ही में एक दूसरी जगह और है **"व यअ्तीहिल् मौतु मिन् कुल्लिमकानि व्व मा हुव बिमय्यितिन्"** यहाँ मौत का अर्थ मौत के कारण और आसार के हैं। **'अम् कुन्तुम् शुहदाअ'** सम्बोधन अहल-किताब से है और प्रश्न करने के साथ तम्बीह (चेतावनी) भी है। यानी तुम जो बुराइयाँ हज़रत याक़ूब की ओर सम्बन्धित कर रहे हो, तो तुम्हारा उस वक़्त अस्तित्व ही कहाँ था? सही वाक़िआत तो वह हैं, जो क़ुर्आन बयान कर रहा है।

५०० आयत से इसकी शिक्षा मिलती है कि नबियों को जीवन भर की तरह अपने आखिरी समय में भी सबसे बड़ी और प्रथम चिन्ता दीन की ही होती है। और अपनी सन्तान के हक़ में उनकी सबसे बड़ी मुहब्बत और उनका स्नेह यही है। **'मिम्बऽदी'** यानी मेरे देहान्त के बाद।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५०१ यानी "हम सब इस पर इस्लाम ला चुके हैं।" मौजूद तौरेत के पन्न तो इस अहम और आवश्यक वर्णन से किसी विशेष कारण से मौन हैं। हाँ! यहूद के बड़ों की यह बात नक़्ल होकर आई है कि "याक़ूब ने अपनी मृत्यु से पहले अपने पुत्रों को यह तीन आदेश दिये— (१) मूर्ति-पूजा न करना, (२) ख़ुदा का असम्मान न करना, (३) मेरे जनाज़े को कोई काफ़िर हाथ न लगाने पाये।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ७, सफ़ा २४)। यहूद की जो दूसरी पुस्तकें और रिवायतें हैं, उनसे कुछ अधिक ब्योरा मिलता है— "याक़ूब ने अपने बेटों से कहा……मुझे सन्देह है कि तुममें से कोई मूर्ति-पूजा की ओर झुकाव रखता है।" उसके जवाब में बारह बेटों ने कहा— "सुन ऐ इसराईल! ऐ हमारे बाप! हमारा ख़ुदा वही ख़ुदाए लम यज़ल है (जिसको कभी अस्त नहीं होना है), जिस प्रकार तेरा दिली ईमान एक ख़ुदा पर है उसी प्रकार हम सबका दिली ईमान एक ख़ुदा पर है।" (गिंज़बर्ग की 'यहूद की कथाएँ— जिल्द २, सफ़ा १४१)। **'आबाअिक'** इस्माईल याक़ूब के बड़े चचा (या ताया) थे। याक़ूब के बेटों ने सुशीलता के साथ उनको याक़ूब के बाप के रूप में माना, क्योंकि उर्दू मुहावरे में बाप और चचा एक ही गिनती में हैं। हदीस में हज़रत रसूल (स०) की ज़बान-मुबारक से आपके चचा हज़रत अब्बास के लिए भी **'अब'** का शब्द आया है, यानी बाप या बुज़ुर्ग। **'हज़ा बक़िय्यत आबाओ'** यानी बड़ों या बुज़ुर्गों में अब यही बाक़ी हैं। आयत में दादा या चचा के लिए 'अब' ही आया है। **'इस्हाक़'**— यह नाम प्रथम बार आया है। यह हज़रत इब्राहीम के दूसरे सुपुत्र थे। पहली पत्नी हज़रत सारा के गर्भ से थे। जन्म का वर्ष लगभग २०६० पूर्व मसीह और मृत्यु का सन् १८८० पूर्व मसीह है। तौरेत में आपकी आयु १८० वर्ष अंकित है। यह भी दर्ज है कि आपके जन्म के समय हज़रत इब्राहीम की आयु सौ वर्ष की थी। आपकी मृत्यु-शय्या का दृश्य यहूदी कथाओं में यूँ दिखाया गया है— "जब इस्हाक़ ने देखा कि उनका वादे का समय आ पहुँचा तो उन्होंने अपने दोनों बेटों को अपने पास बुलाया और कहा कि मैं तुम्हें ख़ुदाए तआला का वास्ता देता हूँ, जिसके गुण 'अली' (सबसे अच्छा), अज़ीम (महान), क़य्यूम (क़ायम करनेवाला यानी विश्व की रचना करनेवाला— दूसरा अर्थ है हमेशा रहनेवाला), अज़ीज़ (इज़्ज़त देनेवाला) और आसमान तथा ज़मीन और उनके मध्य की हर चीज़ का पैदा करनेवाला है, कि तुम डर उसी का रखना और इबादत उसी की करना।" (जिल्द प्रथम, सफ़ा ४१६)।

५०२ (और उनकी बड़ाइयाँ और गुण भी उनके साथ बीत गये। तुम्हें उनके नाम गिनाने से क्या फ़ायदा?) **'तिल्क उम्मत'** का अर्थ यही यहूद के पूर्वज हैं जो नबियों की जमाअत में गिने जाते हैं। सम्बोधन यहाँ यहूद से है, जो अपने पूर्वजों की बड़ाई के घमण्ड, नस्ली बड़ाई और पयम्बरों की सन्तान होने के नशे में चूर थे। इसमें उन पीरज़ादों, रस्मी बुज़ुर्गज़ादों और बिदअती फ़िरक़ों के लिए पाठ मौजूद है। केवल बुज़ुर्गों से सम्बन्ध रखने से और अमल न करने से कोई लाभ न होगा। इस विचार की जड़ ही इस्लाम ने काट दी है।

५०३ इस्लाम की बदौलत अब यह बात मामूली सी महसूस होती है, लेकिन क़ुर्आन ने जब इस हक़ीक़त की सूचना दी उस समय यह बड़ी अहम और अनोखी बात थी। व्यक्तिक और निजी ज़िम्मेदारी और व्यक्तिक उत्तरदायित्व की शिक्षा इस्लाम की विशेषताओं में से है, अन्यथा मुशरिकों के अलावा यहूद और अह्ल-तौहीद भी इस नासमझी का शिकार हो गये थे कि निजी अमल की कोई आवश्यकता नहीं है; ख़ुदा के निकटतम पूर्वजों तथा उनसे नस्ली सम्बन्ध और बड़ों से नातेदारी ही बिल्कुल पर्याप्त है नजात के लिए। मसीहियों का गढ़ा हुआ मसला कि 'गुनाह की विरासत' यानी जो गुनाह हज़रत आदम से हो गया था, वह उनकी सन्तानों में स्थानान्तरित होता चला आ रहा है। यहूद ने इसी के साथ मिलता-जुलता एक अक़ीदा 'नजात की विरासत' गढ़ लिया और यह समझ लिया था कि— "ख़ुदाए तआला अपने नाम पाक के तुफ़ैल (कारण) में और अपनी बड़ाई के रूप में बाप की भलाइयाँ सन्तान की ओर स्थानान्तरित करता रहता है।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द १२, सफ़ा ४४७)। मौजूदा तौरेत में एक आयत इस मज़मून की मिलती है— "मैं ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा ग़ैरत रखनेवाला ख़ुदा हूँ, जो बाप-दादों की बदकारी का बदला उनकी सन्तान से तीसरी और चौथी पीढ़ी तक, जो मेरा कीना रखनेवाले हैं, लेता हूँ।" (इस्तिस्ना—५ : ९)। बस 'तिनके की ओट पहाड़', यह खड़ा कर लिया गया कि हर नस्ल को सवाब ऊपर से भी और नीचे से भी स्थानान्तरित होता रहेगा, यानी पूर्वजों और आनेवाली पीढ़ी, दोनों की तरफ़ से होता रहेगा। और फिर इब्राहीम की सन्तान को तो कोई डर ही नहीं। "बाज़ को सवाब अपने पूर्वजों के आमाल का मिलेगा और बाज़ को सवाब अपनी अगली पीढ़ी का मिलेगा।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया—जिल्द ६, सफ़ा ६०)। यहूदी व्यक्तियों की आशाएँ सब पूर्वजों की पवित्रता पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधारित थीं, यानी इस पर कि हम इब्राहीम की सन्तान हैं। (इन्साइक्लोपीडिया बिटैनिका—जिल्द १३, ग्यारहवाँ संस्करण)। तफ़्सीर करनेवालों ने भी आयत का यही मतलब लगाया है कि गुमराह क़ौमों, विशेष रूप से यहूद की बुज़ुर्ग-परस्ती पर चोट लगाई जा रही है और व्यक्तिक एवं जाती ज़िम्मेदारी और उत्तरदायित्व का एलान किया जा रहा है। आयत से उन लोगों की भी काट होती है, जिन्होंने मुशरिकों के बच्चों को उनके माँ-बाप के जुर्मों के बदले में अज़ाब पाने की बात कही है।

५०४ क़ुर्आन मजीद की साफ़ और सीधी शिक्षा और उसकी स्पष्ट दलीलों को सुनकर चाहिए तो यह था कि अहल-किताब उससे प्रभावित होते और सत्य को स्वीकार करने पर आमादा हो जाते, परन्तु उलटे हठधर्मी और ज़िद में आकर मुसलमानों को ही यहूदीयत और नसरानीयत की दावत देने लगे और कहने लगे कि हमारा दीन स्वीकार कर लो, तुम्हें दुनिया की तरक़्क़ी और आख़िरत में नजात हासिल हो जायेगी।

५०५ (सारी इस्लामी उम्मत की ओर से उन लोगों के जवाब में, ऐ हमारे पैग़म्बर!)

५०६ (उसकी अस्ली और बिना फेर-बदल की हुई शक्ल में) **'मिल्लत अिब्राहीम'** यहूद व नसारा दोनों नये मुसलमानों और आधे मुसलमानों को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते थे कि भलाई और नजात चाहते हो तो हमारे मज़हब में आ जाओ। इस नये मज़हब में क्या रखा है? मुसलमानों को यह तालीम मिल रही है कि तुम्हारे यहाँ क्या रखा है फेर-बदल के अलावा! रहा हमारा दीन, तो वह नया पैदा हुआ ज़रा भी नहीं, वह तो बस क़दीम दीन इब्राहीम अलैहिस्सलाम का है और हम उसी के अस्ली और बिना फेर-बदल वाले रूप पर स्थिर हैं। ख़ुद 'हनीफ़' के मानी शब्दकोष में दो आये हैं, एक है 'सीधा' और मुहम्मद बिन काब से यहाँ यही बयान हुआ है। और दूसरे मानी हैं 'झुके हुए या झुकाव रखते हुए' और इस अर्थ में मुराद यह होगी कि दीन-हक़ की तरफ़ झुके होते थे।

५०७ यह एतराज़ किया गया है अहल-किताब पर कि तुम किस मुँह से अपने को दीने-इब्राहीम से सम्बद्ध करते हो। वह तो शिर्क के पास होकर भी नहीं गुज़रे थे। इब्राहीम अलैहिस्सलाम की ख़ालिस तौहीद पर यहूद तथा नसारा दोनों सहमत थे, लेकिन अमल में उनका रास्ता छोड़े हुए थे बल्कि मसीही तो खुले हुए शिर्क में लीन हो चुके थे।

५०८ (अल्लाह के यहाँ से हमारे पैग़म्बर के माध्यम से) सम्बोधन आम मुसलमानों से है, यानी हमें तो नस्ली या क़ौमी पक्षपात किसी से भी नहीं। हमारा सम्बन्ध इस्माईली, इसराईली हर शरीअत-इलाही से बस विश्वास और पाबन्दी करने का ही है।

५०९ (अल्लाह के यहाँ से) **'अल् अस्बात'**— बहुवचन है **'सिबत'** का, जिसका अर्थ है औलाद की औलाद या पोते, नवासे (नाती)। यह पोतों और नवासों दोनों के लिए आता है। जिस प्रकार बनी इस्माईल की शाखाएँ क़बीलों में बँटती गईं, उसी प्रकार बनी इसराईल की शाखें **'अस्बात'** कहलाईं और इस प्रकार यह शब्द इसराईली शाखों के लिए विशिष्ट हो गया। इसराईली नस्ल में नबूवत बहुत विशाल रूप में फैली रही। इस फ़िक़रे का अर्थ यह हुआ कि हम मुसलमान किसी पयम्बर के इन्कार करनेवाले नहीं। **'व अिसहाक़ व यअ़क़ूब'** यह दो नाम इस तारतम्य और इस सिलसिले में विशेष रूप से ध्यान दिये जाने योग्य हैं। इस्माईल अलैहिस्सलाम का नाम लाना तो इसलिए ज़रूरी था कि अहल-किताब को उन्हीं से चिढ़ और जलन थी। बिना उनका नाम लाये इस्लाम के दावे का सुबूत ही नहीं हो सकता था। लेकिन इस्हाक़ अलैहिस्सलाम और याक़ूब अलैहिस्सलाम के नाम लाना स्वयं एक खुली हुई दलील है इस्लाम के इन्साफ़ के तरीक़े और निष्पक्षता की। क़ुर्आन यदि मानव की कही हुई चीज होती, तो मानव का स्वभाव तो यह है कि इस्माईल की सहायता और तरफ़दारी और अहल-किताब की लगातार शरारत और जोश दिलाने और उनके पक्षपात के जवाब में याक़ूब और इस्हाक़ के नाम ही छोड़ दिये जाते। इब्राहीम, इस्माईल और इस्हाक़ तीनों के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

५१० (अल्लाह के कलाम या आसमानी किताब में) 'मूसा'— आपका हाल ऊपर गुज़र चुका है। 'अ़ीसा, इब्ने मरयम' बजाय पिता के, अपनी माता से सम्बद्ध हैं। बनी इसराईल के आख़िरी और प्रसिद्ध नबी हुए हैं। आप पर इसराईली रिसालत का, बल्कि क़ौमी व नस्ली रिसालत का सिलसिला हमेशा के लिए समाप्त हो गया। आपका जन्म शाम के देश में यहूदिया प्रान्त के क़स्बा बैतुलहम या बैतुलमुक़द्दस में शाम के गवर्नर हीरोद के समय में हुआ। शाम उस समय रूम के साम्राज्य का अर्द्ध स्वतन्त्र भाग था। जन्म का वर्ष सम्भवतः सन् ४ पूर्व मसीह है। यह बात सुनने में बड़ी आश्चर्यजनक मालूम होगी, परन्तु इस पर आश्चर्य न कीजिये। सन् ईसवी, जो इस समय प्रचलित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, इसकी स्थापना में आरम्भ से ही त्रुटि हो गई है और इसका पता बाद में चला, चुनांचे सन् ईसवी का प्रथम वर्ष आपके जन्म का वर्ष नहीं है। आपके जन्म के चौथे वर्ष यह सन् जारी हुआ है। आपकी आयु सम्भवत: ३३ वर्ष की थी और सन् ३० ईसवी थी कि इसराईलियों ने आपकी तालीम और तब्लीग़ (दीन का प्रचार) से नाराज़ होकर आप पर मुक़द्दमा पहले तो अपनी आज़ाद मज़हबी अदालत में चलाया और फिर सरकारी क़ानून का भी अपराधी बनाकर रूमियों की मुल्की अदालत में पेश किया। वहाँ से सज़ाए मौत (सलीव के ज़र्ये) का आदेश हुआ। उसके बाद क्या बीती, इसका वर्णन सूरए मायदा की आयत **'व मा क़तलूहु, व मा सलबूहु'** के अन्तर्गत ख़ुदा ने चाहा तो आयेगा।

५११ (कि इनमें से किसको सच्चा नबी मानें, किसको न मानें) यह कि इस्लाम एक नया पैदा हुआ और नया होने की काट एक बार फिर हो रही है। विश्वव्यापी धर्म वह हो सकता है, जो हर मुल्क, हर क़ौम, हर नस्ल और हर ज़माने के पैग़म्बरों और सच्चे पथप्रदर्शकों का खुल्लमखुल्ला ज़ोरदार सत्यापन एवं तस्दीक़ कर रहा है, या वह मज़हब, जो आसमानी शिक्षा को अमुक मुल्क, अमुक क़ौम, अमुक नस्ल के साथ सीमित एवं विशेषता देते हैं?

५१२ वह हमको जिसकी भी आज्ञाकारिता का आदेश देगा, हम उसका कहा मानेंगे और उसका अनुसरण करेंगे। हमें न किसी से पक्षपात करना है, न दुश्मनी। हम तो केवल अल्लाह के आदेशों के आज्ञाकारी हैं। इस्लामी शिक्षा का सारांश या इत्र बस यही तौहीद का मसला है।

५१३ (और अपने ईमान के कारण नजात के हक़दार हो गये) सम्बोधन मुसलमानों से है और 'यह लोग' से मुराद वही इन्कार करनेवाले, काफ़िर और अहल-किताब हैं, जिनका सिलसिला ऊपर से चला आ रहा है। इसमें यह शुभ सूचना भी है कि अगर इतनी ज़िद और शत्रुता के बावजूद अब भी वह ईमान ले आयें तो उनकी दुश्मनी और पिछला कुफ़्र उनके मार्ग में अड़चन न बनेगा। **'फ़अिन् आमनू'** यहाँ 'फ़' का संकेत इस बात की ओर है कि अब जब कि इस्लामी तालीम की अस्ली बात उन पर स्पष्ट हो चुकी।

५१४ (सच्चाई और सीधे मार्ग से) यानी इतनी स्पष्ट शिक्षा की प्राप्ति के पश्चात् अगर अब भी ईमान न लायें, तो अब जो उनको विरोध है और जो शत्रुता या ज़िद है, वह केवल ज़िद, शत्रुता और विरोध की ही वजह से है। इस कारण नहीं कि सत्य के स्पष्ट करने में कोई कमी रह गई है या कोई भ्रम या सन्देह शेष रह गया है। अब जो वह दीन को नहीं समझते, तो उसका कारण यह है कि वह समझना ही नहीं चाहते।

५१५ पैग़म्बर अलैहिस्सलात वस्सलाम को सान्त्वना दी जा रही है कि आप दुश्मनों की भारी संख्या, उनकी तादाद की अधिकता, शक्ति और उनकी भीड़ से ज़रा भी चिन्तित न हों। यह हक़ और सच्चाई के अरि और दुश्मन आपके दीन को कदापि हानि न पहुँचा पायेंगे। अब अल्लाह आपका संरक्षक है— आयत में उम्मत के लिए सब्र और सान्त्वना का बड़ा सन्देश और सबक़ है कि दुश्मनों की भारी तादाद और विरोधियों की बड़ी संख्या से कदापि न घबरायें।

५१६ उस पर हर विरोध, चाहे वह छुपा हुआ हो या ज़ाहिर, रौशन है। **'अस्समीअ'** सुननेवाला उनके शब्दों और बातों का, उनके अक्षर और इबारत का, यानी जो कुछ उनकी ज़बानों पर है, उनकी बातचीत और व्याख्या सब अल्लाह पर रौशन हैं। 'अस्समी' वह है जो बड़ा सुननेवाला है और हर हल्की से हल्की आवाज़ को सुनता है, यद्यपि उसके पास सुनने के लिए कोई अज़ो यानी कान मौजूद नहीं हैं। **'अल्अ़लीम'** —जाननेवाला उनके दिलों के हालात और भेद, यानी उनके ज़ाहिर की तरह उनकी अन्तरात्मा को भी वह जानता है। उस सब कुछ जाननेवाले पर उनकी कुल कार्यवाहियाँ और साज़िशें सब उसके सामने खुली हुई हैं। **'अ़लीम'** फ़ेल (कर्म) के वज़न पर है— बढ़ाकर बयान किया गया है।

५१७ यानी उसके दीन का रंग, क़ुदरती दीन का रंग, जो सच्चाई वाले लोगों में ऐसा जम गया, जैसे कपड़े में रंग घुसकर जम जाता है। सम्बोधन ऊपर से यहूद और नसारा से चला आ रहा है। इन दोनों के यहाँ बड़ी महत्ता एक विशेष प्रकार के पवित्रता के नहान की थी जिसे बैपतिस्मा कहते हैं। इस्तिबाग़ भी कहते हैं। उन्हीं के तकनीकी शब्दों में कहा जा रहा है कि इस रस्मी इस्तिबाग़ में क्या रखा है। अस्ल पकड़नेवाली चीज़ तो तौहीद है।

५१८ (जिसका दीन ईमान के रंग को निखार देता है और कुफ़्र तथा गुमराहियों की गन्दगी को दूर कर देता है)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५१९ (और सारे ग़लत अक़ीदों, ग़लत तरीक़ों और ग़लत एवं झूठे माबूदों से इन्कार करते हैं)। 'नह़्नु' हम, यानी मुसलमान या उम्मत-मुस्लिम।

५२० यह सम्बोधन सभी ग़लत और गुमराह लोगों के लिए है, लेकिन तारतम्य में विशेष रूप से यहाँ यहूद और नसरानियों से ही सम्बोधन है। **'फ़िल्लाहि'** यानी अल्लाह के दीन के विषय में।

५२१ (तो कम से कम उसकी ज़ात तथा उसके गुणों के विषय में तो तुम्हें कोई सन्देह, भ्रम और ग़लतफ़हमी न रहनी चाहिए।) यानी ऐ अहल-किताब ! जब हमारे-तुम्हारे बीच परवरदिगार के निश्चय होने के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है, तो अव्वल तो उसकी तौहीद पर क़ायम रहना चाहिए और तौहीद में तीन भागों, ख़ुदा के बेटे होने के विचार और उसकी ओर से दूसरे विचारों से, जो ग़लत हैं, बिल्कुल बचना चहिए, दूसरे जब उसके उच्च गुणों पर ईमान है तो वह अपनी हिकमत और पालन-पोषण के विचारों से जिस नस्ल के जिस व्यक्ति को भी चाहे नबूवत और रिसालत प्रदान कर सकता है, वह हर प्रकार से मालिक है और पूर्ण अधिकार रखता है। इसराईली या ग़ैरइसराईली नस्ल का इजारा नहीं है।

५२२ (अपने अक़ीदों और अपनी इबादतों में हर प्रकार के शिर्क एवं गुमराहियों से पाक तथा स्वच्छ होकर।) रहे आमाल और कर्म, तो हमारे और अपने आमाल के फ़र्क़ का प्रभाव आख़िरत में तो तुम्हें भी दिखाई दे जायेगा। आज उस पर जितना चाहो परदा डाल दो। **'व नह़्नु लहू मुख़्लिसून'** यहाँ सम्बोधित (यहूद एवं नसारा) पर आपत्ति है कि हम तुम्हारी तरह नहीं हैं कि जो एक अल्लाह के कलाम में ग़ैरअल्लाह और उसकी इबादत में शिर्क की मिलावट कर देते थे।

५२३ यानी क्या तुम्हारा यह दावा है कि इन पैग़म्बरों, बड़ों और तुम्हारे पूर्वजों के अक़ीदे ख़ुदा की ज़ात और उसके सिफ़तों के विषय में इस्लाम और तौहीद के बजाय यहूदीयत और नसरानीयत के थे। **'तक़ूलून'**— 'तक़ूलून' सम्बोधन अहल-किताब और विशेष रूप से यहूद से है और सम्बोधन में डाँटने और सख़्ती करने का पहलू शामिल है। जितने नाम और निशान यहाँ आये हैं, उन पर हाशिए आयत १३६ के अन्तर्गत और उसके पूर्व बीत चुके हैं।

५२४ (इन बुज़ुर्गों के दीन और अक़ीदों के विषय में) यह सम्बोधित व्यक्तियों पर ताना और आपत्ति के रूप में है, वरना यह ज़ाहिर है कि अल्लाह के इल्म और उसके ज्ञान से किसी बन्दे का भी क्या मुक़ाबला ? और फिर इन्कार करनेवाले और काफ़िर बन्दों के ज्ञान और इल्म का।

५२५ (और अल्लाह का साक्ष्य यह है कि यह सब ख़ालिस तौहीद के माननेवाले थे।) क़ुर्आन के उतरने के समय यहूद में बड़े-बड़े आलिम और ज्ञानी मौजूद थे। उन सबको चैलेंज देकर एक उम्मी (Unle hered) की ज़बान से कहलाया जा रहा है कि तुम घटनाओं को तोड़-मोड़कर, सत्य का गला घोंटकर जो कुछ भी कहे जाओ। वाक़िआ और सत्य यह है कि यह सब बुज़ुर्ग ख़ालिस एक ख़ुदा के माननेवाले और तौहीद के प्रचारक हुए हैं। आज योरोप के बड़े-बड़े इतिहास के विशेषज्ञ, खोज और शोध करनेवाले, जो पुरातत्त्व की बातों पर विचार करते हैं, जो कुछ इन बुज़ुर्गों के दीन के विषय में कह रहे हैं, वह उसी क़ुर्आनी मतन का उल्लेख एवं अर्थ और उस उम्मी के लाये हुए कलाम की व्याख्या है।

५२६ (और वह गवाही है इस्लाम के दीन की सच्चाई की, इब्राहीम, इस्माईल, इस्हाक़ तथा याक़ूब के पूर्णरूपेण मोमिन होने और तौहीद के प्रचारक होने की और आख़िर ज़माने में एक सच्चे नबी के प्रकट होने की।) इस साक्ष्य को छुपानेवाले ज़ाहिर है कि अहल-किताब और विशेष रूप से यहूद के आलिम थे और यह साक्ष्य उनकी आसमानी पुस्तकों में सुरक्षित था और उनकी ईश्वरीय किताबों और लेखों में मौजूद था, जिसे वह छुपाये हुए थे।

५२७ (और वह समय आने पर उन्हीं के अनुसार तुमसे व्योहार करेगा।) निर्भय और निश्चिन्त न हो जाओ। वहाँ रत्ती-रत्ती की ख़बर है और वैसा ही मामला सामने आयेगा। वहाँ बड़ों के साथ नसबी (गोत्र का सम्बन्ध) और नसली सम्बन्ध कुछ भी फ़ायदा न पहुँचायेगा। इन्कार करनेवालों की अन्तरात्मा को जगाने की इससे बेहतर और प्रभावकारी विधि कोई नहीं कि अल्लाह के आलिमुलग़ैब होने (यानी ग़ैब की बातों का जाननेवाला) की बात ज़ेह्न के समक्ष बार-बार होगी और क़ुर्आन मजीद यही कराता रहता है।

५२८ (और केवल उनके नाम के साथ सम्बन्धित होने से, बिना अमल और अक़ीदे के, कदापि पर्याप्त न होगा।) **'तिल्क उम्मतुन्'** से मुराद हैं क़ौम इसराईल के बड़े पूर्वज, ख़ासकर उनके तीन बुज़ुर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यानी हज़रत इब्राहीम, इस्हाक़ और याक़ूब, जिनकी सन्तान होने पर इसराईलियों को हद से ज़्यादा नाज़ था। हाशिया न० ५०३ भी अवलोकित करें।

५२९ (आखिरत में) यानी न उनके अच्छे अमल से तुमको फ़ायदा पहुँचेगा और न तुम्हारे कुफ़्र और बुरे कर्मों से उनको हानि पहुँचेगी।

५३० यहूद की किताबों में आज तक यह शिक्षाएँ मौजूद हैं कि "जिस प्रकार अंगूर की जीवित और तरोताज़ा बेल एक बेजान सुतून और खम्भे के सहारे बढ़ती और फैलती रहती है, उसी प्रकार जीवित यहूदी अपने मरहूम और दिवंगत पूर्वजों और बड़ों के बलबूते पर परवान चढ़ता रहता है, और तीनों यहूदियों के बड़ों ने और उनके दूसरे बुजुर्गों ने और नेक लोगों ने, जो अच्छे कर्मों का अम्बार लगा दिया है, उसी से उनकी सन्तान को सामूहिक तथा व्यक्तिक रूप में बराबर हिस्सा प्राप्त होता रहेगा और इस प्रकार किसी व्यक्ति में चाहे कितनी ही कमज़ोरियाँ हों, उसकी नजात यक़ीनी है, आवश्यक है।" क़ुर्आन करीम इस "मौरूसी नजात" के विश्वास एवं अक़ीदे पर बराबर चोट करता जाता है। साथ ही हाशिया सं० ५०४ देखें। यह आयत अभी पहले गुज़र चुकी है। दुबारा बल देने हेतु लाई गई है।

(फ़ुटनोट सफ़ा १७३ से)

दिल बार-बार चाहता था कि अपने दादा हज़रत इब्राहीम के बनाये हुए खानए काबा को क़िब्ला बनायें, लेकिन अल्लाह का हुक्म अब तक यह नहीं हुआ था। आखिर मदीना आने के सोलहवें महीने ख़ुदा का हुक्म हुआ कि अब काबा को क़िब्ला बनाया जाये। तुरन्त आदेश पर अमल किया गया। काबा मदीने से ठीक दक्षिण में स्थित है और इस प्रकार यकायक मदीने के नमाज़ियों का रुख उत्तर से दक्षिण को फिर गया। बैतुलमुक़द्दस यहूद का क़िब्ला था। उसकी मन्सूखी का आदेश रसूल (स०) की ज़बान से यहूद को बहुत ही बुरा लगा। वह यूँ भी रसूल (स०) को अपने दीन का दुश्मन और उनकी जड़ खोदनेवाला समझने लगे थे। क़िब्ले के बदलने की इस नई सूचना को वह इसी सिलसिले की एक कड़ी समझने लगे और इस पर नाना प्रकार की आपत्तियाँ करने लगे। उनके साथी कुछ बेदीन और मुनाफ़िक़ भी हो गये। **'अस्सुफ़हाउ'** से यही लोग मुराद हैं। 'सुफ़हा' बहुवचन है 'सफ़ीह' का और 'सफ़ीह' के अर्थ हैं कम बुद्धि वाला या खराब बुद्धि वाला। यहाँ जो लोग ख़ुदाई आदेशों पर सवाल-जवाब करते थे, उन्हीं के लिए यह शब्द प्रयोग हुआ है। **सहीह बुख़ारी** में भी यहूद ही से मुराद ली गई है। ज्यादातर तफ़्सीर करनेवालों का यही खयाल है। कुछ रिवायतें मदीने के मुनाफ़िक़ों के विषय में भी हैं। बेहतर यह है कि यह आयत तमाम एतराज़ करनेवालों के लिए आम रखी जाये।

२ (बैतुलमुक़द्दस से) **'क़िब्लः'** वह मकान जिसके सामने मुँह करके नमाज़ पढ़ी जाये। यह आदेश सबसे ज्यादा नागवार यहूद को लगा। अब तक वह यह देखकर ख़ुश होते थे कि मुसलमानों का क़िब्ला भी वही है जो उनका है, अब उनसे यह ख़ुशी भी छिन गई। आयत से यह हक़ीक़त भी स्पष्ट होती है कि नमाज़ पहले ग़ैर काबा की तरफ़ पढ़ी जाती रही और उसके बाद दिशा खानए काबा नियत हुई। फ़क़ीहों ने अल्लाह की किताब से सुन्नत के नसख़ (मन्सूख होना) की मिसाल में इस हुक्म को भी पेश किया है। हुज़ूर बैतुलमुक़द्दस की ओर रुख तो अपनी मज़हबी सूझबूझ के भरोसे पर किये हुए थे, क़ुर्आन मजीद में इसका कोई हुक्म नहीं था। क़ुर्आन मजीद ने तो केवल उसे मन्सूख किया है।

३ (उनके जवाब में, ऐ हमारे पैग़म्बर !)

४ (और किसी खास दिशा या सिम्त में कोई पवित्रता नहीं है, उसके लिए सब बराबर हैं, वह जिधर और जिस चीज़ को भी चाहे नमाज़ के लिए रुख नियत कर दे। प्रश्न वास्तव में यह हो ही नहीं सकता।) एतराज़ करनेवालों को दिशा पर आपत्ति थी और अफ़सोस है कि तफ़्सीर करनेवाले भी इसी बहस में उलझ गये हैं। क़ुर्आन करीम इस आपत्ति को ही हटाता है और बार-बार कहता है कि किसी दिशा की क्या अहमीयत है। सारी दिशाएँ अल्लाह के निकट बराबर हैं। **'लिल्लाहि'** में 'ल' मिल्कीयत हेतु आया है। पूरब, पश्चिम सब अल्लाह की ही मिल्कीयत में हैं। सब उसी की पैदा की हुई चीजें हैं। यह दिशाओं की पूजा पर एक चोट है जो जाहिली क़ौमों का मज़हब रहा है। इस पर ऊपर हाशिया गुज़र चुका है। (पारः अव्वल, रुकूअ़ १४, आयत ११५)।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १७४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरा पारः सयक़ूलु

सूरतुल् - बक़रति आयत १४२ से २५२

سَيَقُولُ ۲   ١٧   البقرة ۲

سَيَقُولُ السُّفَهَآءُ مِنَ النَّاسِ مَا وَلّٰهُمْ عَنْ قِبْلَتِهِمُ الَّتِىْ
كَانُوْا عَلَيْهَا ؕ قُلْ لِّلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ؕ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى
صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۝ وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ
عَلَى النَّاسِ وَيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ عَلَيْكُمْ شَهِيْدًا ؕ وَمَا جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ
الَّتِىْ كُنْتَ عَلَيْهَآ اِلَّا لِنَعْلَمَ مَنْ يَّتَّبِعُ الرَّسُوْلَ مِمَّنْ يَّنْقَلِبُ عَلٰى
عَقِبَيْهِ ؕ وَاِنْ كَانَتْ لَكَبِيْرَةً اِلَّا عَلَى الَّذِيْنَ هَدَى اللّٰهُ ؕ وَمَا كَانَ اللّٰهُ
لِيُضِيْعَ اِيْمَانَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ۝ قَدْ نَرٰى
تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِى السَّمَآءِ ۚ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰهَا ۖ فَوَلِّ وَجْهَكَ
شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ ؕ وَ
اِنَّ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ
عَمَّا يَعْمَلُوْنَ ۝ وَلَئِنْ اَتَيْتَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ بِكُلِّ اٰيَةٍ مَّا تَبِعُوْا
قِبْلَتَكَ ۚ وَمَآ اَنْتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ ۚ وَمَا بَعْضُهُمْ بِتَابِعٍ قِبْلَةَ بَعْضٍ ؕ
وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَآءَهُمْ مِّنْ بَعْدِ مَا جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ اِنَّكَ اِذًا لَّمِنَ
الظّٰلِمِيْنَ ۝ اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَعْرِفُوْنَهٗ كَمَا يَعْرِفُوْنَ اَبْنَآءَهُمْ ؕ وَ
اِنَّ فَرِيْقًا مِّنْهُمْ لَيَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ۝ اَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ فَلَا
تَكُوْنَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِيْنَ ۝ وَلِكُلٍّ وِّجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيْهَا فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرٰتِ ؕ
اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يَاْتِ بِكُمُ اللّٰهُ جَمِيْعًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ۝

منزل ١

सयक़ूलुस्सुफ़हा'अु मिनन्नासि मा वल्लाहुम् अन् क़िब्लतिहिमुल्लती कानू अलैहा ᵀ क़ुल् लिल्लाहिल् - मश्‌रिक़ु वलमग़्‌रिबु ᵀ यह्दी मंय्यशा'अु इला सिरातिम् - मुस्तक़ीमिन् (१४२) व कज़ालिक जअ़ल्नाकुम् अुम्मतं-व्वसतल्लितकूनू शुहदा'अ अलन्नासि व यकूनर्रसूलु अलैकुम् शहीदन् ᵀ व मा जअ़ल्नल्-क़िब्लतल्लती कुन्त अलैहा' इल्ला लिनअ़्लम मंय्यत्तबिअ़ुर्रसूल मिम्मंय्यन्क़लिबु अला अक़िबैहि ᵀ व इन् कानत् ल कबीरतन् इल्ला अलल्लज़ीन हदल्लाहु ᵀ व मा कानल्लाहु लियुज़ीअ़ ईमानकुम् ᵀ इन्नल्लाह बिन्नासि ल रअूफ़ुर्रहीमुन् (१४३) क़द् नरा तक़ल्लुब वज्हिक फ़िस्समा'इ ज फ़ ल नुवल्लियन्नक क़िब्लतन् तर्ज़ाहा ᴮ फ़ वल्लि वज्हक शत्‌रल् - मस्‌जिदिल् - ह़रामि ᵀ व हैसु मा कुन्तुम् फ़ वल्लू वुजूहकुम् शत्‌रहू ᵀ व इन्नल्लज़ीन अूतुल्किताब ल यअ़्लमून अन्नहुल्ह़क़्क़ु मिर्रब्बिहिम् ᵀ व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा यअ़्मलून (१४४) व लइन् अतैतल्लज़ीन अूतुल्किताब बिकुल्लि आयतिम्मा तबिअ़ू क़िब्लतक ज व मा' अन्त बि ताबिअ़िन् क़िब्लतहुम् ज व मा बअ़्ज़ुहुम् बि ताबिअ़िन् क़िब्लत बअ़्ज़िन् ᵀ व लइनित्तबअ़्त अह्वा'अ हुम् मिम्बअ़्दि मा जा'अक मिनल्‌अिल्मि ला इन्नक इज़ल्लमिनज़्-ज़ालिमीन ᴺ ● (१४५) अल्लज़ीन आतैना - हुमुल्किताब यअ़्रिफ़ूनहू कमा यअ़्रिफ़ून अब्ना'अ हुम् ᵀ व इन्न फ़रीक़म्-मिन्हुम् ल यक्तुमूनल्-ह़क़्क़ व हुम् यअ़्लमून ● (१४६) अल्ह़क़्क़ु मिर्रब्बिक फ़ ला तकूनन्न मिनलमुम्तरीन (१४७) ★

● ब. ला. ● ब. बं. ★ ब. १७/१ आ ६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरा पारः सयक़ूलु

सूरतुल् - बक़रति आयत १४२ से २५२

अब मूर्ख लोग (अवश्य) कहेंगे[१] कि किस चीज़ ने इन (मुसलमानों) को (उस) क़िब्ले से, जिस पर वह अब तक थे[२], हटा दिया ? आप कह दीजिए[३] कि पूरब और पश्चिम सब अल्लाह की मिल्कीयत हैं[४]। वह जिसे चाहे[५], सीधी राह चला देता है[६]। (१४२) और उसी तरह हमने तुम्हें बना दिया[७] एक इन्साफ़ करनेवाली उम्मत[८], ताकि तुम गवाह रहो लोगों पर[९] और रसूल गवाह रहें तुम पर[१०]। और जिस क़िब्ले पर आप (अब तक) थे[११] उसे तो हमने इसीलिए रखा था कि हम पहचान लें रसूल का अनुसरण करनेवालों को, उलटे पाँव वापस चले जानेवालों से[१२]। और यह हुक्म बहुत नापसन्द है, मगर उन लोगों को नहीं जिन्हें अल्लाह ने राह दिखा दी है[१३]। और अल्लाह ऐसा नहीं कि खो जाने दे तुम्हारे ईमान को[१४]। और अल्लाह तो लोगों पर बड़ा स्नेह रखनेवाला है, बड़ा कृपालु है[१५]। (१४३) बेशक हमने देख लिया आपके मुँह का बार-बार आसमान की ओर उठना[१६], सो अवश्य आपको फेर देंगे उस क़िब्ले की तरफ़ जिसे आप चाहते हैं[१७], अच्छा अब कर लीजिए अपना चेहरा मस्जिदे-हराम की ओर[१८]। और तुम जहाँ कहीं भी हो, अपने चेहरे कर लिया करो उसी की तरफ़[१९]। और जिन लोगों को किताब मिल चुकी है, वह अवश्य जानते हैं कि वह (हुक्म) वास्तव में है उनके परवरदिगार की तरफ़ से[२०]; और अल्लाह बेख़बर नहीं उनकी कार्यवाहियों से[२१]। (१४४) और अगर आप उन लोगों के सामने, जिन्हें किताब मिल चुकी है[२२], सारी ही निशानियाँ ले आयें, (तब भी) यह आपके क़िब्ले की पैरवी न करेंगे[२३], और न आप उनके क़िब्ले की पैरवी करनेवाले हैं[२४]। और न वह आपस में एक दूसरे के क़िब्ले को माननेवाले हैं[२५]। और अगर (कहीं) आप उनकी इच्छा की पैरवी करने लगें[२६] बाद उसके कि आपके पास इल्म आ चुका है[२७], तो अवश्य ही आप (भी) ज़ालिमों में (गिने) जायेंगे[२८]। ● (१४५) जिन लोगों को हम किताब दे चुके हैं[२९], वह आपको पहचानते हैं उस तरह जैसे कि अपनी नस्ल को पहचानते हैं[३०]। और बेशक उनमें के कुछ लोग ख़ूब छुपाते हैं हक़ (सत्य) को, यद्यपि जानते होते हैं[३१]। ● (१४६) हक़ तेरे परवरदिगार की तरफ़ से, पस तू कहीं शक करनेवालों में कदापि न हो जाना[३२]। (१४७) ★

● व. ला. ● व. मं. ★ रु. १७/१ आ ६

---

१ [पूछने के लिए नहीं, बल्कि तंज़ (व्यंग्य) और एतराज करने की नीयत से] 'सयक़ूलु' में 'स' हो सकता है कि भविष्य के लिए हो और इसका अर्थ निकट भविष्य का हो, और यह भी हो सकता है कि केवल बल देने के लिए हो और अर्थ भूतकाल का दे। और चूंकि आयत एक खयाल के अनुसार क़िब्ले के परिवर्तन के पूर्व में नहीं उतरी है इसके बाद यह परिवर्तन हुआ है, अतः तफ़्सीर करनेवालों की एक टोली का विचार है कि यहाँ भूतकाल ही से मुराद है। उर्दू मुहावरे में इसकी मिसाल ऐसी होगी जैसे किसी बीती हुई घटना के विषय में कहा जाये कि हम तो जानते ही थे कि यह लोग ज़रूर आपत्ति करेंगे। और इसी से मिलता हुआ यह क़ौल भी है कि भूतकाल का अंश यहाँ उस आपत्ति के जारी रहने हेतु लाया गया है यानी यह लोग बराबर इस तरह कहते रहेंगे। ऐसी स्थिति में यह ठीक ही होगा, यदि आयत को एक सच्ची भविष्यवाणी या ग़ैबी बातों की सूचना की मिसाल में भी पेश किया जाये। बनी इसराईल के नबियों का क़िब्ला बैतुल्मुक़द्दस (बैतुल्मक़दिस भी सही है बल्कि ज़्यादा सही यही है) था। जब तक रसूलुल्लाह (स०) मक्के में रहे उसी की ओर मुँह करके नमाज़ जारी किये रहे, बल्कि जब मदीने की हिजरत करके गये तो भी उसी क़िब्ले को क़ायम रखा। बैतुल्मुक़द्दस मदीने के उत्तर में है। आपका

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १७१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १७१ से)

५ (और उसका चाहना हमेशा हिकमत के नियमों के अन्तर्गत ही होता है।) **'मंय्यशा'अु'** यानी क़ानून-मशीयत के अनुसार और उसी के अन्तर्गत (मशीयत—हिकमत)। मशीयत के अन्तर्गत सारी दुनियावी मस्लहतें आ गईं।

६ (और उसे बिना किसी प्रश्न के रसूल या समय के सबसे बड़े हकीम, जो अल्लाह की बातों को समझते हैं, उनका कहना मानने पर आमादा करता है।) फ़क़ीहों और तफ़्सीर करनेवालों ने कहा है कि आयत से इस हक़ीक़त पर भी रौशनी पड़ गई कि क़ुर्आन दर्जा ब दर्जा उतरा है और उसके आदेश विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे हैं।

७ (ऐ मुसलमानो!) **'व कज़ालिक'** इसी प्रकार, यानी एक मसले पर ही मौक़ूफ़ (बरखास्त) नहीं, हर मामले में।

८ यानी ऐसी उम्मत जो हर एतबार और हर स्तर से बड़ी एतिदाल वाली (मध्यम राह पर चलने वाली हो) हो, हर टेढ़ेपन और कमी तथा ज़ियादती से पाक और दरमियानी राह पर सन्तुलित ढंग से चलनेवाली हो। **'वसतन्'** अरबी भाषा में यह शब्द खास प्रशंसा और बड़ाई करने के लिए आता है। अर्थ के विचार से यह शब्द तमाम अच्छी आदतों का समूह है, यानी ऐसी उम्मत जो सारी आत्मिक (रूहानी), नैतिक (अख़्लाक़ी) मूल्यों को प्रदर्शित करे। हदीस-नबवी में **'वसत्'** का अर्थ **'अ़द्ल'** यानी न्याय है। आयत से यह फ़िक़्ह का बिन्दु भी निकाला गया है कि उम्मत की राय एकत्रित होकर स्वयं एक हुज्जत है (निर्णय है और सही फ़ैसले का तर्क है)। आयत से यह तर्क दिया गया है कि उम्मत-मुहम्मदी भलाई और न्याय के लिए है, परन्तु यह भी कहा गया है कि यह गुण तो अस्थायी है और अपने अस्तित्व के लिए हर व्यक्ति में स्थायी प्रमाण का मुहताज होगा, यानी हर व्यक्ति को स्वयं प्रमाण देना होगा।

९ इस्लामी मिल्लत व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप में दोनों हैसियतों से सारी दुनिया के लिए एक नमूना तैयार की गई थी। सृष्टि की हर उम्मत को इसी नमूने में ढलना और इसी स्तर पर पूरा उतरना चाहिए था, न कि यह कि उम्मत स्वयं अपने को भूलकर हर मुशरिक, नास्तिक, बेधर्म उम्मत का अनुसरण करने में लग जाये। इस आयत से उम्मत-इस्लामी की कमाल दर्जे की बड़ाई साबित हो रही है। **'शुहदा'अ'** से यह चेतावनी भी निकल रही है कि मुसलमानो को नैतिक पतन और हर प्रकार की गुनाह की बातों से बचे रहना चाहिए, वरना फिर गवाही देने के योग्य ही कहाँ रह जायेंगे और दूसरों के मुक़ाबले में हुज्जत कैसे हो सकेंगे।

१० जिस प्रकार दुनिया की हर उम्मत के लिए नमूना और मेयार का काम देने के लिए इस्लामी उम्मत है, उसी प्रकार स्वयं उस उम्मत के लिए मेयार का काम देने के लिए रसूलुल्लाह (स०) की मुबारकज़ात है। हुज़ूर की वफ़ात की सूचना पाकर हज़रत उमर (दूसरे ख़लीफ़ा) का बेखुद हो जाना एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है। सीरत इब्ने हुश्शाम में ख़ातमे के क़रीब स्वयं हज़रत उमर की ज़बान से यह रिवायत दर्ज है कि उस समय मुझको भ्रम इस आयत से हुआ था। मैं इससे यह समझे हुए था कि आप क़यामत तक ज़िन्दा रहेंगे और उस रोज़ अपनी उम्मत के आमाल पर गवाही देंगे। "इसका कारण यह था कि मैं इस आयत को पढ़ा करता था। **'व कज़ालिक जअ़ल्नाकुम् अुम्मतंव्वसतल्लितकूनू शुहदा'अ अ़लन्नासि व यकूनर्रसूलु अ़लैकुम् शहीदन्।'** और मैं यह समझता था कि हुज़ूर अपनी उम्मत में क़यामत तक जीवित रहकर उनके आमाल के गवाह होंगे, पस इसी कारण मैंने उस रोज़ यह बात की थी।" (सीरत इब्ने हुश्शाम)।

११ (और उस पर भी अल्लाह की आज्ञा से ही थे) यानी बैतुलमुक़द्दस— इस सिलसिले में वह अच्छी तरह ध्यान में रहे कि इस्लाम में क़िब्ला, चाहे बैतुलमुक़द्दस हो या काबा, हर हाल में एक नियत एवं विशेष मकान का नाम है, चाहे किसी स्थान से किसी ओर पड़े, न कि किसी नियत दिशा या सिम्त का, जैसा कि मुशरिकों और मसीहियों के यहाँ है। इस क़िब्ले पर आप मदीने में आकर सोलह-सत्तरह महीने तक क़ायम रहे थे।

१२ और आज्ञाकारियों को नाफ़र्मानों से अलग कर लें। **'लिनअ़लम'** इल्म के माने यहाँ पहचानना और तमीज़ करने के हैं। अल्लाह के इल्म में तो हर घटना पहले से ही मौजूद है, लेकिन सृष्टि में जब तक कोई वाक़िआ हो न ले उसको वाक़िआ नहीं कहा जा सकता। क़ुर्आन मजीद में जहाँ-जहाँ यह मज़मून

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आया है, मुराद उसके ज़ाहिरी तौर पर घटित होने से है। इल्म यहाँ वाक़िआ के होने के मानी में हज़रत अलवी के ज़र्ये वर्णित हुआ है।

१३ (और उनको रसूल का कहना मानने और उनकी पैरवी करने का शौक़ है।) **'व अिन् कानत्'** यानी यही हुक्म क़िब्ले को बदलने का। बाज़ आलिमों ने यहीं से यह बात निकाली है कि क़िब्ला वाले जितने भी हैं वह सही राह पर हैं। क़िब्ले पर क़ायम रहना एक बड़ी परीक्षा से गुज़रना है, और जो क़िब्ले वाले हैं वह काफ़िर नहीं हो सकते, गोया क़िब्ले का एक होना हिदायत पानेवालों और गुमराहों के बीच फ़र्क़ पैदा करने का एक मेयार है। आयत से रसूल (स०) के सहाबियों की प्रशंसा का भी पहलू निकलता है कि उन्होंने बिना किसी पूछगछ के केवल रसूल (स०) की पैरवी में तुरन्त नमाज़ में अपना मुँह उत्तर से दक्षिण को फेर लिया।

१४ (और ईमानी आमाल को) बाज़ मुसलमानों को यहूद के बहकाने से या स्वयं यह भ्रम पैदा हो गया था कि जब अस्ल क़िब्ला खानए काबा है और बैतुलमुक़द्दस केवल एक अस्थायी क़िब्ला था, तो उस रुख पर जितनी नमाज़ें पढ़ी गईं वह व्यर्थ हो गईं, और जो मुसलमान इस नये आदेश से पहले वफ़ात पा चुके, वह तो शुरू से घाटे में रहे, जवाब उन्हीं को दिया जा रहा है कि यह भ्रम कैसा? क़िब्ला कोई भी हो, बदला तो आदेश को मान लेने का है। जिन लोगों ने बैतुलमुक़द्दस की ओर नमाज़ पढ़ी, उन्होंने भी हर दशा में आज्ञापालन ही तो किया। उनको भी पूरा बदला मिलेगा। **'ओमानकुम्'** ईमान से इस तारतम्य में खुली हुई मुराद उस ईमानी अमल या नमाज़ से है, जो उस क़िब्ला की ओर नमाज़ पढ़ी गई, जो मन्सूख हो गया। ईमान उसे इस विचार से कहा गया कि वह ईमान के लिए एक अनिवार्य वस्तु है। **'ओमानकुम्'** यहाँ सीधे जीवित मुसलमानों से सम्बोधन है, परन्तु ईमान उनका नहीं, बल्कि उनका यहाँ मुराद है जो मृत्यु पा चुके हैं।

१५ चुनांचे दूसरे आदेशों की तरह यह क़िब्ला बदलने का आदेश भी यहाँ सारा उसकी मेहरबानी, उसके स्नेह और रहमत का ही नतीजा है। खास मोमिनों और उन लोगों पर, जो फ़र्मांबरदार एवं आज्ञाकारी हैं, उन पर तो उसकी मेहरबानी है ही, बाक़ी यहाँ पर सभी बन्दों के साथ उसकी आम कृपा का वर्णन है और इस मज़मून की आयतें क़ुर्आन मजीद में अनेक हैं। भाषा के विशेषज्ञों का बयान है कि राफ़त (मेहरबानी) का दर्जा रहमत (दया) से बढ़ा हुआ है।

१६ ('वही' की प्रतीक्षा में, ऐ पैग़म्बर!) रसूल (स०) को सही दीनी जोश के अन्तर्गत इसका विश्वास था कि अब, जब कि इमामत बनी इसराईल से छिन चुकी है, तो उनका क़िब्ला भी उम्मत का क़िब्ला नहीं रह सकता। क़िब्ले के बदलने का हुक्म अब आकर रहेगा और वही के फ़रिश्ते की प्रतीक्षा में आपकी नजर बार-बार आसमान की ओर उठकर रह जाती थी। यहाँ उसी हालत का बयान है। अल्लाह तआला यद्यपि किसी दिशा का पाबन्द नहीं, किसी मकान से सीमित नहीं, फिर भी उसकी विशेष तजल्ली (प्रकाश) का सम्बन्ध आसमान से क़ुर्आन में किया गया है और हर ऐसे ताज़ीम (आदर) तथा सम्मान के अवसर आसमान का नाम लिया गया है, जैसे वही, रहमत और वर्षा के सिलसिले में। इसीलिए खोज करनेवालों ने लिखा है कि घबराहट और दुआ के वक़्त आसमान की ओर मुँह करना दुआ के क़बूल होने की वजह हो सकता है, बल्कि इसी आला सम्बन्ध के कारण विश्वास का कमाल होता है और दिल की तसल्ली में सहायता मिलती है। 'नरा' से इशारा यह भी हो गया कि आप हैरान और बेचैन क्यों होते हैं! हमने खूब देख लिया है आपके दिली तअल्लुक़ को और इसमें रसूल (स०) के लिए पूरी तस्कीन।

१७ यानी खानए खुदा तथा इब्राहीमी क़िब्ले की ओर। यह वादा है क़िब्ले के बदलने का यहाँ सीधे यह फ़र्माने के स्थान पर कि हम काबे की तरफ़ आपको फेर देंगे, यह फ़र्माया गया है कि हम उसे आपका क़िब्ला क़रार दे देंगे, जिसे आप खुद क़िब्ला बनाना चाहते हैं। इससे रसूल (स०) की कमाल बुलन्दी और बड़ाई और यह कि आपकी दुआ कहाँ तक क़बूल होती थी, प्रकट होती है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि 'अहल-तरीक़त' के यहाँ जो एक तकनीकी शब्द मुरादीयत तथा महबूबीयत हेतु आया है, उसकी वास्तविकता इसी आयत में है। क्या ठिकाना है इस मर्तबे की बुलन्दी का कि मौला खुद बन्दे की इच्छा को जानना चाहे! इससे ऊँचा रुतबा विचार में भी नहीं लाया जा सकता! इक़बाल ने इसी स्थान की व्याख्या की है— ''खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीर से पहले, खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है?'' **'फ़ल नुवल्लियन्नक'** के दूसरे अर्थ यह भी हैं कि हम आपको उसका मालिक और हाकिम बना देंगे और उस पर क़ब्ज़ा करा देंगे। अभी वादा हुआ था काबे को क़िब्ला बना देने का, अब हुक्म हो गया क़िब्ला बदलने का। **'अल्वज्हु'** —शाब्दिक अर्थ हैं चेहरे के, लेकिन हुक्म में कुल जिस्म आता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१८ **'अल्मस्जिदुल्-हरामि'** आदर और सम्मान वाली मस्जिद का अर्थ है मक्के की वह शान वाली मस्जिद, जिसके भीतर खानए काबा स्थित है। खानए काबा बहुत ही संक्षिप्त इमारत का नाम है। मदीनावालों या और कहीं वालों के लिए इसकी दिशा का नियत करना कठिन था, अतः उम्मत की आसानी के लिए एक बड़ी इमारत का नाम ले दिया गया। खोज करनेवालों के लिए यहाँ मस्जिदे-हराम का अर्थ काबा ही है। और इमाम मालिक का यह बयान है कि मस्जिदे-हराम सारी दुनिया की क़िब्ला है और खानए काबा (काबा का भवन) उस मस्जिद का क़िब्ला है। मस्जिदे-हराम या हरम शरीफ़ की मौजूदा इमारत का प्रथम नक़्श खलीफ़ा मेहदी अब्बासी के समय का है। बाद के खलीफ़ा और बादशाह इसमें बराबर इज़ाफ़ा (बढ़ोतरी) करते रहे, खासकर तुर्क बादशाहों ने। मौजूदा रूप सुल्तान सलीम सानी (१५७७ ई० में देहान्त हुआ) के समय से लगभग स्थिर है। सहन की चौड़ाई ६०० फ़िट बयान की गई है। अनेक बड़े-बड़े आलीशान विशाल दालान चारों ओर इसके अतिरिक्त हैं। प्रवेश के ४१ फ़ाटक हैं, मीनार ६ हैं और गुम्बद, गुमज़ियों की संख्या १५० से ज्यादा है। एक दूसरे बयानानुसार उत्तरी-पश्चिमी चौड़ाई ५४५ फ़िट है और दक्षिणी-पूर्वी ५५३ फ़िट, उत्तरी-पश्चिमी ३६० फ़िट और दक्षिणी तथा पश्चिमी ३६४ फ़िट। **'शत्र'** से अर्थ है मस्जिदे-हराम की दिशा में या उसके रुख पर, न कि ठीक उसके सामने, क्योंकि इसका कार्यान्विन दूरदराज़ के इलाक़ों में सम्भव ही नहीं है। फ़क़ीहों ने लिखा है कि नमाज़ में जो क़िब्ले के सामने रहना फ़र्ज़ है, वह सीने का है, चेहरे का नहीं, वह सुन्नत है। नमाज़ से बाहर होना केवल उसी समय मुमकिन है, जब चेहरे के साथ सीना भी काबे की तरफ़ से फिर जाये, सिर्फ़ गरदन फिर जाने से नमाज़ खराब नहीं होती। **'शत्रल्-मस्जिदिल्-हराम'** से मालिकयों ने यह दलील दी है कि नमाज़ी की नज़र अपने सामने की ओर रहनी चाहिए। इमाम हनीफ़ा और शाफ़िई ने और अहमद ने अपनी फ़िक़्ह में लिखा है कि नज़र सज्दा की जगह पर जमी रहनी चाहिए।

१९ (नमाज़ की हालत में) सम्बोधन सारे मुसलमानों से है। अभी-अभी रसूल (स०) को आदेश हुआ है कि अपनी पसन्द के क़िब्ले की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ा कीजिये। अब आम आदेश स्पष्टता के साथ सारी उम्मत को हो रहा है। **'हैसु मा कुन्तुम्'** से फ़क़ीहों ने यह बात निकाली है कि नमाज़, इन्सान कहीं भी हो काबे की ओर रुख करना नमाज़ में फ़र्ज़ है।

२० यहूद के बड़ों और आलिमों को अपने यहाँ की रिवायतों और लेखों के आधार पर अच्छी तरह मालूम था कि आखिरी नबी (स०) का क़िब्ला वही होगा जो इब्राहीम खलीलुल्लाह का रहा है और वही हक़ीक़ी क़िब्ला है। बैतुल्मुक़द्दस का क़िब्ला होना अस्थायी है। **'अन्नहु'** में सर्नाम से मुराद यही क़िब्ले का बदलना है। **'मिर्रब्बिहिम्'** के प्रतिबन्ध ने इस सच्चाई को और स्पष्ट कर दिया कि काबे के सामने होना रसूलुल्लाह (स०) का अपनी ओर से नहीं, बल्कि अल्लाह का हुक्म है।

२१ इन शब्दों के साथ यह सच्चाई भी आ गई कि अल्लाह अपने बन्दों की कार्यवाहियों की पूछगछ करता रहता है और अपराधियों की सज़ा देने पर उसे अधिकार है।

२२ यानी अपनी पैग़म्बरी के सारे मोजिज़े और दलीलें भी। **'अल्लज़ीन अूतुल्किताब'** से मुराद यहूद हैं।

२३ (यह हद है उनकी दुश्मनी, जलन, पक्षपात और ज़िद तथा हठधर्मी की। अतः आपका उनकी आपत्तियों की ओर ध्यान करना ही व्यर्थ है।)

२४ (इसलिए कि इसराईल की इमामत के खात्मे पर आपको एक स्थायी, विशेष प्रकार का विश्वव्यापी क़िब्ला प्रदान हो चुका है और यहूद तथा नसारा को आपकी तरफ़ से हमेशा के लिए निराश हो जाना चाहिए।)

२५ चुनांचे यहूद का क़िब्ला आज तक है कल बैतुलमुक़द्दस है, और नसारा किसी इमारत को नहीं बल्कि पूरब की दिशा को क़िब्ला बनाये हुए हैं, और कोई तअज्जुब नहीं कि उनके भीतर और भी मतभेद हों। खुदा का शुक्र है कि हमारे पुराने तफ़्सीर करनेवाले यहूद तथा नसारा के क़िब्लों के फ़र्क़ से वाक़िफ़ थे।

२६ (क़िब्ले के विषय में यद्यपि नबवी पवित्रता स्वयं ही इस बात के खिलाफ़ है) अहल-किताब की पैरवी करना तो बिल्कुल मना है, लेकिन क़िब्ला जैसी बुनियादी बात में उनकी पैरवी करना गुनाह नहीं, कुफ़्र है।

२७ यानी वह इल्म जो 'वही' से साबित हो। क़ुर्आनी भाषा में **'अल्‌अिल्म'** का अर्थ हक़ीक़ी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इल्म होता है यानी जो 'वही' के माध्यम से प्राप्त हो। दुनियावी इल्म की कोई क़िस्म नहीं। फ़क़ीहों ने लिखा है कि आयत में उन लोगों को कड़ाई के साथ यह सीख दी गई है, जो सही इल्म होने पर भी अपनी इच्छा की पैरवी करते हैं।

२८ अल्लाह के क़ानून और विधान में किसी के लिए विशेष रिआयत नहीं है, यहाँ तक कि रसूलों और नबियों के लिए भी नहीं। मानव के स्वभाव को देखते हुए उनमें भी गुनाह करने की क्षमता वैसी ही होती है जैसी और मनुष्यों में, यह और बात है कि ईश्वरीय कृपा उनको हर समय और हर दशा में ग़लती, गुनाह और पापों से सुरक्षित रखकर निर्दोष एवं मासूम बनाये रखती है। इमाम राज़ी ने यहीं से यह बात निकाली है कि आलिम के लिए ग़ैरआलिम की अपेक्षा अधिक ताड़ना है।

२९ साधारण (उ़मूम) शब्द में मसीही भी आ जाते हैं, परन्तु विशेषता के साथ यहाँ यहूदी मुराद हैं। तौरेत और पुरातन किताबों को मसीही भी मानते हैं। आलिमों ने यह इशारा किया है कि इस अवसर पर **'आतैना-हुमुल्किताब'**, **'ऊतुल्किताब'** से कहीं अधिक सारगर्भित है।

३० यानी ख़ूब अच्छी तरह बिना किसी सन्देह और भ्रम के। अर्थ यह हुआ कि पिछले लेखों में एक आख़िरी ज़माने के नबी के आने के विषय में भविष्यवाणियाँ इस स्पष्टता के साथ दी हुई हैं कि यहूद को आपको पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। वह जिस प्रकार इसराईली नबियों को पहचान लेते थे, ठीक उसी प्रकार आपको पहचान सकते हैं। **'अब्ना'अ हुम्'** का शाब्दिक अर्थ अपने लड़कों के हैं, परन्तु सर्नाम 'हुम्' का अर्थ व्यक्ति और लोग नहीं है, बल्कि क़ौम यहूद और इसराईली नस्ल सामूहिक रूप में, यानी इसराईली लड़के और उनकी सन्तान। **'अब्ना'अ'** का शब्द सन्तान से विशाल अर्थ रखता है। यह हमेशा अस्ली बेटों के सम्बन्ध में नहीं आता, बल्कि स्वाभाविक रूप में जिन-जिन पर बेटे होने का अर्थ लागू हो सकता है, उन सब पर हावी है। **'यअ़रिफ़ूनहू'** में सर्नाम **'हू'** का क्या संकेत है? आलिमों का विचार है कि बैतुल्हराम को क़िब्ला के रूप में नबियों के द्वारा पहचाना जाना है। अतः तफ़्सीर इब्ने जरीर में इब्ने अब्बास सहाबी से लेकर क़तादा इब्ने ज़ैद, सदी, इब्ने जरीह ताबेई के भी क़ौल इसी अर्थ में नक़्ल हुए हैं। आख़िरी लोगों और मध्य ज़माने के लोगों में इसी अर्थ पर इत्तिफ़ाक़ है और उनका मत यही है कि अर्थ ज़ात-रिसालत से है और इसी की दलीलें अधिक हैं और इसका प्रमाण भी ताबेईन से मिल जाता है। **'हू'** ज़ाहिर है कि सर्नाम है अनुपस्थितों के लिए, लेकिन उर्दू में बड़े सम्मान के अवसर पर "वह" के बजाय उपस्थित "आप" लाते हैं।

३१ यहूद और दूसरे विरोधियों द्वारा सत्य को छुपाना जान-बूझकर होता था। उन्हें कोई मजबूरी, भ्रम या ग़लतफ़हमी नहीं थी। वह जानकर सच्चाई पर परदा डालते थे। **'अल्हक़्क़'** से मुराद यहाँ रसूलुल्लाह (स०) का वह ब्योरावार और पूर्ण परिचय है, जो तौरेत और दूसरी इल्हामी किताबों में मौजूद है। दूसरा अर्थ क़िब्ले के बदले जाने के हुक्म से भी लिया गया है। **'व हुम् यअ़लमून'** इस टुकड़े से यह भी स्पष्ट हो गया कि यह इन्कार करनेवाले जाहिल और साधारण व्यक्ति नहीं, बल्कि यहूद के आलिम और उनके बड़े थे।

३२ (ऐ सम्बोधित लोगो!) आयत का यह भाग बात पर बल देने के लिए है, यानी यहाँ जो कुछ बयान हो रहा है चाहे वह रसूल (स०) की रिसालत से सम्बद्ध हो या क़िब्ले के बदलने से, बहरहाल यह अल्लाह का ही कलाम है और कदापि ऐसा नहीं है कि उसकी ओर ध्यान न दिया जाये या कम ध्यान दिया जाये।

(फ़ुटनोट सफ़ा १७९ से)

बढ़ो और इस ख़ामख़याली में न पड़े रहो कि सभी दीनों का क़िब्ला एक हो जाये। **'ख़ैरात'** बहुवचन है ख़ैर का। विशाल और आम अर्थ है, अल्लाह की रज़ामन्दी और शरा के अनुसार अमल। आयत में हुक्म उन्हीं की तरफ़ बढ़ने का है। अल्लाहवालों ने कहा है कि हर समय जो चीज़ उस चीज़ के लिहाज़ से बेहतर और भलाई की हो, उसकी ओर बढ़ना ही भलाई है। नमाज़-फ़र्ज़ का अदा करना अव्वल समय में इसी आयत से तफ़्सीर करनेवालों ने निकाला है। उसके आगे फ़क़ीहों ने प्रश्न उठाया है कि एक ओर नमाज़ का अव्वल समय है और दूसरी ओर प्रतीक्षा करने में जमाअत मिल रही है, तो प्राथमिकता किसको है? जवाब यह दिया गया कि जमाअत को।

३५ [और तुम्हारी नमाज़ों में वहदत (एकता) पैदा कर देगा] सारी उम्मत का एक क़िब्ला एक

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १८० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व लि कुल्लिव्विज्हतुन् हुव मुवल्लीहा फ़स्तबिक़ुल्-ख़ैराति त ● अैन मा तकूनू यअ्ति बिकुमुल्लाहु जमीअन् त अिन्नल्लाह अला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन् (१४८) व मिन् हैसु ख़रज्त फ़ वल्लि वज्हक शत्रल्-मस्जिदिल्-हरामि त व अिन्नहू लल्हक़्क़ु मिर्रब्बिक त व मल्लाहु बि ग़ाफ़िलिन् अम्मा तअ्मलून (१४९) व मिन् हैसु ख़रज्त फ़ वल्लि वज्हक शत्रल्-मस्जिदिल्-हरामि त व हैसु मा कुन्तुम् फ़ वल्लू वुजूहकुम् शत्रहू ला लिअल्ला यकून लिन्नासि अलैकुम् हुज्जतुन् क़ ला अिल्लल्लज़ीन ज़लमू मिन्हुम् क़ फ़ ला तख़्शौहुम् वख़्शौनी क़ व लि अुतिम्म निअ्मती अलैकुम् व लअल्लकुम् तह्तदून ला ∴ (१५०) कमा अर्सल्ना फ़ीकुम् रसूलम्-मिन्कुम् यत्लू अलैकुम् आयातिना व युज़क्कीकुम् व युअल्लिमु-कुमुल्-किताब वल्हिक्मत व युअल्लिमुकुम् मा लम् तकूनू तअ्लमून त ∴ (१५१) फ़ज़्कुरूनी अज़्कुर्-कुम् वश्कुरूली व ला तक्फ़ुरूनि (१५२) ★ या अय्युहल्लज़ीन आमनुस्तअीनू बिस्सब्रि वस्सलाति त अिन्नल्लाह मअस्साबिरीन (१५३) व ला तक़ूलू लिमंय्युक़्तलु फ़ी सबीलिल्लाहि अम्वातुन् त बल् अहूया अुंव्व लाकिल्ला तश्अुरून (१५४) व ल नब्लुवन्नकुम् बि शैअिम्-मिनल्ख़ौफ़ि वल्जूअि व नक़्सिम्मिनल्-अम्वालि वल्अन्फ़ुसि वस्समराति त व बश्शिरिस्साबिरीन ला (१५५) अल्लज़ीन अिज़ा असाबत्-हुम् मुसीबतुन् ला क़ालू अिन्ना लिल्लाहि व अिन्ना अिलैहि राजिअून त (१५६) अुलाअिक अलैहिम् सलवातुम्-मिर्रब्बिहिम् व रह्मतुन् क़िफ़ व अुलाअिक हुमुल्मुह्तदून (१५७) अिन्नस्सफ़ा वल्मर्वत मिन् शआअिरिल्लाहि ज फ़ मन् हज्जल्बैत अविअ्तमर फ़ ला जुनाह अलैहि अंय्यत्तव्वफ़ बिहिमा त व मन् ततव्वअ ख़ैरन् ला फ़अिन्नल्लाह शाकिरुन् अलीमुन् (१५८)

● व. न बी स.

∴ मु. ख़ि बु ता ख़. ३

★ रु. १८/२ आ ५

سیقول ٢ ١٨ البقرة ٢

وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَاِنَّهٗ لَلْحَقُّ
مِنْ رَّبِّكَ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝ وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ فَوَلِّ
وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ
شَطْرَهٗ ۙ لِئَلَّا يَكُوْنَ لِلنَّاسِ عَلَيْكُمْ حُجَّةٌ ۙ اِلَّا الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْهُمْ ۗ
فَلَا تَخْشَوْهُمْ وَاخْشَوْنِيْ ۗ وَلِاُتِمَّ نِعْمَتِيْ عَلَيْكُمْ وَلَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝
كَمَآ اَرْسَلْنَا فِيْكُمْ رَسُوْلًا مِّنْكُمْ يَتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِنَا وَيُزَكِّيْكُمْ وَ
يُعَلِّمُكُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُعَلِّمُكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ۝
فَاذْكُرُوْنِيْٓ اَذْكُرْكُمْ وَاشْكُرُوْا لِيْ وَلَا تَكْفُرُوْنِ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوا اسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ۝ وَلَا
تَقُوْلُوْا لِمَنْ يُّقْتَلُ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتٌ ؕ بَلْ اَحْيَآءٌ وَّلٰكِنْ لَّا
تَشْعُرُوْنَ ۝ وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوْعِ وَنَقْصٍ مِّنَ
الْاَمْوَالِ وَالْاَنْفُسِ وَالثَّمَرٰتِ ؕ وَبَشِّرِ الصّٰبِرِيْنَ ۝ الَّذِيْنَ اِذَآ
اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ ۙ قَالُوْٓا اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّآ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ
عَلَيْهِمْ صَلَوٰتٌ مِّنْ رَّبِّهِمْ وَرَحْمَةٌ ۟ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُوْنَ ۝
اِنَّ الصَّفَا وَالْمَرْوَةَ مِنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنْ حَجَّ الْبَيْتَ اَوِ
اعْتَمَرَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ اَنْ يَّطَّوَّفَ بِهِمَا ؕ وَمَنْ تَطَوَّعَ خَيْرًا ۙ فَاِنَّ
اللّٰهَ شَاكِرٌ عَلِيْمٌ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْتُمُوْنَ مَآ اَنْزَلْنَا مِنَ الْبَيِّنٰتِ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और हर एक के लिए कोई रुख़ होता है जिधर वह ध्यान करता है[३३], सो तुम नेकियों की तरफ़ बढ़ो[३४]। ● तुम जहाँ कहीं भी होगे, अल्लाह तुम सबको पा लेगा[३५]। बेशक अल्लाह हर चीज़ पर अधिकार रखता है[३६]। (१४८) और आप जिस स्थान से भी (बाहर) निकलें, अपना मुँह मस्जिदे-हराम की तरफ़ मोड़ लिया करें[३७], और यह आपके परवरदिगार की तरफ़ से एक सच्ची बात है[३८]। और अल्लाह उससे बेख़बर नहीं, जो तुम कर रहे हो[३९]। (१४९) और आप जिस जगह से भी (बाहर) निकलें, अपना मुँह मस्जिदे-हराम की तरफ़ मोड़ लिया करें[४०], और तुम लोग (भी) जहाँ कहीं हो अपना मुँह उसकी तरफ़ मोड़ लिया करो[४१]; ताकि लोगों को तुम्हारे मुक़ाबले में हुज्जत न रह जाये[४२], सिवाय उन लोगों के जो उनमें से ज़ालिम हैं[४३]; सो तुम उनसे न डरो[४४] बल्कि (केवल) मुझ ही से डरो[४५], ताकि मैं अपना इनआम तुम पर पूरा करूँ[४६] और ताकि तुम राह पर कायम रहो[४७], ∴ (१५०) उसी तरह जिस प्रकार हमने तुम्हारे मध्य में एक रसूल तुम्हीं में से भेजा[४८], जो तुम्हारे समक्ष हमारी आयतें पढ़ता है और तुम्हें पाक करता है[४९] और तुम्हें किताब और हिकमत की तालीम देता है और तुम्हें उसकी तालीम देता है[५०] जो तुम नहीं जानते थे[५१], ∴ (१५१) सो तुम मुझे याद करते रहो[५२], मैं तुम्हें याद करता रहूँगा[५३], और मेरी शुक्रगुज़ारी करते रहो और मेरी नाशुक्री न करो[५४]। (१५२) ★

ऐ ईमानवालो ! सब्र और नमाज़ से मदद चाहो[५५]। बेशक अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है[५६]। (१५३) और जो अल्लाह की राह में क़त्ल हो जायें, उन्हें मुर्दा न कहो बल्कि वह ज़िन्दा हैं[५७], अलबत्ता तुम समझ नहीं सकते[५८]। (१५४) और हम तुम्हारी परीक्षा करके रहेंगे कुछ डर और भूख से और माल और जान से और फलों के नुक़्सान से[५९]। और आप सब्र करनेवालों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिए[६०]। (१५५) कि जब उन पर कोई मुसीबत आ पड़ती है, तो वह कहते हैं[६१], बेशक हम अल्लाह ही के लिए हैं और बेशक हम उसी की तरफ़ वापस होनेवाले हैं[६२]। (१५६) यही लोग तो वह हैं कि उन पर मेहरबानियाँ होंगी उनके परवरदिगार की तरफ़ से और रहमत (भी), और यही लोग रास्ता पाये हुए हैं[६३]। (१५७) सफ़ा तथा मर्वः बेशक अल्लाह की यादगारों में से हैं[६४]। सो जो कोई बैतुल्लाह (अल्लाह का घर) का हज करे या उम्रः करे (हज के ज़माने के अलावा हरम-शरीफ़ की ज़ियारत करना)[६५], उस पर ज़रा भी गुनाह नहीं कि उन दोनों के बीच आना-जाना करे[६६]। और जो कोई ख़ुशी से कोई करे सो कार्य नेक अल्लाह तो बड़ा क़द्र करनेवाला है, बड़ी जानकारी रखनेवाला है[६७]। (१५८)

● व. न बी स.
∴ मु. खि मु. ता ख़. ३
★ रु. १८ — २ आ ५

३३ हर क़ौम का एक दीन है और एक क़िब्ला है। यानी हर-क़ौम और हर उम्मत नमाज़ और इबादत के लिए एक केन्द्रीय दिशा नियत रखती है, सो उम्मत-इस्लामिया के लिए भी एक नियत क़िब्ला अनिवार्य है। **'लिकुल्लिन्'** "हर एक" से मुराद हर क़ौम या हर उम्मत है। **'मुवल्लीहा'-'तौलियत'** यहाँ रुख़ करने के मानी में है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि बाज़ सूफ़ियों ने 'हदीस-नबवी' (हर एक के लिए वही आसान है जिसके लिए वह पैदा किया गया है) की ताईद करके इसके माने यह लगाये हैं कि दुनियावी और शरई-हैसियत से अल्लाह ने मनुष्यों की स्थितियाँ विभिन्न रखी हैं और उनके अनेक वर्ग बनाये हैं। कोई खेती में लगा है, कोई व्यापार में, कोई कला-कौशल में। इसी प्रकार दीनी हैसियत में भी कोई हदीसें जमा कर रहा है, कोई फ़िक़्ह के मस्लों को हल कर रहा है और कोई क़ुर्आन पाक के अनुवाद और तफ़्सीर (अर्थ) करने में लगा हुआ है, कोई हिफ़्ज़ (रक्षा) कर रहा है। यह सब विभिन्न रास्ते हैं अल्लाह की ओर से। अल्लाह इन सारे तरीक़ों को अपने बन्दों के माध्यम से आबाद रखना चाहता है, तो जो शख़्स जिस विधि से भी अल्लाह की रज़ामन्दी के इरादे से चलेगा, अल्लाह उसके लिए क़बूल और प्राप्ति को सुविधाजनक बना देगा, यानी अल्लाह उसे स्वीकार करेगा और उस रास्ते की कठिनाइयों को दूर करेगा।

३४ (ऐ मुसलमानो !) उम्मत-इस्लामिया को मुख़ातिब करके कहा गया है कि नेकियों की तरफ़

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १७७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १७७ से)

विशेष मकान को मुक़र्रर कर देने से एक विचार यह पैदा हो सकता था कि यह तो एक असमंजस की सूरत पैदा हो गई। कोई उत्तर को मुँह करेगा, कोई दक्षिण को। इस सन्देह के जवाब में ख़ुदा की तरफ़ से फ़र्माया जा रहा है कि नहीं ऐसा नहीं है, यह सन्देह ऊपर से नज़र आ रहा है। वास्तविक उद्देश्य तो नमाज़ और नमाज़ियों में एकता लाना है। तुम दुनिया के किसी भाग, किसी दिशा में बिखरे हो, ख़ुदा, जो सब कुछ जानता है, उसको तो यह ज्ञान है ही कि तुम एक दिशा को मुँह किये हुए हो, वह काबा की तरफ़ पढ़ी जानेवाली सभी नमाज़ों को एक हुक्म में रखेगा। दूसरे मानी यह भी हैं कि संकेत यहाँ मौत तथा क़यामत की ओर है कि तुम चाहे जहाँ दफ़्न होगे, हश्र में अल्लाह तआला एक जगह कर देगा।

३६ (और उसके अधिकार से कोई चीज़ भी अलग नहीं है।) यह बहुत सारे भ्रमों और भ्रान्तियों का एक नियमानुकूल उत्तर है। अल्लाह तआला के हुक्म में और मसलों में मनुष्य को जहाँ कहीं शक-शुबहा होता है, उसका कारण यही है कि मनुष्य अपनी सीमित क़ुदरतों और हाथ-पैरों की सीमित शक्तियों की भाँति, ख़ुदा की शक्तियों को भी सीमित समझता है। क़ुर्आन करीम ने बार-बार इस बशरी 'साइकालोजी' को समझकर बार-बार इसी सच्चाई की ओर चेतावनी दी है कि ख़ुदाई कार्यों पर हुक्म लगाते समय उसकी महान शक्तियों को भी याद रखा करो।

३७ मतलब यह कि यह आदेश काबे की ओर मुँह करने का, सफ़र और घर सभी जगह के लिए है। केवल मदीना में ठहरने के साथ विशेषता नहीं रखता।

३८ यह हुक्म साबित शुदा है, जिसमें अब किसी परिवर्तन या मन्सूख़ी की कोई सम्भावना नहीं। **'अिन्नहू'** में सर्नाम, क़िब्ले के बदलने का जो आदेश हुआ है, उसी की ओर है।

३९ एक आंशिक आदेश के बाद पूरा हुक्म और चेतावनी देने की शैली क़ुर्आन मजीद की विशेषता है और एक वचन से बहुवचन में बात आगे बढ़ाना अरबी में एक सुन्दर शैली है।

४० शब्दों को जो दोहराया गया है, यह अर्थ पर बल देने के लिए है और यह अहल-अरब का दस्तूर है। बाज़ों ने लिखा है कि प्रथम आदेश स्थिति को साधारण बनाने की वजह से आया है, यानी सफ़र या घर में कहीं हों तवज्जोह काबे की तरफ़ कर ली जाये, और दूसरा हुक्म मकान को आम करने के लिए है, यानी दूर, नज़दीक, हाज़िर, ग़ायब, जहाँ कहीं भी हों, तवज्जोह काबे की तरफ़ कर ली जाये। तफ़्सीर करनेवालों ने इस तकरार (दोहराने) की अपनी-अपनी पसन्द की और वजहें भी बताई हैं।

४१ (ऐ मुसलमानो!) यानी यह आदेश रसूल के लिए विशेषकर नहीं है, सारी उम्मत पर उसको पूरा करना अनिवार्य है। यहाँ तक यह आदेश काबे की ओर मुँह करने का छः बार आ चुका है। रहस्य जाननेवालों का विचार है कि हर बार के आदेश में अलग-अलग संकेत हैं। जैसे— (१) पहली बार वाजिब (अनिवार्य होना) होने का आदेश; (२) स्थिति को आम करना यानी सफ़र में या घर पर; (३) स्थान का आम होना यानी नज़दीक हों या दूर, हाज़िर हों या ग़ायब; (४) सम्मान की शिक्षा यानी क़िब्ले की ओर मुँह होने की भलाई; (५) हृदय की तवज्जोह, यानी दिल से उसी तरफ़ लगा रहे जिधर परवरदिगार का विशेष ध्यान है; (६) छठी बार से ताकीद और बल देना यानी यह सन्देह न रहे कि यह आदेश कभी मन्सूख़ हो जायेगा।

४२ (मिसाल के तौर पर अहल-किताब को उस आपत्ति की गुंजाइश कि हमारे लेखों में तो आख़िरी नबी का क़िब्ला, इब्राहीमी क़िब्ला होना था या अरब के मुशरिकों को इस एतराज़ का मौक़ा कि यह नबी इब्राहीमी दीन क्यों छोड़े हुए हैं?) **'लिन्नासि'** में 'अन्नास' से मुराद सभी आपत्ति करनेवाले हैं।

४३ यानी रहे वह शरारती दुश्मनी करनेवाले, जो इसके बाद भी आपत्ति करने पर अड़े रहेंगे, सो उनकी कुछ पर्वा (फ़िक्र) ही मत करो।

४४ (और न उनकी बकवास की कुछ पर्वा करो।)

४५ (कि मेरी ही नाफ़र्मानी तुम्हें हानि पहुँचा सकती है।)

४६ नेमतों को पूरे करने का अर्थ और भी हो सकता है, परन्तु इस तारतम्य में खुला हुआ अर्थ क़िब्ले का नियत करना है। यह बात कि ख़ानए काबा पर अल्लाह की रहमतें उतरती रहती हैं और वह उसके प्रकाश का केन्द्र है, सभी को मान्य है, साथ ही नमाज़ का सबसे अच्छी इबादत होना भी सभी को मान्य है। इन दोनों हक़ीक़तों की मौजूदगी के बाद ज़ाहिर है कि ख़ानए काबा को क़िब्ला नियत करना ख़ुदा की कितनी बड़ी नेमत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४७ (और अपनी हिदायत के दर्जों में और अधिक उन्नति करते रहो।) इस्लामी शरीअत दुनिया का सबसे पूर्ण जीवन विधान है। इस विधान का एक अंश क़िब्ले का नियत किया जाना और काबे का क़िब्ला बनाना भी है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि जो लोग पूर्व ही से सही राह पर हैं, उनको हिदायत देना इस बात की दलील है कि अल्लाह की नज़दीकी की प्राप्ति के दर्जों की कोई सीमा और थाह नहीं है।

४८ 'कमा' का सम्बन्ध पिछली आयत से है यानी नेमतों को तमाम करने का सम्बन्ध अब काबे को क़िब्ला बनाने से रहेगा, जैसे रसूल (स०) को भेजकर एक बड़ी नेमत खत्म की गई।

४९ (हर प्रकार के झूठ और गुनाहों और नैतिक गन्दगियों से) रसूल की हैसियत केवल पैग़ाम पहुँचानेवाले और प्रचारक की ही नहीं होती, पाक करनेवाले की भी होती है। रसूल की अलग-अलग हैसियतों पर पहले ही लिखा जा चुका है।

५० रसूल की हैसियत शिक्षक और व्याख्या करनेवाले की भी होती है। 'युअल्लिमुकुम्' शब्द 'तालीम' का संकेत इधर भी हो गया कि पैग़म्बर की कही हुई बातें केवल शब्दों और इबारतों तक सीमित नहीं रहतीं। वह हिकमत तथा बुद्धि के पाठ, आत्मिकता (रूहानी बातों) के नियमों और समस्याओं की शिक्षा भी देता रहता है अर्थात् उन्हें श्रोताओं की रग-रग में उतारता रहता है।

५१ अल्लाह की 'वही' का इन्सानी बुद्धि से वही सम्बन्ध है जो ख़ुदा को बन्दे से होता है। रसूल चूँकि वही से ताईद पाता रहता है, अतः क़ुदरती तौर पर उसकी बारीकियों को देखनेवाली आँखें, दूर तक देखनेवाली दृष्टि और गहरी सच्चाइयों को समझनेवाली अक़्ल उन बातों को जान-परख लेती है, जिनको परखने-समझने में बड़े-बड़े बुद्धिमान और चिन्तन करनेवाले चकित रह जाते हैं। रसूल की पहुँच सच्चाइयों के लोक की उन गहराइयों तक हो जाती है जो इल्म, ज्ञान, बुद्धि, कश्फ़ (मन से ही ऊपरी बातें और भीतरी बातों का बोध होना) और करामात से परे हैं।

५२ (उपासना और इबादत के माध्यम से) बन्दे का अपने मालिक को याद करना यही है कि उसकी बतलाई हुई राह पर साहस और शौक़ से चलता रहे। अल्लाह की यह याद किसी समय, या विशेष साअत (मूहूर्त) से सीमित नहीं है। लिखते-पढ़ते, बोलते, मिलते-जुलते, सोते-जागते सबमें अल्लाह की रज़ामन्दी को ही प्राथमिकता देना, यही बन्दे की ओर से अल्लाह की याद है। 'फ़ज्कुरूनी' ज़िक्र से मुराद है अल्लाह की आयतें और उनकी बड़ाई तथा शक्ति पर चिन्तन करना और इसी को सारे ज़िक्रों से बड़ा, बेहतर और वास्तविक माना गया है। ज़िक्र का अर्थ दिल से ज़िक्र, क्योंकि यही अस्ली ज़िक्र है जो मनुष्य जारी रख सकता है।

५३ (अपनी विशेष कृपा और मेहरबानी से) अल्लाह का अपने बन्दों की याद करना यही है कि उन पर दुनिया और आख़िरत दोनों स्थानों पर अपनी रहमत और कृपा, अपने करम और मेहरबानी की वर्षा करता रहे। मौलाना थानवी ने फ़र्माया कि बन्दा इधर से याद में लगा रहे तो उधर से भी सर को ख़ुदा बुलन्द करता जायेगा और यही अस्ली बदला और इनआम है बन्दे के ज़िक्र का, जो वह अल्लाह का करता है। अतः अगर मस्तिष्क के समक्ष सदैव यह बात रहे तो ज़िक्र करनेवाला बन्दा न कभी चिन्तित हो और न व्यर्थ होने की उसे शिकायत ही होगी कि कुछ प्राप्ति नहीं हुई।

५४ 'वश्कुरूली' तौहीद, ईमान तथा इस्लाम के हक़ अदा करते रहना —यही अल्लाह की शुक्रगुज़ारी करते रहना है। और शुक्र की सबसे अच्छी तारीफ़ यह है कि अल्लाह की दी हुई नेमतों को अल्लाह के ही कामों में लगाया जाये। 'व ला तक्फ़ुरूनि' कुफ़्र और शिर्क, नास्तिकता, झूठ और मज़हब में नई बातें पैदा करना —यही चीज़ें अल्लाह की नाशुक्री की है और उसकी नेमतों को न मानना है, और नाशुक्री का वास्तविक अर्थ यही है कि अल्लाह की दी हुई नेमतों को अल्लाह की नाफ़र्मानी में सर्फ़ (इस्तेमाल) किया जाये।

५५ यानी कठिनाइयों और परेशानियों का हुजूम (मज्मा) हो तो भी उसी अस्ली कठिनाइयों को दूर करनेवाले से ही सम्बन्ध बनाये रखो। उसी पर भरोसा रखो और उसके आगे झुकते रहो। रोज़ाना का यह अनुभव है कि किसी बड़ी और शक्तिशाली हस्ती से सम्बन्ध स्थापित हो जाने से दिल को ढाड़स रहती है। ख़तरे के समय पुलिस या किसी बड़े हाकिम के पहुँच जाने से दिल को ढाड़स बँध जाती है। कठिन बीमारी में किसी बड़े हकीम या डाक्टर के आ जाने से टूटी हुई आस जुड़ जाती है। फिर अगर दिल का रिश्ता और सम्बन्ध सब कुछ देखनेवाले, सब कुछ जाननेवाले, अस्ली सहायक और संरक्षक से नाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थापित हो जाये तो कमज़ोर इन्सान के दिल को कितनी तसल्ली, कितनी शान्ति मिलेगी, इसका क्या ठिकाना है ! दुनिया में रहते हुए जीवन के उतार-चढ़ाव, कठिनाई, संकट आते ही रहते हैं। यह बात व्यक्तियों के साथ भी पेश आती है और समूह को भी। वह विधान अधूरा है जो इन मुसीबतों से बचाव और संरक्षण की विधि न बताये। क़ुर्आन मजीद ने अनावश्यक ब्योरा और व्याख्या नहीं की, केवल वास्तविक नियम की ओर संकेत कर दिया है। **'बिस्सबरि'** सब्र के मानी हैं तंगी और अप्रसन्नता की दशा में अपने को रोके रखने के। शरीअत में इसका अर्थ यह है कि आत्मा पर बुद्धि का प्रभाव क़ायम रखा जाये और शरीअत के दायरे से पग बाहर न रखने दिया जाये। सब्र के मानी यह नहीं हैं कि जो लक्षण स्वाभाविक एवं मानवता के हैं वह भी अपने ऊपर प्रकट न होने दिये जायें। भूख से निढाल हो जाना, शक्तिहीन होना, दर्द के कष्ट से कराहना, रंज के समय ठण्डी आहें भरना, अज़ीज़ों और सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु पर आंसुओं से रोना, यह सारी चीज़ें सब्र के या धैर्य के विपरीत नहीं हैं। क़ुर्आन फ़र्मान का अर्थ यह है कि मुश्किलों और मुसीबतों के समय घबरा न जाओ। दिल क़ाबू में रखो स्वयं दिल के वश में न आ जाओ। **'अस्सब्र वस्सलाति'** 'सब्र' एक दिली दशा या हार्दिक दशा है और **'सलात'** यानी नमाज़ एक स्वयं करने का अमल है। इन दो विशेष शब्दों से संकेत यह हो गया कि व्यक्तिक सुधार और सामूहिक भलाई दोनों का राज़ केवल दो चीज़ों में है। एक गुनाहों से बचना और एहतियात करना, दूसरे जो आदेश मिले हैं उनका पालन करना।

५६ अल्लाह की मदद तो काफ़िर, मोमिन, गुनहगार और नेक, अपने हर बन्दे पर आम है। यहाँ यह स्नेह और मुहब्बत साधारण नहीं है, बल्कि विशेष सहायता का अर्थ आता है, जिसका मतलब यह है कि उसकी ओर से संरक्षण, मदद और विशेष ध्यान है। यह उसी विशेष अल्लाह की मुहब्बत का एहसास था, जिसने रसूल (स०) और सहाबा को भय से मुक्त करके बेपनाह शक्ति और निर्भयता का मालिक बना दिया था और उनके अन्दर ज़बरदस्त साहस पैदा कर दिया था। सत्य तो यह है कि इस मुराक़बे (विशेष ईश्वरीय ध्यान) से बढ़कर रूह के लिए न कोई अच्छी ग़िज़ा है और दिली संकट और घाव के लिए इससे बढ़कर न कोई मरहम है। ईमानवालों के लिए यही एक विचार है जो नागवार को ख़ुशगवार, कड़वे को मीठा, संखिया को शकर बना देने को प्रर्याप्त है। मौजूदा ज़माने के मनोवैज्ञानिकों ने भी यही विचार प्रकट किया है कि हृदय की उदासी, ग़मगीनी, रंजीदगी और दुःख के समय अल्लाह से सम्बन्ध जोड़ने से बढ़कर तसल्ली देनेवाली और कोई चीज़ नहीं है। James की 'Varieties of Religious Experiences' अवलोकित हो। **'मअ'** साथ की विभिन्न क़िस्में, (स्थानीय, सामयिक, अर्थ में आदि-आदि) गिनाने के पश्चात् शब्दकोश वालों ने लिखा है कि इसमें मदद और सहायता का अर्थ सम्मिलित रहता है। वही यहाँ माना गया है। सब्र की बड़ाई अभी-अभी आ चुकी थी, अब उसे और कहकर ज़्यादा स्पष्ट और बलशाली बना दिया। कठिनाइयाँ दुनियावी हों या शरई। वास्तव में उनसे मुक़ाबला करने की सबसे अच्छी ढाल आदमी के पास सब्र की है, जो उम्मत के हर व्यक्ति के पास हर समय रहनी चाहिए। 'सब्र' अपने विशाल अर्थ में एक सारगर्भित शब्द है। **'सलात'** (नमाज़) उसी की एक विशेष और बड़ी शक्ल है। अल्लाह की मदद की यह नेमत जब सब्र करनेवालों को मिलेगी तो नमाज़ियों को तो और भी ज़्यादा मिलेगी इसीलिए उसको और ज़्यादा स्पष्ट नहीं किया गया।

५७ [आलमे-बर्ज़ख (मरने के बाद का एक लोक) में एक विशेष ज़िन्दगी के साथ और आम इन्सानों के साथ मुर्दा नहीं] आयत का उद्देश्य शहीदों की ज़िन्दगी को मानना है, यह अर्थ नहीं है कि उनको ज़िन्दा-जान कहा भी जाये। **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** यानी दीन-हक़ की राह में, सही मज़हब की ख़ातिर। जंग-बद्र में जब कुछ सहाबी शहीद हो गये तो नासमझ काफ़िरों ने कहना शुरू कर दिया कि उन्होंने अनायास अपनी जानें गँवा दीं और जीवन के आनन्द से वंचित हो गये। उनको जबाब मिल रहा है कि तुम जिस मानी में उनको मुर्दा समझ रहे हो, उसमें वह क़तई मुर्दा नहीं हैं, बल्कि जीवन से कहीं बढ़कर आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। धार्मिक शब्दों में ऐसे मक़्तूल को (क़त्ल किये जानेवाले को) शहीद कहते हैं। बर्ज़खी (बीच की) ज़िन्दगी अपनी आम शक्ल में तो सभी के लिए है, लेकिन शहीदों को उस आलम (लोक) में एक विशेष आनन्द और खास क़िस्म का जीवन मिलेगा, और जीवन के आसार में दूसरों से कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं। हज़रत मौलाना थानवी का कहना है कि शहीद की इस शक्ति का प्रभाव उसके ज़ाहिरी जिस्म पर भी पड़ता है और वह मांस और खाल के होते हुए भी मिट्टी से प्रभावित नहीं होता और ज़िन्दा जिस्म की भाँति सही सालिम रहता है, जैसा कि हदीसों में आया है और देखने में भी। यही वह जीवन है, जिसमें शहीदों से भी ज़्यादा नबी शक्तिशाली होते हैं और विशेषता रखते हैं। एक गरोह का कहना है कि यह जीवन रूहानी होता है, परन्तु सही यही है कि यह जीवन रूहानी और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिस्मानी दोनों होता है। और यह अक़ीदा तो उम्मत के ज़्यादा लोगों का सहाबा के समय से चला आ रहा है कि रूह को, जो जिस्म के अलावा एक जौहर है, मौत के एहसास यानी जिस्म से अलग होने के बाद भी क़ायम रहता है। आयत से यह भी बात पैदा की गई है कि जो लोग अल्लाह की राह में जान और माल सर्फ़ (खर्च) करते हैं, और जो लोग अपनी आत्मा की इच्छाओं में सर्फ़ करते है, बराबर नहीं होते। शहीदों के जीवित रहने के अक़ीदे के माननेवाले यहूद के कुछ वर्ग हुए हैं। (जिविश इन्साइक्लोपीडिया— जिल्द ६, सफ़ा ५६६)। इब्नुल् अरबी मालिकी ने कहा है कि इसी आयत से संकेत लेकर बाज़ इमामों ने शहीद के लिए ग़ुस्ल (नहलाना) और जनाज़े की नमाज़ दोनों ग़ैरज़रूरी बताये हैं, क्योंकि पाक तो वह शहादत से हो गये। इमाम अबू हनीफ़ा ने नमाज़-जनाज़ा को क़ायम रखा है। और जब शहीद ज़िन्दा हैं और रिज़्क़ (खाना-पीना) भी पाते रहते हैं, जैसा कि क़ुर्आन मजीद में दूसरी जगह है, तो इसी तरह यह भी निकलता है कि काफ़िरों को मौत के बाद अज़ाब भी होता होगा और इसी से क़ब्र के अज़ाब का सुबूत मिलता है। इमाम राज़ी ने आयत के अन्तर्गत हदीस दर्ज की है कि क़ब्र या तो एक बाग़ होती है जन्नत के बाग़ों में से, या एक गढ़ा है आग के गढ़ों में से। इसके बाद लिखा है कि क़ब्र के अज़ाब या सवाब के विषय में अनेक हदीसें हैं।

५८ (इसलिए कि बर्ज़ख को महसूस करना या उसको समझना दुनियावी हवास में आने की चीज़ नहीं है, और उस लोक का एहसास मौजूदा ज़ाहिरी हवास से मनुष्य अनुभव नहीं कर सकता।) इब्ने कसीर ने एक हदीस नक़्ल करके उससे यह नतीजा निकाला है कि ऐसा जीवन आम मोमिन को प्राप्त रहता है, अलबत्ता शहीदों का वर्णन विशेष रूप से क़ुर्आन मजीद में उनके रुतबे और दर्जे को देखकर कर दिया गया है।

५९ (हिकमत के आधार और उसके तक़ाज़े पर) सच्चे मोमिनों से ही सम्बोधन चला आ रहा है। उन्हें बताया है कि मुसीबतें और बलाएँ उन पर भी आयेंगी, परन्तु सज़ा और अज़ाब के रूप में नहीं बल्कि आज़माइश और परीक्षा के रूप में और इस इर्शाद से उनकी तसल्ली और तस्कीन का सामान हो गया। ख़ुदा की आज़माइश का उद्देश्य नतीजों को दुनिया पर ज़ाहिर करना है, वरना हक़ तआला को तो यह जानकारी ज़ाहिर है कि हमेशा से है। उस चोट में, जो एक शत्रु के हाथ से पहुँचती है, और उस निश्तर से, जो एक मेहरबान डाक्टर के हाथ से लगता है, बड़ा अन्तर है, क्योंकि एक की बुनियाद और आधार बुराई पर है और दूसरे का बेहतरी और भलाई के विचार से। आम इन्सान को जो दुःख-दर्द दुनिया में पहुँचते रहते हैं, उससे कितनी विपरीत वह तकलीफ़ें होती हैं जो केवल आज़माइश और दर्जों के लिहाज़ से एक मोमिन को परवरदिगार-आलम की ओर से पहुँचाई जाती हैं। **'बिशैअिन्'** से यह बता दिया कि इम्तिहान बहुत सख़्त नहीं होगा। यह इन्सान जिस क़दर छोटा और कमज़ोर है उसी की हस्ती के अनुसार होगा। **'अल्ख़ौफ़ि'** 'ख़ौफ़' का शब्द बड़ा सारगर्भित है, जान, माल, इज़्ज़त हर चीज़ से सम्बन्धित, चिन्ता और भय इसी के अन्दर आ गया। **'अल्जू'** भूख की परीक्षा यह है कि किसी ज़रूरत के बावजूद हर हराम माल से बचे। न रोज़े से हिचकिचाये, न उपवास और फ़ाक़े से डरे। **'अम्वालि'** —रिश्वत, सूद, ख़ियानत, ग़लत धन लेना, हर ग़ैरशर्ई मामले से हाथ उठा ले और जो माली नुक़्सान, क़ुदरती तौर पर पहुँचे, चोरी हो जाये, आग लग जाये, उस सब पर सब्र करे। **'अलअन्फ़ुसि'** मौत, बीमारी, जिहाद के हादिसों (दुर्घटनाओं) में सब्र से काम ले। **'अस्समराति'** औलाद से भी मुराद हो सकती है और तिजारत, खेती आदि के लाभ से भी। हर प्रकार की नेकनामी, नामवरी के मौक़े भी इसमें शामिल हैं। खोज करनेवालों ने कहा है कि बन्दे की हर परीक्षा शिर्क और तौहीद के बीच अन्तर करनेवाली होती है। आम लोगों का इम्तिहान ज़ाहिरी शिर्क से सम्बन्धित होता है और ख़ास लोगों का मामूली और हलके क़िस्म के शिर्क से। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि यह आयत यह भी इशारा करती है कि रियाज़त (तप) और इबादत (भक्ति) से ऐसी सूरतों में लाभ पहुँचता है।

६० सब्र करनेवालों को यानी उन बन्दों को जो ग़म की हालत में भी शरीअत की सीमाओं से बाहर क़दम नहीं निकालते। सब्र करने के मानी यह नहीं हैं कि बन्दा बिल्कुल बेहिस (चेतनाशून्य) हो जाये और ग़म को महसूस ही न करे। इसका नाम सब्र नहीं है, बेहिसी है। सब्र यह है कि इन्तिहाई ग़मनाक और दर्दनाक घटना पर भी अक़्ल को आत्मा पर और इन्द्रियों पर क़ाबू रखने दे। ज़बान से शिकवा और शिकायत न करे। नाशुक्री न करे और दृष्टि को ख़ुदा और उसकी मस्लहत पर केन्द्रित रखे। उसकी रहमत पर भरोसा किये रहे। ग़म की दशा में मैं क़ुदरत के क़ानून के विरुद्ध विचार नहीं रखता और यह समझता हूँ कि वह मेरा दोस्त है, दुश्मन नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६१ (दिल की गहराई के साथ) सब्र के हासिल करने में दिल का विश्वास ज़बानी शब्दों पर प्राथमिकता रखता है। **'मुसीबत'** का शाब्दिक अर्थ है जो अचानक कोई परेशानी आ पड़े। हदीस में कहा गया है, "जो चीज़ भी मुसलमान को नागवार गुज़रे बस वही उसके हक़ में मुसीबत है।" तफ़्सीर वालों ने भी यही कहा है। इसका होना बहुत विशाल और आम है और इसके अन्तर्गत छोटा, बड़ा हर नाखुशगवार दुनियावी वाक़िआ आ गया। बीमारी, दोस्तों-अज़ीज़ों की जुदाई का सदमा, मौत का ग़म, बच्चा न होने का रंज, तौहीन, अनादर इत्यादि। हदीस-नबवी में इस आयत को 'आयत इस्तिरजा' कहा गया है और फ़र्माया गया है कि जो शख्स इसे मुसीबत के समय पढ़ लिया करेगा, अल्लाह उसकी बिगड़ी बना देगा और उसका उक़्बा (परलोक) भी बेहतर कर देगा। ज़बान से इस आयत की तिलावत अब भी मुसलमान घरानों में काफ़ी होती है, लेकिन केवल ज़बानी पढ़ना काफ़ी नहीं है। दिल में भी यही विचार और विश्वास जमा रहना चाहिए। **'क़ालू'**— भूतकाल का रूप है, लेकिन उद्देश्य यह है कि मोमिन, जो सब्र करते हैं, उनकी आदत का वर्णन किया गया है। **'अिजा'** बयान किसी एक और अचानक घटना के लिए नहीं, आम आदत को जाहिर करने हेतु आया है, यानी जब कभी कोई नाखुशी की बात सामने आये।

६२ (चाहे आज, चाहे चन्द दिनों के बाद) आयत के अन्दर शिक्षा तीन चीज़ों की मिली। एक यह कि हम सब केवल बन्दे हैं और बिल्कुल उसी की मिल्कीयत हैं, हम स्वयं भी और हमारी हर चीज़ भी। अपनी कोई भी चीज़ अपनी नहीं है, न बीवी, न बच्चे, न माल, न जायदाद, न घर, न खानदान, न जिस्म, न जान। इन्सान के दुःख-दर्द और रंजोग़म तथा क्लेश का कारण केवल यह है कि वह अपनी प्यारी वस्तुओं को अपनी समझता है, परन्तु जब मस्तिष्क से यह ग़लत बात निकल जाये और उसे यह एहसास हो जाये कि कुछ भी चीज़ हो उसकी अपनी है ही नहीं, तो फिर उन प्यारी चीज़ों के छिन जाने पर गिला, शिकवा, शिकायत और दुःख का अवसर ही क्या रह गया। दूसरी बात यह है कि बड़े से बड़ा रंज और सदमा और दिल के दाग़ भी अस्थायी और मिट जानेवाले हैं। कोई चीज़ रहनेवाली नहीं। शीघ्र ही उन्हें छोड़-छाड़कर अस्ली मालिक की सेवा में उपस्थित होना है। तीसरे यह कि वहाँ पहुँचते ही सारे क़र्ज़ बबाक़ हो जायेंगे, हर खोई हुई चीज़ वसूल होकर रहेगी। यह तीनों अक़ीदे जिस व्यक्ति के जितने ज़्यादा पायदार होंगे, उसी क़दर उसको दुनिया में अमन और शान्ति प्राप्त रहेगी। रंज और दुःखों को हल्का करने का जो खुदापरस्ताना अक़ीदा और नुस्खा यहाँ बताया गया है, यह विश्व की किताबों में बेमिसाल है, बल्कि सच यह है कि क़ुर्आन करीम में यदि यही एक आयत होती तो यही उसे खुदा का कलाम साबित करने के लिए काफ़ी थी। 'सब्र' वास्तव में दिल की एक भावना, एक कैफ़ियत का नाम है और वास्तव में इसका सम्बन्ध हृदय से ही है। ज़बान से इस कल्मे को दोहराने का जो आदेश दिया गया है, वह केवल इसी कैफ़ियत को बलशाली और ज़ोर देने के लिए है। तहक़ीक़ (शोध) करनेवालों का विचार है कि आयत में जो आदेश है उसकी तामील और पालन करने के तीन दर्जे हैं— (१) अव्वल यह है कि दिल में उसके अर्थ जम गये हों और ज़बान पर भी उसके शब्द जारी हों; (२) दिल में अर्थ का खयाल करे और ज़बान से न दोहराये; (३) दिल में उसका खयाल न हो परन्तु ज़बान से अदा करता रहे; (४) चौथी सूरत यह भी है कि दिल में किसी दर्जे में विश्वास न हो केवल ज़बान से शब्द दोहराये जायें। यह मुनाफ़िक़त की स्थिति है और ईमानवालों की दुनिया से इसका सम्बन्ध नहीं है। रसूल (स०) के विषय में इतिहास का बयान है कि आप छोटी-छोटी तकलीफ़ों या नागवारी के अवसरों पर भी यह कल्मा ज़बान पर लाते रहते थे। यही तरीक़ा आपके सहाबियों का भी था। **'राजिऊन'** का अर्थ यह नहीं है कि इन्सान अभी कहीं और है और फिर किसी ऐसे स्थान या दिशा में आ जायेगा जहाँ खुदा है। खुदा के पास तो वह अब भी है। अर्थ यह है कि आखिरत के लोक में जिस प्रकार अल्लाह की रबूबीयत (उसके पालनहार होने की कैफ़ीयत) और उसकी मिल्कीयत सारे ज़ाहिरी मामलों की समाप्ति के बाद बिल्कुल स्पष्ट और खुली हुई सामने होगी, उसी प्रकार यह खुदा ही की ओर जाना बिल्कुल खुलकर सामने होगा। मध्य के माध्यम सब समाप्त होकर रहेंगे। मुर्शिद थानवी ने फ़र्माया कि यह कल्मा 'इस्तिरजा' तमाम मुसीबतों का इलाज है और उन्हीं में क़ब्ज़ भी दाखिल है जो अल्लाहवालों को अक्सर पेश आता है।

६३ (दुनिया और आखिरत दोनों में) और सच तो यह है कि उनसे बढ़कर बन्दगी के तक़ाज़ों को पूरा करनेवाला और कौन हो सकता है कि खास मुसीबत के आने के समय भी इन सच्चाइयों को न भूले कि हम बन्दे हैं, अपने मालिक नहीं हैं बल्कि अल्लाह की मिल्कीयत हैं। हमारी जान, माल, बीवी, बच्चे सब उसी के हैं और उसी की देन हैं। वह हमारे लिए जो कुछ भी कर रहा है सब हमारे भले के लिए ही है, हमको लौटकर उसी की तरफ़ जाना है और उसी से हमारा आखिरी सामना होना है। ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की आयत में सब्र करनेवालों को जो शुभ सूचना दी गई थी, यह सब उसी का बयान हो रहा है। यानी यह सब विशेष कृपा के भागीदार होंगे, हर शख्स अपने-अपने दर्जे के अनुसार। **'व रहमतुन्'** यानी यह लोग आम कृपा के पात्र होंगे और इन नेमतों की कोई सीमा न होगी। **'हुमुल्मुह्तदून'** दुनिया में उनकी पहुँच इस सच्चाई तक हो चुकी थी कि कोई वस्तु भी अपनी नहीं है, यहाँ तक कि खुद उनके जिस्म, जान, आत्मा और रूह का मालिक भी हक़ तआला ही है, चुनांचे जब यह उसके पास पहुँचेंगे तो सब ही कुछ पा लेंगे और जिसने अल्लाह तआला की खास और आम रहमत को पा लिया, उससे दुनिया और आखिरत की कौन सी नेमत बच रही? आम भाषा में अनुवाद यह होगा, "बस यही लोग तो पहुँचे हुए हैं।"

६४ (न कि देवी-देवताओं की यादगारों में से) **'सफ़ा व मर्वः'**— किसी ज़माने में मस्जिदुल्-हराम के सामने दो पहाड़ियाँ थीं, अब मामूली ऊँचाइयाँ चट्टानों के समान रह गई हैं। 'सफ़ा' हरम शरीफ़ की दाहिनी ओर है और 'मर्वः' बायीं ओर। दोनों के बीच का फ़ासला ४६३ क़दम का है या लगभग ७ फ़र्लांग। जाहिलीयत के समय में इन दोनों पर एक-एक मूर्ति रखी हुई थी, जिसकी पूजा हुआ करती थी। 'सफ़ा' के मानी हैं साफ़ पत्थर या चट्टान और 'मर्वः' के मानी भी सफ़ेद नर्म पत्थर के हैं। हदीस शरीफ़ में आया है कि हज़रत हाजिरा हज़रत इस्माईल के दूध पीने की आयु में खानए काबा के पास प्यासा और अकेला छोड़कर इस तलाश में निकली थीं कि कहीं कोई क़ाफ़िला आता-जाता दिखाई पड़ जाये तो उससे पानी हाथ आ जाये। इसी बेचैनी में इस पहाड़ी से उस पहाड़ी पर दौड़कर जाती थीं कि शायद ऊँचाई से कोई क़ाफ़िला दिखाई दे जाये। **'शआ' अिरिल्लाहि'** यानी अल्लाह के दीन की निशानियाँ या चिह्न। अल्लाह के दीन के वह तरीक़े और अमल, जो इबादतों में काम आयें। **'शआअिर'** जमा है **'शअीरः'** की, जिसके मानी हैं चिह्न या निशान। मज़हबी शब्दों में इससे मुराद है हज की अलामतें।

६५ **'हुज्जल्बैत'** —'हज' इस्लामी इबादत का चौथा खम्भ है या नमाज़, रोज़ा, ज़कात के बाद चौथा फ़रीज़ा— शाब्दिक अर्थ है इरादा— अब यह खानए काबा की वार्षिक ज़ियारत, जो नियमानुसार होती है, उसी के लिए विशिष्ट हो गया है। यदि हैसियत हो, तन्दुरुस्ती हो और राह में शान्ति हो तो आयु भर में एक बार हज करना उम्मत के हर व्यक्ति पर, चाहे वह कहीं रहता हो, फ़र्ज़ है, अनिवार्य है, यानी यह एक प्रकार की इस्लामी दुनिया की वार्षिक कांग्रेस है। हज के रुक्नों (खम्भों) में तीन बातें फ़र्ज़ हैं— (१) हरम की सीमा में प्रवेश करने के पूर्व एक विशेष बे-सिला हुआ वस्त्र पहनना, जिसको अहराम कहते हैं; (२) अरफ़ात के मैदान में ६ ज़िलहज (अरबी— इस्लामी महीना) को हाज़िरी, जिसे वुक़ूफ़ (परिचय) कहते हैं; (३) तवाफ़, यानी वुक़ूफ़ के बाद खानए काबा का तवाफ़ (चारों ओर चक्कर लगाना)। हज के वाजिबात (आवश्यक नियम) चार हैं— (१) ६-१० ज़िलहज की बीच की रात्रि में मुज़दलफ़ा में वास; (२) सफ़ा तथा मर्वः के बीच आना-जाना, जिसे सई कहते हैं; (३) मुज़दलफ़ा के वास के बाद मिना में कंकड़ियाँ फेंकना, जिसे रमी जमरात कहते हैं; (४) काबे का तवाफ़ (यह तवाफ़ फ़र्ज़ के अलावा है और तवाफ़े-सदर कहलाता है) क़ुर्बानी करना, सर के बाल उतरवाना इत्यादि सुन्नत और मुस्तहब हैं। **'अंविऽतमर'** उम्रः या छोटा हज —लफ़्ज़ी अर्थ है ज़ियारत करना, जिसकी तारीख न हो। इसमें हज की तरह महीने और तारीख का प्रतिबन्ध नहीं है और न इसमें वुक़ूफ़-अरफ़ात है और न मुज़दलफ़ा में वास, साल के हर मौसम और हर वक़्त हो सकता है। उम्रे की नीयत से अहराम हरम की सीमा से बाहर बाँधे। काबे का तवाफ़ और सफ़ा मर्वः के बीच सई करके बाल उतरवाये, बस उम्रः हो गया, अहराम खोल दे।

६६ **'ला जुनाह अलैहि'** सफ़ा तथा मर्वः को तौहीद के खास घराने से निस्बत है यानी हज़रत हाजिरा, इब्राहीम व इस्माईल से, परन्तु जाहिलीयत के समय में उन पर मुश्रिकों का क़ब्ज़ा हो गया था और एक-एक पहाड़ी पर एक-एक देवी बना दी गई थी। बाज़ मुश्रिक क़बीले तीर्थ करने जाते तो उन्हें भी दौड़कर चूमते थे और छूते थे। प्रथम समय के मुसलमानों और सहाबियों की तौहीदपरस्ती और शिर्क से नफ़रत ने उनके दिल में यह विचार पैदा किया कि कहीं इन पहाड़ियों के बीच में दौड़ना शिर्क के तरीक़ों में न गिन लिया जाये। अतः आयत में उन्हीं का भ्रम समाप्त किया गया है कि यह जाहिलीयत की नहीं, खास तौहीद की यादगार है। इसलिए अगर उनके बीच आना-जाना हज के इस्लामी नियमों का अंश समझा जाये तो कोई बुराई नहीं है। **'यत्तव्वफ़ बिहिमा' 'तौफ़'** के अस्ली मानी हैं किसी चीज़ के गिर्द घूमना या चक्कर काटना, लेकिन आसपास जाना भी इसका अर्थ है। यहाँ मुराद दो स्थानों के बीच आना-जाना है। यह सई सफ़ा व मर्वः के बीच हनफ़ीयों के यहाँ वाजिब है। इमाम अहमद के यहाँ सुन्नत है और मालिकीया और शाफ़िईया के यहाँ फ़र्ज़ है। यह आना-जाना सात बार होता है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १८८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अिन्नल्लज़ीन यक्तुमून मा अन्ज़लना मिनलबय्यिनाति वल्हुदा मिम्बऽदि मा बय्यन्नाहु
लिन्नासि फ़िल्किताबि ला अुला'अिक यल्अनुहुमुल्लाहु व यल्अनुहुमुल्लाअिनून ला
(१५९) अिल्लल्लज़ीन ताबू व अस्लहू व बय्यनू फ़ अुला'अिक अतूबु अलैहिम् ज
व अनत्तव्वाबुर्रहीमु (१६०) अिन्नल्लज़ीन कफ़रू व मातू व हुम् कुफ़्फ़ारुन्
अुला'अिक अलैहिम् लऽनतुल्लाहि वलमला'अिकति
वन्नासि अज्मअीन ला (१६१) ख़ालिदीन
फ़ीहा ज ला युख़फ़्फ़फ़ु अन्हुमुल्-अज़ाबु व
ला हुम् युन्ज़रून (१६२) व अिलाहुकुम्
★ रु. १९/३ आ ११ अिलाहुंव्वाहिदुन् ज ला अिलाह अिल्ला
हुवर्रहमानुर्रहीमु (१६३) ★ अिन्न फ़ी
ख़ल्क़िस्समावाति वल्अर्ज़ि वख़्तिलाफ़िल्लैलि
वन्नहारि वल्फ़ुल्किल्लती तज्री फ़िलबहरि
बिमा यन्फ़अुन्नास व मा अन्ज़लल्लाहु
मिनस्समा'अि मिम्मा'अिन् फ़ अह्या बिहिल्अर्ज़
बऽद मौतिहा व बस्स फ़ीहा मिन् कुल्लि
दा'ब्बतिन् ऽव तस्रीफ़िर्रियाहि
वस्सहाबिल्-मुसख़्ख़रि बैनस्समा'अि वल्अर्ज़ि
ल आयातिल्-लिक़ौमिंय्यऽक़िलून (१६४) व मिनन्नासि मंय्यत्तख़िज़ु मिन्
दूनिल्लाहि अन्दादंय्युहिब्बूनहुम् क हुब्बिल्लाहि त वल्लज़ीन आमनू अशद्दु
हुब्बल्लिल्लाहि त व लौ यरल्लज़ीन ज़लमू अिज़् यरौनल्-अज़ाब ला
अन्नल्क़ुव्वत लिल्लाहि जमीअन् ला ऽव अन्नल्लाह शदीदुल्-अज़ाबि (१६५)
अिज़् तबर्र-अल्लज़ीनत्तुबिअू मिनल्लज़ीनत्तबअू व रअवुल्-अज़ाब व तक़त्तअत्
★ रु. २०/४ आ ४ बिहिमुल्अस्बाबु (१६६) व क़ालल्लज़ीनत्तबअू लौ अन्न लना कर्रतन्
फ़ नतबर्रअ मिन्हुम् कमा तबर्रअू मिन्ना त कज़ालिक युरीहिमुल्लाहु अऽमालहुम्
हसरातिन् अलैहिम् त व मा हुम् बिख़ारिजीन मिनन्नारि (१६७) ★

سیقول ۲ ١٩ البقرة ٢

وَالْهُدٰى مِنْ بَعْدِ مَا بَيَّنّٰهُ لِلنَّاسِ فِي الْكِتٰبِ ۙ اُولٰٓئِكَ يَلْعَنُهُمُ
اللّٰهُ وَيَلْعَنُهُمُ اللّٰعِنُوْنَ ۙ ﴿١٥٩﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا وَاَصْلَحُوْا وَبَيَّنُوْا فَاُولٰٓئِكَ
اَتُوْبُ عَلَيْهِمْ ۚ وَاَنَا التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿١٦٠﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَمَاتُوْا
وَهُمْ كُفَّارٌ اُولٰٓئِكَ عَلَيْهِمْ لَعْنَةُ اللّٰهِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ وَالنَّاسِ
اَجْمَعِيْنَ ۙ ﴿١٦١﴾ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۚ لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ
يُنْظَرُوْنَ ﴿١٦٢﴾ وَاِلٰهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الرَّحْمٰنُ الرَّحِيْمُ ﴿١٦٣﴾ ع
اِنَّ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ وَ
الْفُلْكِ الَّتِيْ تَجْرِيْ فِي الْبَحْرِ بِمَا يَنْفَعُ النَّاسَ وَمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ
السَّمَآءِ مِنْ مَّآءٍ فَاَحْيَا بِهِ الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا وَبَثَّ فِيْهَا مِنْ كُلِّ
دَآبَّةٍ ۪ وَّتَصْرِيْفِ الرِّيٰحِ وَالسَّحَابِ الْمُسَخَّرِ بَيْنَ السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ
لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ ﴿١٦٤﴾ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّتَّخِذُ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ
اَنْدَادًا يُّحِبُّوْنَهُمْ كَحُبِّ اللّٰهِ ۭ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ ۭ وَلَوْ
يَرَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْٓا اِذْ يَرَوْنَ الْعَذَابَ ۙ اَنَّ الْقُوَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ۙ وَّ
اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعَذَابِ ﴿١٦٥﴾ اِذْ تَبَرَّاَ الَّذِيْنَ اتُّبِعُوْا مِنَ الَّذِيْنَ
اتَّبَعُوْا وَرَاَوُا الْعَذَابَ وَتَقَطَّعَتْ بِهِمُ الْاَسْبَابُ ﴿١٦٦﴾ وَقَالَ الَّذِيْنَ
اتَّبَعُوْا لَوْ اَنَّ لَنَا كَرَّةً فَنَتَبَرَّاَ مِنْهُمْ كَمَا تَبَرَّءُوْا مِنَّا ۭ كَذٰلِكَ
يُرِيْهِمُ اللّٰهُ اَعْمَالَهُمْ حَسَرٰتٍ عَلَيْهِمْ ۭ وَمَا هُمْ بِخٰرِجِيْنَ مِنَ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेशक जो छुपाते हैं उस चीज़ को, जो हम खुली हुई निशानियों और हिदायतों (निर्देशों) में से उतार चुके हैं, बाद उसके कि हम उसे लोगों के लिए अल्लाह की किताब में खोल चुके हैं[६८], यही वह लोग हैं कि अल्लाह उन पर लानत करता है और उन पर लानत करनेवाले लानत करते हैं[६९]। (१५९) अलबत्ता जो लोग तौबा कर लें[७०] और दुरुस्त हो जायें[७१] और ज़ाहिर कर दें[७२], यह वह लोग हैं कि मैं उनका ध्यान करूँगा रहमत से[७३]; और मैं बड़ा तौबा क़बूल करनेवाला, बड़ा दया करनेवाला हूँ[७४]। (१६०) बेशक जो लोग कुफ़्र करते हैं और मर जायें उसी दशा में कि वह काफ़िर हैं, सो यह वही लोग हैं कि उन पर लानत है अल्लाह की और फ़रिश्तों की और मनुष्यों की सबकी[७५]। (१६१) वह उसमें पड़े रहनेवाले हैं[७६] कि न उन पर से अज़ाब हल्का होने पायेगा, और न उन्हें मुहलत दी जायेगी[७७]। (१६२) और तुम्हारा ★
ख़ुदा 'एक' ख़ुदा है, उसके अलावा कोई ख़ुदा नहीं[७८] अत्यन्त दया और मेहरबानी करने रु. १९
वाला, बार-बार दया करनेवाला[७९]। (१६३) ★ ३

अवश्यमेव आसमानों और ज़मीन की पैदाइश में, और रात-दिन के अदल-बदल में, और आ
जहाज़ों के चलने में, जो समुद्र में उन चीज़ों के साथ चलते हैं जो लोगों को लाभ पहुँचाती हैं, ११
और (उस) पानी में, जिसे अल्लाह ने आसमान से उतारा, फिर उससे ज़मीन को उसके मुर्दा होने के बाद जिला उठाया, और उसमें हर प्रकार के जीव-जन्तु फैला दिये, और हवाओं के बदलने में, और बादल में (जो) आसमानों और ज़मीन के बीच में बन्दी है —(उन सबमें) उन लोगों के लिए, जो बुद्धि रखते हैं, निशानियाँ (मौजूद) हैं[८०]। (१६४) और कुछ लोग ऐसे भी हैं कि अल्लाह के अलावा दूसरों को भी शरीक बनाये हुए हैं[८१], उनसे ऐसी मुहब्बत रखते हैं जैसी अल्लाह से[८२] (रखना चाहिए)। और जो ईमानवाले हैं, वह तो अल्लाह की मुहब्बत सबसे ज़ोरदार रखते हैं[८३]। काश ज़ालिम अज़ाब को देखकर समझेंगे (आज ही समझ) लेते[८४] कि शक्ति अल्लाह की है सारी की सारी[८५] और यह कि अल्लाह का अज़ाब बहुत ही कठोर है[८६]। (१६५) उस (समय का ख़याल करो) जब मुक़्तदा (आगे रहकर सच्चाई का मार्ग दरशानेवाले) अपने अनुयाइयों (पैरवों) से अलग हो जायेंगे[८७] और अज़ाब देख लेंगे और उनके आपसी सम्बन्ध टूटकर रह जायेंगे[८८]। (१६६) और पैरौ (माननेवाले) कहने लगेंगे[८९], काश हमको फिर एक बार (जाना) मिल जाता[९०], तो हम भी उनसे अलग ★
हो जायें जैसे यह हमसे अलग हो गये। बस उसी प्रकार अल्लाह उनके आमाल को रु.
उनके (ख़ाली) अरमान (करके) दिखायेगा[९१]। और वह दोज़ख़ से कभी भी न निकल २०
पायेंगे[९२]। (१६७) ★ ४ आ ४

६८ यानी पुरानी किताबों के लेखों और भविष्यवाणियों को जानकर छुपाते हैं। मुराद यहूद तथा नसारा हैं और इस पर इब्ने अब्बास सहाबी और ताबेईन के बड़ों की भी सहमति है। **'यक्तुमून'** और सच को छुपाना भी इस ग़ज़ब का कि केवल खामोशी ही नहीं, बल्कि उलटे सत्य के खिलाफ़ गवाही दे गुज़रते है। 'कतमान' उस छुपाने को कहते हैं, जो जानकर किया जाये और उस अवसर पर जहाँ ज़ाहिर करना आवश्यक हो। **'अल्बय्यिनाति वल्हुदा'— 'बय्यिनात'** वह निशानियाँ हैं, जो स्वयं स्पष्ट और ब्योरावार हों। **'अल्हुदा'** वह है जो दूसरों के लिए एक सबक़ और निर्देश बन सके। यहाँ **'बय्यिनात'** का अर्थ है रिसालत-मुहम्मदी की गवाहियाँ और दलीलें, और **'हुदा'** का अर्थ है शरीअ़त के आदेश तथा हुक्म। यह भी कहा गया है कि **'अल्बय्यिनाति वल्हुदा'** के अन्दर आमतौर पर दोनों प्रकार के हुक्म आ गये। फ़क़ीहों और तफ़्सीर करनेवालों ने यहीं से यह बात भी निकाली है कि चूंकि न छुपाना यानी बयान इस क़ौल का वाजिब है, इसलिए खबर पर भी अमल करना जरूरी है। इस आयत से दीनी इल्म सिखाने पर उज्रत (पारिश्रमिक) लेने को भी नाजायज़ होने की दलील दी गई है। **'अल्किताब'** से मुराद है पुरानी आसमानी किताब। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि आयत में ऐसे व्यक्ति की बुराई की गई है जो अपने मुरीदों के अलावा दूसरों से शरीअत के इल्म को छुपाता है कि यह इल्म सभी (देखो सफ़ा १८८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १८५ से)

बीच का कुछ फ़ासला दौड़कर चलना पड़ता है, इसी कारण से इसका नाम सई (दौड़) है। इस फ़ासले के निशान के लिए दो हरे रंग के पत्थर लगा दिये गये हैं। किसी ज़माने में यहाँ बीरान था, परन्तु अब तो बाज़ार है और सफ़ा व मर्वः के बीच आबादी और चहल-पहल है।

६७ (इसलिए उसके यहाँ इज़्ज़त तथा मान-दान की कमी न किसी नेक काम के लिए होगी और न वह किसी के अमल की निस्स्वार्थता से अनभिज्ञ है।) **'ततव्वअ'**-**'तत्व्वुअ'** फ़र्ज़ के अलावा हर वह चीज़ है जिसको इन्सान अपनी ख़ुशी से पूरा करे। **'ख़ैरन्'** हर नेक अमल को कहते हैं। मतलब यह है कि कोई भी नेक अमल हो किसी प्रकार का, किसी दर्जे का, जो भी इन्सान ख़ुशी से पूरा करेगा, ख़ुदा उसका फल देगा। **'शाकिरुन्'** शुक्र का शब्द जब अल्लाह के लिए आता है तो उसके माने यह होते हैं कि वह बन्दे की थोड़ी सी इबादत पर फल बहुत देता है। अभी एक ही आयत के ऊपर सब्र की बड़ाइयों का वर्णन हो रहा था, इसके तुरन्त बाद हज का ज़िक्र आ जाना और बहुत से हिकमतों के अलावा एक खास सम्बन्ध सब्र से रखता है। इन सतरों के लेखक का निजी अनुभव है कि हज के मौसम की दौड़-धूप, भीड़-भाड़ और लगातार सफ़र और स्थान-स्थान का जाना ऐसा होता है कि फ़र्ज़ों की पाबन्दी भी कठिन पड़ जाती है, सुन्नतों और मुस्तहबों का तो कहना ही क्या! जोश के बावजूद ज़बान पर क़ाबू रखिये, हाथ-पाँव पर क़ाबू रखिये, कान और आँखों पर क़ाबू रखिये, ग़रज़ कि सब्र का पूरा इम्तिहान हो जाता है।

(फ़ुटनोट सफ़ा १८७ से)

के लिए हैं, हाँ, कश्फ़ के इल्मों (आत्म-शक्ति द्वारा गुप्त बातों का ज्ञान) की बात दूसरी है, वह इस तरह के नहीं हैं बल्कि बाज़ दफ़ा तो उनके ज़ाहिर करने में फ़ित्ने का भय होता है।

६९ (लानत करनेवाले चाहे आदम के गोल से हों या जिन्नात हों या मलायका या और कोई मख़्लूक़।) अल्लाह की लानत यह है कि वह उन लोगों को अपने करम और कृपा से दूर और अपनी मेहरबानियों से पृथक् कर देता है। मख़्लूक़ की लानत यह है कि ऐसे बदकारों के लिए बद्दुआ की जाये। उनके लिए हक़ तआला की रहमत से दूरी और उसकी मेहरबानियों से अलाहदगी माँगी जाये। शब्द 'लानत' पुरानी पुस्तकों में भी आया है। तौरेत में इस्तिस्ना और इंजील में यूहन्ना आदि को अवलोकित करें। फ़क़ीहों ने पिछली आयत से यह दलील दी है कि आलिम पर हक़ की तब्लीग़ और प्रचार और अपने इल्म का बयान वाजिब है।

७० (अपने पिछले अपराधों से) तौबा करने का अर्थ है बाज़ आ जाना, पश्चात्ताप करना और यह इरादा करके क्षमायाचक होना कि भविष्य में अब गुनाह न करूँगा।

७१ यानी भविष्य के लिए अपनी दशा का सुधार कर लें।

७२ (अपनी आसमानी पुस्तकों की उन बातों को, जिन्हें वह अब तक छुपाते रहे हैं। यहाँ संकेत है इस्लाम तथा इस्लाम के पैग़म्बर से, सम्बद्ध पिछले लेखों की भविष्यवाणियों की ओर। सारांश यह है कि मुजरिम यदि भूतकाल के गुनाहों पर शर्मिन्दा हों, पश्चात्ताप करें और अब भी ईमान ले आयें और इस बात पर आमादा हो जायें कि भविष्य में गुनाहों से बाज़ रहेंगे।)

७३ यानी यह तौबा करनेवाले न केवल लानत की सीमा से बाहर हो जाते हैं, बल्कि अल्लाह की रहमत और उसकी माफ़ी के अन्तर्गत आ जाते हैं। हाँ! जो लोग अपनी बदकिर्दारी (दुराचार) और गुनाहों पर क़ायम रहना चाहते हैं, उन पर सज़ा भी बनी रहती है। **'अस्लहू व बय्यनू'** क़ुर्आन मजीद में तौबा और उसके क़बूल होने की बात बार-बार कही गई है। यहाँ तौबा के साथ सुधार और ज़ाहिर करने का प्रतिबन्ध भी लगा हुआ है, यानी जो फ़साद फैलाया था उसका सुधार, और जो छुपाया था उसको ज़ाहिर करना। शोधकर्ताओं ने लिखा है कि जिन गुनाहों से केवल अल्लाह के हक़ का निरादर होता है, जैसे नमाज़, रोज़ा का छोड़ना, उनके लिए तो केवल तौबा करना और इस्तिग़फ़ार करना पर्याप्त है, क्योंकि उसका सम्बन्ध ख़ुदा की मेहरबानी और उसकी दयालुता के गुणों से है। लेकिन जिन गुनाहों से बन्दों का हक़ मारा जाता है, जैसे क़त्ल, चोरी, रिश्वत, किसी का हक़ दबा लेना, फ़साद फैलाना, अशान्ति पैदा करना, सूद लेना, ग़लत और झूठे अक़ीदों का एलान, उनके लिए आवश्यक है कि हर विशेष पाप के लिए भरसक जो हानि हुई है उसकी पूर्ति की व्यवस्था की जाये, तब जाकर तौबा स्वीकार की जायेगी, क्योंकि यहाँ अल्लाह के न्याय करने के गुण से सम्बन्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७४ क़ुर्आन मजीद का बार-बार अल्लाह की दयालुता और तौबा क़बूल करने की सिफ़त पर बल देना एक ओर उन गुमराह क़ौमों (उदाहरणार्थ बौद्ध मत वालों) के मुक़ाबले में है, जो समझते हैं कि धर्म का फल और असर हर दशा में अपना कार्य करके रहता है और कोई ईश्वरीय शक्ति उस पर प्रभावित नहीं हो सकती, और दूसरी ओर उन क़ौमों (मिसाल के रूप में मसीही) के मुक़ाबले में है, जो समझते हैं कि खुदाए तआला अपनी दयालुता के गुण को पूरी तरह प्रकट कर ही नहीं सकता और उसकी न्याय के गुण के तक़ाज़े को पूरा करने और गुनहगारों को माफ़ी दिलवाने के लिए किसी प्रायश्चित्त का होना अनिवार्य है।

७५ **'अज्मईन'** का शब्द ताकीद और बल देने के लिए आया है और इसका सम्बन्ध अल्लाह, फ़रिश्तों और मनुष्यों, तीनों से है, केवल मनुष्यों से नहीं। **'लऽनतुल्लाहि'** अहल-सुन्नत के यहाँ किसी विशेष गुनहगार पर लानत करना कदापि जायज़ नहीं है, हाँ! बिना किसी को विशेषता दिये हुए मुब्हम (अस्पष्ट) और विशेष दशा में जायज़ है, जैसे कहें कि 'चोर पर लानत हो'। हदीस में मोमिन पर लानत करना उसको क़त्ल करने के बराबर है। **'व मातू व हुम् कुफ़्फ़ारुन्'** बल्कि जीवन में तो विशेष काफ़िर पर भी लानत करना उचित नहीं। **'व मातू'** का प्रतिबन्ध जो लगा है, उसने स्पष्ट कर दिया कि यहाँ जिन पर लानत आई है उनकी मृत्यु ही कुफ़्र पर हो चुकी थी, और अस्ल दारोमदार आमाल के ख़ात्मे और मौत पर ही है। उन मुसलमानों को सीख प्राप्त करनी और ख़ौफ़ करना चाहिए, जो अपने किसी भाई को ग़लती में पाकर लानत भेजने लगते हैं।

७६ (हमेशा-हमेश के लिए) **'ख़ालिदीन'** 'ख़ुलूद' के अर्थ में है यानी अवश्य पकड़ लेने के अर्थात् उसी लानत एवं अज़ाब में जिसमें वह हमेशा पड़े रहेंगे। **'फ़ीहा'** में सर्वनाम दोज़ख की ओर है और बाज़ ने लानत की ओर माना है। उद्देश्य दोनों दशाओं में एक ही है।

७७ कमी होने का सम्बन्ध अज़ाब के बाद से है और मुहलत का सम्बन्ध अज़ाब के पूर्व से है। यानी दोज़ख में पड़ने के बाद न किसी प्रकार की कमी अज़ाब में होगी और न अज़ाब में पड़ने के पूर्व ही कोई मुहलत उन्हें मिलेगी।

७८ (न बड़ा न छोटा, न मुल्की न ग़ैरमुल्की) यहाँ सारी-सारी मानव जाति से सम्बोधन है। अल्लाह तआला के अस्तित्व को तो अरब के मुश्रिक भी मानते थे, जिस प्रकार आज भी सारी मुश्रिक क़ौमें मानती हैं, लेकिन मुश्रिक उस ख़ुदा के अलावा और बहुत सारे छोटे ख़ुदाओं, देवी, देवताओं को मानते हैं। बल्कि पुराने समय के मुश्रिक तो अपने देवी-देवताओं के अलावा अपने शत्रुओं के और दूसरी क़ौमों के भी देवताओं को मानते थे। उनकी शक्ति को मानते थे, उनकी ख़ुदाई उनको मान्य थी, बस केवल उनकी पूजा से इन्कार करते थे और उसका कारण यह बताते थे कि :शत्रु का देवता भी शत्रु ही होगा। गोया कि ख़ुदा भी भावनाओं और इच्छाओं तथा अनुभवों में मानव की ही तस्वीर था। क़ुर्आन ने इस अक़ीदे पर चोट की है और दावे के साथ बार-बार एलान किया है कि पूजा के लायक़ या पूजा के लायक़ न होना कैसा, किसी दूसरे ख़ुदा का अस्तित्व ही सिरे से नहीं है, न बड़े का न छोटे का, न मुल्की, न ग़ैरमुल्की और अल्लाह के साथ शरीक का अस्तित्व केवल मनुष्यों का भ्रम और उन्हीं का आविष्कार है। हमारे पुराने तफ़्सीर करनेवाले भी नये ज़माने के क़ौमों के ज्ञान (एथिनालोजी) के बिना ही इसी बिन्दु तक पहुँच गये थे। अद्वैत ख़ुदा के अस्तित्व का दावा और तमाम दूसरे ख़ुदाओं से इन्कार इतनी सख़्ती से उस क़ौम के सामने किया जा रहा है, जिसके दो-चार नहीं, तीन सौ साठ बुत उसके सबसे बड़े मन्दिर में मौजूद थे।

७९ यानी रहमान और रहीम यानी रहम करनेवाला और बार-बार रहम करनेवाला वह अल्लाह, जिस पर यह दोनों गुण समाप्त हैं, और इस गुण में कोई उसका सानी नहीं, कोई उसका शरीक ही नहीं, न इस गुण में न उस गुण में।

८० (अल्लाह की हिकमत और उसका पालन-पोषण करना, उसकी शक्ति और कारीगरी और उसका व्यक्तित्व, जो बिल्कुल अलग और अकेला है।) ज़मीन और आसमान के कारख़ाने, जो दुनिया के हर जादू से कहीं ज़्यादा आश्चर्यजनक और मानव के विज्ञान से हर भाग में कहीं अधिक अजीब हैं, स्वयं इस बात की दलील हैं कि न यह अपने आप वुजूद में आ सकते थे, न बाक़ी रह सकते हैं, जब तक एक सर्वशक्तिमान् हस्ती, एक अथाह बुद्धि रखनेवाला कारीगर और रचयिता इसके पीछे न हो। प्रकृति के यह दृश्य और इनका लगातार बने रहना, उनकी यकरंगी और उनका नियमानुकूल चलते रहना, उनका विधान और व्यवस्था हर सुबुद्धिमान को यह सोचने पर विवश कर देती है कि उनके मध्य में एक महान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकारी और कार्यरत व्यक्तित्व का हाथ काम कर रहा है। वही सुबुद्धि, जो एक मामूली सी घड़ी के लिए यह मानने को तैयार नहीं होती कि कोई कारीगर इसको बनानेवाला अवश्य है। यह रचना करनेवाली हस्तियाँ यदि एक से अधिक मान ली जायें तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक पैदा करनेवाला इन सारे कार्यों के लिए पर्याप्त नहीं था, इससे उसकी विवशता सिद्ध होती है, और जो विवश है या अधूरा है वह पैदा करनेवाला या खालिक़ नहीं हो सकता। अतः यदि किसी के पालनहार होने और बनानेवाले या खालिक़ होने का विश्वास है तो उसे अवश्य ही अकेला, अद्वैत और यकता मानना ही पड़ेगा। **'ख़लक़स्समावाति वल्अर्ज़'** आसमान हों या ज़मीन सब मख़्लूक़ हैं। इनमें से ग़ैरमख़्लूक़ या स्वयं पैदा होने या बनानेवाला कोई नहीं। कोई अपने आप नहीं बना है। मुशरिक़ क़ौमों ने उन्हें माबूद या पूजनीय माना है और हाजतों को पूरी करनेवाली देवी या देवता की हैसियत से उनकी पूजा की है कि वह मदद कर सकते हैं या उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। क़ुर्आन मजीद ने शब्द **'ख़ल्क़'** से इधर संकेत कर दिया कि यह महान सृष्टि भी विश्व की मामूली से मामूली कण की भाँति 'मख़्लूक़' ही है और पैदा की गई है। आकाशदेवता, धरतीमाता इत्यादि शब्द निरे निरर्थक और व्यर्थ हैं। **'अल्लैल वन्नहार'** दुनिया ऐसी मुश्रिक क़ौमों से भी खाली नहीं रही है, जिन्होंने रात और दिन को जानदार और इरादे की शक्ति रखनेवाला मानकर उन्हें देवी-देवता का दर्जा दे दिया और उनकी पूजा की है। यहाँ उनके अदल-बदल का ज़िक्र करके यह बता दिया कि उनका ग़ैरमख़्लूक़ या स्वयं बनाया हुआ होना तो दूर रहा यह समय और ज़माने के बेहिस, बेजान अंश तो स्वयं अपनी चाल पर अधिकार नहीं रखते। वही सर्वशक्तिमान् खुदा उनमें रात-दिन उलटफेर किया करता है। **'अल्फ़ुल्कु'** समन्दरी घोड़ा या सवारी, एक वचन और बहुवचन दोनों रूपों में आता है। और पुराने फ़क़ीहों ने इसका भी ब्योरा दे दिया है कि समन्दरी सफ़र इबादत की ग़रज़ से हो······और व्यापार के लिए हो······हर सूरत में जायज़ और समन्दरी सफ़र के लाभदायक होने का संकेत भी इसमें सम्मिलित है। हिन्दुस्तान में जब शुरू-शुरू में रेल निकली है तो देहात में स्वयं उसकी पूजा आरम्भ हो गई थी। बहुत से मुश्रिकों ने अपने माबूदों में इंजनदेवता को भी शामिल कर लिया था। ऐसी ही वहमपरस्त क़ौमों ने अगर कभी भाप से चलनेवाले जहाज़ों या कश्तियों की पूजा की हो, जो हवा से चलती थीं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। **'फ़ुल्क'** के अन्तर्गत, स्टीमर, लाइनर, ड्रडनाट हर प्रकार के छोटे-बड़े जहाज़ और पनडुब्बी, तबाह करनेवाले जहाज़, हर प्रकार की छोटी-बड़ी कश्तियाँ अर्थात् सभी समन्दरी सवारियाँ आ गईं, जो इस समय प्रचलित हैं या क़यामत तक ईजाद होंगी, चाहे युद्ध के सामान के लिए हों या व्यापार या तफ़्रीह (सैर-सपाटा) के लिए हों। **'मा यन्फ़अुन्नासु'** (मानव को लाभ देनेवाली वस्तुएँ) इनका गुण सबमें आम और मुश्तरक (मिला हुआ) है। इन्सानी लाभ की और फ़ायदे की हर चीज़ इसमें आ गई। इमाम क़रतबी ने लिखा है कि एक एतराज़ करनेवाले ने प्रश्न किया कि क़ुर्आन की जामईयत का दावा है (यानी जो मुकम्मल और हर विषय से परिपूर्ण हो), तो इसमें नमक-मिर्च और खाने के मसालों का वर्णन कहाँ है? जवाब यह है कि **'मा यन्फ़अुन्नासु'** में यह सारी चीज़ें आ गईं। **'मिनस्समाअि', 'अस्समाअ'** का शब्द, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, बादल, आसमान इत्यादि हर ऊपर वाली वस्तु के लिए आम है। **'मा अन्ज़लल्लाहु'** लाकर यह याद दिला दिया कि वर्षा में जीवनदान करने की शक्ति है। यह उसी अद्वैत ख़ुदा की दी हुई शक्ति है। **'दाब्बतुन्'**—हर जानदार के लिए आम है। इतिहास के हर ज़माने में जानवरों की पूजा, शिर्क का एक महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। बाबुल, मिस्र, हिन्दुस्तान आदि में गाय, बैल, बन्दर, लंगूर, साँप, कछुवे इत्यादि की पूजा बराबर हुई है। ज़मीन यदि २५ हज़ार मील के घेरे का कोई गोला है तो, या अगर बिना नापी हुई विशालता की कोई वस्तु है तो भी, अगर तेज़ी से और बड़ी स्फूर्ति के साथ चक्कर कर रही है या अगर अपनी जगह पर ठहरी हुई है तो भी, हर हाल में और हर सूरत में मान लेने के बाद भी कैसी विशाल कारीगरी, कैसी बेमिसाल दस्तकारी और कला का नमूना है। वायुमण्डल के खाली स्थान में किसकी शक्ति उसे सँभाले हुए है? उसके और चाँद, सूर्य और सितारों, सय्यारों (ग्रहों) के बीच का फ़ासला और उसका एक विशेष तनासुब (परस्पर निस्बत रखना) किसने क़ायम कर रखा है? उसकी गति की एक विशेष शरह किसने निश्चित की है? सूर्य से उसे एक विशेष माप की गर्मी और प्रकाश कौन पहुँचा रहा है? चाँद से प्रकाश और ठण्ड एक नपे-तुले नियत अन्दाज़ से किसका शक्तिहस्त ला रहा है? अगर आसमान ठोस भौतिक बाडी हैं तो, या अगर केवल अन्तरिक्ष में दृष्टिसीमा हैं तो भी, हर सूरत में उनकी बनावट, उनका अन्दाज़, तरकीब, रूप और रंग मानव की पहुँच से बाहर हैं, गिनती से बाहर तारे और सितारे कैसी शान्ति के साथ चल रहे हैं। उनकी व्यवस्था कौन क़ायम किये हुए है? सितारों का यह प्रकाश और उनके उदय होने और अस्त होने की यह बाक़ायदगी किसके हुक्म से क़ायम है? आसमानों की व्यवस्था में अनगिनत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अंशों और द्रवों की यह तरतीब और क्रम उनका पारस्परिक तनासुब किसकी हिकमत और कारीगरी से ज़िन्दा है ? रात और दिन किस प्रकार एक क़ानून में बँधे हुए हैं ? गर्मी, सर्दी, वर्षा, हर मौसम में उनके अन्दर उचित समय से परिवर्तन कौन करता है ? विभिन्न देशों में उनके उदय होने के समय कैसे बँधे हुए हैं ? यह कभी नहीं होता कि जिस समय कलकत्ते में दिन निकलता है दमिश्क़ में भी दिन हो जाये, न यह होता है कि अमेरिका की शाम कभी-कभी ईरान की शाम बन जाये। जनवरी में जो समय अँधेरा छाने का होता है, वह जून में कभी नहीं होता। आखिर यह रात-दिन के बँधे हुए और क़ानून की ज़ंजीर में जकड़े हुए परिवर्तन किसकी हुकूमत और किसकी हिकमत की गवाही दे रहे हैं ? भयंकर समुद्र, जो महाद्वीपों को अपनी जकड़ में लिये हुए है, किस प्रकार अपनी इस बड़ाई और भारी रूप-रंग के बावजूद कमज़ोर मानव के क़ब्ज़े में आ गया है ? किस प्रकार लकड़ी के तख़्तों को जोड़-जोड़कर उनमें लोहे की कीलें ठोंककर और लोहे की चादरें बिछाकर इन्सान समुद्र के बड़े-बड़े भयंकर फ़ासले और मंज़िलों को तय कर लेता है ? उनमें ज्वार-भाटा चांद की तारीखों की निश्चित तिथियों में ही होगा। अपनी ज़बरदस्त शक्ति के बावजूद एक खास सीमा और क्षेत्र से आगे न बढ़ेगा। एक विशेष और नियत वज़न की चीज़ों को वह अपने ऊपर तैरायेगा और उसके अलावा वज़न वालियों को डुबा देगा। उसके पानी का एक खास मिज़ाज, एक खास रंग और खास स्वाद होगा, कुएँ के पानी से अलग, दरियाओं के पानी से भी अलग। इस प्रकार सैकड़ों क़ानूनों का पाबन्द, उसे किसकी मशीयत (हिकमत और मस्लहत) किसकी शक्ति और किसकी हुकूमत ने कर रखा है ? बारिश का विशेष फ़सलों में, विशेष मौसमों में, विशेष वायुमण्डल के परिवर्तन के अन्तर्गत होना, भाप का एक खास गर्मी पाकर समुद्र के पानी के भण्डार से उठना, एक विशेष फ़ासले तक ऊपर जाना, एक खास दर्जे की सर्दी पाकर उन भाप और हवा के अंशों का जम जाना, बादल का रूप धारण करना, एक खास वज़न के बादलों का वायुमण्डल में सँभले रहना, फिर विभिन्न वायुमण्डलीय तब्दीलियों के साथ अमुक-अमुक इलाक़ों में जाना, फिर एक बँधी हुई मात्रा में एक नियमित समय के भीतर बरसना और उससे नये सिरे से सूखी भूमि में जान पड़ जाना, यह सारे रद्दोबदल किसी हकीम की हिकमत, किसी बादशाह की हुकूमत, किसी क़ादिर की क़ुदरत की कैसी खुली हुई गवाही दे रहे हैं। फिर वनस्पति की ज़िन्दगी के अतिरिक्त स्वयं जानदारों का जीवन जिन आश्चर्यजनक बातों का समूह है। हर जीवित बाड़ी के भीतर अनगिनत कण और 'मालीकिवल' होते हैं। उनमें एक विशेष क्रम होता है और एक नियत तरकीब होती है। एक विशेष डिग्री की गर्मी, जो जीवन को क़ायम रखती है। एक खास मात्रा की ठण्ड, जो इस समूह में एकत्र होने की शक्ति और इस एकत्रित समूह में फैल जाने का गुण पैदा कर देती है। खाने की व्यवस्था, श्वास का प्रबन्ध, नस्ल के बढ़ाव की व्यवस्था, जिस्म के विभिन्न भागों का इन्तिज़ाम इत्यादि, जिस्म के भीतर अनेक प्रबन्ध, फिर हर इन्तिज़ाम के हज़ारों नियम और क़ायदे। इस सारी व्यवस्था के पीछे किसका शक्तिशाली हाथ काम कर रहा है ? यहाँ किसकी हुकूमत है ? कौन यह ज़बरदस्त व्यवस्था कर रहा है ? इस प्रकार के सहेसरों हज़ारों प्रश्नों पर मनुष्य जितनी गम्भीरता से ध्यान करेगा, उतना ही वह अद्वैत (तौहीद) और तौहीदी हिकमतों का नक़्श दिल पर बिठाता जायेगा। जाहिली और ग़ैरमोमिन क़ौमों के फ़लसफ़े का केवल दृष्टिकोण ग़लत होता है। यदि उसको सही कर दिया जाये और इन भौतिक ज्ञानों और कलाओं का अवलोकन ईमानी दृष्टि से आरम्भ कर दिया जाये, तो नास्तिकता, सन्देह और इल्हाद (बेदीनी) के स्थान पर खुदा की पहचान और सच्चे ईमान की राहें प्रशस्त होती जायें। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि इस आयत में बनाई हुई चीज़ों से बनानेवाले की दलील है और सूफ़ियों के मुराक़िबे ज्ञान-ध्यान) की यही वास्तविकता है।

८१ **'निद्द'** के मानी हेतु हाशिया ८, पारः १ देखें। किसी वस्तु का 'निद्द' या 'नदीद' उसे कहते हैं, जो उसके अस्ल जौहर (सत्य) में सम्मिलित हो। **'अन्दादन्'** से मुराद है बुत, मूर्ति, देवता आदि, रईस लोग, सरदार और क़ौम के बड़ों के भी मानी लिये गये हैं। तीसरा क़ौल यह है कि इन सबसे ज़्यादा विशाल अर्थ ऐसे शब्दों का यह है कि हर ऐसी चीज़ का बयान है, जो अल्लाह तआला के अलावा दिल पर छा जाये और इमाम राज़ी ने इस क़ौल को सूफ़ियों और अल्लाह के निकट पहुँचनेवाले व्यक्तियों से सम्बद्ध किया है।

८२ चुनांचे देखने में आया है कि आज भी मसीहियों को ज़्यादा सम्बन्ध और लगाव खुदा से ज़्यादा 'उसके बेटे' से होता है, फिर 'रूहुल् क़ुदुस' और फिर 'पवित्र कुँआरी' से है। हिन्दुओं को इसी प्रकार मुहब्बत अपने ईश्वर से ज़्यादा दुर्गा माई, लक्ष्मी, अग्निदेवता और देवियों और ऋषियों, मुनियों और साधुओं के साथ होता है। **'क हुब्बिल्लाहि'** इस फ़िक़रे ने इसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि ग़ैरअल्लाह से मुहब्बत मना नहीं है, बल्कि माँ, बाप, भाई, बहिन, बेटे, बेटी, अज़ीज़ों, मित्रों, साथियों से तो मुहब्बत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साधारण रूप से रख ही दी गई है। शरीअत के इमामों और बुज़ुर्गों से स्नेह रखना अच्छा माना गया है, बल्कि एक सीमा तक आवश्यक भी है। हाँ ! जो मुहब्बत हराम है, वह महबूब को अल्लाह के दर्जे तक पहुँचानेवाली मुहब्बत है। "या अली !" "या हुसैन !" "या ख़्वाजा !" "या ग़ौस !" "या वारिस !" के नारे लगानेवाले ज़रा अपने दिलों को टटोलें कि मुहब्बत का कितना हिस्सा अल्लाह के लिए बाक़ी रखा है और कितना दूसरों की नज़्र हो चुका। इब्नुल् क़य्युम ने यहाँ अपनी और अपने शेख़ इब्ने तैमिया की ओर से यह नुक्ता ख़ूब लिखा है कि यह ग़ैरअल्लाह के साथ शिर्क उसकी जो सिफ़त पालनेवाले और पैदा करनेवाले की है, उसके साथ नहीं, या इसलिए कि ग़ैरअल्लाह को रब और पैदा करनेवाला कौन मानता है, बल्कि ताज़ीम (सम्मान), आदर और मुहब्बत की इफ़्रात (बाहुल्य) के कारण था। मोमिन को जो स्नेह और निस्स्वार्थ मुहब्बत और अक़ीदा होता है, वह बस अल्लाह ही से होता है, न कि ग़ैरअल्लाह से।

८३ यानी मोमिन की मुहब्बत अव्वली अल्लाह तआला के साथ उसकी तमाम दूसरी मुहब्बतों पर ग़ालिब एवं छाई रहती है। आयत ने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि मोमिन का वास्तविक स्नेह और उसकी मुहब्बत अल्लाह तआला के साथ होती है। काश इस आयत को वह मसीही मिशनरी आँख खोलकर पढ़ें, जो कहते हैं कि इस्लाम का ख़ुदा एक भयावह क़िस्म का माबूद (पूज्य) है।

८४ (तो फिर अज़ाब की नौबत ही क्यों आती ?) **'लौ'** का जवाब छुपा हुआ है यानी यह कि अल्लाह का अज़ाब बड़ा कठोर और बेपनाह है।

८५ (और कोई व्यक्ति इस अज़ाब को दूर करने की शक्ति नहीं रखता) "और क्या ख़ूब होता, अगर यह ज़ालिम मुश्रिक जब दुनिया में किसी मुसीबत को देखते तो उसके घटित होने में ग़ौर करके यह समझ लिया करते कि सब शक्ति अल्लाह की ही है। और दूसरे सब उसके सामने विवश हैं और इसी मुसीबत की कठोरता पर ध्यान दे लिया करते कि अल्लाह तआला का अज़ाब आख़िरत में, कि वह बदले का स्थान है, और भी सख़्त होगा। तो इस प्रकार ग़ौर करने से तराश हुए भगवानों की विवशता और उनकी मजबूरी और हक़ तआला की शक्ति और उसकी ज़बरदस्त ताक़त और भी स्पष्ट होकर तौहीद का इत्मीनान इख़्तियार कर लेते।" (थानवी)।

८६ (आख़िरत में) इस शिद्दत और सख़्ती से अज़ाब आख़िरत के आलम में ही प्रकट होगा।

८७ (क़यामत में) यहाँ वह दृश्य दिखाया गया है, जब मुश्रिकों के आलिम और उनके बड़े रहनुमा और गुरुजन अपने अनुयाइयों और अपनी पैरवी करनेवालों से पृथक् होने का एलान कर देंगे और उन्हें बेसहारा छोड़ देंगे।

८८ ग़लतपरस्तों और झूठे ख़ुदाओं के माननेवालों के जो भी आपसी सम्बन्ध हैं, गुरु-चेले के, एक परिवार या एक देश के और मित्रता के, यह सभी इसी दुनिया तक सीमित हैं। आख़िरत में, जो सच्चाइयों के निरीक्षण और अवलोकन करने का समय होगा, सब एक दूसरे से निस्सम्बन्धित, बल्कि परस्पर विरोधी दिखाई देंगे। **'अल्अस्बाबु'**, **'वुस्लात्'** के मानी में हैं, यानी वह रिश्ते, जो उन्हें दुनिया में जोड़े रखते थे।

८९ (ग़म तथा ग़ुस्सा और बदले की भावना के साथ) सच्ची बातों के सामने आने के पश्चात् मस्तिष्क अवश्य बदल जायेंगे। काफ़िरों की ज़बान से दुनिया में एक बार फिर जाने की आरज़ू और तमन्ना का वर्णन क़ुर्आन मजीद में कई स्थानों पर आया है।

९० (दुनिया में)।

९१ यानी यह इच्छा पूरी न होगी और यह इच्छा काँटा बनकर हमेशा खटकती रहेगी। **'हसरातिन्'**— पश्चात्ताप की अत्यन्त सीमा का नाम है।

९२ दोज़ख की सज़ा हमेशा क़ायम रहेगी, इस विषय पर यह एक खुली हुई गवाही है। शेख़ रशीद रज़ा ने अपने शेख़ एवं गुरु मुहम्मद अब्दा के हवाले से लिखा है कि तफ़्सीर करनेवालों ने ऐसी आयतों के अन्तर्गत यह जो लिख दिया है कि यह केवल काफ़िरों के लिए विशिष्ट हैं, तो इससे अफ़्सोस है कि मुसलमानों ने यह समझ लिया कि उनके लिए कोई पूछताछ है ही नहीं और उनके लिए केवल 'कलमए तौहीद' का इक़रार पर्याप्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १६५ से)

९६ (चाहे उसका ऊपरी और दिखावटी रूप कैसा भी निर्दोष और सुन्दर हो) यहाँ यह बात अच्छी तरह समझ ली जाये कि शैतान जब भी बन्दों के पास आता है, अपनी अकेली और अस्ली शक्ल में आने के बजाय किसी न किसी फ़रेब देनेवाली सुन्दर शक्ल बनाकर आता है। **'अिन्नमा'** कलमा हस्र है यानी इसके स्पष्ट अर्थ यह हैं कि शैतान से हमेशा शैतानी का ही प्रदर्शन होगा। किसी नेकी का उसके माध्यम से प्रकट होना असम्भव है। कभी-कभी देखने में शैतान नेकी की ओर आमन्त्रित करते हुए प्रतीत होता है। वहाँ भी उसका उद्देश्य यही होता है कि अन्ततोगत्वा वह बदी और पाप की ओर ही ले जायेगा। **'सू'** व **'फ़हूशा'** दो शब्द अर्थ में निकट हैं, परन्तु अर्थ एक नहीं है। **'सू'** वह वस्तु है, जो बुद्धि में भी नागवार हो और **'फ़हूशा'** वह है जो शरीअ़त में बुरी है। यह भी फ़र्क़ किया गया है कि 'सू' में कोई शरा की सीमा नियत नहीं है और **'फ़हूशा'** में शरा की सीमा निर्धारित होती है। यह अर्थ इब्ने अब्बास से सम्बन्धित है। **'अल्फ़हूशा'** का एलान बलात्कार और स्थायी बलात्कार तक सीमित नहीं, बल्कि इसके अन्तर्गत हर वह गुनाह में आ जाता है, जो बदनामी का कारण हो उसका दर्जा 'अस्सू' से अधिक है।

९७ यानी अपनी ओर से निकाली हुई चीज़ों को ख़ुदा के हुक्मों की भाँति समझने लगो। **'तक़ूलू अलल्लाहि'** क़ौल का सिलः (प्रतिकार) 'अ़ला' के साथ आने पर उसका अर्थ होता है, किसी के खिलाफ़ गढ़ लेना, किसी पर झूठा आरोप लगाना। **'मा ला तअ़लमून'**— यहाँ इल्म का अर्थ विश्वसनीय ज्ञान के हैं या वह ज्ञान जो वही के ज़र्ये सिद्ध हो चुका हो, अतः इस तम्बीह एवं चेतावनी के अन्तर्गत कुफ़्र ही नहीं बिद्अ़त के क़ौल भी आ जाते हैं।

९८ (और अल्लाह की शरीअ़त की मातहती में आ जाओ या उसके आधीन हो जाओ।) **'मा अन्ज़लल्लाहु'** यानी अल्लाह ने जो कुछ अपने पैग़म्बरों के माध्यम से उतारा है। बस इसकी जाँच-पड़ताल उस पर अमल करने के पूर्व कर लेना आवश्यक है कि वह ख़ुदाई हुक्म है भी या नहीं।

९९ जैसे कि अपने पूर्वजों के तरीक़ों में उनको ग़लती और त्रुटि की कोई सम्भावना ही नहीं दिखाई पड़ती। इस प्रकार एक बात पर जमे पड़े रहना और कुछ समझने का प्रयास न करना, यही चीज़ गुमराही है और यही अज्ञानता है। आज मुश्रिक क़ौमों और नासमझ फ़िरक़ों का भी यही हाल है कि जब उन्हें सत्य और सच्चे दीन की ओर बुलाया जाता है, तो वह अपने बाप-दादों की रस्मों और उन्हीं के रिवाजों को पेश कर देते हैं और यह खोज और छान-पछोड़ ज़रा भी नहीं करते कि कौन सा हुक्म आसमानी है और कौन नहीं है।

१०० यानी न तो दीन और उसकी सच्चाइयों को समझते हों और न किसी आसमानी पुस्तक के अन्तर्गत कोई निर्देश ही उनको प्राप्त हों। बाज़ गुमराह फ़िरक़ों ने आयत से फ़िक़्ह के अनुसरण करने के बारे में नाजायज़ साबित करने का प्रयास किया है, यद्यपि आयत से स्पष्ट यह हो रहा है कि अनुसरण करना बिल्कुल जायज़ है। आयत में जिस बात की बुराई की गई है वह अनुसरण नहीं, बल्कि गुमराह तथा नासमझ बाप-दादों की पैरवी की बुराई की गई है। और यह प्रतिबन्ध इस बात की दलील है कि जो लोग शोध करनेवाले हैं, उनका अनुसरण न केवल जायज़ है, बल्कि एक अनिवार्य बात है। किसी मरीज़ से यदि यह कहा जाये कि तुमने भी क्या मूर्खता की कि एक अनपढ़ और अनाड़ी का इलाज शुरू कर दिया, तो ज़ाहिर है कि इस बात से इलाज की बुराई नहीं होती, बल्कि अनाड़ी और अनपढ़ की बुराई होती है। इलाज की ज़रूरत और उसके उद्देश्य की महत्ता भी ज़ाहिर होती है। हाँ! शोधकों ने यह बात भी स्पष्ट कर दी है कि अनुसरण अक़ीदों में नहीं होता, केवल आदेशों का होता है। अक़ीदों के बारे में किताब और सुन्नत ही वास्तविक मेयार हैं।

१०१ (बेहिसी और नासमझी में) यहाँ पर ज़िक्र सच्चाई के दावत देनेवाले की दावत का हो रहा है।

१०२ यानी उस पशु की भाँति, जिसने कान में पुकारनेवाले के शब्द और आवाज़ तो आ रही है, बाक़ी वह अर्थ और मतलब कुछ नहीं समझता, बस वही मामला यह मुन्किर (कृतघ्न) हक़ की दावत के साथ कर रहे हैं। दावत देनेवाले के शब्द तो सुन लेते हैं, परन्तु उसके माने और अर्थ पर ध्यान ही नहीं देते। **'सुम्मुन्'** यानी हक़ की आवाज़ की तरफ़ से बहरे हैं। **'बुक्मुन्'** यानी हक़ के इक़रार के लिए

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १६६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या' अय्युहन्नासु कुलू मिम्मा फ़िल्अर्ज़ि हलालन् तय्यिबन् ज़ सला व'व ला तत्तबिअ़ू
ख़ुतुवातिश्शैतानि त अिन्नहू लकुम् अ़दुव्वुम्मुबीनुन् (१६८) अिन्नमा यअ्मुरुकुम्
बिस्सू'अि वल्फ़ह्शा'अि व अन् तक़ूलू अ़लल्लाहि मा ला तअ़्लमून (१६९)
व अिज़ा क़ील लहुमुत्तबिअ़ू मा' अन्ज़लल्लाहु क़ालू बल् नत्तबिअ़ु मा'
अल्फ़ैना अ़लैहि आबा'अना त अवलौ कान
आबा'अुहुम् ला यअ़्क़िलून शैअंव्व ला
यह्तदून (१७०) व मसलुल्लज़ीन कफ़रू
क मसलिल्लज़ी यन्अ़िक़ु बिमा ला यस्मअ़ु
अिल्ला दुआ'अंव्व निदा'अन् त सुम्मुम्-
बुक्मुन् अुम्युन् फ़हुम् ला यअ़्क़िलून (१७१)
या' अय्युहल्लज़ीन आमनू कुलू मिन्
तय्यिबाति मा रज़क़्नाकुम् वश्कुरू
लिल्लाहि अिन् कुन्तुम् अिय्याहु तअ़्बुदून
(१७२) अिन्नमा हर्रम अ़लैकुमुल्मैतत
वद्दम व लह्मल्ख़िन्ज़ीरि व मा' अुहिल्ल
बिही लि ग़ैरिल्लाहि ज फ़ मनिज़्तुर्र
ग़ैर बाग़िंव्व ला आदिन् फ़ ला' अिस्म अ़लैहि त अिन्नल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीमुन्
(१७३) अिन्नल्लज़ीन यक्तुमून मा' अन्ज़लल्लाहु मिनल्-किताबि व
यश्तरून बिही समनन् क़लीलन् ला अुला'अिक मा यअ्कुलून फ़ी
बुतूनिहिम् अिल्लन्नार व ला युकल्लिमुहुमुल्लाहु यौमल्-क़ियामति व ला
युज़क्कीहिम् ज सला व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीमुन् (१७४) अुला'अिकल्लज़ीनश्तर-
वुज़्ज़लालत बिल्हुदा वल्अ़ज़ाब बिल्मग़्फ़िरति ज फ़ मा' अस्बर हुम्
अ़लन्नारि (१७५) ज़ालिक बिअन्नल्लाह नज़्ज़लल्किताब बिल्-हक़्क़ि त
व अिन्नल्लज़ीनख़्तलफ़ू फ़िल्किताबि ल फ़ी शिक़ाक़िम्-बअ़ीदिन् (१७६) ★ ●

★ रु, २१ । ५ आ ६ ● रु ब, क्ष १ । ४

سيقول ٢ البقرة

النّار ۝ يا أيّها النّاس كلوا ممّا في الأرض حلالًا طيّبًا ولا تتّبعوا
خطوت الشّيطن إنّه لكم عدوّ مّبين ۝ إنّما يأمركم
بالسّوء والفحشاء وأن تقولوا على الله ما لا تعلمون ۝ وإذا قيل
لهم اتّبعوا ما أنزل الله قالوا بل نتّبع ما ألفينا عليه اباءنا
أولو كان اباؤهم لا يعقلون شيئًا ولا يهتدون ۝ ومثل الّذين
كفروا كمثل الّذي ينعق بما لا يسمع إلّا دعاء ونداء صمّ
بكم عمي فهم لا يعقلون ۝ يا أيّها الّذين امنوا كلوا من
طيّبت ما رزقنكم واشكروا لله إن كنتم إيّاه تعبدون ۝
إنّما حرّم عليكم الميتة والدّم ولحم الخنزير وما أهلّ به
لغير الله فمن اضطرّ غير باغ ولا عاد فلا إثم عليه إنّ الله
غفور رّحيم ۝ إنّ الّذين يكتمون ما أنزل الله من الكتب
ويشترون به ثمنًا قليلًا أولئك ما يأكلون في بطونهم إلّا
النّار ولا يكلّمهم الله يوم القيمة ولا يزكّيهم ولهم عذاب
أليم ۝ أولئك الّذين اشتروا الضّللة بالهدى والعذاب
بالمغفرة فما أصبرهم على النّار ۝ ذلك بأنّ الله نزّل
الكتب بالحقّ وإنّ الّذين اختلفوا في الكتب لفي شقاق
بعيد ۝ ليس البرّ أن تولّوا وجوهكم قبل المشرق والمغرب

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐ इन्सानो ! ज़मीन पर जो कुछ हलाल और पाकीज़ (पवित्र) मौजूद है, उसमें से खाओ (पियो)[९३], और शैतान के पद-चिह्नों का अनुसरण न करो[९४]। वह तुम्हारा खुला हुआ शत्रु है[९५]। (१६८) वह तो तुम्हें बस बुराई और गन्दगी का ही आदेश देता है[९६], और इसका कि तुम अल्लाह पर ऐसी बातें गढ़ लो जिसका तुम ज्ञान नहीं रखते[९७]। (१६९) और जब उनसे कहा जाता है कि जो कुछ अल्लाह ने उतारा है उसका अनुसरण करो[९८], तो वह कहते हैं कि नहीं, हम तो उसकी पैरवी करेंगे जिस पर हमने अपने बाप-दादों को पाया है[९९]। चाहे उनके बाप-दादा न ज़रा भी बुद्धि रखते हों, न हिदायत रखते हों[१००]। (१७०) और जो लोग काफ़िर हैं उनका हाल तो उस व्यक्ति जैसा है[१०१], जो ऐसे जानवर के पीछे चिल्ला रहा है जो कुछ सुनता ही नहीं, सिवाय बुलाने और पुकारने के। (यह लोग) बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं; सो (कुछ भी) नहीं समझते[१०२]। (१७१) ऐ ईमानवालो ! पाक चीज़ों में से जो हमने तुम्हें दे रखी हैं, खाओ (पियो)[१०३], और अल्लाह का शुक्र अदा करते रहो[१०४] अगर तुम खास उसी की बन्दगी करनेवाले हो[१०५]। (१७२) उसने तुम पर बस मुरदार, और ख़ून, और सुअर का मांस, और जो (जानवर) ग़ैरअल्लाह के लिए नामज़द (निश्चित) किया गया हो, हराम किया है[१०६]। लेकिन इसमें जो व्यक्ति बेचैन हो जाये (अत्यन्त आवश्यकता में पड़ जाये)[१०७] और न बेहुक्मी करनेवाला हो, और न हद से निकल जानेवाला हो, तो उस पर कोई गुनाह नहीं[१०८]। बेशक अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला, बड़ा रहमतवाला है[१०९]। (१७३). बेशक जो लोग अल्लाह की उतारी हुई किताब को छुपाते हैं और उसके मुआविज़े (बदले) में मामूली क़ीमत हासिल करते हैं[११०], सो ऐसे लोग तो अपने पेटों में बस आग ही आग भरते हैं[१११]। और अल्लाह क़यामत के दिन उनसे बात न करेगा[११२] और न उन्हें पाक करेगा[११३]; और उनके लिए दर्दनाक अज़ाब ही है[११३] (अ)। (१७४) यह वह लोग हैं जिन्होंने गुमराही को ख़रीद लिया है हिदायत के बदले में और अज़ाब को नजात के बदले में। और यह लोग कैसा जीवन रखते हैं दोज़ख़ के लिए[११४]। (१७५) और यह (सज़ा) इसलिए होगी कि अल्लाह ने किताब को (बिल्कुल) ठीक-ठीक उतारा था[११५], और बेशक जो लोग किताब के विषय में विरोध उत्पन्न कर रहे हैं, वह (बड़े) दूर-दराज़ के विरोध में पड़े हुए हैं[११६]। (१७६) ★ ●

★ रु. २१/५ आ ६ ● रु ब/क्ष १/४

---

९३ यानी खा सकते हो, यह बिल्कुल जायज़ है कि खाओ-पियो, खाने की इजाज़त मिल रही है, न कि आदेश। यह खिताब साधारण मानव की नस्ल से है। दीनें-हनीफ़ इब्राहीमी को छोड़कर यहूद, नसारा, मुश्रिक, सब ही खाने-पीने के विषय में नाना प्रकार की ग़लतफ़हमी और भ्रम में पड़ गये हैं और मिला-जुलाकर हराम को हलाल और हलाल को हराम के हुक्म में रख रहे थे। **'तय्यिबन्'**— यानी जो ग़िज़ाएँ जायज़ माध्यम से प्राप्त भी की गई हों और जिन पर ग़ैर का अधिकार न हो, मसलन नाजायज़ क़ब्ज़ा न हो, नाजायज़ पावना न हो —इत्यादि। हज़रत इब्ने अब्बास, जो क़ुर्आन के बेहतरीन अनुवादक सहाबी थे, ने रिवायत की है कि सअ़द बिन अबी विक़ास सहाबी ने रसूल (स०) से निवेदन किया कि आप दुआ करें कि अल्लाह मुझे ऐसा बना दे कि जो दुआ करूँ खुदा सुन लिया करे। हुज़ूर ने फ़र्माया कि लाज़िम कर लो कि हलाल ही खाना खाया करोगे। स्वयं तुम्हारी दुआएँ सुनी जाया करेंगी। यह है इस्लाम में हलाल की रोज़ी की अहमीयत। **'तय्यिबन्'— 'तय्यिब'** के मानी स्वादिष्ट के भी होते हैं और इसकी तफ़्सीर लज़ीज़ एवं नफ़ीस से ही आई है। इस्लाम राहिबों (सांसारिकसुख-विरक्त ईसाई पुरुष), संन्यासियों और स्वाद छोड़नेवालों का मज़हब नहीं। स्वादिष्ट और ज़ायक़ादार चीज़ों को तो क़ुर्आन मजीद ने प्रशंसा के साथ स्मरण किया है।

९४ (अल्लाह की जायज़ की हुई चीज़ों को हराम और उसकी हराम की हुई चीज़ों को हलाल ठहरा कर) हुक्म तो हर शैतानी तरीक़े के लिए साधारण रूप में है, परन्तु यहाँ पर विशेष रूप से हराम ग़िज़ाओं और पदार्थों से सम्बद्ध है।

९५ [और इसी दुश्मनी के तक़ाज़े से मनुष्य को उलटी सलाहें और क़ानूनें-इलाही तोड़ने की तर्ग़ीब (लालच) देता रहता है। इसलिए किसी नफ़े की, ख़ैरख़्वाही की उम्मीद ही न रखो।]

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १६३ पर)

© 2020 Adabi Tigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १९३ से)

उनकी ज़बानें गूंगी हैं। **'दुआ'अन्'** व **'निदा'अन्'** 'दुआ' और 'निदा' में यह फ़र्क़ किया गया है कि दुआ क़रीब के लिए है और निदा दूर के लिए है। इससे मिलता-जुलता एक वाक्य तौरेत में भी मौजूद है— ''वह नहीं जानते और नहीं समझते कि उनकी आँखें ले ली गई हैं, सो वह देखते नहीं, और उनके दिल भी सो वह समझते नहीं।'' (अल्यसिआह— १८ : ४४)।

१०३ यानी खा-पी सकते हो, खाने-पीने की आज्ञा है। इजाज़त है, हुक्म नहीं है; लेकिन यह शौक़ दिलाया गया है, क्योंकि अल्लाह अपने परस्तारों को अपनी नेमतों का स्वाद लेने का आमन्त्रण कर रहा है, उन पर कोई पाबन्दी नहीं लगा रहा है। इस्लाम का मिज़ाज राहिबाना और जोगियाना नहीं है। **'कुलू'** यहाँ शाब्दिक अर्थ में केवल खाने तक सीमित नहीं किया है, बल्कि हर प्रकार का उचित लाभ उठाना इसके भीतर आ गया। **'या' अय्युहल्लज़ीन आमनू'** अब तक जनसाधारण से सम्बोधन था, ताकि हराम तथा हलाल के विषय में मुश्रिकों की ग़लती ज़ाहिर हो जाये। अब केवल मोमिनों से सम्बोधन है। उनसे फ़र्माया जा रहा है कि हलाल तथा हराम के विषय में जाहिलीयत के लोगों का अनुसरण न करें। **'तय्यिबातिन्'** का दूसरा अनुवाद ''स्वादिष्ट वस्तुएँ'' भी हो सकता है। **'तय्यिबात'** के लिए हाशिया ९३ अभी गुज़र चुका है।

१०४ (ज़बान से भी और अमल से भी) यानी इन नेमतों की क़द्र करते रहो। उनके हक़ अदा करते रहो, कंजूसी से काम न लो। उन्हें नाजायज़ स्थान पर प्रयोग न करो। **'उश्कुरू'** शुक्र इस बात का कि उसने रोज़ी प्रदान की और वह भी हलाल और तय्यब। यहाँ ज़रूरी होने की बात है, केवल जायज़ होने की नहीं।

१०५ यानी अगर अपने ईमान और सच्चाई के दावे में सच्चे हो तो अल्लाह के हुक्मों पर अमल करो और उसके मुक़र्रर किये हुए हक़ अदा करते रहो।

१०६ यानी पशुओं के सिलसिले में तो शरीअ़त-इलाही की हराम की हुई बस यह चीज़ें हैं, न कि वह चीज़ें जो तुमने अपनी मर्ज़ी से गढ़ रखी हैं। यहाँ मुश्रिकों द्वारा उन तमाम हराम की हुई चीज़ों का वर्णन और उनकी काट की जा रही है, जो उन्होंने अपनी मर्ज़ी से गढ़ ली थीं। बाक़ी जो चीज़ें सही हदीस के आधार पर या किसी अन्य दलील पर शरा ने हराम की हैं, उनसे आयत को कोई विवाद नहीं है। **'अल्मैतत'** यानी मुरदार वह जानवर है, जो बिना किसी के हलाक किये स्वयं मर जाये या हलाक तो किया जाये, लेकिन शरा के अनुसार ज़िबह न किया जाये। जीवित जानवर के मांस का यदि कोई भाग काट लिया जाये तो वह भी मुरदार ही माना जायेगा। हनफ़ीया के यहाँ मुरदार से किसी प्रकार का भी लाभ उठाना जायज़ नहीं है। यहाँ तक कि मुरदार जानवर का गोश्त कुत्तों और शिकारी परिन्दों को खिलाना भी जायज़ नहीं है, क्योंकि यह भी उससे लाभ उठाना ही हुआ। क़ुर्आन मजीद में मुरदार की हुरमत (हराम होना) स्पष्ट रूप में है। परन्तु सफ़ाई के पश्चात् मुरदार की हड्डी और खाल आदि पाक हो जाती है और वह मुरदार नहीं मानी जाती। यह मसला हदीसों से साबित है। फ़िक़ह के इमामों, ख़ासकर हनफ़ीया फ़िक़ह का यही मज़हब है। हदीसें भी इस प्रकार की मौजूद हैं। दो जानवर ऐसे हैं, जो बिना ज़िबह किये भी जायज़ हैं, एक टिड्डी, दूसरी मछली। फ़क़ीहों और तफ़्सीर करनेवालों ने इस विषय में इस मसले को भी बयान कर दिया है कि जिन ग़िज़ाओं में ज़बीहे का सवाल ही नहीं पैदा होता, वह मजूस और मुश्रिकों और सब ग़ैरकिताबियों के यहाँ भी जायज़ हैं। **'अद्दमु'**— यानी ख़ून जारी या बहता हुआ। और सूरए इनआम में 'दमे-मस्फ़ूह' का प्रतिबन्ध स्वयं मौजूद है और फ़क़ीहों का सामूहिक निर्णय है कि 'दम्म', जो यहाँ अपनी विशेष शक्ल में है, वह इसी मस्फ़ूहियत के प्रतिबन्ध के साथ हराम है। इस पर उम्मत के फ़क़ीहों की सहमति है कि जारी ख़ून हराम भी है और नापाक भी, न उसका खाना जायज़ है और न उससे नफ़ा उठाना जायज़ है। सहीह हदीस की रू (मुख) से दो जमे हुए ख़ून हलाल हैं, एक जिगर, दूसरे तिल्ली और उनके हलाल होने पर उम्मत के फ़क़ीहों की सहमति है। अगर्चे आलिमों ने यह भी कहा है कि जिगर और तिल्ली ख़ून की परिभाषा में आते ही कब हैं। वह तो गोश्त की भाँति की वस्तुएँ हैं, और न इस विशेषता और अलाहदगी की आवश्यकता ही थी। **'व लहमुलख़िन्ज़ीरि'** क़ुर्आन पाक में स्पष्टता के साथ सुअर को हराम कहा गया है, परन्तु उम्मत के आलिमों और फ़क़ीहों का विचार है कि सुअर का केवल मांस ही नहीं, उसकी हड्डी, चरबी, खाल, बाल सब ही कुछ हराम है। मांस की बात केवल इस कारण कही गई है कि जानवर के जिस्म का केवल मांस ही सबसे अहम होता है और जब मांस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कह दिया तो उसके अन्तर्गत जानवर के दूसरे भाग भी आ गये। जस्सास राज़ी ने लिखा है कि इसकी मिसाल एक दूसरे मसले से भी मिलती है, जहाँ क़ुर्आन मजीद ने शिकार के क़त्ल को अहराम पहननेवाले के लिए हराम कहा है (अहराम— हज के समय पहननेवाला बे-सिला कपड़ा); हालाँकि वहाँ केवल हलाक़ से ही मुराद नहीं है, बल्कि शिकार के सभी कार्य अहराम पहनने की दशा में हराम हैं। बाज़ फ़िरक़ों के इस क़ौल के जवाब में कि गोश्त के हराम करने से चरबी का हराम होना कहाँ आवश्यक हुआ? फ़क़ीह इब्नुल् अरबी मालिकी कहते हैं कि यह एतराज़ अहले-अ़जम की ओर से हुआ है, जो यह नहीं जानते कि शब्द 'लहम' में 'शहम' भी सम्मिलित रहता है। हाँ! 'शहम' में 'लहम' शामिल नहीं होता। जिस प्रकार हर हम्द शुक्र है, परन्तु हर शुक्र हम्द नहीं है। और ऐसा ही क़रतबी ने भी कहा है और मशहूर साहित्यकार ज़िमखशरी ने कहा है कि अरब जब 'लहम समीन' बोलते हैं, तो इसका अर्थ होता है चर्बीला गोश्त और 'शहम' तो उसी के अन्तर्गत उसी का एक गुण है, रही उसके बदन की नापाकी, तो आलिमों का बहुमत इसको मानता है। अलबत्ता इमाम मालिक का नियम चूँकि यह है कि जीवन स्वयं पाकी की दलील है और हर जानवर, जो ज़िन्दा हो, पाक है; इसलिए वह सुअर की नजासत के भी क़ायल नहीं हैं। सुअर का सारा जिस्म तो नापाक होता ही है, हाँ! उसके बालों से लाभ उठाने की गुंजाइश है, चुनांचे एक हदीस में इसको जायज़ माना गया है। इमाम अबू हनीफ़ा और मुहम्मद वावज़ाई सुअर के बालों से लाभ उठाने को जायज़ समझते हैं। इमाम शाफ़िई जायज़ नहीं समझते हैं। इमाम अबू यूसुफ़ से इसके जायज़ होने के साथ कराहीयत (घृणा) का क़ौल भी पाया जाता है। फ़िक़्ह के हुक्मों और शरअ़ की तरफ़ से हराम किये जाने के अलावा भी सुअर ऐसी नापाक चीज को शरीफ़ तबीयत स्वयं भी गन्दा समझती है और मनोवृत्ति ऐसी होती है कि उसको पसन्द न किया जाये, उससे घृणा अपने आप होती है। यहाँ तक कि शब्द 'खिंज़ीर' (सुअर) के माने हैं गन्दी। अंग्रेजी में भी जितने नाम इस पशु के आये हैं, जैसे Pig, Swine, Hog या इस जानवर के मांस के लिए जो शब्द हैं, जैसे Bacora, Pork, Han, वह भी सब के सब गन्दगी और ग़िलाज़त (म्लेच्छता) की ओर ही संकेत करते हैं, और इसके मांस के, जो हकीमों के अनुसार नुक़्सानदायक है, विशेष रूप से गुर्दे के रोग में, उस पर तो डाक्टर लोग बहुत कुछ लिख चुके हैं। यह इतना नापाक और गन्दा जानवर है कि बाज़ पुरानी क़ौमें, जैसे कि मिस्रवाले लोग, उसे नापाक ही समझते रहे हैं। यहूद के यहाँ भी यह हराम है। आज मसीही क़ौमें, जिस शौक़ से यह गन्दा मांस ताज़ा और सुखाया हुआ प्रयोग में लाती हैं और इसकी चर्बी से जो नाना प्रकार के काम लेती हैं, उसे देखकर तो यही विचार होता है कि घृणा कैसी? आश्चर्य न होगा कि इस पशु की कुछ प्रशंसा मसीही धर्म में दिखायी हों, यद्यपि इसका हराम होना और नापाक होना इंजील में अंकित है— "और सुअर का खुर उसका दो हिस्सा होता है और उसका पाँव चिरा है, पर वह जुगाली नहीं करता, वह भी तुम्हारे लिए नापाक है।" (अहबार— ७ : ११)। "और सुअर के खुर उसके चिरे हुए हैं। यह जुगाली नहीं करता, फिर भी तुम्हारे लिए नापाक है। तुम उसका गोश्त न खाइयो, न उसकी लाश को हाथ लगाइयो।" (इस्तिस्ना— ८ : १२)। **'अहिल्लाल'** के अस्ली माने आवाज़ बुलन्द करने, पुकारने, शोहरत दे देने के हैं। मुराद यह है कि जिस जानवर को इबादत या सम्मान के रूप में किसी मख़्लूक़ के लिए नामज़द कर दिया जाये और नीयत किसी मख़्लूक़ की नज़र देने या भेंट करने की की जाये, वह हराम हो जाता है, चाहे उसके ज़िबह के समय बिस्मिल्लाह भी क्यों न पढ़ ली जाये। शेख सद्दो के नाम के बकरे और इसी प्रकार की चीजें इसी हुक्म के मातहत आती हैं। हदीस में आया है कि जो जानवर के ज़िबह के लिए ग़ैरअल्लाह से सम्बन्ध जोड़ता है, मल्ऊन (धिक्कृत) है, क्योंकि उसने यह मशहूर किया कि यह जानवर फ़ुलाँ के नाम है। ज़िबह के वक़्त ख़ुदा का नाम लेने से कोई फ़ायदा नहीं होगा। (तफ़्सीर फ़तुहुल् अज़ीज़)। जिस जानवर को ग़ैरअल्लाह के लिए नामजद इस नीयत से किया हो कि वह हमसे खुश होंगे और हमारी कार्यवाही करायेंगे, जैसा कि आम जाहिलों की आदत होती है कि इस नीयत से बकरा, मुर्ग़ा वग़ैरा नियत कर देते हैं, वह हराम हो जाता है, अगर्चे ज़िबह के समय उस पर अल्लाह का नाम लिया हो। अलबत्ता अगर इस प्रकार नामजद करने के बाद उससे तौबा कर ले, तब हलाल हो जाता है। बाज़ फ़क़ीहों ने यहाँ तक लिखा है कि अगर किसी हाकिम या सरदार के आने पर भेंट के रूप में ज़िबह करेगा, तो वह भी हराम हो जायेगा, अगर्चे उस पर अल्लाह का नाम लिया गया हो। बल्कि बाज़ फ़क़ीहों ने तो यह भी कह दिया है कि कोई मुसलमान अगर जानवर को ग़ैरअल्लाह के निकट होने के इरादे से ज़िबह करेगा, तो वह मुर्तद हो जायेगा और उसका ज़बीहा मुर्तद का ज़बीहा समझा जायेगा। (मुर्तद— जो दीने-इस्लाम से हट जाये)। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इस आयत के अन्तर्गत यह स्पष्टीकरण दिया है कि मजूसी (आतशपरस्त) और मुश्रिक और लामज़हब के हाथ के ज़बीहे नाजायज़ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०७ यानी हराम ग़िज़ा के प्रयोग पर विवश होकर। **अज़्तर्र-अिज़्तिरारन्'**— ज़रूरत से बना है— अर्थ यह है कि आवश्यकता जब हद से अधिक पड़ जाये तो इन हराम ग़िज़ाओं को भी केवल ज़रूरत या काफ़ी समझते हुए कम ही खा सकते हैं। ऐसी सख्त ज़रूरतें दो हो सकती हैं— (१) भूख की शिद्दत से मालूम होता हो कि दम निकल जायेगा और हलाल भोजन सिरे से मिले ही नहीं या ग़रीबी के कारण उस तक पहुँच न हो पाती हो या फिर किसी बीमारी के कारण हलाल भोजन प्रयोग के योग्य न हो। (२) यह कि कोई हाकिम उस हराम भोजन के लिए विवश कर रहा हो।

१०८ (उन हराम चीज़ों को खा लेने में) बल्कि अवसर तो ऐसे अवसर पर न खाना गुनाह है। क्योंकि जान की रक्षा तो प्रथम कर्तव्य है और ऐसे अवसर पर भोजन न करना आत्महत्या है, जो हराम-ख़ोरी से ज़्यादा बुरी बात है। रोगी और मरीज़ को आखिर इफ़्तार (पथ्य) करा ही दिया जाता है। **'ग़ैर बाग़िन्'**— यानी उसकी नीयत और इरादा नाफ़र्मानी और क़ानून भंग करने का न हो और वह केवल स्वाद की ही इच्छा न करता हो। उसे वास्तव में आवश्यकता हो। ऐसा कदापि न हो कि किसी व्यक्ति के हृदय में अल्लाह के विधान का आदर ही कम हो या वह हराम चीज़ों से स्वाद ही प्राप्त करना चाहता हो। **'बाग़िन्'** के दो अर्थ हो सकते हैं। एक 'दूसरे पर अत्याचार करनेवाला', दूसरे 'स्वाद का इच्छुक'। **'व ला आदिन्'** और न शरा की सीमाओं से आगे बढ़नेवाला यानी मात्रा में भी। बस केवल आवश्यकता भर खाये, यह न हो कि ख़ूब पेट भरकर खाये।

१०९ **'ग़फ़ूर'** ऐसा क्षमा करनेवाला कि बाज़ दफ़ा अपराधों पर भी पूछगछ नहीं करता, बल्कि उन्हें अपराध के रूप में बाक़ी ही नहीं रहने देता। **'रहीम'** ऐसा स्नेह वाला कि तंगी के अवसरों पर सुविधा पहुँचा देता है। इन सिफ़तों को नज़र के सामने रखकर हर मोमिन मुस्लिम को, जो क़ुदरती घृणा हराम चीज़ों की तरफ़ होती है, वह कम हो जायेगी और वह इजाज़त से लाभ उठाने पर आमादा हो जायेगा।

११० यहूद की ओर से संकेत है, जो अपने यहाँ की अस्ल आसमानी शिक्षाओं को छुपाते थे और इस हक़ को छुपाने से उनका उद्देश्य यह था कि कुछ दुनियावी लाभ की प्राप्ति करें। **'समनन् क़लीलन्'** का यह अर्थ नहीं है कि ज़्यादा क़ीमत और बड़े मुआविज़े में दीन को बेचना जायज़ है। उसका अर्थ केवल दुनियावी मुआविज़ा है, जो आखिरत के मुक़ाबले में हमेशा कम ही रहेगा।

१११ (कि यह जुर्म सत्य को छुपाने का, उन्हें सीधे जहन्नम की आग की ओर लिये जा रहा है।) यहूद, जो हक़ को छुपाते थे और आसमानी 'वही' की बात छुपाते थे, यह गुनाह हराम की ग़िज़ा से कहीं ज़्यादा था, अतः इस अपराध की सजा भी गम्भीर लिखी गई।

११२ (मेहरबानी और मुलायमियत के तरीक़ों से) जो सम्बोधन सख्ती के रूप में होगा। वह ज़ाहिर है कि इससे पृथक् है। क़यामत में अल्लाह तआला अपने बन्दों से बात करेगा और इससे वंचित रह जाना बड़ी बदनसीबी की बात है।

११३ बर्ज़ख के बाद हश्र में भी जो लोग अपने ईमान और दूसरी नेकियों के आधार पर अपने को गुनाहों से धुला धुलाया और हर पकड़ से पाक पायेंगे, वह भी गोया बड़े सस्ते छूट गये। बड़ी और अस्ली मुसीबत उनकी है, जिनमें क़यामत के दिन ईमान का कोई अंश न पाया जायेगा।

११३ (अ) वाक्य की तरकीब यानी उसके शब्दों की व्यवस्था एवं क्रम में बल और ताकीद सम्मिलित हो गयी है।

११४ (कि उसके लिए तैयार हो गये और यहाँ दुनिया में ईमान एवं इबादत पर और खुदा की आज्ञाकारिता हेतु आमादा न हुए।) **'मा'** आश्चर्य का शब्द है कि अपनी हरकतों के फल और भयंकर नतीजे मालूम हैं, इस पर भी यह शोख़ी (धृष्टता), यह साहस। **'अिश्तरवुज़्ज़लालत बिल्हुदा'** इसका सम्बन्ध इसी दुनिया से है यानी हिदायत (दीन का रास्ता) के बदले गुमराही को स्वीकार कर लिया इसी दुनिया में। **'वल्अ़ज़ाब बिल्मग़्फ़िरति'** इसका सम्बन्ध आलम-आखिरत से है, यानी ईमान न होने का आखिरी परिणाम यह होगा कि आखिरत में क्षमा के बजाय अज़ाब और दण्ड मिलेगा।

११५ (और नासमझ बन्दों ने उसमें अनायास ही अपनी ओर से झूठी सच्ची बातें मिला-जुला दीं और शरारत कर दी।) **'अल्किताब'** का यहाँ अर्थ है तमाम आसमानी पुस्तकें। **'बिल्हक़्क़ि'** यानी बिल्कुल सही और दलीलों तथा गवाहियों के साथ। **'ज़ालिक'** यह इशारा अज़ाब इत्यादि की ओर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११६ (और उसके नतीजे भुगत कर रहेंगे) **'अिख़्तलफ़ू फ़िल्किताबि'** यानी अनायास ही और अपने मतलब के लिए अपनी आसमानी किताब में झगड़े निकाल खड़े किये, अन्यथा अल्लाह् की शिक्षाओं में हर विषय इस क़दर स्पष्ट था कि विरोध करने की कोई बात थी ही नहीं। **'फ़ी शिक़ाक़िम्-बअीदिन्'** अर्थात् भटककर सत्य एवं सच्चाई से बहुत दूर जा पड़े हैं। यह भी अर्थ निकलते हैं कि यह गुमराही उनमें इस कारण से पैदा हो गई कि उन्होंने ख़ुदा के सच्चे कलाम में अपनी ज़ाती इच्छाओं के कारण अनायास विरोध उत्पन्न किये, अतः और ज़्यादा भटक गये।

(फ़ुटनोट सफ़ा २०१ से)

पर नहीं थी। इस्लाम ने, ज़ाहिर है कि किसी दिशा को केवल दिशा के रूप में नमाज़ के लिए नियत नहीं किया। उसने न केवल एक विशिष्ट मकान को यानी काबा को एक केन्द्रीय स्थान दिया है और उसे सबसे आकर्षण का क़िब्ला बनाया, चाहे वह किसी दिशा में पड़े, (चुनांचे) अतः यह देखने में आया है कि काबा मिस्र, तराबलस तथा हब्शा से पूरब में पड़ता है, हिन्दुस्तान, चीन और अफ़ग़ानिस्तान से पश्चिम में पड़ता है, शाम, फ़िलस्तीन और मदीना से दक्षिण में पड़ता है और यमन, लाल सागर के दक्षिणी तटों से उत्तर में और बहुत से स्थानों से इन विभिन्न दिशाओं के विभिन्न कोनों में यह सच्चाई दृष्टि में रहे, तो सन्देह स्वयं समाप्त हो जाता है, और विभिन्न कारणों को स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं रहती। **'अल्मश्रिक़'** सूर्यदेवता शिर्क की दुनिया का महान देवता रहा है। मुश्रिक क़ौमों ने इसकी पूजा भारी संख्या में की है और चूंकि सूर्य पूरब से उदय होता है, अतः आम तौर पर जाहिली क़ौमों ने पूरब को भी पवित्र गरदाना और पूजा के लिए पूरब की दिशा अपना ली। हज़रत मसीह के कुछ ही वर्षों के बाद जब मसीहियों में एक व्यक्ति पोलूस नामक आ घुसा (जिसे एक दुनिया आज सेण्टपाल के नाम से याद करती है) और उसने मसीहीयत का रुख़ मूसा नबी के रास्ते पर ले जाने के बजाय स्थायी रूप से तीन ख़ुदाओं की ओर फेर दिया। रूमी उस समय हाकिम क़ौम थी और जैसे अभी कल तक हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ीयत और साहिबीयत का बोलबाला था और जीवन के हर भाग में उसी का अनुसरण होता था, फ़िलस्तीन में, चूंकि वह रूमियों के आधीन थे, हर व्यक्ति के दिल में रूमी मुश्रिकों की सभ्यता, उनकी विधा, संस्कृति, रहन-सहन, धर्म और विश्वास और उन्हीं की कलाओं की छाप पड़ी हुई थी। रूमी धर्म का एक अंश सूर्य की पूजा भी था। पोलूसी मसीहियों ने जहाँ और बहुत सी मुश्रिकाना रस्में रूमियों से धड़ाधड़ लेकर अपना लीं, वहीं उनसे पूरब की पूजा भी अपना ली और अपनी इबादत पूरब की ओर रुख़ करके करने लगे। मसीहियों के गिरजे आज तक ज़्यादातर पूरब मुँह के चले आ रहे हैं। क़ुर्आन मजीद ने, इस पूरब मुँह होने पर भारी आपत्ति की और यह बता दिया कि यह दिशानुसार पवित्रता तो किसी भी दशा में आराधना और इबादत नहीं है, बल्कि आराधना और इबादत तथा बन्दगी वह है जिनका ब्योरा यही आयत आगे चलकर बयान करती है। **'वल्मग़्रिबु'**— पूरब की पूजा के साथ पश्चिम की पूजा का शिर्क भी यद्यपि कुछ कम हद तक, परन्तु फिर भी काफ़ी हद तक यह बीमारी भी दुनिया में रह चुकी है। सूर्य के उदय एवं अस्त होने पर ध्यान देकर शिर्क की मनोवृत्ति ने यह परिणाम निकाला कि जिस प्रकार जीवन का श्रोत पूरब की दिशा है, उसी प्रकार पश्चिम मृत्यु एवं समाप्ति का केन्द्र है, इसी कारण वह भी सम्मान एवं पवित्रता का अधिकारी है। हाशिया सं० ४३१ तथा ४३२ अवलोकित हों। **'अल्मश्रिक़ि वल्मग़्रिबि'** इन दो ही दिशाओं के नाम लिये गये हैं, परन्तु संकेत सभी दिशाओं की ओर है, इन्हीं दो दिशाओं को विशेषता नहीं दी गई है।

११९ मुश्रिकाना मनोवृत्ति का खण्डन करने के बाद व्याख्या होती है कि वास्तविक आराधना तथा इबादत और बन्दगी यह है जिसका वर्णन अब हो रहा है। आयत के इस अंश में अक़ीदों एवं मतों का ब्योरा शुद्ध किया गया है। **'आमन बिल्लाहि'** इसमें नास्तिकता एवं अधर्म का छुपा हुआ और स्पष्ट, हर रूप का खण्डन हुआ है। ईमान एवं बन्दगी में प्रवेश करने का यही दरवाज़ा है। कोई भी ऐसी व्यवस्था या धर्म (चाहे उसकी बुनियादें अक़्ली हों, आर्थिक हों, नैतिक या राजनैतिक हों), जिस व्यवस्था में अल्लाह् की आयतों और उसके गुणों पर सम्पूर्ण ईमान प्रवेश न पा रहा हो, उसका आराधना और बन्दगी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भौतिकता, बौद्धिकता, कम्यूनिज़्म इत्यादि सब इसी के अन्तर्गत आते हैं और बौद्ध धर्म तथा जैन मत भी, यदि यह सत्य है कि उनमें अद्वैत (तौहीद) अर्थात् ईश्वर का एक होना नहीं पाया जाता। **'वल-यौमिल आख़िरि'** —इसमें उन तमाम गुमराह क़ौमों का खण्डन आ गया, जो ख़ुदा के अस्तित्व को तो मानती हैं, परन्तु यह विश्वास नहीं रखतीं कि एक आख़िरी दिवस भी है और आख़िरत

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २०२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लैसल्बिर्र अन् तुवल्लू वुजूहकुम् क़िबलल्-मश्रिक़ि वल्मग़्रिबि व लाकिन्नल्बिर्र
मन् आमन बिल्लाहि वल्-यौमिल्आख़िरि वल्मलाअिकति वल्किताबि
वन्नबिय्यीन ज व आतल्माल अला हुब्बिही ज़विल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीन
वब्नस्सबीलि ला वस्साअिलीन व फ़िर्रिक़ाबि ज व अक़ामस्सलात व
आतज़्ज़कात ज वल्मूफ़ून बि अह्दिहिम्
अिज़ा आहदू ज वस्साबिरीन फ़िल्-
बअ्साअि वज़्ज़र्राअि व हीनल्बअ्सि त
उलाअिकल्लज़ीन सदक़ू त व उलाअिक
हुमुल्मुत्तक़ून (१७७) याअय्युहल्लज़ीन
आमनू कुतिब अलैकुमुल्-क़िसासु फ़िल्क़त्ला त
अल्हुर्रु बिल्हुर्रि वल्अब्दु बिल्अब्दि
वल्उन्सा बिल्उन्सा त फ़ मन् अुफ़िय लहू मिन्
अख़ीहि शैउन् फ़त्तिबाअुम्-बिलमअ्रूफ़ि व
अदाअुन् अिलैहि बि अिह्सानिन् त ज़ालिक
तख़्फ़ीफ़ुम्-मिर्रब्बिकुम् व रह्मतुन् त
फ़ मनिअ्तदा बअ्द ज़ालिक फ़लहू अज़ाबुन्
अलीमुन् (१७८) व लकुम् फ़िल्क़िसासि
हयातुंय्या उलिल्-अल्बाबि लअल्लकुम् तत्तक़ून (१७९) कुतिब अलैकुम्

अिज़ा हज़र अहदकुमुल्मौतु अिन् तरक ख़ैरनि ज ल्ला अल्-वसिय्यतु
लिल्वालिदैनि वल्अक़्रबीन बिल्मअ्रूफ़ि ज हक़्क़न् अलल्मुत्तक़ीन त (१८०)
फ़ मम्-बद्दलहू बअ्द मा समिअहू फ़ अिन्नमा अिस्मुहू अलल्लज़ीन युबद्दिलूनहू त
अिन्नल्लाह समीअुन् अलीमुन् त (१८१) फ़ मन् ख़ाफ़ मिम्मूसिन् जनफ़न्
औ अिस्मन् फ़ अस्लह बैनहुम् फ़ ला अिस्म अलैहि त अिन्नल्लाह
ह. २२ ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (१८२) ★ या अय्युहल्लज़ीन आमनू कुतिब अलैकुमुस्सियामु
६ आ ६ कमा कुतिब अलल्लज़ीन मिन् क़ब्लिकुम् लअल्लकुम् तत्तक़ून ला (१८३)

سيقول ٢ ٢١ البقرة ٢

وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ وَالْكِتٰبِ
وَالنَّبِيّٖنَ ۚ وَاٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَ
الْمَسٰكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ ۙ وَالسَّآئِلِيْنَ وَفِي الرِّقَابِ ۚ وَاَقَامَ
الصَّلٰوةَ وَاٰتَى الزَّكٰوةَ ۚ وَالْمُوْفُوْنَ بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ وَ
الصّٰبِرِيْنَ فِي الْبَاْسَآءِ وَالضَّرَّآءِ وَحِيْنَ الْبَاْسِ ؕ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ
صَدَقُوْا ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ۝١٧٧ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ
عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ فِي الْقَتْلٰى ؕ اَلْحُرُّ بِالْحُرِّ وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ وَ
الْاُنْثٰى بِالْاُنْثٰى ؕ فَمَنْ عُفِيَ لَهٗ مِنْ اَخِيْهِ شَيْءٌ فَاتِّبَاعٌ ۢ
بِالْمَعْرُوْفِ وَاَدَآءٌ اِلَيْهِ بِاِحْسَانٍ ؕ ذٰلِكَ تَخْفِيْفٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ
وَرَحْمَةٌ ؕ فَمَنِ اعْتَدٰى بَعْدَ ذٰلِكَ فَلَهٗ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝١٧٨ وَلَكُمْ
فِي الْقِصَاصِ حَيٰوةٌ يّٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝١٧٩ كُتِبَ
عَلَيْكُمْ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ اِنْ تَرَكَ خَيْرَا ۖۚ ۨالْوَصِيَّةُ
لِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ۝١٨٠ ؕ
فَمَنْۢ بَدَّلَهٗ بَعْدَ مَا سَمِعَهٗ فَاِنَّمَآ اِثْمُهٗ عَلَى الَّذِيْنَ يُبَدِّلُوْنَهٗ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝١٨١ ؕ فَمَنْ خَافَ مِنْ مُّوْصٍ جَنَفًا اَوْ اِثْمًا
فَاَصْلَحَ بَيْنَهُمْ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝١٨٢ يٰٓاَيُّهَا
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज्ञाकारिता यह नहीं है[११७] कि तुम अपना मुँह पूरब या पश्चिम की ओर फेर लिया करो[११८], बल्कि ताअत (आज्ञाकारिता) यह है कि कोई व्यक्ति अल्लाह और क़यामत के दिन और फ़रिश्तों और किताब और पयम्बरों पर ईमान लाये[११९] और उसकी मुहब्बत में धन बाँटे सगे सम्बन्धियों और बे-माँ-बाप के बच्चों और ग़रीबों और राहगीरों और माँगनेवालों पर[१२०], और गरदनों के आज़ाद कर देने में[१२१]। और नमाज़ की पाबन्दी करते और ज़कात अदा करते[१२२]। और अपने वादों को पूरा करनेवाले जब कि वादा कर चुके हों, और तंगी में और बीमारी में और लड़ाई के वक़्त सन्तोष और सब्र करनेवाले[१२३], यही लोग हैं जो सच्चे उतरे, और यही लोग तो मुत्तक़ी (संयमी) हैं[१२४]। (१७७) ऐ ईमानवालो! तुम पर हताहतों (मक़्तूलों) के विषय में बदला नियत कर दिया गया[१२५]। आज़ाद के बदले में आज़ाद, और ग़ुलाम के बदले में ग़ुलाम, और स्त्री के बदले में स्त्री[१२६]। हाँ, जिस किसी को उसके मुक़ाबिले के भागी की ओर से कुछ क्षमा प्राप्त हो जाये[१२७], सो माँग उचित (और नर्म) विधि पर करना चाहिए[१२८], और माँग को उस (भागी) के पास सुन्दरता से पहुँचा देना चाहिए[१२९]। यह तुम्हारे परवरदिगार की तरफ़ से रिआयत और मेहरबानी है[१३०]। सो जो कोई इसके बाद भी ज़ियादती करेगा उसके लिए आखिरत में अज़ाब भयंकर है[१३१]। (१७८) और तुम्हारे लिए, ऐ समझ रखनेवालो! (क़ानून की) क़िसास (ख़ून के बदले में ख़ून) में ज़िन्दगी है, ताकि तुम परहेज़गार (बुराइयों से बचनेवाले) बन जाओ[१३२]। (१७९) तुम पर फ़र्ज़ किया गया है कि जब तुममें से किसी की मौत आती मालूम होती हो, बशर्ते कि कुछ माल भी छोड़ रहा हो, तो वह माता-पिता और सगे सम्बन्धियों के हक़ में उचित रूप में वसीयत कर जाये। यह अनिवार्य है परहेज़गारों पर (संयमित व्यक्तियों पर)[१३३]। (१८०) फिर जो कोई उसे उसके सुनने के बाद बदल डाले, सो उसका गुनाह बस उन्हीं पर होगा जो उसे बदल डालें[१३४]। निस्सन्देह अल्लाह बड़ा सुननेवाला है, बड़ा जाननेवाला है[१३५]। (१८१) अलबत्ता जिस किसी को वसीयत करने के सम्बन्ध में किसी ग़लती या गुनाह की जानकारी हो जाये[१३६], फिर वह उन लोगों के आपस में सुलह करा दे[१३७], तो उस पर कोई गुनाह नहीं[१३८]। बेशक अल्लाह तआला बड़ा माफ़ करनेवाला है, बड़ा दया करनेवाला है[१३९]। (१८२) ★ ★ रु. २२ / ६ आ ६

ऐ ईमानवालो! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किये गये[१४०], जैसा कि उन लोगों पर फ़र्ज़ किये गये थे जो तुमसे पूर्व हुए हैं[१४१], आश्चर्य न होगा कि तुम संयमी बन जाओ[१४२]। (१८३)

---

११७ (जैसा कि गुमराह और मुश्रिक क़ौमें समझ रही हैं।) क़ुर्आन मजीद के अनेक स्थानों की भाँति यह आयत भी वास्तव में गुमराह एवं मुश्रिक क़ौमों की काट के लिए है और इसका अर्थ पूरी तरह तब ही समझ में आयेगा, जब उनके ग़लत और झूठे अन्धविश्वासों को दृष्टिगोचर रखा जाये। **'अल्बिर्र'**—**'बिर्र'** का अर्थ अरबी में बहुत विशाल के हैं, इसमें नेकी की हर क़िस्म आ गई, उर्दू में इसका पूरा अर्थ 'ताअ़त' यानी आज्ञाकारिता से अदा हो सकता है। (जो भी आदेश ख़ुदा के हैं, उन पर तथा सभी नेकियों पर अमल करना और बुराइयों से बचना।) शब्दकोष वालों को ही नहीं, सभी तफ़्सीर करनेवालों को 'बर्र' के अर्थ की विशालता माना है।

११८ (नमाज़ या इबादत की हालत में या इबादत के समय) इस्लाम के प्रकाशित एवं प्रकट होने के पूर्व अनेक गुमराह क़ौमों में दिशाओं की पूजा होती थी, यानी बेजान देवी, देवताओं, मूर्तियों, पत्थरों, पेड़ों, पहाड़ों तथा नदियों के अतिरिक्त दिशाएँ भी पूजी जाती थीं और विभिन्न जाहिली क़ौमों ने यह विश्वास जमा लिया था कि अमुक विशेष दिशा, जैसे कि पूरब, पवित्र है और अमुक नियत दिशा, जैसे कि पश्चिम, पूजनीय है। क़ुर्आन मजीद यहाँ इसी प्रकार के शिर्क का खण्डन कर रहा है और फ़र्मा रहा है कि किसी दिशा में क्या पवित्रता रखी हुई है? कोई भी दिशा, दिशा के रूप में कदापि पवित्रता नहीं रखती। ताअ़त (अल्बिर्र) से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे तफ़्सीर करनेवाले हज़रात को इस आयत में जो द्विधा नज़र आई, वह केवल इस कारण से, क्योंकि उनकी दृष्टि ग़ैरमज़हबों की इस गुमराही

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा १६६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा १६६ से)

का एक लोक भी है, जहाँ एक दिन सारे कर्मों का सामना करना और एक-एक ज़िन्दगी के दिवस का हिसाब देना है। और तो और यहूद ने अपनी ज़बरदस्त तौहीद के बावजूद आख़िरत के लोक से अपना सम्बन्ध बड़ा कमज़ोर कर रखा था। सज़ा और कर्मों के फल को इसी दुनिया से सम्बन्धित करना, चाहे क़ौमी और सामूहिक उन्नति एवं पतन से, चाहे आवागमन एवं विभिन्न क़ालिबों में रूह के उलटफेर से, यह सारे विचार या मत आख़िरत से नकारने के ही रूप हैं। **'वलमला'अिकति'** फ़रिश्तों पर ईमान लाने के माने हैं कि उन नूरानी एवं अकेले रहनेवाले अविवाहित व्यक्तियों का अस्तित्व अल्लाह के बन्दों और उस ईश्वर के दूतों और कार्यकर्ताओं के रूप में माना जाये, जो इस सृष्टि का अकेला रचयिता है। ऐसा न होना चाहिए कि स्वयं उन दूतों को ही शक्तिशाली, काम बनानेवाला या मुरादों को पूरा करनेवाला मानकर उन्हीं से दुआएँ माँगी जायें और उन्हीं को छोटे पैमाने का आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाला मान लिया जाये। 'मलाइकः' पर इस ईमान से यूनान, रूम, हिन्दुस्तान और ईरान की उन तमाम मुशरिक क़ौमों का खण्डन हो गया, जिन्होंने फ़रिश्तों के ही विचार को बिगाड़कर सृष्टि के विभिन्न भागों के लिए देवियाँ और देवता प्रस्तावित कर लिये हैं। **'वल्किताबि'** किताब यहाँ पर एक संज्ञा है, जिसका अर्थ आसमानी किताबों का विचार, क्योंकि आसमानी किताब का मत भी एक इस्लामी अक़ीदा और विश्वास है। मुशरिक क़ौमें तो इस विचार से वंचित हैं कि अल्लाह के यहाँ से कोई किताब किसी बन्दे पर उतरती है, अहल-किताब यानी नसारा और यहूद भी इस परिभाषा के अनुसार किसी "अल्लाह की किताब" या "ईश्वरीय पुस्तक" को नहीं मानते हैं। उनके यहाँ 'किताब' के केवल यह अर्थ हैं कि ख़ुदा ने हिदायत या निर्देश के लिए किन्हीं व्यक्तियों को चुन लिया और उनके हृदयों में कुछ विषय 'इल्हाम' के रूप में उतार दिये और ऐसा 'इल्हाम' हर 'आरिफ़' (ब्रह्मज्ञानी) या ज्ञानी को हो सकता है, इसके लिए नबूवत कोई अनिवार्यता नहीं है। बाद में उन ज्ञानियों ने उन्हीं विषयों तथा अर्थों को अपने शब्दों में और अपनी इबारतों में व्यवस्थित करके अपने शिष्यों एवं अपने भक्तों को सुना दिया। उन सुननेवालों ने उन्हें अपने-अपने अन्दाज़ में लिख लिया (सिवाय तौरेत की आरम्भ की पाँच सूरतों के, क्योंकि यहूदी-मतानुसार वह स्वयं हज़रत मूसा ने लिखी हैं) अर्थात् इन इल्हामी किताबों की हैसियत कुल वह है, जो हमारे बुज़ुर्गों की जमा की हुई अच्छी बातों यानी 'मल्फ़ूज़ात' (वह पुस्तक, जिसमें महात्माओं के प्रवचन का संग्रह हो) की होती है। कहाँ यह विचार और कहाँ मुसलमानों का यह अक़ीदा कि 'क़ुर्आन मजीद' का एक-एक शब्द, बल्कि एक-एक अक्षर 'वही' किया हुआ है, यानी ईश्वर ने अपने विशेष दूत जिब्रील के द्वारा हमारे नबी (स०) की ज़बान से कहलवाया है, जिसमें किसी मिलावट या ख़ता की सम्भावना ही नहीं है। और मसीही तो जब हज़रत मसीह के नबी होने के ही क़ायल नहीं हैं, बल्कि उनको अल्लाह का अंश और उसका पुत्र मानते हैं, तो हज़रत मसीह का साहिबे-किताब होना उनके यहाँ कोई मानी ही नहीं रखता। कहीं कोई स्वयं अपने ऊपर किताब उतारा करता है। **'वन्नबिय्यीन'** यानी अक़ीदा यह हुआ कि अल्लाह इन्सानों को नबी बनाकर भेजता है। यह न हो कि स्वयं अल्लाह तआला देहसहित इस दुनिया में आ जाता है या किसी देह में समाकर आता है। इस अक़ीदे से अवतार-पूजा, नेचर की पूजा, देह में समाने तथा ईश्वर का देह धारण करने के विचार यानी "अवतार" के विश्वास का खण्डन हो गया। अवतार पयम्बर की ठीक ज़िद और मुक़ाबले की चीज़ है। अवतार का अर्थ यह है कि सृष्टि का रचयिता स्वयं भौतिक रूप धारण करके दुनिया में आ जाता है और यह भी आवश्यक नहीं कि वह देह इन्सान या मानव की हो। शिवजी या विष्णुजी जिस प्रकार रामचन्द्रजी बनकर या श्रीकृष्णजी बनकर आ सकते हैं, उसी प्रकार साँप बनकर, सिंह बनकर या मछली या कछुवे का देह धारण करके भी आ सकते हैं। अर्थात् यह कि अवतार अर्थ अथवा हक़ीक़त के विचार से ईश्वर ही होता है और सूरत और प्रत्यक्ष में मानव या जानवर। पयम्बर इसके विपरीत केवल मानव होता है और हमेशा मानव ही होता है, कभी उसके अतिरिक्त नहीं और न उसके नीचे। और सिवाय इसके कि साहिबे-वही होता है (और इस कारण नैतिक पवित्रता में बेमिसाल और हर प्रकार के अपराधों एवं गुनाहों से पाक होता है), और किसी भी हैसियत से शक्लोसूरत में, चलने-फिरने में, बोलने-बतलाने में, भूख-प्यास, दुःख-सुख में मानवीय गुणों से विशिष्ट नहीं होता। आयत के इतने अंश में क़ुर्आन मजीद ने अपनी मोजिज़ाना संक्षिप्त बयानी और सारगर्भिता से समस्त एतिक़ाद एवं विश्वासों की गुमराहियों की जड़ काट दी और सारे असत्य धर्मों एवं मतों का खण्डन कर दिया। विश्वास की गुमराही जब कभी भी मानव मात्र को घेरेगी, हमेशा अल्लाह पर ईमान, आख़िरत पर ईमान, मलाइकः एवं फ़रिश्तों पर ईमान, किताब पर ईमान तथा नबियों पर ईमान रखने की ही किसी न किसी त्रुटि या भ्रम तथा ग़लतफ़हमी की राह से आयेगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१२० विश्वासों और अक़ीदों को शुद्ध किया जा चुका, तो अब कर्मों की विशुद्धता प्रारम्भ हुई और कर्मों या आमाल में व्योहार की ओर से आरम्भ किया गया। **'अला हुब्बिही'** उसकी मुहब्बत में या उसकी मुहब्बत के होते हुए। संकेत अल्लाह की ओर भी हो सकता है और आमाल अर्थात् कर्मों की तरफ़ भी। गोया यह बता दिया कि माल का उपयोग स्वयं न उद्देश्य है, ही प्रशंसनीय है। उद्देश्य एवं पसन्दीदा और प्रशंसनीय केवल वह धन है, जो अल्लाह की राह में, अल्लाह की रज़ामन्दी के लिए और अल्लाह के दीन के लिए तथा उसकी उन्नति हेतु हो। दूसरा अर्थ यह भी किया गया है कि धन की मुहब्बत के बावजूद माल का उपभोग किया जाये और ख़ुदा की राह में उसे व्यय किया जाये। इसमें एक परिपक्व मोमिन का चित्रण हो गया। धन-दौलत की क़द्र उसके दिल में है। उसकी इच्छाएँ जीवित हैं। वह अपनी ज़ात पर, अपनी पसन्दीदा चीज़ों पर वह व्यय करना चाहता है, परन्तु अल्लाह के आदेश के आगे वह अपना सर झुका देता है, अपनी इच्छाओं को दबा देता है। अपने शौक़ को अल्लाह के आदेशों पर क़ुर्बान कर देता है। वह अमल उसी पर करेगा जो उसके रब का आदेश होगा, और ख़र्च वहीं करेगा जहाँ शरीअत हुक्म देती। **'ज़विल् क़ुर्बा...अलख़'** अच्छी जगह व्यय करने के लिए इस्लाम ने कितनी उचित तरतीब और क्रम और किस क़दर हकीमाना तरीक़ा बनाया है। आयत के इस भाग में उम्मत की पूरी आर्थिक व्यवस्था एक सारांश के रूप में आ गया है। आर्थिक सहायता सबसे पहले अपने निकटतम सम्बन्धियों की करनी चाहिए। यह न हो कि भाई की कोठियाँ तैयार हो रही हों और बहिन के पास झोंपड़ा भी न हो। चचा के पास मोटरें हों और भतीजे के पास इक्के के पैसे भी न हों। हर धनवान को सबसे पहले अपने ग़रीब रिस्तेदारों, सगे सम्बन्धियों, कुन्बेवालों, भाइयों, बहिनों, भांजों, भतीजों और दूसरे निकटतम अज़ीज़ों की ख़बर लेनी चाहिए। उसके बाद नम्बर मुहल्ले के, बस्ती के, शहर के यतीम (अनाथ) बच्चों, बच्चियों का आता है, जिनका कोई वाली वारिस तथा संरक्षक शेष न रह गया हो। उसके बाद दर्जा ब दर्जा नम्बर उम्मत के आम ग़रीबों, मुहताजों और फिर उन मुसाफिरों, राहगीरों का आता है, जो रास्ते के ख़र्च से वंचित हों और इस कारण अपनी आवश्यक यात्राओं से महरूम रह जाते हैं या बस्ती में कहीं बाहर से आ गये हैं और कोई उनको आवास देने और खिलाने-पिलाने का रवादार (सहृदय) नहीं होता और फिर अन्त में जिनको आवश्यकता है वह सवाली रह जाते हैं। इस पूरी आर्थिक व्यवस्था पर यदि नियमानुसार अमल होने लगे तो उम्मत में कहीं ग़रीबी, दुर्दशा, धनाभाव या बेरोज़गारी का अस्तित्व पाया जा सकता है ?

१२१ (क़ैदियों और ग़ुलामों की) **'फ़िर्रिक़ाब'** बहुवचन है **'रक़बत'** का, जिसके शाब्दिक अर्थ हैं गर्दन। मुहावरे में इसमें वह लोग समझे जाते हैं, जो बँधे हुए हैं और जिनकी गर्दनें आज़ाद नहीं हैं, यानी जो ग़ुलाम और दूसरों की रिआया हैं या क़ैदी, जो किसी अपराध या फ़ौजदारी या दीवानी की इल्लत में बन्दी होकर क़ैद हैं। सहायता और अच्छे कार्यों पर व्यय करने की एक 'मद्' रही जाती थी। क़ुर्आन मजीद ने अन्त में इसको भी बढ़ा दिया और अब यह सूची उम्मत के सामूहिक दृष्टिकोण से हर प्रकार से मुकम्मल हो गयी।

१२२ विश्वास एवं अक़ीदों की शुद्धी हो चुकी, व्योहारिकता की भी शुद्धी हो चुकी, अब नम्बर इबादत और आराधना का आता है। इबादतें अनेक हैं। बुनियादी और बड़ी तक़सीम देह की इबादत और माली इबादत की है। यहाँ **'सलात'** तथा **'ज़कात'** लाकर दोनों की जिंस (वस्तु) की ओर संकेत कर दिया। नमाज़ सारी देह वाली इबादतों की क़ायममुक़ाम हो गयी और ज़कात सारी माली इबादतों की। **'अक़ामस्सलात'** यानी नमाज़ें निर्धारित समय पर मालूम नियमों तथा क़ायदों के साथ अदा करते रहते हैं। **'आतज़्ज़कात'** यानी ज़कात आदाब तथा शरीअत के नियमानुसार बाक़ायदा अदा करते रहते हैं।

१२३ अक़ीदे हो चुके, व्योहारिकता हो गयी, इबादतें हो चुकीं, अब नैतिकता का वर्णन आरम्भ हुआ। **'अल्मूफ़ून बि अह्दिहिम्'** यह टुकड़ा हर प्रकार की सन्धि के लिए आया है, चाहे वह वादा बन्दे का अपने पैदा करनेवाले के साथ हो या बन्दों का बन्दों के बीच हो। मोमिन झूठा वादा करना या झूठी सन्धि करना जानता ही नहीं। **'अल्बअसाअि'** मुसीबत और ग़रीबी में **'बासाअि'** का वास्तविक सम्बन्ध माली एवं आर्थिक कठिनाइयों से है। **'हीनल्बअ्सि'** यानी जंग के समय दीन के मुक़ाबले में सन्तोष, सब्र और ईमान पर जमे रहना, साहस न खोना तथा चरित्र एवं मरदानगी के जौहर और चमक दिखाने के यही तीन विशेष अवसर एक मोमिन के लिए होते हैं।

१२४ यानी अस्ली कमालों के साथ, अल्लाह की बन्दगी तथा पाकबाज़ी एवं पवित्रता में पूरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उतरनेवालों की यही निशानियाँ हैं, जो ऊपर बयान हो चुकीं। इस मेयार से जिसको चाहो, परख लो। क़ुर्आन मजीद की हर आयत अपने स्थान पर सम्मानित एवं अमल करने योग्य है, परन्तु इस आयत के विषय में तो हदीस-नबवी में यहाँ तक ब्योरा दिया हुआ है कि जिसने इस आयत पर अमल कर लिया, उसने अपना ईमान मुकम्मल कर लिया और खोज करनेवालों का बयान है कि यह आयत सबसे महत्त्वपूर्ण आयतों में से है। और इसके भीतर दीन तथा शरीअत के सोलह आदेश आ गये हैं। बाज़ सूफ़ियों ने आयत के भागों की सारगर्भिता के ऊपर दृष्टि रखते हुए कहा है कि यह आयत शरीअत तथा 'तरीक़त' (ईश्वर को पहचानने की एक विधि) की अस्ल जड़ और केन्द्र है। आयत से सिद्ध होता है कि मोमिन के लिए न केवल हार्दिक विश्वास काफ़ी है और न सिर्फ़ ज़ाहिरी एतिक़ाद, बल्कि दिल में ईमान होना भी आवश्यक है। और ज़ाहिर में आदेशों का पालन और यह बातें तो सब अपनों की थीं। फ़िरंगियों में एक पादरी वहेरी (Wherry) नामक हुए हैं। मुसलमानों और इस्लाम के बड़े मेहरबान, सन-सफ़ेद दाढ़ी के बाल इस्लाम की शत्रुता में ही सफ़ेद किये। (Sale) के अंग्रेज़ी क़ुर्आन के अनुवाद पर तफ़्सीर की बढ़ोतरी इन्हीं के क़लम से है। इस आयत पर पहुँचकर क़ुदरत उनसे यूँ लिखवाती है— "यह आयत क़ुर्आन की सबसे ऊँची आयतों में से है......अल्लाह की ज़ात पर ईमान और मानव मात्र के साथ व्योहार। उसको इसमें सबसे स्पष्ट रूप से मज़हब का असली जौहर (सार) बताया गया है। इसमें आमाल का सारांश आ गया।" खैर यही ग़नीमत है कि पादरी साहब की कुछ तो आयतें क़ुर्आन मजीद में 'ऊँची' दिखायी दीं।

१२५ (उस हाल में कि जब तुम अपनी हुकूमत रखते हो और सज़ाएँ देने पर तुम्हें अधिकार प्राप्त हो।) इस्लाम अपने माननेवालों तथा अनुयाइयों से दुनिया में प्रभु-सत्ता एवं सम्मानित होने की ही आशा रखता है और उसे एक मानी हुई बात के तौर पर माने रहता है कि उम्मत दुनियावी सम्मान और सत्ता की भी मालिक होगी। मुसलमानों का सदियों तक लगातार काफ़िरों की मातहती और उनके आधीन रहना इस्लाम की मान्यताओं में दाखिल ही नहीं है। फ़ौजदारी क़ानून और दीवानी क़ानून दोनों की अक्सर दफ़ाएँ लागू होने के लिए हुकूमत की व्यवस्था के इस्लामी होने पर ऊपर ही अटकी हुई हैं यानी उम्मत को अल्लाह के क़ानूनों को लागू करने की बाक़ायदा क़ुदरती हो यानी उन्हें यह अधिकार भी तो प्राप्त हो। 'क़िसास', यह बदले के लिए ठीक एक शब्द नहीं है कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से स्वयं बदला लेना शुरू कर दें, बल्कि क़ानून फ़ौजदारी के अन्तर्गत सज़ा की सुव्यवस्थित, सभ्य एवं अत्यन्त नियमित शक्ल है। उम्मत का एक क़ानूनी तथा सामूहिक अधिकार है। उसको लागू करने और जारी करने की ज़िम्मेदारी हुकूमत, शासन एवं अधिकारियों पर लागू होती है। **'या अय्युहल्लज़ीन आमनू'** में मोमिनों से सामूहिक रूप में सम्बोधन है, व्यक्तिगत रूप में नहीं है। मुस्लिम शासन से सम्बोधन है मुस्लिम व्यक्तियों से नहीं, जैसा कि इसी हाशिये में ऊपर गुज़र चुका है। **'क़त्ला'** जान-बूझकर क़त्ल की सज़ा दुनिया के हर क़ानून में आम तौर पर क़त्ल ही है। हाँ! जान-बूझकर क़त्ल की परिभाषा में बहुत कुछ मतभेद हैं। इस्लामी शरीअत की परिभाषा में जान-बूझकर क़त्ल वह है कि कोई किसी को इरादा करके किसी लोहे के हथियार या कि किसी अन्य हर्बे से, जिससे गोश्त और खाल कट जाये और खून बह सके, क़त्ल कर सके। **'क़त्ला'** के अर्थ में गुलाम और ज़िम्मी (ग़ैरमुस्लिम रिआया) स्त्री, पुरुष, सब प्रकार के हताहत आ जाते हैं। **'कुतिब अलैकुम'** यानी जान-बूझकर क़त्ल के लिए यह दण्ड अनिवार्य है। परन्तु अनिवार्य होने के यह मानी नहीं कि क़िसास या बदला हर दशा में लिया ही जाये। मुस्तस्ना (मुक्त) होने की शक्लें तो स्वयं आयत ही में अभी आ रही हैं। अनिवार्यता का उद्देश्य यह है कि बदले की हदों से आगे न बढ़ा जाये और अन्धा-धुन्ध बदला दर बदला की कार्यवाही न आरम्भ कर दी जाये। जहाँ कहीं क़ुर्आन मजीद में **'कुतिब अलैकुम'** आया है, अनिवार्यता के लिए आया है।

१२६ अर्थ यह है कि क़िसास यानी बदले में बराबरी का खयाल रखा जाये और खून सबका बराबर समझा जाये। यह नहीं कि ऊँचे व्यक्ति की जान की क़ीमत साधारण व्यक्ति की जान से अधिक समझी जाये या एक हताहत के बदले में पूरा कुन्बा, क़बीला या क़ौम तबाह की जाये— अरब जाहिली में एक दस्तूर पड़ गया था कि आज़ादों में कोई यदि ग़ुलाम को मार डाले, तो आज़ाद के बजाय किसी ग़ुलाम की जान ली जाती। यहूद अरब का दस्तूर यही बयान हुआ है कि उनके ऊँचे क़बीले, जैसे बनी नुज़ैर के, एक हताहत के बदले क़ातिल अगर किसी छोटे दर्जे के क़बीले, जैसे बनी क़ुरैज़ा से सम्बन्ध रखता तो उसके दो व्यक्तियों से बदला लिया जाता। दुनिया का इतिहास अन्य देशों में ऐसे उदाहरणों से खाली नहीं है। और अमेरिका में तो आज भी एक गोरे (White) का खून एक काले (Negro) के खून से कहीं अधिक भूल्यवान होता है और फ़िरंगी शासन अपने एक हताहत के बदले में क़ातिल जाति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के कई-कई व्यक्तियों की जानें निःसंकोच लेता रहा है। इस्लाम ने इन ज़ालिमाना दस्तूरों को मिटा दिया और एलान कर दिया कि ज़िन्दगी हर मोमिन की, उम्मत के हर व्यक्ति की यकसाँ सम्मानजनक है। स्त्री हो, पुरुष हो, आज़ाद हो या ग़ुलाम, जिसका जो क़ातिल होगा, सज़ा पायेगा। फ़िक़्ह हनफ़ी के दो मसले हैं, जो इस सन्दर्भ में विचारणीय हैं— (१) हताहत (मक़्तूल) अगर काफ़िर है, लेकिन ज़िम्मी है, तो उसका भी क़िसास (बदला) क़ातिल ही से लिया जायेगा अगर्चे वह मुस्लिम हो, हाँ ! काफ़िर हर्बी (जो इस्लाम के ख़िलाफ़ लड़ने में शामिल होता हो) चूंकि खुला हुआ बाग़ी और दुश्मन होता है इस्लामी 'स्टेट' का भी और इसी कारण उसे हर्बी कहा जाता है, सो उसके क़त्ल में स्पष्ट है कि क़िसास नहीं है। (२) दूसरे यह कि जान-बूझकर क़त्ल में आज़ाद के बदले में तो आज़ाद ही क़त्ल किया जायेगा और ग़ुलाम के बदले में भी आज़ाद ही क़त्ल होगा यदि वह क़ातिल है, और स्त्री के बदले में स्त्री तो मारी ही जायेगी, परन्तु पुरुष भी क़त्ल किया जायेगा यदि वह क़ातिल है। आयत में एक पहलू ऐसा भी है जिससे ''मोतज़िला'' (एक फ़िरक़ा) की भी काट निकलती है। यह लोग कबीरा गुनाह (बड़े गुनाह) करने वाले को ईमान से ख़ारिज समझते हैं, हालांकि आयत में मुस्लिम के क़त्ल का बयान है और क़ातिल को इस्लाम के दायरे से अलग नहीं किया गया है, उसे मुसलमान ही गिना गया है। हज़रत मूसा की शरीअत में जो ब्योरे इस विषय में अंकित हैं, वह अवलोकन योग्य हैं— ''और जो इन्सान को मार डालेगा, वह मार डाला जायेगा।'' (अहबार— २४ : १७)। ''और जो इन्सान को मार डाले, जान से मारा जाये।'' (अहबार— २४ : २१)। ''तोड़ने के बदले तोड़ना, आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत, जैसा कोई किसी का नुक़सान करे, उसे वैसा ही किया जाये।'' (अहबार— २४, ४)।

१२७ **'लहू'** ज़ाहिर है कि इससे मुराद क़ातिल या कई क़त्ल करनेवाले ही हो सकते हैं। **'मिन् अख़ीहि'** यानी हताहत व्यक्ति की ओर से— मुद्दई या वादी की ओर से। शब्द **'अख़ीहि'** इस सन्दर्भ में बेहद सारगर्भित है। अत्यन्त ग़ुस्से और बदले की भावना का अवसर क़त्ल से बढ़कर और क्या हो सकता है। इस इन्तिहाई अवसर पर भी यह शब्द लाकर बतला दिया कि क़ातिल इतने संगीन अपराध के बावजूद काफ़िर नहीं हो जाता। इस्लामी बिरादरी के दायरे से बाहर नहीं हो जाता। हताहत का दीनी भाई उस समय भी रहता है। **'शैउन्'** शब्द महत्त्वपूर्ण है यानी वास्तविक सज़ा का कुछ भाग छोड़ दिया जाये। यह न हो कि सभी क्षमा कर दिया जाये। अर्थ यह हुआ कि मक़्तूल के सगे सम्बन्धी और वारिस यदि क़ातिल को क़त्ल की सज़ा न देना चाहें, बल्कि कोई हल्की सज़ा देकर या 'ख़ूंबहा' की पूरी रक़म में से कुछ भाग माफ़ करके उसे छोड़ देने पर आमादा हों। रूमियों की मुश्रिक क़ौम में क़त्ल तमामतर एक अपराध फ़ौजदारी क़ानून का था, दीवानी क़ानून से उसका सम्बन्ध नहीं था। मौजूदा फ़िरंगी क़ानून सब का सब चूंकि रूमी क़ानून (Roman Law) पर ही आधारित है, अतः उसमें भी क़त्ल केवल एक फ़ौजदारी अपराध है। इस्लामी शरीअत की दृष्टि इन्सानी मनोवृत्ति की गहराइयों और सामूहिक मस्लहतों की बारीकियों पर उससे कहीं अधिक हैं, अतः उसने अपने क़ानूनों के नियमों में यह बात रखी कि क़त्ल जिस प्रकार एक फ़ौजदारी जुर्म है, दीवानी का भी है। इस जुर्म से केवल एक हुकूमत (स्टेट) और सोसाइटी या समाज के ही एक क़ानून का उल्लंघन नहीं होता, बल्कि यह व्यक्ति पर भी उसकी व्यक्तिक हैसियत पर एक प्रहार है अर्थात् यह जुर्म एक पब्लिक हैसियत भी रखता है और एक प्राइवेट, और जब इसकी एक-दो प्रकार की हैसियत है तो मक़्तूल के वादियों या वारिसों को यह अधिकार होना चाहिए कि वह चाहें तो अपराधी को पूरी सज़ा स्टेट से दिलवायें और चाहें तो माली मुआविज़ा (आर्थिक बदला) लेकर अन्तिम सज़ा से हाथ उठा लें। इसी आर्थिक बदले को शरीअत की परिभाषा में 'ख़ूंबहा' कहते हैं और इसमें घट-बढ़ बराबर हो सकती है (इसका बयान स्वयं क़ुर्आन मजीद में आगे आ रहा है)। आज भी अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून में यह बिल्कुल जायज़ है कि जब एक स्टेट की रिआया का ख़ून दूसरे देश (स्टेट) के बाशिन्दों के हाथों हो जाये और दूसरे देश में मुक़द्दमा चलाने में कठिनाइयाँ महसूस हैं, तो बजाय फ़ौजदारी इस्तिग़ासा और उसकी पैरवी के केवल ''हरजाना'' (Damages) की रक़म ही ले ली जाती है। यह हरजाना इस 'ख़ूंबहा' के लिए एक नवीन और सुन्दर परिभाषा है।

१२८ (और अकारण छेड़छाड़ और झगड़े-फ़साद का मौक़ा न निकालना चाहिए) यानी मक़्तूल का भागी, कि वही अब वादी या मुस्तग़ीस (अभियोक्ता) होगा। ख़ूंबहा की रक़म की माँग आत्मीयता से एवं न्यायपूर्ण होनी चाहिए। अकारण ज़िद, हठ और भड़काने से दूसरे भागीदार को तंग न करे और उसके जोश को न बढ़ावे कि उससे झगड़े को और बढ़ावा मिलेगा। ख़ास गर्मी और तबीयतों के जोश के नाज़ुक अवसरों पर यह रख-रखाव, इतनी सुरक्षा और पारस्परिक जीवन को सँभाले रखने की यह व्यवस्था इस्लामी शरीअत का विशेष भाग है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१२९ अब यह ताकीद क़ातिल और उसके भागी को हो रही है। उन अपराधियों या प्रतिवादियों को भी अपनी ओर से यही चाहिए कि जितनी रक़म का वादा हो चुका हो, उसे बिना अधिक देर किये और बिना बदमज़गी (अप्रसन्नता) और एच-पेच के मक़्तूल के वारिसों यानी वादियों तक सुन्दरतापूर्वक पहुँचा दें। मानव स्वभाव की इन नज़ाकतों का लिहाज़ और क़ातिल तथा मक़्तूल की हर सम्भव रिआयत और उनके जज़्बात एवं भावों को इन्सानी क़ानूनों में रिआयत कौन कर सकता है? क़ानून बनानेवाला मनुष्य तो केवल एक शुष्क मनुष्य होता है, इतने अनेक और बारीक पहलुओं की रिआयत तो केवल ईश्वरीय क़ानून की शान हो सकती है।

१३० **'ज़ालिक'** यानी यही हुक्म जो ऊपर **'फ़मन् अुफ़िय लहू'** के अन्दर वर्णित हो चुका। एक तरफ़ क़िसास को देखने में सख़्ती, दूसरी ओर क्षमा और ख़ूंबहा की नर्मी, यह दो बातों की सुन्दर मिलावट और बीच के रास्ते का यह निभाव उसी क़ानून का भाग हो सकता है, जो मनुष्य के मस्तिष्क से नहीं, उस अकेले हिकमत वाले से उत्पन्न हुआ हो, जिसका कोई साझेदार नहीं।

१३१ (आख़िरत में) **'अिअ्तिदाअ'** यानी ज़ियादती की शक्लें बहुत सी हो सकती हैं, मिसाल के तौर पर एक यही है कि किसी पर बेगुनाह क़त्ल का झूठा दावा कर दिया या यह कि क़ातिल को पहले तो माफ़ कर दिया और फिर माफ़ी के बाद पूरे क़िसास के पीछे पड़ गये। ऐसे बेदर्दों और ख़ुदा से न डरनेवालों को केवल आख़िरत का भय ही बेजा साहस से रोक सकता है।

१३२ यानी तुम्हारा सारा समाज बुराइयों से बचनेवालों और न्याय के रास्ते पर चलनेवालों की क़ौम बन जाये। क़िसास का क़ानून न्याय और बराबरी का क़ानून है और इससे सामाजिक जीवन की व्यवस्था तथा शासन के प्रबन्ध को सुरक्षा एवं ज़मानत मिलती है कि कोई किसी पर ज़ियादती न करने पाये और शक्तिशाली तथा कमज़ोर सभी के अधिकारों की रक्षा हो जाये। ऐसा न हो कि जो बलशाली हों, वह निर्बलों पर अत्याचार करते रहें। उम्मत के विभिन्न पक्षों में एक दूसरे की ओर सन्तोष तथा स्थिरता रखनेवाला वास्तव में यही क़ानून है और जब एक लम्बे समय तक इस क़ानून पर अमल होता रहेगा, तो इस क़ानून की रूह उम्मत के हृदयों में समा जायेगी और सारी क़ौम का मिज़ाज विशुद्ध हो जायेगा। नियमित जीवन को पसन्द करने, आपस में सुलह रखने, सेवा और सहायता करने की बात जीवन का एक अंश बन जायेगी और देखते ही देखते उम्मत नेक और भले लोगों की न्यायप्रिय सोसाइटी बन जायेगी। आयत में यह संकेत भी आ गया कि बाज़ धर्मों के प्रभाव से या किसी अन्य ग़लत फ़लसफ़े के असर से क़िसास के क़ानून को सरे से उड़ा देने और मृत्युदण्ड की प्रथा समाप्त करा देने के विचार का प्रचार तथा आन्दोलन क़तई ग़लत और हिकमत के ख़िलाफ़ है। क़िसास के तारतम्य में यह बात भी याद रखने योग्य है कि हनफ़ीया के यहाँ सर्वसहमति से और बाज़ दूसरे फ़िक़्ह के इमामों के यहाँ भी ज़िम्मी के क़िसास में मुसलमान ज़रूर क़त्ल होगा।

१३३ यह वसीयत का आदेश आयतें-मीरास के उतरने से (जिसमें हक़दारों के हिस्से नियत करके बता दिये गये हैं) बहुत पूर्व का है, अतः स्वाभाविक ही है कि इस आयत पर अमल उस अन्तिम आयत के ही अन्तर्गत होगा। इसी को तफ़्सीर करनेवाले अपनी परिभाषा में एक आयत का दूसरी आयत से मन्सूख हो जाना कहते हैं। जायदाद की तक़्सीम अब आयतें-मीरास के अनुसार होगी और वसीयत का अब कोई मौक़ा नहीं रहा, सिवाय जायदाद के एक तिहाई के, क्योंकि इतने में वसीयत चल सकती है। और का ब्योरा भी उसी 'सूरतें-अल्निसा' की 'आयतें-मीरास' में मौजूद है। वसीयत के शाब्दिक अर्थ हैं नसीहत। शरीअत की परिभाषा में इससे मुराद वह निर्देश हैं, जो वसीयत कर जानेवाले की मृत्यु के पश्चात् अमलदराम के योग्य होती है। फ़क़ीहों ने लिखा है कि वसीयत की भी कई क़िस्में हैं— (१) बाज़ वसीयतों की तामील अनिवार्य होती है, जैसे ज़कात और कफ़्फ़ारा की वसीयत या अमानत और क़र्ज़ की अदाई (कफ़्फ़ारा— किसी गुनाह या ग़लती के हो जाने पर उसका बदला उतारना, जिसे हिन्दी में प्रायश्चित्त भी कहते हैं)। (२) बाज़ वसीयतें मुस्तहब के दर्जे में होती हैं यानी उन पर अमल करने से सवाब है, न करने से कोई गुनाह नहीं होता। मिसाल के तौर पर किसी नेक काम के लिए वसीयत कर जाना, या किसी ऐसे रिश्तेदार को मीरास या जायदाद दे जाना, जिसको हिस्सा न पहुँच रहा हो। (३) बाज़ केवल 'मुबाह' होती हैं यानी उन पर अमल जायज है, ज़रूरी नहीं। (४) इनके अलावा कुछ ऐसी भी होती हैं, जिन पर अमल करना मना है, वह वसीयतें व्यर्थ मानी जाती हैं, जैसे किसी युद्ध करनेवाले काफ़िर के हक़ में या किसी हराम और नाजायज कार्य के लिए वसीयत कर जाना और (५) बाज़ वसीयतें मौक़ूफ़ (त्यक्त) कहलाती हैं। उनकी तामील शर्त के साथ पड़ी रहती है, जैसे तर्के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(छूटने) के एक तिहाई से अधिक में वसीयत कर जाना। इसका कार्यान्वयन दूसरे वारिसों की अनुमति के अन्तर्गत होगा। **'अल्वसिय्यतु'** यहाँ **'अल्ईसाउ'** के माने में है और इसी माने का लिहाज़ करके उसके लिए पुंलिंग की क्रिया का प्रयोग हुआ है यानी 'कुतिब', अन्यथा अस्ल क़ायदे के लिहाज़ से स्त्रीलिंग क्रिया का प्रयोग होता। **'ख़ैरन्'** 'ख़ैर' के एक मानी प्रसिद्ध अर्थ के अतिरिक्त स्वच्छ एवं पवित्र धन के भी आते हैं और इसी कारण क़ुर्आन मजीद में इस प्रयोग की मिसालें स्थान-स्थान पर मिलती हैं। यहाँ सभी की सहमति है कि ख़ैर धन के अर्थ में है। एक गिरोह ने अनिवार्यता के शब्द का प्रभाव लेकर कहा है कि कुछ न कुछ वसीयत कर जाना चाहिए। दूसरे गिरोह ने आयतें-मीरास की मौजूदगी में उसे बिल्कुल अनावश्यक ठहराया है। इमाम नख़ई का क़ौल है, जो इस विषय में अन्तिम निर्णय की हैसियत रखता है। उन्होंने कहा कि हमारे सामने दोनों प्रकार के सही कैरेक्टर मौजूद हैं। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ वसीयत कर गये थे, लेकिन स्वयं रसूलुल्लाह (स०) ने कोई वसीयत नहीं फ़र्मायी। **'बिल्मअ़रूफ़ि'** यानी पसन्दीदा तरीक़े से और अक़्ल की रिआयत से, आवश्यकता के विचार को दृष्टिगोचर रखकर, सुन्दर व्योहार और सुन्दर समाजी स्थिति दोनों प्रकार के निर्देशों पर क़ुर्आन मजीद में यह शब्द बहुत अधिक प्रयोग में आया है। **'मुत्तक़ीन'** का यहाँ अर्थ मोमिनों का है। उनके गुण यानी संयम का वर्णन करने से उन्हीं का अर्थ लिया है।

१३४ (न कि शासकों पर, जो ग़ैब की बात नहीं जानते बल्कि गवाहों के बयानों पर ही निर्णय लेते हैं।) **'बद्दलहू'** और **'समिअ़हू'** दोनों में सर्नाम वसीयत की ओर है। यानी जिन गवाहों के समक्ष वसीयत की गयी कि अमुक-अमुक सम्बन्धियों को इतना-इतना भाग मिले और वह गवाह अपनी तरफ़ से कुछ काटछाँट कर दें, जिससे बाज़ लोगों का हक़ मारा जाता हो। **'अिस्मुहू अलल्लज़ीन युबद्दिलूनहू'** यह शासकों, क़ाज़ियों को इत्मीनान दिलाया है कि तुम्हारा इस ग़लत इज्रा में (निर्णय लागू करने में) क्या दोष ? दोष तो बस उन्हीं झूठे गवाहों का है।

१३५ **'समीअ़ुन्'** उसको भलीभाँति ज्ञात है कि गवाह ने किस प्रकार झूठ से काम लिया और असल वसीयत में क्या-क्या कतर-ब्योंत की है। **'अ़लीमुन्'** उस पर पूर्ण रूप से ज़ाहिर है कि क़ाज़ी या सालिस (मध्यस्थ) ऐसे अवसर पर कैसे विवश और बेबस होते हैं।

१३६ [और वह इस आधार पर भलाई करने तथा स्नेह की बिना (बुनियाद) पर वसीयत में परिवर्तन कर दे, जिससे उन अनियमितता या गुनाह की इस्लाह और सुधार हो जाये।] **'ख़ाफ़'** 'ख़ौफ़' अरबी में हमेशा चिन्ता और डर के ही अर्थ में नहीं आता है, बल्कि कभी-कभी ज्ञान के मानी में भी आता है और यहाँ भी यही मानी मुराद हैं। **'जनफ़न्'** 'जनफ़' कहते हैं अनजाने की ग़लती या अनियमितता को यानी भूल से कोई गुनाह या जाने बग़ैर कोई ख़ता हो जाना। **'अिस्मन्'** यानी जानकर ग़लती या खुली हुई हक़ मारने की बात, जिस पर गुनाह लाज़िम आये।

१३७ [यानी वसीयत के शब्दों में काट-छाँट करके और वारिसों की हक़तलफ़ी (अपने हक़ की हानि) को दूर करके] यानी वसीयत अगर अनियमित है या शरअ के नियमों के विरुद्ध है और कोई व्यक्ति वारिसों के बीच झगड़ा होने की आशंका को ही देखकर वसीयत के शब्दों में ऐसी काट-छाँट कर दे कि हक़तलफ़ी का सुधार हो जाये और वारिसों में परस्पर सन्धि और सुलह हो जाये। बाज़ फ़क़ीहों ने इस आदेश के अन्तर्गत इसे फैलाकर कहा है कि आदेश केवल वसीयत करनेवाले और उसके गवाहों और हाकिम के साथ ही विशेषता नहीं रखता, उम्मत का हर व्यक्ति उस पर कार्यवाही कर सकता है, क्योंकि इस आदेश का सम्बन्ध, क्या जायज़ है और उसके करने का आदेश दिया गया है, और क्या नाजायज़ है और उसके करने से रोका गया है, से है। और यह सारी उम्मत पर फ़र्ज़ है। फ़क़ीहों ने इस आयत से यह बात भी निकाली है कि अगर इस हक़ में ज़्यादा उचित होना प्रतीत होता हो, तो नई बात पैदा करना और उस पर कारबन्द होना जायज़ हो जाता है, इसलिए कि वसीयत करनेवाले की ओर से यदि अन्याय या अत्याचार तथा ज़्यादती का अंदेशा प्रतीत होता है, तो उसके विरुद्ध सोचना उचित ही रहेगा।

१३८ (वसीयत के शब्दों में इस संशोधन और तब्दीली के विषय में) बल्कि वह तो और बदले तथा पुण्य का अधिकारी होगा।

१३९ अल्लाह तो गुनहगारों के लिए भी क्षमा करनेवाला और रहम करनेवाला है, न कि यह

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २१० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अय्यामम् - मऽ्दूदातिन् त फ़ मन् कान मिन्कुम् मरीज़न् औ अला सफ़रिन् फ़ अिद्दतुम्मिन् अय्यामिन् अुख़र त व अलल्लजीन युतीक़ूनहू फ़िद्यतुन् तआमु मिस्कीनिन् त फ़ मन् ततव्वअ ख़ैरन् फ़हुव ख़ैरुल्लहू त व अन् तसूमू ख़ैरुल्लकुम् अिन् कुन्तुम् तऽलमून (१८४) शहूरु रमज़ानल्लजी अुन्ज़िल फ़ीहिल्क़ुर्आनु हुदल्लिन्नासि व बय्यिनातिम् - मिनल्हुदा वल्फ़ुर्क़ानि ज फ़ मन् शहिद मिन्कुमुश्शह्र फ़ल्यसुम्हु त व मन् कान मरीज़न् औ अला सफ़रिन् फ़अिद्दतुम्मिन् अय्यामिन् अुख़र त युरीदुल्लाहु बिकुमुल् - युस्र व ला युरीदु बिकुमुल् - अुस्र ज व लि तुक्मिलुल् - अिद्दत व लि तुकब्बिरुल्लाह अला मा हदाकुम् व लअल्लकुम् तश्कुरून (१८५) व अिजा सअलक अिबादी अन्नी फ़ अिन्नी क़रीबुन् त अुजीबु दऽवतद्दाअि अिजा दआनि ला फ़ल्-यस्तजीबूली वल्युअ्मिनू बी लअल्लहुम् यर्शुदून (१८६) अुहिल्ल लकुम् लैलतस्सियामिर्रफ़सु अिला निसाअिकुम् त हुन्न लिबासुल्लकुम् व अन्तुम् लिबासुल्लहुन्न त अलिमल्लाहु अन्नकुम् कुन्तुम् तख़्तानून अन्फ़ुसकुम् फ़ ताब अलैकुम् व अफ़ा अन्कुम् ज फ़ल्आन बाशिरू हुन्न वब्तग़ू मा कतबल्लाहु लकुम् ِ व कुलू वश्रबू हत्ता यतबय्यन लकुमुल्ख़ैतुल् - अब्यज़ु मिनल्ख़ैतिल् - अस्वदि मिनल्फ़ज्रि ِ सुम्म अतिम्मुस्सियाम अिलल्लैलि ज व ला तुबाशिरू - हुन्न व अन्तुम् आकिफ़ून ला फ़िल्मसाजिदि त तिल्क हुदूदुल्लाहि फ़ ला तक़्रबूहा त कजालिक युबय्यिनुल्लाहु आयातिहीं लिन्नासि लअल्लहुम् यत्तक़ून (१८७)

سیقول ۲ ٢٢ البقرة ٢

من قبلكم لعلكم تتقون ۝ اياما معدودت فمن كان
منكم مريضا او على سفر فعدة من ايام اخر وعلى الذين
يطيقونه فدية طعام مسكين فمن تطوع خيرا فهو خير
له وان تصوموا خير لكم ان كنتم تعلمون ۝ شهر
رمضان الذي انزل فيه القران هدى للناس وبينت
من الهدى والفرقان فمن شهد منكم الشهر فليصمه
ومن كان مريضا او على سفر فعدة من ايام اخر
يريد الله بكم اليسر ولا يريد بكم العسر ولتكملوا
العدة ولتكبروا الله على ما هدىكم ولعلكم تشكرون ۝
واذا سالك عبادي عني فاني قريب اجيب دعوة الداع
اذا دعان فليستجيبوا لي وليؤمنوا بي لعلهم يرشدون ۝
احل لكم ليلة الصيام الرفث الى نسائكم هن لباس
لكم وانتم لباس لهن علم الله انكم كنتم تختانون
انفسكم فتاب عليكم وعفا عنكم فالئن باشروهن وابتغوا
ما كتب الله لكم وكلوا واشربوا حتى يتبين لكم الخيط
الابيض من الخيط الاسود من الفجر ثم اتموا الصيام
الى اليل ولا تباشروهن وانتم عكفون في المسجد تلك

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(यह रोज़े) गिनती के चन्द दिनों के (हैं)[१४३]। फिर तुममें से जो व्यक्ति बीमार हो[१४४], या सफ़र में हो[१४५], उस पर दूसरे दिनों की गिनती रखना (अनिवार्य है)[१४६]। और जो लोग उसे मुश्किल ही से सह सकें[१४७] उनके ज़िम्मे फ़िद्यः है कि वह एक मिस्कीन (मुहताज) का खाना है[१४८]। और जो कोई ख़ुशी-ख़ुशी नेकी करे[१४९] उसके हक़ में अच्छा है। और यदि तुमको जानकारी है[१५०] तो तुम्हारे हक़ में अच्छा है कि तुम रोज़े रखो[१५१]। (१८४) रमज़ान का महीना वह है जिसमें क़ुर्आन उतारा गया[१५२], वह लोगों के लिए निर्देश है[१५३] और (उसमें) खुली हुई दलीलें (तर्क और सत्यता का प्रमाण) हैं हिदायत और (सत्य और असत्य में) अन्तर[१५४]। सो तुमसे जो कोई इस महीने को पाये आवश्यक है कि वह महीना भर रोज़ा रखे[१५५]। और जो कोई बीमार हो या यात्रा पर हो, तो (उस पर) दूसरे दिनों का गिनती रखना (अनिवार्य है)[१५६]। अल्लाह तुम्हारे हक़ में सुहूलत (आसानी) चाहता है और तुम्हारे हक़ में कठिनाई नहीं चाहता[१५७], और यह (चाहता है) कि तुम गिनती की पूर्ति कर लिया करो[१५८], और यह कि तुम अल्लाह की बड़ाई किया करो इस पर कि तुम्हें राह बता दी[१५९], अजब नहीं कि तुम शुक्रगुज़ार बन जाओ[१६०]। (१८५) और जब आपसे मेरे बन्दे मेरे विषय में पूछें तो मैं तो निकट ही हूँ[१६१]-[१६२]। पुकारनेवाले की पुकार का जवाब देता हूँ, जब वह मुझे पुकारता है[१६३]। पस (अतः) (लोगों को) चाहिए कि मेरे आदेशों को स्वीकार करें और मुझ पर ईमान लायें[१६४] ताकि सही शिक्षा पा जायें[१६५]। (१८६) जायज़ कर दिया गया है तुम्हारे लिए रोज़ों की रात में अपनी धर्म-पत्नियों से मिलना[१६६], वह तुम्हारे वस्त्र हैं और तुम उनके वस्त्र हो[१६७]। अल्लाह को ख़बर हो गई कि तुम अपने को ख़ियानत (हक़ मारना) में लीन करते रहते थे[१६८], अतः उसने तुम पर रहमत से (मेहरबानी और दया से) ध्यान दिया, और तुमको क्षमा दे दी[१६९]। अतः अब तुम उनसे मिलो-मिलाओ[१७०], और उसे तलाश करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दिया है[१७१], और खाओ और पियो जब तक कि तुम पर सुबह की सफ़ेद रेखा सियाह रेखा से नुमायाँ हो जाये (यानी उससे अधिक स्पष्ट दिखाई दे)[१७२]। फिर रोज़े को रात (होने) तक पूरा करो[१७३]। और बीवियों से इस हाल में न मिलो जब तुम एतिकाफ़ किये हो मस्जिदों में[१७४] —यह अल्लाह के नियम हैं— सो उन (से निकलने) के निकट भी न जाना[१७५]। अल्लाह इसी प्रकार अपने आदेशों को लोगों के लिए खोल-खोलकर बयान करता है[१७६], ताकि वह परहेज़गार (संयमी) बन जायें[१७७]। (१८७)

---

१४३ यानी उन फ़र्ज़ रोज़ों की एक नियत संख्या है, जैसा कि अनुशासन का तक़ाज़ा है। यह नहीं कि जिसका जी चाहे जितने दिनों का रोज़ा रख डाले। उम्मत की एकता के लिए आवश्यक था कि एक नियत समय में नियत प्रतिबन्धों के साथ सारी उम्मत के लिए मुक़र्रर हो। यह भी बात साथ ही निकल आयी कि इन फ़र्ज़ रोज़ों की संख्या बहुत बड़ी नहीं। यह नहीं कि साल-साल भर रोज़े रखते ही चले जाओ। छः महीने बल्कि तीन महीने भी नहीं। साल भर में कुल उन्तीस या तीस दिन।

१४४ (और बीमारी के कारण रोज़ा उसे बुरी तरह कष्टदायक हो) बीमारी की हालतें विभिन्न होती हैं। यहाँ ऐसी बीमारी से मतलब है जो रोज़ा रखने से बढ़ जाती हो या जिसके साथ रोज़ा रखने में सख़्त तकलीफ़ का सामना पड़े। अगर रोज़ा रखा ही न जा सकता हो, तब तो इफ़्तार अनिवार्य है और यदि रखा तो जा सकता हो, परन्तु हानि एवं दुःख के साथ तो रोज़े को क़ज़ा करना ही बेहतर है। मरज़ की मुद्दत या शिद्दत में बढ़ोतरी के अंदेशे से आलिमों की भारी संख्या के निकट इफ़्तार जायज़ है। इब्ने सीरीन एक प्रसिद्ध ताबेई गुज़रे हैं। उनके विषय में यह रिवायत है, जो क़ुरतबी, मुआलिम इत्यादि में 'तरीफ़ बिन तमामुल् अतारवी' की ज़बान से अंकित है कि मैं रमज़ान में उनके यहाँ गया तो वह खा-पी रहे थे और जब फ़ारिग़ हो चुके तो मुझसे बोले कि मेरी इस उँगली में दर्द था— गोया परिणाम यह निकला कि मामूली मरज़ में भी इफ़्तार की गुंजाइश है। इन्हीं इब्ने सीरीन का यह क़ौल भी क़ुरतबी इत्यादि में नक़्ल हुआ है कि जैसे जब किसी इन्सान पर मुसाफ़िर की परिभाषा सही आती हो, उसी

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २११ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २०७ से)

व्यक्ति, जो गुनहगार है भी नहीं, बल्कि अपने सुधार के प्रयास में आदेशों और आज्ञा का पालन करनेवाला है और अच्छे बदले का अधिकारी है। **'ग़फ़ूरुन्'** यानी पापों को क्षमा करनेवाला। 'रहीम' यानी ख़ता करनेवालों की दशा पर दया करनेवाला।

१४० 'सियाम' (रोज़ा रखना) **'सौम'** या रोज़ा शरीअत की परिभाषा में उसे कहते हैं कि मनुष्य सूर्य के निकलने और फ़ज्र के समय के ज़ाहिर होने से सूर्यास्त तक स्वयं को खाने-पीने और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों से रोके रहे। यह रोज़े रमज़ान के महीने के हैं, दूसरों की बुराई यानी ग़ीबत, गन्दी हरकतें, बदज़बानी इत्यादि, ज़बान के तमाम गुनाहों से बचे रहने की कड़ी ताकीदें हदीस में आयी हैं। नवीन एवं पुरातन के सभी वैद्य तथा हकीम व डाक्टर सहमत हैं कि रोज़ा जिस्मानी रोगों के दूर करने का सबसे उत्तम इलाज और मानव-देह का बड़ा सुधारक है, साथ ही इससे सिपाहियाना साहस और नियम तथा संयम की रूह सारी उम्मत में ताज़ा हो जाती है। इसके विचार से मास भर की यह वार्षिक मश्क़ एवं अभ्यास एक बड़ा सुन्दर नुस्ख़ा है।

१४१ रोज़ा किसी न किसी रूप में दुनिया के लगभग हर धर्म और क़ौम में पाया जाता है, जैसा कि इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका की दसवीं जिल्द से स्पष्ट होता है, परन्तु क़ुर्आन मुश्रिकाना धर्मों से बहस नहीं करता। **'अल्लज़ीन मिन् क़ब्लिकुम्'** से उसका संकेत अह्ल-किताब ही की ओर हो सकता है, अतः तफ़्सीर करनेवाले भी उसी ओर गये हैं। यही बात इब्ने जरीर ने मुजाहिद ताबेई से नक़्ल की है और ज़ेसास ने मुजाहिद के साथ क़तावा के नाम को भी बढ़ा दिया है। रोज़ा मूसवी शरीअत का एक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंश है। दुनिया के मज़हबों की इतनी जानकारी कि स्पष्ट रूप से उनमें रोज़े के धर्म का अंश होने की ख़बर दे दी। डाक और रेल के ज़माने से शताब्दियों पूर्व और समाचार पत्रों तथा पुस्तकालयों के समय से हज़ार-बारह सौ वर्ष पूर्व अरब जैसे दूरस्थ और विश्व के हर देश से अलग-थलग उपद्वीप में एक अनपढ़ व्यक्ति के लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं— सिवाय अल्लाह की 'वही' के माध्यम के। **'कमा'** यह उपमा दूसरे धर्मों के साथ केवल रोज़े के फ़र्ज़ होने के सम्बन्ध में है, उसकी शर्तों और संख्या के विषय में नहीं है।

१४२ रोज़ा ख़ुदा की आज्ञापालन में आत्मा की शुद्धि, जिस्म के प्रशिक्षण और रूह की पवित्रता का एक सर्वोच्च विधान है, व्यक्तियों के व्यक्तिक और उम्मत के सामूहिक दोनों दृष्टिकोणों से। **'लअल्लकुम् तत्तक़ून'** फ़र्मा देने से इस्लामी रोज़े की वास्तविक ग़रज़ और उद्देश्य का स्पष्टीकरण हो गया कि उसके संयम की आदत पड़ती है और यह उम्मत के व्यक्तियों को संयमी बनाता है। 'तक़्वा' यानी संयम आत्मा की एक स्थायी दशा का नाम है। जिस प्रकार हानिकारक भोजन और ख़राब आदतों से बचे रहने से शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है और भौतिक स्वादों से रसास्वादन करने की क्षमता बढ़ जाती है, भूख ख़ूब खुलकर लगने लगती है, शुद्ध रक्त पैदा होने लगता है। इसी प्रकार इस दशा में संयम अपना लेने से (यानी जो आदतें स्वास्थ्य एवं आत्मिक तथा नैतिकता के जीवन हेतु हानिकारक हैं, उनसे बचे रहने से) आख़िरत के आलम के स्वादों और नेमतों से लाभान्वित होने की क्षमता मनुष्य में पूरी तरह पैदा होकर रहती है, और यही वह स्थान है, जहाँ इस्लामी रोज़े की बड़ाई तमाम दूसरी क़ौमों के गिरे पड़े रोज़ों पर खुलकर साबित होती है। मुश्रिक क़ौमों के नाक़िस, अधूरे और नाम मात्र रोज़ों का तो वर्णन ही क्या, स्वयं मसीही और यहूदी रोज़ों की हक़ीक़त बस इतनी है कि वह या तो किसी बला को दूर करने के लिए रखे जाते हैं या किसी सामयिक और विशेष आत्मिक दशा की प्राप्ति हेतु। यहूद की 'क़ामूसे-आज़म जिविश इन्साइक्लोपीडिया' में है— "पुराने समय में रोज़ा या तो मातम (दुःख प्रकट करने हेतु रोना और शोक मनाना) के चिह्न के रूप में रखा जाता और या जब कोई ख़तरा सामने होता था और या फिर जब सालिक (मज़हब पर चलनेवाला) स्वयं में ईश्वर की ओर से 'इल्हाम' स्वीकार करने की क्षमता पैदा करना चाहता था।" (जिल्द ५, सफ़ा ३४७)। इस्लाम में रोज़ा नाम है अपने इरादे से एक नियत समय तक के लिए अपनी उचित और स्वाभाविक इच्छाओं को पूरा करने से रोक। उससे एक ओर जिस्मानी और रूहानी और नैतिक लाभ, व्यक्ति और उम्मत को जो प्राप्त होते हैं, उनका ब्योरा तो यहाँ देना सम्भव नहीं है। लेखक की अनेक तहरीरें इस विषय पर "सिद्क़" और "सच" में अंकित हो चुकी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २०९ से)

प्रकार जब किसी पर मरीज़ की परिभाषा सही आती हो तो उसके लिए इफ़्तार जायज़ है। अत्तार ताबेई का भी क़ौल क़रतबी में नक़्ल हुआ है कि उनसे जब प्रश्न किया गया कि इफ़्तार किस मरज़ में जायज़ है ? तो उन्होंने कहा कि जो भी मरज़ हो। और अत्तार ताबेई के सिलसिले में स्वयं इमाम बुख़ारी से क़रतबी ने यह कहानी नक़्ल की है कि मैं नीशापुर में मामूली तौर पर रमज़ान में बीमार था और मैंने रोज़ा नहीं रखा और अब्दुल्लाह बिन राहू या कुछ लोगों के साथ मुझे देखने आये, तो उनसे मैंने यही कहा। स्वयं क़रतबी ने इब्ने सीरीन के मस्लक (तरीक़े) का अनुमोदन किया है। हसन बसरी तथा इब्राहीम नख़ई से यह क़ौल नक़्ल हुआ है कि जिस मरज़ में नमाज़ बैठकर पढ़ना जायज़ है, उसमें रोज़े के स्थान पर इफ़्तार जायज़ है। जसास राज़ी ने लिखा है कि आयत के ज़ाहिरी शब्दों से यह मालूम होता है कि जो भी मरीज़ हो उसके लिए इफ़्तार दुरुस्त है बिना इस बात को ध्यान में रखे हुए कि रोज़ा उसके लिए हानिकारक हो या न हो, परन्तु उम्मत के फ़क़ीहों का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि इफ़्तार जायज़ उस मरीज़ के लिए है, जिसे रोज़े से मरज़ के बढ़ जाने का भय हो, अन्यथा इफ़्तार जायज़ नहीं है। सारांश यह है कि बीमारी की नियत सीमा शरीअत ने नहीं बतायी। हर मरीज़ अपने हालात के लिहाज़ से अपने लिए अपनी अन्तरात्मा तथा ईमानदारी के प्रकाश में ही निर्णय ले सकता है।

१४५ यात्रा की भी कोई नियत सीमा, जिसके बाद इफ़्तार जायज़ या आवश्यक हो जाये, क़ुर्आन एवं हदीस में मौजूद नहीं है। हाँ ! उम्मत के फ़क़ीहों ने अन्दाज़े नियत किये हैं और इन अन्दाज़ों में फ़ासिले और समय दोनों के लिहाज़ से मतावरोध आरम्भ से ही चला आता है। किसी ने फ़ासिले का मेयार ४८ मील रखा है, किसी ने १६ फ़रसफ़ (दूरी की अरबी नाप)। इसी प्रकार मुद्दत के लिहाज़ से भी किसी का क़ौल एक दिन-रात के सफ़र के हक़ में है, किसी का दो दिन और किसी का तीन दिन। समय और यात्रा के मतावरोध को एक तरफ़ रखते हुए हदीसें-नबवी की रू से बेहतर यही है कि हालतें-सफ़र में इफ़्तार ही बेहतर है। बल्कि बाज़ दशाओं में तो जैसे रोज़ा रखना मुसाफ़िर के लिए एक जुर्म है। हज़रत जाबिर से रिवायत है— "जिस वर्ष मक्का पर विजय हुई, रसूल (स०) माह रमज़ान में मक्का की तरफ़ चले और रोज़ा रखा, यहाँ तक कि एक स्थान 'कराउल्ग़मीम' पहुँच गये। लोग रोज़े से थे, तो आपने पानी का प्याला मँगाया और उसको ऊपर उठाया, यहाँ तक कि लोगों ने उसे देख लिया, उसके बाद आपने पानी पिया। फिर आपको सूचना मिली कि बाज़ लोग अब भी रोज़े से हैं (यानी उन्होंने इफ़्तार नहीं किया), तो आपने फ़र्माया कि वह गुनहगार हैं, गुनहगार हैं।" और इसी से मिलती हुई एक हदीस 'बुख़ारी' तथा 'मुस्लिम' और 'मोता' इत्यादि में 'इब्ने अब्बास' से वर्णित हुई है और हज़रत 'अब्दुर्रहमान बिन औफ़' की रिवायत में तो यहाँ तक आ गया है कि "सफ़र में रोज़ा रखनेवाला ऐसा ही है, जैसे कोई घर में बैठनेवाला रोज़ा न रखे।" (इब्ने माजा)। और हज़रत 'जाबिर' से यह भी रिवायत है कि— "एक बार रसूल (स०) सफ़र में थे कि आपने एक शख़्स को देखा कि उसे लोग घेरे हुए हैं और उस पर साया किये हुए हैं। आपने पूछा, तो लोगों ने बताया कि यह रोज़ा रखे हुए है। आपने फ़र्माया कि सफ़र की हालत में रोज़ा रखना कोई इबादत नहीं।" इस प्रकार इन सभी रिवायतों के प्रकाश में शरीअत का आदेश यही महसूस होता है कि मरीज़ की ही प्रकार मुसाफ़िर के लिए भी एक ही हुक्म है कि अगर बिना कष्ट के सम्भव हो तो रोज़ा रख ही लिया जाये और अगर विशेष कष्ट हो तो क़ज़ा कर देना उचित है और अगर नौबत हलाक होने की आयी जा रही है तो रोज़ा छोड़ देना ज़रूरी और वाजिब होगा। मतावरोध जो कुछ है, वह यह है कि बेहतर कौन सा पहलू है ? तो बाज़ सहाबा और इमामों की बहुसंख्या रोज़ा रखने के हक़ में हैं। साथ ही बाज़ बड़े सहाबी और बहुत से ताबेईन और फ़क़ीह इफ़्तार को अफ़्ज़ल (उत्तमतर) मानते हैं।

१४६ (अगर उस बीमारी या सफ़र के बीच) रोज़े छूट गये हैं— और उनकी तादाद गिनकर मरज़ या यात्रा के पश्चात् पूरी कर ली जाये। साधारण अहले-सुन्नत ने इस आज्ञा को केवल अवकाश या इजाज़त के मानी में लिया है। परन्तु ज़ाहिर में उसके वाजिब होने को ही मानते हैं और सहाबियों में यही मत हज़रत अबू हुरैरा से भी सम्बद्ध है। ताबेईन का यह क़ौल भी नक़्ल हुआ है कि दोनों में से जो आसान हो, वही बेहतर है। एक गिरोह ने इसी आयत से तर्क करके यह भी कहा है कि मुसाफ़िर के लिए रोज़ा है ही नहीं, उसे हमेशा क़ज़ा ही रखना चाहिए, क्योंकि आयत में हुक्म आज़ाद दशा में है और हदीसें-नबवी **'लैस मिनल्बिर्रिस्सियामु फ़िस्सफ़रि'** से इसका समर्थन होता है।

१४७ यानी रोज़ा रखने को रख तो डालें, लेकिन रोज़ा रखने का सन्तोष उन्हें कठिनाई के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही हो सके, मेहनत बहुत करनी पड़े, जैसे कि ज़्यादा बूढ़े लोगों या गर्भवती और बच्चेवाली स्त्रियों के लिए साधारण रूप से होता है। आयत में कठिनाई इस कारण से उत्पन्न हुई कि 'युतीक़ूनहू' के मस्दर 'ताक़त' और 'वस्अत' के बीच का अन्तर दृष्टिगत नहीं रहा। दोनों शब्दों का अर्थ कोश में पृथक्-पृथक् है। 'वस्अत' उर्दू के शब्द 'सम्भावना' के अर्थ में आता है और 'ताक़त' में यह अर्थ सम्मिलित है कि वह काम करनेवाले की शक्ति में तो हो, परन्तु उसके करने में परिश्रम बहुत अधिक हो। काम होने को तो हो जाये, परन्तु बड़ी कठिनाई से ही। अरबी में दोनों शब्दों के अर्थ में बड़ा अन्तर है। और यहाँ 'ताक़त' का माद्दा प्रयोग में आया है, जिसके खुले हुए मानी यह हैं कि "वह लोग जो तकलीफ़ के साथ रोज़ा रख सकें, जैसे कि बूढ़े और बूढ़ियाँ, गर्भवती और बच्चेवाली औरतें जो बच्चाखाने में हों।" ताबेईन बल्कि सहाबियों की अनेक रिवायतों में इसका अर्थ बूढ़े और बूढ़ियाँ ली गयी हैं। काफ़ी संख्या में तफ़्सीर करनेवालों ने भी यही समझा है और आयत के मन्सूख क़रार देने की कोई वजह मौजूद नहीं है। क़रतबी (एक बड़े तफ़्सीर करनेवाले) का फ़ैसला इस विषय में अन्तिम निर्णय है कि 'इब्ने अब्बास' का क़ौल सही प्रमाण से सिद्ध है कि आयत मन्सूख नहीं, बल्कि जिनके हक़ में उतरी है, शक्तिशाली है। और यही मत इमाम शाफ़िई का है।

१४८ यानी जिन बूढ़ों-बूढ़ियों, दुर्बलों के लिए रोज़ा रखना बहुत कष्टदायक हो, उन्हें पूरा अधिकार है कि एक नादार (निर्धन) ग़रीब को खाना खिलाते रहें और रोज़ा न रखें, बल्कि बाज़ इमामों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि उनके ज़िम्मे कोई फ़िद्यः वाजिब नहीं, लेकिन इमाम अबू हनीफ़ा और कई सहाबा ने कहा है कि फ़िद्यः देते रहें। इमाम मालिक ने अपनी बात के तर्क में यह कहा है कि ऐसे विवश एवं दुर्बल के पास तो बुढ़ापे की स्वयं एक उचित मजबूरी मौजूद है, अतः उन पर यात्री एवं बीमार की भाँति खाना देना वाजिब एवं अनिवार्य नहीं है। इस मत का अनुमोदन और फ़क़ीहों ने भी किया है। फ़िद्यः ग़रीब को अपने बदले में खाना खिला देने का स्तर वही हो, जो स्वयं रोज़ादार का होता है, और खाने की मात्रा के बारे में विभिन्न फ़क़ीहों ने विभिन्न बातें कहीं हैं, परन्तु सबसे स्पष्ट और आसान शक्ल यह है कि जितने में उस ग़रीब का पेट भर जाये।

१४९ (इसी फ़िद्यः की अदाई के विषय में) यानी इतना फ़िद्यः तो हर दशा में अनिवार्य है। अब यदि इसमें कोई बढ़ोतरी करना चाहे, जैसे कोई व्यक्ति एक के स्थान पर दो को भोजन कराना चाहे, खानों की संख्या बढ़ा दे, खाने की क़िस्म अच्छी कर दे। फ़िद्यः के साथ रोज़े को भी जमा कर ले तो बेहतर है। सहाबा तथा ताबेईन से यह सब विभिन्न शक्लें नक़्ल की गयी हैं। खैर खैरात, सखी (दानी) होना और उदारता का व्योहार करना, अच्छा सुलूक करना और सुन्दरता का बर्ताव करने की ताकीद तो इस्लाम में हमेशा और हर दशा में मौजूद है, परन्तु रमज़ान के महीने में इसकी अहमीयत और अधिक है। इस मास के अन्त होने पर या इसके अन्त से कुछ पूर्व जो सदक़ा फ़ित्र है, वह वाजिब कहा गया है कि आसपास का कोई कलमा पढ़नेवाला भाई भूखा न रहने पाये, वह इसी शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। रसूल (स०) सखावत, उदारता, दया और मेहरबानी तथा दान-पुण्य में अपनी मिसाल नहीं रखते थे। अनेक हदीसों में आया है कि इस महीने में आपकी दया का जोश और बढ़ जाता था और आप दानी और अधिक दानी हो जाते थे।

१५० (कि रमज़ान के रोज़ों की क्या-क्या बरकतें हैं और क्या बड़ाइयाँ हैं? इसमें क्या-क्या लाभ और क्या हिकमतें हैं? और फिर उनके क्या बदले मिलेंगे?)

१५१ (यद्यपि उचित कारण रोज़े को क़ज़ा करने या उसके बजाय फ़िद्यः देने के मौजूद हों) यहाँ सम्बोधन में वह सभी वर्ग सम्मिलित हैं, जिनके लिए माज़ूर (अपाहिज) के रूप में ऊपर गुंजाइशें रख दी गयी हैं। इसमें शौक़ दिलाने और रुचि लेने का संकेत है कि रोज़ा रखने के जो लाभ और उसमें जो हिकमतें हैं, वह तो रोज़ा रखने ही से प्राप्त होंगी। हाँ! जो लोग निर्बल और माज़ूर हैं, उनके लिए दूसरी गुंजाइशें भी रख दी गयी हैं।

१५२ यानी उतरना शुरू हुआ। पूरा क़ुर्आन मजीद तो बड़े क्रम से लगभग २१, २२ वर्षों की मुद्दत में उतरा है, यहाँ इसका अर्थ यह है कि रसूल (स०) पर क़ुर्आन के उतरने का प्रारम्भ रमज़ान मास से हुआ। 'वही' क़ुर्आन की सबसे पहली आयतें 'सूरतुल् अलक़' का शुरूआत का भाग है, और हिरा की खोह में रसूल (स०) पर इसी महीने में उतरी थीं। (१ सन् नबवी यानी ६०९ ई० के लगभग)। बहुत से तफ़्सीर करनेवालों का विचार है कि क़ुर्आन मजीद दुनिया के आसमान पर इसी महीने में उतरा और फिर वहाँ से वही के फ़रिश्ते हज़रत जिब्रील के माध्यम से क्रमानुसार रसूल (स०) पर उतरता रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'अल्क़ुर्आन' शाब्दिक अर्थ है जो चीज़ पढ़ी जाये; जैसे पीनेवाली चीज़ को शराब, और लिखी हुई चीज को किताब कहते हैं। और 'अलक़ुर्आन' अब परिभाषा के रूप में इस पुस्तक के लिए विशिष्ट हो गया है, क्योंकि यह मुख्तलिफ़ सूरतों को अपने भीतर जमा रखता है। जिस प्रकार 'अर्ज़' सारी पृथ्वी को कहते हैं और जमीन का हर-हर टुकड़ा अर्ज़ है, इसी प्रकार क़ुर्आन से उन पारों वाली मुकम्मल किताब को समझा जाता है और उसके हर-हर भाग को भी क़ुर्आन समझा और माना जाता है। **'रमज़ान'**— चाँद के इस्लामी सन् के नवें महीने का नाम है। शरीअत ने चाँद के महीनों का एतबार किया है और अपनी गणित में इसी से काम लिया है। चाँद के महीने चूँकि विभिन्न मौसमों में अदल-बदलकर आते हैं, मुसलमान रोज़ादार भी रमज़ान की इस अदला-बदली से हल्की गर्मी, हल्की सर्दी, भयंकर गर्मी और कड़े जाड़ों, सूखे और तर हर मौसम में भूख-प्यास के सहने का आदी हो जाता है। रोज़ों की संख्या तो शरीअत ने नियत कर ही दी है। ज़माना भी एक नियत एवं निर्धारित कर दिया गया है, यह नहीं है कि केवल तादाद है और जिसका जब जी चाहे पूरी कर ले। व्यक्तिगत सुधार तो चाहे इन अपनी स्वेच्छा के रोज़ों से हो भी जाती, परन्तु सामूहिक लाभ और मस्लहतों के लिए तादाद की तरह नियत ज़माना भी आवश्यक था। उम्मत की एकता के लिए अनिवार्य था कि अरब तथा चीन, मिस्र तथा हिन्दुस्तान, तराबलस तथा जापान, हबश तथा आस्ट्रेलिया, अफ़ग़ानिस्तान और कनाडा, सायबेरिया और मेक्सीको, बरतानिया और तुर्की अर्थात् सारे विश्व में इस्लामी आबादी जहाँ कहीं भी हो, सब एक ही समय में रूहानियत की इस वार्षिक परेड में सम्मिलित हों। सामाजिक विज्ञान के समालोचक जानते हैं कि उम्मत की एकता तथा मिल्लत की व्यवस्था में कितना प्रभाव इस एक समय या एक ही समय में सबको सम्मिलित करने का होता है। रमज़ान के साथ क़ुर्आन का लगाव हर समझदार भली प्रकार समझता है। अहले-सुन्नत इसी कारण क़ुर्आन मजीद के उतरने की वार्षिक यादगार इस महीने में रातों को अपनी मस्जिदों में मनाते हैं और तरावीह की नमाज़ों में सारे क़ुर्आन को अपनी स्मृति में ताज़ा कर लेते हैं। तरावीह से सम्बद्ध तर्कों का सम्बन्ध हदीसे-नबवी से है, क़ुर्आन मजीद से नहीं, फिर भी इतना तो इस मुबारक इबादत तथा आदत के सम्बन्ध में क़ुर्आन मजीद के अन्तर्गत कहा ही जा सकता है। हदीसे-नबवी माह रमज़ान की बड़ाइयों से भरी पड़ी हैं। केवल एक हदीस, जो सहाबी अब्दुर्रहमान बिन औफ़ के हवाले से "सुनन-निसाई" में अंकित है, यहाँ नक़्ल की जाती है— "अल्लाह तआला ने तुम पर रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ किये— और मैंने उसमें रात के जागने की सुन्नत क़ायम की, तो जो कोई रोज़ा रखेगा और ईमान और सच्ची नीयत के साथ रात में जागेगा, तो गुनाहों से ऐसा धुल जायेगा कि जैसे माँ के पेट से पैदा हुआ हो।"

१५३ और इसमें किसी के लिए कोई बात मुँदी-ढकी नहीं है और इसके सारे निर्देश एवं आज्ञाएँ लोगों के लाभ ही के लिए हैं। **'लिन्नासि'** से इस पर भी प्रकाश पड़ता है कि क़ुर्आन का सम्बोधन सारी दुनिया से है, केवल क़ुरैश और अरब से नहीं।

१५४ क़ुर्आन मजीद एक स्थायी पुस्तक है, सशक्त किताब है, और उसमें न केवल हर आदेश के लिए पूरा तर्क मौजूद है और पूरी स्पष्टता है, बल्कि इस कारण भी वह एक सशक्त पुस्तक है, क्योंकि उसके तर्क सत्य को असत्य से साफ़ ढंग से ऊपर ले आते हैं और उनको प्रकाशित कर देते हैं। 'अल्फ़ुरक़ान' पर पूर्व में ही हाशिया लिखा जा चुका है।

१५५ **'फ़ल्यसुमहु'** बाज़ नासमझ लोगों ने खुदा जाने किस भाषाविधि से इस शब्द का अर्थ यह निकाल लिया कि रमज़ान "में" या रमज़ान के "अन्दर" रोज़े रखे जायें, और तीन दिन के रोज़े भी पर्याप्त हैं, यह अन्वेषण क़तई ग़लत है। आयत के साफ़ और खुले हुए माने यह हैं कि इस महीने को रोज़े में व्यतीत किया जाये और उर्दू में इस अर्थ को "महीना भर" में ही कहकर अदा किया जा सकता है। **'शहिद मिन्कुमुश्शह्र'**— चाँद के महीने की शुरूआत हर २९ या ३० दिन के बाद चाँद देखने से होती है। इस्लाम एक प्राकृतिक धर्म है और यह रंग उसकी नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, इबादती, आंशिक एवं सामूहिक हर शिक्षा में प्रदर्शित है। इबादतों और उपासनाओं के विषय में जहाँ उसने बल दिया है कि एक नियत समय पर हो और नियत ज़माने में हों, वहीं साथ यह नहीं किया है कि समय और ज़माने के हिसाब के लिए उसे गरिमत और हिसाब के विशेषज्ञों का मुहताज नहीं बनाया है। सूर्य से हिसाब लगाने वाले लोहे की घड़ी-घंटों के ही मुहताज रहते हैं कि तारों और सय्यारों (ग्रहों) के जाननेवाले आयें तो गणना करें, हिसाब लगायें और जोड़-घटाकर बतायें। और यदि किसी देश की सभ्यता अभी इतनी उन्नति को नहीं पहुँची है कि रसदख़ाने और यन्त्र-मन्त्र तैयार कर सके, दूरबीनें आविष्कार में आ गयी हों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाना प्रकार के यन्त्रों से काम लिया जा सके। गणित की भारी-भरकम व्यवस्था की जा चुकी हो, तो वहाँ के लोग बेचारे मुँह देखते रह जायें। इस्लाम तो उस सीधे-साधे प्राकृतिक व्यवस्था को माननेवाला है कि बिना किसी यन्त्र की सहायता के और उच्च गणित का सहारा लिये बग़ैर बस आँख से जब चाहो चाँद देख लो और रोज़ा रखना शुरू कर दो। आयत के इतने टुकड़े ने यह बात स्पष्ट कर दी कि रमज़ान सारे उन लोगों पर फ़र्ज़ नहीं है, जो कष्टदायक स्थिति में हों, बल्कि केवल उन्हीं पर है जिन्हें माहे-रमज़ान अपने यहाँ मिले। **'शहिद'** का अर्थ विस्तृत है यानी जब माहे-रमज़ान के आरम्भ होने का ज्ञान हो जाये, चाहे चाँद को स्वयं देखकर, चाहे दूसरों से सुनकर कि चाँद हो गया है तो बीमारों, मुसाफ़िरों को छोड़कर और सब लोग रोज़ा रखना शुरू कर दें। चाँद का निकलना कहाँ का विश्वसनीय होगा? फ़क़ीहों ने इसके उत्तर में बड़ी-बड़ी बारीकियाँ की हैं, परन्तु साफ़ और सीधी बात यह है कि उसी शहर या बस्ती की या आसपास की बस्तियों की। सैकड़ों, हज़ारों मील दूर से चाँद होने की सूचना तार, टेलीफ़ोन, रेडियो आदि के माध्यम से मँगाने का प्रबन्ध करना इस्लाम की रूह पर ज़ुल्म करना है, या कलकत्ता की या बम्बई की चाँद देखने की सूचना को हुज्जत मानना शरीअ़ते-इस्लामी की अस्ल आत्मा पर अत्याचार है। देखने में विभिन्नता बराबर सामने की चीज़ है और इसको बराबर देखा गया है कि किस प्रकार झुठलाया जा सकता है। उम्मत की एकता अवश्य ही एक बड़ी चीज़ है, परन्तु उसके लिए यह ज़बरदस्ती का प्रयास प्राकृतिक को अप्राकृतिक की सीमा तक पहुँचा देना है। इसी तफ़्सीरे-करतबी में एक रिवायत सही मुस्लिम के हवाले से इस मज़मून की अंकित है कि एक बार माहे-रमज़ान के सिलसिले में शाम में चाँद देखने की सूचना मदीने पहुँची। दोनों जगहों की तारीखों में अन्तर निकला। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास सहाबी ने हदीसे-नबवी का हवाला देकर फ़त्वा दिया कि हम तो यहीं के चाँद देखने का विश्वास करेंगे। इमाम मुस्लिम की गिन्ती फ़क़ीहों और हदीस के आलिमों में है। उन्होंने अपनी सहीह की **'किताबुस्सियामि'** के एक अध्याय का विषय यही बनाया है। यानी अध्याय इस बयान में कि हर शहर का चाँद देखना वहीं का विश्वसनीय है और इसमें कि जिस बस्ती में चाँद दिखलायी दे, वहाँ से दूर की बस्तियों पर वहाँ का हुक्म लागू न होगा। और अध्याय के अन्तर्गत वही हदीस लाये हैं, जो क़रतबी के हवाले से ऊपर गुज़र चुकी हैं। इस हदीस को मुहद्दिस इब्ने मंज़र और इमाम तिरमिज़ी ने भी नक़्ल किया है। "सही मसला हमारे आलिमों का यह है कि रूयत (चाँद देखना) सारे मनुष्यों पर हुज्जत नहीं, बल्कि केवल उतने फ़ासिले वालों पर है जहाँ तक नमाज़ क़स्र न की जाये। और एक विचार यह भी है कि जहाँ तक आसमान की सफ़ाई एक प्रकार की दिखायी दे। एक क़ौल यह भी है कि एक इलाक़े की सीमा के अन्दर और उसके आगे नहीं। और फिर इसके आगे यह लिखा है कि इब्ने अब्बास ने ग़ैरमुक़ाम के चाँद देखने पर अविश्वास नहीं किया। "और उन्होंने इस पर अमल करने से इसलिए इन्कार नहीं किया कि रूयत का हुक्म दूरस्थ स्थानों पर लागू नहीं होता।" और फ़क़ीह क़ाज़ी इब्ने रुश्द मालिकी ने इस हदीस से यह नतीजा निकाला है कि हर बस्ती के लिए वहीं की रूयत विश्वसनीय है, चाहे बस्तियाँ आसपास की हों, चाहे दूर की। मालिकिया का मत मशहूर तो यह है कि एक जगह की रूयत सब जगह के लिए काफ़ी होगी, लेकिन इब्ने अब्दुलबर ने बहुमत इसके विरुद्ध नक़्ल किया है, यानी ऐसे दूरस्थ देशों, जैसे ख़ुरासान और स्पेन हैं, उनमें से एक के यहाँ का विश्वास दूसरे के यहाँ नहीं किया जायेगा। **'अश्शहरु'** इस दुनिया में कुछ देश ऐसे भी हैं, जहाँ सूर्यास्त एवं सूर्योदय हमारे आम स्तर से बिल्कुल ही असाधारण है; जैसे फ़िनलेण्ड या ध्रुवों के निकट के भाग, जहाँ चाँद के निकलने के उन्तीसवें या तीसवें दिन का कोई प्रश्न ही नहीं है और जब ऐसा है तो वहाँ माहे-रमज़ान के उदय होने का प्रश्न ही नहीं उठता। क़ुर्आन मजीद के इस सारगर्भिता की क्या तारीफ़ की जाये कि केवल एक शब्द **'शहिदश्शहरु'** के प्रयोग से कितने सवालों और संदेहों की जड़ काट दी। यदि कोई इबादत और आज्ञा-पालन के रूप में या संयम के विचार से वहाँ भी रोज़ा रखना चाहे तो सोने, जागने, खाने, पीने तथा दुनिया के और सारे कार्यक्रमों के लिए वहाँ समय का जो भी मेयार हो उसी अन्दाज़े और हिसाब से रोज़े रख सकता है। हमारे ज़माने के प्रसिद्ध फ़ाज़िल (ज्ञानी) तथा शोधकर्ता डॉ० मु० हमीदुल्लाह हैदराबादी ने इस विषय पर जो कुछ लिखा है, उसका एक भाग इस योग्य है कि यहाँ नक़्ल किया जाये— "यह बात अनिवार्य है कि इस भूमि के गोले को इसी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर साधारण तथा असाधारण दो भागों में बाँट दिया जाये। विषुवत् रेखा से ४५ अंश उत्तर तथा दक्षिण अक्षांश रेखा तक तो साधारण भाग हो और उसके आगे ध्रुवों तक दोनों दिशाओं में असाधारण कटिबन्ध माने जायें और इन असाधारण कटिबन्धों के लिए वही सहरी और इफ़्तार के समय हों, जो साधारण कटिबन्ध के अन्तिम सहरी तथा इफ़्तार के समय हो सकते हैं। इसके आगे एक विस्तृत गोशवारः (किसी हिसाब आदि के अलग-अलग ब्योरे का काग़ज़)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम जनवरी से लेकर ३१ दिसम्बर तक के नक़्शे के लिए सूर्योदय तथा सूर्यास्त का प्रस्तुत किया है, जो वोकिंग (लन्दन) के अंग्रेज़ी मासिक इस्लामिकरिविव (मार्च 1958) में देखा जा सकता है। साथ ही लाहौर के मासिक 'तर्जुमानुल् क़ुर्आन' (अप्रैल 1958) में भी मौजूद है। और इसके बाद डॉ० साहब ने यह समय विभाग चक्र अपनी अंग्रेज़ी की पुस्तक (Introduction to Islam) में भी सम्मिलित कर दिया है।

१५६ शुरू में आदेश इतना ही था कि स्वस्थ एवं ठहरे हुए भी जो माहे-रमज़ान में रोज़ा न रखना चाहें, क़ज़ा कर सकते हैं। जब आयत **'फ़मन् शहिद मिन्कुमुश्शह्र फ़ल्यसुम्हु'** उतरी उस समय से तन्दुरुस्तों और ठहरे हुए लोगों से यह अधिकार छिन गया और रमज़ान के रोज़े उनके लिए अख़्तियारी नहीं रहे अनिवार्य हो गये, परन्तु मरीज़ों, दुर्बलों, यात्रियों के लिए क़ज़ा का अधिकार बना रहा। आयत के इसी भाग में **'मन् कान मरीज़न्'** को एक बार फिर इसीलिए दोहराया गया कि **'मन् शहिद मिन्कुमुश्शह्र फ़ल्यसुम्हु'** की शिक्षा से कोई यह न समझ ले कि माज़ूरों (विवश लोगों) के लिए यह सुविधा समाप्त हो गयी, अतः इस आदेश को दोहरा दिया गया, जो वास्तविक और अर्थ के रूप में नहीं है केवल ज़ाहिरी और शक्ल के लिहाज़ से है।

१५७ अतः शरीअतें-इस्लामी के सारे आदेश तथा नियम इसी एक वास्तविकता पर आधारित हैं और स्वयं इसी रोज़े-रमज़ान के मामले में विवश लोगों के लिए कितनी गुंजाइशें और कितनी आसानियाँ रख दी गयी हैं। हदीसें-नबवी में जो आया है **'दीनुल्लाहि युस्रुन्'** वह इसी क़ुर्आनी आयत का अर्थ और सारांश है। और वास्तव में यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो शरीअत का एक आदेश भी ऐसा न मिलेगा, जिसमें अमल करनेवाले की परिस्थितियों, आयु, स्वास्थ्य, दशा, मौसम तथा दूसरी कठिनाइयों पर ध्यान न दिया गया हो। जो आदेश देखने में कठिन ज्ञात होते हैं, उनकी तह में भी हमेशा यही सच्चाई पायी जायेगी कि व्यक्ति या उम्मत के मार्ग में कुछ आसानियाँ ही पैदा हों। उम्मतें-इस्लामी के गर्व तथा प्रसन्नता हेतु यह पर्याप्त है कि जो आदेश दूसरों को कड़े महसूस होते हैं, उन पर अमल करने में वह आज तेरह सौ वर्ष से अधिक बीत जाने के पश्चात् सारे विरोधी वातावरण के बावजूद उसी प्रसन्नता से और कष्ट अनुभव न करके लगी हुई है कि ग़ैर क़ौमें देख-देखकर चकित रह जाती हैं। सर विलियम मेयोर लिखते हैं— "रोज़े की कठिनाइयाँ बदस्तूर क़ायम हैं, चाहे वह किसी मौसम में पड़े। और आज तक पूरब के मैदानों में जलजलाती धूप और झुलसाती हुई लू में, गर्मियों के लम्बे-लम्बे दिनों में मुहम्मद (स०) के अनुयायी सुबह से शाम तक पानी की एक बूंद हलक़ के नीचे नहीं उतारते......इतनी कड़ी मेहनत ईमानी शक्ति और आत्मसंयम की पूरी परीक्षा है।" (Life of Mohammad p. 193)। **'अल्युस्र'** से मुराद यात्रा की दशा में इफ़्तार और **'अल्उस्र'** से मुराद हालतें-सफ़र में रोज़ा रखने से ली गयी है। लेकिन तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने दीन के सारे मसअलों को इसी श्रृंखला में सम्मिलित करना चाहा है और इसको एक बड़ी बुनियाद क़रार दे लिया है। **'युरीदुल्लाहु'** शब्द 'युरीद' से अहले सुन्नत ने यह तर्क किया है कि अल्लाह अपने अज़ली तथा पुरातन इरादे के साथ इरादा करने का अधिकार रखता है।

१५८ यानी जितने रोज़े क़ज़ा हो जायें उनको पूरे कर लो तो पूरा-पूरा बदला रोज़ों की अदायगी का ही मिल जायेगा।

१५९ (तुम्हारे ही लाभ और बेहतरी की) और राह भी ऐसी जिसमें न अधिक परिश्रम, न कष्ट, बल्कि हर एक की परिस्थितियों की पूरी-पूरी रिआयत।

१६० शुक्रगुज़ार बनने का कितना आसान नुस्खा है कि अल्लाह की नेमतों पर ख़ामोशी के साथ विचार करें। बन्दा बस इसी पर ध्यान देता रहे कि अल्लाह ने इस्लामी शरीअत के माध्यम से कैसे-कैसे सुविधाजनक तरीक़े उसके लाभ और बदले के बता दिये हैं।

१६१ (ऐ पैग़म्बर!) **'अन्नी'** यानी मेरे निकट या दूर होने के सम्बन्ध में कि आया वह हमसे निकट है कि हम उससे सरगोशी करें (चुपके-चुपके बात करें) या दूर है कि अपनी आवाज़ चिल्लाकर उस तक पहुँचायें। गुमराह क़ौमों ने अल्लाह के अस्तित्व को तो अक्सर स्वीकार किया है, परन्तु उसको इन्सान से इतना परे, भौतिक एवं मानसिक दोनों हैसियतों से माना है कि वहाँ तक बन्दों की पहुँच गोया सम्भव ही नहीं है। **'अजिब सअलक'** ज्ञानियों ने इससे यह बिन्दु पैदा किया है कि निकट होना, स्वीकार करने और माँगने पर आधारित है और सम्बोधन इसलिए अपनाया गया है कि यह वास्ता या माध्यम हज़रत रसूल (स०) के साथ विशेषता रखता है। किसी और की ओर ध्यान न जाये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१६२ (और यह आप बन्दों से मेरी ओर से कह दीजिये) **'क़रीबुन्'** क़रीब या निकट ज्ञान और इल्म या दुआ के क़बूल होने के एतबार से क़ुर्ब यानी निकट होने से यह अर्थ तो निकला नहीं कि भौतिक निकटता या स्थानीय नज़दीकी ! इसका अर्थ मानसिक नज़दीकी का ही है। हक़ तआला अपने बन्दों से हमेशा ही निकट रहता है, परन्तु माहे-रमज़ान में इस साधारणता में विशेषता पैदा हो जाती है और यह निकटता और सम्बन्ध और अधिक बढ़ जाता है। बन्दों की तसल्ली और उनकी तस्कीन का किस क़दर सामान इस एक आयत के अन्दर मौजूद है। हमें अपने ख़ुदा को ढूंढ़ने कहीं और नहीं जाना है, वह तो हमसे निकट ही और हमारे से बिल्कुल पास ही है।

१६३ (और जिन दुआओं का क़बूल करना मेरी हिकमत और मेरी जानकारी में अनुचित नहीं होता।) **'अन्नी', 'अिन्नी', 'अुजीबु', 'दआन'** बोलनेवाले की सारी ज़मीरें (सर्वनाम) इस एक आयत के अन्दर बहुवचन के बजाय एक वचन की हैं। दोनों सीग़ों का साधारण अन्तर ध्यान में रखा जाये। बहुवचन का सीग़ा आमतौर पर शक्ति, बड़ाई और बल का प्रदर्शन करता है और एक वचन इसके बरखिलाफ़ विशेषता, तवज्जोह और मेहरबानी का संकेतक है। यहाँ यह तो स्पष्ट है कि विशेष तवज्जोह है, साथ ही आयत के शब्दों से दुआ करने की इच्छा और शौक़ पैदा होता है। यह भी ज़ाहिर हो जाता है कि दुआ बन्दे का स्वार्थी एवं दुनियावी अमल नहीं है, बल्कि यह भी इबादत, उपासना और ख़ुदा की निकटता का कारण है। एक सही हदीस में यह मज़मून भी आया है कि जिसके लिए दुआ का दरवाज़ा खुल जाता है यानी दुआ करने की इच्छा हो जाती है, उसके लिए ख़ुदा की रहमत का दरवाज़ा भी खुल जाता है। **'दअ्वत'** का अर्थ यहाँ इबादत का भी है और इजाबत का अर्थ स्वीकार करना है, यानी बन्दा जब मेरी इबादत करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।

१६४ यानी मेरी ईमान की दावत और इबादत का बुलावा क़बूल करें, जिस प्रकार मैं उनकी आवश्यकताओं की दुआएँ क़बूल करता हूँ। अल्लाह निस्सन्देह एक बड़ा हकीम है जिससे बड़ा कोई नहीं, अतः उसके आदेशों में अनुचित होने का कोई शक ही नहीं। इसके बरखिलाफ़ बन्दों की प्रार्थनाओं में बहुत सी अनुचित भी होती हैं और इसी कारण क़बूलियत का दर्जा नहीं पाती हैं। (थानवी)। **'वल्युअ्मिनूबी'** अर्थात् विश्वास रखें न केवल मेरे अस्तित्व पर, बल्कि मेरे हाकिम होने पर और मेरी हिकमतों की रिआयत पर।

१६५ (पूरी तरह और उन पर दोनों आलमों यानी दुनिया तथा आख़िरत की भलाई के पट खुल जायें।) अल्लाह के आदेशों पर अमल करने और सम्पूर्ण ईमान के पश्चात् हिदायत और शिक्षा पाये हुए व्यक्ति के दर्जे तक पहुँचने में कोई रुकावट नहीं रह जाती। **'लअ़ल्ल'** ऊपर बयान हो चुका है कि अल्लाह के कलाम में जब उससे सम्बद्ध होकर यह शब्द आता है तो उसके अर्थ केवल उम्मीद या सन्देह के नहीं रहते, बल्कि उसमें विश्वास पाया जाने लगता है। अर्थ यह हुआ कि अल्लाह के हुक्मों पर अमल करने और उसके एक हकीम हाकिम होने पर विश्वास रखने से दोनों आलमों की बेहतरी तथा भलाई का पट खुलकर रहेगा।

१६६ यह इजाज़त शुरू में नहीं थी जैसा कि शब्द **'अुहिल्ल'** से स्वयं संकेत होता है। आरम्भ में रोज़े की दशा में रात में भी दिन की भाँति स्त्रियों से अलग रहने का आदेश था। इस्लामी शरीअत रसूलुल्लाह (स०) के जीवन-काल में दर्जावार उतरी है। कहीं तो ऐसा है कि आदेश आरम्भ में नर्म थे, धीरे-धीरे सख़्त हो गये, जैसे शराब का पीना, जिसको पहले केवल नापसन्द किया गया था और फिर होते-होते उसके हराम होने का आदेश आ गया। कहीं-कहीं इसके विरुद्ध हुआ है यानी शुरू में क़ानून कठोर था, परन्तु धीरे-धीरे उनमें सुविधा और रिआयत होती गयी। यही रोज़े का मामला है कि पहले स्त्रियों से मिलना रात में भी हराम था, बाद को जायज़ कर दिया गया। **'रफ़सु'** के मानी स्त्री-भोग है। यहीं से यह भी स्पष्ट हो गया कि बीवी की तरफ़ लगाव रखना रूहानियत और आत्मा की पवित्रता के विरुद्ध नहीं है, जैसा कि बहुत से मुश्रिकाना और जाहिली धर्मों ने समझ लिया है। और रमज़ान के महीने में इबादत और उपासना और बीवी से मिलना ज़रा भी बुरा नहीं है, जैसा कि धर्मों के जोगियाना और दुनिया को छोड़कर फ़क़ीर बननेवाले विचारों ने दिलों में बिठा दिया है। शरीअते-इस्लामी ने जिस चीज को सख़्ती से मना किया है, वह हरामकारी और उससे सम्बद्ध गन्दगी के कार्य हैं, न कि स्त्री-भोग से। भूख-प्यास, नींद की तरह जिंसी भूख भी यदि अपनी सीमाओं के अन्दर रहे तो एक प्राकृतिक और अहानि-कारक इच्छा है। जान-बूझकर और शर्ई कारणों के बिना रोज़ा तोड़ने की सजा शरीअत ने दो महीने यानी साठ दिन के लगातार रोज़े रखी है और शौहर तथा स्त्री अगर अपने संयुक्त कर्म से रोज़ा तोड़ दें, तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों की सज़ा यही है, लेकिन बीवी रज़ामन्द न हो और शौहर उसे दिन में मिलन-हेतु विवश करे तो बीवी पर गुनाह नहीं होगा। हाँ ! ज़बरदस्ती करने की जाँच होनी चाहिए। विवश के लिए केवल एक रोज़ा क़ज़ा का काफ़ी है। कफ़्फ़ारा का आधार इरादे और जान-बूझकर आमादा होना है।

१६७ निकट होने या मिलने के विचार से या एक-दूसरे के परदादार और तस्कीन होने के विचार से। अर्थात् हिन्दुस्तानी मुहावरे में दोनों में चोली-दामन का साथ है। वह उनके हक़ में ओढ़ना-बिछौना हैं और यह उनके हक़ में। यह वस्त्र की उपमा किस विचार से है ? विभिन्न व्यक्तियों ने इसके विभिन्न उत्तर दिये हैं। बाज़ ने कहा कि एक-दूसरे के ऊपर निर्भर होने के कारण। किसी ने कहा कि देह के मिलने और छूने के आधार पर इत्यादि, इत्यादि। परन्तु ध्यान करने पर अंदाज़ा होगा कि वस्त्र का एक गुण परदापोशी यानी देह को छुपाना या उसके ऐबों को ढक देना है और उसकी सुन्दरता तथा सुशीलता को उभारना है। इस उपमा से विशेष संकेत इसी गुण की ओर है। गोया हर इस्लामी परिवार में शौहर और बीवी को एक-दूसरे के पर्दे को छुपानेवाला होना चाहिए और एक-दूसरे की सुन्दरता को बढ़ानेवाला होना चाहिए, जो इन्तिहाई गहरा सम्बन्ध स्त्री-पुरुष के बीच होना चाहिए। उसके आधार पर ज़ाहिर है कि जितना अवसर एक-दूसरे के जिस्मानी, नैतिक, आत्मिक ऐबों और कमज़ोरियों से परिचित होने का मिलता है, उतना न किसी मित्र को मिल सकता है, न किसी सगे-सम्बन्धी को और न एक का भेद दूसरे से छुपा रह सकता है। ऐसी स्थिति में स्त्री की नैतिकता का उच्चतम रूप यह है कि शौहर की हर कमज़ोरी को छुपावे, उस पर सन्तोष करे और उसे अच्छी से अच्छी शक्ल में प्रदर्शित करे। उसकी अप्रसन्नता को भी अपनी प्रसन्नता का कारण ही ज़ाहिर करे। इसी प्रकार पुरुष के इख़्लाक़ (पुरानेपन) का कमाल यही है। दोनों की नैतिक पूर्ति का यह प्रभावशाली नुस्ख़ा इस्लाम ने बातों-बातों में बिना किसी कष्टदायक तपस्या में डाले हुए रोज़ाना की आसान तथा स्वच्छ आराधना के माध्यम से बता दिया। यह उस मज़हब की शिक्षा है, जो फ़िरंगी शोधकारों की दृष्टि में नीचा इसलिए है कि उसमें स्त्री को नीचा समझा गया है। कितनी ग़लत बात को मशहूर किया गया है ? कौन झूठ इससे बढ़कर सख़्त और कौन सा ग़लत इल्ज़ाम इससे बढ़कर स्पष्ट होगा। मनुस्मृति वाले हिन्दू-धर्म का वर्णन नहीं है। नये ज़माने के यहूदी और नसरानी मज़हबों से सवाल है कि उनको सारी पुस्तकों के दफ़्तरों की किस किताब में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में और प्रेम तथा विश्वास के विषय में ऐसी शिक्षा है।

१६८ यानी रात्रि में छुप-छुपकर स्त्री-भोग करते थे और जी में डरते भी जाते थे कि कहीं अल्लाह के हुक्म के विरुद्ध तो नहीं हो रहा है। **'अ़लिमल्लाहु'** यानी जो बात अल्लाह की जानकारी में तो हमेशा से है ही, अब वह खुलकर देखने में आ गयी। यह तफ़्सीर तो तफ़्सीर करनेवालों के बहुमत की थी, परन्तु राग़िब लुग़वी ने ख़ियानत (ग़बन) और इख़्तियान (अमानत में ग़बन) के अर्थ में अन्तर बताया है और कहा है कि अगर ख़ियानत के अमल का हो जाना माना जाता तो **'तख़ून्वफ़ून अन्फ़ुसकुम्'** आता। **'तख़्तानून'** का अर्थ केवल ख़ियानत के लिए भावना का उत्तेजित होना है और इख़्तियान के मानी ख़ियानत करना नहीं, बल्कि ख़ियानत के लिए बहाना करना है। आगे इसी का समर्थन एक आयत **'अिन्नन्नफ़्स... बिस्सूअि'** से प्राप्त किया है।

१६९ यानी पिछले गुनाहों को माफ़ कर दिया और आइंदा के लिए स्त्रियों से मिलने की आज्ञा प्रदान कर दी। **'ताब'** और **'अ़फ़ा'** से यह आवश्यक नहीं है कि पूर्व में कोई गुनाह हो भी चुका हो। केवल इस बात की सम्भावना और बात को आगे तक बढ़ाने के लिए भी यह शब्द प्रयोग में आ सकते हैं।

१७० (अपने मामूली तरीक़ पर, जैसे रमज़ान के अलावा दूसरे ज़माने में करते रहते थे।) **'बाशिरू'** का अर्थ है स्त्री-भोग करना। इस आयत से एक और सच्चाई पर भी प्रकाश पड़ता है। स्त्री-भोग भी खाने-पीने और सोने ही की भाँति एक प्राकृतिक कर्म है, जिस पर न हँसने और हक़ारत (तिरस्कार) करने की गुंजाइश है और न बुरा-भला कहने की आवश्यकता है। बुरा-भला कहने के योग्य इस जिंसी शक्ति का बेजा इस्तेमाल है, जिस प्रकार चोरी के खाने और हराम खानों पर है।

१७१ (सन्तान के रूप में और स्त्री-पुरुष के एकत्र होने के परिणामस्वरूप) **'माकतबल्लाहु लकुम्'** से मुराद औलाद और नेक सन्तान है। स्त्री-भोग यदि सही आयु में और उचित समय पर हो तो बड़ी गहरी प्राकृतिक स्वाद का भी कारण होता है। परन्तु इस्लाम ने इस कार्य से अस्ली और बड़ा उद्देश्य नस्ल को बढ़ावा देने और सन्तान की प्राप्ति को रखा है कि उम्मत की संख्या और शक्ति में बराबर बढ़ोतरी होती रहे और निजी स्वाद सामूहिक लाभ का ज़ीना बनता रहे, ठीक उसी प्रकार जैसे खाने-पीने की प्राकृतिक लज़्ज़त व्यक्ति के जीवन और उसके जिस्म की शक्ति का कारण बनती है। **'कतब'** "लिख रखा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है" यानी **'लौहि महफ़ूज़'** में अपनी सृष्टि की हिकमत के अनुसार। **'वब्तग़ू'** बाज़ ने इसका अर्थ शबे-क़द्र की तलाश और **'कतबल्लाहु लकुम्'** के माने उसके बदले और सवाब के लगाये हैं, लेकिन शोधकर्ताओं ने इसे रद कर दिया है। इब्ने क़य्युम ने यहाँ एक नई बात यह पैदा की है कि आयत में यह संकेत है कि जिंसी स्वाद में बिल्कुल लीन न हो जाओ, बल्कि इसमें पड़कर भी अल्लाह की रज़ामन्दी का खयाल रखो और नेक तथा अच्छी सन्तान के इच्छुक और चाहनेवाले रहो। 'वब्तग़ू' से साफ़ संकेत निकल रहा है कि उद्देश्य नस्ल की बढ़ोतरी है, न कि इरादे से निःसन्तान होना या गोशानशीन और बे-बाल-बच्चों का जीवन चाहना। गर्भ के विरोध और नस्ल के समाप्त करने के आन्दोलन का जो ज़ोर इस समय चल रहा है और जो गर्भ रोकने का सिलसिला इस समय सुन्दर नामों के साथ चल रहा है, क़ुर्आन मजीद ने अपने सारगर्भित रूप में इसका खण्डन किया है और बताया है कि स्त्री-भोग का जो परिणाम प्राकृतिक ढंग से निकलता है, उसी की आशा करनी चाहिए और उसी की प्रतीक्षा करनी चाहिए। आम नियम और वास्तविकता यही है। नक़ली तरीक़ों से बिना सख्त ज़रूरत के सन्तान पर रोक लगाना और रबड़ इत्यादि के आलों का प्रयोग करना मुसीबतों को दूर करना नहीं है। जिस्मानी कष्टों और नैतिक रोगों को बढ़ाना है और व्यक्ति तथा क़ौम को नये-नये फ़ित्नों तथा फ़सादों की बातों में फँसाना है। बेहद प्रयासों के बावजूद अभी तक "गर्भ रोक" कोई आला या यन्त्र बना ही नहीं है। अभी तक ऐसा कोई यन्त्र नहीं तैयार हुआ है, जो हर प्रकार से सन्तोषजनक हो, क़तई और अहानिकारक हो। और फिर यदि कोई बेखता और हुक्मी विधि ज्ञात भी हो जाये तो गर्भ रोकने से जिस्मानी कष्टों को रोकने की क्या विधि होगी? यह विश्वास करना कठिन है कि यह अमल बार-बार किया जाये और उसके हानिकारक असर स्त्री तथा पुरुष पर न हों। अगर यह बात मान ली जाये कि जल्द-जल्द गर्भवती होने और सन्तान उत्पन्न करने से स्त्री के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, तो भी स्वयं नई मेडिकल साइंस का यह कहना है कि स्त्री को गर्भवती होने के ज़माने में जो सिन्फ़ी आमाल से मुहलत मिल जाती है और बच्चा होने के बाद जो समय व्यतीत होता है, यह सब स्त्री की सेहत के लिए आवश्यक है और फिर यह भी तो है कि सन्तान की उत्पत्ति हमेशा माता-पिता की मर्ज़ी और इरादे के आधीन नहीं है। ऐसे माँ-बापों की मिसालें देखने में आयी हैं कि पहले तो उन्होंने गर्भ रोकने की विधियों से अपने औलाद उत्पत्ति के अज़्वों की क्षमता को नष्ट किया और फिर आगे चलकर जब सन्तान की इच्छा या आवश्यकता प्रतीत हुई, तो अपनी पिछली हरकतों पर पश्चात्ताप करते रहे। यह सारी बातें इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका से ली गयी हैं। शेष अनेक डॉक्टरों और लेडी डॉक्टरों ने और वैज्ञानिकों ने इस नवीन फ़ैशन की ग़ल्तियों और बेहूदगी पर इससे ज़्यादा खुले शब्दों में कहा है और इसकी प्राकृतिक हानियों को खोलकर दिखाया है। विशेष रूप से स्त्री के मामले में। योरोप के अनेक देशों में तो इस आन्दोलन से तंग आकर और काफ़ी तजुर्बे करने के बाद नये बच्चे की उत्पत्ति पर माओं को इनाम देने की प्रथा आरम्भ कर दी। जर्मनी तथा इटली इत्यादि से तो यह खबरें कई वर्षों से आना शुरू हो गयी थीं और रूस तथा फ़्रांस इत्यादि से भी ऐसी सूचनाएँ आने लगी हैं। अन्त में उसी की बात सच्ची निकली, जिसने कहा था कि शादियाँ करो ज़्यादा बच्चे पैदा करनेवाली स्त्रियों से।

१७२ यानी 'सुबह सादिक़' के उदय होने से पहले तक खाने-पीने और स्त्री-भोग की आज्ञा है। **'ख़ैतुल् अबयज़ि' 'ख़ैतुल् अस्वदि'** फ़ज्र की सफ़ेद धारी का सियाह धारी से अलग हो जाना। यह संकेत है रात की सियाही के दूर होने और सुबह की सफ़ेदी के प्रकट होने यानी फ़ज्र के उदय होने की ओर। खुद रसूल (स०) से यही तफ़्सीर रिवायत हुई है। **'ख़ैत'** से साधारणतः यही इशारा है, क्योंकि शुरू में वास्तव में यह धारियाँ ही सी दिखायी देती हैं। हदीसों में बड़ी ताकीद से शौक़ दिलाया गया है कि रोज़ेदार की रात भी जहाँ तक सम्भव हो ज़िक्र तथा इबादत में कटनी चाहिए। अहले-सुन्नत ने अपने यहाँ जो नमाज़े-तरावीह पर इतना बल दिया है, वह साफ़ इसी नबवी मंशा की तामील है। मेहनत, आराम तथा कष्ट और लज़्ज़त की जो आनन्दमयी और हकीमाना मिलावट इस्लामी शरीअत की सारी इबादतों में है, उसका एक उज्ज्वल नमूना यह रमज़ान के रोज़े हैं। दिन भर सब्रोज़ब्त के अभ्यास, खाने-पीने की प्रतीक्षा, जिससे खाने-पीने का स्वाद और बढ़कर रहता है, शाम के समय आनन्द एवं तफ़रीह फिर शाम से लेकर सुबह सादिक़ तक इबादतों और भौतिक स्वादों का मिला-जुला हुआ सिलसिला, यह इस्लाम की ही विशेषताओं में से है। **'मिनल् फ़ज्रि'** फ़ज्र शरई से मुराद सुबहे-काज़िब नहीं, जब कुछ देर के लिए उजाला उत्तर और दक्षिण में मालूम होने लगता है, बल्कि वह नूर का तड़का मुराद है, जो सुबहे-काज़िब के कुछ देर के बाद होता है और प्रकाश पूर्व से पश्चिम की ओर फैलने लगता है। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इस आयत से यह बात भी निकाली है कि दूसरी सुबह के उदय होने (सुबहे-सादिक़ के होने) तक रात का आखिरी भाग अवशेष रहता है और फ़ज्र के उदय होने के बाद का समय दिन में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शामिल होता है। हदीस में सहरी (रमज़ान के दिनों में कुछ रात रहे का खाना, जिसे खाकर रोज़ा रखा जाता है) में देर करने की बड़ी बड़ाई आयी है। सही मुस्लिम में समरा बिन जन्दब सहाबी की रिवायत अंकित है कि रसूल (स०) ने स्वयं फ़र्माया है कि बिलाल, जो लोगों को होशियार करने के लिए बहुत सवेरे अज़ान दे देते हैं, उनकी अज़ान से या केवल उत्तर तथा दक्षिण में प्रकाश देखकर सहरी खत्म न करो, बल्कि प्रकाश के फैल जाने यानी वही पूर्व एवं पश्चिम वाली सफ़ेदी का विश्वास करो। बल्कि सुनने-निसाई की एक हदीस से तो यह मालूम होता है कि रसूल (स०) और हज़राते-सहाबा बिल्कुल सुबह हो जाने तक सहरी से आनन्द लेते रहते, बस यह लिहाज़ रहता कि कहीं सूर्य उदय न हो जाये। "ज़र्र कहते हैं कि हमने हुज़ैफ़ा सहाबी से पूछा कि आपने रसूल (स०) के साथ सहरी किस समय तक खायी है? उन्होंने कहा कि सुबह तक सिवा इसके कि सूर्य उदय नहीं हो गया।" इस क़िस्म की रिवायतों का सारांश यह है कि हज़रात सहाबा उस समय तक सहरी खाते रहते थे कि फ़ज्र के उदय होने का सन्देह होने लगता था। कोई समझता था कि फ़ज्र हो गयी, कोई समझता कि नहीं हुई। मुहद्दिसों (हदीसों के ज्ञाताओं) ने सहरी में इतनी देर मुस्तहब बतायी है कि फ़ज्र का उदय होना निकट आ जाये। हज़रत ज़ैद बिन साबित सहाबी के हवाले से यह रिवायत बुख़ारी व मुस्लिम से नक़्ल की गयी है कि हम रसूल (स०) के हमराह सहरी खाते थे और उसके बाद नमाज़े-फ़ज्र के लिए खड़े हो जाते थे। पुराने ज़माने के इमामों का, जिनमें बड़े सहाबा भी शामिल हैं और बड़े ताबेईन भी, आम दस्तूर सहरी में इतनी देर करने का था कि फ़ज्र का उदय होना निकट आ जाता था और इब्ने कसीर ने इस सिलसिले में हज़रत अबू बक्र व उमर अली व इब्ने मसऊद व अबू हुरैरा व इब्ने उमर व इब्ने अब्बास इत्यादि सहाबा कराम का और मु० बाक़र, इब्राहीम नख़ई, अता और हसन बसरी और मुजाहिद इत्यादि ताबेईन के गिनाये हैं। अतः एक गरोह का फ़त्वा है कि सहरी उस समय तक दुरुस्त है, जब तक कि सुबह की रौशनी रास्ते और मकानों पर न फैल जाये। हज़रत उमर, हज़रत हुज़ैफ़ा और हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास जैसे सहाबियों और कई ताबेईन से नक़्ल है कि खाने-पीने से एहतियात उस समय से वाजिब है, जब सुबह रास्तों और पहाड़ों की चोटियों पर ज़ाहिर हो जाये। स्नान की आवश्यकता की दशा में अगर सुबह हो गयी और अभी स्नान का अवसर नहीं मिला, तो रोज़ा निर्विरोध जायज़ होगा।

१७३ यानी जबसे रात प्रवेश करने लगे बस उस समय रोज़े को समाप्त कर दो। यह अर्थ नहीं कि रात का अँधेरा हो जाने तक रोज़ा रखे रहो। रोज़ा रात आते ही खत्म हो जाना चाहिए, यह न हो कि रात का कोई भाग रोज़े में शामिल तथा प्रवेश कर जाये। **'अल्लैल'** और स्वयं 'लैल' यानी रात्रि अरबी में दिन की समाप्ति यानी सूर्यास्त पर मानी जाती है और सूर्य के आसार के खत्म होने का विश्वास किया गया है। **'अतिम्मुस्सियाम'** इसके मानी साफ़ यह हुए कि इफ़्तार ठीक सूर्यास्त के साथ होना चाहिए। **'अतिम्मू'** आदेश का सीग़ा है और अर्थ है लाज़िमी होना। बिना इफ़्तार किये दिन और रात के लगातार रोज़े को इसी आयत के आधार पर मना किया गया है और हदीस में स्पष्ट रूप से मना किया गया है। मासियत यानी गुनाह किसी प्रकार और किसी दर्जे का हो मुसलमान के लिए हर ज़माने और हर मौसम में हराम है, लेकिन रमज़ान के महीने में यह ताकीद बहुत सख्त हो जाती है। रोज़ेदार की रात्रि भी गोया इबादत में ही व्यतीत होती है और दिन तो खैर इतनी बड़ी इबादत यानी अल्लाह के हुक्म के सम्मान में दिल की लज़्ज़तों और तबीयत की इच्छाओं को छोड़ने में गुज़रता ही है। बुरा कहना, दूसरों की बुराई करना, बुरी दृष्टि डालना, बुरी बात मुँह से निकालना हराम तो हमेशा ही हैं। रमज़ान में कहना चाहिए कि और भी हराम हैं। पूरे महीने भर के रात और दिन का एक-एक भाग इस्लामी सेना के परेड का ज़माना है। किसी क्षण लापरवाही न होनी चाहिए। सर डब्लू० टी० आर्नल्ड मुसलमान नहीं हैं, मसीही हैं, फिर भी न्याय की भावना और सच बोलने की आदत से विवश होकर मसीही विरोधियों के उत्तर में लिखते हैं— "रमज़ान मास के रोज़ों के विषय में केवल इतना कहना है कि धर्म का यह खम्भ स्वयं इस विचार के खण्डन के लिए पर्याप्त है कि इस्लाम को आनन्द उठाने के लिए प्रचलित किया गया है। कारलायेल के अनुसार मुहम्मद (स०) का धर्म आराम के लिए नहीं है। सख्त-सख्त रोज़े, पाकसाफ़ रहने के नियम, इबादत के सख्त और पेचीदा तरीक़े, दिन में पाँच-पाँच दफ़ा नमाज़ें, शराब का हराम होना, यह आदेश जिस धर्म में हों, उसकी सर्वप्रियता भौतिक आनन्द का परिणाम तो नहीं हो सकती। (Preaching of Islam p. 418)।

१७४ (बल्कि किसी प्रकार का शहवानी मेल-जोल उनसे न रखो) **'व ला तुबा शिरूहुन्न'** शब्द मुबाशरत के अर्थ में स्त्री-भोग के अलावा अन्य कार्य, जो उससे सम्बद्ध हों, सभी आ गये। यह तफ़्सीर

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २२२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व ला तअ्कुलू अम्वालकुम् बैनकुम् बिल्बातिलि व तुद्लू बिहा
अिलल्हुक्कामि लि तअ्कुलू फ़रीक़म्मिन् अम्वालिन्नासि बिल्-अिस्मि व अन्तुम्
★ रु. २३/७ आ ६ तअ्लमून (१८८) ★ यस्अलूनक अनिल्-अहिल्लति ॰ क़ुल् हिय मवाक़ीतु
लिन्नासि वल्हज्जि व लैसल्बिर्रु बि अन्तअ्तुल्-बुयूत मिन् ज़ुहूरिहा
व लाकिन्नल्बिर्र मनित्तक़ा ॰ वअ्तुल्-
बुयूत मिन् अब्वाबिहा ॰ वत्तक़ुल्लाह
लअल्लकुम् तुफ़्लिहून (१८९) व क़ातिलू
फ़ी सबीलिल्लाहिल्लज़ीन युक़ातिलूनकुम्
व ला तअ्तदू ॰ अिन्नल्लाह ला युहिब्बुल्-
मुअ्तदीन (१९०) वक़्तुलू-हुम् हैसु
सक़िफ़्तुमू हुम् व अख़्रिजू हुम् मिन् हैसु
अख़्रजूकुम् वल्फ़ित्नतु अशद्दु मिनल्क़त्लि ॰
व ला तुक़ातिलू हुम् अिन्दल्-मस्जिदिल्-
हरामि हत्ता युक़ातिलूकुम् फ़ीहि ॰ फ़ अिन्
क़ातलूकुम् फ़क़्तुलू-हुम् ॰ कज़ालिक
जज़ाअुल्-काफ़िरीन (१९१) फ़अिनिन्तहौ
फ़ अिन्नल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (१९२) व क़ातिलू-हुम् हत्ता ला तकून
फ़ित्नतुंव्व यकूनद्दीनु लिल्लाहि ॰ फ़ अिनिन्तहौ फ़ ला अुद्वान अिल्ला
अलज़्ज़ालिमीन (१९३) अश्शहरुल्-हरामु बिश्शहरिल्-हरामि वल्हुरुमातु
क़िसासुन् ॰ फ़ मनिअ्तदा अलैकुम् फ़अ्तदू अलैहि बिमिस्लि मअ्तदा
अलैकुम् ॰ वत्तक़ुल्लाह वअ्लमू अन्नल्लाह मअल्मुत्तक़ीन (१९४) व
∴ मु. ख़ि मु त क़ १ अन्फ़िक़ू फ़ी सबीलिल्लाहि व ला तुल्क़ू बि अैदीकुम् अिलत्तह्लुकति ॰ ∴
व अह्सिनू ॰ ∴ अिन्नल्लाह युहिब्बुल्-मुह्सिनीन (१९५)

سیقول ۲ ۲۳ البقرة ۲

حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَقْرَبُوْهَا ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ
لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ۝ وَلَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَتُدْلُوْا
بِهَآ اِلَى الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَاَنْتُمْ
ع تَعْلَمُوْنَ ۝ يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْاَهِلَّةِ ؕ قُلْ هِيَ مَوَاقِيْتُ لِلنَّاسِ
وَالْحَجِّ ؕ وَلَيْسَ الْبِرُّ بِاَنْ تَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ ظُهُوْرِهَا وَلٰكِنَّ
الْبِرَّ مَنِ اتَّقٰى ۚ وَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ اَبْوَابِهَا ۠ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ
تُفْلِحُوْنَ ۝ وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ الَّذِيْنَ يُقَاتِلُوْنَكُمْ وَلَا
تَعْتَدُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ۝ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ
ثَقِفْتُمُوْهُمْ وَاَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ حَيْثُ اَخْرَجُوْكُمْ وَالْفِتْنَةُ اَشَدُّ
مِنَ الْقَتْلِ ۚ وَلَا تُقٰتِلُوْهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتّٰى يُقٰتِلُوْكُمْ
فِيْهِ ۚ فَاِنْ قٰتَلُوْكُمْ فَاقْتُلُوْهُمْ ؕ كَذٰلِكَ جَزَآءُ الْكٰفِرِيْنَ ۝
فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ وَقٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ
فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ؕ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ اِلَّا عَلَى
الظّٰلِمِيْنَ ۝ اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ وَالْحُرُمٰتُ قِصَاصٌ ؕ
فَمَنِ اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ فَاعْتَدُوْا عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ
وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ۝ وَاَنْفِقُوْا فِيْ سَبِيْلِ
مع اللّٰهِ وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۛ وَاَحْسِنُوْا ۛ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और आपस में एक दूसरे का माल नाजायज़ रूप में न खाओ और उड़ाओ[१७८], और न उसे हाकिमों तक पहुँचाओ कि जिससे लोगों के माल का एक भाग तुम गुनाह से खा जाओ, यद्यपि तुम जान रहे हो[१७९]। (१८८) ★ ह० २३ / ७ आ ६

आपसे लोग नये चाँद के विषय में प्रश्न करते हैं[१८०], आप कह दीजिए कि वह लोगों के लिए, हज के लिए समय की पहचान के यन्त्र हैं[१८१]। और यह तो (कोई भी) नेकी नहीं कि तुम घरों में उनकी पीठ की ओर से आओ[१८२] अलबत्ता नेकी यह है कि कोई शख़्स तक़्वा (संयम) अख़्तियार करे[१८३]। और घरों में उनके दरवाज़ों ही से आओ[१८४], और अल्लाह से तक़्वा अपनाये रहो यहाँ तक कि बेहतरी पा जाओ[१८५]। (१८९) और अल्लाह की राह में लड़ो उन लोगों से जो तुमसे लड़ते हैं[१८६], और हद से बाहर मत निकलो कि अल्लाह हद से बाहर निकल जानेवालों को पसन्द नहीं करता[१८७]। (१९०) और उन्हें जहाँ कहीं पाओ क़त्ल करो, और जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है तुम उन्हें निकालो[१८८], और फ़ित्ना तो क़त्ल से (भी) सख़्ततर है[१८९]। और उनसे मस्जिदे-हराम के क़रीब युद्ध और क़त्लोख़ून न करो जब तक वह (ख़ुद) तुमसे युद्ध न करें[१९०]; हाँ, अगर वह ख़ुद तुमसे जंग करें, तो तुम भी उन्हें क़त्ल करो, यही सज़ा है काफ़िरों को[१९१]। (१९१) फिर अगर वह बाज़ आ जायें[१९२] तो निस्सन्देह अल्लाह बड़ा क्षमा करनेवाला है[१९३]। (१९२) और उनसे लड़ो यहाँ तक कि फ़साद (अक़ीदा-विश्वास) बाक़ी न रह जाये[१९४] और दीन अल्लाह ही के लिए रह जाये[१९५]। सो अगर वह बाज़ आ जायें[१९६] तो सख़्ती (किसी पर भी) नहीं सिवाय अपने हक़ में। (१९३) ज़ुल्म करनेवालों के[१९७] सम्मान वाला महीना तो सम्मान वाले महीने के बदले में होता है[१९८], और सम्मान बदले की चीज़ है[१९९]। तो जो कोई तुम पर ज़ियादती करे, तुम भी उस पर ज़ियादती करो जैसी उसने तुम पर ज़ियादती की है[२००], और अल्लाह से डरते रहो[२०१] और जानते रहो कि अल्लाह परहेज़गारों के साथ है[२०२]। (१९४) और अल्लाह की राह में ख़र्च करते रहो[२०३]। और अपने को अपने हाथों हलाकत में न डालो[२०४] ∴ और अच्छे काम करते रहो ∴ अवश्य ही अल्लाह अच्छे काम करनेवालों को पसन्द करता है[२०५]। (१९५) ∴ मु. ख़ि मु त क़. १

१७८ (ऐ ईमानवालो !) **'ला तअ्कुलू'** 'अकल' यहाँ शाब्दिक अर्थ में नहीं है, यानी केवल खाना मुराद नहीं बल्कि किसी प्रकार अपने प्रयोग में ले आना है। उर्दू मुहावरे में भी ऐसे अवसर पर बोलते हैं कि फ़ुलाँ साहब रुपये खा गये, या हज़्म कर गये। **'बिल् बातिलि'** 'बातिल' से मुराद है हर नाजायज़ तरीक़े। गोया दो संक्षिप्त शब्दों में माली (आर्थिक) तक़्वा (पाक ज़िन्दगी) की सारी शिक्षा आ गयी। हर ख़ियानत से बचने की ताकीद, हर प्रकार की अमानत तथा ईमानदारी का हुक्म। फ़क़ीहों ने ग़लत अक़्ल के बारे में जो विवरण दिया है उसी में जुआ, दूसरों का हक़ मारना इत्यादि के साथ एक मद यह भी बढ़ा दी है कि वह माल भी बातिल के हुक्म में आ जाता है, जो उस माल के मालिक की स्वेच्छा बिना प्राप्त किया जाये, या मालिक यद्यपि उसे ख़ुश होकर दे रहा हो, लेकिन स्वयं शरीअत ने उसे नाजायज़ मद क़रार दिया हो। **'अम्वालकुम्'**— सम्बोधन समस्त मोमिनों से है। और आदेश का सम्बोधन सारी उम्मत के व्यक्तियों से है। उर्दू में **'अम्वालकुम्'** का सही अर्थ "अपना माल" का नहीं है, बल्कि "एक दूसरे का माल" से ज़ाहिर होगा; जैसे **'अक़्तुलू अन्फ़ुसकुम्'** का अर्थ "एक दूसरे का क़त्ल करना" है। डॉ० राबर्ट्स ने किताब क़ुर्आन मजीद के समाजी क़ानूनों पर लिखी है, उसमें इस आयत को नक़ल करके लिखा है— "यह आयत इस बात की और अधिक साक्ष्य है कि मुहम्मद (स०) ने अपने अनुयाइयों में कितनी ताकीद व्योहार की सुन्दरता की रखी है।" ("Social Laws of the Qoran")। **'बैनकुम्'** के घेरे की विशालता में फ़क़ीहों ने सारी मानव जाति को दाख़िल किया है और केवल मुसलमानों के माल तक आदेश को सीमित नहीं रखा है। मुसलमान हो या काफ़िर, किसी का माल दग़ा, फ़रेब, अत्याचार इत्यादि से लेना जायज़ नहीं है, केवल हमला करनेवाले काफ़िर का माल क़ब्ज़े में लेना जायज़ है, क्योंकि उससे तो जंग का एलान हो चुका लेकिन इससे भी आगे जायज़ नहीं है, और हमला करनेवाले काफ़िर का माल भी रिश्वत, जालसाज़ी और ख़ियानत करके लेना जायज़ नहीं है। (फ़ुटनोट देखें सफ़ा २२३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २१९ से)

हनफ़ीया मालिकीया के अनुसार थी। इमाम शाफ़िई के विचार में एतिकाफ़ में यह चीज़ें कराहियत (घृणा) पैदा कर देती हैं। उसे समाप्त नहीं करतीं। **'आकिफ़ून'** एतिकाफ़ के शाब्दिक अर्थ हैं स्वयं को किसी वस्तु पर रोक रखने या अनिवार्य कर लेने के। शरीअत की परिभाषा में इसका अर्थ है मस्जिद में बैठकर स्वयं को इबादत हेतु बन्दी बना लेना। एतिकाफ़ करनेवाले के वास्ते अनिवार्य है कि वह हर समय मस्जिद ही में रहे, खाये, पीये, सोये, जागे और बिना भौतिक अथवा शरई सख्त ज़रूरत के मस्जिद से बाहर पग न धरे। एतिकाफ़ के समय की अधिक से अधिक कोई हद नहीं है। हाँ ! इमाम शाफ़िई के निकट कम से कम मुद्दत एक क्षण भी हो सकती है, परन्तु इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मालिक के मत में कम से कम एक दिन और रात होना चाहिए। एतिकाफ़ एक बहुत सुकुमार तपस्या है, अतः उम्मत पर फ़र्ज़ क्या वाजिब भी नहीं है, केवल एक उच्च कोटि की नफ़िल है। इसके दर्जे की उच्चता इसी से ज़ाहिर है कि स्वयं रसूल (स०) और आपके सहाबा तथा आपके परिवार के लोगों जैसी बड़ी विभूतियों ने इस पर अमल किया है। **'फ़िल् मसाजिद'** से यह अर्थ निकाला गया है कि एतिकाफ़ हमेशा मस्जिद में ही होना चाहिए। औरतों को मस्जिद के स्थान पर घर के किसी कोने में एतिकाफ़ करना चाहिए, जिसको नमाज़ और इबादत हेतु सुरक्षित कर दिया गया हो। मस्जिद में औरतों के एतिकाफ़ को मक्रूह बताया गया है। दूसरे दुनियावी मामलात, जैसे लोगों से बातचीत करना, एतिकाफ़ में जायज़ है; शर्त यह है कि उन बातों में कोई ऐसी बातें न हों जिससे मस्जिद के सम्मान या एतिकाफ़ के आदाब में खराबी पैदा होती हो। रसूलुल्लाह (स०) की मुबारक आदत थी कि रमज़ान मुबारक के अन्तिम दस दिनों में पूरे दस दिन तक मस्जिद में एतिकाफ़ फ़र्माते और दुनियावी मामलों से सम्बन्ध समाप्त करके, जो यूँ भी बहुत कम रहता था, समय बिताते थे। एतिकाफ़ सुन्नत भी है और फ़क़ीहों ने इसे सुन्नते-किफ़ाया कहा है, यानी बस्ती भर में कोई भी करे तो बस्ती भर की तरफ़ से वह सुन्नत अदा हो जाती है, वैसे एतिकाफ़ हर मुद्दत हेतु, हर समय में, हर हाल में मुस्तहब, बेहतर और बड़ाई की चीज़ है। रूहानी शक्ति अपने भीतर पैदा करने हेतु और ईमानी एवं आत्मिक रूप में स्वयं को ताज़ादम करने हेतु इससे अच्छी विधि कोई नहीं है कि ठीक उस ज़माने में जबकि बीस दिन की लगातार इबादत और आज्ञाकारिता और रात-दिन अल्लाह के ज़िक्र और उसके ध्यान से आत्मा पर पालिश हो चुकी हो, मलकूतियत जाग उठी हो, मनुष्य स्वयं को एक दहाई के लिए पूर्णतः एक ध्यान में और सबसे नाता तोड़कर रखे और अत्यन्त स्नेह तथा निःस्वार्थता और ईश्वरीय अभ्यासों में दुआओं, इबादतों और अल्लाह के ज़िक्र और उसके ध्यान से रूह को कमाल को पहुँचाये। लेकिन यह भी खयाल रहे कि हर व्यक्ति की गम्भीरता इस उच्च कोटि को बरदाश्त नहीं कर सकती। अजीब-अजीब परेशानी की बातें हो जाती हैं, जिनकी उम्मीद नहीं होती। जैसा कि इस लेखक को कड़वे और घृणात्मक अनुभव हो चुके हैं। जैसे यही कि खाना लानेवाला आदमी देर से खाना लाया और एतिकाफ़ करनेवाला बेअख्तियार उस पर बरस पड़ा। फ़क़ीहों ने कहा है कि ऐसी दशा में एतिकाफ़ न करना ही अच्छा है, क्योंकि गुनाह सख्त इबादत (एतिकाफ़) में उसी तरह हानिकारक है और बुराई की चीज़ है, जिस प्रकार नमाज़ और पवित्रता के विरुद्ध जिस्मानी नापाकियाँ (मल-मूत्र) हैं। और जो व्यक्ति एतिकाफ़ के हक़ न अदा कर पाये, उसके लिए एतिकाफ़ करना ही मक्रूह है।

१७५ बहुत समय और मौक़े से याद दिला दिया गया है कि यह सब नियम और क़ायदे सब कुछ देखनेवाले और सब कुछ जाननेवाले खुदा के बनाये हुए हैं और यह आदेश और आज्ञाएँ उस सबसे बड़े हकीम और सबके हाकिम की ओर से हैं। ग़ल्तियाँ करनेवाले मानव के क़ानूनों के आधार पर इन क़ानूनों को न समझना चाहिए। यह साधारण बातें नहीं हैं।

१७६ यानी जिस प्रकार यहाँ रोज़ा, उसकी हदों, समयों और एतिकाफ़ और उसके सम्बन्धित आदेशों को ब्योरेवार बयान कर दिया गया है, उसी प्रकार वह अपने सारे आदेशों, शरीअतों को मानव जाति की भलाई और बेहतरी के लिए विवरण-सहित बयान फ़र्माता रहता है। **'आयातिही'** 'आयात' का अर्थ है आदेश या शरई दलीलें।

१७७ (उन खुदाई आदेशों से सूचित होकर) खुदा के हुक्मों की तामील ही परहेज़गारी है। **'लअल्ल'** के सम्बन्ध में बयान ऊपर हो चुका है कि हक़ तआला की ओर से जब इसका प्रयोग होता है तो मानी में सन्देह और संकोच नहीं होता बल्कि विश्वास का अर्थ पैदा हो जाता है, यानी इन हुक्मों की तामील तुम्हें संयमी बना ही देगी। तजुर्बा कर लो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २२१ से)

१७९ [कि तुम नाहक़ (असत्य) और ज़ियादती पर हो] दुनिया की कोई अदालत अच्छी से अच्छी हो और कोई हाकिम न्यायप्रिय सही, हर दशा में दुनियावी फ़ैसले ग़ैब के ज्ञान के आधार पर नहीं, मुक़द्दमे की कार्यवाही के आधार पर ही होंगे। उनमें ग़ल्ती, त्रुटि, अन्याय और धोखे का शुब्हः हर समय है। आयत इसी सच्चाई की ओर ध्यान दिला रही है कि जो हक़ है, वह अल्लाह के यहाँ हक़ ही रहेगा और जो नाहक़ है वह अल्लाह के यहाँ नाहक़ ही रहेगा। चाहे हाकिमों का निर्णय इसके विपरीत ही हो। क़ाज़ी का निर्णय सत्य को असत्य और असत्य को सत्य नहीं बना सकता। अस्ल चीज़ इन्सान की तवज्जोह और लिहाज़ के लायक़ स्वयं उसकी अन्तरात्मा और उसकी पवित्रता है। हदीस में इस विषय की तफ़्सील और ब्योरा बहुत ज़ोर के साथ आ चुका है और तफ़्सीर करनेवाले भी इसको भलीभाँति स्पष्ट कर चुके हैं। बल्कि जो लोग अपनी ज़बान की चिकनी-चुपड़ी बातों, बात बनाने, अपने "असर" तथा "पैरवी" से झूठे मुक़द्दमे जीत जायें, उन्हें और डरना चाहिए कि उन पर अलावा दूसरे अपराधों और दूसरे पक्ष के हक़ मारने के एक और अपराध अदालत के हाकिम को धोखे में लाने का भी लागू होगा। **'तुद्लू'** के माने हैं कुएँ में डोल डालने और फिर यह हैं कि किसी चीज़ को कहीं पहुँचाना या उसे माध्यम या वसीला बनाना। अर्थ यह है कि माल को हाकिमों तक पहुँचाकर अपनी पहुँच और रुसूख (पैठ) पैदा करने का माध्यम न बनाओ और रिश्वत तथा माली तोहफ़ों आदि से हाकिमों पर प्रभाव न डालो। इस्लामी हुकूमत की स्थापना और इस्लामी क़ानूनों का लागू होना तो ख़ैर बड़ी बात है, यदि क़ुर्आन मजीद की केवल इसी आयत पर अमल दरआमद हो जाये तो झूठे दावों, जाली काग़ज़ात, झूठी गवाहियों, झूठे हल्फ़नामों, अहलकारों और अधिकारियों की घूसों के साथ-साथ बड़े हाकिमों की सेवा में नज़राने, क़ीमती डालियों, शानदार दावतों इत्यादि का अस्तित्व बाक़ी न रह जाये। **'बिल्-इस्मि'** गुनाह का शब्द साधारण है। हर प्रकार के गुनाह, जो अदालती कार्यवाहियों और प्रबन्धकीय मामलों के विषय में होते हैं, वह सब इसी के अन्तर्गत आते हैं। **'फ़रीक़ा'** यहाँ 'फ़रीक़' के मानी पार्टी या गिरोह के नहीं हैं, बल्कि हिस्सा या भाग के हैं।

१८० (ऐ पैग़म्बर ! कि उनके घटने-बढ़ने का उद्देश्य क्या है ?) **'अल्‌अहिल्लत'** नया चाँद या 'हिलाल' तो एक वक़्त में ही होता है, परन्तु यहाँ **'अहिल्लत'** बहुवचन के सीग़े में प्रयोग में आया है। सवाल **'अनिल् अहिल्लत'** के मानी ही हुए चाँद के महीनों के बारे में प्रश्न करना यानी पहले चाँद का उदय होना, फिर तारीख और उसका बढ़ना और फिर तारीख और उसका घटना यहाँ तक कि उसका ग़ायब हो जाना। **'हिलाल'** उर्दू मुहावरे में तो केवल पहली तारीख के चाँद को 'हिलाल' कहते हैं, परन्तु अरबी में पहली से लेकर तीसरी तारीख तक के चाँद शामिल रहते हैं। चाँद के परिवर्तन रोज़ाना (बल्कि हर रात को) देखने में आते रहते हैं। अतः उनके विषय में सवाल भी आसानी से दिलों में पैदा होते हैं। सूर्य की तब्दीलियाँ साधारण दृष्टि में नहीं आतीं। क़ुर्आन का एक-एक बोल तौहीद की घोषणा और शिर्क का खण्डन करता है। दुनिया में मुश्रिक क़ौमें बड़ी संख्या में चाँद की पूजा करती रही हैं और बाज़ हिलाल की पूजा भी करती रही हैं। नये चाँद को देवता मानकर उसकी पूजा भारी संख्या में लोगों ने की है और बढ़ते चाँद को शुभ तथा उतरते चाँद को अशुभ समझने का रिवाज आज भी ख़ुदा जाने कितने मुसलमानों के घरानों में मौजूद है। हिन्दुस्तान में छपी हुई चाहे जिस जंत्री को उठाकर देख लीजिये, उसके कितने खाने उससे भरे दिखायी देंगे कि अमुक तिथि अमुक कार्य के लिए शुभ है और अमुक तिथि अशुभ है। क़ुर्आन मजीद ने चाँद के बढ़ने, घटने का यह कारण बताकर कि वह इन्सान के काम आनेवाली चीज़ें हैं हिलाल-परस्ती और उसके अन्तर्गत सारी ख़ुराफ़ातों की जड़ ही काट दी। मूर्ख मानव ! तू चाँद की पूजा क्या कर रहा है, चाँद तो स्वयं तेरी सेवा के लिए है।

१८१ **'मवाक़ीतु'** बहुवचन है 'मीक़ात' की और उसके मानी समय भी है और नियत समय भी है। **'मवाक़ीतु लिन्नासि'** यानी उनके दुनियावी मामलात और शर्ई हिसाबों में भी चाँद के सन् में, दिनों, तारीखों में, महीनों का हिसाब चाँद के बढ़ने-घटने से होते रहता ज़ाहिर ही है। मौलाना थानवी ने यहाँ यह नुक्ता खूब निकाला है कि जब शर्ई आमाल का मदार हिसाब क़मरी (चाँद) पर ठहरा तो इस क़मरी हिसाब की व्यवस्था और इसका प्रबन्ध भी फ़र्ज़े-किफ़ाया हुआ, जिन्हें अंग्रेज़ी सन् से कारोबार रखना ज़रूरत के दर्जे में आ पड़ा है। उनके लिए तो ख़ैर उज़्र भी है, लेकिन बिना ज़रूरत सन् हिज़री, क़मरी, इस्लामी को छोड़कर शम्सी, मसीही, अंग्रेज़ी सन् को अपनाना बड़े अफ़्सोस की बात है। **"वल्हज्ज"** क़मरी (चाँद के) महीने आम इन्सानी मामलों में काम देते हैं, उनके अलावा हज और दूसरी इबादतों के लिए भी मेयार और मदार (आधार) वही हैं। हज का वर्णन विशेषता के साथ शायद इसलिए फ़र्माया गया हो कि इसका महत्त्व अरब के हर जीवन के भागों में बहुत ख़ास था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८२ (जैसा कि अरब के मुशरिक अपनी बेवक़ूफ़ी तथा मूर्खता से समझ रहे हैं।) जाहिली अरब जब हज के अहराम की हालत में होते थे, तो घर में जाने के लिए दरवाज़े से प्रवेश करने को अशुभ और बदशगुनी समझते, बल्कि पीछे की दीवार में एक बड़ा सूराख पैदा करते और उसके अन्दर से मकान में प्रवेश करते थे, या पीछे की ओर से छत पर चढ़ जाते और वहीं से अन्दर फाँदते और इसे अपनी समझ से कोई बड़ी इबादत और खानए काबा का सम्मान जानते थे। बाज़ क़बीलों के नये मुसलमान सहाबी भी इस नासमझी में फँस गये। उन्हीं के विचारों की इस्लाह एवं सुधार के लिए यह आयत उतरी और जाहिली मत को शुद्ध किया गया। तफ़्सीर के ज्ञाता क़ुरतबी ने बड़ी तफ़्सील से लिखा है कि मदीने के अन्सार जब हज या उम्रः का अहराम (एक विशेष चादर को लपेटना) बाँध लेते थे, तो अपने और आसमान के बीच किसी वस्तु का आना अहराम के सम्मान और संयम के विरुद्ध समझते थे और वापसी में अपने मकान में दरवाज़ों से प्रवेश नहीं करते थे। यह रस्म चूँकि हज ही के सिलसिले में थी, अतः उसका वर्णन भी हज ही के आसपास किया गया।

१८३ [और तक़्वा (संयम) की हक़ीक़त यह है कि अल्लाह की मना की हुई और हराम ठहराई हुई चीज़ों से डरा जाये और बचा जाये।] लगे हाथों यहीं से यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि वास्तविक नेकी अल्लाह का तक़्वा है यानी अल्लाह के हुक्मों की खिलाफ़वर्ज़ी का भय न कि अपने गढ़े हुए किसी दस्तूर और रिवाज की पैरवी करना। अल्बिर्र— यहाँ 'बार्र' के मानी में है।

१८४ (जब आना चाहो और गोया जाहिलीयत और शिर्क की रस्मों को पैरों से रौंदते हुए।) उम्मत के फ़क़ीहों को (धर्म के विशेषज्ञों को) एक बड़ी वास्तविकता हाथ आ गयी, जिससे सैकड़ों-हज़ारों कर्मों का हुक्म मालूम हो सकता है। वह अस्ल या क़ायदा यह है कि जो वस्तु शरीअत में केवल 'मुबाह' हो यानी किताब तथा सुन्नत में उसकी मिसाल इबादत के आदेश के रूप में न मिले, उसे अपनी ओर से और अपने मन से इबादत ठहरा लेना या उसी प्रकार शरई तर्क के बिना गुनाह या बुराई की चीज़ मान लेना, यह दोनों एतिक़ाद गुनाह हैं। और हर बिद्अत (नवीनता) इसी हुक्म में दाखिल है। क़ुरतबी ने इब्ने अब्बास के प्रमाण से हदीसे-नबवी भी नक़ल की है कि एक रोज़ रसूल (स०) तक़रीर (वक्तव्य) फ़र्मा रहे थे कि इतने में एक व्यक्ति को देखा कि धूप में खड़ा है। पूछा, तो मालूम हुआ कि वह अबू इस्राईल अन्सारी हैं और इसकी नज़र माने हुए हैं कि रोज़ा रखकर बैठेंगे नहीं, खड़े ही रहेंगे और साया में न खड़े होंगे और किसी से बातचीत न करेंगे, खामोश रहेंगे। आपने फ़र्माया कि— "इन्हें वहाँ से हटा लाओ, यह बातचीत करें और बैठ भी जायें और इस हाल में रोज़ा समाप्त करें।" इस्लाम केवल हुक्मों की मिसाल का नाम है और ईमान की हक़ीक़त आदेशों के पालन करने की है। अपनी राय से कुछ करना सरासर ग़लत राह पर चलना है।

१८५ (दुनिया और आखिरत दोनों में) 'तक़्वा' (खौफ़-ख़ुदा) और फ़लाह (इन्तिहाई कामयाबी) के निकटतम सम्बन्ध को आयत एक बार फिर स्पष्ट करती है कि दोनों जहानों की सफलता और भलाई का अस्ल नियम तक़्वा है। अल्लाह के खौफ़ और उसकी मुहब्बत के बीच प्रतिकूलता और विरोध बिल्कुल नहीं, बल्कि दोनों में एक प्रकार के होने का सम्बन्ध है। मख़्लूक़ात में जिस किसी से खौफ़ किया जाता है, उसमें यह विशेषता होती है कि वह अपने से भगाती है, हटाती है, दूर करती है, लेकिन अल्लाह के खौफ़ में एक कशिश, एक खिंचावट और आकर्षण होता है। वह अल्लाह की ओर खींचता है, बुलाता है, निकट करता है और इस प्रकार अमल में अल्लाह की मुहब्बत के हममाना (समानार्थक) है। तक़्वा वालों और नेक लोगों से जिस भय की नफ़ी (अस्वीकृति) की गयी है। वह 'दहशत' या भय के हममाना है और वहशत यानी घबराहट से पैदा होती है। अल्लाह का खौफ़ इसके ठीक विपरीत है और यह बड़ाई के एहसास से पैदा होता है और यह खौफ़ उस आला ज़ात से क़रीब लानेवाला होता है। ख़ुदा के खौफ़ की रग़बत पैदा करने और उससे डरने की ताकीद से पुरातत्त्वकाल की पुस्तकें भरी पड़ी हैं; जैसे— "ख़ुदावन्द का खौफ़ बुद्धि का प्रारम्भ है।" (अमसालि सुलैमानी— १, ७)। "ख़ुदावन्द का डर दानिश (अक़्ल, बुद्धि) की शुरूआत है।" (अमसालि सुलैमानी— ९, ११)। "ख़ुदा से डर और उसके हुक्मों को माने कि इन्सान का सर्वोत्तम कर्तव्य यही है।" (वाज़ की किताब— १२ : १३)।

१८६ जंग का आदेश उन सताये हुए मुसलमानों को मिल रहा है, जो दो-चार महीने नहीं, पूरे तेरह वर्ष तक मक्के में हर प्रकार के अत्याचार, ज़ुल्म, बर्बरता और सख्तियों पर सन्तोष की परीक्षा में पूरे उतर चुके थे और अब देश से देशनिकाला पाकर घर-बार छोड़कर भी मदीने में चैन से बैठने नहीं पा रहे थे। अल्लाह लार्ड हेडले अंग्रेज़ की तुर्बत (क़ब्र) को ठण्डी रखे। नौमुस्लिम होकर बात पते की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कह गये हैं कि तीन प्रारम्भ की इस्लामी लड़ाइयों के स्थानों की स्थिति को देखकर स्वयं निर्णय ले
लो कि लड़ाई की शुरूआत किसने की और चढ़ाई कौन किस पर करके गया था ! आक्रमण और
आरम्भ करनेवाला कौन था और अपनी सुरक्षा और बचाव में कौन लड़ रहा था— मक्का के लड़ाकू अहले
फ़साद या महीने के सन्नोशुक्र करनेवाले वह लोग जो अल्लाह पर ईमान रखते थे ? (१) जंगे-बद्र— मदीने
से २० मील के फ़ासिले पर है। (२) जंगे-उहद—मदीने से कुल १२ ही मील है। (३) जंगे-अल्-
अहज़ाब या जंगे-खन्दक़— इसमें तो खास मदीने को ही घेरा गया था। सारांश यह कि हर बार क़ुरैश
मक्का या उनके सहयोगी ही तथा सहायक मदीने पर चढ़ाई करके आये। तफ़्सीर करनेवालों का बयान
है कि यह सबसे पहली आयत है, जो जंग के सिलसिले में उतरी है, वरना इसके पूर्व जिहाद करना मना
था। हिजरत के पूर्व जंग मना थी, बल्कि आयतें इसके रोकथाम की उतरती रहती थीं। **'अल्लज़ीन**
युक़ातिलूनकुम्' खुद यह शब्द क्या बता रहे हैं ? दो बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं— (१) एक यह जंग की
शुरूआत करनेवाले मुसलमान नहीं थे। प्रारम्भ दूसरे ही पक्ष ने किया। (२) दूसरे यह कि जंग का
हुक्म केवल उन्हीं व्यक्तियों के मुक़ाबले में है, जो वास्तव में लड़ रहे हों या आजकल की परिभाषा में
लड़नेवालों के मुक़ाबले में न लड़नेवाली आबादी के सरों पर बम-वर्षा कर देने, शान्त नागरिकों पर हवाई
आक्रमण करने और उन पर ज़हरीली गैस छोड़ने के सबसे 'सभय' जंगी क़ानून से इस्लाम का जंगी क़ानून
अपरिचित है। बूढ़ों, बच्चों, औरतों, अपाहिजों, बीमारों, गोशानशीनों अर्थात् ऐसे सभी लोग जो युद्ध
करने से विवश हों, उन्हें रसूल (स०) के प्रथम खलीफ़ा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ ने तो स्पष्टता के साथ
लड़ाई से मुस्तस्ना (जिस पर से कोई शर्त, क़ानून या पाबन्दी उठा ली गयी हो) क़रार दिया है, लेकिन
स्वयं यह आयत भी इस इस्तिस्ना की ओर संकेत कर रही है। **'अमीरुल्-मूमिनीन'** हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़
के अस्ल आदेश में तो फलदार वृक्षों को काटने को मना किया गया है। आपने यह आदेश इस्लामी
खिलाफ़त के प्रथम सेनानायक यज़ीद बिन अबी सुफ़यान को दिया था और उनको यह मश्विरा पैदल
चलकर दिया था। लेकिन इस आयत का अर्थ यह भी नहीं कि जब शत्रु सर पर आ जाये और लड़ाई
शुरू कर दे, तब ही तुम जंग करो। इतनी प्रतीक्षा और रुकने का अर्थ यह होगा कि आधी विजय उनकी
हो गयी, जैसा कि इस ज़माने की लड़ाइयों में बराबर देखने में आ रहा है। बल्कि दुश्मन का इरादा और
उसकी आमादगी ही पर इस आदेश को अमल में लाना उचित होगा। **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** यह प्रतिबन्ध
कितना महत्त्वपूर्ण और दुनिया की जंगी तारीखों में कैसा इन्क़िलाब उत्पन्न करनेवाला है। दुनिया में
लड़ाइयाँ हमेशा लड़ी गयीं। अब भी लड़ी जा रही हैं और आइंदा भी लड़ी जाती रहेंगी। लेकिन
किसलिए ? धन के लिए या औरत के लिए, या भूमि के लिए ? अधिक से अधिक यह कि क़ौम के लिए और
देश के लिए यानी धन और भूमि व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि क़ौम के लिए रह जाये। यह विशेषता केवल
इस्लामी 'जिहाद' बदनाम और रुस्वा इस्लामी जिहाद की है कि जब कभी और जिन हालात में आरम्भ
हो अल्लाह की राह में हो, शिर्क को समाप्त करने के लिए हो और तौहीद को ऊँचा करने के लिए हो।
सच्चे धर्म की हिमायत और उसकी सहायता में हो। इन्सानी हुकूमत मिटाकर खुदाई हुकूमत की
स्थापना के लिए हो। खुदी के लिए (निज के लिए) नहीं खुदा के लिए हो। अपने अस्तित्व, क़बीले
के लिए, प्रभावक्षेत्र को बढ़ाने के लिए, व्यापार की आज़ादी के लिए, समुद्र की आज़ादी के लिए,
नौआबादियों की सुरक्षा हेतु निर्यात की मण्डियाँ पैदा करने के लिए अर्थात् यह कि नई-पुरानी किसी क़िस्म
की भी साम्प्रदायिकता जाहिली के झण्डे के नीचे न हो, साफ़-साफ़ अल्लाह के लिए हो और इसका अर्थ है
कि केवल अल्लाह के धर्म उसके दीन के लिए। यह जंग दूसरी उम्मतों से निराला कुछ उम्मते-मुहम्मदी
के साथ विशेषता नहीं रखता। बाइबिल में इसका वर्णन एक-दो जगह नहीं, बीसियों स्थानों पर है।
यहूद की जंगों से तो बड़ी-बड़ी पुस्तकें भरी पड़ी हैं। रहीं मसीही जातियाँ और उनकी खून बहाने की
कहानियाँ और क़त्लोग़ारत के वाक़िआत, तो उनकी मिसाल तो दुनिया में ढूंढ़ न मिलेगी। जो चीज़
दिखायी पड़ रही हो उसे क्या बयान किया जाये। अमल में जो स्पष्ट अन्तर उनकी और इस्लामी
विजेताओं की निर्दयता में रहा है, उसको तो स्वयं मसीही लेखकों को भी मानना पड़ा है। मिसाल
के लिए अवलोकित हो— "Finlay's Greece under the Romans" Page 353 और B. W. Smiht's
'Mohammed and Mohammedinisam' Page 217 and 218। इमाम राज़ी ने फ़र्माया कि इससे
पूर्व की आयत में अभी-अभी तक़्वा की ताकीद आ चुकी है, इसी सम्बन्ध में तक़्वा की सबसे कठिन और
अस्तित्व एवं आत्मा की सबसे कठिन क़िस्म यानी जंग और जिहाद का वर्णन शुरू हुआ।

१८७ **'अिड़तिदा'** के शाब्दिक अर्थ हैं हद से बढ़ जाना और हद से बढ़ने की कई सम्भव शक्लें हैं।
हद का अर्थ शरीअत की हद भी हो सकती है। मिसाल के तौर पर बदला लेने के जोश में या विजय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के जोश में बेतहाशा दुश्मन के जंग करनेवाले और जंग न करनेवाले सभी लोगों को क़त्ल कर देना आरम्भ कर दिया जाये। उनके खेतों, बागों और चरागाहों को आग लगा दी जाये। उनके बेज़बान जानवरों और पशुओं को तलवार के घाट उतार देने लगें इत्यादि। क़ुर्आन ने दुनिया को यह पाठ दिया है कि शक्ति का प्रयोग केवल उसी सीमा तक उचित है, जिस हद तक बिना उसके काम ही न चले। हद से मुराद सन्धि की हद भी हो सकती है; जैसे यह कि सन्धि तोड़नेवाली जातियों की देखादेखी स्वयं भी सन्धि की परवाह न की जाये और अहूद तोड़ने की शुरूआत अपनी ओर से करके हल्ला बोल दिया जाये। इसी प्रकार और भी हद से निकलने के पहलू हो सकते हैं। सच तो यह है कि 'अिऽतिदा' का शब्द हर प्रकार की ज़्यादती के लिए अर्थ से परिपूर्ण है और हर प्रकार की ज़्यादती की मनाही इसमें सम्मिलित है। अल्लाह-अल्लाह हर प्रकार की ज़्यादती करने से मना किया जा रहा है और ठीक उस समय, जब दिल में बदला लेने की आग भड़क रही होती है और जी यही चाहता है कि शत्रु से हर अत्याचार और ज़ुल्म का भरपूर बदला लिया जाये। आज की प्रगतिशील और उन्नतिशील दुनिया इस शिक्षा को देखे, जो (Reprisals) का नाम हर कठोर हृदयता, बर्बरता, जल्लादी और अत्याचार को जायज़ किये हुए है। हद से बढ़ने की एक शक्ल यह भी है कि जंग अलावा अल्लाह के दीन के किसी और उद्देश्य को लेकर आरम्भ कर दी जाये, अत: बाज़ तफ़्सीर करनेवालों ने यह पहलू भी लिया है। यदि ग़ल्बा और सत्ता हो तो बदले की हद के अन्दर रहना नैतिकता का सबसे ऊँचा दर्जा है। अच्छे-अच्छों की बुद्धि, गम्भीरता, न्याय की शक्ति तथा नैतिकता जवाब दे जाती है। उस समय कल के मज़लूम (अन्याय सहनेवाले) अंजाने तौर पर अज्ञात रूप में आज के अन्यायी बन जाते हैं। क़ुर्आन मजीद का ऐसे अवसर पर अपने अनुयाइयों को ज़ब्त, संयम और सब्र की शिक्षा देना उम्मत के सदस्यों को हिकमत तथा नैतिकता के ऊँचे से ऊँचे स्थान तक पहुँचा देता है। और फिर जब याद कर लिया जाये कि आयत के उतरने का समय ज़ीक़ाद: सन् ७ हिज़री है, जब हुदैबिया की सन्धि के दूसरे वर्ष मुसलमान उम्रे की नीयत से मक्का रवाना हो रहे थे और यह भय था कि मुश्रिक सन्धि समाप्त करके लड़ाई शुरू कर देंगे और इसके उत्तर में स्वाभाविक है कि मुसलमान भी उत्तेजित हो उठेंगे। ऐसे अवसर पर आयत की इस ताकीदी आज्ञा की क़द्र कितनी बढ़ जाती है। फिर विजय की घड़ियों में ऐसी शिक्षा पर अमल करना दुनिया में कहीं सम्भव हुआ है? सिवाय रसूल के सहाबियों और इस्लामी खिलाफ़त के सिपाहियों के किसी और के द्वारा ऐसा हुआ है? प्रश्न श्रद्धा का नहीं, केवल इतिहास का है।

१८८ **'वक़्तुलू हुम्'** में 'हुम्' का सर्वनाम उन्हीं लोगों की ओर है जो मुसलमानों से लड़ने निकले हैं। **'हैसु सक़िफ़्तुमू हुम्'** यानी उन क़ातिलों और जंग करनेवालों को, जो मक्के के हैं, जहाँ कहीं भी पकड़ पाओ और जब कभी उन पर क़ाबू पाओ क़त्ल कर दो। **'वक़्तुलू'** के बहुवचन के सीग़े से हनफ़ी फ़क़ीहों ने यह नुक्ता पैदा किया है कि जिहाद और जंग का फ़रीज़ा (कर्तव्य) व्यक्तिगत का नहीं है, सामूहिक है यानी इमाम के साथ है, क्योंकि सेना की व्यवस्था और उसका प्रबन्ध और उसका एकत्र होना बिना इमाम के सम्भव नहीं है। **'मिन् हैसु अख़्रजूकुम्'** यानी मक्के की सरज़मीन से, **'मिन् हैसु'** के मानी हैं 'जहाँ कहीं से' या 'जिस प्रकार'। **'वक़्तुलू हुम् व अख़्रिजू हुम्'** मुराद यह है कि सरज़मीने-मक्का से उन्हें चाहे मारो चाहे निकालो, जो भी तुम्हें अपनी शक्ति और मस्लहत के अनुसार नज़र आये।

१८९ (अपने कष्ट देने और शरारतों के लिहाज़ से) मौलाना थानवी ने ख़ूब लिखा है कि मुश्रिकों की शरारत, जिसे यहाँ फ़ित्न: कहा गया है, वही तो अस्ल जड़ थी और उनको निकालना या सज़ा देना यह तो केवल फ़ाज़िल बातें थीं। **'अल्फ़ित्नतु'** फ़ित्ने से मुराद शिर्क या उसका लालच देना और उसके लिए लोगों को तैयार करना है। इस प्रकार तौहीद वालों को डराना और उनके दिलों पर भय बैठाना इस अर्थ में आता है। कुफ़्र और कुफ़्र का शौक़ दिलाना इस कारण फ़ित्न: बताया गया है, क्योंकि कुफ़्र की व्यवस्था ही वास्तव में दुनिया को ख़ून-ख़राबे, फ़साद और युद्ध तथा बदअमनी की ओर ले जाती है। **'अशद्दु मिनल्क़त्लि'** यानी हरम में ख़ून-ख़राबा करने से भी बुराई में कहीं बढ़ा हुआ दर्जा इस तौहीद तथा ईमान के केन्द्र पर शिर्क और शिर्क का प्रचार और उसको फैलाना है। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि मक्के वालों की यह लगातार अत्याचारी हरकतें और उनका ज़ुल्म कहीं ज़्यादा असहनीय है। बाज़ पुरातनकाल के लोगों की निगाहें भी इसी ओर गयी हैं। एक अर्थ यह भी है कि यहाँ फ़ित्ने से मुराद वह हमेशा-हमेश का अज़ाब है, जो उन्हें कुफ़्र की सज़ा में आख़िरत में मिलेगा, गोया यह इर्शाद हो रहा है कि वह हमेशा का अज़ाब दुनिया की क़त्ल की सज़ा से कहीं बढ़-चढ़कर है और अज़ाब का इस प्रकार फ़ित्ने के कारण होना उचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६० (क्योंकि यहाँ युद्ध और क़त्ल की शुरूआत अकारण और बेज़रूरत कर देने से हरम की सीमाओं की बेइज़्ज़ती और उसका असम्मान एवं निरादर होता है।) यानी हरम शरीफ़ या काबे की मस्जिद के आसपास में कई मील का पूरा इलाक़ा, जो शरई परिभाषा में हरम कहलाता है, और उसके सम्मान के विशेष आदाब और नियम हैं। जब यह आयत उतरी उस समय मुसलमानों और मुश्रिकीन मक्का के बीच अस्थायी सन्धि थी। यहाँ यह इर्शाद हो रहा है कि उस सन्धि को पास करने के अलावा मुसलमानों के लिए दूसरी रोक हरम की सीमाओं के भीतर कोई युद्ध और ख़ून-ख़राबा न करने की पाबन्दी भी एक बड़ी रोक की बात थी। हनफ़ी फ़क़ीहों ने आयत से यह स्थायी आदेश निकाला है कि मस्जिदे-हराम में ख़ून-ख़राबा नाजायज़ है, जब तक वह जवाब और बचाव के लिए न हो।

१६१ अपनी सुरक्षा में यदि हरम की सीमाओं में युद्ध करना पड़ जाये तो जायज़ होगा। **'कज़ालिक'** यानी यही सज़ाएँ, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका, वतन से निकालना और हरम की सीमाओं के भीतर क़त्ल करना। **'जज़ाअुल् काफ़िरीन'** यानी ऐसे सन्धि तोड़नेवाले, फ़सादी, निरादर करनेवाले और वादा तोड़नेवाले काफ़िरों की सज़ा— "काफ़िरों के साथ जब जायज़ होने की शर्तें पायी जायें, शुरूआत में युद्ध करना सही है, और इस स्थान पर जो युद्ध करने की शुरूआत से रोका गया है तो वह सन्धि होने की वजह से है। सन्धि में शुरूआत करना नाजायज़ है। हाँ ! यदि सन्धि को बाक़ी रखना मस्लहत न हो तो स्पष्ट सूचना दे दी जाये कि हम वह सन्धि बाक़ी नहीं रखते, फिर युद्ध जायज़ है। इसी प्रकार यदि वह लोग सन्धि तोड़ दें तो युद्ध जायज़ है।" (मौलाना थानवी)।

१६२ (केवल युद्ध से नहीं जिसका आरम्भ उन्होंने किया था, बल्कि शिर्क और कुफ़्र के अक़ीदों से जो युद्ध और ख़ून-ख़राबे के कारण बने हुए थे।) **'फ़ अिनिन्तहौ'** में सर्वनाम ग़ायब युद्ध करनेवाले काफ़िरों की ओर है। जंग शुरू करने के बाद जिन तफ़्सीर करनेवाले नये लोगों ने केवल जंग से बाज़ आ जाना मुराद लिया है, उन्होंने बड़ा कमज़ोर पहलू अपनाया है।

१६३ (इसलिए उनकी तौबा स्वीकार कर ली जायेगी। उन्हें इस्लाम के दायरे में दाख़िल समझा जायेगा और उनके इस्लाम को निरर्थक और निर्मूल नहीं समझा जायेगा।) आयत के इस खण्ड ने **'अिनिन्तहौ'** के इस अर्थ को स्वयं क़ुर्आन से ही स्पष्ट कर दिया कि मुराद शिर्क और कुफ़्र से बाज़ आ जाना है, न कि केवल युद्ध और ख़ून-ख़राबे से। कुफ़्र से तौबा करने के बाद ही अल्लाह की क्षमा करनेवाली सिफ़त लागू होगी, न कि केवल युद्ध रोक देने से। जिसने कुफ़्र से तौबा कर ली उसके पिछले गुनाह भी माफ़ हो जायेंगे और भविष्य में भी उस पर अल्लाह रहम करेगा, जैसा कि स्वयं क़ुर्आन में दूसरे स्थान पर है। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इस आयत से यह अर्थ निकाला है कि क़ातिल की तौबा का मसला हल किया है। उनका कहना है कि जब कुफ़्र की तौबा स्वीकार हो सकती है, तो जान-बूझकर क़त्ल करने का गुनाह तो कुफ़्र से हल्का है, अतः क़ातिल की तौबा क्यों स्वीकार न होगी ?

१६४ (उन लोगों में या अरब की सरज़मीन पर) **'क़ातिलू हुम्'** में 'हुम्' का सर्वनाम किसकी ओर है ? युद्ध जारी रखने का आदेश किसके मुक़ाबले में दिया जा रहा है ? ज़ाहिर है, इसका संकेत काफ़िरों की ओर भी हो सकता है और इससे अरब के मुश्रिकों को भी समझा जा सकता है ! परन्तु हनफ़ी फ़क़ीहों और ताबेईन की भारी संख्या ने इसका अर्थ मक्के के मुश्रिकों का लिया है। **'ला तकून फ़ित्नतुन्'** यानी हरम की सीमाओं और अरब की हदों के भीतर शिर्क और कुफ़्र बाक़ी न रहने पाये। फ़ित्नः से यहाँ मुराद कुफ़्रोशिर्क होना, यह कहना चाहिए कि उम्मत के शोध करनेवाले आलिमों के अधिकांश का मत यही है। अगर वह लोग इस्लाम न लायें तो यद्यपि काफ़िरों से जिज़्यः (धर्म-कर) देने का वादा करने पर क़त्ल करने और युद्ध करने से रुकने के निर्देश हैं, परन्तु यह ख़ास कुफ़्फ़ार चूँकि अरब के लोग हैं उनके लिए जिज़्यः का नियम लागू नहीं है, बल्कि उनके लिए इस्लाम है, या क़त्ल है। (मौ० थानवी)। इस्लाम एक विश्वव्यापी मज़हब है। उसके वास्ते यह आवश्यक था कि उसका एक भौगोलिक केन्द्र हो। अस्थायी मुख्यालय हो और ज़मीन पर कम से कम एक ऐसा भूखण्ड हो, जो शिर्क और कुफ़्र से बिल्कुल स्वच्छ और पवित्र हो। इस आशय के लिए रसूल (स०) के जन्मस्थल और क़ुर्आन के उतरने के शुद्ध स्थान से बढ़कर और कौन स्थान हो सकता था। स्वाभाविक रूप में इसके लिए सरज़मीने-अरब का चयन हुआ। अरब के कुफ़्फ़ार यदि इस्लाम न लायें, तो उनके लिए केवल क़त्ल का क़ानून है। यदि वह जिज़्यः देना चाहें तो स्वीकार न किया जाये।

१६५ (बिल्कुल और कुफ़्रोशिर्क हर असत्य-धर्म का ज़ोर टूटकर रहे।) वर्णन उसी अरब के इलाक़े की ख़ालिस इस्लामी हुकूमत का हो रहा है कि कम से कम इस स्वच्छ एवं पवित्र भूखण्ड में कुफ़्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके आदेशों का पालन। आयत के इस अंश ने स्वयं ही साबित कर दिया कि पिछले स्थान पर फ़ित्ने का अर्थ शिर्क ही है।

१९६ (अपने कुफ़्र से इन्कार करके मिल्लत इस्लामिया में प्रवेश करें।)

१९७ (जो इसी अन्याय की राह से अब तक तौहीद के दीन तक से इन्कार करनेवाले हैं।) और जब यह तौबा करके मुसलमान हो गये तो ज़ाहिर है कि अब अपने हक़ में ज़ालिम बाक़ी न रहे और अब उनके लिए क़त्ल की सज़ा भी बाक़ी नहीं रही। अरबी वर्णन की एक विधि यह भी है कि कार्य के बदले अवसर पर वही शब्द बोल देते हैं, जो स्वयं उस कार्य के लिए होता है। उदाहरणार्थ मक्र के जवाब में मक्र ही का शब्द; क़ैदी की सज़ा के अवसर पर शब्द क़ैद का प्रयोग; इस्तिहाज़ा के मुक़ाबले में शब्द इस्तिहाज़ा ले आना इत्यादि-इत्यादि। इस सनअत (भाषा की सुन्दरता की विधि) का नाम मुशाकिलत (सदृशता) है और क़ुर्आन मजीद ने अरबी सारगर्भिता की दूसरी सनअतों की भाँति इसका भी बार-बार इस्तेमाल किया है, अतः यहाँ उद्वान (ज़ुल्म) की सज़ा के अवसर पर स्वयं शब्द उद्वान का लाना इसी विधि पर है।

१९८ यानी किसी महीने का सम्मान की बुनियाद तो बस इसी पर है कि दूसरा पक्ष भी उसका सम्मान अनिवार्य समझेगा। यदि ऐसा नहीं है तो फिर किसी महीने के सम्मान की बुनियाद ही नहीं। यह चीज़ तो केवल पारस्परिक बदले और दोनों पक्षों के अमल पर निर्भर है। **''अश्शह्रुल् हरामु'** के शाब्दिक अर्थ हैं ''सम्मान वाला महीना''। अरब के क़बीले अत्यन्त लड़ाकू चले आ रहे थे, परन्तु आपस में यह भी निर्णय हो गया था कि वर्ष में चार महीने लड़ाई बन्द रहेगी और यह ज़माना शान्ति और सन्धि के साथ व्यतीत किया जाये। यह चार महीने थे चाँद का प्रथम महीना यानी मुहर्रम, रजब— चाँद का सातवाँ महीना, ज़ीक़ादः— ग्यारहवाँ महीना और ज़िलहज यानी चाँद का बारहवाँ महीना। यहाँ ज़ीक़ादः, सन् ७ हिजरी की ओर संकेत है। रसूल (स०) उम्रे के इरादे से सहाबियों की एक टुकड़ी के साथ रवाना हुए थे, परन्तु मुशरिक लड़ाई पर आमादा हो गये थे। तीर चलाने और पत्थर फेंकने शुरू कर दिये थे। अरब की जाहिलीयत का ज़माना अपनी कठोरता, लड़ाई और ज़ुल्म के लिए प्रसिद्ध है और सही तौर पर प्रसिद्ध है। परन्तु ऐसा होने पर भी वर्ष के दो तिहाई भाग में लड़ते थे, शेष १/३ में अमन-शान्ति के साथ व्यतीत करते थे। यह कमाल तो 'नवीन जाहिलीयत' या फ़िरंगी जाहिलीयत को ही मुबारक हो कि उनके बड़े-बड़े सूरमा न इतवार देखें, न त्योहार, न कोई मौसम, न कोई महीना। हर रोज़ और हर मौसम, हर सप्ताह तोपें और टैंक और हवाई बम हैं, बल्कि अब तो ऐटम बम और हाइड्रोजन बम हैं कि एक दूसरे को मौत के घाट उतारने पर अड़े रहते हैं।

१९९ (अतः जो तुमसे उन सम्मानों की रिआयत करे तुम भी उनसे सम्मानों की रिआयत का लिहाज़ रखो।) **'क़िसास'** के शाब्दिक अर्थ बदले के हैं, चाहे वह बदला वादे का हो या अमली या जिस्मानी। और यहाँ अमली बदला मुराद है, यानी जैसा तुम्हारे विरोधी पक्ष ने तुम्हारे साथ किया, तुम उसके साथ करो। यहाँ काफ़िरों पर आपत्ति की गयी है कि स्वयं तो इन पवित्र महीनों का ज़रा भी लिहाज़ नहीं करते और अपनी किसी हरकत से बाज़ नहीं आते और मुसलमानों से यह आशा रखते हैं कि वह उनके सारे अत्याचारों और ज़ियादतियों को इसलिए खामोशी से सहते रहेंगे कि यह पवित्र महीने हैं।

२०० यानी यदि विपक्षी जंग शुरू कर दे तो तुम भी बराबर जवाब दो। **'अिऽतदा अलैकुम्'** उदाहरणार्थ एक ज़ियादती यही है कि शत्रु इन महीनों का सम्मान न करे, बल्कि तुमसे युद्ध आरम्भ कर दे। **'अिऽतदा'** फ़र्मा दिया गया, वरना ज़ाहिर है कि ज़ियादती के जवाब में जो कार्यवाही सज़ा के रूप में की जाये वह ज़ियादती है ही नहीं। अरबी भाषा की विधि के विषय में ऊपर हाशिया गुज़र चुका है, बस वही सूरत यहाँ भी है और केवल शाब्दिक मिलने-जुलने के कारण यहाँ **'अिऽतदा'** की सज़ा को स्वयं **'अिऽतदा'** का अर्थ दे दिया गया है। शब्दकोश वालों तथा तफ़्सीर करनेवालों दोनों के यहाँ यह विवरण पाया जाता है।

२०१ (इन सारे आदेशों तथा मामलों में। अपने जीवन के हर भाग में।) यह इस्लाम का एक मोजिज़ाई कमाल है कि एक तरफ़ तो युद्ध की आज्ञा दे दी और बदला लेने की इजाज़त दे दी और दूसरी ओर अन्त में यह भी याद दिला दिया कि देखना तुम्हारी तरफ़ से ज़ियादती न हो और हद से आगे न बढ़ना। जोश पर क़ाबू हर दशा में रखना। यह न हो कि उलटी ज़ियादती तुम अपनी ओर से बदले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और शिर्क के लिए कोई अवसर अवशेष न रह जाये। **'अद्दीन'** का अर्थ है अल्लाह की इबादत और की दशा में करने लगो। खुदा का खौफ़, पूछगछ का खयाल हर समय रहना चाहिए। जो कुछ भी हो, उत्तेजना के मौक़े पर भी मन के हैजान (जोश) के अन्तर्गत न हो। खुदा के खौफ़ के ही अन्तर्गत होना चाहिए। अल्लाहु अक्बर ! इस हकीमाना मिश्रण की मिसाल विश्व के किसी संघटन, किसी व्यवस्था में मिलेगी ?

२०२ अल्लाह, अल्लाह ! कितनी उच्च कोटि की और हिकमत से परिपूर्ण शिक्षा है। अभी-अभी बदले में भी ईमानवालों पर तक़्वा यानी खुदा के खौफ़ का प्रतिबन्ध लगाया जा चुका है। अब हुक्म हो रहा है कि कहीं साहस गिरने न पाये और यूँ मत खयाल हो कि सीमाएँ एवं प्रतिबन्ध लगाकर कड़े मुक़ाबले से रोका जा रहा है और उनके बाद दिल के हौसले पूरी तरह क्योंकर निकल सकेंगे ! तो यह बात नहीं है, बल्कि अल्लाह का क़ानून यह है कि उसकी रहमत और दया, विजय और सहायता उन्हीं लोगों के साथ रहती है, जो उसका भय और उसकी बड़ाई का एहसास सदा अपने मन में रखते हैं। संयम रखते हैं और मुत्तक़ी होते हैं। खुदा के खौफ़ की ताकीद ठीक सहायता और साहस के लिए है, कमज़ोरी पैदा करने हेतु नहीं है। **'मअल् मुत्तक़ीन'** संयम रखनेवाले लोगों के साथ अल्लाह की मदद की क्या स्थिति होती है ? इस पर शोधकों का निर्णय यह है कि अल्लाह की मदद और साहस बढ़ाने की तथा सुरक्षा करने की बात जिस्मानी रूप में नहीं होती, न भौतिक रूप में होती है, उसकी कृपा के रूप में होती है। इमाम राज़ी ने इससे यह नुक्ता पैदा किया है कि अल्लाह तआला देह नहीं रखता और न वह किसी स्थान को घेरे हुए है, जैसा कि हर देह किसी नियत स्थान को स्वयं से भरता है।

२०३ (अपना धन) जान निछावर करने और बलिदान करने का आदेश तो युद्ध करने के साथ आ चुका, अब माल के व्यय करने का आदेश मिल रहा है। **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** इस प्रतिबन्ध का विशेष विचार रहे। इस्लाम में जिस प्रकार केवल जान दे देना उद्देश्य नहीं है, उसी प्रकार जान देना केवल खुदा की राह में वास्तविक उद्देश्य माना गया है। जान देना अल्लाह के दीन की बड़ाई के लिए होना चाहिए। इसी प्रकार माल का व्यय होना कोई अर्थ नहीं रखता। उसकी क़द्र उसी समय होगी, जब वह असत्य के लिए न हो, सत्य के हित में हो और माया की पूर्ति हेतु, मन की इच्छाओं के लिए नहीं, बल्कि अल्लाह की खुशी और उसकी रज़ामन्दी के लिए हो। यहाँ विशेष संकेत जिहाद और जंग की ओर है, लेकिन **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** के शब्द साधारणतः हैं। हर धार्मिक सेवा में आर्थिक सहायता इसके अन्तर्गत आ जाती है।

२०४ (जान या माल में कंजूसी कर-करके) क़ुर्आन मजीद में जब सीग़ा बहुवचन हाज़िर का प्रयोग होता है, तो कभी तो व्यक्ति मुराद होते हैं और कभी समूह। यहाँ अस्ल सम्बोधन सीधे उम्मत से है और यह हक़ीक़त बयान हो रही है कि उम्मत के लोगों ने अगर जिहाद और जंग से जान चुरायी और मुजाहिदों को माली सहायता देने में कंजूसी की तो इसका परिणाम यह होगा कि सारी उम्मत तबाही, बरबादी और हलाकत में पड़ जायेगी। **'अत्तहलुकति'** शाब्दिक अर्थ है हलाकत। यहाँ अर्थ यह है कि उम्मत की जब ज़रूरत पड़ जाये, तो कंजूसी से काम न लो और इस प्रकार उम्मत को तबाही में न डालो। यही अर्थ इब्ने अब्बास, अबू अय्यूब अन्सारी और हुज़ैफ़ा सहाबियों ने और हसन और क़तादा, अक्रिमा और अता ताबेई ने भी बताये हैं। इमाम बुखारी ने भी यही मानी बताये हैं। बाज़ ने यह मानी भी बताये हैं कि बहुत अधिक खर्च करके अपने को तबाह न करो।

२०५ क़ुर्आन मजीद ने अल्लाह तआला को नापसन्द करने, पसन्द करने, बुरा समझने और तवज्जोह करने इत्यादि के कर्मों तथा गुणों से सम्बद्ध किया है, अतः यहाँ भी अल्लाह के लिए है कि **'युहिब्बुल् मुह्सिनीन'** इस प्रकार के शब्दों तथा गुणों के प्रयोग का एक बड़ा उद्देश्य उन गुमराह क़ौमों का खण्डन करना है, जो खुदा के अस्तित्व को तो मानते हैं लेकिन उसको कमाल तथा जमाल से अलग समझते हैं, गोया कि वह बेजान, अचल, महसूस न करनेवाला, निर्जीव एवं ठस है। इस्लाम का खुदा, क़ुर्आन का खुदा हर मानी में, हर अर्थ में एक जीवित खुदा, जागता हुआ, हरकत करता हुआ, कार्य करता हुआ खुदा है, जो प्रसन्न भी होता है, अप्रसन्न भी होता है। अपने द्वारा पैदा किये हुए व्यक्तियों पर मेहरबानी भी करता है, उनको प्यार करता है, उन पर ग़ज़ब भी करता है, क्रोधित होता है, सज़ा भी देता है और बदला भी देता है। **'अह्सिनू'** (यानी जो कुछ भी करो नीयत की स्वच्छता, सुन्दरता, निःस्वार्थभावना के साथ करो। केवल बेगार समझकर बोझ-सा न उतारो। सहाबियों से इसी प्रकार के माने बयान हुए हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व अतिम्मुल्हज्ज वल्अुम्रत लिल्लाहि त फ़ अिन् अुह्सिर्तुम् फ़ मस्तैसर
मिनल्हद्यि ज व ला तह्लिक़ू रुअूसकुम् हत्ता यब्लुग़ल् - हद्यु महिल्लहू त
फ़ मन् कान मिन्कुम् मरीज़न् औ बिही अज़म्-मिर्रअ्सिही फ़ फ़िद्यतुम्-
मिन् सियामिन् औ सदक़तिन् औ नुसुकिन् ज फ़ अिजा अमिन्तुम् वक़्फ़ः

फ़ मन् तमत्तअ बिल्अुम्रति अिलल्हज्जि
फ़ मस्तैसर मिनल्हद्यि ज फ़ मल्लम् यजिद्
फ़ सियामु सलासति अय्यामिन् फ़िल्हज्जि व
सब्अतिन् अिज़ा रजअ्तुम् त तिल्क अशरतुन्
कामिलतुन् त ज़ालिक लिमल्लम् यकुन्
अह्लुहू हाज़िरिल् - मस्जिदिल्-हरामि त
★ रु. २४/८ आ ८ वत्तक़ुल्लाह वअ्लमू अन्नल्लाह शदीदुल्-अिक़ाबि
(१९६) ★ अल्हज्जु अश्हुरुम्-मअ्लूमातुन् ज
फ़ मन् फ़रज़ फ़ीहिन्नल्-हज्ज फ़ला रफ़स
व ला फ़ुसूक़ ला व ला जिदाल
फ़िल्हज्जि त व मा तफ़्अलू मिन्
● व. न बी स. ख़ैरिय्यअ्लम्हुल्लाहु त ● व तज़व्वदू
फ़ अिन्न ख़ैरज़्ज़ादित्तक़्वा ज़ वत्तक़ूनि या
अुलिल्अल्बाबि (१९७) लैस अलैकुम् जुनाहुन् अन् तब्तग़ू फ़ज़्लम्-मिर्रब्बिकुम् त
फ़ अिज़ा अफ़ज़्तुम् मिन् अरफ़ातिन् फ़ज़्कुरुल्लाह अिन्दल्-मशअरिल्-
हरामि ह वज़्कुरूहु कमा हदाकुम् ज व अिन् कुन्तुम् मिन् क़ब्लिही
ल मिनज़्ज़ाल्लीन (१९८) सुम्म अफ़ीज़ू मिन् हैसु अफ़ाज़न्नासु
वस्तग़्फ़िरुल्लाह त अिन्नल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (१९९) फ़ अिज़ा क़ज़ैतुम्
मनासिककुम् फ़ज़्कुरुल्लाह क ज़िक्रिकुम् आबाअकुम् औ अशद्द ज़िक्रन् त
फ़ मिनन्नासि मंय्यक़ूलु रब्बना आतिना फ़िद्दुन्या व मा लहू फ़िल्-आख़िरति
● नि. १/२ मिन् ख़लाक़िन् (२००) व मिन्हुम् मंय्यक़ूलु रब्बना आतिना फ़िद्दुन्या
हसनतंव्व फ़िल्-आख़िरति हसनतंव्व क़िना अज़ाबन्नारि (२०१) ●

سيقول ٢ ٢٤ البقرة ٢

الْمُحْسِنِينَ ۝ وَأَتِمُّوا الْحَجَّ وَالْعُمْرَةَ لِلَّهِ فَإِنْ أُحْصِرْتُمْ فَمَا اسْتَيْسَرَ
مِنَ الْهَدْيِ وَلَا تَحْلِقُوا رُءُوسَكُمْ حَتَّىٰ يَبْلُغَ الْهَدْيُ مَحِلَّهُ
فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَرِيضًا أَوْ بِهِ أَذًى مِنْ رَأْسِهِ فَفِدْيَةٌ مِنْ صِيَامٍ
أَوْ صَدَقَةٍ أَوْ نُسُكٍ فَإِذَا أَمِنْتُمْ فَمَنْ تَمَتَّعَ بِالْعُمْرَةِ إِلَى الْحَجِّ فَمَا
اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ فَمَنْ لَمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلَاثَةِ أَيَّامٍ فِي الْحَجِّ وَ
سَبْعَةٍ إِذَا رَجَعْتُمْ تِلْكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ذَٰلِكَ لِمَنْ لَمْ يَكُنْ أَهْلُهُ
حَاضِرِي الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ وَاتَّقُوا اللَّهَ وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ شَدِيدُ
الْعِقَابِ ۝ الْحَجُّ أَشْهُرٌ مَعْلُومَاتٌ فَمَنْ فَرَضَ فِيهِنَّ الْحَجَّ فَلَا رَفَثَ
وَلَا فُسُوقَ وَلَا جِدَالَ فِي الْحَجِّ وَمَا تَفْعَلُوا مِنْ خَيْرٍ يَعْلَمْهُ اللَّهُ وَ
تَزَوَّدُوا فَإِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوَىٰ وَاتَّقُونِ يَا أُولِي الْأَلْبَابِ ۝ لَيْسَ
عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ أَنْ تَبْتَغُوا فَضْلًا مِنْ رَبِّكُمْ فَإِذَا أَفَضْتُمْ مِنْ عَرَفَاتٍ
فَاذْكُرُوا اللَّهَ عِنْدَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ وَاذْكُرُوهُ كَمَا هَدَاكُمْ وَإِنْ كُنْتُمْ
مِنْ قَبْلِهِ لَمِنَ الضَّالِّينَ ۝ ثُمَّ أَفِيضُوا مِنْ حَيْثُ أَفَاضَ النَّاسُ
وَاسْتَغْفِرُوا اللَّهَ إِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَحِيمٌ ۝ فَإِذَا قَضَيْتُمْ مَنَاسِكَكُمْ
فَاذْكُرُوا اللَّهَ كَذِكْرِكُمْ آبَاءَكُمْ أَوْ أَشَدَّ ذِكْرًا فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَقُولُ
رَبَّنَا آتِنَا فِي الدُّنْيَا وَمَا لَهُ فِي الْآخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ۝ وَمِنْهُمْ مَنْ
يَقُولُ رَبَّنَا آتِنَا فِي الدُّنْيَا حَسَنَةً وَفِي الْآخِرَةِ حَسَنَةً وَقِنَا عَذَابَ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और हज और उम्रः को अल्लाह के लिए पूरा करो[२०६]। फिर यदि घिर जाओ तो जो भी क़ुर्बानी का जानवर उपलब्ध हो (उसे पेश कर दो)[२०७], और जब तक क़ुर्बानी अपने स्थान पर पहुँच न जाये अपने सर न मुँड़वाओ[२०८]। लेकिन यदि तुममें से कोई बीमार हो[२०९] या उसके सर में कुछ तकलीफ़ हो[२१०], तो वह रोज़ों से या ख़ैरात से या ज़िबह से फ़िद्यः दे दे[२११]। लेकिन जब तुम इत्मीनान की हालत में हो[२१२] तो फिर जो व्यक्ति उम्रे से लाभान्वित हो, उसे हज से मिलाकर जो क़ुर्बानी भी उपलब्ध हो वह कर डाले[२१३]। और जिस किसी को उपलब्ध ही न हो[२१४] वह तीन दिन के रोज़े हज के ज़माने में रख डाले, और सात रोज़े जब तुम वापस हो, यह पूरे दस रोज़े हुए[२१५]। यह[२१६] उसके लिए (ठीक) है जिसके अहल मस्जिदे-हराम के निकट न रहते हों[२१७]। और अल्लाह से डरते रहो और जाने रहो कि अल्लाह सख़्त पकड़ करनेवाला है[२१८]। (१९६) ★ — रु. २४/८ आ. ८

'महत्त्वपूर्ण हज' के (चन्द) महीने मालूम हैं[२१९]। जो कोई उनमें अपने ऊपर हज नियत करे[२२०], तो फिर हज में न कोई गन्दी बात होने पाये और न कोई आज्ञा-उल्लंघन और न कोई झगड़ा[२२१]। और जो कोई नेक काम करोगे अल्लाह को इसकी जानकारी होकर रहेगी[२२२]। ● और रास्ते के लिए सामान कर लिया करो[२२३] और सबसे सुन्दर राह की सामग्री तो तक़्वा है[२२४], सो ऐ बुद्धि रखनेवालो! मेरा ही तक़्वा अपनाये रहो[२२५]। (१९७) — ● व. न बी स.

तुम्हें इस विषय में कोई संकोच नहीं कि तुम अपने पालनेवाले के यहाँ से रोज़ी तलाश करो[२२६]। फिर जब तुम जूक़ दर जूक़ (भारी संख्या में ख़ुशी के साथ) अरफ़ात से वापस होने लगो[२२७], तो अल्लाह का ज़िक्र मशअर-हराम के पास कर लिया करो[२२८], और उसका ज़िक्र इस प्रकार करो जैसा उसने तुम्हें बताया है[२२९]। और इसके पूर्व तुम अवश्य ही न जाननेवालों में थे[२३०]। (१९८) हाँ, तुम वहाँ जाकर वापस आओ जहाँ से लोग वापस आते हैं[२३१] और अल्लाह से मग़्फ़िरत तलब करो (क्षमा माँगो)। निस्सन्देह अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला (क्षमा करनेवाला) मेहरबान है[२३२]। (१९९) फिर जब तुम अपने (हज के) मनासिक (रस्में) अदा कर रहे हो[२३३], तो अल्लाह की याद करो अपने बाप-दादों की याद की भाँति, बल्कि यह याद उससे भी बढ़कर हो[२३४]। और लोगों में कुछ ऐसे हैं जो कहते हैं कि ऐ हमारे परवरदिगार! हमें दुनिया (ही) में दे दे[२३५], और ऐसे व्यक्ति का आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं[२३६]। (२००) और कोई उनमें ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि ऐ हमारे परवरदिगार (पालनेवाले)! हमको दुनिया में (भी) बेहतरी दे और आख़िरत में (भी) बेहतरी, और हमको आग के अज़ाब से बचाये रखना[२३७]। (२०१) ● — नि. १/२

२०६ यानी जब यह इबादतें करो तो केवल अल्लाह की रज़ामन्दी हेतु करो और उसके बनाये हुए नियमों और क़ायदों के अनुसार करो। तमाम उन बातों से बचकर जिनके लिए मनाही है। ऐसा न हो कि किसी भाँति उलटा-सीधा करके उन इबादतों को भी ख़राब कर डालो। हज़रात सहाबा तथा ताबेईन के द्वारा बहुत सी तफ़्सीरें नक़्ल हुई हैं, लेकिन सबसे मुकम्मल तफ़्सीर मक़ातिल् ताबेई की है कि इस बीच कोई ऐसी चीज़ न करो कि जो इन इबादतों की शान के अनुसार न हो। **'लिल्लाहि'** की तफ़्सीर में एक फ़क़ीह इब्नुल् अरबी मालिकी ने यह नुक्ता पैदा किया है कि आमाल (कर्म) तो सारे के सारे अल्लाह की ओर सम्बद्ध होते ही हैं; जैसे पैदा करना, इल्म होना, इरादा करना इत्यादि। यहाँ इस बात की विशेषता एवं उद्देश्य पर बल दिया गया है कि 'हज' तथा 'उम्रे' का इरादा मेला-ठेला समझकर न हो, घमण्ड और नाज़ की ख़ातिर से न हो, व्यापारिक ज़रूरतों पर आधारित न हो, केवल निःस्वार्थता के साथ हो, अल्लाह की रज़ामन्दी और उसकी निकटता हेतु हो। नीयत यही रहे।

२०७ यानी अगर किसी शत्रु की रोकथाम के कारण या किसी बीमारी इत्यादि से विवश होकर राह में ही रुक जाना पड़े और मंज़िलेमक़्सूद तक न पहुँच सको, तो क़ुर्बानी का पशु, जो साथ हो, उसे वहीं ज़िबह कर दो और अहराम खोल डालो। हज के इरादे से निकलनेवाला यदि किसी विवशता के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राह ही में रुक गया और अब हज का इरादा पूरा नहीं कर सकता, तो अब अहराम से बाहर आने की विधि उसे बतायी जा रही है। **'इन् अह्सिर्तुम्'** 'अहसार' के माने घिर जाने के हैं, चाहे किसी कारण से भी हो। शब्दकोश के जाननेवाले बड़ों ने यही अर्थ निकाला है। इमाम मालिक तथा शाफ़िई के विचार में 'अहसार' केवल शत्रु के कारण हो सकता है।

२०८ (जो हज की तमाम शर्तों के पूरा हो जाने की पहचान है और अहराम से बाहर आने की भी अलामत है। जब हज का इरादा करनेवाला स्वयं वहाँ पहुँचने में विवश हो जाये तो क़ुर्बानी का पशु वहाँ भेज दे, वहीं उसकी क़ुर्बानी कर दी जायेगी। **'हद्यः'** वह नज़राना है जो खानए काबा के लिए भेजा जाये। हनफ़ीया ने भी इसी साधारण अर्थ को माना है और क़ुर्बानी का हर जानवर इससे मुराद लिया है। इमाम मालिक और इमाम शाफ़िई ने भी यही मानी बयान किये हैं। बाज़ इमामों ने इससे क़ुर्बानी के जानवर केवल ऊँट को समझा है।

२०९ (ऐसे रोग में कि उसके कारण सर के बाल उतरवाने पड़ जायें।)

२१० मिसाल के तौर पर दर्द, घाव इत्यादि से और इसलिए सर मुँड़ाने की आवश्यकता पड़ रही हो।

२११ माज़ूरों (लाचार), विवश लोगों को इजाज़त है कि समय से पूर्व ही सर मुँड़ा लें और इसका शरई फ़िद्यः दे दें। इस फ़िद्ये की तीन सूरतें हैं। या रोज़े रख लिये जायें या मिस्कीनों (अपाहिजों) को सदक़ा (दान) दिया जाये या क़ुर्बानी कर दी जाये। फ़क़ीहों के बहुमत का मत तीन रोज़े रखने का है। अगर खाना दिया जाये तो छः मिस्कीनों को सदक़ए-फ़ित्र की मात्रा के बराबर दिया जाये। 'नुसुक' का अर्थ सबकी राय में ज़बीहा है। यह क़ुर्बानी कम से कम एक बकरे की होनी चाहिए और इससे बेहतर यह है कि एक गाय या ऊँट की हो। रोज़ा, सदक़ा, क़ुर्बानी, यह तीनों सूरतें फ़िद्यः तथा कफ़्फ़ारा की एक ही प्रकार की हैं, जो भी पसन्द आये अपनाई जा सकती है।

२१२ उस ख़तरे और बीमारी की दशा में जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है और जिस प्रकार एक आम सारपूर्ण शब्द **'अह्सार'** आया था यहाँ भी ऐसा ही एक अर्थपूर्ण शब्द **'अमन्'** आया है, जो बीमारी के दूर हो जाने पर भी उसी प्रकार हावी है जिस प्रकार शत्रु के ख़तरे के दूर हो जाने पर। **'अिज़ा'**— शर्तिया है। इससे फ़क़ीहों ने यह अर्थ निकाला है कि बाद इस प्रतिबन्ध के हज के ज़माने में अगर कठिनाई दूर न हो तो गुनहगार न होगा। **'अमिन्तुम्'**— फ़क़ीह कहते हैं कि स्वास्थ्य को भी अमन ही माना गया है, क्योंकि सेहत हो जाने पर ज़ाहिर में हज के ख़त्म होने की तरफ़ से सन्तोष हो जाता है।

२१३ (और अगर किसी ने केवल हज या उम्रः किया हो तो उस पर यह क़ुर्बानी वाजिब नहीं है।) **'फ़मन् तमत्तअ'**— 'तमत्तो' के मानी फ़ायदा उठाने के हैं। फ़िक़ह की परिभाषा में इसका अर्थ है हज और उम्रः को मिला लेना होता है यानी हज के ज़माने में एक अहराम बाँधकर उम्रः अदा किया जाये और फिर दूसरे अहराम से हज भी कर लिया जाये। दोनों अहरामों की बीच की मुद्दत में अहराम की दशा की मनाहियों से पूरी तरह लाभ उठाया जा सकता है। दीने-इब्राहीमी को छोड़कर अरब जाहिली और बहुत से वहमों में फँसे हुए थे। उसी में एक अक़ीदा यह भी गढ़ लिया गया था कि हज के मौसम में उम्रः करना सख़्त गुनाह है।

२१४ (इन हज के दिनों में ग़रीबी या अन्य किसी विवशता के कारण।)

२१५ तीन हज के ज़माने में और सात हज के ज़माने के बाद यह "पूरे दस" का ब्योरा ताकीद तथा फिर ताकीद करने के कारण से है। **'अिज़ा रजअ्तुम्'** हनफ़ीया फ़क़ीहों के अनुसार और बाज़ बड़े ताबेईन के अनुसार इस रुजू से मुराद आमाले-हज से अवकाश पाने से है, चाहे वास्तव में कोई हज से वापस हो जाये या वहीं ठहरा हुआ हो। बाज़ दूसरे बड़ों के अनुसार मक्के से वतन की वापसी मुराद है।

२१६ यानी हज के मौसम में उम्रः के साथ हज का मिला लेना। यह तफ़्सीर इमाम अबू हनीफ़ा और बाज़ ताबेईन के मतानुसार थी, जिनके हज में लाभ और मौसमे-हज में उम्रे के साथ हज कर लेने की दो सूरतें केवल दुनिया के अन्य भाग वालों के लिए दुरुस्त हैं, मक्का और उसके आसपास वालों के लिए नहीं। इमाम शाफ़िई के विचार में **'ज़ालिक'** का इशारा अस्ल आदेश यानी क़ुर्बानी के वाजिब होने की ओर है।

११७ यानी जो मक्कानिवासी या शहर मक्का के आसपास के निवासी न हों, बल्कि **'मीक़ात'** की सीमाओं के बाहर के रहनेवाले हों। **'मीक़ात'** उस स्थान को कहते हैं जहाँ से हरम की सीमाएँ आरम्भ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होती हैं और वहाँ पहुँचकर हर दुनिया वाले पर हज या उम्रे की नीयत कर लेना और अहराम बाँध लेना वाजिब हो जाता है। हर-हर दिशा से आनेवालों की मीक़ात पृथक्-पृथक् है। **'हाज़िरिल्-मस्जिदिल्-हरामि'** से खास मक्कावालों का मुराद होना और उनके लिए 'तमत्तो' का नाजाइज होना सबको मान्य है। परन्तु हनफ़ीया और बाज़ ताबेईन का मत यह है कि उसमें मक्केवालों के अलावा मक्का के आसपास के निवासी भी शामिल हैं। और 'मीक़ात' की सीमाओं के इधर तक सब रहनेवाले **'हाज़िरिल्-मस्जिदिल्-हरामि'** के हुक्म में आते हैं। इमाम शाफ़िई के नज़दीक मक्के से 'क़सर' नमाज के फ़ासिले तक रहनेवाले अहलें-मक्का के ही हुक्म में आते हैं। **'अल्मस्जिदुल्हराम'** से भी मक्का और उसके आसपास ही मुराद लिया गया है।

२१८ उनकी, जो ख़ुदा के हुक्मों का विरोध करते रहते हैं और तक़्वाए-इलाही अख्तियार नहीं करते। **'वत्तक़ुल्लाह'** यानी अल्लाह से डरते रहो इन तमाम आज्ञाओं के पालन करने में। तमाम आदेशों का दारोमदार बस यही तक़्वा या ख़ुदा का ख़ौफ़ है, शेष ताबीरोतफ़्सीर में आंशिक विरोधाभास तो अपनी-अपनी समझ, चिन्तन तथा दृष्टि के अनुसार आलिमों और फ़क़ीहों, शरह लिखनेवालों में होते ही रहते हैं। **'शदीदुल् अिक़ाब'** यहाँ जिस सन्दर्भ में आया है उससे बाज़ आलिमों ने यह बात पैदा की है कि पवित्र और पाक मुक़ामों में जिस प्रकार क़बूल होने और नेकी के अवसर अधिक हैं, उसी प्रकार गुनाह और सज़ा पाने के ख़तरे भी अधिक लगे हुए हैं।

२१९ और चूँकि वह सभी को मालूम हैं तथा मशहूर हैं, अतः क़ुर्आन को उसे स्पष्ट करने और उसका ब्योरा देने की आवश्यकता नहीं और वह तीन महीने शव्वाल, ज़ीक़ाद: और ज़िलहज हैं। हज के अस्ल अरकान तो ज़िलहज के दूसरे सप्ताह में अदा होते हैं, परन्तु हज के अहराम शव्वाल (इस्लामी दसवाँ महीना) ही से बँधने शुरू हो जाते हैं। अहराम उस विशेष वस्त्र का नाम है, जो हरम की सीमाओं या मीक़ात में प्रवेश करते ही हर हाजी और ज़ियारत करनेवाले पर वाजिब है। यह वस्त्र और कुछ नहीं, केवल बिना सिली हुई चादरें होनी चाहिए। हनफ़ीया के यहाँ अहराम जब चाहें बाँधा जा सकता है, यद्यपि शव्वाल के पूर्व उचित नहीं हैं। जाइज होने की दलील यह है कि हनफ़ीया के यहाँ अहराम हज का रुक्न नहीं है, केवल हज की एक शर्त है। जैसे वज़ू कि नमाज का रुक्न नहीं है, केवल नमाज़ की शर्त है। इमाम शाफ़िई के यहाँ शव्वाल से पहले हज का अहराम बाँधना नाजाइज है, यह इस कारण से, क्योंकि उनके यहाँ अहराम हज का रुक्न है और हज के किसी रुक्न की अदायगी हज के मौसम के पूर्व दुरुस्त नहीं। **'अल्हज्जु'** पाँच वक़्तों की नमाज़ों, रोज़ों और माल का चालीसवाँ हिस्सा जकात देने की तरह बैतुल्लाह का हज भी इस्लाम की उन इबादतों में से है, जिसने अपनों को ही नहीं ग़ैरों को भी प्रभावित किया है। और शोध करनेवाले बड़े फ़िरंगियों का जो पक्ष है, उसने इसके ज़ाहिरी और सामूहिक लाभों तथा हिकमतों पर बार-बार रश्क किया है और इसे उनके समूह ने 'इस्लामी दुनिया की वार्षिक कांग्रेस' कहा है।

२२० **"फ़रज़ फ़ीहिन्नल्हज्ज"** यानी हज के मौसम में हज अदा कर ले और उसे स्वयं पर अनिवार्य कर ले। परन्तु अपने ऊपर अनिवार्य करने की अलामतः क्या है? बाज़ इमामों के नज़दीक केवल नीयत करना काफ़ी है। हनफ़ीया ने बाज़ सहाबियों और ताबेईन की भाँति इसका चिह्न अहराम का पहनना बताया है।

२२१ (बल्कि इस सारे ज़माने में अपने आप को इबादत तथा अल्लाह के ज़िक्र में व्यस्त रखो।) रोज़े के दिनों की भाँति हज के दिनों को भी अच्छे आमाल के साथ विशेष सम्बन्ध है और जो चीज़ें हराम हैं वह तो ख़ैर हमेशा ही हराम हैं, बाक़ी जो बातें जाइज़ और मुबाह हैं उनमें भी बहुत सी चीज़ों से रोज़े के ज़माने की तरह अहराम की हालत में हाथ खींच लेना चाहिए। यह वाक्य ख़बरिया है, लेकिन अर्थ नहीं का है और वह भी ताकीद के साथ यानी उन सब कार्यों से बिलकुल मना किया जा रहा है। **'फ़िल्हज्जि'** यानी इस ज़मानए-हज में अहराम की हालत में। **'फ़ला रफ़स'** 'रफ़स' का अर्थ बताया जा चुका है यानी हर प्रकार की स्त्रियों से सम्बन्ध की बातें इसमें निहित हैं। यहाँ अर्थ है इस प्रकार के ज़िक्र इत्यादि। अल्लाहु अक्बर! एक मेयार यह है इबादत में पाकी और पवित्रता का जो इस्लाम ने स्थापित किया कि संकेत और इशारों में भी उस ज़माने में जाइज़ स्त्री सम्बन्धी ख़यालात ज़बान पर न लाये जायें और दूसरी ओर मुश्रिक क़ौमों के मेले-ठेले, त्योहार, तीर्थयात्रा और नुमाइशें और जलसे हैं, जिनकी गर्मबाज़ारी ही फ़ुहुशकारियों (अश्लील बातें करनेवालों) और शहूवत (कामेच्छा) की बातों से है, और फिर अरब जाहिलीयत के तो अरकाने-हज में फ़ुहुश और गन्दगी दाख़िल थी। **'व ला फ़ुसूक़'** इसके अन्तर्गत बड़े-छोटे हर प्रकार के गुनाह की मनाही आ गयी। अहराम की हालत में जब कितने ही जाइज़ मशग़ले, जैसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिकार तक, नाजाइज़ हो जाते हैं, तो बड़ी-छोटी क़िस्म की पाप की बातें कहाँ जगह पा सकती हैं ? यहाँ यह आदेश केवल बल देने हेतु है। **'व ला जिदाल'** यह शब्द अपने विशाल अर्थ में आया है। मार-पीट, हाथा-पाई, अलगरही ज़बानी हुज्जत और तकरार, जो अक्सर बहस-मुबाहिसे में हो जाती है, वह भी अहराम की दशा में मना है। हज के अवसर पर दुनिया के कोने-कोने से आबादियाँ खिंचकर आती हैं, हर उम्र, हर क़िमाश, हर मिज़ाज के लोग होते हैं। बूढ़े भी, जवान भी, बच्चे भी, बड़े तेज़-मिज़ाज और क्रोधी, आवारा-मिज़ाज भी, लालची भी, सुन्दर तथा नवयुवतियाँ भी, फिर कष्ट और परेशानियाँ भी। राह और सवारी के विषय में भी परेशानियाँ सामने आती हैं। इन पर और सितम यह कि भाषाएँ नाना प्रकार की होती हैं। वह इनकी नहीं समझते और यह उनकी नहीं समझते। बड़े-बड़े सन्तोषी और साबिर ज़ब्तोसब्र (सहनशीलता) छोड़ देते हैं। इश्क़ भी, बदनज़री और बदकारी, झगड़े-टण्टे के अवसर पग-पग पर रखे हुए होते हैं। अल्लाह, जो सबसे बड़ी हिकमत वाला है, उसने **'रफ़स'** और **'फ़ुसूक़'** और **'जिदाल'** सबका ब्योरा दे दिया और बल देकर कमज़ोर बन्दों के हक़ में क्या सुन्दर व्यवस्था कर दी। तहक़ीक़ करनेवालों ने यह भी कह दिया है कि वाक्य के अन्त में **'फ़िल्हज्जि'** में जो सर्वनाम के स्थान पर असल संज्ञा का प्रयोग हुआ है यह सम्मान और ताकीद के लिए आया है।

२२२ (और वह इसी के अनुसार बदला भी देगा) हाजियों के अच्छे अमल के शौक़ दिलाने हेतु यह बड़ी सुन्दर और प्रभावशाली याददेहानी है। अल्लाह के छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीज़ों के ज्ञानी और जानकार होने की बात हमेशा नज़र के सामने रखो। जाहिली के ज़माने के लोगों की भाँति यह न सोचो कि हमारे इस कर्म का बदला मिले या न मिले। भ्रम में कदापि न पड़ो। अल्लाह की जानकारी में वह अमल आये भी या न आये। मोमिन को ऐसा सोचना भी न चाहिए। उसका यही विश्वास होना चाहिए कि छोटी से छोटी नेकी भी हर ग़ैब की बातों के जाननेवाले रब की दृष्टि से छुपी हुई नहीं है। यूनानी हकीम बहार के मौसम में ख़ून साफ़ करनेवाली दवाएँ पिलाते हैं और जाड़े के ज़माने में ताक़त देनेवाली दवाएँ देते हैं, क्योंकि इन मौसमों को इन दवाओं से मुनासिबत है। रमज़ान का महीना और हज का मौसम भी आत्मा की शुद्धि के ज़माने हैं, अतः वह असली हकीम इन मौसमों में अच्छे कर्म करने की ओर क्यों न ध्यान दिलाता ?

२२३ जब हज के इरादे से निकला करो। इस निर्देश की क़द्र उस समय होगी, जब जाहिली क़ौमों के यात्रियों की मनोवृत्ति पर नज़र हो। विशेष रूप से अरब की जाहिलीयत के इतिहास पर यदि दृष्टि डालें। आज भी हिन्दुस्तान में कितनी ही क़ौमें ऐसी हैं, जो तीर्थयात्रा के समय घर से खाली हाथ और ग़रीब बनकर निकलना आत्मियता का कमाल समझती हैं। रास्ते में माँगते हुए जायेंगे। कोई दूसरा उन्हें खिला-पिला दिया करेगा। यह अपने फ़क़ीर होने पर ही गौरवान्वित होते हैं। इस प्रकार के सारे वहम और भ्रम इस्लाम ने समाप्त कर दिये और आदेश दिया कि जब घर से निकलो और हज तथा ज़ियारत का इरादा हो तो आवश्यकतानुसार रुपये-पैसे का प्रबन्ध करके चलो। रास्ते में दूसरों पर बोझ न बनो। अरब जाहिलीयत में यह रोग और ज़्यादा फैला हुआ था, बल्कि कुछ गिरोहों में यह तरीक़ा था कि अहराम बाँधने के पश्चात् जो कुछ पैसे-कौड़ी उनके पास होते भी उसे वह फेंक देते थे। इस्लाम ऐसे विधान को, जो झूठी और नुमाइशी आत्मियता पर आधारित था और एक ओर व्यक्तिक सम्मान के विपरीत था और दूसरी ओर सामूहिक आर्थिक व्यवस्था पर अकारण बोझ था, उसे कहाँ बाक़ी रख सकता था ? **'तज़व्वदू'** से फ़क़ीहों ने यह बात निकाली है कि राह का ख़र्च लेकर चलना वाजिब है। फ़क़ीहों ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यह आयत उन 'तवक्कुल्' करनेवाले सूफ़ियों के मत का भी खण्डन करती है, जो काम करके रोज़ी कमाना छोड़ बैठते हैं और उसे बड़ा कमाल समझते हैं।

२२४ (विशेषतः भीख माँगने और दूसरों के आगे हाथ फैलाने से) दर्शकों और यात्रियों को भीख माँगने और झूठे 'तवक्कुल्' (अल्लाह के देने पर भरोसा करके कारोबार करने और मेहनत से हाथ खींच लेना) को विशेष रूप से रोकना था, अतः आदेश 'तज़व्वदू' के बाद और बल देने के लिए यह बात बढ़ा दी गयी। अभी इर्शाद हुआ था कि सफ़र के ख़र्चे की व्यवस्था करके चलो। अब फ़र्माया जा रहा है कि राह में दूसरों के आगे हाथ न फैलाना और दूसरों के लिए बोझ न बनना, व्यवस्था करके चलना। फ़क़ीहों ने यह भी लिखा है कि **'ज़ाद'** से मुराद ज़ादे-राह यानी सफ़र-ख़र्च के अलावा अमल और नेक आमाल की व्यवस्था भी हो सकती है। क़रतबी ने एक कहानी हज़रत इमाम अहमद के सम्बन्ध में लिखी है कि एक व्यक्ति ने उनसे आकर कहा कि मेरा इरादा मक्का मुअज़्ज़मा (पूज्य स्थान) की हाज़िरी का है बिना किसी सफ़र-ख़र्च के, केवल अल्लाह के भरोसे पर। आपने पूछा, अकेले या क़ाफ़िले के साथ ? उसने कहा, क़ाफ़िले के साथ। आपने फ़र्माया, "तो तुम्हें क़ाफ़िले वालों के सामान पर भरोसा है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२२५ (इन आदेशों के पालन करने के विषय में) इस हुक्म के बाद अल्लाह के तक़्वा की ताकीद इस बात की दलील है कि इस्लाम केवल दिखावटी आज्ञा-पालन को पर्याप्त नहीं समझता, बल्कि चाहता है कि बन्दों का सुधार अन्दरूनी तौर पर हो। जो भी नेक कर्म मनुष्य करे वह केवल हाथ-पैरों ही से नहीं बल्कि हृदय तथा अन्तरात्मा की स्वच्छता के साथ।

२२६ हज की यात्रा के विषय में। इस्लाम जिस प्रकार आख़िरत की भलाई का ज़मानतदार है, दुनियावी भलाई की ओर भी आमन्त्रित करता है और उसकी यह परिपूर्णता हर इबादत से बिल्कुल स्पष्ट है। वज़ू, नमाज़े-बाजमाअत, रोज़ा, ज़कात सब रूह को रौशन करनेवाले और अन्तरात्मा पर पालिश करनेवाले हैं और यह सब दुनियावी, भौतिक, जिस्मानी, आर्थिक लाभों और हिकमतों से परिपूर्ण हैं। यही नियम हज के विषय में भी काम कर रहे हैं। हज का मंज़िल दर मंज़िल सफ़र, ज़मीन का सफ़र, समुद्र की यात्रा और उम्मत के विभिन्न पक्षों का दुनिया के विभिन्न कोनों से आकर इतना बड़ा समूह बन जाना, रूखी इबादत और केवल अल्लाह के ज़िक्र के लिए नहीं, व्यक्ति तथा धर्म दोनों के लिए अर्थात् व्यक्तिक तथा सामूहिक हर प्रकार के लाभ इससे प्राप्त हो सकते हैं और प्राप्त होने चाहिए। हज के रूहानी रहस्य और हक़ीक़तें फ़िरंगी दिमाग़ों की पहुँच से बाहर हैं, परन्तु इस अन्तर्राष्ट्रीय वार्षिक कांग्रेस से जो राजनैतिक एवं सामूहिक, हर क़िस्म के लाभ होते हैं और इस अन्तर्राष्ट्रीय वार्षिक बाज़ार से जो माली, तिजारती तथा आर्थिक फ़ायदे प्राप्त हो सकते हैं, उनका अन्दाज़ा और उनका एतिराफ़ (मानना) तो फ़िरंगियों की ज़बान से भी बार-बार हो चुका है। यहाँ पर विशेष रूप से इस यात्रा के आर्थिक तथा व्यापारिक पहलू की ओर ध्यान दिलाया गया है, और जो रुकावट एक बिल्कुल दीनदार एवं धार्मिक व्यक्ति को इन लाभों की प्राप्ति से हो सकती है, उसे दूर कर दिया है। **'फ़ज़्लत्'—'फ़ज़्ल'** से यहाँ मुराद माल और व्यापार का लाभ है। सभी इस बात पर सहमत हैं। लोगों का ख़याल इस विषय में इतना बढ़ा हुआ था कि जो व्यापारी व्यापार का माल लेकर मिना और मक्का के बाज़ारों के लिए जाते या जो ऊँट वाले अपने ऊँट मुज़दल्फ़ा, अरफ़ात और मिना के लिए ले जाते, समझा जाता था कि उनका हज ही नहीं होता कि जहाँ तिजारत आ गयी वहाँ इबादत का अस्तित्व कैसे रह सकता है! आम लोगों की इस ग़लतफ़हमी को क़ुर्आन मजीद ने दूर कर दिया। **'मिर्रब्बिकुम्'** यानी अल्लाह ने जैसा लिख दिया उसी के अनुसार। बात-बात में बात पैदा करना क़ुर्आन मजीद का एक स्थायी एजाज़ है। यह छोटा से शब्द लाकर याद दिला दिया कि इस लाभ और व्यापार को भी अपने हाथ-पैरों की शक्ति का फल न समझ लेना। जो कुछ भी उपलब्धि होगी, सबको अल्लाह की मेहरबानी का ही परिणाम समझना। व्यापार और कारोबार में भी हमेशा दृष्टि उसी पर रहनी चाहिए। इस आदेश पर अमल करके कोई बड़ी से बड़ी व्यस्तता भी तिजारत रह सकती है? इस दशा में तिजारत इबादत बन जाती है।

२२७ (९ ज़िलहज की शाम को अरफ़ात में हाज़िरी या वुक़ूफ़ और हाज़िरी तथा वहाँ के आदाब के बाद) हज के अमाल (विजिबात, सुन्नतों तथा मुस्तहबात) तो बहुत हैं, लेकिन फ़र्ज़ तीन ही हैं— अहराम बाँधना, ९ ज़िलहज को अरफ़ात में हाज़िरी या वुक़ूफ़ और फ़र्ज़ तवाफ़। इन तीनों में भी सबसे महत्त्वपूर्ण अरफ़ात में हाज़िरी है। **'अफ़ज़्तुम्' 'अिफ़ाज़ा'** के मानी हैं अम्बोह दर अम्बोह (समूह दर समूह) चलना या वापस होना। फ़िक़ह की परिभाषा में **'अिफ़ाज़ा'** अरफ़ात से मुज़दल्फ़ा जाने को कहते हैं। अरफ़ात—मक्का मुअज़्ज़मा से जो सड़क पूरब की ओर ताइफ़ को जाती है उस पर मक्का से लगभग १२ मील के फ़ासिले पर कई मील का लम्बा-चौड़ा एक मैदान पड़ता है, उसका नाम अरफ़ात है। इसी नाम की एक पहाड़ी भी इसी मैदान में स्थित है। यह मैदान साल भर सुनसान पड़ा रहता है, केवल एक दिन यानी ज़िलहज की ९ तारीख़ को इसकी पूरी कसर निकल जाती है। उस दिन यह मैदान मनुष्यों, सवारियों और गाड़ियों से खचाखच भर जाता है। हाजी ८ ज़िलहज की दोपहर तक मिना में आ जाते हैं और ९ की सुबह को बाद इश्राक़ (सूर्योदय के पश्चात्) अरफ़ात के लिए रवाना हो जाते हैं, ताकि ८, ९ मील का फ़ासिला दोपहर तक तय हो जाय। दोपहर से लेकर अस्र के समय तक इसी मैदान में रहना चाहिए और इसी को परिभाषा में 'वुक़ूफ़' कहते हैं। यही हाज़िरी हज के आमाल की जान है और यह सारा समय तौबा और इस्तिग़्फ़ार, इबादत और इनाबत (वन्दना) ही में व्यतीत होना चाहिए। सूर्यास्त के क़रीब वहाँ से मुज़दल्फ़ा के लिए कूच होना चाहिए, और जिस प्रकार आज ज़ुहर के साथ अस्र की नमाज़ अरफ़ात की मस्जिद नम्रा में मिला ली गयी थी, उसी प्रकार आज मग़रिब की नमाज़ इशा से मिलाकर उस समय पढ़ी जायेगी जब क़ाफ़िले मुज़दल्फ़ा पहुँच जायें।

२२८ **'अल्मशअरुलहराम'** 'मशअर' के मानी हैं निशानी या अलामत के और हराम यानी सम्मानित या पवित्र उसकी ताज़ीमी सिफ़त है। नाम उस विशेष स्थान का भी है जो मुज़दल्फ़ा की दो पहाड़ियों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बीच है और स्वयं मुज़दलफ़ा को भी **'मशअरुल्हराम'** कहते हैं। मुज़दलफ़ा मक्का से कोई छः मील के फ़ासिले पर है। मिना से अरफ़ात जाने का एक तो सीधा रास्ता है। हाजी ९ को अरफ़ात जाते इसी रास्ते से हैं, वापसी में हुक्म है कि दूसरे रास्ते से लौटें। यह ज़रा चक्करदार रास्ता है और मुज़दलफ़ा इसी रास्ते में पड़ता है। हाजियों के क़ाफ़िले १० की रात के प्रथम भाग में यहाँ पहुँच जाते हैं और रात यहाँ तस्बीह (सुब्हानल्लाह कहना) तथा तहलील (ला इलाहः इल्लल्लाह कहना), नमाज़ और इस्तिग़्फ़ार (मोक्षप्राप्ति-कामना) में गुज़ारते हैं। मस्जिद पहाड़ी के ऊपर है। **'ख़िन्दल-मशअरि'** यानी इस मस्जिद के चारों ओर विशेषता के साथ और यूँ तो सारा मुज़दलफ़ा (घाटी को छोड़कर) पवित्र एवं आदरणीय है। **'वज़कुरूल्लाह'** ने याद दिला दिया कि यह रात रंगरलियाँ मनाने की नहीं। जाहिली क़ौमों की रौशनी और आतशबाज़ी के लिए नहीं, लापरवाही के साथ सोने की नहीं, गौरवशाली कविताओं और शेरोशायरी में व्यतीत करने की नहीं, केवल अल्लाह की इबादत और उसका ज़िक्र करने के लिए है।

२२९ (अपने रसूल के माध्यम से—और इन्सान की नई-नई बातों के ईजाद किये हुए तरीक़ों से बचो।) इल्हाद (नास्तिकता) तथा इन्कार से बचकर दीन व मज़हब के दायरे में आ जाने के बाद फिर जो खतरा मज़हब वालों को शैतान के हाथों सबसे बढ़कर दरपेश रहता है, वह है बिद्अतों और नई-नई रस्मों का, जिसे मज़हब के अंश के रूप में जोड़ लिया जाता है। इन्सान अपने मन से नाना प्रकार के इबादत और अल्लाह के ज़िक्र के ईजाद करता रहता है, हालाँकि दीन केवल वह है जो अल्लाह की शरीअत के माध्यम से पहुँचाया जाये या आलिम अपने इज्तिहाद से बतायें। यहाँ अगर एक ओर यह ताकीद है कि अल्लाह की याद में लगे रहो तो दूसरी ओर इसको बता दिया है कि इस याद के तरीक़े अपने बनाये हुए न हों, अल्लाह और उसके रसूल के ही बताये हुए हों। आदेश यह है कि अल्लाह का ज़िक्र बराबर होता रहे। यह भी हो सकता है कि प्रथम आदेश **'मशअरुल्हराम'** में ज़िक्र करते रहने के लिए हो और दूसरा हुक्म निःस्वार्थ यादे-इलाही की व्यवस्था के लिए हो।

२३० (इबादत और अल्लाह के ज़िक्र के सही तरीक़ों से) **'ज़ाल्ल'** हमेशा गुमराही के मानी में नहीं आता, अजान के अर्थ में भी आता है। और **'ज़लाल'** से मुराद अल्लाह के हुक्मों से अंजानापन के हो सकते हैं! और यहाँ यही अर्थ है।

२३१ यानी अरफ़ात से—क़ुरैश के गढ़े हुए अक़ीदों में से एक अक़ीदा यह भी था कि हमें हज में अरफ़ात की हाज़िरी की क्या ज़रूरत है? वहाँ तक सबके साथ जाना हमारी शान के खिलाफ़ है। हमारे लिए मुज़दलफ़ा तक जाना पर्याप्त है। यह आयत उन्हीं की इस्लाह और सुधार के लिए है। **'अन्नासु'** का अर्थ मानव मात्र है। **'सुम्मा'** यहाँ समय की विलम्बता हेतु नहीं, बात के फासिले हेतु है, यानी एक बात पूरी हुई। अब दूसरी बात सुनो, जैसे उर्दू में ऐसे अवसर पर "अच्छा तो" या "हाँ तो" कहते हैं।

२३२ [तो आज अरफ़ा के दिन तो उसकी शाने-ग़फ़ूरियत (माफ़ करने की शान) तथा दयालुता का प्रदर्शन अन्य सभी दिनों से अधिक होगा।] **'वस्तग़्फ़िरुल्लाह'** सहीह हदीस में हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) से वर्णित है कि कोई दिवस ऐसा नहीं, जिसमें अरफ़ा के दिवस से ज़्यादा बन्दे आग से आज़ाद किये जाते हों। हज का बयान जहाँ से प्रारम्भ हुआ है देखते जायें कि दिल की सफ़ाई का हर पग पर इन्तिज़ाम है। हरम शरीफ़ नहीं, अभी हरम की सीमाओं का कई मंज़िलों का फ़ासिला है कि सारी देह का जाना-पहचाना वस्त्र बदन से उतर गया। अब न सर पर टोपी है, न पगड़ी, न साफ़ा; बदन पर न शेरवानी है, न कोट, न अबा (लम्बा चुग़ा), न क़मीस। बादशाह और फ़क़ीर, रईस और रिआया, हाकिम और आम लोग सब के सब दो चादरें लपेटे हुए हैं। फिर अहराम पहनते ही जो चीज़ें हराम थीं, उनका ज़िक्र ही नहीं, जो हमेशा हलाल थीं और स्वयं जाइज़ हैं एक अच्छे लम्बे समय के लिए उनकी मनाही हो गयी। इस समय के बीच कितनी ही पसन्दीदा चीज़ों से हाथ खींच लेना पड़ता है। इतना ही नहीं, घड़ी-घड़ी 'लब्बैक' (उपस्थित हूँ) कहते रहो। और अब यह हुक्म मिल रहा है कि खताओं, गुनाहों, पापों, सियहकारियों को याद करके क्षमा चाहो, तो बराबर अल्लाह का ज़िक्र करते रहो। इतने पाकीज़ा, ऐसे स्वच्छ, इस क़दर शुद्ध करनेवाले सामूहिक भीड़ से दुनिया-जहान के मेलों-ठेलों, बुत-परस्ताना, वतन-परस्ताना, वहम-परस्ताना, हवस-परस्ताना, मेलों और त्योहारों को कोई भी मुनासिबत नहीं; कोई सम्बन्ध, सम्पर्क नहीं। कितना खुला हुआ अत्याचार वह क़लमवाले लोग करते हैं स्वयं अपनी समझ, सूझबूझ और बुद्धि पर, जो इस्लाम को दूसरे धर्मों के स्तर पर समझे हुए हैं। **'ग़फ़ूरुन्'** आयत के अन्त में याद दिलाया कि तुम्हारे रब की सिफ़तें **'ग़ुफ़ूर'** बहुत बड़ी है। उससे क्षमा माँगो और देखो कि क्षमायाचकों से वह किस प्रकार पेश आता है और किस प्रकार माफ़ करता है! **'रहीम'** और साथ ही उसकी सिफ़त-रहमत भी तो अथाह है। माफ़ी चाहनेवालों के साथ वह दया क्यों न करेगा?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२३३ (और अभी मिना से बिखरे नहीं हो) अरफ़ात तथा मुज़्दलफ़ा से वापसी के बाद मिना में तीन दिन ठहराव १०, ११, १२ ज़िल्हिज अनिवार्य है और बाज़ फ़िक़्ह के इमामों की राय में १३ तक। 'अिज़ा' के शब्द से यह भ्रम न हो कि यहाँ हुक्म अदाए-मनासिक के बाद (रस्मों की अदाई के बाद) के लिए मिल रहा है। 'अिज़ा' हमेशा बाद के लिए नहीं आता है। एक ही समय के मौक़े पर भी क़ुर्आन मजीद में आया है, जहाँ इसके मानी हैं कि जब तुम नमाज़ पढ़ते हो (न यह कि जब तुम नमाज़ ख़त्म कर चुको), इसी प्रकार यहाँ भी मानी यह हैं कि जब तुम मनासिक अदा कर रहे हो। **'मनासिककुम्'**— 'मनासिक' हज की विधियों और रस्मों को कहते हैं। **'क़ज़ैतुम्'— 'क़ज़ा'** के मानी किसी इबादत के अदा कर चुकने या बजा लाने के हैं।

२३४ क़ौमी बड़ाई और क़ौमी आत्मसम्मान, नस्ली गौरव जिस प्रकार जाहिली सभ्यता का अंश हैं, अरब के भी जाहिली दीन के बड़े खम्भ थे। अरब जब मिना में एकत्र होते तो हर क़बीला अपने क़बीले की जय पुकारता और अपने बड़ों की बड़ाइयाँ और उनकी शान के ज़ोरदार बयानों से दिलों को गरमाता था। **'कज़िकरिकुम् आबा अकुम्'** मुसलमानों को हुक्म मिलता है कि यही जोश व ख़रोश तुम अल्लाह के ज़िक्र में दिखाओ। तुम्हारी न कोई क़ौम है, न नस्ल, न तुम्हारा कोई वतन है। तुम इन सबके बदले अल्लाह की बड़ाई दिलों में बिठाओ, बसाओ और केवल अल्लाह का नाम ज़बानों पर लाते रहो। **'औ'** यहाँ 'बाद' के नहीं, बल्कि तरक़्क़ी के मानी दे रहा है। मक़्सद यह है कि हक़ तआला के साथ सम्बन्ध और तअल्लुक़ कम से कम इस दर्जे का तो रखो, जितना अपने परिवार, अपने क़बीले, अपनी क़ौम के साथ रखते हो। बल्कि इससे अच्छा यह है कि उससे अधिक सम्बन्ध रखो। **'औ अशद्द ज़िक्रन्'** मौलाना रूमी ने इसी को अपनी आशिक़ाना और शाइराना भाषा में यूँ कहा है— "अल्लाह का इश्क़ लैला के इश्क़ से कम कहाँ है? अल्लाह के ही इश्क़ में परेशान होना कहीं अच्छा है।"

२३५ दुनिया में ऐसी भी क़ौमें हैं जो ख़ुदा को मानती हैं, उसे सबसे बड़ा माबूद जानती हैं, लेकिन हश्र व नश्र, जज़ा व सज़ा की क़ाइल नहीं हैं। ऐसे लोगों की दुआएँ, उपासनाएँ, प्रार्थनाएँ, आशाएँ, तमन्नाएँ स्वाभाविक रूप में इसी भौतिक दुनिया की उन्नतियों तक सीमित रहती हैं। अरब के मुश्रिकों के अक़ीदे भी इसी प्रकार के थे और यह लोग जब भी दुआ माँगते थे, तो लगभग सभी दुनियावी सामान और शत्रु पर विजय तथा सहायता इत्यादि की। इब्ने ज़ैद, सुद्दी इत्यादि ताबेईन से यही अर्थ वर्णित है। **'मंय्यक़ूलु'** से यह आवश्यक नहीं कि दुआएँ बिल्कुल इन्हीं शब्दों के साथ ही की गयी हों। **'क़ौल'** का अर्थ बड़ी विशालता रखता है, तमन्ना करना, अपनी हृदय की भाषा में कहना सभी इसी में सम्मिलित हैं।

२३६ वही आख़िरत, जिसको मानने से जीवन भर इन्कार रहा।

२३७ यह संकेत मानवता के पसन्दीदा पक्ष यानी ईमानवालों की ओर है। मोमिनों की दुआएँ, प्रार्थनाएँ, विनय और इच्छाएँ दुनिया तथा आख़िरत दोनों की भलाई और बेहतरी को घेरे रहती हैं। **'हसनतन्'** वह चीज़ है जो अल्लाह के निकट पसन्दीदा और अच्छी है और इसके भीतर हर प्रकार की भलाई है। सभी इसमें आ गयीं। दुनिया में **'हसनतन्'** अच्छे कार्यों की इच्छा का होना है और आख़िरत में **'हसनतन्'** अच्छे बदले की अच्छे फल की आशाएँ। दुआ बड़ी सारगर्भित और परिपूर्ण है। ऐसी सर्वव्यापी दुआ की मिसाल से धर्मों के सहीफ़े और पुस्तकें ख़ाली हैं। रसूलुल्लाह (स०) स्वयं इसे बराबर पढ़ते रहते थे। धन-दौलत, सन्तान, सन्तोष इत्यादि जो वस्तुएँ भी भलाई की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती हैं, चाहे देखने में कैसी ही दुनियावी और भौतिक हों, सब मोमिन का उद्देश्य बन सकती हैं। हाँ! स्वयं दुनिया कदापि मोमिन का उद्देश्य और मक़्सूद नहीं बन सकती। आयत की बनावट दृष्टि में रहनी चाहिए। **'आतिना'** की क्रिया केवल **'हसनत'** है यानी जिस चीज़ की माँग और तमन्ना की जा रही है, वह **'हसनत'** यानी बेहतरी है। **'फ़िद्दुन्या'** और **'फ़िल्आख़िरति'** केवल स्थान या जगह हैं, क्रम में यह कृपया या अर्थ के लिहाज़ से मक़्सूद किसी प्रकार नहीं हो सकते। मुराद केवल यह है कि हमें तो आपके दरबार से केवल भलाई ही चाहिए। दुनिया में हो तो भी और आख़िरत में हो तो भी। और तफ़्सीर यह है कि दुनिया में हमें अच्छे कर्म प्रदान हों और आख़िरत में अच्छे फल। बाज़ ओछे क़लम उठानेवालों इस आयत से यह अजीब नतीजा निकाला है कि आख़िरत की भाँति दुनिया भी मोमिन का उद्देश्य बन सकती है, बल्कि क़ुर्आन स्वयं दुनिया की शिक्षा और शौक़ दिलाता है। इस ग़लती की क़लई ऊपर खोली जा चुकी है। भौतिकता की चाहनेवाली क़ौमों की दुनिया की माँग और दुनिया को पसन्द करने की बातों से दबकर स्वयं मुसलमानों को दुनिया की माँग की शिक्षा देना, बल्कि उसको क़ुर्आनी तालीम कहना इस्लाम की सेवा की अजीब शक्ल है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उला'अिक लहुम् नसीबुम्मिम्मा कसबू त वल्लाहु सरीअुल् - हिसाबि (२०२) वज़्कुरुल्लाह फ़ी' अय्यामिम्-मअ्दूदातिन् त फ़ मन् तअ़ज्जल फ़ी यौमैनि फ़ ला' अिस्म अलैहि ज व मन् तअख़्ख़र फ़ ला' अिस्म अलैहि ला लि मनित्तक़ा त वत्तक़ुल्लाह वअ़लमू' अन्नकुम् अिलैहि तुह्शरून (२०३) व मिनन्नासि मंय्युअ़्जिबुक क़ौलुहू फ़िल्-हयातिद्दुन्या व युश्हिदुल्लाह अ़ला मा फ़ी क़ल्बिही ला व हुव अलद्दुल्-ख़िसामि (२०४) व अिज़ा तवल्ला सआ़ फ़िल्अर्ज़ि लि युफ़्सिद फ़ीहा व युह्लिकल्हर्स वन्नस्ल त वल्लाहु ला युहिब्बुल्फ़साद (२०५) व अिज़ा क़ील लहुत्तक़िल्लाह अख़ज़त्हुल्-अिज़्ज़तु बिल्अिस्मि फ़ हस्बुहू जहन्नमु त व ल बिअ्सल्मिहादु (२०६) व मिनन्नासि मंय्यश्री नफ़्सहुब्तिग़ा'अ मर्ज़ातिल्लाहि त वल्लाहु रअूफ़ुम्-बिल्अिबादि (२०७) या' अय्युहल्लज़ीन आमनुद्ख़ुलू फ़िस्सिल्मि का'फ़्फ़तन् ब व ला तत्तबिअू ख़ुतुवातिश्शैतानि त अिन्नहू लकुम् अ़दुव्वुम् - मुबीनुन् (२०८) फ़ अिन् ज़लल्तुम् मिम्बअ़्दि मा जा'अत्कुमुल् - बय्यिनातु फ़अ़्लमू' अन्नल्लाह अ़ज़ीज़ुन् हकीमुन् (२०९) हल् यन्ज़ुरून अिल्ला' अंय्यअ्तिय - हुमुल्लाहु फ़ी ज़ुललिम् - मिनल् - ग़मामि वल्मला'अिकतु व क़ुज़ियल्-अम्रु त व अिलल्लाहि तुर्जअुल् - अुमूरु (२१०) ★ सल् बनी' अिस्रा'ईल कम् आतैनाहुम् मिन् आयतिम् - बय्यिनतिन् त व मंय्युबद्दिल् निअ्मतल्लाहि मिम्बअ़्दि मा जा'अत्हु फ़ अिन्नल्लाह शदीदुल् - अिक़ाबि (२११) ज़ुय्यिन लिल्लज़ीन कफ़रुल् - हयातुद्दुन्या व यस्ख़रून मिनल्लज़ीन आमनू म ● वल्लज़ीनत्तक़ौ फ़ौक़हुम् यौमल्क़ियामति त वल्लाहु यर्ज़ुक़ु मंय्यशा'अु बिग़ैरि हिसाबिन् (२१२)

سيقول ٢ ٢٥ البقرة ٢

النَّارِ ﴿٢٠١﴾ أُولَٰئِكَ لَهُمْ نَصِيبٌ مِّمَّا كَسَبُوا ۚ وَاللَّهُ سَرِيعُ الْحِسَابِ ﴿٢٠٢﴾
وَاذْكُرُوا اللَّهَ فِي أَيَّامٍ مَّعْدُودَاتٍ ۚ فَمَن تَعَجَّلَ فِي يَوْمَيْنِ فَلَا إِثْمَ
عَلَيْهِ وَمَن تَأَخَّرَ فَلَا إِثْمَ عَلَيْهِ ۚ لِمَنِ اتَّقَىٰ ۗ وَاتَّقُوا اللَّهَ وَاعْلَمُوا
أَنَّكُمْ إِلَيْهِ تُحْشَرُونَ ﴿٢٠٣﴾ وَمِنَ النَّاسِ مَن يُعْجِبُكَ قَوْلُهُ فِي الْحَيَاةِ
الدُّنْيَا وَيُشْهِدُ اللَّهَ عَلَىٰ مَا فِي قَلْبِهِ وَهُوَ أَلَدُّ الْخِصَامِ ﴿٢٠٤﴾ وَإِذَا
تَوَلَّىٰ سَعَىٰ فِي الْأَرْضِ لِيُفْسِدَ فِيهَا وَيُهْلِكَ الْحَرْثَ وَالنَّسْلَ ۗ
وَاللَّهُ لَا يُحِبُّ الْفَسَادَ ﴿٢٠٥﴾ وَإِذَا قِيلَ لَهُ اتَّقِ اللَّهَ أَخَذَتْهُ الْعِزَّةُ
بِالْإِثْمِ ۚ فَحَسْبُهُ جَهَنَّمُ ۚ وَلَبِئْسَ الْمِهَادُ ﴿٢٠٦﴾ وَمِنَ النَّاسِ مَن
يَشْرِي نَفْسَهُ ابْتِغَاءَ مَرْضَاتِ اللَّهِ ۗ وَاللَّهُ رَءُوفٌ بِالْعِبَادِ ﴿٢٠٧﴾ يَا أَيُّهَا
الَّذِينَ آمَنُوا ادْخُلُوا فِي السِّلْمِ كَافَّةً وَلَا تَتَّبِعُوا خُطُوَاتِ
الشَّيْطَانِ ۚ إِنَّهُ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِينٌ ﴿٢٠٨﴾ فَإِن زَلَلْتُم مِّن بَعْدِ مَا جَاءَتْكُمُ
الْبَيِّنَاتُ فَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ عَزِيزٌ حَكِيمٌ ﴿٢٠٩﴾ هَلْ يَنظُرُونَ إِلَّا أَن
يَأْتِيَهُمُ اللَّهُ فِي ظُلَلٍ مِّنَ الْغَمَامِ وَالْمَلَائِكَةُ وَقُضِيَ الْأَمْرُ ۚ
وَإِلَى اللَّهِ تُرْجَعُ الْأُمُورُ ﴿٢١٠﴾ سَلْ بَنِي إِسْرَائِيلَ كَمْ آتَيْنَاهُم مِّنْ
آيَةٍ بَيِّنَةٍ ۗ وَمَن يُبَدِّلْ نِعْمَةَ اللَّهِ مِن بَعْدِ مَا جَاءَتْهُ فَإِنَّ
اللَّهَ شَدِيدُ الْعِقَابِ ﴿٢١١﴾ زُيِّنَ لِلَّذِينَ كَفَرُوا الْحَيَاةُ الدُّنْيَا وَ
يَسْخَرُونَ مِنَ الَّذِينَ آمَنُوا ۘ وَالَّذِينَ اتَّقَوْا فَوْقَهُمْ يَوْمَ الْقِيَامَةِ ۗ

منزل ١

★ रु. २५ / ६ आ १४ ● व. ला वि म

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह वह लोग हैं जिन्हें[२३८] हिस्सा मिलकर रहेगा उसके बदले में, जो उन्होंने अमल कर रखा है, और अल्लाह हिसाब बहुत जल्द ले लेगा[२३९]। (२०२) और अल्लाह को (इन चन्द) गिने हुए दिनों में (बराबर) याद करते रहो[२४०]। जो व्यक्ति (इन) दो दिनों में जल्दी करे उस पर भी कोई गुनाह नहीं, और जो देर करे उस पर भी कोई गुनाह नहीं[२४१]; (यह) उसके लिए है जो डरता रहता है[२४२]। और अल्लाह से डरते रहो और जाने रहो कि तुम (सब) उसी की तरफ़ एकत्र किये जाओगे[२४३]। (२०३) और लोगों में ऐसा व्यक्ति भी है[२४४] कि उसकी बात, जो दुनियावी ग़रज़ से अच्छी मालूम होती है, और जो उसके दिल में है उस पर वह अल्लाह को गवाह लाता है, यद्यपि वह सख़्त दुश्मन है[२४५]। (२०४) और जब पीठ फेर जाता है तो इस दौड़-धूप में रहता है कि ज़मीन पर बिगाड़ पैदा करे और खेती तथा जानवरों को बरबाद करे[२४६]। ऐसी दशा में कि अल्लाह बिगाड़ को (बिल्कुल) पसन्द नहीं करता[२४७]। (२०५) और जब उससे कहा जाता है कि ख़ुदा का ख़ौफ़ करो, तो उसे घमण्ड गुनाह पर (और ज़्यादा) आमादः कर देता है[२४८], सो उसके लिए जहन्नम बस है और वह बुरी ही आरामगाह है। (२०६) और मनुष्यों में कोई ऐसा भी होता है जो अपनी जान (तक) अल्लाह की रज़ामन्दी की तलाश में बेच डालता है[२४९]; और अल्लाह बन्दों के हक़ में बड़ा मुहब्बत करनेवाला है[२५०]। (२०७) ऐ ईमानवालो! इस्लाम में पूरे-पूरे दाखिल हो जाओ[२५१], और शैतान के पद-चिह्नों पर न चलो[२५२]; वह तो तुम्हारा खुला हुआ शत्रु है[२५३]। (२०८) फिर अगर तुम बाद इसके कि तुम्हारे पास खुली हुई निशानियाँ पहुँच चुकी हैं, डगमगा गये तो जाने रहो कि अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है, बड़ा हकीम है[२५४]। (२०९) (यह लोग) तो बस इसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि उनके पास ख़ुदा बादल के सायबानों में आ जाये और फ़िरिश्ते (भी)[२५५] और क़िस्सा ही ख़त्म हो जाये, और अल्लाह ही की ओर 'सारे मामले' रुजूअ किये जायेंगे (देखे जायेंगे)[२५६]। (२१०) ★ ★ रु. २५/९ आ १४

आप बनी इसराईल से पूछकर देखिए, हमने उन्हें खुली निशानियाँ कितनी दे रखी थीं[२५७]। और जो कोई अल्लाह की नेमत को, बाद इसके कि वह उसको पहुँच चुकी हो, तो अल्लाह भी सज़ा देने में बड़ा सख़्त है[२५८]। (२११) देखने में सुन्दर कर दी गई है दुनियावी ज़िन्दगी उन लोगों की नज़र में, जो काफ़िर हैं[२५९]। और वह उन लोगों से मज़ाक़ करते हैं जो ईमान लाये हैं[२६०]। ● यद्यपि जो लोग डरते रहते हैं वह उनसे (कहीं) ऊपर होंगे क़ियामत के दिन[२६१]। और अल्लाह जिसे चाहता है अनगिनत रोज़ी देता रहता है[२६२]। (२१२) ● व. ला जिम

२३८ (दोनों जहानों में। और यह गुमराह क़ौमों की भाँति वंचित रहेंगे।)

२३९ (और हिसाब का दिन स्वयं हर पल निकट आता जा रहा है, पस उससे लापरवाही करना हरगिज़ बुद्धि और समझ के अनुसार नहीं है। 'सरीउ़लहिसाबि' उस जैसे सर्वशक्तिमान् के लिए बन्दों को उनके कर्मों पर बदला या, उनका हिसाब करते देर ही कितनी लग सकती है? जाहिली क़ौमों ने इस विशेष गुण में भी अपने देवताओं और देवियों के विषय में बड़ी ठोकरें खायी हैं।

२४० यानी अय्यामे-तशरीक़ में यानी मिना में ठहरने के दौरान। मिना, मक्का मुअज़्ज़मा से उत्तर-पश्चिम में ४ मील के फ़ासिले पर है। पहले कभी केवल मैदान था। अब बहुत से पक्की और आलीशान इमारतें बन गयी हैं। साल भर तो खाली पड़ी रहती हैं। हज के मौसम में ख़ूब आबाद हो जाती हैं। हैसियतदार हाजी उनको बड़े-बड़े किराये देकर ले लेते हैं। कुछ सरकारी इमारतें भी हैं। यहाँ उस ज़माने में शानदार और रौनक़दार बाज़ार लगता है। दुनिया-जहान की चीज़ें बिकने आ जाती हैं। 'तश्रीक़' का अर्थ है क़ुर्बानी सुखाना। अय्यामे-तश्रीक़ १०, ११, १२ ज़िल्हिज्जः हैं। हाजियों के क़ाफ़िले अरफ़ात तथा मुज़्दलफ़ा से वापसी में आकर यहाँ सवेरे पहुँच जाते हैं और १२ की शाम तक तो हर दशा में यहाँ पड़ाव रहता है। हज के सम्बन्ध में बहुत से 'वाजिबात', सुन्नतें और कई मुस्तहबात यहीं पूरे होते हैं; जैसे— क़ुर्बानी करना, सर के बाल मुँड़ाना, शैतानों को कंकड़ियाँ मारना और अहराम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उतार देना। **'वज़्कुरुल्लाह'** इधर हज का बयान आया उधर अल्लाह के ज़िक्र पर फिर बल दिया गया। तक्बीर बार-बार दोहराना मिना के पड़ाव की विशेषता है। **'अय्यामिम्-मअ्दूदातिन्'** इस पर सहाबा तथा ताबेईन सब एकमत हैं, इसका अर्थ तश्रीक़ का ज़माना है।

२४१ यानी मिना से मक्का की ओर रवानगी के लिए दोनों सूरतें बिल्कुल जाइज़ हैं। अब यदि कोई व्यक्ति १० के बाद केवल दो दिन ठहरकर १२ की शाम को मक्का चला आये तो भी ठीक है और जिसका जी चाहे १३ तक वहीं ठहरा रहे। वह भी ठीक है। इमाम शाफ़िई के यहाँ अगर १२ को वापस होता है तो सूर्यास्त के पूर्व 'रमी जमरात' कर ले (कंकड़ियाँ फेंक ले)। इमाम अबू हनीफ़ा का कहना है कि अगर १३ तक ठहरना है, तो सूर्योदय से पूर्व ही 'रमी जमरात' कर ले। **'फ़ ला अिस्म अलैह'** दोनों सूरतों में गुनाह न होने की बात कही गयी है, गोया दोनों सूरतें जाइज़ हैं, ऐसा नहीं है कि दोनों में कोई ज़्यादा अच्छी है या कमतर दर्जे की है, हनफ़ी फ़क़ीहों का विचार है कि १३ का ठहरना अच्छा है।

२४२ यानी इन सभी आदेशों का लाभ उन्हीं को होगा, जो अल्लाह से डरते रहते हैं। अल्लाह के तक़्वा की इस प्रकार ज़ोरदार ताकीद निरर्थक नहीं है, मोमिन के दिल पर तक़्वा की अहमीयत ज़माने के लिए है। वह मोमिन ही क्या, जो मुत्तक़ी न हो।

२४३ (और उसी के सामने सारे कर्मों का उत्तर देना होगा।) यह याददेहानी आमाल की सुरक्षा करने में अत्यन्त प्रभावकारी है। सारा खेल इसी चीज़ को हर समय सामने रखने का तो है।

२४४ (उसकी बातूनी हरकतों के कारण और उसके इस दावे के कारण कि वह बड़ा इस्लाम-प्रेमी है!) ऊपर दो प्रकार के मनुष्यों का ज़िक्र था। एक उन लोगों का जो आख़िरत के क़ाइल हैं और दूसरे उन लोगों का जो इसके इन्कारी हैं। अब मुनाफ़िक़ों का वर्णन होता है जो ज़ाहिर यह करते हैं कि वह इस्लाम ले आये हैं, परन्तु हक़ीक़त यह नहीं है। **'व मिनन्नासि'** आवश्यक नहीं है कि एक ही व्यक्ति माना गया हो। एक भी हो सकता है और बहुत से भी हो सकते हैं। **'फ़िल्हयातिद्दुनया'** 'फ़ी' उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए है अर्थात् बातचीत से उसका उद्देश्य 'दुनिया की प्राप्ति' होता है, 'आख़िरत की माँग' नहीं। 'फ़ी' 'विषय में' या 'बारे में' के अर्थ में भी हो सकता है, इस दशा में अर्थ होगा कि "दुनियावी मामलों के सम्बन्ध में"। इस आयत के उतरने के सम्बन्ध में आया है कि 'सक़ीफ़ क़बीले' का एक शख़्स अख़्नस बिन शुरीक़ नामक था, जो सुन्दर और सुन्दर भाषण देनेवाला था, वह जब रसूल (स०) की महफ़िल में आता तो अपने इस्लाम के विषय में बड़े लम्बे-चौड़े दावे करता था। बात-बात पर ख़ुदा को गवाह करता था, लेकिन जब महफ़िल से उठकर चला जाता तो नाना प्रकार की शरारतों में लग जाता। परन्तु ऐसी रिवायतों का यह अर्थ नहीं होता कि आयत केवल उसी व्यक्ति तक सीमित है, बल्कि जहाँ कहीं भी यह दशा पायी जाये वहाँ वह आयत चस्पाँ (चरितार्थ) होगी।

२४५ (अल्लाह के दीन का, अल्लाह के रसूल का) **'युश्हिदुल्लाह'** यानी आपको अल्लाह की क़समें खा-खाकर विश्वास दिलाता है। क़सम का अर्थ भी गवाही में पेश करना होता है। इस बात की बहुत सी दलीलें हैं कि ग़ैब की बातों का पूरा ज्ञान रसूल (स०) को नहीं होता। एक और दलील यह है जो इस आयत से निकलती है। मुनाफ़िक़ के निफ़ाक़ की जानकारी अल्लाह तआला इस आयत द्वारा आपको करा रहा है। अन्यथा आप तो उसकी बातों से प्रसन्न हो रहे थे। यदि आप उसे मुनाफ़िक़ जान गये होते तो ज़ाहिर है उससे बातचीत में आनन्द न लेते।

२४६ (जैसा कि अख़्नस ने किया भी कि क़बीला सक़ीफ़ के खेत जलवा दिये और उनके पशुओं को मरवा डाला।) आयत अपने आदेश तथा अर्थ के लिहाज़ से आम है यानी जो कोई भी ऐसी हरकतें करे, यह उस पर सही सिद्ध होगी। **'व अिज़ा तवल्ला'** यानी जब रसूल (स०) की महफ़िल से उठकर चला गया। **'तवल्ला'** का दूसरा अर्थ है 'हाकिम बन गया', 'हुकूमत पा गया' यानी जब वह मुल्क में हाकिम हो जाता है। **'सआ'** के मानी हैं 'कार्यरत हो जाना', 'दौड़-धूप करना'। **'फ़िल्अर्ज़ि'** आम तौर पर इसका अर्थ है 'मुनाफ़िक़ीन की भारी कोशिश बरबाद करने की'। **'अल्अर्ज़'** की 'अल्' अर्ज़-मदीना के मानी में भी आ सकता है। **'अल्हर्स वन्नस्लु'** खेतों में उसने आग लगा दी और पशुओं को हलाल कर दिया। **'अन्नस्ल'** से हर प्रकार के पशु मुराद लिये गये हैं। **'अल्हर्सु'** अज़हरी लुग़वी का कहना है कि **'हर्सु'** का यहाँ अर्थ है स्त्रियाँ तथा **'नस्ल'** से मुराद है मानव-सन्तान और जाफ़र सादिक़ (रज़ि०) का वर्णन है कि **'हर्सु'** से मुराद 'दीन' है और **'नस्ल'** का अर्थ है 'मानव'।

२४७ इस्लाम की शरीअत का तो ठीक यही मिशन है कि दुनिया को न्याय और शान्ति से परिपूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर दे। बदअमनी, अशान्ति और फ़साद तो ख़ुदा के क्रोध की चीज़ें हैं और इस्लामी निर्देशों के विपरीत कर्म करने से ही फैलती हैं। **'अल्फ़सादु'** 'फ़साद' आयत में आम माने में है 'दीनी व दुनियावी हर प्रकार के फ़साद'।

२४८ यानी जब उसको उसका कोई मित्र और बेहतरी चाहनेवाला समझाता है और उसको तक़्वा इख़्तियार करने को कहता है तो वह सम्हलने के स्थान पर और बिगड़ जाता है और अपने ग़लत राह पर चलने में और हिम्मतवर हो जाता है। यह वर्णन इस विषय में हो रहा है कि ऐसे शत्रु और कष्ट पहुँचाने वाले फ़सादी काफ़िर सत्य की मुख़ालिफ़त और मानव-जाति को तक्लीफ़ देने में कितने घमण्डी और किस क़दर निकृष्ट हो जाते हैं। **'अल्अिज़्ज़तु'— 'अिज़्ज़त'** के मानी यहाँ हैं स्वयं को बड़ा समझना और जाहिली सम्मान।

२४९ अब यहाँ मुकम्मल और पूर्ण मोमिन का वर्णन है।

२५० **'अिबाद'** का शब्द आम है, परन्तु सन्दर्भ यहाँ उन लोगों का है जो ख़ुदा की निगाह में पसन्दीदा हैं।

२५१ आदेश विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इस्लाम केवल कुछ अक़ीदों या चन्द इबादतों या कुछ नियमों का नाम नहीं है, वह तो एक परिपूर्ण और सार्थक जीवन-व्यवस्था है। वह एक मुकम्मल और सुव्यवस्थित जीवन-विधान है। मानवता के एक-एक संभाग, हर-हर कोण पर हावी और उसके हर खण्ड उसके सम से उसके दूसरे अंश से निहायत दर्जा निकट सम्बन्धित और जुड़े हुए हैं। यह नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति तौहीद इस्लाम से ले ले, परन्तु इबादत के लिए मस्जिद, मन्दिर, कलीसा सबको यकसाँ जाने या रिसालत पर तो ईमान ले आये लेकिन आर्थिक व्यवस्था के नियम कार्ल मार्क्स से और नैतिकता के क़ायदे गौतम बुद्ध से लेने जाये, अर्थ, नैतिकता, सामूहिकता तथा समाज के नियम इस्लाम के सब अपने हैं। किसी अन्य फ़लसफ़े, किसी अन्य धर्म के दृष्टिकोण और नियमों का पाबन्द उसमें नहीं लग सकता, निभ नहीं सकता। आयत का हुक्म आम है, लेकिन इसके उतरने की रिवायतों में पाया जाता है कि सम्बोधन विशेष रूप से नये मुसलमान यहूदियों से था। यह इस्लाम लाने के बाद भी चाहते हैं कि कुछ न कुछ रिआयत अपने पुराने धर्म की करते रहें। इस प्रकार इस्लाम की एक स्थायी शाखा यहूदीयाना इस्लाम की स्थापित कर लें। जिस प्रकार बाद को गुमराह फ़िरक़ों के प्रभाव से मोतज़ली इस्लाम, शियई इस्लाम, नेचरी इस्लाम, क़ादियानी इस्लाम इत्यादि बहुत से इस्लाम क़ायम होकर रहे। **'अुद्ख़ुलू'** स्वयं यही सीग़ा आदेश और आवश्यक होने के अर्थ दे रहा है, फिर इसके भूतकाल **'काफ़्फ़ः'** ने उसे बहुत बलशाली बना दिया है और इसकी इबारत से अन्दाज़ा हो गया कि ज़ाहिरी, अन्दरूनी, व्यक्तिक, सामूहिक, विश्वसनीय तथा इबादती सभी मामलों में इस्लाम का ही रंग चढ़ा रहे। **'अस्सिल्मि'**, 'सिल्म' के मानी हैं शान्ति और सुलह और यह शब्द युद्ध (हर्ब) के मुक़ाबिल आता है। परन्तु यहाँ इसका अर्थ है दीनें-इस्लाम। कोशवालों ने भी इसे स्वीकार किया है और सहाबियों तथा ताबेईन ने भी इसे माना है।

२५२ यह इस प्रकार कि अपने को कहलाते रहो 'मुसलमान', परन्तु रस्में अपनाये रहो अजम के मजूसियों की। सभ्यता ले लो हिन्द के मुशरिकों की, फ़ौजदारी क़ानून ले लो फ़िरंगी मुल्हिदों का, मामले कर लो यहूद के अनुसार। यही तो है शैतान के पदचिह्नों पर चलना। यही है कि इस्लाम में ग़ैर-इस्लाम की मिलावट की जाने लगे और उसे एक सुधार का कारनामा समझा जाने लगे। "कामिल-इस्लाम फ़र्ज़ है और इसका कामिल होना तब है कि जो चीज़ इस्लाम में रिआयत के योग्य न हो उसकी रिआयत दीन की हैसियत से न की जाये, और ऐसे मामले को दीन समझना यह एक शैतानी ग़लती है और ज़ाहिरी गुनाहों के अपेक्षा इसके सख़्त होने के कारण अज़ाब की ज़्यादा सम्भावना है।" (मौ० थानवी)।

२५३ (वह तो तुम्हें नाना प्रकार की मिलावटों और नई-नई बातों की राय देता ही रहेगा, सुन्दर से सुन्दर विषयों के नाम देकर।) आयत में कड़ी चेतावनी और तम्बीह है। एक तरफ़ जाहिल और नासमझ तसव्वुफ़ (अध्यात्मवाद) वालों के लिए और दूसरी ओर 'नवीन विचारकों' और 'तज्दीद-पसन्दों' (जो दीन में नई-नई शोधें करना चाहते हैं और उसे नवीनीकरण कहते हैं) के लिए।

२५४ हर सज़ा पर अधिकार-प्राप्त और सज़ा को उचित समय पर ही देनेवाला। **'अल्बय्यिनातु'** का अर्थ खुले हुए अहकाम भी हो सकते हैं, जिनमें कोई बात मुँदी-ढकी न हो, भ्रम न हो; जैसे तौहीद का विश्वास, रिसालत का अक़ीदः, नमाज़ का आदेश, जिहाद का आदेश तथा हर वह चीज भी इसमें दाख़िल है जो दीनें-इस्लाम की सच्चाई या इस्लामी क़ानून की सच्चाई की रौशन दलील का काम दे सके। यह शब्द चाहे जिस अर्थ में लिये जायें बहरहाल उन नौमुस्लिम यहूद तक पहुँच चुके थे और उन्हें कोई कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अब पग-पीछे धरने या लड़खड़ाने की नहीं रही थी। **'ज़लल्तुम्'**— 'ज़ल्लत' का अर्थ है फिसल जाना, जो बेइख़्तियारी में भी होता है। यह शब्द लाकर डरा दिया है कि जान-बूझकर विरोध तो बड़ी चीज़ है, ग़लती या बेखयाली से बहक जाने में भी पकड़ होने का खतरा है। **'अज़ीज़ुन्'** आयत के सन्दर्भ में वह है जो जब और जो कुछ चाहे सज़ा दे सकता है। **'हकीमुन्'** वह है जो हमेशा मुनासिब समय पर ही सज़ा देता है।

२५५ (जिनका काम ही आज्ञापालन होता है) अब फिर संकेत उन्हीं नौमुस्लिम यहूद की ओर है, जिनका ज़िक्र दो आयत पूर्व आ चुका है। यह इस्लाम में अभी प्रविष्ट हुए हैं, परन्तु कुफ़्र तथा यहूदीयत से पूरी तरह निकल नहीं पाये हैं। **'यातियहुमुल्लाहु'····'वल् मला'अिकतु'** अक़ीदे की यह मानी हुई बात है कि ख़ुदा की ज़ात (अस्तित्व) के लिए न स्थान है, न कोई जगह, अतः इस्लामी अक़ीदे के अनुसार अल्लाह तआला के "आने" या "जाने" का कोई अर्थ ही नहीं। इस कारण से तफ़्सीर करनेवालों ने आयत को "मुतशाबिहात" में से माना है और स्पष्ट लिख दिया है कि इस पर सरसरी तौर पर ईमान काफ़ी है। पूरा विवरण मनुष्य की बुद्धि से परे है। मौलाना थानवी फ़र्माते हैं कि— "अल्लाह तआला के लिए 'आना' इत्यादि जहाँ लिखा है, उसकी हक़ीक़त के पीछे पड़ना जाइज़ नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार उसके अस्तित्व के विषय में किसी को एहसास नहीं हो सकता उसी प्रकार उसकी सिफ़तों और उसके कर्मों और क्रिया-कलापों की खोज नहीं की जा सकती। हाँ! अस्तित्व और 'हो जाने' पर सरसरी तौर पर बिना किसी नियत करने के क्रम के ईमान ले आना चाहिए, क्योंकि इससे अधिक पर चिन्तन करना असम्भव की तलाश करना है।" और बहुतों ने आयत में **'यातियहुमुल्लाह'** के बीच अन्य कोई शब्द जैसे 'अम्र' या 'बास' या 'आयात' इत्यादि मानकर अर्थ यह निकाला है कि अल्लाह का हुक्म आ पहुँचे या अज़ाब आ जाये। और एक पार्टी ने मलाअिकः की आमद **'क़ुज़ियल् अम्रु'** के पहलू को दृष्टिगोचर करके इन वाक़िआत को क़ियामत के दिन से सम्बद्ध किया है कि यह इन्कार करनेवाले और इस्लाम के शत्रु सत्य को स्वीकार करने के लिए अब सम्भवतः क़ियामत की ही प्रतीक्षा में हैं। यह सब मज़हब अपनी जगह सही और सत्य हैं, लेकिन इन सबमें सम्मिलित आधार यह है कि आयत का इशारा मुन्किरों या मुनाफ़िक़ों और अहलें-किताब की ओर समझा गया है। परन्तु वार्ता के सन्दर्भ पर दृष्टि डालकर यदि वार्ता का रुख केवल यहूद तक सीमित कर दिया जाये तो बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और ऊपर की तफ़्सीरों पर केवल इतना बढ़ा देना होगा, "यहूद के अक़ीदे के अनुसार", क्योंकि यहूद का मत 'उपमा तथा देह रखने' का था। यह लोग ख़ुदा की देह रखने की बात के माननेवाले थे और ख़ुदा के जल्वे को बादलों से विशेष रूप से सम्बन्धित समझते थे, बल्कि बादलों को अल्लाह तआला की सवारी समझे हुए थे। उनकी पवित्र किताबों में अभी तक यह शिक्षा सुरक्षित है— "वह नूर को वस्त्र की भाँति पहनता है और आसमानों को पर्दे की भाँति फैलाता है। वह अपने ऊपर के कमरों को पानियों में बनाता है और बदलियों को अपना रथ ठहराता है और हवा के कन्धों पर वह सैर करता है।" (ज़बूर—३, १, ४)। "ख़ुदावन्द एक तेज़ चलने वाले बादल पर सवार होकर मिस्र को आवेगा और मिस्र के बुत उसके सामने काँपते होंगे।" (यसइ-याह—१, ६)। "फ़िरिश्ते घर के दाहिने खड़े हुए और भीतरी आँगन बादलों से भर गया, तब ख़ुदावन्द का जलाल (तेज) गरोह से उठ गया और घर के आस्ताने पर आया और घर के बादलों से भर गया और आँगन ख़ुदावन्द के जलाल की चमक से भर गया।" (खरफ़ीएल—४, १०)। अर्थात् यह कि ख़ुदा तआला का बादलों से सवारी का निकटतम सम्बन्ध यहूद के विचारों में रच गया था। यहाँ तक कि इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अन्तिम पूर्ण एडीशन (चौथे संस्करण) में हक़ तआला की जो तस्वीर नीम यहूदी और नीम मसीही के विचारानुसार दी है (जिल्द २, सफ़ा १०२), इसमें मआज़ल्लाह 'ख़ुदा को बदलियों पर सवार' दिखाया है। क़ुर्आन ने आयत में अपनी ओर से कोई बात नहीं कही है, केवल यहूद के विचारों को प्रस्तुत कर दिया है और उसकी ग़लती या शुद्धता से बहस नहीं की है। बताया है कि यह बनी इस्राईल इसी खयाल में पड़े हुए हैं कि ख़ुदावन्द ख़ुदा फ़िरिश्तों के साथ बदलियों पर सवार होकर उनके सामने आयेगा और हर खास मामले का निर्णय करेगा।

२५६ (अन्तिम निर्णय और फ़ैसले के लिए) यहाँ चेतावनी दी गयी है।

२५७ और फिर वह हर आयत का इन्कार भी किस सख़्ती से करते रहे। **'आयतम् बय्यिनः'** यह खुली हुई निशानियाँ किस चीज़ की थीं? अल्लाह की विशेष मेहरबानियों की और बनी इस्राईल की विशेष बड़ाइयों की; जैसे किताब तौरेत और दूसरी आसमानी पुस्तकों का उतरना या उस नस्ल में बराबर कितने ही नबियों का अवतरित होना, इत्यादि। **'सल्'**— शब्द 'सल्' से यह बात निकलती है कि यह वह ऐतिहासिक सच्चाइयाँ हैं कि इस्राईली उनसे इन्कार कर ही नहीं सकते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२५८ [इस बात पर ध्यान न देकर कि उस सज़ा का ज़ुहूर (प्रकट) तुरन्त और इसी दुनिया में हो या देर करके आलमे-आख़िरत हो।] **'निअ़्मतल्लाहि'** नेमत अदना हो तब भी नेमत ही है और हर दशा में क़द्र के योग्य है, न कि ऐसी नेमतें जिनसे बनी इस्राईल को मुद्दतों सम्मानित किया जाता रहा। **'युबद्दिल्'** परिवर्तन के मानी हैं, किसी वस्तु की अस्ल हक़ीक़त को कुछ का कुछ कर देना, उस वस्तु के अन्दर उलट-पलट करना, उसे बिगाड़ देना और अल्लाह की नेमतों के अन्दर परिवर्तन एक तो यह हुआ कि जो चीज़ें हिदायत और फ़ायदा उठाने के लिए थीं, उलटा उन्हीं को गुनाह और कुफ़्र के कारोबार में लगा दिया गया। या फिर यह कि जो कलाम हिदायत का कारण होना था उसी में अदल-बदल और परिवर्तन का क्रम प्रारम्भ कर दिया। तफ़्सीरवालों ने दोनों रूप अपनाये हैं। **'शदीदुल् अ़िक़ाबि-निअ़्मतल्लाहि'**— दीनी तथा दुनियावी हर प्रकार की नेमतों का अर्थ इसमें आ गया और यहाँ हर प्रकार की नेमतों को ख़राब कर डालने पर सख़्त अज़ाब की चेतावनी दी गयी है। अब अगर नेमत दीनी है, जैसे नबियों का ज़ाहिर होना या किताब का उतरना, तो इससे इन्कार पर या पुस्तक के लेखों में अदल-बदल करने से आख़िरत में सख़्त अज़ाब हो सकता है। परन्तु नेमत यदि दुनियावी है, जैसे धन-दौलत, स्वास्थ्य और प्रशासन, तो इसके बेजा प्रयोग पर सज़ा, बीमारी, असफलता, ग़रीबी, बग़ावत, विद्रोह, ग़ुलामी, फूट इत्यादि की शक्ल में मिलती है जो बराबर देखने में आती रही है। **'मिम्बअ़्दि मा जाअत्हु'** का वाक्य बल देने और ताकीद के लिए है यानी बाद इसके कि उस नेमत की पूरी तरह खोज हो चुके, उसको पूरी तरह जान लिया जाये, फिर भी उसकी नाक़द्री की जाये। आयत आज उम्मत के लिए किस क़दर उसकी दशानुसार है और कितनी ध्यान देने योग्य है। अल्लाह की दी हुई हर नेमत के साथ हमारा क्या मामला है? किस नेमत का हम हक़ अदा कर रहे हैं? कौन सी नेमत ऐसी है जिसकी आत्मा हमने बदल नहीं डाली? हमारी नमाज़ें, रोज़े, हज और हमारी इबादतें मग़्ज़ और आत्मा से ख़ाली हैं, केवल उनके ढाँचे बाक़ी रह गये हैं। मेल-जोल, अच्छे व्योहार की दौलत हमने बरबाद कर डाली। जो नतीजा निकला, हमारी आँखों के सामने है। पाकिस्तान, इराक़, इण्डोनेशिया इत्यादि इस्लामी मुल्कों का जो इब्रतनाक हश्र हो रहा है, उन सबकी तह में ख़ुदा की नेमतों की नाक़द्री है। मसीहियों के यहाँ एक अरबी जानने वाले पादरी डॉ० वहेरी अभी वर्तमानकाल में गुज़रे हैं। मुसलमानों से तर्क-वितर्क किया करते थे। अंग्रेज़ी में एक संक्षिप्त तफ़्सीर भी लिखी है। इस आयत के हाशिए पर लिखते हैं— "मुसलमानों ने क़ुर्आन के मतन की जो इतनी रक्षा की है, उसका एक कारण इसी प्रकार की चेतावनी देनेवाली आयतें हैं।" ख़ैर इससे किसी दशा में क़ुर्आन की सुरक्षा की बात तो एक इस्लाम के शत्रु की ज़बान से हाथ आ गयी।

२५९ और दुनिया का साज़ोसामान, धन-दौलत, मकान, बाग़, मोटर, रेडियो, कोठी, फ़र्नीचर सब निरर्थक, मिट जानेवाले होने के बावजूद उन्हें बहुत महत्त्वपूर्ण दिखायी देता है और उनके दिलों के लिए उनमें बड़ा आकर्षण है। जो काफ़िर है वह इसी दुनियावी भौतिक स्वाद, धन-दौलत, भोग-विलास और आराम पर मिटा रहता है। उसी को बड़ी शान की वस्तु जानता है और उसी मापक से सबको आँकता और नापता है। वह बहुत संकुचित दृष्टिकोण रखता है और वह इसी नाममात्र के ऐशोआराम पर सदैव के आराम को बलिदान किये रहता है। आयत का अर्थ यह नहीं है कि काफ़िर इस विषय में विवश है और दुनिया की माया-मोह उसको इतना पराजित किये हुए है कि वह उसको छोड़ने पर शक्तिहीन है —ऐसा कदापि नहीं है। काफ़िर तो वास्तव में वही है जो बिना किसी विवशता के अपने इरादे और अधिकार से सत्य के स्थान पर असत्य की राह अपनाये और दुनिया की सुन्दरता का आँखों में बस जाना यह तो कुफ़्र के कारण ही है और उसी का परिणाम है। अपने इरादे का ग़लत प्रयोग तो वह पहले ही कर चुका, केवल नतीजे के रूप में सृष्टि की मस्लहत ने उसकी कोशिशों को सफल कर दिया।

२६० (और दुनिया के सामानों से वंचित हैं।) काफ़िर इसी ग़लत स्तर के कारण और इसी ग़लत दृष्टि से काम लेकर अपने को बड़ा समझता और ईमान तथा इबादत का अपमान करता रहता है। यह ग़लतनिगाही, ग़लत देखना ही दुनिया की सबसे बड़ी बदनसीबी है। हदीसे-नबवी की यह दुआ इसी फ़साद से बचने के लिए है— **'अल्लाहुम्म अरिनल्हक़्क़, हक़्क़ा व अरिनल्बातिल बातिला'** और मौलाना रूम की यह प्रार्थना भी इसी अवसर के लिए है— "इस सृष्टि में जो वस्तु भी है उसकी हक़ीक़त मुझ पर स्पष्ट कर दे, ठण्डे पानी को आग का रूप न दे और आग के भीतर पानी की भाँति न रख।"

२६१ (कि वह दिन होगा सत्य के खुलने और ज़ाहिर होने का) **'अल्लज़ीनत्तक़ौ'** यानी अल्लाह से डरते रहते हैं या कुफ़्र व शिर्क से बचते रहते हैं। **'फ़ौक़हुम्'** यानी श्रेणी और सम्मान में उनसे हज़ार दर्जा बढ़े हुए होंगे।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २४९ पर)

कानन्नासु अुम्मतंव्वाहिदतन् क़िफ़ फ़ बअसल्लाहुन्नबिय्यीन मुबश्शिरीन व मुन्ज़िरीन, व अन्ज़ल मअहुमुल्किताब बिल्हक़्क़ि लियह्कुम बैनन्नासि फ़ी मख़्तलफ़ू फ़ीहि त व मख़्तलफ़ फ़ीहि अिल्लल्लज़ीन अूतूहु मिम्बअ्दि मा जाअत्हुमुल् - बय्यिनातु बग़्यम् - बैनहुम् ज फ़ हदल्लाहुल्लज़ीन आमनू लिमख़्तलफ़ू फ़ीहि मिनल्हक़्क़ि बि अिज़्निही त

वल्लाहु यह्दी मंय्यशाअु अिला सिरातिम्-मुस्तक़ीमिन् (२१३) अम् हसिब्तुम् अन् तद्ख़ुलुल्-जन्नत व लम्मा यअ्तिकुम् मसलुल्लज़ीन ख़लौ मिन् क़ब्लिकुम् त मस्सत्-हुमुल्बअ्साअु वज़्ज़र्राअु व ज़ुल्ज़िलू हत्ता यक़ूलर्रसूलु वल्लज़ीन आमनू मअहू मता नस्रुल्लाहि त अला अिन्न नस्रल्लाहि क़रीबुन् (२१४) यस्अलूनक माज़ा युन्फ़िक़ून त ५ क़ुल् मा अन्फ़क़्तुम् मिन् ख़ैरिन् फ़ लिल् - वालिदैनि वल्अक़्रबीन वल्यतामा वल्मसाकीनि वब्निस्सबीलि त व मा तफ़्अलू मिन् ख़ैरिन् फ़ अिन्नल्लाह बिही अलीमुन् (२१५) कुतिब अलैकुमुल् - क़िताल व हुव कुर्हुल्लकुम् ज व असा अन् तक्रहू शैअंव्व हुव ख़ैरुल्लकुम् ज व असा अन् तुहिब्बू शैअंव्व

ह. २९ हुव शर्रुल्लकुम् त वल्लाहु यअ्लमु व अन्तुम् ला तअ्लमून (२१६)

१०

आ

६

سیقول ٢ ٢٦ البقرة ٢

وَاللّٰهُ يَرْزُقُ مَنْ يَّشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ۝ كَانَ النَّاسُ اُمَّةً
وَّاحِدَةً ۣ فَبَعَثَ اللّٰهُ النَّبِيّٖنَ مُبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ ۠ وَاَنْزَلَ
مَعَهُمُ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ لِيَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ فِيْمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ ؕ
وَمَا اخْتَلَفَ فِيْهِ اِلَّا الَّذِيْنَ اُوْتُوْهُ مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ
بَغْيًاۢ بَيْنَهُمْ ۚ فَهَدَى اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ مِنَ
الْحَقِّ بِاِذْنِهٖ ؕ وَاللّٰهُ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۝
اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَاْتِكُمْ مَّثَلُ الَّذِيْنَ خَلَوْا
مِنْ قَبْلِكُمْ ؕ مَسَّتْهُمُ الْبَاْسَآءُ وَالضَّرَّآءُ وَزُلْزِلُوْا حَتّٰى يَقُوْلَ
الرَّسُوْلُ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ مَتٰى نَصْرُ اللّٰهِ ؕ اَلَآ اِنَّ نَصْرَ اللّٰهِ
قَرِيْبٌ ۝ يَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ۵ قُلْ مَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ خَيْرٍ
فَلِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ؕ وَ
مَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ۝ كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ
وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَ
عَسٰٓى اَنْ تُحِبُّوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا
تَعْلَمُوْنَ ۝ يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيْهِ ؕ قُلْ قِتَالٌ
فِيْهِ كَبِيْرٌ ؕ وَصَدٌّ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَكُفْرٌۢ بِهٖ وَالْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۗ
وَاِخْرَاجُ اَهْلِهٖ مِنْهُ اَكْبَرُ عِنْدَ اللّٰهِ ۚ وَالْفِتْنَةُ اَكْبَرُ مِنَ الْقَتْلِ ؕ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोग एक ही उम्मत थे[२६३]; फिर अल्लाह ने नबी भेजे शुभ सूचना देनेवाले और डरानेवाले[२६४], और उनके साथ सत्य पुस्तक उतारी[२६५] कि वह लोगों के बीच इस विषय में फ़ैसला करे जिसमें वह मतभेद रखते थे[२६६]। और किसी ने उसमें मतभेद नहीं किया, परन्तु उन्हीं ने, जिन्हें वह मिली थी, आपस की हठ के कारण, बाद उसके कि उन्हें खुली हुई निशानियाँ पहुँच चुकी थीं[२६७]। फिर अल्लाह ने अपनी कृपा से उन्हें, जो ईमानवाले थे, वह सत्य की बात बता दी जिसके विषय में वह मतभेद कर रहे थे[२६८]। और अल्लाह जिसे चाहता है, सीधा मार्ग दरशा देता है[२६९]। (२१३) क्या तुम यह गुमान रखते हो कि जन्नत में दाख़िल हो जाओगे[२७०]? ऐसी दशा में कि (अभी) तुम पर उन लोगों के हालात पेश नहीं आये, जो तुमसे पूर्व गुज़र चुके हैं[२७१], उन्हें तंगी और सख़्ती पेश आई और उन्हें हिला डाला गया[२७२], यहाँ तक कि पयम्बर और जो लोग उनके साथ ईमान लाये थे, बोल उठे[२७३] कि अल्लाह की सहायता आख़िर कब आयेगी[२७४]? सुन रखो, अल्लाह की सहायता अवश्य निकट ही है[२७५]। (२१४) आपसे पूछते हैं, क्या ख़र्च करें[२७६]? आप कह दीजिए कि जो कुछ तुम्हें माल से ख़र्च करना है[२७७], सो वह हक़ है माता-पिता का और सगे सम्बन्धियों का और यतीमों (अनाथों) का और मिस्कीनों (मुहताजों) का और मुसाफ़िरों का[२७८]। और जो भी नेकी करोगे, अल्लाह को उसकी पूरी जानकारी रहती है[२७९]। (२१५) तुम्हारे ऊपर जिहाद (लड़ाई) फ़र्ज़ कर दिया गया है[२८०], यद्यपि वह तुम पर गराँ (कष्टदायी) है[२८१]। लेकिन क्या अजब कि तुम किसी चीज़ को नापसन्द करते हो और वह तुम्हारे हक़ में बेहतर हो, और क्या अजब कि तुम किसी चीज़ को पसन्द करते हो और वह तुम्हारे हक़ में ख़राबी का कारण हो[२८२]। और जानकारी तो अल्लाह ही रखता है और तुम जानकारी नहीं रखते[२८३]। (२१६) ★

★ रु. २६/१० आ ६

---

२६३ (प्रकृति के आरम्भ में) आयत ने एक बड़ी गिरह खोल दी। फ़िरंगी शोधकर्ताओं ने स्वाभाविक रूप में काफ़ी समय तक खोज किया और उनमें से अक्सर यही कहे गये कि मानव का प्रारम्भ का मज़हब शिर्क या कई ख़ुदा का था। आरम्भ में वह एक-एक चीज़ को ख़ुदा समझता था और तौहीद का अक़ीद: तो बहुत ठोकरें खाने तथा बौद्धिक एवं मस्तिष्क की उन्नति के पश्चात् बड़ी लम्बी यात्रा के बाद मानव-जाति को नसीब हुआ है। क़ुर्आन मजीद ने इस ख़ुराफ़ाती दृष्टिकोण को ठुकराकर स्पष्ट रूप से घोषणा कर दिया कि मानव की नस्ल प्रकृति के प्रारम्भ में ही दीनी हैसियत से एक और वाहिद थी, उसमें मज़हबों और धर्मों के कोई झगड़े नहीं थे। मानव मात्र नेचुरल और प्राकृतिक रूप में तौहीद के धर्म पर ही था। 'उम्मतों वाहिदतों' में उस वर्णित अद्वैत का अर्थ दीनी तथा विश्वसनीय अद्वैतवाद ही है यानी ईश्वर का एक मानने का अक़ीद:। शताब्दियों की उलट-फेर, तर्क-वितर्क के पश्चात् अब अन्तिम निर्णय बड़े-बड़े मानवता, समाज-शास्त्र तथा पुरातत्त्वकाल के विशेषज्ञों (सर चार्ल्स मारस्टन, प्रोफ़ेसर लिंगडन, प्रोफ़ेसर शिमडेट इत्यादि) का यही है कि इन्सान का प्रथम धर्म तौहीद था (अद्वैतवाद था)।

२६४ (भटके हुओं को) और यह डराना भी गुमराहों को वापस लाने और उन्हें मार्ग-दर्शन हेतु ही था। **'फ़बअ़स'** में 'फ़' से मुराद है कि एक मुद्दत के बाद जब असत्य वाले अपने बनाये हुए विश्वासों और कर्मों से बहुत से फ़िरक़े और धर्म पैदा कर चुके थे। **'मुबश्शिरीन'** शुभ सूचना सुनानेवाले, ईमान वालों को, उन लोगों को जो ख़ुदाई जीवन-विधान के मुक़ाबले में इन्कार और विरोध स्थापित रखें।

२६५ **'अल्किताब'** से कोई नियत और विशेष पुस्तक मुराद नहीं है, बल्कि अल्किताब की क़िस्म के लिए है और किताब से मुराद वह समस्त पुस्तकें हैं जो विभिन्न समयों में विभिन्न पयम्बरों पर उतरी हैं अर्थात् शब्द 'किताब' रूप में एक वचन है, परन्तु अर्थ में बहुवचन है। **'बिल्हक़्क़ि'** सत्य को लेकर या सत्य को ज़ाहिर करने हेतु। तर्कीब में **'बिल्हक़्क़ि'** हाल स्थित हुआ है किताब का।

२६६ (विश्वासों और कर्मों के बारे में) **'लियह्कुम'** ताकि वह निर्णय कर दे उन्हीं उम्बिया (नबियों) या किताबों के माध्यम से। फ़ैसला कौन कर देगा? ज़ाहिर है कि अल्लाह तआ़ला, क्योंकि वही अस्ली फ़ैसला करनेवाला है, अत: **'यह्कुमु'** का सर्वनाम ग़ाइब (अनुपस्थित) का संकेत अल्लाह की ओर है, परन्तु बाज़ ने नबी, बाज़ ने किताब भी मुराद लिया है और यह दोनों भी सही हो सकते हैं।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २४६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २४३ से)

२६२ (उसके नापने का पैमाना आखिरत के इन्कार करनेवालों ने बना रखा है, वही ग़लत है।) अर्थ यह हुआ कि दुनियावी धन-दौलत का सम्बन्ध सृष्टि की मस्लहत से है, सो यह धन-दौलत की इफ़रात (अधिकता), यह रुपये की रेल-पेल, यह बड़ी तिजारती कोठियाँ और बड़े-बड़े साहूकार कदापि सत्य एवं सच्चाई और ख़ुदा के पसन्दीदा होने का मेयार नहीं है, चाहे वह निजी माल-दौलत हो या क़ौमी और सामाजिक, कोई इसमें भूल न पड़े और "क़ौमी बड़ाई" पर घमण्ड न करे, न ही उससे दब जाये।

(फ़ुटनोट सफ़ा २४५ से)

२६७ (अल्लाह की तस्दीक़ की) और इस प्रकार दीन के नियमों के विषय में किसी प्रकार का सन्देह या भ्रम बाक़ी नहीं रहा। **'बग़्यन् बैनहुम्'** यहाँ यह स्पष्ट कर दिया कि विरोध, मतभेद या झगड़े का कारण आपस की ज़िद और शत्रुता हुई, न यह बात कि अस्ली अल्लाह के सन्देश में किसी प्रकार का एच-पेच था और न यह कि इज्तिहादी मस्लों में इज्तिहाद का मतभेद हुआ। (इज्तिहाद का अर्थ है धार्मिक भ्रान्तियों के मामलों में इल्म, ज्ञान और तर्क तथा बुद्धि से निर्णय लेने को)। **'अल्लज़ीन ऊतूहु'** यानी वही लोग, जिन्हें नबियों के माध्यम से किताब मिली थी। मुराद हैं आलिम, शेख़ और पथ-प्रदर्शक, जो क़ौम को गुमराही और ग़लत मार्ग पर डालते हैं। आम लोग केवल उनके पीछे हो लेते हैं।

२६८ **'लिमख़्तलफ़ू फ़ीहि'** में अल्लाहवालों के मतभेद का ज़िक्र असत्यवालों से है। अल्लाहवालों और सत्यवालों को मतभेद और निज़ाअ़ कभी हानिकारक नहीं हुआ। **'अल्लज़ीन आमनू'** पर प्रश्न हुआ है कि जो इसके मिस्दाक़ (जिन पर यह बात सत्य हो जाये), वह तो स्वयं ही हिदायत पाये हुए थे। फिर अब उन्हें हिदायत कैसी? जवाब यह है कि ईमान से यहाँ मुराद ईमान का इरादा और ईमान की क्षमता है, अर्थात् जो ईमान के माँगनेवाले थे उन्हें हिदायत प्राप्त हो गयी।

२६९ [और उसकी हिदायत की मशीयत (सही मार्ग दिखाने की मस्लहत) हमेशा उन लोगों से सम्बद्ध हो जाती है जो उसकी ओर बढ़ना चाहते हैं और हठधर्मी तथा पक्षपात को त्यागकर सत्य की तलाश में लीन हो जाते हैं।] इसमें मोमिनों की तसल्ली और उनके सन्तोष का पहलू भी निकल रहा है कि विरोधियों के सतत प्रयासों और भारी प्रोपेगण्डों से ख़ौफ़ न करें। अपनी तलब यदि सच्ची है तो कोई मक्र और तदबीर कोई शक्ति या वैभव उन्हें हानि नहीं पहुँचा सकती।

२७० (ऐ मोमिनों के समूह! बिना परिश्रम और बिना परीक्षा) यह सम्बोधन सीधा रिसालत के समय के मोमिनों से है।

२७१ यानी उन पुराने मोमिनों, उन पुराने नबियों की उम्मतों की जैसी कठिनाइयाँ और परीक्षाएँ। मसल के मानी असाधारण परिस्थितियाँ एवं अनुभव के होते हैं, यहाँ इसका अर्थ है उन पिछली उम्मतों के सब्र, बरदाश्त, सहनशीलता और उन पर होनेवाली सख्तियाँ। आयत से यह मुराद नहीं है कि कोई मोमिन केवल ईमान की बरकत और अल्लाह की मेहरबानी से जन्नत में प्रवेश पा ही न सकेगा, जब तक कि कड़ी परीक्षाओं की मंज़िल से न गुज़र ले। बल्कि यह मुराद है कि सहाबा जिन उच्च दर्जों तक पहुँचने के इच्छुक थे। मौलाना थानवी के अनुसार हर मोमिन को यही इच्छा रखनी चाहिए। उन उच्च कोटि के दर्जों तक पहुँचने के लिए आम शर्त उन मंज़िलों से गुज़रने की है। शेष मुजाहदः (तपस्या), इबादत तथा उपासना तो हर मोमिन को अपनी क्षमतानुसार करना ही होता है।

२७२ (कष्ट की ज़्यादती से) **'अल्बासा'अि वज़्ज़र्रा'अि'** यानी विरोधियों के हाथों उन्हें जो मुसीबतें झेलनी पड़ीं। दोनों शब्दों के अर्थ निकट हैं। अन्तर यह किया गया है कि **'बासा'अि'** में राहत और आराम के क़तई मौजूद न होने का पहलू अधिक दर्शाया गया है और **'ज़र्रा'अि'** में वास्तविक कष्ट और पीड़ा का। इन परीक्षाओं का वर्णन पुरानी धार्मिक पुस्तकों में अधिक पाया जाता है— "सत्यवादी पर बहुत सी मुसीबतें होती हैं।" (ज़बूर १९ : ३४)। "चाँदी के लिए घरिया है और सोने के लिए भट्ठी, पर ख़ुदावन्द दिलों को तपाता है।" (अमसाल ३ : १७)। "आवश्यक है कि हम बहुत सी मुसीबतें सहकर ख़ुदा की बादशाहत में प्रवेश करें।" (आमाल १४ : २२)।

२७३ (दुःख और दर्द से बेचैन होकर) **'अर्रसूलु'** से मुराद हर समय के पैग़म्बर हैं।

२७४ **'नस्रुल्लाहि'** अल्लाह की वह मदद जिसका वादा किया हुआ है। नबियों और मोमिनों का यह कहना घबराहट और परेशानी की दशा में दुआ एवं प्रार्थनास्वरूप था, एतराज या शिकायत के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारण नहीं। वादा अल्लाह की सहायता का था, परन्तु यह निश्चित तो नहीं था कि किस समय होगी ! जब कठिनाइयों और परेशानियों का हुजूम होता (भीड़ होती), तो अल्लाह को ग़ैबी (अनदेखी) सहायता की आवश्यकता महसूस करते और अपने इरादे और सोच तथा मनन से बड़ी विनम्रता से पुकारते कि हज़रत यही तो समय ग़ैबी सहायता और मदद का है। (थानवी)। आयत में संकेत है कि उम्मतें मुहम्मदी को भी हर प्रकार की बलाएँ पेश आयेंगी, जैसी कि अगली उम्मतों को पेश आ चुकी हैं।

२७५ यह उत्तर उन उम्मतों को उनकी प्रार्थना का मिला करता। इसमें मोमिनों को हमेशा के लिए शुभ सूचना एवं तसल्ली मिल गयी और इस हक़ीक़त का वर्णन आ गया कि सहायता अपने समय पर अवश्य आकर रहेगी। धार्मिक कष्टों से निराश न होना चाहिए। सूफ़ियों ने इस आयत से यह शिक्षा भी निकाली है कि विरोधी परिस्थितियों से मानवता की कमज़ोरियों के कारण घबराहट तो बड़े-बड़े ख़ुदा-रसीदः (पहुँचे हुए) लोगों तक को होती है, परन्तु साथ ही उनके अडिग रहने और ख़ुदा के हुक्मों का पालन करते रहने की बरकत से ईश्वरीय सहायता होकर रहती है।

२७६ (और किन अवसरों पर) प्रश्न मुसलमानों की ओर से था और इस विषय में था कि अपनी हिम्मत के अनुसार और क्षमतानुसार एवं प्रसन्नतापूर्वक कब ख़र्च करें? शेष जो ख़र्च कि फ़र्ज़ हो चुका था यानी ज़कात, उसका हिसाब तो खुला हुआ था। प्रश्न उसके विषय में नहीं था। क़ुर्आन, जो मुकम्मल जीवन-विधान है, उसमें आर्थिक समस्याओं को भुलाया नहीं गया है। अपनी जगह पर वह इसके अन्दर पूरा महत्त्व रखते हैं।

२७७ **'ख़ैर'** का एक अर्थ अलावा नेकी और भलाई के माल भी है, ख़ासकर नेक कमाई का माल। और यहाँ तो खुला हुआ बयान 'इन्फ़ाक़' (ख़र्च करना) का है अतः यही मुराद है।

२७८ नेकी के साथ ख़र्च करने की यह सूची कैसी परिपूर्ण और इसका क्रम किस क़दर हकीमाना है। सबसे बढ़ा हुआ और अहमतरीन हक़ इन्सान के माँ-बाप का है। जितनी भी माली सेवा हो सके उनकी की जाये फिर दूसरे अज़ीज़ों का नम्बर है और इसमें भाई-बहिन, चचा, फूफी इत्यादि सब आ गये। शरीअत ने अपनी व्यवस्था में परिवार को जो केन्द्रीय महत्ता दी है उस पर यह एक और दलील है। फिर उम्मत के वह बच्चे हैं, जो बाप के साये से वञ्चित हो गये हैं। फिर अल्लाह के वह बन्दे हैं, जिन पर किसी प्राकृतिक विवशता के कारण या किसी बाह्य कारण से अर्थ के आम माध्यम बन्द हो गये हैं और अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए बाहरी सहायता के मोहताज हैं और अन्त में वह आम मनुष्य आते हैं जो अपने वतन से अलग होने के कारण अस्थायी रूप से विवशता या ग़रीबी में पड़ गये हैं। निकट और दूर के हक़दार और मज़हबी रिश्ता रखनेवाले सब के सब अपनी-अपनी जगह पर किस सुन्दरता से एक फ़्रेम में 'फ़िट' हो गये। शरीअत का उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि पड़ोस में हमारा भाई भूख से तड़प रहा हो और हम उसकी ओर से निश्चिन्त होकर चन्दा लिखवा रहे हों चीन या जापान के किसी रिलीफ़-फ़ण्ड (सहायता-कोष) में।

२७९ (और इसलिए उसका फल भी पूरा मिलकर रहेगा।) **'ख़ैर'** आम है बदनी, माली, बड़ी, छोटी हर प्रकार और दर्जे की नेकी को शामिल है। **'ख़ैर'** का सम्बन्ध यहाँ 'इन्फ़ाक़' के साथ नहीं 'क्रिया' के साथ है और इस अर्थ में वह आम है। आयत में चेतावनी है कि गुमराह क़ौमों ने अपनी देवियों, देवताओं से सम्बद्ध जो अक़ीदे गढ़ लिये हैं उन्हीं पर आधारित करके यह न समझ लेना चाहिए कि इस्लाम के ख़ुदा की भी जानकारी अधूरी या सीमित है और हर-हर अंश और पोशीदा भाग पर घेरा नहीं किये हुए है।

२८० (जब उसकी शर्तों की खोज हो जाये, ऐ मुसलमानो!) क़िताल (युद्ध) या जिहाद के आदाब, शर्तें और नियमों में से कुछ पहले इसी पारे में बयान हो चुके हैं। कुछ भविष्य में मौक़े-मौक़े से बयान होते रहेंगे। जो जंग में शरीक नहीं होता उसको क़त्ल न करने पर इस्लाम ने जो बल दिया है उसको याद रखकर ज़रा नीचे का बयान अवलोकित हो ऐसी पुस्तक से, जो यहूद तथा नसारा दोनों के निकट पवित्र है— "सो अब तू जा और अमालीक़ को मार और जो कुछ उसका है यकदम समाप्त कर दे और उन पर दया न कर बल्कि मर्द-औरत, नन्हें बच्चे, दूध पीनेवाले बच्चों और बैल, भेड़, ऊँट और गदहों तक को क़त्ल कर।" (इस्मोईल—२ : १५)।

२८१ जैसा कि बिल्कुल स्वाभाविक और प्राकृतिक है। **"असा"** हर स्थान पर सन्देह ही के लिए नहीं आता, यहाँ सम्भव है विश्वास दिलाने हेतु आया हो। अपनी जान किसको प्यारी नहीं होती और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनी जान खतरे में डालते हुए हर जानदार प्राकृतिक रूप में हिचकिचाता है। फिर मक्का के ग़रीब मुहाजिर, जो अभी वतन छोड़कर मदीना में पनाह लेने पर मजबूर हुए थे, वह तो धन-दौलत, सामान, संख्या और भौतिक दृष्टि से किसी माने में अपने शत्रुओं के मुक़ाबले के योग्य नहीं थे। इन दिल-टूटे हुए, कमज़ोर भुजाओं के लोगों को जंग और क़िताल का आदेश पाकर अगर प्राकृतिक रूप से गराँनी और कष्ट का अनुभव हुआ हो तो यह उनकी निःस्वार्थता और ईमानी बल के ज़रा भी विपरीत नहीं। **'हुव कुरहुल्लकुम्'** आयत पूरा खण्डन कर रही है उन बेग़ैरत शोधकर्ताओं का, जिन्होंने यह लिख डाला कि मुसलमान माले-ग़नीमत (युद्ध के बाद लूट का सामान) के लालच में जंग और मार-काट के अभिलाषी थे। **'कुरहुन्'** शब्द मस्दर है अर्थ क्रम का दे रहा है; जैसे— **'ख़ुब्ज़ुन्'** से **'मख़्बूज़ुन्'** मुराद हो जाती है और **'नुक़्स'** से **'मन्क़ूस'**।

२८२ संख्या में कम और बल तथा शक्ति में कमज़ोर और निर्बल जिन मुसलमानों को जिहाद और जंग पर आमादः करने के लिए क़ुर्आन मजीद को इस विवरण और व्यवस्था से काम लेने की आवश्यकता हो रही है उनके विषय में इस्लाम के प्रसिद्ध "मेहरबान" और मसीही दुनिया के नामी इतिहासकार और जीवनी-लेखक प्रोफ़ेसर मार्गोलियस का यह क़ौल किस क़दर बददियानती (बेईमानी) और कठोर असत्य और झूठ से परिपूर्ण है कि (नऊज़ु बिल्लाह) "मुहम्मद (स०) ने अपने शरारत-पसन्द अनुयायियों को व्यस्त रखने हेतु जिहाद की लूट में लगा दिया।"

२८३ यानी अल्लाह की ही जानकारी और उसी का ज्ञान सम्पूर्ण है और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष हर पहलू को घेरे हुए है, अतः उसके आदेश सदैव ज्ञान और हिकमत पर ही आधारित होते हैं। मानव-ज्ञान कभी सम्पूर्ण, मुकम्मल एवं पूरा नहीं होता, अतः मनुष्य की बेहतरी और भलाई इसी में है कि वह खुदाई आदेशों का पालन बिना किसी प्रकार की आपत्ति उठाये करता रहे।

२८४ ऊपर गुज़र चुका है कि चाँद के वर्षों के चार महीने, मुहर्रम, रजब, ज़ीक़ादः और ज़िल्हिज्जः अरब जाहिलीयत में भी पवित्र और सम्मानित थे। क़त्ल और लूट-मार करना तो उनका पेशा ही था, परन्तु इन महीनों में हर प्रकार की लड़ाइयाँ बन्द रहती थीं। **'अश्शहरुल हराम'** का अर्थ यहाँ रजब का महीना है। ऐसा हुआ कि सन् २, हिजरी यानी मदीने से हिज्रत करने के लगभग १७ महीने के बाद एक यात्रा में बाज़ सहाबियों का मुश्रिकों से मुक़ाबला हो गया और एक मुश्रिक उस मुक़ाबले में जान से मारा गया। सहाबियों की याद में इस घटना की तारीख ३०, जमादियुस्सानी थी। बाद में मालूम हुआ (जैसा कि आज भी चाँद के महीनों में बार-बार होता रहता है) कि चाँद २९ को हो गया था और वह तारीख यकुम (पहली तारीख) रजब की थी। मुश्रिकों ने ग़लती और भूल की इस राई को पहाड़ बना दिया और ताने देने शुरू कर दिये कि मुसलमानों को अब सम्मानित महीनों का सम्मान का भी लिहाज़ नहीं रहा।

२८५ (जबकि जान-बूझकर यानी सम्मानित महीने का ज्ञान रखने के बावजूद हो और जुर्म मुसलमानों द्वारा हुआ ही नहीं।) तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों में इस बात पर काफ़ी बहस हुई कि सम्मान वाले महीनों में लड़ाई जाइज़ है अथवा नहीं। शोधकर्ताओं का सर्वसम्मति से यह निर्णय है कि यदि काफ़िर इस महीने में युद्ध आरम्भ कर दें तो मुसलमानों को अपनी जान की सुरक्षा में और अपने बचाव हेतु जवाबी लड़ाई तो हर सूरत में जाइज़ है। बात इस विषय पर हुई कि मुसलमानों को अपनी ओर से भी इसकी शुरूआत करना जाइज़ है या नहीं? सो इमाम अबू हनीफ़ा, इमाम मालिक, इमाम शाफ़िई और इमाम अहमद और फ़क़ीहों का बहुमत का फ़ैसला है कि क़ुर्आन की ही दूसरी आयतों से यह सम्मान का हुक्म समाप्त कर दिया गया और अब जिहाद इन महीनों में भी आरम्भ किया जा सकता है। परन्तु अत्तार ताबेई और बाज़ बड़ों का विचार है कि सम्मान वाले महीनों के सम्मान का आदेश स्थायी और सदैव के लिए है और इन महीनों में जंग करने की मनाही है। बल्कि अता तो अपने फ़त्वे पर शपथ ग्रहण करने को तैयार थे।

२८६ (सो वह ग़लती मुसलमान से यदि हो भी गयी होती तो भी ऐसे कठोर अपराधों के अपराधी को क्या हक़ है कि एक इत्तिफ़ाक़ी घटना पर आपत्ति करें और आपत्ति, एतराज़ खड़े करें।) अल्लाह की राह से मुराद है इस्लाम। उससे रोकना यानी इस्लाम स्वीकार करनेवालों को रोकना और उनकी राह में रुकावटें खड़ी करना और उन पर अत्याचार करना। **'कुफ़्रुम् बिही'** यानी अल्लाह से कुफ़्र इख्तियार करना। अल्लाह के दीन और शरीअत को स्वीकार न करना और दूसरों को अल्लाह का शरीकदार मानना तो बिल्कुल ही कुफ़्र है और यह स्पष्ट है। **'वल्मस्जिदिल-हरामि'** काबे की मस्जिद विशेष रूप से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अहलें तौहीद की इबादत का स्थान और उनका केन्द्रीय स्थान है। अल्लाह ही की पूजा करनेवालों के लिए उसका हमेशा खुला रहना इस्लामी हुकूमत का प्रथम कर्तव्य है। **'अिख़्राजु अह्लिही मिन्हु'** दोनों सर्वनाम **'मस्जिदिल्-हरामि'** की ओर हैं यानी रसूल और मोमिनों को तंग करके और उन्हें परेशान करके 'मस्जिदुल् हराम' से निकाल देना। वहाँ उनका प्रवेश रोक देना। उनको अहलें इस कारण से कहा गया है, क्योंकि यही लोग तो इस सम्मान वाली मस्जिद का हक़ अदा करनेवाले थे। यानी काफ़िरों की आपत्ति के जवाब में दो बातें आयीं। एक यह कि जान-बूझकर मुसलमानों से वह गुनाह यानी सम्मान के महीने में क़त्ल का हुआ ही नहीं। दूसरी बात यह कि मान लिया जाये कि ऐसा हुआ भी तो तुम्हारे संगीन और शदीद जुर्मों और अपराधों से उसका क्या मुक़ाबला?

२८७ (अपने फ़सादों और अपनी कठोरता के एतबार से) **'अल्फ़ितनतु'** से मुराद वह कड़ी रुकावटें और कष्ट हैं जो दुश्मनों ने सत्य धर्म की राह में पैदा कर रखे थे— वह धर्म जिसका उद्देश्य ही दुनिया को शान्ति का मार्ग दर्शाना था और तमाम कष्टों एवं मुसीबतों से मुक्ति दिलाना था। **'फ़ितनः'** का अर्थ यहाँ कुफ़्र का भी लिया है, परन्तु वह ज़्यादा उचित नहीं। इमाम राज़ी के अनुसार सच्चा कथन वही है जो ऊपर आ चुका है। **'अक्बरु'** की तफ़्सीर इब्ने अब्बास सहाबी तथा ताबेईन के अनुसार **'अशद्द'** से आयी है। **'मिनल क़त्लि'** यानी क़त्ल की उस विशेष घटना से। उद्देश्य इस कहने का यह है कि सत्य धर्म के मार्ग में जो लोग रुकावट पैदा करते हैं और लोगों को नाना प्रकार के षड्यन्त्रों तथा तदबीरों से इस ओर आने से रोकते हैं, वह वास्तव में दुनिया को शान्ति एवं न्याय तथा आफ़ियत (सुख) से वंचित कर देना चाहते हैं और इसलिए वह मानव-जाति और उसकी सन्तान के अपराधी हैं। इस्लामी जिहाद का अस्ल उद्देश्य दुनिया से हर प्रकार की ख़ुदग़र्ज़ी, धोखा, फ़रेब, अत्याचार, अशान्ति और फ़साद को दूर करना है। जो मूर्ख इस लड़ाई को और दुनिया की आम हुकूमतों की लड़ाई को और क़त्लोक़िताल को यकसाँ समझते हैं, वह जर्राह के निश्तर और डाकू के खंजर को एक ही स्तर पर रख रहे हैं।

२८८ यह वर्णन इस बात का है कि अरब के मुश्रिकों को इस्लाम से किस हद तक नफ़रत और बेज़ारी थी। **'ला यज़ालून'** में इशारा इन्हीं सत्य के दुश्मनों की ओर है। एक अंग्रेज़ अरबी के उस्ताद प्रोफ़ेसर पामर हुए हैं, जो क़ुर्आन मजीद के अनुवादक और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर हैं, इस अवसर पर व्यंग्य का निश्तर चलाते हैं— "अब इस्लाम ने काफ़िरों पर चारों ओर से धावा बोल दिया।" धावा चारों ओर से वास्तव में बोल दिया गया, परन्तु इस झूठ में सत्य केवल इतना है कि यह धावा इस्लाम का न था, इस्लाम पर था। **'हत्ताकि'** का अर्थ यहाँ 'ताकि' है और उद्देश्य एवं ग़रज को स्पष्ट करने हेतु आया है। **'अिनिस्तताअ़'** में संकेत यह है कि मुसलमानों का अपने दीन से हटना और काफ़िरों का उन्हें अपनी कोशिशों से हटा लेना कुछ सरल नहीं था।

२८९ आमाल के बरबाद होने की बात आख़िरत में यूँ ज़ाहिर होगी कि यह अभागे दीन से फिर जानेवाले मुर्तद (विधर्मी) अपने को हर इबादत के बदले और हर सवाब से वञ्चित पायेंगे और दुनिया में इसका इज़्हार यूँ होगा कि न मुसलमान बीवी से उसका निकाह क़ायम रह सकता है, न मुसलमान के तर्के में उसको हिस्सा मिल सकता है, बल्कि हुकूमत यदि इस्लामी हो तो उस बाग़ी, ग़द्दार और वादाख़िलाफ़ को जीवित रहने का हक़ नहीं रहता। शरीअतें यहूद में मुर्तद होना ही नहीं, यदि किसी को मुर्तद बनाने का प्रयास करे या कोई मुर्तद रहने की कोशिश करे तो भी उसको पत्थरों से मारकर क़त्ल करने की सज़ा दी जाती है। तौरेत में है— "अगर तेरा भाई, जो तेरी माता का पुत्र है या तेरा ही बेटा या बेटी है या तेरी साथी धर्मपत्नी या तेरा मित्र जो तुझे जान के बराबर प्यारा है, तुझे छुपाकर फुसलावे और कहे कि आज ग़ैरमाबूदों की पूजा करें, जिनसे तू और तेरे बाप-दादे परिचित नहीं थे, तो तू उसके विचार का न बन जाना और उसकी बात न सुनना। तू उस पर दया की दृष्टि न रखना, तू उसकी रिआयत न करना, तू उसे न छुपाना, बल्कि उसे अवश्य क़त्ल करना। उसके क़त्ल पर पहले तेरा हाथ बढ़े और बाद इसके क़ौम के हाथ और तू उसे संगसार करना (पत्थर मारकर मार डालना), ताकि वह मर जाये।" (इस्तिस्ना १३, ६, १०)। और नसरानियों के यहाँ भी— "जान-बूझकर दीन से फिरना क्षमा न होनेवाला पाप है, क़त्ल और ज़िनाकारी (बलात्कार) की श्रेणी का।" (इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़् रेलीजन् ऐण्ड एथिक्स् जिल्द ६, पृष्ठ ६२३)। अत: जब इंगलैण्ड में एक छोटे पादरी ने तेरहवीं शताब्दी में एक यहूदन से शादी के फेर में दीन नसरानीयत को छोड़ दिया था, तो उसे आक्सफ़ोर्ड में १७ अप्रैल, १२३२ को जला दिया गया। (पृष्ठ ६४४)। **'फ़ यमुत् व हुव काफ़िरुन्—'** "उसी कुफ़्र की दशा में ही उसकी मृत्यु हो जाये" यह टुकड़ा बढ़ाकर गोया यह सीख दे दी (देखें फ़ुटनोट सफ़ा २५१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यस्अलूनक अनिश्शह्‌रिल्-हरामि क़ितालिन् फ़ीहि त क़ुल् क़ितालुन् फ़ीहि कबीरुन् त व सद्दुन् अन् सबीलिल्लाहि व कुफ़्रुम्बिहीं वल्मस्जिदिल्-हरामि क़ व अिख़्राजु अह्लिहीं मिन्हु अक्बरु अिन्दल्लाहि ज वल्फ़ित्नतु अक्बरु मिनल्क़त्लि त व ला यज़ालून युक़ातिलूनकुम् हत्ता यरुद्दूकुम् अन् दीनिकुम् अिनिस्तताअू त व मंय्यर्तदिद् मिन्कुम् अन् दीनिहीं फ़ यमुत् व हुव काफ़िरुन् फ़ अुलाअिक हबितत् अअ्मालुहुम् फ़िद्दुन्या वल्-आख़िरति ज व अुलाअिक अस्हाबुन्नारि ज हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (२१७) अिन्नल्लज़ीन आमनू वल्लज़ीन हाजरू व जाहदू फ़ी सबीलिल्लाहि ला अुलाअिक यर्जून रह्मतल्लाहि त वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (२१८) यस्अलूनक अनिल्ख़म्रि वल्मैसिरि त क़ुल् फ़ीहिमा अिस्मुन् कबीरुंव्व मनाफ़िअु लिन्नासि ज़ व अिस्मुहुमा अक्बरु मिन्नफ़्अिहिमा त व यस्अलूनक मा ज़ा युन्फ़िक़ून त ५ क़ुलिल्अफ़्व त कज़ालिक युबय्यिनुल्लाहु लकुमुल्-आयाति लअल्लकुम् ततफ़क्करून ला (२१९)

ولا يزالون يقاتلونكم حتى يردوكم عن دينكم ان استطاعوا
ومن يرتدد منكم عن دينه فيمت وهو كافر فاولئك حبطت
اعمالهم في الدنيا والاخرة واولئك اصحب النار هم فيها
خلدون ﴿٢١٧﴾ ان الذين امنوا والذين هاجروا وجهدوا في
سبيل الله اولئك يرجون رحمت الله والله غفور رحيم ﴿٢١٨﴾
يسئلونك عن الخمر والميسر قل فيهما اثم كبير ومنافع
للناس واثمهما اكبر من نفعهما ويسئلونك ماذا ينفقون ۵
قل العفو كذلك يبين الله لكم الايت لعلكم تتفكرون ﴿٢١٩﴾
في الدنيا والاخرة ويسئلونك عن اليتمى قل اصلاح لهم
خير وان تخالطوهم فاخوانكم والله يعلم المفسد من
المصلح ولو شاء الله لاعنتكم ان الله عزيز حكيم ﴿٢٢٠﴾
ولا تنكحوا المشركت حتى يؤمن ولامة مؤمنة خير
من مشركة ولو اعجبتكم ولا تنكحوا المشركين حتى
يؤمنوا ولعبد مؤمن خير من مشرك ولو اعجبكم
اولئك يدعون الى النار والله يدعوا الى الجنة والمغفرة
باذنه ويبين ايته للناس لعلهم يتذكرون ﴿٢٢١﴾ ويسئلونك ع
عن المحيض قل هو اذى فاعتزلوا النساء في المحيض

फ़िद्दुन्या वल्आख़िरति त व यस्अलूनक अनिल्-यतामा त क़ुल् अिस्लाहुल्लहुम् ख़ैरुन् त व अिन् तुख़ालितूहुम् फ़ अिख़्वानुकुम् त वल्लाहु यअ्लमुल् - मुफ़्सिद मिनलमुस्लिहि त व लौ शाअल्लाहु लअअ्नतकुम् त अिन्नल्लाह अज़ीज़ुन् हकीमुन् (२२०) व ला तन्किहुल्-मुश्रिकाति हत्ता युअ्मिन्न त व ल अमतुम्-मुअ्मिनतुन् ख़ैरुम्मिम्-मुश्रिकतिंव्व लौ अअ्जबत्कुम् ज व ला तुन्किहुल्-मुश्रिकीन हत्ता युअ्मिनू त व

★ रु. २७ ल अब्दुम्-मुअ्मिनुन् ख़ैरुम्मिम्-मुश्रिकिंव्व लौ अअ्जबकुम् त अुलाअिक यद्अून

११ अिलन्नारि ज मुला वल्लाहु यद्अू अिलल्जन्नति वल्मग़्फ़िरति बि अिज़्निहीं ज

आ ५ व युबय्यिनु आयातिहीं लिन्नासि लअल्लहुम् यतज़क्करून (२२१) ★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और आपसे सम्मान वाले महीने के विषय में (यानी) उसमें जंग के बारे में पूछते हैं[२८४]। आप कह दीजिए, इसमें जंग करना बड़ा (गुनाह) है[२८५]। और इससे कहीं बड़े (अपराध) अल्लाह के निकट, अल्लाह के मार्ग से रोकना और अल्लाह से कुफ़्र करना और सम्मानित मस्जिद से रोक देना और उससे उसके रहनेवालों को निकाल देना है[२८६]। और फ़ित्नः क़त्ल से (कहीं) बढ़कर है[२८७]। और यह लोग तो तुमसे जंग जारी रखेंगे, यहाँ तक कि उनका वश चले तो तुम्हें तुम्हारे दीन से फेर ही कर रहें[२८८]। और जो कोई भी तुमसे फिर जाए अपने दीन से और इस हाल में कि वह काफ़िर है मर जाए, तो यही वह लोग हैं कि उनके आमाल दुनिया एवं आख़िरत में अकारत गये[२८९]। और यह दोज़ख़वाले हैं, उसी में हमेशा पड़े रहनेवाले[२९०]। (२१७) बेशक जो लोग ईमान लाये और जिन्होंने हिजरत की (वतन छोड़ा) और अल्लाह की राह में जिहाद किया[२९१], तो यही लोग अल्लाह की रहमत की उम्मीद रखेंगे[२९२]। और अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला है, बड़ा मेहरबान है[२९३]। (२१८) लोग आपसे शराब और जुआ के बाबत पूछते हैं[२९४]। आप कह दीजिए कि उनमें बड़ा गुनाह है[२९५], और लोगों के लिए फ़ायदे भी हैं[२९६], और उनका गुनाह उनके फ़ायदों से कहीं बढ़ा हुआ है[२९७]। और (लोग) आपसे पूछते हैं कि कितना ख़र्च करें[२९८] ? आप कह दीजिए कि जितना (भी) सुविधाजनक हो[२९९]। अल्लाह इसी प्रकार तुम्हारे लिए खोलकर आदेशों को बयान करता है, ताकि तुम सोच लिया करो, (२१९) दुनिया और आख़िरत (के मामलों) में[३००]। और (लोग) आपसे यतीमों के विषय में पूछते हैं[३०१]। आप कह दीजिए कि उनकी मस्लहत की रिआयत रखना बेहतर है[३०२]। और अगर तुम उनके साथ (ख़र्च) शामिल रखो तो वह तुम्हारे भाई ही हैं[३०३]। अल्लाह को जानकारी है कि फ़सादी (कौन) है और सुलह करानेवाला (कौन)[३०४]। और अल्लाह अगर चाहता तो तुमको परेशानी में डाल देता[३०५]। अल्लाह अवश्य ही ज़बरदस्त है, हिक्मतवाला है[३०६]। (२२०) और निकाह मुशरिक औरतों से न करो जब तक वह ईमान न ले आवें[३०७] कि मोमिना सेविका तक बेहतर है (आज़ाद) मुशरिक स्त्री से, यद्यपि वह तुम्हें पसन्द हो[३०८]। और अपनी स्त्रियों को भी मुशरिकों के निकाह में न दो जब तक वह ईमान न ले आयें[३०९]। और मोमिन गुलाम बेहतर है मुशरिक (आज़ाद) से, यद्यपि वह तुम्हें पसन्द हो[३१०]। वह लोग दोज़ख़ की ओर बुलाते हैं[३११] और अल्लाह जन्नत और नजात की ओर बुला रहा है अपनी इच्छा से[३१२]; और लोगों से अपने आदेश खोलकर बयान करता है, ताकि वह नसीहत प्राप्त करें[३१३]। (२२१) ★ ★ रु. २७ / ११ आ ५

(देखें फ़ुटनोट २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९; सफ़ा २४८, २४९ पर)

(फ़ुटनोट सफ़ा २४९ से आगे) कि यदि ख़ुदा न ख़ास्ता कोई मुर्तद हो ही गया तो अब भी अवसर है कि अपने दीन में वापस आ जाये। इमाम शाफ़िई ने इससे यह नतीजा निकाला है कि केवल इर्तिदाद से (दीन से फिर जाने से) आमाल बरबाद नहीं हो जाते जब तक कि मुर्तद की मृत्यु भी उसी दशा में न हो जाये। हनफ़िया के पास जवाब है कि स्वयं क़ुर्आन ने यह मसला स्पष्ट कर दिया है और एक दूसरी आयत में आमाल के बरबाद होने को मुर्तद होने के अमल के साथ सम्बद्ध कर दिया है। और इमाम मालिक का भी यही कथन है। **'यर्तदिद्'** कर्म के विषय से सम्बद्ध है और कर्म करने का एक अर्थ संकोच का भी पैदा होता है। बाज़ अर्थवादियों ने यह भी लिखा है कि कर्म के इस विषय को लाने से इसी मुर्तद होने के अमल से दूर होने पर ध्यानाकर्षण है। **'अन् दीनिही'** दीन से यहाँ खुली हुई मुराद दीने इस्लाम है, क्योंकि यहाँ सम्बोधन मोमिनों से ही है। यह अर्थ नहीं है कि किसी दीन से कोई फिर जाये।

२९० (नजात तथा रिहाई की ओर से निराश) **'ख़ालिदून'** **'ख़ुलूद'** का अर्थ है किसी वस्तु का बिना किसी अड़चन और अन्तर के हुए एक ही दशा में क़ायम और स्थिर रहना। इस स्पष्टीकरण और विवरण ने और साफ़ कर दिया, अन्यथा यूँ भी आख़िरत का आलम हमेशगी का आलम है। वहाँ की हर सज़ा और हर बदला और फल, जब तक कि उसे समयबद्ध और सीमित न कर दिया जाये, स्थायी है

© Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और हमेशा के लिए है। सम्भवतः यही कारण है कि पुराने शोध करनेवालों और अनुवादकों ने अपने अनुवादों में इस पहलू को स्पष्ट किया है। शाह वली अल्लाह लिखते हैं, "ईशाँ दर आँ जावेद अन्द"। यानी वह उसके बीच हमेशा रहेंगे।

२६१ (चाहे जंग से या बिना जंग के) **'अल्लज़ीन हाजरू'** दीन की सुरक्षा और उसके बचाव के लिए वतन-जैसी प्यारी चीज़ को वहाँ की तमाम प्यारी चीज़ों के साथ छोड़ना और कुफ़्र की बस्ती से अलाहदः होकर ईमान की बस्ती में आ जाने को मज़हबी परिभाषा में हिज्रत कहते हैं। **'जाहदू'**— 'जिहाद' के मानी कठोर प्रयास और कोशिश के हैं। इसमें हर प्रकार की बलाएँ और कष्ट आ गये और इसकी एक बड़ी शिक़ (अड़चन) जंग है। सृष्टि के रचयिता के विधान में हिज्रत और जिहाद दोनों की बड़ी बड़ाई और प्रशंसा और दर्जे हैं। ईमान स्वयं ही क्या कम दौलत है और जब उसके साथ यह दोनों मर्तबे भी मिल जाएँ तो उस दर्जे का क्या ठिकाना है? ईमान तो सभी सहाबियों का संयुक्त था ही, बड़ी संख्या में सहाबा यह दोनों धन प्राप्त कर चुके थे। **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** इस प्रतिबन्ध से दुबारा यह हक़ीक़त बता दी कि हिज्रत तथा जिहाद स्वयं बड़ी कठिन इबादतें सही, अल्लाह के यहाँ उनको मान्यता तब ही मिलेगी जबकि वह उसी के वास्ते हों, अन्यथा केवल मेहनत ही मेहनत हाथ आयेगी। वतन, क़ौम, नस्ल और रंग पर जान दे देनेवाले, बड़ी से बड़ी कठिनाइयाँ झेल ले जानेवाले आज हिन्दुओं, पारसियों, जर्मनों, अंग्रेज़ों, रूसियों, अमरीकियों, जापानियों, हर मज़हब तथा धर्मों और हर क़ौम तथा देशों में लाखों करोड़ों की संख्या में मिल जायेंगे। सब के सब **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** और **'अल्लज़ीन आमनू'** के गुण से वञ्चित और खाली।

२६२ यह शुभ सूचना और तसल्ली हर मोमिन, मुहाजिर तथा मुजाहिद (जिहाद करनेवाले) के लिए, सब पर लागू है, परन्तु यहाँ विशेषता के साथ उन मोमिनों के हक़ में, जिनके हाथों से एक मुश्रिक की हत्या बिना सही तारीख की सूचना के एक रजब को हो गयी थी। ऊपर के हाशियों में विवरण आ चुका है।

२६३ इन गुणों के बयान से मोमिनों और मुजाहिदों को और अधिक तसल्ली देना मक़्सूद है। **'ग़फ़ूरुन्'** अतः वह अपनी क्षमा करने के गुण के तक़ाज़े से इस भूल और ग़लती को माफ़ कर देगा। **'रहीमुन्'** वह अपनी दया करने की सिफ़त से बदला भी प्रदान करेगा।

२६४ यानी उनके शरई आदेश के विषय में और उनके जाइज़ होने या नाजाइज़ होने के सम्बन्ध में। **'अल्ख़म्रि व मैसिर'** यहाँ दोनों अपने विशाल अर्थ में आये हैं। 'ख़म्र' के अन्तर्गत हर वह नशीली पीनेवाली वस्तु आ गयी जो बुद्धि को खराब कर दे। शरीअत ने भी इसी शब्दकोश के अर्थ को माना है। सहाबियों और ताबेईन से सबसे यही माने वर्णित हैं। **'अल्मैसिरु'** का प्रयोग भी उसी विशाल अर्थ में हुआ है और जुए की सभी क़िस्में इसमें आ जाती हैं। शरीअत के आलिमों ने भी इसी शब्दकोश के अर्थ को प्रमाणित किया है। शराब और जुआ जिस प्रकार आज फ़िरंगी समाज में जाइज़ ही नहीं, बल्कि ठीक उस सभ्यता का अंश बने हुए हैं और इनसे सम्मान की दलील बनती है, इसी प्रकार यह पुरानी अरबी सभ्यता के प्रतीक थे और सभ्यता के अनिवार्य अंश समझे जाते थे। अकेले अरब ही नहीं यह तफ़रीह सारी मानवता में व्याप्त थी और हिन्दी सभ्यता, मिस्री सभ्यता, यूनानी सभ्यता, रूमी सभ्यता तो ख़ैर स्वयं ही जाहिली सभ्यता थीं, इसराईली और मसीही तहज़ीबें, जो नबूवत का सम्मान पा चुकी थीं, वह भी इनकी रोकथाम नहीं कर सकी थीं। शरीअतें इस्लामी ही दुनिया का वह क़ानून है जिसने आकर उनके क़तई हराम होने की घोषणा की। यह आयत हराम किये जाने की सबसे पहली आयत है। क़तई हुक्म बाद को आया। रूहुल् मआनी की तफ़्सीर के लेखक अल्लामा आलूसी बग़दादी ने इस स्थान पर विवरण के साथ लिखा है कि हमारे ज़माने के फ़ासिक़ों (गुनहगारों) ने नशीली पीने की चीज़ों के लिए नाना प्रकार के सुन्दर नाम तथा सर्वनाम रख लिये हैं। 'अरक़े अम्बरी', 'माऊल् अक्सीर' इत्यादि, परन्तु नाम बदल देने से शरई हक़ीक़त नहीं बदल जाया करती। नशा लानेवाली चीज़ें हर दशा में हराम हैं। अल्लामा की मृत्यु १८५२ में हुई और तफ़्सीर का समय इससे कुछ पूर्व का है यानी आज १९६३ से सवा सौ वर्ष पूर्व इराक़ में मरहूम को यह दुःखद अनुभव हो चुके थे। ग़रीब को क्या अन्दाज़ा हो सकता था कि आज फ़िरंगियों के प्रभाव से उनके वतन इराक़ ही में नहीं बल्कि मिस्र, ईरान, तुर्की, शाम इत्यादि में शराबनोशी कितनी और किन-किन शक्लों में फैल चुकी है और शराब ही नहीं, जुआ भी कैसे-कैसे सुन्दर नामों के साथ "सभ्यता और कल्चर" का अंश बन चुका है और सभ्य जीवन के कितने कोणों में अपनी स्थायी जगह बना चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२६५ (जैसा कि नज़र के सामने है) **'इस्म'** का शब्द हर उस कर्म के लिए आता है, जो नेकी के मार्ग में रुकावट उत्पन्न करनेवाला हो। किसी कर्म पर इस्म का लागू होना उसे हराम कर देता है न कि उस पर ताकीद भी **'कबीर'** के साथ मौजूद हो। **'इस्मुन् कबीरुन्'** ही से फ़क़ीहों ने यह तथ्य निकाला है कि शराब की थोड़ी मात्रा भी हराम है। इस लिहाज़ से क़ुर्आन मजीद इन दोनों के हक़ में **'इस्मुन्'** बहुत ख़ूब लाया। समाज में आज तक जितने फ़साद शराब पीने से पैदा हो चुके हैं वह सभी जानते हैं। गालियाँ बकना, बेशर्मी फैलाना, हरामकारी कराना, बल्वे, दंगे कराना, नाना प्रकार की हलाक करनेवाली बीमारियाँ फैलाना, चोरी, ठगी पर आमादा करना, क़त्ल की नौबत ले आना, दोस्तों तथा रिश्तेदारों में जूते चलवाना, हर इबादत, पाकीज़गी और पाकी के रास्ते से रोक देना और बेजा ख़र्च कराना इसके लिए कोई बात ही नहीं है। फिर जुआ क्या कम मुसीबतें लाता है। इंगलैण्ड के सबसे बड़े जुआख़ाना 'मोण्टे कारलो' (Monte Carlo) में हर वर्ष अथाह और अनगिनत दौलत बरबाद और नष्ट होती है। दीवाली और यमघंट की रातों में हिन्दुस्तान के भीतर क्या कुछ नहीं होता? फिर जुए के नवीन रूपों, बीमा कम्पनियों के जुए, घोड़दौड़ के जुए, लाटरियों के जुए, सट्टे इत्यादि को कोई कहाँ तक गिने? उन तफ़्सीर करनेवालों ने सच कहा है कि इन दोनों कार्यों में नेकियों से बड़ी रुकावट है। बाज़ सहाबियों, जैसे कि हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत मआज़ के विषय में लिखा है कि उन्होंने शराब के विषय में रसूल (स०) से स्वयं पूछा कि ऐसी चीज़, जो बुद्धि और धन दोनों को बरबाद कर देनेवाली हो, उसके विषय में क्या आदेश है? रसूल (स०) के पास बैठने की बरकत से दिलों में स्वयं इतना प्रकाश पैदा हो गया था तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है!

२६६ (कुछ थोड़े बहुत) अल्लाह तआला की पैदा की हुई कायनात (सृष्टि) में कोई वस्तु सिरे से हानिकारक ही हानिकारक और हर लाभ एवं बुद्धिमानी से ख़ाली मौजूद ही नहीं है, यहाँ तक कि शराब और जुए भी इस बात से अलग नहीं हैं। जैसे कि शराब बाज़ रोगों का इलाज है। बाज़ मदिराएँ लाभकर हैं। शराब से सामयिक स्वाद और नशा प्राप्त होता है। बाज़ शक्तियों में अस्थायी रूप से जोश उत्पन्न कर देती है इत्यादि। तफ़्सीर करनेवालों ने आयत के इस अंश के अन्तर्गत शराब के बहुत से लाभ और मस्लहत बताये हैं, जो उनके ज्ञान और सूझ-बूझ के अनुसार हैं। और यहीं से एक और समस्या उत्पन्न हो गयी। किसी हराम और नाजाइज़ वस्तु के आंशिक लाभ और फ़ायदे बयान करने से यह न समझा जाये कि वह चीज़ हराम नहीं रही। और यह हक़ीक़त इसी आयत से बिलकुल स्पष्ट हो गयी कि किसी वस्तु के गुनाह होने और उसके आंशिक लाभ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वयं फ़िरंगी सभ्यता भी अपने भीतर बहुत से सुन्दर पहलू और अच्छाइयाँ रखती है। वादे का ख़याल, समय की पाबन्दी, जनसेवा की आम भावना इत्यादि। फिर भी उच्च नैतिकता और आत्मिक क़द्रों से इन्कार और उनकी नाक़द्री के कारण उसको सम्पूर्ण रूप से अच्छाई नहीं बुराई ही की उपमा दी जायेगी। यही दशा पुरानी अरब-सभ्यता का भी था। वादे का पक्का, मेहमाँनवाज़ी, उदारता इत्यादि अनेक अच्छाइयाँ उसकी बनावट में उपस्थित थीं। इसके बावजूद वह सभ्यता रहमानी नहीं, शैतानी ही थी। आज जो स्प्रिट मिली हुई अंग्रेज़ी दवाएँ भारी संख्या में चल पड़ी हैं, यह आम तौर पर तेज़ाब की क़िस्म की होती हैं और फ़क़ीहों ने इन्हें संख्या के हुक्म में रखा है।

२६७ (अतः बुद्धिमानी के लिहाज़ से यह दोनों चीज़ें छोड़ देने और बचने की हैं।) फ़क़ीहों ने कहा और सही कहा है कि शराब के हराम होने पर इससे अधिक स्पष्ट और ज़्यादा सही और शुद्ध आयतें मौजूद न होतीं तो भी यह आयत उसके हराम कर देने के लिए काफ़ी थी। इस्लामी इतिहास को यह गौरव प्राप्त है कि उसने अपने एक इशारे से अपनी प्रशासनिक सीमाओं से यह कहना चाहिए कि इन गन्दगियों की समाप्ति ही कर दी। व्यक्तियों और लोगों की निजी कारस्तानियों को दृष्टि में न रखा जाये तो उम्मत की दृष्टि में सामूहिक रूप से शब्द "शराबी" और "जुआरी" दोनों को अत्यन्त तुच्छता एवं अपमान का प्रतीक बना दिया। यह इस्लाम की ही महिमा है कि उसने अपने अनुयाइयों को, जहाँ तक इन नैतिक अशुद्धता का सम्बन्ध है, पवित्रता और स्वच्छता के उस उच्च स्थान पर पहुँचा दिया जहाँ तक ज्ञान और बुद्धि, समझ और सूझ-बूझ के बड़े ऊँचे स्वरों में किये जानेवाले दावों के बावजूद आज तक न कोई टेम्परेन्स एसोसीएशन पहुँचा सकी है, न कोई प्राहिबिशनिस्ट (Prohibitionist) सरकार! सर विलियम मयोर अपने नहीं, बेगाने हैं। इस्लाम के अनुयायी नहीं हैं, उस पर आलोचना करनेवाले हैं। इसके बावजूद लिखते हैं— "इस्लाम गौरव के साथ कह सकता है कि शराब छुड़ाने में जैसा वह सफल हुआ है, कोई अन्य धर्म नहीं हुआ है।" ("Life of Mohammad")। उन्नीसवीं शताब्दी की अन्तिम चौथाई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में लन्दन के चर्च कांग्रेस के एक अधिवेशन के अवसर पर एक सम्मानित पादरी इस्हाक़ टेलर ने कहा था— "दुनिया में शराब पीने को समाप्त करने के लिए सबसे बड़ी संस्था स्वयं इस्लाम है। इसके विपरीत हमारी योरोपियन् तिजारत के पग जहाँ-जहाँ पहुँचते जाते हैं, शराबनोशी और बदकारी तथा लोगों का नैतिक पतन बढ़ता ही जाता है।" टेम्परेन्स के नाम से शराबनोशी में संतुलन और सावधानी उत्पन्न करने के नाम से योरोप, अमेरिका और हिन्दुस्तान में आज भी न जाने कितनी अंजुमनें (संस्थाएँ) उच्च कोटि की व्यवस्था और कार्यक्रम की सुन्दरता की प्रशंसा के साथ स्थापित हैं और अमेरिका के प्रसिद्ध कार्यकर्ता पुसीफूट जान्सन ने तो ४०, ५० वर्ष हुए अपनी कार्यकुशलता की सारी दुनिया में धूम मचा दी। बड़े-बड़े डॉक्टर और वैज्ञानिक शराब के हानिकारक प्रभावों पर बयान तथा आँकड़े बराबर प्रकाशित करते रहते हैं, परन्तु इन सारी सरगर्मियों के बावजूद स्वयं वही लोग यह स्वीकार करते हैं कि शराब को पूर्ण रूप से हराम करने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, जिल्द २६, पृष्ठ ५६०, ग्यारहवाँ संस्करण)। हिन्दुस्तान में अभी चन्द वर्ष पूर्व कई प्रादेशिक सरकारों ने अपने इलाक़ों में मद्यनिषेध क़ानून लागू किया था, परन्तु कई जगह आगे चलकर वह क़ानून ही वापस लेना पड़ा। आबकारी विभाग को लाखों रुपयों की आय से हाथ धोना पड़ा। यह कोई आसान बात नहीं थी। रहा जुआ, सो इस विषय में इस्लामी क़ानून को छोड़कर योरोप अपने हाथों अपना जो हाल कर रहा है, वह सारी दुनिया के सामने है। आत्महत्या और आत्महत्या के प्रयास के कितने वाक़िए शराब पीने और जुए के ही परिणाम हैं। फिर धन की तबाही और आर्थिक दुर्दशा का अन्दाज़ा इससे कीजिए कि योरोप की प्रथम बड़ी लड़ाई के पूर्व अकेले इंगलैण्ड के सम्बन्ध में यह आँकड़े हैं कि कम से कम दस करोड़ पाउण्ड की वार्षिक रक़म अपने मालिकों की जेब से निकलकर जुआरियों के हाथों में पहुँचती रहती है। (इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़् रेलीजन्स् ऐण्ड् एथिक्स् जिल्द ६, सफ़ा १६४)। यह आँकड़े योरोप के केवल एक देश के हैं जो एक छोटे रक़बे में है। वह भी प्रथम बड़ी लड़ाई के पूर्व के। योरोप के सभी देशों (और इस सूची में सबसे प्रसिद्ध जुआघर मोण्टे कारलो भी शामिल है) और अमेरिका की सारी विलायतों की सामूहिक तबाहकारी के नवीन आँकड़े तो अल्लाह ही बेहतर जानता है कि गणित की किन गिन्तियों तक पहुँचे। रहीं समय के क़ानून की असफल कोशिशें, तो इसी इन्साइक्लोपीडिया के इसी लेख में है कि— "क़ानून इसमें कमी पैदा करने को अपनी वाली सभी कोशिश कर रहा है सिवाय उसे बिलकुल रोक देने के जो असम्भव है।" (सफ़ा १६५)। यह साहस इस्लाम में ही था कि उसने "फ़िरंगी बुद्धिमानों" के इस असम्भव प्रयास को सम्भव करके ही नहीं दिखाया, बल्कि उसे करके दिखा दिया।

२९८ (ख़ैर ख़ैरात में, पुण्य के कार्यों में) ज़कात जो फ़र्ज़ है, उसकी शरह नियत थी, यह प्रश्न उसके अतिरिक्त दूसरे नेक कार्यों में ख़र्च करने से सम्बद्ध था।

२९९ और इस आसानी का मेयार मौलाना थानवी के अनुसार यह है कि उससे किसी हक़दार का हक़ समाप्त न हो और अपने आवश्यक ख़र्चों में तंगी न उठानी पड़े। **'अल् अफ़्वु'— 'अफ़्वु'** से मुराद है इतना ख़र्च करना जो अपने ऊपर बोझ न हो।

३०० (उन आदेशों पर कार्यान्वित होते समय) आख़िरत के मामलों में ध्यान और मनन करने का महत्त्व तो स्पष्ट है, यहाँ यह आदेश मिल रहा है कि दुनियावी मामलों में भी सोच-विचार से काम लिया करो। तो क्या दुनिया भी इस योग्य है कि उसके मामलों में मनन और ध्यान से काम लिया जाये। मौलाना थानवी ने फ़र्माया कि इसका रहस्य यह है कि इन्सान ज़ेह्न को ख़ाली रखकर जितना ज़्यादा दुनियावी कारोबार के बारे में सोचेगा उसी क़दर उसकी बेसबाती और बेक़द्री उसके दिल पर जमती जायेगी।

३०१ (कि उनके ख़र्च की क्या व्यवस्था रखी जाये। क्या अपने हिसाब में सम्मिलित रखा जाये या उनका हिसाब बिलकुल अलग कर दिया जाये।) यह प्रश्न करनेवाले यतीमों के वली लोग थे, जो अपनी देखरेख में उन यतीमों का लालन-पालन कर रहे थे। सहाबा की सावधानी और तक़्वा की क्या प्रशंसा की जाए? विवरण के साथ आकर प्रश्न किया कि यतीमों की जायदादों से वलियों तथा संरक्षकों के लिए लाभ की कोई सूरत है? जायदाद का लालच भी बुरा होता है। अरब जाहिलीयत में बहुत से लोग यतीमों को अपनी संरक्षता में इस कारण से ले लिया करते थे कि उनकी जायदादों में से ख़ुर्दबुर्द कर सकें। बल्कि कोई यतीम लड़की यदि धनवान दिखायी पड़ी तो उससे अपने लड़के की शादी भी इसी मोह में कर लिया करते थे। **'अल्यतामा'** यतीम का बहुवचन है। यतीम से मुराद वह लड़की या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लड़का है, जिसके सिर से बाप या माँ का साया उठ गया हो। शरीअत में यतीमी बाप की ओर से प्रमाणित है और यही विश्वसनीय है।

३०२ सो वह जिस विधि से भी प्राप्त हो वही तरकीब अपनायी जाये। यहाँ वास्तविक नियम का वर्णन कर दिया गया कि प्रथम शर्त और प्राथमिकता यतीम की जायदाद की मस्लहतों की रिआयत है। यदि उसका तक़ाज़ा यह हो कि अपना और यतीम का हिसाब एक में रखा जाये तो यही किया जाये वर्नः इसके विरुद्ध किया जाये। 'इस्लाह' का शब्द साधारण है यद्यपि इसका निकट का सम्बन्ध आर्थिक हितों से है। शब्द के अन्तर्गत जिस्मानी, आर्थिक, नैतिक हर प्रकार का सुधार आ गया। फ़क़ीहों ने हालात के अन्दाज़े से यह नतीजा निकाला है कि यतीम पर जो चेतावनी, प्रतिबन्ध, शिक्षा या शिक्षण की आवश्यकता से हो वह बिलकुल ठीक है। इस्लाम की, यतीमों की परवरिश, उनकी देखभाल और उनकी संरक्षता को अपनों ही की भाँति बेगाने भी और इन्कार करनेवाले भी मानते हैं। ब्रिटिश लेखक बासवर्थ स्मिथ ने लिखा है— "पयम्बर के विशेष ध्यान के केन्द्र ग़ुलामों की भाँति यतीम भी रहे हैं। वह स्वयं भी यतीम रह चुके थे, इस कारण हृदय से चाहते थे कि जो सुन्दर व्यवहार ख़ुदा ने उनके साथ किया वही वह दूसरों के साथ करें।" (Mohammad and Mohammadanism p. 251)। अमरीकी समाजशास्त्र के विशेषज्ञ डॉ० राबर्ट्स् लिखते हैं— "क़ुर्आन के अवलोकन से एक बड़ी प्रसन्नतापूर्ण बात यह मालूम होती है कि मुहम्मद (स०) को बच्चों का कितना खयाल था, विशेषतः उन बच्चों का जो माता-पिता की संरक्षता से वंचित हो गये हों। बार-बार बच्चों से सुन्दर व्यवहार की ताकीद मिलती है।" (Social Laws of the Qoran pag. 40-41)। और फिर कहा है— "मुहम्मद (स०) ने यतीमों के विषय में अपनी विशेष तवज्जोह रखी। यतीमों के अधिकारों का बहुत अधिक जिक्र उनसे दुर्व्यवहार करने वालों और उनके अधिकारों को छीननेवालों के विरुद्ध कठोर चेतावनी मुहम्मद (स०) के चरित्र के उस पहलू को ज़ाहिर करती हैं, जिस पर मुसलमान लेखकों को सही तौर पर गर्व है।"

३०३ (भाई हैं, अतः संयुक्त व्यय में कोई आपत्ति नहीं है।) **'अिख़्वानुकुम्'**— शब्द 'अख' या भाई अत्यन्त स्नेह, एकता तथा प्रेम का प्रतीक है। इस ज़रा से शब्द में बहुत कुछ आ गया। जब तुम और वह भाई ही भाई ठहरे तो भाई-भाई में संकोच कैसा? अरब में तो यह सम्बन्ध और भी अधिक शक्तिशाली था। "चूँकि उस समय अधिकतर मुसलमानों के पास मुसलमान यतीम ही थे, इसलिए **'अिख़्वानुकुम्'** फ़र्माया, अन्यथा अगर दूसरे धर्म का बच्चा भी अपनी देखरेख में हो उसके लिए भी यही आदेश थे और इसकी दलील दूसरी आयतें और हदीसें हैं जो आम शब्दों में आयी हैं, बल्कि उसके साथ धार्मिक रिआयत इतनी और है कि इस बच्चे पर बालिग़ हो जाने के बाद इस्लाम क़बूल करने के लिए ज़बरदस्ती न करें। मज़हबी स्वतन्त्वता दें।" (थानवी)।

३०४ यानी उस पर सबकी नेकनीयती और बदनीयती दोनों ख़ूब रौशन हैं। **'अल्मुफ़्सिदु'** यानी यतीमों के हित को हानि पहुँचानेवाला। **'अल्मुस्लिहु'** यानी यतीमों के हित का लिहाज़ रखनेवाला।

३०५ यानी बजाय इन सुविधाओं के इस विषय में कोई कड़ा विधान बना देता। **'व लौ शाअल्लाहु'** यानी अगर उसकी मशीयत का और उसकी हिकमत की सृष्टि का यही तक़ाज़ा होता।

३०६ यहाँ अपनी दोनों सिफ़तें स्मरण करा दीं। पहली सिफ़त **'अज़ीज़ुन्'** का तक़ाज़ा तो यह था कि वह जो हुक्म चाहता दे सकता था, कोई शक्ति उससे ऊँची नहीं है। परन्तु दूसरी सिफ़त **'हकीमुन्'** का तक़ाज़ा यह है कि वह वही आदेश निर्गत करता है, जो बन्दों के लिए नर्म, आसान और मस्लहत के निकट हों।

३०७ (ऐ मुसलमान पुरुषो !) पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त स्नेह, प्रेम और पारस्परिक सम्बन्ध एवं मुहब्बत का होता है। पत्नी को अगर पति से इस दर्जा नामुनासिबत है कि वह उसकी सारी शऊरी और इख़्तियारी ज़िन्दगी के वास्तविक नियम अर्थात् तौहीद तथा रिसालत की ही इन्कार करनेवाली है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों में बाहमी मुनासिबत का आधार ही कमज़ोर है। पुरुष को ऐसी स्त्री के साथ जीवन भर निबाह करने का खयाल ही छोड़ देना चाहिए। सम्पूर्ण एकता के लिए दूसरे अंश और भाग उपस्थित न हों, न सही, परन्तु कम से कम वह आधारिक विश्वास तो संयुक्त हो, जिसके अन्तर्गत छोटा-बड़ा जीवन का हर मामला है। मानव-प्रकृति स्वयं ऐसे बेजोड़ जीवन-बन्धन से घृणा करती है। प्राकृतिक धर्म इसको क्योंकर जाइज़ रख सकता था? फिर निकाह इस्लाम में एक धार्मिक क्रिया है केवल दीवानी सन्धि नहीं है। (Civil contract)। जब एक पक्ष धर्म और मज़हब के आधार से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही फिरा हुआ है तो उसके साथ सन्धि कैसे हो सकती है ? **'अल्मुश्रिकाति'** शब्द 'मुश्रिक' यहाँ अपने साधारण अर्थ में है। हर प्रकार की काफ़िर या ग़ैरमुस्लिम स्त्री इस मनाही करनेवाले आदेश के अन्तर्गत आती है। यह आवश्यक नहीं है कि वह बुत की पूजा करती हो। इमाम मालिक तथा इमाम शाफ़िई बस इसी आयत पर रुक गये हैं और उनकी फ़िक़ह में हर प्रकार की ग़ैरमुस्लिम स्त्री से निकाह नाजाइज़ है। लेकिन हनफ़िया फ़क़ीहों की निगाह और अधिक बारीकी के साथ क़ुर्आन मजीद ही की एक अन्य आयत की ओर भी गयी और वह आयत सूरए माअिदा की **'मुह्सिनातु······मिन क़ब्लिकुम···'** है, जिससे उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि हर ग़ैरमुस्लिमा के साथ निकाह नाजाइज है, परन्तु किताबिया यहूदी और नसरानी स्त्री इस हुक्म से मुस्तस्ना है और यही मज़हब इब्ने अब्बास और बाज़ ताबेईन का भी है। मौलाना थानवी के कुछ फ़िक़ह के लाभदायक अंश यहाँ लिखने योग्य हैं— "(१) हिन्दू या आग की पूजा करनेवाली स्त्री से निकाह नाजाइज है। (२) किताबी स्त्री से निकाह जाइज़ है, परन्तु बेहतर नहीं है। हज़रत उमर ने इसे नापसन्द फ़र्माया है और हदीस भी दीनदार स्त्री से निकाह करने की है। (३) ऐसी स्त्री से जो चेहरे-मोहरे से किताबिया प्रतीत होती हो, परन्तु बाद की जानकारी से वह किताबियों के अक़ीदे न रखती हो, उससे भी निकाह दुरुस्त नहीं है।" यहूदीयत चूँकि एक नस्ली मज़हब है, अतः इस्राईलियों को ग़ैरइस्राईलियों से निकाह करने की सख़्त मनाही है। (ख़ुरूज ३१ : ३४ —इस्तिस्ना, १ : ७, ४, अज़्रा ६, १०)। मसीही मज़हब में भी "बेईमानों" यानी ग़ैरमसीहियों से शादी-ब्याह का सम्बन्ध मना है। वेस्टर मार्क की किताब "निकाह की संक्षिप्त तारीख़" (Short History of Marriage) ऐसी शादी-विवाह को हरामकारी कहती है। और हिन्दुओं के निकाह तो निकाह मज़हब से बाहर होना क्या मानी, "ज़ात" के बाहर बल्कि बरादरी के बाहर भी ठीक नहीं। **'हत्ता युअमिन्ना'** यह प्रतिबन्ध लगाकर बता दिया कि इस मनाही का आधार पूरी तरह धार्मिक और विश्वसनीय है, नस्ली, क़ौमी और भौगोलिक इत्यादि कदापि नहीं। जो भी ईमान ले आये उसी से निकाह जाइज़ हो जाता है।

३०८ (अपनी सुन्दरता या धन-दौलत इत्यादि की बिना पर) आयत से अन्दाज़ा होता है कि कुफ़्र क़ुर्आन की दृष्टि में कितनी घृणा के योग्य और ऐसा है कि उस पर अल्लाह का ग़ज़ब होता है। काफ़िर स्त्री में जो भी गुण हों, वह एक ओर और कुफ़्र की गन्दगी दूसरी ओर। अर्थ यह हुआ कि हर मुस्लिम औरत यहाँ तक कि आज़ादी की नेमत से वञ्चित और तुच्छ समझी जानेवाली बाँदी तक आज़ाद, ख़ुशहाल, सुन्दर, परन्तु काफ़िर औरत से बेहतर है। निकाह की यह हक़ीक़त यदि दृष्टिगोचर रहे कि वह एक गहरा नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, हर समय का, हर दिशा का सम्बन्ध न केवल दो व्यक्तियों के अपितु दो परिवारों के बीच है तो ऐसे मनाही के आदेश पर ज़रा भी आश्चर्य न होना चाहिए, बल्कि उसकी हकीमाना गहराई की प्रशंसा की जानी चाहिए। शिर्क के कीटाणु अपने साथ-साथ इस्लामी समाज के लिए नैतिक, आत्मिक तथा रूहानी क़द्रों के लिए पूरे तबाह करनेवाले ख़तरे भी रखते हैं और उन्हें हल्का या ध्यान न देने योग्य समझना बड़ी भूल है।

३०९ (और मोमिनों के गिरोह में न सम्मिलित हो जायें) **'हत्ता युअमिनू'** यह टुकड़ा यहाँ भी हक़ीक़त को ज़ोरदार ढंग से ज़ाहिर करने के लिए है कि असली रुकावट उन पुरुषों के शौहर बनने में उन औरतों का कुफ़्र है। जब यह रुकावट दूर हो जाये तो फिर कोई रुकावट नहीं है। **'अल्मुश्रिकीन'** "मुश्रिक" यहाँ भी इसी आम और विशाल अर्थ में है, जैसे "मुश्रिक" जो अभी ऊपर आ चुका है यानी हर प्रकार के काफ़िर के अर्थ में। इस्लाम के क़ानून से इन्कार करनेवाला जो कोई भी हो उसका निकाह मोमिन स्त्री से नहीं हो सकता। फ़क़ीहों ने लिखा है कि शौहर अगर पहले से मुसलमान है और बाद को ख़ुदा न करे मुर्तद हो गया तो मुसलमान और उसी समय उसके निकाह से बाहर हो जायेगी। जो निकाह अभी तक ठीक था, वह तुरन्त टूट जायेगा। यह औरत 'इद्दत' पूरी करके किसी दूसरे मर्द से निकाह कर सकती है। यह भी लिखा है कि यदि मियाँ-बीवी पूर्व से काफ़िर हैं और औरत मुसलमान हो गयी तो अब निकाह के बने रहने की कोई शक्ल नहीं है सिवाय इसके कि शौहर भी इस्लाम स्वीकार कर ले। अन्य विवरण इस प्रकार के मामलों का फ़िक़ह की पुस्तकों में मिलेगा। **'ला युन्किहू'** सम्बोधन मर्दों से है कि तुम अपनी औरतों को काफ़िरों के निकाह में न दो। आदेश सीधे औरतों को नहीं मिल रहा है कि तुम काफ़िरों के निकाह में मत जाओ। यह सम्बोधन बड़ा सारगर्भित है। इसके स्पष्ट अर्थ यह हैं कि मुसलमान औरतों के निकाह मर्दों के माध्यम से होने चाहिए। तफ़सीर करनेवाले बाज़ फ़क़ीहों ने इसी आयत से यह बात निकाली है कि निकाह में वली होना ज़रूरी है और वाजिब है। हनफ़ी फ़क़ीहों के यहाँ यह दलील ठीक नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३१० (विद्या में योग्यता, ऊँची डिग्री, बड़े ओहदों या किसी भी दुनियावी आधार पर) **'लअब्दुन्'** का **'ला'** यहाँ भी बल देने के लिए है उर्दू के "तक" के अर्थ में यानी आज़ादी की नेमत से वञ्चित और तुच्छ एवं नीच समझे जानेवाले गुलाम तक को अपना सकते हो, लेकिन न अपनाओ तो किसी काफ़िर को चाहे वह दुनियावी एतबार से कैसा ही बड़ा आदमी हो।

३११ (अपनी ज़बानें हाल से) **'अलन्नारि'** दोज़ख़ की ओर यानी उन आमाल और उन अक़ीदों की ओर। उस जीवन-मार्ग की ओर जिसका परिणाम दोज़ख़ है और वह मार्ग कुफ़ और शिर्क है। **'उला'इक'** संकेत उन्हीं काफ़िर पुरुषों और स्त्रियों की ओर है। उनकी ओर से और अधिक घृणा दिलाने हेतु यह टुकड़ा बढ़ा दिया गया है। गोया यह जता दिया गया है कि ऐसे गये बीते लोग तो साधारण सम्बन्ध के योग्य भी नहीं हैं, न कि उनसे शादी-विवाह का सम्बन्ध स्थापित किया जाये।

३१२ (अतः इस रहमत और नजात ही के तक़ाज़े से उसने यह आदेश भी दे रखा है कि काफ़िरों से शादी-विवाह का सम्बन्ध न रखो, न उनके गहरे सम्बन्ध का प्रभाव तुम पर पड़ने पाये और न तुम जन्नत और नजात से दूर होते जाओ।) **'अिलल्जन्नति वल्मग़्फ़िरति'** यानी अल्लाह चाव दिलाता है ईमान तथा इस्लाम का और उस जीवन-निधि का जिसका परिणाम जन्नत एवं नजात ही है। **'बि अिज़्निही'** **'अिज़्न'** के मानी यहाँ तौफ़ीक़ या इरादा या आदेशों की जानकारी कराना है।

३१३ (और नसीहत पर अमल करके जन्नत तथा नजात के अधिकारी बन जायें) इस अर्थ की और भी बहुत सी आयतें क़ुर्आन में आयी हैं और इस हक़ीक़त को ज़ाहिर करती हैं कि जन्नत मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है सिवाय इसके कि मानव स्वयं जान-बूझकर ग़लत मार्ग अपनाये और दोज़ख़ का रास्ता इख़्तियार कर ले।

(फ़ुटनोट सफ़ा २५६ से)

३१७ मुश्‍रिक जातियों ने इस सम्बन्ध में जो कठोरता उचित जानी उनको छोड़िये, स्वयं तौरेत में जो सख़्ती अपने नियम में रखी है वह भी अपनी आप मिसाल है— "औरत अपने विशेष दिनों में स्वयं ही नापाक नहीं होती, बल्कि जो व्यक्ति या जो वस्तु भी उससे छू जाती है और इसी प्रकार यह नापाकी बढ़ती जाती है। जो कोई उसे छुयेगा सायंकाल तक नजिस रहेगा……और जो कोई उसके बिस्तर को छुये, अपने कपड़े धोये और पानी से नहाये और शाम तक नापाक रहे……और जो कोई उस चीज़ को, जिस पर वह बैठी है, छुये, अपने कपड़े धोये और पानी से नहाये और सायंकाल तक नापाक रहे……अगर मर्द उसके साथ सोता है और उसकी नजासत उस पर हो तो वह रात-दिन नापाक रहेगा और हर एक बिस्तर पर, जिस पर यह पुरुष सोयेगा, नापाक हो जायेगा।" (अहबार १५ : १९, २४)। यह आदेश तो तौरेत के हैं, परन्तु यहूद के फ़क़ीह सख़्ती में इन सीमाओं से भी कहीं आगे निकल गये हैं और ऐसे-ऐसे प्रतिबन्ध उस स्त्री पर लगाये हैं, गोया वह स्त्री नहीं कोई बला है। अवलोकित हो "जिविश इन्साइक्लोपीडिया और हैस्टिंग्स् की डिक्शनरी ऑफ़् दि बाइबिल् जिल्द ४, सफ़ा ८२७"।

३१८ यानी नापाक ख़ून का आना बिलकुल बन्द हो जाये और औरत स्नान कर ले, शरीअत में यह स्नान वाजिब है। स्वच्छता जिस चीज़ का नाम है उससे तो ख़ैर दूसरी जातियाँ भी परिचित हैं, लेकिन जिसे "पाकी" कहा जाता है उसके नियम, क़ानून इस्लाम के बाहर शायद ही मिलेंगे।

३१९ यानी जाइज़ और प्राकृतिक विधि के अनुसार। इस साधारण और प्राकृतिक निकटता के अतिरिक्त स्वाद-प्राप्ति के अन्य सारे तरीक़े नाजाइज़ हैं।

३२० (और इस सफ़ाई में जिस्मानी और रूहानी दोनों प्रकार की गन्दगी से पाक होना आ गया।) **'तव्वाबीन'** इस सन्दर्भ में वह लोग हैं जिनसे उपर्युक्त नियमों के विषय में कोई इत्तिफ़ाक़ी अवहेलना हो जाये और वह बाद को तौबा कर लें और अपनी ग़लती पर शर्मिन्दा हों तथा पश्चात्ताप करें। **'मुततहहिरीन'** इस सन्दर्भ में वह लोग हैं जो औरत की नापाकी के ज़माने में उससे मिलने से बचते हैं। इसी से फ़क़ीहों ने यह निष्कर्ष लिया है कि जो आमाल बिलकुल नजिस हैं वह सब हराम हैं। सफ़ाई और स्वच्छता की यह आत्मा क़ुर्आन की आम है और इसके अन्तर्गत जिस्मानी और ज़ाहिरी सफ़ाई पूरी तरह आ जाती है। इस्लाम की इस पवित्रता का पसन्द करना, साफ़ रहने की शिक्षा देना, तिहारतपसन्दी इत्यादि के मुक़ाबले में दूसरे सिरे पर वह धर्म हैं, जिनमें सत्य और ईश्‍वर से निकटता का माध्यम सफ़ाई को नहीं, जिस्मानी गन्दगी, मैलापन और नापाकी को माना गया है। मुश्‍रिक (फ़ुटनोट देखें सफ़ा २६० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व यस्अलूनक अ़निल्महीज़ि त क़ुल् हुव अज़न् ला फ़अ्तज़िलुन्निसा'अ फ़िल्महीज़ि ला व ला तक़्रबू-हुन्न ह़त्ता यत़्हुर्न ज फ़ अिज़ा तत़हहर्न फ़अ्तू-हुन्न मिन् हैसु अमरकुमुल्लाहु त अिन्नल्लाह युहि़ब्बुत्तव्वाबीन व युहि़ब्बुल्-मुतत़हि्हरीन (२२२) निसा'अुकुम् ह़र्सुल्लकुम् ष फ़अ्तू ह़र्सकुम् अन्ना शिअ्तुम् ज व क़द्दिमू लि अन्फ़ुसिकुम् त वत्तक़ुल्लाह वअ्लमू अन्नकुम्मुलाक़ूहु त व बश्शिरिल्-मुअ्मिनीन (२२३) व ला तज्अलुल्लाह अ़ुर्ज़तल्लि-अैमानिकुम् अन् तबर्रू व तत्तक़ू व तुस्लिहू बैनन्नासि त वल्लाहु समीअ़ुन् अलीमुन् (२२४) ला युआख़िज़ुकुमुल्लाहु बिल्लग़्वि फ़ी' अैमानिकुम् व लाकिय्युआख़िज़ुकुम् बिमा कसबत् क़ुलूबुकुम् त वल्लाहु ग़फ़ूरुन् ह़लीमुन् (२२५) लिल्लज़ीन युअ्लून मिन्निसा'अिहिम् तरब्बुसु अर्बअ़ति अश्हुरिन् ज फ़ अिन् फ़ा'अू फ़ अिन्नल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (२२६) व अिन् अ़ज़मुत्तलाक़ फ़ अिन्नल्लाह समीअ़ुन् अ़लीमुन् (२२७) वल्मुत़ल्लक़ातु यतरब्बस्न बि अन्फ़ुसिहिन्न सलासत क़ुरू'अिन् त व ला यहि़ल्लु लहुन्न अंय्यक्तुमून मा ख़लक़ल्लाहु फ़ी' अर्ह़ामिहिन्न अिन् कुन्न युअ्मिन्न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि त व बुअ़ूलतुहुन्न अह़क़्क़ु बिरद्दिहिन्न फ़ी ज़ालिक अिन् अरादू' अिस्लाहन् त व लहुन्न मिस्लुल्लज़ी अलैहिन्न बिल्मअ़्रूफ़ि ष व लिर्रिजालि अलैहिन्न दरजतुन् त वल्लाहु अज़ीज़ुन् ह़कीमुन् (२२८)

सيقول ٢ ٢٨ البقرة ٢

وَلَا تَقْرَبُوهُنَّ حَتّٰى يَطْهُرْنَ ۚ فَاِذَا تَطَهَّرْنَ فَاْتُوهُنَّ مِنْ
حَيْثُ اَمَرَكُمُ اللّٰهُ ۗ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ التَّوَّابِيْنَ وَيُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ﴿٢٢٢﴾
نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ ۠ فَاْتُوْا حَرْثَكُمْ اَنّٰى شِئْتُمْ ۡ وَقَدِّمُوْا
لِاَنْفُسِكُمْ ۗ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ مُّلٰقُوْهُ ۗ وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٢٢٣﴾
وَلَا تَجْعَلُوا اللّٰهَ عُرْضَةً لِّاَيْمَانِكُمْ اَنْ تَبَرُّوْا وَتَتَّقُوْا وَتُصْلِحُوْا
بَيْنَ النَّاسِ ۗ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٢٤﴾ لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ
فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ وَلٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا كَسَبَتْ قُلُوْبُكُمْ ۗ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ
حَلِيْمٌ ﴿٢٢٥﴾ لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ مِنْ نِّسَآئِهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ ۚ
فَاِنْ فَآءُوْ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٢٢٦﴾ وَاِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ
اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٢٧﴾ وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْٓءٍ ۗ
وَلَا يَحِلُّ لَهُنَّ اَنْ يَّكْتُمْنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِيْٓ اَرْحَامِهِنَّ اِنْ
كُنَّ يُؤْمِنَّ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۗ وَبُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّهِنَّ فِيْ
ذٰلِكَ اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا ۗ وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِيْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۠
وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ ۗ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٢٨﴾ اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۠
فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ ۗ وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ
تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْئًا اِلَّآ اَنْ يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ
اللّٰهِ ۗ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا فِيْمَا

منزل

ब. २८ १२ ना ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और लोग आपसे 'हैज़' (मासिक-धर्म) का आदेश पूछते हैं[३१४]। आप कह दीजिए कि वह (एक प्रकार की) गन्दगी है[३१५]। पस तुम स्त्रियों को हैज़ के बीच छोड़े रहो[३१६], और जब तक वह पाक न हो जायें उनसे निकटता न करो[३१७]। फिर जब वह पाक हो जायें[३१८], तो उनके पास आओ जिस स्थान से ख़ुदा ने तुम्हें इजाज़त दे रखी है[३१९]। बेशक अल्लाह मुहब्बत रखता है तौबा करनेवालों से और मुहब्बत रखता है पाकसाफ़ रहनेवालों से[३२०]। (२२२) तुम्हारी पत्नियाँ तुम्हारी खेती हैं[३२१], सो तुम अपने खेत में आओ जिस तरह चाहो[३२२], और अपने हक़ में भविष्य के लिए कुछ करते रहो[३२३]। और अल्लाह से डरते रहो और विश्वास रखो कि तुम्हें उससे मिलना है[३२४]। और आप ईमानवालों को शुभ सूचना दे दीजिए[३२५]। (२२३) और अल्लाह (के नाम) को अपनी क़समों के ज़र्ये से अपनी नेकी के और अपने तक़्वे के और अपने जन-हित के कामों के हक़ में परदा न बना लो[३२६]। और अल्लाह बड़ा सुननेवाला, बड़ा जाननेवाला है[३२७]। (२२४) अल्लाह तुम्हारी क़समों में से, निरर्थक क़समों पर पूछगछ न करेगा। अलबत्ता तुमसे उस (क़सम) पर पूछगछ करेगा, जिस पर तुम्हारे दिलों ने इरादा किया है[३२८]। और अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला है, बड़ा सहनशील है[३२९]। (२२५) जो लोग अपनी पत्नियों से भोग न करने की क़सम खा बैठते हैं, उनके लिए मुहलत चार महीने तक है[३३०]; फिर अगर यह लोग रुजूअ कर लें (फिर से मिल लें) तो अल्लाह बख़्शनेवाला है, बड़ा मेहरबान है[३३१]। (२२६) और अगर तलाक़ (ही) का पक्का इरादा कर लें[३३२] तो बेशक अल्लाह बड़ा सुननेवाला, बड़ा जाननेवाला है[३३३]। (२२७) और तलाक़ पानेवालियाँ अपने को तीन मीआदों तक रोके रहें[३३४]। और उनके लिए यह जायज़ नहीं कि अल्लाह ने उनके रहमों में जो पैदा कर रखा है, उसे वह छुपाये रखें[३३५], अगर वह अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखती हैं[३३६]। और उनके पति उनके वापस ले लेने की इस (मुद्दत) में ज़्यादा हक़दार हैं[३३७], बशर्ते कि दशा के सुधार का इरादा रखते हैं[३३८]। और औरतों का (भी हक़) है जैसा कि औरतों पर (हक़) है[३३९] (शर्ई) विधानानुसार[३४०], और पुरुषों को उनके ऊपर कुछ बड़ाई हासिल है[३४१]। और अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है, बड़ा बुद्धिमान है[३४२]। (२२८) ★ ★ रु. २८/१२ आ ७

३१४ यानी स्त्री के विशेष समय में उससे मिलने का आदेश— क़ुर्आन जीवन का मुकम्मल विधान है। वही जीवन जिसमें खाना-पीना, सोना, काम की इच्छा का उत्पन्न होना, बच्चे की माता या पिता बनना सब कुछ दाखिल है। जीवन का हर अनुभाग जो कुछ भी सम्बन्ध चरित्र-निर्माण से रखता है, उसके विषय में वह आवश्यक निर्देश और आदेश वह अनिवार्य रूप से देगा। वह केवल फ़क़ीराना और आरिफ़ाना (ब्रह्मज्ञानियों-जैसा) उपदेशों और कहावतों का ग्रन्थ नहीं है; अर्थ, समाज, नैतिकता, नियम, विधान अर्थात् सामाजिक जीवन के हर अनुभाग और आवश्यक अध्याय उसमें अवश्य ही पाये जायेंगे। यदि ऐसा न होता तो इस निर्देश पुस्तक पर और इसकी परिपूर्णता पर आपत्ति होती और इसमें त्रुटि का एहसास होता।

३१५ (जैसा कि दुनिया में साधारणतः दूसरी क़ौमों ने भी समझा है और सामी नस्लवालों ने विशेष रूप से समझा है।) पुरानी और नयी तिब (दवा-इलाज सम्बन्धी ज्ञान) को मान्य है कि यह एक विशेष प्रकार का खराब खून है, रंग, सुगन्ध और तरकीब में आम खून से अलग।

३१६ (स्त्री-भोग की सीमा तक) यह एतिज़ाल या स्त्रियों को छोड़े रहने का आदेश केवल स्त्री-भोग के कार्यक्रम तक सीमित है। बाज़ जातियों में औरतें अपने इस ज़माने में न दूसरों के साथ कुछ खा-पी सकती थीं, न उठ-बैठ सकती हैं। बाज़ जातियों में उस ज़माने में उनका पकाया हुआ खाना नापाक समझा जाता है। बाज़ जातियों में औरत को उस ज़माने में मैले-कुचैले कपड़े पहनाकर एक कोने में अछूत बनाकर बिठा दिया जाता है, अर्थात् दूसरी जातियों में आम तौर पर इस प्राकृतिक नापाकी के सम्बन्ध में बढ़ा-चढ़ाकर विचार अपना लिये गये। शरीअतें इस्लामी में ऐसे मनाही के आदेश नहीं हैं।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २५७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २५७ से)

क़ौमों में जो फ़िरक़े अघोरपंथी के नाम से हैं उनके विवरण से तो इस पुस्तक को नजिस करने का साहस नहीं, स्वयं मसीहियों के इतिहास में शताब्दियों तक राहिबों के लिए नहाना या जिस्म को धोना और साफ़ करना एक स्थायी पाप माना जाता रहा है।

३२१ और खेत कहते हैं उस भूमि को जिसमें बीज डाले जाते हैं और उसमें सब्ज़ी, अनाज, वनस्पति इत्यादि की पैदावार होती है। खेतवाले उसे अपनी बड़ी दौलत समझकर उससे बड़ा स्नेह रखते हैं और उसकी हर प्रकार से देखभाल करना अपने ऊपर लाज़िमी कर लेते हैं। इस्लाम ने स्त्री-भोग का अस्ल उद्देश्य सन्तान की उत्पत्ति रखा है, यद्यपि उसके दूसरे पहलू अर्थात् स्वाद की तलब को भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया है। आयत के शब्दों से इशारतन् गर्भ-निरोध की समस्या पर भी प्रकाश पड़ता है और किसी ओर से भी इस समस्या का समर्थन नहीं होता। बल्कि उसका खण्डन ही होता है। कौन कृषक ज़मीन में बीज केवल नष्ट करने के लिए डालेगा।

३२२ (इस उपमा और इसके अन्तर्गत आनेवाली बातों को ख़ूब सोच-समझकर) **'फ़अ्तू ह़र्सकुम्'** संकेत है औरत के साथ भोग करने से और क़ुर्आन हकीम ऐसे अवसरों पर अक्सर इशारे ही से काम लेता है। फ़क़ीहों ने यहीं से यह निष्कर्ष निकाला है कि हर ऐसे मौक़े पर मुसलमान को यही चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो बात इशारे ही में कहे। **'ह़र्सकुम्'** "कहाँ" का यह जवाब ख़ूब ध्यान में रखा जाये। प्रवेश खेत ही में होना चाहिए यानी बीज वहीं पड़ना चाहिए, जहाँ उसका स्थान है किसी अन्य स्थान में बाहर नहीं। गोया यहाँ रद्द हो रहा है साफ़-साफ़ यहूद का जो सोहबत की केवल एक ही विधि के माननेवाले थे और उसी को जाइज समझते थे और बाक़ी सबको नाजाइज जानते थे। इसी मज़मून की बहुत सी रिवायतें आयी हैं। आयत में बताया गया है कि प्रकृति के अनुसार हर शक्ल और विधि की आज्ञा है। इस खुले हुए अर्थ को छोड़कर बाज़ लेखकों ने **'अन्ना'** में एक अर्थ 'मकान' का ढूँढ़ निकाला है और इस अर्थ को लेकर इन लोगों ने इसकी तशरीह और अर्थ बताने में अपनी गन्दामज़ाक़ी के अजीब-अजीब प्रदर्शन किये हैं, यद्यपि ज़ाहिर है कि क़ुर्आनी शब्द 'स्थान' और 'मुक़ाम' में किसी परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं पैदा होता, बल्कि इब्ने कसीर ने तो इस अर्थ पर अबू हनीफ़ा तथा शाफ़िई व अहमद हम्बल जैसे इमामों और फ़िक़्ह के जाननेवालों और उनके शिष्यों और बहुत से ताबेईन के बहुमत की राय नक़्ल की है और यहाँ तक कह दिया है कि इस अर्थ से बढ़ जाते से तमाम आलिमों और फ़क़ीहों ने इन्कार किया है, बल्कि बाज़ ने इससे बढ़ जाने को कुफ़्र कहा है। हदीस में सख़्त चेतावनी इस ग़ैरफ़ित्री (अप्राकृतिक) मिलन-विधि पर आयी है। हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि क़ियामत के दिन अल्लाह ऐसे व्यक्ति की ओर नज़र उठाकर भी न देखेगा। क़ुरतबी मुफ़स्सिर ने विवरण दिया है कि एक नहीं बारह सहाबियों ने विभिन्न इबारतों के साथ सही और प्रमाणित हदीसों में रसूल (स०) का क़ौल रिवायत किया है कि यह ग़ैरफ़ित्री विधि हराम है और इब्ने कसीर ने भी बड़े विवरण से इस विषय पर लिखा है। जिस ख़ुदा की बनायी हुई दुनिया में अमली ज़िन्दगी में इस प्रकार के प्रश्न एवं समस्याएँ रोज़मर्रः (प्रतिदिन) पैदा होती रहती हैं, उसी ख़ुदा के उतारे हुए हिदायतनामे में अगर उनसे सम्बद्ध निर्देश एवं आदेश स्पष्ट एवं विवरण-सहित न होते तो यह अजीब बात होती और यह ख़ामोशी हुनर नहीं, ऐब समझी जाती।

३२३ आइन्दा के लिए भेजने की चीज़ अच्छे अमल ही हो सकते हैं। बाज़ लोगों ने आयत के इस अंश से यह अर्थ निकाला है कि अपनी नस्ल को आगे बढ़ाओ। अगर यह अर्थ सही है तो इस नये गर्भ-रोक अमल के विरुद्ध एक और हिदायत हाथ आ जाती है। यह गोया इसकी ताकीद है कि ठीक लज़्ज़त के मश़ग़लों के समय भी अपनी बन्दगी को न भूलो। अपनी ज़िम्मेदारी को याद रखो, तमामतर लज़्ज़तपरस्ती में ही न डूब जाओ बल्कि हो सके तो अपनी लज़्ज़तों को भी इबादत बना लो।

३२४ (क्योंकि इसी चीज़ को नज़र में रखो तो तक़्वा और ख़ौफ़े ख़ुदा आसान हो जायेगा।) आयत में यह शिक्षा है कि मोमिन के हाथ से अल्लाह का तक़्वा (संयम) किसी हाल में छुटने न पाये। **'वत्तक़ुल्लाह'** यानी हर दशा में जीवन के हर-हर क्षण में अल्लाह के तक़्वा पर स्थिर रहो। क़ुर्आन मजीद केवल आदेश ही नहीं देता, बल्कि वह तरीक़ा और विधि भी बताता है जिनसे इन हुक्मों पर अमल आसान हो जाये। हुक्म अभी अल्लाह के तक़्वा का मिला है और अब उसकी आसान विधि बतायी जा रही है कि वह आख़िरत को हर समय याद रखना है। **'वऽलमू'** से केवल जान लेना मुराद नहीं है, बल्कि इस जान लेने तथा ज्ञान को तरोताज़ा रखना मुराद है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३२५ (ऐ पैग़म्बर !) यहाँ जो ईमानवाले मुराद हैं, उनके गुणों का वर्णन अभी ऊपर हो चुका है कि वह अच्छे अमल की व्यवस्था रखते हैं। अल्लाह से डरते रहते हैं और बदले और सज़ा का विश्वास तरोताज़ा रखते हैं।

३२६ अरब जाहिलीयत के जाहिलाना दस्तूरों में से एक यह भी था कि ख़ुदा की क़सम खा-खाकर यह कह बैठते थे कि हम अमुक-अमुक काम नेकी का, तक़्वा का तथा जनहित का न करेंगे और जब कोई कहता तो यही उज्र पेश कर देते कि हम तो इस प्रकार की क़सम खा चुके हैं। इन अच्छे कामों को छोड़ देना यूँ भी हर दशा में बुरा ही था, न कि अल्लाह के नाम और उसकी क़सम को बजाय उससे निकटता के उसकी दूरी का माध्यम बना लिया जाये। जाहिली के इस तरीक़े के खण्डन में यह आयत उतरी है। **'अुर्ज़तुन्'** के आम और जाइज़ अर्थ हैं 'निशाना' और बाज़ों ने यहाँ भी यही मानी रखे हैं, लेकिन एक दूसरा अर्थ है हिजाब (पर्दा) या पर्दे को रोकनेवाला। यहाँ यही माने ज़्यादा चस्पाँ (चरितार्थ) होते हैं। फ़क़ीहों ने अनावश्यक ढंग से और बहुत अधिक क़समें खाने को यूँ भी नापसन्द किया है, क्योंकि इससे अल्लाह के नाम का असम्मान होता है। झूठी क़स्में खाना तो और भी बुरा है।

३२७ (इसलिए हर बात सोच-समझकर मुँह से निकालो और इसीलिए हर समय नीयत में निःस्वार्थता रखो।) यानी तुम्हारा सामना ऐसे मालिक तथा पालनेवाले से है, जो तुम्हारी एक-एक बात का सुननेवाला और तुम्हारे एक-एक हाल का जाननेवाला है।

३२८ यानी पकड़ उन क़समों पर होगी जिनमें इरादा करके झूठ की मिलावट की गयी है। आख़िरत में भी उन्हीं पर पकड़ है और दुनिया में भी उनके लिए प्रायश्चित्त (कफ़्फ़ारा) है। **'बिल्लग़वि फ़ी अैमानिकुम्'** यहाँ मुराद उन क़समों से है जो अनजाने में या बेख़याली में केवल आदत के रूप में मुँह से निकल जाती हैं और बिना इरादा उनमें झूठ की मिलावट हो जाती है। फ़क़ीहों ने ऐसी क़समों की, जिनका विश्वास नहीं होता, कई क़िस्में की हैं। उसका सम्बन्ध भूतकाल की घटनाओं से भी हो सकता है और भविष्य के इरादों से भी हो सकता है। उनके विवरण फ़िक़ह की किताबों में मिलेंगे।

३२९ अतः इन्हीं गुणों के तक़ाज़े से उसने अनर्गल क़िस्मों की क़समों पर पकड़ करना छोड़ दिया और इरादी-झूठी क़स्मों पर भी फ़ौरन् पकड़ न की, बल्कि उसे क़ियामत तक के लिए स्थगित कर दिया।

३३० अरब जाहिली का एक तरीक़ा यह भी था कि शौहर ग़ुस्से में आकर क़सम खा बैठते थे कि अपनी पत्नियों से न मिलेंगे। परिभाषा में इसको **'ओला'** कहते हैं। इस्लामी शरीअत ने इसमें जो सुधार किया और इस विषय में जो आदेश दिये हैं यहाँ उनका वर्णन है। अरब जाहिली **'ओला'** कर लेने के बाद, जो एक प्रकार की तलाक़ ही थी, पत्नी के रोटी-कपड़े और हर प्रकार के हक़ से तुरन्त हाथ खींच लेते थे। इस्लाम ने इसका एक सुधार यह किया कि उसको 'खुला निकाह' या निकाह टूट जाने के बराबर नहीं, बल्कि उसकी केवल शुरुआत समझकर ध्यान देने और सोचने की एक मुद्दत नियत कर दी और यह मुद्दत चार महीनों की रखी, जो इसके लिए बिलकुल पर्याप्त है कि सारे पहलुओं पर ठण्डे दिल से ग़ौर कर लिया जाये।

३३१ [अतः ऐसी क़सम तोड़ने का गुनाह एक हल्के कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित्त) के पश्चात् क्षमा कर देगा और जो शौहर सरे नौ (नये सिरे) से हक़ अदा करने को तैयार हो जायेगा उस पर दया से दृष्टि डालेगा।] **'फ़ अिन् फ़ाअू'** यानी अगर अपने सम्बन्ध तोड़ने के इरादे को छोड़ दें और निकाह के सम्बन्ध को बनाये रखना चाहें। **'फ़ा'** के अस्ल माने वापस होने के हैं और बेहतर दशा की ओर वापसी के हैं। और वापसी की एक अमली शक्ल स्त्री-भोग है, अतः यहाँ भी इशारे में यही समझाया गया है और सहाबा की एक बड़ी संख्या तथा ताबेईन की यही राय है। **'ग़फ़ूर'** बड़ा माफ़ करनेवाला। **'रहीम'** बड़ा दयालु।

३३२ (इतने दिनों के सोच-विचार के बाद) **'तलाक़'** शरीअत में स्त्री-पुरुष के बाहमी सम्बन्धों के नियमित ढंग से अलाहदगी का नाम है यानी निकाह की गाँठ खुलने का। इस्लाम के पूर्व दुनिया में 'तलाक़' के विषय में अजीब कमी-ज़्यादती फैली हुई थी। बढ़ोतरी यहूद के यहाँ और घटाव मसीहियों के यहाँ। यहूद के यहाँ 'तलाक़' पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, न शौहर पर कोई ज़िम्मेदारी होती थी। उसका जब जी चाहा, कारण या अकारण बस एक तलाक़नामा लिखकर पत्नी को दे देता था। स्त्री उस समय दूसरा पुरुष कर सकती थी। तौरेत के क़ानून के शब्द यह हैं— "अगर कोई मर्द कोई औरत लेकर उससे ब्याह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करे और उसके बाद ऐसा हो कि वह उसकी निगाह में प्रिय न हो, इस कारण से कि उसने उसमें कोई गन्दी बात न पाई, तो वह उसका तलाक़नामा लिखकर उसके हाथ में दे और उसे अपने घर से बाहर कर दे और जब वह उस घर से निकल गयी तो जाके दूसरे मर्द की हो जाये।" (इस्तिस्ना)। इस आज़ादी और बेप्रतिबन्ध होने के मुक़ाबले में मसीहियों ने अपने यहाँ अलग होने की कोई गुंजाइश ही नहीं रखी। इन्जील के शब्द यह हैं— "जिसे ख़ुदा ने जोड़ा है उसे आदमी अलग न करे.....जो कोई अपनी धर्मपत्नी को छोड़ दे और दूसरी से विवाह कर ले वह उस पहली के खिलाफ़ बलात्कार करता है और यदि स्त्री अपने पति को छोड़ती है और दूसरे से विवाह करती है तो बलात्कार करती है।" (मरक़ुस)। "मैं नहीं बल्कि ख़ुदावन्द आदेश देता है कि बीवी शौहर से अलग न हो।" (करन्थियून)। अतः मसीही आबादी की बड़ी संख्या यानी कैथोलिक के यहाँ तलाक़ क़तई नाजाइज़ है और मौत के अलावा स्त्री-पुरुष में अलाहदगी की कोई सूरत नहीं है। यही फ़िरक़ा इस्लाम से पूर्व मौजूद था। प्रोटेस्टेण्ट् फ़िरक़ा इस्लाम के प्रकट होने के शताब्दियों के बाद पैदा हुआ है। उसके यहाँ तलाक़ जाइज़ है, परन्तु पहले अदालत में गवाहों के बयान से किसी एक पक्ष के बलात्कार या अत्याचार साबित होने के बाद। यह दशा उन जातियों की थी जो अहले किताब थीं, यानी असलन् उनके नियमों का आधार आसमानी किताबें थीं। रहीं पुरानी जाहिली और मुशरिक "सभ्य", "प्रगतिशील" जातियाँ, सो एक ओर यूनानी जाति में और हिन्दुओं में और एक विशेष ज़माने तक रूमियों में तलाक़ से कोई परिचित ही नहीं था बल्कि हिन्दू मज़हब में तो आज तक तलाक़ नाजाइज़ चली आ रही है, यद्यपि परिस्थितियों से विवश होकर इसके जाइज़ कराने के लिए असम्बली और विधान भवनों में बड़े ज़ोर लगाये जा रहे हैं। दूसरी ओर रूमियों में प्रजातन्त्र के समय के समाप्त होने पर तलाक़ के जाइज़ होने के साथ ही इसका ज़ोर बँधा तो गोया शराफ़त और तलाक़ एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हो गये। दुनिया के दूसरे बड़े-बड़े धर्मों और बड़ी-बड़ी "सभ्य" जातियों की यह कमियाँ और ज़्यादतियाँ दृष्टि में रहें तो शरीअतें इस्लाम की बुद्धिमानी और उसके द्वारा पेश किये हुए बीच के रास्ते और सन्तुलन की क़द्र होगी। इस्लाम ने मानव-प्रकृति का सही अन्दाज़ा करके यह आदेश दिया कि जब पति-पत्नी में मतभेद उस सीमा तक पहुँच जाये कि कोई उपाय सम्भव न रहे तो, और जब यगानगत (सहमति) तथा मेल की दूसरी कोई शक्ल ही सामने न रहे तो फिर उपाय यह है कि दोनों पक्ष हँसी-ख़ुशी निकाह को समाप्त करके एक-दूसरे से स्थायी अलाहदगी इख़्तियार कर लें। इसी का परिभाषाई नाम **'तलाक़'** है। इस अलाहदगी के अमल को भी यूँ ही नहीं छोड़ दिया गया है, बल्कि उस पर अनेक प्रतिबन्ध लागू कर दिये हैं। आगे उन्हीं पाबन्दियों का वर्णन है।

३३३ (इसलिए ख़ूब अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करके अमल का कोई क़दम उठाओ।) **'समीअुन्'** वह तो बड़ा सुननेवाला है, अतः पति-पत्नी के ज़ाहिरी क़ौल को और पतियों की क़समों को सबको सुनता रहता है। **'अलीमुन्'** वह तो बड़ा जाननेवाला है, अतः पति-पत्नी के दिलों के भीतर की छुपी हुई बातों को जानता है उनके इरादों और नीयतों से परिचित है और के हाल के अनुसार ही आदेश देता है। आयतों के अन्त में अल्लाह तआला के गुणों की मान्यता केवल यूँ ही अटकल से नहीं होती। हमेशा अर्थ से परिपूर्ण और बात के सन्दर्भ के लिहाज़ से सारगर्भित होती है। यहाँ स्त्री-पुरुष को और विशेष रूप से पुरुष को उसकी ज़िम्मेदारियों पर चेतावनी देना है, अतः अल्लाह की उन्हीं सिफ़तों का वर्णन यहाँ बहुत उचित और मुनासिब हुआ।

३३४ (दूसरे निकाह से) **'अलमुतल्लक़ातु'** शाब्दिक अर्थ के लिहाज़ से हर तलाक़शुदा स्त्री के लिए विशाल है, परन्तु यहाँ उन बीवियों से मुराद ली गयी है जो आज़ाद हों (शरई कनीज़ न हों), बालिग़ हों, नाबालिग़ न हों और जिनसे सही मेल हो चुका हो (ऐसी न हों जिनको स्पर्श न किया गया हो)। यहाँ के आदेश केवल उन्हीं पत्नियों से सम्बद्ध हैं, जो पतियों से मिल चुकी हों। दूसरी प्रकार की औरतों के तलाक़ के आदेश दूसरे स्थानों पर मिलेंगे। **'यतरब्बस्न बि अन्फ़ुसिहिन्न'** अपने को रोके रहें। ऐसा न हो कि इधर पति ने तलाक़ दी और उधर पत्नी तुरन्त दूसरे पति की तलाश कर ले। तलाक़ पर यह प्रथम प्रतिबन्ध लागू हुआ है। इसके पूर्व निकाह से आज़ादी के पश्चात् जो मुअत्तली का ज़माना है उसे शरीअत की परिभाषा में 'इद्दत' कहते हैं। औरत के लिए इस ज़माने की मीआद में बड़ी हिकमतें और बुद्धिमानियाँ हैं। एक ओर शौहर को ठण्डे दिल से सोचने का मौक़ा मिल जाता है, दूसरी ओर स्त्री के गर्भवती होने की तस्दीक़ हो जाती है। दूसरे धर्म और दूसरी जातियाँ सब शरीअतें इस्लामी के स्थापित किये हुए इस वक़्फ़े के ज़माने के लाभों तथा बुद्धिमत्ता से वञ्चित हैं। **'सलासत क़ुरूअिन्'**— 'क़रअ' के मानी हैं एक मालूम समय या एक नियत मुद्दत। हनफ़ीया के यहाँ का यह सर्वसम्मति का निर्णय है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलाक़ पानेवाली स्त्री अपने तीन विशेष मासिक दिनों (तीन अय्यामें माहवारी) के आने तक अपने को इद्दत में समझे और इस मुद्दत में दूसरा निकाह जाइज़ न समझे।

३३५ इसलिए कि छुपाने का यह प्रयास इद्दत के ज़माने की गिन्ती तथा हिसाब में रुकावट पैदा करेगा और इस प्रकार शरीअत ने जो बुद्धिमानी इसके भीतर रखी है वह नष्ट होकर रहेगी। 'मा ख़लक़ल्लाहु' में 'मा' आम शब्द है। रहम के अन्दर जो चीज़ भी हो, जानदार बच्चा हो, अय्यामें माहवारी का ख़ून हो, दोनों पर शामिल है। अर्थ यह है कि चाहे गर्भ हो चुका हो या मासिक दिनों का दौर हो कुछ भी हो, उसे छुपाना न चाहिए।

३३६ दुनिया के हर इल्म तथा कला का यही हाल है कि वह जिस क़दर मुकम्मल और सुव्यवस्थित होगा, उसी क़दर उसका प्रत्येक भाग एक-दूसरे से संगठित तथा सम्बन्धित होगा। इस्लामी शरीअत दुनिया के तमाम ज्ञानों, इल्मों तथा संगठनों से कहीं व्यवस्थित है, अतः उसके किसी साधारण अंश की ओर से बेख़याली दूसरे भागों और अंशों पर कुप्रभाव डालेगी। आयत का यह अंश बढ़ाकर यह ताकीद कर दी गयी है कि जिस किसी को अल्लाह की सर्वशक्तिशाली पकड़ और प्रशासन और आख़िरत की पूछ-ताछ का, स्पष्टीकरण का पूरा विश्वास है उसकी यह शान नहीं कि एक कण भर अंश, जो उसके आदेशों का है, उसके पालन से मुँह मोड़े या ऐसा साहस करे।

३३७ (और यह वापसी दुबारा निकाह के बिना हो जायेगी।) 'फ़ी ज़ालिक' यानी तीन महीने की मीआद के भीतर। 'अहक़्क़ु बिरद्दिहिन्न' इससे संकेत यही निकलता है कि जहाँ तक हो सके उसे पक्का न होने दे और पति-पत्नी अज़ सरे नौ (पुनः) आबाद हो जायें। शरीअतें इलाही ने तलाक़ को केवल आवश्यकता के अवसर पर उपाय के रूप में अन्तिम विधि के रूप में जाइज़ रखा है, अकारण इसकी इच्छा नहीं दिलायी है और न बेज़रूरत इसे पसन्द ही किया है और हदीस में यह आया है कि अल्लाह के निकट क़ानून में जाइज़ ठहरायी हुई चीज़ों में से यह सबसे ज़्यादा नापसन्द चीज़ है। तीन महीने का समय सोच-विचार के लिए और नागवारी तथा अप्रियता की भावनाओं के ठण्डे पड़ने के लिए बहुत होता है, इस बीच यदि पति पत्नी को वापस लेना चाहे तो तलाक़ को क़ौल या कर्म से मन्सूख़ कर सकता है और इसी को परिभाषा में 'रजुअत' कहते हैं।

३३८ (इस रुजू या रजुअत से न यह कि तलाक़ के ख़ात्मे से और अधिक कष्ट देना उसका उद्देश्य हो।) यद्यपि रजुअत क़ानूनी और ज़ाहिरी लागू तो हर शक्ल में हो ही जायेगा। क़ानूनी आदेश और नैतिक निर्देश दो अलग-अलग चीज़ें हैं। ज़ाहिरी क़ानून इसी दुनिया तक लागू हैं। मोमिन को अपना मामला अल्लाह तआला से दुरुस्त रखना चाहिए, क्योंकि बदले और तरक़्क़ी जो दर्जों में होती है उसका दारोमदार उसी पर है, इसीलिए क़ानूनी हुक्मों के बीच-बीच नीयत की शुद्धता और निःस्वार्थता की ताकीद बराबर आती रहती है।

३३९ यह क़ुरआन की सारगर्भिता का जादू है। इतनी बात इतने छोटे से टुकड़े में आ गयी। उर्दू में यह विषय इस प्रकार अदा होगा— "जिस प्रकार मर्दों का हक़ औरतों पर है, उसी प्रकार औरतों का हक़ भी मर्दों पर है।" गोया दुनिया को यह बता दिया कि यह न समझो कि बस मर्दों के अधिकार औरतों पर और शौहरों ही के अधिकार बीवियों पर होते हैं। नहीं बल्कि इसी प्रकार औरतों के भी अधिकार मर्दों पर और बीवियों के अधिकार शौहरों के जिम्मे होते हैं। औरतों के अधिकारों का नाम अरब के एक 'उम्मी' (स०) की ज़बान पर उस समय लाया जा रहा है, जबकि सारी दुनिया इस विचार से अपरिचित थी और यहूदीयत तथा नसरानीयत की दुनिया में तो औरत गोया हर बुराई का स्रोत थी और नीचता तथा तुच्छता की एक मूर्ति। यहूद की प्रमाणित पुस्तक "जिविश इन्साइक्लोपीडिया" में है— "गुनाह चूँकि पत्नी ही के संकेत से आरम्भ होता है, इसलिए उसको पति के आधीन करके रखा गया और शौहर उसका हाकिम है। शौहर उसका मालिक और आक़ा है और वह उसकी मिलकीयत की वस्तु है।" (जिल्द ६, सफ़ा ५०८)। और मसीही से सम्बद्ध श्री लीकी (Lecky) फ़िरंगी मसीही अपने इतिहास (History of European Morals) में लिखते हैं— "विश्वास यह था कि स्त्री जहन्नम का दरवाज़ा है और तमाम मानवता की बलाओं का कारण। उसे अपने को तुच्छ समझते रहने के लिए यही कारण पर्याप्त है कि वह स्त्री है।" (जिल्द २, सफ़ा १४२)। यह हाल समय के ऊँचे-ऊँचे मज़हबों का था, शिर्क तथा जाहिलीयत के नीचे धर्मों का तो वर्णन करना ही बेकार है और स्वयं अरब देश का यह हाल था कि स्त्रियाँ गोया मानव नहीं, पशु हैं (फ़ुटनोट देखें सफ़ा २६६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अत्तलाक़ु मर्रतानि ए फ़ अिम्साकुम् - बि मअ़रूफ़िन् औ तस्‌रीहुम् - बि अिह्‌सानिन् त व ला यहिल्लु लकुम् अन् तअ्ख़ुज़ू मिम्मा आतैतुमूहुन्न शैअन् अिल्ला अंय्यख़ाफ़ा अल्ला युक़ीमा हुदूदल्लाहि त फ़ अिन् ख़िफ़्तुम् अल्ला युक़ीमा हुदूदल्लाहि ला फ़ ला जुनाह़ अलैहिमा फ़ीमफ़्तदत् बिही त तिल्क हुदूदुल्लाहि फ़ ला तअ़तदूहा ज व मंय्यतअ़द्द हुदूदल्लाहि फ़ अुलाअिक हुमुज़्ज़ालिमून (२२९) फ़ अिन् तल्लक़हा फ़ ला तहिल्लु लहू मिम्बअ़दु हत्ता तन्किह ज़ौजन् ग़ैरहू त फ़ अिन् तल्लक़हा फ़ ला जुनाह़ अलैहिमा अंय्यतराजआ अिन् ज़न्ना अंय्युक़ीमा हुदूदल्लाहि त व तिल्क हुदूदुल्लाहि युबय्यिनुहा लि क़ौमिंय्यअ़लमून (२३०) व अिज़ा तल्लक़्तुमुन्निसाअ फ़ बलग़्न अजलहुन्न फ़ अम्‌सिकूहुन्न बिमअ़रूफ़िन् औ सर्रिहूहुन्न बिमअ़रूफ़िन् ए व ला तुम्‌सिकू हुन्न ज़िरारल्लितअ़तदू ज व मंय्यफ़्अ़ल् ज़ालिक

سيقول ٢ ٢٩ البقرة

افتدت به تلك حدود الله فلا تعتدوها ومن يتعد حدود
الله فأولئك هم الظالمون ﴿٢٢٩﴾ فإن طلقها فلا تحل له من بعد
حتى تنكح زوجا غيره فإن طلقها فلا جناح عليهما أن يتراجعا
إن ظنا أن يقيما حدود الله وتلك حدود الله يبينها لقوم
يعلمون ﴿٢٣٠﴾ وإذا طلقتم النساء فبلغن أجلهن فأمسكوهن
بمعروف أو سرحوهن بمعروف ولا تمسكوهن ضرارا لتعتدوا
ومن يفعل ذلك فقد ظلم نفسه ولا تتخذوا آيات الله هزوا
واذكروا نعمت الله عليكم وما أنزل عليكم من الكتاب والحكمة
يعظكم به واتقوا الله واعلموا أن الله بكل شيء عليم ﴿٢٣١﴾ و
إذا طلقتم النساء فبلغن أجلهن فلا تعضلوهن أن ينكحن
أزواجهن إذا تراضوا بينهم بالمعروف ذلك يوعظ به من
كان منكم يؤمن بالله واليوم الآخر ذلكم أزكى لكم وأطهر و
الله يعلم وأنتم لا تعلمون ﴿٢٣٢﴾ والوالدات يرضعن أولادهن
حولين كاملين لمن أراد أن يتم الرضاعة وعلى المولود له
رزقهن وكسوتهن بالمعروف لا تكلف نفس إلا وسعها
لا تضار والدة بولدها ولا مولود له بولده وعلى الوارث
مثل ذلك فإن أرادا فصالا عن تراض منهما وتشاور فلا

منزل ١

फ़क़द् ज़लम नफ़्सहू त व ला तत्तख़िज़ू आयातिल्लाहि हुज़ुवन् ज वज़्कुरू निअ़मतल्लाहि अलैकुम् व मा अन्ज़ल अलैकुम् मिनल् - किताबि वल्‌हिक्मति यअ़िज़ुकुम् बिही त वत्तक़ुल्लाह वअ़्लमू अन्नल्लाह बि कुल्लि शैअिन् अलीमुन् (२३१) ★ ● व अिज़ा तल्लक़्तुमुन्निसाअ फ़ बलग़्न अजलहुन्न फ़ ला तअ़्ज़ुलू-हुन्न अंय्यन्किह्‌न अज़्वाजहुन्न अिज़ा तराज़ौ बैनहुम् बिलमअ़रूफ़ि त ज़ालिक यूअ़ज़ु बिही मन् कान मिन्कुम् युअ्मिनु बिल्लाहि वल्‌यौमिल्‌आख़िरि त ज़ालिकुम् अज़्का लकुम् व अत्‌हरु त वल्लाहु यअ़लमु व अन्तुम् ला तअ़लमून (२३२)

★ ६० २९ १३ बा ३ ● सू. ३ । ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तलाक़ तो दो ही बार की है[३४३]। उसके बाद (या तो) रख लेना है नियमानुसार या फिर सुन्दरतापूर्वक साथ छोड़ देना है[३४४]। और तुम्हारे लिए जायज़ नहीं कि जो माल तुम उन्हें दे चुके हो उसमें से कुछ वापस लो[३४५], हाँ, सिवाय उस सूरत के जब अंदेशा हो कि अल्लाह के नियमों को दोनों स्थिर न रख सकेंगे[३४६]। सो अगर तुमको यह अंदेशा हो कि दोनों अल्लाह के नियमों को स्थिर न रख सकेंगे[३४७], तो दोनों पर उस (माल) के विषय में कोई गुनाह न होगा जो औरत बदले में दे दे[३४८]। यह सब अल्लाह के नियम हैं सो इनसे बाहर न निकलना। और जो कोई अल्लाह के ज़ाबितों (नियमों) से बाहर निकल जायेगा सो ऐसे लोग तो (अपने हक़ में) ज़ुल्म करनेवाले हैं[३४९]। (२२९) फिर अगर कोई अपनी पत्नी को तलाक़ दे ही दे[३५०] तो वह स्त्री उसके बाद उसको जायज़ न रहेगी, यहाँ तक कि वह किसी और शौहर से निकाह करे[३५१]। फिर अगर वह (भी) उसे तलाक़ दे दे[३५२] तो दोनों पर कोई गुनाह नहीं कि फिर मिल जायें[३५३], शर्त यह है कि दोनों को यह विश्वास हो कि अल्लाह के नियमों को क़ायम रखेंगे[३५४], और यह भी अल्लाह के नियम हैं, उन्हें वह खोलकर उन लोगों के लिए बयान करता है जो इल्म (जानकारी) रखते हैं[३५५]। (२३०) और जब तुम औरतों को तलाक़ दे चुको[३५६] और वह अपनी मुद्दत गुज़रने पर पहुँच जायें[३५७], तो (अब या तो) उन्हें सम्मानपूर्वक रोके रखो और या सम्मानपूर्वक रिहाई दे दो[३५८], और उनको कष्ट पहुँचाने की ग़रज़ से न रोके रहो[३५९]। और जो कोई ऐसा करेगा वह अपनी ही जान पर ज़ुल्म करेगा[३६०]। और अल्लाह के हुक्मों को हँसी-खेल न समझो[३६१], और अल्लाह की नेमतें अपने ऊपर याद करो[३६२], और किताब तथा बुद्धिमत्ता को भी जो उसने तुम पर उतारी है कि उससे वह तुम्हें नसीहतें करता रहता है[३६३]। और अल्लाह से डरते रहो और जाने रहो कि अल्लाह हर चीज़ का जाननेवाला है[३६४]। (२३१) ★ ●

★ रु. २९/१३ आ ३ ● स. ३/४

और जब तुम तलाक़ दे चुको अपनी औरतों को, और फिर वह अपनी मुद्दत को पहुँच चुकें[३६५], तो तुम उन्हें इससे मत रोको[३६६] कि वह अपने शौहरों से निकाह कर लें जब कि वह आपस में शराफ़त के साथ राज़ी हों[३६७]। इस (लेख) से नसीहत की जाती है तुममें से उस व्यक्ति को, जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है[३६८]। यही तुम्हारे हक़ में पाकीज़ातर और साफ़तर हैं। और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते[३६९]। (२३२)

---

३४३ (जब तक कि वापसी की गुंजाइश बाक़ी है।) तलाक़ से यहाँ मुराद 'तलाक़े रज्ई' है। दो बार तलाक़ के शब्दों की अदायगी के बाद रुजूअ (आकृष्ट) करने की गुंजाइश बाक़ी रहती है।

३४४ यानी दो महीनों के बाद, तीसरे महीने, तीसरी पाकी के ज़माने में ज़बान से तलाक़ के शब्दों को अदा करे, या ख़ामोश रहे। दोनों दशाओं में तलाक़ वाक़े हो जायेगी। अब बिना किसी दूसरे शौहर से निकाह किये और तलाक़ पाये उस पहले शौहर से निकाह ठीक न होगा। तो एक सूरत तो यह हुई कि अब पक्का इरादा करके उस तलाक़ को मुकम्मल और पुष्ट कर दिया जाये और दूसरी सूरत यह है कि आख़िरी गुंजाइश से लाभ उठाकर तलाक़ वापस ले ली जाये और स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध सरे नौ से स्थापित हो जायें। **'फ़ अिम्साकुम्'** यानी उस कच्ची तलाक़ पाई हुई पत्नी को रज्अत करके फिर अपने पास रख लेना है। **'बि मअ्रूफ़िन्'** यानी शर्ई नियमों के अनुसार। विवरण फ़िक़ह की पुस्तकों में देखें। **'बि अिह्सानिन्'** यानी तलाक़ से उद्देश्य झगड़े को समाप्त करना हो। अप्रिय स्थिति को समाप्त करना हो, यह न हो कि औरत को ज़लील करना और उसकी दिलशिकनी (दिल तोड़ना) करनी हो। क़ुर्आन मोमिन के ख़ानदान की और उसके घर-बार की इज़्ज़त और सम्मान का किस क़दर ध्यान रखता है। उसका असम्मान तथा निरादर किसी दशा में पसन्द नहीं। यदि आज स्वयं मुसलमानों को अपनी और अपने ख़ानदान की इज़्ज़त और सम्मान का इतना भी ध्यान होता जितना उनके ख़ुदा को है, तो आज घरेलू झगड़ों को देखा भी न जाता।

३४५ (तलाक़ के समय) अक्सर मनुष्य जब ग़ुस्से में आकर तलाक़ देता (फ़ुटनोट देखें सफ़ा २६६ पर)

CC-0. Jammu and Kashmir Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २६३ से)

या जायदाद कि पति के बाद पत्नियाँ भी विरासत में सौतेले बेटों की मिल्कीयत और उनके इस्तेमाल में आने लगी थीं। **'मिस्लुल्लज़ी'** यह मिलना-जुलना किस लिहाज़ से है? वाजिब होने के लिहाज़ से है। यानी यह मुराद नहीं है कि जो अधिकार शौहर की ओर से बीवी पर लागू होते हैं, वही बीवी की ओर से शौहर पर लागू होते हैं, बल्कि केवल हक़ अदा करने के वाजिब होने की यकसानियत (सदृशता) है। शौहर इस भूल में न पड़ जायें कि उनके केवल हक़ ही हक़ हैं, कर्तव्य कुछ नहीं हैं। फ़र्ज़ उन पर भी उसी प्रकार लागू होते हैं जिस प्रकार उनकी बीवियों पर। इसी प्रकार बीवियाँ कहीं इस इफ़्रातें "रौशनखयाली" में न पड़ जायें कि सेवा करना हमारा काम नहीं है। यह सब काम पुरुषों के हैं।

३४० परन्तु पारस्परिक अधिकार का मेयार क्या है? आयत का टुकड़ा इसी प्रश्न का उत्तर है। यानी उन अधिकारों के अनुभागों, अंशों और विवरणों को शरीअत ही के उसूलों और नियमों के अन्तर्गत होना चाहिए या फिर सद्बुद्धि के अन्तर्गत। यह नहीं कि केवल अपनी मर्ज़ी से या जाहिली विचारों के आधीन कोई विधान गढ़ लिया जाये और उनका नाम "स्त्री-अधिकार के नियम" रख दिया जाये।

३४१ जाहिली सभ्यता हर ज़माने में नाना प्रकार के निर्मूल और सभी प्रकार के ग़लत दावे करती रही है और बाद को उन दावों की क्रियात्मक तर्दीद (रद्द करना) और उनका खण्डन भी होता रहा है। नवीन सभ्यता के इन्हीं निराधार नियमों में से एक दावा यह भी है कि औरत और मर्द हर लिहाज़ से समकक्ष हैं, केवल दावा कितनी ही बड़ी संख्या द्वारा दोहराया जाये, दावा ही रहेगा। वह तर्क नहीं बन सकेगा। क़ुर्आन भी अभी जाहिली के समय के एक दावे का खण्डन कर चुका है कि औरत बे-अधिकार नहीं है, वह भी मर्दों की भाँति अपने अधिकार रखती है। अब वह जाहिलीयत के दूसरे दावे का खण्डन करके घोषणा कर रहा है कि दोनों जिन्सों में बराबरी नहीं है। मर्द को औरत पर बड़ाई हासिल है। क़ुर्आनी शब्द 'दर्जा' खूब खयाल में रहे। मर्द औरत के मालिक नहीं हैं, औरत उसकी लौंड़ी या बाँदी नहीं है। अधिकार के लिहाज़ से दोनों एक ही स्तर पर हैं। फिर भी मर्द को औरत पर कुछ बड़ाई हासिल है। नवीन डाक्टरी के विशेषज्ञ, जिन्होंने औरतों-मर्दों की जिस्मानी बनावट, तरकीब और दिमाग़ी तथा मस्तिष्क के अजवों और प्राकृतिक विशेषताओं के इस अध्ययन और शोध करने में उमरें गुज़ार दी हैं, उनकी बढ़ी जमाअत अन्त में इस नतीजे पर पहुँची कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। फिर भी ज्ञान एवं शक्ति के लिहाज़ से मर्द को ही बरतरी हासिल है और स्त्री जिन देशों में पुरुषों के बराबर सिद्ध हुई है वहाँ अपनी महिलापने का खून कर लिया है। परन्तु इस बड़प्पन के साबित करने का यह उद्देश्य क़दापि नहीं है कि बड़प्पन रखनेवाला छोटे पर अत्याचार या कठोरता करे, बल्कि शक्तिशाली को कमज़ोर पर और कृपा करनी चाहिए और यह शिक्षा एक तफ़्सीर करनेवाले सहाबी ने भी दी है।

३४२ मानव-समाज और आपसी मामलों की बहुत से भागों की महत्त्वपूर्ण समस्यायें इस आयत में आ गयीं। अतः यह हक़ था कि अल्लाह तआला की सिफ़तों के ज़िक्र पर बात समाप्त की जाये। **'अज़ीज़ुन्'** वह बड़ी शक्तिवाला है। जो चाहे आदेश दे सकता है। हर मनाही पर वह हावी है। **'हकीमुन्'** परन्तु साथ ही वह बड़ी हिकमतवाला है; अतः वह वही आदेश करता है, जो हज़ारों हिकमतों और बुद्धमानियों से परिपूर्ण होते हैं। बन्दों की दृष्टि वहाँ तक कहाँ पहुँच सकती है।

(फ़ुटनोट सफ़ा २६५ से)

है, तो यह भी कर गुजरता है कि अब तक जो कुछ बीवी को देता है या दिया-लिया है वह भी छीन लेता है। अरब जाहिलीयत में यह दस्तूर और अधिक फैला हुआ था। यहाँ उसी ज़ालिमाना दस्तूर की मनाही की गयी है और बताया गया है कि महर आदि जो कुछ दे चुके हो अब उसको वापस लेने या छीनने का मौक़ा नहीं है। **'मिम्मा' आतैतुमूहुन्न'** आम मुफ़स्सिरों ने इसका अर्थ महर की रक़म लिया है, लेकिन मालिकी-मत के एक तफ़्सीर करनेवाले ने इसे हर उस माल को बताया है, जो शौहर बीवी को दे चुका हो। बाज़ अहले तफ़्सीर भी ऐसा ही कहते हैं। सुन्दर रहन-सहन, सुन्दर अर्थ-व्यवस्था, सुन्दर व्योहार की ताकीद हर दशा में की गयी है। बीवियों को रखो तो भी अच्छी प्रकार, रुख़सत करो तो खुशी के साथ, अच्छे व्योहार के साथ। **'शैअन्'** यानी कुछ भी हो छोटी या बड़ी वस्तु, वापस न लो। यह ताकीद इसी कारण है कि गुस्से और नागवारी के अवसर पर मनुष्य को यही सब करने की इच्छा होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३४६ (पति-पत्नी के अधिकारों को पूरा करने के विषय में) **'यख़ाफ़ा'**, **'युक़ीमा'** वह दोनों यानी पति-पत्नी । **'ख़ौफ़'** यहाँ एक नागवार नतीजे के उत्पन्न होने के अर्थ में सम्भवतः आया है । उर्दू में 'अन्देशे' का शब्द इसी अवसर के लिए है ।

३४७ यानी मियाँ-बीवी के हक़ कम से कम भी अदा न हो सकें । और सहयोग की कोई सूरत ही न हो । **'ख़िफ़्तुम्'** हाकिमों से सम्बोधन है और उनसे जो ऐसे मामलों में सहायक बन सकते हैं । **'हुदूदुल्लाहि'** यानी मियाँ-बीवी के रहन-सहन के फ़र्ज़ इत्यादि ।

३४८ यानी बीवी अगर निकाह की पाबन्दी से आज़ादी पाये और शौहर से तलाक़ हासिल करने हेतु अपने महर से या उसके कुछ भाग से हाथ उठा ले तो यह भी जाइज़ है और इस माल को स्वीकार कर लेना पति के लिए जाइज़ होगा । तलाक़ की इस विशेष शक्ल का नाम, जिसमें तलाक़ स्त्री चाहती हो, शरीअत की परिभाषा में 'ख़ुलअ़' कहते हैं, जिसके हुक्मों का विवरण फ़िक़्ह की पुस्तकों में मिलेगा । मौलाना थानवी की पुस्तक "बयानुल् क़ुर्आन" में भी विवरण-सहित बात पायी जाती है । 'ख़ुलअ़' के जाइज़ होने पर हज़रत उमर, हज़रत उस्मान, हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद जैसे सहाबी इत्तिफ़ाक़ करते हैं । फ़क़ीहों के यहाँ एक बहस यह भी चली है कि 'ख़ुलअ़' उसी अन्देशे के वक़्त जाइज़ है, जिसका आयत में वर्णन है । यूँ भी फ़क़ीहों और मुज्तहिदों (सम्प्रदाय के आलिमों) की राय यही है कि ख़ुलअ़ हर सूरत में जाइज़ है केवल गिन्ती के चन्द फ़क़ीहों— ज़ुहरी, नख़ई और दाऊद ज़ाहिरी मज़हब का मत यह नक़्ल हुआ है कि ख़ुलअ़ की आज्ञा केवल ख़ौफ़ और ग़ुस्से की हालत में है और उन्होंने इस आयत के ज़ाहिर से हुज्जत ली है । फ़क़ीहों की बड़ी संख्या ने इस क़ौल को रद कर दिया है और कहा है कि आयत में ख़ुलअ़ की यह शर्त कदापि नहीं लिखी है, बल्कि केवल एक आम हालत का बयान है कि आम तौर पर ख़ुलअ़ की नौबत ऐसी ही दशा में आती है ।

३४९ यह ताकीद इस मामले की है कि शरई हुक्मों में किसी छोटी से छोटी बात को भी यह न समझा जाये कि उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है । शरीअत-जैसी व्यवस्थित चीज़ में यही होना भी चाहिए था । मशीन जितनी नाज़ुक और आला कारीगरी का नमूना होगी, उसी क़दर उसका एक-एक अकेला पुरज़ा अपने स्थान पर बेबदल होगा । जिस प्रकार निकाह और तलाक़ से सम्बद्ध यह चेतावनी आयी है, उसी प्रकार रोज़े के मसलों और उसके अहकाम के अन्त में भी आया है— **'तिल्क हुदूदुल्लाहि फ़ ला तक़्रबूहा'** । फ़क़ीहों और तफ़्सीर करनेवालों ने इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि **'हुदूदुल्लाहि'** की दो क़िस्में हैं— एक का सम्बन्ध हुक्म से है कि करो और एक सम्बन्ध नहीं करो से है ।

३५० यानी उन पहली दो तलाक़ों के बाद रजअ़त न करे और तलाक़ पर ही क़ायम रहे तो अब तीसरी बार यानी पहली तलाक़ से तीन महीने बीत जाने के बाद तलाक़ क़तई रूप में लागू हो जायेगी । तीन महीने का समय सोच-विचार करने के लिए और सुलह सफ़ाई के लिए काफ़ी है । इस तलाक़ का अर्थ वह तीसरी ही तलाक़ है, जो हर प्रकार से क़तई होती है, और यह मुराद सबके नज़दीक संयुक्त है । इसमें कोई विरोधाभास नहीं है ।

३५१ (और वह शौहर उससे मिलन भी कर ले) दूसरे शौहर से निकाह, पहले शौहर से क़तई तलाक़ पाने के तीन महीने के बाद यानी इद्दत के दिनों की समाप्ति के बाद ही हो सकेगा । **'तन्‌किह्'** निकाह अपनी शरई परिभाषा में यानी 'अक़्दे निकाह' के अर्थ में नहीं बल्कि अपने असली और शब्दकोश के अर्थ में यानी मिलन के मानी में । केवल अक़्द का अर्थ तो स्वयं **'ज़ौजन्'** से निकल आता है । **'तन्‌किह्'** का अर्थ मिलन ज़ाहिर करता है । और इमाम इब्ने जरीर इस प्रश्न के उत्तर में कि मिलन का ज़िक्र विवरण के साथ क़ुर्आन में मौजूद नहीं तो आख़िर यह तर्क कहाँ से पैदा किया गया है, लिखते हैं कि अर्थ का यह तर्क सारी उम्मत के बहुमत ने पैदा किया है । इमाम राज़ी ने लिखा है कि क़ौलें मुख़्तार यही है कि मिलन की शर्त हदीस से नहीं क़ुर्आन ही से साबित है । आगे बहुत विवरण के साथ लिखा है कि निकाह का शब्द जब आज़ाद रूप में है तब तो मुराद अक़्दे ज़ौजियत से होगी । लेकिन जब इज़ाफ़त **'ज़ौजतहू व मरअतुहू'** के साथ होगी तो मिलन ही होगी और आख़िर में यह निष्कर्ष निकाला है कि फ़क़ीहों की बहुमत का यही विचार है कि तलाक़ पायी हुई स्त्री के साथ पहले शौहर का निकाह तब ही दुरुस्त है, जब दूसरा पति उसके साथ मिलन करके उसे तलाक़ दे दे और उस तलाक़ पर भी तीन महीने का समय बीत जाये । विरोध केवल दो ताबेईन से वर्णित है । उनके विचारों में केवल दूसरा अक़्द भी बिना मिलन, तलाक़ के बाद प्रथम पति से या किसी अन्य से अक़्द के लिए पर्याप्त है । परन्तु बहुमत की राय शक्तिशाली है और इस्लामी शरीअत के मिज़ाज के ठीक अनुसार है । शरीअत ने तलाक़ को अवश्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पसन्द नहीं किया है। इसके लागू होने में नाना प्रकार के प्रतिबन्ध लागू कर दिये हैं और यह रुचि उत्पन्न की है कि खूब सोच-समझकर ही तलाक़ दी जाये, परन्तु इन सब मह्लों (कठिन कामों) से गुज़र जाने के बाद जब तलाक़ लागू ही हो जाये तो फिर अब रिआयत का कोई अवसर नहीं। शौहर को अब दो बार वह पत्नी वापस नहीं मिल सकती। अब उसे कुछ परेशान होना पड़ेगा तब वह वापस हो सकती है। बलात्कार की सज़ा में भी शर्ई क़ानून की यही बुनियाद कार्यरत है। बलात्कार का सुबूत अत्यन्त शक्तिशाली बल्कि क़तई होना चाहिए। ज़रा सा भी सन्देह होगा तो उसका लाभ अभियुक्त ही को मिलेगा। परन्तु यदि यह मह्ले तय हो जायें तो सज़ा के लागू होने में कोई रिआयत की गुंजाइश नहीं है। **'मिम्बअ्दि'** यानी तीसरी तलाक़ के बाद। इस शर्त के साथ कि नये शौहर का किसी तलाक़शुदा के साथ निकाह करना कि बाद मिलन तलाक़ दे दी जायेगी ताकि वह अपने प्रथम शौहर के लिए जाइज़ हो जाये 'हलाल:' कहलाता है। हदीस में उस दूसरे शौहर पर जो निकाह जैसे अहम, गम्भीर और पवित्र सन्धि को प्रथम शौहर की खातिर एक खेल और तफ़रीह की चीज़ बनाये देता है और वह पहला शौहर जिसकी खातिर निकाह की सन्धि की पवित्रता और गम्भीरता को मिट्टी में मिलाया जा रहा है, इन दोनों पर लानत आयी है और अक्सर फ़क़ीहों के यहाँ यह निकाह 'निकाहे फ़ासिद' यानी गन्दा निकाह माना गया है। हनफ़ीया के यहाँ यह निकाह क़ानूनी हो जायेगा, परन्तु इससे गुनाह ज़रूर होगा। क़ानूनी निकाह और शर्ई तथा अख्लाक़ी निकाह दो अलग-अलग चीजें हैं। इस अन्तर की मिसाल शरीअत के और भी मसलों में मिल जाती है।

३५२ (और इस दूसरी तलाक़ पर भी तीन महीने की इद्दत गुज़र जाये।) यह तलाक़ देनेवाला ज़ाहिर है कि दूसरा पति होगा।

३५३ (पूर्व की भाँति दो बार निकाह करे।) तलाक़शुदा स्त्री अपने शौहर के लिए अब भी हमेशा की भाँति हराम नहीं हो जाती। इन बीच के मह्लों से गुज़रने के बाद अब भी उसका निकाह अपने पहले शौहर से हो सकता है! मामले के हर भागी के अधिकारों की पूरी रिआयत का, जो बुद्धिमत्ता के साथ व्यवस्था इस्लामी शरीअत के सारे अंशों में है, उसका यह उच्च कोटि का नमूना यह तलाक़ की बारीकियाँ और आदेश हैं। मानव-मस्तिष्क अपनी सारी कोशिशें करके थक जायेगा, इतनी बारीकियों पर हावी नहीं हो पायेगा।

३५४ (और आइन्दः की अकारण की रंजिश और मन-मलीनता उत्पन्न करके एक-दूसरे के हक़ मारने के गुनाह में न लीन होंगे।) **'युक़ीमा हुदूदल्लाहि'** अल्लाह के नियमों को स्थिर रखने की बात इस सन्दर्भ में यही है कि रहन-सहन की सुन्दरता का खयाल रखा जाये। **'अिन्ज़न्न'** यानी अगर आशा और इरादा भी रखते हों, वैसे यक़ीन के साथ भविष्य का हाल कौन जानता है या जान सकता है।

३५५ समझदार और बुद्धिमानों के लिए। उन लोगों के लिए जो आदेशों और अल्लाह के हुक्मों की जानकारी रखते हैं। **'हुदूदल्लाहि'** यानी अल्लाह के आदेश और नियम।

३५६ यानी वही एक या दो बार दी हुई 'तलाक़े रज्ई' (वह तलाक़ जिसमें पुरुष स्त्री से पुनः विवाह कर सकता है), जो अभी निश्चित नहीं हुई है और जिससे अभी रुजूअ करने की गुंजाइश है।

३५७ (परन्तु वह समय अभी पूरा गुज़र न चुका हो) अर्थात् इद्दत का ज़माना अब समाप्त होने ही पर हो, परन्तु पूर्णरूपेण समाप्त न हुआ हो। अन्यथा बिलकुल समाप्त हो जाने के बाद यह होगा कि कोई गुंजाइश रज्अत की बाक़ी न रहेगी। **'अजलहुन्न'** 'अजल' से सारी मुद्दत भी मानी जा सकती है और आखिर मुद्दत भी।

३५८ यानी जब वह तिमाही मुद्दत समाप्त होने पर आये तो अब शौहर को दो अधिकार हैं या यह कि वह अपनी उस कच्ची तलाक़ वाली पत्नी को सम्मान के साथ वापस ले ले और या शराफ़त और इज़्ज़त के साथ उसे अपने घर से बिदा कर दे और स्थायी अलाहदगी इख्तियार कर ले। दोनों सूरतों में से जो भी अपनाई जाये, तमाम शरीअत और नैतिकता के नियम तथा सम्मान के अनुसार हो।

३५९ गोया तलाक़शुदा स्त्री के हक़ मारे जाने की गुंजाइश किसी दशा में भी नहीं है। पत्नी के रूप में यदि वापसी तो घर बसाने के लिए हो न कि उसे बरबाद करने के लिए।

३६० (और अपनी जियादतियों की सज़ा दुनिया और आखिरत में भुगतेगा।) पत्नियों के हक़ अदा न करनेवाले, पत्नी के अधिकारों में बराबर कमी करनेवाले खयाल करते रहें कि ऐसे व्यक्तियों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए कैसी तम्बीहें और चेतावनियाँ हैं, जो अल्लाह की किताब में मौजूद हैं। वह लोग भी इस किताब को ध्यानपूर्वक पढ़ें, जिनका विचार है कि शरीअत ने औरतों के हक़ दिलाने में कंजूसी बरती है।

३६१ (कि जिस पर जी चाहा अमल किया और जिसे चाहा छोड़ दिया।) इस्लामी शरीअत में सामूहिक जीवन और रहन-सहन की नीवें का पत्थर परिवार और पारिवारिक जीवन है और परिवार की कुन्जी का शब्द पति-पत्नी के सही सम्बन्ध हैं, अतः एक अर्थ में यह कहना चाहिए कि रहन-सहन की सारी व्यवस्था की बुनियाद ही पति-पत्नी के हक़ों की अदायगी है और जिस प्रकार कुछ छोटी-छोटी असावधानियाँ बड़े-बड़े रोगों का कारण बन जाती हैं, इसी प्रकार शरीअत की आंशिक बातों की ओर से लापरवाही करने से बड़े-बड़े फ़सादों का पट खुल जाता है। इन बारीकियों को सँभाले रहना शरीअत की ही बुद्धिमानी की व्यवस्था का कार्य है। एक अर्थ यह भी हो सकता है कि यह आदेश केवल तफ़रीही नहीं हैं। पूरी गम्भीरता से हर दशा में लागू हो जायेंगे। यह नहीं कि पहले तो ज़बान से स्पष्ट शब्दों में तलाक़ दे दी और फिर बाद को यह कहकर टाल देना चाहा कि यह तो हँसी में कहा था। बाज़ ताबेईन का यही विचार है।

३६२ (और इन्हीं नेमतों में से रहन-सहन की यह मुकम्मल और हर बात को समेटनेवाली शिक्षा भी है।)

३६३ **'यअ़िज़ुकुम बिही'** इससे यानी इसके माध्यम से वह तुमको नसीहतें करता रहता है। **'बिही'** में सर्वनाम **'मा'अन्ज़ल'** की ओर है।

३६४ (और छोटे-बड़े हर आदेश की भलाई की उसी को ख़बर है।) **'वत्तक़ू, वऽलमू'** अल्लाह का तक़्वा और यह बात हर समय नज़र के सामने रखना कि अल्लाह की जानकारी सम्पूर्ण है, कामिल है, यही बात अच्छे अमल और पाकसाफ़ ज़िन्दगी की आधार है।

३६५ (और इद्दत पूरी करके दूसरे निकाह की आर्ज़ूमन्द हों।) **'अिज़ा तल्लक़्तुम'**— यहाँ यह ख़िताब सिर्फ़ शौहरों से नहीं, आम उम्मत से है। **'बलग़्न अज़लहुन्न'** यहाँ ज़मानए इद्दत का मतलब ख़त्म होने के क़रीब मुराद नहीं, जैसा कि आयत 'मा क़ब्ल' में था, बल्कि बिलकुल ख़त्म मुराद है।

३६६ [जैसा कि अरब में बहुत से मौक़ों पर औलियाए अक़्रिबा (अपने बुज़ुर्गों) की तरफ़ से रोकने का रिवाज था।] **'अ़ज़्ल'**— के माने मन्अ (रोकने), हब्स (अवरोध) के हैं।

३६७ **'अज़्वाजहुन्न'** —यानी उनके तज्वीज़ किये हुए शौहर, फिर चाहे वह नये हों या वही पुराने हों जो एक बार उन्हें छोड़ चुके हों। **'यन्किह़्न'** —इस शब्द से मालूम हुआ कि औरतें ख़ुद भी अपना निकाह कर सकती हैं। और यहीं से हनफ़ीया ने यह मसलः निकाला है कि निकाह बग़ैर वली (या सरपरस्त) के भी जाइज़ है। **'तराज़ौ'** हनफ़ीया ने इस शब्द से यह निष्कर्ष निकाला है कि ईजाब क़बूल (शादी में जो दूल्हा-दुलहन की मर्ज़ी ली जाती है) निकाह का आवश्यक अंश है। यह और बात है कि कभी पति-पत्नी के स्थान पर उनके वली या वकील कर दें। **'बिल्मऽरूफ़ि'** यह प्रतिबन्ध उन हुक्मों में हर जगह लगा हुआ है और कितनी बार इसको दोहराया गया है। उद्देश्य यह है कि कोई मामूली से मामूली बात भी दीन तथा नैतिकता के नियम के विरुद्ध न होने पाये और एक सुन्दर रहन-सहन की व्यवस्था बन सके जो शराफ़त के अनुसार हो।

३६८ उन शिक्षाओं और निर्देशों की पूरी क़द्र उन्हीं को होगी जो कामिल मोमिन हैं और जिनका ईमान सम्पूर्ण है।

३६९ बारीक बुद्धिमत्ता और सच्ची बेहतरी और हित का ज्ञान, सर्वज्ञानी एवं सब कुछ देखनेवाले अल्लाह तआला को हो सकता है, या कि गन्दे बन्दों को हो सकता है जिनका ज्ञान अधूरा होता है? **'अज़्कालहुम'** व **'अत्हरु'** यानी लाभदायक आदेशों, बुद्धिमानी और अमल के योग्य, आसान और वह भी निजी तथा धर्म की रू (कारण) से व्यक्ति-चरित्र तथा सामूहिक हितों दोनों के मेयार से। दूसरे धर्मों के विपरीत इस्लाम जिस व्यवस्था को लेकर आया है वह केवल सूफ़ियों, योगियों, साधुओं तथा फ़लसफ़ियों के लिए नहीं केवल तपस्या और रियाज़त करने के लिए नहीं, जन-मानस के लिए है और इस भौतिक जगत के भी सामूहिक, आर्थिक तथा सामाजिक हित का तक़ाज़ा यही है कि अमल उसके क़ानून पर किया जाए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वल्वालिदातु युर्ज़िअ़्न औलादहुन्न ह़ौलैनि कामिलैनि लिमन् अराद अंय्युतिम्-
मर्रज़ाअ़त त व अ़लल्मौलूदि लहू रिज़्क़ुहुन्न व किस्वतुहुन्न बिल्मअ़्रूफ़ि त ला
तुकल्लफ़ु नफ़्सुन् इल्ला वुस्अ़हा ज ला तुज़ार्र वालिदतुम् - बि वलदिहा व ला
मौलूदुल्लहू बि वलदिही क़ व अ़लल्वारिसि मिस्लु ज़ालिक ज फ़ अिन् अरादा
फ़िसालन् अ़न्तराज़िम्मिन्हुमा व तशावुरिन्
फ़ ला जुनाह अ़लैहिमा त व अिन् अरत्तुम्
अन् तस्तर्ज़िअ़ू औलादकुम् फ़ला जुनाह़
अ़लैकुम् अिज़ा सल्लम्तुम् मा आतैतुम्
बिल्मअ़्रूफ़ि त वत्तक़ुल्लाह वअ़्लमू अन्नल्लाह
बिमा तअ़्मलून बसीरुन् (२३३) वल्लज़ीन
युतवफ़्फ़ौन मिन्कुम् व यज़रून अज़्वाजंय्यतरब्बस्न
बिअन्फ़ुसिहिन्न अर्बअ़त अश्हुरिंव्व अ़श्रन् ज
फ़ अिज़ा बलग़्न अजलहुन्न फ़ ला जुनाह़
अ़लैकुम् फ़ीमा फ़अ़ल्न फ़ी अन्फ़ुसिहिन्न
बिल्मअ़्रूफ़ि त वल्लाहु बिमा तअ़्मलून
ख़बीरुन् (२३४) व ला जुनाह़ अ़लैकुम्
फ़ीमा अ़र्रज़्तुम् बिही मिन् ख़ित्बतिन्निसाअि
औ अक्नन्तुम् फ़ी अन्फ़ुसिकुम् त अ़लिमल्लाहु अन्नकुम् सतज्कुरूनहुन्न व लाकिल्ला
तुवाअ़िदूहुन्न सिर्रन् अिल्ला अन् तक़ूलू क़ौलम्-मअ़्रूफ़न् त ५ व ला तअ़्ज़िमू
अ़ुक़्दतन्निकाहि ह़त्ता यब्लुग़ल्किताबु अजलहू त वअ़्लमू अन्नल्लाह
यअ़्लमु मा फ़ी अन्फ़ुसिकुम् फ़ह़्ज़रूहु ज वअ़्लमू अन्नल्लाह ग़फ़ूरुन्
★ रु. ३० / १४ आ ४ ह़लीमुन् (२३५) ★ ला जुनाह़ अ़लैकुम् अिन् तल्लक़्तुमुन्निसाअ मालम्
तमस्सूहुन्न औ तफ़्रिज़ू लहुन्न फ़रीज़तन् ज सला ०व मत्तिअ़ू-हुन्न ज
अ़लल्मूसिअ़ि क़दरुहू व अ़लल्मुक़्तिरि क़दरुहू ज मताअ़म्-बिल्मअ़्रूफ़ि ज ह़क़्क़न्
अ़लल्-मुह़्सिनीन (२३६) व अिन् तल्लक़्तुमूहुन्न मिन् क़ब्लि अन् तमस्सूहुन्न
व क़द् फ़रज़्तुम् लहुन्न फ़रीज़तन् फ़ निस्फ़ु मा फ़रज़्तुम् अिल्ला अंय्यअ़्फ़ून औ
यअ़्फ़ुवल्लज़ी बियदिही अ़ुक़्दतुन्निकाहि त व अन् तअ़्फ़ू अक़्रबु लित्तक़्वा त
व ला तन्सवुल्फ़ज़्ल बैनकुम् त अिन्नल्लाह बिमा तअ़्मलून बसीरुन् (२३७)

سیقول ٢ ٣٠ البقرة ٢

جناح عليهما وان اردتم ان تسترضعوا اولادكم فلا جناح
عليكم اذا سلمتم ما اتيتم بالمعروف واتقوا الله واعلموا ان
الله بما تعملون بصير ۝ والذين يتوفون منكم ويذرون
ازواجا يتربصن بانفسهن اربعة اشهر وعشرا فاذا بلغن
اجلهن فلا جناح عليكم فيما فعلن في انفسهن بالمعروف
والله بما تعملون خبير ۝ ولا جناح عليكم فيما عرضتم به
من خطبة النساء او اكننتم في انفسكم علم الله انكم
ستذكرونهن ولكن لا تواعدوهن سرا الا ان تقولوا قولا
معروفا ولا تعزموا عقدة النكاح حتى يبلغ الكتب اجله
واعلموا ان الله يعلم ما في انفسكم فاحذروه واعلموا ان
الله غفور حليم ۝ لا جناح عليكم ان طلقتم النساء ما
لم تمسوهن او تفرضوا لهن فريضة ومتعوهن على الموسع
قدره وعلى المقتر قدره متاعا بالمعروف حقا على المحسنين ۝
وان طلقتموهن من قبل ان تمسوهن وقد فرضتم لهن
فريضة فنصف ما فرضتم الا ان يعفون او يعفوا الذي بيده
عقدة النكاح وان تعفوا اقرب للتقوى ولا تنسوا الفضل
بينكم ان الله بما تعملون بصير ۝ حفظوا على الصلوت و

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और माएँ अपने बच्चों को दूध पिलाएँ पूरे दो साल[३७०], (यह मुद्दत) उसके लिए जो रज़ाअत (दूध पिलाने के ज़माने) की पूर्ति करनी चाहे[३७१]। और जिसका बच्चा है उसके ज़िम्मे है उन (माँओं) का खाना और कपड़ा दस्तूरानुसार[३७२]। किसी शख़्स को हुक्म नहीं दिया जाता सिवाय उसकी क्षमता के अनुसार[३७३]। न किसी माँ को तकलीफ़ पहुँचाई जाये और न किसी बाप को ही तकलीफ़ पहुँचाई जाये उसके बच्चे के कारण[३७४], और इसी प्रकार की (व्यवस्था) वारिस के ज़िम्मे भी है[३७५]। फिर यदि दोनों अपनी पारस्परिक रज़ामन्दी और परामर्श से दूध छुड़ा देना चाहें[३७६] तो दोनों पर कोई गुनाह नहीं। और अगर तुम लोग अपने बच्चों को (किसी और अन्ना का) दूध पिलवाना चाहो तब भी तुम पर कोई गुनाह नहीं, जब कि तुम (उनके) हवाले कर दो जो कुछ उन्हें तुमको देना है दस्तूर के अनुसार[३७७]। और अल्लाह से डरते रहो[३७८] और जाने रहो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसका ख़ूब देखनेवाला है[३७९]। (२३३) और तुमसे जिनकी मृत्यु हो जाती है और बीवियाँ छोड़ जाते हैं, वह बीवियाँ अपने आप को चार महीने और दस दिन तक रोके रखें[३८०]। फिर जब वह अपनी मुद्दत तक पहुँच जायें[३८१] तो तुम पर इस विषय में कोई गुनाह नहीं कि वह औरतें अपने निज के बारे में कुछ (कार्यवाही) करें शराफ़त के साथ[३८२]। और जो कुछ भी तुम करते हो अल्लाह उससे भलीभाँति परिचित है[३८३]। (२३४) और तुम पर कोई गुनाह इसमें नहीं है कि तुम उन (इद्दत वाली) औरतों के निकाह के पैग़ाम के विषय में कोई बात संकेत के रूप में कहो या (यह इरादा) अपने मन में ही छुपाये रखो[३८४]। अल्लाह को तो जानकारी है कि तुम उन औरतों का ज़िक्र करोगे[३८५], अलबत्ता उनसे कोई गुप्त वादा (भी) न करो[३८६], परन्तु हाँ, कोई बात इज़्ज़त और सम्मान के अनुसार (चाहो तो) कह दो[३८७]। और निकाह करने का इरादा उस समय तक न करो, जब तक कि नियत समय अपनी समाप्ति को न पहुँच जाये[३८८]। और जाने रहो कि जो कुछ तुम्हारे दिलों में है अल्लाह उसे जानता है[३८९], सो उससे डरते रहो और जाने रहो कि अल्लाह बख़्शनेवाला है, बड़ा बर्दाश्तवाला है[३९०]। (२३५) ★ ★ रु. ३० / १४ आ ४

तुम पर कोई गुनाह नहीं कि तुम उन बीवियों को, जिन्हें न तुमने हाथ लगाया और न उनके लिए महर (वह इक़रार, जो निकाह के समय शौहर औरत के साथ जायदाद व नक़द रुपया देने का करता है) नियत किया, तलाक़ दे दो[३९१]। और उन्हें ख़र्च दे दो जो दे सकता है उसके ज़िम्मे उसकी हैसियत के योग्य, और तंगी वाले को उसकी हैसियत के लायक़[३९२], (यह) ख़र्च शराफ़त के अनुसार हो। (और यह) वाजिब है अच्छे मामले के लोगों पर[३९३]। (२३६) और अगर तुमने उन्हें तलाक़ दे दी है पूर्व इसके कि उन्हें हाथ लगाया हो, परन्तु उनके लिए कुछ महर नियत कर चुके हो, तो जितना महर तुमने नियत किया है उसका आधा वाजिब है सिवाय उस स्थिति के कि या तो वह औरतें स्वयं माफ़ कर दें, या वह अपना हक़ माफ़ कर दे जिसके हाथ में निकाह की गाँठ है[३९४]। और अगर तुम अपना हक़ माफ़ कर दो तो यह बहुत ही तक़्वा की निकटता है[३९५]। और आपस में सुन्दर व्योहार और एहसान को उपेक्षित न करो[३९६]। तुम जो कुछ भी करते हो अल्लाह अवश्य उसका ख़ूब देखनेवाला है[३९७]। (२३७)

---

३७० दूध पिलाना असली अधिकार माँ का है और उससे बढ़कर कोई दूध पिलानेवाली नहीं हो सकती। पुराने वैद्यों और नये डॉक्टरों तथा लेडी डॉक्टरनियों सबकी इस बात पर सहमति है। **'अल्वालिदातु'** चाहे उन माँओं का निकाह बाक़ी हो या तलाक़ हो चुकी हो। **'औलादहुन्न'** इस प्रतिबन्ध ने यह स्पष्ट कर दिया कि मुराद माँओं से है नानियाँ, दादियाँ नहीं। पूरी दूध पिलाने की मुद्दत दो वर्ष पर भी डॉक्टरों की सहमति है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३७१ यानी जो पूरे निसाब की पूर्ति किसी आवश्यकता या हित के कारण न करना चाहे, उसके लिए कम समय भी माना जा सकता है और दूध बढ़ाई दो साल के पूर्व भी हर सिन (आयु) में जाइज़ है।

३७२ दूध पिलानेवाली के वेतन और खाने-कपड़े की ज़िम्मेदारी हर दशा में बाप के सर है और दूध पिलानेवाली आम स्थितियों में माता को ही होना चाहिए चाहे वह मायें अभी तक निकाह में हों या इद्दत की पाबन्दी में। **'बिलमअ़्रूफ़ि'** यानी मुल्क के शरीफ़ाना क़ायदे के अनुसार जो शर्ई नियम के विरुद्ध न हो। फ़क़ीहों ने लिखा है कि इस खिलाने-पिलाने में पुरुष की वास्तविक दशा का विश्वास किया जाएगा। न उसे कंजूसी से काम लेना चाहिए, न बेजा खर्च करने की आवश्यकता होगी।

३७३ (और उसके जिस्म की बनावट के अनुसार) अतः यहाँ भी दूध पिलाने का आदेश मिला तो माता को, क्योंकि यह बात स्त्री की ही ज़िम्मेदरयों में से है। और उसको खिलाने-पिलाने की ज़िम्मेदारी रखी गयी है बाप के सर, क्योंकि कमाना और खर्च करना पुरुष ही की ज़िन्दगी से मुनासिबत रखता है। छोटी-छोटी बातों के बीच नियमों से काम लेना यह क़ुर्आन का ही गुण है।

३७४ आयत में बाप और माता दोनों को ही चेतावनी है। बाप को तो यह कि वह अकारण माता पर कठोरता न करे और माता को यह कि वह लड़के के बाप से बिना कारण सख़्त माली माँग न करे। न्याय और सन्तुलन और बीच का रास्ता अपनाना शरीअत में हर जगह यह विधि व्याप्त है। यहाँ यह चीज बच्चे के माँ और बाप दोनों के हक़ में प्रत्यक्ष है।

३७५ (जब जीवित हो) **'अल्वारिसु'** फ़िक़्ह में वारिस वह निकट सम्बन्धी महरम (परिचित) है जो बच्चे का शर्ई वारिस बने। इमाम अबू हनीफ़ा और बाज़ और पुराने फ़क़ीहों ने यही मानी लिये हैं। **'मिस्लु ज़ालिक'** यानी जिस प्रकार बाप पर बच्चे के अधिकारों की सुरक्षा अनिवार्य है उसी प्रकार बाप के बाद अपने निकट सम्बन्धियों पर भी वाजिब है। बाप के होते हुए बच्चे की परवरिश का खर्च केवल बाप के ज़िम्मे है और जब बाप की मृत्यु हो जाए तो उसमें यह विवरण है कि अगर बच्चा धन का मालिक है तब तो उसी धन में उसका खर्च होगा और यदि माल का मालिक नहीं है तो उसके मालदार सम्बन्धियों में जो उसके महरम यानी उस बच्चे से उसका सम्बन्ध ऐसा है कि दोनों में से एक को पुरुष और एक को नारी मान लें तो आपस में निकाह जाइज़ न हो और महरम के अलावा शरअ़न् (वस्तुतः) उसकी मीरास के अधिकारी भी हों। ऐसे महरम सम्बन्धियों पर उसका खर्च वाजिब होगा। उन सम्बन्धियों में माँ भी शामिल है। मिसाल के रूप में एक ऐसे बच्चे की माँ है, एक दादा है तो उसके खर्च का एक तिहाई माँ के ज़िम्मे है और दो तिहाई दादा के ज़िम्मे, क्योंकि दोनों महरम भी हैं और बच्चे की मीरास भी इसी निस्बत से पा सकते हैं। (थानवी)। दूध-पीते बच्चे के खर्च जो दूसरों पर वाजिब किये गये हैं, उसका कारण यही है कि बच्चा स्वयं अपनी परवरिश की क्षमता नहीं रखता है। संयुक्त कारण से फ़क़ीहों ने हनफ़ीया-मत में यह मसलः निकाला है कि मुहताज औरतों, अपाहिज मर्दों और नाबालिगों के खर्चे उनके सम्बन्धियों के ज़िम्मे हैं और यही मत हज़रत उमर से भी वर्णित है।

३७६ (दूध पिलाने के समय के पूरे होने के पूर्व यानी दो वर्ष की मुद्दत के भीतर ही) **'तराज़िन्'**, **'तशावुरिन्'** फ़क़ीहों ने लिखा है कि माँ में प्रेम और स्नेह की भावना अधिक होती हैं, अतः इस प्रकार के मामलों को केवल बाप की राय पर नहीं छोड़ा गया। बल्कि माँ की राय और रज़ामन्दी की भी शर्त लगा दी गयी। मौलाना थानवी ने कहा कि आपसी मश्‌विरे की सूरत यह है कि स्वयं बच्चे के हित पर दृष्टि रखी जाए।

३७७ उद्देश्य यह है कि बाज़ दफ़ा माँ से छुड़ाकर किसी और से भी दूध पिलवाने की ज़रूरत या उसी में बच्चे का हित होता है। अतः यदि ऐसी आवश्यकता पड़ जाए तो किसी और से दूध पिलवाने में कोई आपत्ति नहीं। यह बिलकुल जाइज़ है शर्त यह है कि उजरत वादे के अनुसार अदा कर दी जाए।

३७८ (सारे आदेशों और मामलों के विषय में) अतः यहाँ भी यही है कि उजरत न दोगे तो गुनहगार होगे— मामले छोटे हों या बड़े क़ुर्आन मजीद ने जीवन के घेरे में पग-पग पर अल्लाह के तक़्वे की राह दिखायी है"।

३७९ मनुष्य को मामले की खराबी तथा भ्रष्टता पर लानेवाली चीज यही लापरवाही और ग़फ़्लत है। हर समय यदि यह खयाल रहे कि अल्लाह तआ़ला हर समय मौजूद है और हर चीज़ देख रहा है तो कोई भूल न हो। क़ुर्आन मजीद बार-बार इसी भावना को जाग्रत् करता है और चाहता है कि मुसलमानों में अपने घरेलू जीवन में ग़फ़्लत न हो। वह सजग रहें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३८० (निकाह और निकाह के क़रीबी मामले) दुनिया के आर्थिक तथा समाजी समस्याओं में तलाक़शुदा स्त्री के बाद विधवा की समस्या भी कुछ कम अहम नहीं है। विधवा के साथ किसी धर्म ने भी कोई विशेष मेहरबानी और तवज्जुः नहीं दी है। बल्कि बाज़ मज़हबों ने सती के ज़रीए ज़िन्दा ही उसे जला दिया है। इस्लाम ने बेवा को जीवित रहने, सुहागिनों की भाँति जीवित रहने का पूर्ण अधिकार दिया है और जहाँ तक दुनियावी मामलों का सम्बन्ध है इस्लाम का यह अध्याय बड़ा ही उज्ज्वल है। **'तरब्बुसु'** प्रतीक्षा के इस समय का परिभाषाई नाम 'इद्दत' है। तलाक़िन की इद्दत पूरे तीन महीनों की थी, बेवा की इद्दत चार महीने दस दिन या कुल १३० दिन तज्वीज हुई है। इस ज़माने में बेवा के लिए बनाव-शृंगार सब नाजाइज़ है। मुहद्दिस और फ़क़ीह सब इस पर सहमत हैं।

३८१ यानी बेवा होने की इद्दत समाप्त हो जाए।

३८२ यानी जब इद्दत समाप्त हो जाए तो निकाह की तज्वीज़ में कोई आपत्ति नहीं है। इस ज़माने में शृंगार इत्यादि करने से रोकना यह बेवा के वारिसों का फ़र्ज़ है। **'फ़ ला जुनाह्'** ···**'फ़अल्न'** उम्मतवालों को आम सम्बोधन है यानी तुम पर ऐसी बात के जाइज़ रखने में कोई गुनाह या आपत्ति नहीं है। फ़क़ीहों ने इस सम्बोधन के अन्दाज से यह निष्कर्ष निकाला है कि कोई व्यक्ति यदि शरअ़ के खिलाफ़ कार्य करे तो दूसरों पर लाज़िमी हो जाता है कि उसको अपनी शक्ति-अनुसार ऐसा करने से रोकें, वरना वह भी गुनहगार होंगे। **'फ़ीमा फ़अल्न···हिन्न'** यानी निकाह और उससे सम्बद्ध तज्वीज़ें भी जो शरअ़ की रू से जाइज़ हों। **'बिल्मऽरूफ़ि'** जो भी कार्यवाही हो वह शरीअत के क़ानून और नैतिकता के विधान के बाहर न हो।

३८३ (अतः कोई बात शरीअत के विरुद्ध यदि करोगे या उसे बेरोक-टोक होने दोगे तो उसके उत्तरदायी माने जाओगे।) मुश्रिक क़ौमों ने यह नहीं माना है कि उनका ख़ुदा या उनके ख़ुदा सम्पूर्ण ज्ञान या जानकारी रखते हैं। क़ुर्आन मजीद ने इन सिफ़तों के मानने में दूसरी मस्लहतों के अतिरिक्त एक पहलू 'शिर्क' के खण्डन का भी रखा है।

३८४ इद्दत के दौरान इसमें कोई आपत्ति नहीं कि कोई मर्द किसी बेवा से निकाह करने का इरादा अपने मन में करे और ज़बान पर न लाये या अगर लाये भी तो संकेत से। स्पष्टता के साथ इस ज़माने में इजाज़त नहीं है।

३८५ (सो केवल ज़िक्र की हद तक कोई आपत्ति नहीं) यह मानव-प्रकृति है कि जो स्त्री मन में बस जाती है, मर्द इधर-उधर घूम-घुमाकर उसका ज़िक्र अवश्य करता है और इस बात का बहाना ढूंढ़ा करता है। आयत का यह अंश ठीक इसी मानव-प्रकृति का अनुवादक है।

३८६ इद्दत के दौरान औरत से निकाह का वादा कर लेना, खुलकर न सही, भेद के रूप में भी जाइज़ नहीं है और यह टुकड़ा इसी आदेश पर बल देने हेतु आया है। **'सिर्रन्'**— **'सिर्र'** के आम मानी, जो राज़ या भेद के हैं, स्पष्ट हैं। फ़क़ीहों की बड़ी संख्या ने यही अर्थ लिये हैं, परन्तु एक अन्य माने स्वयं निकाह के भी हैं और इब्ने सीद लुग़वी तथा फ़र्रा नहवी इत्यादि ने यहाँ इससे संकेत निकाह को समझा है। लुग़त (शब्दकोश) तथा नहो (एक ज्ञान) वालों को ही नहीं, ताबेईन का भी एक गिरोह यही अर्थ लगाता है। ऐसी सूरत में आयत का अनुवाद यह होगा कि 'अलबत्ता उनसे निकाह का वादा न करो'।

३८७ और वह इज़्ज़त और सम्मान से बात कहना यही है कि जो कुछ कहना हो इशारे से कहा जाए, खुलकर नहीं।

३८८ यानी इद्दत की समाप्ति के पूर्व निकाह का इरादा करना भी ठीक नहीं न कि वादा अक़्दे निकाह का। **'अ़ज़्म'** का अर्थ है 'पक्का इरादा'।

३८९ सो जो चीज़ें नाजाइज़ हैं, उनके करने का इरादा भी उसकी जानकारी में रहता है। अल्लाह-अल्लाह! मुसलमान-स्त्री की इज़्ज़त की सुरक्षा और उसके छोटे-छोटे मामलों तक की व्यवस्था किस हद तक मंज़ूर है।

३९० अतः यदि इस विषय में ग़लतियाँ कर चुके हो तो अब भी प्रायश्चित्त और तौबः करके क्षमा-याचक हो जाओ। इस बात का पूरा मौक़ा है। **'ग़फ़ूरुन्'** (अतः तौबः के पश्चात् नाफ़र्मानों को भी माफ़ कर देता है।) **'हलीमुन्'** (अतः अक्सर नाफ़र्मानों को सज़ा नहीं देता, बल्कि मोहलत दे देता है।)

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २७६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हाफ़िज़ू अलस्सलवाति वस्सलातिल्-वुस्ता क़ व क़ूमू लिल्लाहि क़ानितीन
(२३८) फ़ अिन् ख़िफ़्तुम् फ़ रिजालन् औ रुक्बानन् ज फ़ अिज़ा अमिन्तुम्
फ़ज़्कुरुल्लाह कमा अल्लमकुम् मालम् तकूनू तअ्लमून (२३९) वल्लज़ीन
युतवफ़्फ़ौन मिन्कुम् व यज़रून अज़्वाजन् ज सला ०'वसिय्यतल्-लि अज़्वाजिहिम्
मताअन् अिलल्हौलि ग़ैर अिख़्राजिन् ज
फ़ अिन् ख़रज्न फ़ ला जुनाह अलैकुम् फ़ी मा
फ़अल्न फ़ी अन्फ़ुसिहिन्न मिम्मअ्रूफ़िन् त
वल्लाहु अज़ीज़ुन् हकीमुन् (२४०) व
लिल्मुतल्लक़ाति मताअुम् - बिलमअ्रूफ़ि त
हक़्क़न् अलल्मुत्तक़ीन (२४१) कज़ालिक
युबय्यिनुल्लाहु लकुम् आयातिहि लअल्लकुम्
★ रु. ३१/१५ आ ७ तअ्क़िलून (२४२) ★ अलम् तर
अिलल्लज़ीन ख़रजू मिन् दियारि-हिम् व
हुम् अुलूफ़ुन् हज़रल्मौति ज़ फ़ क़ाल
लहुमुल्लाहु मूतू क़िफ़ सुम्म अह्याहुम् त
अिन्नल्लाह लज़ू फ़ज़्लिन् अलन्नासि व

سيقول ٢ — ٣١ — البقرة ٢

الصَّلٰوةِ الْوُسْطٰى وَقُوْمُوْا لِلّٰهِ قٰنِتِيْنَ ۞ فَاِنْ خِفْتُمْ فَرِجَالًا
اَوْ رُكْبَانًا ۚ فَاِذَآ اَمِنْتُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَمَا عَلَّمَكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ۞
وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا ۚۖ وَّصِيَّةً لِّاَزْوَاجِهِمْ مَّتَاعًا
اِلَى الْحَوْلِ غَيْرَ اِخْرَاجٍ ۚ فَاِنْ خَرَجْنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْ مَا فَعَلْنَ
فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ مِنْ مَّعْرُوْفٍ ؕ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۞ وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ
بِالْمَعْرُوْفِ ؕ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ۞ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ
لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۞ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَهُمْ اُلُوْفٌ
حَذَرَ الْمَوْتِ ۪ فَقَالَ لَهُمُ اللّٰهُ مُوْتُوْا ۫ ثُمَّ اَحْيَاهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ
عَلَى النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَشْكُرُوْنَ ۞ وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ
اللّٰهِ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۞ مَنْ ذَا الَّذِيْ يُقْرِضُ اللّٰهَ
قَرْضًا حَسَنًا فَيُضٰعِفَهٗ لَهٗٓ اَضْعَافًا كَثِيْرَةً ؕ وَاللّٰهُ يَقْبِضُ وَيَبْصُۜطُ
وَاِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ۞ اَلَمْ تَرَ اِلَى الْمَلَاِ مِنْ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ مِنْ بَعْدِ
مُوْسٰى ۘ اِذْ قَالُوْا لِنَبِيٍّ لَّهُمُ ابْعَثْ لَنَا مَلِكًا نُّقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ؕ
قَالَ هَلْ عَسَيْتُمْ اِنْ كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ اَلَّا تُقَاتِلُوْا ؕ قَالُوْا وَمَا
لَنَآ اَلَّا نُقَاتِلَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَقَدْ اُخْرِجْنَا مِنْ دِيَارِنَا وَاَبْنَآئِنَا ؕ
فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ تَوَلَّوْا اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ
بِالظّٰلِمِيْنَ ۞ وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ اِنَّ اللّٰهَ قَدْ بَعَثَ لَكُمْ طَالُوْتَ

منزل ١

लाकिन्न अक्सरन्नासि ला यश्कुरून (२४३) व क़ातिलू फ़ी सबीलिल्लाहि
वअ्लमू अन्नल्लाह समीअुन् अलीमुन् (२४४) मन् ज़ल्लज़ी युक़्रिज़ुल्लाह
क़र्ज़न् हसनन् फ़ युज़ाअिफ़हू लहू अज़्आफ़न् कसीरतन् त वल्लाहु यक़्बिज़ु
व यब्सुतु ज़ व अिलैहि तुर्जअून (२४५) अलम् तर अिलल्मलअि
● व. ला ज़िम मिम्बनी अिस्राअील मिम्बअ्दि मूसा म ● अिज़् क़ालू लि नबिय्यिल्-
लहुमुब्अस् लना मलिकन्नुक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि त क़ाल हल् असैतुम्
अिन् कुतिब अलैकुमुल्-क़िताल अल्ला तुक़ातिलू त क़ालू व मा लना
अल्ला नुक़ातिल फ़ी सबीलिल्लाहि व क़द् अुख़्रिज्ना मिन् दियारिना
व अब्नाअिना त फ़ लम्मा कुतिब अलैहिमुल् - क़िताल तवल्लौ
अिल्ला क़लीलम्मिन्हुम् त वल्लाहु अलीमुम् - बिज़्ज़ालिमीन (२४६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(सब ही) नमाज़ों की पाबन्दी रखो और विशेषकर दरमियानी नमाज़ की[३९८]। और अल्लाह के सामने मजबूरों (आजिज़ों) की भाँति खड़े रहा करो[३९९]। (२३८) परन्तु अगर तुम्हें अंदेशा हो तो तुम पैदल ही (पढ़ लिया) करो या सवारी पर[४००] कि जब तुम शान्ति में आ जाओ तो अल्लाह को याद करो जिस प्रकार उसने तुम्हें सिखाया है, जिसको तुम जानते भी न थे[४०१]। (२३९) और जो लोग तुममें से वफ़ात पा जायें (मृत्यु पा जायें) और बीवियाँ छोड़ जायें, (उनको अनिवार्य है) अपनी बीवियों के हक़ में नफ़ा उठाने की वसीयत (कर जाने) की कि वह एक वर्ष तक (घर से) निकाली न जायें[४०२]। परन्तु (अगर स्वयं) निकल जायें तो कोई गुनाह नहीं तुम पर इस विषय में जिसे वह (बीवियाँ) अपने विषय में शराफ़त के साथ करें[४०३]। और अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है, बड़ा हिकमतवाला है[४०४]। (२४०) और तलाक़िनों (तलाक़शुदा स्त्रियों) के हक़ में भी लाभ पहुँचाना, विधानानुसार नियत है[४०५], यह परहेज़गारों (संयमित व्यक्तियों) पर वाजिब है[४०६]। (२४१) अल्लाह इसी तरह अपने हुक्मों को खोलकर बयान करता है, शायद कि तुम समझो[४०७]। (२४२) ★ ★ रु. ३१ — १५ आ ७

क्या तुझे खबर नहीं[४०८] उन लोगों की कि जो अपने घरों से निकल गये थे मौत से बचने के लिए और वह हज़ारों ही थे[४०९], तो अल्लाह ने उनसे कहा कि मर जाओ[४१०]। फिर उसने उन्हें जिला दिया[४११]। निस्सन्देह अल्लाह मनुष्यों पर बड़ी मेहरबानी करनेवाला है[४१२], अल्बत्ता अक्सर मनुष्य ही आभार नहीं प्रकट करते[४१३]। (२४३) और अल्लाह की राह में युद्ध करो[४१४] और जाने रहो कि अल्लाह बड़ा सुननेवाला है, खूब जाननेवाला है[४१५]। (२४४) कौन ऐसा है जो अल्लाह को अच्छा क़र्ज़ा क़र्ज़ दे[४१६] ? फिर अल्लाह उसे बढ़ाकर उसके लिए कई गुना कर दे[४१७]। और अल्लाह ही तंगी भी पैदा करता है और फ़राख़ी (बढ़ोतरी) भी[४१८], और तुम सब उसी की तरफ़ लौटाये जाओगे[४१९]। (२४५) क्या तुझे खबर नहीं मूसा के बाद बनी इस्राईल की एक जमाअत की[४२०] ● जबकि उन लोगों ने अपने नबी से कहा[४२१] कि हमारे लिए एक अमीर (सरदार) नियुक्त कर दीजिये कि हम ख़ुदा की राह में युद्ध करें[४२२]। (नबी ने) कहा, कहीं ऐसा तो नहीं कि अगर तुम पर जंग फ़र्ज़ कर दी जाय, तो तुम जंग न करो[४२३]। वह बोले, भला हमारे लिए कौन सा ऐसा कारण हो सकता है कि हम ख़ुदा की राह में न लड़ें, ऐसी स्थिति में कि हम निकाले जा चुके हैं अपने घरों से और अपने बेटों से[४२४]। परन्तु जब उन पर जंग फ़र्ज़ कर दी गयी तो वह (सब) फिर गये सिवाय उनमें से एक छोटी संख्या के[४२५]। और अल्लाह ज़ालिमों को ख़ूब जानता है[४२६]। (२४६) ● व. लाजिम

---

३९८ ऊपर से वर्णन बीवियों के अधिकारों का चला आ रहा था और आगे फिर यही बयान चलेगा। बीच में नमाज़ के विषय में हुक्म आ गया। यहीं से एक बार इस हक़ीक़त पर प्रकाश पड़ रहा है कि इस्लाम में रहन-सहन और मजहब, क़ानून और नैतिकता की समस्याओं तथा उपासनाओं और इबादतों से पृथक् नहीं हैं। शरीअत की व्यवस्था में खालिक़ (सृष्टि के पैदा करनेवाले) के अधिकार मख़्लूक़ के अधिकारों के साथ-साथ चल रहे हैं। '**हाफ़िज़ू अलस्सलवाति**' नमाज़ की सुरक्षा के विषय में शोधकों ने तीन दर्जे (श्रेणियाँ) बनाये हैं। सबसे कम यह कि नमाज़ स्वयं पर पढ़ी जाए और 'फ़र्ज़' तथा 'वाजिब' न छोड़ें, औसत यह कि बदन हर प्रकार की ज़ाहिरी पवित्रता से सुसज्जित हो और तबीयत हलाल रोज़ी खाने की आदी हो। मन में ख़ुदा का खौफ़ और निःस्वार्थता हो, सुन्नतों और मुस्तहबों का पूरा ध्यान रहे और सबसे ऊँची बात यह है कि नमाज़ में मन ऐसा लगाया जाये गोया कि नमाज़ी ख़ुदा के समक्ष हाज़िर है। उसको नमाज़ के अलावा अन्य कुछ याद न रहे। '**हाफ़िज़ू**' सुरक्षा का अर्थ है पाबन्दी और हमेशगी। '**अस्सलातिल्-वुस्ता**' इस दरमियानी नमाज़ का क्या अर्थ है ? अक्सर इमामों ने जो तफ़्सीरें की हैं, इसका अर्थ "अस्र की नमाज़" लिया है और यही माने इब्ने जरीर हज़रत अली, हज़रत इब्ने अब्बास, हज़रत इब्ने मसऊद हज़रत अबू हुरैरः सहाबियों और क़तादा व ज़ुहाक ताबेईन और इमाम अबू हनीफ़ा तथा इमाम नख़ई ने लिये हैं। अगर्चे इब्ने जरीर ही में दूसरे क़ौल नमाज़ ज़ुहर, और नमाज़ें मग़्रिब और

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २७७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २७३ से)

३६१ यानी महूर के विषय में कोई पूछताछ नहीं। इसका अर्थ यह है कि ऐसी दशा में महूर वाजिब भी नहीं है। **'लम् तमस्सूहुन्न'** यहाँ **'मस्स'** का अर्थ मिलन की दोनों क़िस्में हैं। हक़ीक़ी और वास्तविक तथा हुक्मी और फ़िक़्ही मिलन (अर्थात् सही मिलन) के पूर्व भी तलाक़ जाइज़ है बिना किसी महूर की ज़िम्मेदारी के। निकाह महूर के नियत के बिना भी सही रहता है।

३६२ अर्थ यह है कि तलाक़िन को बिदा करो तो ख़ाली हाथ और मुफ़्लिस करके नहीं, बल्कि अपनी हैसियतानुसार कुछ दे-दिलाकर। **'मत्तिअूहुन्न'** यानी इसमें किसी नियत संख्या का प्रतिबन्ध नहीं है। इमाम मालिक ने हर पाबन्दी समाप्त कर दी है। 'मुता' एक वस्त्र या वस्त्र के एक जोड़े पर सीमित नहीं है। शाह वलीयुल्लाह देहलवी के अनुवाद में है— ''बहरा दहेद इंचुनी मुतल्लक़ात रा'' यानी इस प्रकार तलाक़िन को फ़ायदा दो। शाह रफ़ीउद्दीन साहब के अनुवाद में है— ''फ़ायदा दो उनको''। और शाह अब्दुल् क़ादिर के अनुवाद में है— ''और उनको ख़र्च दो''। हाँ, बाज़ सहाबा से कुछ अन्दाज़े वर्णित हैं। हनफ़ीया फ़क़ीहों ने आम तौर पर तीन कपड़ों का जोड़ा मुराद लिया है। यह जोड़ा भी देश के रिवाजानुसार होगा।

३६३ मामले में अच्छा तो सारे मुसलमानों को होना चाहिए। इसलिए शब्द 'मुहूसिनीन' लाकर इस गुण को दर्शाया है। तलाक़िन को कुछ माल देकर ही बिदा देनी चाहिए। इस बात के ज़रूरी होने के अनेक सहाबा क़ायल हैं। **'बिल्‌मअ़्रूफ़ि'** यानी ऐसे शरीफ़ाना तरीक़े के अनुसार, जो शरीअत को भी मान्य हो।

३६४ तलाक़ की एक शक्ल वह थी जो ऊपर बयान हो चुकी यानी न महूर तय हुआ था और न अभी मिलन हुआ था कि तलाक़ हुई। दूसरी सूरत यह है कि महूर तो निश्चित हो चुका था, लेकिन मिलन नहीं हुआ और तलाक़ हो गयी। ऐसे अवसरों का आम क़ायदा यह है कि नियत महूर का आधा भाग शौहर के ज़िम्मे होगा। परन्तु दो सूरतें इस आम आदेश से अलग हैं। एक यह कि बीवी अपने हक़ से बिलकुल हाथ उठा ले और आधा महूर भी न ले और दूसरी यह कि शौहर अपने हक़ से हाथ उठा ले या जो आधा उसे रख लेने का हक़ था उसे भी वह न रखे और आधे के स्थान पर पूरा महूर अदा कर दे। **'यअ़्फ़ून'** औरत अपना हक़ माफ़ कर दे और उसका हक़ है वही नियत महूर का आधा यानी औरत पूरा महूर छोड़ दे। **'अल्लज़ी बियदिही अुक़्दतुन्निकाहि'** यानी जो निकाह की गाँठ को तोड़े और जोड़े रहने का इख़्तियार रखता है यानी शौहर। यह शब्द स्वयं बोल रहे हैं कि निकाह की सन्धि में बड़ा हिस्सेदार शौहर ही है।

३६५ नियम और क़ानून अभी-अभी बयान हो चुका है कि शौहर तलाक़ की इस दशा में आधा महूर रोक सकता है। अब ठीक इसी स्थान पर नैतिकता के उच्च स्तर की ओर राह दिखायी गयी कि हक़ वसूल करने से कहीं बेहतर है कि उस हक़ को माफ़ कर दिया जाए। जाइज़ और बढ़कर, उचित और अच्छा, नियम और नैतिकता की बड़ाई का यह लगातार मिश्रण क़ुर्आन के अर्थों के मोजिज़ों में से है।

३६६ यानी तलाक़ के अवसर पर भी जो सम्बन्धों के जारी रहने का नहीं, बल्कि उनकी समाप्ति का अवसर है आपसी सुन्दर व्यवहार, शील और उदारता से न चूको। आयत से स्पष्ट यह संकेत हो रहा है कि किसी अप्रिय घटना के घटित हो जाने पर पुराने सम्बन्धों और पूर्व के स्नेह तथा प्रेम के हक़ समाप्त नहीं हो जाते, बल्कि क्रोध एवं नागवारी में भी तक़्वा और सुन्दर व्यवहार, क्षमा और उदारता का विचार समाप्त न होना चाहिए। **'निस्यान'** यहाँ भूल के मानी में नहीं आया है, क्योंकि वह तो अपने वश की चीज़ नहीं है, बल्कि यहाँ इसका अर्थ है छोड़ देना और नज़रअन्दाज़ कर देना जैसा कि तफ़्सीर और कोशवालों ने वर्णित किया है। क़ुर्आन में जहाँ कहीं 'निस्यान' बुराई और मज़म्मत के लिए आया है, वहाँ उसका अर्थ इसी इख़्तियारी भूल या उपेक्षा करने के माने में आया है। स्वयं 'निस्यान' यानी स्मृति से किसी बात के निकल जाने की तीन क़िस्में की गयी हैं। एक हृदय की कमज़ोरी से, दूसरे भूल से और तीसरे जान-बूझकर।

३६७ सो उसके यहाँ तुम्हारी कोई नेकी भी किसी दर्जे की और किसी भी अवसर की रायगान (व्यर्थ) न जाएगी। एक बार फिर यह विचार में ले आया जाए कि मामलों और क़ानूनी ज़ाब्तों में भी शरीअत के आदेश कितने ताकीदी हैं और क़ुर्आन उनकी महत्ता किस-किस प्रकार जताता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २७५ से)

नमाज़ें फ़ज्र के भी इसी पाये के हज़रात से वर्णित हैं। परन्तु इब्ने कसीर ने इसी अस्र वाले क़ौल पर बहुमत की राय बतायी है। बाज़ ने शाब्दिक पहलू पर बल देकर यह तफ़्सीर की है कि हर नमाज़ चूँकि अपनी जगह पर इबादतों और नेकियों का औसत दर्जा है और हर नमाज़ के इधर-उधर कुछ नमाजें और भी होती हैं अतः 'नमाज़ें वस्ता' हर नमाज़ हो सकती है। और इसका अर्थ कोई ख़ास नमाज़ नहीं है। मआज़ बिन जबल ने इसे हर नमाज़ से सम्बद्ध समझा है और नाफ़िअ इब्ने उमर ने इसे नियत किये बिना छोड़ दिया है। (क़रतबी)। इब्ने कसीर में और क़ौल भी नक़्ल किये गये हैं।

३९९ (नमाज़ की हालत में) **'क़ानितीन'**— शब्द **'क़ुनूत'** यहाँ बहुत सारगर्भित है और दुआ, ज़िक्रे ख़ुदा, और निःस्वार्थता तथा ख़ौफ़ के साथ इबादत सब पर हावी है। "आ़जिज़ी" से अनुवाद में उसका केवल एक ही पहलू आ पाता है।

४०० (जिस प्रकार भी बन पड़े और जिस हद तक परिस्थिति आज्ञा करे) **'फ़इन्‌ख़िफ़्तुम्'** यानी अगर आम नियमानुसार नमाज़ जमात के साथ हो और शत्रु के आक्रमण का भय हो। इस्लाम की यह पाँच समय की परेड या अल्लाह के दरबार में हाज़िरी इतनी महत्ता रखती है कि जंग की हालत में भी माफ़ नहीं है। इस अवसर के लिए पूरी गुंजाइश और अवसरों की भाँति रख दी गयी है। ख़ौफ़ की नमाज़ के विवरण फ़िक़्ह की किताबों में मिलेंगे। बाज़ शोधकों ने कहा है कि 'ख़ौफ़' की नमाज़ की आग केवल सैनिक शत्रुओं के भय के समय तक सीमित नहीं है।

४०१ यानी अब आम क़ायदों के अनुसार नमाज़ अदा करो। **'फ़ अिज़ा अमिन्तुम्'** यानी जब शत्रु की ओर से भय और अन्देशा बाक़ी न रहे।

४०२ यह वसीयत का आदेश उस समय था, जब मीरास के आदेश नहीं उतरे थे। जब मीरास के स्थायी आदेश आ गये और शौहर के तरके में एक स्थायी भाग बेवा का भी नियत हो गया तो ज़ाहिर है कि अब वसीयत के हुक्म पर अमल करने की आवश्यकता नहीं रही। इसी को तफ़्सीर करनेवाले 'नस्ख़' कहते हैं। और इसी को उर्दू पढ़नेवालों ने उर्दू के शब्द "मन्सूख़ी" का अर्थ लगाकर इस पर आपत्तियाँ करनी शुरू कर दी हैं। उस समय यानी मीरास के हुक्म आने से पहले शरीअत ने बेवा औरतों के लिए निम्नलिखित रिआयतें रखी थीं:— (१) वह यदि शौहर ही के घर रहना चाहती हैं तो एक वर्ष तक उन्हें कोई बे-दख़ल नहीं कर सकेगा। (२) उन्हें इस समय तक खाना-कपड़ा भी शौहर के तर्के से मिलेगा। (३) वह स्वयं ही यदि अपनी किसी भलाई के विचार से उस घर में न रहना चाहें तो बाद समाप्ति इद्दत उनके लिए यह जाइज़ था और दूसरे अधिकारों की भाँति इस हक़ से भी उनको हाथ उठा लेना जाइज़ था। **'मताअन्'** यह लाभ उठाना खाने, कपड़े और मकान में रहने से सम्बद्ध होगा। इस्लाम के प्रकट होने के समय विधवा हर मज़हब में ऐसी दशा में थी कि उसे कोई भी नहीं पूछता था और अरब जाहिलीयत में तो उसकी ओर कोई देखना भी पसन्द नहीं करता था। इस्लाम ने ही दुनिया में पहली बार बेवा का सम्मान किया और उसके अधिकारों की रक्षा की। मुशरिकाना धर्मों में तो बेवा होना और मन्हूस होना एक ही अर्थ में आता था। उसे घर भर की लानत मलामत और धिक्कार का निशाना बनना पड़ता था।

४०३ जैसे निकाह या निकाह की बातचीत। **'मिम्मअ़्रूफ़िन्'** की क़ैद ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह कार्यवाही न तो शरीअत के नियमों के विरुद्ध होगी (जैसे इद्दत के क़ानून के विपरीत) और न किसी नैतिकता के नियमों के ख़िलाफ़।

४०४ जो आयतें किसी आदेश के साथ होती हैं उनकी समाप्ति इसी प्रकार के निर्देश और चेतावनी के साथ होती है। **'अ़ज़ीज़ुन्'** स्मरण कराया कि वह बड़ा शक्तिशाली है अतः उसके आदेशों का उल्लंघन भारी मूर्खता हैं। **'हकीमुन्'** याद दिलाया कि उसके हुक्म, चाहे वह दूर के हों या निकट के, छुपे हों या स्पष्ट, सभी मनुष्यों के हितों के आधार पर ही होते हैं।

४०५ (किसी न किसी श्रेणी में) मतलब यह है कि जिस स्त्री को तलाक़ दी जाए, यह न हो कि उसे नंगा-बूचा करके भूखा-पियासा उसी समय घर से निकाल दिया जाए, बल्कि एक मुद्दत तक उसके सुख-सुविधा का ख़याल और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति की ज़िम्मेदारी शौहर की है। फ़क़ीहों ने हदीस तथा सुन्नत के आधार पर एक तिमाही का समय नियत किया है कि इतनी मुद्दत तक खाने-पहनने और रहने-सहने की व्यवस्था शौहर के ज़िम्मे है। **'तलाक़िन'** पर अभी तीनों तलाक़ें यदि नहीं पड़ी हैं तब तो यह आदेश सर्वसम्मति से है और अगर पड़ चुकी है तो हनफ़ीया के यहाँ फिर भी यही हुक्म है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४०६ **'अलल् मुत्तक़ीन'** यानी मुसलमानों पर क्योंकि इस दर्जे में हर मुसलमान संयमित होता ही है।

४०७ (और समझकर उन पर अमल करो) मौलाना थानवी ने यहाँ खूब लिखा है कि तलाक़ के विषय में इन आदेशों में **'अित्तक़ुल्लाह', 'हुदूदल्लाहि', 'समीअुन्'** और **'अलीमुन्', 'अज़ीज़ुन्'** तथा **'हकीमुन्'** इत्यादि का इस प्रकार बार-बार आना, जो सब मुख़ालिफ़त पर चेतावनी हैं, इस बात की दलीलें हैं कि यह सब आदेश शरीअत में वाजिब हैं, केवल परामर्श के रूप में नहीं हैं कि उनमें काट-छाँट का हमें कोई अधिकार प्राप्त हो।

४०८ (ऐ मुख़ातिब! यानी सुननेवालो!) **'अलम् तर'** अरबी में सम्बोधन का यह तरीक़ा ऐसे अवसर पर आता है जब मुख़ातिब को किसी बड़े अहम और प्रसिद्ध घटना की ओर आकर्षित करना होता है। हमेशा यह अर्थ नहीं होता कि समझदारी की आँखों से देखा जाए बल्कि गुमान और विचार, ध्यान और चिन्तन तथा बुद्धिमानी की राह से अवलोकन तथा दर्शन किया जाए। जब इस क्रिया में **'अिला'** जोड़ देते हैं तो उद्देश्य यह होता है कि कोई अहम नतीजा निकाला जा रहा है या कोई सीख प्राप्त की जा रही है।

४०९ (ठीक जिहाद के अवसर पर) **'हज़रल् मौति'** यह इस बात का विवरण है कि इतनी बड़ी संख्या में अपने घरों से बाहर निकल जाना केवल एक इत्तिफ़ाक़ी बात नहीं थी। यह मृत्यु के भय से हुआ। किसी पुरातन जाति का वर्णन है और किसी ऐसी घटना की ओर संकेत है जिसको अरब के लोग भलीभाँति जानते थे। तफ़्सीर करनेवालों ने विभिन्न क़ौमों और स्थानों के नाम लिये हैं, सम्भवतः इन्हीं में से कोई सही हो और यह भी हो सकता है कि यन्य कोई जाति या स्थान हो। सही तहक़ीक़ और शोध भविष्य में कोई-कोई क़ुर्आनी विशेषज्ञ करेगा। कुछ कार्य आइन्दः आनेवाले तफ़्सीर कुनिन्दों और शोधकों के लिए अवशेष भी तो रहे। **'अुलूफ़ुन्'**— **'अल्फ़'** का बहुवचन है और इससे कम से कम दस हज़ार की संख्या मुराद होती है। क़ुर्आन जो बात बताना चाहता है वह स्थान और जाति का नाम लिये बिना भी स्पष्ट हो जाती है। **'अह्दे अतीक़'** की किताब 'हिज़क़ीऐल' (३७ : १-१०) में एक वर्णन इससे मिलता-जुलता है, जिसके बारे में विचार है कि यह ख़ुदा की ओर से दिल पर प्रकाश पड़ने के परिणामस्वरूप है। सय्यद रशीद रज़ा मिस्री ने, जो 'तफ़्सीरुल् मनार' के लेखक हैं, दूसरा पहलू अपनाया है और आयत में **"मूतू"** और **"फ़ अह्याहुम्"** दोनों को केवल आन्तरिक और भौतिक माना है कि पूरी जाति अपनी आज़ादी और स्वतन्त्रता खोकर और दूसरों की ग़ुलामी में पड़कर मुर्दा हो गयी थी। अल्लाह ने फिर उसे नये सिरे से जीवन या स्वतन्त्रता प्रदान किया।

४१० [किसी वबाई (महामारी) बीमारी से या अन्य किसी प्रकार, अतः वह सब मर गये] यानी जिहाद के आदेश-पालन से जी चुराकर वतन से निकल खड़े हुए, परन्तु यह विधि काम न आयी और उलटे मौत का शिकार हो गये। उद्देश्य केवल एक बात के नक़्ल करने का नहीं है। अर्थ यह है कि हक़ तआला (ख़ुदा) ने जब यह इरादा कर लिया तो कोई बात उसमें रुकावट न बन सकी और अमल होकर रहा। अरबी में वर्णन की यह विधि आम तौर पर प्रयोग में आती है।

४११ (और उन्हें दिखा दिया कि मौत और ज़िन्दगी की रस्सी किसी और ही के हाथ में है, वह मानव की बुद्धि और उसकी तदबीरों के हाथ में नहीं है। अतः जिहाद या शरीअत के आदेशों से जी चुराना अत्यन्त बेवक़ूफ़ी एवं मूर्खता है।) बाज़ तफ़्सीर करनेवालों और फ़क़ीहों ने यहाँ ताऊन से भागने की बहस छेड़ दी है और नबी का फ़र्मान (आदेश) नक़्ल किया है कि जिस भूमि पर ताऊन हो वहाँ से भागो नहीं और जहाँ हो वहाँ जाओ नहीं। इसमें एक बुद्धि की बात सन्देह पैदा करती है कि जहाँ ताऊन हो वहाँ से भागो नहीं और जहाँ ताऊन हो वहाँ जाओ नहीं। यह दोनों अमल में एक-दूसरे के विपरीत बातें हैं। यदि ताऊन बचने की चीज़ है तो वहाँ से हटने का भी आदेश होना चाहिए और यदि बचने की चीज़ नहीं तो उस नगर में जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वास्तविकता यह है कि वबाई क्षेत्र से यदि भागने और हटने की एक को आज्ञा मिली तो सब ही भागना शुरू कर देंगे और शहर ख़ाली हो जाएगा। इस भगदड़ (Panic) से जिन आर्थिक, नैतिक, माली तथा सांस्कृतिक हानि से दो-चार होना पड़ेगा— वह बिलकुल स्पष्ट हैं और बहुत बार देखने में आ चुका है। फिर एक ओर अगर यह आदत, साहस, हृदय की स्थिरता, बहादुरी, वीरता और आपसी सहानुभूति के विरुद्ध है तो दूसरी ओर ज़ाहिरी सामग्री पर ज़रूरत से ज़्यादा भरोसा करने और अल्लाह पर भरोसा न करने की भावना के भी अनुकूल नहीं है। किसी धार्मिक जाति के तो यह बिलकुल विपरीत है और उसकी मान-मर्यादा के ख़िलाफ़ है। परन्तु जहाँ तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मौत के बाज़ार के गर्म होने और वबा की बात है वहाँ बेधड़क प्रवेश करना और सुरक्षा का ध्यान न देना एक और ज़ाहिरी कारणों को भूल जाना है और दूसरी ओर मानव के भीतर जो प्राकृतिक भय होता है उसके तक़ाज़े को भूल जाना है। इन एक-दूसरे के विपरीत परिस्थितियों के बीच एक सलामती की राह ढूँढ़ना इस्लाम-जैसे बुद्धिमत्ता वाले मज़हब का ही काम है। उसने अक़्ली और प्राकृतिक दोनों पहलुओं की रिआयत को ध्यान में रखकर यह न्यायपूर्ण आदेश दिया कि जहाँ ताऊन हो वहाँ न अकारण जाओ और न अकारण वहाँ से भागो।

४१२ (अतः उन्हीं के हित वाले आदेश उन्हें देता रहता है।) बन्दे के दिल में अल्लाह के लिए सम्पूर्ण रूप से मुहब्बत की ही भावनाएँ जाग्रत् होना उचित हैं। यह आयतें इसी दशा के सामने रखने के लिए हैं।

४१३ बल्कि उलटे अल्लाह के आदेशों की मुख़ालिफ़त और विरोध में लगे रहते हैं।) जंग का हुक्म फ़ौरन् आगे आता है। इसके पूर्व ऐसी कहानी बयान करना जिससे हृदय में बेख़ौफ़ी, निडर होना और अल्लाह पर भरोसा करने की भावना पैदा ही ठीक बुद्धिमत्ता का तक़ाज़ा है।

४१४ (ऐ इस्लामी उम्मत !) संकेत स्वयं हो गया कि क़त्ल का आरम्भ मुसलमानों की ओर से नहीं होना चाहिए। मुसलमान तो केवल जवाबी युद्ध करेंगे। **'फ़ी सबीलिल्लाहि'** के प्रतिबन्ध ने स्पष्ट कर दिया कि युद्ध अपनी आत्मा के लिए, धन-दौलत के लिए नहीं केवल अल्लाह की राह में अल्लाह के धर्म हेतु होगा। इस्लामी जिहाद अपनी इस विशेषता के लिहाज़ से विश्व की युद्ध की तारीख़ में अपनी मिसाल आप है। इस प्रारम्भिक कहानी के बाद कि मौत और ज़िन्दगी सबका अन्तिम सम्बन्ध उसी के हाथ में है। अब आदेश मिलता है कि उसी के आदेश से, उसी के दीन तथा विधान की सेवा और सहायता के लिए जिहाद और जंग में व्यस्त हो जाओ। आदेश का सम्बोधन उम्मत से सामूहिक रूप में है। उम्मत के व्यक्तियों से नहीं कि उम्मत के किसी व्यक्ति का जब जी चाहे तलवार चलाने लगे।

४१५ (इसलिए उस पर हर एक का ज़ाहिर और अन्दरूनी भाग तथा छुपा हुआ, सब खुला हुआ है अर्थात् वह हर एक के अन्दर-भीतर को ख़ूब जानता है।) **'समीअुन्'** वह ख़ूब सुनता है जिहाद करने वालों तथा न करनेवालों दोनों की बातों को। **'अलीमुन्'** वह ख़ूब जानता है कि जिहाद करने और न करनेवालों की नीयतों को।

४१६ यानी अल्लाह की राह में निःस्वार्थता के साथ ख़र्च करे। जंग और लड़ाई का अभी आदेश मिला है। स्वाभाविक है कि उम्मतें इस्लामी को काफ़ी धन की आवश्यकता होगी, इसलिए पहले ही नम्बर पर उम्मत के अमीरों को शौक़ दिलाया जा रहा है। **'क़र्ज़न् हसनन्'** इस्लामी परिभाषा में इस शब्द से मुराद हर वह धनराशि है जो धर्म के किसी मद में व्यय हो, परन्तु यहाँ मुराद है जिहाद के व्यय। इस मज़हबी चन्दे को क़र्ज़ और फिर नेक क़र्ज़ (क़र्ज़े हसना) कहना अरब के मुहावरे के ऐन मुताबिक़ है, क्योंकि अरब वाले अच्छे बदलेवाले अमल को अच्छे क़र्ज़ और बुरे बदलेवाले को बुरा क़र्ज़ कहा करते थे। अरब एक प्रसिद्ध तिजारत-पेशा जाति थे, 'क़र्ज़', 'तिजारत', 'बैअ', 'शिरा' इत्यादि शब्द यदि उनकी ज़बान पर चढ़ गये हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। एक बद्दीन, उर्दू पढ़नेवाला, अनपढ़, क़ुर्आन मजीद में **'क़र्ज़न्'** का शब्द देखकर और उसे उर्दू के 'क़र्ज़' पर विचार करके मज़ाक़ में बोला कि ख़ुदा भी मोहताज हो गया है जो उसे बन्दों से उधार माँगने की ज़रूरत पड़ी। जिहालत भी इन्सान के लिए कितनी बड़ी लानत है।

४१७ (यानी अस्ल अधिकार से कहीं बढ़ा-चढ़ाकर) **'युज़ाअिफ़हू'** उसको यानी उसके बदले और उसके पुण्य को।

४१८ (सो उसकी राह में दिल खोलकर ख़र्च करने से क्यों रुको, क्यों घबराओ।) स्पष्ट बता दिया कि अर्थ के सारे नियम और क़ानून अल्लाह ही की मुट्ठी में हैं। उसकी राह में ख़र्च करने से यह न समझो कि ग़रीब हो जाओगे। क़ुर्आन जहाँ ज़ाहिरी कारणों, भौतिक निकटता की रियायत करता है वहीं यह भी स्मरण कराता रहता है कि जीवन के हर अनुभाग में सबसे बड़ा हाकिम और सारे कारणों तथा स्रोतों को एकत्र करनेवाला स्वयं अल्लाह तआला ही है।

४१९ (और वही दीन की राह में ख़र्च करनेवालों को बदला देगा और ख़र्च न करनेवालों को सज़ा देगा। **'व अिलैहि तुर्जअून'** में क़ुर्आन मजीद दोहरे पहलू रखता है। एक तो यह कि वापसी यक़ीनी समझो। यह न होगा कि सिरे से ख़त्म और ग़ायब हो जाओगे। एक दूसरे लोक में अवश्य पहुँचना

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २८२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व क़ाल लहुम् नबिय्युहुम् अिन्नल्लाह क़द् बअस लकुम् तालूत मलिकन् त
क़ालू अन्ना यकूनु लहुल्मुल्कु अलैना व नह्नु अहक़्क़ु बिल्मुल्कि मिन्हु व
लम् युअ्त सअतम्-मिनल्मालि त क़ाल अिन्नल्लाहस्तफ़ाहु अलैकुम् व ज़ादहू
बस्ततन् फ़िल्अिल्मि वल्जिस्मि त वल्लाहु युअ्ती मुल्कहू मंय्यशा'अु त

البقرة ٢ ٣٢ سيقول ٢

لِنَبِيٍّ لَّهُمْ قَالُوْٓا اَنّٰى يَكُوْنُ لَهُ الْمُلْكُ عَلَيْنَا وَنَحْنُ اَحَقُّ بِالْمُلْكِ مِنْهُ وَلَمْ
يُؤْتَ سَعَةً مِّنَ الْمَالِ ۭ قَالَ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىهُ عَلَيْكُمْ وَزَادَهٗ بَسْطَةً
فِي الْعِلْمِ وَالْجِسْمِ ۭ وَاللّٰهُ يُؤْتِيْ مُلْكَهٗ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝
وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ اِنَّ اٰيَةَ مُلْكِهٖٓ اَنْ يَّاْتِيَكُمُ التَّابُوْتُ فِيْهِ سَكِيْنَةٌ
مِّنْ رَّبِّكُمْ وَبَقِيَّةٌ مِّمَّا تَرَكَ اٰلُ مُوْسٰى وَاٰلُ هٰرُوْنَ تَحْمِلُهُ الْمَلٰۗىِٕكَةُ ۭ
اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝ فَلَمَّا فَصَلَ طَالُوْتُ
بِالْجُنُوْدِ ۙ قَالَ اِنَّ اللّٰهَ مُبْتَلِيْكُمْ بِنَهَرٍ ۚ فَمَنْ شَرِبَ مِنْهُ فَلَيْسَ مِنِّىْ ۚ
وَمَنْ لَّمْ يَطْعَمْهُ فَاِنَّهٗ مِنِّىْٓ اِلَّا مَنِ اغْتَرَفَ غُرْفَةًۢ بِيَدِهٖ ۚ فَشَرِبُوْا
مِنْهُ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ ۭ فَلَمَّا جَاوَزَهٗ هُوَ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ ۙ قَالُوْا
لَا طَاقَةَ لَنَا الْيَوْمَ بِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ ۭ قَالَ الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوا
اللّٰهِ ۙ كَمْ مِّنْ فِئَةٍ قَلِيْلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً كَثِيْرَةًۢ بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ مَعَ
الصّٰبِرِيْنَ ۝ وَلَمَّا بَرَزُوْا لِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ قَالُوْا رَبَّنَآ اَفْرِغْ عَلَيْنَا
صَبْرًا وَّثَبِّتْ اَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَي الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ۝ فَهَزَمُوْهُمْ
بِاِذْنِ اللّٰهِ ڐ وَقَتَلَ دَاوٗدُ جَالُوْتَ وَاٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ وَالْحِكْمَةَ وَ
عَلَّمَهٗ مِمَّا يَشَاۗءُ ۭ وَلَوْلَا دَفْعُ اللّٰهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ ۙ
لَّفَسَدَتِ الْاَرْضُ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ ذُوْ فَضْلٍ عَلَي الْعٰلَمِيْنَ ۝
تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْھَا عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ۭ وَاِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ۝

منزل

वल्लाहु वासिअुन् अलीमुन् (२४७) व क़ाल
लहुम् नबिय्युहुम् अिन्न आयत मुल्किही
अंय्यअ्तियकुमुत्ताबूतु फ़ीहि सकीनतुम्-
मिर्रब्बिकुम् व बक़िय्यतुम्-मिम्मा तरक आलु
मूसा व आलु हारून तह्मिलुहुल्-मला'अिकतु त
★ रु. ३२/१६ आ ६ अिन्न फ़ी ज़ालिक लआयतल्लकुम् अिन्
कुन्तुम् मुअ्मिनीन (२४८) ★ फ़ लम्मा
फ़सल तालूतु बिल्जुनूदि ला क़ाल अिन्नल्लाह
मुब्तलीकुम् बिनहरिन् ज फ़ मन् शरिब
मिन्हु फ़ लैस मिन्नी ज व मल्लम् यत्अम्हु
फ़ अिन्नहू मिन्नी' अिल्ला मनिग़्तरफ़
ग़ुर्फ़तम्-बि यदिही ज फ़ शरिबू मिन्हु अिल्ला
क़लीलम्-मिन्हुम् त फ़ लम्मा जावज़हू हुव वल्लज़ीन आमनू मअहू ला क़ालू
ला ताक़त लनल्यौम बिजालूत व जुनूदिही त क़ालल्लज़ीन यज़ुन्नून अन्नहुम्
मुलाक़ुल्लाहि ला कम्मिन् फ़िअतिन् क़लीलतिन् ग़लबत् फ़िअतन् कसीरतम्-
बि अिज़्निल्लाहि त वल्लाहु मअस्साबिरीन (२४९) व लम्मा बरज़ू लि जालूत
व जुनूदिही क़ालू रब्बना' अफ़्रिग़् अलैना सब्रंव्व सब्बित् अक़्दामना वन्सुर्ना
अलल्-क़ौमिल्-काफ़िरीन त (२५०) फ़ हज़मूहुम् बि अिज़्निल्लाहि क़िफ़ ला व क़तल
दावूदु जालूत व आताहुल्लाहुल्मुल्क वल्हिक्मत व अल्लमहू मिम्मा
यशा'अु त व लौ ला दफ़्अुल्लाहिन्नास बअ्ज़हुम् बिबअ्ज़िन् ला ल'लफ़सदतिल्-
अर्ज़ु व लाकिन्नल्लाह ज़ू फ़ज़्लिन् अलल्-आलमीन (२५१) तिल्क
आयातुल्लाहि नत्लू हा अलैक बिल्हक़्क़ि त व अिन्नक लमिनल्-मुर्सलीन (२५२)

॥ इति दूसरा पारः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उन लोगों से उनके नबी ने कहा कि अल्लाह ने तुम्हारे लिए तालूत को सरदार नियुक्त कर दिया है[४२७]। वह बोले, उसे हमारे ऊपर कैसे सरदारी मिल सकती है, ऐसी दशा में कि हम उससे बढ़कर सरदारी के हक़दार हैं और उसे धन-दौलत में भी बड़ाई नहीं दी गयी है[४२८]। (नबी ने) कहा कि उसे अल्लाह ने तुम्हारे मुक़ाबले में चुन लिया है[४२९] और इल्म और जिस्म दोनों में फैलाव अधिक प्रदान किया है[४३०]। और अल्लाह अपना मुल्क जिसे चाहता है देता है[४३१]। और अल्लाह बड़ा फैलाववाला है, बड़ा ज्ञानवाला है[४३२]। (२४७) और उनसे उनके नबी ने कहा कि उसकी सरदारी का चिह्न यह है[४३३] कि तुम्हारे पास वह सन्दूक़ (स्वयं) आ जायेगा जिसमें सन्तोष (का सामान) तुम्हारे परवरदिगार (पालनेवाले) की ओर से है[४३४], और कुछ बची हुई चीज़ें भी, जिन्हें मूसा की सन्तान और हारून की सन्तान छोड़ गयी हैं[४३५], उस सन्दूक़ को फ़िरिश्ते ले आयेंगे[४३६]। बेशक इस घटना में तुम्हारे लिए एक निशान है[४३७] अगर तुम ईमानवाले हो[४३८]। (२४८)। ★
★ रु. ३२/१६ आ] ६

फिर जब तालूत फ़ौजों को लेकर बढ़े तो बोले[४३९] कि अल्लाह तुम्हारी परीक्षा एक नदी के माध्यम से लेना चाहता है[४४०]। सो जो कोई उसमें से पानी पी लेगा, वह मेरा नहीं है[४४१]। और जो कोई उसे न चखे सो वही मेरा है, मगर हाँ, जो कोई अपने हाथ से एक चुल्लू भर ले ले (इसमें कोई आपत्ति नहीं)[४४२] (क) लेकिन उन (सब) ने उससे पी लिया सिवाय उनमें से थोड़े से आदमियों के[४४२] (ख) फिर जब तालूत स्वयं और मोमिनीन (ईमानवाले) भी उनके साथ उस (नदी) से उतर गये तो, वह लोग बोले कि आज तो हममें जालूत और उसकी सेना से मुक़ाबले की ताक़त नहीं[४४३]। और वह लोग, जिन्हें विश्वास था कि अल्लाह के सामने पेश होंगे[४४४], बोले कि बहुधा छोटी जमातें बड़ी जमातों पर अल्लाह के हुक्म से विजयी हुई हैं[४४५]। और अल्लाह तो सब्र करनेवालों के साथ है[४४६]। (२४९) और जब वह जालूत और उसकी सेना के समक्ष आये तो बोले, ऐ हमारे परवरदिगार! हमारे ऊपर सब्र डाल दे, और हमारे क़दम जमाये रख, और हमें काफ़िर लोगों पर विजयी कर[४४७]। (२५०) फिर उन्होंने उनको अल्लाह के हुक्म से पराजित कर दिया[४४८] और दाऊद ने जालूत को क़त्ल कर दिया[४४९]; और अल्लाह ने दाऊद को बादशाहत और बुद्धिमानी प्रदान की और जो कुछ चाहा उन्हें सिखाया[४५०]। और यदि अल्लाह बाज़ लोगों को बाज़ लोगों के माध्यम से दूर न करता रहता, तो ज़मीन के मुख पर फ़साद फैल जाता[४५१]; परन्तु अल्लाह तो दुनियावालों पर मेहरबानी रखनेवाला है[४५२]। (२५१) यह अल्लाह की आयतें हैं, हम उन्हें आपको पढ़कर सुनाते हैं ठीक-ठीक[४५३]। और (ऐ मुहम्मद!) आप अवश्य रसूलों में से हैं[४५४]। (२५२)

॥ इति दूसरा पारः ॥

---

४२७ 'तालूत बिन कुश' इतिहास में इस्राईली क़ौम के प्रथम बादशाह माने गये हैं। शासनकाल १०२८ पूर्व मसीह से १०१२ पूर्व मसीह। यह वही हैं जिनका वर्णन 'तौरेत' में 'साऊल' (Saul) के नाम से आया है। तौरेत में उनके शासन का वर्णन दस्तूर के अनुसार बड़े विवरण से आया है— "और खुदावन्द ने साऊल के आने से एक दिन पूर्व समोईल के कान में कह दिया था कि कल इसी समय में एक व्यक्ति को बनी यामीन की सरज़मीन से तेरे पास भेजूंगा सो तू उस पर तेल मलियो कि वह मेरी क़ौम इस्राईल का हाकिम हो, ताकि मेरे लोगों को फ़िलस्तीनियों के हाथों से छुड़ाये, सो जब समोईल साऊल से दो-चार हुआ तो वहीं खुदावन्द ने कहा कि देख यही शख्स है जिसकी बाबत मैंने तुझे कहा था। यही मेरे लोगों पर प्रशासन करेगा।" (१— समोईल ९ : १५, १६)। **'मलिकन्'** यहाँ तरकीब में तालूत से हाल वर्णित हुआ है।

४२८ हज़रत समोईल नबी का कहना बिलकुल ठीक निकला। इस्राईली कहाँ तो सरदार बनने का स्वयं ही तक़ाज़ा कर रहे थे और कहाँ अब जो उसकी नियुक्ति खुदा की ओर से हो गयी तो आपत्ति करने

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २८३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २७९ से)

है, दूसरे यह कि यह वापसी अल्लाह की तरफ़ होगी। किसी और की ओर नहीं जैसा कि दूसरे मज़हबों में ग़लत ढंग से मान लिया गया है।

४२० (ऐ सम्बोधित व्यक्ति !) **'अल्मलउ'— 'मलाअ'** संज्ञा बहुवचन है, जैसे क़ौम या 'रहत', यानी ऐसी जमाअत मुराद है जो अपनी राय रखते हैं और प्रभावशाली हैं। तौरेत में इस अवसर पर "इस्राईली बुज़ुर्ग" अंकित है। **'मिम्बअ्दि मूसा'** यह वर्णन हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम से लगभग तीन शताब्दी के पश्चात् और हज़रत दाऊद से कुछ पूर्व समय का है। सन् मसीही के आरम्भ में अभी लगभग हज़ार या ग्यारह सौ साल का समय अवशेष था।

४२१ मुराद हज़रत शमोईल (११०० पूर्व मसीह ता १०२० पूर्व मसीह) हैं। पुराने शाम के देश में एक पहाड़ी क्षेत्र इफ़्राईम के नाम से था उसके नगर रामा में आप रहते थे।

४२२ (और इस सरदार के आधीन हम सब व्यवस्थित और संगठित होकर शत्रुओं से युद्ध करें) इस्राईली उस समय विशेष रूप से शत्रुओं से घिरे हुए थे और लड़ाई में उनसे पराजित होकर तंग आ गये थे। तौरेत में इसका विवरण भी है कि हज़रत शमोईल नबी उस समय बूढ़े हो चुके थे और आपके सुपुत्रों में सरदारी की क्षमता नहीं थी। **'मलिकन्'** अरबी में इस शब्द का अर्थ बड़ा विशाल है। हर शक्तिशाली व्यक्ति, जो अपने नियम और आदेश लागू करा सके, 'मलिक' है। यहाँ 'मलिक' का अर्थ सरदारे फ़ौज या सेनानायक है और सन्दर्भ के अनुसार उचित भी है। उर्दू में रईस और अमीर के शब्द और सीमान्त क़बीलों में खान मलिक के ही अर्थ के शब्द हैं। तौरेत में इस अवसर पर बादशाह का शब्द आया है और इस्राईली विचार में बादशाह के लिए फ़ौज की सरदारी अनिवार्य थी और हर उच्च नायक को बादशाह कहते थे। जिविश इन्साइक्लोपीडिया में है— "बादशाह का प्रथम कर्तव्य यह था कि फ़ौज की सरदारी और सेनानायकी करे।" (जिल्द ७, सफ़ा ५०१)। यह विवरण भी है कि "फ़िलस्तीन में लगभग हर बड़ा सरदार बादशाह ही कहलाता था।" (जिल्द ७, सफ़ा ५००)। तौरेत में इसी अवसर का वर्णन इन शब्दों में है— "तब सारे इस्राईली बुज़ुर्ग एकत्र होकर रामा में शमोईल के पास आये और उनसे कहा कि देखो तुम बूढ़े हो और तुम्हारे बेटे तुम्हारे मार्ग पर नहीं चलते। अब तुम किसी को हमारा बादशाह नियुक्त करो जो हम पर प्रशासन करे जैसा कि सब क़ौमों में है।" (१— समोईल ८ : ४ तथा ५)। "हम तो बादशाह चाहते हैं जो हमारे ऊपर मुक़र्रर हो ताकि हम भी और सब गरोहों के मानिन्द (तरह) हों और हमारा बादशाह हमारी अदालत करे और हमारे आगे-आगे चले और हमारे लिए लड़ाई करे।" (१— समोईल ८, १९, २०)।

४२३ यह सब हज़रत शमोईल ने कुछ तो अपनी ईमानी समझ-बूझ से कहा और कुछ अपनी क़ौम के मिज़ाज के अनुभव के आधार पर फ़र्माया। **'असैतुम् अल्ला तुक़ातिल'** के माने हैं कि मैं तो यही समझता हूँ कि तुम न लड़ोगे।

४२४ वह लोग बोले, वाह! भला यह भी कहीं मुमकिन हैं! शर्ई आदेश के अलावा हम लोग अत्यन्त मज़्लूम और सताये हुए भी तो हैं। इस ज़माने में फ़िलस्तीनियों की लूट-मार और उनके आक्रमण से इस्राईलियों के बे-अन्दाज़ा तबाही का वर्णन पुरानी इस्राईली पुस्तकों में, जिसका इतिहासकार जोसेफ़स है, मिलता है। अन्य तारीख़ों के साथ तौरेत भी इन युद्धों के वर्णन से खाली नहीं है। एक स्थान पर है— "और वह जब आपस में लड़े तो इस्राईली ने फ़िलस्तीनियों से पराजय पायी और उन्होंने उनकी सेना में लगभग चार हज़ार आदमी मारे।" (१— समोईल ३ : ४)। "सो फ़िलस्तीनी लड़े और बनी इस्राईल ने पराजय पायी और हर एक अपने-अपने खेमे को भागा और वहाँ बड़ा ख़ून बहा और भयंकर रक्तपात हुआ कि तीस हज़ार इस्राईली मारे-मारे पड़े और ख़ुदा का सन्दूक़ लूटा गया।" (१— समोईल ४ : १)।

४२५ आख़िर उनके नबी का कहा उनके आगे आया और बनी इस्राईल इतने दावों के बावजूद कायरता और दुस्साहस का शिकार हुए। जोसेफ़स की मशहूर तारीख़ "आसारे यहूद" में है— "उन पर भय छा गया यानी पहाड़ों में छुप गये। बाज़ों ने ज़मीन के नीचे खोहों में पनाह ली। बहुत से लोगों ने अपना देश छोड़कर दर्या यर्दन को पार कर गये।" (अध्याय ६, फ़स्ल ६, फ़िक़्रः १)।

४२६ (और उनकी सज़ा पर भी पूरी तरह शक्ति रखनेवाला) **'अज़्ज़ालिमीन'** से मुराद है अपनी आत्मा पर ज़ुल्म करनेवाले हैं यानी अल्लाह की आज्ञा न माननेवाले बन्दे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २८१ से)

लगे और कहने लगे कि "ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति हो कैसे सकती है !" एक विशेष क़बीले की ओर से आपत्ति एवं इन्कार का वर्णन तौरेत में भी है— "बनी बअ़ाल बोले कि यह व्यक्ति हमको किस प्रकार बचाएगा ? और उसका निरादर किया और उसके लिए नज़राने नहीं लाये ।" (१—समोईल १० : २७) । बनी इस्राईल हज़रत याक़ूब की बारह सन्तानों की नस्ल हैं । नस्ली आधार पर बारह क़बीलों या फ़िरक़ों में बँटे हुए थे । उनमें सबसे छोटा क़बीला बनी यामीन का था और तौरेत में विवरण है कि तालूत इसी क़बीले से थे । (समोईल ९ : २१) । तो एक वजह तो उनके कम समझे जाने की यही थी । नस्ल और परिवार की अहम्मीयत जब उचित हदों से बढ़ जाती है तो हिन्दुओं की प्रकार जाति-पाँति का रूप धारण कर लेती है । इस्राईलियों का अब भी यह विश्वास हो गया था कि नबूवत बनी लावा का विशेष अधिकार था और प्रशासन विशेषाधिकार है क़बीला बनी यहूदाह का । जैसे आज आम हिन्दुओं की समझ में यह बात नहीं आती कि कोई व्यक्ति न ब्राह्मण हो, न क्षत्री वह उच्चाधिकारी और सरदार कैसे मान लिया जाए ! दूसरी आपत्ति इस्राईलियों की ओर से यह थी कि यह आर्थिक दृष्टि से भी सरदारी के मन्सब के योग्य नहीं हैं, जैसे हिन्दू किसी के बारे में यह एतराज़ करें कि यह ब्राह्मण, क्षत्री न सही यह शख्स वैश्य (महाजन या साहूकार) के भी दर्जे का भी नहीं ।

४२९ (और अल्लाह का चयन ज़ाहिर है कि बुद्धिमानी और हित के साथ होगा ।) हज़रत समोईल ने पहला और वास्तविक उत्तर तो यही दिया कि यह चुनाव मानव की ओर से नहीं, ईश्वरीय है, अतः हर प्रकार से यही उचित और बुद्धिमत्तापूर्ण है । ऐसा कि उन बारीकियों तक तुम्हारा दिमाग़ नहीं पहुँच सकता । नबी जो कुछ कहते हैं, देखकर कहते हैं । तौरेत में इस स्थान पर है, "और समोईल ने जमाअत को कहा कि तुम उसे देखते हो कि जिसे ख़ुदावन्द ने चुन लिया कि उसकी भाँति सारे लोगों में एक भी नहीं ।" (१—समोईल १० : २४) ।

४३० यह शमोईल का दूसरा और अक़्ली उत्तर है । आपने फ़र्माया कि तुम अपने स्तर से भी देख लो । तुम्हारे मेयार से सेनानायक में यही दो चीज़ें आवश्यक हैं । एक यह कि उसको सेनापति होने और विजय-प्राप्ति की कला आती हो, सो वह तालूत को प्राप्त है; और स्वयं उसकी जिस्मानी शक्ति और बल, सो उसमें भी वह अग्रणी है । **'अ़िल्म'** से यहाँ मुराद वही इल्मोफ़न (कलाएँ) हैं, जिनका सम्बन्ध प्रशासन तथा देशों पर विजय-प्राप्ति से हो । **'जिस्म'** से मुराद है कि तालूत क़द और लम्बाई-चौड़ाई और ज़ाहिरी वजाहत (मुखकान्ति) में दूसरों से बढ़-चढ़कर थे । तौरेत में दी हुई तफ़सीलों और विवरणों से उनका चित्र ज़ेहन में स्वयं खींच लें— "बहुत अच्छा युवक था और बनी इस्राईल के मध्य में उससे सुन्दर कोई व्यक्ति नहीं था । यह सारी क़ौम में कांधे से लेकर ऊपर तक हर एक से ऊँचा था ।" (१— समोईल ९ : १०) । "और वह जब कि जमाअत के बीच खड़ा हुआ तो कांधों से लेकर ऊपर तक सबसे लम्बा था ।" (१— समोईल १० : १३) । और लम्बाई इस्राईलियों के यहाँ कोई साधारण गुण नहीं था । यह बड़ी महत्त्वपूर्ण और आवश्यक गुण सरदारी के लिए था । तौरेत के पश्चात् उनके यहाँ का सबसे पवित्र लेख 'तालमूद' है, उसका विवरण अवलोकित हो— "ख़ुदावन्द तबारक व तआ़ला अपनी सरदारी का अवतरण उस व्यक्ति पर करता है जो बुद्धिमान हो, धनवान हो और लम्बे क़द का हो ।" (Page 128 Talmud-Everyman's Talmud) । क़ुर्आन मजीद की इस सारगर्भिता पर क़ुर्बान जाइए कि उसने नाम ही ऐसा रखा, जिससे लम्बे क़द की ओर पूर्ण संकेत हो जाए । अतः शोधकों की एक टुकड़ी इस विचार की है कि 'तालूत' वास्तव में 'तोलूत' था और 'तूल' से बना है, 'तूल' का अर्थ है 'लम्बाई' ।

४३१ (कि वही मालिक तथा मुख़्तार है और वह जो कुछ प्रदान करता है वह बुद्धिमानी एवं अक़्लमन्दी के तक़ाज़े से होता है ।) **'मुल्कहू'** मुल्क को अपने से सम्बद्ध करके अल्लाह ने बता दिया कि वास्तव में वही मालिक है सारे देशों का ।

४३२ (जिसका अधिकार भी सीमाओं से घिर नहीं सकता और जिसका ज्ञान भी हर चीज पर छाया हुआ है ।) **'वासिअ़ुन्'** वह बड़ी फैलाव वाला है जिसके अधिकार में सभी कुछ है । वही हर पस्त को बलन्द और हर अदना को सरफ़राज़ कर सकता है । जिसे चाहे इज़्ज़त प्रदान करे और जिसको चाहे तुच्छ बना दे । **'अलीमुन्'** उसका इल्म (ज्ञान) हर चीज पर छाया हुआ है और सम्पूर्ण है । वही ख़ूब जानता है कि किसमें मुल्कों को जीतने और उनका प्रशासन करने की क्षमता मौजूद है ।

४३३ (या वह ग़ैबी शक्ति, जो तुम्हारे सन्तोष का काम दे सके ।) कुछ अजब नहीं जो बनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस्राईल ने अपनी पुरानी अजूबा परस्ती के आधार पर तालूत के लिए किसी ग़ैबी चिह्न की माँग की हो और उसके उत्तर में वह अल्लाह् के इशारे पर यह कह रहे हों। **'नबिय्युहुम्'—'नबिय्युन्'** —शाब्दिक अर्थ हैं ख़बर देनेवाले के। सीग़: मुबालग़: का है। पयम्बर को शरीअत की परिभाषा में नबी इसलिए कहते हैं कि वह अल्लाह की ओर से ख़बर पहुँचानेवाला होता है। और 'नबूवत अल्लाह' और उसके बन्दों के बीच राजदूत का नाम है जिससे बन्दों को आर्थिक एवं सामाजिक शिक्षा प्राप्त हो।

४३४ (ऐसी दशा में कि तुम एक ज़माने से अपनी इस प्यारी दौलत से वञ्चित हो।) **'यातियकुम्'** यानी स्वयं बिना तुम्हारे किसी प्रयास के आ जाएगा। **'अत्ताबूतु'** उस विशेष सन्दूक़ का पारिभाषिक नाम 'ताबूतें सकीना' है, यह बनी इस्राईल का सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक एवं क़ौमी वर्स: (पैतृक सम्पत्ति) था। उसके अन्दर तौरेत का अस्ली संस्करण और कुछ नबियों की पवित्र चीज़ें सुरक्षित थीं। इस्राईली इसको अत्यन्त शुभ एवं पवित्रता की वस्तु जानते थे और उसके साथ अत्यन्त सम्मान का व्योहार करते थे। यात्रा हो चाहे घर पर हों, लड़ाई हो चाहे शान्ति, हर हाल में उसे बड़ी सुरक्षा के साथ रखते थे। यह कुछ ऐसा बड़ा नहीं था। मौजूद यहूद आलिमों के शोधानुसार इसकी नाप निम्नवत् थी— लम्बाई २।। फ़िट, चौड़ाई १।। फ़िट, ऊँचाई १।। फ़िट। बनी इस्राईल अपना सारा भाग्य इसी से सम्बद्ध किये हुए थे। एक ज़माना हो गया फ़िलस्तीनी उसको उनसे छीन ले गये। इस्राईली इसे अपना बड़ा दुर्भाग्य समझकर उसकी वापसी के लिए बेहद बेचैन और परेशान थे। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इस आयत से यह तर्क निकाला है कि बुरे कर्मों और आज्ञा-उल्लंघन करते रहने से क़ौम दुनियावी नेमतों से भी वञ्चित हो जाती है। 'तालूत' के समय में यह ताबूत वापस आ जाने के पश्चात् इतिहास का बयान है कि बनी इस्राईल के क़ब्ज़े में हज़रत सुलैमान (देहान्त ९३३ पूर्व मसीह) तक रहा और आपने 'बैतुलमुक़द्दस' में "हैकले सुलैमानी" का निर्माण किया और उसी में उसे भी रख दिया था उसके पश्चात् उसका पता नहीं चलता। यहूद का विचार है कि यह ताबूत अब भी 'हैकले सुलैमानी' की नीवँ में दफ़्न है। **'सकीनतुम्-मिर्रब्बिकुम्'** यानी तौरेत का 'नुस्ख़ओ शफ़ा' (अस्ली संस्करण)।

४३५ यानी उन दोनों हज़रात और उनकी पवित्र सन्तानों की पवित्र वस्तुएँ और यादगारें। बाज़ 'अहलें तरीक़' ने कहा है कि औलिया अल्लाह् के सम्मान का जो तरीक़ा चला आ रहा है उसकी अस्ली सनद इस ताबूत की कहानी से मिल जाती है जो ताबूत के विषय में है।

४३६ इतिहास का बयान है कि फ़िलस्तीनी इस ताबूतें सकीना को छीन तो लाये, परन्तु जिस तारीख़ से उसे लाये एक दिन भी चैन से न बैठने पाये। अभी वबा का ज़ोर है, अभी अन्य कोई मुसीबत, अन्त में तंग आकर यह निर्णय लिया कि इस मनहूसियत की पोट को (नऊज़ु बिल्लाह) कहीं और फेंकवा दिया जाए। एक बैलगाड़ी पर उसे लादकर गाड़ी को बिना गाड़ीवान के वैसे ही बैलों को हाँक दिया। बैल सीधे बनी इस्राईल के इलाक़े की ओर रवाना हो गये और गाड़ी यहूदाह के प्रान्त में नगर 'बैत शम्स' में आकर ठहर गयी। **'तह्मिलुहुल्-मला'अिकतु'** सृष्टि के कार्य जो भी होते हैं, सब फ़िरिश्तों के द्वारा ही होते हैं। अर्थात् बैलों का इस्राईली इलाक़े की ओर कर देना भी फ़िरिश्तों ही का काम था और तालूत के समर्थन में यही ग़ैबी चिह्न था। बाइबिल् में ताबूतें सकीना की वापसी तालूत के समय से बहुत पूर्व दर्ज हो गयी है। क़ुर्आन मजीद ने यहाँ विवरण देकर बाइबिल् के अनुसार अपने तौर पर शुद्धि कर दी। मसीहियों और उनके सहयोगियों का यह प्रयास कितना हास्यप्रद है और किस क़दर इब्रत का अवसर है कि बजाय इसके कि क़ुर्आन मजीद जैसी मज़बूत, सुरक्षित, प्रमाणित दस्तावेज़ को बाइबिल् पर पेश करें और उसकी रौशनी में बाइबिल् के बयानों को जाँचें, परखें, उलटे बाइबिल्-जैसी सन्देहजनक, असुरक्षित, ग़ैरप्रमाणित लेख की रौशनी में क़ुर्आन मजीद के बयानों को जाँचना, परखना चाहते हैं। सूर्य के प्रकाश में लालटेन को देखने के बजाय लालटेन की रौशनी में सूर्य को देखने का प्रयास हो रहा है।

४३७ (ग़ैबी क़ब्ज़े का) **'फ़ी ज़ालिक'** यानी ताबूत की वापसी की इस घटना में। **'लकुम्'** तुम्हारे लिए यानी तुम्हारे सन्तोष हेतु।

४३८ (अपनी फ़ौजवालों से) **'फ़सल'** यानी शत्रु के मुक़ाबले में बढ़े।

४३९ (सब्र और संयम में, अनुशासन और डिसिप्लिन् में।)

४४० **'नहर्'** नदी से यहाँ मुराद दरयाए-यर्दन (Jordan) है। यह नदी बड़ी नहीं है, सीधी लम्बाई केवल ६५ मील है। हाँ, इसके मोड़ और घुमाव देखें तो २०० मील है। फ़िलस्तीनी क्षेत्र में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबसे महत्त्वपूर्ण नदी यही है और गोया देश की प्राकृतिक सीमा का काम देती है अतः यर्दन के इस पार और उस पार क्षेत्रों की तक़सीम स्वयं तौरेत में अंकित है। (यूशा १ : १४, १५)। इसका बहाव उत्तर से दक्षिण की ओर है और यह जलील सागर तथा तिब्रिया सागर होती हुई मुर्दा सागर (Dead sea) में जाकर गिरती है। इसका जल आरम्भ में साफ़, स्वच्छ और मीठा है, परन्तु आगे चलकर गँदला, बदबूदार और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

४४१ यानी मेरे साथियों और सहयोगियों में से नहीं है। यह अर्थ नहीं है कि वह सिरे से ईमान से ही ख़ारिज हो गया। **'शरिब मिन्हु'** यानी जी भर के उसमें से पानी पी लेगा। रिवायतों में आता है कि मौसम गर्मी का था और तालूत के सैनिकों को ज़ोर की प्यास लगी हुई थी।

४४२ (क) मालूम होता है कि वास्तविक आदेश वही पहला था कि कोई रास्ते में यह पानी ज़बान पर न रखे और यह दूसरा आदेश आज्ञा के रूप में था कि ख़ैर एक-आध चुल्लू से मुँह तर कर लेने में आपत्ति नहीं। **'मल्लम् यत्अम्हु'— 'तआम'** यानी चखने के अर्थ में है। **'अिल्ला मनिग़्तरफ़'** यानी चुल्लू भर पी लेने में आपत्ति नहीं है।

४४२ (ख) (कि उनकी संख्या तौरेत की रिवायत के अनुसार ६०० थी।) "तब साऊल ने उन लोगों को गिना जो उसके पास हाज़िर थे और वह मर्द ६०० के क़रीब थे।" (१— समोईल १२ : १५)। **'शरिबू मिन्हु'** यानी ख़ूब जी भरकर पिया जिसके बाद चलना, ख़ासकर सैनिक-मार्च करना, कठिन हो जाता है।

४४३ (ज़ाहिरी परिस्थिति को देखते हुए) यह वार्ता उनमें आपस में होने लगी। शत्रु की भारी संख्या और उसकी बड़ाई और सामग्री पर दृष्टि डालकर उसके भय का दिल में बैठ जाना और अपनी ओर से निराश हो जाना एक प्राकृतिक मामला था। अच्छे-अच्छे ईमानवालों की भी हिम्मत ऐसे अवसरों पर टूट जाती है। जोसेफ़स इस्राईली के इतिहास "आसारे यहूद" में है— "तालूत और उसके सैनिक यह सामान देखकर सहम गये।" (अध्याय ६, ९ : १)। स्वयं तौरेत की रिवायत है— "जिस वक़्त साऊल और उसके सारे इस्राईल ने उस फ़िलस्तीनी की बात सुनी, तो उनकी वीरता निकल गयी और वह निपट डर गये।" (१— समोईल १७ : ११)। **'जालूत'** फ़िलस्तीनियों की सेना का मशहूर सरदार बड़े तनोतोश का पहलवान था। इन्सान क्यों था, गोया देवज़ाद था। तौरेत में उसकी जसामत (लम्बाई-चौड़ाई), क़दोक़ामत (डील-डौल) और उसके बलशाली होने, उसके हथियार और उसकी लड़ाई का वर्णन बड़े विवरण के साथ मौजूद है। उन रिवायतों से ज्ञात होता है कि उसका क़द १० फ़िट का था। सिवाय चेहरे के सर से पैर तक लौह-वस्त्र पहनता था और उसकी ढाल का वज़न लगभग तीन मन था।

४४४ (आख़िरत में) तालूत की सेना में मोमिन तो सब ही थे। बहुतों पर जालूत की सेना का भय प्राकृतिक रूप में छा गया, परन्तु कुछ ऐसे भी थे जिनका ईमान ख़ुदा और आख़िरत पर था और अडिग था। उस समय भी उनके ज़ेहन में यह अक़ीदः मौजूद था और वह सामयिक रूप में भी भयभीत और ख़ौफ़ज़दा नहीं हुए। बल्कि बड़े संयम से बोले— "आख़िरत का विश्वास और उसका हर समय दिल में ख़याल जमाये रहने से दिलों में साहस, स्थिरता और बेख़ौफ़ी पैदा होती है।"

४४५ (अतः दुश्मनों की संख्या से भय ही क्या ?) उन पुख़्ता मोमिनों ने उस वक़्त भी कहा कि अस्ल चीज़ तो ईमान है और ईमान की मज़बूती है। ईमान से परिपूर्ण अल्पसंख्यक तो बहुधा बहुसंख्यकों पर विजयी हुए हैं। **'बि अिज़्निल्लाहि'** के प्रतिबन्ध ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि विजय में सबसे अहम चीज़ निजी वीरता और साहस नहीं, बल्कि ग़ैबी समर्थन होती है। यहाँ सृष्टि की उचित राय के अर्थ में नहीं है, बल्कि अल्लाह के हुक्म और उसकी ओर से इरादा कराने के अर्थ में आया है।

४४६ (अतः अहम और प्रथम चीज़ सब्र, साहस और ख़ुदा पर पूर्ण विश्वास है। **'मअ'** से अल्लाह की जिस्मानी सहायता का अर्थ नहीं है। उसकी कृपा, सहायता तथा मदद के साथ इसका अर्थ है।

४४७ इन दोनों आयतों में अल्लाह की सेना के सैनिकों को युद्ध के आदाब की शिक्षा दी गयी है कि आम दुनियावी सिपाहियों के विपरीत उनका भरोसा शक्ति और आन-बान पर नहीं होता, बल्कि अल्लाह की सहायता पर होता है। क़ुर्आन और मौजूदा तौरेत के बयानों का मुक़ाबला कर दिया जाए। तौरेत में युद्ध की बाहरी शुष्क घटनाओं का विवरण क़ुर्आन से कहीं अधिक है, परन्तु वह बस इसी पर सन्तुष्ट है गोया वह कोई इतिहास और वर्णन की पुस्तक है। क़ुर्आन मजीद इसके विपरीत हर अवसर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर मज़हब के नियमों की शिक्षा और उच्च नैतिकता की तालीम देता है। यही उसने यहाँ भी किया। 'अफ़्रिग़् अलैना सब्रन्' यानी हमें धैर्य की क्षमता दे। 'फ़न्सुर्ना' धैर्य और साहस के बाद काफ़िरों पर विजय तो सम्भवतः प्राकृतिक रूप में हो ही जाती, परन्तु मोमिनों की दृष्टि अपनी सारी व्यवस्था तथा प्रबन्ध एवं प्रयास से कहीं अधिक अल्लाह के समर्थन और ईश्वरीय सहायता पर रहती है, अतः यहाँ पर विवरण के साथ विजय और फ़त्ह की दुआ भी उनकी ज़बान से नक़्ल की गयी।

४४८ उन्होंने उन्हें यानी तालूत की सेना ने जालूत को हरा दिया। 'अिज़्न' यहाँ भी हुक्म और तौफ़ीक़ के माने में है (तौफ़ीक़— ईश्वर की ओर से इरादा होना)। तौरेत में फ़िलस्तियों की हार का दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है— "और फ़िलस्तियों ने जो देखा कि उनका सरदार मारा पड़ा है तो भाग निकले और इस्राईल और यहूदाह के लोग उठे और ललकारे और फ़िलस्तियों को वादी (घाटी) तक और इफ़्रान के फ़ाटक की राह तक रगेदा।" (१— समोईल १७ : ५२)।

४४९ 'दावूदु' दावूद बिन यसी बिन उईबद (१०२४ पूर्व मसीह से ९६३ पूर्व मसीह) एक सच्चे पैग़म्बर हुए हैं। क़ुर्आन मजीद में आपका ज़िक्र सोलह स्थानों पर आया है। तालूत की सेना में केवल एक नवयुवक के रूप में शामिल थे। उस समय तक न नबूवत प्रदान हुई थी, न देश और सल्तनत ही मिली थी। तौरेत में यह घटना पूरे विवरण से लिखी हुई है— "और ऐसा हुआ कि जब फ़िलस्ती उठा और आगे बढ़कर दाऊद के मुक़ाबले के लिए निकट हुआ तो दाऊद ने फुर्ती की और क़तारों की ओर दाऊद से मुक़ाबला करने दौड़ा और दाऊद ने अपने थैले में हाथ डाला और उसमें से एक पत्थर लिया और 'फ़लाखन्' (एक प्रकार का पुराना अस्त्र जिसमें पत्थर रखकर मारते थे) में धर के फ़िलस्ती के मस्तक पर ऐसा मारा कि वह पत्थर उसके मस्तक में धँस गया और वह ज़मीन पर मुँह के बल गिर गया। सो दाऊद एक फ़लाखन् और एक पत्थर से उस फ़िलस्ती पर विजयी हुआ और उस फ़िलस्ती को मारा और क़त्ल किया।" (१— समोईल, १७ : ४९, ५०)।

४५० (यह सब कुछ इस घटना के पश्चात् हुआ।) 'आताहुल्लाहुल् मुल्क' यह बादशाही ईश्वरीय दान थी। पहले तो इसी को क़ुर्आन ने स्पष्ट किया। यह बादशाहत इस्राईली क़ौम को प्रदान हुई थी। हज़रत दाऊद इस्राईली नस्ल के दूसरे बादशाह हैं। प्रथम बादशाह तालूत थे। आप उन्हीं के दामाद थे। तालूत अपने बड़े सुपुत्र के साथ जब युद्ध में काम आ गये तो यहूदाह के क़बीले ने दाऊद को अपना बादशाह बनाया और दो वर्ष की खींचतान के पश्चात् शेष क़बीलों ने भी आप पर ही सहमति की। सात वर्ष तक आपने अपनी राजधानी हिब्रून (यानी अल्ख़लील) को बनाये रखा, उसके बाद यरोशलम को शत्रुओं के क़ब्ज़े से निकालकर उसे राजधानी बनाया। आपने अपने पास-पड़ोस के बादशाहों को अपने आधीन बनाया और अपनी सल्तनत की सीमाओं को विशाल किया। आपके प्रशासन-काल को सुन्दर प्रबन्ध तथा विजय-प्राप्तियों के लिए इस्राईली इतिहास में ऊँचा दर्जा है और यादगार है। 'अल्हिक्मत' 'हिकमत' का अर्थ यहाँ नबूवत है जो बुद्धिमानी का सर्वोच्च स्थान है। हिकमत के साधारण अर्थ तमीज़ और बुद्धिमानी भी हो सकते हैं। 'अल्लमहू मिम्मा यशाउ' नबियों के ज्ञान को कौन घेर सकता है! इसके दायरे में वह सभी इल्म और कलाएँ आ गयीं जो हज़रत दाऊद को सिखायी गयीं। 'यशाउ' के मानी हैं भूतकाल के और ऐसा क़ुर्आन मजीद में अनेक स्थान पर आया है।

४५१ (बदी और बुराई की बढ़ोतरी से) 'बअ़्ज़हुम' यानी फ़सादियों, आज्ञा न माननेवालों, क़ानून का निरादर करनेवालों और बाग़ियों को। 'बिबअ़्ज़िन्' यानी दूसरे बन्दों को अल्लाह की मस्लहतें दुनियावी और उसकी इच्छा को आला बनाकर यानी उनके ज़रीए और माध्यम से। यहाँ यह आम क़ानून बता दिया कि दुनिया की हुकूमतों और राज्यों में इन्क़िलाब और उथल-पुथल हुआ करते हैं, वह यूँ ही अकारण तथा अनावश्यक और आसमान के चक्कर काटने से बिना किसी मस्लहत के नहीं हो जाया करते हैं, बल्कि हमेशा एक उद्देश्य और हिकमत ही के साथ हुआ करते हैं। और इनसे अत्याचार, बदी और गुनाहों तथा पापों का सुधार दृष्टि में रहता है। इस आयत से इस सत्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि कारणों की इस दुनिया में उत्पत्ति की ईश्वरेच्छा जो काम भी लेती है बन्दों के माध्यम और वास्ते से लेती है।

४५२ (इसलिए वह अपनी मेहरबानी तथा कृपा से ज़मीन पर उस भयंकर फ़साद की नौबत ही नहीं आने देता और बदकारों तथा आज्ञा न माननेवालों के प्रभाव और शक्ति को नेक लोगों और आदेश माननेवालों के ज़रीए से हटाता और मिटाता रहता है।) अर्थात् यह कि हर ऐसे इन्क़िलाब के पीछे अल्लाह की रहमत और मेहरबानी काम करती रहती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४५३ और सही उद्देश्य के साथ। **'बिल्हक़्क़ि'** यानी ज्यों का त्यों, अपनी अस्ली दशा में और सही ग़रज़ के साथ। गोया यहाँ यह ज़ाहिर कर दिया कि सही और प्रमाणित वर्णन केवल क़ुर्आन ही का है। दूसरी इल्हामी पुस्तकों की भाँति इसकी घटनाएँ तथा कहानियाँ ग़लत-सलत और बिगड़े-बिगाड़े हुए नहीं रह गये हैं। इसकी एक मिसाल यही तालूत का क़िस्सा है। बाइबिल् वालों ने इसको कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया।

४५४ (बस आप सच्चे नबी होने में क़तई सन्देह न करें। इन सच्चाइयों का अवतरण केवल नबियों पर होता है।) **'अलमुर्सलीन'** शब्द **'मुर्सलीन'** का अर्थ ध्यान देने योग्य है। नबियों की हैसियत इस्लाम में पूर्णतः सफ़ीरों (पत्रवाहकों), दूतों तथा सूचनावाहकों की है और जो भेजे हुए होते हैं। ज़ाहिर है कि किसी की तरफ़ से किसी और ही के पास भेजे हुए होते हैं। यह मुर्सलीन या सूचना ले जानेवाले न अवतार हुए हैं, न देवता; न ख़ुदा के प्रकाश और न उनमें ख़ुदाई अन्दर व्याप्त होती है। माबूद या अर्ध माबूद होने की क्षमता उनमें किञ्चित मात्र भी नहीं होती। अल्लाहु अक्बर! शिर्क, बल्कि लेशमात्र शिर्क से भी बचने का क़ुर्आन मजीद को किस दर्जा ख़याल है। शब्दों के चयन में भी वह कैसा लिहाज़ रखता है। **'लमिनल्-मुर्सलीन'** की तर्कीब से यह पहलू भी निकल आया कि आप दुनिया से अनोखे और निराले कोई "मुर्सल" नहीं हैं, बल्कि आप उन्हीं नबियों के समूह से एक व्यक्ति हैं जो आपसे पहले गुज़र चुका है।

(फ़ुटनोट सफ़ा २८६ से)

पाये होते हैं। यानी बात तो सभी नबी अल्लाह से करते हैं। यह सम्मान तो सभी को मिला हुआ होता है।

३ (बहुत अधिक) संकेत है तमाम कमालात और गुणों से परिपूर्ण और जिन पर नबूवत का अन्त हो गया अर्थात् हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तरफ़।

४ (कि वह भी उन्हीं सच्चे पयम्बरों में से थे।) 'इब्नें मर्यम' अर्थात् मर्यम नामक एक महिला के सुपुत्र, अल्लाह के बेटे नहीं। हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम इतने रुत्बे और बड़ाई के होते हुए बहरहाल एक मानव रूपी, सूरत, शक्ल और मानव की भाँति मांस और खाल रखनेवाली महिला की सन्तान थे। न ख़ुदा थे, न ख़ुदा की सन्तान; उलूहीयत (ईश्वरीयता) का कोई सा भी अंश उनमें नहीं था। उन्हें ख़ुदा का बेटा मान लेना निरी मूर्खता थी और इस बात के स्पष्टीकरण हेतु यह आवश्यक था कि विवरण के साथ उन्हें इब्नें मर्यम कहा जाए, क्योंकि केवल यही कहने से नसरानीयत के अक़ीदे और विश्वास पर चोट पड़ती है, अन्यथा नाम तो और पयम्बरों के भी लिये गये हैं, परन्तु कहीं भी इब्न (बेटा) नहीं कहा गया और इस प्रकार परिचय नहीं कराया गया। न इब्नें दाऊद (हज़रत सुलैमान), न इब्नें इब्राहीम (हज़रत इस्माईल तथा हज़रत इस्हाक़), न इब्नें इस्हाक़, न इब्नें याक़ूब, न इब्नें ज़िकरिया और न इब्नें इम्रान। इन प्रकार का परिचय केवल इब्नें मर्यम के लिए विशेष रूप से किया गया है ताकि अल्लाह का बेटा होने का खण्डन किया जाए जिसकी ज़रूरत थी।

५ (उनकी सच्चाई और पयम्बरी के) यहाँ यह कहा गया है कि ईसा अलैहिस्सलाम सच्चे रसूल और अल्लाह के समर्थन के साथ नबी थे, न कि ख़ुदा बचाये, कोई झूठे और ग़लत कार्य करनेवाले। जिस प्रकार नसारा ने मुबालग़ा करके (बढ़ा-चढ़ाकर) आपको बन्दगी की सीमा में से बाहर निकालकर पूजनीय बना दिया था, उसी प्रकार यहूद ने दुश्मनी और शरारत को काम में लाकर आपको सिरे से एक बाज़ीगर और शोबदेबाज़ बना दिया था। क़ुर्आन मजीद अभी नसरानी शिर्क का खण्डन कर चुका है, अब यहूदी शरारत और धोखेबाज़ी का खण्डन कर रहा है। 'अल्-बय्यिनाति' 'बय्यिनात' के अन्तर्गत वह सभी स्पष्ट और खुली हुई चीज़ें आ जाती हैं, जिन्हें अवलोकित करके हर सही बुद्धिवाला, न्यायप्रेमी हज़रत ईसा की नबूवत का क़ाइल हो जाए।

६ कि वह पग-पग पर शत्रुओं से उनकी रक्षा करते रहते थे। **'रूहिल्क़ुदुसि'** क़ुर्आन मजीद और इस्लाम की परिभाषा में इससे मुराद महान् फ़िरिश्ता यानी हज़रत जिब्रील हैं। नसरानी तस्लीस (तीन भाग) के अक़्नूमसानी (दूसरा भाग ईश्वर का) से यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं। जिब्रील मलकूती मख़्लूक़ हैं

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २६० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तीसरा पारः तिल्करुसुलु

सूरतुल् - बक़रति आयत २५३ से २८६

तिल्करुसुलु फ़ज़्ज़लना बअ्ज़हुम् अ़ला बअ्ज़िन् म ● मिन्हुम् मन् कल्लमल्लाहु
● व. ला जि म
व रफ़अ़ बअ्ज़हुम् दरजातिन् त व आतैना ओ़सब्न मर्यमल् - बय्यिनाति व
अय्यद्नाहु बि रूहिल्क़ुदुसि त व लौ शा'अल्लाहु मक़्ततलल्लज़ीन मिम्बअ्दि-
हिम् मिम्बअ्दि मा जा'अत् - हुमुल्बय्यिनातु व लाकिनिख़्तलफ़ू फ़ मिन्हुम् मन्
आमन व मिन्हुम् मन् कफ़र त व लौ
★ रु. ३३/१ आ ५
शा'अल्लाहु मक़्ततलू क़िफ़ व लाकिन्नल्लाह
यफ़्अ़लु मा युरीदु (२५३) ★ या'
अय्युहल्लज़ीन आमनू' अन्फ़िक़ू मिम्मा
रज़क़्नाकुम् मिन् क़ब्लि अंय्यअ्तिय यौमुल्ला
बैअुन् फ़ीहि व ला ख़ुल्लतुंव्व ला
शफ़ाअ़तुन् त वल्काफ़िरून हुमुज़्ज़ालिमून
(२५४) अल्लाहु ला' अिलाह अिल्ला
हुव ज अल्हय्युल्क़य्यूमु ज ५ ला तअ्ख़ुज़ुहू
सिनतुंव्व ला नौमुन् त लहू मा फ़िस्समावाति
व मा फ़िल्अर्ज़ि त मन् ज़ल्लज़ी यश्फ़अ़ु
अ़िन्दहू' अिल्ला बिअिज़्निही' त यअ्लमु
मा बैन अैदीहिम् व मा ख़ल्फ़हुम् ज व ला युहीतून बिशैअिम्मिन्
अ़िल्मिही' अिल्ला बिमा शा'अ ज वसिअ़ कुर्सिय्युहुस्समावाति वल्अर्ज़ ज
व ला यऊदुहू हिफ़्ज़ुहुमा ज व हुवल् - अ़लिय्युल् - अ़ज़ीमु (२५५)
ला' अिक्राह फ़िद्दीनि क़िफ़ ला कत्तबय्यनर्रुश्दु मिनल्ग़य्यि ज फ़
मंय्यक्फ़ुर् बित्ताग़ूति व युअ्मिम् - बिल्लाहि फ़ क़दिस्तम्सक बिल् - अ़ुर्वतिल् -
वुस्क़ा क़ लन्फ़िसाम लहा त वल्लाहु समीअ़ुन् अ़लीमुन् (२५६)

تلك الرسل ٣ | ٣٣ | البقرة ٢

تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ مِنْهُمْ مَنْ كَلَّمَ
اللّٰهُ وَرَفَعَ بَعْضَهُمْ دَرَجٰتٍ وَاٰتَيْنَا عِيسَى ابْنَ مَرْيَمَ
الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ بِرُوحِ الْقُدُسِ وَلَوْ شَاءَ اللّٰهُ مَا اقْتَتَلَ
الَّذِيْنَ مِنْ بَعْدِهِمْ مِنْ بَعْدِ مَا جَاءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ وَلٰكِنِ
اخْتَلَفُوا فَمِنْهُمْ مَنْ اٰمَنَ وَمِنْهُمْ مَنْ كَفَرَ وَلَوْ شَاءَ اللّٰهُ
مَا اقْتَتَلُوا وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَفْعَلُ مَا يُرِيْدُ يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا اَنْفِقُوا مِمَّا رَزَقْنٰكُمْ مِنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا
بَيْعٌ فِيْهِ وَلَا خُلَّةٌ وَّلَا شَفَاعَةٌ وَالْكٰفِرُوْنَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ
اللّٰهُ لَا اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْحَيُّ الْقَيُّوْمُ لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا
نَوْمٌ لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ مَنْ ذَا الَّذِيْ
يَشْفَعُ عِنْدَهٗ اِلَّا بِاِذْنِهٖ يَعْلَمُ مَا بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ
وَلَا يُحِيْطُوْنَ بِشَيْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖ اِلَّا بِمَا شَاءَ وَسِعَ كُرْسِيُّهُ
السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَلَا يَئُوْدُهٗ حِفْظُهُمَا وَهُوَ الْعَلِيُّ الْعَظِيْمُ
لَا اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ فَمَنْ يَّكْفُرْ
بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى
لَا انْفِصَامَ لَهَا وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ اللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا اَوْلِيٰئُهُمُ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा पार: तिल्करुसुलु

सूरतुल् - बक़रति आयत २५३ से २८६

इन रसूलों में से हमने बाज़ को बाज़ पर बड़ाई दे रखी है[१]। ● उनमें वह भी हैं जिनसे अल्लाह ने बात की है[२], और उनमें से बाज़ के दर्जे अल्लाह ने बलन्द किये हैं[३]। और हमने ईसा इब्ने मर्यम को[४] साक्षीगण प्रदान किये[५] और हमने उनका समर्थन रूहुल्क़ुदुस (जिब्रील) के माध्यम से की[६]। और यदि अल्लाह की इच्छा होती तो उनके बाद के लोग आपस में रक्तपात न करते बाद इसके कि उनके पास साक्ष्य आ चुके थे[७]; परन्तु (लोग) आपस में झगड़े[८], कोई तो उनमें से ईमान ले आया और कोई उनमें से कुफ़्र ही करता रहा[९]। और अगर अल्लाह की इच्छा यही होती, तो वह परस्पर रक्तपात न करते[१०]; परन्तु अल्लाह वही करता है जो इरादा कर लेता है[११]। (२५३) ★

● व. ला ज़िम ★ रु. ३३/१ अ ५

ऐ ईमानवालो! जो कुछ हमने तुम्हें दे रखा है उसमें से ख़र्च करो[१२] इसके पूर्व कि वह दिन आ जाए[१३], जिसमें न तिजारत काम आयेगी और न दोस्ती और न सिफ़ारिश। और काफ़िर ही तो ज़ालिम हैं[१४]। (२५४) अल्लाह वह है कि कोई माबूद (पूज्य) उसके सिवा नहीं[१५]। वह जीवित, जो सबका सँभालनेवाला है[१६]। उसे न ऊँघ आ सकती है, न नींद[१७]। उसी की सम्पत्ति है जो कुछ आसमानों और ज़मीनों में है[१८]। कौन ऐसा है जो उसके सामने बिना उसकी आज्ञा के सिफ़ारिश कर सके[१९]? वह जानता है जो कुछ मख़्लूक़ात के सामने है और जो कुछ उनके पीछे है उस सबको[२०]। और वह उसकी मालूमात में से किसी चीज़ को भी घेर नहीं सकते[२१] सिवाय उसके कि जितना वह ख़ुद चाहे[२२]। उसकी कुर्सी ने समा रखा है आसमानों और ज़मीन को[२३]। और उस पर उनकी देखभाल ज़रा भी गराँ नहीं[२४], और वह आलीशान और महान् है[२५]। (२५५) दीन में कोई ज़बरदस्ती नहीं[२६]। हिदायत तो गुमराही से साफ़-साफ़ खुल चुकी है[२७]। सो जो कोई ताग़ूत (शैतान) से कुफ़्र करे और अल्लाह पर ईमान ले आये तो उसने एक बड़ा हल्क़ा थाम लिया[२८], जो कभी टूटेगा नहीं[२९]। और अल्लाह बड़ा सुननेवाला, बड़ा जाननेवाला है[३०]। (२५६)

---

१ (दर्जा, नज़दीकी, निकटता और सम्मान में) **'तिल्करुसुलु'** मुराद वही रसूल हैं जिनका ज़िक्र अभी-अभी आ चुका है। **'फ़ज़्ल'** के शाब्दिक अर्थ बुज़ुर्गी (बड़ाई) के हैं यानी ऐसा गुण जिससे मनुष्य दुनिया में प्रशंसा, बड़ाई और तारीफ़ का हक़दार बने और आख़िरत में बदला पाये। **'फ़ज़्ज़लना'** यह विस्तार या बाहमी बुज़ुर्गी या बड़ाई जो कुछ है केवल अल्लाह की ओर से है। अल्लाह के यहाँ दर्जों, रुत्बों और निकटता के लिहाज़ से। दुनिया के लिए सम्मान और आज्ञाकारिता हेतु सब यकसाँ (समान) हैं। आम दुनियावालों के लिए रसूल सब बराबर हैं। कहना मानने में और आदर करने में सब बराबर हैं और यह बात अनिवार्य है। इस अर्थ में क़ुर्आन मजीद की दूसरी आयत इसी सूरत के अन्त में इसी पारे में आ रही है। 'अह्लॅ लताअिफ़' ने आयत से यह निष्कर्ष निकाला है कि नबियों के नायब या सहायक यानी कामिल औलिया विशेषकर सहाबा के भी दर्जों के अन्तर के बारे में आम लोगों को बहस करना जाइज़ नहीं। सहाबा सब के सब बहरहाल नबी (स०) की बैठक में सम्मिलित हैं। उनका मुक़ाबला करना और एक को दूसरे से बड़ा या छोटा बताना साधारण व्यक्तियों के मन्सब की चीज नहीं है। हाँ, बजाय ख़ुद उनके स्थान तथा हालात और घटनाओं का वर्णन करना नाजाइज़ नहीं है।

२ (सीधे और बिना फ़िरिश्तों के माध्यम के) जैसा कि विशेषता के साथ हज़रत मूसा के साथ हुआ। अन्यथा विशाल और साधारण माने में तो हर साहिबे वही, नबी अल्लाह से बात करने की बड़ाई

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २८७ पर)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २८७ से)

(फ़रिश्ता हैं और नूर से बने हैं) और बहुत निकटतम हैं ख़ुदा से। ख़ुदा के विशेष दूत हैं, परन्तु हर दशा में मख़्लूक़ हैं। वह ईश्वर का कोई भी अंश अपने भीतर नहीं रखते हैं। **'अय्यद्नाहु'** उनका समर्थन हमने किया जो हर प्रकार से सभी अधिकार रखते हैं। यह समर्थन अपने-आप नहीं हो गया। आयत से इस सच्चाई पर भी प्रकाश पड़ गया कि ईसा मसीह अपने कमालात और बड़ाइयों के बावजूद बहरहाल मानव ही थे और वह मानव की भाँति हानि से बचने और लाभ के प्राप्त करने, दोनों के मुहताज थे। ईश्वरीय शक्ति ने उनकी रक्षा, उनके सहयोग तथा शक्ति के लिए एक दूसरी मख़्लूक़, जो लतीफ़ (स्वच्छ) और नज़र न आनेवाली है, नियुक्त कर दी।

७ **'अल्-बय्यिनाति'** पर हाशिया अभी गुज़र चुका है। 'बय्यिनात' के मानी बहुत विशाल और सारगर्भित हैं। अक़्ली और महसूस होनेवाले साक्ष्य, जो बहुत उज्ज्वल हैं, यानी एक ओर तर्क और दलीलें और दूसरी ओर मोजिज़े और आम राह से हटकर होनेवाले कार्य, सब उसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। **'लौ शा'अल्लाहु'** यानी अगर दुनियावी दृष्टिकोण से अल्लाह की इच्छा का तक़ाज़ा यही होता। **'मिम्बअ्दिहिम्'** सर्वनाम पयम्बरों की ओर है यानी उन पयम्बरों के प्रकट होने के बाद यह आपस में रक्तपात करनेवाले कौन लोग थे? अवश्य ही यह पयम्बरों के इन्कार करनेवाले लोग थे। और इन्कार की भी दो क़िस्में हैं— एक यह कि ज़ाहिर में और सूरत के एतबार से तो इक़्रार हो, लेकिन वास्तव में अन्दरूनी रूप में इन्कार, जैसे यहूद तथा नसारा अह्ले किताब का ज़ाहिर में इक़्रार और अन्दर से इन्कार। दूसरे यह कि इन्कार सूरत और अन्दर से दोनों प्रकार से हो, जैसे मुश्रिकों का तौहीद और रिसालत दोनों से इन्कार है।

८ गोया 'बय्यिनात' का प्राकृतिक तक़ाज़ा तो यही था कि ईमान सब के सब ले आते, परन्तु एक गिरोह ने ग़लत राह और ग़लत राय से काम लिया और यह लोग इन्कार ही करते रहे। यहाँ इस सच्चाई का बयान है कि चूँकि अल्लाह की इच्छा सबको विवश करके एक ही दीन पर जमा करने की नहीं हुई और अल्लाह की मुकम्मल हिकमत ने इस लोक को परीक्षा-लोक ही रखना चाहा, अतः जो मख़्लूक़ पैदा हुई थी, उसको आपस में विभिन्नता के साथ ही रहने दिया।

९ (तो जब यह धार्मिक विरोध आरम्भ से और पिछले नबियों के समय से चला आ रहा है तो आप, ऐ पयम्बर! अपने ज़माने के काफ़िरों पर बहुत अधिक रंज और ग़म न करें और स्वयं को इस चिन्ता और कष्ट में न डालें कि सारे के सारे ईमान ले ही आयें।) **'मिन्हुम् मन् आमन'** सो जो लोग ईमान ले आये वह तो नजात पा ही गये। **'मिन्हुम् मन् कफ़र'** जो लोग कुफ़्र पर क़ायम रहे, वह सदैव के लिए सज़ा के हक़दार हो गये। **'मन् आमन'** और **'मन् कफ़र'** दोनों के सीग़ों से ज़ाहिर हो रहा है कि ईमान और कुफ़्र बन्दे की अपनी इख़्तियारी चीज़ें हैं। ख़ालिक़ की ओर से ज़बरदस्ती किसी दशा में नहीं हैं।

१० यानी अगर सबकी पैदाइश ही एक प्रकार की रख दी गयी होती और कुफ़्र तथा गुमराही की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गयी होती, तो अलबत्ता न विरोध होता और न रक्तपात और जंग की नौबत आती।

११ यानी न उसकी क्रियाशक्ति और क्षमता पर कोई प्रतिबन्ध है और न उसकी सूझ और इरादों में किसी त्रुटि, ग़लती, भूल या चूक की सम्भावना है। अरस्तू-जैसे मशहूर फ़िलासफ़र ने ख़ुदा की शक्ति को सीमित माना है और भूल, चूक, ग़लती और त्रुटि की सम्भावना तो मुश्रिकों ने अपने ख़ुदाओं में बहुत अधिक बार माना है। आयत में यह शिक्षा दी गयी है कि छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी कोई सी वस्तु भी हो हर दशा में अल्लाह की इच्छा से बाहर नहीं है। **'अल्लाह यफ़्अलु'** अल्लाह जो कुछ भी करता है अपनी मुकम्मल शक्ति के तक़ाज़ों से ही करता है। **'मा युरीदु'**— अल्लाह जो चाहता है वह अपनी परिपक्व बुद्धिमानी के तक़ाज़े से ही करता है।

१२ (अल्लाह की राह में, नेकी के कामों में) **'रज़क़्नाकुम्'** सर्वनाम, ऐसा कि स्वयं बात कर रहा हो, लाकर और रिज़्क़ (रोज़ी) को स्वयं से सम्बद्ध करके स्पष्ट बता दिया कि धन-दौलत जो कुछ भी बन्दों के पास है स्वयं से नहीं, ख़ुदा ही का प्रदान किया हुआ और उसी के द्वारा प्रदत्त है। उसी को अधिकार है कि जिन कार्यों में चाहे उनके व्यय की आज्ञा कर दे। **'अिन्फ़ाक़'** का यहाँ अर्थ है कि तम्बीह उसी के छोड़ने पर हो सकती है।

१३ यानी क़ियामत का दिन। अर्थ यह है कि नेक कार्यों में ख़र्च करने का और नेकियाँ जमा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने का अवसर जो कुछ है इसी दुनिया में है। समय की क़द्र करो। उम्र के अवकाश को नेमत जानो।

१४ (अपने हक़ में) 'जुल्म' के अस्ल अर्थ हैं किसी वस्तु को उसके स्थान पर न रखना। अल्लाह या उसके क़ानून को न मानने से बढ़कर कौन सा जुल्म इन्सान अपने हक़ में करेगा? **'ला बैअ'** जाहिली और अर्द्धजाहिली क़ौमों की गुमराहियाँ एक से बढ़कर अजीब रही हैं। मुश्रिक़ क़ौमें तो सिरे से 'रोज़ें जज़ा' ही को नहीं मानतीं। अहूलें किताब ने उसके होने को माना तो उसमें यह पखें (अड़ंगा) लगा दीं कि दुनिया की भाँति वहाँ भी लेन-देन हो सकेगा। कोई किसी से नेकियाँ खरीद लेगा, कोई किसी के हाथ अपनी बदियाँ बेच डालेगा। क़ुर्आन ने इस ग़लत विचार की समाप्ति कर दी। **'व ला ख़ुल्लतुन्'— 'ख़ुल्लत'** गहरी जिगरी दोस्ती को कहते हैं। उद्देश्य ऐसी दोस्ती को ग़लत साबित करना है, जो ईमान के बिना काम दे सके और कुफ़्र के अपराधी को नजात दे सके। जब गहरी दोस्ती और दिली दोस्ती के लाभदायक होने का इन्कार हो गया तो केवल ज़बानी और रस्मी सम्बन्धों का निरर्थक होना तो और स्पष्ट है। **'व ला शफ़ाअतुन्'** पहली दो गुमराहियों का सम्बन्ध भी मसीहियों से था और तीसरी गुमराही तो मसीहीयत की विशेषताओं में से है। मसीहियों का विश्वास है कि मसीह अल्लाह के बेटे हैं और हर रोगी को स्वस्थ करने की पूरी शक्ति उनमें है। उन्होंने मनुष्य के रूप में इसी कारण तो जन्म लिया था कि अपनी जान का 'फ़िद्यः' (बदला) सब पापियों की तरफ़ से देकर और सबकी ओर से सलीब (Cross) पर अपने ख़ून का चढ़ावा देकर क़ियामत में स्वस्थ करनेवाले के रूप में प्रकट होंगे और उनकी सिफ़ारिश सबके हक़ में नजात का पक्का आदेश होगी। हमारे यहाँ के आम वाइज़ों (धर्मोपदेशक) और नात (हज़रत मुहम्मद साहब की छन्दोबद्ध स्तुति) कहनेवाले कवियों ने हज़रत रसूल (स०) की सिफ़ारिश पर हद से ज़्यादा ज़ोर देना जो शुरू किया है यह भी मसीहीयत का प्रभाव है। **'अल्काफ़िरून'** यहाँ वही काफ़िर मुराद हैं जो उपर्युक्त कुफ़्र के विश्वासों में फँसे हुए हैं। बाज फ़क़ीहों ने लिखा है कि आयत से कंजूसी की बुराई निकलती है। जो लोग नेक कामों में ज़रूरी व्यय नहीं करते वह स्वयं को कुफ़्रवालों और जहन्नमवालों की लाइन में खड़ा कर रहे हैं। एक ताबेई से यह बात भी वर्णित है कि अच्छा हुआ जो अल्लाह ने काफ़िरों को ज़ालिम बताया और ज़ालिमों को काफ़िर नहीं बताया।

१५ (न छोटा, न बड़ा; न अस्ली, न छाये का; न ख़ुदा, न ख़ुदा का जना हुआ।) जाहिली मज़हबों वाले भी ख़ुदा के नफ़्स (अस्तित्व) को मानते रहे हैं। अलबत्ता वह उस महान् माबूद (पूजनीय, हिन्दुओं की परिभाषा में ईश्वर) के अलावा वह अन्तर्गत और आधीन माबूदों और देवताओं के भी मानने वाले रहे हैं। यह शिक्षा केवल इस्लाम ही की है कि उस एक ख़ुदा के सिरे से किसी अन्य ख़ुदा का अस्तित्व है ही नहीं। ऐसा नहीं है कि वह माबूद महान् है, शेष छोटे-छोटे माबूद और भी मौजूद हैं। ईसाई भी चूँकि शिर्क में फँसे हुए थे, इसलिए उनके सामने भी सम्पूर्ण तौहीद के एलान और सुबूत तथा अल्लाह के अलावा अन्य ख़याली माबूदों के इन्कार की इस क़दर आवश्यकता महसूस हुई। यह आयत **'आयतुल्-कुर्सी'** के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी बरकतों और बड़ाइयों से शायद ही कोई मुसलमान अपरिचित हो! हदीसों में इसकी बहुत प्रशंसा और बड़ाई का वर्णन है। इसका अर्थ से परिपूर्ण होना और इसकी विशेषता है भी इतनी अधिक और इस दर्जे की कि अपने तो अपने ही हैं ग़ैर, जैसे सील, जो क़ुर्आन के अनुवादक हैं, और दुश्मन, जैसे मयोर और वहेरी, ने भी इसकी प्रशंसा की है। रिवायतों में आया है कि यह क़ुर्आन मजीद की महान् आयत है।

१६ वह स्थायी रूप से ज़िन्दा है। वह हमेशा से है और हमेशा रहेगा। ज़िन्दगी का गुण उसकी ज़ात और निज का अंश है। मृत्यु या निर्जीवता उस पर न पूर्व में कभी छाई और न आइन्दः कभी छा सकती है। तो क्या कोई क़ौम ऐसी भी हुई है कि जिसने अपने माबूद की ऐसी मोटी और खुली हुई सिफ़त (गुण) में सन्देह किया हो? पर बहुत सी क़ौमें ऐसी गुज़री हैं, जिनके अक़ीदे में यह बात रही है कि हर वर्ष की अमुक तिथि में उनका ख़ुदा मौत पा जाता है और दूसरे दिन सरे नौ से जन्म लेता है। अतः हर वर्ष उस तारीख़ को पुतला बनाकर जलाया जाता है और दूसरी सुबह को उसके जन्म की ख़ुशी में रंगरलियाँ आरम्भ हो जाती हैं। और स्वयं मसीहियों का विश्वास इसके सिवा और क्या है कि ख़ुदा पहले तो मानव-रूप धारण करता है और दुनिया में आता है और फिर सलीब पर जाकर मृत्यु स्वीकार कर लेता है। मुसलमान के घराने में पैदा होनेवाले बच्चे आरम्भ ही से एक हमेशा से रहनेवाले और हमेशा रहनेवाले, बाक़ी रहनेवाले, न मिटनेवाले ख़ुदा के अक़ीदे से चूँकि परिचित हो जाते हैं, बड़े होकर उनके विचार ही में यह बात नहीं आती कि ख़ुदा किसी दशा, किसी हाल में, किसी अर्थ और किसी लिहाज़

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से भी मिट सकता है, मर सकता है या निर्जीव भी हो सकता है ! परन्तु आखिर आज भी करोड़ों की संख्या में पढ़े-लिखे लोग ख़ुदा को इसी मृत्यु के विश्वास में रखे हुए हैं या नहीं ? 'अल् क़य्यूमु' मसीहियों ने जिस प्रकार अल्लाह की ज़िन्दगी की सिफ़त के मामले में सख्त ठोकर खायी है उसी प्रकार उसकी क़य्यूमित के गुण के मामले में भी गुमराही में पड़े हैं। उनका अक़ीदा है कि जिस प्रकार बेटा बिना बाप की शिर्कत और मेल के ख़ुदा नहीं, उसी प्रकार बाप भी बिना बेटे को शरीक किये ख़ुदा नहीं हो सकता। अर्थात् जिस प्रकार (नऊज़ु बिल्लाह) मसीह अल्लाह के बेटे ख़ुदा के मुहताज हैं उसी प्रकार ख़ुदा भी अपनी ख़ुदाई के सुबूत के लिए मसीह का मुहताज है। ख़ुदा की क़य्यूमीयत की सिफ़त को मानकर क़ुर्आन ने इस मसीही अक़ीदे पर भी चोट लगायी है। **'क़य्यूम'** वह है जो न केवल अपनी ज़ात से स्थिर है, क़ायम है, बल्कि दूसरों को भी क़ायम करने का कारण है और सबको सँभाले हुए है। उसके सब मुहताज हैं उसको किसी की मुहताजी नहीं है। वह, वह है जिसकी कोई शुरूआत नहीं है, वह शुरू से ही मौजूद है। यह भी रिवायतों में है कि जिसे 'इस्में आज़म' कहा जाता है वह यही "अल्हय्युल् क़य्यूम" है।

१७ (जैसा कि मुश्रिक क़ौमों ने समझ लिया है) जाहिली मज़हबों के देवता नींद से झूम भी जाते हैं और सोने भी लगते हैं और इसी ग़फ़लत की हालत में उनसे नाना प्रकार की भूलें भी हो जाती हैं। मसीहियों और यहूद का भी अक़ीदा यह है कि हक़ तआला ने जब छः दिनों में आसमानों और ज़मीन को बना डाला तो सातवें दिन उसे सुस्ताने और आराम लेने की ज़रूरत पड़ गयी। इस्लाम का ख़ुदा हमेशा जागता हुआ, हमेशा खबरदार, ग़फ़लत, सुस्ती और थकन सबसे परे, ख़ुदा है। इन सब बातों से उसको कोई सम्बन्ध नहीं है।

१८ **'लहू'** को आगे कर देने से अर्थ में बल और शक्ति पैदा हो गयी और अर्थ में अनिवार्यता आ गयी यानी सारी सृष्टि की मिल्कीयत और मालिक होना सिर्फ़ उसी का है। इस गुण में कोई उसका साझीदार नहीं और उसकी मिल्कीयत से मख्लूक़ का कोई कोना, कोई विभाग अलग नहीं है। मुश्रिक क़ौमों ने अपने देवताओं को सृष्टि का मालिक माना भी है तो अन्धे, लूले, लँगड़े, अधूरे क़िस्म का। इस्लाम ने आकर इस पर बल दिया कि सही नाता तथा सम्बन्ध ख़ालिक़ का मख्लूक़ के साथ पूर्ण रूप से मिल्कीयत ही का है। **'लहू'** में **'ल'** सर्वसम्मति से मिल्कीयत के अर्थ में है।

१९ **'मन् ज़ल्लज़ी'** कौन ऐसा है यानी प्रश्न है इन्कार के साथ यानी कौन ऐसा है ? अर्थात् कोई नहीं। **'यश्फ़अु अिन्दहू'** शफ़ाअत पर हाशिया अभी ऊपर गुज़र चुका है। मसीह की सबसे बड़ी शफ़ाअत, मसीहियों का एक विशेष अक़ीदा है। मसीह के लिए उनके यहाँ न केवल स्थायी रूप से शफ़ाअत सिद्ध है, बल्कि इस सृष्टि की रचना भी ख़ुदा ने अपने बेटे के माध्यम से की है। क़ुर्आन मजीद मसीहियों से सम्बोधन के समय उनके विशेष अक़ीदों अर्थात् प्रायश्चित्त (कफ़्फ़ारा), शफ़ाअत (सिफ़ारिश) इत्यादि पर बराबर चोट करता है। **'बिअिज़्निही'** यह विवरण करना भी बड़ा आवश्यक था। मसीहियों ने जहाँ नजात का दारोमदार शफ़ाअत पर रखा है वहीं उसके विपरीत बाज़ मुश्रिक क़ौमों ने ख़ुदा को 'क़ानूनें मुकाफ़ात' (अर्थात् कर्म के ज़ाब्तों में ऐसा जकड़ा हुआ) समझ लिया है कि उसके यहाँ क्षमा और सिफ़ारिश की गुंजाइश ही नहीं है। इस्लाम ने बीच का रास्ता अपनाकर बताया कि नजात का मदार किसी शफ़ाअत पर कदापि नहीं है, हाँ, अल्लाह ने यह गुंजाइश रखी है और अपनी आज्ञा से अपने अच्छे बन्दों को, जिन्हें उसकी निकटता प्राप्त है शफ़ाअत का (जो वास्तव में दुआ का ही एक रूप है), अवसर देगा और उनकी दुआएँ स्वीकार करेगा और इन मक़्बूल (सर्वप्रिय) बन्दों के सबसे बड़े रईस एवं सरदार हमारे रसूलें करीम सल्लअम हैं। अहलें सुन्नत ने शफ़ाअत के मसले का निष्कर्ष इसी ओर ऐसी ही आयतों से निकाला है।

२० यानी हाज़िर, ग़ायब, महसूस और अक़्ल से समझ में आनेवाली या वाला, छूकर महसूस होने वाली या वाला और जो चीज छुई न जा सके, देखी न जा सके, सबकी उसे पूरी-पूरी जानकारी है। यहाँ 'आगे', 'पीछे' दो ही दिशाओं का नाम लिया गया है, परन्तु मुराद सभी दिशाओं से है और अरबी भाषा में यह 'किनायः' (गुप्त संकेत) आम है। इस प्रकार अवसर लिखते हैं— अल्लाह की सिफ़तों में ज़िन्दगी, हमेशगी, सँभाले रहने की, मालिक होने की सिफ़तों का वर्णन ऊपर हो चुका है। अब यह बयान हो रहा है कि अल्लाह का इल्म और ज्ञान भी मुकम्मल है। सई सिफ़ारिश का एक अवसर दुनिया में यह भी होता है कि जिस हाकिम के समक्ष मुक़द्दमा पेश हो उसकी जानकारी और ज्ञान मुकम्मल नहीं है, अतः आवश्यकता है कि बाहरी माध्यम से उसकी जानकारी में इज़ाफ़ः (वृद्धि) किया जाए और उसकी जानकारी को मुकम्मल किया जाए। यहाँ यह बताकर कि अल्लाह स्वयं हर खुली-मुंदी, ढकी-छुपी बातों का जाननेवाला है, यह बता दिया कि उसकी जानकारी में किसी तक्मील (पूर्ति) या इज़ाफ़े की आवश्यकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही नहीं है। उसके आगे किसी की ख़ूबियाँ बताने या उसको किसी बात से अवगत कराने के कोई मानी नहीं। इस प्रकार मसीही अक़ीदा शफ़ाअत का निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

२१ कौन नहीं घेर सकते? वही मख़्लूक़ात, जिसमें पीर, पयम्बर, फ़िरिश्ते, सभी शामिल हैं। **'मिन् अिल्मिही'** 'इल्म' से मुराद अल्लाह की मालूमात से है। बड़े से बड़े आलिम और ख़ुदा तक पहुँचे हुए बुज़ुर्गों के वश की यह बात नहीं है कि अल्लाह की मालूमात में से किसी एक चीज़ की हक़ीक़त और उसकी वास्तविकता से परिचित हो जाए। सीमित एवं असीमित ज्ञान का तो मुक़ाबला ही क्या हो सकता है?

२२ (अपनी बुद्धिमत्ता एवं मस्लहत के अनुसार) यहाँ यह बताया जा रहा है कि बड़े से बड़ा आलिम और ख़ुदा को पहचाननेवाला बन्दा सीमित ज्ञान रखता है और उतना ही जितना कि ईश्वरेच्छा के अन्तर्गत हो।

२३ (तो वह स्वयं किसी चीज़ में कैसे समा सकता है?) उसकी कुर्सी-इल्म और शक्ति तो स्वयं सारी सृष्टि को घेरे हुए है। उसको अपने अन्दर लिये हुए है तो आसमान पर, अ़र्श या किसी विशाल से विशाल चीज़ के अन्दर कैसे समा सकता है? वह सबको घेरे हुए है। उसे कौन घेर सकता है? इस सिफ़त के सिद्ध करने से उन मुश्रिकों के अक़ीदे का भी खण्डन हो गया, जो यह समझते हैं कि ख़ुदा देह रखता है और किसी मकान में क़ैद है। 'कुर्सी' से मुराद अल्लाह का इल्म है। इब्नें अब्बास सहाबी से यही वर्णित है और अनेक तफ़्सीरवालों ने भी यही कहा है। 'कुर्सी' के आम माने वही हैं जो उर्दू में भी चले आ रहे हैं, परन्तु हक़ तआ़ला के लिए वह मानी नहीं हो सकते। क्या अल्लाह कोई जिस्म रखता है, जो आम अर्थ में वह कुर्सी पर बैठेगा? कुर्सी के अस्ली मानी इल्म के हैं और कुरासः, जो इल्मी पुस्तकों में आया है, इसी अस्ल से निकला है और शब्दकोश वालों ने भी एक अर्थ कुर्सी का इल्म भी बताया है। कुर्सी का दूसरा अर्थ शक्ति और प्रशासन भी है, अतः यहाँ भी अवसर तफ़्सीरवालों और शब्दकोश वालों ने यही अर्थ लिया है। **'वसिअ़ कुर्सिय्युहुस्समावाति वल्अर्ज़'** उसकी सल्तनत और इल्म की कुर्सी ने सारे लोक को घेर रखा है, अर्थात् यह कि उसकी इल्म की कुर्सी हो या हुकूमत की कुर्सी वह समस्त सृष्टि को घेरे हुए है। बड़ी-छोटी, स्वच्छ-गन्दी, मुँदी-ढकी, खुली-छुपी हर चीज़ उस पर प्रकाशित और रौशन है और हर चीज़ उसके आधीन और अन्तर्गत है।

२४ (कि उससे थककर उसे किसी साझीदार या सहायता करनेवाले की आवश्यकता पड़े।) मुश्रिक क़ौमों ने यह फ़र्ज़ कर लिया है कि इतने विशाल और लक़ोदक़ संसार (चटयल मैदान) और उसकी सभी चीज़ों की देखभाल अकेला ख़ुदा कहाँ तक कर सकता है, अतः वह (नऊ़ज़ु बिल्लाह) कभी ग़ाफ़िल भी हो सकता है! और यह सारा कारोबार सँभालने के लिए उसे सहयोगियों की आवश्यकता पड़ गयी है। स्वयं यहूद और मसीहियों का अक़ीदा ख़ुदा के सुस्ताने और आराम करने के विषय में भी इसी विचार से प्रेरित है। **'हिफ़्ज़ुहुमा'** में तस्नियः का सीग़ः से मुराद है। एक ओर आसमानों का सिल्सिला और दूसरी ओर ज़मीन। इसीलिए क़ुर्आन मजीद ने हर ऐसे अवसर पर सीग़ः बजाय बहुवचन के तस्नियः (द्विवचन) का प्रयोग किया है।

२५ यानी एक ओर हर त्रुटि से परे, हर ऐब से बलन्द, दूसरी ओर सभी ख़ूबियों और कमालात से परिपूर्ण। **'अ़ली'** और **'अ़ज़ीम'** दो-दो सिफ़तों का लाना मानी से ख़ाली और व्यर्थ के लिए नहीं है। त्रुटि की तमाम सिफ़तों से इन्कार और सारी घटनेवाली, ख़त्म होनेवाली या टूटनेवाली कमियों से परे। और बड़ाई एवं महानता के माने हैं तमाम कमालों की सिफ़तों का पाया जाना और ऐसी हस्ती को मानना कि न उसके मर्तबे और बलन्दी की कोई सीमा हो और न उसकी गहराई का पता चल सके। गोया इन दो सिफ़तों के भीतर बड़ाई और कमाल के सारे पहलू आ गये और उस गुमराही की तर्दीद और काट हो गयी जो अल्लाह की सिफ़तों के विषय में शिर्क करने से पैदा होती या हो सकती है।

२६ दीन का वास्तविक सम्बन्ध हृदय से है और हृदय पर ज़बरदस्ती और कराहीयत की गुंजाइश ही नहीं। इसीलिए गोया इस सच्चाई की घोषणा है कि ईमान का सम्बन्ध अपने इरादे तथा अधिकार से है, ज़बरदस्ती और आतुरता से नहीं है। आयत के इस टुकड़े से एक बड़ी अस्ल हाथ आ गयी। इसके बाद लोगों को जब्रीयः मुसलमान बनाने की गुंजाइश नहीं रही। जिज़्यः को नासमझों ने इस्लाम में ज़बरदस्ती की जड़ समझा है। हालाँकि ज़रा ग़ौर करें तो मालूम हो जाए कि जिज़्यः का शरअ़ में होना ठीक उसके विपरीत ख़ुद इसकी दलील है कि वास्तविक उद्देश्य इस्लामी क़ानून और हुकूमत को प्रभावशाली

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २६६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अल्लाहु वलिय्युल्लज़ीन आमनू ला युख़्रिजुहुम् मिनज़्ज़ुलुमाति अिलन्नूरि त ५
★ ह. ३४/२ आ ४ वल्लज़ीन कफ़रू औलियाउ-हुमुत्ताग़ूतु ला युख़्रिजूनहुम् मिनन्नूरि
अिलज़्ज़ुलुमाति त अुलाअिक अस्ह़ाबुन्नारि ज हुम् फ़ीहा ख़ालिदून
(२५७) ★ अलम् तर अिलल्लज़ी ह़ाज्ज अिब्राहीम फ़ी रब्बिही अन्
● व. ला ज़िम आताहुल्लाहुल्-मुल्क म ● अिज़् क़ाल
अिब्राहीमु रब्बियल्लज़ी युह़्यी व युमीतु ला
क़ाल अना अुह़्यी व अुमीतु त क़ाल
अिब्राहीमु फ़ अिन्नल्लाह यअ्ती बिश्शम्सि
मिनल्मश्रिक़ि फ़अ्ति बिहा मिनल्-मग़्रिबि
फ़ बुहितल्लज़ी कफ़र त वल्लाहु ला
यह्दिल्-क़ौमज़्ज़ालिमीन ज (२५८) औ
कल्लज़ी मर्र अला क़र्यतिव्व हिय ख़ावियतुन्
अला अुरूशिहा ज क़ाल अन्ना युह़्यी
हाज़िहिल्लाहु बअ्द मौतिहा ज फ़ अमातहुल्लाहु
मिअत आमिन् सुम्म बअसहू त क़ाल कम्
लबिस्त त क़ाल लबिस्तु यौमन् औ बअ्ज़
यौमिन् त क़ाल बल्लबिस्त मिअत आमिन् फ़न्ज़ुर् अिला तआमिक व
शराबिक लम् यतसन्नह् ज वन्ज़ुर् अिला ह़िमारिक व लि नज्अलक
आयतल्लिन्नासि वन्ज़ुर् अिलल्अिज़ामि कैफ़ नुन्शिज़ुहा सुम्म नक्सूहा
लह़्मन् त फ़ लम्मा तबय्यन लहू ला क़ाल अअ्लमु अन्नल्लाह अला कुल्लि
शैअिन् क़दीरुन् (२५९) व अिज़् क़ाल अिब्राहीमु रब्बि अरिनी
कैफ़ तुह़्यिल्मौता त क़ाल अव लम् तुअ्मिन् त क़ाल बला व
लाकिल्लियत्मअिन्न क़ल्बी त क़ाल फ़ख़ुज़् अर्बअतम्-मिनत्तैरि फ़ सुर्हुन्न
★ ह. ३५/३ आ ३ अिलैक सुम्मज्अल् अला कुल्लि जबलिम्-मिन्हुन्न जुज्अन् सुम्मद्अुहुन्न
यअ्तीनक सअ्यन् त वअ्लम् अन्नल्लाह अज़ीज़ुन् ह़कीमुन् (२६०) ★

البقرة ٢ — ٤٢ — تلك الرسل ٣

الطاغوت يخرجونهم من النور الى الظلمت اولئك اصحب
النار هم فيها خلدون ﴿٢٥٧﴾ الم تر الى الذى حاج ابرهم فى
ربه ان اته الله الملك اذ قال ابرهم ربى الذى يحى و
يميت قال انا احى و اميت قال ابرهم فان الله يأتى
بالشمس من المشرق فأت بها من المغرب فبهت الذى
كفر و الله لا يهدى القوم الظلمين ﴿٢٥٨﴾ او كالذى مر على
قرية وهى خاوية على عروشها قال انى يحى هذه الله بعد
موتها فاماته الله مائة عام ثم بعثه قال كم لبثت قال
لبثت يوما او بعض يوم قال بل لبثت مائة عام فانظر
الى طعامك وشرابك لم يتسنه وانظر الى حمارك و
لنجعلك اية للناس وانظر الى العظام كيف ننشزها ثم نكسوها
لحما فلما تبين له قال اعلم ان الله على كل شىء قدير ﴿٢٥٩﴾
و اذ قال ابرهم رب ارنى كيف تحى الموتى قال اولم تؤمن
قال بلى و لكن ليطمئن قلبى قال فخذ اربعة من الطير
فصرهن اليك ثم اجعل على كل جبل منهن جزءا ثم
ادعهن يأتينك سعيا و اعلم ان الله عزيز حكيم ﴿٢٦٠﴾ مثل
الذين ينفقون اموالهم فى سبيل الله كمثل حبة انبتت سبع

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अल्लाह उन लोगों का तरफ़दार है जो ईमान ले आये[३१] वह उन्हें अन्धकार से निकालकर प्रकाश की ओर लाता है[३२]। और जिन लोगों ने कुफ़्र इख़्तियार किया उनके तरफ़दार तागूत हैं, जो उन्हें प्रकाश से निकालकर अन्धकार की ओर ले जाते हैं[३३]। यही लोग अहूलें दोज़ख हैं (जहन्नमी हैं), उसमें वह हमेशा पड़े रहेंगे[३४]। (२५७). ★ ★ रु. ३४/२ आ ४ ● ब. लाज़िम

क्या तूने उस व्यक्ति के हाल पर नज़र नहीं की[३५] जिसने इब्राहीम से उनके रब के बारे में तर्क-वितर्क किया था[३६] इस कारण से कि अल्लाह ने उसे बादशाहत दे रखी थी[३७]। ● जबकि इब्राहीम ने उससे कहा[३८] मेरा तो रब वही है जो ज़िन्दगी प्रदान करता है और मौत देता है[३९], वह बोला कि ज़िन्दगी और मौत तो मैं देता हूँ[४०]। इब्राहीम ने कहा, अच्छा अल्लाह तो सूर्य को पूरब से निकालता है, तू उसे पश्चिम से निकाल दिखा[४१]। इस पर वह, जो काफ़िर था, दंग रह गया[४२]। और अल्लाह ज़ालिम लोगों को हिदायत का मार्ग नहीं दिखाता[४३]। (२५८) या फिर उस शख़्स (के हाल पर नज़र की)[४४], जो एक बस्ती से गुज़रा था इस हाल में कि वह बस्ती अपनी छतों के बल गिरी हुई थी[४५]; वह कहने लगा, अल्लाह इस (आबादी को) इसके मरे-पीछे क्योंकर जिला उठाएगा[४६] ? सो अल्लाह ने उस (शख़्स) को सौ साल तक मुर्दा रखा फिर उसे जिला उठाया[४७]। फिर पूछा, तू कितनी मुद्दत (इस हालत) में रहा ? उसने कहा, मैं रहा (इस हालत में) कोई दिन भर या उसका कुछ भाग[४८]। फ़र्माया, नहीं, बल्कि तू सौ साल (की मुद्दत) तक रहा। अपने खाने-पीने की ओर तो देख (कि अब तक) वह सड़ा-गला नहीं है[४९], और अपने गदहे को देख[५०]। और (यह सब) इसलिए कि तुझे हम एक निशान लोगों के लिए बनायें[५१]। और हड्डियों की तरफ़ देख, हम उन्हें किस प्रकार क्रमबद्ध करते हैं और उन पर मांस चढ़ाते हैं[५२]। फिर जब उस पर (यह सब) रौशन हो गया तो उसने कहा, मैं यक़ीन रखता हूँ कि निस्सन्देह अल्लाह हर चीज़ पर शक्ति रखता है[५३]। (२५९) और वह वक़्त भी वर्णन योग्य है, जब इब्राहीम ने निवेदन किया कि ऐ मेरे परवरदिगार ! मुझे दिखा दे कि तू मुर्दों को किस प्रकार जीवित करेगा[५४] ? इर्शाद हुआ, क्या आपको विश्वास नहीं है[५५] ? निवेदन किया, अवश्य है, परन्तु यह प्रार्थना इसलिए है कि हृदय को (और) सन्तोष हो जाए[५६]। इर्शाद हुआ कि अच्छा चार पक्षी लीजिए[५७], फिर उन्हें अपने से हिला-मिला लीजिए। फिर उनमें का एक-एक भाग पहाड़ पर रख दीजिए[५८], फिर उनको अपनी तरफ़ बुलाइए तो वह दौड़े हुए आपके पास चले आयेंगे[५९]। और विश्वास रखिए कि अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है, बड़ा हिकमतवाला है[६०]। (२६०) ★ ★ रु. ३५/३ आ ३

---

३१ **'वलिय्युत्'** 'वली' का अनुवाद भी किसी एक शब्द से नहीं हो सकता। साथी, मित्र, सहयोग देनेवाला, संरक्षक, सबके अर्थ इसमें सम्मिलित हैं और अहूलें तफ़्सीर ने यह सभी अर्थ वर्णित किये हैं। ईमान-वालों के बिगड़े काम बनानेवाला, आड़े वक़्त में उनके काम आनेवाला अल्लाह ही है, न कि 'अल्लाह का बेटा' या कोई देवी या देवता। बाज़ सूफ़ियों ने आयत से आम विलायत के साबित करने की दलील दी है।

३२ (और मोमिनों के हक़ में यही सबसे बड़ी और लाभप्रद सहायता और संरक्षण है।) **'अज़्ज़ुलुमाति'** से मुराद कुफ़्र की क़िस्में और उससे सम्बद्ध कुफ़्र और गुमराही की बातें हैं, जैसे सन्देह, शक और ऐसे कामवेग में लीन होना जो वर्जित है, इत्यादि। 'अन्नूर' से मुराद ईमान तथा ईमान का प्रकाश है। सद्बुद्धि एवं ख़ुदा से लौ लगाना इत्यादि। कुफ़्र तथा ज़ुल्मात की क़िस्में अनेक हैं, अतः ज़ुल्मात को बहुवचन में लाये। कुफ़्र की क़िस्में तथा उसके कारण अनेक हैं जैसा कि दो बिन्दुओं के बीच टेढ़े या तिरछे ख़त अनेक हो सकते हैं, परन्तु सीधा ख़त (रेखा) एक ही हो सकता है। सीधा मार्ग एक ही है, अतः 'अन्नूर' क़ुर्आन मजीद में जहाँ-जहाँ भी आया है एकवचन में ही आया है।

३३ (शौक़ दिलाने, लालच दिलाने तथा भयभीत करने, हर सम्भव अस्त्र से काम लेकर) 'तागूत' पर हाशिया ऊपर गुज़र चुका है, यहाँ अर्थ में बहुवचन है। जब सारा वातावरण ही अन्धकार वाला और

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा २६६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा २६३ से)

रखना है, न कि व्यक्तिगत रूप में हर काफ़िर को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना। मौलाना थानवी ने कहा है कि कराहीयत के न होने का उद्देश्य स्वयं कराहीयत के न होने का इन्कार है। अत: अगर मुर्तद या काफ़िर, जो युद्ध में हिस्सा ले रहा है, से दलील को छुपाने के लिए कराहीयत की जाए जैसा कि शरीअत में आदेश है तो यह इन्कार स्वयं कराहीयत के खिलाफ़ नहीं, और दीन की शक्ल पर यह कराहीयत होगी, दीन की सच्चाई पर नहीं, क्योंकि हृदय पर सूचना होने की कोई विश्वसनीय विधि नहीं और इस कराहीयत के इन्कार से स्वयं कराहीयत से इन्कार अनिवार्य हो गया, अत: बाज़ ने न करने के साथ इसकी तफ़्सीर की है यानी दीन में कराहीयत मत करो। **'अद्दीन'** का अर्थ खालिस दीन नहीं कि कोई-सा भी हो, बल्कि दीनें इस्लाम है।

२७ और दलीलों और साक्षों ने दोनों के बीच खुला हुआ अन्तर पैदा कर दिया है। **'अर्रुश्दु'** यानी इस्लाम का मार्ग। **'अल्ग़य्यि'** यानी कुफ़्र का तरीक़ा अर्थात् अब तो कुफ़्र और इस्लाम के बीच बहुत खुले हुए अन्तर और फ़र्क़ पैदा हो चुके हैं, अब किसी पर छुपाने और शक करने की कोई वजह नहीं।

२८ यानी जिसने मज़हब इस्लाम स्वीकार कर लिया और जो असत्य के अनुसरण से बाज़ आ गया, उसे दुनिया तथा आखिरत में एक बड़ा ज़बरदस्त सहारा हाथ आ गया। **'अत्ताग़ूति'— 'ताग़ूत'** का सही अनुवाद कठिन ही है। उर्दू में इसके लिए निकटतम शब्द 'शैतान' का हो सकता है। अपने साधारण एवं विशाल अर्थ में अरबी में इसका अर्थ हर असत्य माबूद तथा हर 'सरकश' का होता है यानी असत्य खुदा और बाग़ी, विरोधी इत्यादि। जो खुदा का इन्कार करे।

२९ (न दुनिया में, न आखिरत में) बन्दे की सृष्टि के रचयिता से सही और क़ुदरती सम्बन्ध ही का नाम दीनें इस्लाम है। यह वह ज़बरदस्त सहारा है, जिसके हाथ आ जाने के पश्चात् जीवन की हर कठिनाई सरल हो जाती है और हर गुत्थी का हल निकल आता है। इसके परिणामस्वरूप आखिरत की मन्ज़िलें भी आसान हो जाती हैं। इस एक सहारे के सिवा अन्य सभी सहारे कमज़ोर, बोदे और अधूरे हैं। बाज़ शोधकारों ने, जो सूफ़ियों में से हैं, कहा है कि अल्लाह से सम्बन्ध स्थापित होने के बाद वह सम्बन्ध टूटते नहीं।

३० **'समीअुन्'** सुननेवाला शब्दों का और कही हुई बातों का। **'अलीमुन्'** जाननेवाला हालात का और कर्मों का। अर्थात् अल्लाह को ज़ाहिर और छुपी हुई, सम्पूर्ण एवं आंशिक हर प्रकार की बातों की जानकारी है, सूचना है। अल्लाह की बा-खबरी और उसका हर चीज़ को जानना, मुसलमानों को एक मामूली और मोटी-सी बात मालूम होती है। परन्तु जाहिली क़ौमों में एक-दो नहीं, काफ़ी संख्या में ऐसी हैं, जो हक़ तआला की जानकारी की सिफ़त में भी सन्देह कर चुकी हैं। यहाँ तक कि बाज़ जाहिली फ़लसफ़ी यह भी कह गुज़रे हैं कि खुदा की जानकारी समूह की है, अंशों की नहीं। कलाम मजीद की इस प्रकार की आयतों की पूरी क़द्र तब ही होती है, जब दुनिया की जाहिली क़ौमों के असत्य विश्वासों पर दृष्टि रखी जाए।

(फ़ुटनोट सफ़ा २६५ से)

गुनाहों से भरा हुआ हो तो ज़ाहिर है कि शैतानी और पाप की प्रेरणा कितनी बढ़ जाती है और ईमान तथा संयम के लिए प्रेरणा कितनी कम हो जाती है। शैतान बदी के चेहरे पर नाना प्रकार के सुन्दर नक़ाब डालकर उसको नाना प्रकार के सुन्दर नाम देकर सामने लाता है। यहाँ तक जनमानस उन्हीं के साथ हो लेते हैं और जो ईमान और 'तक़्वा' वाले हैं वही उलटे नक्कू बन जाते हैं।

३४ (इसलिए कि उन्होंने अपने विवेक से काम न लेकर कुफ़्र तथा गुमराही का रास्ता अपनाया।)

३५ (ऐ सम्बोधित व्यक्ति या व्यक्तियो!) **'अलम् तर अिला'** अरबी साहित्य में यह शैली आश्चर्य एवं तअज्जुब के अवसर पर अपनाई जाती है और उसमें बुराई का पहलू होता है। जब किसी को आश्चर्य-जनक त्रुटि, या बुराई की ओर ध्यान दिलाना होता है तो उसे आरम्भ इस प्रकार से करते हैं, जैसे उर्दू में कहते हैं कि "तुमने फ़ुलाँ की हरकत देखी ?"

३६ (इन्कार करनेवाले एवं विरोधी के रूप में) यह बहस एवं तर्क-वितर्क करनेवाला कौन था ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

ज़ाहिर है कि हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के समय का कोई बादशाह था। यह विवरण तो क़ुर्आन मजीद बल्कि इस आयत के अन्दर मौजूद हैं। तफ़्सीर करनेवालों ने इस अवसर पर 'नमरूद' का नाम लिया है और चूंकि इस विशेष कहानी का वर्णन अह्ले किताब की किताबों में मौजूद नहीं है, अतः वह इस रिवायत ही को मानने में संकोच करते हैं। यद्यपि क़ुर्आन मजीद तौरेत की इस प्रकार की भूल-चूकों को शुद्ध करता गया है। तौरेत के इतिहास में और यहूदी रिवायतों में यह बात मानी गयी है कि नमरूद नामक बादशाह का अस्तित्व था। बादशाह बहुत बड़ा था और साथ ही बड़ा अत्याचारी और मुश्रिक था और आज़र उसका वज़ीर था। तौरेत में है— "और कोश से नमरूद पैदा हुआ। ज़मीन पर अत्याचार होने लगा। ख़ुदावन्द के सामने वह शिकारी और ज़ालिम था। इसी वास्ते मसल हुई कि ख़ुदावन्द के सामने नमरूद-सा शिकारी और अत्याचारी (पैदाइश १०: ९, ८) और कोश से नमरूद पैदा हुआ। वह ज़मीन पर जब्बार होने लगा।" (१—इतिहास १०:६०)। और यहूद की रिवायतानुसार "यह नमरूद अपने क़बीले वालों की थोड़ी-सी सेना से आले याफ़िस को हराकर ज़मीन का बादशाह हो गया और आज़र को उसने अपना वज़ीर बनाया। उसके बाद अपनी बड़ाई के नशे में नमरूद ख़ुदा से बेगाना हो गया और बहुत कठोर मुश्रिक हो गया।" (जिविश इन्साइक्लोपीडिया जिल्द ९, सफ़ा ३०९)। बाबुल (कल्दानिया) ही के इतिहास में एक और बादशाह का नाम आता है, जो बाबुल का सबसे प्रथम 'इन्सानी ख़ुदा' था। बाज़ इतिहासकारों ने उसे ही नमरूद बताया है। (इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रेलीजन् ऐण्ड एथिक्स्, जिल्द ६, सफ़ा ३४६)। उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िरी चौथाई में फ़िरंगी भौतिकवाद एवं बुद्धिवाद और उसके अनुसरण में हिन्दुस्तानी "रौशनख़याली" तथा "नेचरीयत" का सख़्त तक़ाज़ा यह था कि इन क़िस्सों ही से सिरे से इन्कार कर दिया जाए, परन्तु जैसे-जैसे फ़िरंगी इतिहासकारों के पग अग्रसर होते गये, यह 'सन्देह' और 'अविश्वास' भी कमज़ोर होता गया। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सबसे अन्तिम अर्थात् चौदहवें संस्करण में माना गया है कि आधी शताब्दी के पूर्व इन क़िस्सों को जैसा अविश्वसनीय समझ लिया गया था वह विचार अब और अधिक शोध के पश्चात् स्थिर नहीं रहा, यहाँ तक कि नमरूद के साथ जो हज़रत इब्राहीम का तर्क-वितर्क हुआ वह भी। (जिल्द १३, सफ़ा १६५)। **'रब्बिही'** में सर्वनाम इब्राहीम की ओर है, परन्तु बाज़ ने **'अल्लज़ी हाज्ज'** की ओर भी उचित जाना है और ऐसी दशा में अनुवाद यह होगा, "अपने रब के विषय में।" बहरहाल ध्यान देने योग्य शब्द यहाँ 'रब' है। वार्त्ता रब के विषय में थी। अल्लाह होने के विषय में नहीं थी।

३७ यानी उसे राज्य की विशालता ने इतना साहसी, सरकश और मूर्ख बना रखा था। रिवायतों में यहूद के यहाँ यह विवरण भी मिलता है कि वह अपना आदर बल्कि पूजा ख़ुदा ही की भाँति कराता था और अपने लिए उसने एक 'अर्शे इलाही' तैयार कराया था, जिस पर दरबार किया करता था, अवलोकित हो (Gunz berg की Legends of the gews, जिल्द प्रथम, सफ़ा १७८)। कल्दानियों का मुल्की और क़ौमी मज़हब ख़ूब ख़याल रहे कि हज़रत इब्राहीम के समय में 'सूर्यपूजा' थी यानी सूर्यदेवता की पूजा, और यही सब देवताओं का सरदार था। नमरूद कल्दानी, मिस्री, फ़िरऔन की भाँति स्वयं को उसी ख़ुदा महान् का प्रतिबिम्ब या अवतार समझता था और तौहीदवालों को देशद्रोही और बाग़ी और सरकारी धर्म का शत्रु एवं इन्कार करनेवाला मानता था। धीरे-धीरे तौहीदवालों के ख़ुदा से भी जलने लगा था। जोसेफ़स, यहूद का पुराना इतिहासकार अपनी तारीख़ "आसारे यहूद" में लिखता है— "वह लोगों की ख़ुशहाली को ख़ुदा से सम्बद्ध करने से रोकने लगा गोया कि वह स्वयं सर्वशक्तिमान् है। वह कहता था कि अगर अबकी ख़ुदा ने नूह के तूफ़ान की भाँति दुनिया को डुबोया तो मैं उससे बदला लूंगा।" (प्रथम अध्याय ४:२)।

३८ (उसके प्रश्न के उत्तर में कि वह कौन सा ख़ुदा है जिसकी तुम पूजा करते हो?) नमरूद तो अपने ख़ुदा होने और ख़ुदा के प्रतिबिम्ब होने का दावेदार था। उसने तौहीद की दावत देनेवाले को चुनौती देकर पूछा कि वह कौन सा ख़ुदा है, जिसकी ओर तुम आमन्त्रण कर रहे हो? ज़रा मैं तो उसकी तारीफ़ और गुण सुनूं— मुश्रिक लोग आज भी बड़े अचम्भे के साथ पूछा करते हैं कि हमारे अमुक-अमुक देवता और देवी के अलावा आख़िर ख़ुदा है कौन सा, कहाँ है, कैसा है? उसके कार्य एवं गुण क्या हैं?

३९ यानी जीवन-मृत्यु की सारी शक्तियाँ उसी के हाथ में हैं। वही सारे पालन-पोषण की व्यवस्था का स्रोत है। सृष्टि के जीवन एवं उसकी मृत्यु के सारे नियम और सारे क़ानून अन्त में उसी पर जाकर ठहरते हैं। किसी बन्दे में यह शक्ति नहीं कि इस जीवन-मरण के प्रबन्ध में कोई परिवर्तन कर सके या उसमें लेशमात्र कोई हस्तक्षेप कर सके। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने कहा है कि इस आयत से मुदाहनत (मुनाफ़िक़त— चाटुकारिता) का खण्डन होता है। तहक़ीक़ और शोध करनेवालों ने हज़रत इब्राहीम की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुज्जत से यह निष्कर्ष लिया है कि दीन की आवश्यकता के समय तर्क-वितर्क कदापि अनुचित नहीं है विशेष रूप से कामिल के लिए और कलाम का ज्ञान तो नबियों की सुन्नत है और इस वर्णन से स्पष्ट हो रहा है। एक शोधक ने यह बिन्दु भी खूब निकाला है कि नबी हज़रात अल्लाह की तौहीद में केवल उसके कार्यों से ही दलीलें देते थे और ऐसी सिफ़तें नहीं पेश करते थे, जिनसे शुब्हा हो शक्ल और जिस्म का या उनके लिए गुंजाइश निकल सके। और क़रतबी ने आगे चलकर इस बहस एवं तर्क-वितर्क की अनेक मिसालें किताब तथा सुन्नत से पेश की हैं।

४० नमरूद ने जीवन एवं मृत्यु की दूरी और छुपे हुए कारणों को छोडा और केवल ऊपरी और ज़ाहिरी कारणों को सामने रखकर जवाब दिया कि गुज़र-बसर की सारी सामग्री तो मेरे हाथ में है। मैं जिसे चाहूँ रोज़ी दूं और जिसे चाहूँ भूखों मार डालूं। या किसी अन्य तरीक़े से उसका जीवन समाप्त कर दूं।

४१ (अगर अपनी शक्ति और क़ब्ज़े के दावे में कुछ भी सच्चाई रखता है।) उसी तर्क को और अधिक आसानी से समझ में आने के लिए तौहीद के महान् अनुयायी ने यह दूसरा उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। आपने कहा कि तुम तो सूर्यदेवता पर शक्ति और क़ब्ज़ा रखने के गुणों का विश्वास रखते हो, तो बहुत नहीं यही कर दिखाओ कि सूर्य अपने इरादे से साधारण जो अल्लाह का नियम है उसके ज़रा से विरुद्ध होकर अपना रुख बदल दे। दूसरों पर शक्ति रखना अलग रहा, स्वयं अपने ही पर अपना इरादा सर्फ़ करके दिखाये और इरादा भी इतना साधारण और हलका कि केवल अपना रुख बदल दे। किसी ख़ुदा की विवशता का दृश्य इससे बढ़कर और क्या प्रस्तुत हो सकता था? हज़रत इब्राहीम ने तर्क वही बनाये रखा। केवल सम्बोधित व्यक्ति की बिलकुल ऊपर की मनोवृत्ति को दृष्टिगत रखकर उसका उदाहरण दूसरा प्रस्तुत कर दिया और कहा कि अच्छा जीवन की सृष्टि न सही प्राकृतिक सृष्टि के ही ईश्वरीय प्रबन्ध में एक मामूली एवं छोटा क़ाबू और अधिकार सिद्ध करके दिखा दो। नमरूद सूर्यदेवता का अवतार कहलाता था और सूर्य के महान् ख़ुदा होने का क़ाइल था। उसके विश्वास को असत्य सिद्ध करने के लिए सूर्य ही की मिसाल पेश करना उस पर सबसे अच्छी पकड़ थी।

४२ यानी आजिज़, विवश और लाजवाब हो गया। इसका उत्तर किसी भी मुश्रिक या सूर्य की पूजा करनेवाले से कहाँ मुम्किन था? न उस समय किसी से जवाब बन पड़ा और न आज ही सम्भव है। तर्क का खुलासा (सार) यह है कि जिस अस्तित्व के विषय में सबसे बड़ा इरादा रखनेवाला होने का दावा किया जाता है वह तो वास्तविकता में एक छोटे इरादे से भी आरी (वञ्चित) और विवश सिद्ध हो रही है।

४३ विवश और लाजवाब हो जाने के बावजूद वह ईमान न लाया। और ईमान लाता ही कैसे? जो लोग क्रोध और गुमराही से और दुश्मनी से खराब मार्ग अपनाये रहते हैं उन्हें हिदायत (अल्लाह की पहचान) कभी भी नसीब नहीं होती। **'अज़्ज़ालिमीन'** वही लोग हैं जो खाली ज़ेहन के साथ सत्य एवं सच्चाई पर ग़ौर ही नहीं करते और अपनी हठधर्मी और शत्रुता पर बने रहते हैं। आयत से यह भी ज़ाहिर होता है कि सच्चे ईमान और सद्बुद्धि का चोली-दामन का साथ है।

४४ (ऐ सम्बोधित व्यक्ति!)

४५ यानी उसकी इमारतें बिलकुल गिरकर ध्वस्त हो चुकी थीं। **'खावियतुन् अला अुरूशा'** अरबी का एक खास मुहावरा है जिसका अर्थ यह है कि बस्ती बिलकुल तबाह हो चुकी थी। पहले छतें गिरीं फिर छतों के ऊपर दीवारें गिर पड़ीं। यह गुज़रनेवाले कौन साहब थे और किस तबाहशुदा बस्ती से उनका गुज़र हुआ था? तफ़्सीरवालों ने ज़्यादातर मुराद हज़रत उज़ेर नबी से ली है। इस्राईली सिल्सिले के एक प्रसिद्ध नबी, जो तौरेत के लेखक भी हैं। उनका समय पाँचवी शताब्दी पूर्व ईसा था। ४५० पूर्व मसीह में डेढ़ हज़ार यहूद को उनकी क़ैद और देशनिकाला से छुड़ाकर फ़िलस्तीन लाये। बाइबिल् में उनका नाम 'अज़रा' लेखक यानी तौरेत के लेखक के रूप में आया है। एक पुस्तक भी उनके नाम से सम्बद्ध है। क़तावा, सुदी इत्यादि ताबेईन का यही विचार है, बल्कि यही वर्णन हज़रत अली, हज़रत इब्ने अब्बास इत्यादि सहाबा की भी रिवायत में आया है। दूसरा क़ौल हज़रत बर्मियाह नबी से सम्बद्ध नक़्ल हुआ है। यह भी इस्राईली सिल्सिले के नबी हुए हैं। यह सातवीं शताब्दी पूर्व मसीह में थे और यहूद के इतिहास में आता है कि उन्हें नबूवत ६४६ क़ब्ल मसीह (पूर्व मसीह) में मिली थी। ऐतिहासिक रूप में सम्भावना उनके लिए भी है, यद्यपि ज़रा कमज़ोर है। हज़रत बाक़र और वहब से उन्हीं के विषय में रिवायत है। बाइबिल् में एक क़िस्सा उन्हीं से मिलता-जुलता हज़रत हिज़क़ील नबी के विषय में आया है। यह बर्मियाह नबी के समय में और छठी सदी पूर्व मसीह में थे। परन्तु बाइबिल् में यह क़िस्सा घटना के रूप में नहीं है, बल्कि 'कश्फ़' या 'रोया' के रूप में है। (कश्फ़— अल्लाहवाले लोगों पर अपने-आप ख़ुदा की ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से कोई घटना या वार्त्ता प्रकाशित हो जाती है। रोया— स्वप्न के रूप में कोई बात दिखायी दे जाए, परन्तु आम आदमी को नहीं, बुजुर्गों को।) **'क़र्यतन्'** यह बस्ती कौन सी थी ? विभिन्न शहरों के नाम लिये गये हैं, परन्तु बहुमत यरोशलम या बैतुलमुक़द्दस के विषय में है। यह शहर बख़तनस्र बादशाह के समय में पूरी तरह तबाह कर दिया गया था। यह घटना ५८६ पूर्व मसीह की है। सम्भवतः यह घटना इसी शहर से सम्बद्ध है और इसकी तबाही के बाद क़रीब का समय था।

४६ (क़ियामत में) **'हाज़िही'** संकेत मुर्दा शहर में मुर्दा निवासियों की ओर है। जो लोग देखने वाली निगाहें रखते हैं, उनके लिए हर दुःखद दृश्य एक सीख, इब्रत और ख़ुदा की पहचान की चीज़ होती है। अजब क्या जो ख़ुदा के नबी का ज़ेहन अपने समक्ष होनेवाले नज़्ज़ारे के भयंकर पहलू पर पहुँच गया हो और क़ियामत की ओर उनका ज़ेहन चला गया हो, जिससे उन्होंने ख़ुदा की पहचान का एक और पाठ सीखना चाहा हो। आख़िरत में मनुष्यों के दुबारा जीवित होने का विश्वास नबी क्या हर मोमिन को होता है। प्रश्न से नबी का यह अर्थ तो हो ही नहीं सकता कि वह इस घटना के होने में सन्देह रखते हों। वह केवल उसकी हक़ीक़त को जानने और समझने के इच्छुक थे।

४७ (आम नियमों और प्रकृति के उसूलों से हटकर आश्चर्यजनक घटना का होना।) मोजिज़ों पर कोई अक़्ली एतराज़ अगर किसी नास्तिक या मुल्हिद (विधर्मी) की ओर से हो तो ख़ैर उसके लिए तो कुछ गुंजाइश भी है, परन्तु ख़ुदा के माननेवाले की ओर से यह "अक़्ली एतराज़" या उसकी सम्भावना के विषय में एतराज़ बिलकुल निरर्थक है। जब मोजिज़ों का कर्ता स्वयं अल्लाह तआला है तो वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखनेवाला तो जिस प्रकार अपनी आदत या आम मामूल के प्रचलित करने पर शक्ति रखता है, ठीक उसी प्रकार और ठीक उसी दर्जे में उसको छोड़कर भी वह जो चाहे कर सकता है। उसके लिए तो 'यह' और 'वह' और 'ऐसा' और 'वैसा' बराबर हैं। उस आज़ाद और सर्वशक्तिमान् के लिए यह 'आदत' व 'आदत के विपरीत' का अर्थ ही क्या है ? यह आदत के अनुसार और उसके विपरीत की परिभाषा तो केवल बन्दों के लिए है। यह तो हमने जो चीज़ बार-बार देखी उसे अल्लाह की आदत समझ लिया और जिस चीज़ को ऐसा नहीं पाया उसको आदत के विपरीत कह दिया। शब्द "मोजिज़ा" तो स्वयं हमारी नासमझी के ऊपर परदा डालता है। हक़ तआला के लिए कौन सी चीज़ मोजिज़ा हो सकती है ? कोई मज़हबी व्यक्ति किसी बड़े से बड़े मोजिज़े की सम्भावना पर तो ज़बान खोल ही नहीं सकता। जो कुछ भी वार्त्ता होगी वह रूयत (देखी हुई) और विश्वसनीय रिवायत (कथन) के लिहाज़ से होगी और यह बहस ज़ाहिर है सारी की सारी नक़्ली और ऐतिहासिक होगी, न कि अक़्ली। मोजिज़े के प्रदर्शित होने के बयान करने वाले यदि विश्वसनीय हों और स्वयं उन्होंने देखा हो तो वह चीज़ जो आम हालात से पृथक् होती है, वह भी हमारे लिए विश्वासपात्र होगी जैसे कि रोज़मर्रः के हालात होते हैं और आम घटनाएँ होती रहती हैं। और बिलकुल ज़ाहिर है कि आगे कोई बातचीत चल ही नहीं सकती। किस वक़्त किस मोजिज़े के ज़ाहिर होने की क्या-क्या हिकमतें होती हैं, यह हाल तो सिवाय ख़ुदा तआला के और किसी को नहीं मालूम है। एक गिरोह का यह भी विचार है कि मौत से यहाँ वह जानी-पहचानी मौत मुराद नहीं है, बल्कि एक मुद्दत तक मुकम्मल बेहिसी और सोचने-समझने की शक्ति के ग़ायब हो जाने से मुराद है। शब्दकोश से भी इस अर्थ का प्रमाण मिल जाता है। राग़िब ने अपनी "मुफ़रदाते क़ुर्आन" में 'मौत' की ज़िद और ज़िन्दगी के अनेक माने दिये हैं और उनमें मौत की यह सारी क़िस्में शामिल हैं— महसूस होने की शक्ति की समाप्ति, सुनने की शक्ति की समाप्ति, अक़्ल की शक्ति की समाप्ति, नींद और गहरी नींद, शहीद ग़म में और अत्यन्त दुःख की दशा में इत्यादि। 'अल्मौत' के अस्ल मानी हैं ज़िन्दगी का उलटा (सिहाह) या ज़िन्दगी की समाप्ति (अक़्रब)। अतः यह ज़ाहिर है कि जिन-जिन सूरतों पर जीवन या ज़िन्दगी का पाया जाना सिद्ध होता है, उनके मुक़ाबले की शक्लों में 'मौत' भी सिद्ध होगी और अल्लामा मुर्तुज़ा ज़ुबैदी ने 'मुफ़रदात' के सारे अर्थों को नक़्ल करके लिखा है कि मौत मजाज़ी (भौतिक) अर्थ में ग़रीबी-फ़क़ीरी, तुच्छता एवं पाप इत्यादि के लिए भी लिखी जाती है, चुनांचे (अतः) इब्लीस की पहली मासियत (प्रथम गुनाह या पाप) को मौत ही कहा गया है।

४८ यह जवाब उस बन्दे ने अपने ज्ञान एवं समझ और अपने एहसास तथा अन्दाज़ के अनुसार दिया और मनुष्य का अन्दाज़ा और उसका आँकना ज़रा भी आश्चर्यजनक नहीं है। जब दिल और दिमाग़ यानी समझने तथा आँकने की मशीन ही हरकत करने से विवश हो गयी थी तो कोई मानव अन्दाज़ा कैसे कर सकता था और यूँ भी घण्टों, दिनों बल्कि महीनों और वर्षों की मुद्दत को स्वप्न और बेहोशी की हालत में हम रोज़मर्रः मिनटों और सेकण्डों के भीतर सिमटे और मिमटाये हुए आख़िर देखते ही हैं। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इस जवाब से इज्तिहाद (मज़हब के मामलों पर चिन्तन और मनन करके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किसी निष्कर्ष पर पहुँचना) के लिए तर्क निकाला है और उसे जाइज़ क़रार दिया है। ऐसे अन्दाज़े और आँकने पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह झूठ है।

४९ (इतनी मुद्दत के बावजूद) और यह उदाहरण है इस बात का कि अल्लाह जिस चीज़ को जितनी मुद्दत तक चाहे सुरक्षित और सालिम (व्यवस्थित) रख सकता है। मानव की अक़्ल और समझ भौतिक उदाहरण और मिसालों के लिए सदैव इच्छुक रही है। और आज की "रौशनखयाली" और "नेचरीयत" की सारी माँगों का सारांश केवल यही मिसालों की उपलब्धि है।

५० (जिसकी हड्डियाँ उस समय तक बाक़ी थीं और सारा मांस तथा खाल मिट्टी हो गया था।) जानवरों के ढाँचे मुद्दतों बाक़ी रहते हैं। बाज़-बाज़ ढाँचे सैकड़ों, हज़ारों वर्ष के बाद भी सुरक्षित और सालिम बरामद हुए हैं। **'हिमार'** गदहे से, अरब, शाम, मिस्र, फ़िलस्तीन इत्यादि में सवारी का काम लिया जाता था और अब भी लिया जाता है। 'तौरेत' और 'इन्जील' में गदहे का ज़िक्र सवारी के जानवर के रूप में बहुत बार आया है और हज़रत मूसा और हज़रत मसीह दोनों का उस पर सवार होना बयान हुआ है, अतः यहाँ हज़रत उज़ैर की सवारी में गदहे के ज़िक्र पर हैरत न होना चाहिए।

५१ (अपनी सम्पूर्ण शक्ति का) अर्थात् एक उदाहरण दुबारा पैदा किये जाने की घटना का। सृष्टि के रचयिता और महान् बुद्धिमान अल्लाह जब कभी भी कोई वाक़िया (घटना) मानव के स्तर से असाधारण या दुनिया में होनेवाले वाक़िआत से अलग क़िस्म का प्रकट करना चाहे तो उसका उद्देश्य यही होता है कि किसी अहम मक़सद पर दलील दी जाए।

५२ यानी अपने सौ साल पूर्व मरे हुए गदहे के ढाँचे को स्वयं अपनी आँखों से देख कि हम इसका जोड़-जोड़ बिठाते हैं और फिर सरे नौ से रूह फूंककर ज़िन्दा करके उठाते हैं।

५३ और जिस चीज़ को जिस प्रकार चाहे प्रकट कर सकता है, चाहे रोज़मर्रः (प्रतिदिन) के कारणों के ज़रीए चाहे अन्य तरीक़ों से, जिनको आम आदत में नहीं समझा जाता। इन पयम्बर पर जब यह सारी हालतें अनुभव और साक्ष्य के रूप में बीत चुकीं तो वह तरोताज़ा ईमानी जोश के साथ बेइख्तियार पुकार उठे कि बेशक मेरा परवरदिगार हर चीज़ पर शक्तिशाली है और अब मेरा ईमान एवं विश्वास कई दर्जों में और बढ़ गया। **'अअ्लम'** 'इल्म' से यहाँ मुराद 'इल्मे मुशाहिदः' तथा 'रूयत' है। यानी देखकर जानकारी होना, अन्यथा तर्क के माध्यम से जानकारी तो पूर्व ही में प्राप्त है।

५४ (क़ियामत के दिन) **'कैफ़'** यानी किसी ख़ास कैफ़ीयत के साथ, किसी नियत विधि से। वाक़े (घटित) होने में उन्हें सन्देह नहीं था। वह केवल उसकी कैफ़ीयत (हालत) के बारे में प्रश्न कर रहे थे। शोधकों ने कहा है कि प्रश्न के शब्दों से स्वयं स्पष्ट हो रहा है कि प्रश्न करनेवाला वाक़िया या घटना के घटित होने को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखता। वह केवल उसकी कैफ़ीयत जानना चाहता है। उसका आनन्द लेना चाहता है। इस इब्राहीमी क़िस्से से अहले लताइफ़ सूफ़ियों ने निम्नलिखित नुक्ते पैदा किये हैं:— (१) अल्लाह तआला से किसी स्थान के बारे में आत्मशक्ति से जानने हेतु प्रश्न करना स्वीकार हो जाता है। (२) खुदा के नेकबन्दों की जो चीज़ें दिखायी देती हैं, उनसे अल्लाह के पहचानने और मज़हबी कमालों में और प्रोन्नति होती है। (३) और फिर उनसे उनके सम्मान और खुदा की नज़दीकी के दर्जों की प्राप्ति में और बढ़ोतरी होती है।

५५ सवाल से अर्थ यह था कि हज़रत इब्राहीम के कामिल ईमान का इक़रार स्वयं उनकी ज़बान से करा लिया जाए और दुनिया को यह तालीम भी मिल जाए कि ऐसे प्रश्न हमेशा बेएतिक़ादी या ईमान की समाप्ति से ही नहीं पैदा होते।

५६ (और तर्क-वितर्क का ज्ञान देख लेने की सीमा तक पहुँच जाए।) हज़रत इब्राहीम निवेदन करते हैं कि ईमान के दर्जे तक तो यक़ीन अब भी प्राप्त है, हाँ, केवल यह चाहता हूँ कि देखकर और अधिक सन्तोष प्राप्त हो जाए। इस मर्तबे को परिभाषा में "ऐनुलयक़ीन" कहते हैं, अन्यथा तस्दीक़ के मर्तबे तक तो जिसे परिभाषा में "इल्मुलयक़ीन" कहते हैं, वह तो हर मोमिन को प्राप्त होता है। हज़रत इब्राहीम-जैसे महान् मोमिन को क्यों न प्राप्त होता? मौलाना थानवी ने कहा है— "ईमान ही बढ़ते-बढ़ते इत्मीनानें क़ल्ब बन जाता है।" शोधकों का विचार है कि यह तरक़्क़ी कभी देखने से होती है और कभी केवल विज्दान से (खुदा की याद में मस्त होने से)। इत्मीनान यहाँ सुकून के मुक़ाबले में आया है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि सुकून का न होना ईमान तथा खुदा की पहचान के विरुद्ध नहीं है और सन्तोष का जो दर्जा विलायत (वली हो जाने) और सिद्दीक़ीयत के मुनासिब है, वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हज़रत इब्राहीम को अब भी प्राप्त था, और आपको उस सन्तोष की माँग थी जो नबूवत के दर्जे के अनुरूप हो।

५७ उन परिन्दों (चिड़ियों) के नाम भी तफ़्सीरों में नक़्ल हुए हैं, परन्तु अव्वल तो प्रमाण कुछ बलशाली नहीं हैं और फिर यह नियत करना सिरे से व्यर्थ की बात है। अल्बत्ता लतीफ़े और इशारे वालों ने इन चार परिन्दों से नुक्ते ख़ूब पैदा किये हैं। बाज़ सूफ़ियों ने कहा है कि इनसे इशारा इन्सान के उन चार शक्तियों की ओर है जो अल्लाह को देखने में रोड़ा बन जाते हैं और सच्ची ज़िन्दगी में रुकावट बनते हैं और वह चार शक्तियाँ यह बतायी हैं— (१) स्वयं को कुछ समझना और अपने लिए कुछ चाहना; (२) काम-शक्ति की बढ़ोतरी; (३) धन-दौलत का लालच; (४) दुनिया से प्रेम।

५८ (उनको ज़िबह करके और उन्हें टुकड़े-टुकड़े करने के पश्चात्) **'सुर्हुन्न अिलैक'** यानी उन परिन्दों को पालकर और अपने पास रखकर उन्हें अपने से ख़ूब मानूस कर लीजिए कि फिर पहचानने में कठिनाई न हो। **'फ़ सुर्हुन्न'** के आगे इतनी इबारत छोड़ी हुई मानी गयी है कि अपने से हिला चुकने के उन परिन्दों (चिड़ियों) को ज़िबह करके उनके टुकड़े पहाड़ों पर रख दीजिए। क़ुर्आन मजीद के बयान की सुन्दरता की शैली में इस प्रकार का छोड़ देना और जोड़ लेना ऐसी मिसालें हैं जो बराबर मिलती हैं। इसी 'सूरए बक़र:' के आरम्भ के रुकूओं में **'फ़क़ुल्नज़्रिब बिअ़साकल्हजर'** (हमने हुक्म दिया कि अपना डण्डा चट्टान पर मारो)। और उसके तुरन्त बाद आता है **'फ़न्फ़जरत मिन्हुस्नता अश्रत अ़ैना'** (पस चट्टान के बारह चश्में फूट निकले)। यहाँ सबने इतनी बात छोड़ी हुई मानी है कि मूसा ने हुक्म की तामील की और डण्डे की चोट चट्टान पर लगायी। अच्छे कवियों की कविताओं में इस प्रकार के मह्ज़ूफ़ात (छोड़ना) की मिसालें बहुत मिलती हैं। **'अला कुल्लि जबल'** यानी जो पहाड़ियाँ आपके आसपास हैं उन पर। यह मतलब नहीं है कि पृथ्वी पर जितनी भी पहाड़ियाँ हों सबको तलाश करके सब पर रखिए। **'मिन्हुन्न जुज़्अन्'** यानी उनके मिले-जुले हुए गोश्त का एक-एक हिस्सा। **'जुज़्अन्'** के अस्ली मानी अरबी में टुकड़े के हैं जिसको फ़ारसी में 'पार:' कहते हैं। **'मिन्हुन्न'** से पहले तो मुराद चारों परिन्दों का जोड़ लेना और फिर **'जुज़्अन्'** से मुराद उस जोड़ का एक-एक टुकड़ा, एक-एक पूरी चिड़िया लेना अनायास का कष्ट और एक ग़लत प्रकार का शब्दकोश का 'इज्तिहाद' (नयी बात पैदा करना) है। सहाबियों और ताबेईन के बाद से लेकर इस समय तक जितने भी तफ़्सीर करने वाले अरबी की सुन्दर योग्यता रखते हैं, सबने इससे हर-हर चिड़िया के टुकड़े-टुकड़े का अर्थ लिया है।

५९ (सही और सालिम इस तरह कि ज़िन्दा होकर उनमें से हर एक के विभिन्न और बिखरे हुए टुकड़े आपस में मिल-मिलाकर ठीक हो जाएँ।) **'अद्अुहुन्न'** यानी आवाज़ देकर उन्हें अपनी तरफ़ पुकारिए।

६० (तो ऐसे शक्तिशाली और बुद्धिमान के लिए मौत से ज़िन्दगी में ले आने में कठिनाई ही क्या है? जब भी वह अपनी बुद्धिमत्ता के अनुसार आवश्यक जानेगा हश्र बरपा कर देगा।) **'अज़ीज़'** यानी ऐसा ज़बरदस्त जो हर चीज़ पर एक ही प्रकार से शक्ति और क़ाबू रखता है। कठिन और सम्भव, सख़्त और आसान के अन्तर और विभाजन तो मानव की स्थापित की हुई चीज़ें हैं। क़ादिरें मुत्लक़ यानी जो अकेला हर चीज़ पर क़ाबू रखनेवाला अर्थात् ईश्वर है, उसके यहाँ किसी चीज़ के सख़्त या असम्भव होने का कोई अर्थ ही सिरे से नहीं है। **'हकीम'** यानी यद्यपि वह हर चीज पर अकेला हावी है और सर्वशक्तिमान् है, परन्तु वह करता वही है जो ठीक उसकी बुद्धिमानी के अनुसार होता है। 'अल्मनार' के रचयिता ने बड़े विवरण से वार्त्ता करके सारे तफ़्सीर करनेवालों की बड़ी संख्या के क़ौल **को क़ुर्आनी व्यवस्था के विरुद्ध बताया है और अबू मुस्लिम असफ़हानी की प्रशंसा की है।**

(फ़ुटनोट सफ़ा ३०३ से)

एक की नीयत, क्षमता और निःस्वार्थता इत्यादि की भी तो जानकारी रखता है और उसी मात्रा से सबको देता है।

६४ यानी जिसके साथ कुछ सुलूक किया है, उस पर न एहसान रखते हैं और न अपने व्योहार से उसे कष्ट देते हैं। हक़ारत से देखना (नीची निगाह से देखना) भी कष्टदायक बर्ताव ही है। किसी की कोई सेवा अपने से बन पड़ जाए तो यह स्वयं अपने लिए बदले और नेकी का कारण है, न यह कि उस पर घमण्ड किया जाए। जिसके साथ सुलूक किया गया है उसको किसी भी रूप में तुच्छ न समझा

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३०४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मसलुल्लजीन युन्फ़िक़ून अम्वालहुम् फ़ी सबीलिल्लाहि क मसलि हब्बतिन्
अम्बतत् सब्अ़ सनाबिल फ़ी कुल्लि सुम्बुलतिम्मिअतु हब्बतिन् त
वल्लाहु युज़ाअ़िफ़ु लिमंय्यशा'उ त वल्लाहु वासिअ़ुन् अ़लीमुन् (२६१)
अल्लजीन युन्फ़िक़ून अम्वालहुम् फ़ी सबीलिल्लाहि सुम्म ला युत्बिअ़ून
मा' अन्फ़क़ू मन्नंव्वला' अज़न् ला ल्लहुम्
अज्रुहुम् अ़िन्द रब्बिहिम् ज व ला
ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून
(२६२) क़ौलुम्मअ़रूफ़ुंव्व मग़्फ़िरतुन्
ख़ैरुम्मिन् सदक़तिय्यत्बअ़ुहा' अज़न् त
वल्लाहु ग़निय्युन् हलीमुन् (२६३) या'
अय्युहल्लजीन आमनू ला तुब्तिलू
सदक़ातिकुम् बिलमन्नि वल्अज़ा ला कल्लजी
युन्फ़िक़ु मालहू रिआ'अन्नासि व ला
युअ्मिनु बिल्लाहि वल्यौमिल्आख़िरि त
फ़ मसलुहू क मसलि सफ़्वानिन् अ़लैहि
तुराबुन् फ़ असाबहू वाबिलुन् फ़ तरकहू सल्दन् त
ला यक़्दिरून अला शैअिम्मिम्मा कसबू त वल्लाहु ला यह्दिल्-क़ौमल्-काफ़िरीन
(२६४) व मसलुल्लजीन युन्फ़िक़ून अम्वालहुमुब्तिग़ा'अ मर्ज़ातिल्लाहि
व तस्बीतम्मिन् अन्फ़ुसिहिम् क मसलि जन्नतिम् - बिरब्वतिन् असाबहा
वाबिलुन् फ़ आतत् अुकुलहा ज़िअ़्फ़ैनि ज फ़ अिल्लम् युसिब्हा वाबिलुन्
फ़ तल्लुन् त वल्लाहु बिमा तअ़्मलून बसीरुन् (२६५) अयवद्दु अहदुकुम् अन्
तकून लहू जन्नतुम्-मिन्नख़ीलिंव्व अअ़्नाबिन् तज्री मिन् तह्तिहल् - अन्हारु ला
लहू फ़ीहा मिन् कुल्लिस्समराति ला व असाबहुल्किबरु व लहू ज़ुर्रिय्यतुन्
ज़ुअ़फ़ा'उ ज़ ज़्का फ़ असाबहा' अिअ़्सारुन् फ़ीहि नारुन् फ़ह्तरक़त् त
★ रु. ३६/४ आ ६ कज़ालिक युबय्यिनुल्लाहु लकुमुल्आयाति लअ़ल्लकुम् ततफ़क्करून (२६६) ★

تلك الرسل ٣ — ٣٥ — البقرة ٢

سَنَابِلَ فِي كُلِّ سُنْبُلَةٍ مِّائَةُ حَبَّةٍ ۗ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ لِمَنْ يَّشَآءُ ۗ
وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝ اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلَآ اَذًى ۙ لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ
وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝ قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ وَّمَغْفِرَةٌ
خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ۗ وَاللّٰهُ غَنِيٌّ حَلِيْمٌ ۝ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا لَا تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى ۙ كَالَّذِيْ يُنْفِقُ مَالَهٗ
رِئَآءَ النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۗ فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ
صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ فَتَرَكَهٗ صَلْدًا ۗ لَا يَقْدِرُوْنَ
عَلٰى شَيْءٍ مِّمَّا كَسَبُوْا ۗ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْكٰفِرِيْنَ ۝ وَمَثَلُ
الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَتَثْبِيْتًا مِّنْ
اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍ ۢ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا وَابِلٌ فَاٰتَتْ اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ
فَاِنْ لَّمْ يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝ اَيَوَدُّ
اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّاَعْنَابٍ تَجْرِيْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ وَاَصَابَهُ الْكِبَرُ وَلَهٗ ذُرِّيَّةٌ
ضُعَفَآءُ ۚ فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ۗ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ
اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ۝ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا
مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّآ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۪ وَلَا تَيَمَّمُوا

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो लोग अपने माल को अल्लाह की राह में ख़र्च करते रहते हैं, उनकी मिसाल ऐसी है[६१] जैसे कि एक दाना है कि उससे सात बालियाँ उगें, हर-हर बाली के अन्दर सौ दाने हों[६२]। और अल्लाह जिसे चाहे बढ़ोतरी देता रहता है[६३]। और अल्लाह बड़ी विशालतावाला है, बड़ा इल्मवाला है[६३](अ)।(२६१) जो लोग अपना माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं और जो कुछ ख़र्च कर चुके हैं उसके पीछे एहसान और तकलीफ़ देने से काम नहीं लेते[६४], उनके लिए इसका बदला उनके परवरदिगार के पास है। और उन पर न कोई ख़ौफ़ (वाक़े) होगा और न वह ग़मगीन होंगे[६५]। (२६२) मुनासिब बात और क्षमा ऐसी ख़ैरात से बेहतर है जिसके पीछे तकलीफ़ हो[६६]। और अल्लाह बड़ा धनवान है, बड़ा गम्भीर है[६७]। (२६३) ऐ ईमानवालो! अपनी ख़ैरातों को एहसान (रखकर) और तकलीफ़ (पहुँचाकर) बेकार न कर दो[६८] जिस प्रकार वह शख़्स जो अपना माल ख़र्च करता है लोगों के दिखावे को, और अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान नहीं रखता[६९]; सो उसकी मिसाल तो ऐसी है कि जैसे एक चिकना पत्थर है जिस पर कुछ मिट्टी है, फिर उस पर ज़ोर की वर्षा हो, सो वह उसको बिलकुल साफ़ कर दे[७०]। (ऐसे लोग) कुछ भी न प्राप्त कर सकेंगे अपनी कमाई से[७१]। और अल्लाह काफ़िर लोगों को हिदायत की राह न दिखाएगा[७२]। (२६४) और उन लोगों की मिसाल जो अपना माल अल्लाह की रज़ामन्दी की तलब में ख़र्च करते रहते हैं और अपनी आत्मा में दृढ़ता (पैदा करने के उद्देश्य से)[७३] एक बाग़ की भाँति है जो किसी टीकरे पर हो और उस पर ज़ोर का मेंह पड़ा हो फिर वह दुगुने फल लाया हो[७४]; और अगर ज़ोर का मेंह न भी पड़े तो हलकी फ़ुहार ही काफ़ी है[७५]। और तुम जो कुछ करते हो अल्लाह उसको ख़ूब देखनेवाला है[७६]। (२६५) क्या तुममें से कोई यह पसन्द करता है कि उसका एक बाग़ खजूरों और अंगूरों का हो, जिसके नीचे नदियाँ पड़ी बह रही हों, (और) उसके यहाँ उस बाग़ में और भी हर प्रकार के मेवे हों, और उसका बुढ़ापा आ चुका हो और उसके बाल-बच्चे कमज़ोर हों, उस (बाग़) पर एक बगूला आये कि उसमें आग हो तो वह (बाग़) जल जाए। अल्लाह इसी तरह तुम्हारे लिए खोलकर निशानियाँ बयान करता है, ताकि तुम फ़िक्र से काम लो[७७]। (२६६) ★

★ रु. ३६/४ आ ६

६१ (अल्लाह की नज़र में और बरकत तथा बढ़ोतरी के लिहाज़ से जो बदले में होगी।) **'फ़ी सबीलिल्लाह'** यानी शरीअत के हुक्मों के अनुसार नेक कामों में। **'अम्वालहुम'** और **'फ़ी सबीलिल्लाह'** दोनों के अन्तर्गत तमाम नेक कामों के ऊपर ख़र्च करना आ जाता है।

६२ (तो जिस प्रकार ग़ल्ले के एक दाने से सात सौ दाने पैदा हो गये, इसी प्रकार अल्लाह नेक कामों पर ख़र्च करनेवालों को उनके नेक अमल का बदला सात सौ गुना देता है।) एक सीधी-सादी भौतिक मिसाल देकर यह समझा दिया कि इस बदले की बढ़ोतरी पर इतना आश्चर्य क्यों किया जाए! ऐसी मिसालें तो भौतिकता में रोज़मर्रः मिल जाती हैं। तिजारती और कारोबारी उदाहरण तो क़ुर्आन मजीद में बहुत मिलते हैं, खेती-बाड़ी और किसानों के उदाहरण भी कम नहीं हैं।

६३ (उसके बदले में जिस हद तक भी चाहे या उसके निःस्वार्थता एवं स्नेह के अनुसार) यह जो नेकी राह में ख़र्च करने की सुन्दर उपमा खेती से दी गयी है, इससे लतीफ़ेवालों ने दो नुक्ते और पैदा किये हैं। एक यह कि अपने नेक कामों के व्यय की सुरक्षा एवं देखभाल भी कृषकों की ही प्रकार करते रहना चाहिए, दिखावा और प्रदर्शन, घमण्ड और बनावट, दूसरों को कष्ट देना और एहसान जताने से उन्हें बरबाद न किया जाए। दूसरे यह कि जिस प्रकार बोआई और सिंचाई इत्यादि की विभिन्नता से पैदावार मेहनत, मूल्य और मुनाफ़े के लिहाज़ से विभिन्न होती रहती है, उसी प्रकार बदला गो मात्रा में बराबर हो, फिर भी क़बूलीयत (स्वीकार होना) दर्जों में निकटता इत्यादि के आनन्दों में नीयत तथा निःस्वार्थता के लिहाज़ से कमी-बेशी होती रहेगी।

६३ (अ) **'वासिअुन्'** विशालता की सिफ़त लाकर यह बता दिया कि उसके यहाँ कमी किस चीज़ की है? सबको सब कुछ दे सकता है। **'अलीमुन्'** इल्म की सिफ़त लाकर यह जता दिया कि वह हर

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३०१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३०१ से)

जाए। 'क़ुर्आन मजीद' ही में 'अब्रार' का एक चिह्न यह वर्णित हुआ है कि यह लोग दूसरों को खिलायें-पिलायेंगे और साथ ही यह कहते जायेंगे कि हम तुम्हें खालिस अल्लाह की राह में खिलाते-पिलाते हैं, न कि तुमसे कोई बदला लेने या तुमसे शुक्रिया वसूल करने के लिए। 'मन्न' के मानी एहसान रखने, अपने एहसान के याद दिलाने के हैं। 'अज़न्' — तक्लीफ़ पहुँचाना।

६५ (क़ियामत के दिन) 'अज्रुहुम् अिन्द रब्बिहिम्' यानी उन लोगों को पूरा-पूरा बदला मिलेगा उनकी निःस्वार्थता की मुनासिबत से। 'अज्रुहुम्' के लिए उसका अज्र (बदला) जानकर लाया गया है, क्योंकि उर्दू मुहावरे में अर्थ इसी प्रकार अदा होता है।

६६ यानी इस प्रकार के एहसान से तो कहीं अच्छा है कि सिरे से सदक़ा दिया ही न जाए और नर्म शब्दों में क्षमायाचना कर ली जाए। 'क़ौलुम्-मअ्रूफ़ुन्' यानी क्षमायाचना के नर्म शब्द कह देना। 'मग़्फ़िरत' यानी सवाल करनेवाले (माँगनेवाले) या ज़रूरतमन्द की बात को उस वक़्त टाल जाना जब वह सख़्ती या असभ्य तरीक़े से पेश आने लगे। आयत में स्पष्ट यह शिक्षा दी गयी है कि सदक़ा या ख़ैरात का उद्देश्य स्वयं ख़ैरात नहीं है, इसका उद्देश्य है दिल की इस्लाह और हृदय की शुद्धि। और इसके बाद देनेवाला लेनेवाले पर कोई एहसान नहीं रखता बल्कि देना अपना फ़र्ज़ समझता है, बल्कि उलटा लेनेवाले का आभारी होता है कि उसने स्वीकार करके उसको एक बोझ से हलका किया। 'अज़न्' का शब्द साधारण है। हर प्रकार का कष्ट इसमें शामिल है। ज़बान या अमल से एहसान जताना भी इसमें आ गया। ख़ैरनादारी (दरिद्रता), ग़रीबी के समय नर्मी से जवाब दे देना और माँगनेवाले की सख़्ती को पी जाना बदले के निकट पहुँच जाने का कारण है। अत: उन्हें नेकी बताया है।

६७ वह न किसी के धन-माल का मुहताज है और न हर ग़लत कार्य पर नाराज़ होकर तुरन्त ही सज़ा देता है। 'ग़निय्युन्' वह तुम्हारा माल तुम्हारे ही लाभ के लिए ख़र्च कराता है। और जो कोई कुछ ख़र्च करता है वह अपने ही दाइमी (सदा के लिए) लाभ के लिए करता है। कोई मुश्रिक या मुश्रिक के गुण रखनेवाला मूर्ख यह न समझ ले कि ख़ुदा की राह में जो ख़र्च किया जाता है, वह स्वयं ख़ुदा को दिया जाता है या यह कि ख़ुदा हमारी दौलत और हमारे धन का मुहताज है। 'हलीमुन्' अतः अपराधियों और क़ानून तोड़नेवालों को सज़ा तुरन्त नहीं देता। माँगनेवाले की असभ्यता और ग़नी (मालदार) बद-दिमाग़ी, सबको एक मुद्दत तक क्षमा करता रहता है।

६८ [और अपने को सवाब और बदले की बढ़ोतरी से महरूम (निराश) न कर दो।] 'ला तुब्तिलू' — 'अब्ताल' से यहाँ मुराद है और अधिक मेहरबानी और करम (कृपा) से वञ्चित होना। उसे व्यर्थ न करो। फ़क़ीहों ने लिखा है कि जिस प्रकार सदक़े को व्यर्थ करना यहाँ हराम और मना है, इसी प्रकार कोई सा भी नेक कार्य हो उसे व्यर्थ करना हराम तथा मना है। चुनांचे नफ़्लि नमाज़ की नीयत बाँधकर उसे तोड़ डालने को हराम मानना और इसे मना करना इसी नियम के अनुसार है।

६९ (और ऐसा व्यक्ति सदक़े के बदले और उसके सवाब को ही समाप्त करके रहता है। दो सूरतें यहाँ पृथक्-पृथक् वर्णित हुई हैं। दोनों के अन्तर को ध्यान में रखा जाए। पहली सूरत में अह्ले ईमान से सम्बोधन है। सदक़ा स्वयं तो उन लोगों का पूरा हो जाएगा, परन्तु एहसान जताने या कष्ट पहुँचाने से दर्जों में तरक़्क़ी और बदला तथा पुण्य सब समाप्त हो जाएगा। दूसरी शक्ल में ज़िक्र अह्ले कुफ़्र का है। यह जब ख़ुदा और आख़िरत पर ईमान ही से महरूम हैं तो उनके सदक़े तथा ख़ैरात से ज़ाहिर में जो भी उद्देश्य हो, सबका लाभ दुनिया ही में होगा। ऐसों को बदला किस चीज़ का? अल्लाह की रज़ामन्दी तो किसी दर्जे में उनके कार्य का अंश नहीं है। 'रिआ'अन्नास' इन्जील में भी इससे मिलती-जुलती हिदायत मौजूद है (मत्ती ६ : २)। शोधकों ने लिखा है कि 'रिया' — दिखावा की बुराई में यह आयत स्पष्ट आदेश और प्रमाण है। जनसेवा का एक मेयार यह है। इसे क्या सम्बन्ध उन लोगों से है जो चन्दे देते ही इस ग़रज़ से हैं कि समाचार-पत्रों में उनका ख़ूब प्रचार हो और बैठकों और कान्फ़रेंसों (सम्मेलनों) में उनके धन्यवाद एवं आभार के प्रस्ताव पास हों।

७० (और वह वैसा ही कोरा रह जाए जैसा पहले था।) उपमा का अर्थ यह है कि काफ़िर उसी प्रकार स्वयं को क़ियामत के दिन हर ख़ैर-ख़ैरात के बदले से वञ्चित पाएगा। उसका धन जो सदक़े में गया वह वास्तव में ख़ैरात के अन्तर्गत आता ही नहीं। ख़ूब विचार कर लिया जाए, इस्लाम में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वीकृत वही सदक़ा है जो अल्लाह की रज़ामन्दी हेतु किसी दर्जे में तो हो। **'कमसलि सफ़्वान'** उपमा बदले से वञ्चित होने के लिहाज़ से दी गयी है।

७१ उन्हीं लोगों का ज़िक्र है जो ईमान की दौलत से महरूम हैं। **'मिम्मा कसबू'** यानी जिसे वह अपने विचार और समझ से अपनी कमाई समझ रहे हैं, अन्यथा बन्दे की कमाई तो वास्तव में वही है जिसे नेक अमल कहा जा सके और नेक अमल की प्रथम और आधारित शर्त ईमान है।

७२ (क़ियामत के दिन, सवाब के घर यानी जन्नत) यह अर्थ भी हो सकते हैं कि जो कुफ़्र अपनाये हुए हैं और अपनी निर्णय-शाक्ति से सही काम नहीं ले रहें हैं, उन्हें ज़बरदस्ती करके हिदायत की राह दिखाने का क़ानूनें इलाही है ही नहीं।

७३ [जैसा कि हर निःस्वार्थ मोमिन का तरीक़ा और शेवः (ढंग) है।] **'तस्बीतम्-मिन् अन्फ़ुसिहिम्'** इतने से टुकड़े में मानव-मनोवृत्ति की एक गहरी सच्चाई बयान हो गयी है। गुनाह की भांति हर इबादत की यही विशेषता है कि वह अपने ही क़िस्म के आमाल को खींचती है। चुनांचे हर नेक अमल के बाद आत्मा में दूसरे नेक अमल के लिए इच्छा उत्पन्न होती है, और इस विचार में दृढ़ता पैदा होती है। मानव की प्रकृति की यह विशेषता है कि हर अमल के बार-बार करने से उसकी एक परिपक्व आदत बनती जाती है और उससे मुक़ाबले की शक्ति कमज़ोर और पराजित होती जाती है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि आयत में यह तर्क है कि नेक अमल से जिस प्रकार बदला-प्राप्ति का उद्देश्य होता है, उसी प्रकार आत्मा की शुद्धि और नफ़्स का सुधार भी इसका एक मक़्सूद होता है। यह मानी तो ज़ाहिरी हैं कि वह ख़र्च इसलिए करते हैं कि मुकम्मल ईमान और स्थिरता एवं इत्मीनान हासिल हो। एक दूसरे अर्थ यह भी लगाये गये हैं कि उनके दिल अल्लाह की मेहरबानी और सवाब पर सन्तुष्ट हैं। वह माल के ख़र्च को न हानि समझते हैं, न उससे उनको परेशानी होती है।

७४ (कि हवा की पवित्रता, ज़मीन की क्षमता और वर्षा की बहुतायत, यह सब मिलकर बढ़ोतरी की शक्ति को खूब बढ़ा देंगी।) **'वाबिलुन्'** खूब ज़ोर की वर्षा, बड़े-बड़े बूंदों वाला पानी।

७५ तम्सील (तुलना) की भाषा में इस हक़ीक़त का बयान हो रहा है कि निःस्वार्थता यदि उच्च कोटि की न हो तो भी केवल ईमान और जिन बातों को मना किया गया है उनके न होने पर (यानी एहसान न रखना, और तक्लीफ़ न देना) स्वयं सदक़ों और ख़ैरात को अल्लाह की पसन्द के लिए काफ़ी है।

७६ (और हर एक की निःस्वार्थता के दर्जों को भी खूब जाननेवाला है।) यहाँ एक आम इन्सानी नस्ल से सम्बोधन है। यानी अल्लाह तआला काफ़िर, मोमिन, निःस्वार्थ व्यक्ति, स्वार्थी, सबके कार्यों और सबके स्वार्थ एवं निःस्वार्थता से खूब परिचित है।

७७ (और अपने अंजाम को सोचकर उसी के अनुसार अमल करते रहो।) **'मिन् नख़ीलिव् व अनाब'**— क़ुर्आन में विवरण के साथ उन्हीं मेवों का नाम लिया है जो अरबवालों के लिए विशेष महत्ता और ख़ास मानी रखते थे, अंग्रेज़ी तफ़्सीर के हाशिए अवलोकित हों। **'तह्तिहल् अन्हार'** यह, यह ज़ाहिर करने को है कि वह बाग़ खूब हरे-भरे भी थे। **'मिन् कुल्लिस्समराति'**— यह बाग़ के मालिक की खुशहाली और उसकी धनाढ्यता की शान ज़ाहिर करने को है। **'असाबहुल्किबरु'**— यानी बाग़ का मालिक अब मेहनत और परिश्रम करने के लायक़ नहीं रहा। उदाहरण के अन्दाज़ में बयान इसका है कि क़ियामत का दिन आ जाए और उस व्यक्ति की कार्य और अमल से विवशता उस पर ज़ाहिर हो जाए। **'ज़ुर्रिय्यतुन् ज़ुअफ़ाउ'**— यानी औलाद भी इस क़ाबिल न हो कि, रोज़ी की प्राप्ति में उसके कुछ काम आ सके यानी उसकी विवशता हर प्रकार से ज़ाहिर हो जाए। **'फ़असाबहा' अिइसारुन्'**— कि वही बाग़ रोज़ी का स्रोत था। उदाहरण की शैली में यह बयान है कि उस व्यक्ति का भरोसा ज़ाहिरी इबादत और नेक कार्यों पर था। **'फ़ह्तरक़त्'**— यानी उस व्यक्ति की सारी आशाएँ तबाह होकर रह जाएँ। उदाहरण की भाषा में मुराद यह है कि एक शख़्स अपने ख़याल में नेक काम कर रहा है और अपने विचार में सारी आशाएँ उससे लगाये बैठा है, परन्तु ठीक मुहताजी और आवश्यकता के समय यानी क़ियामत के दिन उसे यह नज़र आये कि वह अमल स्वीकृति और क़बूलीयत की शर्तों का लिहाज़ न करने के कारण स्वयं ही तबाह हो गये हैं। अतः उसका बदला और सवाब कैसा? अब तो निराशा ही उसके भाग्य में आयी। **'अल्आयात'**— यहाँ उदाहरण और मिसालों के मानी में है। **'लकुम्'**— यानी

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३०८)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या' अय्युहल्लज़ीन आमनू' अन्फ़िक़ू मिन् तय्यिबाति मा कसब्तुम् व मिम्मा' अख़्रज्ना लकुम् मिनल्अर्ज़ि ़ व ला तयम्ममुल्ख़बीस मिन्हु तुन्फ़िक़ून व लस्तुम् बि आख़िज़ीहि इल्ला' अन् तुग़्मिज़ू फ़ीहि त वऽलमू' अन्नल्लाह ग़निय्युन् हमीदुन् (२६७) अश्शैतानु यअिदुकुमुल्-फ़क़्र व यअ्मुरुकुम् बिल्फ़ह्शा'अि ज वल्लाहु यअिदुकुम् मग़्फ़िरतम्मिन्हु व फ़ज़्लन् त वल्लाहु वासिअुन् अलीमुन् ला (२६८) युअ्तिल्-हिक्मत मंय्यशा'अु ज व मंय्युअ्तल्-हिक्मत फ़क़द् ऊतिय ख़ैरन् कसीरन् त व मा यज्ज़क्करु इल्ला' उलुल्-अल्बाबि (२६९) व मा' अन्फ़क़्तुम् मिन् नफ़क़तिन् औ नज़र्तुम् मिन्नज़्रिन् फ़ इन्नल्लाह यऽलमुहू त व मा लिज़्ज़ालिमीन मिन् अन्सारिन् (२७०) इन् तुब्दुस्सदक़ाति फ़ निअिम्मा हिय ज व इन् तुख़्फ़ूहा व तुअ्तूहल्फ़ुक़रा'अ फ़हुव ख़ैरुल्लकुम् त व युकफ़्फ़िरु अन्कुम् मिन् सय्यिआतिकुम् त वल्लाहु बिमा तऽमलून ख़बीरुन् (२७१)

تلك الرسل ٣ — ٣٦ — البقرة ٢

الْخَبِيثَ مِنْهُ تُنفِقُونَ وَلَسْتُم بِآخِذِيهِ إِلَّا أَن تُغْمِضُوا فِيهِ ۚ
وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ غَنِيٌّ حَمِيدٌ ﴿٢٦٧﴾ الشَّيْطَانُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَ
يَأْمُرُكُم بِالْفَحْشَاءِ ۖ وَاللَّهُ يَعِدُكُم مَّغْفِرَةً مِّنْهُ وَفَضْلًا ۗ وَاللَّهُ
وَاسِعٌ عَلِيمٌ ﴿٢٦٨﴾ يُؤْتِي الْحِكْمَةَ مَن يَشَاءُ ۚ وَمَن يُؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ
أُوتِيَ خَيْرًا كَثِيرًا ۗ وَمَا يَذَّكَّرُ إِلَّا أُولُو الْأَلْبَابِ ﴿٢٦٩﴾ وَمَا أَنفَقْتُم مِّن
نَّفَقَةٍ أَوْ نَذَرْتُم مِّن نَّذْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ يَعْلَمُهُ ۗ وَمَا لِلظَّالِمِينَ مِنْ
أَنصَارٍ ﴿٢٧٠﴾ إِن تُبْدُوا الصَّدَقَاتِ فَنِعِمَّا هِيَ ۖ وَإِن تُخْفُوهَا وَتُؤْتُوهَا
الْفُقَرَاءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَيُكَفِّرُ عَنكُم مِّن سَيِّئَاتِكُمْ ۗ وَاللَّهُ بِمَا تَعْمَلُونَ
خَبِيرٌ ﴿٢٧١﴾ لَّيْسَ عَلَيْكَ هُدَاهُمْ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ يَهْدِي مَن يَشَاءُ ۗ وَمَا
تُنفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَلِأَنفُسِكُمْ ۚ وَمَا تُنفِقُونَ إِلَّا ابْتِغَاءَ وَجْهِ اللَّهِ ۚ
وَمَا تُنفِقُوا مِنْ خَيْرٍ يُوَفَّ إِلَيْكُمْ وَأَنتُمْ لَا تُظْلَمُونَ ﴿٢٧٢﴾ لِلْفُقَرَاءِ
الَّذِينَ أُحْصِرُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا يَسْتَطِيعُونَ ضَرْبًا فِي الْأَرْضِ
يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ أَغْنِيَاءَ مِنَ التَّعَفُّفِ تَعْرِفُهُم بِسِيمَاهُمْ لَا
يَسْأَلُونَ النَّاسَ إِلْحَافًا ۗ وَمَا تُنفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ بِهِ عَلِيمٌ ﴿٢٧٣﴾
الَّذِينَ يُنفِقُونَ أَمْوَالَهُم بِاللَّيْلِ وَالنَّهَارِ سِرًّا وَعَلَانِيَةً فَلَهُمْ
أَجْرُهُمْ عِندَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿٢٧٤﴾
الَّذِينَ يَأْكُلُونَ الرِّبَا لَا يَقُومُونَ إِلَّا كَمَا يَقُومُ الَّذِي يَتَخَبَّطُهُ

★ रु. ३७/५ आ ७ लैस अलैक हुदाहुम् व लाकिन्नल्लाह यह्दी मंय्यशा'अु त व मा तुन्फ़िक़ू मिन् ख़ैरिन् फ़ लि अन्फ़ुसिकुम् त व मा तुन्फ़िक़ून इल्लब्तिग़ा'अ वज्हिल्लाहि त व मा तुन्फ़िक़ू मिन् ख़ैरिंय्युवफ़्फ़ इलैकुम् व अन्तुम् ला तुज़्लमून (२७२) लिल्फ़ुक़रा'इल्लज़ीन उह्सिरू फ़ी सबीलिल्लाहि ला यस्ततीअून ज़र्बन् फ़िल्अर्ज़ि ज यह्सबुहुमुल्-जाहिलु अग़्निया'अ मिनत्तअफ़्फ़ुफ़ि ज तऽरिफ़ुहुम् बि सीमाहुम् ज ला यस्अलूनन्नास इल्हाफ़न् त व मा तुन्फ़िक़ू मिन् ख़ैरिन् फ़ इन्नल्लाह बिही अलीमुन् (२७३) ★ ●

● व ब, क्ष १/४ ● व. मंज़िल

अल्लज़ीन युन्फ़िक़ून अम्वालहुम् बिल्लैलि वन्नहारि सिर्रंव्व अलानियतन् फ़ लहुम् अजरुहुम् अिन्द रब्बिहिम् ज व ला ख़ौफ़ुन् अलैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (२७४) ●

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! जो तुमने कमाया है उसमें उम्दः चीजें ख़र्च करो[७८] और उसमें से (भी) जो हमने तुम्हारे लिए ज़मीन से निकाली हैं[७९], और ख़राब चीज़ का इरादा भी न करो कि उसमें से ख़र्च करोगे, हालाँकि तुम स्वयं भी उसके लेनेवाले नहीं हो सिवाय उस सूरत के कि निगाह बचा जाओ[८०]। और जाने रहो कि अल्लाह् बेनियाज़ है, सारी तारीफ़ें उसी के लिए हैं[८१]। (२६७) शैतान तुम्हें मुहताजी से डराता है और हुक्म देता है तुम्हें कंजूसी का[८२] और अल्लाह् तुमसे अपनी तरफ़ से क्षमा और मेहरबानी का वादा करता है[८३] और अल्लाह् बड़ी विशालतावाला, बड़ा ज्ञानवाला है[८४]। (२६८) वह जिसे चाहे बुद्धिमत्ता प्रदान करता है और जिसे बुद्धिमत्ता प्रदान हो गयी उसे अवश्य ही बहुत नेकियाँ प्रदान हो गयीं[८५]। और नसीहत तो बस समझदार लोग ही क़बूल करते हैं[८६]। (२६९) और तुम जो कुछ भी ख़र्च करते हो या जो भी नज़र मानते हो, अवश्य ही अल्लाह् (सब कुछ) जानता है। और अन्याइयों का सहायक कोई न होगा[८७]। (२७०) अगर तुम सदक़ों को ज़ाहिर कर दो जब भी अच्छी बात है, और अगर उन्हें छुपाओ और फ़क़ीरों को दो जब तो यह तुम्हारे हक़ में और बेहतर है[८८]। और अल्लाह् तुमसे तुम्हारे गुनाह भी दूर कर देगा[८९]। और तुम जो कुछ भी करते हो अल्लाह् उससे ख़बरदार है[९०]। (२७१) उनकी हिदायत आपके ज़िम्मे नहीं[९१], बल्कि अल्लाह् जिसे चाहता है हिदायत देता है[९२]। और तुम जो कुछ भी माल में से ख़र्च करते हो सो अपने लिए (करते हो)[९३]। और तुम अल्लाह् की रज़ामन्दी के लिए ख़र्च करते हो[९४] और माल में से जो कुछ भी ख़र्च करते हो (सब) तुमको पूरा-पूरा लौटा दिया जाएगा और तुम पर (ज़रा भी) ज़्यादती न की जाएगी[९५]। (२७२) (अस्ल) हक़ उन हाजतमन्दों के लिए है जो अल्लाह् की राह में घिर गये हैं[९६], मुल्क में कहीं चल-फिर नहीं सकते[९७] अपरिचित उन्हें मालदार ख़याल करता है उनकी माँगने की एहतियात के कारण[९८], तू उन्हें उनके चेहरे ही से पहचान लेगा[९९]। वह लोगों से लग-लिपट कर नहीं माँगते[१००]। और तुम माल में से जो कुछ ख़र्च करते हो, अल्लाह् उसका ख़ूब जानने वाला है[१०१]। (२७३) ★ ●

जो लोग अपना माल रात और दिन (और) छुपकर और ज़ाहिरा ख़र्च करते रहते हैं, सो उन लोगों के लिए उनके परवरदिगार के पास बदला है। न उनके लिए कोई ख़ौफ़ (वाक़े) है और न वह उदास होंगे[१०२]। ● (२७४)

★ रु. ३७/५ आ ७ ● रु बु. अ १/४ ● ब. मंज़िल

---

७८ (अल्लाह् के कामों में, नेक कार्यों में) **'माकसब्तुम्'**— जो कुछ तुमने कमाया जाइज़ और पाक तरीक़े से। उसमें मुलाज़िमत, तिजारत और मीरास, सब दाखिल हैं। **'तय्यिबाति'**— यानी अपनी प्राप्त की हुई चीज़ों में से बेहतरीन, या अपनी पाक तरीक़े से हासिल जाग़ीर।

७९ यानी खान से निकली हुई चीज़ें और वनस्पति इत्यादि। **'लकुम्'**— यानी तुम्हारे कार्य हेतु। **'मिनल् अर्ज़ि'**— इसके अन्तर्गत कृषि, बाग़बानी, खनिज पदार्थ इत्यादि की सारी शाखाएँ आ गयीं, जिस प्रकार **'मा कसब्तुम्'** के अन्तर्गत तिजारत और कारोबार की क़िस्में आ गयीं। फ़क़ीहों ने **'मिनल् अर्ज़ि'** से यह नुक्ता भी निकाला है कि ज़कात ज़मीनी पैदावार (कृषि और खनिज पदार्थ इत्यादि) पर वाजिब हुई मोती-मूँगे इत्यादि के विपरीत, जो ज़मीन से नहीं, समुद्र से निकलते हैं।

८० अर्थ यह हुआ कि ऐसी बेकार, माक़िस, रद्दी चीज़ें कि अगर स्वयं मिलने लगें, तो तुम्हें लेना गवारा न हो सिवाय उस सूरत के कि तुम इरादा करके उनसे आँखें बचा लो। तो अल्लाह् की राह में ऐसी चीज़ों के सर्फ़ करने का तो तुम्हें खयाल भी न करना चाहिए। **'अल्ख़बीस'**— रद्दी बेकार चीज़। **'तुन्फ़िक़ून'**— अल्लाह् की राह में नेक कामों में ख़र्च करने से मुराद है। **'लस्तुम् बिआख़िज़ीहि'**— यानी जब वह तुम्हें क़ीमत देकर मिल रही हो।

८१ (और इस चीज़ के तुम्हारी नज़र में रहने के पश्चात्, तुम ख़राब नज़रानों के पेश करने से स्वयं एहतियात करोगे और बचोगे।) **'ग़नी'**— वह तुम्हारे सदक़ों और ख़ैरात का मुहताज नहीं है कि

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३०८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३०५ से)

तुम्हारे लाभ हेतु, तुम्हें समझाने को। इस परिस्थिति के दु:खद होने पर ध्यान दें। एक व्यक्ति की उम्र भर की कमाई एक बाग़ है। हरा-भरा, खूब फूला-फला हुआ, हर प्रकार के मेवों और फलों से लदा हुआ। बाग़ का मालिक बूढ़ा हो जाता है और अब किसी नयी मेहनत के लायक़ नहीं। बच्चे मौजूद हैं परन्तु कमज़ोर और कमसिन हैं, जो रोज़ी की प्राप्ति में उसका हाथ बँटाने के बजाय उलटे उसी पर बोझ बने हुए हैं। ठीक उस समय अत्यन्त आवश्यकता पड़ने के समय अचानक ज्ञात होता है कि बाग़ में आग लगी और सब कुछ जलकर ख़ाक सियाह हो गया। बाग़ के मालिक के दु:ख और उसकी निराशा का कोई अन्दाज़ा कर सकता है ! इससे कहीं बढ़कर और हज़ारों-लाखों गुना बढ़कर दशा उस बदनसीब इन्सान की होगी, जिसकी आँखें जीवन भर ग़फ़लत और लापरवाही से बन्द रहीं और प्रथम बार उस समय खुलेंगी जब अमल की मुहलत बिलकुल समाप्त हो चुकेगी और अब वह देखेगा कि कोई भी चीज़ उसके अमल के दफ़्तर में ऐसी नहीं जो उसके काम आ सके। उसकी निराशा, ग़मनसीबी और दुर्भाग्य का कोई अन्दाज़ा हो सकता है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३०७ से)

जो चीज़ तुम्हारे स्तर से नाकारा हो, उसकी नज़र तुम उसके दरबार में पेश करो। इसके अलावा उसके यहाँ बदले में कोई कंजूसी नहीं। उससे मामला करनेवाला न कभी शर्मिन्दा होगा, न घाटे में रहेगा। **'हमीद'**— वह स्वयं हर सिफ़त का मालिक है और सारे कमालात उसी पर ख़त्म हैं। तुम्हारे देने-लेने से उसकी बड़ाई में कोई बढ़ोतरी नहीं होती। यह बात स्वयं तुम्हारे लिए शर्म की बात है कि ऐसे ज़बरदस्त, कमालों और ऐसी शानवाले के समक्ष तुम नाकारा और नाक़िस नज़र पेश करने का विचार दिल में लाओ। इसी सन्दर्भ में यह बात भी आ गयी कि जब वह हर गुण स्वयं रखता है, तो उसके यहाँ उन्हीं बन्दों को पसन्द किया जाता है, जो स्वयं भी उसकी किसी सिफ़त से कुछ मुनासिबत रखता हो। मुश्रिक क़ौमों ने अपने देवताओं को नज़र और चढ़ावे का मुहताज माना है। ग़नी की सिफ़त लाने से इस अक़ीदे की काट हो गयी।

८२ (कि अल्लाह की राह में ख़र्च कर डालोगे तो ग़रीब हो जाओगे।) रोज़मर्रः का अनुभव है कि नेक कार्यों में ख़र्च से जो चीज़ रोकती है, वह कंजूसी होती है कि सब कुछ ख़र्च कर डालने के बाद अपनी आवश्यकताओं के वास्ते क्या रह जाएगा ? क़ुर्आन मजीद ने **'अश्शैतानु यअिदुकुम्'** के सुन्दर शब्दों से यह शिक्षा दी है कि यह विचार सारे का सारा शैतानी सन्देह है और इस प्रकार इस विचार के ग़लत होने की बेहतरीन शैली अपनाई। **'अल्फ़ह्शा'अि'**— अरबी में **'फ़ुह्श'** और **'फ़ह्शा'अ'** हर सख़्त बुराई और हर बुरी सिफ़त को कहते हैं। कंजूसी से इसका विशेष सम्बन्ध है। और इस पर सब सहमत हैं कि यहाँ **'अल्फ़ह्शा'अ'** से मुराद सदक़ों और ज़कात की अदायगी में कंजूसी करना है।

८३ (अल्लाह की राह में ख़ुशी मन से ख़र्च करने पर) **'मग़्फ़िरतंव्व फ़ज़्लन्'** मेहरबानी और क्षमा का वादा आख़िरत से सम्बद्ध है और दया तथा कृपा दुनिया से। सारांश यह है कि ख़ुदाई हुक्मों पर ख़ुदाई नियमों के अनुसार चलोगे तो दुनिया एवं आख़िरत की बेहतरी आवश्यक है। शैतानी रास्ता बरबादी और तबाही का है और ख़ुदाई राह बेहतरी और भलाई की।

८४ (ऐसी विशालता वाले के यहाँ इन्आम और मेहरबानी की क्या कमी ?) **'अलीम'**— ऐसे जानकारी वाले पर नीयतों का हाल रत्ती-रत्ती रौशन है, अत: फल भी नीयतों के अनुसार ही मिलेगा।

८५ (जिसके मुक़ाबले में दुनिया की कोई नेमत नहीं है।) **'अल्हिक्मत'**— **'हिक्मत'** का अर्थ बहुत लिखा गया है, लेकिन सबसे सही अर्थ यह है कि दीन के मामलों में सही समझ हो। दीन की इस समझदारी में कंजूसी से घृणा और ख़र्च में सन्तुलन भी सम्मिलित है। **'मंय्यशा'उ'**— यह हिकमत की तक़सीम और इसका प्रदान होना सृष्टि के नियम के अनुसार होता रहता है। **'मंय्युअतल्-हिक्मत'**— यह हिकमत और बुद्धिमानी कदापि नहीं कि जो कुछ भी कमाया जाए अपने नफ़्स के स्वादों और इच्छाओं पर उड़ा दिया जाए। ठीक बुद्धिमानी तथा हिकमत यह है कि इस आज से कल का ज़ख़ीरा जमा किया जाए। आज ऐसी बोआई की जाए कि कल फल ही फल हाथ लगें और ईमान तथा इबादत का ऐसा बीमा करा दिया जाए जो भविष्य की स्थायी और अटूट ज़िन्दगी में बराबर काम आता रहे। **'ख़ैरन् कसीरन्'**— बहुत ही बड़ी नेमत।

८६ (और इसलिए विशेष सम्बोधन भी उन्हीं से है।) **'अुलुल्-अल्बाबि'**— यानी सदबुद्धि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखनेवाले और उससे काम लेनेवाले। 'नसीहत' का अर्थ है सत्य की राह पर चलने और दीन के पथ-प्रदर्शकों की नसीहत है। अह्लें 'लताइफ़' ने कहा है कि आयत में शैतानी वस्वस: (भ्रम) का इलाज (हिकमत) के ज़रीए बताया गया है, जिस प्रकार इसके पूर्व **'तस्बीतम्-मिन् अन्फ़ुसिहिम्'** में अमल से बताया जा चुका है।

८७ (क़ियामत के दिन— बदलेवाले दिन— यौमें-जज़ा) **'मा'अन्फ़क़्तुम्'**— जो कुछ ख़र्च करते हो, अच्छे-बुरे किसी मस्रफ़ में। **'मिन्-नज़्रिन्'**— 'नज़र' वह चीज़ है जिसको साधारण भाषा में 'मन्नत' मानना कहते हैं। फ़िक़्ह में इसकी परिभाषा यह की गयी है कि वह किसी मुराद के पूरे होने पर अपने ऊपर कोई ऐसी चीज़ अनिवार्य कर लेना है, जो वाजिब न थी। यह नज़्र बदनी इबादत के रूप में भी हो सकती है, जैसे नमाज़ या रोज़ा, और माली इबादत की शक्ल में भी। **'यअ़्लमुहू'**— यानी उसकी जानकारी रखता है कि वह किस नीयत से और किसकी राह में मानी गयी है और इस कामिल इल्म के अनुसार सज़ा और बदला भी मिलेगा। **'लिज़्ज़ालिमीन'**— यानी क़ानूनें इलाही तोड़नेवालों का, अपने हक़ में अन्याय करनेवालों का।

८८ हर नेकी की भाँति, सदक़ों और ख़ैरात को भी छुपाकर अदा करने की बड़ाई तो ज़ाहिर ही है, परन्तु जीवन में ऐसे अवसर भी बराबर आते रहते हैं जहाँ नेकी का एलान और उसका ज़ाहिर करना आवश्यक हो जाता है। एक व्यक्ति है, जो भूख-प्यास से निढाल या बीमारी में मुब्तला (ग्रस्त) सड़क पर पड़ा तड़प रहा है। हम निकट से गुज़र रहे हैं और बिलकुल हमारे इख़्तियार में है कि उसे खिला-पिलाकर या दवा-दारू देकर सरे नौ से उठाकर खड़ा कर दें, लेकिन इस अंदेशे से कि कहीं इस सेवा की गिनती दिखावे और नुमाइश में न हो जाए, उसके पास से कतराते और चुपचाप गुज़र जाते हैं, तो यह 'तक़्वा' नहीं गुनाह है और इन्तिहाई वह्म की पूजा हुई। यहाँ तुरन्त सहायता की आवश्यकता थी, चाहे उसके लिए घोषणा ही क्यों न करनी पड़े। यह नहीं कि नुमाइश और दिखावे के सन्देह में और उससे बचने के लिए एकान्त का कोना ढूंढ़ लिया जाए। जिन धार्मिक वर्गों ने नेकी को छुपाने की हद से ज़्यादा ताकीद की है और जनसेवा को छुपाने के साथ सीमित और बन्दी बना दिया है, उनकी शिक्षा अवश्य ही अधूरी, अपूर्ण, यकतरफ़ा और बेकार है और उन्होंने जीवन में इस प्रकार की घटनाओं को, जो रात-दिन पेश आती रहती हैं, नज़र-अन्दाज़ ही कर दिया है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया कि सही मत यह है कि नेक अमल के एलान और उसके छुपाने में इख़्तियार है और साथ ही बड़ाई उसके छुपाने में है अगर एलान में कोई विशेष बुद्धिमानी न हो। **'अिन् तुब्दू व अिन् तुख़्फ़ू'** यानी आवश्यकता-अनुसार और दीन की मस्लहत के मुताबिक़ एलान या छुपाना जो भी उचित हो। **'तुअ्तूहल्फ़ुक़रा'अ'** यानी फ़क़ीर के हवाले करो ख़ामोशी से छुपाकर। **'तुख़्फ़ू'** यानी वही छुपाने की व्यवस्था। **'अल्फ़ुक़रा'**— बजाय **'फ़ुक़राअकुम्'** के केवल **'फ़ुक़रा'** के शब्द से यह निष्कर्ष किया गया है कि सदक़ा देने में इस्लाम की शर्त नहीं। मुसलमान और काफ़िर सबको सदक़ा दिया जा सकता है जो भी ज़रूरतमन्द हो। फ़क़ीहों ने जिस मद को विशेषता दी है वह ज़कात है जिसकी अदायगी इस्लाम के नियमों में है, या फिर सदक़अे फ़ित्र— आम सदक़ों पर यह प्रतिबन्ध नहीं है।

८९ (उन नेकियों की बरकत से) क़ुर्आन मजीद ने गुनाहों से नजात की जहाँ और सूरतें रखी हैं वहाँ एक सूरत यह भी है कि नेकियाँ बदियों का प्रायश्चित्त करती हैं। और अच्छे अमल गुनाहों को समाप्त कर देते हैं। यह चीज़ केवल विश्वास की नहीं है तजुर्बे और रोज़ाना देखने की भी है कि जन-मानस की नज़र बचाकर इबादत और नेकियों की आदत यदि डाल ली जाए, तो एक मुद्दत के अभ्यास के बाद आत्मा की इस्लाह और सुधार अपने-आप ही एक बड़ी हद तक हो जाता है। जो कुछ ख़राबियाँ इसके बाद भी अवशेष रह जाएँ उसके लिए अल्लाह तआ़ला की दया और उसका फ़ज़्ल काफ़ी है। वह अच्छाइयों का और भलाइयों को बुराइयों का बदला बनाता रहता है। यहाँ पहुँचकर मसीहियों के इस आधारित विश्वास को एक बार फिर याद कर लिया जाए कि गुनाहों से नजात तथा गुनाहों के धुलने की कोई सूरत नहीं सिवाय इसके कि "ख़ुदावन्द ख़ुदा का इकलौता बेटा" इन्सान के रूप में दुनिया में आये और अपनी जान को सलीब पर देकर सबकी ओर से कफ़्फ़ारा अदा करे। **'मिन् सय्यिआतिकुम्'**— यानी यह सदक़ा सारे गुनाहों का नहीं हाँ कुछ गुनाहों का कफ़्फ़ारा बन जाएगा।

९० (और इसलिए वह बदला भी आमाल और अह्वाल के अनुसार देगा।) गुनाहों से बाज़ रखने में हर चीज़ की ख़बर और जानकारी रखनेवाले अल्लाह के हर चीज़ के ज्ञान और उसकी दृष्टि का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हर चीज़ को घेरे रखनेवाली समझना और हर समय ख़ुदा की इन सिफ़तों को याद रखना बेहद लाभप्रद है और इसीलिए क़ुर्आन मजीद ने हर ऐसे अवसर पर इसे दोहराया है।

६१ (ऐ पैग़म्बर !) **'हुदाहुम्'** उनकी यानी काफ़िरों की। सर्वनाम का बहुवचन 'अन्नास' के लिए भी हो सकता है। और जब ज़िम्मेदारी आप पर नहीं तो उम्मत पर और भी नहीं, इसलिए मुराद में आपके साथ उम्मत को भी शामिल रखा गया है।

६२ (अपनी कायनाती मस्लहत के अनुसार एवं अन्तर्गत) रसूल का काम केवल तब्लीग़ (दीन को फैलाने हेतु प्रचार) है यानी हिदायत का पैग़ाम दुनिया तक पहुँचाना, शेष यह कि सच्चाई को कौन स्वीकार करता है और कौन नहीं —इसका सम्बन्ध पूर्णरूपेण अल्लाह की मशीयत से है। आयतों के उतरने के सन्दर्भ में आता है कि सहाबा कराम बाज़ दफ़ा किसी काफ़िर मुश्रिक को, जो ज़रूरतमन्द होता, ख़ैरात देने से इस कारण से रुक जाते कि शायद यह ज़रूरत के कारण ही इस्लाम स्वीकार कर लें। आयत में बता दिया गया कि इतनी दूर की व्यवस्था की आवश्यकता नहीं। केवल तब्लीग़ काफ़ी है। फ़क़ीहों ने कहा है कि काफ़िर को ख़ैरात देना बिलकुल जाइज़ है, शर्त यह है कि वह इस्लाम के विरुद्ध युद्ध न करता हो। हदीस में जो आया है कि तेरा खाना खास मुत्तक़ी खाया करें, मुराद उससे दावत का खाना है और आयत में मुराद है ज़रूरत का खाना, अतः रोक का शुबहा न किया जाए (थानवी)। युद्ध करनेवाले काफ़िर को सदक़ा देना जाइज़ नहीं (थानवी)। काफ़िर ज़िम्मी यानी युद्ध न करने वाले को ज़कात देना तो जाइज़ नहीं और दूसरे सदक़े वाजिब तथा नफ़िल सब जाइज़ हैं (थानवी)। आयत में ज़कात का ज़िक्र नहीं है, साधारण सदक़ों का है। मौलाना थानवी ने कहा है कि आयत में इसकी तालीम है कि किसी के ज़्यादा पीछे न पड़ो और तदबीर में भी बहुत अधिक खो जाने की ज़रूरत नहीं। कुफ़्फ़ार को सदक़ा न देना तदबीर की ही एक क़िस्म थी।

६३ यानी अपने ही आख़िरत के बदले के लिए न कि किसी और के लिए। यहाँ बाज़ मुश्रिक क़ौमों का अक़ीदा नज़र के सामने रख लीजिए कि नज़राने और चढ़ावे अमुक देवी और अमुक देवता के लाभ के लिए होते हैं। **'मा तुन्फ़िक़ू'**— यानी अल्लाह की राह में जो कुछ ख़र्च करते हो। **'मिन् ख़ैरिन्'**— यानी अपने माल में से। यहाँ 'ख़ैर' का अर्थ माल है। **'ख़ैर'**— वास्तव में 'शर' के मुक़ाबले में है और इसके अर्थ में हर वह चीज़ आ जाती है, जिसको इन्सान अच्छा समझता है, जैसे बुद्धि, नैतिकता, लाभदायक वस्तु इत्यादि। क़ुर्आन मजीद में 'ख़ैर' का शब्द अनेक स्थानों पर माल के ही सुन्दर व्यय के सिल्सिले में आया है। यह भी कहा गया है कि ख़ैर उस माल पर लागू होता है जो बड़ी मात्रा में हो, हलाल और जाइज़ माध्यम से प्राप्त हुआ हो।

६४ (सो यह उद्देश्य हर ज़रूरतमन्द की ज़रूरत की पूर्ति से पूरा हो जाना है चाहे उसके अक़ीदे कुछ भी हों।) सारांश यह हुआ कि उद्देश्य जब अपने लिए आख़िरत का नफ़ा या बदला पाने का है तो वह तो हर ज़रूरतमन्द की सहायता से हो सकता है। सदक़े को मुसलमानों तक ही सीमित रखने का प्रतिबन्ध क्यों लगाया जाए। **'वज्हिल्लाहि'**— के मानी आम तौर पर ज़ाते इलाही के किये गये हैं। दूसरा अर्थ अल्लाह की रज़ामन्दी का भी हो सकता है। बाज़ शोधकों का यही विचार है। महज़ 'लिल्लाह' के मुक़ाबले में **'वज्हिल्लाह'** कहने में एक तो ज़ोर पैदा हो गया, दूसरे यह अर्थ भी आ गया कि किसी और की शिरकत नहीं चाही गयी है। केवल अल्लाह ही की रज़ामन्दी चाही गयी है और यही मंशा है। यह विधि ताकीद और घेर लेने दोनों के माने में आ गयी। आयत में काट है उन जाहिल सूफ़ियों की जो सवाब और बदले के उद्देश्य को निःस्वार्थता के विरुद्ध समझते हैं। क़ुर्आन मजीद ने तो बारहा रवारवी (जल्दबाज़ी) में नहीं, बल्कि स्पष्ट शौक़ दिलाया है बदला और सवाब को तलाश करने का। आयत का यह भाग देखने में वर्णन रूपी है, परन्तु उद्देश्य इससे मनाही या नहीं करने का हुक्म है, यानी तुम सिवाय अल्लाह की रज़ामन्दी के ख़र्च न करो। जो ख़र्च करो उसी की रज़ामन्दी हेतु करो।

६५ (कि बदले में कुछ कसर न रह जाए और सवाल का कोई भाग काट लिया जाए)। **'मिन् ख़ैरिन्'** अभी हाशिया ऊपर गुज़र चुका है। **'युवफ़्फ़ इलैकुम्'** सब तुमको पूरा-पूरा लौटा दिया जाएगा। यानी आख़िरत में सारा बदला और सवाब।

६६ यानी सदक़ों के अस्ल हक़दार तो वह ज़रूरतमन्द हैं, जिनका ज़िक्र अब आ रहा है। **'उह्सिरू फ़ी सबीलिल्लाहि'** यानी दीन ही के किसी काम में घिर गये और अब आज़ादी से रोज़ी नहीं कमा सकते। अस्ल मुराद यहाँ मुजाहिद हैं। **'अह्सार'**— में बड़ी गुंजाइश है। यह घिर जाना चाहे समय के लिहाज़ से हो या जिस्म के लिहाज़ से सब इसके अन्तर्गत आ जाता है। **'फ़ुक़राउल् मुहाजिरीन'**—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का विवरण तो केवल इस कारण से है कि उस समय यही एक गिरोह ऐसा था। इसी प्रकार **'फ़ी सबीलिल्लाह'** में भी बड़ा फैलाव है। दीन का कोई भी कार्य, कोई भी आवश्यकता, सब इसमें शामिल हो सकती हैं यद्यपि अस्ल चीज़ जिहाद है। मौलाना थानवी ने कहा है कि इस आयत के अन्तर्गत हमारे देश में सबसे ज्यादा वह हज़रात हैं, जो दीन के इल्मों में व्यस्त हैं; क्योंकि दीन के इल्म में जिस व्यस्तता और गहरे लगाव की आवश्यकता है, उसके साथ रोज़ी-रोटी की चिन्ता की व्यस्तता को जोड़ लिया जाए तो दीन की सेवा अधूरी रह जाएगी।

९७ (आज़ादी से रोज़ी की चिन्ता और माँग) यानी उनका समय दीन की सेवा में ऐसा घिरा रहता है कि रोज़ी की तलाश के लिए उन्हें समय नहीं मिलता।

९८ यानी उनका आत्मसम्मान और उनकी ग़ैरत यह गवारा नहीं करती कि वह लोगों से सवाल करें। न जाननेवालों को इससे यह गुमान होता है कि वह ख़ुशहाल हैं और सहायता की उनको आवश्यकता नहीं है। 'ग़नी' या 'तुवंगरी' शरीअत में असली आवश्यकता से माल के अधिक होने को कहते हैं। मौलाना थानवी ने कहा है कि अल्लाह के मार्ग में चलनेवालों को कोई ऐसी शक्ल न बनानी चाहिए, जिससे आम दुनिया के लोगों से वह पृथक् ज़ाहिर होते हों। फ़क़ीहों ने आयत के शब्दों से यह तर्क किया है कि संज्ञा 'फ़क़ीर' ऐसे पर भी लागू होता है जो हैसियत वाले कपड़े पहने हो और उसे ज़कात भी दी जा सकती है।

९९ (ऐ सम्बोधित व्यक्ति! कि यह सहायता के अधिकारी और ज़रूरतमन्द हैं।) यानी यह लोग ज़बान से कुछ भी न कहें, परन्तु उनका चेहरा बुश्र: (मुखाकृति) ध्यान से देखने के बाद स्वयं उनके फ़क़्रो-फ़ाक़े (भूख और ग़रीबी) को प्रदर्शित करेगा। बाज़ फ़क़ीहों ने यहीं से इस बात को जाइज़ कहा है कि हालत और देखनेवाली दशा से नतीजा निकालना ठीक है।

१०० (अत्यन्त आवश्यकता के होते हुए भी) और यह दलील है उनकी इन्तिहाई ग़ैरत की। **'इल्हाफ़न्'** ऊपर **'मिनत्तअफ़्फ़ुफ़ि'** के सन्दर्भ मे आ चुका है कि यह ग़ैरतमन्द और स्वाभिमानी लोग सिरे से सवाल ही नहीं करते और अब यह इर्शाद हो रहा है कि यह लोग लग-लिपटकर नहीं माँगते। इमाम राज़ी फ़र्माते हैं कि इसमें इशारा है कि इल्हाफ़ (लग-लिपटकर माँगने की आदत) बुरी आदत है। बाज़ शोधकर्ताओं ने बिलकुल सवाल न करने के अर्थ लगाये हैं।

१०१ (तुम्हारी निःस्वार्थता का और इसी निस्बत से बदला भी देगा।) **'व मा तुन्फ़िक़ू'** यानी ऐसे लोगों पर ख़र्च करते रहो।

१०२ (क़ियामत के दिन अपने परवरदिगार के पास पहुँचकर।) **'बिल्लैलि वन्नहारि'** यानी जिस घड़ी भी आवश्यकता तथा मस्लहत हो। **'सिर्रंव्व अलानियतन्'** यानी छुपाकर तो आदत के अनुसार और ज़ाहिरा तौर पर ज़रूरत और मस्लहत के अनुसार। **'अल्लज़ीन युन्फ़िक़ून'** यानी अल्लाह की राह और दीन की सेवा में जहाँ-जहाँ भी ख़र्च करने का शौक़ दिलाया है, केवल ख़र्च करने हेतु नहीं बल्कि अल्लाह की ही राह में ख़र्च करना।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३१३ से)

कहा गया है कि इन्सानी वार्ता में जब किसी चीज़ की सख़्त बुराई करना होता है तो उसे शैतान से सम्बद्ध कर दिया जाता है, चुनांचे क़ुर्आन मजीद ने भी दूसरी जगह इसी इन्सानी मुहावरे से काम लिया है। शैतान अ़रबी में बड़े विशाल अर्थ रखता है। हर बुरा व्यवहार शैतान ही है।

१०५ (सूद के हराम किये जाने के तर्क के रूप में) यह कहनेवाले जाहिलीयत के ज़माने के "रौशनख़याल" सूद खानेवाले सूद के जाइज़ होने के क़ायल थे।

१०६ (लाभ-प्राप्ति और धन में बढ़ोतरी के विचार से) आजकल के "रौशनख़यालों" की भाँति ही जिहालत के ज़माने में भी मूर्खों का कहना यह था कि माली लाभ आख़िर व्यापार में भी तो होता है, फिर जब तिजारत हराम नहीं तो सूद क्यों हराम है? इन नासमझों ने यह बात भुला दी कि दोनों नैतिक और आर्थिक हैसियत से एक स्तर पर नहीं रखे जा सकते। सूद की एक नियत रक़म बेखटके महाजन को मिलती रहती है। इसके विपरीत तिजारत में हानि, लाभ दोनों के ख़तरे तथा सम्भावना होती है और व्यापारी को हानि से बचने के लिए, समय, मेहनत, बुद्धि सब कुछ व्यय करनी होती है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३१४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अल्लज़ीन यअ्कुलूनर्रिबा ला यक़ूमून इल्ला कमा यक़ूमुल्लज़ी यतख़ब्बतुहुश्-

शैतानु मिनल्मस्सि त ज़ालिक बि अन्नहुम् क़ालू इन्नमल्बैअ़ु

व. ला जि म मिस्लुर्रिबा म ● व अहल्ललल्लाहुल्बैअ़ व हर्रमर्रिबा त फ़ मन् जा'अहू

मौअ़िज़तुम्-मिर्रब्बिही फ़न्तहा फ़ लहू मा सलफ़ त व अम्रुहू इलल्लाहि त व

मन् आद फ़ उला'इक अस्ह़ाबुन्नारि ज हुम्

फ़ीहा ख़ालिदून (२७५) यम्ह़क़ुल्लाहुर्रिबा

व युर्बिस्सदक़ाति त वल्लाहु ला युह़िब्बु

कुल्ल कफ़्फ़ारिन् असीमिन् (२७६)

इन्नल्लज़ीन आमनू व अ़मिलुस्सालिहाति व

अक़ामुस्सलात व आतवुज़्ज़कात लहुम्

अज्रुहुम् अ़िन्द रब्बिहिम् ज व ला

ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह़्ज़नून

(२७७) या' अय्युहल्लज़ीन आमनुत्तक़ुल्लाह

वज़रू मा बक़िय मिनर्रिबा' इन्

कुन्तुम् मुअ्मिनीन (२७८) फ़ इल्लम्

تلك الرسل ٣ — ٣٧ — البقرة ٢

الشيطن من المس ذلك بانهم قالوا انما البيع مثل الربوا م
واحل الله البيع وحرم الربوا فمن جاءه موعظة من
ربه فانتهى فله ما سلف وامره الى الله ومن عاد فاولئك
اصحب النار هم فيها خلدون (٢٧٥) يمحق الله الربوا ويربي
الصدقت والله لا يحب كل كفار اثيم (٢٧٦) ان الذين امنوا و
عملوا الصلحت واقاموا الصلوة واتوا الزكوة لهم اجرهم
عند ربهم ولا خوف عليهم ولا هم يحزنون (٢٧٧) يايها الذين
امنوا اتقوا الله وذروا ما بقي من الربوا ان كنتم مؤمنين (٢٧٨)
فان لم تفعلوا فاذنوا بحرب من الله ورسوله وان تبتم
فلكم رءوس اموالكم لا تظلمون ولا تظلمون (٢٧٩) وان كان
ذو عسرة فنظرة الى ميسرة وان تصدقوا خير لكم ان كنتم
تعلمون (٢٨٠) واتقوا يوما ترجعون فيه الى الله ثم توفى كل
نفس ما كسبت وهم لا يظلمون (٢٨١) يايها الذين امنوا اذا
تداينتم بدين الى اجل مسمى فاكتبوه وليكتب بينكم
كاتب بالعدل ولا ياب كاتب ان يكتب كما علمه الله
فليكتب وليملل الذي عليه الحق وليتق الله ربه ولا
يبخس منه شيئا فان كان الذي عليه الحق سفيها او

منزل ١

तफ़्अ़लू फ़अ्ज़नू बि हर्बिम्-मिनल्लाहि व रसूलिही ज व इन् तुब्तुम् फ़ लकुम्

रुऊसु अम्वालिकुम् ज ला तज़्लिमून व ला तुज़्लमून (२७९) व इन्

कान ज़ू अ़ुस्रतिन् फ़ नज़िरतुन् इला मैसरतिन् त व अन् तसद्दक़ू ख़ैरुल्लकुम्

रु. ३८ / ६ आ ८ इन् कुन्तुम् तअ़्लमून (२८०) वत्तक़ू यौमन् तुर्जअ़ून फ़ीहि इलल्लाहि क़ क़िफ़

सुम्म तुवफ़्फ़ा कुल्लु नफ़्सिम्-मा कसबत् व हुम् ला युज़्लमून (२८१)

CC-0. Jammu Digital Preservation Foundation, Chandigarh

● व. लाज़िम

जो लोग सूद खाते रहते हैं[१०३] वह लोग न खड़े हो सकेंगे सिवा इसके कि जैसे वह खड़ा होता है
जिसे शैतान ने जुनून (उन्माद) से ख़ब्ती (पागल) बना दिया हो[१०४], यह (सज़ा) इसलिए होगी कि वह
कहते हैं[१०५] कि 'बैअ़' भी तो सूद ही की भाँति हैं[१०६]।● यद्यपि अल्लाह ने 'बैअ़' (ख़रीदना-बेचना)
को हलाल किया और सूद को हराम किया है[१०७]। फिर जिस किसी को नसीहत उसके परवरदिगार
की ओर से पहुँच गयी और वह बाज़ आ गया तो जो कुछ पहले हो चुका वह उसका हो चुका[१०८]।
और उसका मामला अल्लाह के हवाले रहा[१०९] और जो कोई फिर औद करे (यानी दुबारा सूद
लेना शुरू कर दे) तो यही लोग दोज़ख़वाले हैं, उसमें वह हमेशा पड़े रहेंगे[११०]। (२७५) अल्लाह
सूद को मिटाता है और सदक़ों को बढ़ाता हैं[१११]। और अल्लाह पसन्द नहीं करता किसी कठोर
काफ़िर पापी को[११२]। (२७६) बेशक जो लोग ईमान लाये और उन्होंने नेक अमल किये और
नमाज़ की पाबन्दी की और ज़कात दी, उनके लिए उनका बदला उनके परवरदिगार के पास है;
न उन पर कोई ख़ौफ़ होगा और न वह रंजीदा होंगे[११३]। (२७७) ऐ ईमानवालो! अल्लाह से डरो,
और जो कुछ सूद का बक़ाया है उसे छोड़ दो अगर तुम ईमानवाले हो[११४]। (२७८) परन्तु
तुमने ऐसा न किया तो ख़बरदार हो जाओ जंग के लिए अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ से[११५];
और अगर तौबः कर लोगे तो तुम्हारे अस्ल धन तुम्हारे ही हैं[११६]। न तुम (किसी पर) अत्याचार
करोगे और न तुम पर (किसी का) अत्याचार होगा[११७]। (२७९) और अगर ग़रीब है तो
उसके लिए सुखी होने तक मुहलत है[११८]। और अगर माफ़ कर दो तो तुम्हारे हक़ में (और)
बेहतर है अगर तुम जानकारी रखते हो[११९]। (२८०) और उस दिन से डरते रहो जिसमें
तुम सब अल्लाह की ओर लौटाये जाओगे[१२०]। फिर हर व्यक्ति को उसका पूरा-पूरा बदला
मिलेगा और उन पर ज़ुल्म ज़रा भी न होगा[१२१]। (२८१) ★

★ रु. ३८/६ आ ८

१०३ (उसे जाइज़ क़रार देकर) **'याकुलूनर्रिबा'** मुहावरे में इससे मुराद सूद लेना है चाहे वह किसी ख़र्च में लाया जाए, केवल खाना अर्थ नहीं है। उर्दू मुहावरे में भी 'सूदख़ोरी' आम है केवल 'खाने' तक सीमित नहीं है। **'अर्रिबा'**— 'रिबा' के शब्दकोश में मानी हैं ज़्यादती या इज़ाफ़ा, विशेषतः धन में इज़ाफ़ा। शरीअत की परिभाषा में 'रिबा' कहते हैं अस्ल क़र्ज़ा पर ज़्यादा को, या बिना बदले का माल। माल पर ज़्यादती हो चाहे बड़ी या छोटी। अरबवाले इस शब्द को अधिक रक़म के लिए प्रयोग करते थे, जो क़र्ज़दार अपने क़र्ज़ देनेवाले को मुहलत के बदले में देता था, उर्दू में इसी का अनुवाद 'सूद' है जिसका अर्थ हर शख़्स जानता है। यह आयत उन आम गुनाहगारों के लिए नहीं है जो सूद खाने का गुनाह करते रहते हैं, बल्कि उन लोगों के हक़ में है जो सिरे से 'रिबा' के हराम होने के इन्कारी हैं, जैसा कि चन्द शब्दों के बाद इसी आयत के अन्दर उनका क़ौल नक़्ल हुआ है कि 'बैअ़' भी तो सूद ही की भाँति है।

१०४ अस्ल दृश्य तो यह क़ियामत के दिन का है कि आख़िरत में अपनी क़ब्रों से उठने पर यह सूद खानेवाले सीधे खड़े तक न हो सकेंगे। खड़े होंगे तो मतवालों और पागलों की भाँति गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते हुए। परन्तु इसका एक हलका-सा रंग इसी दुनिया में दिखायी दे जाता है। महाजन साहूकार, जो रुपये के पीछे दीवाना और बावला रहता है, वास्तव में ऐसा रहता है कि जैसे उसको जिन या भूत चिपट गया हो। उठते-बैठते, चलते-फिरते उस पर सूद या ब्याज ही सवार रहता है और जिसकी लालच और तमा की प्यास दुनिया में इतनी बढ़ी होती है ज़ाहिर है कि उसका अंजाम भी पागलों-दीवानों के साथ होना है। सूफ़ियों और शोधकों का बयान है कि क़ियामत में इन्सान उसी सूरत के साथ उठेगा, जिस प्रकार का चरित्र और आदतें दुनिया में उस पर हावी रही होंगी। **'मिनल्मस्स'**— 'मस' और 'मस्से शैतानी' से मुराद अरबी मुहावरे में 'जुनून' होता है। इन शब्दों के आ जाने से यह लाज़िम नहीं आता कि क़ुर्आन मजीद स्वयं भी इस विश्वास की शिक्षा दे रहा है कि जुनून (पागलपन) शैतान के छू जाने से पैदा होता है, बल्कि क़ुर्आन बाज़ दफ़ा ऐसे अवसरों पर केवल उन लोगों के अक़ीदों को दोहरा देता है, जो सम्बोधित होते हैं, और चूँकि अरब के लोगों का अक़ीदा यही था इसलिए हो सकता है कि क़ुर्आन उन्हीं की मुनासिबत और मिज़ाज के अनुसार यह फ़िक़्रा ले आया हो। यह भी

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३११ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३११ से)

फिर तिजारती मामला तो समय से समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत मुद्दत और मुहलत के साथ-साथ सूद खानेवाले की माँग और उसका योग बढ़ता चला जाता है यहाँ तक कि अक्सर दफ़ा क़र्ज़दार तबाह और बरबाद हो जाता है। इमाम राज़ी ने तफ़्सीरे कबीर में सूद के हराम होने के जो बौद्धिक तर्क दिए हैं, वह बयान करने की शैली और मिसालों की मामूली तब्दीली के बाद आज भी पढने के क़ाबिल हैं। इमाम राज़ी ने प्रथम नम्बर पर यह बिलकुल सही लिखा है कि सूद का धन आखिर किस चीज़ का बदला होता है? सिवाय मुफ़्त खाने की सबसे खराब शक्ल के और यह क्या है?

१०७ (और मालूम है कि अल्लाह वह है जो शरीअतों और आदेशों का मालिक और हकीम भी है और हाकिम भी।) जब उस सबसे बड़े हकीम ने एक मामले को जाइज़ और दूसरे को हराम ठहरा दिया है, तो इसके मानी ही यह हैं कि जाइज़ के अन्दर अनगिनत मुनाफ़ा और मस्लहतें हैं और हराम के अन्दर अनेक बुराइयाँ और हानियाँ हैं और यदि मान लिया जाए कि किसी की समझ में यह मस्लहतें और बुराइयाँ न आएँ तब भी अल्लाह का हुक्म मानना तो आवश्यक ही है। इस्लाम के जो एहसानात सारी दुनिया पर बहुत रौशन और प्रदर्शित हैं, उनमें से एक सूद का हराम होना भी है। इसकी बुराइयाँ सब पर ज़ाहिर हो चुकी हैं। इससे सब तंग आ चुके थे, परन्तु क़तई और सामूहिक रूप में उसे दुनिया के नियमों तथा शरीअतों में सबसे पहले इस्लाम ने ही हराम क़रार दिया। सूद खानेवाले के दिल में कठोरता, संगदिली, माल का लालच और बिना परिश्रम माल हाथ आ जाने से उसकी आत्मा में कमीनगी और धन की पूजा और साहूकारों की कंजूसी, आपसी जलन, शत्रुता और क़र्ज़दार की बेइज़्ज़ती —यह घटनाएँ और वाक़िआत तो बड़ी पुरानी चीज़ें हैं, परन्तु इसे क़तई बन्द कर देने का खयाल किसी मानव-मस्तिष्क में नहीं आया। सुधार की जो कोशिशें अधिक से अधिक हुईं, वह बस सूद की दर के विषय में सीमा नियत करना था। यूनान में सोलन, इंग्लैण्ड में बेकन और योरोप में कलीसाओं के पोपों ने जो जनहित में सुधार का जोश दिखाया, उसकी कुल हद यही है। यह गौरव क़ियामत तक के लिए अरब के बे-पढ़े नबी (स०) के साथ विशेषता रखता रहेगा कि मानव को हत्यारी रस्म की हराम होने की घोषणा उसकी ज़बान से करायी गयी और 'हर्रमर्रिबा' का भूकम्प लानेवाला नारा उसके मुख से बलन्द कराया गया।

१०८ (और वह उस खाये हुए निवाले को उगलने पर मजबूर नहीं।) **'मौअिज़तुम् मिर्रब्बिही'**— यानी सूद के हराम होने का आदेश। **'फ़न्तहा'**— यानी वह बाज़ आ गया सूद लेने और उसे जाइज़ ठहराने से। **'फ़ लहू मा सलफ़'**— यानी इसी सूद के हराम होने के आदेश से पहले जो कुछ वह ले चुका, तौबा के बाद, उसके लिए गुंजाइश है कि उस माल को अपने पास रहने दे। पिछली रक़मों की वापसी पर शरीअते इस्लामी ने मजबूर नहीं किया है।

१०९ (जो दिलों के भेदों और राज़ों का जाननेवाला है।) उद्देश्य यह है कि यहाँ बयान बन्दों के सामने मामले के केवल ज़ाहिरी और क़ानूनी पहलुओं का हो रहा है, बाक़ी दिलों के तक़्वा और तिहारत (पवित्रता) और नफ़्स (आत्मा) के सुधार का मामला अल्लाह पर छोड़ना चाहिए। **'अम्रुहू'** में सर्वनाम बाज़ रहनेवाले की ओर है।

११० यानी जो कोई इस शिक्षा और जानकारी के बाद भी सूद के जाइज़ होने के विश्वास पर बना रहे या सूदी मामला करता रहे। **'अुला'अिक असहाबुन्नारि'**— यह सज़ा है सूदी मामला करनेवालों की। सूद का मामला गुनाहे कबीरा (बड़ा गुनाह) और गुनाहे कबीरा की सज़ा जहन्नम है। **'हुम् फ़ीहा खालिदून'**— यह सज़ा है सूद को जाइज़ माननेवालों की सूद को जाइज़ मानने का अक़ीदः कुफ़्र है और कुफ़्र की सज़ा जहन्नम में प्रवेश है। मोतज़िला (एक फ़िरक़ा) ने आयत के इतने भाग से गुनाहगार मोमिन की मग़्फ़िरत (माफ़ी) के होने पर बहस की है, परन्तु तफ़्सीर का जो पहलू यहाँ पर अपनाया गया, उस पर यह प्रश्न लागू ही नहीं होता। इमाम राज़ी ने भी 'तफ़्सीरे कबीर' में इस मुक़ाम पर खूब व्याख्या दी है।

१११ आखिरत में तो इस वादे और तम्बीह दोनों को पूरी तरह देखा जा सकेगा। सूद में बरकत और अच्छाई नाम मात्र को भी न दिखायी देगी और सदक़ों का लाभ बे-हिसाब मिलेगा। दुनिया में भी इसको किसी न किसी हद तक देखा जा सकता है। सूद खानेवाली क़ौमों का अंजाम बारहा आपस का रक्तपात और तबाही तथा बरबादी ही पर हुआ है। और व्यक्तियों में भी देखने में आता है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि सूद खाने की आदत बनियों, महाजनों के दिलों में रुपये को स्वयं को प्यारा बना देती है, नतीजा यह होता है कि सूद खानेवाला धन-दौलत से दुनियावी आनन्द नहीं भोग पाता ! उसके मुक़ाबले में सदक़े की बरकतें, मज़हबी सहानुभूति, एक-दूसरे की सहायता, क़ौम और व्यक्तियों दोनों में देखने की चीज़ें हैं। बैंकों के टूटने, महाजनों और बनियों के दीवाला निकलते रहने और फिर उससे हज़ारों घरों की तबाही और बरबादी किसने नहीं देखी है। समाज की इस खराबी का राज़ यही सूदी कारोबार का प्रचलित करना है।

११२ इसके भीतर दोनों प्रकार के नाफ़र्मान आ गये। वह, जो सूद का कारोबार करते हैं, और वह, जो अपने अमल के साथ सूद के हराम होने के अक़ीदे से इनकार करते हैं। **'कफ़्फ़ार'**— काफ़िर के मुबालग़े का सीग़ः है— नाशुक्रे और नेमतों की नाक़दरी करनेवाले और इससे भी अधिक। यहाँ वह लोग मुराद हैं जो सूद को जाइज़ समझते हैं। उर्दू मुहावरे में काफ़िर के अर्थ को और ज़ोरदार बनाने के लिए कट्टर काफ़िर बोलते हैं। **'असीम'**— बड़े गुनहगार यानी सूदखोरी जैसी शदीद मासियत यानी गुनाह में लीन। **'कफ़्फ़ार'**— के शाब्दिक अर्थ बड़े नाशुक्र के हैं। जिस शख्स पर अल्लाह इतनी मेहरबानी करे कि उसे उसकी अपनी आवश्यकताओं से अधिक माल दे और उस माल को बन्दों को तक्लीफ़ देने पर व्यय करे तो उससे बढ़कर ग़लत प्रयोग या दुरुपयोग की मिसाल अल्लाह की मेहरबानी का और क्या होगा ? ऐसे अभागे से बढ़कर नाशुक्रा और कौन होगा ?

११३ (क़ियामत में) आख़िरत में तो ऐसे नेक चरित्रवान्, मुत्तक़ी, संयमी, ख़ुदा से डरनेवाले मनुष्यों के अच्छे अंजाम का होना तो ज़ाहिर ही है। लेकिन दुनिया में भी जो आत्मशान्ति, एकसूई और सन्तोष का आनन्द ऐसे लोगों का प्राप्त रहता है, उनका अन्दाज़ा वह अभागा कर ही नहीं सकता जो चौबीस घण्टे आने-पाई का योग करता रहता है। जो जन-मानस को दुःख देने का आदी होकर पैसा गिनता रहता है और जिस पर हर घड़ी बही-खाते का भूत सवार रहता है। नमाज़ और ज़कात दो इबादत अपनी-अपनी क़िस्मों में सबसे बढ़कर हैं।

११४ (क्यों ईमान का तक़ाज़ा यही है कि क़ुर्आन के सारे आदेशों पर अमल किया जाए।) शोधकर्ताओं ने यह तर्क दिया है कि शरीअत के किसी भाग से इनकार करना सारी शरीअत से इनकार करना है। **'अित्तक़ुल्लाह'**— अल्लाह का डर ही तमाम नेकियों की जड़ है और गुनाहों से बचाव की भी। **'वज़रू मा बक़िय'** यानी सूद के हराम होने के आदेश से पूर्व जो रक़म सूद की तुम ठहरा चुके हो उसका वसूल करना अब जाइज़ नहीं। इसे छोड़ दो।

११५ यानी तुम पर बाग़ियों और मुर्तदों की भाँति जिहाद किया जाएगा। इतनी कड़ी चेतावनी क़ुर्आन मजीद में किसी दूसरी मासियत (गुनाह) के लिए नहीं आयी है। **'अल्अज़्मत् लिल्लाह'**— सूद के हराम करने की किस दर्जा व्यवस्था की गयी है और इस विषय में कितने सख्त आदेश हैं। इसके बाद कुछ हद है इस ढिठाई और साहस की कि अपने को मुसलमान कहलाकर रिसालें सूद के जाइज़ होने पर प्रकाशित किये जाएँ और अपनी तक़रीर और लेखों से लोगों को सूदी कारोबार का शौक़ दिलाया जाए। हज़रत उमर जैसे बड़े सहाबी रसूल से यह जो मनक़ूल है कि सूद को भी छोड़ दो और उससे मिलती-जुलती चीज़ों को भी, वह इसी क़ुर्आनी चेतावनी का क़ुदरती परिणाम है। जब जिस्मानी बीमारी का यह हाल है कि किसी रोग को डॉक्टर अगर सख्त रोगों से मिलता-जुलता पाता है, और सुरक्षा को सामने रखकर इलाज उस सख्त मरज़ का शुरू कर देता है, तो जो मुसलमान तक़्वा का न्यूनतम दर्जा भी रखता है उस पर भी ज़रूरी है कि न केवल खुले हुए सूद से बचे, बल्कि ऐसे माली कारोबार से भी बचे और एहतियात करे जिनका सूदी होना क़तई नहीं केवल सन्देहजनक है। **'अल्लम् तफ़्अल'**— यानी अगर सूद के हराम होने के हुक्म पर अमल न करोगे।

११६ यानी इस्लामी शासन तुम्हारा अस्ल सरमायः (पूंजी) तुम्हें वापस दिला देगा और अगर तौबा न करोगे तो अस्ल इस्लामी प्रशासन ज़ब्त कर लेगा। **'अिन्तुब्तुम्'**— यानी अगर सूदखोरी के गुनास से तौबा कर लोगे।

११७ यहाँ इस्लामी शरीअत की एक सम्पूर्ण सच्चाई बयान कर दी है कि तुम न किसी पर ज़्यादती करो और न कोई तुम पर ज़्यादती करे। **'ला तज़्लिमून'**— ज़ालिम बनने की सूरत तो यह है कि कोई रक़म क़र्ज़ दी और वसूल करते समय अस्ल से ज़्यादा वसूल कर लिया। यानी सूद लेना। **'ला तुज़्लमून'**— मज़्लूम बनने की सूरत यह है कि जितनी रक़म क़र्ज़ ली थी, अब अदा करना उससे अधिक का पड़ रहा है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३१८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या' अय्युहल्लज़ीन आमनू' अिज़ा तदायन्तुम् बि दैनित् अिला' अजलिम्मुसम्मन्
फ़क्तुबूहु त वल्यक्तुब् बैनकुम् कातिबुम्-बिल्अद्लि त व ला यअ्ब कातिबुन्
अंय्यक्तुब कमा अ़ल्लमहुल्लाहु फ़ल्यक्तुब् ज वल्युम्लिलिल्लज़ी अ़लैहिल्हक़्क़ु
वल्यत्तक़िल्लाह रब्बहू व ला यब्ख़स् मिन्हु शैअन् त फ़ अिन् कानल्लज़ी
अ़लैहिल्हक़्क़ु सफ़ीहन् औ ज़अ़ीफ़न् औ
ला यस्ततीअ़ु अंय्युमिल्ल हुव फ़ल्युम्लिल्-
वलिय्युहू बिल्अद्लि त वस्तश्हिदू शहीदैनि
मिर्रिजालिकुम् ज फ़ अिल्लम् यकूना रजुलैनि
फ़ रजुलुंव्वम्रअतानि मिम्मन् तर्ज़ौन
मिनश्शुहदा'अि अन् तज़िल्ल अिह्दाहुमा
फ़ तुज़क्किर अिह्दाहुमल्-उख़्रा त व ला
यअ्बश्शुहदा'उ अिज़ा मा दुअ़ू त व ला
तस्अमू' अन् तक्तुबूहु सग़ीरन् औ कबीरन्
अिला' अजलिही त ज़ालिकुम् अक़्सतु
अ़िन्दल्लाहि व अक़्वमु लिश्शहादति व
अद्ना' अल्ला तर्ताबू' अिल्ला' अन् तकून
तिजारतन् हाज़िरतन् तुदीरूनहा बैनकुम्

البقرة ٢ — ٣٨ — تلك الرسل ٣

ضَعِيفًا اَوْ لَا يَسْتَطِيعُ اَنْ يُّمِلَّ هُوَ فَلْيُمْلِلْ وَلِيُّهٗ بِالْعَدْلِ ؕ وَ
اسْتَشْهِدُوْا شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْ ۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا رَجُلَيْنِ
فَرَجُلٌ وَّامْرَاَتٰنِ مِمَّنْ تَرْضَوْنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنْ تَضِلَّ
اِحْدٰىهُمَا فَتُذَكِّرَ اِحْدٰىهُمَا الْاُخْرٰى ؕ وَلَا يَاْبَ الشُّهَدَآءُ اِذَا مَا
دُعُوْا ؕ وَلَا تَسْـَٔمُوْٓا اَنْ تَكْتُبُوْهُ صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا اِلٰٓى اَجَلِهٖ ؕ ذٰلِكُمْ
اَقْسَطُ عِنْدَ اللّٰهِ وَاَقْوَمُ لِلشَّهَادَةِ وَاَدْنٰٓى اَلَّا تَرْتَابُوْٓا اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ
تِجَارَةً حَاضِرَةً تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَلَّا
تَكْتُبُوْهَا ؕ وَاَشْهِدُوْٓا اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۪ وَلَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّلَا شَهِيْدٌ ۬
وَاِنْ تَفْعَلُوْا فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ؕ وَاللّٰهُ
بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ﴿۲۸۲﴾ وَاِنْ كُنْتُمْ عَلٰى سَفَرٍ وَّلَمْ تَجِدُوْا كَاتِبًا فَرِهٰنٌ
مَّقْبُوْضَةٌ ؕ فَاِنْ اَمِنَ بَعْضُكُمْ بَعْضًا فَلْيُؤَدِّ الَّذِى اؤْتُمِنَ اَمَانَتَهٗ
وَلْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ؕ وَلَا تَكْتُمُوا الشَّهَادَةَ ؕ وَمَنْ يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗٓ اٰثِمٌ
قَلْبُهٗ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿۲۸۳﴾ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَمَا فِى ع
الْاَرْضِ ؕ وَاِنْ تُبْدُوْا مَا فِىْٓ اَنْفُسِكُمْ اَوْ تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ؕ
فَيَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَآءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ
قَدِيْرٌ ﴿۲۸۴﴾ اٰمَنَ الرَّسُوْلُ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ وَالْمُؤْمِنُوْنَ ؕ
كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ ۟ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ

منزل ١

फ़ लैस अ़लैकुम् जुनाहुन् अल्ला तक्तुबूहा त व अश्हिदू' अिज़ा तबायऽतुम् त
व ला युज़ार्र कातिबुंव्व ला शहीदुन् त ∿ व अिन् तफ़्अ़लू फ़ अिन्नहू
फ़ुसूक़ुम्बिकुम् त वत्तक़ुल्लाह त व युअ़ल्लिमुकुमुल्लाहु त वल्लाहु बि कुल्लि शैअिन्
अ़लीमुन् (२८२) व अिन् कुन्तुम् अ़ला सफ़रिंव्वलम् तजिदू कातिबन्
फ़रिहानुम् - मक़्बूज़तुन् त फ़ अिन् अमिन बऽज़ुकुम् बऽज़न् फ़ल्युअद्दिल्लज़िअ्-
तुमिन अमानतहू वल्यत्तक़िल्लाह रब्बहू त व ला तक्तुमुश्शहादत त व
मंय्यक्तुम्हा फ़ अिन्नहू' आसिमुन् क़ल्बुहू त वल्लाहु बिमा तऽमलून अ़लीमुन्
★ रु. ३९/७ आ २ (२८३) ★ लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि त व अिन् तुब्दू
मा फ़ी' अन्फ़ुसिकुम् औ तुख़्फ़ूहु युहासिब्कुम् बिहिल्लाहु त फ़यग़्फ़िरु लिमंय्यशा'उ
व युअ़ज़्ज़िबु मंय्यशा'उ त वल्लाहु अ़ला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन् (२८४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! जब उधार का मामला किसी नियत समय तक करने लगो तो उसको लिख लिया करो[१२२]। और आवश्यक है कि तुम्हारे बीच लिखनेवाला ठीक-ठीक लिखे; और लिखने वाला लिखने से इन्कार न करे, जैसा कि अल्लाह् ने उसको सिखा दिया है[१२३] पस चाहिए कि वह लिख दे। और चाहिए कि वह शख़्स लिखवाये जिसके ज़िम्मे हक़ वाजिब है[१२४]। और चाहिए कि वह अपने परवरदिगार अल्लाह् से डरता रहे और उसमें से कुछ भी कम न करे[१२५]। फिर अगर वह, जिसके ज़िम्मे हक़ वाजिब है, थोड़ी बुद्धि का हो या कमज़ोर हो और इस योग्य न हो[१२६] कि वह स्वयं लिखवा सके[१२७] तो लाज़िम है कि उसका कारकुन (मुख़्तार) ठीक-ठीक लिखवा दे[१२८]। और अपने पुरुषों में से दो को गवाह कर लिया करो[१२९]। फिर यदि दोनों पुरुष न हों तो एक पुरुष और दो स्त्रियाँ उन गवाहों में से जिन्हें पसन्द करते हो[१३०], ताकि उन दो औरतों में से एक दूसरी को याद दिला दे अगर कोई उन दो में से भूल जाए[१३१] और गवाह जब बुलाये जायँ तो इन्कार न करें[१३२]। और इस मामले को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो, उसकी मीआद तक लिखने में सुस्ती न हो। यह (लिखाई) अल्लाह् के निकट अधिक न्याय के निकट है और गवाही को ज़्यादा ठीक रखनेवाली है, और ज़्यादा निकट इससे कि तुम सन्देह में न पड़ो[१३३]। लेकिन अगर कोई सौदा हाथों-हाथ का हो जिसे तुम परस्पर लेते ही रहते हो, सो तुम पर उसमें कोई दोष नहीं कि तुम न उसे लिखो[१३४]। और जब ख़रीद व फ़रोख़्त करते हो (तब भी) गवाह कर लिया करो[१३५]। और किसी लिखनेवाले या गवाह को हानि न पहुँचाई जाए[१३६]। और यदि ऐसा करोगे तो यह तुम्हारे हक़ में एक गुनाह (शुमार) होगा (गिना जाएगा)[१३७]। और अल्लाह् से डरते रहो[१३८]। और अल्लाह् तुम्हें सिखाता है[१३९]। और अल्लाह् हर चीज़ का बड़ा जाननेवाला है[१४०]। (२८२) और अगर तुम यात्रा पर हो और कोई लिखनेवाला न पाओ[१४१] तो रेहन रखने की चीज़ें ही क़ब्ज़े में दे दी जाएँ[१४२]। और तुममें से अगर कोई किसी पर एतबार रखता है[१४३] तो जिसका एतबार किया गया है उसे चाहिए कि दूसरे की अमानत का हक़ अदा कर दे और चाहिए कि अल्लाह् (यानी) अपने परवरदिगार से डरता रहे[१४४]। और गवाही को मत छुपाओ। और जो कोई उसे छुपाएगा उसका क़ल्ब (आत्मा) गुनाहगार होगा[१४५]। और जो कुछ भी तुम करते हो, अल्लाह् उसका बड़ा जाननेवाला है[१४६]। (२८३) ★

★ रु. ३६ — ७ आ २

अल्लाह् की ही सम्पत्ति जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है[१४७]। और जो कुछ तुम्हारे आत्माओं के भीतर है अगर तुम उसको ज़ाहिर कर दो[१४८] या उसे छुपाये रखो, बहरहाल अल्लाह् उसका हिसाब तुमसे लेगा[१४९]; फिर जिसे चाहे बख़्श देगा[१५०] और जिसे चाहे अज़ाब देगा[१५१]। और अल्लाह् हर चीज़ पर क़ुद्रत रखनेवाला है[१५२]। (२८४)

---

१२२ (और इस साफ़-साफ़ लिखा-पढ़ी को न बे-इतबारी एवं अविश्वास की दलील समझो और न इसमें शरमाओ।) **'दैन'**— दैन का शब्द बड़े विशाल अर्थ रखता है। अरबी में यह ऐन (ठीक) के मुक़ाबले में है और यह उस मामले पर लागू होता है जिसके बदले का एक भाग तुरन्त अदा न हो। **'तदायन्तुम् बि दैनिन्'**— 'दैन' या 'उधार' मामले की दो सूरतें हैं। एक यह कि चीज़ अभी ख़रीदी और मूल्य के लिए यह निश्चित हुआ कि इतनी मुद्दत में देंगे। दूसरी यह कि उसी समय क़ीमत चुका दें और चीज़ के लिए तय हो जाए कि इतने समय के बाद लेंगे। शर्अ में दोनों सूरतें जाइज़ हैं। विवरण फ़िक़्ह की पुस्तकों में मिलेगा। **'तदायन्तुम्'** के बाद **'दैन'** ताकीद के लिए आया। **'इला' अजलिम्-मुसम्मन्'**— तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इससे यह संकेत समझा है कि क़र्ज़े के मामलों में समय बिलकुल स्पष्ट और नियत होना चाहिए, गोल और अस्पष्ट न होना चाहिए। "जाड़ों के ज़माने में", "वर्षा के मौसम में", "रबी की फ़सल में" इन भ्रामक मुद्दतों के बजाय नियत और विवरण होना चाहिए कि अमुक सन् की अमुक महीने की अमुक तिथि। इब्नुल् अरबी फ़क़ीह ने, जो मालिकी हैं, इस एक आयत के अन्तर्गत ५२ मसले लिखे हैं और लिखा है कि आयत "बैअ़" के मसलों में सबसे अहम आयत है। क़रतबी ने भी इतने मसले इसके अन्तर्गत अंकित किए हैं। **'फ़क्तुबूहु'** यानी क़र्ज़े की मात्रा को भी और अदायगी की मुद्दत दोनों को

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३१८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३१५ से)

११८ यानी क़र्ज़दार अगर वक़्त पर ग़रीब है, तो उसे उस समय तक के लिए मुहलत दे दी जाए जब तक वह अदा करने के क़ाबिल हो जाए।

११९ (कि एहसान और अच्छे व्योहार पर कितने बड़े बदले का वादा है।) **'अन् तसद्दक़्'**— यानी बहुत ग़रीब क़र्ज़दारों को अपना क़र्ज़ा बिलकुल माफ कर दो। इस्लामी अक़ीदों की तरह इस्लामी क़ानून की भी पूरी क़द्र उस समय होती है, जब उनके मुक़ाबले में अपने को सभ्य और प्रगतिशील कहनेवाली क़ौमों की क़ानूनी बातों को सामने रखा जाए। खुद इस क़र्ज़ के मामले में दूसरी क़ौमों के क़ानून क़र्ज़दारों के हक़ में शुरू से अन्त तक ज़ालिमाना हैं। रूमी कानून या "Roman Law" में क़र्ज़दारों को क़त्ल तक किया जा सकता था। और रूमी इतिहास में क़र्ज़दारों को सताने और उन पर अत्याचार करने से बहुत दफ़ा भारी बल्वों की नौबत तक आ गयी है। इस्लामी आर्थिक व्यवस्था का आधार भौतिकवाद से कहीं अधिक मानवता, आत्मीयता और अल्लाह के 'तक़्वा' पर है और उसकी यह विशेषता उसे दुनिया की नयी-पुरानी सभी आर्थिक व्यवस्था पर बड़ाई दिए हुए है।

१२० (अपने-अपने आमाल की पेशी के लिए) मुराद क़ियामत के दिन से है। मौत का दिन भी इससे मुराद लिया गया है। यहाँ मानव-जाति से सम्बोधन है।

१२१ (कि किसी का नेक अमल बिना बदले के रह जाए या किसी अमलनामें में अनायास बदी लिख दी जाए।) **'तुवफ़्फ़ा मा कसबत्'**— यानी आमाल का पूरा-पूरा बदला दिया जाएगा। **'मा कसबत्'**— में पूरा-पूरा अर्थ इख़्तियारी कर्मों का आ गया और उसी के साथ उस फ़िरक़े का खण्डन भी हो गया जो यह मानता है कि मानव विवश है और क़ुद्रत जो उससे चाहती है वही वह करता है। अनेकों ताबेईन का यह कहना है कि क़ुर्आन मजीद की यही आयत सबसे आख़िर में उतरी है और हुज़ूर (सल्लअम) इसके शीघ्र बाद ही वफ़ात पा गये। विवरण क़रतबी इत्यादि में मिलेगा।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३१७ से)

लिख लो। साधारण सूफ़ी और जाहिल मशाइख़ (पीर लोगों) ने जो यह समझ रखा है कि मामलों और समाज के सुधार और शुद्धि अल्लाह के रास्ते पर चलने और उसकी विधियों के विपरीत है वह ध्यान दें कि क़ुर्आन इस विषय में कितनी व्यवस्था करना चाहता है। वह उसके छोटे से छोटे अंशों तक को नियमित करना आवश्यक जानता है।

१२३ आपसी लेन-देन और क़ानूनी मामलों के विषय में छोटी-छोटी बातों तक के लिए शरीअत की यह व्यवस्था। अल्लाह! अल्लाह! विश्वव्यापी हिदायत और पथप्रदर्शन का अधिकार यदि किसी किताब को पहुँचता है, तो निःसन्देह वह यही किताब है। कहाँ एक ओर यह मुकम्मल जीवन-विधान और विवरण-सहित जीवन-व्यवस्था और कहाँ इसकी अपेक्षा 'इन्जील' जिसके पृष्ठ क़ानून और नियमों की मोटी-मोटी हिदायतों एवं निर्देशों से ख़ाली हैं। **'कमा अल्लमहुल्लाहु'** अल्लाह की तालीम का अर्थ है कि केवल लिखने की कला नहीं, बल्कि शरीअत के सारे ज्ञान और फ़िक़्ह की सारी बातों की शिक्षा। **'बिल्अद्लि'** यानी किसी पक्ष के प्रभाव में आए बिना, किसी की रू-रिआयत किए बग़ैर लिखे। फ़क़ीहों ने यहाँ से भी यह निष्कर्ष लिया है कि लिखनेवाले का दीनदार होना और लिखने की शर्तों का ज्ञाता होना चाहिए और दोनों पक्षों के लिए आवश्यक है कि ऐसे ही लिखनेवाले का तलाश करें। **'ला यअब कातिब'**— फ़क़ीहों ने कहा है कि लिखनेवाले को अपनी उज्रत लेना जाइज़ है। आयत में कातिब (लिखनेवाले) के लिखने से इनकार की खुली हुई मनाही है।

१२४ दस्तावेज़ का सारांश किसी हक़ का अपनी ओर मानना है। यह स्वाभाविक रूप में उसी को करना चाहिए, जिसके ज़िम्मे कोई हक़ अदा करना आवश्यक हो। **'वल्युम्लिल्'** यानी दस्तावेज़ को लिखाना।

१२५ यानी जो हक़ और जिस प्रकार तथा जितना उस पर वाजिब है उसमें से दस्तावेज़ लिखनेवाले को बतलाए और लिखाते समय कुछ भी कतर-ब्योंत न करें। **'वल्यत्तक़िल्लाह रब्बहू'**— ख़ुदा का ख़ौफ़ तो मुसलमान की ज़िन्दगी का अंश है और जीवन भर उसे रहना चाहिए। दस्तावेज़ लिखाते समय इसकी ताकीद और याददेहानी की हिकमतें और मस्लहतें बिलकुल स्पष्ट हैं।

१२६ और यह अभी ऊपर गुज़र चुका है कि दस्तावेज़ लिखानेवाला वही होना चाहिए। **'सफ़ीहन्'**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह अर्थ नहीं कि पागल हो, बल्कि केवल कमज़ोर बुद्धि का मुराद है। **'ज़ओफ़'**— यहाँ एक पूर्ण अर्थ का शब्द है— नाबालिग़ और कमज़ोर बूढ़ा सब इसके अन्दर आते हैं।

१२७ (किसी और मजबूरी या रुकावट होने से) जैसे कि गूँगा हो, परदेसी हो या देश की भाषा से अपरिचित हो।

१२८ (ऐसी हर सूरत में उसकी तरफ़ से ठीक-ठीक) **'वलिय्युहू'**— का अर्थ है शरई वली या वकील या मुख़्तार (या परदेसी के लिए अनुवादक), मक़्सद यह है कि कोई भी ऐसी स्थिति पड़ जाए कि मामला करनेवाले बयान और इक़रार विश्वसनीय न रह जाए तो उसके कारकुन के बयान तथा इक़रार का विश्वास किया जाए।

१२९ (जो बुद्धिमान, बालिग़, आज़ाद और धार्मिक हों।) **'मिर्रिजालिकुम्'**—इस विवरण के पश्चात् काफ़िरों के अलावा, मुसलमान बच्चे और स्त्रियाँ और ग़ुलाम गवाहों के दायरे से पृथक् हो गये। ग़ैर-मुस्लिमों की गवाही ग़ैरमुस्लिमों के हक़ में और उनके मामलों में मानी जा सकती है, यद्यपि उनके दीन एक-दूसरे से भिन्न हों। **'वस्तश्हिदू'**— गवाहों की यह गवाही लेख एवं दस्तावेज़ के अलावा होनी चाहिए। फ़क़ीहों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अस्ल मदार सुबूत नहीं, गवाहों की गवाही होगी।

१३० (यानी जो तुम्हारे नज़्दीक क़ाबिल-एतबार एवं विश्वसनीय हों।) **'फ़ इल्लम् यकूना रजुलैनि'**— यानी दो मर्द गवाही के लिए यदि न मिल पायें। **'रजुलुंव्वम्रअतानि'**— यहूदी क़ानून में गवाही केवल दो पुरुषों की विश्वसनीय है। स्त्री की गवाही सिरे से अमान्य है। इस्लाम ने उसे यह हक़ तो दिया है, परन्तु साथ ही अपने सम्पूर्ण ज्ञान और मुकम्मल तहक़ीक़ के आधार पर स्त्री की गवाही का मर्तबा मर्द की अपेक्षा आधा माना है। **'मिम्मन् तर्ज़ौन'** ईमानदारी, अन्तरात्मा, चरित्र और आचरण का एक विशेष स्तर इस्लाम ने ज़िन्दगी के छोटे-बड़े हर समाजी अनुभाग के दूरस्थ कोण में भी क़ायम रखा है। अतः यहाँ यह प्रतिबन्ध लगाकर साफ़ बता दिया कि गवाही भी एक विशेष सम्मान एवं आदर है। हर जन साधारण इसका अधिकारी नहीं है। इसके अधिकारी एवं योग्य वही हैं, जिनके चरित्र एवं आचरण पर इस्लामी समाज सन्तुष्ट हो और जिनकी ईमानदारी कम से कम आम तौर पर सन्देहजनक न हो। फ़िक़्ह के दूसरे इमामों ने आयत से यह अर्थ निकाला है कि गवाहों की न्यायपरायणता भी सिद्ध होनी चाहिए। परन्तु इमाम अबू हनीफ़ा का विचार है कि हर कलमा-गो, जब तक कि उसमें 'फ़िस्क़' (दुराचार) की कोई खुली हुई अलामत न हो, अच्छा ही समझा जायगा। **'मिम्मन् तर्ज़ौन'**— में सम्बोधन आम उम्मत से समझा गया है। बाज़ ने 'प्रशासक' मुराद लिया है।

१३१ (और इस प्रकार गवाही मुकम्मल हो जाए।) **'अन् तज़िल्ल'**— भूल जाए गवाही के किसी भाग को या घटना के किसी अंश को। रही यह बात कि औरत की गवाही मर्द के मुक़ाबले में कमज़ोर क्यों मानी गयी है और भूल की सम्भावना पुरुष की गवाही में क्यों नहीं रखी गयी? तो यह प्रश्न दीन और नैतिकता की दुनिया में बिलकुल ऐसे ही हैं, जैसे जिस्म और भौतिकता की दुनिया में यह पूछा जाए कि गर्भ और दूध पिलाने का सम्बन्ध केवल स्त्री ही से क्यों रखा गया और पुरुष को उसकी जसामत और शक्ति के बावजूद इस बोझ के सहन करने योग्य क्यों नहीं समझा गया? जो सृष्टि का रचयिता ज़ाहिर है कि भौतिकता और जिस्म के एक-एक कण से परिचित है, उसके समक्ष मस्तिष्क मनोविज्ञान और नैतिकता की भी बारीक से बारीक सच्चाइयां भी उपस्थित हैं। पश्चिम के स्त्रीलोक के विशेषज्ञ Hevelock Ellis ने तो यहाँ तक लिख दिया कि स्त्री के लिए धोखा और छल, फ़रेब एक प्राकृतिक मनोवृत्ति है। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित हो।)

१३२ (कि उसमें उम्मत के मामलों की सहायता है और दीन की सेवा है।) **'व ला यअबश्शुहदा' उ'**— यानी गवाह बनने और गवाही देने से इनकार न करें। आयत से दलील दी गयी है कि गवाही देना उम्मत के लिए 'फ़र्ज़े किफ़ायः' है। ('फ़र्ज़े किफ़ायः'— वह फ़र्ज़ जो एक आदमी के अदा करने से सबकी ओर से अदा हो जाय।)

१३३ [यानी वही किताबत (लिखाई) दीन से सम्बद्ध मामले की] **'अिन्दल्लाहि'**— यानी अल्लाह के क़ानून तथा नियमों में। **'ला तस्अमू'**— बार-बार लिखने-लिखाने से मन में एक प्रकार की काहिली या अकताहट पैदा हो जाना लगभग क़ुद्रती बात है। **'तक्तुबूहु'**— में सर्वनाम इसी दीन के मामले से सम्बद्ध है। सम्बोधन वही आम उम्मत से है। एक शोर मचा हुआ है कि अब ज़माना इसका नहीं कि मज़हब, विशेषतः इस्लाम को इस अक़ीदे से जाँचा जाए कि फिर लौटकर परलोक को जाना है। अब तो देखना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह है कि इस दुनिया के लिए सबसे क्रियात्मक धर्म कौन है और रोज़ाना की जीवन-समस्याओं का हल करने पर कौन सा धर्म ज़्यादा ज़ोर दे रहा है ? यह मेयार स्वयं किस हद तक सही है ? यह तो एक अलग प्रश्न है। परन्तु जो लोग इसी मेयार को माने हुए हैं, कम से कम वह तो ज़ेहन को खाली करके सोचें कि सारी शरीअतों में इस्लाम से बढ़कर किस शरीअत ने रोज़ाना की ज़िन्दगी की छोटी-बड़ी तमाम समस्याओं के हल करने की व्यवस्था की है।

१३४ यह इसलिए कि हाथोंहाथ मामले बड़ी संख्या में होते रहते हैं और उनकी मात्राएँ भी कम होती हैं और साधारणतः उनमें झगड़े और विरोध के अवसर कम ही होते हैं। फ़क़ीहों ने लिखा है कि ऐसे अवसरों पर यदि दस्तावेज़ लिखाने की व्यवस्था की जाती तो बड़ा हरज होता। अतः शरीअत ने यह व्यवस्था उठा दी। परन्तु यदि कोई ऐसा मामला हो कि शक्ल के एतबार से हाथोंहाथ हो, परन्तु मालियत बड़ी हो या भविष्य में झगड़ा होने का सन्देह हो या अन्य कोई ऐसी स्थिति हो, तो ऐसे अवसर पर लिखाई की शर्तें नहीं छोड़ी जाएगी और लिखाई की व्यवस्था करनी होगी।

१३५ यानी ऐसे अवसर पर गवाही करा लेना ही बेहतर होगा। **'व अश्हिदू'**— हुक्म का सीग़ा वाजिब करने के लिए नहीं है। सिर्फ़ यह है कि ऐसा करना अच्छा रहेगा। इमाम अबू हनीफ़ा, इमाम मालिक और अक्सर इमामों की यही राय है।

१३६ यानी कोई पक्ष अपनी मस्लहत से लेखक या गवाह को कष्ट न दे। ऊपर लेखक और गवाहों को आदेश हो चुका है कि लिखने और गवाही देने से पहलू न बचाएँ। अब दोनों पक्षों को हुक्म मिल रहा है कि वह भी गवाहों तथा लेखक की सुविधा और मस्लहत का ध्यान रखें। **व ला युज़ार्'र कातिबुन्'**— कातिब (लिखनेवाला) को हानि पहुँचाना, जैसे यह कि उसको बिना मेहनताना लिखने पर मजबूर किया जाए या उसके किसी ज़रूरी काम का हरज करके उससे किताबत कराई जाए। **'व ला शहीद'**— गवाह को कष्ट में डालना, जैसे यह है कि ज़रूरत होते हुए भी उसे आने-जाने का खर्च भी न दिया जाए। या उसके किसी ज़रूरी काम में हरज डालकर उसे गवाही के लिए बुलाया जाए।

१३७ (कि जिस कार्य से रोका गया वही कर रहे हो) **'फ़ अिन्नहू फ़ुसूकुन्'** को स्पष्ट करके हुक्म की अहमीयत को किस दर्जा बढ़ा दिया है। **'अिन्नहू'** यानी वही नुक़्सान पहुँचाना। मतलब यह हुआ कि इस कष्ट पहुँचाने को मामूली बात न समझो। यह एक स्थायी पाप है— मासियत है।

१३८ (छोटे-बड़े सारे मामलों और कार्यवाहियों में) सुब्हान अल्लाह ! अल्लाह के तक़्वे की ताकीद किन किन अवसरों पर की है और बन्दों के हक़ अदा करने पर कितना ज़ोर दिया है

१३९ (सभी हिकमत की बातें) बाज़ इल्मवालों ने **'युअल्लिमुकुमुल्लाहु'**— को पिछले टुकड़े **'वत्तक़ुल्लाह'** से सम्बद्ध पाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि हक़ीक़ी इल्म अल्लाह के तक़्वा का ही ठीक परिणाम होता है। तक़्वा इख्तियार करो और अपने-आप ही अल्लाह का ज्ञान प्रदान होने लगेगा। परन्तु बाज़ दूसरे इल्मवालों ने बड़ी सख्ती से इसका इनकार भी किया है। 'साहिबुलमनार' ने भी इनकार किया है।

१४० चुनांचिः वह अपने इस इल्म के अनुसार गुनाहगार से मामला भी करेगा और कोई यह न समझे कि उसका कोई हलका-सा कार्य भी अल्लाह की जानकारी के बाहर है या रहेगा। छोटे से वाक्य में शब्द 'अल्लाह' का तीन-तीन बार लाना आदेश की ताकीद और जलालत (बड़ाई) का प्रदर्शन है।

१४१ (दस्तावेज़ की लिखाई हेतु जब कि रेहन की आवश्यकता आ पड़े।) रेहन के सिल्सिले में सफ़र का स्पष्टीकरण सम्भवतः इसलिए की गयी है कि यात्रा हालत में इस माज़ूरी के पेश आने की सम्भावना ज़्यादा है। अन्यथा बयान वास्तव में विवशता या माज़ूरी का हैः और यह यात्रा के साथ सीमित एवं प्रतिबन्धित नहीं है। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने इसे आम विवशता हेतु रखा है। **'बलम्'**— यानी कातिब न मौजूद हो या क़लम, दावात, काग़ज़ इत्यादि न मौजूद हो।

१४२ (हक़दार के— क़र्ज़दार की तरफ़ से) यानी जब किताबत सम्भव न हो तो रेहन बा-क़ब्ज़ा ही उसका काम कर सकता है। ऐसी दशा में सन्तोष का माध्यम यही होता है। बताया गया है कि रेहन बा-क़ब्ज़ा तो केवल क़र्ज़ देनेवाले के इत्मीनान के लिए है। उसे यह अधिकार नहीं है कि रेहन की हुई चीज़ से लाभ भी उठाता रहे।

१४३ (और इसलिए रेहन की ज़रूरत नहीं समझता।)

१४४ मामलों के सिल्सिले में यह अल्लाह के तक़्वा की ताकीद एक बार फिर देखें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'अल्लज़िअ्तुमिन अमानतहू'— यानी क़र्ज़दार। 'फ़ल्युअद्दि'— अदा करे पूरा-पूरा— आदेश है जो वाजिब है।

१४५ (और अस्ल चीज़ क़ल्ब की गुनाहगारी है।) 'आसिमुन् क़ल्बुहू'— सबसे बड़ा गुनाह तो आत्मा का है, चुनांचिः कुफ़्र जो सारे बड़े गुनाहों से बढ़कर है, क़ल्ब ही का गुनाह है, अतः इस बयान की शैली ने स्वयं यह स्पष्ट कर दिया कि गवाही छुपाना कठोर पाप है। 'क़ल्बुहू' से संकेत इस ओर भी हो गया कि गवाही छुपाना ज़बान का गुनाह नहीं क़ल्ब का गुनाह है। 'व ला तक्तुमुश्शहादत'— और गवाही को मत छुपाओ गवाही के समय। गवाही देने का यह आदेश आम है सभी क़ानूनी मामलों के लिए, जैसे निकाह, महर, वसीयत इत्यादि केवल रेहन के मामले के साथ विशेषता नहीं है और शहादत छपाने की सारी सूरतें इस मनाही के भीतर आ जाती हैं, मिसाल के तौर पर गवाही से बचना या उसमें सही वाक़िआत का न बयान करना इत्यादि। 'व मंय्यक्तुम्हा'— और यह छुपाना चाहे कुल हो या आंशिक, हर दशा में गुनाह है। एक स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक है कि उसका हर व्यक्ति सच्ची गवाही देने हेतु हर समय तैयार रहे। शरीअत की निगाह में गवाही छुपाना या झूठी गवाही देना सख्ततरीन अपराध हैं। फ़िरंगी सभ्यता और समाज ने इस्लाम की यह शिक्षा को अपने भीतर समा लिया है। गवाही देना चूंकि वाजिब है, अतः फ़क़ीहों ने उस पर उज्रत लेना नाजाइज़ क़रार दिया है, हां, आमदोरफ़्त और खूराक पर जो व्यय हो उसका वाक़ई हद तक वसूल करना जाइज़ है।

१४६ (और अपनी इसी कामिल जानकारी के आधार पर बदला या सज़ा देगा।) 'बिमा तअ्मलून'— उदाहरणार्थ एक अमल शहादत का छुपाना है जो गुनाह है और दूसरा अमल शहादत देना है जो इबादत है— सवाब है।

१४७ (और किसी देवी, देवता, अवतार या ईश-प्रदर्शन इत्यादि की शिर्कत उसमें नहीं है।) क़ुर्आन मजीद की सबसे लम्बी सूरत का अब अन्तिम रुकूअ़ शुरू हो रहा है। यहाँ मुकम्मल तौहीद के अक़ीदे को एक बार फिर दोहराया है। सूरत की शुरूआत दीन के नियमों की संपूर्ण शिक्षा से हुई थी। सूरत का अन्त भी उसी परिपूर्णता एवं उसी सारगर्भिता के साथ बुनियादी अक़ीदों पर हो रहा है।

१४८ (ज़बान से या अमल से) 'मा फ़ी' अन्फ़ुसिकुम'— जो कुछ दिलों के अन्दर है, इरादे और इख़्तियार के अन्दर वाले कार्यों में से जैसे कोई खराब विश्वास या गुनाह का इरादा। इसमें दिल में आनेवाले सन्देहजनक या भ्रामक विचार दाखिल नहीं हैं, क्योंकि यह पूछताछ की सीमा से परे हैं।]

१४९ (और भौतिक गुनाहों की तरह) यह छुपाने और ज़ाहिर करने का अन्तर तो बन्दों के एतबार से है वरना अल्लाह के लिए तो दोनों हालतें एक ही प्रकार हैं।

१५० (आम रहमत और मेहरबानी के क़ानूनानुसार) नजात और माफ़ी का ज़िक्र पहले है और अज़ाब देने का बाद में आया है शायद इसलिए कि अल्लाह तआला की माफ़ करने और नजात देने की सिफ़त, ग़ज़ब और अज़ाब देने की सिफ़त पर मुक़द्दम है। आयत से अहल सुन्नत ने गुनहगार मोमिन और बड़े गुनाहगारों की नजात पर दलालत किया है, क्योंकि मोमिन जो मातहत है, वह बदला पाएगा और नजात पा जाएगा, और काफ़िर जो इन्कारी है, अज़ाब पायेगा। बीच की दशा मोमिन की होगी जो बड़े गुनाहों का पापी है।

१५१ (अपने न्याय, क़ानून और कामिल हिकमत के अन्तर्गत) अज़ाब देने की बात के अल्लाह की मशीयत पर निर्भर होने से अहले सुन्नत को एक तर्क अपने मत के समर्थन में हाथ आ गया है।

१५२ अल्लाह अपने इरादे का स्वयं मालिक है। वह सर्वशक्तिमान् और हर चीज़ का स्वयं मालिक है और उसको नजात देने या माफ़ करने के लिए किसी फ़िद्ये या प्रायश्चित्त या सलीब पर चढ़नेवाले ख़ुदा की आवश्यकता नहीं है। आयत में नसारा और अन्य मुश्रिक क़ौमों के विश्वासों का खण्डन भी संकेत से आ गया कि केवल अपने ही इरादे या अपनी स्वेच्छा से ख़ुदा जो चाहे कर सकता है। वह किसी अन्य नियम या क़ानून की बन्दिश में नहीं है, जैसा कि हिन्दुस्तान की मुश्रिक क़ौमें "कर्म" के अक़ीदे से उसे पाबन्द करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आमनर्रसूलु बिमा उन्ज़िल अिलैहि मिर्रब्बिही वल्मुअ्मिनून त कुल्लुन् आमन बिल्लाहि व मलाअिकतिही व कुतुबिही व रुसुलिही क़िफ़ ला नुफ़र्रिक़ु बैन अहूदिम्-मिर्रुसुलिही क़िफ़ व क़ालू समिअ्ना व अतअ्ना क़ ज़ ग़ुफ़्रानक रब्बना व अिलैकल्मसीरु (२८५) ला युकल्लिफ़ुल्लाहु नफ़्सन् अिल्ला वुस्अ़हा त लहा मा कसबत् व अ़लैहा मक्तसबत् त रब्बना ला तुआख़िज़्ना अिन्नसीना औ अख़्तअ्ना ज रब्बना व ला तह्मिल् अ़लैना अिस्रन् कमा ह़मल्तहू अलल्लज़ीन मिन् क़ब्लिना ज रब्बना व ला तुहम्मिल्ना मा ला ताक़त लना बिही ज वअ़्फ़ु अ़न्ना वक़्फ़ः वग़्फ़िर्लना वक़्फ़ः वर्ह़म्ना वक़्फ़ः अन्त मौलाना फ़न्सुर्ना अ़लल्-क़ौमिल्-काफ़िरीन (२८६) ★

أحد من رسله وقالوا سمعنا وأطعنا غفرانك ربنا وإليك
المصير ۝ لا يكلف الله نفسا إلا وسعها لها ما كسبت وعليها
ما اكتسبت ربنا لا تؤاخذنا إن نسينا أو أخطأنا ربنا ولا
تحمل علينا إصرا كما حملته على الذين من قبلنا ربنا ولا
تحملنا ما لا طاقة لنا به واعف عنا واغفر لنا وارحمنا
أنت مولىنا فانصرنا على القوم الكفرين ۝

سورة آل عمران مدنية وهي مائتا آية وعشرون ركوعا

بسم الله الرحمن الرحيم ۝
الم ۝ الله لا إله إلا هو الحي القيوم ۝ نزل عليك الكتب
بالحق مصدقا لما بين يديه وأنزل التورىة والإنجيل ۝ من
قبل هدى للناس وأنزل الفرقان إن الذين كفروا بآيت
الله لهم عذاب شديد والله عزيز ذو انتقام ۝ إن الله لا
يخفى عليه شيء في الأرض ولا في السماء ۝ هو الذي
يصوركم في الأرحام كيف يشاء لا إله إلا هو العزيز الحكيم ۝
هو الذي أنزل عليك الكتب منه آيت محكمت هن أم
الكتب وأخر متشبهت فأما الذين في قلوبهم زيغ فيتبعون
ما تشابه منه ابتغاء الفتنة وابتغاء تأويله وما يعلم تأويله

★ रु. ४० / ८ आ ३

☪ ३ सूरतु आलि अिम्रान ८९ ☪

(मदनी) इस सूरः में अरबी के १५३२६ अक्षर, ३५४२ शब्द, २०० आयतें और २० रुकूअ़ हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रह़्मानिर्रहीमि ●

अलिफ़् लाम् मीम् ला (१) अल्लाहु ला अिलाह अिल्ला हुव ला अल्ह़य्युल्क़य्यूमु त (२) नज़्ज़ल अ़लैकल्किताब बिल्ह़क़्क़ि मुसद्दिक़ल्लिमा बैन यदैहि व अन्ज़लत्तौरात वल्अिन्जील ला (३) मिन् क़ब्लु हुदल्लिन्नासि व अन्ज़लल्-फ़ुर्क़ान त ۵ अिन्नल्लज़ीन कफ़रू बि आयातिल्लाहि लहुम् अ़ज़ाबुन् शदीदुन् त वल्लाहु अ़ज़ीज़ुन् ज़ुन्तिक़ामिन् (४) अिन्नल्लाह ला यख़्फ़ा अ़लैहि शैअुन् फ़िल्अर्ज़ि व ला फ़िस्समाअि त (५) हुवल्लज़ी युसव्विरुकुम् फ़िल्अर्ह़ामि कैफ़ यशाअु त ला अिलाह अिल्ला हुवल्-अ़ज़ीज़ुल्-ह़कीमु (६)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पैग़म्बर ईमान लाये उस पर, जो उसके परवरदिगार की तरफ़ से उतरा हुआ है[१५३], और मोमिन भी यह सब ईमान रखते हैं अल्लाह पर और उसके फ़िरिश्तों पर और उसकी किताबों पर और उसके पयम्बरों पर[१५४]। हम उसके पयम्बरों में परस्पर कोई फ़र्क़ नहीं करते[१५५], और कहते हैं कि हमने सुन लिया और हमने आज्ञापालन किया[१५६], ऐ हमारे परवरदिगार! हम तुझ ही से बख़्शिश चाहते हैं और तेरी ही तरफ़ वापसी है[१५७]। (२८५) अल्लाह किसी को ज़िम्मेदार नहीं बनाता मगर उसकी क्षमतानुसार[१५८]। उसे मिलेगा वही जो कुछ उसने कमाया, और उस पर पड़ेगा वही जो कुछ उसने कमाया[१५९]। ऐ हमारे परवरदिगार! हमारी पकड़ न कर कि अगर हम भूल-चूक जायें[१६०]। ऐ हमारे परवरदिगार! हम पर बोझ न डाल जैसा तूने डाला था उन लोगों पर जो हमसे पहले थे[१६१]। ऐ हमारे परवरदिगार! हमसे वह न उठवा जिसकी बरदाश्त हमसे न हो[१६२], और हमको माफ़ कर दे, और हमको बख़्श दे[१६३]। और हम पर रहम कर, तू ही हमारा काम बनानेवाला है[१६४] सो हमको काफ़िरों पर विजयी बना[१६५]। (२८६) ★

★ रु. ४० — ८ आ ३

३ सूरतु आलि अिम्रान[१६६]

(मदनी) इस सूरत में अरबी के १५३२६ अक्षर, ३५४२ शब्द, २०० आयतें, और २० रुकूअ हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीमि।

शुरू अल्लाह अत्यन्त मेहरबान बार-बार दया करनेवाले के नाम से।

अलिफ़्-ला'म्-मी'म्[१६७]। (१) अल्लाह वह है कि कोई ख़ुदा नहीं सिवाय उसके[१६८], ज़िन्दा (ख़ुदा है) सबका सँभालनेवाला[१६९]। (२) (ख़ुदा है) उसने (यह) किताब आप पर उतारी है पुष्टि के साथ[१७०], उनकी तस्दीक़ करनेवाली (प्रमाणित करनेवाली), जो इससे पहले आ चुकी हैं[१७१] और उसने उतारा था तौरेत और इन्जील को। (३) (इससे) पहले लोगों की हिदायत के वास्ते[१७२] और उसने फ़ुर्क़ान (क़ुर्आन) को उतारा[१७३] बेशक जिन लोगों ने अल्लाह की आयतों से कुफ़्र किया उनके लिए अज़ाब कठोर है[१७४]। और अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त है (बदी का) बदला लेनेवाला है[१७५]। (४) बेशक अल्लाह ऐसा है कि उससे कोई चीज़ छुपी नहीं रहती न ज़मीन में, न आसमान में[१७६]। (५) वह वही ख़ुदा है जो तुम्हारी सूरत योनियों के भीतर बनाता है जिस प्रकार वह चाहता है[१७७]। कोई ख़ुदा नहीं सिवाय उसके[१७८], वह बड़ा महान् है, बड़ा हिकमतवाला है[१७९]। (६)

---

१५३ (यानी क़ुर्आन पर) **'आमनर्रसूलु'**— अपनी रिसालत याने अल्लाह के पयाम की सच्चाई पर पूर्ण ईमान लानेवाले सबसे पहले स्वयं पयम्बर ही होते हैं। ईमान, ईमान तो सबका बराबर है, परन्तु क्षमता एवं आनन्द के लिहाज़ से पयम्बर के ईमान और आम उम्मत के लोगों के ईमान में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है। हर एक के ईमान का दर्जा भी उसकी हैसियत तथा मर्तबे के अनुपात में होता है।

१५४ इस परिपूर्ण आयत के अन्दर ईमान की सभी अनिवार्यताएँ आ गयीं और उनका वर्णन हो गया **'आमन बिल्लाहि'**— अल्लाह पर ईमान लाना यह है कि उसकी ज़ात और उसकी सिफ़त (गुण) दोनों की तस्दीक़ की जाए। क़ुर्आन और नबी की शिक्षानुसार नास्तिकता तथा सन्देह और शंका तथा दहरीयत (अनीश्वरवादिता) इत्यादि का खण्डन हो गया। एक ख़ुदा की तस्दीक़ मज़बूती के साथ करना अनिवार्य है। **'व मला'अिकतिही'**— फ़िरिश्ते की परिभाषा ऊपर दी जा चुकी है कि वह एक नूरी मख़्लूक़ है, जिससे गुनाह होने की सम्भावना नहीं है। मुश्रिक क़ौमों को बड़ी संख्या में इसी अक़ीदे में ठोकर लगी है। फ़िरिश्तों को केवल ख़ुदाई कारिन्दा समझने के बजाय उनकी बड़ाई से प्रभावित होकर उन्हें सृष्टि के विभिन्न अनुभागों में स्थायी रूप से अधिकारी समझने लगे और उन्हें देवी-देवता कहकर पुकारने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगे। जैसे आग का देवता, हवा की देवी, वर्षा का देवता इत्यादि इत्यादि। क़ुर्आन शरीफ़ में जो फ़िरिश्तों के अक़ीदे पर बार-बार बल दिया गया है उसका उद्देश्य इसी देवता-पूजन की समाप्ति है। यद्यपि फ़िरिश्ते नूरी होते हैं, बेगुनाह और मासूम हैं, परन्तु बहरहाल सृष्टि के रचयिता के सामने विवश और आजिज़ मख़्लूक़ हैं। अल्लाह के साथ उनकी ज़ात को मिला देना अत्यन्त जिहालत और अज्ञानता है। **'व कुतुबिही'**— आसमानी पुस्तकों और लेखों के विषय में बड़ी अव्यवस्था होती आयी है। किसी-किसी जाति ने तो उनके अस्तित्व से ही इन्कार कर दिया और स्पष्ट कह दिया कि ख़ुदा है तो, परन्तु उसने कोई निर्देशिका नहीं भेजी। और बहुत सी जातियों ने इन किताबों को मानवीय मस्तिष्क की उत्पत्ति बताया, जिन्हें कुछ बड़े और हिदायत पाए हुए मनुष्यों ने मिलकर लिख-लिखा लिया। **'व रुसुलिही'**— रिसालत के अक़ीदे को मुश्रिक जातियों ने बिलकुल बिगाड़ दिया है। दुनिया रसूलों को भूल चुकी थी और इस बात की क़ायल हो गयी थी कि जिसके माध्यम से हिदायत और फिर मोक्ष होना है वह या तो ख़ुदा का इकलौता बेटा होता है या स्वयं ख़ुदा किसी इन्सानी या हैवानी रूप में। क़ुर्आन मजीद ने आकर बताया कि यह इन्सान और बन्दे ही होते हैं! जिन पर अल्लाह की ओर से 'वही' उतरती है। 'वही' को मानना गोया "अवतार" के अक़ीदे का खण्डन करना है। आयत से स्पष्ट हो गया कि ईमान के चार यह स्तंभ आवश्यक हैं— अल्लाह पर ईमान, मलाइकः (फ़िरिश्तों) पर ईमान, किताबों पर ईमान और रसूलों पर ईमान।

१५५ [कि बाज़ के क़ायल हों और बाज़ के इनकार करनेवाले, बल्कि सबको हक़ (सत्य) पर समझते हैं और सबके हिदायत के मत पर अल्लाह की ओर से होने का विश्वास रखते हैं।] यह क़ौल मोमिनों का है। यहूद की भाँति नहीं कि सिवाय अपनी नस्ल के यानी इस्राईली नस्ल के अतिरिक्त किसी अन्य नस्ल के नबी को न मानें और उनमें से भी जिसके लिए जी चाहे इन्कार कर दें। यहाँ तक कि सिल्सिल-ए-इस्राईली को समाप्त करनेवाले (हज़रत मसीह) से तो वह अदावत रखें कि अपने विचार में उनकी जान ही ले डालें। और न नसरानियों की भाँति कि एक इस्राईली के मानने में वह ज़्यादती करें और इतना बढ़ा दें कि पयम्बरी से उठाकर ख़ुदा के दर्जे तक पहुँचा दें और इस्माईली शाख से पयम्बरी पानेवाले अदावत ही ठान लें। अंग्रेज़ों में एक इतिहासकार बड़ा प्रसिद्ध हुआ है, उसे 'गिबन' कहते हैं। उसके विचार में क़ुर्आन ख़ुदा का कलाम नहीं, मुहम्मद (स०) का कलाम है। इसके बावजूद इस आयत की विशालता पर चकित होकर कहता है— "मुहम्मद (स०) की मत-विशालता ने अपने से पूर्व के पयम्बरों के लिए भी वही दर्जा रखा, जो स्वयं अपने लिए और आदम के दुनिया में आने से लेकर क़ुर्आन के उतरने तक 'वही' के सिल्सिले को क़ायम रखा। (Down Fall of Roman Empere Vol 5, P. 340)। हज़रात नबी में परस्पर जो उनके दर्जों में अन्तर हो, आयत को इससे वास्ता नहीं है। आयत में यह वर्णन है कि स्वयं नबूवत से किसी भी नबी का इनकार नहीं है। और यह जाइज़ नहीं है। बाज़ अह्ले तरीक़ (अल्लाह की राह में चलनेवाले सूफ़ी) ने इसी पर क़ियास करके कहा है कि कामिल वलियों के दर्जों में भी फ़र्क़ निकालने की कोशिश न करना चाहिए कि किसी से एतिक़ाद रखे और किसी से इन्कार करे।

१५६ सुन लिया हमने अल्लाह के पयाम को स्वीकार करनेवाले कानों से। **'अतऽना'** हमने आज्ञा मानी अल्लाह के पयम्बर की ख़ुशी मन से।

१५७ (न किसी और की ओर) **'ग़ुफ़्रानक रब्बना'**— यानी वह नजात और मोक्ष जो तू ही प्रदान करेगा। इसमें खण्डन हुआ उन नसरानियों का जो नजात को **"अल्लाह के बेटे"** की देन समझते हैं या किसी और की कृपा का फल समझते हैं। **'व अिलैकल्मसीरु'**— इसमें भी नसरानियों का खण्डन है जो खिलक़त की वापसी हश्र में (क़ियामत में) "अल्लाह के बेटे" की ओर समझते हैं।

१५८ (शरअ के आदेशों में) शरई आदेशों का प्रतिबन्ध लगा देने से पैदाइशी बातें ख़त्म हो गयीं और ज़िम्मेदार बना देने से यह मुराद है कि उन आमाल से सम्बद्ध पूछताछ होना। **'अिल्ला वुसअहा'**— यानी उसके इख़्तियार के अन्दर हों यद्यपि कुछ किसी क़दर कठिन हों। यह क्षमता का प्रतिबन्ध बड़ा अहम है। इसके पश्चात् बेइख़्तियारी वाले विचार और भ्रम सब पूछताछ की सीमा से परे हो गये। उन सूफ़ियों ने, जो शोधक हैं, इस आयत से एक सीख तो यह लेते हैं कि तपस्या में तपस्वी की शक्ति और क्षमता का ख़याल रखना आवश्यक है, और दूसरा नतीजा यह निकाला है कि अल्लाह का जल्वा भी तपस्वी की क्षमता के अनुसार ही उसे नज़र आता है, और अगर उसमें कमी हो तो तपस्वी को निराश न होना चाहिए।

१५९ यानी उस नेक अमल पर सवाब और बदला जो बन्दा अपने इरादे और अधिकार से करे और उस बुरे अमल पर अज़ाब और सज़ा जो बन्दा अपने इरादे और इख़्तियार से करे। यह हिन्दू और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध धर्म के अक़ीदे का खण्डन है, जो ''कर्म'' पर विश्वास रखते हैं यानी इन्सान जो भी करेगा वह लाज़िमी नतीजा होगा उसके पिछले जन्म के कर्मों का। गोया इस क़ालिब में इन्सान अपने इरादे तथा इख़्तियार से कुछ कर ही नहीं सकता। यह जबरीयत (विवश करना) की इन्तिहाई शक्ल है और आवागमन तथा जबरीयत के अक़ीदे एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं। क़ुर्आन मजीद ने इस ग़लत अक़ीदे पर चोट किया और बताया कि नेकी और बदी की राहें तो इन्सान के अपने इख़्तियार की चीज़ें हैं। यहाँ से नसारा के प्रायश्चित्त के अक़ीदे का भी रद निकल आया जिसका सारांश यह है कि इन्सान को अब अच्छे आमाल की आवश्यकता ही नहीं। अल्लाह के बेटे सबकी तरफ़ से भेंट चढ़ गये। सबके मोक्ष की व्यवस्था उनकी सूली से हो गयी। आयत में अच्छे अमल के लिए शब्द ''कस्ब'' आया है और बद-आमाल के लिए ''इक्तिसाब''। आयत से अहले सुन्नत को भी सनद हाथ आ गयी जो बन्दों के आमाल के लिए ''कस्बो-इक्तिसाब'' लाया करते हैं। ज्ञानियों ने आयत से इस हक़ीक़त पर भी तर्क किया है कि बच्चों पर कोई इल्ज़ाम उनके माँ-बाप के गुनाहों का न होगा।

१६० यह मोमिनों को एक परिपूर्ण और कामिल दुआ की शिक्षा दी जा रही है। **'इन्नसीना'**— यानी याद रखने के प्रयास के बावजूद भूल जाएँ। **'अख़्तअ्ना'**— यानी प्रयास के बावजूद चूक हो जाए। **'अख़्तअ्ना'**– खताएँ, ग़लतियाँ, भूलचूक।

१६१ (और जैसी-जैसी परीक्षाओं से उन्हें दो-चार होना पड़ा, वह हम पर न डाल।) **'अलल्लज़ीन मिन् क़ब्लिना'**— यानी बाज़ पिछली उम्मतों पर। इन्जील में पतरस, हवारी मसीह का क़ौल ग़ैरइस्राईली मसीहियों के विषय में नक़्ल हुआ है कि कब तुम उनकी गरदन पर ऐसा जुआ रखकर, जिसको न हमारे बाप-दादा उठा सकते थे, न हम, ख़ुदा को क्यों आज़माते हो? (आमाल १५:१०)। गोया इस्राईली शरीअत उनके हक़ में ऐसा जुआ था जो उठाए उठ नहीं सकता था। **'अिस्रन्'** से मुराद है सख़्त आदेश जो मानव-सीमा से पृथक् तो हो नहीं, परन्तु उसको पूरा करना बड़ा ही कठिन हो, अत्यन्त कष्टदायक हो। क़ुर्आन मजीद ने साथ ही इस इन्जीली बढ़ाये हुए वर्णन की भी शुद्धि कर दी और यह इशारा कर दिया कि गो जह आदेश सख़्त ज़रूर थे, लेकिन ऐसे नहीं थे कि उनको बरदाश्त से बाहर कहा जाए।

१६२ (न पैदाइशी घटनाओं में, न शर्ई आदेशों में— और हक़ की पूजा को हमारे लिए सरल बना दे —आसान कर दे।) दुआ का यह भाग बन्दगी के कमाल का प्रदर्शन है। अल्लाह की रहमत का तो स्वयं यह तक़ाज़ा है कि ऐसा बोझ हम पर न डाला जाएगा, परन्तु अक़्लन् इसकी सम्भावना तो बहरहाल थी और है —कामिल मालिक को अपनी सम्पत्ति पर और पैदा करनेवाले को अपने बन्दों पर अधिकार और क़ब्ज़ा तो हर समय हर प्रकार का प्राप्त है।

१६३ (बिना किसी रुकावट के। बिना ज़रा भी सज़ा के शुब्हे के।) **'अन्ना'** —हमसे यानी हमारी भूल-चूक से।

१६४ (हर आलम में —हर दशा में हर लोक में) **'वर्हम्ना'**— यानी हम पर पूर्णरूपेण दया हो दुनिया और आख़िरत दोनों में। **'अन्त मौलाना'** —इस टुकड़े के बढ़ाने से दुआ में हर दर्जा ख़ुदा का ख़ौफ़ और उस-उसके सामने अपनी विवशता एवं आजिज़ी का प्रदर्शन है। 'अफ़्व' (क्षमा), 'रहमत' (दया) और 'मग़्फ़िरत' (मुक्ति) तीनों की माँग करने की शिक्षा यहाँ मिल गयी।

१६५ (कि यह दुश्मन हैं तेरे दीन के और तेरे नियमों और विधान के।) और ग़ल्बा से मुराद दोनों हैं यानी दलीलों से, इल्म से और जिहाद की विजय से, और मुल्की तथा माली ग़ल्बा और बड़ाई। दुआ के इस अंश से ज्ञात हुआ कि दीन के दुश्मनों पर ग़ल्बा भी मुसलमानों का एक मक़्सद और उद्देश्य है।

१६६ अरब का मानचित्र सामने हो तो दक्षिण-पूर्व में जो भाग यमन के नाम से प्रसिद्ध है उसके उत्तर में एक स्थान 'नजरान' है। नबूवत के समय में यहाँ मसीहियों की आबादी थी। सन् १० हिजरी में उनके चौदह बुज़ुर्ग एक शिष्ट मंडल के रूप में रसूलल्लाह (स०) की सेवा में उपस्थित हुए। हुज़ूर (स०) ने वार्त्ता के मध्य में उनके तीन ख़ुदाओं एवं ख़ुदा के बेटे होने के ग़लत और मूर्खतापूर्ण विश्वासों को पूर्णरूपेण स्पष्ट किया था। इस सूरह में स्थान-स्थान पर उसी की ओर संकेत मिलेंगे। जिस प्रकार 'सूरए बक़र:' में यहूद से सम्बोधन था। यह कहा जा सकता है कि इस आयत में उसी प्रकार विशेष सम्बोधन मसीहियों से है। 'सूरए बक़र:' की भाँति इस 'सूरए आलि अिम्रान' की भी हदीसों में बड़ाई आयी है।

१६७ यह 'हुरूफ़े मुक़त्तिआत' (अक्षर-समूह) कहलाते हैं। सूरए बक़र: में इन पर हाशिया दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा चुका है। लिखा हुआ है कि यहाँ भी यह अक्षर संक्षिप्त हैं इस टुकड़े का --"अल्लाह ही को इसके अर्थ मालूम हैं"।

१६८ (न 'अुक़्नूम' के रूप में न और किसी रूप में) 'अुक़्नूम'— तीन ख़ुदाओं का विश्वास— यानी उस अकेले ख़ुदा का कोई शरीक नहीं. न ज़ात में, न सिफ़तों और गुणों में ही। न ही उसके कार्यों में कोई उसका भागीदार है। विश्व में भारी संख्या में ऐसे धर्मों का अस्तित्व रह चुका है, और अब भी है, जो कहते हैं कि ख़ुदा महान् तो निःसन्देह एक ही है, परन्तु उसके अधीन विभागों के मालिक छोटे-छोटे ख़ुदा, देवता और देवियाँ तो बहुत सी हैं। क़ुर्आन मजीद इन सबका खण्डन करता और कहता है कि किसी दूसरे ख़ुदा का क़तई कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह आयत अलावा इन जाहिली धर्मों के विशेष रूप से मसीही अक़ीदों को रद करने हेतु है।

१६९ **'अल्हय्यु'**-- वह वह ख़ुदा है जो हमेशा ज़िन्दा ही है, जिन्दा रहा है और ज़िन्दा ही रहेगा। उसके लिए मृत्यु की कोई सम्भावना ही नहीं। न सलीब (सूली) पर न किसी अन्य प्रकार। उसकी ज़िन्दगी जिस प्रकार आज क़ायम है, हमेशा से उसी प्रकार है। ऐसा नहीं कि उसे बार-बार चोला बदलने की आवश्यकता हो, कभी वह मानव का रूप धारण करे, कभी पशु था। वह इस प्रकार का भी ज़िन्दा नहीं है कि हर वर्ष उस पर मृत्यु छा जाए और फिर उसे नवजीवन की प्राप्ति करनी पड़े। **'अल्हय्यु'** के एक शब्द ने उसकी पुरातन एवं कभी ज़वाल (पतन) न पानेवाली सिफ़तें हयात यानी जीवन का गुण सिद्ध करके सारे ग़लत विश्वासों का खण्डन कर दिया जो दूसरे धर्मों में उस समय तक पाये जाते थे। (हाशिया १६ इसी पारे का अवलोकित हो।) **'अल्क़य्यूम'**--- वह स्वयं क़ायम है और सारी सृष्टि, सभी जानदार, बेजान, चर-अचर उसके अस्तित्व से क़ायम हैं। ऐसा नहीं है कि वह स्वयं भी किसी दूसरे का मोहताज हो जैसा कि मसीहियों का अक़ीदः है कि— "जिस प्रकार बेटा बिना बाप के अकेला ख़ुदा नहीं, उसी प्रकार बाप बिना बेटे के अकेला ख़ुदा नहीं।" (इन्साइक्लोपीडिया आफ़् रेलीजन् ऐण्ड् एथिक्स् जिल्द ७ पृष्ठ ५३६)। गोया (नऊज़ुबिल्लाह) अल्लाह के बेटे और अल्लाह, दोनों अपनी ख़ुदाई में एक-दूसरे के मोहताज हैं। स्वयं क़ायम रहने (क़य्यूमीयत की सिफ़त) की बात की तस्दीक़ करके क़ुर्आन मजीद ने ख़ुदा के बेटा होने के अक़ीदे की जड़ ही काट दी। बहुत से जाहिली धर्म ऐसे भी हैं जो एक ओर ख़ुदा को ख़ुदा भी मानते हैं, परन्तु साथ ही यह भी मानते हैं कि वह पैदा किसी ओर से है (इसी पारे का हाशिया सं० १६ अवलोकित हो)। क़ुर्आन मजीद का विशेष और अनोखा कमाल है कि वह अपने एवं एक-एक शब्द से अनेक और बड़ी-बड़ी गुमराहियों का खण्डन कर जाता है।

१७० (हर-हर शब्द से, ऐ पैग़म्बर!) **'नज़्ज़ल'**-- का मस्दर तन्ज़ील है। यह शब्द क़ुर्आन मजीद में क़ुर्आन मजीद के लिए अनेक बार आता है। **'अन्ज़ल'** के विपरीत जो आम तौर पर दूसरी आसमानी किताबों के लिए आया है। 'तन्ज़ील' में धीरे-धीरे दर्जा-ब-दर्जा और टुकड़े होकर उतरने का ख़याल तो मौजूद ही है, परन्तु हो सकता है कि इसके अर्थ में क़ुर्आन का, शब्द के बाद शब्द और अक्षर के बाद अक्षर होकर उतरना भी सम्मिलित हो। और हो सकता है कि इस अर्थ की सनद और इसका प्रमाण आगे चलकर किसी अरबी भाषा के शोधक के हाथ आ जाए। **'बिलहक़्क़ि'** हक़ के अन्तर्गत हिकमत भी आ जाती है और सच्चाई भी और तर्क शक्ति भी और यह शब्द 'हज़्ल' के मुक़ाबले में आता है।

१७१ (आसमानी किताबों में) **'मुसद्दिक़न्'**— 'क़ुर्आन करीम' ने बार-बार स्पष्ट किया है कि उसका सम्बन्ध पुरातन काल की किताबों से प्रमाण का है और क़ुर्आन संक्षेप में उनके मज़मूनों की तस्दीक़ और पुष्टि ही करता है। यहीं से उन दीन के शत्रुओं की मूर्खता भी ज़ाहिर होती है, जो किसी क़ुर्आनी बयान के अनुसार कोई मज़मून तौरेत और इन्जील आदि का इस प्रकार पेश करते हैं कि जैसे उन्होंने कोई विशेष नयी बात का शोध किया हो। और जैसे (ख़ुदा न करे) उन्होंने क़ुर्आन की बड़ी चोरी पकड़ी है।

१७२ (उनके समय में) 'तौरेत' और 'इन्जील'— क़ुर्आन मजीद की परिभाषा में दो स्थायी आसमानी किताबों के नाम हैं और क़ुर्आन इन्हीं की तस्दीक़ करता है, परन्तु मौजूदा बोलचाल में 'तौरेत' नाम है अनेकों पुस्तकों के संग्रह का जिनमें से हर पुस्तक किसी न किसी नबी से सम्बद्ध है, परन्तु उनमें से कसी भी पुस्तक शाब्दिक के उतराव का दावा किसी यहूदी को नहीं। इसी प्रकार 'इन्जील' नाम है कई पुस्तकों के संग्रह का जिसमें हज़रत मसीह के विषय में अविश्वसनीय व्यक्तियों की जमा की हुई कहानियाँ, बयान की हुई बातें और सुनी-सुनाई कहानियाँ लिखी हुई हैं, परन्तु उनमें से कोई पुस्तक मसीहियों के अक़ीदे में आसमानी नहीं है बल्कि मसीही स्पष्ट रूप से कहते हैं कि यह संग्रह "हवारियों के समय में बिना इरादा और बिना आशा के तैयार हो गया।" (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका जिल्द ३, पृष्ठ ५१३, चौथा संस्करण)। ख़ूब समझ

CC-0. Gangotri and Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिया जाए कि ऐसे अप्रमाणित "पवित्र लेखों" की तस्दीक़ एवं पुष्टि की ज़िम्मेदारी क़ुर्आन कदापि नहीं लेता और मौजूदा इन्जील यानी पुराने और नये समय के किसी भी अंश के मानने पर क़ुर्आन मजीद के माननेवालों पर हुज्जत नहीं हो सकता— वह उसे मानने पर विवश नहीं हैं। **'मिन् क़ब्लु'**— यानी क़ुर्आन के पूर्व— मूसा (रज़ि०) और ईसा (रज़ि०) के समय में उनकी उम्मतों के लिए।

१७३ **'फ़ुर्क़ान'** और **'फ़र्क़'** वास्तव में एक ही अर्थ रखते हैं सिवाय इसके कि फ़र्क़ के मानी तो केवल और सिर्फ़ अन्तर होने के हैं चाहे वह किसी के बीच हो और 'फ़ुर्क़ान' विशेषत: उस अन्तर को कहते हैं जो सत्य और असत्य के बीच हो। बाज़ के निकट यह शब्द सभी आसमानी किताबों के लिए संज्ञा है प्रकार के लिए। एक शोधक का विचार है कि इससे मुराद नबूवत की दलीलें और मोजिज़े हैं, जो हर पैग़म्बर को प्रदान होते रहते हैं। परन्तु शोधकों का बहुमत इस विचार का है कि इससे मुराद क़ुर्आन मजीद है।

१७४ (आखिरत में तो अवश्य और दुनिया में भी सम्भवत:) **'कफ़रू'**— यानी इसके बावजूद कि उन तक दीन का पैग़ाम पूरी तरह पहुँच चुका था, वह कुफ़्र को अपनाये रहे। **'आयातिल्लाह'**— से मुराद क़ुर्आनी आयतें भी हो सकती हैं और चिह्न भी, यानी तौहीद की दलीलें और शहादतें।

१७५ खूब खयाल रहे कि सूर: का अस्ल विषय मसीहीयत का खण्डन है, अत: आम तौर पर ऐसी सिफ़तों को पेश किया गया है और उनको माना गया है जिनसे मसीहीयत ही के किसी न किसी पहलू पर चोट पड़े। **'अज़ीज़ुन्'**— हर सज़ा देना उसकी शक्ति में है और हर हाल में सबसे शक्तिशाली और ज़बरदस्त है। वह ('मआज़ल्लाह') मसीहियों का खुदा नहीं है कि इन्सानी चोला धारण करके नाना प्रकार की कमज़ोरियों का शिकार हो जाए। फिर दुश्मनों के हाथों बन्दी बनकर सूली पर चढ़ा दिया जाए और मौत पा जाए। उसकी अज़ीज़ीयत की सिफ़त इस सारे विचार से इन्कार करती है। **'ज़ुन्तिक़ामिन्'**— वह रहमान, रहीम और रऊफ़ (दयालु) होने के साथ न्यायशील भी है और न्यायशीलता की सिफ़त का प्रदर्शन अपराधियों, विद्रोहियों और अत्याचारियों के मुक़ाबले में सज़ा और बदले से ही हो सकता है। उसे सज़ा देने में कदापि कोई हिचक नहीं है कि उससे बचने के लिए उस संकोच में सूली पर चढ़कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से प्रायश्चित्त करने पर विवश हो जाए। जिन धर्मों ने अपने खुदा को रहीम ही रहीम (दयालु) माना है, उनका खुदा पूर्ण नही, अधूरा है।

१७६ जाहिली जातियों और धर्मों के बुद्धिमान लोग भी जाहिली थे। यूनान के नामी गिरामी बुद्धिमान यह कह गये और सिखला गये कि अल्लाह का इल्म और ज्ञान पूर्ण रूप की सीमा तक रहता है। आंशिक रूप को वह नहीं घेरता। मसीहियों ने नबूवत की बरकत से खुल्लमखुल्ला इस अक़ीदे को तो नहीं माना, परन्तु इस यूनानी अक़ीदे से काफ़ी प्रभावित रहे। क़ुर्आन मजीद ने चुनौती देकर यह बताया कि यह अल्लाह के ज्ञान का कमाल नहीं, अधूरापन है। उसका ज्ञान हर हैसियत से सम्पूर्ण है और छोटी-बड़ी हर चीज़ पर हावी है। **'अल्अर्ज़ि वस्समा'अि'**— आसमान और ज़मीन के नाम इस विषय में इस कारण से दिये गये कि इन्सानी ज्ञान की सीमा और उसकी पकड़ तथा फैलाव इन्हीं सीमाओं में महदूद और सीमित रहती है। साथ ही मसीहियों से भी सम्बोधन है कि तुम जो मसीह को खुदा मानते हो, तो बताओ उनका ज्ञान कामिल (सम्पूर्ण) कहाँ था और खुदा ने बन्दे का रूप धारण करके कैसे इतनी बड़ी त्रुटि अपने अन्दर गवारा कर ली?

१७७ (चाहे बिना बाप के बनाए चाहे बाप के माध्यम से) शक्तिशाली वह प्रकार हर रूप में है। बाप उत्पत्ति का एक माध्यम मात्र होता है और उत्पत्ति करनेवाला (खालिक़) जिस माध्यम को जब चाहे, हटा दे। **'युसव्विरुकुम्'**— में आम सम्बोधन है और सारी मानव-जाति मुखातिब है। **'फ़िल् अर्हामि'**— यानी माताओं की योनियों में और हज़रत मसीह की सूरत भी माँ की योनि में ही बनी थी। ऊपर अल्लाह के सम्पूर्ण ज्ञान का वर्णन हो चुका है, अब संकेत उसकी महिमा की ओर हो रहा है कि जिस प्रकार उसका ज्ञान (इल्म) कामिल है और हर चीज को घेरे हुए है, उसकी कोई सीमा नहीं है, उसी प्रकार उसकी उत्पत्ति की क़ुदरत और शक्ति बेथाह, बेइन्तिहा और असीमित है। मानव द्वारा उसकी सीमा का निर्धारण स्वयं मानव की जिहालत तथा मूर्खता है।

१७८ (न ज़ात के लिहाज से न सिफ़तों और गुणों के लिहाज़ से) फिर स्मरण करा दिया कि उसके उत्पत्ति के मामलों में कौन हस्तक्षेप कर सकता है या मशविरे का हक़ रखता है। वह पाकज़ात हर माने में बे-मिसाल, अकेला और बे-नज़ीर है। उस जैसा कोई नहीं है किसी भी माने में, किसी भी अन्दाज में। वह अपनी मिसाल आप है।

१७९ **'अज़ीज़'**—पर हाशिया अभी गुज़र चुका है। खुदाए तआला उत्पत्ति की हर सूरत पर एक ही प्रकार से शक्तिशाली है। **'अल्हकीमु'** उसकी सिफ़त हिकमत को साबित किया जा रहा है यानी जो सूरत जहाँ उसकी स्वेच्छा होती है वह वहाँ वही अपनाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

● ब. न बी स. ● व. मं जि ल ब. ला जि म ★ रु. १ / ६ आ ६

हुवल्लजी' अन्ज़ल अलैकल्किताब मिन्हु आयातुम् - मुह्कमातुन् हुन्न उम्मुल्-किताबि व उख़रु मुतशाबिहातुन् त फ़ अम्मल्लजीन फ़ी क़ुलूबिहिम् जैगुन् फ़ यत्तबिअून मा तशाबह मिन्हुब्तिग़ा'अल्-फ़ित्नति वब्तिग़ा'अ तअ्वीलिही ज ● व मा यअ्लमु तअ्वीलहू' अिल्लल्लाहु म ● वर्रासिख़ून फ़िल्अिल्मि यक़ूलून आमन्ना बिही ला कुल्लुम्मिन् अिन्दि रब्बिना ज व मा यज़्ज़क्करु अिल्ला' उलुल्-अल्बाबि (७) रब्बना ला तुज़िग़् क़ुलूबना बअ्द अिज़् हदैतना व हब् लना मिल्लदुन्क रह्मतन् ज अिन्नक अन्तल्वह्हाबु (८) रब्बना' अिन्नक जामिअुन्नासि लि यौमिल्ला रैब फ़ीहि त अिन्नल्लाह ला युख़्लिफ़ुल्-मीआद (९) ★ अिन्नल्लजीन कफ़रू लन् तुग़्निय अन्हुम् अम्वालुहुम् व ला' औलादुहुम् मिनल्लाहि शैअन् त व उला'अिक हुम् वक़ूदुन्नारि ला (१०) कदअ्बि आलि फ़िर्औन ला वल्लजीन मिन् क़ब्लिहिम् त कज़्ज़बू बि आयातिना ज फ़ अख़जहुमुल्लाहु बि ज़ुनूबिहिम् त वल्लाहु शदीदुल्-अिक़ाबि (११) क़ुल् लिल्लजीन कफ़रू सतुग़्लबून व तुह्शरून अिला जहन्नम त व बिअ्सल्मिहादु (१२) क़द् कान लकुम् आयतुन् फ़ी फ़िअतैनिल्तक़ता त फ़िअतुन् तुक़ातिलु फ़ी सबीलिल्लाहि व उख़्रा काफ़िरतुंय्यरौनहुम् मिस्लैहिम् रअ्यल्अैनि त वल्लाहु युअय्यिदु बिनस्रिही मंय्यशा'उ त अिन्न फ़ी ज़ालिक ल अिब्रतल्लिउलिल् - अब्सारि (१३) ज़ुय्यिन लिन्नासि हुब्बुश्शहवाति मिनन्निसा'अि वल्बनीन वल्क़नातीरिल् - मुक़न्तरति मिनज़्ज़हबि वल्फ़िज़्ज़ति वल्-ख़ैलिल्-मुसव्वमति वल्अन्आमि वल्हर्सि त ज़ालिक मताअुल्-हयातिद्दुन्या ज वल्लाहु अिन्दहू हुस्नुल्मआबि (१४) क़ुल् अ उनब्बिअुकुम् बि ख़ैरिम्मिन् ज़ालिकुम् त लिल्लज़ीनत्तक़ौ अिन्द रब्बिहिम् जन्नातुन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदीन फ़ीहा व अज़्वाजुम्-मुतह्हरतुंव्व रिज़्वानुम्-मिनल्लाहि त वल्लाहु बसीरुम्-बिल्अिबादि ज (१५) अल्लजीन यक़ूलून रब्बना' अिन्नना' आमन्ना फ़ग़्फ़िर्लना ज़ुनूबना व क़िना अज़ाबन्नारि ज (१६)

تلك الرسل ٣ — ٧٠ — ال عمرٰن ٣

إِلَّا اللّٰهُ ۘ وَالرَّاسِخُونَ فِي الْعِلْمِ يَقُولُونَ آمَنَّا بِهِ كُلٌّ مِّنْ عِندِ رَبِّنَا ۗ
وَمَا يَذَّكَّرُ إِلَّا أُولُوا الْأَلْبَابِ ⑦ رَبَّنَا لَا تُزِغْ قُلُوبَنَا بَعْدَ إِذْ هَدَيْتَنَا
وَهَبْ لَنَا مِن لَّدُنكَ رَحْمَةً ۚ إِنَّكَ أَنتَ الْوَهَّابُ ⑧ رَبَّنَا إِنَّكَ جَامِعُ
النَّاسِ لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ فِيهِ ۚ إِنَّ اللّٰهَ لَا يُخْلِفُ الْمِيعَادَ ⑨ إِنَّ الَّذِينَ
كَفَرُوا لَن تُغْنِيَ عَنْهُمْ أَمْوَالُهُمْ وَلَا أَوْلَادُهُم مِّنَ اللّٰهِ شَيْئًا ۖ وَ
أُولَٰئِكَ هُمْ وَقُودُ النَّارِ ⑩ كَدَأْبِ آلِ فِرْعَوْنَ ۙ وَالَّذِينَ مِن قَبْلِهِمْ ۚ
كَذَّبُوا بِآيَاتِنَا فَأَخَذَهُمُ اللّٰهُ بِذُنُوبِهِمْ ۗ وَاللّٰهُ شَدِيدُ الْعِقَابِ ⑪
قُل لِّلَّذِينَ كَفَرُوا سَتُغْلَبُونَ وَتُحْشَرُونَ إِلَىٰ جَهَنَّمَ ۚ وَبِئْسَ
الْمِهَادُ ⑫ قَدْ كَانَ لَكُمْ آيَةٌ فِي فِئَتَيْنِ الْتَقَتَا ۖ فِئَةٌ تُقَاتِلُ فِي
سَبِيلِ اللّٰهِ وَأُخْرَىٰ كَافِرَةٌ يَرَوْنَهُم مِّثْلَيْهِمْ رَأْيَ الْعَيْنِ ۚ وَاللّٰهُ يُؤَيِّدُ
بِنَصْرِهِ مَن يَشَاءُ ۗ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَعِبْرَةً لِّأُولِي الْأَبْصَارِ ⑬ زُيِّنَ لِلنَّاسِ
حُبُّ الشَّهَوَاتِ مِنَ النِّسَاءِ وَالْبَنِينَ وَالْقَنَاطِيرِ الْمُقَنطَرَةِ مِنَ الذَّهَبِ
وَالْفِضَّةِ وَالْخَيْلِ الْمُسَوَّمَةِ وَالْأَنْعَامِ وَالْحَرْثِ ۗ ذَٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيَاةِ
الدُّنْيَا ۖ وَاللّٰهُ عِندَهُ حُسْنُ الْمَآبِ ⑭ قُلْ أَؤُنَبِّئُكُم بِخَيْرٍ مِّن ذَٰلِكُمْ ۚ
لِلَّذِينَ اتَّقَوْا عِندَ رَبِّهِمْ جَنَّاتٌ تَجْرِي مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ خَالِدِينَ فِيهَا
وَأَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ وَرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ ۗ وَاللّٰهُ بَصِيرٌ بِالْعِبَادِ ⑮ الَّذِينَ
يَقُولُونَ رَبَّنَا إِنَّنَا آمَنَّا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوبَنَا وَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ⑯

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह वही (ख़ुदा) है जिसने आप पर किताब उतारी है उसमें स्थायी आयतें हैं और वही किताब का अस्ल मदार (आधार) हैं[१८०], और दूसरी आयतें मिलती-जुलती हैं[१८१], सो वह लोग जिनके दिलों में टेढ़ापन है वह उसके (उसी हिस्से के) पीछे हो लेते हैं जो मुतशाबिह (अस्पष्ट) हैं[१८२] फ़साद की तलाश में और उसके (ग़लत) मतलब की तलाश में[१८३]। ● ऐसी दशा में कि कोई उसका (सही) मतलब नहीं जानता सिवाय अल्लाह के[१८४]।● और परिपक्व ज्ञान वाले कहते हैं कि हम उस पर ईमान ले आये। वह सब ही हमारे परवरदिगार की तरफ़ से है[१८५]। और नसीहत तो बस अक़्ल वाले ही क़बूल करते हैं[१८६]। (७) ऐ हमारे परवरदिगार! हमारे दिलों को कज (टेढ़ा) न कर बाद उसके कि तू हमें सीधी राह दिखा चुका, और हमको अपने पास से रहमत प्रदान कर[१८७]। बेशक तू ही बड़ा बख़्शनेवाला है[१९८]*। (८) ऐ हमारे परवरदिगार! बेशक तू तमाम लोगों को जमा करनेवाला है, उस दिन जिसके वाक़े होने में (ज़रा) शक नहीं[१९९]। बेशक अल्लाह अपने वादे के ख़िलाफ़ नहीं जाता[२००]। (९) ★

बेशक जिन लोगों ने कुफ़्र किया, उनके माल और उनकी सन्तान अल्लाह के मुक़ाबले में उनके कुछ भी काम न आयेंगे। और यही लोग (नरक की) आग के ईंधन होंगे[२०१]। (१०) जैसा मामला कि फ़िरऔन वालों के साथ हुआ और उनसे पूर्व वालों के साथ। उन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया, सो अल्लाह ने उनकी पकड़ की उनके पापों के कारण। और अल्लाह बड़ा सख़्त सज़ा देनेवाला है[२०२]। (११) आप इन कुफ़्र वालों से कह दीजिए कि तुम निकट भविष्य में पराजित किये जाओगे और नर्क की ओर एकत्रित किये जाओगे और वह बुरा ठिकाना है[२०३]। (१२) बेशक तुम्हारे लिए एक निशानी (इन) दो गिरोहों में है जो परस्पर आमने-सामने हुए। एक गिरोह अल्लाह की राह में लड़ रहा था और दूसरा काफ़िर था[२०४]। यह (काफ़िर) उनको खुली आँखों देख रहे थे अपने से कई गुना[२०५]। और अल्लाह अपनी सहायता से जिसकी चाहता है मदद कर देता है[२०६]। निस्सन्देह इस (घटना) में बुद्धिमानों के लिए बड़ा सबक़ है[२०७]। (१३) लोगों के लिए सुन्दर दिखायी देनेवाली बना दी गयी हैं चीज़ों की मुहब्बत, (चाहे) स्त्रियों से हो या बेटों से या ढेर लगे हुए सोने और चाँदी से, या निशान पड़े हुए घोड़ों से या पशुओं से या कृषि से[२०८]। यह सब दुनियावी ज़िन्दगी के सामान हैं[२०९], और अन्त की सुन्दरता तो अल्लाह ही के पास है[२१०]। (१४) आप कहिए कि क्या मैं तुम्हें ऐसी चीज़ की सूचना दूं, जो (इन चीज़ों) से कहीं बेहतर है[२११]; उन लोगों के लिए जो डरते रहते हैं[२१२], उनके परवरदिगार के पास बाग़ हैं कि उनके नीचे नदियाँ पड़ी बह रही हैं; उनमें वह हमेशा रहनेवाले हैं, और साफ़-सुथरी की हुई बीवियाँ होंगी[२१३], और अल्लाह की प्रसन्नता होगी[२१४]। और अल्लाह अपने बन्दों का ख़ूब देखनेवाला है[२१५]। (१५) (यह वह लोग हैं) जो कहते रहते हैं कि ऐ परवरदिगार! हम अवश्य ईमान ले आये, सो हमारे गुनाह बख़्श दे और हमें दोज़ख़ की आग से बचा दे[२१६]। (१६)

● व. नबी स. ● व. मंजिल व. लाजिम ★ रु. १/६ आ ६

---

१८० (और उन्हीं को मेयार बनाकर उन पर शेष वार्त्ता को प्रस्तुत करना चाहिए।) 'मुहक्मातुन्'— 'स्थायी' या 'मुहकम्' क़ुर्आन मजीद की वह आयतें हैं जो स्पष्ट हैं, विवरण-सहित हैं और जिनका तर्क निश्चित एवं नियत है और उनके अर्थ में कोई सन्देह या भ्रम नहीं है, न कुछ छुपाया गया है। 'अुम्मु' हर वस्तु की अस्ल को कहते हैं। यहाँ इस सच्चाई को बयान कर दिया कि क़ुर्आन मजीद में जो आयतें बिलकुल साफ़ और स्पष्ट हैं, जिनसे एक ही मानी निकलते हैं वही अस्ल मदार और मेयार हैं। दूसरी आयतों को जिनके कई-कई अर्थ हो सकते हैं, उन्हीं पर प्रस्तुत करना चाहिए।

१८१ 'मुतशाबिह'— ऐसी वार्त्ता को कहते हैं जो दूसरी वार्त्ता से ऐसी मिलती-जुलती हो कि परस्पर

*** मूल छपी हुई उर्दू की तफ़्सीर में १८८ हाशिए की जगह १९८ संख्या छप गयी है और यहाँ से १९८ से ही संख्या हर फ़ुटनोट पर जारी रहेगी।**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तर करना कठिन और उसके अर्थ निकालने में विभिन्न पहलू निकलते हों। 'आयतें मुतशाबिह' की एक तफ़्सीर यह की गयी है कि उस पर ईमान रखना तो हर सूरत में वाजिब हो, परन्तु उस पर अमल का प्रश्न ही न पैदा होता हो, जैसे पिछली क़ौमों के विषय में खबरें। यह राय इब्ने तैमिया की है। एक क़ौल यह भी है कि अल्लाह की सिफ़तों से सम्बद्ध आयतें 'मुतशाबिहात' में दाखिल हैं। यह भी इब्ने तैमिया का है। और इस पर कहना चाहिए कि सबकी एक राय है कि क़ुर्आन शरीफ़ में केवल वही मुशाबिहात की आयतें हैं जिनमें ग़ैब की खबरें, आखिरत की सिफ़तों के अर्थ में बयान हुई हैं।

१८२ (और स्थायी मानों तथा अर्थों से दृष्टि फेर लेते हैं।) **'अल्लज़ीन फ़ी क़ुलूबिहिम् ज़ैग़ुन्'** खुला हुआ और सीधा संकेत मसीहियों की जानिब है, जिन्होंने अपने पयम्बर के स्पष्ट, साफ़ और स्वच्छ निदशों को पीछे डाल दिया और उनकी बाज़ उपमाओं को तोड़-मरोड़कर उसको ही अस्ल माना था, परन्तु शब्द साधारण और विशाल हैं। हर गुमराह और ग़लत चलनेवाला, हर झूठा और असत्य को माननेवाला और दीन में नयी बातें उत्पन्न करनेवाला इसके अन्तर्गत आ जाता है। शोधकों ने दीन की बारीक बातों के जाननेवालों और उसके रहस्यों को समझनेवालों के विषय में स्पष्टीकरण कर दिया है कि उनसे यदि ऐसी वार्त्ता वर्णित हुई हो, जो अपनी ज़ाहिरी सूरत में शरीअत के अनुसार न हो, तो सलामती इसी में है कि न उस वार्त्ता के ज़ाहिर को स्वीकार किया जाए और उन व्यक्तियों से ही इन्कार कर दिया जाए।

१८३ (ताकि अक़ीदों और निर्देशों के विषय में उस वार्त्ता से अपनी गुमराहियों का प्रमाण प्राप्त करें।) जिनके दिलों में सत्य की माँग, सत्य की तलाश और अल्लाह के विषय में सच्चाइयों के जानने की चेष्टा नहीं होती, वह इसी उधेड़बुन में लगे रहते हैं कि दीन के विषय में कोई फ़ित्ना और फ़साद उभार दें बजाय इसके कि दीन की राह पर स्वयं चलें, खुद दीन को अपनी मर्ज़ी से चलाना चाहते हैं। और यह लोग अल्लाह के कलाम की जो स्थायी और अटल बातें हैं, उनको तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं और ज़रा नहीं घबराते, जैसा कि आजकल भी हर असत्य पक्ष इसी प्रकार नये-नये मानी पहनाने में लगा हुआ देखा जा सकता है। **'अिब्तिग़ा'अल्-फ़ित्नति'**— इस ग़लत अर्थ के लगाने में भी यह लोग निःस्वार्थ नहीं हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य ही आम मुसलमानों को उलझन में डालना और दीन में रखनः (बाधा) डालना और उसकी एकता को भंग करना है। **'वब्तिग़ा'अ तअ्वीलिही'**— यानी जिससे ग़लत-सलत मानी अपनी इच्छानुसार तलाश कर लें। यहाँ 'तावील' का अर्थ है हुरूफ़ों एवं शब्दों में उलट-फेर करना और ग़लत मानी पहनाना।

१८४ (और वही जिसको जितना चाहे बतला दे, चाहे क़ुर्आन की स्पष्ट आयतों से संकेतों और दलीलों या तक़ाज़ों के माध्यम से या रसूल के उपदेशों के द्वारा स्पष्ट बयान के ज़रीए।)

१८५ (और सारे का सारा हक़ है। 'मुतशाबिहात' के मानी जो कुछ भी हों बहरहाल वह हैं हक़ ही।) 'रुसूख' के मानी मज़बूत हो जाने और जड़ जम जाने के हैं। **''अर्रासिखून फ़िल्अिल्मि''**— वह हुए जिनके दिलों में दीन की सच्चाइयाँ जम चुकी हैं। **''कुल्लुम्मिन् अिन्दि रब्बिना''**— चाहे उसके बाज़ हिस्सों के मानी बिलकुल स्पष्ट और ज़ाहिर हों और चाहे उसके बाज़ हिस्सों के अर्थ में कुछ शुब्हः और कुछ छिपा हुआ अर्थ हो। सर्वनाम अल्लाह की किताब की ओर है।

१८६ (जो दीन के विषय में बुद्धि और समझ से काम लिया करते हैं)— बयान सद्बुद्धि रखने वालों की आदत का है कि उन लोगों ने जब क़ुर्आन के संकलन और सम्पूर्ण को अल्लाह का कलाम मान लिया, तो अब उसके किसी भाग के विषय में भी अविश्वास और सन्देह दिल में नहीं रहा और वह दिल में शक नहीं लाते।

१८७ यानी हमको उस सीधे रास्ते पर क़ायम रख और हमारा हाल कहीं यहूद और नसारा-जैसा न हो जाए, जो किताब और नबूवत के बाद भी गुमराह हो गये। यह सारी दुआ **''अर्रासिखून फ़िल्अिल्मि''** की ज़बान से है यानी दीन के इल्म में जो परिपक्व है उनकी ज़बान से। यह लोग अपने इल्म की पुख़्तगी (परिपक्व होने) और अपनी जानकारी में प्रवीण होने पर इतराते नहीं, बल्कि उस नेमत के पतन के डर से हमेशा घबराते रहते हैं। **'मिल्लदुन्क रह्मत'**— उन्हें स्वयं अपने अमल पर नाज़ या दावा नहीं होता। यह नहीं कहते हैं कि हमें हमारे अच्छे अमल के इनाम में सीधी राह पर क़ायम रख, बल्कि कहते हैं कि केवल अपनी दया और मेहरबानी से, अपनी कृपा और इनायत से हिदायत के मार्ग पर जमाये रख। गोया इसमें दुनिया के अदब की शिक्षा आ गयी।

१८८ (तो ऐसे के लिए इस प्रार्थना का स्वीकार कर लेना मुश्किल क्या है?) क़ुरतबी ने कहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि जाहिल सूफ़ियों और बातिनी मज़हब वालों और झूठे मत वालों ने इस आयत से यह मनघड़ंत मसला निकाला है कि इल्म वह है जो अल्लाह की ओर से केवल प्राप्त हुआ हो, प्रयास करके न प्राप्त किया गया हो और जो इल्म किताबी है, वह तो पर्दे के माने में आ जाता है यानी उससे ख़ुदा और बन्दे के बीच पर्दा हो जाता है।

१९९ (अतः क़ियामत का आना सत्य है और उसकी याद बन्दों को आना और उसका प्रबन्ध करना ज़रूरी है।) कामिल मोमिनों की यह दुआएँ आख़िरत के डर से होती हैं, किसी माद्दी दुनियावी ग़रज़ से नहीं। **'जामिअुन्नासि'**— यानी लोगों की मृत्यु के पश्चात् उठानेवाला और एकत्रित करनेवाला।

२०० (जैसा कि बाज़ जाहिली जातियों और फ़िरक़ों ने गुमान कर रखा है।) जाहिली जातियों के अजीब अक़ीदों में से यह अक़ीदे भी हैं कि ख़ुदा के लिए जाइज़ है कि वादा करके भूल जाए या वादे का पूरा करना उसे उसकी इच्छा के विपरीत नज़र आए, इसलिए उसे टाल जाए और अफ़्सोस है कि बाज़ मुसलमान कहलानेवाले फ़िरक़े भी इन ग़लत बातों का अनुसरण करने लगे हैं। **'ख़लक़ वईद'** का मस्अला जो अहले सुन्नत के यहाँ है, वह इससे बिलकुल अलग है और उससे अल्लाह तआला की शान में कोई कमी करने का अर्थ नहीं निकलता, बल्कि उसकी शान और अज़मत कुछ और बढ़ ही जाती है।

२०१ (आख़िरत के आलम में) **'अन्नारु'**— यानी जहन्नम की आग। जहन्नम की आग के अज़ाब पर तौरेत तथा इन्जील के हवाले प्रथम पारे में आ चुके हैं। जहाँ आयतें करीमा **'फ़त्तक़ुन्नार'— 'वल्हिजारः'** के अन्तर्गत। **'मिनल्लाहि'**— यानी अज़ाबे इलाही से न बचा सकेंगे। **'लन् तुग़्निय अन्हुम्'**— बाज़ जाहिली जातियों का एक अक़ीदः यह भी रहा है कि नर सन्तान अगर मरे हुए माता-पिता की ओर से दान-पुण्य कर दे, तो माता-पिता को मोक्ष प्राप्त हो जाएगा। चाहे वह दुनिया से ईमान से वञ्चित रहकर ही चले गये हों। **''अिन्नल्लज़ीन कफ़रू''**— सवाल हुआ है कि कौन से काफ़िर यहाँ मुराद हैं? विभिन्न उत्तर दिये गये हैं, परन्तु सत्य यह है कि क़ुर्आन के शब्द आम हैं, काफ़िरों की हर क़िस्म उसमें आ जाती है।

२०२ (पापियों, अपराधियों और विद्रोहियों को) **'ज़ुन्तिक़ामित्'** पर हाशिया अभी गुज़र चुका है। अल्लाह कोई विवश और सर से पैर तक विनम्रता रखनेवाला महात्मा नहीं है कि बन्दों को हर प्रकार के अत्याचार और कठोरता करते हुए देखता रहे और साँस न ले। जब वह अन्ततोगत्वा सज़ा देने पर आ जाता है तो सबको पता चल जाता है कि कोई उसकी पकड़ से बढ़कर पकड़ नहीं है। **'कदअबि'**— **'दअबि'** के मानी हालत या मामले के हैं। 'काफ़' (ك)यह मिसाल निरर्थक होने में है। गोया इतिहास से शहादत (गवाही) ली गयी है कि जिस प्रकार भूतकाल में फ़िर्औनियों के काम, उनका माल, सन्तानें और धन कुछ नहीं आ सका और अल्लाह के अज़ाब से उन्हें कोई बचा नहीं सका, इसी प्रकार इन काफ़िरों के हक़ में सारे माद्दी साज़ोसामान और सहारे व्यर्थ सिद्ध होंगे। **'आलि फ़िर्औन'**— फ़िर्औन और उसकी क़ौम पर प्रथम पारे में विवरण-सहित हाशिए गुज़र चुके हैं। उनकी तबाही के वर्णन में एक मुनासिबत यह भी है कि मसीही भी यह तस्लीम करते हैं और उनको मान्य है कि इस प्रकार फ़िर्औनी तबाह और हलाक किये गये। सूरत का सम्बोधन मसीहियों की ओर है। **'अल्लज़ीन मिन् क़ब्लिहिम्'**— यानी वह अनाज्ञाकारी जातियाँ, जो मूसा नबी के समय के पूर्व थीं। **'आयातिना'**— यह निशानियाँ चाहे आसमानी किताबों या लेखों के रूप में हों या मोजिज़ों और नबूवत की उन महिमाओं में से हों जो साधारण स्थितियों से अलग होती हैं या तौहीद की दलीलों के रूप में हों। **'फ़ अख़ज़हुमुल्लाहु बि ज़ुनूबिहिम्'**— और उन्हें उनकी नाफ़र्मानियों की सज़ा के रूप में उनकी सारी शानोशौकत, बड़ाई और बड़प्पन के साथ बरबाद कर दिया। सम्बोधन सच्चे दीन से दुश्मनी और जलन रखनेवालों से है रसूल के माध्यम से।

२०३ **'तुह्शरून अिला जहन्नम'** का सम्बन्ध तो ज़ाहिर है कि आख़िरत ही से है। सवाल आयत की पहली चेतावनी **'सतुग़्लबून'** से सम्बद्ध है कि उस समय के जो दीन के शत्रु थे, उनके पराजित होने और उन पर अज़ाब होने की तहक़ीक़ कहाँ होगी? आख़िरत में तो ख़ैर होगी ही, परन्तु क्या सच्चाई पर चलने वालों के हाथों इस दुनिया में भी होगी? तफ़्सीर करनेवालों ने इसका उत्तर सर्वसम्मति से हाँ में दिया है। यह भी वज़ाहत की है कि इसका वक़ू (घटित होना) निकट भविष्य में इस दुनिया में होगा, चुनांचिः हुआ। **'अिन्नल्लज़ीन कफ़रू'**— यह कि इससे काफ़िरों का कौन सा गरोह नियत रूप से माना गया है। बाज़ ने इस भविष्यवाणी को जंग बद्र में मुश्रिकों की हार से सम्बद्ध किया है। परन्तु बाज़ों ने मदीने में यहूद के शक्तिशाली जत्थों और जिर्गों (दलों) की हार और बरबादी मुराद लिया है। **'सतुग़्लबून'**— में 'स' निकट भविष्य में घटित होने के लिए है यानी इस दुनिया में इसको अवश्य देखा जा सकेगा। अच्छा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह होगा कि इस शब्द के माने आम रखे जाएँ और यहूद तथा मुश्रिक जो भी रसूलल्लाह (स०) के समय में मुसलमानों के हाथों पराजित और ज़लील हुए सबको आयत के अन्तर्गत ही माना जाए। बहरहाल क़ुर्आनी भविष्यवाणी का एजाज़ी रंग हर सूरत में ज़ाहिर है।

२०४ (जो शैतान की राह में लड़ रहा था।) इशारा बद्र की लड़ाई की ओर है जो सन् २ हिजरी या सन् ८ नबवी में हुआ था। **'लकुम्'**— यहाँ विशेष सम्बोधन मदीने के यहूद से है जिनको अपनी लड़ाई की कला पर बड़ा घमण्ड था। **'आयतुन्'**— निशान अल्लाह की शक्ति और उसके कार्य-कलापों और रसूल (स०) की सदाक़त और सच्चाई का। **'फ़ी फ़िअतैनि'**— यानी दो गिरोहों की घटना में एक गिरोह बे-सरोसामान मोमिनों का, दूसरा गिरोह मुश्रिकों का जो पूरे साजसज्जा के साथ लड़ने आये थे। **'फ़िअतुन् तुक़ातिलु फ़ी सबीलिल्लाहि'**— यह गिरोह मोमिनों का था, संख्या में कम, साज-सज्जा में न्यून, कुल ३१२ व्यक्ति, लड़ाई का सामान अस्त्र-शस्त्र न होने के बराबर, ऊँट इतने कम कि चार पियादों पर एक ऊँट पड़ता था, घोड़े कुल दो। लोहे की ज़िरिहें (कवचें) केवल सात। **'व उख़रा काफ़िरतुन्—'** यह सेना रियासतें मक्का की थी। तीन गुनी संख्या, यानी ९५०, क़ुरैश के बेहतरीन सवारों की कमान में और हर आवश्यक अस्त्र, शस्त्र से सुसज्जित, ऊँट सवार ७०० थे और घोड़सवार ज़िरिह पहने हुए १०० थे।

२०५ (परन्तु यह संख्या और सामान काम न आया। पराजय हुई और अपमान भी।) **'यरौनहुम् रअ्यल्‌अैनि'**— यानी यह केवल भ्रम और विचार ही नहीं था, बल्कि वास्तव में देख रहे थे। **'रूयत'** आयत में रूयतें चश्म यानी आँख के लिए है। **'यरौनहुम् मिस्लैहिम्'**— कौन किसको कई गुना देख रहे थे? सवालों के जवाब या सर्वनाम के नियत करने में तफ़्सीर करनेवालों के बीच बड़ा मतभेद है, परन्तु सबसे आसान और निःसंकोच तरकीब वह है जो इमाम इब्ने जरीर तिब्री ने अपनाई है और वही यहाँ ले ली गयी है। अल्लामा आलूसी ने भी इसी को सद्दी ताबेई के सन्दर्भ से अपनाया है। **'मिस्लैनि'** से मुराद दो गुनी भी ली गयी है और तिगुनी भी और केवल संख्या की अधिकता भी बिना किसी संख्या के नियत किए हुए।

२०६ (अतः इस अवसर पर उसकी इच्छा मोमिनों की सहायता से सम्बद्ध हो गयी और काफ़िरों के काम न उनकी तैयारियाँ आयीं, न उनकी भारी संख्या ही। **'मंय्यशा'उ'** इस टुकड़े ने स्पष्ट कर दिया कि इस समर्थन का नियत होना इस लोक में सृष्टि की मस्लहत यानी ईश्वरेच्छा के आधार पर होती है। यह आवश्यक नहीं कि हर हाल में समर्थन और सहायता सत्यवादियों की ही हो।

२०७ यानी बड़ा पाठ हिदायत का उन लोगों के लिए है, जो सूझ-बूझ एवं बुद्धिमत्ता से काम लेते हैं।

२०८ और इन्हीं सब चीज़ों का स्नेह जाइज़ सीमा से बढ़ जाने पर पाप और गुनाह का कारण बन जाता है **'लिन्नासि'**— **'अन्नासि'**— का अर्थ यहाँ सम्बन्धित एवं सद्बुद्धि वाले लोग हैं, बच्चे और मज्नूं (पागल) पृथक् हो गये। **'हुब्बुश्शहवाति'**— **'शहवाति'**— यानी दिल को पसन्द आनेवाली चीज़ें इन पसन्द आनेवाली चीज़ों का नाम केवल उदाहरणार्थ ले लिया गया है नमूने के रूप में। शौक़ और पसन्द की चीज़ों का विवरण नहीं करना है। **'अल्-ख़ैलिल्-मुसव्वमति'**— यानी निशान किए हुए घोड़े जो घोड़दौड़ में काम करते थे, जो बड़ी मूल्यवान एवं क़द्र के योग्य समझे जाते थे। **'ख़ैल'**— बहुवचन संज्ञा है। माने सवारी और सवार दोनों हैं। **'ज़ुय्यिन लिन्नासि'**— इससे ज़ाहिर हो गया कि इन चीज़ों का चाव मनुष्य के लिए एक प्राकृतिक मामला है, स्वयं गुनाह की बात नहीं। मनुष्य को चाहिए कि वह इन्हें सद्बुद्धि और शरीअत के हुक्मों के अधीन रखे। **'मिनन्निसा'अि'**— औरतों का वर्णन शायद इसलिए सबसे पहले किया है कि यही आनन्द सारे आनन्दों में सर्वोच्च है।

२०९ (अतः इस हक़ीक़त को समझकर उनकी मुहब्बत जाइज़ सीमा के भीतर रखनी चाहिए।) **'मता'**— कहते ही उस चीज़ को हैं जिससे किसी रूप में लाभ कुछ समय के लिए हासिल किया जाए। **'मताअुल्-हयातिद्दुन्या'**— मक़्सूद यह है कि यह और इस प्रकार की चीजें ज़्यादा दिल लगाने के क़ाबिल नहीं हैं, हाँ दुनियावी ज़िन्दगी बरतने में लाभदायक एवं सहायक अवश्य हैं। अतः उनकी क़द्र उसी हद तक करनी चाहिए, ऐसा न हो कि यही जीवनोद्देश्य बन जाएँ। दुनिया स्वयं ही मिट जानेवाली है और उसके यह सारे साज़ोसामान भी मिट जानेवाले हैं।

२१० (अतः हमेशा रहनेवाली और अनादि काल तक अवशेष राहत की चिन्ता और उसी की व्यवस्था के लिए केवल अल्लाह की ख़ुशी की चिन्ता करनी चाहिए। उसके आगे दुनिया की मिट जानेवाली हर लज़्ज़त व्यर्थ है।) इमाम राज़ी ने इसके अन्तर्गत एक बारीक बात ख़ूब लिखी है कि मानव की वास्तविक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जगह, जहाँ उसे लौटकर जाना है, जन्नत है; क्योंकि अल्लाह ने खिलक़त की उत्पत्ति रहम ही के लिए की है, न कि अज़ाब के लिए; और दोज़ख, जो एक जगह है लौटने की, वह तो केवल दूसरी हैसियत है।

२११ (क्या कैफ़ीयत एवं आनन्द के लिहाज़ से, क्या मात्रा के हिसाब से और क्या उसकी स्थिरता तथा उसकी हमेशगी के विचार से) रसूल (स०) के माध्यम से। **'ज़ालिकुम्'**— यानी यह चीज़ें जो सर ता सर मिट जानेवाली और निरर्थक हैं।

२१२ **'अल्लज़ीनत्तक़ौ'** यानी जो लोग अपने परवरदिगार से डरते रहते हैं। खुदा के खौफ़ से अल्लाह की रहमतों का नाज़िल होना (उतरना), यह ऐसी चीज़ है जिसका ज़िक्र अलावा क़ुर्आन मजीद के पिछली पुस्तकों में भी आया है और बार-बार आया है। तौरेत के हवाले प्रथम पारे में गुज़र चुके हैं। मसीहियों के भी पुराने लेख खौफ़ और डरते रहने के ज़िक्र से खाली नहीं हैं। "और उसकी दया, जो उससे डरते रहते हैं, उन पर पीढ़ी दर पीढ़ी रहती है।" (लूक़ा १:५)। "आओ अपने-आप को हर प्रकार की जिस्मानी गन्दगी से पाक कर दें और खुदा के खौफ़ के साथ पवित्रता को कमाल तक पहुँचायें।" (करन्थून–१:७)। "वह समय आ पहुँचा है कि तेरे बन्दे नबियों और पवित्रों और उन छोटे-बड़ों को जो तेरे नाम से डरते हैं, बदला दिया जाए।" (मकाशफ़ः, ११:१८)।

२१३ (उनके लिए जन्नत में) **'मुतह्हरतुन्'**— पाकसाफ़ की हुई हर जिस्मानी गन्दगी और नापाकी से। क़ुर्आन मजीद ने बार-बार ज़ोर दिया है कि जन्नतवालों के लिए राहत एवं आनन्द की व्यवस्था हर प्रकार से होगी। माद्दी मज़ों का भी, ज़ेह्नी आनन्द का भी, रूहानी स्वाद का भी। फिर अगर वहाँ उन्हें बीवियाँ भी प्रदान हों, हर प्रकार से पाक, साफ़ और विवाहित जीवन का पूरी तरह आनन्द लेने का अवसर प्राप्त हो तो इसमें "रौशनखयाली" के आखिर शरमाने की कौन सी बात है?

२१४ (जो निचोड़ है और इत्र है सारी नेमतों, लज़्ज़तों और राहतों का।)

२१५ (और उनके हालात, बातों और आमाल के एक-एक अंश से परिचित है और पूरी तरह खबरदार है।) अतः इस बात का भय ही नहीं है कि कोई छोटी से छोटी चीज़ भी हिसाब या बदला देने से छूट जाए।

२१६ यह कहनेवाले कौन हैं? वही हैं जिनका ज़िक्र **"अल्लज़ीनत्तक़ौ"**— के अन्तर्गत चल रहा है। यह अपने आमाल और हालात पर नाज़ करना अलग रहा, उलटे खौफ़े खुदा और उसके रोब और भय से अपनी नजात और सुन्दर अन्त की प्रार्थना किया करते हैं। **'आमन्ना'**— यानी हम अल्लाह और उसके रसूल और उसकी शरीअत पर ईमान ले आये। **'आमन्ना फ़ग़्फ़िर्लना'**— ईमान पर तुरन्त नजात की माँग की व्यवस्था करने में बारीकी यह है कि नजात में अस्ल रुकावट ईमान का न होना ही तो है। जब यह रुकावट दूर हो गयी तो अब क्या है? अब हमारी शेष खताओं और त्रुटियों को तो क्षमा कर ही दीजिए। ईमान बहुत बड़ी नेमत है और इसकी अत्यन्त अहमीयत इस आयत से प्रकट हो रही है। इमाम राज़ी ने इस मौक़े पर बड़ी अच्छी व्याख्या की है। **'ज़ुनूबना'**— 'ज़ुनूब' के अन्तर्गत बड़े और छोटे गुनाह सभी आ गये।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३३५ से)

की गवाही लिखित तर्क का दर्जा रखती है और क़ुदरती चीज़ों का तर्क बौद्धिक तर्क है। शहादत (गवाही) से मुराद वह गवाही है जो या तो देखने से प्राप्त हो या बुद्धिमत्ता से– चाहे महसूस करने से या अर्थ के रूप में सूझ-बूझ के ज़रीए। **'अल्मला'अिकतु'** यह वही मख्लूक़ है जिसे अक्सर मुश्रिक़ क़ौमें देवता की उपाधि देकर खुदा का शरीक समझ रही हैं। **'अुलुल्-अिल्मि'** "इल्म" से मुराद सत्य का ज्ञान है, दुनियावी ज्ञान नहीं और न अनुभवी ज्ञान। तहक़ीक़ करनेवालों ने इस आयत से आलिमों की विशेष बड़ाई और फ़ज़्ल का पहलू निकाला है।

२१९ [सारी कायनात (सृष्टि) का] **'क़ा'अिमम्-बिल्क़िस्ति'**— न्याय से मुराद है कि हर चीज़ अपने उचित स्थान में हो। बाज़ जाहिली क़ौमों ने खुदा के अस्तित्व को तो स्वीकार किया है, परन्तु ऐसा अस्तित्व जो मुअत्तल हो या ऐसे गुणों से सृजित हो जो खुदा के कमालों के विरुद्ध हैं। इस्लाम का खुदा मुअत्तल खुदा नहीं है। वह व्यवस्था करनेवाला है, हर कार्य को बनानेवाला, करनेवाला और हर कार्य पर हावी है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३३६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्साबिरीन वस्सादिक़ीन वल्क़ानितीन वल्मुन्फ़िक़ीन वल्मुस्तग़्फ़िरीन
बिल्अस्हारि (१७) शहिदल्लाहु अन्नहू ला अिलाह अिल्ला हुव ला
वल्मलाअिकतु व अुलुल्अिल्मि क़ाअिमम्-बिल्क़िस्ति त ला अिलाह अिल्ला
नि. १/२ हुवल्-अज़ीज़ुल् हकीमु त (१८) अिन्नद्दीन अिन्दल्लाहिल् - अिस्लामु क़िफ़
व मख़्तलफ़ल्लज़ीन अूतुल्किताब अिल्ला
मिम्बअ्दि मा जाअ हुमुल्अिल्मु बग़्यम्बैनहुम् त
व मंय्यक्फ़ुर् बि आयातिल्लाहि फ़ अिन्नल्लाह
सरीअुल्हिसाबि (१९) फ़ अिन् हाज्जूक
फ़ क़ुल् अस्लम्तु वज्हिय लिल्लाहि व
मनित्तबअनि त व क़ुल् लिल्लज़ीन अूतुल्किताब
वल्अुम्मिय्यीन अ अस्लम्तुम् त फ़ अिन्
अस्लमू फ़ क़दिह्तदौ ज व अिन् तवल्लौ
फ़ अिन्नमा अलैकल्बलाग़ु त वल्लाहु
बसीरुम्-बिल्अिबादि (२०) अिन्नल्लज़ीन
रु. २/१० आ ११ यक्फ़ुरून बि आयातिल्लाहि व यक़्तुलूनन्नबिय्यीन
बिग़ैरि हक़्क़िन् ला ०व यक़्तुलूनल्लज़ीन

الصّٰبِرِيْنَ وَالصّٰدِقِيْنَ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْمُنْفِقِيْنَ وَالْمُسْتَغْفِرِيْنَ
بِالْاَسْحَارِ ﴿١٧﴾ شَهِدَ اللّٰهُ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ وَالْمَلٰٓئِكَةُ وَاُولُوا الْعِلْمِ قَآئِمًا
بِالْقِسْطِ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿١٨﴾ اِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ
الْاِسْلَامُ وَمَا اخْتَلَفَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ اِلَّا مِنْ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ
الْعِلْمُ بَغْيًا بَيْنَهُمْ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ فَاِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿١٩﴾
فَاِنْ حَآجُّوْكَ فَقُلْ اَسْلَمْتُ وَجْهِيَ لِلّٰهِ وَمَنِ اتَّبَعَنِ وَقُلْ لِّلَّذِيْنَ
اُوْتُوا الْكِتٰبَ وَالْاُمِّيّٖنَ ءَاَسْلَمْتُمْ فَاِنْ اَسْلَمُوْا فَقَدِ اهْتَدَوْا وَاِنْ
تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا عَلَيْكَ الْبَلٰغُ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِالْعِبَادِ ﴿٢٠﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْفُرُوْنَ
بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُوْنَ النَّبِيّٖنَ بِغَيْرِ حَقٍّ وَّيَقْتُلُوْنَ الَّذِيْنَ يَاْمُرُوْنَ
بِالْقِسْطِ مِنَ النَّاسِ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ﴿٢١﴾ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ
حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ وَمَا لَهُمْ مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ﴿٢٢﴾
اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ اُوْتُوْا نَصِيْبًا مِّنَ الْكِتٰبِ يُدْعَوْنَ اِلٰى كِتٰبِ اللّٰهِ
لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ يَتَوَلّٰى فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ وَهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٢٣﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ
قَالُوْا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا مَّعْدُوْدٰتٍ وَّغَرَّهُمْ فِيْ دِيْنِهِمْ
مَّا كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ ﴿٢٤﴾ فَكَيْفَ اِذَا جَمَعْنٰهُمْ لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ فِيْهِ وَ
وُفِّيَتْ كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ﴿٢٥﴾ قُلِ اللّٰهُمَّ مٰلِكَ
الْمُلْكِ تُؤْتِي الْمُلْكَ مَنْ تَشَآءُ وَتَنْزِعُ الْمُلْكَ مِمَّنْ تَشَآءُ وَتُعِزُّ

यअ्मुरून बिल्क़िस्ति मिनन्नासि ला फ़ बश्शिर्हुम् बि अज़ाबिन् अलीमिन्
(२१) अुलाअिकल्लज़ीन हबितत् अअ्मालुहुम् फ़िद्दुन्या वल्-आख़िरति ज व
मा लहुम् मिन्नासिरीन (२२) अलम् तर अिलल्लज़ीन अूतू नसीबम् - मिनल्-
किताबि युद्अौन अिला किताबिल्लाहि लि यह्कुम् बैनहुम् सुम्म यतवल्ला
फ़रीक़ुम्मिन्हुम् व हुम् मुअ्रिज़ून (२३) ज़ालिक बि अन्नहुम् क़ालू लन्
तमस्सनन्नारु अिल्ला अय्यामम्-मअ्दूदातिन् , व ग़र्रहुम् फ़ी दीनिहिम् मा
कानू यफ़्तरून (२४) फ़ कैफ़ अिज़ा जमअ्नाहुम् लि यौमिल्-लारैब फ़ीहि क़िफ़
व वुफ़्फ़ियत् कुल्लु नफ़्सिम्मा कसबत् व हुम् ला युज़्लमून (२५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सन्तोष रखनेवाले हैं और सच्चाई पर चलनेवाले हैं और विनम्रता प्रकट करनेवाले
हैं और ख़र्च करनेवाले हैं और पिछले पहरों गुनाहों से बख़्शिश चाहनेवाले हैं[२१७]। (१७)
अल्लाह की गवाही है कि कोई माबूद (पूजनीय) नहीं सिवाय उसके। और फ़िरिश्तों
और इल्मवालों की (भी गवाही यही है)[२१८], वह न्याय से प्रबन्ध रखनेवाला माबूद
है[२१९]। कोई माबूद नहीं है सिवाय उस महान् बुद्धिवाले के[२२०]। (१८) ● यक़ीनन् ● नि. १/२
(अवश्यमेव) दीन तो अल्लाह के नज़दीक इस्लाम ही है[२२१]। और जो मतभेद किया इसमें
किताबवालों ने सो वह आपस की ज़िद से किया[२२२] बाद उसके कि सही इल्म उन्हें पहुँच
चुका था। और जो अल्लाह की आयतों से इन्कार करेगा सो अल्लाह यक़ीनन् जल्द हिसाब
लेनेवाला है[२२३]। (१९) फिर अगर यह लोग आपसे हुज्जत किये जायँ[२२४] तो ख़ैर, आप
कह दीजिए कि मैं तो अपना रुख़ अल्लाह की तरफ़ कर चुका और जो मेरे अनुयायी हैं (वह
भी)[२२५]। और आप किताबवालों से और उम्मियों से पूछिए कि क्या तुम इस्लाम लाते
हो[२२६]? सो अगर वह इस्लाम ले आये तो बस हिदायत के मार्ग पर आ गये[२२७]; और ★
यदि वह मुँह फेरे रहे तो आपके ज़िम्मे केवल तब्लीग़ (पैग़ाम पहुँचाना) ही है[२२८]। और रु. २/१०
अल्लाह अपने बन्दों को ख़ूब देखते रहनेवाला है[२२९]। (२०) ★ आ ११

बेशक जो लोग अल्लाह की आयतों से इन्कार करते हैं और पैग़म्बरों को अनायास हलाक कर डालते हैं[२३०] और उन लोगों को जो न्याय का आदेश देते हैं उन्हें मार डालते हैं, बस आप उन्हें भयंकर अज़ाब की ख़ुशख़बरी सुना दीजिए[२३१]। (२१) यही वह लोग हैं जिनके आमाल दुनिया और आख़िरत में अकारथ गये, और उनका कोई मददगार न होगा[२३२]। (२२) क्या आपने उन लोगों को नहीं देखा जिन्हें किताबे इलाही से हिस्सा दिया गया था। उन्हें अल्लाह की किताब की ओर बुलाया जाता है कि वह उनके बीच फ़ैसला करे, फिर उनमें से एक फ़रीक़ (पक्ष) ध्यान न देता हुआ मुँह फेर लेता है[२३३]। (२३) यह इस कारण से कि यह लोग कहते हैं कि हमको आग छुयेगी भी नहीं सिवाय चन्द गिने हुए दिनों[२३४] के, और जो कुछ यह तराशते रहते हैं उसने उन्हें उनके दीन के बारे में धोखे में डाल रखा है[२३५]। (२४) सो उस दिन, जिसमें ज़रा सन्देह नहीं, जब हम उन्हें इकट्ठा करेंगे तो क्या हाल होगा[२३६]। और हर शख़्स को, जो कुछ उसने किया है, उसका पूरा-पूरा बदला दिया जायगा और उन पर ज़रा ज़ुल्म न किया जायगा[२३७]। (२५)

---

२१७ नजात पानेवालों और ख़ुदा की नज़दीकी रखनेवालों के कितने दल इस एक आयत के भीतर गिनती में आ गये। **'सहूर'** नाम उस समय का है जब रात का अँधेरा सुबह के प्रकाश से मिल रहा हो। आख़िरँ शब्द— रात्रि के अन्त की विशेषता इसलिए है कि वह समय ख़ास तौर पर मन की शान्ति तथा आत्मिक अज़्वों के जागने और उन्नति प्राप्त करने का होता है और आत्मा पर उस समय का उठना कष्टदायक भी अधिक होता है। यह अर्थ नहीं हैं कि गुनाहों से तौबा उस समय के अलावा और किसी समय हो ही नहीं सकती। पिछले पहर तौबा और गुनाहों से माफ़ी माँगने में व्यस्त रहनेवाले। यह नहीं कि नाच-रंग की महफ़िलों को सुशोभित करनेवाले, मुशाइरे और क़व्वालियों की मज्लिसें जमानेवाले। **'अस्साबिरीन वस्सादिक़ीन'** यानी सब्र करनेवाले और सच्चाई बरतनेवाले अपने सारे मामलों में। **'अल्क़ानितीन'** यानी विनम्रता करनेवाले। अल्लाह के हुज़ूर **'अल्मुन्फ़िक़ीन'** यानी ख़र्च करनेवाले अल्लाह की राह में। इसके अन्तर्गत वह तमाम नेक और जाइज़ ख़र्च आ गये जो इन्सान अपने ऊपर, अपने बीवी-बच्चों पर या ज़कात तथा जिहाद आदि पर करता है। अल्लाह को पहचाननेवालों ने कहा है कि यह तमाम गुण औलियाए अल्लाह के होते हैं। इमाम राज़ी ने कहा है कि मेरे विचार में इन पाँचों सिफ़तों में से कोई एक सिफ़त किसी में मौजूद हुई तो वह भी इसी बदले और इसी तारीफ़ में प्रवेश पाएगा।

२१८ (अतः सिर्क हर प्रकार तथा हर दर्जे का असत्य है और झूठा है।) **'शहिदल्लाहु'** अल्लाह की यह गवाही आसमानी किताबों से भी ज़ाहिर हो रही है और सृष्टि की पुस्तक से भी। अल्लाह की किताबों

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३३३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३३३ से)

२२० (इसलिए कि उसे किसी साझीदार की आवश्यकता ही नहीं, न बल के लिहाज़ से, न इल्म के एतबार से।) **'अलअ़ज़ीज़'**— वह जिसका बल सब पर हावी है और उस पर कोई हावी नहीं। **'अल्हकीमु'**— वह जिसकी हिकमत सबसे बढ़ी हुई है।

२२१ (न कि केवल हर वह चीज़ जिसे दीन का नाम दे दिया जाए।) यह खण्डन है बादशाह अकबर और उस-जैसे दूसरे बे-दीनों के इस अक़ीदे का कि हर दीन सच्चा दीन है और अल्लाह का दीन है। और हर मत ख़ुदा ही का मत है, उसी का मार्ग है। या काबा और कलीसा, कुफ़्र और ईमान में केवल शाब्दिक एवं परिभाषाई अन्तर है। सीधी रेखा ख़ुदा और बन्दे के बीच केवल एक ही है और वह इस्लाम है जो नबियों और दीन की हिदायत देनेवालों का हमेशा से चला आ रहा है। **'अद्दीन'** यानी पसन्द किया हुआ दीन और **'अल्इस्लाम'** दोनों का एकत्र होना विशेषता का अर्थ पैदा करता है यानी पसन्दीदा दीन केवल यही है और क़ुर्आनी टुकड़ा वाक्य का यही अर्थ रखता है कि इस्लाम के अलावा कोई सा भी दीन अल्लाह के यहाँ पसन्दीदा नहीं है, न स्वीकृत है।

२२२ (न कि किसी मनन किए हुए प्रयास और सूझ-बूझ में मतभेद के आधार पर) यहाँ एक बार इसे खोलकर फिर बयान कर दिया है कि किताबवालों का सत्य के मार्ग से हटना किसी 'ख़ताए इज्तिहाद' यानी मनन करके किसी नयी बात के पैदा होने के आधार पर नहीं है, केवल शत्रुता और भ्रम तथा वहम की पूजा करने के कारण है। यहूद पहले से भी यही कहते चले आ रहे थे कि सत्य का रास्ता हमारा ही रास्ता है। क्योंकि अमुक-अमुक बुज़ुर्ग हमारे पूर्वज हुए हैं और सृष्टि के सरदार यानी रसूल (स०) के ज़माने में भी उनका कहना यह था कि नबूवत तो इस्राईलियों का ही हक़ रही है। यह नेमत एक इस्माईली के हिस्से में क्योंकर जा सकती है?

२२३ (और हिसाब का जो नतीजा मुन्किरों और दुश्मनी करनेवालों के साथ होनेवाला है, बिलकुल स्पष्ट है।) **'बग्यम्-बैनहुम्'** यानी नफ़्सा-नफ़्सी (आपा-आपी) और ज़िद्दमज़िद्दा आपस में भी और सच्चे दीन से भी। **'मिम्बअ्दि मा जा'अ हुमुलअिल्मु'** यानी उनको सच्चे दीन का पैग़ाम पूरी तरह पहुँचाया जा चुका और सच्चे दीन की दलीलें और उसकी सच्चाई के स्पष्ट तर्क उन्हें पहुँच चुके। यहाँ संकेत आम तौर पर अहले किताब की ओर है और विशेष रूप से नसरानी सम्बोधित हैं। **'हा'ज्जूक'**— यहाँ कठहुज्जती के मानी हैं, न कि किसी सही दलील के अर्थ में है।

२२४ (अकारण दुश्मनी के कारण और पूरे पैग़ाम के पहुँच जाने के बाद भी।)

२२५ (अब तुम मानो या न मानो तुम्हें इख्तियार है।) **'असलम्तु वज्हिय लिल्लाहि'**— पूरा रुख अल्लाह की जानिब कर लेना यानी इसका अर्थ है इस्लाम अर्थात् मैं अपना सब कुछ सुपुर्द कर चुका। 'अहले तरीक़' (अल्लाह की राह पा जानेवाले बुज़ुर्ग) ने यहीं से यह मसला निकाला है कि जब सत्य का पूरा स्पष्टीकरण हो चुके और पूरा प्रयास हो जाए, परन्तु सम्बोधित व्यक्ति फिर भी स्वीकार न करे तो अब बहस और मुबाहिसा एवं तर्क-वितर्क बन्द कर देना चाहिए।

२२६ **'अ असलम्तुम्'**— के एक साफ़ और स्पष्ट माने तो वही हैं जो ऊपर दिए जा चुके हैं, परन्तु बाज़ जानकारों ने "इस्लाम लाओ" के भी माने लगाये हैं। समझाने की दशा में भी प्रश्न करना केवल प्रश्न करना मुराद नहीं है, बल्कि चेतावनी देना है, जैसे उर्दू मुहावरे में भी चेतावनी के अवसर पर कहते हैं कि "क्यों जी! सुनते हो कि नहीं।" **'वल्उम्मिय्यीन'** बिलकुल अनपढ़ या वह लोग जो आसमानी किताबों से बिलकुल अपरिचित हैं, अनविज्ञ हैं। यानी इससे मुराद हैं मक्का के मुश्रिक लोग।

२२७ (और अब उनके मोक्ष और नजात में भी सन्देह नहीं रहा) जाहिलीयत के जीवन के दृष्टिकोण (Ideology) में इन्किलाब एवं सुधार हो जाने ही का नाम इस्लाम है, पस जिस किसी ने इस्लाम के जीवन-दृष्टिकोण को समझ लिया और उसे स्वीकार कर लिया वह किसी भी नस्ल, जाति, रंग, देश का हो हर हाल में अब उसका सम्बन्ध सृष्टि तथा उसके रचयिता के साथ सही प्रकार का स्थापित हो गया।

२२८ (और आप पर नतीजों की ज़िम्मेदारी लेश मात्र भी नहीं।) रसूल (स०) को सान्त्वना दी गई है कि अगर यह ईमान नहीं लाते तो आप उदास और चिन्तित न हों। आपका काम तो केवल पैग़ाम हक़ पहुँचा देना है।

२२९ (वह स्वयं ही सबके आमाल और हालात को देखकर उचित बदला तथा सज़ा देगा।) अल्लाह और रसूल के फ़र्क़ को, जो परस्पर है, क़ुर्आन मजीद बार-बार स्पष्ट करता चला गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२३० 'यक्फ़ुरून बि आयातिल्लाहि'— किसी अल्लाह की पुस्तक या उसके किसी अंश से इन्कार, यह सब अल्लाह की आयतों से कुफ़्र की शक्लें हैं। 'बिग़ैरि हक़्क़िन्'— यानी स्वयं क़ातिलों के भी नियमों के विरुद्ध अन्यथा नबियों का क़त्ल वास्तव में और अल्लाह की मर्ज़ी से तो हमेशा ही नाहक़ रहेगा। यहूद ने जो नबियों की हत्याएँ की हैं और नाहक़ ख़ून किये हैं उस पर हाशिए प्रथम पारे में रुकूअ, में गुज़र चुके हैं।

२३१ (आख़िरत में) 'यअ्मुरून बिल्क़िस्ति'— यानी लोगों को शिष्टाचार तथा नैतिकता और मामलों में न्याय के उपदेश देते रहते हैं। ज़ाहिर है कि इससे मुराद नबी और उनके नायब और सहायक हैं। 'यक़्तुलून'— यह सभी संकेत यहूद की हक़ दुश्मनी से सम्बद्ध हैं और उनके इतिहास की ओर हैं। अतीक़ी समय के अनेकों लेखों में यहूद की सत्य से बेज़ारी और दुश्मनी का विवरण मौजूद है, जैसे कि "वह इस बात का कीन: (द्वेष) और जलन रखते थे और रखते हैं दरवाज़े पर सज़ा देता है और वह उससे नफ़रत रखते हैं जो हक़ बात कहता है।" (अमूस ५:१)। क़त्ल यहाँ अपने अस्ली और शब्दकोश के अर्थ में है यानी मार डालने के मानी में। फ़िक़्ह की परिभाषा में मानी हैं "धार-दार आले से मार डालना" 'अज़ाबुन् अलीमुन्' ऐसे अपराधियों और ख़ताकारों पर दुनियावी लानत हजरत दाऊद नबी की पुस्तक में ब्योरेवार अंकित है— "वह शीघ्र ही घास की भाँति काट डाले जाएँगे और हरे सब्ज़े की भाँति मुरझा जाएँगे और नगर में न होगा तो ध्यान करके उसका मकान ढूंढ़ेगा और वह न होगा उनकी तलवार उन्हीं के दिलों में बैठेगी उनकी कमानें टूट जाएँगी।" (ज़बूर –१,३०,३७)। आयत से इस पर भी रौशनी पड़ती है कि पिछली उम्मतों में आदेश स्पष्ट ज़रूरी था और यह फ़र्ज़ नबी और उनके सहायक पूर्ण करते थे।

२३२ (सज़ा के समय कि उन्हें छुड़ा ले या उसमें कुछ कमी ही करा दे।) 'अअ्मालुहुम्'— मुन्किरों के वह कर्म जिन पर उन्हें दुनिया में नाज़ और गौरव था और जिन्हें वह अपनी अच्छाई और ख़ूबी समझते थे।

२३३ हक़ और हक़ की दावत देनेवालों से मुँह फेरने और लगातार उनसे दूर भागने की घटना बनी इस्राईल के इतिहास की कोई नयी बात नहीं है। उनके पवित्र लेख और पुस्तकें इन शिकायतों से भरी पड़ी हैं— "तुम काहे को मुझसे प्रेम रखोगे, तुम मुझसे फिर गये हो।" (यरमियाह २:२८,२९ और होसी, १०:-७)। विवरण प्रथम पारे के रुकूअ ६, ७ के अन्तर्गत आ चुका है। 'अलम् तर'— यहाँ सम्बोधन रसूल (स०) से है। 'अल्लज़ीन............मिनल्किताबि'— वर्णन यहूद का ही हो रहा है। 'अल्किताब'— यानी किताबें इलाही अपने आम और पूर्ण अर्थ में कि उसी का एक अंश तौरेत है। 'किताबिल्लाहि'— उसी आम और सम्पूर्ण किताब का दूसरा भाग क़ुर्आन है और वही यहाँ मुराद है। 'लि यह्कुम् बैनहुम्'— यानी धार्मिक मतभेद के विषय में फ़ैसला करे।

२३४ यानी यह विद्रोह और अत्याचार की आदत इस कारण बनी हुई है कि यह लोग अपने काफ़िर होने ही के क़ायल नहीं। 'अय्यामम्-मअ्दूदातिन्'— यानी वह चालीस दिनों की मुद्दत जो बनी इस्राईल ने गोशाला की पूजा में गुज़ारी थी। आयत का यह अंश प्रथम पारे में भी यहूद की ज़बान से नक़ल हो चुका है और वहीं इस पर विवरण-सहित हाशिया लिखा जा चुका है। यहूद का यह एक स्थायी अक़ीद: बन चुका था कि हम आख़िरत के अज़ाब से वास्तव में सुरक्षित हैं सिवाय उस थोड़े से समय के लिए जो हमारे पूर्वजों ने गोशाला की पूजा में गुज़ारे थे।

२३५ (अत: अपने मोक्ष का विश्वास किए हुए बैठे हैं।) 'मा कानू यफ़्तरून'— अक़ीदों के विषय में कोई बात अक़्ली दलील या वर्णित बात के बिना अपनी ओर से गढ़ लेना अल्लाह पर इल्ज़ाम लगाने का एक रूप है। यहूद के पथप्रदर्शकों और उनके सरदारों ने इस प्रकार के अनेक विश्वास गढ़ लिये थे और उन्हीं में एक अक़ीद: यह भी था कि यहूद पर सिवाय उस थोड़ी सी मुद्दत के, दोज़ख़ की आग हराम है। उनके लिए उनके पूर्वजों की सिफ़ारिश काफ़ी है और उनकी नजात सही ईमान और शुद्ध कर्मों के बिना भी इस्राईली नस्ल का होने के कारण हो जाएगी।

२३६ (उन बदनसीबों और शामत के मारों का) यानी क़ियामत के दिन। इस प्रकार क़ियामत का केवल वर्णन ही नहीं किया गया है, बल्कि उसके घटित होने के ज़ेह्न में ताज़ा करना मुराद है। 'फ़ कैफ़'— अज़ाब के भयंकर होने पर इस प्रकार समझाकर बल दिया गया है।

२३७ (कि किसी को ज़्यादा अपराध होते हुए सज़ा न मिले या अपराध से अधिक सज़ा मिल जाए या किसी को उसकी नेकी का बदला न मिले।) 'मा कसबत'— जो कुछ उसने प्राप्त किया है चाहे वह गुनाह हों या नेकियाँ।

Sant Ajaibsingh Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क़ुलिल्लाहुम्म मालिकल्मुल्कि तुअ्तिल्मुल्क मन् तशा'अु व तन्ज़िअुल्मुल्क
मिम्मन् तशा'अु ज व तुअिज़्ज़ु मन् तशा'अु व तुज़िल्लु मन् तशा'अु त
बि यदिकल्ख़ैरु त अिन्नक अला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन् (२६) तूलिजुल्लैल
फ़िन्नहारि व तूलिजुन्नहार फ़िल्लैलि ज व तुख़्रिजुल् - हय्य मिनल्मय्यिति
व तुख़्रिजुल् - मय्यित मिनल्हय्यि ज व
तर्ज़ुक़ु मन् तशा'अु बिग़ैरि हिसाबिन् (२७)
ला यत्तख़िज़िल् - मुअ्मिनूनल् - काफ़िरीन
औलिया'अ मिन्दूनिल् - मुअ्मिनीन ज व
मंय्यफ़्अल् ज़ालिक फ़ लैस मिनल्लाहि फ़ी
शैअिन् अिल्ला' अन् तत्तक़ू मिन्हुम्
तुक़ातन् त व युहज़्ज़िरुकुमुल्लाहु नफ़्सहू त व
अिलल्लाहिल्मसीरु (२८) क़ुल् अिन् तुख़्फ़ू
मा फ़ी सुदूरिकुम् औ तुब्दूहु यअ्लम्हुल्लाहु त
व यअ्लमु मा फ़िस्समावाति व मा
फ़िल्अर्ज़ि त वल्लाहु अला कुल्लि शैअिन्
क़दीरुन् (२९) यौम तजिदु कुल्लु नफ़्सिम्मा
अमिलत् मिन् ख़ैरिम्-मुह्ज़रन् ज सला ∴
०व मा अमिलत् मिन्सू'अिन् ज ∴ तवद्दुलौ अन्न बैनहा व बैनहू
अमदम्-बअीदन् त व युहज़्ज़िरुकुमुल्लाहु नफ़्सहू त वल्लाहु रअूफ़ुम्-
बिल्अिबादि (३०) ★ क़ुल् अिन् कुन्तुम् तुहिब्बूनल्लाह फ़त्तबिअूनी
युह्बिब्कुमुल्लाहु व यग़्फ़िर्लकुम् ज़ुनूबकुम् त वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (३१) क़ुल्
अतीअुल्लाह वर्रसूल ज फ़ अिन् तवल्लौ फ़ अिन्नल्लाह ला युहिब्बुलकाफ़िरीन (३२)
अिन्नल्लाहस्तफ़ा' आदम व नूहंव्व आल अिब्राहीम व आल अिम्रान
अलल्-आलमीन ला (३३) ज़ुर्रिय्यतम्बअ्ज़ुहा मिम्बअ्ज़िन् त वल्लाहु समीअुन्
अलीमुन् ज (३४) अिज़् क़ालतिम्रअतु अिम्रान रब्बि अिन्नी नज़र्तु लक
मा फ़ी बत्नी मुहर्ररन् फ़ तक़ब्बल् मिन्नी ज अिन्नक अन्तस्-समीअुल्-अलीमु (३५)

تلك الرسل ٣ ٤٢ ال عمران ٣

مَنْ تَشَآءُ وَتُذِلُّ مَنْ تَشَآءُ ۭ بِيَدِكَ الْخَيْرُ ۭ اِنَّكَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ
قَدِيْرٌ ﴿٢٦﴾ تُوْلِجُ الَّيْلَ فِي النَّهَارِ وَتُوْلِجُ النَّهَارَ فِي الَّيْلِ ۡ وَتُخْرِجُ
الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَتُخْرِجُ الْمَيِّتَ مِنَ الْحَيِّ ۡ وَتَرْزُقُ مَنْ تَشَآءُ
بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٢٧﴾ لَا يَتَّخِذِ الْمُؤْمِنُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ
دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَلَيْسَ مِنَ اللّٰهِ فِيْ
شَيْءٍ اِلَّآ اَنْ تَتَّقُوْا مِنْهُمْ تُقٰىةً ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ
وَاِلَى اللّٰهِ الْمَصِيْرُ ﴿٢٨﴾ قُلْ اِنْ تُخْفُوْا مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ اَوْ تُبْدُوْهُ
يَعْلَمْهُ اللّٰهُ ۭ وَيَعْلَمُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَاللّٰهُ عَلٰى
كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿٢٩﴾ يَوْمَ تَجِدُ كُلُّ نَفْسٍ مَّا عَمِلَتْ مِنْ خَيْرٍ
مُّحْضَرًا ۚ وَّمَا عَمِلَتْ مِنْ سُوْٓءٍ ۚ تَوَدُّ لَوْ اَنَّ بَيْنَهَا وَبَيْنَهٗٓ
اَمَدًا بَعِيْدًا ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌ بِالْعِبَادِ ﴿٣٠﴾ قُلْ
اِنْ كُنْتُمْ تُحِبُّوْنَ اللّٰهَ فَاتَّبِعُوْنِيْ يُحْبِبْكُمُ اللّٰهُ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ذُنُوْبَكُمْ ۭ
وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٣١﴾ قُلْ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ ۚ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّ
اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٣٢﴾ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰٓى اٰدَمَ وَنُوْحًا وَّاٰلَ
اِبْرٰهِيْمَ وَاٰلَ عِمْرٰنَ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ﴿٣٣﴾ ذُرِّيَّةً بَعْضُهَا مِنْ بَعْضٍ ۭ
وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٣٤﴾ اِذْ قَالَتِ امْرَاَتُ عِمْرٰنَ رَبِّ اِنِّىْ نَذَرْتُ
لَكَ مَا فِيْ بَطْنِيْ مُحَرَّرًا فَتَقَبَّلْ مِنِّيْ ۚ اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿٣٥﴾

منزل ١

∴ मु. क्षि मुता ख. ४ ★ रु. ३/११ आ १०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आप कह दीजिए, ऐ अल्लाह ! सारे मुल्कों के मालिक ! तू जिसे चाहे हुकूमत दे दे और तू जिससे चाहे हुकूमत छीन ले[२३८]। और तू जिसे चाहे इज़्ज़त दे[२३९] और तू जिसे चाहे अनादर दे[२४०]। तेरे ही हाथ में भलाई है। बेशक तू ही हर चीज़ पर शक्ति रखता है[२४१]। (२६) तू रात को दिन में दाखिल करता है और रात में दिन को दाखिल करता है, और तू बेजान से जानदार को निकालता है और तू जानदार से बेजान को निकालता है, और तू जिसे चाहता है बेहिसाब रोज़ी देता है[२४२]। (२७) मोमिनों को न चाहिए कि मोमिनों के होते हुए काफ़िरों को (अपना) दोस्त बनायें[२४३]; और जो कोई ऐसा करेगा, तो वह अल्लाह के यहाँ किसी गिनती में नहीं[२४४]; मगर हाँ ऐसी सूरत में कि तुम उनसे कुछ अंदेशा (नुक़्सान) रखते हो[२४५]। और अल्लाह तुमको अपने से डराता है[२४६], और अल्लाह की ही तरफ़ आना है[२४७]। (२८) आप कह दीजिए कि जो कुछ तुम्हारे सीनों में है, तुम उसे चाहे छुपाये रखो या ज़ाहिर करो, अल्लाह उसको जानता है[२४८]। और जो कुछ आसमानों में और जो कुछ ज़मीन में है, उस सबको जानता है[२४९]। और अल्लाह हर चीज़ पर पूरी क़ुद्रत रखता है[२५०]। (२९) जिस दिन हर व्यक्ति अपने हर नेक अमल को सामने लाया हुआ पायेगा[२५१]∴ और उसी प्रकार हर बुरे को काम को भी∴ (उस रोज़) वह तमन्ना करेगा कि काश उस व्यक्ति और उस फ़ासिले के बीच दूर का फ़ासिला बीच में आ गया होता[२५२] और अल्लाह तुमको अपनी ज़ात से डराता है[२५३]। और अल्लाह अपने बन्दों से बड़ा स्नेह रखने वाला है[२५४]। (३०) ★

∴ मु. अि मुताख ४ ★ रु. ३ / ११ आ १०

आप कह दीजिए कि अगर तुम अल्लाह से मुहब्बत रखते हो[२५५] तो तुम मेरा अनुसरण करो[२५६], अल्लाह तुमको चाहने लगेगा[२५७] और तुम्हारे गुनाह बख़्श देगा। और अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला, मेहरबान है[२५८]। (३१) आप कह दीजिए कि अल्लाह और रसूल की आज्ञापालन करो[२५९]। इस पर भी अगर वह मुँह फेरे रहें तो अल्लाह काफ़िरों से (ज़रा) मुहब्बत नहीं रखता[२६०]। (३२) बेशक अल्लाह ने आदम और नूह और इब्राहीम-परिवार और इम्रान-परिवार को सारे विश्व पर बड़ा किया है (इज़्ज़त दी है)[२६१]। (३३) एक दूसरे की सन्तान हैं। और अल्लाह ख़ूब सुननेवाला है, ख़ूब जाननेवाला है[२६२]। (३४) (और वह वक़्त याद करो) जब इम्रान की पत्नी ने निवेदन किया[२६३] कि ऐ मेरे परवरदिगार ! मैंने तेरी नज़र मानी है इस (बच्चे) की, जो मेरे पेट में है कि (वह) आज़ाद रखा जायेगा[२६४] सो तू (यह) मुझसे स्वीकार कर। तू तो ख़ूब सुननेवाला है, ख़ूब जाननेवाला है[२६५]। (३५)

---

२३८ रसूल (स०) के माध्यम से उम्मत को दुआ की शिक्षा दी जा रही है। **'मालिक'** 'मालिक' का शब्द दुआ के आरम्भ ही में लाकर याद दिला दिया कि मालिक होने और सम्पूर्ण अधिकार रखने का हक़ उसी को प्राप्त है जिससे दुआ की जा रही है। **'अल्मुल्कि'**— मुल्क से मुराद सारा विश्व है। **'तुअ्ति......व तन्ज़िअु'**— हुकूमत की नेमत देना या इस नेमत को छीन लेना केवल अल्लाह के हाथ में है। बादशाहीयत में अल्लाह का कोई अंश सम्मिलित नहीं है और न उसमें कोई पवित्रता ही है। इस प्रकार इस जाहिली अक़ीदे का विनाश हो जाता है कि बादशाह में कोई अंश ईश्वर का होता है या कोई बादशाह हो गया तो वह ईश्वर का अवतार बन गया। मिस्र में फ़िर्औन की पूजा होती रही। हिन्दुस्तान में चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा-महाराजा ख़ुदाई अवतार माने गये। जापान में मेकाड़ो अभी तक ख़ुदा का प्रतीक समझा जाता रहा। यह सब बादशाहपरस्ती के प्रदर्शन हैं। इस्लाम ने यह बताया कि बादशाही भी सारी नेमतों की भाँति एक ख़ुदाई नेमत और उसी की दया है। बादशाह भी बन्दगी, बेचारगी, विवशता और बेबसी में वैसा ही है जैसे दूसरे अन्य बन्दे। यह सत्य हमेशा से अपनी जगह पर स्थायी है। हमारे ज़माने में इसका नज़्ज़ारः (दृश्य) पूरी शक्ति और बल के साथ मुसोलिनी और हिटलर के अंजाम से करा दिया गया। दूसरे छोटे-छोटे डिकटेटरों का अंजाम इसके अतिरिक्त है।

२३९ (अपनी परिपूर्ण बुद्धिमत्ता के अनुसार) इस **'मन् तशाअ्'** (जिसे तू चाहे) के लागू होने की विशालता और फैलाव में क़ौमें भी आ गयीं और व्यक्ति भी और इज़्ज़त का सबसे बड़ा सम्भव दर्जा, याद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर लिया जाए कि नबूवत है। इस प्रकार गोया अहले किताब को यह भी याद दिला दिया कि जिस जाति के जिस व्यक्ति को वह चाहे नबूवत के दर्जे और मर्तबे से ऊँचा कर सकता है, इस पर जलना निरर्थक है।

२४० (उस अमल की सज़ा के रूप में) **'मन् तशाअु'** का आम तौर पर लागू होना यहाँ भी व्यक्ति और जाति दोनों पर प्रभावी है। कोई व्यक्ति तो नबूवत के दर्जे से उतारा नहीं गया है। अलबत्तः यह नेमत क़ौमों से छीनी गयी है। क़ौमें इसराईल शताब्दियों तक इस नेमत से इज़्ज़त पाने के बाद माज़ूल हो गयी और यह नेमत अपनी इन्तिहाई और अन्तिम शक्ल में इस्माईली नस्ल और जाति के एक सम्मानित व्यक्ति के भाग्य में आयी।

२४१ (तो अहलें किताब इस पर आश्चर्य क्यों कर रहे हैं कि नबूवत की नेमत से अरब के एक व्यक्ति को सरबलन्द किया जा रहा है।) **'अल्ख़ैरु'**— यानी भलाई हर प्रकार की, हर दर्जे और मर्तबे की। कायनात (सृष्टि) में माना जानेवाला अस्तित्व केवल नेकी का है, अतः उसी का वर्णन किया गया। उसके मुक़ाबले की चीज़ शर यानी बदी एक ख़त्म होनेवाली सच्चाई है। उसमें बन्दे की बेइख़्तियारी की काफ़ी दख़ल है। इससे आरिफ़ीन, सूफ़िया (सन्तों, महात्माओं) ने यह बारीकी निकाली है कि किसी चीज़ में बन्दे के इरादे एवं अधिकार को दख़ल न हो, वह केवल ख़ैर (नेकी-भलाई) ही है। उसे नागवार न जाने और उसे अपने हक़ में अज़ाब एवं मुसीबत न समझे।

२४२ (सारांश यह है कि सृष्टि की हर-हर चीज़ और उसकी हर-हर वस्तु और उनके पदार्थों का हर-हर कण तेरी ही स्वेच्छा एवं शक्ति के तावे और आधीन है।) **'तूलिजुल्लैल···तूलिजुन्नहार'**— यह सारे अधिकार ख़ुदा के हैं बिना किसी के साझे और सहायता के, केवल ख़ुदा के इरादे से रात-दिन होते रहते हैं। जाहिली क़ौमों ने रात और दिन दोनों को देवी, देवताओं की हैसियत दे रखी है। आयत में इशारतन् इन ख़ुराफ़ातों का खण्डन आ गया। **'तुख़्रिजुल्-हय्य मिनल्मय्यिति'**— उसकी एक स्पष्ट मिसाल परिन्दे को अण्डे से निकालना है और **'तुख़्रिजुल्-मय्यित मिनल्हय्यि'** इसकी स्पष्ट मिसाल परिन्दे से अण्डे की उत्पत्ति है। **'तर्ज़ुक़ु मन् तशाअु बिग़ैरि हिसाबिन्'**— सो ऐसा बलशाली ख़ुदा अगर कमज़ोरों, मजबूरों को बड़ी-बड़ी बादशाहतों का भी मालिक बना दे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। ऊपर रोज़ी बाँटने, धन-दौलत देने की जो पैदाइशी क़ैद **'मन् तशाअु'** की, जो हर जगह लगी है, उससे तहक़ीक़ करनेवालों ने यह बारीकी निकाली है कि दौलत, हुकूमत, सरदारी इत्यादि की तक़सीम केवल ख़ुदा की इच्छा से, उसकी बुद्धिमत्ता के आधार पर होती रहती है, इसका अल्लाह की निकटता या नैतिक बड़ाई इत्यादि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

२४३ (क्या ज़ाहिर में और क्या छुपे हुए) जिसे दोस्ती का तअल्लुक़ कहते हैं, वह आत्मा की एक दशा है और फिर अमली बर्ताव का नाम है। मुसलमानों को काफ़िरों, मुन्किरों तौर अल्लाह के बाग़ियों के साथ यह सम्बन्ध स्थापित करने की बिलकुल मनाही है और अक़्ली तौर पर भी यह मेली सम्मान और क़ौमी बड़ाई के विपरीत ही है। **'मिन्दूनिल् मुअ्मिनीन'**— यानी मोमिनों के होते हुए। बाज़ अहले हक़ ने यहीं से इशारा लेकर अपने मुरीदों, अक़ीदतमन्दों और शागिर्दों को मुन्किरों के साथ दोस्ती करने से मना कर दिया है।

२४४ ख़ुदा के शत्रुओं के साथ दोस्ती रखनेवाले की दोस्ती अल्लाह के साथ किसी दर्जे में विश्वसनीय नहीं और न पसन्दीदा है।

२४५ (नुक़सान से बचने के लिए ज़रूरत के अनुसार ज़ाहिरी दोस्ताना सम्बन्ध रखने की इजाज़त है।) काफ़िरों के साथ अच्छे सुलूक की तीन ही सम्भव शक्लें हैं— (१) मेलजोल या दोस्ती; (२) मुदारात (आवभगत) या ज़ाहिरी सद्व्योहार; (३) एहसान और लाभ पहुँचाना। शरीअत के आलिमों का विचार है कि अस्ली दोस्ती तो किसी भी हालत में जाइज़ नहीं। तीसरी शक्ल में कोई मतभेद नहीं है। एहसान और लाभ पहुँचाना युद्ध करनेवालों के साथ जाइज़ नहीं, शेष के लाथ जाइज़ है। रही दूसरी सूरत तो वह ब्योरा चाहती है। ख़ातिर मुदारात तीन सूरतों में दुरुस्त है— एक अपने नुक़सान को बचाने के लिए; दूसरी स्वयं उस काफ़िर की दीनी मसलहत यानी हिदायत की आशा के मौक़े पर; तीसरे काफ़िर जब मेहमान हो उस समय के लिए —इन तीन सूरतों के सिवा अपने लाभ या धन-प्राप्ति के लिए या दर्जा पाने के लिए मुदारात दुरुस्त नहीं। और जब दीन को नुक़सान पहुँचाने का अंदेशा हो तो यह दोस्ती अव्वल दर्जे में नाजाइज़ हो। **'तत्तक़ू मिन्हुम् तुक़ातन्'**— यह लिहाज़ रहे कि आयत में ज़िक्र अंदेशे का है केवल भ्रम या वहम और दूर का विचार इसके लिए काफ़ी नहीं है और यह जिस नुक़सान का ख़ौफ़ और अंदेशा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो उसे भी काफ़ी हद का होना चाहिए। यह बज़ाहिर आम है, परन्तु अहले सुन्नत ने सख़्त तक्लीफ़ की क़ैद स्पष्ट रूप से लगा दी है। आयत में एक ओर खण्डन है इमामिया फ़िरक़े का, जिसने 'तक़ीय:' की सीमाएँ बहुत विशाल करके उसे अपने मज़हब का एक भाग बना लिया है और दूसरी तरफ़ ख़ारिजियों का फ़िरक़ा है जिसने 'तक़ीय:' के जाइज़ होने से साफ़ इन्कार कर दिया है। न्याय और बीच का मार्ग न बहुत बढ़ाना, न कम करना, दोनों बातों से एक प्रकार पृथक् रास्ता अहले सुन्नत का है। रूहुल् मआनी के लेखक ने इस विषय में बहुत अच्छा लिखा है।

२४६ (कि वास्तव में अधिकार और बड़ाई वाला केवल वही है) **नफ़्सहू'**— मुराद यह है कि अल्लाह अपने अज़ाब से तुमको डराता है।

२४७ (अतः उसकी आज्ञाओं की ज़ाहिरी और छुपी हुई ख़िलाफ़वर्ज़ी और विरोध से बाज़ रहो।) रसूल (स़) के माध्यम से आम जनमानस से सम्बोधन है। हर गुनाह से बचने और सुरक्षित रहने का सबसे अच्छा ज़रीअ: यही है कि यह हर समय याद रखा जाए कि आख़िरत में प्रश्न होगा और जवाबतलबी होगी।

२४८ यानी उसका ज्ञान हर प्रकार से सम्पूर्ण है और वह आंशिक एवं सामूहिक हर चीज़ पर हावी है। हाज़िर, ग़ायब सब पर शामिल है। उसके यहाँ ज़ाहिर और छुपे हुए सब बराबर हैं। इसमें यूनान और दूसरी जाहिली क़ौमों के अक़ीदे का रद आ गया, जिनके फ़लसफ़ी ख़ुदा के ज्ञान की सिफ़त को अधूरा और सीमित माना है।

२४९ **'अस्समावाति वल्अर्ज़'** का स्पष्टीकरण केवल भाषा के मुहावरे के अनुसार है जो आसमान तथा ज़मीन को सारी सृष्टि के अर्थ में लेती है। इससे मुराद ज्ञान और इल्म की सिफ़त की परिपूर्णता और कामिलीयत है। यह मुराद कदापि नहीं है कि यदि कोई स्थान आसमान और ज़मीन से बाहर है तो उसका ज्ञान ख़ुदा को नहीं है।

२५० [और जब इल्म (ज्ञान) के साथ उसकी शक्ति भी कामिल है तो वही उसका अधिकारी है कि उसी की सज़ा से डरा जाए।] मुशरिक क़ौमों को इल्म की सिफ़त के साथ क़ुद्रत या शक्ति की सिफ़त के मामले में ठोकर लगी है, इसीलिए इन्हीं सिफ़तों पर बार-बार ज़ोर दिया गया है।

२५१ (आमाल के बदले के लिए) **'यौम'** यानी क़ियामत के दिन। **"मा अमिलत्............ मुह्ज़रन्"** यानी दुनिया में जो कुछ भी अमल किया है उसको नामए आमाल में अंकित पाएगा, या उन आमाल के बदले को देखेगा। बाज़ अल्लाह को पहचाननेवाले सूफ़ियों ने यह कार्य लगाया है कि इन्सान ठीक उस अमल को करते हुए अपने को पाएगा। अक्बर इलाहाबादी उर्दू के प्रसिद्ध शायर होने के साथ हकीम और अल्लाहवाले भी थे। फ़र्माया करते थे कि यह जो हर वक़्त हम बोला करते हैं कि "वक़्त चला गया" वक़्त जाता कहाँ है ? अल्लाह तआला के यहाँ चला जाता है और वहीं जमा रहता है। क़ियामत के दिन अल्लाह तआला उसी "वक़्त" को वापसी का आदेश देंगे। पस वह वक़्त जब आएगा तो अपने साथ शामिल जो कुछ उस वक़्त के अन्दर हो चुका है, उस सबको लिये हुए आएगा। अतः कायनात (सृष्टि) में जो कुछ होता रहा है, सब उस दिन ठीक ज्यों का त्यों दुबारा घटित होकर रहेगा।

२५२ (कि बुरे आमाल और उनके बदले का अवलोकन न करना पड़ता) यह दुःखी इच्छा उन हृदयों में उत्पन्न होगी जिनके पास अच्छे और बुरे आमाल का जोड़ होगा, तो जिस बदनसीब के पास बदी ही बदी होगी उसके दुःखों का क्या कहना।

२५३ [कि बड़ाई के योग्य और सम्मान एवं शक्तिवाली ज़ात (अस्तित्व) केवल उसी की है।] **"नफ़्सहू"** आयत का यह टुकड़ा ऊपर गुज़र चुका है।

२५४ (अतः यह बार-बार की तम्बीह और चेतावनी भी उसी स्नेह और मुहब्बत का ही परिणाम है कि काश बन्दे अब भी सँभलें और बरबादी के मार्ग पर पलने से बाज़ रहें।) शरीफ़ मनोवृत्ति के लोगों के लिए नाफ़र्मानी से बाज़ रहने के लिए केवल इस हक़ीक़त और सच्चाई को हर समय सामने रखना ही पर्याप्त है कि उनका मालिक और उनका पैदा करनेवाला कि दर्जा रहम करनेवाला और स्नेह रखनेवाला है।

२५५ [जैसा कि तुम्हारा दावा है और अपने इसी ज़ोम (भ्रम) में यह आशा करते हो कि अल्लाह भी तुमसे मुहब्बत करेगा।] यह सम्बोधन रसूल (स़०) के माध्यम से समस्त मानव-जाति से है। **'तुहिब्बून'**— मुहब्बत का जो अर्थ अरबी में है उसमें इरादे का सम्मिलित होना आवश्यक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२५६ (क्योंकि मैं मानव-जाति के सभी कमालों से परिपूर्ण करके भेजा गया हूँ और मेरी ज़िन्दगी सारी मानव-सृष्टि के लिए हर अनुभाग और जीवन के हर मार्ग में अनुसरण के लिए मेयार और आदर्श का काम देगी।) अल्लाह की मुहब्बत के दावे की परख और जाँच के लिए क्या अच्छा मेयार बता दिया गया है। यानी जितना रसूल (स०) का अनुकरण होगा, उसी क़दर उसकी ईश-भक्ति विश्वसनीय एवं मानने योग्य होगी। इसी मेयार और कसौटी पर आज बड़े-बड़े ईशप्रेमियों और मशीखत (धर्मात्माओं) का दावा करनेवालों की जाँच हो तो बहुतों की क़लई खुलकर रहे।

२५७ (कि उसके आगे और कोई कमाल का दर्जा ही नहीं।) यह तरीक़ा जो पिछलों को बताया गया यही आवाज़ अगलों के कान में डाल दी गयी है। हज़रत मसीह के जो शब्द मौजूदा अनाजील (बाइबिलों) में नक़ल किए गये हैं, वह निम्न प्रकार हैं— "यदि तुम मुझसे मुहब्बत रखते हो तो मेरे हुक्मों पर अमल करोगे और मैं बाप से निवेदन करूँगा कि वह तुम्हें दूसरा मदद करनेवाला बख़्शेगा, जो अनादिकाल तक तुम्हारे साथ रहे।" (यूहन्ना—१४:१५, १६)। यह "मददगार" का शब्द उर्दू इन्जीलों में उसके मतन में है। हाशिए में 'वकील' और "शफ़ी" (शफ़ाअत या सिफ़ारिश करता) दोनों शब्द आँकते हैं, गोया अस्ल यूनानी शब्द के यह सब अर्थ हो सकते हैं। अंग्रेज़ी इन्जील में शब्द "कम्फ़र्टर" (Comforter) आया है जिसके अर्थ हैं 'तसल्ली देनेवाला'। अतः चौथा अर्थ इस शब्द का यह हुआ। बहरहाल वह सबका मददगार और वकील और सिफ़ारिश करनेवाला और तसल्ली देनेवाला इस भविष्यवाणी करनेवाले मसीह के पाँच शताब्दी के पश्चात् आया, और एक अब्दी और कभी निरस्त न होनेवाली शरीअत लेकर हमेशा के लिए साथ रहने ही के लिए आया है और इसी पोज़ीशन को प्रोज्वलित करने के लिए **"ख़ातिमुन्नबीयीन"** कहलाया। **'युह्बिब्कुमुल्लाहु'**— अल्लाह की बड़ी मुहब्बत बन्दे के साथ यही है कि उसे बख़्शिश (मोक्ष) से सरफ़राज़ फ़रमाए (मोक्ष प्रदान करे)।

२५८ **'ग़फ़ूर'**— उसकी क्षमा करनेवाली शान का तक़ाज़ा है कि तुम्हारे गुनाहों और पापों को क्षमा कर देगा। **'रहीम'** उसकी दया और मेहरबानी की शान का तक़ाज़ा है कि स्वयं तुमसे मुहब्बत करने लगेगा। **'यग़्फ़िर्लकुम् ज़ुनूबकुम्'**— वह तुम्हारी त्रुटियों और कुसूरों की उपेक्षा कर देगा और तुम्हारे दर्जों में ज़रा कमी न आने देगा।

२५९ पैग़म्बर के माध्यम से समस्त जन-साधारण से सम्बोधन है। **'अतीअुल्लाह'**— अल्लाह की आज्ञाकारिता और उसका आदेश-पालन वास्तव में और उद्देश्य के रूप में है। **'वर्रसूल'**— रसूल की आज्ञाओं का पालन अनुकरण के रूप में और इसलिए कि वह माध्यम मात्र हैं यानी इस कारण से कि पैग़म्बर अल्लाह का ही पैग़ाम लेकर आते हैं।

२६० (और यह लोग काफ़िर ही तो हैं जो रसूल की आज्ञापालन से मुँह मोड़ते हैं, चाहे ईश-प्रेम के कैसे ही दावे उनकी ज़बानों पर हों।) **'फ़ इन् तवल्लौ'**— यानी ऐसे साफ़ एवं स्पष्ट आदेशों को मानने से इन्कार करें।

२६१ (अर्थात् वह स्वयं और उनके घरानेवाले तौहीद का झण्डा ऊँचा करनेवाले रहे हैं।) **'अिस्तफ़ा'**— यह दर्जे की बलन्दगी तौहीद का झण्डा ऊँचा रखने ही की वजह से रही है। **'आदम'** हाशिया पारः १, रुकूअ़ ४ के अन्तर्गत गुज़र चुका है। **'नूह'**— हज़रत नूह बिन लामख (या लमक) इराक़ में एक बहुत पुराने पैग़म्बर हुए हैं। तौरेत की रिवायतानुसार हज़रत आदम से दसवीं पीढ़ी में थे। आयु १०५० वर्ष पायी। ज़माना सम्भवतः २९४८ से १९९८ पूर्व मसीह है। **'आल अिब्राहीम'**— आल इब्राहीम ही के अन्तर्गत इस्माईल-परिवार भी आ गये। इन दोनों पैग़म्बरों पर हाशिए रुकूअ़ १५, पारः १ में गुज़र चुके हैं। **'आल अिम्रान'**— इम्रान के नाम की ऐतिहासिक शख़्सीयतें दो गुज़री हैं। एक हज़रत मूसा के पिता इम्रान बिन यसहर, दूसरे उनके कई शताब्दी के पश्चात् हज़रत मर्यम के पिता और हज़रत मसीह के नाना इम्रान बिन मासान। यहाँ दोनों से मुराद हो सकती है परन्तु सन्दर्भ के लिहाज़ से दूसरे इम्रान को प्राथमिकता होनी चाहिए।

२६२ [सो उसके इल्म (जानकारी) और ख़बर से कौन चीज़ बाहर रह सकती है?] **'समीअुन्'**— सुननेवाला तमाम ज़बान से निकले हुए शब्दों और बातों का। **'अलीमुन्'**— जाननेवाला हृदय के सभी उद्‌गारों और विचारों का। **"ज़ुर्रीयतम्बअ़्ज़ुहा मिम्बअ़्ज़िन्"**— हज़रत आदम की सन्तान में हज़रत नूह हैं और हज़रत इब्राहीम इन दोनों की सन्तान में हैं और हज़रत **'इम्रान'** इन तीनों की सन्तान में हैं।

२६३ (विनय के रूप में) **'अिम्रअतु अिम्रान'**— यह हज़रत मर्यम की माता और हज़रत मसीह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की नानी थीं। मसीही नविश्तों (लेखों) में उनका नाम हन्ना (Hanna) आया है। हमारे तफ़्सीर लेखकों ने लिखा है कि शाम इत्यादि के मसीही कलीसा (गिरजा) कलीसए हन्ना के नाम से प्रसिद्ध हैं। और उनकी क़ब्र दमिश्क़ में है।

२६४ (हर प्रकार के दुनियावी कारोबार से और तेरी सेवा और उपासना के लिए वक़्फ़ रहेगा।) हज़रत मर्यम की पैदाइश के पूर्व आपकी माताजी ने जो नज़र नियाज़ मानी थी, उसके विषय में बहुत सा विवरण पुरानी मसीही पुस्तकों में लिखा था। परन्तु कलीसा के बुज़ुर्गों ने काट-छाँटकर जब "प्रमाणित" चार इन्जीलें बनानी शुरू कीं तो इन मज़मूनों और वर्णनों को उनमें से निकाल दिया और उसकी गवाही आज उन्हीं के बड़े दे रहे हैं। अवलोकित हो— (Atholic Dictionary page 48 and Hasting's Dictionary of the Bible vol-3, p. 288)। **'नज़र्तु'**— सादा उर्दू में कहेंगे "मैंने मन्नत मानी है।" हैकलें सुलैमानी (बैतुल्मुक़द्दस) की सेवा और मुजाविरी (दरगाह आदि की सेवा) के लिए नर सन्तान को नज़र कर देने का दस्तूर यहूद के यहाँ जारी था।

२६५ (सुननेवाला मेरी दुआओं का, जाननेवाला मेरी निःस्वार्थता का) सुब्हान अल्लाह! अल्लाह वालों की भाँति अल्लाह वालियाँ भी अपनी दुआओं में किस दर्जा बाअदब और सम्मानपूर्ण होती हैं।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३४५ से)

इच्छानुसार होता। **'वल्लाहु अऽलमु बिमा वज़अत्'**— यानी उस पैदा होनेवाले से जो-जो बड़ाइयाँ सम्बद्ध थीं, उनकी सूचना माता ग़रीब को क्या हो सकती थी? उनसे तो बस अल्लाह ही ख़ूब परिचित था।

२६८ (कि दीन की सेवा से किसी स्थिति में भी मुँह न मोड़ने पाएँ।) मर्यम की माताजी की तौहीदपरस्ती इस दुआ के एक-एक शब्द से ज़ाहिर है। अल्लाह वालों और अल्लाह वालियों को अपनी सन्तान के लिए चिन्ता उनके दीनी और नैतिक सुरक्षा की होती है। **'व ज़ुर्रिय्यतहा'**— इससे ज़ाहिर होता है कि हज़रत मर्यम की माँ अल्लाह से आस लगाए हुए थीं कि लड़की की नस्ल का सिल्सिला चलेगा। 'मर्यम' सुरयानी भाषा का शब्द है जिसके मानी हैं 'उच्च' यह इस्राईलियों में एक प्रचलित नाम था।

२६९ यानी मर्यम की माता की नज़र को लड़की के रूप में भी अल्लाह ने स्वीकार कर लिया और यह सेवा हैकल की तारीख़ में एक नयी बात थी। मसीही लेखों के अनुसार हज़रत मर्यम तीन वर्ष की आयु में हैकल की सेविका के रूप में स्वीकार कर ली गयी थीं और इबादतख़ाने के सब छोटे-बड़े सेवक इस कमसिन बच्ची को देखकर ख़ूब ख़ुश होते थे। अवलोकित हो (Hastings) की Dictionary of the Bible Volume-3-page 288 और Budge की "ख़ातून मर्यम की कहानियाँ" "Legends of lady mary"।

२७० यह अच्छा लालन-पालन सम्भव है कि जिस्मानी हाथ-पैरों के सम्बन्ध में हो, और यह भी सम्भव है कि रूहानी (आत्मिक) और नैतिकता के एतबार से हो। यह भी सम्भव है कि दोनों एतबार से हो। अजीब लतीफ़ा है कि हज़रत मर्यम के सम्मान एवं उनकी बड़ाई के यह सारे विवरण बाइबिल् में नहीं, क़ुर्आन मजीद ही में मिल रहे हैं। इन्जील इस प्रकार के छोटे-छोटे विवरणों से मौन है।

२७१ **'ज़करिय्या'**— अल्लाह के पैग़म्बर थे। मसीही पुस्तकें उनके ज़िक्र से गोया अनविज्ञ हैं। चार पवित्र एवं प्रमाणित इन्जीलों में से ले-देकर केवल एक स्थान पर उनका ज़िक्र इन्जील लूक़ा में आता है, वह भी पैग़म्बर की हैसियत से नहीं केवल एक बुज़ुर्ग और सत्य धर्म के काहिन के रूप में— "यहूदिया के बादशाह 'हेरोदेस' के ज़माने में अबियाह के भागीदारों में ज़करिया नामक एक काहिन का था।" (लूक़ा-१:५) यह हज़रत ज़करिया रिश्ते में हज़रत मर्यम की माँ के बहनोई थे, यानी आपकी माँ की बहिन के शौहर। हज़रत मर्यम के पिता जनाब इम्रान का देहान्त आपके बचपन में ही हो गया था और उनकी मृत्यु के बाद हैकल के सेवकों (या यहूद की परिभाषा में काहिनों) की सरदारी हज़रत ज़करिया के हिस्से में आयी थी। आप एक तो मर्यम के निकट सम्बन्धी और फिर हैकल के सेवकों के सरदार। हज़रत मर्यम की तर्बियत (प्रशिक्षण) और लालन-पालन का ज़िम्मेदार अल्लाह तआला ने एक प्रकार से आपको बनाया। आप हज़रत यह्या पैग़म्बर के पिता थे, जो हज़रत ईसा के सिन के थे। इसी से आपके समय को आँका जा सकता है। **'कफ़्फ़लहा'**— के शब्द में इशारा इस ओर भी हो गया कि यह सब ख़ुदाई व्यवस्था थी। 'ज़करिया' की हैसियत केवल एक साधन या माध्यम की थी।

२७२ (और इस पर वह स्वाभाविक था कि आश्चर्य में पड़ते थे।) **'अल्मिहराब'** मेहराब हुज़रे

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३४६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ़ लम्मा वज़अत्हा क़ालत् रब्बि अिन्नी वज़ऽतुहा अुन्सा त वल्लाहु
अऽलमु बिमा वज़अत् त व लैसज़्ज़करु कल्‌अुन्सा ज व अिन्नी सम्मैतुहा
मर्यम व अिन्नी अुअीज़ुहा बिक व ज़ुर्रिय्यतहा मिनश्शैतानिर्रजीमि
(३६) फ़ तक़ब्बलहा रब्बुहा बि क़बूलिन् हसनिंव्व अम्बतहा नबातन्
हसनन् ला ंव्व कफ़्फ़लहा ज़करिय्या ज त
कुल्लमा दख़ल अलैहा ज़करिय्यल्-मिह्राब ला
वजद अिन्दहा रिज़्क़न् ज क़ाल या मर्यमु अन्ना
लकि हाज़ा त क़ालत् हुव मिन् अिन्दिल्लाहि त
अिन्नल्लाह यर्ज़ुक़ु मंय्यशाअु बिग़ैरि
हिसाबिन् (३७) हुनालिक दआ ज़करिय्या
रब्बहु ज क़ाल रब्बि हब्‌ली मिल्लदुन्क
ज़ुर्रिय्यतन् तय्यिबतन् ज अिन्नक समीअुद्दुआअि
(३८) फ़ नादत्हुल्-मलाअिकतु व हुव
क़ाअिमुंय्युसल्ली फ़िल्मिह्राबि ला
अन्नल्लाह युबश्शिरुक बियह्या मुसद्दिक़म्-
बिकलिमतिम्-मिनल्लाहि व सय्यिदंव्व
हसूरंव्व नबिय्यम्-मिनस्सालिहीन (३९) क़ाल रब्बि अन्ना यकूनु ली
ग़ुलामुंव्व क़द् बलग़नियल्किबरु वम्‌रअती आक़िरुन् त क़ाल कज़ालिकल्लाहु
यफ़्अलु मा यशाअु (४०) क़ाल रब्बिज्अल्ली आयतन् त क़ाल आयतुक
अल्ला तुकल्लिमन्नास सलासत अय्यामिन् अिल्ला रम्ज़न् त वज़्कुर्रब्बक कसीरंव्व
सब्बिह् बिल्‌अशिय्यि वल्‌अिब्कारि (४१) ★ व अिज् क़ालतिल्-मलाअिकतु
या मर्यमु अिन्नल्लाहस्तफ़ाकि व तह्हरकि वस्तफ़ाकि अला निसाअिल्-आलमीन
(४२) या मर्यमुक़्नुती लि रब्बिकि वस्जुदी वर्कअी मअर्राकिअीन (४३) ज़ालिक
मिन् अम्बाअिल्ग़ैबि नूहीहि अिलैक त व मा कुन्त लदैहिम् अिज् युल्क़ून
अक़्लामहुम् अय्युहुम् यक्फ़ुलु मर्यम ص व मा कुन्त लदैहिम् अिज् यख़्तसिमून (४४)

★ रु. ४ / १२ आ ११

آل عمران ٣ — ٣٠ — تلك الرسل ٣

فَلَمَّا وَضَعَتْهَا قَالَتْ رَبِّ اِنِّیْ وَضَعْتُهَآ اُنْثٰی ؕ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا
وَضَعَتْ ؕ وَلَیْسَ الذَّكَرُ كَالْاُنْثٰی ۚ وَاِنِّیْ سَمَّیْتُهَا مَرْیَمَ وَاِنِّیْٓ
اُعِیْذُهَا بِكَ وَذُرِّیَّتَهَا مِنَ الشَّیْطٰنِ الرَّجِیْمِ ﴿٣٦﴾ فَتَقَبَّلَهَا رَبُّهَا
بِقَبُوْلٍ حَسَنٍ وَّاَنْۢبَتَهَا نَبَاتًا حَسَنًا ۙ وَّكَفَّلَهَا زَكَرِیَّا ؕ كُلَّمَا
دَخَلَ عَلَیْهَا زَكَرِیَّا الْمِحْرَابَ ۙ وَجَدَ عِنْدَهَا رِزْقًا ۚ قَالَ یٰمَرْیَمُ اَنّٰی
لَكِ هٰذَا ؕ قَالَتْ هُوَ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ یَرْزُقُ مَنْ یَّشَآءُ بِغَیْرِ
حِسَابٍ ﴿٣٧﴾ هُنَالِكَ دَعَا زَكَرِیَّا رَبَّهٗ ۚ قَالَ رَبِّ هَبْ لِیْ مِنْ لَّدُنْكَ ذُرِّیَّةً
طَیِّبَةً ۚ اِنَّكَ سَمِیْعُ الدُّعَآءِ ﴿٣٨﴾ فَنَادَتْهُ الْمَلٰٓئِكَةُ وَهُوَ قَآئِمٌ یُّصَلِّیْ فِی
الْمِحْرَابِ ۙ اَنَّ اللّٰهَ یُبَشِّرُكَ بِیَحْیٰی مُصَدِّقًۢا بِكَلِمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَ
سَیِّدًا وَّحَصُوْرًا وَّنَبِیًّا مِّنَ الصّٰلِحِیْنَ ﴿٣٩﴾ قَالَ رَبِّ اَنّٰی یَكُوْنُ
لِیْ غُلٰمٌ وَّقَدْ بَلَغَنِیَ الْكِبَرُ وَامْرَاَتِیْ عَاقِرٌ ؕ قَالَ كَذٰلِكَ اللّٰهُ
یَفْعَلُ مَا یَشَآءُ ﴿٤٠﴾ قَالَ رَبِّ اجْعَلْ لِّیْٓ اٰیَةً ؕ قَالَ اٰیَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ
النَّاسَ ثَلٰثَةَ اَیَّامٍ اِلَّا رَمْزًا ؕ وَاذْكُرْ رَّبَّكَ كَثِیْرًا وَّسَبِّحْ بِالْعَشِیِّ
وَالْاِبْكَارِ ﴿٤١﴾ وَاِذْ قَالَتِ الْمَلٰٓئِكَةُ یٰمَرْیَمُ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىكِ وَطَهَّرَكِ
وَاصْطَفٰىكِ عَلٰی نِسَآءِ الْعٰلَمِیْنَ ﴿٤٢﴾ یٰمَرْیَمُ اقْنُتِیْ لِرَبِّكِ وَ
اسْجُدِیْ وَارْكَعِیْ مَعَ الرّٰكِعِیْنَ ﴿٤٣﴾ ذٰلِكَ مِنْ اَنْۢبَآءِ الْغَیْبِ نُوْحِیْهِ
اِلَیْكَ ؕ وَمَا كُنْتَ لَدَیْهِمْ اِذْ یُلْقُوْنَ اَقْلَامَهُمْ اَیُّهُمْ یَكْفُلُ

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फिर जब उसने मर्यम को जना तो बोली ऐ मेरे परवरदिगार ! मैंने तो लड़की जनी है[२६६] । और अल्लाह तो ख़ूब जानता था कि उसने क्या जना है । और लड़का उस लड़की जैसा नहीं हो सकता था[२६७]; और मैंने उस लड़की का नाम मर्यम रखा है, और मैं उसे और उसकी सन्तान को शैतान मर्दूद से तेरी पनाह में देती हूँ[२६८] । (३६) फिर उसके परवरदिगार ने उसको सुन्दरतापूर्वक स्वीकार कर लिया[२६९] और उसको अच्छी तरह लालन-पालन दिया[२७०] और उसका संरक्षक ज़करिया को बना दिया[२७१] । जब कभी (हज़रत) ज़करिया उनके पास हुज्रे (कोठरी) में आते तो उनके पास कोई चीज़ खाने-पीने की पाते[२७२] (एक बार) बोले कि ऐ मर्यम ! यह कहाँ से तुझे मिल जाती हैं[२७३] ? वह बोलीं, यह अल्लाह की ओर से आ जाती हैं[२७४] । बेशक अल्लाह जिसको चाहता है बे-हिसाब रोज़ी दे देता है[२७५] । (३७) (बस) वहीं ज़करिया अपने परवरदिगार से दुआ करने लगे[२७६] । निवेदन किया कि ऐ मेरे परवरदिगार ! मुझे अपने पास से कोई पवित्र सन्तान प्रदान कर[२७७] । निस्सन्देह तू दुआ का (बड़ा) सुननेवाला है[२७८] । (३८) पस उन्हें फ़िरिश्तों ने आवाज़ दी इस हाल में कि वह हुज्रे में खड़े हुए नमाज़ पढ़ रहे थे कि अल्लाह आपको यह्‌या की शुभ सूचना देता है[२७९], जो अल्लाह की बातों की तस्दीक़ करनेवाले होंगे और पथप्रदर्शक होंगे और बड़े संयम वाले होंगे और नबी होंगे नेकों में से[२८०] । (३९) (ज़करिया) बोले, ऐ मेरे परवरदिगार ! मेरे बेटा किस प्रकार होगा ऐसी दशा में कि मुझे बुढ़ापा आ पहुँचा है और मेरी पत्नी बाँझ है[२८१] । इर्शाद हुआ, उसी तरह अल्लाह कर देता है जो कुछ वह चाहता है[२८२] । (४०) (ज़करिया) बोले, ऐ मेरे परवरदिगार ! मेरे लिए कोई निशानी नियत कर दे[२८३] । इर्शाद हुआ कि तुम्हारे लिए निशानी यह है कि तुम लोगों से बात न कर सकोगे तीन दिन तक सिवाय संकेत के[२८४] । और अपने परवरदिगार की बहुत अधिक याद करते रहो और तस्बीह करते रहो, दिन ढले भी और प्रातःकाल में भी[२८५] । (४१) ★ ★ रु. ४ — १२ आ ११

और (वह वक़्त याद करो) जब फ़िरिश्तों ने कहा कि ऐ मर्यम ! निस्सन्देह आपको अल्लाह ने प्रतिष्ठित बनाया है[२८६] और पाक कर दिया है और आपको दुनिया जहान की बीवियों की अपेक्षा सम्मानित कर लिया है[२८७] । (४२) ऐ मर्यम ! अपने परवरदिगार की आज्ञाओं का पालन करती रहिए और सज्दः करती रहिये और रुकूअ करनेवालों के साथ रुकूअ करती रहिए[२८८] । (४३) यह (वाक़िआत—घटनाएँ) ग़ैब की ख़बरों में से हैं । हम आपके ऊपर उनकी 'वही' (आदेश) कर रहे हैं[२८९] । और आप तो उन लोगों के पास थे नहीं उस समय जब वह अपने क़लम डाल रहे थे[२९०] कि उनमें से कौन मर्यम की संरक्षता करे, और न आप उनके पास उस समय थे जब वह आपस में मतभेद कर रहे थे[२९१] । (४४)

---

२६६ (और लड़की किस प्रकार तेरी इबादतगाह में मुजाविर बन सकेगी ?) हज़रत मर्यम की माताजी बड़ी निराशा और दुःखद अन्दाज़ में अल्लाह के दरबार में विनय कर रही थीं कि तमन्ना तो लड़के की इसलिए की थी कि उसे हैकल की नज़र कर दिया जाता और वह वहीं सफ़ाई करने और मुजाविरी में जीवन व्यतीत कर देता । सन्तान तो हुई, परन्तु लड़की निकली । लड़की से यह नज़र कैसे पूरी हो सकती है ? इस्राईली समाज में लड़की के लिए इस सेवा के वास्ते कोई नियम ही न था । हज़रत मर्यम की माताजी का यह कहना सूचना मात्र न था, बयान के रूप में था । इसमें किसी घटना की सूचना नहीं थी । रंज और क्लेश को प्रकट करना था ।

२६७ यह पूरा वाक्यांश हज़रत मर्यम के वाक्यों का भाग नहीं । यह सीधे अल्लाह तआला का स्थायी वाक्य है । अर्थ यह है कि इस लड़की की बड़ाई और सम्मान से तो अल्लाह तआला ही भलीभाँति परिचित था । ग़रीब माता क्या समझ सकती थी ? 'अज्ज़कर'— यानी जो लड़का हज़रत मर्यम की

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३४३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३४३ से)

को कहते है, जहाँ कोई सबसे अलग-थलग होकर बैठे। मेहराबें मस्जिद को भी मेहराब कहते हैं, क्योंकि उस दर में इमामें नमाज़ सबसे अलग-थलग और अकेला खड़ा होता है। **'कुल्लमा'** हैकलें सुलैमानी के सेवकों के रहने और इबादत करने के लिए हैकल के इधर-उधर कोने, हुज़्रे या पृथक् कमरे बने हुए थे। उन्हीं में से एक हुज्रा हज़रत 'मर्यम' का था। हज़रत ज़करिया एक तो यूँ भी सेवकों के सरदार थे और इस हैसियत से हर सेवक तथा सेविका की देखभाल रखना आपके कर्तव्यों में से था। फिर हज़रत मर्यम तो आपकी निकट सम्बन्धी थीं और आप उनके बुज़ुर्ग और संरक्षक थे। उनके हुज्रे में स्वाभाविक रूप से आपका आना-जाना रहता था। क़ुर्आन हकीम के एक ज़रा से शब्द **'कुल्लमा'** ने इस सारे अर्थ यानी हज़रत ज़करिया का बराबर आना-जाना और आशा के विपरीत रोज़ी का मौजूद होना, की ओर, सबकी ओर संकेत कर दिया। **'रिज़्क़न्'** खाने-पीने का सामान जैसे तरोताज़ा मेवे इत्यादि। बाज़ पुराने "जिद्दतपसन्दों" ने यहाँ रिज़्क़ के मानी फ़ैज़ और ज्ञान तथा बुद्धिमानी के लिये हैं। परन्तु शोधकर्ताओं ने कहा है कि यह तफ़्सीर की सीमाओं से बाहर निकल जाना है और यह भाषा बातिनिया मत वालों की है। हज़रत मर्यम अपनी सारी प्रतिष्ठा तथा बड़ाई के बावजूद बहरहाल पैग़म्बर नहीं थीं, इसी कारण अह्ले सुन्नत शोधकों ने आयत को औलिया की करामात के सुबूत में एक प्रमाण माना है और शीअः फ़िर्क़े के आलिम भी इस विषय में उनकी राय से सहमत हैं। केवल मोतज़िला फ़िर्क़े का विरोध है।

२७३ यानी लाता तो मैं ही लाता, मेरे सिवा और कौन इस सामान का पहुँचानेवाला हो सकता है? प्रश्न आश्चर्य प्रकट करने के लिए है। आयत से इस मसले को भी सुबूत हो गया कि पयम्बर तक के लिए भी ज़ाहिरी कारणों तक सीमित रहना बिलकुल जाइज़ है।

२७४ (बराहरास्त यानी सीधे और बिना किसी ज़ाहिरी माध्यम के।) अल्लाहवालों के साथ इस प्रकार का मोजिज़ा था अनोखे ढंग से कोई घटना होना कोई अनोखी बात नहीं है। ऐसा होता ही रहता है और यदि मान भी लिया जाए कि उस मोमिना को यह सामान किसी ज़ाहिरी माध्यम से ही पहुँच रहा हो, तब भी उसकी दृष्टि तो उस माध्यम पर नहीं सीधी अल्लाह तआला पर थी।

२७५ (चाहे साधनों से हो या बिना साधनों के) अल्लाह जिस प्रकार अपनी इच्छा और उत्पत्ति के हर अनुभाग में आज़ाद है, उसी प्रकार रोज़ी बाँटने में भी है। इस प्रकार उन मुश्रिक क़ौमों के अक़ीदे का खण्डन होता है, जिन्होंने सम्पन्नता तथा बदहाली को पिछले जन्मों के कर्मों का फल समझ रखा है।

२७६ (ख़ुदा की क़ुद्‌रत के ताज़ा करिश्मों से प्रभावित होकर) **'हुनालिक दआ'**— आयत से शुभ स्थान में दुआ के क़बूल होने का तर्क किया गया है और इसी प्रकार उस शुभ समय पर भी दुआ के स्वीकार होने पर। हज़रत ज़करिया को जब यह गवाही मिल गयी और उन्होंने देख लिया कि यह स्थान आम स्थितियों से पृथक् घटनाओं के घटित होने का स्थान है तो आप भी दुआ करने लगे।

२७७ [जो मेरे रूहानी (आध्यात्मिक) सिल्सिले को आगे चला सके] **'हब्ली मिल्लदुन्क'**— मुझे भी अपनी कृपा से उसी प्रकार प्रदान कर जैसे कि 'मर्यम' की माँ को मर्यम प्रदान हो चुकी हैं। हज़रत ज़करिया का सिन ज़्यादा हो चुका था और उनकी पत्नी भी बाँझ समझ ली गयी थीं। एक अजीब महिमा को देखकर आपका ज़ेह्‌न अचानक इस ओर पहुँच गया कि जो ख़ुदा इस पर शान्ति रखता है कि बिना ज़ाहिरी साधनों के यहाँ पर तरोताज़ा मेवे पहुँचा दे, वह अवश्य ही यह भी शक्ति रखता है कि इस सिन में मुझे औलाद की नेमत प्रदान कर दे। **'मिल्लदुन्क'**— यह ख़बर साफ़ ज़ाहिर कर रही है कि दुआ करनेवाले की दृष्टि इस कारणों और साधनों वाले लोक पर नहीं है, बल्कि उन्हें उत्पन्न करनेवाले पर है। **'ज़ुर्रिय्यतन्'**— सन्तान की इच्छा एक क़ुद्‌रती बात है और ईशभक्ति क्या उसके कमाल के भी विपरीत नहीं है। क़ुर्आन मजीद ने बार-बार पैग़म्बरों की ज़बान से इस प्रकार की दुआएँ नक़्ल करके बता दिया कि वह धर्म सच्चाई से कितनी दूर हैं जिन्होंने बीबी-बच्चों को अपने रूप में जंजाल मान लिया है। हमारी सच्ची शरीअत में सन्तान की इच्छा करना सुन्नत है। नबियों की और सत्पुरुषों की और सहीह बुख़ारी में तो स्थायी शीर्षक सन्तान माँगने की प्रशंसा पर मौजूद है। **'ज़ुर्रिय्यतन् तय्यिबतन्'**— **'तय्यिबः'** की बढ़ोतरी ने स्पष्ट कर दिया कि अल्लाहवालों की दृष्टि आख़िरत पर हर हाल में रहती है। केवल सन्तान की इच्छा में कोई विशेष आपत्ति की बात नहीं थी, परन्तु हज़रत ज़करिया अपनी दुआ में केवल सन्तान ही के इच्छुक नहीं थे, बल्कि सिद्ध औलाद चाहते थे जो उनके बाद उनके दीन का पैग़ाम पहुँचाती रहे। अल्लाहवालों की निगाह में नैतिक एवं आत्मिक प्रतिष्ठा हर हाल में प्राथमिकता रखती है। मुर्शिद थानवी ने फ़र्माया है कि ऐसे कामों के लिए दुआ करना, जो निकटतम साधनों से हटकर हों, दुआ के आदाब के विरुद्ध नहीं हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्जील में है कि ज़करिया नाम का एक काहिन था और उसकी पत्नी हारून की औलाद में से थी और उसका नाम ईशी था और उनके सन्तान न थी, क्योंकि ईशी बाँझ थी और दोनों काफ़ी सिन (आयु) के थे। (लूक़ा–१:५-७)।

२७८ (और बड़ा स्वीकार करनेवाला है) हक़ तआला की इस सिफ़त पर बार-बार बल देना माद्दी और नेचरी अक़ीदे के लोगों के खण्डन में है जो हर घटना को ज़ाहिरी कारणों का ही परिणाम समझते हैं और हक़ तआला के इरादे के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते।

२७९ दुआ तुरन्त स्वीकार हो गयी और आपको नमाज़ की हालत में ही पुत्र की शुभ सूचना मिल गयी। **'अल्-मला'अिकतु'** सीग़: बहुवचन संज्ञा का भी काम देता है, इसलिए हो सकता है कि आवाज़ देनेवाला फ़िरिश्ता एक ही हो। अरबी में यह मुहावरा आम है (फ़ुलाँ शख़्स घोड़ों पर सवार होता है), यद्यपि वहाँ मुराद घोड़े की केवल क़िस्म होती है। **'यहूया'** नये समय वाली पुस्तकों में उनके नाम का इमला 'यूहन्ना' आता है। इन्जील में इस अवसर पर है— "फ़िरिश्ते ने उससे कहा, ऐ ज़करिया! ख़ौफ़ न कर, क्योंकि तेरी दुआ सुनी गयी और तेरी पत्नी ईशी तेरे लिए बेटा जनेगी, तू उसका नाम यूहन्ना रखना और तुझे ख़ुशी और सम्पन्नता होगी।" (लूक़ा–१:१४)। हज़रत ईसा के ख़ालाज़ाद भाई और आपसे सिन में रिवायतों के अनुसार केवल छः महीने बड़े थे। सन् ३० में शाम के गवर्नर हीरोद के हुक्म से शहीद कर दिए गये।

२८० **'कलिमतिम्-मिनल्लाहि'**— जिस प्रकार रूहुलक़ुदुस हज़रत जिब्रील की पदवी है। 'कलिमतुल्लाह' का अर्थ है हज़रत मसीह (अलैहिस्सलाम) यानी हज़रत ईसा की तस्दीक़ करनेवाला। मसीहियों का अक़ीदः है कि हज़रत यह्या की वास्तविक हैसियत हज़रत मसीह से पहले आनेवाले और उनके सूचक की है। बाज़ तफ़्सीर करनेवालों ने इससे मुराद अल्लाह की पुस्तक भी ली है। **'सय्यिदन्'**— यानी दीन के विषय में पथप्रदर्शक और नेता। मसीही तो ख़ैर आपकी पवित्रता के क़ायल ही हैं, यहूद, जो आपके मुन्किर और आपके कड़े दुश्मन हैं, वह भी आपकी प्रतिष्ठा और ख़ुदा के नेक बन्दे होने के क़ायल हैं। **'हसूरन्'**— यानी लज़्ज़तों एवं इच्छाओं पर उसे क़ाबू प्राप्त होगा और वह अत्यन्त संयमी एवं हर बुराई से बचनेवाला होगा। इन्जील में आपकी पवित्रता एवं इबादत का वर्णन बड़े विवरण के साथ मिलता है। जैसे, "वह ख़ुदावन्द के हुज़ूर में बुज़ुर्ग होगा और कदापि शराब न पिएगा और अपनी माता के पेट ही से 'रूहुलक़ुदुस' से भर जाएगा" (लूक़ा १:१६)। "और बहुत से बनी इस्राईल को ख़ुदावन्द की ओर, जो उनका ख़ुदा है, फेरेगा और वह नबियों की आत्मा और शक्ति में उसके आगे-आगे चलेगा कि बापों के दिल सन्तान की ओर और नाफ़र्मानों को सत्यवादियों की बुद्धिमत्ता पर चलने की ओर फेरे और ख़ुदावन्द के लिए एक चौकन्नी क़ौम तैयार करे।" (लूक़ा–१:१७, १८)। "और वह लड़का बढ़ता और आत्मा में शक्ति पाता गया और इस्राईल पर ज़ाहिर होने के दिन जंगलों में रहा।" (लूक़ा–१:८)। **'नबिय्यम्-मिनस्सालिहीन'** हज़रत यह्या की नबूवत की तस्दीक़ यहूद के मुक़ाबले में है, जो आपको एक बना हुआ मनुष्य समझते थे। आपकी नेकी की तस्दीक़ यहूद के मुक़ाबले में तो होती ही, परन्तु स्वयं मसीहियों के मुक़ाबले में भी है, जिनके निकट पाकी और संयम नबूवत के लिए अनिवार्य नहीं है। नेकी तो नबूवत से नीची और हल्की चीज़ है, परन्तु यह इस्लामी अक़ीदः है। अह्ले किताब का यह अक़ीदः नहीं है। उनके यहाँ नबी ग़ैरसालेह (नेक) हो सकता है।

२८१ इन्जील में इस अवसर पर है— "ज़करिया ने फ़िरिश्ते से कहा, मैं इस बात को किस प्रकार जानूँ, क्योंकि मैं बूढ़ा हूँ और मेरी पत्नी भी काफ़ी वृद्ध है।" (लूक़ा १:१८)। "उनके सन्तान नहीं थी, क्योंकि ईशी बाँझ थी और दोनों की आयु बड़ी हो चुकी थी।" (लूक़ा १:१०)। **'अन्ना यकूनु ली ग़ुलामुन्'**— यानी इस शुभ सूचना की जाँच की नियत शक्ल क्या होगी? क्या मेरी जवानी वापस आ जाएगी या और कोई परिवर्तन होगा? अल्लाह के वादे से अविश्वास का यहाँ कोई प्रश्न नहीं उठता। हज़रत तो केवल नियत-रूप जानना चाहते थे, परन्तु मान लिया जाए कि उनको सन्तोष नहीं था तो भी आम हालतों के विपरीत किसी बात की सूचना हो तो आश्चर्य होना एक प्राकृतिक बात ही है और पैग़म्बर भी प्राकृतिक बातों में मनुष्य ही होते हैं। जो बात साधारण रूप से नहीं होती, उस पर हर व्यक्ति आश्चर्य कर सकता है और पैग़म्बर भी उसमें शामिल हैं।

२८२ (कि इस सच्चाई को मान लेना हर प्रकार के सन्देह का खण्डन करता है।) अल्लाह की क़ुदरत और उसकी महान् शक्ति को सामने रखना, पयम्बर को इतना संकेत काफ़ी हो गया। **'कज़ालिक'**— जवानी की वापसी इत्यादि कुछ न होगा, बस इसी मौजूदा दशा में ही पुत्र उत्पन्न होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२८३ (जिससे ज्ञात हो जाए कि घर में गर्भ है और पैदाइश निकट है और मैं धन्यवाद देने का सामान कर सकूँ।) **'आयतन्'**— हर ऐसी चीज़ है, जिससे ख़ुदा की क़ुदरत, ग़ैबी सहायता और ईश्वरीय दया विद्यमान मालूम होती हो। ऐसी चीज़ की साधारण स्थितियों से किसी क़दर हटा हुआ होना चाहिए और इस निशान में ईश्वरीय महिमा का कुछ रंग अवश्य होना चाहिए।

२८४ (और तस्बीह और अल्लाह की इबादत इस दशा में भी जारी रहेगी।) **'अल्ला तुकल्लिलमन्नास'**— इन्जील के बयान से यह ज्ञात होता है कि जैसे हज़रत ज़करिया से कोई बड़ा पाप हो गया हो और उसकी सज़ा में उनकी बोलने की शक्ति छीन ली गयी हो। "और देख ! जिस दिन तक यह बातें घटित न हो लें, तू चुपका रहेगा और बोल न सकेगा। इसलिए कि तूने मेरी बातों का, जो अपने समय पर होंगी, विश्वास नहीं किया। जब वह बाहर आया तो उनसे बोल न सका, पस उन्होंने मालूम किया कि उसने पवित्र स्वप्न देखा है और वह उनसे इशारे करता था और वह गूँगा ही रहा।" (लूक़ा-१०:२०-२२)। क़ुर्आन मजीद, जो तमाम पुरानी पुस्तकों की देखभाल और उनकी निगरानी करता है और उनकी त्रुटियों और ग़लत-बयानियों की शुद्धि करता जाता है, यहाँ भी उसने अपने नियमानुसार अपना कर्तव्य निभाया और हज़रत ज़करिया से यह इल्ज़ाम दूर करके सही स्थिति का वर्णन कर दिया कि एक ग़ैबी अलामत (चिह्न) एवं ईश्वरीय महिमा की तो उन्होंने स्वयं प्रार्थना की थी और उनकी इस प्रार्थना पर यह चिह्न ग़ैब से प्रदान हुआ था कि आप तस्बीह और अल्लाह का ज़िक्र तो अपनी जगह उसी प्रकार से करते रहेंगे, हाँ लोगों से बातचीत करने की शक्ति आपको तीन दिन तक के लिए अप्राप्त रहेगी। **'तुकल्लिमन्नास'** में **'अन्नास'** ही तो वाक्यांश की जान है कि लोगों से बातचीत की शक्ति न रहेगी, अन्यथा ईश्वर-वन्दना के लिए तो ज़बान चलती रहेगी। **'सलासत अय्यामिन्'**— तीन दिन और तीन रातें। दिन कहने से रात उसमें बनावट के लिहाज़ से सम्मिलित हो गयी है। काफ़ी समय तक मौन रहना विशेषत: नमाज़ और तस्बीह में मौन रहना पुराने धर्मों में इबादत का अंश माना गया है। **'रम्ज़न्'** 'रम्ज़' आम है, इसमें सर के इशारे भी आ गये और हाथों के भी और इसके अतिरिक्त भी। इन्जील में इस स्थान पर है— "और वह उनसे इशारे करता था।" (लूक़ा १:१३)। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने आयत से यह निष्कर्ष लिया है कि संकेत भी बातचीत के स्थानापन्न हैं।

२८५ (आत्मा और ज़बान से) **'वज़्कुर् व सब्बिह्'**— यानी ज़िक्रे इलाही और तस्बीह का कार्य दिल में भी जारी रहे और ज़बान से भी। यह न होगा कि आपकी ज़बान रोग के रूप में या अज़ाब की शक्ल में बिलकुल बन्द हो जाए और आप बिलकुल गूँगे हो जाएँ (जैसा कि ग़लत तौर पर इन्जील में दर्ज है), बल्कि ज़िक्र और तस्बीह में आप बराबर लगे रहेंगे, अल्बत्ता लोगों से बातचीत करने की आप में शक्ति न रहेगी और यही इस बात का चिह्न होगा कि गर्भ हो गया है और यहूया के प्रकट होने का ज़माना निकट आ गया। **'अशिय्यि'**— सूर्य-पतन से लेकर रात के अँधेरे तक का सारा समय इसमें आ गया। **'अिब्कारि'** सूर्योदय से दिन चढ़े तक का समय इसमें शामिल है। मुहावरे में मुराद प्रात: तथा शाम के समयों की विशेषता और उसका नियत करना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ लगातार और हमेशा हो सकता है।

२८६ (बाज़ विशेषताओं के लिहाज़ से) **'अिज़् क़ालतिल्-मला'अिकतु'**— यह क़ौल चाहे इलहाम के रूप में हो, जिसका सम्बन्ध केवल आत्मा और अन्तरात्मा से है; चाहे आवाज़ की शक्ल में हो, जिसका सम्बन्ध सुनने और ज़ाहिर से है। **'मला'अिकतु'**— के बहुवचन के सीग़े से यह आवश्यक नहीं है कि कहने वाले कई-कई फ़िरिश्ते हों। मलाइक: से मुराद फ़िरिश्तों की जाति भी हो सकती है। शोधकर्ताओं ने कहा है कि फ़िरिश्तों का नबियों से बात करना आयत से सिद्ध होता है। अलबत्ता मलाइक: के लाए हुए दीन के पैग़ाम और सूचनाएँ केवल नबियों के साथ विशेषता रखते हैं। **'इस्तफ़ाकि'**— इस 'इस्तफ़ा' का सम्बन्ध हज़रत मर्यम के बचपन से है। यानी अल्लाह ने तो आरम्भ से ही आपको बुज़ुर्गी दे रखी थी। आपकी माता की दुआओं को सुनकर आपकी उत्पत्ति हुई। फिर हैकल की सेवा का काम लड़कों और मर्दों के लिए नियत था। आपको लड़की होने के बावजूद यह अवसर प्रदान हुआ। फिर आपको आपके हुजरे में खाद्य-पदार्थ जिस एजाज़ी रंग में पहुँचाए गये उसने हज़रत ज़करिया नबी तक को चकित कर दिया। यह सारी गवाहियाँ आपकी बड़ाई और प्रतिष्ठा ही की तो हैं। **'तहहरकि'**— यानी आपको गुनाहों की अपवित्रता से पाकसाफ़ कर दिया और आपको इख़्लाक़ी पाकी का एक आदर्श बना दिया। यह विशेष रूप से यहूद की शरारतों के खण्डन में है, जो गन्दे इल्ज़ामात हज़रत मर्यम पर लगाए हुए थे और आज तक लगाते चले आ रहे हैं।

२८७ **'अिस्तफ़ाकि अला निसा'अिल्-आलमीन'**— पहले 'इस्तफ़ा' का सम्बन्ध मर्यम के बचपन से था

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यानी पैदाइश ही ऐसी हुई। इस 'इस्तफ़ा' का सम्बन्ध उनके बालिग़ होने के बाद से है। यह दूसरा बड़प्पन खास-खास हैसियतों से था, जैसे यह कि पुरुष के माध्यम के बिना फ़िरिश्ते के छूने से उन्हें माता बना दिया गया। इञ्जील में भी हज़रत मर्यम की फ़ज़ीलत और बुज़ुर्गी का वर्णन है, परन्तु क़ुर्आन से कहीं हल्के शब्दों में। "उस कुँआरी का नाम मर्यम था और फ़िरिश्ते ने उसके पास अन्दर आकर कहा, सलाम तुझको जिस पर मेहरबानी हुई है। खुदावन्द तेरे साथ है।" (लूक़ा, १:२७, २८)।

२८८ इसके पूर्व की आयत अगर यहूद के खण्डन में थी तो यह आयत यहूद तथा नसारा दोनों के खण्डन में है। यहूद हज़रत मर्यम की ज़ात को इल्ज़ामों का निशाना बनाए हुए थे। यहाँ यह बताया गया कि आप बड़ी इबादत करनेवाली और ईश्वरभक्त थीं और नसरानियों को यह जतला दिया गया कि मर्यम (नअज़ुबिल्लाह !) न खुदा की माता थीं और न किसी प्रकार की देवी कि उनकी पूजा की जाए या उन्हें किसी दर्जे में उपासना में शरीक किया जाए। उनकी सारी बड़ाई और प्रतिष्ठा तो बस यह थी कि वह अपने मालिक और मौला की निःस्वार्थ परस्तार, पूजनेवाली, आज्ञाकारी और बेहद उपासक और खुदा का हुक्म माननेवाली थीं। —आयत से उद्देश्य हज़रत मर्यम के कमाल-बन्दगी का स्पष्ट करना है। 'सजूद' और 'रुकूअ़' का अर्थ है 'इबादत' और 'उपासना'।

२८९ (ऐ पैग़म्बर !) यानी यह घटनाएँ वह हैं, जो आपसे कई सौ वर्ष पूर्व और वह भी जो एक दूसरे देश में घटित हुई हैं और अब दुनिया से उनका सही इतिहास तक मिट चुका है और उनके सही ज्ञान का कोई स्रोत भी नहीं है। केवल वहीए इलाही है और उसी के माध्यम से आपको बिलकुल ठीक-ठीक हालात एवं घटनाओं का ज्ञान कराया जा रहा है और यह स्वयं आपकी सच्चाई की एक दलील है।

२९० (शाम के दरिया युर्दन में फ़ाल निकालने के लिए) **'अिज़युल्क़ून'**— इस क्रिया के कर्ता कौन थे ? यरोशलम के पवित्र हैकल के सेवक और काहिन (यहूदी परिभाषा में)। **'अक़्लामहुम्'**— हैकलें सुलैमानी की सेवा और देख-रेख के लिए सेवकों की एक बड़ी जमाअत रहा करती थी, जैसे कि बड़ी मस्जिदों की खिदमत के लिए झाड़ू लगानेवाले, फ़र्श साफ़ करनेवाले, दरबान, मुअज़्ज़िन इत्यादि का पूरा अमला रहता है। हज़रत मर्यम के पिता हज़रत इम्रान अपने ज़माने में इन हरम के सेवकों के सरदार थे। उनकी मृत्यु के बाद प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि अब मर्यम का संरक्षक कौन हो ? इन सेवकों में सबसे निकट सम्बन्धी हज़रत ज़करिया थे, जो आपके मौसा (खालू) थे। यह निर्णय हुआ कि सवाल का हल फ़ाल के ज़रीए से किया जाए। फ़ाल खुदाई संकेत या इशारऐ ग़ैबी की जगह मानी गयी और उसकी विधि यह प्रचलित थी कि नेकें क़लम, जो तौरेत के लिखने के होते थे, उनपर तौरेत शरीफ़ ही के कुछ वाक्य लिखकर उन्हें दरिया युर्दन में डाल दिया जाता था और क़लम आमतौर पर दरिया ही के रुख पर बहने लगते, परन्तु बाज़ क़लम उलटे रुख को बहते और यही उलटा बहाव कामयाबी का चिह्न माना जाता। जीत ऐसे ही क़लम के मालिक की समझी जाती। गोया ग़ैब से उसके हक़ में डिग्री हो गयी। यही दशा यहाँ हुई, और क़ुर्अः (पाँसा) हज़रत ज़करिया के नाम पर पड़ा।

२९१ (मर्यम की संरक्षता के विषय में) **'व मा कुन्त लदैहिम्'**— सम्बोधन रसूल (स०) से है। यानी जब मर्यम की सरपरस्ती और उनके पालन-पोषण के व्यय-भार की समस्या चल रही थी तो आप स्वयं वहाँ उपस्थित नहीं थे और न कोई विश्वसनीय आँखों देखी गवाही ही आप तक पहुँची। फिर जो आप इतनी सही और सच्ची खबरें अपनी ज़बान से अदा कर रहे हैं, उनका माध्यम सिवाय अल्लाह की 'वही' के और क्या हो सकता है ?

(फ़ुटनोट सफ़ा ३५१ से)

दाहिनी आँख 'ममसूह' होगी और हज़रत ईसा की बायीं आँख। तो इससे अर्थ यह होता है कि दज्जाल नेकी की शक्तियों से वञ्चित होगा और हज़रत ईसा बदी के गुण समाप्त कर चुके होंगे। **'अ़ीसा'**— इञ्जील के उच्चारण और इमला में "यसूअ़" वास्तव में इब्रानी या सुरयानी भाषा का शब्द है।

२९३ (अल्लाह तआला के) यहूदीयत और मसीहीयत दोनों के मतभेद साथ-साथ चल रहे हैं। 'इब्नें मर्यम' कहकर क़ुर्आन मजीद ने यह सत्य बयान कर दिया कि ईसा अ़लैहिस्सलाम स्वयं तो मनुष्य थे ही, पुत्र भी किसी देवी-देवता या किसी मनुष्य के ऊपर शक्ति के नहीं थे, केवल एक स्त्री के पेट से उत्पन्न हुए थे। 'इब्नें मर्यम' से संकेत इस ओर भी हो गया कि दुनिया के आम क़ायदे के खिलाफ़ ईसा अ़लैहिस्सलाम की निस्बत और सम्बन्ध बाप के स्थान पर माँ की ओर रहेगा और इससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३५२ पर)

अिज़् क़ालतिल्-मलाअिकतु या मर्यमु अिन्नल्लाह युबश्शिरुकि बिकलिमतिम्-
मिन्हु क़ सला अस्मुहुल्मसीहु अीसब्नु मर्यम वजीहन् फ़िद्दुन्या वल्आख़िरति
व मिनल्मुक़र्रबीन ला (४५) व युकल्लिमुन्नास फ़िल्मह्दि व कह्लंव्व
मिनस्सालिहीन (४६) क़ालत् रब्बि अन्ना यकूनु ली वलदुंव्व लम्
यम्सस्नी बशरुन् त क़ाल कज़ालिकिल्लाहु
यख़्लुक़ु मा यशाअु त अिज़ा क़ज़ा अम्रन्
फ़ अिन्नमा यक़ूलु लहू कुन् फ़ यकूनु (४७) व
युअल्लिमुहुल् - किताब वल्हिक्मत वत्तौरात
वल्अिन्जील ज (४८) व रसूलन् अिला
बनी अिस्राअील ला ५ अन्नी क़द् जिअ्तुकुम्
बि आयतिम्-मिर्रब्बिकुम् ला अन्नी अख़्लुक़ु
लकुम् मिनत्तीनि क हैअतित्तैरि फ़ अन्फ़ुख़ु
फ़ीहि फ़ यकूनु तैरम्-बिअिज़्निल्लाहि ज व
अुब्रिअुल्-अक्मह वल्अब्रस व अुह्यिल्मौता
बि अिज़्निल्लाहि ज व अुनब्बिअुकुम्
बिमा तअ्कुलून व मा तद्दख़िरून ला फ़ी
बुयूतिकुम् त अिन्न फ़ी ज़ालिक ल आयतल्लकुम् अिन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन ज
(४९) व मुसद्दिक़ल्लिमा बैन यदय्य मिनत्तौराति व लि अुहिल्ल लकुम्
बअ्ज़ल्लज़ी हुर्रिम् अलैकुम् व जिअ्तुकुम् बि आयतिम्-मिर्रब्बिकुम् क़िफ़
फ़-त्तक़ुल्लाह व अतीअून (५०) अिन्नल्लाह रब्बी व रब्बुकुम् फ़अ्बुदूहु त
हाज़ा सिरातुम् - मुस्तक़ीमुन् (५१) फ़ लम्मा अहस्स अीसा मिन्हुमुल्कुफ़्र
क़ाल मन् अन्सारी अिलल्लाहि त क़ालल्हवारिय्यून नह्नु अन्सारुल्लाहि ज
आमन्ना बिल्लाहि ज वश्हद् बि अन्ना मुस्लिमून (५२) रब्बना
आमन्ना बिमा अन्ज़ल्त वत्तबअ्नर्रसूल फ़क्तुब्ना मअश्शाहिदीन (५३)

تلك الرسل ٣ — ٤٤ — آل عمران

مريم وما كنت لديهم اذ يختصمون ﴿٤٤﴾ اذ قالت الملٰئكة
يٰمريم ان الله يبشرك بكلمة منه اسمه المسيح عيسى
ابن مريم وجيها في الدنيا والاخرة ومن المقربين ﴿٤٥﴾ ويكلم
الناس في المهد وكهلا ومن الصٰلحين ﴿٤٦﴾ قالت رب انى
يكون لي ولد ولم يمسسني بشر قال كذٰلك الله يخلق ما
يشاء اذا قضى امرا فانما يقول له كن فيكون ﴿٤٧﴾ ويعلمه
الكتٰب والحكمة والتورٰىة والانجيل ﴿٤٨﴾ ورسولا الى بني
اسراءيل انى قد جئتكم باية من ربكم انى اخلق لكم
من الطين كهيئة الطير فانفخ فيه فيكون طيرا باذن الله
وابرئ الاكمه والابرص واحي الموتٰى باذن الله وانبئكم
بما تاكلون وما تدخرون في بيوتكم ان في ذٰلك لاية
لكم ان كنتم مؤمنين ﴿٤٩﴾ ومصدقا لما بين يدي من التورٰىة
ولاحل لكم بعض الذي حرم عليكم وجئتكم باية من
ربكم فاتقوا الله واطيعون ﴿٥٠﴾ ان الله ربي وربكم فاعبدوه
هٰذا صراط مستقيم ﴿٥١﴾ فلما احس عيسى منهم الكفر قال
من انصاري الى الله قال الحواريون نحن انصار الله
امنا بالله واشهد بانا مسلمون ﴿٥٢﴾ ربنا امنا بما انزلت

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(वह वक़्त याद करो) जब फ़िरिश्तों ने कहा कि ऐ मर्यम ! अल्लाह आपको ख़ुशख़बरी दे रहा है अपनी ओर से एक कलिमे (वचन) की, उनका नाम (तथा पदवी) मसीह ईसा इब्ने मर्यम होगा[२९२] दुनिया और आख़िरत दोनों में सम्मानित ईश्वर के निकटतम लोगों में से[२९३]। (४५) और वह लोगों से बात करेंगे पालने में भी और परिपक्व आयु में भी और नेक लोगों में से होंगे[२९४]। (४६) वह बोलीं, ऐ मेरे परवरदिगार ! मेरे लड़का कैसे होगा ऐसी स्थिति में कि मुझे किसी पुरुष ने हाथ तक नहीं लगाया है[२९५]। इर्शाद हुआ, ऐसे ही अल्लाह पैदा कर देता है जो कुछ वह चाहता है[२९६]। जब वह किसी बात को पूरा करना चाहता है तो बस उससे कहता है कि हो जा, सो वह हो जाती है[२९७]। (४७) और (अल्लाह) उसे किताब और हिकमत और तौरेत और इन्जील सिखा देगा[२९८]। (४८) और वह पैग़म्बर होगा बनी इसराईल के लिए[२९९]। (और कहेगा) मैं तुम्हारे पास तुम्हारे परवरदिगार की तरफ़ से निशानी लेकर आया हूँ[३००], मैं तुम्हारे लिए मिट्टी से चिड़ियों की भाँति सूरत बना देता हूँ, फिर उसमें दम कर देता हूँ तो वह अल्लाह के हुक्म से परिन्दा (चिड़िया) बन जाता है। और मैं अल्लाह के हुक्म से पैदाइशी अन्धे और कोढ़ी को अच्छा कर देता हूँ और मैं अल्लाह के हुक्म से मुर्दों को ज़िन्दा कर देता हूँ। और तुम जो कुछ खाते हो और जो कुछ अपने घरों में ज़ख़ीरा जमा करते हो वह तुम्हें बतला देता हूँ। बेशक इन सारी घटनाओं में तुम्हारे लिए एक निशानी है अगर तुम ईमान रखते हो[३०१]। (४९) और मैं तस्दीक़ करनेवाला हूँ अपने से पूर्व आयी हुई तौरेत की और (इसलिए आया हूँ) कि तुम पर जो कुछ हराम कर दिया गया था, उसमें से तुम पर कुछ हलाल कर दूँ[३०२]। और मैं तुम्हारे पास तुम्हारे परवरदिगार के यहाँ से निशान लेकर आया हूँ[३०३], सो तुम अल्लाह से डरो और मेरी आज्ञा मानो[३०४]। (५०) बेशक अल्लाह मेरा भी परवरदिगार है और तुम्हारा भी परवरदिगार है, सो उसकी इबादत करो —यही सीधी राह है[३०५]। (५१) फिर जब ईसा ने उनकी ओर से इन्कार ही पाया[३०६], तो बोले मेरा कौन सहायक होगा अल्लाह के लिए ? हवारी बोले, हम हैं अल्लाह के मददगार[३०७]। हम ईमान लाये हैं अल्लाह पर, और आप गवाह रहियेगा कि हम आज्ञाकारी हैं[३०८]। (५२) ऐ हमारे परवरदिगार ! हम ईमान ले आये उस पर जो कुछ तूने उतारा है और हमने पैरवी (इख़्तियार) कर ली रसूल की, सो हमको भी गवाहों के साथ लिख ले[३०९]। (५३)

---

२९२ **'अल्मला'अिकतु'** पर हाशिया गुज़र चुका है। **'युबश्शिरुकि बिकलिमतिन्'**— बशारत और शुभ सन्देश यहाँ मर्यम को बेटे की मिल रही है। वह बेटा जिसे बिन बाप के होने पर **'कलिमतुल्लाह'** कहा गया है। हज़रत मर्यम उस समय यहूदी रस्मोरवाज के लिहाज़ से अविवाहित और कुँआरी थीं, अल्बत्ता आपकी मँगनी आप ही के क़बीले और कुफ़ू (गोत्र) के एक नवयुवक यूसुफ़ नामक से हो चुकी थी, जिनके यहाँ लकड़ी का कारोबार होता था। इन्जील का बयान है— "जिब्राल फ़िरिश्ता ख़ुदा की तरफ़ से गलील के एक शहर में, जिसका नाम नासिरा था, एक कुँआरी के पास भेजा गया जिसकी मँगनी दाऊद के घराने के एक पुरुष यूसुफ़ नाम से हुई थी और उस कुँआरी का नाम मर्यम था।" (लूक़ा १:२६, २७)। "यसूअ मसीह की पैदाइश इस प्रकार हुई कि जब आपकी माँ मर्यम की मँगनी यूसुफ़ के साथ हो गयी तो उन-उनके इकट्ठे होने से पहले वह रूहुल् क़ुदुस की महिमा से गर्भवती पायी गयी।" (मत्ती–१:१८)। मँगनी की जो रस्म यहूद के यहाँ थी उसके लिहाज़ से हमें अपने यहाँ की परिभाषा और भाषा में यूँ कहना चाहिए कि आपका अक़्द हो गया था। अभी रुख़सती नहीं हुई थी, गोया एकान्त की आज्ञा अभी नहीं हुई थी। **'अिस्मुहू'**— इस शब्द पर हाशिया प्रथम पारे में हो चुका है। संज्ञा नाम वाले के परिचय हेतु होता है। हज़रत ईसा के परिचय हेतु यह पूरी इबादत आवश्यक थी। **'अल्मसीहु'**— शब्द 'मसीह' किस शब्द से बना है इसमें मतभेद है। चाहे यह शब्द अ़रबी या इब्रानी हो, बहरहाल अपने अर्थ के लिहाज़ से उर्दू के शब्द "मुबारक" (शुभ) के माने में है। रिवायतों में जो यह आता है कि दज्जाल (मायावी, छली) की

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३४६ पर)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३४६ से)

आपकी पैदाइश साधारण दशा में नहीं हुई। **'बजीहन् फ़िद्दुन्या वल्आखिरति'**— यह बात यहूद के खण्डन में है कि तुम जिनके हक़ में हर प्रकार का अपमान और इल्ज़ाम जाइज़ रखते हो, वह सम्मानित एवं आदरणीय है दुनिया में भी आखिरत में भी। यहूद की पुरानी पुस्तकों में हज़रत मसीह के अपमान एवं निरादर की कोई क़स्र नहीं छोड़ी गयी है। यह क़ुर्आन मजीद की ही बरकत है कि जिसके कारण अब यहूद के लहजे और अन्दाज़ में नर्मी उत्पन्न हुई है और 'तालमूद' में जो अपराध हज़रत ईसा पर लगाये गये हैं, उनको दोहराते हुए उन्हें लज्जा महसूस होने लगी है। आखिरत के आदर नज़्ज़ारा जब होगा, होगा, दुनियावी सम्मान देखा जा सकता है कि विश्व के ४०, ५० करोड़ मुसलमान उन्हें ख़ुदा का पैग़म्बर मान रहे हैं, उनका नाम बिना 'अलैहिस्सलाम' के नहीं लेते; और करोड़ों की संख्या में ईसाई हैं, जो उन्हें रसूल के दर्जे से भी ऊँचा समझ रहे हैं। यद्यपि यह असत्य और मूर्खतापूर्ण बात है, परन्तु बहरहाल आपके सम्मान और आदर का ही परिणाम है। **'मिनल्मुक़र्रबीन'**— क़ुर्आन मजीद का यह कमालें एजाज़ कि उसके एक ही शब्द से पूरा मज़मून अदा हो जाता है। यहाँ इस शब्द से एक तो मसीहीयत के ग़लत अक़ीदे के खण्डन हेतु आपका वास्तविक स्थान बता दिया। यानी ख़ुदा के निकटतम न कि स्वयं ख़ुदा, दूसरी ओर यहूदीयत के खण्डन में आपकी प्रतिष्ठा की गवाही दे दो। तीसरी ओर **'मिनल्मुक़र्रबीन'** की तर्कीब से यह स्पष्ट कर दिया कि इस मक़्बूलियत (निकटता, स्नेह) में वह अकेले ही नहीं है, दूसरे बन्दे भी उनके साथ शरीक हैं और मसीह इस इज़्ज़त, आदर और प्रतिष्ठा के बावजूद बन्दे के ऊपर कोई बे-मिसाल अस्तित्व नहीं रखते।

२६४ न कि 'मआज़ल्लाह' जादूगर या मदारी या अशिष्ट (जैसा कि यहूद ने इल्ज़ाम लगाया है।) **'मिनस्सालिहीन'**— परन्तु इस शान और सम्मान के बावजूद बहरहाल दूसरे नेक बन्दों और सिद्ध पुरुषों की भाँति ही होंगे। न कि उनके ऊपर कुछ और जैसा कि मसीहियों ने अपने मन से बना लिया है। **'युकल्लिमुन्नास'**— इससे संकेत होता है आपके तब्लीग़ (ईश-सन्देश का प्रचार एवं प्रसार) के जोश का। लोगों से आपकी वार्ता क़िस्सा-कहानी की नहीं अवश्य ही तौहीद और विश्वासों की शुद्धि ही पर होगी। इन्जीलों से भी जितनी गवाहियाँ मिलती हैं, सबसे आपकी तब्लीग़ के जोश का ही समर्थन होता है। **'फ़िल्मह्दि'**— यानी बिलकुल बचपन से या उस सिन से जो पालने में लेटे रहने का होता है। इतनी कमसिनी से गुफ़्तुगू और वार्ता पर यह क़ाबू मोजिज़ाई रंग में था। इन्जीली कथाओं से ज्ञात होता है कि आप १२ वर्ष की आयु से तब्लीग़ करने लगे थे और अच्छे-अच्छे बुद्धिमान आपकी बातें सुनकर दंग रह जाते थे। (लूक़ा-२०:४२, ४६, ४७)। **'कह्लन्'** से मुराद है पक्की आयु यानी नौजवानी और बुढ़ापे के बीच का ज़माना। यह आयु ३० या ३४ से ऊपर ५१ बर्ष के सिन तक होती है। हज़रत मसीह के बचपन और फिर पक्की उम्र के वर्णन से संकेत इस ओर भी हो गया कि हर इन्सान की भाँति आप भी धीरे-धीरे बढ़ते रहे और इस प्रकार पलना-बढ़ना स्वयं इस बात की दलील है कि आप ख़ुदा नहीं थे और न आप में ख़ुदाईयत थी।

२६५ (मिलाप होने के रूप में) इन्जील के उल्लेखानुसार हज़रत मर्यम की अभी रुख़सती नहीं हुई थी और रुख़सती के पूर्व नामज़द पति से एकान्त होना यहूदी क़ानून में वर्जित था। **'क़ालत् रब्बि'** इन्जील में इस स्थान पर है कि "मर्यम ने फ़िरिश्ते से कहा"। (लूक़ा १:२४)। क़ुर्आन मजीद ने इस अवसर पर भी इन्जील के उल्लेख की शुद्धि की है और यह बता दिया कि इस जगह हज़रत मर्यम फ़िरिश्ते से नहीं सीधे हक़तआला से सम्बोधन किए हुए थीं और हर सूझ-बूझ के व्यक्ति पर प्रकट हो जाता है कि हज़रत मर्यम का ईश-भक्ति में किस क़दर उच्च स्थान था और उनका ईमान कितना बुलन्द था। **'अन्ना यकूनु ली वलदुन्'**— फ़िरिश्ते की ज़बान से वह पूरी बात सुनकर अब हज़रत मर्यम अपने मालिक और मौला से यह निवेदन कर रही हैं। आपका यह प्रश्न स्पष्ट है कि आश्चर्य और घटना के अनोखेपन के आधार पर था, न कि सन्देह और इनकार के आधार पर। फ़िरिश्ते या फ़िरिश्तों से आमने-सामने हो जाने और उनकी बात सुन लेने के पश्चात् इनकार का तो अब कोई मौक़ा रहा ही नहीं था। दुबिधा अवश्य अवशेष थी जो मानव की प्रवृत्ति ही है। इन्जील ने इस अवसर पर जो विवरण दिया है वह इस प्रकार है— "फ़िरिश्ते ने उसके पास अन्दर आकर कहा, सलाम तुझको जिस पर फ़ज़्ल हुआ है (कृपा हुई है), ख़ुदावन्द तेरे साथ है। वह इससे बहुत घबड़ा गयी और सोचने लगी कि यह कैसी बात है? फ़िरिश्ते ने उससे कहा कि ऐ मर्यम! ख़ौफ़ न कर, क्योंकि ख़ुदा की ओर से तुझ पर दया हुई है और देख तू गर्भवती होगी और बेटा जनेगी। उसका नाम 'यसूअ' होगा। वह बुज़ुर्ग होगा............। मर्यम ने फ़िरिश्ते से कहा, यह क्योंकर होगा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिस हाल कि मैं मर्द को नहीं जानती। और फ़िरिश्ते ने जवाब में उससे कहा कि रूहुल्-क़ुदुस तुझ पर उतरेगा और ख़ुदा तआला की महिमा तुझ पर छाया करेगी।" (लूक़ा १:२८-३४)।

२६६ भ्रम को दूर करने हेतु यहाँ मर्यम को याद दिलाया जा रहा है कि दृष्टि-साधनों को उत्पन्न करनेवाले ख़ुदा पर रखनी चाहिए, क्योंकि वह अस्ल कर्तार है, न कि प्रकृति और ज़ाहिरी साधन, क्योंकि उनकी हैसियत केवल माध्यम मात्र होती है। **'कज़ालिक'**— यानी मनुष्य के छूने के बिना ही। **'यख़्लुक़ु मा यशा'अु'**— अभी थोड़ी ही आयतों के पूर्व हज़रत ज़करिया और उनके बुढ़ापे की सन्तान का वर्णन हो चुका है। वहाँ इस अवसर के लिए जो आयत थी उसके शब्द थे **'कज़ालिक······यशा'अु'** वहाँ **'यफ़्अलु'** और यहाँ **'यख़्लुक़ु'** का प्रयोग केवल इत्तिफ़ाक़ी नहीं है। तफ़्सीर करनेवाले और शोधक अबू ह्य्यान ग़रनाती ने ख़ूब लिखा है कि वहाँ तो पैदाइश स्वाभाविक रूप में हुई थी, यानी स्त्री-पुरुष के मिलने से, यद्यपि वह स्त्री-पुरुष सिन से उतर चुके थे, वहाँ ईश्वरीय महिमा के प्रदर्शन के लिए **'यफ़्अलु'** काफ़ी था। उसके विपरीत यहाँ आम और प्रचलित ईश्वरीय विधान से हटकर बिना स्त्री-पुरुष के मेल के केवल स्त्री ही से पैदाइश की तहक़ीक़ करानी है, अतः यहाँ शब्द भी **'यख़्लुक़ु'** लाया गया है, जो हक़ तआला के अन्वेषण और नयी चीज़ के उत्पन्न करने के गुण की दलील है।

२६७ (और वह हो जाता है चाहे साधनों के माध्यम से हो या बिना किसी ज़ाहिरी साधनों और कारणों के।) इस प्रकार की आयतें बराबर उन फ़ल्सफ़ियों और असत्य पर आधारित धर्मों के खण्डन में हैं, जो भूत पर आँकने के बाद क़दीम (अनादि) को भी कारणों और माध्यमों का पाबन्द समझते हैं। 'लहू'— मूर्खों ने एक प्रश्न यह पैदा किया है कि कोई वस्तु जब अभी सिरे से मौजूद ही नहीं है, तो हक़ तआला का सम्बोधन उससे किस प्रकार होता है? खुला हुआ जवाब यह है कि अल्लाह के इल्म और उसके ज्ञान में तो वह मौजूद है ही तो अब उसको आदेश होता है कि ख़ारिज में भी मौजूद हो जा। **'यक़ूलु लहू कुन्फ़ यकूनु'** क़ौल 'कुन्' से मुराद इस दो अक्षर के शब्द का उच्चारण नहीं है, क्योंकि यह अक्षर तो स्वयं क़दीम नहीं हैं (अनादिकाल से नहीं हैं— नये हैं)। मुराद अल्लाह तआला का क़ौल उस कैफ़ीयत के साथ है, जो उसकी शान और शक्ति के अनुसार है। जिस प्रकार उसके सभी गुण मानव-बुद्धि से परे की चीजें हैं, उसके क़ौल की दशा भी किसी विवरण से नहीं समझी जा सकती। सारांश यह है कि अल्लाह के इरादे और उसका कार्यान्वयन के मध्य कोई अन्य चीज़ न रोक है, न पर्दा है। **'क़ज़ा अम्रन्'**— **'क़ज़ा'** के माने इस सन्दर्भ में हैं 'इरादा कर लेने के'।

२६८ (जैसा कि अल्लाह का मामला दूसरे नबियों के साथ भी रहता है।) **'युअ़ल्लिमुहू'**— सर्वनाम ज़ाहिर है कि हज़रत मर्यम के पुत्र यानी हज़रत ईसा की ओर है। हज़रत की प्रतिष्ठा का जो स्थान इन शब्दों से बयान करना उद्देशित है, वह तो ज़ाहिर ही है, परन्तु स्वयं मर्यम के हृदय की सान्त्वना की कितनी व्यवस्था हुई जा रही है। गोया यह फ़र्माया जा रहा है कि तुम ग़म न करो और परेशान न हो। बे-पति के सन्तान की उत्पत्ति पर दुनिया तुमको जिस क़दर बदनाम करेगी और ताने देगी, उसकी तलाफ़ी (क्षतिपूर्ति) के लिए सन्तान भी तुम्हें किस स्तर की प्रदान की जा रही है। **'अल्किताब'**— यानी आसमानी किताब। **'अल्हिक्मत'**— 'हिक्मत' से मुराद है सभी दीनी कार्य और इससे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि पयम्बर दीनी तालीम अपनी किताब के अलावा भी लेकर आते हैं।

२६९ (जैसा कि हर पयम्बर अपनी-अपनी क़ौम की ओर नियुक्त होता रहा है।) **'रसूलन्'**— आपका मर्तबा पयम्बरी का होगा, न आप मआज़ल्लाह और शोबदाबाज़ (मदारी) होंगे, जैसा कि बदतमीज़ यहूद ने आपको समझा और न (नऊज़ुबिल्लाह) आप ख़ुदा या उसके बेटे होंगे जैसा कि नसरानियों ने गढ़ लिया है। **'अिला बनी' अिस्रा'ईल'**— यह बिलकुल स्पष्ट है इस विषय में कि आपकी दावत दीन बनी इस्राईल तक सीमित थी और दूसरे बनी इस्राईली पयम्बरों की भाँति आप भी केवल क़ौमी नबी थे। इञ्जील तक में इतने फेर-बदल के बाद भी यह बात अभी बाक़ी है— "उन बारह को यसू ने भेजा और उन्हें हुक्म देकर कहा कि ग़ैर क़ौमों की तरफ़ न जाना और सामिरियों के किसी नगर में प्रवेश न करना, बल्कि इस्राईल के घराने की खोई हुई भेड़ों के पास जाना।" (मत्ती १०:५-७)। "उसने जवाब में कहा कि बनी इस्राईल के घराने की खोई हुई भेड़ों के सिवा और किसी के पास भेजा नहीं गया।" (मत्ती १६:२४)। लगभग दो हज़ार वर्ष की कलीसा की ऊपरी चमक-दमक पैदा करने की कोशिशों के बाद भी ख़ुद मसीही आलिमों को मान्य है कि नसरानीयत के प्रचार की यह विश्वव्यापी तहरीक (आन्दोलन) इन लोगों का अपना अन्वेषण है। स्वयं हज़रत मसीह के यहाँ इस तालीम का पता नहीं। "मसीह ने इस्राईल के बाहर अपने मुरीद (चेला) तलाश नहीं किये।" (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका जिल्द ५ सफ़ा ६३१)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मसीह तो मसीह, हवारियों तक का भी यह विचार नहीं था— "शुरू के चेलों को मसीह की शिक्षा के विश्वव्यापी होने का एहसास न हुआ।" (ऐज़न्-पृष्ठ ६३२)।

३०० (जैसा कि दूसरे पैग़म्बर भी ख़ुदाई निशानियाँ ले-लेकर आते रहे हैं।) **'आयतिन्'** का अर्थ है 'निशान', 'चिह्न'। यहाँ इसका अर्थ मोजिज़ा है। मोजिज़ा ऐसी घटना के घटित होने का नाम है जो आम और जाने हुए परिचित कारणों के सिलसिले से अलग हो। पयम्बर के ज़रीए ऐसे आदत के विरुद्ध वाक़िआत के होने को इस बात की दलील माना जाता था कि अल्लाह की मदद और उसका समर्थन पयम्बर के साथ है। मोजिज़े का कर्ता सृष्टि के बड़े, छोटे, मामूली और असाधारण घटना की तरह केवल अल्लाह तआला होता है। पयम्बर केवल एक माध्यम या ज़रीअः होता है। जो लोग सर्वशक्तिमान् की शक्ति को मानते हैं, उनके लिए किसी बड़े से बड़े मोजिज़े की सम्भावना तो इन्कार के योग्य, बल्कि सन्देह के योग्य भी नहीं हो सकती। प्राकृतिक, अप्राकृतिक, आदी और ग़ैरआदी, परिचित, अपरिचित, खुला हुआ या छुपा हुआ कारण और उसका फ़र्क़ करना तो मानव अनुभव के लिहाज़ से है। सर्वशक्तिमान् के लिए सब बराबर हैं। अब रहा किसी नियत मोजिज़े का प्रमाण तो इसका सम्बन्ध मनोविज्ञान से नहीं है, न लाजिक से है, बल्कि इतिहास से है। अक़्ल से नहीं नक़्ल से है। वर्णन, जिसका सम्बन्ध ज्ञान और बुद्धि से नहीं है, लोगों द्वारा बयानों से है। यहाँ आँकना और अन्दाज़ा लगाना काम नहीं देता। अब बात केवल विश्वसनीय गवाही और निकटतम प्रमाण की रू से होगी। मसीह के मोजिज़ों का बयान इन्जीलों में बहुत अधिक बार आया है। **'मिर्रब्बिकुम्'**— यह बढ़ोतरी इस हक़ीक़त पर बल देने के लिए है कि मोजिज़ा अल्लाह तआला की ओर से ही होता है, न कि पैग़म्बर की शक्ति और उसके अधिकार से, यह और बात है कि उसका उद्देश्य पयम्बर की ही सहायता एवं उसका समर्थन होता है।

३०१ यानी अगर तुम अपनी अन्दरूनी बुराई, हठधर्मी और शत्रुता को छोड़कर ईमान के इच्छुक और विश्वास एवं संतोष प्राप्त करना चाहते हो। **'ख़ल्क़'** का सम्बन्ध जब पैदा करनेवाले की ओर होता है, तो उससे मुराद होता है न होने से होने की ओर अदम से अस्तित्व में लाना, और जब मानव की ओर होता है तो इससे मुराद होता है अन्दाज़ा करना, एक विशेष अन्दाज़ से बनाना और सूरत उत्पन्न करना और यहाँ खुली हुई मुराद यही है। **'लकुम्'**— यानी तुममें यक़ीन उत्पन्न करने के लिए। साधारण व्यक्ति आम तौर पर दलीलों के स्थान पर और बुद्धि की जगह मोजिज़ों और आम हालात से अलग अनोखी घटनाओं ही से अधिक प्रभावित होते हैं और यहूद तो अपनी अजूबापसन्दी में विशेष रूप से बहुत बढ़े हुए थे। **'मिनत्तीनि'**— इस फ़िक़रे ने और ज़्यादा खोल दिया और इस हक़ीक़त को ही ईसा की ही ज़बान से अदा कर दिया है कि मैं 'न होने' से 'होने में' कदापि नहीं लाता। केवल माद्दे में एक विशेष तर्कीब तथा क्रम से प्रयोग करता हूँ। **'क हैअतित्तैरि'**— यानी चिड़ियों की शक्ल के खिलौने मिट्टी से बनाता हूँ। **'तैर'** यहाँ क़िस्म की संज्ञा के रूप में है। **"फ़ अनफ़ुख़ु फ़ीहि फ़ यकूनु तैरम्"** यानी मेरे फूँक देने से उनमें जान पड़ जाती है और वह सचमुच के परिन्दे बनकर उड़ने लगते हैं। चारों इन्जीलें जो कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट् कलीसाओं के निकट प्रमाणित हैं, उनमें इस मोजिज़े का ज़िक्र नहीं, परन्तु जो इन्जील Coptic Church की प्रमाणित है उसमें यह स्पष्ट वर्णित है कि डॉक्टर बज़ (Budge) ने अपनी पुस्तक Legends of our Lady Mory के 'परिचय' सफ़ा २६ में लिखा है— "वह चिड़ियों की शक्ल के जानवर बना देते जो उड़ सकते थे।" **'बिइज़्निल्लाहि'**— यानी यह जो कुछ भी मैं कर दिखाता हूँ, उसे कहीं मेरी शक्ति और उत्पत्ति करने की क्षमता का परिणाम न समझ लेना। यह जो भी होता है सब केवल अल्लाह के इरादे और उसी की महिमा का नतीजा है। **'अल्अक्मह'**— अन्धों को बिना आप्रेशन के देखनेवाला बना देना यूँ भी सरल नहीं, न कि पैदाइशी अन्धों को और 'अक्मह' ऐसों ही को कहते हैं। मसीह के इस मोजिज़े का वर्णन इन्जील में कई स्थानों पर है, जैसे इन्जील मत्ती—६:२७, ३० में और इन्जील मरक़ुस में ८:२२, २५ में। परन्तु सबसे अधिक विवरण इन्जील यूहन्ना ६:१, ७ में है और उसमें विवरण अन्धे के पैदाइशी होने का है। **'अल् अबरस'**— कोढ़ियों के अच्छा करने का वर्णन इन्जील में दो स्थानों पर है। एक जगह एक कोढ़ी को शिफ़ा देने का और दूसरे स्थान पर दस कोढ़ियों को। "जब वह उस पहाड़ से उतरा तो बहुत सी भेड़ें उसके पीछे हो लीं और देखो एक कोढ़ी ने पास आकर उसे सज्दः किया और कहा, ऐ ख़ुदावन्द ! अगर तू चाहे तो मुझे पाकसाफ़ कर सकता है। उसने हाथ बढ़ाकर उसे छुआ और कहा कि मैं चाहता हूँ कि तू पाकसाफ़ हो जाए। और तुरन्त कोढ़ पाकसाफ़ हो गया।" (मत्ती ८:१,३)। "और ऐसा हुआ कि यरोशलम को जाते हुए वह सामिरया और गलील के बीच से होकर जा रहा था और एक ग्राम में प्रवेश करते समय दस कोढ़ी उसे मिले। उन्होंने दूर खड़े होकर ऊँची आवाज से कहा, ऐ यसूअ ! ऐ साहब, हम पर दया कर। उसने उन्हें देखकर कहा, जाओ अपने को काहिनों को दिखाओ और ऐसा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुआ कि वह जाते-जाते पाकसाफ़ हो गये ।" (लूक़ा १७:११-१४) । इन्जील के नवीन आलोचकों ने नाना प्रकार की जिरह (पूछताछ) करके विगत शताब्दी की चारों इन्जीलों का कोना-कोना ज़ख्मी कर डाला है, परन्तु इतने अंश पर यह आलोचक भी सहमत हैं कि मसीह के शिफ़ा बख्शनेवाले मोजिज़े सिद्ध हो चुके हैं (अवलोकित हो, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका जिल्द १५, सफ़ा ६२, चौथा संस्करण) और इन्साइक्लो-पीडिया बिबलिका जो विशेष रूप से इन्हीं आलोचनाओं के लिए है । **'उह्यिल्मौता'**— बरनाबा हवारी की जो इन्जील चली आ रही है उसमें मौत के बाद ज़िन्दगी देने का विवरण भी मौजूद है (सफ़ ४३७, ४४१ अंग्रेज़ी संस्करण), रहीं और इन्जीलें जो मौजूदा मसीहियों को मान्य हैं और उनके विश्वास में प्रमाणित हैं वह भी इस वर्णन से खाली नहीं हैं, बल्कि उनमें अनेक उदाहरण इस प्रकार के मोजिज़ों के वर्णित हैं । लूक़ा, जो यूनान में वैद्य के रूप में प्रसिद्ध है, उनके हवाले से जो इन्जील है उनमें अंकित है— "थोड़े समय के बाद ऐसा हुआ कि वह माईन नामक एक ग्राम को गया और उसके चेले और बहुत से लोग उसके साथ मौजूद थे । जब वह नगर के फ़ाटक के निकट पहुँचा तो देखा, एक मुर्दे को बाहर लिये जाते थे, वह अपनी माँ का इकलौता था और वह विधवा थी और नगर के बहुतेरे लोग उसके साथ थे । उसे देखकर ख़ुदावन्द को तरस आया और उससे कहा, रो नहीं । फिर उसने पास आकर जनाज़े (मुर्दा जिस्म) को छुआ और उठानेवाले खड़े हो गये और उसने कहा, ऐ जवान ! मैं तुझसे कहता हूँ 'उठो' वह मुर्दा उठ बैठा और बोलने लगा और उसने उसे उसकी माँ को सौंपा । और सब पर भय छा गया ।" (लूक़ा ७:११-१६) । और (७:२२) इन्जील मत्ती (१ :१८-२५) में एक ताज़ा मय्यित (एक सरदार की लड़की) के जिलाकर उठाने का ज़िक्र है और इन्जील यूहन्ना में बड़े विवरण के साथ एक चार दिन के दफ़्न किए हुए मुर्दे को जीवित करने का ज़िक्र है । **'बि इज़्निल्लाहि'**— और अधिक बल देने हेतु इस फ़िक़रे को फिर लाया गया है कि कहीं इन मोजिज़ाई चीज़ों को मुझसे सम्बद्ध न कर देना । जो कुछ भी हुआ केवल सच्चे ख़ुदा की महिमा और उसकी स्वेच्छा से हुआ । ख़ुदा को पहुँचे हुए बाज़ अहले हाल सूफ़िया ने, जो ऐसे क़ौल अपनी ओर सम्बद्ध कर गये हैं जो केवल अल्लाह के साथ विशेषता रखते हैं, वह अगर सही हैं तो सम्भवतः इस कारण हैं कि उन पर ईश्वर के प्रेम का सम्पूर्ण रूप से क़ाबू हो गया, परन्तु उनमें जो अहले अदब हैं वह हर ऐसे अवसर पर हज़रत मसीह ही की भाँति **'बि इज़्निल्लाहि'** या उसी माने का दूसरा शब्द लिखते या बोलते हैं । **'उनब्बिउकुम्............बुयूतिकुम्'**— यह बात आपने मिसाल और नमूने के रूप में कही यानी तुम्हारी छुपी हुई चीज़ों पर अल्लाह मुझे सूचना दे देता है । **'आयतन्'**— यानी चिह्न मेरे पयम्बर और अल्लाह के समर्थन किए हुए होने का । हज़रत मसीह के हाथ से मोजिज़ों का भारी संख्या में प्रदर्शित होने की घटनाएँ इतिहास की मानी हुई चीज़ें हैं । चाहे इन्कार करनेवाले उनकी कोई भी वजह और कारण बताते हों । यहूद ने इन्हीं मोजिज़ों को देखकर आपको जादूगर और मदारी कहना शुरू कर दिया, चुनांचिः 'जोज़ेफ़स' (मृत्यु १०० ई०) ने अपनी इतिहास की पुस्तक "आसारे यहूद" में आपका ज़िक्र इसी रूप में किया है और Gewish Encyclopaedia में आपका ज़िक्र इन शब्दों में लिखा चला जाता है— "यसूअ के दीन के शिक्षक या विधान बनानेवाले की हैसियत के नहीं बल्कि मदारी के रूप में अपनी ज़िन्दगी में प्रसिद्धता एवं ख्याति गलील के सादामिज़ाज बाशिन्दों में प्राप्त किया ।" (जिल्द ७ सफ़ा १६७) ।

०२ (अल्लाह के हुक्म से) **'मुसद्दिक़न्........तौराति'**— कोई नया नबी पुराने नबी को ग़लत कहने और उनकी काट करने के लिए नहीं आता है (इस प्रकार का शोधकरण केवल फ़ल्सफ़ियों और विद्वानों को मुबारक रहे), बल्कि हर नवीन पयम्बर नये पयाम के साथ पुराने पयाम को पूर्ण करने और उसको नवजीवन प्रदान करने को आता है । हज़रत मसीह भी यहाँ यही कह रहे हैं कि मैं हज़रत मूसा की शरीअत को मिटाने नहीं आया हूँ, उनको नवजीवन देने, उसकी नवीनीकरण करने और उसकी तस्दीक़ करने आया हूँ । इस प्रकार का विवरण मौजूदा इन्जील में भी पाया जाता है । जैसे, "यह न समझो कि मैं तौरेत या नबियों की किताबों को मन्सूख करने आया हूँ । मन्सूख करने नहीं बल्कि पूरा करने आया हूँ ।" (मत्ती ५:१७) । "आसमान और ज़मीन का टल जाना शरीअत के एक बिन्दु के मिट जाने से आसान है ।" (लूक़ा १६:१७) । इन्जीली भाषा में शरीअत का अर्थ शरीअते मूसवी होता है । **'हूर्रिम अलैकुम्'**— यानी शरीअते मूसवी में जो चीज़ें तुम पर हराम थीं— क़ानूनी अनुभागों और फ़िक़्ह की बारीकियों में संशोधन और उसे सरल बनाना, आम तस्दीक़ एवं समर्थन के ज़रा भी विपरीत नहीं । **'उहिल्ल लकुम्'**— मसीही तालीम ने क़दीम (पुरानी) मूसवी शरीअत में जो बाज़ आसानियाँ पैदा कर दी थीं, उनका ज़िक्र मौजूदा प्रचलित इन्जील में है; जैसे— "ऐ मेहनत उठानेवालो और भार से दबे हुए लोगो ! सब मेरे पास आओ, मैं तुम्हें आराम दूँगा । मेरा जुआ अपने ऊपर उठा लो और मुझसे सीखो, क्योंकि मैं सहनशील और दिल का उदार हूँ; तो तुम्हारी जानें आराम पायेंगी, क्योंकि मेरा जुआ नर्म है और मेरा बोझ हलका ।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(मत्ती १२:२८-३६)। यह भी मुराद हो सकती है कि तुम्हारे लोगों ने अपनी ओर से जो आदेश तौरेत में मिला-जुला दिए हैं, मैं इस सारे बोझ को तुमसे दूर करने आया हूँ।

३०३ (और अपनी नबूवत और रिसालत का) **'आयत'** निशान का शब्द दलीलों और मोजिज़ों दोनों पर हावी है और शब्द के अकेले होने से यह ख़याल न हो कि मानी भी अकेले (एक वचन) में हैं और कोई एक विशेष निशान इससे मुराद है। **'आयत'** संज्ञा है। इससे मुराद है सारे सुबूत अर गवाहियाँ हज़रत की सच्चाई की। सम्बोधन बनी इस्राईल से है।

३०४ (ख़ुदा के रसूल की हैसियत से) **'फ़त्तक़ुल्लाह'**— यानी अल्लाह से डरो और उसके रसूल को झुठलाने का साहस न करो।

३०५ (जिसकी शिक्षा आरम्भ से लेकर अन्त तक सारे पयम्बर देते आये हैं।) हज़रत ईसा की असल शिक्षा बन्दगी और तौहीद की थी। ज़ालिमों ने उसे बिगाड़कर तीन ख़ुदाओं की तालीम बना दी जो शिर्क की एक खुली हुई शक्ल है। **'रब्बी व रब्बुकुम्'**— इसमें संकेत इस ओर है कि अल्लाह के पैदा किए हुए और उसी के द्वारा पाले जानेवाले और बन्दे होने के नाते पयम्बर और उम्मती सब यकसाँ हैं। **'फ़अ्बुदूहु'**— यानी सिर्फ़ इसी की परस्तिश करो, बग़ैर किसी शिर्कत व आमेज़िश (मिलावट) के। आज जो इन्जीलें दुनिया के पर्दे पर मौजूद हैं, उनमें से एक इन्जील 'बरनाबा' भी है, उसके अंग्रेज़ी, उर्दू तथा अरबी अनुवाद मौजूद हैं। और वह हज़रत बरनाबासा नामक हज़रत के एक हवारी की ओर सम्बद्ध है। उसमें इस्लाम के प्रकट होने की सूचनाएँ और हज़रत रसूल (स०) के विषय में भविष्यवाणियाँ ऐसे साफ़ और विवरण-सहित मौजूद हैं कि मसीहियों को इसी में पनाह दिखायी दी कि उसको जाली कहकर अलग कर दिया। ख़ैर वह तो हर सच्चे ईश-दूत के कलाम (वाणी) की भाँति तौहीद की शिक्षा और उसी की ताकीद से भरी ही है, परन्तु दूसरी इन्जीलें भी जो स्वयं कलीसा (गिरजाघर) के निकट प्रमाणित हैं वह भी इस शिक्षा से खाली नहीं; जैसे— "यसूअ ने उससे कहा, ऐ शैतान दूर हो, क्योंकि लिखा है कि तू ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा को सज्दः कर और केवल उसी की इबादत कर।" (मत्ती १०:४)। तीन ख़ुदाओं का शिर्क जिन ज़ालिमों की भी ईजाद हो बहरहाल हज़रत मसीह का पवित्र दामन उसकी गन्दगी से बिलकुल पाक और पवित्र है।

३०६ (अपने हर प्रयास और प्रचार के बावजूद) **'अहस्स'** यानी पाया या महसूस किया ज़ाहिरी इन्द्रियों से। **'मिन्हुम्'**— यानी अपने सम्बोधित किए हुए लोगों की ओर से जो बनी इस्राईल या यहूद थे। **'अल्कुफ़्र'**— यानी इन्कार हज़रत ईसा की नबूवत से और इन्कार भी अत्याचार एवं ज़ुल्म और ज़्यादती के साथ।' यह इन्कार और गुमराही खुल्लमखुल्ला और ज़ाहिर होकर थी, कोई छुपी हुई वस्तु नहीं थी जो निष्कर्ष के रूप में होती बल्कि ज़ाहिरी इन्द्रियों द्वारा महसूस की हुई खुली हुई चीज़ थी। और यही बारीकी है कि यहाँ क्रिया **'अहस्स'** प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है बिलकुल स्पष्ट प्रकट होने के हैं।

३०७ आपने अपनी क़ौम को दीन की सहायता के लिए जो पुकारा उससे शोध-कर्ताओं ने यह नतीजा निकाला कि दीनवालों से दीन के विषय में सहायता माँगना 'तवक्कुल' (ख़ुदा पर भरोसा करके बैठ जाना) के विरुद्ध ज़रा भी नहीं है। उनसे यह सहायता माँगना उसी रूप में होता है। यह सहायता करनेवाले ख़ुदाई सहायता के प्रदर्शन होते हैं। **'अिलल्लाहि'**— यानी अल्लाह की राह में अल्लाह के दीन के लिए। **'अल्हवारिय्यून'**— 'हवारी' के शाब्दिक अर्थ हैं कपड़ा धोकर उसे साफ़ और उजला कर देनेवाले के। हज़रत मसीह के शुरूआत के मुरीद चूँकि आम तौर पर नदी के किनारे काम करनेवाले माहीगीर थे, अतः आपके बाद के मित्रों और सहयोगियों और शिष्यों की यही पदवी हो गयी। मजाज़ी अर्थ निःस्वार्थ एवं सहायता करनेवाले के हैं। चुनांचिः हदीस में हज़रत ज़ुबैर के लिए यह शब्द इसी अर्थ में आया है। नामकरण का कारण जो कुछ भी हो; मसीह के सहाबियों के लिए यही पदवी चली आ रही है। **'नह्नु अन्सारुल्लाहि'**— हज़रत ईसा ने तो अपने मददगार तलब किए थे (मन् अन्सारी) चाहे वह सहायता ख़ुदा ही के काम के लिए हो। हवारी जवाब में अपने को ख़ुदा के मददगार "अन्सारुल्लाह" के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। और यह नहीं कहते **"नह्नु अन्सारक लिल्लाह"** शोधकर्ताओं ने इससे यह बारीकी पैदा की है कि अल्लाहवालों के साथ मामला करना ऐसा ही है जैसा अल्लाह तआला के साथ करना।

३०८ **'मुस्लिमून'**— 'मुस्लिम' का शाब्दिक अर्थ है आज्ञाकारी। हर नबी के अनुयायी मुस्लिम कहे जा सकते हैं, क्योंकि वास्तव में हर नबी की दावत अल्लाह की आज्ञाकारिता के लिए होती है। **'आमन्ना बिल्लाहि'** हवारियों का सारा बल अल्लाह पर ईमान का है। वह 'अल्लाह के बेटे' के विचार से क़तई अपरिचित थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३०६ मसीह के सहाबी अभी मसीह से वार्त्ता कर रहे थे। अब अचानक हक़ तआला से विनय करने लगे। क़ुर्आन मजीद अक्सर ऐसे अवसरों पर यही करता है कि बन्दों के सम्बोधन का रुख यक ब यक (अचानक) अल्लाह तआला की ओर फेर देता है। क्या ठिकाना है तौहीद के लिए इस व्यवस्था का। **'वत्तबअ्नर्रसूल'**— हज़रत मसीह के समय के मसीही आपको रसूल ही मानते थे। ''इब्नुल्लाह'', ''अक़्नूम'' इत्यादि के शब्दों के खुराफ़ात उस समय तक ईजाद नहीं हुए थे, न हो सकते थे। **'अश्शाहिदीन'**— गवाह तेरी तौहीद के और तेरे पयम्बरों की पयम्बरी के।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३५६ से)

करने का अधिकार रूमी देशी अदालत के हाथ में था और यह सज़ा रूमी हुकूमत में सूली के ज़रीए दी जाती थी। यहूद की इस गहरी स्कीम की ओर इशारा क़ुर्आन मजीद के शब्द **'मकरू'** में है। **'व मकरल्लाहु'**— यानी अल्लाह ने विरोधियों एवं शत्रुता करनेवालों की सारी तदबीरें, सारे षड्यन्त्र उलट दिए और हज़रत मसीह को सूली की मृत्यु से बचा लिया। अरबी भाषा में एक विधि 'मुशाकलत' की है यानी किसी फ़ेल की सज़ा या जवाब को भी ज्यों का त्यों उसी फ़ेल के शब्द से अदा किया जाता है और इस अदा करने की शैली में कोई बुराई नहीं समझी जाती। जैसे कि किसी ने ज़ैद पर आक्रमण किया और ज़ैद ने उसका जवाब दिया, तो अरबी में यूँ कहेंगे कि उसने ज़ैद पर हमला किया और ज़ैद ने उस पर हमला किया, यद्यपि ज़ैद का हमला आज़ाद स्थिति में न होगा, बल्कि केवल हमले की सज़ा होगी या ज़्यादा से ज़्यादा उसे जवाबी हमला कह लिया जाए। या जैसे कोई मुझे ठग ले और मैं उससे बदला लूँ तो अरबी में यूँ अदा करेंगे कि उसने मुझे ठगा और मैंने भी उसे ठग लिया, यद्यपि ज़ाहिर है कि मेरी तरफ़ से ठगने की सज़ा या ठगने का इन्तिक़ाम (बदला) ही होगा। इस अस्ल के ज़ेहन में जमा लेने के बाद क़ुर्आन मजीद की इस प्रकार की आयतों से कि— (१) उन्होंने ''मक्र'' (चालाकी) किया और अल्लाह ने भी ''मक्र'' किया। (२) वह ''कैद'' (छल) से काम लेते हैं और मैं भी ''कैद'' से काम लेता हूँ। (३) **'जज़ाउ······मिस्लुहा'**— 'बुराई' का बदला वैसी ही एक ''बुराई'' है। (४) **'क़ालू'······बिहिम्'**— वह कहते हैं कि हम तो केवल हँसी करते हैं, अल्लाह उनसे हँसी करता है। (५) **'फ़ मनिअ्तदा'········अलैह'**— जो तुम पर ''ज़्यादती'' करता है तुम उस पर ''ज़्यादती'' करो। जो पेचीदगी केवल अनुवाद के कारण उत्पन्न हुई है वह स्वयं कट जाती है, क्योंकि दूसरी भाषाओं में यह जवाबी मुहावरा प्रचलित ही नहीं है। इन तमाम मिसालों में ''मक्र'', ''कैद'', ''सय्यिआ'', ''ज़्यादती'' और ''इस्तिहज़ा'' यह सारे शब्द जवाबी सज़ा के स्थान पर बोले गये हैं, अत: अल्लाह के साथ सम्बद्ध होकर इनका अर्थ वह नहीं रहा जो अनुवाद से ज़ाहिर होता है। फिर यह भी है कि अरबी भाषा में शब्द मक्र के वह अर्थ नहीं हैं, जो उर्दू में समझे जाते हैं, अस्ल मानी हैं गुप्त तदबीर करना, गहरी तदबीर करना या अंग्रेजी में Plan के हैं। अत: जिस किसी हिन्दुस्तानी ने उर्दू के मक्रोफ़रेब का क़ियास (विचार) करके क़ुर्आन के 'मकरल्लाह' पर आपत्ति उठायी है, उसने अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है। **''वल्लाहु खैरुल्माकिरीन''**— और अल्लाह की तदबीरें सबसे अच्छी और सब पर विजयी होनेवाली हैं। उसका मुक़ाबला जिस प्रकार कोई माद्दी बल और शक्ति से नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोई बुद्धि और तदबीर भी उससे बाहर नहीं जा सकता, अत: यहाँ भी उसकी हिकमत और तदबीर सफल रही। हज़रत ईसा ज़िन्दा और सलामत रहे। और सूली देते समय यहूद ने तो भीड़-भाड़ की गड़बड़ के कारण और समय की तंगी से और सूलीघर के रूमी सिपाहियों ने पहचान न होने के कारण यूँ समझा कि सूली हज़रत ईसा को दे रहे हैं। यद्यपि आपके धोखे में, आप किसी हमशक्ल और हमउम्र, उसी अन्दाज़ के एक अपनी क़ौम वाले को सूली पर चढ़ा दिया। मसीही कलीसा का आज आम अक़ीद: यह है कि हज़रत ईसा को सूली दी गयी, वह वफ़ात पा गये और फिर तीसरे दिन जी उठे। परन्तु मसीहियों के बाज़ पुराने फ़िर्क़े बासलीदिया (Basilidians) इत्यादि ठीक वही अक़ीद: रखते हैं जो इस्लाम का अक़ीद: है।

३११ (हज़रत ईसा से उनकी गिरफ़्तारी के अवसर पर) वाक़िआत और हालात की रफ़्तार से हज़रत ईसा को अपना अंजाम यह स्पष्ट नज़र आ रहा था कि यहूद उन्हें गिरफ्तार किए और उन पर मुक़द्दमा चलाए बिना नहीं मानेंगे। और फिर रूमियों की देशी अदालत में ले जाकर उन्हें मृत्युदण्ड दिलवायेंगे। यह इर्शाद अल्लाह की ओर से उनकी सान्त्वना हेतु हो रहा है और उसी गिरफ़्तारी के अवसर पर हो रहा है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३६० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

★ रु. ५/१३ आ १३ व मकरू व मकरल्लाहु त वल्लाहु ख़ैरुलमाकिरीन (५४) ★ ● अिज़्
क़ालल्लाहु या अीसा अिन्नी मुतवफ़्फ़ीक व राफ़िअुक अिलय्य व
मुतहूहिरुक मिनल्लज़ीन कफ़रू व जाअिलुल्लज़ीनत्तबअूक फ़ौक़ल्लज़ीन कफ़रू
● स. ३/४ अिला यौमिल्क़ियामति ज सुम्म अिलय्य मर्जिअुकुम् फ़ अह्कुमु बैनकुम्
फ़ी मा कुन्तुम् फ़ीहि तख़्तलिफ़ून (५५)
फ़ अम्मल्लज़ीन कफ़रू फ़ अुअज़्ज़िबुहुम्
अज़ाबन् शदीदन् फ़िद्दुन्या वल्आख़िरति ज
व मा लहुम् मिन्नासिरीन (५६) व
अम्मल्लज़ीन आमनू व अमिलुस्सालिहाति
फ़ युवफ़्फ़ीहिम् अुजूरहुम् त वल्लाहु ला
युहिब्बुज़्ज़ालिमीन (५७) ज़ालिक नत्लूहु
अलैक मिनल्-आयाति वज़्ज़िक्रिल् - हकीमि
(५८) अिन्न मसल अीसा अिन्दल्लाहि
क मसलि आदम त ख़लक़हू मिन् तुराबिन्
सुम्म क़ाल लहू कुन् फ़ यकूनु (५९)
अल्हक़्क़ु मिर्रब्बिक फ़ ला तकुम्मिनल्-

تلك الرسل ٣ ٤٥ ال عمرن ٣

واتبعنا الرسول فاكتبنا مع الشهدين ۝ ومكروا ومكر الله
والله خير المكرين ۝ اذ قال الله يعيسى انى متوفيك و
رافعك الى ومطهرك من الذين كفروا وجاعل الذين
اتبعوك فوق الذين كفروا الى يوم القيمة ثم الى مرجعكم
فاحكم بينكم فيما كنتم فيه تختلفون ۝ فاما الذين كفروا
فاعذبهم عذابا شديدا فى الدنيا والاخرة وما لهم من
نصرين ۝ واما الذين امنوا وعملوا الصلحت فيوفيهم اجورهم
والله لا يحب الظلمين ۝ ذلك نتلوه عليك من الايت والذكر
الحكيم ۝ ان مثل عيسى عند الله كمثل ادم خلقه من تراب
ثم قال له كن فيكون ۝ الحق من ربك فلا تكن من
الممترين ۝ فمن حاجك فيه من بعد ما جاءك من العلم
فقل تعالوا ندع ابناءنا وابناءكم ونساءنا ونساءكم وانفسنا و
انفسكم ثم نبتهل فنجعل لعنت الله على الكذبين ۝ ان
هذا لهو القصص الحق وما من اله الا الله وان الله
لهو العزيز الحكيم ۝ فان تولوا فان الله عليم بالمفسدين ۝
قل يا هل الكتب تعالوا الى كلمة سواء بيننا وبينكم الا نعبد
الا الله ولا نشرك به شيا ولا يتخذ بعضنا بعضا اربابا من

منزل

मुम्तरीन (६०) फ़ मन् हाज्जक फ़ीहि मिम्बअ्दि मा जाअक मिनल्अिल्मि
फ़ क़ुल् तआलौ नद्अु अब्नाअना व अब्नाअकुम् व निसाअना व
निसाअकुम् व अन्फ़ुसना व अन्फ़ुसकुम् क़िफ़ सुम्म नब्तहिल् फ़ नज्अल्
लअ्नतल्लाहि अलल्काज़िबीन (६१) अिन्न हाज़ा ल हुवल् - क़ससुल् - हक़्क़ु ज
व मा मिन् अिलाहिन् अिल्लल्लाहु त व अिन्नल्लाह ल हुवल् - अज़ीज़ुल् -
★ रु. ६/१४ आ ९ हकीमु (६२) फ़ अिन् तवल्लौ फ़ अिन्नल्लाह अलीमुम् - बिल्मुफ़्सिदीन
(६३) ★ क़ुल् या अह्लल्किताबि तआलौ अिला कलिमतिन्
सवाअिम् - बैनना व बैनकुम् अल्ला नअ्बुद अिल्लल्लाह व ला
नुश्रिक बिही शैअंव्व ला यत्तख़िज़ बअ्ज़ुना बअ्ज़न् अर्बाबम्मिन्
दूनिल्लाहि त फ़ अिन् तवल्लौ फ़ क़ूलुश्हदू बिअन्ना मुस्लिमून (६४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उन्होंने भी गुप्त तदबीर की और अल्लाह ने भी गुप्त तदबीर की। और अल्लाह सब गुप्त तदबीर करनेवालों से बेहतर है[३१०]। (५४) ★ ● ★ रु. ५/१३ आ १३ ● स. ३/४

वह समय भी ज़िक्र के क़ाबिल है जब अल्लाह ने फ़र्माया[३११], ऐ ईसा! मैं तुमको मौत देनेवाला हूँ[३१२], और तुमको अपनी तरफ़ उठा लेनेवाला हूँ[३१३] और उन लोगों से, जो काफ़िर हैं, तुम्हें पाक करनेवाला हूँ[३१४], और जो तुम्हारे अनुयायी हैं उन्हें क़ियामत तक उन लोगों पर क़ाबू रखनेवाला बनानेवाला हूँ जो मुन्किर हैं[३१५]। फिर तुम सबकी वापसी मेरी तरफ़ होगी, सो मैं तुम्हारे बीच इस विषय में फ़ैसला करूँगा जिसमें तुम परस्पर विरोध करते रहते थे[३१६]। (५५) सो जिन लोगों ने कुफ़्र (इख़्तियार) किया, उन्हें दुनिया और आख़िरत में सख़्त सज़ा दूँगा, और उनका कोई मददगार न होगा[३१७]। (५६) और जो लोग ईमान लाये और उन्होंने नेक अमल भी किये सो अल्लाह उन्हें उनके पूरे-पूरे बदले देगा। और अल्लाह अन्यायियों को दोस्त नहीं रखता[३१८]। (५७) यह जिसे हम आपको पढ़कर सुनाते हैं निशानियों में से है और बुद्धिमानी से परिपूर्ण मज़मूनों में से है[३१९]। (५८) बेशक ईसा का हाल अल्लाह के निकट आदम के हाल की भाँति है। अल्लाह ने उनको मिट्टी से बनाया फिर उनसे कहा, 'अस्तित्व में आ जाओ' अतः वह अस्तित्व में आ गये[३२०]। (५९) यह सच्ची बात तेरे रब की तरफ़ से है सो (कहीं) तू सन्देह करनेवालों में से न हो जाना[३२१]। (६०) फिर जो कोई आपसे इस विषय में हुज्जत करे बाद इसके कि आपके पास (सही) ज्ञान पहुँच चुका है[३२२], तो आप कह दीजिए[३२३] कि अच्छा हम अपने बेटों को भी बुलायें और तुम्हारे बेटों को भी और अपनी औरतों को भी और तुम्हारी औरतों को भी, और अपने को और तुम्हारे तईं भी। फिर हम अल्लाह से डरते हुए दुआ करें (ख़ुशूअ से दुआ करें) और झूठों पर अल्लाह की धिक्कार करें[३२४]। (६१) बेशक यही है सच्ची घटना। कोई माबूद नहीं है सिवाय अल्लाह के। और बेशक अल्लाह ही तो महान है, हिक्मतवाला है[३२५]। (६२) सो यदि यह (अब भी) बग़ावत करें तो बेशक अल्लाह ख़ूब जाननेवाला है फ़सादियों का[३२६]। (६३) ★ ★ रु. ६/१४ आ ९

आप कह दीजिए कि ऐ अहले किताब! ऐसे क़ौल की तरफ़ आ जाओ, जो हममें और तुममें मुशतरक है कि हम सिवाय अल्लाह के और किसी की न इबादत करें और न किसी को उसका साझेदार ठहरायें[३२७], और न हममें से कोई किसी को अल्लाह के सिवा परवरदिगार ठहराये[३२८]। फिर अगर वह मुँह फेरें तो तुम कह दो[३२९] कि गवाह रहना हम तो आज्ञाकारी हैं[३३०]। (६४)

---

३१० अतः उसकी तदबीर को तो सब पर क़ाबू पाना ही था। 'मकर'— की कर्ता-संज्ञा, यहूद हैं। यहूद के बड़ों ने और सरदारों ने शत्रुता एवं कष्ट देने के अनेक दर्जे तय करने के बाद अन्त में यह तय किया कि यसूअ नामक इस्राईली, जो नबूवत का दावेदार था, उसी को समाप्त कर दिया जाए। अतः पहले अपनी धार्मिक अदालत में इल्हाद (ख़ुदा को न मानने का) आरोप लगाकर आपको क़त्ल का अभियुक्त बनाया। फिर रूमी हाकिमों और प्रशासकों की देशी अदालत में लाकर आप पर विद्रोही होने का मुक़द्दमा चलाया। हज़रत ईसा और आपके शत्रुओं का यह युद्ध शाम देश के प्रदेश फ़िलस्तीन में हुआ। शाम उस समय रूमी साम्राज्य का एक भाग था और यहाँ के यहूदी बाशिन्दों को अपने मामलों में अर्ध-स्वतन्त्रता और अर्ध-ख़ुदमुख़्तारी प्राप्त थी, जैसे अंग्रेज़ी साम्राज्य के समय में हैदराबाद इत्यादि को प्राप्त थी। वायसराय सारे शाम देश का था और उसके अधीन एक गवर्नर या सरदार फ़िलस्तीन के प्रान्त का था। रूमियों का धर्म शिर्क एवं मूर्ति-पूजा था। यहूद को इतना अधिकार था कि अपने लोगों के मुक़द्दमे अपनी धार्मिक अदालतों में लायें, परन्तु सज़ाओं के जारी करने के लिए उन्हें फिर उन्हीं अभियोगियों को देशी अदालत के समक्ष पेश करना पड़ता था। इल्हाद के अपराध में स्वयं क़त्ल का आदेश यहूद की धार्मिक अदालत दे सकती थी और उसने उसी सज़ा का हुक्म सुनाया, परन्तु वास्तव में मृत्युदण्ड को लागू

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३५७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३५७ से)

३१२ (तुम्हारे वादा किए हुए समय पर। अतः तुम इन अत्याचारियों से और इनकी दुश्मनी तथा इनके षड्यन्त्र से घबराओ नहीं। यह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।) शब्द **'मुतवफ़्फ़ीक'** से यह अनिवार्य नहीं होता कि मृत्यु उसी समय और तुरन्त होगी। हमारे बड़े तफ़्सीर करनेवालों का यही विचार है, बल्कि इमाम राज़ी ने इसी को बेहतर तफ़्सीर कहा है। **'तवफ़्फ़ी'**— में अर्थ "पूरा-पूरा देने का" भी शामिल है अतः संकेत से गोया यह भी इर्शाद हो गया कि तुम्हें जीवन की लम्बाई पूरी-पूरी मिलेगी।

३१३ (इस बीच में) यानी तुम्हारी मृत्यु तो अपने नियत समय पर होगी जब होगी, परन्तु तुम्हारे शत्रु तुम्हारी हलाकत के किसी मन्सूबे में सफल नहीं होंगे। फ़िलहाल इसकी व्यवस्था यह की जा रही है कि तुम्हें उनके बीच से उठा लिया जाएगा। **'इलय्य'**— यानी आकाश की ओर, 'मलाए आला' की तरफ़। इमाम राज़ी ने कहा है कि क़ुर्आन में यह मुहावरा आम है जहाँ सम्मान और बड़ाई का अर्थ देना होता है, अल्लाह तआला अपनी ओर सम्बद्ध कर देता है। जैसे हज़रत इब्राहीम के वतन छोड़ने की बड़ाई बयान करना था तो कहा गया **"इन्नी···इब्बी"** यद्यपि ज़ाहिर है कि इब्राहीमी हिज्रत एक देश से दूसरे को यानी इराक़ से शाम की ओर हुई थी। **"राफ़िअुक"**— हज़रत मसीह के जिस्म को उठाने का विवरण तो क़ुर्आन मजीद में नहीं है, परन्तु यह अक़ीदः लगभग विवरण-सहित इसी आयत में मौजूद है। हदीसों ने उसे और स्पष्ट एवं बलशाली बना दिया है। हज़रत मसीह की पैदाइश आम इन्सानी विधि से अलग बिना माँ-बाप के मेल और माध्यम के केवल जिब्रील के दम फूंकने से हो गयी तो अब इस जिस्म के उठने में क्या भ्रम उत्पन्न होता है, बल्कि यह तो क़ियास के निकट बात है कि आपका ज़ाहिरी अंजाम भी साधारण मार्ग से हटकर हुआ हो। और अजब क्या कि फ़िरिश्तों के छू जाने से जिस्म में शुद्धता शुरू से ऐसी रख दी गयी हो जो आपको आसमानों पर उठाने में सहायक हो। यह तर्क तो बिलकुल बोदा है कि आपके आसमान पर उठ जाने से आपकी बड़ाई दूसरे नबियों पर विशेषतः सय्यदुल् अम्बिया हज़रत रसूल (स०) पर लाज़िम आ जाती है। आखिर खुदा जाने कितने फ़िरिश्ते दिन-रात ज़मीन से आसमान पर जाते ही रहते हैं तो क्या इस बिना पर वह सब हज़रत रसूल (स०) से बढ़कर हो गये। एक योरोपियन आलिम डी० बेन्सन (De Benson) ने पिछली शताब्दी में एक संक्षिप्त परन्तु फ़ाज़िलाना पुस्तक "इस्लाम या हक़ीक़ी मसीहीयत" (Islam ar true christianity) के नाम लिखी थी। उसके पृष्ठ १४३ के हाशिए में उसने पुराने मसीही फ़िर्क़ों में से कई एक के नाम ले-लेकर लिखा है कि अमुक-अमुक फ़िर्क़े का अक़ीदा मसीह के जिस्म-समेत उठने का था, न कि उनकी मृत्यु का, जिस पर ईसाई सदियों से जमे चले आ रहे हैं। इसी प्रकार Sale सेल ने भी अपने अंग्रेजी अनुवाद के हाशिए में इस अक़ीदे के मसीही फ़िर्क़ों के नाम गिनाये हैं। आश्चर्य है कि कलिमः पढ़नेवालों के एक नवीन फ़िर्क़े ने मसीह की वफ़ात (मृत्यु) का अक़ीदः मसीहियों से ले लिया है और उसको अपनी "रौशनखयाली" समझ रहा है।

३१४ यानी उनके लगाए हुए गन्दे इल्ज़ामों से। **"अल्लज़ीन कफ़रू"** में बड़ी साधारणता है, परन्तु सन्दर्भ से साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि वही लोग मुराद हैं जो हज़रत की नबूवत और उनकी सच्चाई के मुन्किर थे यानी यहूद। **'मिनल्लज़ीन कफ़रू'** यानी उन लोगों की तोहमतों और उनके इल्ज़ाम लगाने की गन्दी हरकतों से। अर्थ यह है कि यहूद का सारा षड्यन्त्र खुलकर रहेगा और उन्होंने जो-जो गन्दे इल्ज़ाम तराशे हैं, सबकी क़लई खुलकर रहेगी।

३१५ (तुम्हारी नबूवत और सच्चाई के) **"अल्लज़ीन कफ़रू"** यहाँ भी मुराद यहूद ही हैं, जैसा कि अभी ऊपर के हाशिए में गुज़र चुका है। **"अल्लज़ीन अत्तबअूक"**— यानी जो लोग हज़रत ईसा की नबूवत और रिसालत के माननेवाले हैं, अर्थ यह है कि मुसलमान तो हैं ही। सच्चे ईसाई भी उसमें दाखिल हो सकते हैं। **"फ़ौक़ल्लज़ीन······क़ियामति"** यह मुसलमानों और सच्चे ईसाइयों का ग़लबा और क़ाबू यहूद और दुश्मनी करनेवालों पर क़ियामत तक किस अर्थ में और किस रूप से रहेगा? तर्क की शक्ति की वजह से और मानवी रूप में तो स्पष्ट है, परन्तु अगर मद्दी और सैनिक, राजनैतिक और मुल्की हैसियतें मुराद हों तो भी उस समय तक जो दशा यहूद की दुनिया के ज़्यादातर भाग में है वह उनकी बड़ाई का नहीं, बल्कि उनकी गिरावट ही की ओर संकेत करती है। बहरहाल सम्भावना ज़्यादा यही है कि यह संकेत प्रथम स्थिति की ओर है। 'राग़िब' ने अपने कोश में **"फ़ौक़"** का एक अर्थ आखिरत की बड़ाई का दिया है और उसकी मिसाल में इसी टुकड़े **"फ़ौक़ल्लज़ीन कफ़रू"** को पेश किया है। **"इला यौमिल्क़ियामति"**— मुहावरे में इसका अर्थ स्थायित्व या हमेशगी होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३१६ (और वह फ़ैसला क्रियात्मक रूप में और क़तई होगा, वरना जहाँ तक हुज्जत और तर्क का सम्बन्ध है वह निर्णय तो इस समय भी हो चुका है।) **'मर्जिअुकुम्'**— यहाँ सम्बोधन मोमिन, काफ़िर, मुसलमान, यहूद और नसारा सबसे है। **'फ़ीहि तख़्तलिफ़ून'**— शब्द साधारण है परन्तु सन्दर्भ में जिस विरोधाभासी एवं मतभेदवाले मामले का ज़िक्र है, वह हज़रत ईसा की नबूवत और रिसालत है।

३१७ (जो उन्हें इस पकड़ से बचा सके।) **'फ़िद्दुन्या'**— दुनियावी सज़ा का हाल यहूद के इतिहास से पूछ लें। कौन सी तबाहियाँ हैं जो इस दो हज़ार वर्ष की मुद्दत में इन पर नहीं आयीं, बल्कि जैसा कि Gewish Encyclopaedia के हवाले से प्रथम पारे के एक हाशिए में गुज़र चुका है, उनकी क़ौमी दौलत और धनवान होने का ख़याल एक कहानी है, अन्यथा वास्तव में क़ौम पर बजाय धन के ग़रीबी छाई हुई है। जर्मनी, इटली, हंग्री, रोमानिया आदि देशों में से जिस बे-सरोसामानी से इन्हें चन्द ही वर्ष पूर्व निकलना पड़ा है, वह ख़ूनी कथा अभी ताज़ी है। **'वल्आख़िरति'**— रही आख़िरत, तो सज़ा का पूरा-पूरा ज़हूर (प्रकट) तो वहीं होगा।

३१८ (और अन्यायी उनसे बड़ा कौन होगा जो नबियों के विषय में घटा-बढ़ाकर पेश आते हैं।) **'अज़्ज़ालिमीन'**— ज़ुल्म की हक़ीक़त घटाना-बढ़ाना है। यहाँ ज़ालिमों से मुराद यहूद का होना तो ज़ाहिर ही है जो हज़रत ईसा की नबूवत और सच्चाई बल्कि शराफ़ते नसब (परिवार का शुद्ध होना) के भी मुन्किर थे। परन्तु दूसरी ओर उसके अन्तर्गत मसीही भी आये जाते हैं जो हज़रत को बन्दे के बजाय माबूद और पूजनीय, रसूल के बजाय अवतार मान रहे हैं और इस प्रकार हज़रत के विषय में यहूद तथा नसारा दोनों ही ज़ालिम हैं यानी न्याय और मध्य मार्ग से हट गये हैं। **'अल्लज़ीन......सालिहाति'**— यह दो गुण अलग-अलग बयान करने से स्पष्ट हो गया कि नेक अमल और ईमान दो अलग-अलग चीज़ें हैं। दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं।

३१९ (ऐ हमारे पैग़म्बर!) **'ज़ालिक'**— यानी सही मसीह की कथा दूर का संकेत सम्मान एवं आदर प्रकट करने हेतु। **'मिनल्-आयाति'**— यानी आपकी सच्चाई एवं नबूवत की निशानियों में से— इर्शाद यह हो रहा है कि हज़रत मसीह के हालात और वाक़िआत जिन पर यहूद और नसरानियों दोनों ने अपनी तारीख़ों पर आरोपों और मबालग़ों (बढ़ाकर बयान करना) के गहरे पर्दे डाल रखे हैं, यह जो आप बिलकुल सही एवं विश्वसनीय रूप में सुना रहे हैं, यह स्वयं इस बात की दलील है कि आपको अल्लाह का समर्थन प्राप्त है और वही कह रहे हैं जो आपसे ग़ैब का जाननेवाला और उसकी गवाही देनेवाला, छुपी हुई बातों को देख लेनेवाला यानी हक़ तआला आपसे कहला रहा है। **'अज़्ज़िक्रिल्-हकीमि'**— इशारा इस ओर है कि आपकी रिसालत पर दलील होने के अलावा यह मज़मून स्वयं भी बुद्धिमत्ता एवं अल्लाह की पहचान की बातों से परिपूर्ण हैं।

३२० (इसी प्रकार हज़रत ईसा इब्ने मर्यम केवल मानव और हमेशा क़ायम न रहनेवाली मख़्लूक़ या ख़ुदा की पैदा की हुई हस्ती हैं। उन्हें अनादिकाल वाला तथा ग़ैरमख़्लूक़ किस प्रकार मान रहे हो?) **'क मसलि'**— यह मिस्ल होना किस प्रकार है? केवल मानव होने और बिना बाप के पैदा होने में है। **'आदम'**— जो माँ और बाप दोनों के बिना पैदा हुए थे और फिर भी मानव थे। केवल मानव थे। **'लहू'**— सर्वनाम हज़रत आदम के मिट्टी के पुतले होने की ओर है। यह उस मसीही प्रसिद्ध भ्रम और सन्देह का जवाब है कि जब मसीह की पैदाइश सारी दुनिया के आम विधान के विरुद्ध बिना माता-पिता के माध्यम के हुई तो उन्हें मानव के अलावा मानव के ऊपर अन्य चीज़ कैसे मान लिया जाए? जवाब यह है कि आदम को मानव तो तुम स्वयं मानते हो, ऐसी स्थिति में कि उनकी पैदाइश तो अजीब अन्दाज़ पर हुई थी यानी वहाँ माता और पिता किसी का वास्ता नहीं था। मख़्लूक़ होने और हमेशा बाक़ी न रहने का दारोमदार किसी विशेष एवं निर्धारित उत्पत्ति-विधि अस्तित्व पर नहीं है, ख़ालिस क़ायम एवं स्थायी न रहने पर है और वह उत्पत्ति हज़रत ईसा में पूरी तरह मौजूद थी। मसीहियों में एक पुराना फ़िर्क़ा एरियन Arians का हुआ है और उसका चलानेवाला चौथी ईसवी शताब्दी के प्रारम्भ में अस्कन्दरिया का लार्ड पादरी था। उसकी शिक्षा यही थी कि मसीह क़दीम (अनादिकाल के) और ग़ैर-मख़्लूक़ नहीं हैं। वह मख़्लूक़ हैं और हादिस हैं यानी अनादिकाल वाले नहीं हैं (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका जिल्द १, सफ़ा ५०८, चौथा संस्करण)। इसके पूर्व अन्तुयूख़ (अन्ताकिया) के बड़े पोप समोसतवी (प्रसिद्ध और जाने-माने पोलूस तरतूसी से इसे मिला न दें) की शिक्षा तीसरी शताब्दी ईसवी में यही थी कि ईसा मसीह की पैदाइश एक युवती के पेट से हुई थी रूहुलक़ुदुस (जिब्रील) के वास्ते से। अतः वह केवल मानव थे। रूहुलक़ुदुस के माध्यम ने उन्हें भी पवित्र बना दिया था और इसलिए वह मसीह थे, परन्तु बहरहाल ख़ुदाई के साझेदार नहीं थे (जिल्द १७,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफ़ा ३६८ इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका तथा इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़् रेलीजन् ऐण्ड् एथिक्स् जिल्द ११, सफ़ा १७१)। सही अक़ीदे के लिए मसीहियों के समझदार और विद्वान् वर्गों में इस प्रकार के आन्दोलन बराबर चलते रहे हैं, परन्तु कलीसा वालों ने इन आन्दोलनों को कभी सफल नहीं होने दिया। **'कुन्फ़ यकूनु'**— हो सकता है यही शब्द सृष्टि की उत्पत्ति के हों और मुराद यह है कि जिस समय ख़ुदा का इरादा किसी अस्तित्व की उत्पत्ति की ओर आकर्षित होता है, तुरन्त उसकी उत्पत्ति हो जाती है।

३२१ (ऐ सम्बोधित, इस हक़ीक़त के विषय में।) क़ुर्आन मजीद में सम्बोधन एकवचन में कहीं सीधे रसूल (स०) से है और कहीं आम उम्मत के लोग मुख़ातिब हुए हैं और सर्वनाम एकवचन, उपस्थित दोनों के लिए एक ही और संयुक्त है। दोनों के बीच में अन्तर और फ़र्क़ तफ़्सीर करनेवाले की समझ और उसकी स्वेच्छा पर निर्भर है। इन सतरों में अधिक से अधिक अनुसरण मौलाना थानवी का किया गया है। यह भी कहा गया है कि सम्बोधन तो रसूल (स०) से है, परन्तु मुराद आपकी उम्मत है क्योंकि स्वयं आपसे तो इसकी सम्भावना ही न थी। **'अल्हक़्क़ु मिर्रब्बिक'**— यह हक़ बातें परवरदिगारे आलम की ओर से बयान हो रही हैं, अतः सन्देह और भ्रम की गुंजाइश से परे हैं। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने शरई क़ियास की सच्चाई और शुद्धता पर इसी आयत से तर्क किया है।

३२२ (ऐ पैग़म्बर!) **'फ़ीहि'**— यानी मसीह की ख़ुदाई के विषय में। सूरत की तफ़्सीर के आरम्भ में जो हाशिए हैं, उन्हें एक बार फिर दृष्टिगत कर लिया जाए। सूरत का अस्ल शीर्षक मसीहीयत और ख़ुदाई अक़ीदे का खण्डन है। वार्त्ता नजरान के मसीही शिष्टमण्डल से चल रही है। **'फ़मन् हाज्जक'**— यानी उन मसीहियों में से अब भी कोई आपसे अपनी बात जारी रखे। **'अल्अिल्मि'**— और इल्म भी कैसा? ख़याली और आँकनेवाला नहीं, बल्कि सच्चा, क़तई और विश्वसनीय।

३२३ (हुज्जत को पूर्ण करने हेतु। अब जबकि समझना, समझाना और तर्क-वितर्क के सारे मर्तबे तय हो चुके और मसीही अपनी बात की पच पर अड़े हुए हैं।)

३२४ शरीअत की परिभाषा में इसी का नाम 'मुबाहलः' है। मुबाहले में हर हिस्सेदार या भागी स्वयं को अल्लाह के सुपुर्द कर देता है और उससे नेक दिली के साथ गिड़गिड़ाकर विनय करके उसी के निर्णय की प्रतीक्षा करता है। **'नद्अु'**— मुराद हर दो भागी और उनके सदस्यगण हैं। **'अब्नाअ'**— 'इब्न' से केवल सगे बेटे ही मुराद नहीं होते, नवासे (दौहित्र, नाती) और दामाद भी उसी में आ जाते हैं। इमाम राज़ी ने लिखा है कि आयत से इस बात पर तर्क हो सकता है कि नवासे पर इब्न (बेटे) का मुराद होना जाइज़ है। **'निसाअ'**— बीवियाँ और बेटियाँ दोनों इसके अर्थ में सम्मिलित हैं। सन् हिजरी ९ में नजरान के चौदह बड़े लोग रसूल (स०) की सेवा में उपस्थित हुए थे। वार्त्ता उस समय मसीह की ख़ुदाईयत पर रही। इस्लामी अक़ीदः बिलकुल स्पष्ट और साफ़ था, परन्तु मसीही सदस्यगण अपनी बात पर अड़े हुए थे। अन्त में आपने वही किया जो एक सच्चा निःस्वार्थ दीनदार ऐसे अवसरों पर करता। आपने ख़ुदाई फ़र्मान के अन्तर्गत मसीहियों को मुबहले का निमन्त्रण दिया कि ज़बानी वार्त्ता तो बहुत हो चुकी अब आओ हम तुम अपने विशेष सम्बन्धियों को लेकर अपने परवरदिगार ही से गिड़गिड़ाकर और सच्चे दिल से निवेदन करें कि जो वर्ग असत्य पर हो उस पर अल्लाह की लानत (धिक्कार) उतरे। आपने यह फ़र्माया और अपनी हक़ीक़ी औलाद यानी सय्यिदा फ़ातिमा (रज़ि०), सय्यिदना अली (रज़ि०), सय्यिदना हसन (रज़ि०) और सय्यिदना हुसैन (रज़ि०) को साथ लेकर तशरीफ़ ले आये। परन्तु इतिहास के वर्णन करनेवाले का बयान है कि मसीहियों का साहस ठीक समय पर टूट गया और इस परीक्षा में पड़ने के बजाय उनको भलाई इसी में दिखायी दी कि वह जिज़्यः देकर ज़िम्मी बन गये और इस्लामी हुकूमत में रहना गवारा कर लिया। सर विलियम मियोर मुसलमान नहीं हैं। उन्नीसवीं सदी के मसीही थे और केवल मसीही नहीं मिशनरी भी थे, उनके क़लम से अवलोकित हो— "सारी घटना में 'मुहम्मद' (स०) के ईमान की परिपक्वता बिलकुल स्पष्ट है और उनके इस अक़ीदे की शहादत भी कि उनका सम्बन्ध ग़ैब के लोक से जुड़ा हुआ है और इस कारण सत्य सारे का सारा उन्हीं के साथ है। यद्यपि उनके विचार में मसीहियों के पास विचार और अनुमान के अतिरिक्त और कुछ न था"। (मियोर की लाइफ़् ऑफ़् मुहम्मद स० सफा २६०)।

३२५ (न कि कोई और) **'अिन्न हाज़ा'**— यानी यह सारा सिलसिला घटनाओं का जिनसे ज़ाहिर होता है कि मसीह और उनकी माता दोनों केवल मानव थे। **"मा मिन् अिलाह अिल्लल्लाह"**— कोई भी ख़ुदाई में साझीदार नहीं न ज़ात (निज) की हैसियत के और न गुणों के लिहाज़ से और उक़्नूम इत्यादि के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क़िस्से सब खुराफ़ात हैं। 'मिन् ज़ाइद' ताकीदें कलाम के लिए यानी बात पर बल देने के लिए। **'अल् अज़ीज़'**— हर इरादे पर ग़ालिब, सर्वशक्तिमान्, इस गुण में मसीह इत्यादि कोई भी अल्लाह का साझीदार नहीं। **'अल्हकीम'**— अकेला हिकमत वाला, हर समूह और हर अंश, इरादे में हकीम, इस गुण में मसीह आदि कोई भी खुदा का साझीदार नहीं है।

३२६ (और अपने इस परिपूर्ण ज्ञान और सब पर हावी इल्म के अनुसार हर एक को सज़ा देनेवाला।) **'फ़ अिन् तवल्लौ'**— यानी इतनी स्पष्टता के पश्चात् भी अपनी सरकशी जारी रखें। **'अल्मुफ़्सिदीन'**— यानी जो लोग दीन और अक़ीदों में फ़साद पैदा करते हैं और तौहीद के बजाय शिर्क की ओर बुलाते रहते हैं।

३२७ [न फ़र्ज़न्द (बेटा) कहकर, न उक़्नूम ठहराकर, न अवतार बनाकर और न किसी और रूप में] **'ला······अल्लाह'**— प्रोटेस्टेण्ट् वर्ग कई शताब्दी पश्चात् की चीज़ है, क़ुर्आन के समय के जो मसीही थे वह कैथोलिक वर्ग या रूमी कलीसा के अनुयायी थे और इस वर्ग में मसीह-पूजा और रूहुल्क़ुदुस-पूजा तो खैर थी ही, इसके अतिरिक्त भी खुदा जाने और क्या-क्या पूजा होती थीं। मर्यम की पूजा, पापा की पूजा, वली की पूजा इत्यादि। आयत का यह टुकड़ा शिर्क छुपा हुआ, खुला हुआ, सारी शक्लों की काट करता है। **'क़ुल्'**— सम्बोधन रसूल (स॰) को है। **'अहलल् किताब'**— शब्द का अर्थ सूरए बक़रः में दिया जा चुका है। यहूद तथा नसारा दोनों मुराद हो सकते हैं, अगर्चे यहाँ वास्तविक इशारा नसरानियों की ही ओर है। **'कलिमत'**— सीग़ः वाहिद (एकवचन) में है, परन्तु इससे मुराद बहुवचन में है। **'बैनना'**— मुराद मुसलमान हैं। **'सवा'अिम् बैनना व बैनकुम्'**— यानी वह अस्ल (जड़) जो हमको और तुमको दोनों को मान्य है और जिसकी मान्यता, मूल्य एवं लाभप्रदता पर हम दोनों सहमत हैं। जिसकी शिक्षा तुम्हारे यहाँ के सच्चे पयम्बर हमेशा देते आये हैं और यहूदियों तथा नसरानियों दोनों के धर्मों की बुनियाद ही इसी अस्ल पर है। तौरेत तो खैर तौहीद की ताकीद और शिर्क से मनाही की बातों से भरी पड़ी है, इन्जील तक में यही शिक्षा है— "तू खुदावन्द खुदा को सज्दः कर और केवल उसी की इबादत कर।" (मत्ती ४:१०)। इन्जील में यह कहीं नहीं है, न विवरण देकर, न संकेत से कि कुछ पूजा केवल खुदा की करो और बाज़ पूजाओं में खुदा के साथ उसके बेटे और रूहुल्क़ुदुस को भी शामिल कर लिया करो।

३२८ (कि क्रियात्मक रूप में उस खुदाई के मर्तबे पर रख दे) **'अर्बाबम्-मिन्दूनिल्लाहि'**— मख्लूक़ की पूजा और मख्लूक़ की खुदाई का खण्डन तो ऊपर हो चुका अब खण्डन हो रहा है मख्लूक़ के पालनहार होने का। मख्लूक़ में से किसी को बिलकुल सरमाया और धन समझ लेना भी उसको रब (पालनेवाला) मान लेना है। पापों की पवित्रता, कैथोलिक मसीहियों का और पादरियों के समूह यानी चर्च (Church) की पवित्रता सभी मसीहियों का संयुक्त अक़ीदः है। "एक महसूस कलीसा के बिना मोक्ष सम्भव नहीं है। उस पर हमेशा रूहुल्क़ुदुस का साया रहता है, अतः धार्मिक समस्याओं में चर्च से त्रुटि की सम्भावना ही नहीं।" (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका जिल्द १६, सफा ६४०)। क़ुर्आन मजीद ने इन्सान की इन सारी स्वयं बनायी हुई पवित्रताओं पर चोट मार दी। यहीं से उन गुमराह वर्गों का भी खण्डन होता है जो अपने पीरों और इमामों के बिना दलील और तर्क के क़ौल को जिसको शरीअत का समर्थन कहीं से प्राप्त नहीं है, मान्य ठहराते हैं और उसे वाजिब समझते हैं। किसी को 'रब' मान लेने के लिए यह कदापि आवश्यक नहीं है कि इस शब्द को उस पर लागू किया जाए, बल्कि उसके अन्दर यदि केवल पालनेवाले का गुण मान लिया गया तो क्रियात्मक रूप में वह रब ही ठहर गया। **'बअ्ज़ुना बअ्ज़न्'**— इब्ने हय्यान तफ़्सीर करनेवाले ने इससे यह बड़ी अच्छी बारीकी निकाली है कि पालनेवाले और खुदाई की काट तो केवल एक वाक्यांश से हो गयी। जब एक-दूसरे में मिलने-जुलने और परिवार का सम्बन्ध स्थापित हो गया तो सब बन्दे होने की हैसियत से बराबर हो गये। खुदाई और पालनेवाले वाली बात अब कहाँ अवशेष रह गयी?

३२९ (ऐ मुसलमानो!) यानी अगर अब भी सच्चे कलाम से मुँह फेरते रहें और अपने इस गढ़े हुए और ठहराए हुए शिर्क से बाज़ न आयें।

३३० (और हर हाल में और हर दशा में हम ही खालिस तौहीद के प्रचारक और उसका झण्डा उठानेवाले हैं) **'मुस्लिमून'**— शाब्दिक अर्थ आज्ञाकारी के हैं और यही परिभाषाई नाम भी इस उम्मत का पड़ गया। **"अश्हदू"**— और यहूद एवं नसारा तो आज भी मुसलमानों की खालिस तौहीद की शहादत दे रहे हैं। क़ुर्आन मजीद के बयान का यह एजाज़ एक और आदर्श है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या' अह्लल्किताबि लिम तुहा'ज्जून फ़ी' अिब्राहीम व मा' अुन्ज़िलतित्तौरातु वल्अिन्जीलु अिल्ला मिम्बअ़्दिहीؕ ط अफ़ला तअ़्क़िलून (६५) हा' अन्तुम् हा'अुला'अि हाजज्तुम् फ़ीमा लकुम् बिही अिल्मुन् फ़लिम तुहा'ज्जून फ़ी मा लैस लकुम् बिही अिल्मुन् ط वल्लाहु यअ़्लमु व अन्तुम् ला तअ़्लमून (६६) मा कान अिब्राहीमु यहूदिय्यंव्व ला नस्रानिय्यंव्व लाकिन् कान हनीफ़म् - मुस्लिमन् ط व मा कान मिनल् - मुश्रिकीन (६७) अिन्न औलन्नासि बि अिब्राहीम लल्लज़ीनत्तबअ़ूहु व हाजन्नबिय्यु वल्लज़ीन आमनू ط वल्लाहु वलिय्युल्-मुअ्मिनीन (६८) वद्दत्ता'अिफ़तुम्-मिन् अह्लिल्किताबि लौ युज़िल्लूनकुम् ط व मा युज़िल्लून अिल्ला' अन्फ़ुसहुम् व मा यश्अुरून (६९) या' अह्लल्किताबि लिम तक्फ़ुरून बि आयातिल्लाहि व अन्तुम् तश्हदून (७०) या' अह्लल्किताबि लिम तल्बिसुनल्हक़्क़ बिल्बातिलि व तक्तुमूनल्-हक़्क़ व अन्तुम् तअ़्लमून

★ रु. ७/१५ आ (७१) ★ व कालत्ता'अिफ़तुम् - मिन् अह्लिल्किताबि आमिनू बिल्लज़ी' अुन्ज़िल अलल्लज़ीन आमनू वज्हन्नहारि वक्फ़ुरू' आख़िरहू लअ़ल्लहुम् यर्जिअ़ून ج ५ (७२) व ला तुअ्मिनू' अिल्ला लिमन् तबिअ दीनकुम् ط क़ुल् अिन्नल्हुदा हुदल्लाहि ला अंय्युअ्ता' अहदुम्मिस्ल मा' अूतीतुम् औ युहा'ज्जूकुम् अिन्द रब्बिकुम् ط क़ुल् अिन्नल्फ़ज़्ल बि यदिल्लाहि ج युअ्तीहि मंय्यशा'अु ط वल्लाहु वासिअ़ुन् अलीमुन् ج ला (७३) य'यख़्तस्सु बि रह्मतिही मंय्यशा'अु ط वल्लाहु ज़ुल्फ़ज़्लिल् - अज़ीमि (७४)

تلك الرسل ٣ ۳۶ آل عمرٰن ٣

دُوْنِ اللّٰهِ ۚ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ۞ يٰۤاَهْلَ
الْكِتٰبِ لِمَ تُحَآجُّوْنَ فِيْٓ اِبْرٰهِيْمَ وَمَآ اُنْزِلَتِ التَّوْرٰىةُ وَالْاِنْجِيْلُ
اِلَّا مِنْۢ بَعْدِهٖ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۞ هٰٓاَنْتُمْ هٰٓؤُلَآءِ حَاجَجْتُمْ فِيْمَا
لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ فَلِمَ تُحَآجُّوْنَ فِيْمَا لَيْسَ لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ
وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۞ مَا كَانَ اِبْرٰهِيْمُ يَهُوْدِيًّا وَّلَا نَصْرَانِيًّا وَّ
لٰكِنْ كَانَ حَنِيْفًا مُّسْلِمًا ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۞ اِنَّ اَوْلَى
النَّاسِ بِاِبْرٰهِيْمَ لَلَّذِيْنَ اتَّبَعُوْهُ وَهٰذَا النَّبِيُّ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ؕ
وَاللّٰهُ وَلِيُّ الْمُؤْمِنِيْنَ ۞ وَدَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ لَوْ
يُضِلُّوْنَكُمْ ؕ وَمَا يُضِلُّوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۞ يٰۤاَهْلَ
الْكِتٰبِ لِمَ تَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَاَنْتُمْ تَشْهَدُوْنَ ۞ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ
لِمَ تَلْبِسُوْنَ الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ وَتَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۞ ع ١٥
وَقَالَتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ اٰمِنُوْا بِالَّذِيْٓ اُنْزِلَ عَلَى
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَجْهَ النَّهَارِ وَاكْفُرُوْٓا اٰخِرَهٗ لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُوْنَ ۞
وَلَا تُؤْمِنُوْٓا اِلَّا لِمَنْ تَبِعَ دِيْنَكُمْ ؕ قُلْ اِنَّ الْهُدٰى هُدَى اللّٰهِ ۙ
اَنْ يُّؤْتٰٓى اَحَدٌ مِّثْلَ مَآ اُوْتِيْتُمْ اَوْ يُحَآجُّوْكُمْ عِنْدَ رَبِّكُمْ ؕ قُلْ
اِنَّ الْفَضْلَ بِيَدِ اللّٰهِ ۚ يُؤْتِيْهِ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۞
يَّخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۞ وَمِنْ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

ऐ अह्ले किताब ! तुम इब्राहीम के बारे में क्यों झगड़ रहे हो[३३१] ? ऐसी दशा में कि तौरेत और इन्जील तो उनके बाद ही उतरी हैं। तो तुम अक़्ल से काम क्यों नहीं लेते[३३२] ? (६५) हाँ ! तुम लोग वही तो हो जो इस मामले में झगड़ चुके हो जिसका तुम्हें कुछ इल्म तो था, सो (अब) ऐसी बात में क्यों झगड़ते हो जिसका तुम्हें (कुछ) भी इल्म नहीं। और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते[३३३]। (६६) इब्राहीम न यहूदी थे, न नसरानी, बल्कि सीधी राह वाले मुस्लिम थे; और मुश्रिकों में से भी न थे[३३४]। (६७) बेशक इब्राहीम से सबसे निकट तो वह हैं जिन्होंने उनका अनुसरण किया था, और यह नबी हैं, और वह लोग हैं जो (उन पर) ईमान लाये; और अल्लाह ईमान लानेवालों का हामी (दोस्त) है[३३५]। (६८) अह्ले किताब में से एक गिरोह तो यही चाहता है कि तुम्हें गुमराह करके रहे। यद्यपि वह सिवाय अपने किसी को भी गुमराह नहीं करते और (इसकी भी) ख़बर नहीं रखते[३३६]। (६९) ऐ अह्ले किताब ! तुम अल्लाह की आयतों से क्यों इन्कार किये जाते हो, हालाँकि तुम गवाह हो[३३७]। (७०) ऐ अह्ले किताब ! तुम सत्य को असत्य का जामा पहनाते और सत्य को छुपा जाते हो यद्यपि तुम जानते होते हो[३३८]। (७१) ★ ★ रु. ७ / १५ मा ८

और अह्ले किताब का एक गिरोह कहता है[३३९] कि ईमान लानेवालों पर जो उतरा है उस पर प्रातःकाल ईमान लाओ और दिन के अन्त में इन्कार कर बैठो। अजब क्या कि वह भी फिर जायें[३४०]। (७२) और वास्तव में सिवाय उसके कि जो तुम्हारे दीन का पैरो (अनुयायी) हो और किसी पर ईमान न लाओ। आप कह दीजिए कि हिदायत तो अल्लाह ही की हिदायत है[३४१], और यह सब इस ग़ुस्से में कर रहे हो कि किसी और को वह चीज़ मिल गयी जो तुम्हें मिली थी या वह लोग तुम पर तुम्हारे परवरदिगार के यहाँ क़ाबू पा जायें[३४२]। आप कह दीजिए कि मेहरबानी अल्लाह ही के हाथ में है; वह जिसे चाहे प्रदान करता है[३४३]। और अल्लाह बड़े फैलाववाला है, बड़ा इल्मवाला है। (७३) वह जिसे चाहे अपनी दया के साथ विशेष कर लेता है[३४४]। और अल्लाह बड़ी बुज़ुर्गी वाला है[३४५]। (७४)

---

३३१ (और उन्हें अकारण यहूदी और नसरानी ठहरा रहे हो) सम्बोधन यहूद एवं नसारा दोनों से है। 'फ़ी' अब्राहीम'— यानी इब्राहीम के दीन एवं मज़हब के विषय में।

३३२ यानी जिन किताबों को तुम अपनी नामचार की नसरानीयत एवं यहूदीयत का आधार मान रहे हो वह तो स्वयं हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के बहुत बाद की चीज़ें हैं। तो कैसी बे-अक़्ली की बातें करते हो कि आख़िर की किताबों के सहारे अपना मज़हब उनके सर पर चिपकाना चाहते हो।

३३३ यानी इसी दीने इब्राहीमी से सम्बद्ध। मुराद यह है कि जब तुम तौरेत और इन्जील ही के मसलों में भटक गये और ऐसे भटक गये, हालांकि वहाँ कुछ तो सच्चा इल्म तुम्हें प्राप्त था तो अब दीने इब्राहीमी के विषय में क्यों कटहुज्जती पर तुले हो, जिसके बारे में तो तुम्हें कुछ ज्ञान भी नहीं है ?

३३४ (बल्कि शिर्क से अत्यन्त अप्रसन्न थे और शिर्क की दुनिया में तौहीद के प्रथम झण्डावाहक थे।) 'हनीफ़म्-मुस्लिमन्'— ठेठ उर्दू में "सीधे-सादे मुस्लिम।" 'यहूदिय्यंव्व ला नस्रानिय्यन्'— जिस यहूदीयत और जिस नसरानीयत का इन्कार हो रहा है, वह प्रचलित गढ़ी हुई यहूदीयत और नसरानीयत थी, वरन: अस्ल हक़ीक़त के लिहाज़ से जो दीन हज़रत मूसा का था वही हज़रत इब्राहीम का भी था। हज़रत की तौहीद-परस्ती यहूद एवं नसारा दोनों को मान्य थी। हज़रत के दीने तौहीद पर हाशिए प्रथम पारे के अन्तिम रुकूअ़ में गुज़र चुके हैं। तफ़्सीर करनेवाले फ़क़ीहों ने लिखा है कि इन आयतों से सच्चे दीन की तरफ़दारी में दलीलें क़ायम करने और असत्य वाले लोगों के जवाब देने का वाजिब होना सिद्ध होता है।

३३५ (दुनिया और आख़िरत दोनों में) 'औलन्नासि बि अब्राहीम'— इब्राहीम से क़रीब दीन और अक़ीदे के लिहाज़ से। 'लल्लज़ीनत्तबअ़ूहु'— वह लोग जिन्होंने आपके ज़माने में आपका अनुकरण किया था। 'व हाज़न्नबिय्यु'— और यह नबी जो गोया उन्हीं की सूचना लेकर आये हैं और उन्हीं की नियाबत इस ज़माने में कर रहे हैं। 'वल्लज़ीन आमनू'— यानी मुसलमान। योरोपियन इतिहासकार भी यह मानते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं कि पुराने इस्राईली मज़हब की जानशीनी अब कोई मज़हब कर रहा है, तो वह मसीहीयत नहीं है जिसके भीतर यूनान तथा रोम के जाहिली और मुश्रिकाना अक़ीदों को एकत्रित कर दिया गया है, बल्कि इस्लाम है। अवलोकित हो "Historions' History of The World."

३३६ रिवायतों में आता है कि यहूद का साहस इतना बढ़ा हुआ था और उन्हें असत्य की शक्ति पर इतना अभिमान था कि स्वयं तो इस्लाम को स्वीकार करना अलग रहा, मुसलमानों को भी उनके अक़ीदों से फिराने की कोशिश करते थे। आज भी कितने मसीहियों के दिल में यह तमन्ना जीती-जागती मौजूद है कि मुसलमान चाहे मसीहीयत न स्वीकार करें, परन्तु इस्लामी अक़ीदों से तो डगमगा ही जाएँ। **"ता'अिफ़तु……अह्लुकिताब"** विशेष संकेत यहूद की ओर है। **'युज़िल्लूनकुम्'**— सम्बोधन साधारण मुसलमानों से है। **'मा……अनुफ़ुसहुम्'**— यानी वह हक़ीक़तन् मुसलमानों को गुमराह करने में सफल तो नहीं होते स्वयं अपने ही कर्मों के लेखे को और काला कर लेते हैं। **'मा यश्अुरून'**— यानी ऐसे मूर्ख और नासमझ है कि सच्चाई का क़तई ज्ञान नहीं रखते।

३३७ (उनकी सच्चाई और वास्तविकता के) **'बि आयातिल्लाहि'**— यानी अल्लाह की उन आयतों से जो स्वयं तुम्हारी पुस्तकों के भीतर मौजूद हैं और जिनमें नबूवतें मुहम्मदी की पूरी निशानियाँ और शुभ सूचनाएँ अंकित हैं। **'व अन्तुम् तश्हदून'**— यानी इन्कार कुछ अज्ञानता और अपरिचित होने के कारण नहीं, जान-बूझकर उन आयतों में हेराफेरी कर रहे हो। शब्दों में भी और अर्थों में भी।

३३८ यहाँ यहूदियों पर नियत रूप से तीन इल्ज़ाम लगाए गए हैं— (१) **'तल्बिसून……बातिल'**— अपनी किताबों के ऐसे अर्थ लगा देते हैं कि सत्य बिलकुल असत्य से दब जाता है और ग़लत शिक्षा का प्रचार हो जाता है। (२) **'तक्तुमूनल्-हक़्क़'**— सत्य को सिरे से छुपा डालते हो और जहाँ इस्लाम के प्रकट होने में शुभ सूचना है वहाँ ईबारतें कुछ की कुछ कर देते हो। (३) **'व अन्तुम् तअ्लमून'**— यह सब कुछ अपने इरादे और इच्छा से कर रहे हो। केवल इत्तिफ़ाक़ी रूप में ऐसा नहीं हो रहा है। अह्ले किताब ने जो फेर-बदल किया है, उस पर हाशिए प्रथम पारे में गुज़र चुके हैं।

३३९ (आपस में) यह इशारा है ख़ैबर और अरनीया के यहूद की ओर।

३४० (इस चाल और तदबीर से) **"आमनू……नहारि"**— यहाँ ईमान, ईमान के ज़ाहिर करने के मानी में आया है यानी प्रातःकाल ईमान ज़ाहिर करो। **"अुन्ज़िल……आमनू"**— यानी जो इन मोमिनों के विचार में उन पर उतरा है। **"लअल्लहुम्"**— सर्वनाम उन लोगों की ओर है जो वास्तव में मुसलमान थे। मदीना और उसके आसपास के यहूद मुसलमानों के विरुद्ध अजीब-अजीब चालें चला करते थे। एक बार आपसी परामर्श के बाद उन्होंने तय किया कि हम प्रातःकाल में इस्लाम की सच्चाई को मान लिया करें और फिर कुछ घण्टों के पश्चात् उससे मुकर जाया करें और कह दिया करें कि मनन और चिन्तन के पश्चात् और तौरेत का अवलोकन करने से यह पता चला कि यह धर्म प्रमाणित नहीं हैं, अतः हम लोग इससे निकल आये हैं। अरबवालों पर हमारे इल्म और ज्ञान दोनों की धाक तो बैठी हुई है। लोग कहेंगे कि आखिर कोई ख़राबी तो इस नये दीन में है, जो ऐसे-ऐसे लोग बाहर निकल गये, और हो सकता है कि इस तदबीर से कुछ पुराने मुसलमान भी उखड़ जाएँ। यहूदी इतिहास में मुनाफ़िक़त की यही एक मिसाल नहीं है, खुद उनकी पुस्तकों में यही घटनाएँ विवरण-सहित अंकित हैं कि बारहवीं सदी ईसवी में जब स्पेन में इस्लामी हुकूमत थी तो प्रशासन के फ़र्ज़ी या असली "अत्याचार" के आधार पर बहुत से यहूद ने अपने मज़हबी रहनुमाओं की आज्ञा और उनके फ़त्वे (मज़हबी मामलों में निर्णय का आदेश) के अनुसार यह ज़ाहिर करना शुरू कर दिया था कि वह इस्लाम स्वीकार कर चुके हैं। यद्यपि हृदय में सब के सब इन्कार करनेवाले ही थे। (जिविश इन्साइक्लोपीडिया जिल्द प्रथम, पृष्ठ ४३२ तथा ४३३)। और आज यह जो बड़े-बड़े फ़िरंगी शोधकर्ता यहूद एवं मसीही शोधकों ने फ़िरंगी भाषाओं में सीरतें नबवी (रसूल की जीवनी) लिखने की यह विधि अपनाई है कि अपने ज्ञान एवं शोध, अपने मत की विशालता और अपनी निष्पक्षता की धाक बिठाकर भूमिका बड़े ज़ोर की उठाते हैं और ऐसा मालूम होने लगता है कि "अरब के नबी" और "विश्व के सुधारक" की प्रशंसा और "महान् विधायक" और "मूसा की मिसाल" की तारीफ़ों के दरिया बहा देंगे, परन्तु आगे चलकर निष्कर्ष यह निकालते हैं कि (नऊज़ुबिल्लाह) उन्हें कुछ दिमाग़ का ख़लल या झक-सा था या फिर यहूद एवं नसारा की किताबों के मज़मूनों को कहीं से सुन-सुनाकर उन्हें चुरा लेते थे इत्यादि। यह भी उसी यहूद एवं नसारा के फ़रेब और चालबाज़ी का नमूना है, और बस।

३४१ (यानी वास्तव में और दिल से अपने ही वालों की तस्दीक़ किया करो— वही यहूद का क़ौल चल रहा है।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३४२ (जो अब इस्लाम के नाम से ज़ाहिर हुई है और जिसकी सच्चाई पर लिखित पुस्तकों एवं अक़्ली तर्क बने हुए हैं, न कि वह जो तुमने गढ़ लिये हैं और जिनकी कोई जड़ और आधार नहीं है।) **'क़ुल्'**— सम्बोधन पैग़म्बर अ़लैहिस्सलाम से है और यह वाक्यांश यहूद के उत्तर में है।

३४३ (और उसी भय से सहमे जा रहे हो) **'मिस़्ल मा'अूतीतुम्'**— यानी नबूवत की दौलत। सम्बोधन यहूद की क़ौम से है। यानी तुम्हें अस्ली जलन तो बस यह है कि नबी तो हमेशा हमारी नस्ल से और हमारी जाति से पैदा होते रहे हैं, अब एक अरब और इस्माईली को यह दौलत कैसे मिली जा रही है। **''युहा'ज्जूकुम् अिन्द रब्बिकुम्''**— यानी क़ियामत के दिन मुसलमान यहूद पर यह कहकर क़ाबू न पा लें कि इन लोगों ने भी तो दुनिया में हमारी तस्दीक़ की थी। तफ़्सीर करनेवाले वाहिदी ने कहा है कि यह आयत तफ़्सीर के सबसे कठिन स्थानों में से है (रूह्)।

३४४ (अपनी महान् हिकमत और सम्पूर्ण स्वेच्छा के अनुसार) **'क़ुल्'**— सम्बोधन पैग़म्बर अ़लैहिस्सलाम से है। **''वासिअ़न्''**— उसकी कृपा और उसके दान के खाते में कमी नहीं, फिर यह क्यों मान लिया गया कि अमुक नस्ल या जाति नबूवत की नेमत से सदा वञ्चित रहेगी। **''अ़लीम''**— वह अपने सम्पूर्ण ज्ञान के अनुसार जिसकी जैसी क्षमता देखता है, उसे वह नेमत प्रदान करता है।

३४५ (कन्जूसी और कमी का उसके यहाँ गुज़र कहाँ) **'मंय्यशा'अु'**— वह जिसे चाहता है, सृष्टि की इच्छाओं के अनुसार।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३६६ से)

बदनाम रहे हैं। जातीय घमण्ड और नस्ली अभिमान का परिणाम आम तौर पर यही होता है। गोरों का व्योहार कालों के साथ आज विश्व के हर भाग में क्या है? **'सबील'**— 'सबील' के मानी यहाँ हुज्जत के हैं और यह अर्थ क़ुर्आन और अ़रबी बोलचाल में आम हैं। **''यक़ूलू-न अ़लल्लाहिल् कज़िब''**— यह अपने इस अनोखे नियमों और दावों में, जो मज़हब और धर्म से सम्बद्ध किए हुए हैं, झूठे हैं। इस विवरण ने यहूद के पापों की गम्भीरता को कहीं ज़्यादा बढ़ा दिया। वह केवल कर्मों में बेईमानी में लीन नहीं थे, बल्कि एक बे-अस्ल अक़ीदः भी गढ़ लिया था और आमाल से गुज़रकर अक़ीदों की खराबी में लीन हो चुके थे।

३४६ (और यही ईश-भय और संयम ही सारी ईमानदारी और सुन्दर व्योहार की जड़ है।) **'बला'**— यानी ज़िम्मेदारी क्यों न होती है, और ज़रूर है। **'अ़ह्द:'**— वादा खालिक़ के साथ हो या मख़्लूक़ के साथ, उसकी पाबन्दी हर दशा में अनिवार्य है। इमाम राज़ी ने लिखा है कि आयत से वादे को पूरा करने की बड़ी शिक्षा निकल रही है, क्योंकि तमाम इबादतों का सारांश दो ही चीज़ें हैं। एक अल्लाह के आदेशों का सम्मान, दूसरी अल्लाह की मख़्लूक़ पर स्नेह और वादे को पूरा करना —इन दोनों प्रकार की उपासनाओं का समयोग है। (कबीर)।

३५० यानी किसी दुनियावी लालच में आकर उन प्रतिबन्धों को तोड़ रहे हैं। **''समनन् क़लीलन्''**— दुनियावी पारिश्रमिक और बदला हमेशा आखिरत के बदले से कम ही होगा। यह अर्थ नहीं है कि यदि अधिक बदला मिल रहा हो तो बेईमानी और वादाखिलाफ़ी उचित हो जाएगी। अर्थ केवल इतना है कि अपने वादों तथा सन्धियों की पाबन्दी न करना और ग़लत व्योहार करना किसी भी बदले पर जाइज़ नहीं है। **''अ़ह्दिल्लाहि''**— यानी आज्ञाकारिता का वह वादा जो अल्लाह से कर चुके हैं। **'अ़ैमानिहिम्'**— यानी जो क़स्में परस्पर मामलों में उससे सम्बन्धित खाते रहते हैं। फ़क़ीह और तफ़्सीर करनेवालों ने आयत के अन्तर्गत लिखा है कि जो वर्ग वह जानता है कि वह असत्य पर है वह इस आधार पर अपने को सत्य पर नहीं क़रार दे सकता कि ज़ाहिरी अदालत से निर्णय उसके हक़ में हो गया है।

३५१ (इस कुफ़्र और गुमराही की सज़ा के अन्तर्गत) **''ला ख़लाक़''**— यानी भलाई का कोई हिस्सा नहीं। **''ला युकल्लिमुहुम्''**— यानी आनन्द और मेहरबानी से उनको सम्बोधित न करेगा। जो सम्बोधन ताड़ना एवं कड़ी पूछताछ के लिए हो उसका उलट 'नहीं' मुराद है। **''ला यन्ज़ुरु अिलैहिम्''**— यानी स्नेह एवं कृपादृष्टि के साथ उनकी ओर न देखेगा। यह अर्थ नहीं है कि ताड़ना की दृष्टि का उलटा। **''ला युज़क्कीहिम्''**— यानी गुनाहों की गन्दगी से पाकसाफ़ न करेगा। **''अलीम''** दुःखदायक या कष्टदायक के अर्थ में है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३७० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व मिन् अह्लिल्किताबि मन् अिन् तअ्मनहु बि क़िन्तारिंय्युअद्दिहीं अिलैक ज व मिन्हुम् मन् अिन् तअ्मन्हु बि दीनारिल्ला युअद्दिहीं अिलैक अिल्ला मा दुम्त अ़लैहि क़ा'अिमन् त जालिक बि अन्नहुम् क़ालू लैस अ़लैना फ़िल्उम्मिय्यीन सबीलुन् ज व यक़ूलून अ़लल्लाहिल्-कज़िब व हुम् यअ़्लमून (७५) बला मन् औफ़ा बि अ़ह्दिहीं वत्तक़ा फ़ अिन्नल्लाह युहिब्बुल्-मुत्तक़ीन (७६) अिन्नल्लज़ीन यश्तरून बि अ़ह्दिल्लाहि व अैमानिहिम् समनन् क़लीलन् उला'अिक ला ख़लाक़ लहुम् फ़िल्आख़िरति व ला युकल्लिमुहुमुल्लाहु व ला यन्ज़ुरु अिलैहिम् यौमल्क़ियामति व ला युज़क्कीहिम् ,, व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीमुन् (७७) व अिन्न मिन्हुम् ल फ़रीक़ंय्यल्वून अल्सिनतहुम् बिल्किताबि लि तह्सबूहु मिनल्किताबि व मा हुव मिनल्किताबि ज व यक़ूलून हुव मिन् अ़िन्दिल्लाहि व मा हुव मिन् अ़िन्दिल्लाहि ज

اهل الكتب من ان تامنه بقنطار يؤده اليك ومنهم من
ان تامنه بدينار لا يؤده اليك الا ما دمت عليه قآئما ذلك
بانهم قالوا ليس علينا في الامين سبيل ويقولون على الله
الكذب وهم يعلمون ۝ بلى من اوفى بعهده واتقى فان
الله يحب المتقين ۝ ان الذين يشترون بعهد الله وايمانهم
ثمنا قليلا اولئك لا خلاق لهم في الاخرة ولا يكلمهم الله
ولا ينظر اليهم يوم القيمة ولا يزكيهم ولهم عذاب اليم ۝
وان منهم لفريقا يلون السنتهم بالكتب لتحسبوه من
الكتب وما هو من الكتب ويقولون هو من عند الله وما
هو من عند الله ويقولون على الله الكذب وهم يعلمون ۝
ما كان لبشر ان يؤتيه الله الكتب والحكم والنبوة ثم يقول
للناس كونوا عبادا لي من دون الله ولكن كونوا ربنيين بما
كنتم تعلمون الكتب وبما كنتم تدرسون ۝ ولا يامركم
ان تتخذوا الملئكة والنبين اربابا ايامركم بالكفر بعد
اذ انتم مسلمون ۝ واذ اخذ الله ميثاق النبين لما اتيتكم ع
من كتب وحكمة ثم جاءكم رسول مصدق لما معكم
لتؤمنن به ولتنصرنه قال ءاقررتم واخذتم على ذلكم

व यक़ूलून अ़लल्लाहिल्कज़िब व हुम् यअ़्लमून (७८) मा कान लि बशरिन् अंय्युअ्तियहुल्लाहुल्-किताब वल्हुक्म वन्नुबुव्वत सुम्म यक़ूल लिन्नासि कूनू अ़िबादल्ली मिन् दूनिल्लाहि व लाकिन् कूनू रब्बानिय्यीन बिमा कुन्तुम्

★ तुअ़ल्लिमूनल्-किताब व बिमा कुन्तुम् तद्रुसून ला (७९) व ला यअ्मुरकुम्
रु. ८ अन् तत्तख़िज़ुल्-मला'अिकत वन्नबिय्यीन अर्बाबन् त अ यअ्मुरुकुम् बिल्कुफ़्रि
१६ बअ़्द अिज़् अन्तुम् मुस्लिमून (८०) ★ व अिज़् अख़ज़ल्लाहु
आ ६ मीसाक़न्नबिय्यीन लमा' आतैतुकुम् मिन् किताबिंव्व हिक्मतिन् सुम्म

जा'अकुम् रसूलुम्-मुसद्दिक़ुल्लिमा मअ़कुम् ल तुअ्मिनुन्न बिहीं व ल तन्सुरुन्नहू त क़ाल अ अक़्रर्तुम् व अख़ज़्तुम् अ़ला ज़ालिकुम् अिस्री त क़ालू' अक़्रर्ना त क़ाल फ़श्हदू व अना मअ़कुम् मिनश्शाहिदीन (८१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अहले किताब में से कोई ऐसा भी है कि अगर तू उसके पास एक ढेर का ढेर धरोहर रखा दे तो (भी) वह तुझे अदा कर दे[३४६]। और उनमें से कोई ऐसा भी है कि अगर तू उसके पास एक दीनार धरोहर रखा दे तो वह तुझे उसको वापस न करे सिवाए इस सूरत के कि तू उसके (सर पर) खड़ा रहे[३४७]। यह इसलिए कि वह कहते हैं कि हमारे ऊपर उम्मियों के विषय में कोई ज़िम्मेदारी ही नहीं, यह लोग अल्लाह के ऊपर झूठ गढ़ रहे हैं यद्यपि खूब जान रहे हैं[३४८]। (७५) क्यों नहीं, जो व्यक्ति भी अपने वादे को पूरा करे और अल्लाह से डरे तो बेशक अल्लाह से डरनेवालों को अल्लाह दोस्त रखता है[३४९]। (७६) बेशक जो लोग अल्लाह के वादे और अपनी क़समों को थोड़ी क़ीमत पर बेच डालते हैं[३६०] यह वही लोग हैं जिनके लिए कोई हिस्सा आख़िरत में नहीं, और अल्लाह क़ियामत के दिन न उनसे बात करेगा, न उनकी ओर देखेगा, और न उन्हें पाक करेगा, और उनके लिए तो दर्दनाक अज़ाब है[३६१]। (७७) और उन्हीं में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी ज़बानों को किताब में कज (ग़लत प्रयोग)[३६२] करते हैं, ताकि तुम उस (अंश) को भी किताब में से समझो; यद्यपि वह किताब में से नहीं है। और कहते हैं कि यह अल्लाह की ओर से है, यद्यपि वह अल्लाह की ओर से नहीं है। और ये अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं, यद्यपि (भलीभाँति) जानते होते हैं[३६३]। (७८) किसी मानव से यह नहीं हो सकता कि अल्लाह तो उसे किताब और हिकमत और नबूवत प्रदान करे, और वह लोगों से यह कहने लगे कि तुम मेरे बन्दे बन जाओ बजाय अल्लाह के[३६४]। बल्कि (वह तो यही कहेगा) कि अल्लाहवाले बन जाओ[३६५] (यह) इसलिए (और भी) कि तुम पढ़ाते हो किताब (आसमानी) को और ख़ुद भी (उसे) पढ़ते हो[३६६]। (७९) और वह तुम्हें इसका हुक्म देगा कि तुम फ़िरिश्तों और पयम्बरों को परवरदिगार क़रार दो[३६७], क्या वह तुम्हें कुफ़्र का हुक्म देगा बाद उसके कि तुम इस्लाम ला चुके हो[३६८]। (८०) ★ ★ ९. ८ — १६ आ ९

और (वह वक़्त याद करो) जब अल्लाह ने नबियों से वादा लिया कि जब मैं तुम्हें किताब और हिकमत (की क़िस्म) से दूँ फिर तुम्हारे पास रसूल उस (चीज़) की तस्दीक़ करनेवाला आये जो तुम्हारे पास है, तो तुम ज़रूर उस (रसूल) पर ईमान लाना और ज़रूर उसकी मदद करना[३६९]। (फिर) फ़र्माया, तुम इक़्रार करते हो? और इस पर मेरा अह्द (वचन) क़बूल करते हो? वह बोले, हम इक़्रार करते हैं। फ़र्माया, तू गवाह रहना और मैं (भी) तुम्हारे साथ गवाहों में से हूँ[३७०]। (८१)

---

३४६ (एहतियात, सुरक्षा और ईमानदारी के साथ) यानी यहूद सब के सब एक प्रकार के नहीं हैं। उनमें से बाज़ ऐसे-ऐसे दीनदार और अमानत को सँभालकर रखनेवाले भी हैं। यही लोग आगे चलकर मुसलमान हो गये। यहूद उस समय मदीना और उसके आसपास साहूकार या महाजन के रूप में थे। इसलिए माली धरोहर भी उनके पास अक्सर रखा दिए जाते थे।

३४७ यहूद की दौलत की तमा (इच्छा) और लालच की यह कितनी सही तस्वीर है। **'दीनारितू'**— (Denarins) रूमी हूकूमत का एक सोने का सिक्का था जो अरब में भी चलता था। आज भी योरोप के विभिन्न भागों में चल रहा है। उर्दू में इसका अर्थ अशरफ़ी से अदा हो सकता है। इञ्जील में भी इसका ज़िक्र कई बार आया है। **"मा दुम्त अलैहि क़ा'अिमा"**— यानी वह धरोहर के अदा करने में बराबर हीला-हवाला करता रहेगा और उससे तक़ाज़ा बराबर जारी रखना पड़ेगा। **"क़ियाम"**— का शाब्दिक अर्थ मुराद नहीं कि वास्तव में खड़े रहना पड़ेगा और चलने या बैठने या लेटने की नौबत न आये।

३४८ (कि ऐसा कोई मसला इस्राईली तथा मूसवी शरीअत में कदापि मौजूद नहीं है।) **'अुम्मिय्यीन'**— यानी 'उम्मुल्क़ुरा' मक्के के बाशिन्दे। यहूद नस्ली घमण्ड, पक्षपात और क़ौमी ग़ुरूर से भरे हुए यहूद मक्केवालों को अपने से बहुत नीचा और कमतर रखते थे। **"लैस अलैना फ़िल् अुम्मिय्यीन सबील"**— यहूद ग़ैरयहूद या Gentiles के साथ कारोबारी सम्बन्ध में बेईमानी करने के लिए बराबर

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३६७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३६७ से)

३५२ (अपनी किताबों को पढ़ते समय।) **"मिन्हुम्"**— यानी उन्हीं यहूद में। **'यल्वून अल्सिनतहुम्'**— इसके अन्दर शब्दों एवं अर्थों की अदला-बदली दोनों के सारे रूप आ गये। 'लय्यलिसान' से अरबी मुहावरे में मुराद यही होती है, झूठ, फ़रेब, हेराफ़ेरी और उलट-पलट (शब्दों में भी और अर्थों में भी)। और यहाँ इरादा करके अदला-बदली मुराद है।

३५३ यानी उनकी यह अदला-बदली जान-बूझकर होती है। (जान-बूझकर अक्षरों और शब्दों में हेराफ़ेरी करते हैं।) **"यक़ूलून"**— आवश्यक नहीं कि उनका यह कहना विवरण के साथ और हर-हर शब्द का हो, अगर सरसरी ढंग से और तर्क के रूप में हो तब भी पर्याप्त है। **"व मा हुव मिन् अिन्दिल्लाहि"**— महान फ़क़ीह अबू बक्र राज़ी ने इसके अन्तर्गत लिखा है कि आयत से ज़ाहिर होता है कि गुनाहों की निस्बत अल्लाह तआला या उसके कर्म की ओर कर देना उचित नहीं है।

३५४ (जैसा कि मसीहियों ने दावत और मसीह के पैग़ाम का सारांश गढ़ रखा है।) बीच में स्थान की उपयुक्तता से यहूद का खण्डन आ गया था, अब यहाँ से नसारा का रद्द फिर प्रारम्भ होता है। **"मा कान...वन्नुबुव्वत"**— चुनांचि: ईसा अलैहिस्सलाम से भी, जिन्हें नबूवत मिली थी, यह सारी नेमतें मिली थीं, यह नहीं हो सकता। जिनकी आत्मा ऐसी शुद्ध और पवित्र हो, उनसे इस प्रकार का दावा होना कहाँ सम्भव है? **"अल्हुक्म"**— यहाँ हिकमत या शरीअत के आदेशों के मानी में है। **"अल्किताब"**— किताब यहाँ किताब की क़िस्म के मानी में है।

३५५ (जैसा कि वास्तव में मसीह की दावत रही है) **"रब्बानिय्यीन"**— 'रब्बानी' वह है जो रब की ओर सम्बन्ध रखता हो। यानी बड़ा अल्लाहवाला। इमाम राज़ी ने इस अवसर पर लिखा है कि इल्म, तालीम और विद्वत्ता का तक़ाज़ा ही यह है कि मनुष्य ईश्वरभक्त बन जाए, पस अगर कोई इन कार्यों में यह उद्देश्य नहीं रखता तो वह अपना समय नष्ट कर रहा है और ऐसे ही इल्म और आत्मा से हदीसे नबवी में पनाह माँगी गयी है। सम्बोधन नसारा से है यानी तुम्हारे पास शिक्षा एवं शिक्षण के लिए आसमानी पुस्तक मौजूद है और फिर भी तुम ऐसी अज्ञानता और गुमराही में गिरफ़्तार हो।

३५६ यानी इसलिए तो तुम्हें और ज्यादा ऐसे व्यर्थ के मुश्रिकाना अक़ीदों से बचना चाहिए।

३५७ (जैसा कि बाज़ गुमराह जातियों ने अपने बड़ों से सम्बद्ध कर रखा है।) मसीहियों का तीन ख़ुदाओं का विचार तो एक जानी-पहचानी सच्चाई है, परन्तु यह कम लोगों को मालूम होगा कि मलाइक: की पूजा का ज़ोर भी उनके यहाँ बहुत रह चुका है और कई शताब्दियों तक उनके यहाँ यह शिक्षा जारी रही है कि ख़ुदा ने इन्सानों और आसमानों के नीचे सारी चीज़ों का प्रबन्ध लगभग सभी को फ़िरिश्तों पर छोड़ रखा है। (इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़् रेलीजन् ऐण्ड् एथिक्स्)। और यह कि ख़ुदा सृष्टि की केवल सामूहिक परवरिश करता है, छोटी-छोटी और आंशिक व्यवस्थाएँ सब मलाइक: के हाथ में हैं। मसीहीयत का इतिहास मलाइक: की बाक़ायदा और नियमित इबादत एवं उपासना से भी परिचित नहीं है। उनकी मूर्तियाँ तक उनके यहाँ पूजी गयी हैं। हमारे पुराने तफ़्सीर करनेवाले भी इससे अपरिचित नहीं थे।

३५८ (और ख़ालिस तौहीद का इक़रार कर चुके हो।) **'यअ्मुरुकुम् बिल्कुफ़्रि'**— इससे साफ़ ज़ाहिर है कि नबियों की उपासना और फ़िरिश्तों की पूजा करना स्पष्ट कुफ़्र है। इस आयत से उन मुसलमानों को सबक़ लेना चाहिए जो अपने शेख़ों और बड़ों की ताज़ीम तथा आदर-सम्मान में, चाहे वह जीवित हों या मृत्यु पा चुके हों, बहुत आगे बढ़ जाते हैं। वाक्य की प्रश्नवाचक शैली आश्चर्य-प्रदर्शन तथा नकारने के लिए है, जैसे उर्दू में कहते हैं कि कहीं ऐसा हो सकता है?

३५९ (यह ईमान दिलोजान से हो और मदद हाथ और ज़बान से हो।) **"अख़ज़ल्लाहु मीसाक़न्नबिय्यीन"**— यानी नबियों की रूहों से वचन लिया। रूहों की दुनिया में (आत्मलोक में) इस नासूती दुनिया (मर्त्यलोक) के अस्तित्व के पूर्व यहाँ यह स्पष्ट रहे कि जो आदेश नबियों को मिले, उनमें उनकी उम्मतें अव्वल दर्जे में सम्मिलित हैं। **"मिन्किताब व हिक्मत"**— किताब से मुराद आसमानी किताब होना ज़ाहिर है। 'हिकमत' से मुराद अल्लाह की पहचान भी हो सकती है और नबूवत भी। **'मुसद्दिक़'**— यानी वह बाद का आनेवाला रसूल ख़ुद उन पिछली तालीमों और निर्देशों की तस्दीक़ करनेवाला भी हो। **"ल तुअ्मिनुन्न बिही व ल तन्सुरुन्नहू"**— ख़ुदा रसीदा सूफ़ियों ने कहा है कि शेख़ों पर लाज़िम है कि उनके समय का जो बुज़ुर्ग इल्म और अमल में उनसे बढ़ा हुआ हो, बल्कि उनके समकक्ष हो, उससे दुआ कराने में संकोच न करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'रसूलुन्'— संकेत एक नियत व्यक्ति की ओर कर रहा है और क़ुर्आन में यह शैली बहुत आम है। यहाँ मुराद मुहम्मद रसूलुल्लाह (स०) हैं और सहाबा में हज़रत अली और इब्ने अब्बास का यही विचार है। और ख़ुदा रसीदा लोगों ने यह भी कहा है कि हक़ीक़ी रसूल और स्थायी शरीअत वाले नबी तो हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स०) हैं और बाक़ी दूसरे नबी आपके ताबेईन हैं (यानी आप ही के अनुसरण करनेवाले हैं)।

३६० नबियों की ज़बान से इक़रार यूँ भी पवित्र इक़रार और बलशाली सौगन्द के बराबर है। अल्लाह की इस गवाही ने बलशाली को और बलशाली कर दिया। **"अिस्री"**— शाब्दिक अर्थ है बोझ, मुराद वचन ही से है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३७३ से)

अक्षर **'अला'** और **'अिला'** दोनों के साथ जाता है। **'अल् अस्बात'** यानी याक़ूब की सन्तान में से जो-जो पयम्बर हुए हैं। इस शब्द पर हाशिया प्रथम पारे में गुज़र चुका है। इन नबियों के नामों पर भी हाशिए गुज़र चुके हैं।

३६४ (उनकी सच्चाई के लिहाज़ से कि बाज़ को मानें और बाज़ को झुठलाएँ, जैसा कि यहूद एवं नसारा इत्यादि ऐसी उम्मतों का तरीक़ा है जिन पर ख़ुदा का प्रकोप और गुस्सा उतरा है। यह मुराद नहीं कि नबियों के बीच दर्जों का कोई अन्तर ही नहीं होता। एक के दूसरे पर फ़ज़ीलत रखने के सम्बन्ध में तो स्वयं **'सूरए करीमः तिल्करुसुलु फ़ज़्ज़ल्ना'** बोलती हुई गवाही है।

३६५ (और इसी शाब्दिक उपयुक्तता के कारण ही हमारा परिभाषाई नाम भी मुस्लिम है।)

३६६ (आयत बड़ी अहम और ईमान की बातों में एक कुंजी के हैसियत की है।) **'अल्-अिस्लाम'**— से यहाँ खुली हुई मुराद परिभाषाई दीनें इस्लाम है, वरनः शाब्दिक अर्थ के लिहाज़ से तो सृष्टि का कण-कण मुस्लिम है। **"अिन्नल्लज़ीन······अिस्त"**— आदि अनेकों आयतों में यह मज़मून साफ़-साफ़ बयान हो चुका है कि सच्चा और ख़ुदा का पसन्द किया हुआ दीन केवल यही दीन है जिसकी किताब क़ुर्आन है। और जिसके लाने और सिखानेवाले मुहम्मद रसूल (स०) हैं। इस एक दीन के अलावा जितने भी दीन अपनी मौजूदा शक्ल में मौजूद हैं, उनकी मिसाल पुराने खिसे हुए टेक्साल बाहरी सिक्कों की-सी है कि कहने को सिक्के वह भी हैं, परन्तु जब चल न सकें तो उनका सिक्का होना न होना बराबर है। यह आयत इस सच्चाई को ज़्यादा प्रोज्वलित करती है और इस लिहाज़ से बड़ी बलशाली है। दूसरे दोनों और मतों को (चाहे वह वास्तव में कैसे ही हों) उनकी मौजूदा शक्ल में इसी दीनें हक़ की तरह सच्चा समझना, हर दीनो-मज़हब को नजात के लिए काफ़ी समझना या सब मज़हबों को मिला-जुलाकर उनकी खिचड़ी तैयार करना या यह कहना कि मन्दिर, मस्जिद, काबा, कलीसा सब एक समान हैं, गुमराही तथा बेदीनी की ही शक्लें हैं। अकबर, दाराशिकोह इत्यादि इन प्रयासों में बुरी तरह बदनाम हो चुके हैं और यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे ज़माने में भी बाज़ लेखक ऐसी ही मूर्खतापूर्ण कोशिशें कर चुके हैं और कर रहे हैं।

३६७ (जो अपनी आत्मा पर ज़्यादती करते हैं, इतने निडर हैं।) **'कफ़रू बअ्द ओमानिहिम'**— यानी सच्चे दीन से फिर गये और 'मुर्तद' हो गये ('मुर्तद'— वह व्यक्ति जो दीनें इस्लाम से फिर जाए)। **"अल्बय्यिनातु"**— खुली हुई निशानियाँ रसूलें इस्लाम और दीनें इस्लाम की सच्चाई की दलीलें, मोजिज़े सभी इन्हीं **'बय्यिनात'** के अन्तर्गत आते हैं।

३६८ (और लानत की हक़ीक़त अल्लाह की मेहरबानी से दूरी और उससे वञ्चित होना है।) प्रथम पारे में लानत पर हाशिया गुज़र चुका है।

३६९ (जहन्नम में पड़ने के पूर्व) **'ला युख़फ़्फ़फ़ु······अज़ाब'**— यानी जहन्नम में पड़ने के पश्चात् भी कोई कमी अज़ाब में न होगी। **"फ़ीहा"**— यानी इस प्रकोप और ईश्वरीय धिक्कारिता की दशा में। दूसरा अर्थ जहन्नम में पड़े रहने के भी हैं।

३७० (सो ऐसे के लिए तौबा के स्वीकार होने में कठिनाई ही क्या है?) **'ताबू'**— यानी सच्चे हृदय से तौबा कर लें। **'ग़फ़ूरुन्'**— सो वह अपने नजात देने और क्षमा करने के गुण के तक़ाज़े से उनकी पिछली ख़ताओं को माफ़ कर देगा। **'रहीमुन्'**— सो वह अपनी दया करने की सिफ़त के तक़ाज़े से उन पर और कृपा करेगा।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३७६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़ मन् तवल्ला बऽद जालिक फ़ अुला'अिक हुमुल्-फ़ासिक़ून (८२) अ फ़ ग़ैर
दीनिल्लाहि यब्ग़ून व लहू' अस्लम मन् फ़िस्समावाति वल्अर्ज़ि तौअंव्व
करहंव्व अिलैहि युर्जअून (८३) क़ुल् आमन्ना बिल्लाहि व मा' अुन्ज़िल
अलैना व मा' अुन्ज़िल अला' अिब्राहीम व अिस्माअील व अिस्हाक़ व
यऽक़ूब वल्अस्बाति व मा' अूतिय मूसा व
अीसा वन्नबिय्यून मिर्रब्बिहिम् ॰ ला नुफ़र्रिक़ु
बैन अहदिम्मिन्हुम् ॰ व नह्नु लहू मुस्लिमून
(८४) व मंय्यब्तग़ि ग़ैरल्-अिस्लामि दीनन्
फ़ लंय्युक़्बल मिन्हु ॰ व हुव फ़िल्आख़िरति
मिनल्ख़ासिरीन (८५) कैफ़ यह्दिल्लाहु
क़ौमन् कफ़रू बऽद ओमानिहिम् व शहिदू'
अन्नर्रसूल हक़्क़ुंव्व जा'अ हुमुल्बय्यिनातु ॰
वल्लाहु ला यह्दिल्-क़ौमज़्ज़ालिमीन (८६)
अुला'अिक जज़ा'अुहुम् अन्न अलैहिम्
लऽनतल्लाहि वल्मला'अिकति वन्नासि
अज्मअीन ॰ (८७) ख़ालिदीन फ़ीहा ॰
ला युख़फ़्फ़फ़ु अन्हुमुल्-अज़ाबु व ला हुम्
युन्जरून ॰ (८८) अिल्लल्लज़ीन ताबू मिम्बऽदि जालिक व अस्लहू क़िफ़
फ़ अिन्नल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (८९) अिन्नल्लज़ीन कफ़रू बऽद ओमानिहिम्
सुम्मज़्दादू कुफ़्रल्लन् तुक़्बल तौबतुहुम् ॰ व अुला'अिक हुमुज़्ज़ा'ल्लून
(९०) अिन्नल्लज़ीन कफ़रू व मातू व हुम् कुफ़्फ़ारुन् फ़ लंय्युक़्बल मिन्
★ रु. ९ । १७ आ ११ अहदिहिम् - मिल् - अुल्अर्ज़ि ज़हबंव्व लविफ़्तदा बिही' ॰ अुला'अिक
लहुम् अज़ाबुन् अलीमुंव्व मा लहुम् मिन्नासिरीन (९१) ★

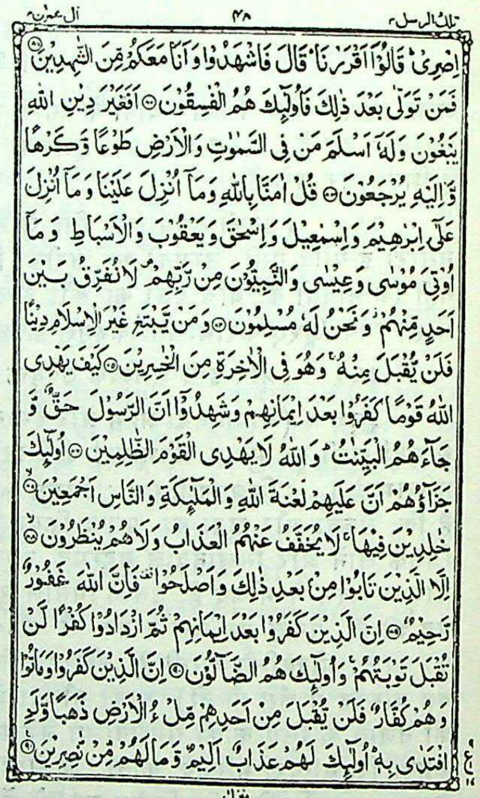
تلك الرسل ۳ ۴۸ ال عمرٰن ۳

اِصۡرِیۡ ؕ قَالُوۡۤا اَقۡرَرۡنَا ؕ قَالَ فَاشۡهَدُوۡا وَاَنَا مَعَکُمۡ مِّنَ الشّٰهِدِیۡنَ ﴿۸۱﴾
فَمَنۡ تَوَلّٰی بَعۡدَ ذٰلِکَ فَاُولٰٓئِکَ هُمُ الۡفٰسِقُوۡنَ ﴿۸۲﴾ اَفَغَیۡرَ دِیۡنِ اللّٰهِ
یَبۡغُوۡنَ وَلَهٗۤ اَسۡلَمَ مَنۡ فِی السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ طَوۡعًا وَّکَرۡهًا
وَّاِلَیۡهِ یُرۡجَعُوۡنَ ﴿۸۳﴾ قُلۡ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَاۤ اُنۡزِلَ عَلَیۡنَا وَمَاۤ اُنۡزِلَ
عَلٰۤی اِبۡرٰهِیۡمَ وَاِسۡمٰعِیۡلَ وَاِسۡحٰقَ وَیَعۡقُوۡبَ وَالۡاَسۡبَاطِ وَمَاۤ
اُوۡتِیَ مُوۡسٰی وَعِیۡسٰی وَالنَّبِیُّوۡنَ مِنۡ رَّبِّهِمۡ ۪ لَا نُفَرِّقُ بَیۡنَ
اَحَدٍ مِّنۡهُمۡ ۫ وَنَحۡنُ لَهٗ مُسۡلِمُوۡنَ ﴿۸۴﴾ وَمَنۡ یَّبۡتَغِ غَیۡرَ الۡاِسۡلَامِ دِیۡنًا
فَلَنۡ یُّقۡبَلَ مِنۡهُ ۚ وَهُوَ فِی الۡاٰخِرَةِ مِنَ الۡخٰسِرِیۡنَ ﴿۸۵﴾ کَیۡفَ یَهۡدِی
اللّٰهُ قَوۡمًا کَفَرُوۡا بَعۡدَ اِیۡمَانِهِمۡ وَشَهِدُوۡۤا اَنَّ الرَّسُوۡلَ حَقٌّ وَّ
جَآءَهُمُ الۡبَیِّنٰتُ ؕ وَاللّٰهُ لَا یَهۡدِی الۡقَوۡمَ الظّٰلِمِیۡنَ ﴿۸۶﴾ اُولٰٓئِکَ
جَزَآؤُهُمۡ اَنَّ عَلَیۡهِمۡ لَعۡنَةَ اللّٰهِ وَالۡمَلٰٓئِکَةِ وَالنَّاسِ اَجۡمَعِیۡنَ ﴿۸۷﴾
خٰلِدِیۡنَ فِیۡهَا ۚ لَا یُخَفَّفُ عَنۡهُمُ الۡعَذَابُ وَلَا هُمۡ یُنۡظَرُوۡنَ ﴿۸۸﴾
اِلَّا الَّذِیۡنَ تَابُوۡا مِنۡۢ بَعۡدِ ذٰلِکَ وَاَصۡلَحُوۡا ۟ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ
رَّحِیۡمٌ ﴿۸۹﴾ اِنَّ الَّذِیۡنَ کَفَرُوۡا بَعۡدَ اِیۡمَانِهِمۡ ثُمَّ ازۡدَادُوۡا کُفۡرًا لَّنۡ
تُقۡبَلَ تَوۡبَتُهُمۡ ۚ وَاُولٰٓئِکَ هُمُ الضَّآلُّوۡنَ ﴿۹۰﴾ اِنَّ الَّذِیۡنَ کَفَرُوۡا وَمَاتُوۡا
وَهُمۡ کُفَّارٌ فَلَنۡ یُّقۡبَلَ مِنۡ اَحَدِهِمۡ مِّلۡءُ الۡاَرۡضِ ذَهَبًا وَّلَوِ
افۡتَدٰی بِهٖ ؕ اُولٰٓئِکَ لَهُمۡ عَذَابٌ اَلِیۡمٌ وَّمَا لَهُمۡ مِّنۡ نّٰصِرِیۡنَ ﴿۹۱﴾ ع
منزل ۱

॥ इति तीसरा पारः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर जो कोई इसके बाद भी मुँह फेरेगा सो यही लोग तो नाफ़र्मान हैं[३६१]। (८२) सो क्या यह लोग अल्लाह के दीन के सिवा (किसी तरीक़े को) तलाश कर रहे हैं ? ऐसी दशा में कि उसके आज्ञाकारी हैं जो कोई भी आसमानों और ज़मीन में हैं (चाहे यह आज्ञाकारिता) ख़ुशी और इख़्तियार से हो, या बेइख़्तियारी से और सब उसी की तरफ़ लौटाये जायेंगे[३६२]। (८३) आप कह दीजिए कि हम अल्लाह पर ईमान रखते हैं, और उस पर जो हमारे ऊपर उतारा गया है और उस पर जो इब्राहीम और इस्माईल और इस्हाक़ और याक़ूब और (याक़ूब की) सन्तान पर उतारा गया है, और उस पर जो मूसा और ईसा नबियों को दिया गया उनके परवरदिगार की ओर से[३६३]। हम उनमें से परस्पर कोई फ़र्क़ नहीं करते[३६४], और हम तो उसी अल्लाह के फ़र्मांबरदार (आज्ञाकारी) हैं[३६५]। (८४) जो कोई इस्लाम के सिवा किसी और दीन को तलाश करेगा सो वह उससे कदापि स्वीकार नहीं किया जायेगा, और वह व्यक्ति आख़िरत में तबाहकारों में से होगा[३६६]। (८५) अल्लाह कैसे ऐसे लोगों को हिदायत देगा जिन्होंने अपने ईमान के बाद कुफ़्र (इख़्तियार) कर लिया और (बाद इसके कि) गवाही दे चुके थे कि रसूल बर्‌हक़ हैं और (बाद इसके) उनके पास खुली हुई निशानियाँ आ चुकी थीं और अल्लाह (ऐसे) ज़ालिम लोगों को हिदायत नहीं देता[३६७]। (८६) ऐसों की सज़ा यह है कि उन पर अल्लाह की और फ़िरिश्तों की और इन्सानों की, सबकी लानत होती है[३६८]। (८७) वह उसमें हमेशा-हमेश पड़े रहनेवाले हैं; न उन पर से अज़ाब हलका किया जायेगा और न उन्हें मुहलत ही दी जायेगी[३६९]। (८८) अलबत्ता जो लोग इसके बाद तौबः कर लें और अपने को दुरुस्त कर लें, सो बेशक अल्लाह बड़ा नजात देनेवाला है, बड़ी दया वाला है[३७०]। (८९) बेशक जो लोग बाद अपने ईमान (लाने) के फिर कुफ़्र में बढ़ते रहे, उनकी तौबः कदापि स्वीकार न की जायेगी[३७१]; और यही लोग तो गुमराह हैं[३७२]। (९०) बेशक जिन लोगों ने कुफ़्र (इख़्तियार) किया और वह मर गये इस हाल में कि वह काफ़िर थे, सो उनमें से किसी से कदापि न स्वीकार किया जायेगा ज़मीन भर (भी) सोना अगर्चे वह उसे बदले में देना चाहें[३७३]। यही वह लोग हैं जिनके लिए अज़ाब दर्दनाक है और जिनके लिए कोई मददगार न होंगे। (९१) ★

★ रु. ६/१७ आ ११

॥ इति तीसरा पारः ॥

---

३६१ यानी नबियों के अनुयाइयों (पैरवों) में जो कोई इस वचन से मुँह फेरेगा उसकी गिनती पक्के नाफ़र्मानों में होगी। स्वयं नबियों से, जो मासूम होते हैं यानी उनसे गुनाह हो सकता ही नहीं, उनसे तो मुँह फेरनेवाली बात सम्भव ही नहीं, अतः आवश्यक रूप में इससे संकेत उम्मत के लोगों की ओर ही है।

३६२ (क़ियामत के दिन) सो डरते रहना चाहिए उस हस्ती से जो आज भी उस प्रकार बा-इख़्तियार है तथा शक्तिशाली है और कल भी सामना उसी का होना है और उसी की इबादत में लगे रहना चाहिए। **'यब्ग़ून'**— यह असत्य के तलाश करनेवाले साधारण असत्य वाले हैं। **''दीनिल्लाहि''**— यहाँ स्पष्टता हेतु इस्लाम के लिए 'दीनिल्लाह' का शब्द प्रयोग में आया है। **'अस्लम······बल्अर्ज़ि'**— यानी उसके स्वेच्छा से बाहर तो कोई नहीं जा सकता। **'तौअन्'**— यानी अपने इरादे और इख़्तियार से। **'कर्हन्'**— यह संकेत बुद्धि न रखनेवाली मख़्लूक़ यानी पशुओं, पेड़-पौधों और पत्थरों, पहाड़ों इत्यादि की ओर है।

३६३ यहाँ यह हक़ीक़त एक बार फिर दोहरा दी गयी है कि इस्लाम कोई नया-नया पैदा हुआ और अनोखा मज़हब नहीं है। वही पुराना तौहीद का दीन है। सारे नबी और रसूल इसी का प्रचार और तब्लीग़ करते चले आये हैं और मुसलमानों का ईमान सारे पैग़म्बरों पर एक ही प्रकार से होता है। **'क़ुल्'**— यानी, ऐ पैग़म्बर ! आप अपनी उम्मत की तरफ से कह दीजिए। **'उन्ज़िल अलैना'** यानी क़ुर्आन मजीद। क़ुर्आन के उतरने को जिस प्रकार पैग़म्बर से सम्बद्ध किया गया है, उसी प्रकार कभी-कभी पैग़म्बर की उम्मत की ओर भी कर दिया गया है। और क्रिया **'अन्ज़ाल'** का सिलः क़ुर्आन मजीद में

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३७१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चौथा पारः लन्तनालू

सूरतु आलि अ़िम्रान आयत ९२ से २००

लन्तनालुल्बिर्र हत्ता तुन्फ़िक़ू मिम्मा तुहिब्बून त ० व मा तुन्फ़िक़ू मिन्
शैअिन् फ़ अिन्नल्लाह बिही अ़लीमुन् (९२) कुल्लुत्तआमि कान हिल्ललिबनी
अिस्राईल अिल्ला मा हर्रम अिस्राईलु अ़ला नफ़्सिही मिन् क़ब्लि
अन्तुनज़्ज़लत्तौरातु त क़ुल् फ़अ्तूबित्तौराति फ़त्लूहा अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन (९३)
व. जि व रो म अ. फ़ मनिफ़्तरा अ़लल्लाहिल् - कज़िब मिम्बअ़्दि
ज़ालिक फ़ अुलाअिक हुमुज़्ज़ालिमून ● (९४)
क़ुल् सदक़ल्लाहु क़िफ़ फ़त्तबिअ़ू मिल्लत
अिब्राहीम हनीफ़न् त व मा कान
मिनलमुश्रिकीन (९५) अिन्न अव्वल
बैतिंव्वुज़िअ़ लिन्नासि लल्लज़ी बि बक्कत
मुबारकंव्व हुदल्-लिल्-आलमीन ज (९६) फ़ीहि
आयातुम्-बय्यिनातुम्-मक़ामु अिब्राहीम ज ०
व मन् दख़लहू कान आमिनन् त व
लिल्लाहि अ़लन्नासि हिज्जुल्बैति मनिस्तताअ
अिलैहि सबीलन् त व मन् कफ़र
फ़ अिन्नल्लाह ग़निय्युन् अ़निल्आलमीन (९७)
क़ुल् या अह्लल्किताबि लिम तक्फ़ुरून
बि आयातिल्लाहि क़ ग़ुना वल्लाहु शहीदुन्
अ़ला मा तअ़्मलून (९८) क़ुल् या अह्लल् - किताबि लिम तसुद्दून अ़न्
सबीलिल्लाहि मन् आमन तब्ग़ूनहा अ़िवजंव्व अन्तुम् शुहदाअु त व मल्लाहु
बि ग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तअ़्मलून (९९) या अय्युहल्लज़ीन आमनू अिन् तुतीअ़ू
रु. १० फ़रीक़म् - मिनल्लज़ीन अूतुल्किताब यरुद्दूकुम् बअ़्द अीमानिकुम् काफ़िरीन (१००)
१ व कैफ़ तक्फ़ुरून व अन्तुम् तुत्ला अ़लैकुम् आयातुल्लाहि व फ़ीकुम् रसूलुहू त
आ १० व मंय्यअ़्तसिम् बिल्लाहि फ़ क़द् हुदिय अिला सिरातिम्-मुस्तक़ीमिन् (१०१)

لن تنالوا ۴ ٧٩ آل عمران ٣

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ۥ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ
شَيْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿٩٢﴾ كُلُّ الطَّعَامِ كَانَ حِلًّا لِّبَنِيْۤ
اِسْرَآءِيْلَ اِلَّا مَا حَرَّمَ اِسْرَآءِيْلُ عَلٰى نَفْسِهٖ مِنْ قَبْلِ اَنْ
تُنَزَّلَ التَّوْرٰىةُ ؕ قُلْ فَاْتُوْا بِالتَّوْرٰىةِ فَاتْلُوْهَاۤ اِنْ كُنْتُمْ
صٰدِقِيْنَ ﴿٩٣﴾ فَمَنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ مِنْ بَعْدِ ذٰلِكَ
فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿٩٤﴾ قُلْ صَدَقَ اللّٰهُ ۫ فَاتَّبِعُوْا مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ
حَنِيْفًا ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿٩٥﴾ اِنَّ اَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ
لِلنَّاسِ لَلَّذِيْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّهُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٦﴾ فِيْهِ اٰيٰتٌۢ
بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرٰهِيْمَ ۚ وَمَنْ دَخَلَهٗ كَانَ اٰمِنًا ؕ وَلِلّٰهِ عَلَى
النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ اِلَيْهِ سَبِيْلًا ؕ وَمَنْ كَفَرَ
فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٧﴾ قُلْ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تَكْفُرُوْنَ
بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ۖ وَاللّٰهُ شَهِيْدٌ عَلٰى مَا تَعْمَلُوْنَ ﴿٩٨﴾ قُلْ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ
لِمَ تَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ تَبْغُوْنَهَا عِوَجًا وَّاَنْتُمْ
شُهَدَآءُ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ﴿٩٩﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا
اِنْ تُطِيْعُوْا فَرِيْقًا مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ يَرُدُّوْكُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ
كٰفِرِيْنَ ﴿١٠٠﴾ وَكَيْفَ تَكْفُرُوْنَ وَاَنْتُمْ تُتْلٰى عَلَيْكُمْ اٰيٰتُ اللّٰهِ وَفِيْكُمْ
رَسُوْلُهٗ ؕ وَمَنْ يَّعْتَصِمْ بِاللّٰهِ فَقَدْ هُدِيَ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿١٠١﴾

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा पारः लन्तनालू

सूरतु आलि अिम्रान आयत ९२ से २००

जब तक तुम अपनी प्रिय चीज़ों को खर्च न करोगे, (पूर्ण) नेकी (के रुतबे) को न पहुँच सकोगे[१]। और जो कुछ भी किसी चीज़ से खर्च करते रहते हो, अल्लाह उससे भली-भाँति परिचित है[२]। (९२) हर खाना ही बनी इस्राईल के लिए हलाल था, सिवाय उसके कि जो स्वयं इस्राईल ने अपने ऊपर हराम कर लिया था इसके पूर्व कि तौरेत उतरे; तो आप कहिए कि तौरेत लाओ और उसे पढ़ो अगर तुम सच्चे हो[३]। (९३) सो जो शख्स अल्लाह पर इसके बाद भी झूठ गढ़ ले तो बस ऐसे ही लोग तो ज़ालिम हैं[४] ●। (९४) आप कह दीजिए कि अल्लाह ने सच बात फ़र्मा दी है[५], तो तुम सीधी राह वाले इब्राहीम के दीन की पैरवी करो। और वह मुश्रिकों में से नहीं थे[६]। (९५) सबसे पहला मकान, जो लोगों के लिए निर्मित किया गया[७], वह वही है जो मक्के में है (सबके लिए) बरकत (बढ़ती) वाला और दुनिया के लिए पथप्रदर्शक है[८]। (९६) इसमें खुले हुए निशान हैं, (उनमें से एक) मुक़ामे इब्राहीम है[९] और जो कोई उसमें दाखिल हो जाता है वह शान्ति में हो जाता है[१०]। और लोगों के ज़िम्मे है हज्ज करना अल्लाह के लिए इस मकान का, (यानी) उस व्यक्ति के ज़िम्मे जो वहाँ तक पहुँचने की शक्ति रखता हो[११]। और जो कोई कुफ़्र करे तो अल्लाह सारे जहान से बेनियाज़ (बेपरवाह) है[१२]। (९७) आप कहिए कि ऐ अहले किताब! तुम क्यों अल्लाह की निशानियों से कुफ़्र कर रहे हो, ऐसी दशा में कि अल्लाह तुम्हारे करतूतों का गवाह है[१३]। (९८) आप कहिए कि ऐ अहले किताब! जो ईमान ला चुका उसे तुम क्यों अल्लाह की राह से हटा रहे हो, इस (राह) में कजी (ऐब) निकाल-निकालकर ऐसी दशा में कि तुम स्वयं गवाह हो। और अल्लाह तुम्हारे करतूतों से बेख़बर नहीं[१४]। (९९) ऐ ईमानवालो! अगर तुम इन लोगों में से किसी गिरोह का कहा मान लोगे, जिन्हें किताब दी जा चुकी है, तो वह तुम्हारे ईमान लाने के पीछे तुम्हें काफ़िर बना छोड़ेंगे[१५]। (१००) और तुम किस प्रकार कुफ़्र कर सकते हो ऐसी दशा में कि तुम्हें अल्लाह की आयतें पढ़कर सुनायी जाती हैं और तुम्हारे बीच उसके रसूल मौजूद हैं[१६]। और जो कोई अल्लाह को मज़बूत पकड़ता है, वह ज़रूर सीधी राह की तरफ़ हिदायत किया जाता है[१७]। (१०१) ★

● व. जिब्रील अ.

★ रु. १०/१ आ १०

---

१ (ऐ मुसलमानो!) 'अल्बिर्र'— खालिस नेकी को कहते हैं। यहाँ मुराद है कमाल नेकी और नेकी का दर्जा उच्चतम या यह कहा जाए कि सच्ची नेकी या नेकी की परिपूर्णता। 'तुन्फ़िक़ू'— यानी अल्लाह और उसके दीन की राह में न खर्च करोगे। यहाँ बड़ी विशालता है। इसमें नेकी के सारे अर्थ और भाग एवं प्रकार आ गये। 'मिम्मा तुहिब्बून' प्रिय चीज़ के अन्तर्गत हर वह चीज़ आ जाती है जिसे मनुष्य प्रिय रखता है, माल, धन, इज़्ज़त, सम्मान, प्रशासन, शक्ति और समय आदि। केवल धन-दौलत का अर्थ नहीं आता। कभी-कभी रुतबे और शान की क़ुर्बानी धन के बलिदान से कहीं अधिक कठिन और सख्त होते हैं। आयत का इतना टुकड़ा कलामें मौज़ूँ है और ऐसा ही वज़न क़ुर्आन मजीद में अनेकों आयतों में पाये जाते हैं। परन्तु केवल मौज़ूनियत के पाये जाने से कलाम शेर नहीं बन जाता जब तक कि बोलनेवाला स्वयं शेर कहने का इरादा न करे। इसी कारण आलिमों ने यह कहना जाइज़ नहीं रखा है कि क़ुर्आन मजीद का कोई हिस्सा शेर में भी है। मौलाना रूमी ने आयत के एक अंश को लेकर उसे एक मिस्रा बना दिया है— "हरचे दारी सर्फ़ कुन् दर राहे ऊ, लन् तनालुल्बिर्र हत्ता तुन्फ़िक़ू।" (जो कुछ तेरे पास है उसकी राह में सर्फ़ कर डाल)।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३७६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३७१ से)

३७१ (दूसरे गुनाहों और पापों से) यानी पड़े तो रहें कुफ़ और इस्लाम से दूरी की दशा में और चाहें कि उन्हें उनके दूसरे अच्छे कार्यों का बदला मिल जाए, सो बिना ईमान और सही अक़ीदे के उन आमाल पर सिरे से "नेक" और "अच्छे" होने की बात लागू ही नहीं होगी जो उन पर बदले और पारिश्रमिक की आशा की जाए। नेक अमल उसी समय नेक होंगे जब ईश्वर पर ईमान होगा, अन्यथा नेकी का कोई अर्थ नहीं बनता।

३७२ यानी पूर्णतः गुमराह, अन्तिम दर्जे के गुमराह अन्यथा गुमराह तो सभी काफ़िर होते हैं।

३७३ (क़ियामत के दिन) यानी मान लिया जाए कि क़ियामत के दिन काफ़िर माल का मालिक हो और उसको दे डालने पर भी शक्ति रखता हो। **"ज़हबन्"**— **'ज़हब'** का अर्थ यहाँ सोना नामक विशेष धातु ही नहीं, बल्कि अर्थ है प्यारी से ज़्यादा प्यारी और मूल्यवान से मूल्यमान वस्तु 'फ़िद्यः के रूप में। सरे मानी यह भी हो सकते हैं कि कोई व्यक्ति आज चाहे कि कुफ़ की दशा में रहकर विश्व के बराबर रुपया नेक कार्यों में व्यय कर दे और उसके बदले में क़ियामत में नजात हासिल कर ले, तो ऐसा कदापि न होगा।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३७५ से)

२ [और वह बदला भी (फल भी) उसी के अनुसार देगा।] मतलब यह है कि नेक काम के लिए जो कुछ भी लगाओगे उसका फल और बदला तो हर दशा में मिलेगा, परन्तु नेकी का जो उच्च स्थान है वह तो उसी समय मिलेगा जब अल्लाह की राह में अपनी प्रिय और बहुत पसन्द की चीज़ों का बलिदान करोगे। **"मिन् शैअिन्"**—यानी इस बात से अलग कि वह प्रिय हो या न हो। **'बिही अलीम'**— आयत से यह पहलू भी निकलता है कि जिस मालिक एवं मौला की ख़ुशी के लिए तुम ख़र्च कर रहे हो वह तो हर दशा में जानता और ख़बर रखता ही है, फिर उस नेक काम का एलान अपनी ओर से क्यों करते फिरो।

३ [अपने इस दावे में कि फ़ुलाँ-फ़ुलाँ ग़िज़ाएँ (खाद्य-पदार्थ) तो इब्राहीम अलैहिस्सलाम के ज़माने से हराम चली आती हैं।] यहूद को तो रोज़ एक नया फ़ित्ना मुसलमानों के विरुद्ध उठाना था। एक नया आरोप यह लगाया कि फ़ुलाँ-फ़ुलाँ ग़िज़ाएँ तुम जाइज़ समझते हो और अपने को दीने इब्राहीम का पैरो भी कहते हो, यद्यपि यह चीज़ें तो इब्राहीम के ज़माने से हराम चली आ रही हैं। **'अत्तआम'**— हर वह चीज़ जो खाई जाए 'तआम' है। **'कुल्लुत्तआम'**— यानी वह ग़िज़ाएँ जिनके विषय में यहूद से वार्त्ता एवं बहस हो रही है। सारी दुनिया के खाने मुराद नहीं लिये गये हैं। **"हर्रम ...... नफ़्सिही"**— इस्राईल हज़रत याक़ूब का दूसरा नाम है। आपने बाज़ डाक्टरी आवश्यकताओं से बाज़ जाइज़ ग़िज़ाएँ बिलकुल छोड़ दी थीं। इस्राईली रिवायतों में है कि आपको "अर्क़ुन्निसा" की शिकायत थी तो आपने ऊँट के दूध और मांस से परहेज़ आरम्भ कर दिया था। ज़ाहिर है कि इस डाक्टरी परहेज़ से शरई रू से हराम होने का कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु इस रिवायत के सही होने से इस्राईली स्रोत होने के कारण इन्कार ही किया गया है। बाज़ नासमझ का यह समझना कि जानवरों का मांस न खाना या बाज़ दूसरी ग़िज़ाओं को छोड़ देना अल्लाह के निकट होने में सहायक है, केवल मूर्खता है। आमिलों के अभ्यास और रियाज़तें बिलकुल दूसरी चीज़ें हैं, अन्यथा जो ग़िज़ाएँ इन्सान की रूहानी उन्नति में बाधक हैं, वह ख़ुद ही हराम कर दी गई हैं। किसी ग़िज़ा के हलाल होने के माने ही यह होते हैं कि वह इस राह में बाधक नहीं है। **'क़ुल्'**— यानी इन यहूद से कहिए जो आपत्ति कर रहे हैं। **"फ़अ्तू बित्तौराति"**— तौरेत में तो आज तक लिखा चला आ रहा है। "वह सब जीते-जीते जानवर तुम्हारे खाने के लिए हैं, मैंने इन सबको वनस्पति की भाँति तुम्हें दिया है।" (पैदाइश-३०९)। तफ़्सीर में एक कथन यह भी नक़ल हुआ है कि इस्राईल से मुराद याक़ूब का निजी नहीं बल्कि सामूहिक रूप में इस्राईली जाति के बारहों क़बीले मुराद हैं और अर्थ यह है कि इस्राईली जाति की लगातार नाफ़र्मानी की सज़ा के रूप में उन पर बहुत सी नेमतें हराम कर दी गईं।

४ अपने हक़ में। यानी स्पष्ट और खुली हुई शहादतों के बाद भी अपने झूठ पर जमे रहें और यह कहे जाएँ कि अमुक-अमुक चीज़ें ख़ुदा की तरफ़ से हराम की हुई हैं। **"मिम्बअ्दि ज़ालिक"**— यानी इस स्पष्ट शहादत के बाद। ग़िज़ाओं में अस्ल उनका हलाल होना है, हराम होना केवल ख़ुदा के आदेश ही से हो सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५ यानी क़ुर्आन ने सच्ची बात स्पष्ट कर दी और तुमने जो झूठ अपने ही बड़ों और अपने पवित्र लेखों के विषय में गढ़ रखे थे उनकी क़लई खोल दी।

६ इब्राहीम, मिल्लत इब्राहीम, हनीफ़, सब पर हाशिए प्रथम पारे की समाप्ति के क़रीब सूरए बक़र: के रुकूअ़ १५ तथा १६ में गुज़र चुके हैं। **"फ़त्तबिअ़ू मिल्लत अिब्राहीम"**— यानी उन्हीं इब्राहीम के दीन की पैरवी करो जिन्हें तुम भी अपना पथप्रदर्शक मानते हो और दीनी पेशवा समझते हो।

७ दुनिया में पूजास्थल और उपासनागृह के रूप में। अर्थ है खानए काबा जिसका प्रथम निर्माण हज़रत आदम ने किया था और उसके ध्वस्त हो जाने के पश्चात् नये सिरे से हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने बनाया। **'वुज़िअ लिन्नासि'**— यानी लोगों की उपासना एवं इबादत के लिए बनाया गया। **'अव्वल बैतिन्'**— हदीसें नबवी और ताबेईन के क़ौलों से सबमें इस प्रथम होने और सबसे पुराने खुदा के घर होने का ब्योरा मिलता है और स्पष्टीकरण।

८ क़िब्ला के रूप में। काबे को सबसे पहली इबादतगाह बताकर यहूद को जता दिया गया कि काबा तो बैतुल्मुक़द्दस से भी पुराना है। **'बक्कत'**— मक्का ही का दूसरा नाम है केवल अरबी के एक क़ायदे के अनुसार जिससे अक्षर 'मीम्' और 'बे' अक्सर एक-दूसरे से बदल जाते हैं। इसी क़ायदे का अमल यहाँ हुआ है, जैसे लाज़िब लाज़िम के स्थान पर और रातिम की जगह पर रातिब इत्यादि। एक कथन यह भी है कि मक्का नाम है पूरे नगर का और बक्का से मुराद है मस्जिदें हराम और मताफ़। बाइबिल् में भी एक स्थान पर बक्का की घाटी का ज़िक्र हेर-फेर के बावजूद रह गया है— "वह बक्का की वादी में गुज़र करते हुए उसे एक कुआँ बताते।" (ज़बूर ६ : ८४)। बाइबिल् के पुराने अनुवादकों ने अपनी असावधानी की स्वाभाविक आदत के अनुसार अनुवादों में उसे बजाय "अलम के" साधारण संज्ञा बनाकर "रोने की वादी" बना डाला। (अलम–रोना, रंज करना और अलम–झण्डा) शताब्दियों के पश्चात् अब अपनी त्रुटि की ओर ध्यान गया और अब जिविश इन्साइक्लोपीडिया में मान लिया है कि यह एक विशेष बिना पानी की घाटी का नाम है। (जिल्द २, सफ़ा ४१५)। अल्लाह उनको इतना समझने की क्षमता और दे दे कि यही "बे पानी घाटी" मक्का महान् है। **'मुबारकन्'**— यह वह स्थान है जहाँ भौतिक, आत्मिक, दुनियावी और दीनी बरकतें जमा कर दी गयी हैं। मक्के के पुराने होने की गवाही अब मसीही इतिहासकारों को भी देनी पड़ी है (अवलोकित हो अंग्रेज़ी तफ़्सीर)। इतिहासकार मस्ऊदी के एक बयान से मक्के की क़दामत (पुरानेपन) पर जाहिली दृष्टिकोण से भी रौशनी पड़ती है। इस अक़ीदे का एक मुश्रिकाना भ्रम होना ज़ाहिर है, फिर भी पुराना होने की गवाही तो इससे मिल ही जाती है— "एक गिरोह का खयाल यह है कि बैतुल्हराम, जो इतना ज़माना गुज़र जाने के बाद भी हर ज़माने में सम्मानित रहा है, वह इस कारण कि वह सितारा ज़ुहल (शनि) का घेरा है और ज़ुहल उसका संरक्षक है और ज़ुहल की विशेषता हमेशा क़ायम रहने की है। जो चीज़ भी उसके नाम पर होगी उसमें पतन और परिवर्तन नहीं होगा बल्कि उसकी श्रद्धा और सम्मान में बढ़ोतरी ही होती रहेगी!"

९ **"आयात बय्यिनात"**— खुले हुए अल्लाह की तौहीद के रास्ते और तरीक़े या हज के नियम और उसूल। 'मुक़ामें इब्राहीम' पर हाशिया सूरए बक़र: पहले पारे के रुकूअ़ १६ में गुज़र चुका है। **'बैत'**— का अर्थ खानए काबा से यहाँ नहीं है बल्कि सारा हरम शरीफ़ है। मुक़ामें इब्राहीम के नाम से जो पत्थर रखा हुआ है वह खानए काबा के अन्दर नहीं बाहर ही है।

१० (अल्लाह की शरीअत की दृष्टि में) **'आमिनन्'**— पर हाशिया सूरए बक़र: प्रथम पार: के रुकूअ़ १६ में गुज़र चुका।

११ (रास्ते का खर्चा और उसकी शान्ति इत्यादि) हज के लिए सकत और क्षमता होने का विवरण फ़िक़ह का विषय है। हज और उसके फ़र्ज़ होने पर हाशिए दूसरे पारे के मध्य में गुज़र चुके हैं।

१२ (सो वह बदनसीब अपनी हानि स्वयं करेगा। अल्लाह तआ़ला को क्या हानि पहुँचा सकेगा?) अल्लाह तआ़ला को 'ग़िना' के गुण का वर्णन मुश्रिक क़ौमों के खण्डन में है। (ग़िना— जो स्वयं इतना धनवान हो कि उसे किसी के धन की क़तई न आवश्यकता हो, न इच्छा।) जिनके देवता और देवी का वुजूद पुजारियों ही के दम से क़ायम है और वह देवता अपने खाने-पीने तक के लिए अपने पुजारियों के मुहताज रहते हैं।

१३ (और उस मौजूद और हर समय हर चीज़ के देखनेवाले और सब कुछ जाननेवाले हाकिम के

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३८० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या अय्युहल्लजीन आमनुत्तक़ुल्लाह हक़्क़ तुक़ातिही व ला तमूतुन्न इल्ला व अन्तुम् मुस्लिमून (१०२) वऽतसिमू बि हब्लिल्लाहि जमीअंव्व ला तफ़र्रक़ू ۚ वज़्कुरू निऽमतल्लाहि अलैकुम् इज़् कुन्तुम् अऽदाअन् फ़ अल्लफ़ बैन क़ुलूबिकुम् फ़ अस्बह़्तुम् बि निऽमतिही इख़्वानन् ج व कुन्तुम् अला शफ़ा हुफ़्रतिम्-मिनन्नारि फ़ अन्क़जकुम् मिन्हा ط कज़ालिक युबय्यिनुल्लाहु लकुम् आयातिही लअल्लकुम् तह्तदून (१०३) वल्तकुम् - मिन्कुम् उम्मतुंय्यद्अून इलल्ख़ैरि व यअ्मुरून बिलमऽरूफ़ि व यन्हौन अनिल्मुन्करि ط व उला'इक हुमुल् मुफ़्लिहून (१०४) व ला तकूनू कल्लजीन तफ़र्रक़ू वख़्तलफ़ू मिम्बऽदि मा जा'अ - हुमुल् - बय्यिनातु ط व उला'इक लहुम् अज़ाबुन् अज़ीमुन् لا (१०५) य्यौम तब्यज़्ज़ु वुजूहुंव्व तस्वद्दु वुजूहुन् ج फ़ अम्मल्-लजीनस्-वद्दत् वुजूहुहुम् قف अकफ़र्तुम् बऽद ईमानिकुम् फ़ज़ूक़ुल् - अज़ाब बिमा कुन्तुम् तक्फ़ुरून (१०६) व अम्मल्लजीनब्यज़्ज़त् वुजूहुहुम् फ़फ़ी रह़्मतिल्लाहि ط हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (१०७) तिल्क आयातुल्लाहि नत्लूहा अलैक बिल्ह़क़्क़ि ط व मल्लाहु युरीदु ज़ुल्मल्लिल्-आलमीन (१०८) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि ط

★ रु. ११/२ आ ८ व इलल्लाहि तुर्जअुल् - उमूरु (१०९) ★ कुन्तुम् ख़ैर उम्मतिन् उख़्रिजत् लिन्नासि तअ्मुरून बिलमऽरूफ़ि व तन्हौन अनिलमुन्करि व तुअ्मिनून बिल्लाहि ط व लौ आमन अह्लुल् - किताबि ल कान ख़ैरल्लहुम् ط मिन्हुमुल् - मुअ्मिनून व अक्सरु - हुमुलफ़ासिक़ून (११०)

لن تنالوا ۴ — ۵۰ — ال عمران ۳

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ حَقَّ تُقٰتِهٖ وَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ
مُّسْلِمُوْنَ ۝ وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۪ وَاذْكُرُوْا
نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ اَعْدَآءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ فَاَصْبَحْتُمْ
بِنِعْمَتِهٖۤ اِخْوَانًا ۚ وَكُنْتُمْ عَلٰى شَفَا حُفْرَةٍ مِّنَ النَّارِ فَاَنْقَذَكُمْ
مِّنْهَا ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝ وَ
لْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ يَّدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ وَيَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ
وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝ وَلَا تَكُوْنُوْا
كَالَّذِيْنَ تَفَرَّقُوْا وَاخْتَلَفُوْا مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ الْبَيِّنٰتُ ؕ وَ
اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝ يَّوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّتَسْوَدُّ وُجُوْهٌ ۚ
فَاَمَّا الَّذِيْنَ اسْوَدَّتْ وُجُوْهُهُمْ ۫ اَكَفَرْتُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ فَذُوْقُوا
الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ ۝ وَاَمَّا الَّذِيْنَ ابْيَضَّتْ وُجُوْهُهُمْ
فَفِيْ رَحْمَةِ اللّٰهِ ؕ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْهَا
عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ؕ وَمَا اللّٰهُ يُرِيْدُ ظُلْمًا لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ
وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَاِلَى اللّٰهِ تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝ كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ
اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ
تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ؕ وَلَوْ اٰمَنَ اَهْلُ الْكِتٰبِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ ؕ مِنْهُمُ
الْمُؤْمِنُوْنَ وَاَكْثَرُهُمُ الْفٰسِقُوْنَ ۝ لَنْ يَّضُرُّوْكُمْ اِلَّاۤ اَذًى ؕ وَ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! अल्लाह से डरो जो उससे डरने का हक़ है[१८], और जान न देना सिवाय इस हाल के कि तुम मुस्लिम हो[१९]। (१०२) और अल्लाह की रस्सी सब मिलकर मज़बूत थामे रहो और परस्पर बैर न रखो[२०]। और अल्लाह का यह इन्ख़ाम अपने ऊपर याद रखो कि जब तुम आपस में दुश्मन थे तो उसने तुम्हारे दिलों में प्रेम डाल दिया[२१], सो तुम उसके इन्ख़ाम से (आपस में) भाई-भाई बन गये, और तुम दोज़ख़ के गढ़े के किनारे पर थे सो उसने तुम्हें उससे बचा लिया[२२]। इसी प्रकार अल्लाह अपने हुक्मों को खोल-खोल कर सुनाता रहता है, ताकि तुम राह पाये रहो। (१०३) और अवश्य है कि तुममें एक ऐसी जमात रहे जो नेकी की ओर बुलाया करे और भलाई का हुक्म दिया करे और बदी से रोका करे। और पूर्ण सफल यही तो है[२३]। (१०४) और उन लोगों की तरह मत हो जाना जिन्होंने बाद उसके कि उन्हें गवाहियाँ मिल चुकी थीं परस्पर अन्तर उत्पन्न कर लिया और भिन्न हो गये[२४]। महान् अज़ाब उन्हीं को तो होना है, (१०५) उस रोज़ (जिस दिन) बाज़ चेहरे सफ़ेद होंगे और बाज़ चेहरे सियाह होंगे। फिर जिनके चेहरे सियाह होंगे (उनसे कहा जाएगा) क्या तुम ही काफ़िर हो गये थे अपने ईमान के बाद[२५] ? सो अज़ाब चखो अपने-अपने कुफ़्र के पादाश (बदले) में। (१०६) और जिनके चेहरे सफ़ेद होंगे वह अल्लाह की रहमत में होंगे[२६], और उसी में हमेशा रहेंगे। (१०७) यह अल्लाह की आयतें हैं, हम उन्हें तुमको ठीक-ठीक पढ़कर सुनाते हैं; और अल्लाह मख़्लूक़ात पर ज़ुल्म नहीं चाहता[२७]। (१०८) ★ रु. ११
और अल्लाह ही की सम्पत्ति है जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है। और अल्लाह ही की ओर (सारे) उमूर (कार्य या चीज़ें) लौटाये जाएँगे[२८]। (१०९) ★ २ आ ८

तुम लोग बेहतरीन जमाअत हो जो लोगों के लिए पैदा की गयी है[२९], कि तुम भलाई का आदेश देते हो और बुराई से रोकते हो, और अल्लाह पर ईमान रखते हो[३०]। और अह्ले किताब भी यदि ईमान ले आते तो उनके हक़ में बहुत अच्छा होता[३१]। उनमें से (कुछ तो) हैं ईमानवाले, मगर अक्सर उनमें से नाफ़रमान (अवज्ञाकारी) हैं[३२]। (११०)

---

१८ (तुम्हारी शक्ति एवं क्षमता के लिहाज़ से) वरना हक़ तआला से उसके रुत्बे के लायक़ ख़ौफ़ दिल में कौन मानव ला सकता है !

१९ यानी जियो तो संयम और नियम के मातहत और अधीन, और मरो तो इस्लाम के क़ानून के आज्ञाकारी होकर। जीवन तथा मृत्यु दोनों मंज़िलों से मुसलमान अल्लाह के ताबे रहकर ही गुज़रता है और गुज़रना चाहिए— अस्ल चीज़ यही है कि अन्त और ख़ात्मा सही हो। पस बन्दे को ऐसा ही जीवन व्यतीत करना चाहिए कि मौत भी आये तो इस्लाम पर। आयत का उद्देश्य दीनें इस्लाम पर स्थिर रहने और हमेशा उसी पर जमे रहने का है। इसी पर बल दिया गया है।

२० इस शिक्षा के एक अमली पहलू को एक ग़ैरमुस्लिम ने कैसे माना है उसी की भाषा में अवलोकित हो— "इस्लाम ने उन क़बीलों में मिलाप करा दिया जो उस वक़्त तक बराबर एक-दूसरे से युद्ध करते रहते थे।" (आर्नल्ड् की "प्रीचिंग ऑफ़् इस्लाम", सफ़ा २१)। **'हब्लिल्लाह'**— अरबी मुहावरे में हब्ल का अर्थ 'वचन' भी होता है और हर वह चीज जो माध्यम या ज़रीए का काम दे। यहाँ मुराद शरीअतें इस्लामी है या क़ुर्आन। अनेकों क़ौल नक़्ल हुए हैं और वह सब एक-दूसरे के क़रीब ही हैं। **"जमीअन्"**— यानी उम्मत सामूहिक रूप में भी और उसके व्यक्ति भी।

२१ (और सबको इस्लाम के धागे में मिलाकर पिरो दिया और मेल करा दिया।) **'निअ्मतल्लाहि'**— इस इन्ख़ाम के अन्तर्गत अलावा आख़िरत की भलाई के क़ौमी मेल-जोल और दुनियावी भलाई भी शामिल है। उम्मत का मेल-जोल स्वयं एक बड़ी नेमत है। **'अिज़ कुन्तुम् अअ्दाअन्'**— इस्लाम के प्रकट होने के पूर्व यानी जाहिलीयत के ज़माने में मक्का और अरब क़बीलों की आपसी दुश्मनी और उनका युद्ध एक मिसाल बना हुआ था। बात-बात में लड़ाई छिड़ जाती थी। जो लड़ाइयाँ ऐतिहासिक रिवायतों में सुरक्षित रह गयी हैं उन्हीं की संख्या १७०० होती है। (फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३८० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३७७ से)

समक्ष कोई छल-कपट और हीला-बहाना काम न देगा।) **'अह्लल्-किताबि'**— का संकेत विशेष रूप से यहूद की ओर है जो नाना प्रकार के तरीक़ों से मुसलमानों को बहकाते रहते थे। **'तक्फ़ुरून बि आयातिल्लाहि'**— 'आयातिल्लाह' के मुराद विशेष रूप से नबूवतें मुहम्मदी की गवाहियाँ और दलीलें हैं और कुफ़्र से मुराद नबूवतें मुहम्मदी से इन्कार है। मुश्रिकों को बार-बार यह बतलाने और याद दिलाने की आवश्यकता थी कि अल्लाह केवल मौजूद ही नहीं बल्कि कण-कण से ख़बरदार भी है। मुश्रिकों के देवताओं की भाँति बेखबर, अर्धविज्ञ और चुपचाप नहीं है।

१४ (सो उसकी पकड़ और अज़ाब से स्वयं को बाहर न जानो।) **'तसुद्दून अन् सबीलिल्लाहि'**— यहूद स्वयं तो इस्लाम के इन्कारी थे ही, अब उनका साहस इतना बढ़ गया था कि नाना प्रकार के मक्र और फ़रेब से दूसरों को भी सच्चे दीन से हटाने की चेष्टा करते रहते थे। **'तब्ग़ूनहा अिवजा'**— यहूद मुसलमानों में परस्पर नाना प्रकार की गुप्त शरारत एवं फ़साद फैलाते रहते थे कि यदि और कुछ नहीं होता तो आपस में ही मर-कटकर खत्म हो जाएँ। अतः एक दफ़ा एक भीड़ में, जहाँ मदीने के दोनों लड़ाकू क़बीले **'औस'** और **'खज़रज'** के मुसलमान एकत्रित थे, एक यहूदी शमास बिन क़ैस ने उनकी जाहिलीयत के समय की प्रसिद्ध लड़ाई "बेआस" के जोशीले "जंगनामे" की पंक्तियाँ पढ़वा दीं। दिलों में पिछली शत्रुता की याद ताज़ा हो गई और दोनों वर्ग स्वाभाविक रूप में भड़क उठे। ठीक समय पर यदि रसूल (स०) स्वयं न पधारे होते तो घरेलू युद्ध आरम्भ हो चुका होता। **"व अन्तुम् शुहदा'उ"**— यानी तुम्हारी अन्तरात्मा स्वयं गवाही दे रही है कि दीनें इस्लाम सच्चा दीन है।

१५ (अक़ीदे से न सही अमल से सही— तो अमली ख़ुदा का इन्कार भी क्या कम है?) **"अिन् तुतीअू"**— यानी यदि अपने अक़ीदे और आमाल में इन लोगों से प्रभावित होने लगोगे। **"फ़रीक़म्...... किताब"**— यह नाम के तो अहलें किताब हैं, परन्तु तुले हुए हैं इस्लाम-दुश्मनी पर। अहलें किताब काफ़िरों से मेल-जोल, उनके साथ ज़्यादा उठना-बैठना और उनसे बहुत निकट के सम्बन्ध रखने से मनाही का विशेष संकेत आयत से मिल रहा है। यह हुक्म जब किताबी काफ़िरों से सम्बद्ध है तो मुश्रिकों और मुलहिदों (नास्तिकों) के अन्तर्गत होने और उनके अक़ीदों से प्रभावित होने के विरुद्ध आदेश तो ज़ाहिर ही हैं।

१६ अर्थ यह है कि तुम्हारे लिए सच्चे दीन से फिर जाने और तौहीद से इन्कार की गुंजाइश ही कब है, जबकि तुममें क़ुर्आन और सुन्नतें रसूल मौजूद एवं सुरक्षित है। **'कैफ़ तक्फ़ुरून'**— में कुफ़्र से मुराद कुफ़्र के कर्मों की वापसी है और कैफ़ आश्चर्य के प्रकट करने के लिए है। **'आयातुल्लाहि'**— यानी क़ुर्आन की आयतें और क़ुर्आन तुम्हारे बीच मौजूद एवं सुरक्षित हैं। **'व फ़ीकुम् रसूलुहू'**— यानी फ़िलहाल तो वह स्वयं विराजमान हैं। हर सन्देह मिटा सकते हैं और रास्ता बता सकते हैं। बाक़ी उनके बाद उनकी सुन्नतें और आसार —यही काम देंगे।

१७ यह सिरातें मुस्तक़ीम या सीधी राह दुनिया में सम्पूर्ण भलाई की है और आखिरत में जन्नत की। **"फ़ क़द् हुदिय"**— यानी अल्लाह को मज़बूती से पकड़े रहो। यह सीधी राह बनकर रहेगी।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३७९ से)

२२ (दीनें इस्लाम और इस्लामी शरीअत प्रदान करके) विश्व में इस प्रकार महान् क्रान्ति लाना इस्लाम का मोजिज़ा ही था। इसे आज योरोपियन शोधकर्ता भी मान रहे हैं। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित हो)। **"फ़ अस्बह्तुम्-अिख़्वानन्"**— जिस प्रकार इस्लाम के पूर्व अरबों की दुश्मनी एक मिसाल की हद को पहुँच गई थी, उसी प्रकार इस्लाम के प्रकट होने के बाद उनकी बाहमी मुहब्बत, मेलजोल, एकता और निःस्वार्थता भी बेमिसाल बन गयी। जहाँ मक्की मक्की और मदनी मदनी का शत्रु था, वहाँ इस्लाम ने मक्का के मुहाजिरे और मदीने के अन्सारों को ऐसा दूध और शकर करा दिया कि दोनों वास्तव में परस्पर भाई-भाई मालूम होने लगे। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका और इतिहासकार गिबन —दोनों के पृष्ठों में यह माना गया है। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर देखें)। **"अला...... नार"**— ज़माना इस्लाम के पूर्व का है कि उस समय अक़ीदों और कर्मों दोनों के मुश्रिकाना होने के कारण अरब के लोग दोज़ख के किनारे तक पहुँच ही चुके थे।

२३ किसी श्रेणी में और एक छोटे स्तर पर तो यह कर्तव्य उम्मत के हर व्यक्ति का है, परन्तु यहाँ उद्देश्य यह है कि एक स्थायी वर्ग विशेष रूप से इस कार्य के लिए हो। उसका काम ही यही हो कि दुनिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को नेकी की दावत दे। भले कामों की ओर बुलाये और बुरे कामों से रोके। "अुम्मत"— यह भी कमाल-रहमत और मानव की कमजोरी की इन्तिहाई रिआयत है कि सारी उम्मत के बजाय इस फ़रीज़े (कर्तव्य) पर एक विशेष जमाअत ही को नियत किया गया, वरना इस फ़रीज़े की अदाई के लिए जिन गुणों और शर्तों की आवश्यकता है क्या अजब कि बहुतों को वह बड़े कठिन और कठोर लगते।

२४ (तौहीद, रिसालत, वह्यी, जज़ा तथा सज़ा इत्यादि नियम और आधार वाले अक़ीदों के विषय में।) "कल्लजीन"— मुराद पिछले अहलें किताब यहूद एवं नसारा हैं। "तफ़र्रक़ू वख़्तलफ़ू"— यानी शरारत और फ़ित्नों के कारण दीनी एकता को टुकड़े-टुकड़ कर दिया और अपने-अपने अलग मज़हब गढ़ लिये। हुक्मों में जो आंशिक मसले आ जाएँ और सच्चे दिल से निःस्वार्थ होकर उनको हल करना इस्लाम में मना नहीं है। बल्कि यह तो उम्मत के लिए रहमत है— वातावरण और मनोवृत्ति के आधार पर किसी को किसी मत में सरलता प्रतीत होती है, किसी को किसी में। "अल्बय्यिनात"— इसके अन्तर्गत आदेश, दलीलें और मोजिज़े सब आ गये।

२५ यह सम्बोधन दोजखवालों से तो हर दशा में होगा। वार्त्ता यह हुई है कि उन सबसे होगा या उनके बाज़ गिरोहों से? एक क़ौल यह है कि यह सम्बोधन मुनाफ़िक़ों से होगा और ईमान से यहाँ मुराद ईमान को ज़ाहिर करना है। एक क़ौल है कि अहलें किताब को मुख़ातिब किया जायेगा और उन पर हुज्जत क़ायम की जायेगी कि तुम्हारी किताबों में आख़िरी नबी का ज़िक्र पूरी तरह मौजूद है, फिर भी तुम मुकर गये। बाज़ समझदार लोगों ने इसी क़ौल को प्राथमिकता दिया है। इब्ने जरीर ने बाज़ ताबेईन से प्रमाण लेकर यह बात कही है कि सम्बोधन सारे काफ़िरों के लिए आम है और जिस ईमान का यहाँ ज़िक्र है वह ईमान का ज़ाहिर करना आत्मलोक में उस समय का है जब सृष्टि की रचना हो रही थी। "तब्यज़्ज़ु वुजूह"— हुशूर का दिन तो ऐसा होगा कि सारी सच्चाइयाँ सामने आ जायेंगी। अवश्य है कि सच्चाई पर रहनेवालों के चेहरे नूरें हक़ से चमकते होंगे। "तस्वद्दु वुजूह"— ज़ाहिर है कि उस दिन असत्य पर रहनेवालों के दिलों की कालिमा उनके चेहरों से प्रकट होगी। अरबी मुहावरे में **'अब्याज़'** और **'अस्वाद'** से मुराद क्रम से प्रसन्नता एवं दुःख भी हो सकता है।

२६ और इसी अल्लाह की रहमत और उसकी रज़ामन्दी का स्थान जन्नत है। जन्नत की एक-एक नेमत को क़ुर्आन मजीद ने चाव दिलाने के स्थान में बयान किया है। वह अल्लाह की रज़ामन्दी से अलग कोई चीज़ नहीं हैं जैसा कि जाहिल सूफ़ियों तथा गुस्ताख़ शाइरों की कविताओं से प्रकट होता है।

२७ (अतः उसके निर्णय सदैव न्यायपूर्ण एवं बुद्धिमत्ता के साथ होते हैं।) इस्लाम का खुदा बिलकुल दया करनेवाला, न्यायप्रिय, स्नेह करनेवाला है। मुशरिक क़ौमों के देवी-देवताओं की भाँति अत्याचारी और रक्तपाती नहीं है। क़ुर्आन पाक को बार-बार खुदावन्दे तआला की पाकी का सुबूत इन ख़राब गुणों के वर्णन से करना आवश्यक हो गया था। और तो और तौरेत तक में खुदा के प्रकोप और उसके क्रोध का वर्णन बहुत ज़ोरों के साथ पाया जाता है। "बिल्हक़्क़ि"— यानी बिलकुल सही, जिसमें शक और सन्देह की गुंजाइश नहीं।

२८ और कोई देवी-देवता इन उमूर की वापसी में न उसका साझीदार है और न सहायक है। न आसमान, और न ज़मीन का कोई भी अंश किसी और के क़ाबू या क़ब्ज़े में है। जाहिल क़ौमों की इन गुमराहियों का ज़िक्र पिछले हाशियों में बार-बार आ चुका है। "तुर्जअुल-अुमूर"— यह ताकीद इस बात की है कि अन्तिम निर्णय केवल अल्लाह तआला का होगा। उसमें किसी को बोलने की मजाल नहीं।

२९ यानी तुम इसलिए बनाये गये हो कि लोग तुम्हारे पदचिह्नों पर चलें, तुम सारी दुनिया के लिए एक नमूना बनाकर भेजे गये हो। यहाँ सम्बोधन उम्मतें मुहम्मदी और मिल्लतें इस्लामी से है।

३० (पूरा-पूरा जैसा कि हक़ है अल्लाह पर ईमान रखने का।) आयत के इस भाग में उम्मतें इस्लामी की एतिक़ादी, नैतिक और अमली ज़िन्दगी को पूर्णरूपेण चित्रित किया गया है। अर्थ यह हुआ कि ऐ मुसलमानो! तुम अपना दायित्व पूरी-पूरी तरह महसूस करो। तुम तौहीद के अमानतदार और ज़मीन पर अल्लाह के नायब और उसके ख़लीफ़ा हो और उसकी पुलीस की भाँति हो। अल्लाह के क़ानून की सुरक्षा और उसको लागू करने के लिए हो। दुनिया की न्याय-व्यवस्था को स्थाई रखने के लिए भेजे गये हो। तुम्हारी ज़िन्दगी का मिशन ही यह है कि इलाही प्रशासन को चलाओ। सच्चे प्रबन्ध के एक-एक कल-पुर्ज़े को ठीक रखो और असत्य की व्यवस्था को चलने ही न दो। यह अत्याचार होता अगर इस ज़िम्मेदार कार्यवाहक वर्ग को युद्ध और जंग की आज़ादी किसी दशा में न मिलती। जिहाद की आज्ञा

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३८४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लंय्यज़ुर्रूकुम् अिल्ला' अज़न् त व अिंय्युक़ातिलूकुम् युवल्लू - कुमुल्अद्बार क़िफ़
सुम्म ला युन्सरून (१११) ज़ुरिबत् अलैहिमुज़्ज़िल्लतु अैनमा सुक़िफ़ू'
अिल्ला बि हब्लिम्-मिनल्लाहि व हब्लिम्-मिनन्नासि व बा'अू बि ग़ज़बिम्-मिनल्लाहि
व ज़ुरिबत् अलैहिमुल् - मस्कनतु त ज़ालिक बि अन्नहुम् कानू यक्फ़ुरून
बि आयातिल्लाहि व यक़्तुलूनल् - अम्बिया'अ
बिग़ैरि हक़्क़िन् त ज़ालिक बिमा
असव्व कानू यअ़्तदून क़ (११२) लैसू
सवा'अन् त मिन् अह्लिल् - किताबि
अुम्मतुन् क़ा'अिमतुंय्यत्लून आयातिल्लाहि
आना'अल्लैलि व हुम् यस्जुदून (११३)
युअ्मिनून बिल्लाहि वल्-यौमिल्-आख़िरि
व यअ्मुरून बिलमअ़्रूफ़ि व यन्हौन
अनिलमुन्करि व युसारिअ़ून फ़िलख़ैराति त
व अुला'अिक मिनस्सालिहीन (११४) व
मा यफ़्अलू मिन् ख़ैरिन् फ़ लंय्युक्फ़रूहु त
वल्लाहु अलीमुम् - बिलमुत्तक़ीन (११५)
अिन्नल्लज़ीन कफ़रू लन् तुग़्निय अन्हुम्
अम्वालुहुम् व ला' औलादुहुम् मिनल्लाहि शैअन् त व अुला'अिक
अस्हाबुन्नारि ज हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (११६) मसलु मा युन्फ़िक़ून फ़ी
हाज़िहिल्-हयातिद्दुन्या क मसलि रीहिन् फ़ीहा सिर्रुन् असाबत् हर्स क़ौमिन्
ज़लमू' अन्फ़ुसहुम् फ़ अह्लकत्हु त व मा ज़लमहुमुल्लाहु व लाकिन्
अन्फ़ुसहुम् यज़्लिमून (११७) या' अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तत्तख़िज़ू
बितानतम्-मिन् दूनिकुम् ला यअ्लूनकुम् ख़बालन् त वद्दू मा अनित्तुम् ज
क़द् बदतिल्-बग़्ज़ा'अु मिन् अफ़्वाहिहिम् ज क़ला व मा तुख़्फ़ी सुदूरुहुम्
अक्बरु त क़द् बय्यन्ना लकुमुल् - आयाति अिन् कुन्तुम् तअ़्क़िलून (११८)

لن تنالوا ٤   ٥١   آل عمران ٣

ان يقاتلوكم يولوكم الادبار ثم لا ينصرون ﴿١١١﴾ ضربت عليهم
الذلة اين ما ثقفوا الا بحبل من الله وحبل من الناس و
باءو بغضب من الله وضربت عليهم المسكنة ذلك بانهم
كانوا يكفرون بايت الله ويقتلون الانبياء بغير حق ذلك
بما عصوا وكانوا يعتدون ﴿١١٢﴾ ليسوا سواء من اهل الكتب امة
قائمة يتلون ايت الله اناء اليل وهم يسجدون ﴿١١٣﴾ يؤمنون
بالله واليوم الاخر ويامرون بالمعروف وينهون عن المنكر
ويسارعون في الخيرت واولئك من الصلحين ﴿١١٤﴾ وما يفعلوا
من خير فلن يكفروه والله عليم بالمتقين ﴿١١٥﴾ ان الذين
كفروا لن تغني عنهم اموالهم ولا اولادهم من الله شيئا
واولئك اصحب النار هم فيها خلدون ﴿١١٦﴾ مثل ما ينفقون
في هذه الحيوة الدنيا كمثل ريح فيها صر اصابت حرث
قوم ظلموا انفسهم فاهلكته وما ظلمهم الله ولكن انفسهم
يظلمون ﴿١١٧﴾ يايها الذين امنوا لا تتخذوا بطانة من دونكم لا
يالونكم خبالا ودوا ما عنتم قد بدت البغضاء من افواههم
وما تخفي صدورهم اكبر قد بينا لكم الايت ان كنتم
تعقلون ﴿١١٨﴾ هانتم اولاء تحبونهم ولا يحبونكم وتؤمنون بالكتب

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह तुमको थोड़े कष्ट के अतिरिक्त कदापि कोई हानि न पहुँचा सकेंगे[३३]; और अगर वह तुमसे मुक़ाबला करेंगे तो उन्हें पीठ दिखाकर भाग जाएँगे[३४]। फिर उनको मदद भी न पहुँच सकेगी[३५]। (१११) उन पर लेस दी गयी है ज़िल्लत चाहे जहाँ भी वह पाये जायँ, सिवाय इसके कि अल्लाह की ओर से कोई वचन हो या लोगों की तरफ़ से कोई वचन हो। और ईश्वर के प्रकोप के अधिकारी हो गये हैं[३६]। और उन पर तुच्छता लेस दी गयी। यह सब इस कारण से हुआ कि वह अल्लाह की आयतों को नकार जाते थे और नबियों की अकारण हत्या कर डालते थे। यह सब इस कारण से हुआ कि उन्होंने नाफ़रमानी की और सीमा से बाहर निकल-निकल जाते थे[३७]। (११२) सब यकसाँ नहीं[३८], उन्हीं अहले किताब में एक वर्ग स्थापित है। यह लोग अल्लाह की आयतों को रात्रि के समय में पढ़ते हैं और सज्दः करते हैं[३९]। (११३) यह अल्लाह और क़ियामत के दिन पर ईमान रखते हैं, और भलाई का हुक्म देते हैं और बदी से रोकते हैं, और अच्छी बातों की ओर दौड़ते हैं। यही लोग नेकीकारों (नेकी करनेवालों) में से हैं[४०]। (११४) और जो भी नेक काम यह करेंगे उससे हरगिज महरूम न किये जायँगे, और अल्लाह संयमित रहनेवालों बो ख़ूब जानता है[४१]। (११५) बेशक जिन लोगों ने कुफ़्र (इख्तियार) किया कदापि उनके ज़रा भी काम अल्लाह के मुक़ाबले में न उनके माल आयँगे, न उनकी सन्तानें। और यही लोग तो दोज़ख वाले हैं, उसमें हमेशा पड़े रहेंगे[४२]। (११६) यह जो कुछ इस दुनियावी ज़िन्दगी में खर्च करते हैं, उसकी मिसाल तो ऐसी है कि जैसे एक हवा है जिसमें सख़्त सर्दी है, (और) वह ऐसे लोगों की खेती को लग जाए जिन्होंने अपनी जानों पर ज़ुल्म कर रखा है, फिर वह (हवा) उस खेती को बरबाद कर दे। तो अल्लाह ने उन पर ज़ुल्म नहीं किया बल्कि वह स्वयं अपनी जानों पर ज़ुल्म करते हैं[४३]। (११७) ऐ ईमानवालो! अपनों के सिवा (किसी को) गहरा दोस्त न बनाओ[४४], वह लोग तुम्हारे साथ फ़साद करने में कोई बात उठा नहीं रखते। और तुम्हारे दुःख पहुँचने की आर्ज़ू रखते हैं। बुग़्ज़ (जलन) तो उनके मुँहों से ज़ाहिर हो यड़ता है, और जो कुछ वह अपने सीनों में छुपाये हुए हैं वह और भी बढ़कर है[४५]। हम तो तुम्हारे लिए निशानियाँ खोलकर ज़ाहिर कर चुके हैं[४६], अगर तुम अक़्ल से काम लेनेवाले हो। (११८)

---

३३ संकेत है उन यहूद की तरफ़ जिनका मदीना और चारों ओर बड़ा ज़ोर और क़ाबू था। क़ुर्आन ने घटना के घटित होने के पहले ही भविष्यवाणी कर दी कि यहूद अपने मज़बूत क़िलों और भारी खज़ानों के बावजूद मुसलमानों को कोई विशेष हानि न पहुँचा सकेंगे। "अज़न"— हानि के मुक़ाबले में बहुत छोटी चीज़ है।

३४ यानी अगर वह इतना साहस कर ही जाएँ कि तुमसे मुक़ाबले और युद्ध के लिए सामने आ जाएँ तो कदापि क़ाबू न पा सकेंगे बल्कि उलटे हारकर भाग जायँगे और पराजित हो जायँगे। यह भविष्य-वाणी एक नहीं मज्मूआ है कई भविष्यवाणियों का और सब की सब ज़ाहिरी स्थितियों और क़यासों के विरुद्ध और आख़िर में यही भविष्यवाणियाँ सही सिद्ध हुईं। बनू क़ुरैज़ा, बनू नुज़ेर, बनू क़नीक़ाआ, खैबर के यहूद सबके विषय में सिवाय अल्लाह के, जो हर चीज़ की खबर रखता है और हर चीज़ जानता है, और कौन ऐसी भविष्यवाणियों का साहस कर सकता था?

३५ एक और भविष्यवाणी। यहाँ यह भी बता दिया गया कि खुद विजयी होना और पराजित करना अलग रहा, अरब के जिन मुश्रिक क़बीलों की सहायता का अभिमान इन यहूद को है, उनमें से कोई उनकी सहायता को न आयेगा। और न मदीने के मुनाफ़िक़ीन ही उनके काम आयेंगे।

३६ बनी इसराईल के प्रकोपित होने और उनकी तिरस्कारिता तथा नीचता के विषय पर प्रथम पारे के रुकूअ़ ६ के अन्तर्गत हाशिए गुज़र चुके हैं। "ज़ुरिबत् अ़लैहिमुज़्ज़िल्लतु"— यानी उनकी जानों, उनके मालों और उनकी इज़्ज़तों सभी की नाक़द्री और निरादर का भाव जन साधारण में उत्पन्न हो गया है और इतिहास की गवाही है कि यहूद की यह दुर्दशा और असम्मान न केवल क़ुर्आन के उतरने तक ही

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३८४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३८१ से)

दिये, और सजा देने की इजाज़त दिये बिना इस क़ौम पर उत्तरदायित्व डाल देने के माने यह होते कि हाथ बाँधकर दरिया में पैरने का आदेश दिया जा रहा है। क्या तमाशा है कि अंग्रेज सती की प्रथा को अपराध घोषित कर दें तो वह देश के उपकारक, हिन्दुओं में बचपन की शादी को रोक दें तो धन्यवाद के पात्र, परन्तु अल्लाह के सैनिक और दुनिया के मालिक के पियादे अगर यह अधिकार प्राप्त करना चाहें कि अल्लाह के विधान से विद्रोह करनेवालों और विश्वशान्ति को भंग करनेवालों की पकड़-धकड़ करें तो "रौशन-खयाली" के माथे पर बल आ जाएँ, सभ्यता का प्रोपगण्डा करनेवाले उसे सहनशीलता और निष्पक्षता के विरुद्ध बताएँ। **"तन्हौन अनिल् मुन्करि"**— मुन्कर के अन्तर्गत आज की मधुशालाएँ, थियेटर, सिनेमा, नाचघर, कन्सर्ट हाल, म्यूज़िक कालेज, स्कूल ऑफ़ आर्ट और चित्रशाला सभी आ जाते हैं। आयत से जाहिर है कि उम्मत की बड़ाई और उसका नेक होना उसी समय तक है जब तक वह इन गुणों को अपनाये रहे यानी अल्लाह पर ईमान में मजबूती, और जो चीजें मना हैं उनसे अमली और इमानी तौर पर दूर रहें, जिन बातों का हुक्म करने के लिए दिया गया है उन पर अमल करें। हज़रत अमर के हवाले से नक़ल हुआ है कि जो कोई इस उम्मत में दाखिल होने की चेष्टा करता है उसे चाहिए कि अल्लाह की बनाई हुई यही शर्तें पूरी करे और जिस किसी में यह गुण न हों वह बस उन्हीं अहले किताब जैसा है जिनकी बुराई यहाँ आई है।

३१ (जबान से भी और बयान से भी, तुरन्त भी और अन्तिम नतीजे के लिहाज़ से भी।) यह ईमान ले आना उन अहले किताब का कर्तव्य भी था और अमली मिसाल मुसलमानों को वह देख भी रहे थे।

३२ (और बन्दगी की सीमा से पग बाहर रखनेवाले।) **"फ़ासिक़"**— यहाँ काफ़िर के अर्थ में है, यानी बन्दगी की हद से बिलकुल बाहर निकल जानेवाले। **"मिन्हुमुल् मुअ्मिनून"**— इस गिरोह में अब्दुल्लाह बिन सलाम यहूदी की भाँति दूसरे अहले किताब भी आ जाते हैं जो रसूल (स०) के समय में ही ईमान ले आये थे।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३८३ से)

रही बल्कि उसके बाद भी सैकड़ों शताब्दियों तक उसी प्रकार बना रहा। **"ऐना मा सुक़िफ़ू"**— चुनांचिः अभी बीसवीं सदी मसीही के प्रथम तिहाई तक यहूद की जो दुर्दशा जर्मनी, इटली, हंगरी में हुई है और दूसरे देशों में जो उनकी गत बनी है, जबकि वह धनवान भी थे और उन्नतिशील भी, वह स्वयं इस आयत की तफ़्सीर है। **"हृब्लिम्-मिनल्लाहि"**— से मुराद उनकी ऐसी आबादी हो सकती है जिसे स्वयं शरीअते इलाही ने क़त्ल, हलाकत और बदले की कार्यवाही से मुक्त रखा है जैसे कि उनके बच्चे, स्त्रियाँ, उनके इबादत करनेवाले एकान्त वाले लोग, फ़क़ीर आदि। **"हृब्लिम्-मिनन्नासि"**— मुराद उनकी वह जमाअतें हैं जो सन्धियों के द्वारा शान्ति प्राप्त कर लेती हैं। **'हृब्ल'** का अर्थ पहले बयान हो चुका है यानी वचन, वादा या उत्तरदायित्व।

३७ यानी बन्दगी और इबादत एवं आज्ञाकारिता की सीमाओं से। यहूद की लगातार बग़ावत, सरकशी और नाफ़रमानी की कथा से पुराने और नये समय की और स्वयं यहूद के द्वारा लिखे हुए इतिहास सब भरे पड़े हैं। इन चेतावनियों की कड़ाई से ऐसा विश्वास होता है कि जैसे यह प्रकोप इसराईलियों और यहूद के हक़ में हमेशा के लिए भाग्य बन गया हो। **"कानू.........यअ्तदून"**— दोनों अवसरों पर क्रिया के साथ 'कानू' लाने का अर्थ यह हुआ कि कोई मुक्त होने की या संयोग की घटना उनके इतिहास में नहीं थी बल्कि कुफ़्र और गुमराही जैसे उनकी प्रवृत्ति बन गई थी। यह चीज़ें उनकी आदत में प्रवेश कर चुकी थीं और इन बातों के आदी हो चुके थे। **'असौ'** नाफ़रमानी उन लोगों ने अपने ही खुदा के रसूलों की नहीं की बल्कि आखिर में खुद आखिरी रसूल (स०) की भी की। **"बिग़ैरि हक़्क़"**— यानी नबियों को स्वयं अपने न्याय और क़ानून के स्तर के भी विरुद्ध हत्या कर दिया करते थे। विवरण-सहित हाशिए प्रथम पारे के रुकूअ ६ के अन्तर्गत गुज़र चुके हैं।

३८ (यानी सत्य को न पहचानने और इस्लाम के विरुद्ध अपने तौरतरीक़ों और गतिविधियों के लिहाज से।) ऊपर जो कुछ बर्णन हुआ अहले किताब के बहुमत के विषय में था। बाक़ी उनमें से बाज-बाज सत्य को पहचाननेवाले और न्यायप्रिय भी थे और यह लोग अन्ततोगत्वा इस्लाम से सम्मानित हुए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३९ (यानी नमाज़ पढ़ते रहते हैं।) रात की नमाज़ की बड़ाई आयत से प्रकट हो रही है। **"उम्मतुन्-क़ा'इमतुन्"**— यह वह जमाअत थी जो सच्चे दीन पर स्थिर एवं अडिग रही। **"आयातिल्लाहि"**— यानी क़ुर्आन की आयतें। तफ़्सीर करनेवालों ने यहाँ अब्दुल्लाह बिन सलाम, सालबा बिन सईद, सय्यद बिन सईद, असद बिन अुबैद आदि के नाम अंकित किये हैं जो यहूदीयत से निकलकर रसूलें इस्लाम पर ईमान लाये थे।

४० क़ुर्आन मजीद जिनको सालिह यानी ईमानवाले और नेक क़रार देता है उनके गुण सारगर्भित अन्दाज़ और कैसे कम शब्दों में बयान किये हैं। पहली बात यह बताई कि वह लोग न केवल खुद ही स्वीकारिता एवं मान्यता के साथ शिष्ट एवं पवित्र चरित्र के पुतले होंगे, बल्कि दूसरों को भी इसी मार्ग पर लायेंगे और नेकियों की ओर हार्दिक इच्छा एवं चाव के साथ बढ़ेंगे। **"योसारिअून फ़िल्खैराति"**— यानी नेकियों की ओर बेदिली और बदशौक़ी के साथ गोया हार-थककर नहीं, बल्कि बड़े चाव और शौक़ एवं दिली इच्छा से लपकेंगे।

४१ (और चूंकि यह संयम वाले लोग हैं अतः उन्हें भी खूब जानता है।) यह खयाल न गुज़रे कि कोई संयमित व्यक्ति अल्लाह तआला की जानकारी में आने से छूट जायेगा। ग़ैर क़ौमों के अक़ीदों की काट करने के लिए यह टुकड़ा आवश्यक था। **"फ़ लंय्युक्फ़रूहु"**— यानी कहीं ऐसा न समझ लेना कि भूतकाल खराब रह चुका है तो अब मोक्ष और रहमत की आशा ही समाप्त है, अतः अब ईमान एवं नेक अमल से क्या लाभ होगा? ग़ैर मज़हबवालों के ऐसे ही अक़ीदों को गढ़ लिया था, इसीलिए यह चेतावनी हुई थी और यह ज़रूरी थी। **"युक्फ़रूहु"**— में सर्वनाम नेक अमल के बदले और उसके सवाब की ओर है और कुफ़्र से मुराद यहाँ मायूसी और निराशा तथा वंचित होना है।

४२ (और उनकी जिहालतों और नासमझियों का असत्य पर आधारित होना उनको पूरी तरह ज्ञात हो जाएगा।) **"अुला'इक"**— से मुराद ईमान से वंचित कुफ़्फ़ार हैं और चूंकि इस शब्द से विशेषता का अर्थ निकलता है, अह्लें सुन्नत ने इस आयत से मोतज़िला (एक वर्ग मुसलमानों का है) के विरुद्ध तर्क करके कहा है कि जहन्नम की आग में प्रवेश होने की सज़ा केवल काफ़िरों और मुन्किरों के लिए है। जो मोमिन गुनहगार हैं उनके लिए नहीं है। **"लन् तुग़्निय अन्हुम् अम्वालुहुम्"**— यानी यह तो न होगा कि माल को प्रायश्चित्त के रूप में या तौबा करके नजात हासिल कर ली जाए। यहूद के जो ग़लत और व्यर्थ के अक़ीदे इस विषय में हो चुके थे उसका वर्णन प्रथम पारे के हाशियों में हो चुका है। **"व ला' औलादुहुम्"**— हिन्दुओं और जैनियों में यह भ्रम विशेष रूप से बढ़ा हुआ है कि नर सन्तान को बड़ी अहमियत दे रखी है। मरे हुए बाप को लड़का ही पानी देकर अज़ाब से छुड़ा लेता है। मनुजी का क़ौल किताबों में नज़र से गुज़रा है कि बेटे को पुत्र कहते ही इसलिए हैं कि वह बाप को "पुत" (दोज़ख) से छुड़ा लाता है। माल और औलाद के ज़रीए से मोक्ष-प्राप्ति की गुमराही जाहिली मज़हबों में आम तौर फैली हुई थी, इसलिए क़ुर्आन ने इसका खण्डन स्पष्टता के साथ किया।

४३ आसान और साधारण रूप से समझ में आनेवाली मिसाल में उन लोगों के धन को व्यर्थ जाने का वर्णन किया है, जो ईमान से वंचित होने की दशा में इस दुनिया की प्राप्ति हेतु दिखावे और नामवरी के लिए अपनी दौलत खर्च करते रहते हैं। **"क मसलि"**— मिसाल बेकार होने और बरबाद होने में है। **'सिर्रुन्'**— सख्त ठण्डी चीज़ जैसे पाला या बर्फ़ को कहते हैं। **'ज़लमू' अन्फ़ुसहुम्'**— अपने हाथ अपनी जान पर ज़ुल्म किया यानी कुफ़्र और बेदीनी कर-करके। **"मा ज़लमहुमुल्लाहु"**— अल्लाह ने उन पर कोई ज़ुल्म नहीं किया कि उनके माल के खर्च को अकारण व्यर्थ और बरबाद कर दिया हो। **"व लाकिन्........यज़्लिमून"**— यह खुद ही तो अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहे हैं कि माल को बे-मौक़ा और अल्लाह की मर्ज़ी के खिलाफ़ खर्च कर रहे हैं।

४४ (ऐसा कि उससे अपने निजी भेद और दीनी तथा मज़हबी राज़ को कह डालो।) **"मिन्-दूनिकुम्"**— यानी सिवाय अपने मज़हब वालों के। **"बितानतम्"**— राज़दार दोस्त। इस्लामी क़ानून के इन्कार करनेवालों और बाग़ियों से एक खास हद से अधिक सम्बन्ध बढ़ाने की इजाज़त किसी मुस्लिम, इस्लामी स्टेट की रिआया (प्रजा) को नहीं है, क्योंकि इससे व्यक्ति और मिल्लत दोनों को हानि पहुँचने के अंदेशे और भय खुले हुए हैं और इस स्पष्ट, उचित एवं आवश्यक व्यवस्था का नाम बाज़ अक़्ल के दुश्मनों ने "तंगनज़री" (संकुचित दृष्टिकोण) रखा है। सुब्हानअल्लाह! वबाई बीमारियों में परहेज़ और सुरक्षा का नाम बड़े गौरव के साथ "स्वास्थ्य रक्षा के नियम" रखा जाए और जो व्यवस्था, कुफ़्र और

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३८८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हा'अन्तुम् उला'अि तुह़िब्बूनहुम् व ला युह़िब्बूनकुम् व तुअ्मिनून बिल्किताबि कुल्लिही ज व अिजा लक़ूकुम् क़ालू' आमन्ना ज क़ ्ला व अिजा ख़लौ अज़्ज़ू अलैकुमुल्-अनामिल मिनल्ग़ैजि त क़ुल् मूतू बि ग़ैजिकुम् त अिन्नल्लाह अलीमुम्-बि जातिस्सुदूरि (११९) अिन् तम्सस्कुम् ह़सनतुन् तसुअ्हुम् ज व अिन् तुसिब्कुम् सय्यिअतुंय्यफ़्रहू बिहा त व अिन् तस्बिरू व तत्तक़ू ला यज़ुर्रुकुम् कैदुहुम् शैअन् त अिन्नल्लाह बिमा यअ्मलून मुह़ीतुन् (१२०) ★ व अिज् ग़दौत मिन् अह्लिक तुबव्विअुल् - मुअ्मिनीन मक़ाअिद लिल्क़िताल त वल्लाहु समीअुन् अलीमुन् ला (१२१) अिज् हम्मत्ता'अिफ़तानि मिन्कुम् अन् तफ़्शला ला वल्लाहु वलिय्युहुमा त व अलल्लाहि फ़ल्यतवक्कलिल्-मुअ्मिनून (१२२) व लक़द् नसरकुमुल्लाहु बि बद्रिंव्व अन्तुम् अजिल्लतुन् ज फ़त्तक़ुल्लाह लअल्लकुम् तश्कुरून (१२३) अिज् तक़ूलु लिल्-मुअ्मिनीन अलंय्यक्फ़ियकुम् अंय्युमिद्दकुम् रब्बुकुम् बिसलासति आलाफ़िम् - मिनल्-मला'अिकति मुन्ज़लीन त (१२४) बला' ला अिन् तस्बिरू व तत्तक़ू व यअ्तूकुम् मिन् फ़ौरिहिम् हाज़ा युम्दिद्-कुम् रब्बुकुम् बि ख़म्सति आलाफ़िम्-मिनल्-मला'अिकति मुसव्विमीन (१२५) ● व मा जअलहुल्लाहु अिल्ला बुश्रा लकुम् व लि तत्मअिन्न क़ुलूबुकुम् बिही त व मन्नस्रु अिल्ला मिन् अिन्-दिल्लाहिल् - अज़ीज़िल् - ह़कीमि ला (१२६) लि यक़्तअ तरफ़म् - मिनल्लजीन कफ़रू' औ यक्बितहुम् फ़ यन्क़लिबू ख़ा'अिबीन (१२७) लैस लक मिनल्अम्रि शैअुन् औ यतूब अलैहिम् औ युअज्जिबहुम् फ़ अिन्नहुम् ज़ालिमून (१२८) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि त यग़्फ़िरु लि मंय्यशा'अु व युअज्जिबु मंय्यशा'अु त वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (१२९) ★

★ रु. १२ / ३ / आ १३

● रु. ब. / अ / १ / ४

★ रु. ११ / ४ / आ / ८

كُلِّهٖ ۚ وَاِذَا لَقُوْكُمْ قَالُوْٓا اٰمَنَّا ۚۖ وَاِذَا خَلَوْا عَضُّوْا عَلَيْكُمُ الْاَنَامِلَ
مِنَ الْغَيْظِ ۭ قُلْ مُوْتُوْا بِغَيْظِكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ
الصُّدُوْرِ ﴿١١٩﴾ اِنْ تَمْسَسْكُمْ حَسَنَةٌ تَسُؤْھُمْ ۡ وَاِنْ تُصِبْكُمْ سَيِّئَةٌ
يَّفْرَحُوْا بِهَا ۭ وَاِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا لَا يَضُرُّكُمْ كَيْدُھُمْ شَـيْـــًٔا ۭ
اِنَّ اللّٰهَ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطٌ ﴿١٢٠﴾ وَاِذْ غَدَوْتَ مِنْ اَھْلِكَ تُبَوِّئُ
الْمُؤْمِنِيْنَ مَقَاعِدَ لِلْقِتَالِ ۭ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿١٢١﴾ اِذْ ھَمَّتْ
طَّاۗىِٕفَتٰنِ مِنْكُمْ اَنْ تَفْشَلَا ۙ وَاللّٰهُ وَلِيُّهُمَا ۭ وَعَلَي اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ
الْمُؤْمِنُوْنَ ﴿١٢٢﴾ وَلَقَدْ نَصَرَكُمُ اللّٰهُ بِبَدْرٍ وَّاَنْتُمْ اَذِلَّةٌ ۚ فَاتَّقُوا اللّٰهَ
لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿١٢٣﴾ اِذْ تَقُوْلُ لِلْمُؤْمِنِيْنَ اَلَنْ يَّكْفِيَكُمْ اَنْ
يُّمِدَّكُمْ رَبُّكُمْ بِثَلٰثَةِ اٰلٰفٍ مِّنَ الْمَلٰۗىِٕكَةِ مُنْزَلِيْنَ ﴿١٢٤﴾ بَلٰٓى ۙ اِنْ
تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا وَيَاْتُوْكُمْ مِّنْ فَوْرِھِمْ ھٰذَا يُمْدِدْكُمْ رَبُّكُمْ
بِخَمْسَةِ اٰلٰفٍ مِّنَ الْمَلٰۗىِٕكَةِ مُسَوِّمِيْنَ ﴿١٢٥﴾ وَمَا جَعَلَهُ اللّٰهُ اِلَّا
بُشْرٰى لَكُمْ وَلِتَطْمَىِٕنَّ قُلُوْبُكُمْ بِهٖ ۭ وَمَا النَّصْرُ اِلَّا مِنْ عِنْدِ
اللّٰهِ الْعَزِيْزِ الْحَكِيْمِ ﴿١٢٦﴾ لِيَقْطَعَ طَرَفًا مِّنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَوْ
يَكْبِتَھُمْ فَيَنْقَلِبُوْا خَاۗىِٕبِيْنَ ﴿١٢٧﴾ لَيْسَ لَكَ مِنَ الْاَمْرِ شَيْءٌ اَوْ يَتُوْبَ
عَلَيْھِمْ اَوْ يُعَذِّبَھُمْ فَاِنَّھُمْ ظٰلِمُوْنَ ﴿١٢٨﴾ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ
وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ يَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَاۗءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम तो ऐसे हो कि उनसे मुहब्बत रखते हो और यह तुमसे ज़रा मुहब्बत नहीं रखते। तुम आसमानी किताब के कुल के कुल पर ईमान रखते हो[४७] और यह जब तुमसे मिलते हैं तो कह देते हैं कि हम ईमान ले आये हैं, और जब अलग होते हैं तो तुम पर क्रोध की अधिकता से उँगलियाँ काट-काट खाते हैं[४८]। आप कह दीजिए कि तुम क्रोध में मर रहो, बेशक अल्लाह दिलों की बातों को ख़ूब जानता है[४९]। (११९) अगर तुम्हें कोई अच्छी हालत पेश आ जाती है, तो यह उन लोगों को दुःख पहुँचाती है, और अगर तुम पर कोई बुरी हालत आ पड़ती है तो यह उससे प्रसन्न होते हैं[५०]। और अगर तुम सब्र और संयम इख़्तियार किये रहो तो तुमको इनकी चालें ज़रा भी नुक़्सान न पहुँचा सकेंगी। बेशक अल्लाह उनके आमाल पर (पूरा) घेरा रखता है[५१]। (१२०) ★ ★ रु. १२/३ आ ११

और (वह वक़्त याद कीजिए) जब आप प्रातःकाल अपने घर वालों (के पास) से निकले मुसलमानों को युद्ध के लिए उचित स्थानों पर ले जाते हुए[५२]। और अल्लाह बड़ा सुननेवाला है, बड़ा जाननेवाला है[५३]। (१२१) जब तुमसे दो दल इसका विचार कर बैठे थे कि हिम्मत हार दें[५४], ऐसी स्थिति में कि अल्लाह दोनों का मददगार था[५५]। और मुसलमानों को तो अल्लाह पर ही विश्वास रखना चाहिए[५६]। (१२२) और अवश्य ही अल्लाह ने तुम्हारी सहायता की बद्र में यद्यपि तुम कमज़ोर थे। तो अल्लाह से डरते रहो, अजब क्या कि आभारी बन जाओ[५७] (आभार प्रकट करनेवाले बन जाओ)। (१२३) (वह वक़्त याद कीजिए) जब आप मोमिनों से कह रहे थे कि क्या यह तुम्हारे लिए काफ़ी नहीं कि तुम्हारा परवरदिगार तुम्हारी मदद तीन हज़ार उतारे हुए फ़िरिश्तों से करे[५८]। (१२४) क्यों नहीं बशर्ते कि तुमने सब्र और तक़्वा क़ायम रखा[५९] और अगर वह तुम पर फ़ौरन् आ पड़ेंगे[६०] तो तुम्हारा परवरदिगार तुम्हारी मदद पाँच हज़ार निशान किये हुए फ़िरिश्तों से करेगा[६१]। (१२५) ● व ब अ १/४ और यह तो अल्लाह ने इसलिए किया कि तुम ख़ुश हो जाओ और तुम्हें इससे सन्तोष प्राप्त हो जाए। वरना मदद तो बस ज़बरदस्त हिकमत वाले अल्लाह ही की ओर से है[६२]। (१२६) और यह मदद इस उद्देश्य से थी ताकि कुफ़्र करनेवालों में एक गिरोह को हताहत कर दे या उन्हें बेइज़्ज़त कर दे कि वह असफल होकर वापस जाए[६३]। (१२७) आपको इस मामले में कोई दख़ल नहीं, (अल्लाह) चाहे उनकी तौबः स्वीकार करे चाहे उन्हें अज़ाब दे इसलिए कि वह ज़ालिम हैं[६४] (१२८) और अल्लाह ही की मिल्क (सम्पत्ति) है, जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है; वह जिसे चाहे बख़्श दे और जिसे चाहे अज़ाब दे। और अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला है, बड़ी मेहरबानीवाला है[६५]। (१२९) ★ ★ रु. १३/४ आ ८

---

४७ यानी सारी अल्लाह की किताबों पर। **"अल्किताब"** यह यहाँ क़िस्म की संज्ञा के रूप में प्रयोग हुआ है। **"तुहिब्बूनहुम्"**— यह मुसलमानों की सादा दिली और नेक प्रकृति का वर्णन है। **"व ला तुहिब्बूनकुम्"**— यह तुमसे स्नेह तो क्या रखते उलटे अदावत रखते हैं और तुम्हारी अल्लाह की किताब के मुन्किर हैं। अर्थ यह हुआ कि तुम तो इनकी किताबों तक पर ईमान रखते हो और वह फिर भी तुमसे किसी दर्जे में भी मुहब्बत का सम्बन्ध नहीं रखते।

४८ ग़ुस्से में उँगलियाँ काट-काट खाना अरबी मुहावरे में सख़्त झुँझलाहट के लिए संकेत है जैसे उर्दू मुहावरे में "अपनी बोटियाँ नोचना", "बोटियाँ चबाना", "दाँत पीसना" इत्यादि। ज़िक्र मदीने के मुनाफ़िक़ों का है।

४९ (अतः उसने तुम्हारे दिलों के अन्दर के कीनः और अदावत को खोलकर बयान कर दिया है।) **"मूतू बि ग़ैज़िकुम्"**— यानी नाकामी और नामुरादी कि शिद्दत में मर रहो, इसलिए कि जो तुम्हारी तमन्ना है यानी इस्लाम पर क़ाबू पाना और विजय पाना वह तो पूरी होने की नहीं।

५० मुनाफ़िक़ों की आत्माओं की दुष्टता और कीनः रखने की बातों का वर्णन है कि मुसलमानों की

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३८८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३८५ से)

असत्य यानी दुनिया और आख़िरत दोनों की बरबादी से बचने के लिए किया जाए उसका नाम तंगनज़री पड़ जाए। अक़्ल दुश्मनी की भी कोई हद होनी चाहिए। मदीना बल्कि हिजाज़ के फ़क़ीहों ने इस आयत से यह निष्कर्ष निकाला है कि दुश्मन की गवाही दुश्मन के हक़ में विश्वसनीय नहीं, परन्तु इमाम अबू हनीफ़ा के मत में जाइज़ है। अफ़्सोस है कि मुसलमानों ने आयत के हुक्म पर अमल में सुस्ती और मुनाफ़िक़त शुरू से ही बरतनी शुरू कर दी और अभी रसूल (स०) के ज़माने को चन्द शताब्दियाँ भी नहीं होने पाई थीं कि सल्तनत के कारोबार में खुल्लमखुल्ला मसीहियों और मजूसियों (आग की पूजा करनेवालों) को शरीक किया जाने लगा। यह हाल जब उस ज़माने का था तो आज चौदहवीं शताब्दी हिजरी में, जबकि ज़िन्दगी के हर विभाग में मुन्किरों का क़ब्ज़ा है, स्थिति पर किस प्रकार विचार प्रकट किये जायें ? फ़क़ीहों ने इस आयत की तफ़्सीर में यह भी लिखा है कि काफ़िरों से शक्ल का मिलाना तक जाइज़ नहीं तो उनके साथ दोस्ती और उठना-बैठना तो अव्वल दर्जे में मना होगा।

४५ यानी उनकी छुपी हुई दुश्मनी का दर्जा तो इससे भी कहीं बढ़ा हुआ है। **"वद्दू मा अनित्तुम्"**— यह वाक्यांश काफ़िराना मनोवृत्ति को पूरी तरह प्रकट करता है। इसके अन्दर गहरी शिक्षा इस बात की आ गई कि कोई काफ़िर दुश्मनी रखनेवाला मुसलमानों का हमदर्द और दोस्त नहीं हो सकता। **"बदतिल·······अफ़्वाहिहिम्"**— दुश्मनी की कठोरता में अनजाने तौर पर ज़बान से ऐसे शब्द निकल जाते हैं। संकेत अधिकतर मदीने के यहूद की ओर है। यह लोग इस्लाम से अपनी जलन को छुपा भी नहीं सकते थे और यह बेइख़्तियार उनकी ज़बानों से ज़ाहिर हो ही जाता था।

४६ आयत के अर्थ दो प्रकार से निकाले गये हैं— एक यह कि उन काफ़िरों की दुश्मनी और जलन के आसार और उसकी अलामतें तुम पर प्रकाशित हो गई हैं, जिनसे तुम उन्हें पहचान सकते हो। दूसरे मानी यह हैं कि तुम्हारे लिए उनसे मेल न रखने की आयतें खोलकर बयान की जा चुकी हैं।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३८७ से)

तकलीफ़ से प्रसन्न होते थे और उनकी ख़ुशी और सम्पन्नता से दुःखी होते थे। **"हसनतुन्"**—मुसलमानों की अन्दरूनी तंज़ीम (संघटन) या काफ़िरों के ऊपर उनका क़ाबू और उनकी विजय। **"सय्यिअतुन्"**— मिसाल के तौर पर कोई सामयिक पराजय।

५१ (अल्लाह उनको सज़ा देने पर हर प्रकार शक्तिशाली है।) **"व अिन् तस्बिरू"**— मुनाफ़िक़ों के जाल-फ़रेब और मुख़ालिफ़ों की शत्रुता और दुश्मनी के परिणाम से बचने का कितना आसान नुस्ख़ा यहाँ मुसलमानों को बता दिया गया है। तुम अपने काम से काम रखो। अपने सुधार में लगे रहो। अल्लाह का दामन हाथ से न दो। कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। **"व अिन् तस्बिरू व तत्तक़ू"**— 'सब्र' और 'संयम'। इन दो संक्षिप्त शब्दों में उम्मत की सारी संघटन की कोशिशें और उसमें व्यस्त रहने की शिक्षा कम से कम शब्दों और परिपूर्ण अर्थ के साथ बयान हो गई। आयत में यह शिक्षा आ गई कि दुश्मन से सुरक्षित रहने के लिए बेहतर से बेहतर शस्त्र **सब्र और संयम है।**

५२ (ऊहद पहाड़ों की घाटी की ओर और आप सबके स्थान नियत कर रहे थे कि यहाँ सवार खड़े हों और यहाँ पियादे; यहाँ तीर चलानेवाले इत्यादि।) अब जंगे ऊहद का वर्णन शुरू हो रहा है। उहद मदीना मुनव्वरा से उत्तर की ओर ढाई तीन मील के फ़ासिले पर एक पहाड़ी है। बद्र में हार खाये हुए मुश्रिकीन मक्का बदला लेने के जोश में पागल हो रहे थे। हिजरत का तीसरा वर्ष समाप्ति के क़रीब था और बद्र की घटना पर एक वर्ष बीत चुका था कि मक्का वालों की तैयारियाँ मुकम्मल हो गई। इस बार बड़े पैमाने पर और बड़े प्रबन्ध एवं व्यवस्था के साथ तैयारियाँ हुई थीं। क़ुरैश की जमीयत (दल) तीन हज़ार थी, उनमें सात सौ जवान ज़िरहपोश (लोहे का वस्त्र जो युद्ध में प्रयोग होता था), २०० सवार, और शेष ऊँटों पर सवार थे। क़ौम और क़बीले के बड़े-बड़े सरदार सब साथ हुए और बड़ी बात यह कि स्त्रियाँ भी युद्ध में सम्मिलित हुई। हाथों में बाजे लिये हुए, जोशीले तराने गाती हुई और बद्र में क़त्ल होनेवालों का बदला लेने हेतु अपने रिश्तेदारों और सगे सम्बन्धियों को उभारती जाती थीं— युद्ध में स्त्रियों की शिर्कत आज बीसवीं सदी की नवीनता नहीं है, जाहिली मुश्रिक क़ौमों का पुराना तरीक़ा है। इस्लामी सेना उसके मुक़ाबले में कुल एक हज़ार थी और सामान की दशा यह थी कि रसूल (स०) की सवारी के अलावा सेना भर में केवल एक घोड़ा और था। इससे बढ़कर परेशानी यह हुई कि प्रातःकाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठीक उस समय जब शत्रु दिखायी पड़े और मुसलमान अपने पवित्र आगेवाली टोली के सरदार यानी रसूल (स०) के साथ अभी नमाज़ में ही व्यस्त थे। अब्दुल्लाह् बिन उबी मदीने का पुराना और प्रभावशाली लीडर यह बात पेश करके कि हमारी राय नहीं सुनी जाती और नगर के अन्दर ही घेरा करके नहीं लड़ा जाता तो हम बेकार अपनी जानें दूसरों के कहने पर क्यों दें, अपने ३०० साथियों को लेकर नगर को वापस चला गया और अब इस्लाम की सेना में कुल ७०० का दल रह गया, उनमें भी ज़िरह पहने हुए कुल १००। मुक़ाबिल की सेना संख्या में चौगुनी हो गई और अस्त्र-शस्त्र इत्यादि के लिहाज़ से पूरी तह लैस। **"व अिज़् ग़दौत मिन् अह्लिक"**— और हज़रत (स०) अभी हज़रत आयशा (रज़ि०) के हुज्रे से बाहर पधारे ही थे। यह ७ शव्वाल सन् ३ हिजरी इतवार के प्रातःकाल का समय था। **"मक़ाअिद लिल्क़िताल"**— सफ़ों (लाइनों) के क्रम और मोर्चों को उचित रूप देना जिस प्रकार सिकन्दर एवं दारा के ज़माने में महत्त्वपूर्ण था, आज भी मान्य है और मिलिट्री साइंस में पोज़ीशन (Position) का महत्त्व कितने ही पृष्ठों में बयान हुआ है। उम्मत का महान् पथप्रदर्शक पवित्र नबी होने के अलावा महान् सेनानायक के रूप में भी अपनी मिसाल नहीं रखता था। बीसवीं शताब्दी का एक योरोपियन "Tom Andre" इस्लाम का एक इतिहासकार है। वह अपनी पुस्तक "BiograPhy of Mohammad" में आपके विशेष कमाल का वर्णन इन शब्दों में करता है— "अपने विरोधियों के बरखिलाफ़ जो केवल साहस और वीरता ही रखते थे— मुहम्मद (स०) ने, कहना चाहिए युद्धकला का भी नया मार्ग निकाला। मक्केवालों की बेधड़क और अन्धाधुन्ध जीवट के मुक़ाबले में मुहम्मद (स०) ने खूब दूरदर्शिता और सख्त क़िस्म की व्यवस्था एवं अनुशासन से काम लिया।" (अवलोकित हो हाशिया अंग्रेज़ी तफ़्सीर)। मौलाना शिबली नोमानी मर्हूम ने पूरे ऊहद के युद्ध का नक़्शा शब्दों के माध्यम से खींच दिया है— हज़रत (स०) ने ऊहद को पीछे की ओर रखकर सफ़ें बनाई। मसअब बिन अमैर को झण्डा प्रदान किया, ज़ुबैर बिन अवाम को रिसाले का अफ़्सर नियुक्त किया। हज़रत हम्ज़ा को उस सेना की कमान मिली जो जिरिह नहीं पहने हुए थे। पीठ की ओर भय था कि शत्रु इधर से आयें, इसलिए पचास तीर चलानेवालों का दस्ता नियत किया और आदेश दिया कि चाहे विजय हो जाए वह अपनी जगह से न हटें। अब्दुल्लाह् बिन जबीर उन तीरअन्दाज़ों के अफ़्सर बनाये गये। क़ुरैश को बद्र में अनुभव हो चुका था, इसलिए उन्होंने बड़ी तर्तीब से सफ़ें बनाईं। मैमना (दायीं टुकड़ी) पर खालिद बिन वलीद को नियुक्त किया, मैसरा (बायीं टुकड़ी) अक्रमा को दिया गया जो अबूजहल के सुपुत्र थे। सवारों का दस्ता सफ़्वान बिन उमय्या की कमान में था जो क़ुरैश का मशहूर रईस था। तीरअन्दाज़ों के दस्ते अलग थे जिनका अफ़्सर अब्दुल्लाह् बिन अबी रबीआ था। तल्हा अलम (झण्डा) लिये हुए थे और सौ घोड़े कोतल रिकाब में थे कि समय पर काम आयें। (सीरतुन्नबी जिल्द १, सफ़ा २७३)।

५३ सुनने और ज्ञान रखने की दोनों सिफ़तों को याद दिलाया और यह संकेत हुआ कि उस वक़्त विरोधी और साथी जो कुछ अपनी-अपनी जगह पर कह-सुन रहे थे, वह सब अल्लाह तआला के इल्म में आ चुका था और इस अवसर पर विरोधियों और साथ देनेवालों दोनों के साथ जो कुछ पेश आया उसमें से कोई बात उससे छुपी हुई नहीं रही।

५४ (और जंग से अलग हो बैठें परन्तु इस इरादे पर अमल नहीं करने पायें।) **'हम्मत'**— 'हम्मा' के मानी अरबी में पुख्ता इरादे के भी हैं और केवल हलका-सा विचार और मामूली से इरादे के भी हैं। यहाँ यही मुराद है यानी अन्तरात्मा की बात या वस्वसः। **'ता'अिफ़तानि'**— इन दो दलों से मुराद क़बीला ओस के बनी हारिसा और क़बीला खज़रज के बनी सल्मा हैं। इन दोनों दस्तों ने अब्दुल्लाह् बिन उबी की मिसाल देखकर थोड़ी-सी देर को बेहिम्मती व कमज़ोरी महसूस की, परन्तु अल्लाह् की कृपा ने हाथ पकड़ा और वस्वसे को वस्वसे की ही हद में रखा, आगे नहीं बढ़ने दिया। यह खयाल जो उनमें पैदा हुआ वह अपनी कम तादाद, सामान की कमी और भौतिक कमज़ोरी के कारण हुआ। यह एक प्राकृतिक बात थी न कि ईमान की कमज़ोरी या दीन की सच्चाई में कोई सन्देह या भ्रम। मान लें कि यह विचार जमकर गुनाह के दर्जे को पहुँच जाता जब भी कोई आपत्ति नहीं थी, मोमिनों और निःस्वार्थ लोगों की जमाअत मासूमों की जमाअत नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी का अंग्रेज लेखक बास्वर्थ स्मिथ शुरू की लड़ाइयों से सम्बद्ध, जो आम तौर पर ऐतिहासिक प्रमाण रखती हैं, कहता है कि "यह प्रदर्शन, निःस्वार्थता, वीरता एवं बहादुरी और त्याग के लिहाज़ से होमर (प्रसिद्ध लेखक) की कथाओं से बढ़े हुए हैं।" (मुहम्मड् स० ऐण्ड् मुहम्मड्निज़्म)।

५५ (चुनांचे इस अवसर पर भी उसने सहायता की और अपनी मेहरबानी की।) आयत इन दोनों टुकड़ियों पर नाराज़गी एवं चेतावनी के लिए नहीं, विशेष कृपा एवं दया को ज़ाहिर करने के लिए है।

५६ (और चाहिए कि आइंदः निराशा और दुस्साहस की भावनाओं को अपने पास भी न फटकने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दें।) 'तवक्कुल'— अल्लाह की राह पर चलनेवालों के लिए यह एक उच्चकोटि का गुण है और सूफ़ी शोधकर्ताओं ने इसकी हक़ीक़तों पर बड़ी बहसें की हैं।

५७ यानी संयम की आदत तुम्हें शुक्रगुज़ार बना देगी। "बद्र"— मदीना के दक्षिण-पश्चिम में उससे लगभग २० मील के फ़ासिले पर और लालसागर के तट से एक मंज़िल पर एक पड़ाव और मण्डी का नाम है। यह स्थान न केवल शाम और मक्का एवं मदीना की सड़कों का तिराहा था और क़ुरैश के व्यापारी क़ाफ़िले यहीं से गुज़रते थे, बल्कि इसको एक अहमियत यह भी थी कि यहाँ पानी की इफ़रात थी जो अरब में एक बड़ी चीज़ थी। तौहीद और शिर्क के बीच सबसे पहली वर्णन के योग्य मुठभेड़ यहीं शुक्रवार १७ रमज़ान सन् २ हिजरी (११ मार्च, सन् ६२४ ई०) को हुई। इस युद्ध ने गोया इस्लाम की और इस तरह इस माध्यम से सारे विश्व की तारीख़ का रुख बदल दिया। फ़िरंगी इतिहासकार भी इसकी अहमियत को पूरी तरह मानते हैं। "Historians History of The World" में है। "इस्लामी जीतों के सिलसिले में जंगे बद्र बेहद अहमियत रखती है।" (सफ़ा १२२, जिल्द ८)। और अमरीकी प्रोफ़ेसर Hitti की "History of The Arabs" में है— "यह इस्लाम की सबसे पहली उज्वलित विजय थी। "व अन्तुम् अज़िल्लत"— यानी तादाद में कम और सामग्री में बहुत मामूली। मुसलमान तादाद में कुल ३१३ थे। इस "फ़ौज" के साथ घोड़े केवल दो थे और ऊँट ७० की संख्या में। उन्हीं पर लोग बारी-बारी सवार होते थे। 'फ़त्तक़ुल्लाह'— यानी जैसा कि अभी बद्र की घटना की मिसाल में तुमने देख लिया, तुमने अपनी ओर से संयम का हक़ अदा कर दिया तो उधर से अल्लाह की मेहरबानी और उसकी सहायता ने भीकैसे साथ दिया। "व लक़द्.........बि बद्र"— ख़िताब मोमिनों से है। उन्हें भविष्य में जमे रहने के लिए निकट भूत से उदाहरण लाया जा रहा है कि देखो अभी पिछले ही वर्ष तुमने किस क़दर नाज़ुक अवसर पर अल्लाह पर भरोसे और विश्वास से काम लिया तो उसकी कृपा ने तुम्हें कैसे आश्चर्य-जनक ढंग से विजयी बनाया। "लअल्लकुम्"— 'लअल्ल' पर हाशिया गुज़र चुका है कि इसका प्रयोग जब ख़ुदा की तरफ़ से होता है तो अर्थ में सन्देह और सम्भावना के नहीं यक़ीन और पुख़्तगी के मानी पैदा होते हैं। यहाँ भी मुराद यही है कि अल्लाह का तक़्वा अपनाओ तो आभार प्रकट करनेवाले बन जाओगे, यह नहीं कि "शायद" शुक्रगुज़ार बन जाओ। आयतों के उतरने का मौक़ा ऊहद की लड़ाई का ज़माना है।

५८ (जो आसमान से खास इसी उद्देश्य से उतारे गये हों।) "अिज् तक़ूलु"— में ज़िक्र उस समय का है जब बद्र के मैदान में यह खबर उड़ गई थी कि दुश्मन को भारी कुमुक (सहायता) पहुँच गई है और आप मोमिनों को तसल्ली दे रहे थे। 'अलंय्यक्फ़ियकुम्'— तुम्हारे लिए काफ़ी नहीं यानी क्या तुम्हारी तसल्ली और तस्कीन के लिए यह काफ़ी नहीं। "युमिद्दकुम् रब्बुकुम्"— ग़ैबी सहायता के अवसर पर रब होने की सिफ़त को ज़ाहिर करना और वह भी सम्बोधित लोगों की इज़ाफ़त के साथ (तुम्हारा परवर-दिगार) कहना बयान की बेहतरीन शैली है। आज के युद्ध के विशेषज्ञों को भलीभाँति यह जानकारी है कि युद्ध के समय सेना का Morale (हौसला) ठीक रखना विजय-प्राप्ति की सबसे कड़ी कुंजी है।

५९ (युद्धस्थल में और रसूल की आज्ञा से मुँह न मोड़ा।) ग़ौर करके देख लिया कि सारा ज़ोर सन्तोष एवं अडिग होकर रसूल की आज्ञाकारिता पर है। ऊहद की जंग से पहले उम्मत के सेनानायक महान ने जो सम्बोधन अपनी सेना के सामने किया और जो भाषण दिया था और हदीस की पुस्तकों में लिखा चला आ रहा है, उसमें यह मज़मून विशेष रूप से है कि "अगर क़दम जमाये रहोगे तो अल्लाह तुम्हीं को विजयी बनाएगा। अपने परवरदिगार पर भरोसा रखो। अडिग रहो और विजय तुम्हीं को प्राप्त होगी।" और यह शर्त बड़ी अहम है और इसकी अहमियत बद्र और ऊहद दोनों स्थानों पर ज़ाहिर हो गई। वही ख़ुदा मदद देनेवाला, वही मुसलमान मदद के मुहताज, परन्तु बद्र में इस्लामी लश्कर हर प्रकार से रसूल (स०) का आज्ञाकारी रहा और ज़ाहिरी सामानों पर ज़रा भी भरोसा नहीं किया, अल्लाह ने ग़ैबी मदद फ़िरिश्तों से पहुँचाई। ऊहद में स्थिति इसके विपरीत रही। सेना के ही एक भाग ने आज्ञा नहीं मानी और यहाँ काफ़ी विश्वास अपनी शक्ति पर होने लगा, अल्लाह ने एक समय तक के लिए सहायता से हाथ खींच लिया और पराजय का अनुभव भी करा दिया। बरकतों और ख़ुदा की मेहरबानियों के उतरने के लिए बड़ी चीज बन्दों की ओर से आज्ञापालन एवं अल्लाह पर भरोसा करना है।

६० (और अचानक आक्रमण की दशा में मानव सहायता आदतन् एवं स्वाभाविक रूप में रोकनेवाली है।) 'यअ्तूकुम्'— का कर्ता वही विरोधी और शत्रु हैं। 'मिन् फ़ौरिहिम्'— यानी बिलकुल अचानक।

६१ (और तुम्हारी हिम्मत एवं साहस के लिए यह कितनी बड़ी शुभ सूचना है।) "मुसव्विमीन"— यानी किसी विशेष चिह्न के साथ विशेषता रखते हुए। रही यह बात कि दर हक़ीक़त मलाइकः उतरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उन्होंने काफ़िरों से जंग की तो क़ुर्आन इस मामले में मौन है और रिवायतों में दोनों प्रकार के क़ौल मिलते हैं। क़तई दलील किसी वर्ग के पास नहीं हैं। आमिर शाबी की रिवायत यह है कि मुसलमानों को खबर पहुँची थी कि मुश्रिकों की मदद के लिए करज़ बिन जाबिर महारबी आ रहा है। इस डर को मुसलमानों के दिल से दूर करने और उन्हें ढारस बँधाने के लिए उनसे कहा गया कि तुम्हारी कुमुक पर भी फ़िरिश्तों के झुण्ड मौजूद हैं। परन्तु उधर न करज़ अपनी जमाअत के साथ आया और न इधर फ़िरिश्तों को जंग की आवश्यकता हुई। अल्लामा आलूसी बग़दादी ने लिखा है कि अगर इस वार्त्ता का सम्बन्ध जंगे ऊहद से है तो ज़ाहिर है कि इस अवसर पर मलाइकः की मदद नहीं आई और अगर बद्र की जंग से है तो यह एक मत-भेद वाला मसला है। फिर एक सवाल यह भी पैदा हुआ है कि मलाइकः के आने से बद्र में मदद किस प्रकार हुई ? क्या वाक़ई उन्होंने लड़ाई लड़ी या यह कि मुसलमानों के दिलों को मज़बूत किया और मुश्रिकों के हृदयों पर रोब बिठा दिया ?

६२ (न कि फ़िरिश्तों या और किसी मख्लूक़ की तरफ़ से।) यहाँ स्पष्ट रूप में यह बता दिया कि वास्तव में कारपरदाज़ और क़ाबू अल्लाह ही का है। फ़िरिश्ते हों या कोई और किसी का सहायता का माध्यम होना क़रीब कारण या ज़ाहिरी कारण के दर्जे से ज़्यादा नहीं है। मलाइकः की पूजा, देवताओं की पूजा की जड़ यहीं से कट जाती है। इस ओर भी साथ ही संकेत हो गया कि इस्लाम की सफलता और विजय वास्तव में ग़ैबी सहायता एवं समर्थन का नतीजा है। **'व मा जअलहु'**— में सर्बनाम इसी मलाइकः की सहायता के वादे की ओर है। **"अिल्ला······बिही"**— यानी यह तो विजय एवं सहायता की केवल भूमिका थी। **'व मन्नस्र'**— से मुराद हक़ीक़ी मदद है। **"अल् अज़ीज़ी"**— उसे यह शक्ति प्राप्त है कि जिसको जब चाहे ज़ाहिरी साधनों के बिना विजयी बना दे और सफल करा दे। **"अल्हकीमि"**— आम मानव-प्रवृत्ति की रिआयत से ज़ाहिरी कारण तथा साधन जमा करा देनेवाला।

६३ ज़िक्र अभी बद्र की जंग का चल रहा है और संकेत एवं उपमाएँ उसी की ओर हैं। **"लि यक़्तअ तरफ़म्"**— **'क़तअ'** यहाँ हताहत करने के माने में है। 'लाम्' का सम्बन्ध पिछली आयत के **'नसरकुम्'** से है। यानी काफ़िरों को तुम्हारे हाथों तबाह तथा हताहत करा दे जैसा कि जंगे बद्र के अवसर पर हुआ, कि क़ुरैश के लीडरों में सत्तर की संख्या में उस रोज़ हताहत हुए और इसी संख्या में बन्दी बने। **'यक्बितहुम्'**— यानी उन्हें दुनिया की दृष्टि में बेइज़्ज़त एवं अपमानित करें।

६४ (और इसलिए तत्काल अज़ाब के अधिकारी) रिवायतों में आता है कि आपने कुछ शरारती और बहुत कष्ट पहुँचानेवाले काफ़िरों के हक़ में बद्दुआ की थी, उस पर यह आयत उतरी थी। **"यतूब अलैहिम्"**— यानी उन्हें इस्लाम स्वीकार करने की तौफ़ीक़ दे दे (उनके मन में यह बात डाल दे)। इतने ही टुकड़े से ज़ाहिर हो गया था कि मक्का को काफ़िरों में से कुछ अवश्य ईमान ले आयेंगे, चुनांचे ले आये। **"युअज़्ज़िबहुम्"**— यानी इस दुनिया में अज़ाब दे दे। **"लैस लक मिनल्अम्रि शैअ"**— इन शब्दों से यह भी ज़ाहिर हो गया कि अल्लाह की इच्छाओं में किसी मख्लूक़ या बन्दे को दखल नहीं है, यहाँ तक कि जो बन्दे उसके बहुत सन्निकट हैं उनको भी नहीं— न कि किसी वली, किसी बुज़ुर्ग को उसकी स्वेच्छा में दखल देनेवाला मान लिया जाए।

६५ (अतः मेहरबानी और मोक्ष देने के लिए उसे किसी विशेष कारण की आवश्यकता नहीं।) **"यग़्फ़िरु लिमंय्यशाउ"**— यह मेहरबानी उसके रहमत के क़ानून के अनुसार होगी। **"युअज़्ज़िबु मंय्यशाउ"**— यह अज़ाब उसके खास हिकमत के नियमों के अन्तर्गत होगा। **"वल्लाहु अल्अर्ज़"**— यानी एक मामला क्या, ज़मीन तथा आसमानों की सारी हुकूमत में उसी क़ब्ज़ा और उसी का दखल है, न उसका कोई साझेदार है, न कोई उसका मंत्री और न उसे राय-मशविरा देनेवाला है। अल्लाह की मिल्कीयत, ज़मीन व आसमान के लिए अवलोकित हों सूरए बक़रः के अन्तिम रुकूअ के आरम्भ का हाशिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तअ्कुलुर्रिबा अज़्आफ़म् - मुज़ाअफ़तन् ़ वत्तक़ुल्लाह लअ़ल्लकुम् तुफ़्लिहून ज (१३०) वत्तक़ुन्नारल्लती अुअि़द्दत् लिल्काफ़िरीन ज (१३१) व अतीअुल्लाह वर्रसूल लअ़ल्लकुम् तुर्हमून ज (१३२) व सारिअ़ू अिला मग़्फ़िरतिम्-मिर्रब्बिकुम् व जन्नतिन् अ़र्ज़ुहस्-समावातु वल्अर्ज़ु ला अुअि़द्दत् लिल्मुत्तक़ीन ला (१३३) अल्लज़ीन युन्फ़िक़ून फ़िस्सर्राअि वज़्ज़र्राअि वल्काज़िमीनल्-ग़ैज़ वल्आफ़ीन अ़निन्नासि त वल्लाहु युहि़ब्बुल् मुह़्सिनीन ज (१३४) वल्लज़ीन अिज़ा फ़अ़लू फ़ाहि़शतन् औ ज़लमू अन्फ़ुसहुम् ज़करुल्लाह फ़स्तग़्फ़रू लि ज़ुनूबिहिम् ़ व मंय्यग़्फ़िरुज़्ज़ुनूब अिल्लल्लाहु ़ क़िफ़ व लम् युसिर्रू अला मा फ़अ़लू व हुम् यअ़्लमून (१३५) अुलाअिक जज़ाअु - हुम् मग़्फ़िरतुम्-मिर्रब्बिहिम् व जन्नातुन् तज्री मिन् तह़्तिहल् - अन्हारु ख़ालिदीन फ़ीहा त व निअ्म अज्रुल्-आमिलीन त (१३६)

لن تنالوا ٤ — ٥٣ — ال عمران ٣

غفور رحيم ۝ يايها الذين امنوا لا تاكلوا الربوا اضعافا مضعفة
واتقوا الله لعلكم تفلحون ۝ واتقوا النار التي اعدت للكفرين ۝
واطيعوا الله والرسول لعلكم ترحمون ۝ وسارعوا الى مغفرة
من ربكم وجنة عرضها السموت والارض اعدت للمتقين ۝
الذين ينفقون في السراء والضراء والكظمين الغيظ والعافين
عن الناس والله يحب المحسنين ۝ والذين اذا فعلوا فاحشة
او ظلموا انفسهم ذكروا الله فاستغفروا لذنوبهم ومن يغفر
الذنوب الا الله ولم يصروا على ما فعلوا وهم يعلمون ۝
اولئك جزاؤهم مغفرة من ربهم وجنت تجري من تحتها
الانهر خلدين فيها ونعم اجر العملين ۝ قد خلت من
قبلكم سنن فسيروا في الارض فانظروا كيف كان عاقبة
المكذبين ۝ هذا بيان للناس وهدى وموعظة للمتقين ۝
ولا تهنوا ولا تحزنوا وانتم الاعلون ان كنتم مؤمنين ۝
ان يمسسكم قرح فقد مس القوم قرح مثله وتلك الايام
نداولها بين الناس وليعلم الله الذين امنوا ويتخذ منكم
شهداء والله لا يحب الظلمين ۝ وليمحص الله الذين
امنوا ويمحق الكفرين ۝ ام حسبتم ان تدخلوا الجنة ولما

منزل ١

क़द् ख़लत् मिन् क़ब्लिकुम् सुननुन् ला फ़ सीरू फ़िल्अर्ज़ि फ़न्ज़ुरू कैफ़ कान आक़िबतुल्-मुकज़्ज़िबीन (१३७) हाज़ा बयानुल्लिन्नासि व हुदंव्व मौअि़ज़तुल्-लिल्मुत्तक़ीन (१३८) व ला तहिनू व ला तह़्ज़नू व अन्तुमुल्-अअ़्लौन अिन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (१३९) अिंय्यम्सस्कुम् क़र्हुन् फ़क़द् मस्सल्क़ौम क़र्हुम्-मिस्लुहू त व तिल्कल्-अय्यामु नुदाविलुहा बैनन्नासि ज व लि यअ़्लमल्लाहुल्लज़ीन आमनू व यत्तख़िज़ मिन्कुम् शुहदाअ त वल्लाहु ला युहि़ब्बुज़्ज़ालिमीन ला (१४०) व लि युमह़्हि़सल्लाहुल्लज़ीन आमनू व यम्हक़ल्-काफ़िरीन (१४१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! सूद कई-कई हिस्सा बढ़ाकर न खाओ और अल्लाह से डरते रहो, ताकि तुम भलाई पा जाओ[६६]। (१३०) और आग से डरो जो काफ़िरों के लिए तैयार की गयी है[६७]। (१३१) और अल्लाह और रसूल की आज्ञा मानो, ताकि तुम पर रहम किया जाय[६८]। (१३२) और मोक्ष के लिए, जो तुम्हारे परवरदिगार की ओर से है, दौड़ो और जन्नत की तरफ़ (दौड़ो)[६९] जिसका फैलाव सारे आसमान और ज़मीन हैं, और जो परहेज़गारों के लिए तयार की गयी है[७०]। (१३३) यह लोग हैं जो फ़राग़त (ख़ुशहाली) और तंगी (दोनों) में ख़र्च करते हैं और ग़ुस्से को पी जानेवाले हैं और लोगों को क्षमा करनेवाले हैं। और अल्लाह एहसान करनेवालों को दोस्त रखता है[७१]। (१३४) और यह वह लोग हैं कि जब कोई बेजा हरकत कर बैठते हैं या अपनी ही जान पर कोई ज़ुल्म कर डालते हैं तो अल्लाह को याद कर लेते हैं और अपने गुनाहों से माफ़ी माँगने लगते हैं[७२]। और कौन माफ़ कर सकता है गुनाहों को सिवाय अल्लाह के ? और यह (लोग) अपने किए हुए पर हठ नहीं करते ऐसी दशा में कि वह जान रहे हों[७३]। (१३५) ऐसे लोगों की जज़ा (फल और बदला) उनके परवरदिगार की ओर से क्षमा है और (जन्नत के) बाग़ हैं जिनके नीचे नदियां पड़ी बह रही होंगी, उनमें वह हमेशा (हमेश) रहेंगे। और काम करनेवालों के लिए कैसा अच्छा मुआवज़ा है[७४]। (१३६) यक़ीनन् तुम से पूर्व (विभिन्न) तरीक़े (वाले) गुज़र चुके हैं सो तुम सारी धरती पर चलो-फिरो और देख लो कि झुठलानेवालों का क्या अंजाम हुआ है[७५]। (१३७) यह एक ऐलान (घोषणा) है (सारे) लोगों के लिए और डरनेवालों के लिए हिदायत और नसीहत है[७६]। (१३८) और न हिम्मत हारो और न ग़म करो, तुम ही विजयी रहोगे अगर तुम मोमिन रहे[७७]। (१३९) अगर तुम्हें कोई ज़ख़्म पहुँच जाए, तो उन लोगों को भी तो ऐसा ज़ख्म पहुँच चुका है[७८]। और हम इन दिनों की उलट-फेर तो लोगों के बीच करते ही रहते हैं[७९], ताकि ईमानवालों को जान ले और तुममें से कुछ को शहीद बनाये। और अल्लाह ज़ालिमों को दोस्त नहीं रखता[८०]। (१४०) और ईमानवालों को मैल-कुचैल से साफ़ कर दे और काफ़िरों को मिटा दे[८१]। (१४१)

---

६६ (और फ़लाह का शब्द दुनियावी, आख़िरत की, व्यक्तिक एवं सामूहिक हर प्रकार की भलाई का अर्थ अपने भीतर समोये हुए हैं।) **"वत्तक़ू······तुफ़्लिहून"**— तक़्वा (संयम) और फ़लाह (भलाई) में यह अनिवार्यता बताकर गोया यह सच्चाई प्रकट करा दी गई है कि भलाई तथा सफलता या दुनिया में शान्तिमय जीवन व्यतीत करने का भेद संयम एवं तक़्वा पर कार्यरत रहने में छुपा हुआ है। **"लअ़ल्लकुम"**—'लअ़ल्ल' के शाब्दिक अर्थ हैं "अजब नहीं" परन्तु ऊपर गुज़र चुका है कि '**लअ़ल्ल**' जब ख़ुदा के वादे के वर्णन में आता है तो उसके अर्थ में बजाय सन्देह और भ्रम के यक़ीन एवं विश्वसनीयता पैदा हो जाती है और अनुवाद "ताकि" से शुद्ध होता है। **'ला तअ्कुलुर्रिबा'**— यानी सूदी कारोबार और लेन-देन को बिलकुल हराम समझो। सूद के हराम होने पर तीसरे पारे में सूरए बक़र: की समाप्ति पर हाशिए गुज़र चुके हैं। **"अर्रिबा"**— से मुराद वही 'रिबा' है जिससे जाहिलीयत वाले ख़ूब परिचित थे, न कि केवल "रिबा", अपने शब्दकोश वाले अर्थ में या ज़्यादती के मानी में। **"अज़्आफ़म्-मुज़ाअ़फ़तन्"**— सूद की विशेषता ही यह है कि जो ग़रीब हैं वह और ग़रीब और जो अमीर हैं वह और अमीर हो जाते हैं। आयत में सूद के इसी दोगुने, चौगुने हो जानेवाले गुण की ओर संकेत है। यह मुराद नहीं कि सूद दर सूद न लो और सूद सादा ले सकते हो। आलिमों का कहना है कि आयत से मरजीया वर्ग की काट का पहलू निकलता है जिनका अक़ीदा यह था कि ईमान के बाद कोई गुनाह कुफ़्र नहीं और न मोमिन के लिए किसी हाल में दोज़ख़ का अज़ाब है। आदेशों के विषय की आयतों में उतरनेवाली यह सबसे आख़िरी आयत है।

६७ यानी जहन्नम की आग वास्तव में है तो काफ़िरों के लिए, कहीं तुम काफ़िरों के कार्य कर-करके अपने को इस आग की लपेट में न ले आना। तफ़्सीर के इमामों ने कहा है कि यह तम्बीह उन लोगों के लिए है जो सूद खाने को अक़ीदे के रूप में हलाल समझते हैं और इस कारण कुफ़्र की सीमाओं में प्रवेश किये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुए थे। इमाम अबू हनीफ़ा से यह क़ौल लिया गया है कि यह क़ुर्आन मजीद को सबसे ज़्यादा डरानेवाली आयत है, क्योंकि इसमें दोज़ख से, जो वास्तव में कुफ़्र की सज़ा है, उन लोगों को भी डराया गया है जो अल्लाह की हराम की हुई चीज़ों से नहीं बचते।

६८ (दुनिया और आखिरत दोनों में) **"व अतीऊ"**— यानी अल्लाह और रसूल की आज्ञा प्रसन्नचित्त से मानो। आयत से स्पष्ट हो गया कि अल्लाह की रहमत हासिल करने और उसे अपने में समोने का साधन अल्लाह और रसूल की आज्ञाकारिता है।

६९ (अपने आमाल के ज़रीए से) **"इला ......रब्बिकुम्"** हर मोमिन के अमल का अन्तिम उद्देश्य और जीवन की सबसे बड़ी प्राप्ति यही अल्लाह की ओर से मोक्ष का पाना है। उसकी दया का पात्र बनना है। इससे ज्ञात हुआ कि इस्लाम एक ऐसी सच्चाई का नाम नहीं है जो सारी बुराइयों को स्वयं दूर कर देती है। केवल गुनाहों से बचना ही काफ़ी नहीं है, बल्कि मुसलमानों को यह आदेश मिला है कि इस्लाम के क़बूल करने का पूरा हक़ अदा करें। नेकियों की ओर लपकें और इस प्रकार जन्नत को प्राप्त करके रहें जो अल्लाह की रज़ामन्दी का स्थान और उसकी कृपाओं के प्रकट होने की जगह है।

७० (और गोया उन्हीं के इन्तिज़ार में है।) **"अर्ज़ुहस्समावातु वल्अर्ज़ु"** वह बेहद चौड़ी है उस उसमें सबकी गुंजाइश है। वहाँ जगह न होने तथा भीड़-भाड़ और परेशानी होने का प्रश्न ही नहीं है। जन्नत की बिलकुल स्पष्ट नाप बताना उद्देश्य नहीं है, बल्कि उसकी अनिश्चित बेथाह गुंजाइश और फैलाव को ज़ाहिर करना है। अरबी मुहावरे में बेहद फैलाव को ज़ाहिर करने की शैली यही है। **'अर्ज़'** से मुराद यहाँ चौड़ान नहीं बल्कि खालिस फैलाव और गुंजाइश है।

७१ आर्नल्ड इत्यादि फ़िरंगी आलिमों ने कहा है कि अरब जैसी गुस्सेवर, लड़ाका और लड़ाई का पेशा करनेवाली क़ौम के सामने सब्र और ज़ब्त एवं धैर्य तथा मुलायमियत और शिष्टता, शान्ति और सन्धि के जैसे मेयार को प्रस्तुत करना और फिर उस शिक्षा को सफल और बनाना स्वयं एक मोजिज़ा है। **"युन्फ़िक़ून"** यानी अल्लाह की राह में खर्च करते रहते हैं। केवल खर्च करना ज़ाहिर है कि शरीअत में कदापि पसन्द आनेवाला कार्य नहीं है। **'फ़िस्सर्राइ वज़्ज़र्राइ'** यानी हर दशा में और हर सूरत में दीन और उम्मत की माली आवश्यकताओं से सम्बद्ध खर्च करते हैं, यह नहीं कि सम्पन्न हुए तो भोग-विलास में पड़कर नेक कार्यों से हाथ ही खींच बैठे या तंगी हुई तो नाशुक्रे बनकर अपनी बिसात भर खर्च भी न किया और हाथ रोक लिया। **"अल्काज़िमीनल्-ग़ैज़"**— **'कज़्म'** कहते है गुस्से को ज़ब्त कर जाने को। तो यह लोग वह हुए जो गुस्से के क़ाबू में नहीं आते बल्कि उससे मुक़ाबला करके उसे पराजित कर लेते हैं और अपने ऊपर क़ाबू रखते हैं। बाज़ शोधकारों ने यह अच्छा लिखा है कि यहाँ **"फ़ाक़िदीनल्-ग़ैज़"** नहीं इर्शाद हुआ यानी उसकी प्रशंसा नहीं आई जिसको सिरे से गुस्सा आता ही न हो, बल्कि यह आया है कि गुस्से को क़ाबू में रखा जाए और अक़्ल भावनाओं पर हाकिम रहे, उनके आधीन न हो जाए। गुस्सा पैदा होता है प्राकृतिक गर्मी या आत्मसम्मान से। उसे मिटा देना कदापि इस्लाम का उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य केवल उसे हद के अन्दर रखने का है। और उचित अवसर पर उत्पन्न हो तो बुराई नहीं है। स्वयं गुस्सा मना नहीं; न ही शरई तौर पर गुनाह है, न अक़्ली तौर पर हानिकारक है। गुस्से को ज़ब्त करने की बड़ी बड़ाई हदीसें नबवी में अक्सर आई है। मिसाल के रूप में एक हदीस है— "ज़ाहिर करने पर शक्तिसम्पन्न होते हुए भी जो व्यक्ति अपने को रोक ले जाए अल्लाह उसकी आत्मा को शान्ति तथा ईमान से परिपूर्ण कर देगा।" मसनवी में हज़रत रूमी ने एक कथा लिखी है किसी ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम से प्रश्न किया कि सृष्टि में सबसे कड़ी चीज़ क्या है? आपने उत्तर दिया कि खुदा का ग़ज़ब (प्रकोप) जिससे दोज़ख थरथराती रहती है। उसने पूछा, फिर उससे बचाव की क्या विधि है? आपने फ़र्माया कि अपने गुस्से को पी जाना! **"अल्आफ़ीन अनिन्नासि"**— यानी लोगों के क़ुसूरों और खताओं को भी माफ़ कर देते हैं। यही नहीं कि शक्ति होते हुए खता करनेवाले से बदला नहीं लेते, बल्कि उसे माफ़ भी कर देते हैं। यह दर्जा **"काज़िमीनल्-ग़ैज़"** से बेहतर है और उससे ऊँचा है। वह अगर केवल एक दूर कर देनेवाली भावना थी तो यह एक माननेवाला मर्तबा है, सम्मान है। **'अल्-मुह्सिनीन'**— **'मुह्सिनीन'** का दर्जा **'काज़िमीन'** (गुस्से को पी जानेवाले) और **'आफ़ीन'** (माफ़ कर देनेवाले) दोनों से ऊँचा है यानी माफ़ करने से भी आगे बढ़कर यह और अच्छे व्योहार से पेश आते हैं। नैतिक एवं शिष्टता की शिक्षा के अवसर पर अक्सर क़ुर्आन ने दर्जावारियत को सामने रखा है और इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह आयत है। तीनों मुक़ाम बड़ाई के हैं, परन्तु यह तीसरा स्थान सबसे ऊँचा है। मुहद्दिस बिहक़ी ने सय्यदना हुसैन बिन अली (रज़ि०) से सम्बन्धित एक रिवायत नक़्ल की है कि आपको एक जारिया वज़ू करा रही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी कि लोटा उसके हाथ से छूटकर आप पर गिरा। ग़ुस्सा आना प्राकृतिक बात थी। जारिया ने तुरन्त क़ुर्आन के शब्द दोहराये–– **"अल्काज़िमीनल्-ग़ैज़"** आपका ग़ुस्सा दूर हो गया, फिर जारिया ने **"अल्आफ़ीन-अनिन्नास"** पढ़ा, आपने फ़र्माया, मैंने माफ़ कर दिया। अब जारिया की ज़बान पर **"वल्लाहु युहिब्बुल् मुह्सिनीन"** आया। आपने फ़र्माया, जा मैंने तुझे आज़ाद किया। (रूह)। रसूले इस्लाम (स०) की ज़िन्दगी तो बिलकुल क़ुर्आन के साँचे में ढली हुई थी ही, रसूल से सम्बन्धित और उनसे रिश्ता रखनेवाले भी किस बड़ी हद तक ईश्वरीय आत्मा के मालिक बन चुके थे।

७२ (शर्त के नियमानुसार) **"फ़ाहिशतन्"**— **'फ़ाहिशत'** हर गुनाह पर लागू है। यानी हर गुनाह फ़ुहुश है, गन्दा है यहाँ मुराद वह बुराई है जो किसी दूसरे के साथ की जाए यानी बन्दगी की अदाई के हक़ में कोताही हो जाए। **"औ ज़लमू अन्फ़ुसहुम्"**–– यानी अल्लाह के जो हक़ हैं वह छूट जायें। **"ज़करुल्लाह"**–– का सकेत इस ओर है कि नाफ़र्मानियाँ उनसे पूरे इरादे और जान-बूझकर आत्मा की बुराई के आधार पर नहीं हुई हैं, बल्कि अल्लाह तआला के हुक्मों की ओर से ग़फ़्लत उनके ज़ेह्नों पर सामयिक रूप से छा जाती है। आयत से यह भी अन्दाज़ा हो गया कि कभी-कभी कोई त्रुटि हो जाने से अल्लाह से निकटतम होने में बाधक नहीं है। अस्ल और प्रथम चीज़ हर ग़लती और उससे बचने की तदबीर करना और त्रुटियों की तलाफ़ी है कि भविष्य में दुबारा वह त्रुटि न होने पाये। **'फ़स्तग़्फ़रू'**— इस्तिग़्फ़ार (तौबा करना और गुनाहों की माफ़ी माँगना) सही और विश्वसनीय वही है जो केवल ज़बान से नहीं दिल से और दिली शर्मिन्दगी और दुःख के साथ और इस पक्के इरादे के साथ हो कि अब वह गुनाह दुबारा नहीं होने पायेगा। वरना अगर हाथ में तस्बीह चल रही है और दिल बदस्तूर गुनाहों का आनन्द ले रहा है, तो बड़ों ने कहा है कि यह इस्तिग़्फ़ार ख़ुद इस्तिग़्फ़ार के योग्य है और अजब नहीं कि ऐसे इस्तिग़्फ़ार की गिनती मज़ाक़ हो जाए।

७३ (यानी अपनी किसी ग़लती पर जान-बूझकर कदापि जमे नहीं रहते।) **"व मंय्यग़्फ़िरुज़्ज़ुनूब इल्लल्लाहु"**— यह तम्बीह है इस बात पर कि गुनाहों की माफ़ी केवल अल्लाह के हाथ में है। किसी नबी, वली, फ़िरिश्ता आदि के हाथ में नहीं है और इसमें विशेषता के साथ रद है इस मसीही अक़ीदे का कि गुनाहों की माफ़ी मसीह बल्कि उनके सहायकों के अधिकार में है। प्रचलित इन्जील का बयान अवलोकित हो— "जिस प्रकार बाप ने मुझे भेजा है मैं तुम्हें भेजता हूँ और यह कहकर उन पर फूँका और उनसे कहा कि 'रूहुल्क़ुदुस' को लो। जिनके गुनाह तुम बख़्शो, उनके बख़्शे गये हैं, और जिनके गुनाह तुम क़ायम रखो उनके क़ायम रखे गये हैं।" (यूहन्ना २०:२१-२४)। **"व हुम् यअ्लमून"**— यानी अपने अमल की बुराई जानते-बूझते हुए।

७४ (हर दुनियावी मज़दूरी और बदले तथा फल से कहीं ऊँची) **'उला'इक'** का संकेत उन्हीं लोगों की ओर है जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। ग़लतियाँ, ख़ताएँ तथा त्रुटियाँ उनसे प्रकट होती रहती हैं, साथ ही वह उनकी तलाशी और बचने के उपाय भी करते रहते हैं, उन्हीं के लिए यह जन्नत की नेमतें हैं जो बयान की जा रही हैं। **"आमिलीन"** शाब्दिक अर्थ है अमल करनेवाले परन्तु क़ुर्आनी मुहावरे में इससे मुराद है नेक अमल।

७५ (और इस अंजाम से सबक़ लेते रहो।) **"सुननुन्"**— यानी मुख़्तलिफ़ तौर-तरीक़े और यहाँ तौर-तरीक़ों पर अमल करनेवाले मुराद हैं। विभिन्न मतों और मज़हबों के लोग, मुश्‍रिक और काफ़िर भी और तौहीद तथा ईमानवाले भी। सारी पिछली उम्मतों और जातियों की ओर मुकम्मल संकेत इन शब्दों में आ गया और सुन्नत के मानी स्वयं उम्मत के भी हैं। अतः 'सुनन' होगा उम्म के मानी में यानी विभिन्न उम्मतें। **"सीरू फ़न्ज़ुरू"** दोनों सीग़े हुक्म के हैं, परन्तु अर्थ सैरो-सयाहत और घूमने-फिरने के नहीं हैं, बल्कि उद्दण्ड जाहिली क़ौमों के अंजाम से इब्रत हासिल कराना इसका उद्देश्य है, चाहे घूमकर चाहे किताबों में हालात पढ़कर। उनके नतीजों से सबक़ लेना है। भूगोल, इतिहास, असरियात और अर्थशास्त्र इत्यादि का अध्ययन अगर सही दृष्टिकोण और ईमान तथा ख़ुदा की पहचान प्राप्त करने के लिए किया जाए तो वह भी एक उपासना है, एक इबादत है। **"अल्मुकज़्ज़िबीन"**— यानी सच्चे दीन को झुठलानेवाली जातियों और उम्मतों का।

७६ मतलब यह हुआ कि क़ुर्आन एलाननामा है सारी दुनिया के लिए, परन्तु इससे लाभ वही लोग उठायेंगे जिनके दिलों में ख़ुदा का ख़ौफ़ होगा। **'हाज़ा'**— संकेत क़ुर्आन मजीद की ओर है। बाज़ ने हुक्म और मना करने के आदेश और वादा तथा चेतावनी का अर्थ निकाला है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३९८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अम् ह़सिब्तुम् अन् तद्ख़ुलुल्-जन्नत व लम्मा यअ़्लमिल्लाहुल्लज़ीन जाहदू
★ मिन्कुम् व यअ़्लमस्साबिरीन (१४२) व लक़द् कुन्तुम् तमन्नौनल्मौत मिन्
रु. १४/५ क़ब्लि अन् तल्क़ौहु त फ़क़द् रऐतुमूहु व अन्तुम् व तन्ज़ुरून (१४३) ★
आ १४ व मा मुहम्मदुन् अिल्ला रसूलुन् ज क़द् ख़लत् मिन् क़ब्लिहिर्रुसुलु त
अफ़अिम्मात औ क़ुतिलन्-क़लब्तुम् अला
अअ़्क़ाबिकुम् त व मंय्यन्क़लिब् अला अक़िबैहि
फ़ लंय्यज़ुर्रल्लाह शैअन् त व सयज्ज़िल्लाहुश्
शाकिरीन (१४४) व मा कान लि नफ़्सिन्
अन् तमूत अिल्ला बि अिज़्निल्लाहि
किताबम्-मुअज्जलन् त व मंय्युरिद्
सवाबद्दुन्या नुअ्तिही मिन्हा ज व
मंय्युरिद् सवाबल्-आख़िरति नुअ्तिही
मिन्हा त व सनज्ज़िश्-शाकिरीन (१४५)
व कअय्यिम्-मिन् नबिय्यिन् क़ातल ला मअहू
रिब्बिय्यून कसीरुन् ज फ़ मा वहनू लिमा
असाबहुम् फ़ी सबीलिल्लाहि व मा ज़अुफ़ू व
मस्तकानू त वल्लाहु युह़िब्बुस्साबिरीन (१४६)

لن تنالوا ٥٣ اٰل عمرٰن ٣

يَعْلَمِ اللّٰهُ الَّذِيْنَ جٰهَدُوْا مِنْكُمْ وَيَعْلَمَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٤٢﴾ وَلَقَدْ كُنْتُمْ
تَمَنَّوْنَ الْمَوْتَ مِنْ قَبْلِ اَنْ تَلْقَوْهُ فَقَدْ رَاَيْتُمُوْهُ وَ اَنْتُمْ
تَنْظُرُوْنَ ﴿١٤٣﴾ وَمَا مُحَمَّدٌ اِلَّا رَسُوْلٌ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ
اَفَاۡئِنْ مَّاتَ اَوْ قُتِلَ انْقَلَبْتُمْ عَلٰٓى اَعْقَابِكُمْ وَمَنْ يَّنْقَلِبْ عَلٰى
عَقِبَيْهِ فَلَنْ يَّضُرَّ اللّٰهَ شَيْـًٔا وَسَيَجْزِى اللّٰهُ الشّٰكِرِيْنَ ﴿١٤٤﴾ وَمَا
كَانَ لِنَفْسٍ اَنْ تَمُوْتَ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ كِتٰبًا مُّؤَجَّلًا وَمَنْ يُّرِدْ
ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهٖ مِنْهَا وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الْاٰخِرَةِ نُؤْتِهٖ مِنْهَا وَ
سَنَجْزِى الشّٰكِرِيْنَ ﴿١٤٥﴾ وَكَاَيِّنْ مِّنْ نَّبِيٍّ قٰتَلَ مَعَهٗ رِبِّيُّوْنَ كَثِيْرٌ
فَمَا وَهَنُوْا لِمَآ اَصَابَهُمْ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَمَا ضَعُفُوْا وَمَا
اسْتَكَانُوْا وَاللّٰهُ يُحِبُّ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٤٦﴾ وَمَا كَانَ قَوْلَهُمْ اِلَّآ
اَنْ قَالُوْا رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَاِسْرَافَنَا فِىْٓ اَمْرِنَا وَثَبِّتْ
اَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿١٤٧﴾ فَاٰتٰىهُمُ اللّٰهُ ثَوَابَ
الدُّنْيَا وَحُسْنَ ثَوَابِ الْاٰخِرَةِ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿١٤٨﴾ يٰۤاَيُّهَا
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ تُطِيْعُوا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا يَرُدُّوْكُمْ عَلٰٓى اَعْقَابِكُمْ
فَتَنْقَلِبُوْا خٰسِرِيْنَ ﴿١٤٩﴾ بَلِ اللّٰهُ مَوْلٰىكُمْ وَهُوَ خَيْرُ النّٰصِرِيْنَ ﴿١٥٠﴾
سَنُلْقِىْ فِىْ قُلُوْبِ الَّذِيْنَ كَفَرُوا الرُّعْبَ بِمَآ اَشْرَكُوْا بِاللّٰهِ مَا
لَمْ يُنَزِّلْ بِهٖ سُلْطٰنًا وَمَاْوٰىهُمُ النَّارُ وَبِئْسَ مَثْوَى الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٥١﴾

منزل

व मा कान क़ौलहुम् अिल्ला अन् क़ालू रब्बनग़्फ़िर् लना ज़ुनूबना व
अिस्राफ़ना फ़ी अम्रिना व सब्बित् अक़्दामना वन्सुर्ना अलल्क़ौमिल्-
★ काफ़िरीन (१४७) फ़ आताहुमुल्लाहु सवाबद्दुन्या व हुस्न सवाबिल्-आख़िरति त
रु. १५/६ वल्लाहु युह़िब्बुल्-मुह़्सिनीन (१४८) ★ या अय्युहल्लज़ीन आमनू
आ ५ अिन् तुतीअुल्लज़ीन कफ़रू यरुद्दूकुम् अला अअ़्क़ाबिकुम् फ़ तन्क़लिबू ख़ासिरीन
(१४९) बलिल्लाहु मौलाकुम् ज व हुव ख़ैरुन्नासिरीन (१५०) सनुल्क़ी फ़ी
क़ुलूबिल्लज़ीन कफ़रुर्रुअ़्ब बिमा अश्रकू बिल्लाहि मा लम् युनज़्ज़िल्
बिही सुल्तानन् ज व मअ्वाहुमुन्नारु त व बिअ्स मस्वज़्ज़ालिमीन (१५१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शायद तुम इस गुमान में हो कि जन्नत में जा दाखिल होगे और यद्यपि अभी अल्लाह ने तुममें
से उन लोगों को जाना ही नहीं जिन्होंने जिहाद किया और न सब्र करनेवालों को ★ रु. १४
जाना[८२]। (१४२) और तुम तो मौत की तमन्ना कर रहे थे इसके पूर्व कि उसके सामने ५
आओ, सो उसको तो अब तुमने खुली आँखों से देख लिया[८३]। (१४३) ★ आ १४

और मुहम्मद (स०) तो बस एक रसूल ही हैं[८४]। उनके पूर्व और भी रसूल गुज़र चुके
हैं[८५]। सो अगर वह वफ़ात पा जाएँ या क़त्ल हो जाएँ तो क्या तुम उलटे पाँव वापस चले
जाओगे[८६]। और जो कोई भी उलटे पाँव वापस चला जाएगा वह अल्लाह का कुछ भी
नुक़सान न करेगा[८७]। और अल्लाह निकट भविष्य में शुक्र-गुज़ारों को बदला देगा[८८]। (१४४)
और मुम्किन नहीं किसी जानदार के लिए कि वह एक नियत समय पर हुक्मे इलाही के बिना
मर जाए[८९]। और जो कोई दुनिया का लाभ चाहता है हम उसको दुनिया का हिस्सा दे देते हैं,
और जो कोई आखिरत का लाभ चाहता है तो उसे आखिरत का हिस्सा दे देंगे, और शीघ्र
ही हम शुक्र करनेवालों का बदला दे देंगे[९०]। (१४५) और कितने नबी हो चुके हैं कि उनके
साथ होकर बहुत से अल्लाहवाले लड़े हैं[९१]। सो जो कुछ उन्हें अल्लाह की राह में पेश आया
उससे न तो उन्होंने हिम्मत हारी और न वह कमज़ोर पड़े और न वह दबे; और अल्लाह सब्र
करनेवालों को दोस्त रखता है[९२]। (१४६) और उनका कहना तो बस इतना ही था कि
वह कहते रहे कि ऐ हमारे परवरदिगार! हमारे गुनाहों को और हमारे विषय में हमारी
ज़ियादती को बख़्श दे, और हमको अडिग रख और हमको काफ़िरों पर क़ाबू दे[९३]। (१४७) ★ रु. १५
सो अल्लाह ने उन्हें दुनिया का भी बदला दिया और आखिरत का भी उम्दा बदला। और ६
अल्लाह नेकी करनेवालों से स्नेह रखता है[९४]। (१४८) ★ आ ५

ऐ ईमानवालो! अगर तुम उन लोगों का कहना मानोगे जो काफ़िर हैं, तो वह तुम्हें
पिछले पैरों वापस कर देंगे, और तुम घाटे में पड़कर रह जाओगे[९५]। (१४९) तुम्हारा दोस्त
तो अल्लाह है; और वही सबसे अच्छा मददगार है[९६]। (१५०) हम अभी काफ़िरों
के दिलों में रोब डाल देंगे, इसलिए कि उन्होंने अल्लाह का शरीक ऐसी चीज़
को ठहराया जिसके लिए कोई दलील (तर्क) अल्लाह ने नहीं उतारी। और
उनका ठिकाना जहन्नम है। और कैसी बुरी जगह ज़ालिमों के लिए है[९७]?। (१५१)

---

८२ [उनके आमाल (कर्म) के ज़रीए] अल्लाह तआला के हमेशा के ज्ञान में जो कुछ भी हो, व्यक्तियों का जन्नत का हक़दार होना इस भौतिक दुनिया में उनके आमाल के बाद ही साबित हो सकता है। **"अन् तद्ख़ुलुल्-जन्नत"**— यानी जन्नत में विशेषता के साथ पहुँच जाओगे। यहाँ सम्बोधन सहाबः करीम से है। वह जन्नत को पाने के लिए लालायित नही थे, बल्कि उसके आला दर्जों और मर्तबों का भी साहस और क्षमता रखते थे और इन दर्जों के लिए जिहाद की कड़ी मंज़िलों से गुज़रना अनिवार्य था।

८३ (फिर उससे भय और डर क्यों है?) सम्बोधन सहाबा के एक गुट से है। बद्र की लड़ाई में मुसलमानों की आशा के प्रतिकूल और ज़ाहिरी हालात के विरुद्ध सफलता का हाल सुनकर बाज़ लोगों को खयाल पैदा हुआ कि अफ़्सोस है, हम उस अवसर पर उपस्थित न थे। अब काश कोइ मारका (युद्ध) फिर इस प्रकार का हो तो हम भी अपनी जानों की बाज़ियाँ लगा-लगाकर बद्र के शहीदों का-सा दर्जा हासिल करें। यहाँ उन्हीं को जवाब दिया जा रहा है कि पहले तो यह हिम्मत थी, सो अब कायरता क्यों दिखा रहे हो? **"मिन् क़ब्लि अन्तल्क़ौहु"**— यानी इस उहद की लड़ाई की घटना के पूर्व। **"तमन्नौनल् मौत"**— से मुराद या तो मौत का कारण और ज़रीआ मौत यानी जिहाद और जंग है या स्वयं शहादत की मौत। **"रअैतुमूहु"**— में सर्वनाम पुंलिंग ग़ाइब मौत या उसके कारण की ओर है।

८४ [और इसलिए फ़नापिज़ीर भी हैं (यानी उन्हें भी मृत्यु आनी है)। कोई ख़ुदा या उसके प्रतिबिम्ब या अंश तो हैं नहीं जो ज़िन्दगी के क़ानून से परे हो सकें।] **"मुहम्मद (स०)"**— यह शुभनाम

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ३६८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ३६५ से)

७७ ऐ ईमानवालो ! **"इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन"**— प्रभावी और क़ाबू होने के वादे के लिए ध्यान रहे कि ईमान की पुख़्तगी की शर्त लगी हुई है। **"अल्‌अ़्लौन"**— यह बड़ाई और क़ाबू रखने का वादा हर प्रकार के सम्मान तथा हर तरह से ग़लबा रखने के मानी में है चाहे वह भौतिक या रूहानी (आत्मिक) या किसी प्रकार की प्राथमिकता हो, यद्यपि सन्दर्भ में भौतिक ग़लबा और बड़ाई ही ज़्यादा उचित प्रतीत होती है।

७८ (तो तुम्हारी किसी परेशानीवाली घटना से उनको क्या प्रसन्नता हो सकती है ? उन्हें भी तो ऐसी घटनाएँ पेश आ चुकी हैं।) **"इंय्यम्सस्कुम् क़र्हुन्"** संकेत है होनेवाली उहद की जंग की ओर जिसमें क़ुरैश की सख़्त पराजय हुई थी। **"मस्सल्क़ौम मिस्लुहू"** इशारा है जंगे बद्र की ओर। उसमें क़ुरैश की सख़्त पराजय हुई थी।

७९ (सृष्टि की उत्पत्ति के लिहाज़ से और उसकी मस्लहत के आधार पर) अतः केवल जीत और हार को ही सत्य और असत्य का मेयार न समझा जाए। **"तिल्‌कल्-अय्यामु"**— यानी विजय और सफलता का ज़माना।

८० (अतः ज़ालिमों के सत्य पर होने का तो गुमान भी न किया जाए चाहे कायनाती मस्लहतों के आधार पर उन्हें सामयिक और हंगामी सफलताएँ कैसी ही प्राप्त हो जाएँ।) **"लि यअ्‌लमल्लाहुल्लज़ीन आमनू"**— यानी मोमिनों का ईमान सारी दुनिया पर रौशन हो जाए— उनके आमाल, बलिदान और त्याग के आधार पर। **"व यत्तख़िज़ मिन्कुम् शुहदा'अ"**— सत्य मार्ग की शहादत, मालूम है कि शरीअ़ते इस्लामी में रूहानी तरक़्क़ी की मेराज (उच्चतर कामयाबी एवं सफलता) और अल्लाह के निकट होने का आला मर्तबा है।

८१ (उन्हें इसी अस्थायी सफलता पर और अधिक गौरवान्वित करके) उसी उहद की लड़ाई का बयान चल रहा है। एक फ़िरंगी इतिहासकार ने हाल ही में विवरण दिया है कि उहद में यद्यपि क़ुरैश विजयी हुए, परन्तु यही अस्थायी विजय उनके भविष्य के पतन का द्योतक हो गयी। **"व लि युमह्हि-सल्लाहुल्लज़ीन आमनू"**— ईमानवालों को दुनियावी नियमों के आधार पर जब भी कोई परेशानी होती है तो या तो गुनाहों के कफ़्फ़ारे के रूप में होती है या उसके दर्जों की बलन्दी के लिए होती है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ३६७ से)

क़ुर्आन में पहली बार आया है। शाब्दिक अर्थ हैं वह व्यक्ति जिसकी प्रशंसा और गुणगान बहुत बार या बार-बार किया जाए। या जो नेक गुणों का मज्मूअ़ः अर्थात योग्य हो। यह इस्मे अलम है हमारे रसूल और दुनिया के आख़िरी नबी का। हुज़ूर के नबी होने और इस दुनिया में आने के पूर्व इस नाम का प्रचलन बहुत कम था। अल्लामा अबू जाफ़र मुहम्मद बिन हबीब बुग़दादी मर्हूम (२४५ हिजरी) कुल सात आदमी इस नाम के गिनाये हैं। (किताबुल् मुहबर—पृ० १३०)। और उनमें से एक मुहम्मद बिन सुफ़्यान बिन मजाशे के विषय में यह लिखा है कि उनके पिता ने एक शानी राहिब से यही सुनकर कि भविष्य में पयम्बर का नाम मुहम्मद (स०) होगा, यह नाम अपने लड़के का रख दिया। ताजुल् उरूस और लिसानुल् अरब में भी यही नाम नक़्ल हुए हैं। आम तौर से अरब में यह नाम प्रचलित न था।

८५ और इन सबने अपने-अपने वक़्त पर दुनिया को छोड़ दिया, सो यह भी अपने नियत समय पर वफ़ात पायेंगे और इसमें न कोई बात आश्चर्य की होगी और न आपकी तौहीन का कोई पहलू उत्पन्न होगा। रसूल का दर्जा इस्लाम में ख़ूब समझ लिया जाए। रसूल केवल बन्दे होते हैं। उन पर 'वही' उतरती है। न उनके अन्दर कोई आत्मा अवतरित किये होती है न वह ख़ुदा की शक्ति के प्रतिबिम्ब होते हैं और न ख़ुदा के पुत्र होने की कोई बात होती है। हुज़ूर की वफ़ात की घटना इतनी भयंकर थी कि हज़रत उमर फ़ारूक़ के जैसे गम्भीर और सम्मानित सहाबी सब्र और ज़ब्त खो बैठे और बे-इख़्तियार हो गये। ठीक उसी समय एक उनसे भी अधिक व्यक्तित्व के बुज़ुर्ग अबू बक्र सिद्दीक़ इसी आयत की तिलावत करके उनकी और सबकी भावनाओं को क़ाबू में ले आये थे।

८६ (कुफ़्र और बेदीनी की ओर) अर्थ सवाल का यह है कि जब दीन की सच्चाई तुम्हारी दृष्टि में साबित हो चुकी तो अब क़ासिद या पैग़म्बर यानी दीन को पहुँचानेवाले की ज़िन्दगी या मौत का उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हक़ीक़त एवं सच्चाई पर क्या असर ? जंगे उहद में जब हुज़ूर (स०) को ज़ख्म पहुँचा और किसी शैतान ने यह अफ़वाह उड़ा दी कि आप दुनिया से रुख़सत हो गये तो बाज़ सहाबा ने इस इन्तिहाई दुःखदायक सूचना से निराश तथा बद-दिल होकर युद्धस्थल छोड़ना शुरू कर दिया था और थोड़ी देर को मुनाफ़िक़ों की बन आयी थी। उन्होंने बराबर व्यंग्य करना और मज़हब छोड़ने का चाव दिलाना शुरू कर दिया था। इस आयत में इन सभी पहलुओं की ओर संकेत है। रसूल (स०) की वफ़ात को अभी कई वर्ष अवशेष थे, परन्तु अभी से उम्मत को इसके लिए तैयार किया जा रहा था। **"अफ़अिम्मात"**— इशारा प्राकृतिक कारणों से मौत आने की तरफ़ है— जैसे हज़रत इब्राहीम, हज़रत मूसा इत्यादि अपना समय पूरा करके प्राकृतिक कारणवश मौत पा गये। **"औ क़ुतिलत्"**— इशारा युद्ध में या यूँ ही किसी दुश्मने दीन के हाथों शहादत पाने की ओर है— जैसे हज़रत ज़करिया, हज़रत यह्या इत्यादि जो दीन के दुश्मनों के हाथों क़त्ल हुए। **"अन्-क़लब्तुम्.........अला अक़िबैहि"**— मुहावरे में क़िनाया है मज़हब से फिर जाने की ओर, जंग से फ़रार के माने भी हो सकते हैं।

८७ (बल्कि उसका वबाल ख़ुद अपने ही सर लायेगा।) जाहिली मज़हबों में देवताओं और उनके पूजनेवालों में एक प्रकार की बराबरी हमेशा रही है यानी माबूद भी अपनी पूजा होने और न होने से बराबर प्रभावित होते रहते हैं। क़ुर्आन मजीद बार-बार इस अक़ीदे पर चोट करता है।

८८ (और सबसे बड़ा आभार-प्रदर्शन तौहीद और रिसालत का इक़रार कर लेना है।) **'शाकिरीन'**— यह 'शुक्र' कुफ़्र के मुक़ाबले में है। अर्थ यह हुआ कि शीघ्र ही नेक बदला उन लोगों को मिलेगा जो अल्लाह की अस्ली नेमत दीने हक़ को अपनाकर इस रूप में उसको धन्यवाद देते हैं। यह शुक्र, कुफ़्र की ज़िद है। परन्तु शुक्र में वह सभी अंश और उंसुर शामिल हैं। जो मानव को मख़लूक़ के हक़ में लाभदायक एवं सेवक बनाते हैं और ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले—ख़ुदा) के मुक़ाबले में आज्ञाकारी और सेवक।

८९ और उस नियत समय का ज्ञान सिवाय अल्लाह के किसी को नहीं। फिर आख़िर जंग में सम्मिलित होने से इतना भय क्यों और उससे बचना क्यों ? मौत जब भी आयेगी ख़ुदा के हुक्म से आयेगी। उसके बिना नहीं आ सकती और फिर जब आयेगी नियत सयय पर आयेगी उसके पूर्व नहीं आ सकती, चाहे कैसे ही ख़तरे और भय क्यों न हों ! यदि दिमाग़ के सामने यह सच्चाइयां उपस्थित रहें तो मौत का प्राकृतिक भय भी एक औसत सीमा से अधिक न होने पाये। **"किताबम्-मुअज्जलन्"**— यह टुकड़ा अपने पूर्व के टुकड़े "सिवाय ख़ुदा के हुक्म" पर और बल देने के लिए है।

९० जिन्होंने अल्लाह की नेमत का शुक्र इस प्रकार अदा किया कि जंग में शरीक हुए और जिहाद से जी नहीं चुराया। **'अश्शाकिरीन'** से सीधे और वास्तव में वह लोग मुराद हैं जो इन आमाल में आख़िरत की नीयत किए हुए जिहाद में शरीक हुए। **"व मंय्युरिद् सवाबद्दुनया"** दुनिया का नफ़ा चाहना अस्ल और ख़ालिस रूप में मना नहीं है यहाँ अर्थ उस नफ़े का है, जो केवल दुनिया ही के लिए हो और आख़िरत में उसका कोई भाग न हो। **"सवाबद्दुनया"**— से मुराद है कि उद्देश्य केवल यही दुनिया हो और उसे **"फ़िद्दुनया हसन"** से मिलाया न जाए जिसका अर्थ यह है भलाई हासिल हो और उसकी प्राप्ति का स्थान यह दुनिया हो। दोनों फ़िक्रों के बीच ज़मीन-आसमान का अन्तर है। **"नुअ्तिही मिन्हा"** यानी यदि हमारी स्वेच्छा हुई तो उसकी यह इच्छा पूरी कर देंगे और आख़िरत के लाभ से वञ्चित करके उसका लाभ नक़द बदले के रूप में दुनिया में अदा कर देंगे। **"व मंय्युरिद् सवाबल् आख़िरति नुअ्तिही मिन्हा"** यह आख़िरत का सवाब अल्लाह की ओर से वादा किया हुआ और उसके ज़िम्मे है। सूरए बनी इस्राईल रुकूअ् ३ की आयतों में दुनियावी लाभ और आख़िरत के बदले को स्थिति के अन्तर को ख़ूब स्पष्ट कर दिया गया है। यहाँ दुनिया के लाभ को अपनी स्वेच्छा पर मौक़ूफ़ और निर्भर कर दिया है। यहाँ मोमिन के लिए उसके प्रयास पर आख़िरत का वादा, वादे के रूप में है। आज जो क़ौमें तौहीद को इन्कार करनेवाली और आख़िरत को भूली हुई हैं, वह भी देखने में नेकी के बड़े-बड़े काम कर डालती हैं। बड़े-बड़े अस्पताल खोलती हैं। मुहताज घर बनाती हैं। बड़ी-बड़ी नहरें खुदवाती है, बांध बनवाती हैं, पुल बनवा देती हैं और इसी प्रकार के जनहित के कार्य करती हैं, परन्तु उद्देश्य उनका केवल दुनिया होता है। मक़्सूद उनका कभी भी आख़िरत नहीं होता, अतः स्वाभाविक है कि ख़ुदा की पंजी में उनकी गिनती **"हसनात"** (नेकियों और नेक कामों) में न होगा और न उनको इससे आख़िरत में कोई लाभ मिल पायेगा।

९१ (ख़ुदा की सच्ची राह में या जिहाद अल्लाह की राह में) यहाँ यह बताया गया है कि जिहाद की सुन्नत पुराने ज़माने के नबियों के समय से चली आ रही है और इस पथ के पथिकों को बराबर इन मंज़िलों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से होकर गुज़रना पड़ा है। "रब्बिय्यून"— रिब्बी, रब्बानी के माने में है यानी अल्लाहवाले और मुराद आलिम और फ़क़ीह भी लिये गये हैं।

९२ (और दुनिया और आख़िरत में उनका दर्जा और मर्तबा बढ़ाता रहता है।) "मा' असाबहुम् फ़ी सबीलिल्लाहि"— यानी तरह-तरह की मुसीबतें और कष्ट इत्यादि "व मा ज़अ़ुफ़ू"— यानी हिरास और डर को अपने ऊपर क़ाबू न पाने दिया। "व मस्तकानू"— यानी कुफ़्र और अहलें कुफ़्र के सारे साज़ो-सामान और उनकी शान और शौकत से प्रभावित नहीं हुए, न रोब में आये। 'वहन', 'ज़अ़ुफ़' और 'अस्तकान' —तीन शब्द एक ही निकटता के अर्थ के बीच एक अन्तर इमाम राज़ी ने नक़ल किया है कि 'वहन' तो कहते हैं आत्मा की दुर्बलता को या बद-हिम्मती को; 'ज़अ़ुफ़' का सम्बन्ध जिस्मानी और भौतिक भारी शक्ति में घटाव से विशेषता का अर्थ रखता है और 'अस्तकानः' विनम्रता प्रकट करने को कहते हैं। एक दूसरा अन्तर भी उन्हीं मौलाना ने बताया है कि 'वहन' की तफ़्सीर भय का क़ाबू पा जाना और 'ज़अ़ुफ़' से मतलब है ईमान की कमज़ोरी और शक तथा सन्देह और 'अस्तकानः' का अर्थ है दीन की तब्दीली। 'वल्लाहु युहिब्बुस्साबिरीन' यह जो अल्लाह की राह में और उसके दीन की राह में दुनिया में तरह-तरह की मुसीबतें और कष्ट झेलते रहते हैं उनके दर्जों का क्या कहना है, यह अल्लाह के प्रिय होते हैं।

९३ आयत से इशारा इस तरफ़ हो गया कि बुज़ुर्गों की ज़बान भी विनम्रता एवं गुनाहों से सुरक्षित रहने के लिए लीन रहती है और वह भी अपनी त्रुटियों को मानकर ख़ुदा से क्षमायाचक रहते हैं। "ज़ुनूबना व इस्राफ़ना"— 'ज़ुनूब' का अर्थ है छोटी त्रुटियाँ एवं गुनाह और 'अस्राफ़' से मुराद है बड़े गुनाह। इमाम राज़ी ने नक़ल किया है कि 'ज़ुनूब' बड़े, छोटे दोनों गुनाहों के लिए आम तौर पर आता है। 'अस्राफ़' विशेष रूप से बड़े गुनाहों के लिए है। इब्ने फ़ोरक ने कहा है कि इससे क़दर्या (एक वर्ग) की बात का रद निकल आया, जिनका विचार है कि ख़ुदा बन्दों के कर्मों का बनानेवाला नहीं है। (बह्र)। इमाम राज़ी ने इससे मोतज़ला का रद भी निकाला है।

९४ आयत का अर्थ यह हुआ कि अल्लाह ने उन्हें दुनिया और आख़िरत दोनों में सफल बनाया और अन्त में नेकी करनेवालों को अल्लाह के स्नेह की शुभ सूचना दी गई— दुनिया और आख़िरत के सारे इनामों से बढ़-चढ़कर। 'सवाबद्दुन्या' यानी सफलता और विजय। "हुस्न सवाबिल् आख़िरति"— यानी जन्नत और वहाँ की नेमतें। आयत के शब्दों पर ज़रा ध्यान दिया जाए—'दुन्या' के साथ केवल सवाब (अमल का परिणाम या बदला) का शब्द है और आख़िरत के साथ 'हुस्न सवाब' का। 'हुस्न' तो आख़िरत ही के साथ मख़सूस है। दुनिया ग़रीब की तक़दीर में हुस्न कहाँ? यहाँ तो निरी नुमाइश ही नुमाइश रहती है।

९५ सो काफ़िरों के विचारों और उनके चाव से बचो। "यरुद्दूकुम् अला' अऽक़ाबिकुम्"— यानी तुम्हें उलटे पाँव बेदीनी और ख़ुदा को न मानने के अक़ीदे की ओर ढकेल ले जायेंगे।

९६ (सो उसके होते हुए तुम मदद और सहायता के लिए मख़्लूक़ पर क्यों नज़र रखते हो?) "अल्लाहु मौलाकुम्"— अल्लाह तुम्हारा दोस्त और संरक्षक है, सो वह तुम्हें बचायेगा। अल्लाहवालों के दिल इस शुभ सन्देश और विश्वास के बाद कितने बढ़ जायेंगे। 'बल्' का अनुवाद "तो" से अदा किया गया है।

९७ (यानी उनके लिए जो ख़ुद अपने ऊपर ज़ुल्म करते रहते हैं।) "मा लम् युनज़्ज़िल् बिही सुल्तानन्"— यानी शिर्क के समर्थन में न कोई अक़्ली तर्क मौजूद है और न किताबों में लिखित ही पाया जाता है। "सनुल्क़ी.........रुऽब" दीन के दुश्मनों के दिलों पर रोब या ख़ुदा का भय किस प्रकार मोजिज़ाना अन्दाज़ में छा गया, इसकी एक यादगार मिसाल इतिहास के पन्नों में यूँ सुरक्षित है कि उहद की लड़ाई में जब अन्तिम विजय देखने में मुश्रिकों को हो गई तो स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए था कि वह मदीना नगर पर चढ़ दौड़ें। अब फ़ासिला ही क्या था? परन्तु इसकी उन्हें हिम्मत नहीं पड़ी बल्कि उलटे वापस ही जाना पड़ा, और इसके विपरीत हारे हुए मुसलमानों ने उनका पीछा किया और यह पीछा उनके बेमिसाल सेनानायक के आधीन आठ मील दूर 'हमराउल् असद' तक किया गया। यहाँ तीन दिन तक मुसलमानों का कैम्प रहा और लगे हाथों दुश्मन का एक आदमी भी गिरफ़्तार कर लाये। यह अहम जंगी कार्यवाही उस महान ख़ुदाई सेनानायक ने की हो इस उद्देश्य से थी कि मक्के के मुश्रिकों पर रोब पड़ जाए और उनको यह वहम न हो कि मुसलमानों ने हार मान ली है। "बिमा' अश्रकू" — यानी यह रोब उनके शिर्क की बिना पर डाला गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४०३ से)

और आगे बढ़े और बद्र का जोशोखरोश ताज़ा हो गया, परन्तु जोश की इफ़रात में उनका सन्तुलन स्थिर न रहा। उनकी पंक्ति टूट गई और सफ़ों में क्रम बाक़ी न रहा और उन्हीं की एक जमाअत ने और अधिक आगे बढ़कर दुश्मन के खेमे-डेरे लूटने शुरू कर दिये। उधर टेकरी वाले तीर चलानेवाले दस्ते ने जो यह देखा कि शत्रु मैदान छोड़ चुका है और माले ग़नीमत लुटना शुरू हो गया है तो यह सोचा कि अब यहाँ मोर्चे पर जमे रहने का कोई अर्थ नहीं है। आदेश जिस समय तक ठहरने का था उसका पालन हो चुका अतः ५० में ४० तीर चलानेवालों ने मोर्चा छोड़ दिया और माले ग़नीमत की लूट में दूसरों के साथ सम्मिलित हो गये। खालिद बिन वलीद, जो बाद को ईमान ले आये और सैफ़ुल्ला कहलाये और मुसलमानों के प्रसिद्ध जनरल हुए, उस समय तक मुश्रिकों के रिसाले के सरदार थे, उनकी दूरदर्शी निगाह अवसर के घात में ही थी। अपने सवारों के साथ कावा काट उसी दर्रे की ओर से हल्ला बोल दिया। गिनती के दस सिपाही कितनी देर ठहरते। लड़ाई का पाँसा ज़रा देर में पलट गया और विजय मुसलमानों के हाथ आकर छिन गई। क़ुर्आन अपने मोजिज़ाना रंग में इस सारे दृश्य पर खुली हुई टीका-टिप्पणी कर रहा है। **"व तनाज़ऽतुम् फ़िल्अम्रि"** यानी अपने महान पथप्रदर्शक और नेता के आदेश के विषय में बहस करने लगे कि क्या अब भी वह आदेश बना हुआ है और उसका पालन आवश्यक है। ५० में से ४० तीरअन्दाज़ सिपाही लूट पर टूट पड़े थे और शेष १० अन्त तक सेनानायक के आदेश पर जमे रहे। **"व असैतुम्"**— यानी अपने सेनानायक और सच्चे नबी के आदेशों का उल्लंघन किया। यह दशा एक अलग मामला है और इसीलिए इस पर पकड़ हुई अन्यथा इस्लामी सेनाएँ साधारणतः आज्ञाकारिता, अनुशासन एवं आदेशों के मानने में एक मिसाल होती थीं। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित हों)।

१०० और इसीलिए ग़नीमत की लूट में पड़ गये। इशारा इन्हीं ४० जल्दबाज़ तीरअन्दाज़ों की ओर है। मुर्शिद थानवी ने फ़र्माया कि यह लूट भी दीन के शत्रुओं की हार ही पर आधारित थी, अतः इस प्रकार दुनिया की चाह पूरी तरह बुरी नहीं। यहाँ बुरा इस कारण से ठहराया गया, क्योंकि इसमें रसूल के आदेश का विरोध था यद्यपि वह भी विश्वासवश ही था। उहद की पहाड़ी की मदीना शहर के उत्तर में नगर से लगभग तीन मील पर स्थिति थी और पूरब-पश्चिम फैली हुई थी। उत्तरी चोटी जबल सूर कहलाती थी, उत्तरी भाग खुला हुआ था, परन्तु इस मैदान की ज़मीन असर होने के कारण उसमें कुछ खेती आदि नहीं हो सकती थी। मक्के के मुश्रिकों ने मुसलमानों पर इसी रास्ते से आक्रमण करना चाहा था और दक्षिण के मार्ग को, जो कठिन और कष्टदायक घाटियों से गुज़रता है, प्रयोग में नहीं लाये। उसमें लावे की शिलाएँ इस प्रकार बीच में आ गई हैं कि क़ाफ़िले वाले भी इसे इस्तेमाल नहीं करते। इस पहाड़ से केवल एक कठिनाई से जानेवाली पगडण्डी गुज़रती है, जो नाल की शक्ल की वादी से होकर उसकी ऊँची चोटियाँ तक चली गयी है। यह घाटी एक यससार मैदान है, जिसमें दो चश्मे बहते हैं। इसी घाटी में एक छोटा-सा पहाड़ी टीला है जिसको सम्भवतः इन्हीं चश्मों के कारण "ऐनैन" कहते हैं। हज़रत नबीए करीम (स०) ने यहाँ तीर चलानेवालों के दस्ते को नियुक्त किया था।

१०१ यह वह दस तीरअन्दाज़ थे जो नबी के आदेश पर बिलकुल अडिग रहे और अन्त तक अपने स्थान पर बने रहे। इन पर दीन का स्नेह इतना क़ाबू किये हुए था कि भौतिक लाभ की बड़ी से बड़ी इच्छा इन्हें जगह से हिला नहीं सकी।

१०२ (एक अस्थायी एवं सामयिक पराजय के ज़रीए से।) यह सुबूत है सहाबए नबवी पर बड़ा दया का और यहाँ इस सच्चाई का इज़हार है कि अस्थायी पराजय भी ईश्वरीय प्रकोप या उसकी ताड़ना की कोई फ़र्दन थी, बल्कि उसका उद्देश्य भी सहाबा की ईमानी शक्ति का परीक्षण था। **"सुम्म सरफ़कुम् अन्हुम"**— यानी जब तुममें अस्थिरता एवं कंपन पाया तो अल्लाह ने अपनी वह आसमानी सहायता एवं मदद रोक ली और तुम्हें शत्रुओं के मुक़ाबले में पराजय से दो-चार कर दिया।

१०३ (अतः अब आखिरत की पकड़ एवं पूछताछ का भय नहीं।) क्या ठिकाना है साधारण रूप से मोमिनों पर और विशेषतः रसूल के सहाबा पर अल्लाह की कृपा एवं स्नेह का। कैसे-कैसे तरीक़ों से तसल्ली दी जा रही है।

१०४ (कि इधर आओ मैं इधर हूँ) यह बयान हो रहा है मुसलमान सेना की भगदड़ और बदहवासी की अधिकता का और वास्तविकता यह है कि जब सेना में भगदड़ पड़ती है तो ऐसी ही बदहवासी

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४०४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व लक़द् सदक़कुमुल्लाहु वअ़्दहू इज़् तहुस्सूनहुम् बि इज़्निही ज हत्ता इज़ा फ़शिल्तुम् व तनाज़अ़्तुम् फ़िल्अम्रि व अ़सैतुम् मिम्बअ़्दि मा अराकुम् मा तुहिब्बून त मिन्कुम् मंय्युरीदुद्दुन्या व मिन्कुम् मंय्युरीदुल्-आख़िरत ज सुम्म सरफ़कुम् अ़न्हुम् लि यब्तलियकुम् ज व लक़द् अ़फ़ा अ़न्कुम् त वल्लाहु ज़ू फ़ज़्लिन् अ़लल्-मुअ्मिनीन (१५२) इज़् तुस्अिदून व ला तल्वून अ़ला अहदिंव्वर्रसूलु यद्अूकुम् फ़ी उख़्राकुम् फ़ असाबकुम् ग़म्मम्-बि ग़म्मिल्-लिकैला तह्ज़नू अ़ला मा फ़ातकुम् व ला मा असाबकुम् त वल्लाहु ख़बीरुम्-बिमा तअ़्मलून (१५३) सुम्म अन्ज़ल अ़लैकुम् मिम्बअ़्दिल्-ग़म्मि अमनतन्नुआ-संय्यग़्शा ताइफ़तम्-मिन्कुम् ज व ताइफ़तुन् क़द् अहम्मत्हुम् अन्फ़ुसुहुम् यज़ुन्नून बिल्लाहि ग़ैरल्हक़्क़ि ज़न्नल्-जाहिलिय्यति त यक़ूलून हल्लना मिनल्अम्रि मिन् शैइन् त क़ुल् इन्नल्-अम्र कुल्लहू लिल्लाहि त युख़्फ़ून फ़ी अन्फ़ुसिहिम् मा ला युब्दून लक त यक़ूलून लौ कान लना मिनल्-अम्रि शैउम्मा क़ुतिल्ना हाहुना त क़ुल् लौ कुन्तुम् फ़ी बुयूतिकुम् ल बरज़ल्लज़ीन कुतिब अ़लैहिमुल्क़त्लु इला मज़ाजिअ़िहिम् ज व लि यब्तलियल्लाहु मा फ़ी सुदूरिकुम् व लि युमह्हिस मा फ़ी क़ुलूबिकुम् त वल्लाहु अ़लीमुम्-बि ज़ातिस्सुदूरि (१५४) इन्नल्लज़ीन तवल्लौ मिन्कुम् यौमल्-तक़ल्-जम्आ़नि ला इन्नमस्तज़ल्ल-हुमुश्-शैतानु बि बअ़्ज़ि मा कसबू ज व लक़द् अ़फ़ल्लाहु अ़न्हुम् त इन्नल्लाह ग़फ़ूरुन् हलीमुन् (१५५)

وَلَقَدْ صَدَقَكُمُ اللّٰهُ وَعْدَهٗٓ اِذْ تَحُسُّوْنَهُمْ بِاِذْنِهٖ حَتّٰٓى اِذَا فَشِلْتُمْ وَتَنَازَعْتُمْ فِى الْاَمْرِ وَعَصَيْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَآ اَرٰىكُمْ مَّا تُحِبُّوْنَ مِنْكُمْ مَّنْ يُّرِيْدُ الدُّنْيَا وَمِنْكُمْ مَّنْ يُّرِيْدُ الْاٰخِرَةَ ثُمَّ صَرَفَكُمْ عَنْهُمْ لِيَبْتَلِيَكُمْ وَلَقَدْ عَفَا عَنْكُمْ وَاللّٰهُ ذُوْ فَضْلٍ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ ۝ اِذْ تُصْعِدُوْنَ وَلَا تَلْوٗنَ عَلٰٓى اَحَدٍ وَّالرَّسُوْلُ يَدْعُوْكُمْ فِىْٓ اُخْرٰىكُمْ فَاَثَابَكُمْ غَمًّاۢ بِغَمٍّ لِّكَيْلَا تَحْزَنُوْا عَلٰى مَا فَاتَكُمْ وَلَا مَآ اَصَابَكُمْ وَاللّٰهُ خَبِيْرٌۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝ ثُمَّ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ الْغَمِّ اَمَنَةً نُّعَاسًا يَّغْشٰى طَآئِفَةً مِّنْكُمْ وَطَآئِفَةٌ قَدْ اَهَمَّتْهُمْ اَنْفُسُهُمْ يَظُنُّوْنَ بِاللّٰهِ غَيْرَ الْحَقِّ ظَنَّ الْجَاهِلِيَّةِ يَقُوْلُوْنَ هَلْ لَّنَا مِنَ الْاَمْرِ مِنْ شَىْءٍ قُلْ اِنَّ الْاَمْرَ كُلَّهٗ لِلّٰهِ يُخْفُوْنَ فِىْٓ اَنْفُسِهِمْ مَّا لَا يُبْدُوْنَ لَكَ يَقُوْلُوْنَ لَوْ كَانَ لَنَا مِنَ الْاَمْرِ شَىْءٌ مَّا قُتِلْنَا هٰهُنَا قُلْ لَّوْ كُنْتُمْ فِىْ بُيُوْتِكُمْ لَبَرَزَ الَّذِيْنَ كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقَتْلُ اِلٰى مَضَاجِعِهِمْ وَلِيَبْتَلِىَ اللّٰهُ مَا فِىْ صُدُوْرِكُمْ وَلِيُمَحِّصَ مَا فِىْ قُلُوْبِكُمْ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ تَوَلَّوْا مِنْكُمْ يَوْمَ الْتَقَى الْجَمْعٰنِ اِنَّمَا اسْتَزَلَّهُمُ الشَّيْطٰنُ بِبَعْضِ مَا كَسَبُوْا وَلَقَدْ عَفَا اللّٰهُ عَنْهُمْ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अवश्य तुमसे अल्लाह ने सच कर दिखाया अपना (मदद का) वादा जब कि तुम उन्हें उसके हुक्म से क़त्ल कर रहे थे[९८]। यहाँ तक कि जब तुम (स्वयं ही) कमज़ोर पड़ गये और आपस में झगड़ने लगे हुक्मे (रसूल) के विषय में और आज्ञा-उल्लंघन किया बाद उसके कि अल्लाह ने तुम्हें दिखा दिया था जो कुछ कि तुम चाहते थे[९९]। बाज़ तुममें वह थे जो दुनिया चाहते थे[१००] और बाज़ तुममें ऐसे थे जो आखिरत चाहते थे[१०१]। फिर अल्लाह ने तुमको उनसे हटा लिया, ताकि तुम्हारी (पूरी) आज़माइश (परीक्षा) करे[१०२] और अल्लाह ने अवश्य तुमको क्षमा किया। और अल्लाह ईमानवालों के हक़ में बड़ा दयावाला है[१०३]। (१५२) (वह वक़्त याद करो) जब तुम चढ़े जा रहे थे और मुड़कर भी किसी को न देखते थे, और रसूल तुमको पुकार रहे थे तुम्हारे पीछे की ओर से[१०४]। सो (अल्लाह ने) तुम्हें ग़म दिया ग़म की सज़ा में[१०५], ताकि तुम रंजीदा न हुआ करो उस चीज़ पर जो तुम्हारे हाथ से निकल जाए और न उस मुसीबत से जो तुम पर पड़े। और तुम्हारे कार्यों से भली-भाँति खबर रखता है[१०६]। (१५३) फिर उसने उस ग़म के पश्चात् तुम्हारे ऊपर राहत उतारी (यानी) नींद कि उसका तुममें से एक जमाअत पर क़ाबू हो रहा था[१०७], और एक जमाअत वह थी कि उसे अपनी जानों की पड़ी हुई थी। यह अल्लाह के विषय में सत्य के विपरीत विचारों और जाहिलीयत के ख़यालों को स्थापित कर रहे थे[१०८]। यह कह रहे थे कि हमारा कुछ इख्तियार चलता है ?[१०९] आप कह दीजिए कि इख्तियार तो सारा अल्लाह का है[११०]। यह लोग दिलों में ऐसी बात छुपाये हुए हैं, जो आप पर ज़ाहिर नहीं करते[१११]। कहते हैं कि कुछ भी हमारा इख्तियार चलता तो हम यहीं न मारे जाते[११२]। आप कह दीजिए कि अगर तुम अपने घरों में होते (तब भी) वह लोग तो जिनके लिए क़त्ल तक़दीर बन चुकी थी, अपनी क़त्लगाहों की ओर निकल ही पड़ते[११३]। और (यह सब इसीलिए हुआ कि) अल्लाह तुम्हारी अन्तरात्मा का परीक्षण करे और ताकि जो कुछ तुम्हारे दिलों में है उसे स्पष्ट कर दे[११४]। और अल्लाह अन्तरात्मा की बातों को खूब जानता है। (१५४) अवश्य ही तुममें से जो लोग उस दिन फिर गये थे जिस दिन कि दोनों जमाअतें परस्पर आमने-सामने हुई थीं[११५], तो यह तो बस इस कारण से हुआ कि शैतान से उन्हें उनके बाज़ करतूतों के कारण ग़लती करा दी थी[११६]। और निःसन्देह अल्लाह उन्हें माफ़ कर चुका है[११७]। अवश्य ही अल्लाह बड़ा क्षमा करनेवाला बड़ा सहनशील है[११८]। (१५५) ★

★ रु. १६ / ७ आ ७

९८ (उहद की लड़ाई में) पूरी आयत में उहद की लड़ाई के विभिन्न पहलुओं का वर्णन है। यहाँ ज़िक्र उस समय का है जब तक मुसलमान शुरू जंग में रसूल के आदेशों पर क़ायम थे। **'तहुस्सूनहुम्'** इशारा दीन के दुश्मन यानी मक्का के मुशरिक हैं। **'हुस्स'** के मानी हैं क़त्ल। **'बि अिज़्निही'** में **'अिज़्न'** से मुराद अल्लाह का आदेश जो पैदाइश से सम्बद्ध है।

९९ यानी अपनी विजय और शत्रु की पराजय, जिसको तुम सीधे देख रहे थे। **"हत्ता' अिज़ा फ़शिल्तुम्"** यानी विजय और सफलता की स्थिति उस समय तक बनी रही जब तक तुम अपनी स्थिरता में स्वयं कमज़ोर नहीं पड़ गये। उस वक़्त तुम अपनी राय में असमंजस में पड़ गये और कंपायमान हो गये और तुम्हारे तीर चलानेवालों के दस्ते ने अपनी राय से काम लेकर रसूल की आज्ञा की परवाह न रखी। उहद की जंग में लड़ाई आरम्भ होने के पूर्व मुसलमानों के पवित्र एवं अत्यन्त परिपक्व दृष्टि रखनेवाले सेनानायक ने युद्ध के नक़्शे की सम्भावनाओं का बिलकुल सही अन्दाज़ा करके एक घाटी में एक ऊँची टेकरी पर पचास तीर चलानेवालों के चुने हुए और माहिर एक दस्ते को नियत कर दिया था और आदेश दे दिये थे कि इस मोर्चे से किसी दशा में भी टलना नहीं, यहाँ तक कि हमारी असली सेना पराजित हो जाए तब भी उसकी सहायता के लिए न झपटना, बल्कि अपने अक़्रब का खयाल रखना। जंग शुरू हुई और मुसलमानों ने पूरे जोश और वीरता से आक्रमण किया। मुशरिकों की सेना इतने सामानों और भारी संख्या के बावजूद इस भारी टक्कर को सम्हाल न सकी और उसके क़दम उखड़ गये। मुसलमान

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४०१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४०१ से)

फैल जाती है। अपने-अपने की पड़ी होती है। कोई किसी की नहीं सुनता। हर एक को अपनी ही जान बचाने की चिन्ता होती है। "अिज़् तुस्अिदून"— यानी जब भागते हुए चढ़े जा रहे थे। "वर्रसूलु यद्अूकुम्"— रसूलें इस्लाम (अ० व० सलाम) अपने दूसरे गुणों और कमालों के अतिरिक्त साहस एवं वीरता में भी बेमिसाल एवं अकेले थे। वर्तमानकाल के एक मुसलमान जंगी इतिहासकार के शब्दों में— "इस पूरी लड़ाई में इस्लामी झण्डा किसी समय भी झुका नहीं। झण्डे को ऊँचा रखने और आँ हज़रत (स०) की जान की रक्षा करने में उहद की लड़ाई में मुजाहिदों ने जिस जीवट, वीरता एवं स्वार्थ-त्याग का प्रमाण प्रस्तुत किया वह हमेशा यादगार रहेगा। आँ हज़रत (स०) भी अत्यन्त थके हुए और ज़ख़्मी होने के बावजूद दुश्मन से बराबर लड़ते रहे। भाले से लड़ने में आपने ऐसे कमाल का सुबूत दिया कि मुसलमानों का साहस दुगुना हो गया। लूटमार में जल्दी और तीरअन्दाज़ों के मोर्चों से हट जाने के कारण इस्लामी सेना को भारी नुक़सान पहुँचा था परन्तु आप दृढ़ता के साथ शेष आदमियों को साथ लेकर युद्ध करते रहे।"

१०५ यानी उस रंज के बदले में, जो तुम्हारी निज के कारण रसूल (स०) को उठाना पड़ा था, तुम्हें भी एक दुःख दे दिया गया।

१०६ (और इसी खबर रखने के अनुसार बदला एवं सज़ा भी देगा।) "लि कैला तह्ज़नू"— यह संकेत है उन बुद्धिमत्ताओं एवं हिकमतों की ओर जो इस पराजय की घटना में छुपी हुई थीं। "लिकै"— यानी ताकि भविष्य के लिए इस घटना से सीख प्राप्त करो और साहस तथा दृढ़ता को काम में लाते रहो।

१०७ मुसलमान तो थके-माँदे थे ही, दोपहर के समय उन पर नींद का ग़लबा हुआ, इससे वह ताज़ादम हो गये। थकी हुई सेना को नींद जैसी नेमत के मिल जाने की क़द्र कोई थके हुए सेनानी के दिल से पूछे।

१०८ (और मुसलमानों से हुज्जत और तकरार कर रहे थे कि तुमसे जो फ़तह और सहायता का वादा था वह क्या हुआ?) मुराद मुनाफ़िक़ों से है जो मुसलमानों से मिले-जुले हुए थे, इसलिए सम्बोधन भी उनसे अक्सर मुसलमानों के साथ संयुक्त है। "अहम्मत्हुम् अन्फ़ुसुहुम्"— यानी इस प्रकार का सोच-विचार कि देखें यहाँ से बचकर भी जाना होता है? अपनी जान की चिन्ता स्वयं कोई बुरी चीज़ नहीं है, अगर यह स्वाभाविक बात ही तक सीमित रहे। यहाँ अर्थ यह है कि मुनाफ़िक़ों को अपनी ही पड़ी थी और प्राकृतिक रूप में न उनको दीन की कोई चिन्ता थी न रसूल का ही ध्यान था। "यज़ुन्नून ग़ैरल्हक़्क़ि"— अल्लाह से सम्बद्ध उनकी बदगुमानियाँ वास्तविकता एवं सच्चाई के विरुद्ध थीं। उन्होंने यह समझ लिया था कि मोमिनों को अल्लाह की सहायता और ग़ैबी समर्थन न प्राप्त होगा। "ज़न्नल्-जाहिलिय्यति"— इससे बढ़कर उनके ख़यालात इस हद तक पहुँच गये थे जो मुश्रिक और जाहिली क़ौमों के होते हैं। इन मुनाफ़िक़ों के नज़दीक यह भी सम्भव था कि अल्लाह किसी से सहायता एवं समर्थन का वादा करे फिर उसे पूरा करे। ऐसे विश्वास मुश्रिक जातियों में आम थे। "अल्जाहिलिय्यति"— जाहिलीयः, क़ुर्आनी मुहावरे में इस्लाम से पूर्व का वह समय है जब शिर्क का ज़माना था। यह जाहिलीयत तौहीद के विरुद्ध है।

१०९ (वरना हम तो शुरू ही से इस जंग से मना कर रहे थे। किसी ने हमारी न सुनी। हमारी सुन ली गई होती तो आज यह मुसीबत ही क्यों पेश आती।) मुनाफ़िक़ अपनी शर्मिन्दगी और खिसियानापन मिटाने के लिए ऐसा कह रहे थे।

११० (अल्लाह का हुक्म हर इन्सानी तदबीर पर ग़ालिब और हावी है।) क़ुर्आन की सुन्दर तहरीर और सारगर्भिता का यह आम अन्दाज़ है कि जहाँ आंशिक बातें बयान करता है, वहीं सामूहिक विषयों का भी वर्णन कर देता है। यहाँ भी इस सच्चाई की घोषणा हो रही है कि केवल एक सहायता की ही घटना पर क्या मौक़ूफ़ है? इख़्तियार तो छोटे-बड़े हर मसले, हर समस्या पर अल्लाह ही का है।

१११ यानी अपना कुफ़्र और निफ़ाक़, उसी को रसूल और मोमिनों से छिपाये रखने की विशेष व्यवस्था इन मुनाफ़िक़ों को करनी थी।

११२ यानी यदि हमारे परामर्श पर अमल हुआ होता तो न लड़ाई की ही नौबत आती और न इस हार की ओर न इतने हताहतों की।

११३ अर्थ यह हुआ कि सृष्टि का जो तक़्दीरी हुक्म है उससे बाहर रहना किसी के लिए किसी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशा में सम्भव नहीं है। कोई ज़ाहिरी कारण भी हताहत होने के स्थान तक उनके खींच आने का अवश्य निकल आता।

११४ (शैतानी और आत्मिक मैल-कुचैल से) **"व लि युमह्हिस"**— तम्हीस के मानी हैं मिलावटों और गन्दगियों से पाक करना। **"मा फ़ी सुदूरिकुम्"**— यानी तुम्हारी निश्छलता का परीक्षण हो जाए।

११५ (मैदाने उहद में) **"जिन्नल्लज़ीन तवल्लौ"**— मुराद वही सहाबी हैं जिनसे उहद की लड़ाई में कमज़ोरी ज़ाहिर हुई थी। उन्हीं की तस्कीन तथा तसल्ली के लिए साथ ही भविष्य की तम्बीह एवं सीख देने हेतु आयतें उतारी गईं।

११६ और उन करतूतों से यहाँ मुराद है जीवन से प्रेम और माले ग़नीमत का लालच। आयत में इस हक़ीक़त की ओर भी इशारा हो गया कि हर पिछला गुनाह कारण बन जाता है और अधिक एवं नये गुनाहों का जैसा कि हर पिछली इबादत नयी और अधिक इबादतों की वजह बन जाती है। **"अिन्नमस्तज़ल्ल-हुमुश्-शैतानु"**— इसमें इस अदब (शिष्टाचार) की शिक्षा आ गई कि गुनाह जो भी घटित हो जाए उसकी निस्बत अल्लाह से नहीं बल्कि शैतान की ओर देना चाहिए। स्वयं कलाम मजीद में भी दूसरी आयतें इस प्रकार की हैं जैसे हज़रत मूसा की ज़बान से **"हाज़ा मिन् अ़्मलिश्शैतान"** या हज़रत यूसुफ़ की ज़बान से **"मिम्बअ़्दि अन् नज़ग़श्शैतान बैनी व बैन अिख़्वती"** या हज़रत मूसा के सेवक की ज़बान से **"व मा अन्सानियः अिल्लश्शैतान"**।

११७ (उनके तौबा और इस्तिग़्फ़ार के आधार पर) यही मज़मून तीन आयतों के पूर्व भी बयान हो चुका है। **"व लक़द अ़फ़ा अन्कुम्"** से उन सहाबियों की ओर अधिक तसल्ली और सान्त्वना उद्देशित है, जो लोग उन सहाबियों को उहद की घटना पर ताना देते थे, समझ लें कि यह तो वह साफ़ क़ुर्आनी आयतों के विरुद्ध अमल करना है।

११८ यहाँ ख़ुदा की दो सिफ़तों को माना गया है और उनका इक़रार किया गया है। **'ग़फ़ूर'**— एक सिफ़त क्षमा करने की जिसको आख़िरत में देखा जा सकेगा? **'हलीम'** सहनशीलता का इज़्हार इसी दुनिया में होता है कि गुनाह के तुरन्त बाद पकड़ नहीं होती बल्कि तौबा और माफ़ी माँगने का अवसर बराबर देता रहता है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४०७ से)

१२१ यानी इस प्रकार के विचार का उनके दिमाग़ में आना और उनको ज़बान पर लाना, यह स्वयं एक वबाल उनकी मुनाफ़िक़त का है और ईमान के नूर से उनके वञ्चित होने का है। दिल में वह विश्वास तो होता नहीं जो सन्तोष उत्पन्न करे इसलिए सृष्टि के हर कार्य एवं तक़दीरी बात पर उनके दिलों में अफ़्सोस और कुढ़न को बढ़ावा देती है।

१२२ मौत और ज़िन्दगी दोनों के सभी कारण अल्लाह के हाथ में हैं, उन कारणों के कारण उत्पन्न करनेवाले अर्थात् अल्लाह को और अस्ली सच्चाई को दृष्टि में न रखकर ज़ाहिरी और सामयिक कारणों पर दृष्टि डालना और यात्रा या जिहाद को मौत या हताहत होने की वजह और कारण बताना एक भीषण अज्ञानता एवं तुच्छता है। अमरीका में इस समय एक समाजशास्त्र के एक निपुण विशेषज्ञ डॉ० डेनीसन है, वह अपनी पुस्तक Emotion as a basis of Civilization में एक स्थान पर लिखता है— "मुसलमानों के तक़दीर के अक़ीदे ने और हर सृष्टि के कार्य को ख़ुदा को सौंप देने की आदत ने साथ ही शहादत के अक़ीदे ने (कि शहीद तुरन्त जन्नत में दाख़िल हो जाता है जहाँ उसे ७२ हूरें मिलती हैं और खाने के लिए सोने के बर्तन) मुसलमानों में युद्ध में बड़ी ही शक्ति और स्थिरता उत्पन्न कर दी।" अमरीकी विशेषज्ञ का ईमान न तक़दीर के अक़ीदे पर, न शहादत पर। फिर भी वह इन अक़ीदों के लाभदायक होने और उनके फ़ायदामन्द होने की हैसियत की सराहना करने पर विवश हो गया। **"वल्लाहु युह्यी व युमीतु"**— क़ुर्आन मजीद ने बार-बार इस केन्द्रीय सत्य की ओर ध्यानाकर्षण किया है कि मृत्यु तथा जीवन दोनों के अस्ली कारण केवल अल्लाह के ही हाथ में हैं अतः ज़ाहिरी कारणों पर दृष्टि जमाये रखना बड़ी मूर्खता है।

१२३ उसका ज्ञान पूर्ण भी है और हर चीज़ को घेरे हुए है, अतः यदि ख़ुदा ऐसा न करे तुमने भी मुनाफ़िक़ों की विचारधारा और उनकी बातचीत का अनुसरण किया तो यह बात भी उस हर वस्तु को देखनेवाले और हर चीज को जाननेवाले की जानकारी में आकर रहेगी। क़ुर्आन करीम अल्लाह तआ़ला

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४०८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation. Chandigarh

या अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तकूनू कल्लज़ीन कफ़रू व क़ालू लि अिख़्वानिहिम् अिज़ा ज़रबू फ़िल्अर्ज़ि औ कानू ग़ुज़्ज़लौ कानू अिन्दना मा मातू व मा क़ुतिलू ज लि यज्अलल्लाहु ज़ालिक हस्रतन् फ़ी क़ुलूबिहिम् त वल्लाहु युह्यी व युमीतु त वल्लाहु बिमा तअ्मलून बसीरुन् (१५६) व लअिन् क़ुतिल्तुम् फ़ी सबीलिल्लाहि औ मुत्तुम् ल मग़्फ़िरतुम् - मिनल्लाहि व रह्मतुन् ख़ैरुम्मिम्मा यज्मअून (१५७) व लअिम्-मुत्तुम् औ क़ुतिल्तुम् ल अिलल्लाहि तुह्शरून (१५८) फ़ बिमा रह्मतिम्-मिनल्लाहि लिन्त लहुम् ज व लौ कुन्त फ़ज़्ज़न् ग़लीज़लक़ल्बि लन्फ़ज़्ज़ू मिन् हौलिक फ़अ्फ़ु अन्हुम् वस्तग़्फ़िर्-लहुम् व शाविर्हुम् फ़िल्अम्रि ज फ़ अिज़ा अज़म्त फ़ तवक्कल् अलल्लाहि त अिन्नल्लाह युहिब्बुल्-मुतवक्किलीन (१५९) अिंय्यन्सुर्-कुमुल्लाहु फ़ ला ग़ालिब लकुम् ज व अिंय्यख़्ज़ुल्कुम् फ़ मन् ज़ल्लज़ी यन्सुरुकुम् मिम्बअ्दिही त व अलल्लाहि फ़ल्यतवक्कलिल् - मुअ्मिनून (१६०) व मा कान लि नबिय्यिन् अंय्यग़ुल्ल त व मंय्यग़्लुल् यअ्ति बिमा ग़ल्ल यौमल्क़ियामति ज सुम्म तुवफ़्फ़ा कुल्लु नफ़्सिम्मा-कसबत् व हुम् ला युज़्लमून (१६१) अ फ़ मनित्तबअ रिज़्वानल्लाहि कमम्बाअ बि सख़तिम्-मिनल्लाहि व मअ्वाहु जहन्नमु त व बिअ्सलमसीरु (१६२) हुम् दरजातुन् अिन्दल्लाहि त वल्लाहु बसीरुम् - बिमा यअ्मलून (१६३) लक़द् मन्नल्लाहु अलल्-मुअ्मिनीन अिज़् बअस फ़ीहिम् रसूलम्मिन् अन्फ़ुसिहिम् यत्लू अलैहिम् आयातिही व युज़क्कीहिम् व युअल्लिमुहुमुल् - किताब वल्हिक्मत ज व अिन् कानू मिन् क़ब्लु ल फ़ी ज़लालिम् - मुबीनिन् (१६४)

لن تنالوا ٥٦ آل عمران

كفروا وقالوا لاخوانهم اذا ضربوا في الارض او كانوا غزى لو
كانوا عندنا ما ماتوا وما قتلوا ليجعل الله ذلك حسرة في
قلوبهم والله يحي ويميت والله بما تعملون بصير ۝ ولئن
قتلتم في سبيل الله او متم لمغفرة من الله ورحمة خير
مما يجمعون ۝ ولئن متم او قتلتم لالى الله تحشرون ۝
فبما رحمة من الله لنت لهم ولو كنت فظا غليظ القلب
لانفضوا من حولك فاعف عنهم واستغفر لهم وشاورهم
في الامر فاذا عزمت فتوكل على الله ان الله يحب المتوكلين ۝
ان ينصركم الله فلا غالب لكم وان يخذلكم فمن ذا الذي
ينصركم من بعده وعلى الله فليتوكل المؤمنون ۝ وما
كان لنبي ان يغل ومن يغلل يات بما غل يوم القيمة
ثم توفى كل نفس ما كسبت وهم لا يظلمون ۝ افمن
اتبع رضوان الله كمن باء بسخط من الله وماوىه جهنم
وبئس المصير ۝ هم درجت عند الله والله بصير بما
يعملون ۝ لقد من الله على المؤمنين اذ بعث فيهم رسولا
من انفسهم يتلوا عليهم ايته ويزكيهم ويعلمهم الكتب
والحكمة وان كانوا من قبل لفي ضلل مبين ۝ اولما

منزل

नि. १/२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! उन लोगों की भाँति न हो जाना जो (वास्तव में) कुफ़्र अपनाये हुए हैं[११९], और अपने भाइयों के विषय में कहते हैं, जबकि वह लोग ज़मीन पर सफ़र करते हैं या कहीं जंग करने जाते हैं, कि अगर वह हमारे पास रहते तो न मरते और न मारे जाते[१२०] । (यह बात इसलिए उनकी ज़बान पर आयी है कि) अल्लाह उसे उनके दिलों में अफ़सोस का कारण बना दे[१२१] । और अल्लाह ही जिलाता और मारता है[१२२] । और जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उसे ख़ूब देखता है[१२३] । (१५६) और अगर तुम अल्लाह की राह में क़त्ल हो जाओ या मर जाओ तो अल्लाह की क्षमा और उसकी दया उससे कहीं बेहतर है जिसे यह जमा कर रहे हैं[१२४] । (१५७) और तुम लोग चाहे मर जाओ या मारे जाओ, अवश्य अल्लाह ही के पास इकट्ठे किये जाओगे[१२५] । (१५८) फिर यह अल्लाह की रहमत के कारण है कि आप उनके साथ नर्म रहे[१२६], और यदि आप तेज़-मिज़ाज, सख़्त हृदय के होते तो वह लोग आपके पास से हट गये होते (बिखर गये होते)[१२७] । सो आप उनको क्षमा कर दें और उनके लिए इस्तिग़फ़ार कर दीजिए (माफ़ी की दुआ कर दीजिए) और उनसे मामलों में सलाह लेते रहिए[१२८] । परन्तु जब आप पक्का इरादा कर लें तो अल्लाह पर भरोसा रखिए[१२९] । बेशक अल्लाह उनसे मुहब्बत रखता है जो उस पर भरोसा रखते हैं[१३०] । (१५९) अगर अल्लाह तुम्हारा साथ दे तो तुम पर कोई विजयी नहीं हो सकता[१३१] । और अगर वह तुम्हारा साथ छोड़ दे तो कौन ऐसा है जो उसके बाद तुम्हारा साथ दे[१३२] ? और ईमानवालों को तो चाहिए कि केवल अल्लाह पर भरोसा रखें । (१६०) और किसी नबी की यह शान नहीं कि वह ख़ियानत करे[१३३] । और जो कोई ख़ियानत करेगा वह क़ियामत के दिन अपनी ख़ियानत की हुई वस्तु को हाज़िर करेगा[१३४] । फिर हर व्यक्ति को उसके किये हुए का पूरा बदला मिलेगा और उन पर बिलकुल ज़ुल्म न होगा[१३५] । (१६१) क्या जो व्यक्ति ख़ुदा की मर्ज़ी के अन्तर्गत चलता है[१३६], वह भला उस जैसा होगा जो उसके क्रोध का अधिकारी है[१३७] ? और उसका ठिकाना जहन्नम है । और वह बुरी जगह है । (१६२) वह लोग अल्लाह के नज़दीक (विभिन्न) वर्गों में होंगे और अल्लाह उनके आमाल को ख़ूब देखनेवाला है[१३८] । (१६३) वास्तव में अल्लाह ने (बड़ा) इहसान मुसलमानों पर किया जबकि उन्हीं में से एक पैग़म्बर उनमें भेजा, जो उनको उसकी आयतें पढ़कर सुनाता है और उन्हें पाक-साफ़ करता है और उन्हें किताब और हिकमत की शिक्षा देता है[१३९] । और निःसन्देह यह लोग खुली हुई गुमराही में लीन थे[१४०] । (१६४) नि. १/२

११९ (परन्तु ज़बान पर इस्लाम तथा ईमान का दावा रखते हैं यानी मुनाफ़िक़ लोग । **"ला तकूनू कल्लज़ीन कफ़रू"**— मोमिनों को हिदायत हो रही है कि तुम अपनी बातचीत में मुनाफ़िक़ों की भाँति न बन जाओ, उनकी ऐसी बातें न करने लगो, क्योंकि इस प्रकार की बातें केवल उन लोगों के लिए उचित हैं जो ईमान से महरूम हैं । इमाम राज़ी ने फ़र्माया है कि यहाँ मुनाफ़िक़ों पर **'अल्लज़ीन कफ़रू'** लागू हुआ है, यद्यपि उनको इस्लाम का ज़बानी दावा था । इससे ज्ञात हुआ कि केवल इस्लाम का दावा ईमान के लिए पर्याप्त नहीं है जब तक कि दिल से तस्दीक़ न हो जाए ।

१२० (और मज़े से जीवन व्यतीत करते रहते और किसी ख़तरे में न पड़ते ।) **'लिइख़्वानिहिम्'** से मुराद नसबी भाई यानी मुसलमान भी मुराद हो सकते हैं और एतिक़ादी भाई यानी दूसरे मुनाफ़िक़ भी । प्राथमिकता नसबी भाइयों या मुसलमानों को है । मुसलमानों की मौत या शहादत की सूचना जब मुनाफ़िक़ सुन पाते तो इसी प्रकार के वाक्य कहते थे । **"इज़ा ज़रबू फ़िलअर्ज़ि"**— यानी किसी इस्लामी, दीनी उद्देश्य से यात्रा को जाते और वहीं मृत्यु हो जाती । **"औ कानू ग़ुज़्ज़न्"**— यानी जिहाद पर जाते और वहीं शहीद हो जाते । **"लौ कानू इन्दना"**— यानी यदि हमारे ही पास ठहर गये होते और जिहाद या इस्लामी यात्रा पर रवाना न हो गये होते ।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४०५ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४०५ से)

की इल्म की सिफ़त और हर चीज को घेरे रहने के गुण को समक्ष रखने की बात की ओर बारम्बार ध्यानाकर्षण करता रहा है।

१२४ (दुनिया की लज्जतों और राहतों में से) अर्थ यह है कि मौत तो अपने नियत समय पर ही आयेगी, जिहाद या अल्लाह के वास्ते यात्रा करने से तो आयेगी नहीं। हाँ यदि उस दीनी सेना की ही दशा में वह नियत समय आ गया, तो उसके बदले और नेमतें अनगिनत हैं। "औ मुत्तुम्"— यानी चाहे वह मौत प्राकृतिक ही हो परन्तु लगा हो उस समय अल्लाह के काम में।

१२५ (तो मोमिन के लिए यह कोई भय और डर की बात ही नहीं।) "मुत्तुम्"— यानी प्राकृतिक मृत्यु से अपने वतन में स्वर्गवासी हो गये। "क़ुतिल्तुम्"— यानी जिहाद में अल्लाह के रास्ते में मारे गये। इसी हक़ीक़त का ख़याल यदि मोमिन के दिल में बराबर बना रहे तो एक तो गुनाह और गुमराही से हर प्रकार बचत रहेगी, दूसरे अपने दयालु एवं प्रेमी मालिक की हाज़िरी में पहुँचने का चाव भी हर समय साथ रहे।

१२६ (जंग की दशा में उनके आज्ञा-उल्लंघन को देखने के पश्चात् भी।) आज्ञा-उल्लंघन करने वाले सेनानियों के साथ यानी उन सिपाहियों के साथ, जो ठीक युद्धस्थल में अपनी राय से काम लेकर सेना के निरादर और उसकी रुसवाई का कारण बने, बजाय कोर्ट मार्शल कर देने के विनम्रता, स्नेह और प्रेम का मामला बनाये रखना, विश्व की युद्ध की तारीख़ में सम्भवतः अपनी मिसाल आप ही हो।

१२७ हुज़ूरे अन्वर (स०) की नरमी, सुन्दर आदत, शिष्ट व्योहार और मेहरबानी की घटनाओं से तो हदीस और सीरत की पुस्तकें प्रचुर हैं, कोई कहाँ तक गिनाये? यह सच्चाई तो विशेष रूप से याद रखने योग्य है कि अपने निज के लिए आपने किसी से बदला नहीं लिया। ग़ैरों (और ग़ैर भी कैसे, घोर विरोधियों के) क़ौल सुनने के योग्य हैं। लेनपोल ने कहा है— "उन्होंने उम्र भर अपने हाथ से किसी को नहीं मारा·····कोई हाथ मिलाता तो न वह अपना हाथ अलग करने में पहले करते न स्वयं उससे अलग होते, बातचीत बहुत नर्म और मीठी करते।" और Historion's History of The World में है— "पयम्बर की तबीअत का रुजहान (स्वभाव) हमेशा नर्मी की तरफ़ रहता।" विस्तृत हवालों के लिए अंग्रेजी तफ़्सीर अवलोकित हो। परन्तु नरमी और मेहरबानी की भी शरीअत में सीमाएँ नियत हैं। जहाँ धर्म का निरादर हो रहा हो या दीन के आदेशों के निर्बल होने की आवश्यकता हो वहाँ सख़्ती और सज़ा आवश्यक हो जाती है। आयत से एक बड़ी बात हाथ आई। ज्ञात हुआ कि दिल की सख़्ती या तेज़-मिज़ाजी से स्वाभाविक हाल यह होता है कि लोग दूर भागते हैं, घृणा करते हैं और नफ़रत करते हैं और इसके विरुद्ध दीन की दावत देनेवाले को अच्छी तबीयत वाला, प्रसन्नचित्त और शिष्ट होना चाहिए। यदि दीन की ओर दुनिया के लोग खिंचेंगे तो इसी विधि से। दीन की दावत देनेवाले को, रूखे मिज़ाज और तंग हृदय वाला नहीं होना चाहिए। ऐसा होगा तो दीन के प्रचार में बाधा उत्पन्न होगी।

१२८ (पूर्व की भाँति) गोया इस्लाम की प्रजातन्त्र प्रणाली में राय लेने की व्यवस्था का यह आदेश है कि ऐसे अपराधियों को भी मिल्लत की समस्याओं में राय देने से वञ्चित न किया जाए और उनका मताधिकार न छीना जाए। इस रहमत की क्या हद है? क्या आज की दुनिया में जो बड़ी-बड़ी डिमाक्रेसियाँ (जनतन्त्र) हैं, वह इसका उदाहरण प्रस्तुत कर सकती हैं। 'फ़अ्फ़ु अन्हुम्'— यानी जहाँ तक आपके अधिकारों के ख़त्म होने का सम्बन्ध है, आप माफ़ कर दीजिए, अतः आपने इस आदेश-पालन में उन ख़ता करनेवालों को ज़बानी तम्बीह भी नहीं की। 'वस्तग़्फ़िर्-लहुम्'— यानी जहाँ तक अल्लाह के हक़ तथा उसके अधिकारों के समाप्त होने का सम्बन्ध है, आप उनकी माफ़ी के लिए दुआ कर दीजिए। इमाम राज़ी ने यहाँ यह नुक्ता ख़ूब लिखा है कि जिहाद से भागने से बढ़कर और क्या गुनाह होगा, परन्तु क़ुर्आन मजीद ने उन ख़ताकारों को माफ़ करने और उनकी मग़्फ़िरत की दुआ करने की बार-बार ताकीद करके यह स्पष्ट कर दिया कि इन हज़रात के बड़े गुनाह भी माफ़ हो गये थे। 'व शाविर्हुम्फ़िल्अम्रि'— परामर्श और सलाह मश्विरे की बड़ी बड़ाई हदीसों में आई है और परामर्श का हुक्म जब रसूल, साहिबे वही (स०) को मिल रहा है, तो दूसरों को इसकी कितनी आवश्यकता होगी? फ़क़ीह तफ़्सीर करनेवालों ने इस आयत से शरई क़ियास और इज्तिहाद (दीन में नयी खोज) को उचित मानने का तर्क लिया है। इस्लाम में राजनयिक व्यवस्था में व्यक्तिगत एवं प्रजातान्त्रिक प्रणाली दोनों से पृथक् जो परामर्श की व्यवस्था रखी गई है उसकी एक बहुत बुनियाद यह आयत है। इसी परामर्श के विषय में उम्मत के फ़क़ीहों से दोनों बातें नक़ल हुई हैं,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक यह कि रसूल पर यह मश्विरा लेना वाजिब है, दूसरी यह कि ऐसा करना केवल मुस्तहब (अच्छा) था। बहरहाल आपकी शुभ आदत मश्विरे की थी।

१२९ जब किसी मामले में परामर्श हो ले तो बस अब सन्देह और भ्रम में न पड़िए और निस्संकोच अल्लाह के भरोसे पर उसी पक्के इरादे से अमल कीजिए। व्यक्तित्व, सामूहिकता एवं प्रजातान्त्रिक विचारों का यह कैसा बुद्धिमत्ता का मिश्रण है। इसमें संकेत इस ओर भी हो गया कि विश्वास की चीज़ अल्लाह की ज़ात है, न कि इन्सानी परामर्श। **'तवक्कुल्'**— का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य ज़ाहिरी कारणों की ओर ध्यान देना छोड़ दे अन्यथा **'तवक्कुल्'** परामर्श के साथ कैसे इकट्ठा हो सकता था। **'तवक्कुल्'** के लिए भी ज़ाहिरी कारणों पर ध्यान रखना आवश्यक है। हाँ वास्तविक विश्वास और भरोसा केवल अल्लाह पर होना चाहिए। **'तवक्कुल्'** का अर्थ, अस्बाब (दुनिया के साधनों) को छोड़ देना नहीं है बल्कि सीमाओं और प्रतिबन्धों के साथ अस्बाब पर अधिकार करना है।

१३० इसी शिक्षा का परिणाम यह है कि इस गई-गुज़री दशा में भी और शर्ई व्यवस्था से इतनी दूरी के बावजूद, मुसलमानों को धैर्य और सन्तोष की कभी न ख़त्म होनेवाली दौलत प्राप्त है और आत्महत्या के फ़ैशन से यह जाति अभी तक अपरिचित है। और **'तवक्कुल्'** वालों के दर्जे का तो कहना ही क्या है। यह इर्शाद नहीं हो रहा है कि वह अल्लाह से मुहब्बत रखते हैं, बल्कि यह हो रहा है कि अल्लाह उनसे मुहब्बत रखता है। गोया वह स्वयं प्रिय होने के दर्जे पर पहुँच गये हैं। और अल्लाह की प्रियता जिस प्रकार सन्तोष से, एहसान से, पवित्रता से, ख़ुदा की राह में युद्ध करने से प्राप्त होती है, उसी प्रकार **'तवक्कुल्'** यानी ख़ुदा पर भरोसा करने से भी प्राप्त होती है।

१३१ (जैसा कि बद्र की लड़ाई में तुमने भी देख लिया और यह आज्ञाकारिता का फल था।)

१३२ (जैसा कि उहुद की लड़ाई में तुम्हें अनुभव हुआ और परिणाम अपनी राय पर चलने का था।) **'मिम्बड़दिही'** यानी उसकी सहायता न पाने के पश्चात्। आयत से यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि ईमान फल होता है अल्लाह की मदद का और कुफ़्र नतीजा है उसको छोड़ देने का (यानी ख़ुदा के साथ न देने का)।

१३३ यानी यह नबूवत की मर्यादा के बिलकुल विरुद्ध है। आयत की पूर्व भूमिका यह है कि बद्र की लड़ाई के पश्चात् जब मालें ग़नीमत (दुश्मन का लूट का धन) बाँटा जा रहा था तो एक सुर्ख़ रंग का जुब्बा (एक लम्बा-चौड़ा वस्त्र) ज़ख़ीरे से ग़ायब मालूम हुआ। उस पर कोई बोल उठा कि रसूल ने ले लिया होगा। यह बोल यदि किसी मुनाफ़िक़ का था तो उस अभागे ने नबीए करीम (स०) की ईमानदारी पर खुला हुआ आक्रमण किया और यदि किसी नवीन मुसलमान के मुँह से निकला था तो वह अवश्य इस ग़लतफ़हमी में होगा कि रसूल को बिना सूचना भी कोई वस्तु ले लेने का अधिकार है। आयत उनमें से हर एक भ्रम का खण्डन कर रही है और ऐसे अमल को ख़ियानत कह रही है। मुश्रिक ग़रीब तो सिरे से अनविज्ञ थे कि नबूवत का दर्जा किस महान पोज़ीशन का नाम है और पयम्बर के व्योहार के क्या अर्थ होते हैं। यहूद एवं नसारा अवश्य पयम्बरों के कार्यों और उनके दर्जों से परिचित थे, परन्तु उन नासमझों ने भी यह बात धीरे-धीरे भुला दी थी और नबी को काहिन के प्रकार का एक भविष्यवाणी करनेवाला मनुष्य समझ रखा था। आयत इन सभी ग़लत विचारों का सुधार कर रही है। **"व अलल्लाहि फ़ल्यतवक्कलिल्-मुअ्मिनून"**— **'तवक्कुल्'** और **'तुवक्कुल्'** करनेवालों की प्रशंसा अभी एक आयत में हो चुकी है।

१३४ इतनी बड़ी रुस्वाई और निरादर को पयम्बराना पवित्रता से कोई दूर का सम्बन्ध भी हो सकता है? फ़क़ीहों ने लिखा है कि ख़ियानत (धरोहर में से कुछ निकालकर अपने प्रयोग में लाना) बड़ा गुनाह है। और यह भी लिखा है कि हाकिमों का कोई नज़राना स्वीकार करना भी इसी आदेश के अन्तर्गत आता है।

१३५ पयम्बरों का सम्मान तथा उनका आदर तो लाज़िमी है। फिर किसी नबी के विषय में ऐसे गन्दे अपराध का सम्बन्ध कैसे हो सकता है?

१३६ जैसा कि हर नबी आवश्यक रूप में होता है। और यहाँ नबी का ही ज़िक्र है।

१३७ (जैसे ख़ियानत करनेवाला या और कोई अपराधी) यानी ज़ाहिर है कि ऐसा नहीं हो सकता— आज्ञाकारी मोमिन और फ़ासिक़ काफ़िर एकत्र नहीं हो सकते।

१३८ (और अपने इसी पूर्ण ज्ञान के अनुसार सज़ा और बदला देनेवाला) **'हुम् दरजातुन्'**— अल्लाह के

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४०५ से)

की इल्म की सिफ़त और हर चीज़ को घेरे रहने के गुण को समक्ष रखने की बात की ओर बारम्बार ध्यानाकर्षण करता रहा है।

१२४ (दुनिया की लज़्ज़तों और राहतों में से) अर्थ यह है कि मौत तो अपने नियत समय पर ही आयेगी, जिहाद या अल्लाह के वास्ते यात्रा करने से तो आयेगी नहीं। हाँ यदि उस दीनी सेना की ही दशा में वह नियत समय आ गया, तो उसके बदले और नेमतें अनगिनत हैं। **"औ मुत्तुम्"**— यानी चाहे वह मौत प्राकृतिक ही हो परन्तु लगा हो उस समय अल्लाह के काम में।

१२५ (सो मोमिन के लिए यह कोई भय और डर की बात ही नहीं।) **"मुत्तुम्"**— यानी प्राकृतिक मृत्यु से अपने वतन में स्वर्गवासी हो गये। **"क़ुतिल्तुम्"**— यानी जिहाद में अल्लाह के रास्ते में मारे गये। इसी हक़ीक़त का खयाल यदि मोमिन के दिल में बराबर बना रहे तो एक तो गुनाह और गुमराही से हर प्रकार बचत रहेगी, दूसरे अपने दयालु एवं प्रेमी मालिक की हाज़िरी में पहुँचने का चाव भी हर समय साथ रहे।

१२६ (जंग की दशा में उनके आज्ञा-उल्लंघन को देखने के पश्चात् भी।) आज्ञा-उल्लंघन करने वाले सेनानियों के साथ यानी उन सिपाहियों के साथ, जो ठीक युद्धस्थल में अपनी राय से काम लेकर सेना के निरादर और उसकी रुसवाई का कारण बने, बजाय कार्ट मार्शल कर देने के विनम्रता, स्नेह और प्रेम का मामला बनाये रखना, विश्व की युद्ध की तारीख में सम्भवतः अपनी मिसाल आप ही हो।

१२७ हुज़ूरे अन्वर (स०) की नरमी, सुन्दर आदत, शिष्ट व्योहार और मेहरबानी की घटनाओं से तो हदीस और सीरत की पुस्तकें प्रचुर हैं, कोई कहाँ तक गिनाये ? यह सच्चाई तो विशेष रूप से याद रखने योग्य है कि अपने मित्र के लिए आपने किसी से बदला नहीं लिया। ग़ैरों (और ग़ैर भी कैसे, बाज विरोधियों के) क़ौल सुनने के योग्य हैं। लेमपोल ने कहा है— "उन्होंने उम्र भर अपने हाथ से किसी को नहीं मारा······कोई हाथ मिलाता तो न वह अपना हाथ अलग करने में पहले करते न स्वयं उससे अलग होते, बातचीत बहुत नर्म और मीठी करते।" और Historion's History of The World में है— "पैग़म्बर की तबीअत का रुजहान (स्वभाव) सदैव नर्मी की तरफ़ रहता।" विस्तृत हवालों के लिए अंग्रेजी तफ़्सीर अवलोकित हो। परन्तु नरमी और मेहरबानी की भी शरीअत में सीमाएँ नियत हैं। जहाँ धर्म का निरादर हो रहा हो या दीन के आदेशों के निर्गत होने की आवश्यकता हो वहाँ सख़्ती और सज़ा आवश्यक हो जाती है। आयत से एक बड़ी बात हाथ आई। ज्ञात हुआ कि दिल की सख़्ती या तेज़-मिज़ाजी में स्वाभाविक बात यह होती है कि लोग दूर भागते हैं, घृणा करते हैं और नफ़रत करते हैं और इसके विरुद्ध दीन को दावत देनेवाले को अच्छी तबीयत वाला, प्रसन्नचित्त और शिष्ट होना चाहिए। यदि दीन की ओर दुनिया के लोग खिंचेंगे तो इसी विधि से। दीन की दावत देनेवाले को, रूखे मिज़ाज और तंग हृदय वाला नहीं होना चाहिए। ऐसा होगा तो दीन के प्रचार में बाधा उत्पन्न होगी।

१२८ (पूर्व की भाँति) गोया इस्लाम की प्रजातन्त्र प्रणाली में राय लेने की व्यवस्था का यह आदेश है कि ऐसे अपराधियों को भी मिल्लत की समस्याओं में राय देने से वञ्चित न किया जाए और उनका मताधिकार न छीना जाए। इस रहमत की क्या हद है ? क्या आज की दुनिया में जो बड़ी-बड़ी डिमाक्रसियाँ (जनतन्त्र) हैं, वह इसका उदाहरण प्रस्तुत कर सकती हैं। **'फ़अ़फ़ु अन्हुम्'**— यानी जहाँ तक आपके अधिकारों के ख़त्म होने का सम्बन्ध है, आप माफ़ कर दीजिए, अतः आपने इस आदेश-पालन में उन ख़ता करनेवालों को ज़बानी तम्बीह भी नहीं की। **'वस्तग़्फ़िर्-लहुम्'**— यानी जहाँ तक अल्लाह के हक़ तथा उसके अधिकारों के समाप्त होने का सम्बन्ध है, आप उनकी माफ़ी के लिए दुआ कर दीजिए। इमाम राज़ी ने यहाँ यह नुक्ता ख़ूब लिखा है कि जिहाद में भागने से बढ़कर और क्या गुनाह होगा, परन्तु क़ुर्आन मजीद ने उन असहाबे नबी को माफ़ करने और उनकी मग़्फ़िरत की दुआ करने की बार-बार ताकीद करके यह स्पष्ट कर दिया कि इन हज़रात के बड़े गुनाह भी माफ़ हो गये थे। **'व शाविर्हुम्फ़िल्अम्रि'**— परामर्श और सलाह मश्विरे की बड़ी बड़ाई हदीसों में आई है और परामर्श का हुक्म जब रसूल, साहिबे वही (स०) को मिल रहा है, तो दूसरों की इसकी कितनी आवश्यकता होगी ? फ़क़ीह तफ़्सीर करनेवालों ने इस आयत से शरई क़ियास और इज्तिहाद (दीन में नयी खोज) को उचित मानने का तर्क लिया है। इस्लाम में राजनयिक व्यवस्था में व्यक्तिक एवं प्रजातान्त्रिक प्रणाली दोनों से पृथक् जो परामर्श की व्यवस्था रखी गई है उसकी एक अहम बुनियाद यह आयत है। इसी परामर्श के विषय में उम्मत के फ़क़ीहों से दोनों बातें नक़्ल हुई हैं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक यह कि रसूल पर यह मशविरा लेना वाजिब है, दूसरी यह कि ऐसा करना केवल मुस्तहब (अच्छा) था। बहरहाल आपकी शुभ आदत मशविरे की थी।

१२९ जब किसी मामले में परामर्श हो ले तो बस अब सन्देह और भ्रम में न पड़िए और निस्संकोच अल्लाह के भरोसे पर उसी पक्के इरादे से अमल कीजिए। व्यक्तित्व, सामूहिकता एवं प्रजातान्त्रिक विचारों का यह कैसा बुद्धिमत्ता का मिश्रण है। इसमें संकेत इस ओर भी हो गया कि विश्वास की चीज़ अल्लाह की ज़ात है, न कि इन्सानी परामर्श। 'तवक्कुल्'— का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य ज़ाहिरी कारणों की ओर ध्यान देना छोड़ दे अन्यथा 'तवक्कुल्' परामर्श के साथ कैसे इकट्ठा हो सकता था। 'तवक्कुल्' के लिए भी ज़ाहिरी कारणों पर ध्यान रखना आवश्यक है। हाँ वास्तविक विश्वास और भरोसा केवल अल्लाह पर होना चाहिए। 'तवक्कुल्' का अर्थ, अस्बाब (दुनिया के साधनों) को छोड़ देना नहीं है बल्कि सीमाओं और प्रतिबन्धों के साथ अस्बाब पर अधिकार करना है।

१३० इसी शिक्षा का परिणाम यह है कि इस गई-गुज़री दशा में भी और शरई व्यवस्था से इतनी दूरी के बावजूद, मुसलमानों को धैर्य और सन्तोष की कभी न खत्म होनेवाली दौलत प्राप्त है और आत्महत्या के फ़ैशन से यह जाति अभी तक अपरिचित है। और 'तवक्कुल्' वालों के दर्जे का तो कहना ही क्या है। यह इर्शाद नहीं हो रहा है कि वह अल्लाह से मुहब्बत रखते हैं, बल्कि यह हो रहा है कि अल्लाह उनसे मुहब्बत रखता है। गोया वह स्वयं प्रिय होने के दर्जे पर पहुँच गये हैं। और अल्लाह की प्रियता जिस प्रकार सन्तोष से, एहसान से, पवित्रता से, ख़ुदा की राह में युद्ध करने से प्राप्त होती है, उसी प्रकार 'तवक्कुल्' यानी ख़ुदा पर भरोसा करने से भी प्राप्त होती है।

१३१ (जैसा कि बद्र की लड़ाई में तुमने भी देख लिया और यह आज्ञाकारिता का फल था।)

१३२ (जैसा कि उहद की लड़ाई में तुम्हें अनुभव हुआ और परिणाम अपनी राय पर चलने का था।) 'मिम्बड़दिही' यानी उसकी सहायता न पाने के पश्चात्। आयत से यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि ईमान फल होता है अल्लाह की मदद का और कुफ़्र नतीजा है उसको छोड़ देने का (यानी ख़ुदा के साथ न देने का)।

१३३ यानी यह नबूवत की मर्यादा के बिलकुल विरुद्ध है। आयत की पूर्व भूमिका यह है कि बद्र की लड़ाई के पश्चात् जब मालें ग़नीमत (दुश्मन का लूट का धन) बाँटा जा रहा था तो एक सुर्ख रंग का जुब्बा (एक लम्बा-चौड़ा वस्त्र) ज़ख़ीरे से ग़ायब मालूम हुआ। उस पर कोई बोल उठा कि रसूल ने ले लिया होगा। यह बोल यदि किसी मुनाफ़िक़ का था तो उस अभागे ने नबीए करीम (स०) की ईमानदारी पर खुला हुआ आक्रमण किया और यदि किसी नवीन मुसलमान के मुँह से निकला था तो वह अवश्य इस ग़लतफ़हमी में होगा कि रसूल को बिना सूचना भी कोई वस्तु ले लेने का अधिकार है। आयत उनमें से हर एक भ्रम का खण्डन कर रही है और ऐसे अमल को खियानत कह रही है। मुश्रिक ग़रीब तो सिरे से अनविज्ञ थे कि नबूवत का दर्जा किस महान पोजीशन का नाम है और पयम्बर के व्योहार के क्या अर्थ होते हैं। यहूद एवं नसारा अवश्य पयम्बरों के कार्यों और उनके दर्जों से परिचित थे, परन्तु उन नासमझों ने भी यह बात धीरे-धीरे भुला दी थी और नबी को काहिन के प्रकार का एक भविष्यवाणी करनेवाला मनुष्य समझ रखा था। आयत इन सभी ग़लत विचारों का सुधार कर रही है। "व अलल्लाहि फ़ल्यतवक्कलिल्-मुअ्मिनून"— 'तवक्कुल्' और 'तुवक्कुल्' करनेवालों की प्रशंसा अभी एक आयत में हो चुकी है।

१३४ इतनी बड़ी रुस्वाई और निरादर को पयम्बराना पवित्रता से कोई दूर का सम्बन्ध भी हो सकता है? फ़क़ीहों ने लिखा है कि खियानत (धरोहर में से कुछ निकालकर अपने प्रयोग में लाना) बड़ा गुनाह है। और यह भी लिखा है कि हाकिमों का कोई नज़राना स्वीकार करना भी इसी आदेश के अन्तर्गत आता है।

१३५ पयम्बरों का सम्मान तथा उनका आदर तो लाज़िमी है। फिर किसी नबी के विषय में ऐसे गन्दे अपराध का सम्बन्ध कैसे हो सकता है?

१३६ जैसा कि हर नबी आवश्यक रूप में होता है। और यहाँ नबी का ही ज़िक्र है।

१३७ (जैसे खियानत करनेवाला या और कोई अपराधी) यानी ज़ाहिर है कि ऐसा नहीं हो सकता— आज्ञाकारी मोमिन और फ़ासिक़ काफ़िर एकत्र नहीं हो सकते।

१३८ (और अपने इसी पूर्ण ज्ञान के अनुसार सज़ा और बदला देनेवाला) 'हुम् दरजातुन्'— अल्लाह के

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अव लम्मा॑ असाबत्कुम् मुसीबतुन् क़द् असब्तुम् मिस्‌लैहा ला क़ुल्तुम् अन्ना
हाज़ा त क़ुल् हुव मिन् अिन्दि अन्फ़ुसिकुम् त अिन्नल्लाह अला कुल्लि
शैअिन् क़दीरुन् (१६५) व मा॑ असाबकुम् यौमल्-तक़ल्-जम्‌आनि फ़बिअिज्‌-
निल्लाहि व लियऽ्लमल्-मुअ्मिनीन ला (१६६) व लियऽ्लमल्लज़ीन
नाफ़क़ू ज क़्‌ला व क़ील लहुम् तआलौ
क़ातिलू फ़ी सबीलिल्लाहि अविद्‌फ़अू त
क़ालू लौ नऽ्लमु क़िताललू-लत्तबऽ्नाकुम् त
हुम् लिल्‌कुफ़्‌रि यौमअिज़िन् अक़्‌रबु मिन्हुम्
लिल्‌ईमानि ज यक़ूलून बिअफ़्‌वाहिहिम्
मा लैस फ़ी क़ुलूबिहिम् त वल्लाहु अऽ्लमु
बिमा यक्तुमून ज (१६७) अल्लज़ीन क़ालू
लिअिख़्‌वानिहिम् व क़अदू लौ अताअूना मा
क़ुतिलू त क़ुल् फ़द्‌रअू अन् अन्फ़ुसिकुमुलमौत
अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन (१६८) व ला
तह्‌सबन्नल्लज़ीन क़ुतिलू फ़ी सबीलिल्लाहि
अम्‌वातन् त बल् अह्‌या॑अुन् अिन्द
रब्बिहिम् युर्ज़क़ून ला (१६९) फ़रिहीन
बिमा॑ आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्‌लिही ला व यस्तब्‌शिरून बिल्लज़ीन
लम् यल्‌हक़ू बिहिम् मिन् ख़ल्‌फ़िहिम् ला अल्ला ख़ौफ़ुन् अलैहिम्
व ला हुम् यह्‌ज़नून म ● (१७०) यस्तब्‌शिरून बिनिऽ्मतिम्-मिनल्लाहि व
फ़ज़्‌लिन् ला ॰व अन्नल्लाह ला युज़ीअु अज्‌रल्-मुअ्मिनीन ज ∴ (१७१) ★
अल्लज़ीनस्तजाबू लिल्लाहि वर्रसूलि मिम्बऽ्दि मा॑ असाबहुमुल्क़र्‌हु त ∴
लिल्लज़ीन अह्‌सनू मिन्हुम् वत्तक़ौ अज्‌रुन् अज़ीमुन् ज (१७२)
अल्लज़ीन क़ाल लहुमुन्नासु अिन्नन्नास क़द् जमअू लकुम् फ़ख़्शौ हुम्
फ़ज़ादहुम् ईमानन् क़ क़्‌ला ॰व क़ालू हुस्बुनल्लाहु व निऽ्मल्-वकीलु (१७३)

व. ला जि म ★ रु. १७/८ आ १६ ∴ मु. अि मु त क़. २

لن تنالوا ٤ — ٥٧ — آل عمرٰن

اَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةٌ قَدْ اَصَبْتُمْ مِّثْلَيْهَا ۙ قُلْتُمْ اَنّٰى هٰذَا ؕ قُلْ هُوَ
مِنْ عِنْدِ اَنْفُسِكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۱۶۵﴾ وَمَآ اَصَابَكُمْ
يَوْمَ الْتَقَى الْجَمْعٰنِ فَبِاِذْنِ اللّٰهِ وَلِيَعْلَمَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۙ﴿۱۶۶﴾ وَلِيَعْلَمَ
الَّذِيْنَ نَافَقُوْا ۖۚ وَقِيْلَ لَهُمْ تَعَالَوْا قَاتِلُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَوِ ادْفَعُوْا ؕ
قَالُوْا لَوْ نَعْلَمُ قِتَالًا لَّا اتَّبَعْنٰكُمْ ؕ هُمْ لِلْكُفْرِ يَوْمَئِذٍ اَقْرَبُ مِنْهُمْ
لِلْاِيْمَانِ ۚ يَقُوْلُوْنَ بِاَفْوَاهِهِمْ مَّا لَيْسَ فِىْ قُلُوْبِهِمْ ؕ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ
بِمَا يَكْتُمُوْنَ ﴿۱۶۷﴾ اَلَّذِيْنَ قَالُوْا لِاِخْوَانِهِمْ وَقَعَدُوْا لَوْ اَطَاعُوْنَا
مَا قُتِلُوْا ؕ قُلْ فَادْرَءُوْا عَنْ اَنْفُسِكُمُ الْمَوْتَ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿۱۶۸﴾
وَلَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ قُتِلُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتًا ؕ بَلْ اَحْيَآءٌ
عِنْدَ رَبِّهِمْ يُرْزَقُوْنَ ۙ﴿۱۶۹﴾ فَرِحِيْنَ بِمَآ اٰتٰهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۙ
وَيَسْتَبْشِرُوْنَ بِالَّذِيْنَ لَمْ يَلْحَقُوْا بِهِمْ مِّنْ خَلْفِهِمْ ۙ اَلَّا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۱۷۰﴾ يَسْتَبْشِرُوْنَ بِنِعْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَ
فَضْلٍ ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ لَا يُضِيْعُ اَجْرَ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿۱۷۱﴾ اَلَّذِيْنَ اسْتَجَابُوْا
لِلّٰهِ وَالرَّسُوْلِ مِنْ بَعْدِ مَآ اَصَابَهُمُ الْقَرْحُ ؕ لِلَّذِيْنَ اَحْسَنُوْا
مِنْهُمْ وَاتَّقَوْا اَجْرٌ عَظِيْمٌ ﴿۱۷۲﴾ اَلَّذِيْنَ قَالَ لَهُمُ النَّاسُ اِنَّ النَّاسَ
قَدْ جَمَعُوْا لَكُمْ فَاخْشَوْهُمْ فَزَادَهُمْ اِيْمَانًا ۖۗ وَّقَالُوْا حَسْبُنَا اللّٰهُ
وَنِعْمَ الْوَكِيْلُ ﴿۱۷۳﴾ فَانْقَلَبُوْا بِنِعْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَفَضْلٍ لَّمْ يَمْسَسْهُمْ

منزل ۱

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और जब तुम्हें ऐसी पराजय उठानी पड़ी जिसकी दोगुनी तुम (अपने विरोधी पर) डाल
चुके थे[१४१], तो तुम कहने लगे यह किधर से हुई? आप कह दीजिए कि वह तुम्हारी ही ओर
से हुई[१४२]। बेशक अल्लाह हर चीज़ पर शक्ति रखता है[१४३]। (१६५) और जो मुसीबत
तुम पर उस रोज़ पड़ी जबकि दोनों गिरोह परस्पर आमने-सामने हुए सो वह अल्लाह की
स्वेच्छा से हुई[१४४] ताकि अल्लाह मोमिनों की जान ले। (१६६) और उनको भी जान
ले जिन्होंने मुनाफ़िक़त इख्तियार की[१४५]। और उनसे कहा गया कि आओ अल्लाह की
राह में लड़ो या लड़ाई में सम्मिलित हो जाओ[१४६], तो वह बोले कि यदि (कोई ढंग की)
लड़ाई देखते तो अवश्य तुम्हारे पीछे हो लेते[१४७]। यह लोग उस रोज़ ईमान से ज़्यादा
कुफ़्र के निकट हो गये[१४८]। यह लोग अपने मुँह से ऐसी बात कहते हैं, जो उनके दिलों में
नहीं[१४९]। और जो कुछ यह छुपाये हुए हैं, अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (१६७) यह
लोग ऐसी दशा में कि स्वयं बैठे रहे अपने भाइयों के बारे में कहते हैं कि अगर हमारा कहा
मानते[१५०], तो न मारे जाते, आप कह दीजिए कि (अच्छा तो) अगर तुम सच्चे हो तो अपने
को मौत से बचा लेना[१५१]। (१६८) और जो लोग अल्लाह की राह में मारे गये, उन्हें
हरगिज़ मुर्दा मत ख़याल करो, बल्कि वह लोग अपने परवरदिगार के पास ज़िन्दा हैं और
रिज़्क़ (भोजन) पाते रहते हैं[१५२]। (१६९) उन नेमतों से प्रसन्न हैं जो अल्लाह ने उन्हें
अपनी कृपा से प्रदान की हैं, और जो लोग उनके बाद वालों से अभी उनसे नहीं जा मिले
हैं[१५३], उनकी भी इस हालत से ख़ुश हैं कि उन पर न कुछ भय होगा और न वह दुःखी
होंगे। ● (१७०) वह लोग ख़ुश हो रहे हैं अल्लाह के इन्आम और मेहरबानी पर और
इस पर कि अल्लाह ईमानवालों का बदला बरबाद नहीं करता[१५४], ∴ (१७१) ★

जिन लोगों ने अल्लाह और रसूल के कहने को मान लिया[१५५] बाद उसके कि उन्हें
ज़ख़्म लग चुका था[१५६] ∴ उनमें से जो नेक और संयमी हैं उनके लिए भारी बदला
है[१५७]। (१७२) यह ऐसे लोग हैं कि इनसे कहनेवालों[१५८] ने कहा कि लोगों ने
तुम्हारे खिलाफ़ बड़ा सामान एकत्र कर लिया है[१५९], उनसे डरो; परन्तु इसने
उनके ईमान का जोश और बढ़ा दिया और यह लोग बोले कि हमारे लिए
अल्लाह काफ़ी है और वही बेहतरीन कारसाज़ (कार्य करनेवाला) है[१६०]। (१७३)

● व. ला जि म ★ रु. १७/८ आ १६ ∴ मु. अि मु त क़. २

---

१४१ (इसके पूर्व बद्र में) **'असाबतकुम्-मुसीबतुन्'**—यानी उहद में तुम्हें हार हुई और सत्तर आदमी शहीद हुए। **"असबतुम् मिस्लैहा"**—यानी बद्र में जब मुश्रिकों के सत्तर आदमी मारे गये थे और सत्तर बन्दी बने।

१४२ यानी तुम्हारे अपने हाथों हुई। हमारा सहायता और विजय का वादा तुम्हारी आज्ञाकारिता और इबादत तथा बन्दगी की शर्त के साथ था, तुमने उसको पास न रखा तो अब वादा कहाँ बाक़ी रहा। **"अन्ना हाज़ा"**— मुसलमान आश्चर्य में स्वाभाविक रूप में पड़े हुए थे और कहते थे कि हम साहिबे ईमान बन्दे, अल्लाह की राह में लड़नेवाले, फिर हममें नबी भी मौजूद और मुक़ाबले में जो लोग हैं वह मुश्रिक हैं, फिर भी हमारी हार?

१४३ विजय देने पर भी उसी को इख़्तियार और विजय से वञ्चित करने पर भी उसी को अधिकार।

१४४ और अल्लाह की हर स्वेच्छा, अल्लाह ही जानता है कि कितनी हिकमतों और मस्लहतों की सरमायादार होती है (भरी हुई होती है)। **'बिइज़्निल्लाहि'— 'इज़्न'** यहाँ मशीयत यानी अल्लाह की इच्छा के अर्थ में आया है। **"यौमल्-तक़ल् जमआनि"**— यानी उहद की जंग में जब मक्के की एक बड़ी सेना अबू सुफ़्यान की कमान में थी और मदीने की सेना हज़रत नबीए करीम (स०) की संरक्षता में थी।

१४५ यानी खुलकर इसकी परीक्षा हो जाए कि मोमिन कौन-कौन है और मुनाफ़िक़ कौन-कौन! वैसे ज़ाहिर है कि अल्लाह की जानकारी में तो हर चीज़ होती है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४०६ से)

यहाँ यह वर्गीकरण प्रियता एवं दण्डित होनेवालों के आधार पर होगा। 'हुम्'— यानी यह सब लोग जो अल्लाह की रज़ामन्दी की राह पर चलनेवाले हैं वह, और जो अल्लाह के मार्ग का विरोध करनेवाले हैं, वह, दोनों प्रकार के। 'अिन्दल्लाहि' से मुराद है अल्लाह की अदालत में।

१३९ अल्लाह की सबसे अच्छी नेमत होने के नाते रसूल का इन्सानों में से होना सारे विश्व पर अल्लाह का एहसान है, परन्तु विशेषता मुसलमानों को इस कारण से है कि आपकी रिसालत का वास्तविक लाभ वही उठा रहे हैं। "मिन् अन्फ़ुसिहिम्"— यानी उन्हीं की जिन्स में से। इसमें मोमिनों के लिए बड़ी शुभ सूचना है कि पयम्बर भी बस तुम्हारे ही जैसे एक मनुष्य हैं। रसूल की आयतों के पढ़ने, तक़्वा की शिक्षा, हिकमत और किताब पर हाशिए प्रथम पारे के इसी मज़मून की आयत के अन्तर्गत गुज़र चुके हैं।

१४० क़ुर्आनी विधान और मुहम्मदी अमल का नमूना आने के पूर्व, दुनिया पर अक़ीदों, मामलों, इबादतों, शिष्टाचार और नैतिकता ग़रज़ कि हर एतबार से अंधकार ही छाया हुआ था और मानव की आबादी हर लिहाज़ से गुमराही का चित्र बनी हुई थी।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४११ से)

१४६ यह मुनाफ़िक़ों से कहा गया था। "अविद्फ़ऊ"— यानी अगर लड़ते नहीं हो तो कम से कम अपने सम्मिलित होने से ही मुसलमानों की संख्या काफ़िरों की दृष्टि में बढ़ा दो। यह उस समय का वर्णन है जब अब्दुल्लाह बिन उबी मदनी के नेतृत्व में मुनाफ़िक़ों का तीन सौ का गिरोह युद्ध आरम्भ होने पर मुसलमानों से कटकर मदीने को वापस आ रहा था।

१४७ (परन्तु यह युद्ध नहीं, स्पष्ट रूप में यह आत्महत्या है।) मदीने के मुनाफ़िक़ों का यह कहना था कि दुश्मन अव्वल तो संख्या में तुमसे चौगुना है, फिर साज़ोसामान में कहीं अधिक। ऐसी दशा में नगर से बाहर निकलकर उनका मुक़ाबला करना सारे युद्ध के नियमों के विरुद्ध और खुला हुआ पागलपन है।

१४८ (यानी ज़ाहिरी और शाब्दिक ईमान से बहुत दूर हो गये और सच्चा एवं वास्तविक ईमान तो ख़ैर कभी था ही नहीं और कुफ़्र से निकटतम खुल्लम-खुल्ला भी हो गये।) "यौमअिज़िन्"— यानी जिस रोज़ ऐसी बातें ज़बान से निकालीं।

१४९ (चुनांचे उनका यह उज्र भी निस्स्वार्थता के साथ नहीं है।) वास्तविक इरादा उन मुनाफ़िक़ों का किसी दशा में मुसलमानों की सहायता करने का नहीं था और क्यों होता जब सिरे से उनके हृदय में ईमान ही नहीं था। "यक़ूलून बिअफ़्वाहिहिम्"— 'बिअफ़्वाहिहिम्' ज़ोर और बल देने के लिए है जैसा उर्दू में कहते हैं कि मैंने अपनी आँखों से देखा है या अपने कानों से सुना है।

१५० (और हमारी ही प्रकार युद्ध से अलग रहते।) "लि अिख़्वानिहिम्"— 'अिख़्वान' से मुराद भाई —दीनी और विश्वास के नाते नहीं बल्कि गोत्र और देश के नाते से। यह मुनाफ़िक़ों की भाषा में मुसलमान शहीदों का वर्णन हो रहा है।

१५१ यानी यदि तुम्हारा दृष्टिकोण यह है कि मृत्यु युद्धस्थल में जाने से हुई है तो तुम हर दशा में युद्ध से बचते रहे हो, देखना है कि मृत्यु से स्वयं को कब तक बचाये रहते हो।

१५२ (आलमें बर्ज़ख में एक विशेष ज़िन्दगी के साथ।) "व ला तह्सबन्न······अम्वातन्"— शहीदों की मृत्यु साधारण मनुष्यों की भाँति नहीं होती बल्कि उन्हें बर्ज़ख में एक विशेष प्रकार का जीवन प्राप्त रहता है। "अह्या'अुन्······युर्ज़क़ून"—यह जीवन और यह भोजन-पानी सब उसी बर्ज़ख लोक के अनुसार होते हैं। "अिन्द रब्बिहिम्"— यह अपने परवरदिगार के निकटतम भी होते हैं। सूरए अल्बक़रः के हाशिये इसी आधार पर अवलोकित हों।

१५३ (परन्तु आखिर शहीद होकर उनसे जा मिलनेवाले हैं।) "मिन् फ़ज़्लिही"— उस खुदाई मेहरबानी तथा कृपा के अन्दर हर प्रकार की नेमतें और बड़ाइयां आ गईं।

१५४ इस सत्य को तो वह अपनी आँखों से देख रहे हैं। "निअ्मतिम्-मिनल्लाहि"— नेमत यह कि उन्हें पूरा-पूरा बदला मिल रहा है। 'फ़ज़्लिही'— 'फ़ज़्ल' यह कि इनआम उनको उनके हक़ से कहीं बढ़कर मिला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५५ (और रसूल की आज्ञाकारिता में खुशदिली के साथ युद्ध के लिए निकल पड़े।)

१५६ (उहद की लड़ाई में और वह ज़ख्म अभी ताज़ा ही था।) उहद के युद्ध में इस्लामी सेना को जो दुःख पहुँचा था उसने मक्का के मुश्रिकों के साहस बढ़ा दिये थे, साल भर बाद ही एक बार अबू सुफ़यान सखर क़ुरैशी, उम्मवी के नेतृत्व में मदीने पर आक्रमण कर बैठे। बद्र के युद्ध में अबू जहल, अबू लहब उत्बा इत्यादि के काम आ जाने के पश्चात् अब क़ुरैश क़ौम की सरदारों की लगाम उमय्या खानदान के नेता अबू सुफ़यान सखर बिन हर्ब ही के हाथ में थी। उसकी संख्या दो हज़ार पियादा सेना और पचास सवारों की थी, परन्तु ज़ाहिरी और सामयिक सफलता के बावजूद दो ही एक दिन के बाद स्वयं उन लोगों पर कुछ ऐसा भय सवार हुआ कि भागे चले गये और उलटा उनका पीछा स्वयं मुसलमानों ने किया। इन्हीं घटनाओं की ओर क़ुर्आनी आयतों में इशारा है।

१५७ (और नेक और संयमी तो यह सभी हैं।) **'अहूवनू'— और "अत्तक़ू"** के ले जाने का उद्देश्य इस ओर संकेत करना है कि ईमानवालों की प्रशंसा तो तक़्वा (संयम) और ईमान के कारण होती है।

१५८ (और यह कहनेवाले अबू सुफ़यान सखर के सिखाये-पढ़ाये हुए लोग थे और उसकी ओर से प्रोपैगण्डा करनेवाले।) इतिहास में इस प्रोपैगण्डिस्ट का नाम नईम बिन मसूअूद अश्जई आता है। यह क़बील सक़ीफ़ का आदमी था।

१५९ (और तुम किसी प्रकार उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते।) **'अन्नन्नास'**— यहाँ नास से मुराद क़ुरैश जाति है। इस बात के प्रचार तथा प्रसार का अर्थ यह था कि मुसलमानों के हृदयों में क़ुरैश का रोब बैठ जाए और वह भयभीत हो जाएँ। जिस प्रकार आजकल अस्त्र-शस्त्र के साथ War of Nerves चलती है यूँ ही पुराने ज़माने में भी यह प्रोपैगण्डा चलाया जाता था। अबू सुफ़यान सखर अपने समय में इस कला का विशेषज्ञ था। उसने अपने आदी छोड़ रखे थे कि मुसलमानों से मिल-जुलकर उन्हें क़ुरैश की सैनिक शक्ति तथा युद्ध की बड़ाई से ऐसा भयभीत कर दें कि उनका साहस टूट जाए और युद्ध करने की हिम्मत उनमें न रह जाए।

१६० (हमारी सहायता तथा सुरक्षा, सबके लिए) यानी इस सूचना और प्रचार ने हौसिला गिराने के बजाय मुसलमानों में और ईमानी जोश तेज़ कर दिया और वह अल्लाह पर पूरा भरोसा करके पूरी शक्ति से बोल उठे कि शत्रु जो चाहे करे हमारा काम बनानेवाला तो अल्लाह है और वही हमारे लिए काफ़ी है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४१५ से)

१६३ शैतान कहीं भी अपने असली रूप में आकर आक्रमण नहीं करता, जब वार करता है तो किसी न किसी मानव के रूप में आता है। यहाँ इस जमाअत का नेता नईम सक़फ़ी था।

१६४ (कि अल्लाह के खौफ़ को इन्सानी भय पर क़ाबू रखना, यही ईमान का सही अंश था।)

१६५ यानी उन लोगों के लिए आप चिन्ता और ग़म न करें। **"अल्लज़ीन युसारिअ़न फ़िलकुफ़्रि"**— यानी मुनाफ़िक़। इधर मुसलमानों को साधारण सी पराजय हुई और उधर वह खुल्लम-खुल्ला कुफ़्र में जा पड़े और काफ़िरों के साथ खुलकर भी मिलने लगे!

१६६ यानी अल्लाह के दीन को ज़रा भी हानि नहीं पहुँचा सकते। आयत का उद्देश्य पैग़म्बर को सान्त्वना देना है कि आपको बड़ी चिन्ता इस बात की थी कि मुनाफ़िक़ों की चालों से कहीं इस्लाम का प्रचार न रुक जाए, सो आप सन्तोष रखें, उनकी चालें ज़रा भी सफल न होंगी।

१६७ (खुद उनके अपनी मर्ज़ी से कुफ़्र इख़्तियार करने की सज़ा में।)

१६८ (बल्कि उलटे स्वयं हर प्रकार के घाटे में रहेंगे।) **"अल्लज़ीनश्तरवुल्-कुफ़्र बिल्ईमानि"**— इसमें इस्लाम के छुपे हुए और खुले हुए शत्रु हर प्रकार के आ गये।

१६९ यानी अपनी मुकम्मल हिकमत के तक़ाज़े से उन्हें फ़ौरन् अज़ाब की पकड़ में नहीं ला रहे हैं।

१७० (आयु और मुहलत में बढ़ोतरी के साथ-साथ) यानी हमारी सृष्टि के क़ानून का तक़ाज़ा यही है कि जब तुरन्त पकड़ नहीं होती तो साहस तथा लापरवाही और बढ़ती जाती है।

१७१ (नाना प्रकार की परीक्षाओं और आज़माइशों के माध्यम से।) सम्बोधन साधारण मानव जाति से है। **'अल्ख़बीस'** और **'अत्तय्यिबि'** से ज़ाहिर है कि मुनाफ़िक़ और मोमिन मुराद हैं।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ़न्क़लबू बि निऽमतिम्-मिनल्लाहि व फ़ज़्लिल्लम् यम्सस्हुम् सूअुन् ला
व्वत्तबअू रिज़्वानल्लाहि त वल्लाहु ज़ू फ़ज़्लिन् अज़ीमिन् (१७४) अिन्नमा
ज़ालिकुमुश्शैतानु युख़व्विफ़ु औलिया'अहू ॰ फ़ ला तख़ाफ़ू-हुम् व ख़ाफ़ूनि
अिन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (१७५) व ला यह्ज़ुन्कल्लज़ीन युसारिअून
फ़िल्कुफ़्रि ज अिन्नहुम् लंय्यज़ुर्रुल्लाह शैअन् त
युरीदुल्लाहु अल्ला यज्अल लहुम् हज़्ज़न्
फ़िल्आख़िरति ज व लहुम् अज़ाबुन् अज़ीमुन्
(१७६) अिन्नल्लज़ीनश्तरवुल्-कुफ़्र
बिल्ईमानि लंय्यज़ुर्रुल्लाह शैअन् ज व
लहुम् अज़ाबुन् अलीमुन् (१७७) व ला
यह्सबन्नल्लज़ीन कफ़रू' अन्नमा नुम्ली लहुम्
ख़ैरुल्लि-अन्फ़ुसिहिम् त अिन्नमा नुम्ली लहुम्
लि यज़्दादू' अिस्मन् ज व लहुम् अज़ाबुम्-
मुहीनुन् (१७८) मा कानल्लाहु लि यज़रल्-
मुअ्मिनीन अला मा' अन्तुम् अलैहि
हत्ता यमीज़ल्-ख़बीस मिनत्तय्यिबि त व
मा कानल्लाहु लि युत्लिअकुम् अलल्ग़ैबि
व लाकिन्नल्लाह यज्तबी मिर्रुसुलिही
मंय्यशा'अु ॰ फ़ आमिनू बिल्लाहि व रुसुलिही ज व अिन् तुअ्मिनू व तत्तक़ू
फ़ लकुम् अज्रुन् अज़ीमुन् (१७९) व ला यह्सबन्नल्लज़ीन यब्ख़लून बिमा' आता-
★ हुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही हुव ख़ैरल्लहुम् त बल् हुव शर्रुल्लहुम् त सयुतव्वक़ून
रु. १८ मा बख़िलू बिही यौमल्क़ियामति त व लिल्लाहि मीरासुस्समावाति वल्अर्ज़ि त
९ वल्लाहु बिमा तऽमलून ख़बीरुन् (१८०) ★ लक़द् समिअल्लाहु क़ौलल्लज़ीन
आ ९ क़ालू' अिन्नल्लाह फ़क़ीरुंव्व नह्नु अग़्नियाअु ॰ ● सनक्तुबु मा क़ालू व
● व.ला क़त्लहुमुल्-अम्बिया'अ बिग़ैरि हक़्क़िन् ला व्व नक़ूलु ज़ूक़ू अज़ाबल्-हरीक़ि (१८१)
जि म

لن تنالوا ٤ ٥٨ آل عمران ٣

سُوْءٌ وَّاتَّبَعُوْا رِضْوَانَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ ذُوْ فَضْلٍ عَظِيْمٍ ۞ اِنَّمَا
ذٰلِكُمُ الشَّيْطٰنُ يُخَوِّفُ اَوْلِيَآءَهٗ ۪ فَلَا تَخَافُوْهُمْ وَخَافُوْنِ اِنْ
كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۞ وَلَا يَحْزُنْكَ الَّذِيْنَ يُسَارِعُوْنَ فِي الْكُفْرِ ۚ
اِنَّهُمْ لَنْ يَّضُرُّوا اللّٰهَ شَيْـًٔا ؕ يُرِيْدُ اللّٰهُ اَلَّا يَجْعَلَ لَهُمْ حَظًّا فِي الْاٰخِرَةِ ۚ
وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۞ اِنَّ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الْكُفْرَ بِالْاِيْمَانِ لَنْ
يَّضُرُّوا اللّٰهَ شَيْـًٔا ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۞ وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا
اَنَّمَا نُمْلِيْ لَهُمْ خَيْرٌ لِّاَنْفُسِهِمْ ؕ اِنَّمَا نُمْلِيْ لَهُمْ لِيَزْدَادُوْٓا اِثْمًا ۚ
وَلَهُمْ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ۞ مَا كَانَ اللّٰهُ لِيَذَرَ الْمُؤْمِنِيْنَ عَلٰى
مَآ اَنْتُمْ عَلَيْهِ حَتّٰى يَمِيْزَ الْخَبِيْثَ مِنَ الطَّيِّبِ ؕ وَمَا كَانَ اللّٰهُ
لِيُطْلِعَكُمْ عَلَى الْغَيْبِ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَجْتَبِيْ مِنْ رُّسُلِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ۪
فَاٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَرُسُلِهٖ ۚ وَاِنْ تُؤْمِنُوْا وَتَتَّقُوْا فَلَكُمْ اَجْرٌ عَظِيْمٌ ۞
وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ يَبْخَلُوْنَ بِمَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ هُوَ
خَيْرًا لَّهُمْ ؕ بَلْ هُوَ شَرٌّ لَّهُمْ ؕ سَيُطَوَّقُوْنَ مَا بَخِلُوْا بِهٖ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ ؕ وَلِلّٰهِ مِيْرَاثُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ
خَبِيْرٌ ۞ لَقَدْ سَمِعَ اللّٰهُ قَوْلَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ فَقِيْرٌ وَّ
نَحْنُ اَغْنِيَآءُ ۘ سَنَكْتُبُ مَا قَالُوْا وَقَتْلَهُمُ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ ۙ
وَّنَقُوْلُ ذُوْقُوْا عَذَابَ الْحَرِيْقِ ۞ ذٰلِكَ بِمَا قَدَّمَتْ اَيْدِيْكُمْ وَ

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सो यह लोग अल्लाह के इन्आम और मेहरबानी के साथ वापस आये कि उन्हें कोई नागवारी (ज़रा भी) नहीं हुई, और यह लोग अल्लाह की मर्ज़ी के ताबे रहे[१६१]। और अल्लाह बड़ा फ़ज़्लवाला है (दयालु है)[१६२]। (१७४) यह तो शैतान ही है जो तुम्हें अपने मित्रों के द्वारा डराता है[१६३], सो तुम उनसे न डरो बल्कि मुझ ही से डरो अगर ईमानवाले हो[१६४]। (१७५) और आपके लिए यह लोग जो जल्दी से कुफ़्र में जा पड़ते हैं, दुःख का कारण न बनें[१६५]; अवश्य यह लोग अल्लाह को ज़रा-सा भी हानि नहीं पहुँचा सकते[१६६]। अल्लाह की यही स्वेच्छा है कि उनके लिए आखिरत में ज़रा भी हिस्सा न रखे[१६७] और उन्हीं के लिए बड़ा अज़ाब है। (१७६) अवश्यमेव जिन लोगों ने ईमान के बदले में कुफ़्र को खरीद लिया है, वह अल्लाह को ज़रा भी हानि नहीं पहुँचा सकते[१६८]; और उन्हीं के लिए दर्दनाक अज़ाब है। (१७७) और जो लोग कुफ़्र कर रहे हैं, यह न ख़याल करें कि हम जो उन्हें मुहलत दे रहे हैं[१६९], यह उनके हक़ में बेहतर है। हम तो उन्हें बस इसलिए मुहलत दे रहे हैं कि वह अपराध में और बढ़ जाएँ[१७०]। और उन्हीं के लिए रुस्वा करनेवाला अज़ाब है। (१७८) जिस हाल पर तुम हो अल्लाह उस पर ईमानवालों को छोड़े रखने का नहीं जब तक कि वह नापाक को पाक से अलग न कर ले[१७१]। और न अल्लाह तुम्हें ग़ैब की सूचना देनेवाला है[१७२], अल्बत्ता अल्लाह जिसको चाहता है अपने रसूलों में से चयन कर लेता है[१७३]। तुम अल्लाह और उसके रसूलों पर ईमान लाओ[१७४]। और अगर तुम ईमान ले आये और तुमने संयम को अपनाया तो तुम्हारे ही लिए बड़ा बदला है। (१७९) और जो लोग उस धन में कंजूसी करते रहते हैं[१७५] और जो कुछ अल्लाह ने उन्हें अपनी कृपा से दे रखा है, वह कदापि यह न समझें कि[१७६] यह उनके हक़ में अच्छा है, नहीं यह उनके हक़ में बहुत बुरा है। यक़ीनन् उन लोगों को क़ियामत के दिन तौक़ (हँसली) पहनाया जाएगा उस धन का जिसमें उन्होंने कंजूसी की[१७७]। और अल्लाह ही वारिस है आसमानों और ज़मीन का[१७८]। और अल्लाह जो कुछ तुम करते हो उससे खबरदार है[१७९]। (१८०) ★

★ रु. १८ | ९ आ. ६ ● ब. ला जि म

निःसन्देह अल्लाह ने उन लोगों का क़ौल सुन लिया है जिन्होंने कहा है कि खुदा मुहताज है, हम धनवान हैं[१८०] ●। हम लिख रहे हैं उनके इस क़ौल को[१८१] और उनके (अपने) नबियों के अनायास मार डालने को भी[१८२]; और हम कहेंगे[१८३] कि (अब) आग के अज़ाब का मज़ा चखो। (१८१)

---

१६१ (और यही अल्लाह की रज़ामन्दी दुनिया और आखिरत के लाभ और राहत का स्रोत है।) **'फ़नक़लबू'**— यानी बद्र के स्थान तक जाकर मुसलमान वापस आये। इतिहासकारों और सीरतनिगारों की भाषा में इसको बद्रे सानी (दूसरा बद्र का युद्ध) कहते हैं और इसका समय शाबान सन् ४ हिजरी है, मुहाजिर मुसलमान साधारण क़ुरैश की भाँति व्यापार करनेवाले भी थे, जब देखा कि जंग का मैदान खाली है तो व्यापार करना शुरू कर दिया। सीरत इब्ने हिशाम में है— "आपने अबू सुफ़्यान की चुनौती के उत्तर में बद्र का इरादा फ़र्माया, वहाँ पहुँच गये और यहाँ आपने अबू सुफ़्यान की आठ दिन तक प्रतीक्षा की और अबू सुफ़्यान भी मक्का वालों को लेकर रवाना हुआ परन्तु ज़ुहरान के आसपास पहुँचा तो उसकी राय मक्का वापस चले आने की हुई और उसने क़ुरैश से कहा कि तुम्हारे सफ़र के लिए तो ऐसा मौसम उचित है जिसमें तुम अपने पशुओं को खूब चरा भी सको और दूध भी खूब पी सको और यह मौसम तो सूखा है सो मैं तो वापस चला तुम भी वापस चले चलो, अतः वह लोग वापस हो गये। **"बिनिड्मतिम्-मिनल्लाहि"**— अर्थात् नेमत, खुदा की निगाह में प्रिय और ईमान की उन्नति के साथ। **'फ़ज़्ल'**— यानी दुनियावी लाभ के साथ भी चुनांचे माल की निकासी खूब हुई। **'फ़ज़्ल'** के एक अर्थ माल तथा आय के भी हैं।

१६२ चुनांचे यहाँ उसका फ़ज़्ल मुसलमानों पर इन शक्लों में ज़ाहिर हुआ। उनके ईमान के दर्जे में उन्नति हुई। उन्हें जिहाद के युद्ध में निकलने की चाह पैदा हुई, वह शत्रु की शक्ति और वैभव से दबे नहीं, मुक़ाबले का साहस बना रहा, माली और व्यापारिक लाभ प्राप्त हुए और आगे महान बदले की शुभ सूचना मिली।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४१३ से)

१७२ (जैसे यही कि वह बतला दे कि अमुक-अमुक व्यक्ति मुनाफ़िक़ हैं और अमुक-अमुक मोमिन ।) यह मुनाफ़िक़ों के जवाब में इर्शाद हुआ है जो मुसलमानों से कहा करते थे कि अच्छा बड़े सच्चे बनते हो तो यही बता दो कि मुनाफ़िक़ कौन-कौन से हैं ? "लि युत्लिअकुम्"— में सम्बोधन या तो मानव-जाति से है या केवल मुसलमानों से । "अल्ग़ैबि"— से मुराद वह सृष्टि की सच्चाइयाँ हो सकती हैं जो मनुष्य से छुपा रखी गई हैं ।

१७३ (बाज़ बातें ग़ैबी सूचना हेतु) "मंय्यशा'अु"— यानी जिसे वह चाहता है अपनी स्वेच्छा और सृष्टि की हिकमत के अन्तर्गत । आलिमों का कहना है कि फ़िर्क़ए बातिनया के जवाब में यह आयत एक प्रमाण है, जो कहते हैं कि उनके इमाम ग़ैब की बातों से वाक़िफ़ हैं ।

१७४ (कि यही ईमान की अस्ल बुनियाद है ।) 'रुसुलिही'— सीग़ा बहुवचन में है । उद्देश्य तो अब केवल नबूवतें मुहम्मदी पर ईमान लाने का चाव पैदा करना है, परन्तु इस अवसर पर भी सभी नबियों पर ईमान लाने का आदेश मिल रहा है । क़ुर्आन को सन्देश की एकता और 'वही' की महत्ता और उसकी महानता का किस क़दर ध्यान है ।

१७५ (यहाँ तक कि ज़कात और वाजिब ख़र्चे के अवसर पर भी ।)

१७६ (यानी यही कंजूसी का तरीक़ा ।)

१७७ (और यह तौक़ साँप की शक्ल में होंगे उनकी गरदनों में लिपटे हुए ।) हश्र में जब अर्थ और शब्द भौतिक जिस्म और शक्लें बन जायेंगे, कंजूसी और ज़कात न अदा करना हदीस में आया है कि साँप बनकर अपराधियों की गरदनों में लिपटेंगे । इब्ने कसीर में इस अर्थ की अनेकों हदीसें, बुख़ारी, अहमद, तिरमिज़ी, निसाई और इब्ने माजा इत्यादि से नक़ल की हुई मिलती हैं ।

१७८ और वही आज भी सबका सच्चा मालिक है । सो यह लोग कंजूसी वास्तव में अपने धन में नहीं बल्कि उसके माल में कर रहे हैं जो और भी बुरी बात है ।

१७९ (अतः निःस्वार्थता की व्यवस्था पग-पग पर रखना आवश्यक है ।)

१८० यह कहनेवाले यहूद थे और उनका यह कहना मज़ाक़ उड़ाने और हँसी करने के रूप में था । यहूद का एक क़बीला बनी क़ैनक़ा के नाम से मदीने के पड़ोस में बसा हुआ था । यह सोनारों, महाजनों और साहूकारों का गिरोह था । उन्हीं ने आयतें करीमा "मन् ज़ल्लज़ी युक़्रिज़ुल्लाह क़र्ज़न् हसनन्"— सुनकर मज़ाक़ उड़ाने के अन्दाज़ में इस प्रकार की बुराई करनी शुरू की थी । यहूद की बदतमीज़ियों, अभद्रताओं और मज़ाक़ उड़ाने को आज कोई समझना चाहे तो आर्यसमाजियों का वह मुनाज़िराना साहित्य पढ़ ले जो अल्लाह और रसूल के सम्बन्ध में है जो उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िरी तिहाई और बीसवीं शताब्दी के शुरू में प्रचलित था । उससे पूरा अन्दाज़ा हो जायेगा ।

१८१ यानी फ़िरिश्तों के हाथ से उन लोगों के नामए आमाल (कार्यलेखा) में लिखाकर रहेंगे और ऐसी अभद्र फ़ब्तियों को कदापि दृष्टि से हटने न देंगे । 'सनक्तुबु'— 'स' यहाँ भी बल देने के लिए है ।

१८२ जो इतने कठोर हृदय के हों कि अपने पैग़म्बरों तक की हत्या कर डालें, उनसे ऐसी अभद्र बातों का होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं । नबियों की हत्या और नाहक़ हत्या पर रुकूअ ७ सूरए अल्बक़रः में हाशिए गुज़र चुके हैं । फ़क़ीहों का विचार है कि जो यहूद नबियों के क़त्ल से राज़ी और सन्तुष्ट रहे वह भी गोया कार्यरूप में हत्या में सम्मिलित रहें और उसके उत्तरदायी रहे और यह भी सत्य है कि गुनाह में राज़ी रहना भी गुनाह है । रसूलुल्लाह (स०) के समय के यहूद भी अपने पूर्वजों की भाँति इन नबी हज़रात के इन्कार करनेवाले और उन्हें नबूवत के झूठे दावेदार समझनेवाले थे और इसीलिए उन्हें हत्या कर देने के लायक़ समझते थे ।

१८३ (क़ियामत के दिन)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

1

(फ़ुटनोट सफ़ा ४१६ से)

जब सुलैमान दुआ माँग चुका तो आसमान से आग उतरी और जलनेवाली क़ुर्बानी और ज़िबह की हुई चीज़ों को खा गई और वह घर ख़ुदावन्द के तेज से भर गया।" (२, तवारीख ७:१)।

१८८ अतः आप कुछ रंज न करें, यह मामला तो सारे ही नबियों और रसूलों के साथ होता आया है। **'बय्यिनाति'** अक़ली दलीलों और मोजिज़ों सभी के लिए यह शब्द आया है। **'अज़्ज़ुबुर'**— ज़बूर का बहुवचन है, मुराद वह रिसाले (पत्रिकाएँ) होते हैं, जिनमें केवल नैतिकता एवं शिष्टाचार के उपदेश होते हैं। चारों इन्जीलें इसकी सबसे अच्छी मिसालें हैं। **'अल्किताब'**— क़ुर्आनी परिभाषा में इससे मुराद ऐसी पुस्तक होती है जिसमें आदेश और शरीअतें अंकित होती हैं।

१८९ (चाहे वह जानदार कोई और कैसा ही हो।) गोया इस्लाम की शिक्षा यह है कि मृत्यु एक प्राकृतिक अन्त और दुनियावी जीवन की परिपूर्णता है। उसे नेक काम करने और बुरे कर्म करने से कोई वास्ता नहीं और न यह मनुष्य के लिए दण्डस्वरूप है। इससे मसीहियों और यहूद के इस विश्वास का खण्डन होता है कि मृत्यु गुनाहों की सज़ा का नाम है या उसका परिणाम है। इन्जील में आता है— "जिस प्रकार एक आदमी के कारण गुनाह दुनिया में आया, और गुनाह के कारण मृत्यु आई और मृत्यु सब आदमियों में फैल गई।" (रोमियून–५:१२)। "गुनाह की मज़दूरी मृत्यु है।" (रोमियून ६०:१)। "इच्छा गर्भवती होकर गुनाह को जनती है और गुनाह जब बढ़ चुका तो मौत पैदा करता है।" (याक़ूब ७:१५)। यहूद का विश्वास है कि मौत परिणाम है व्यक्तिक गुनाह का। उनकी प्रमाणित एवं विश्वसनीय पुस्तक जिविश इन्साइक्लोपीडिया जिल्द ४, सफ़ा ४८३ में उनके रिब्बीयून के हवाले से अंकित है।

१९० (सो यदि आज कोई व्यक्ति यहाँ जुर्मों की सज़ा के क़ानूनों से बच भी गया तो उसका यह बचना अस्थायी है, क्योंकि यह दुनियावी जीवन वास्तव में जीवन-श्रृंखला का एक बहुत ही अधूरा और त्रुटिपूर्ण भाग है।) यहाँ साधारण मानव-जाति से सम्बोधन है। **"उजूर"**— अज्र का शब्द अपने विशाल अर्थ 'जज़ा' की भाँति अज़ाब एवं सवाब दोनों के लिए प्रयोग में आता है।

१९१ (और यहाँ के सभी भोग-विलास एवं आराम तथा राहत नितान्त अस्थायी, मिट जानेवाले और सामयिक हैं। उनका अस्तित्व अविश्वसनीय और शीघ्र समाप्त हो जानेवाला है। यदि यही अक़ीदा मनुष्य के सामने सदैव बना रहे तो मनुष्य फ़िरिश्तों के स्वभाव वाला बन जाए। **"ज़ुह्ज़िह् अनिन्नारि"**— यह बचना चाहे आरम्भ ही से हो चाहे कुछ सज़ा भुगतने के पश्चात्। **"हयातुद्दुन्या"**— दुनिया की हयात् (जीवन) से मुराद यहाँ उसके आनन्द, स्वाद, इच्छाएँ और सुसज्जताएँ इत्यादि हैं। **"फ़ मन······फ़ाज़"**— मानव-जीवन का महान उद्देश्य बस यही दो चीज़ें हैं जो यहाँ "फ़ौज़ें अज़ीम" के रूप में एकत्रित कर दी गई हैं यानी एक अज़ाब से नजात दूसरे पुण्य या सवाब की मन्ज़िल तक मार्ग की प्राप्ति। **"मताअुल् ग़ुरूरि"**— उर्दू या हिन्दी में "धोखे की टट्टी" के माने में है, यानी इस भौतिक एवं मिट जानेवाली दुनिया की किसी भी साजसज्जा पर भरोसा करना और ग़फ़्लत में पड़कर उसे विश्वसनीय समझने लगना अत्यन्त बड़ी भूल और नासमझी तथा मूर्खता है।

१९२ (ऐ मुसलमानो!) अर्थात् जीवन-हानि एवं धन की हानि दोनों प्रकार से तुम्हारी परीक्षा होगी। **"व अन्फ़ुसिकुम्"**— इससे उन फ़लसफ़ियों तथा मीमांसकों का खण्डन होता है, जिन्होंने भौतिक वस्तुओं की भाँति 'नफ़्स' अर्थात् आत्मा को भौतिक देह और दिखायी देनेवाला वस्तु को समानार्थक मान लिया है।

१९३ (अतः सन्तोष एवं धैर्य तथा सहनशीलता तथा दृढ़ता की आदत पर जमे रहना चाहिए। **"अज़न् कसीरन्"**— में दीन का निरादर और पयम्बर का अपमान इत्यादि सब बातें आ गईं। क़ुर्आन की यह भविष्यवाणी आज तक कैसी सही चली आ रही है। यहूद, मसीहियों और हिन्दुओं की ज़बान से मुसलमानों को अपने पयम्बर, अपने दीन तथा अपनी किताब के विषय में क्या कुछ सुनना नहीं पड़ चुका है?

१९४ (और इसलिए हर प्रकार से अमल करने योग्य एवं आवश्यक) **"अज़्म"**— यहाँ "जिसका इरादा किया गया हो" के अर्थ में प्रयोग हुआ है। **"ज़ालिक"**—यानी सन्तोष एवं संयम।

१९५ चुनांचे इस हुक्म की गवाही किसी दर्जे में तो वर्तमान परिवर्तन की हुई तौरेत और इन्जील

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४२२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज़ालिक बिमा क़द्दमत् अैदीकुम् व अन्नल्लाह लैस बि ज़ल्लामिल्-लिल्अबीदि ज
(१८२) अल्लज़ीन क़ालू अिन्नल्लाह अहिद अिलैना अल्ला नुअ्मिन
लि रसूलिन् हत्ता यअ्तियना बि क़ुरबानिन् तअ्कुलुहुन्नारु त क़ुल् क़द्
जा'अकुम् रुसुलुम्मिन् क़ब्ली बिल्बय्यिनाति व बिल्लज़ी क़ुल्तुम् फ़ लिम
क़तल्तुमूहुम् अिन् कुन्तुम् सादिक़ीन (१८३)
फ़ अिन् कज़्ज़बूक फ़क़द् कुज़्ज़िब रुसुलुम्मिन्
क़ब्लिक जा'ऊ बिल्बय्यिनाति वज़्ज़ुबुरि
वल्किताबिल्-मुनीरि (१८४) कुल्लु नफ़्सिन्
ज़ा'अिक़तुल्मौति त व अिन्नमा तुवफ़्फ़ौन
अुजूरकुम् यौमल्क़ियामति त फ़ मन् ज़ुह्ज़िह्
अनिन्नारि व अुद्ख़िलल्-जन्नत फ़क़द् फ़ाज़ ज
व मल्ह्यातुद्दुन्या' अिल्ला मताअुल्-ग़ुरूरि
(१८५) ल तुब्लवुन्न फ़ी' अम्वालिकुम् व
अन्फ़ुसिकुम् क़िफ़ व ल तस्मअुन्न मिनल्लज़ीन
अूतुल्किताब मिन् क़ब्लिकुम् व मिनल्लज़ीन
अश्रकू' अज़न् कसीरन् त व अिन्
तस्बिरू व तत्तक़ू फ़ अिन्न ज़ालिक मिन्

الحمران ٣ — ٥٩ — لن تنالوا ٤

اِنَّ اللّٰهَ لَيْسَ بِظَلَّامٍ لِّلْعَبِيْدِ ﴿١٨٢﴾ اَلَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ عَهِدَ اِلَيْنَآ
اَلَّا نُؤْمِنَ لِرَسُوْلٍ حَتّٰى يَاْتِيَنَا بِقُرْبَانٍ تَاْكُلُهُ النَّارُ ۭ قُلْ قَدْ
جَاۗءَكُمْ رُسُلٌ مِّنْ قَبْلِيْ بِالْبَيِّنٰتِ وَبِالَّذِيْ قُلْتُمْ فَلِمَ قَتَلْتُمُوْھُمْ
اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿١٨٣﴾ فَاِنْ كَذَّبُوْكَ فَقَدْ كُذِّبَ رُسُلٌ مِّنْ قَبْلِكَ
جَاۗءُوْ بِالْبَيِّنٰتِ وَالزُّبُرِ وَالْكِتٰبِ الْمُنِيْرِ ﴿١٨٤﴾ كُلُّ نَفْسٍ ذَاۗىِٕقَةُ الْمَوْتِ ۭ
وَاِنَّمَا تُوَفَّوْنَ اُجُوْرَكُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۭ فَمَنْ زُحْزِحَ عَنِ النَّارِ وَ
اُدْخِلَ الْجَنَّةَ فَقَدْ فَازَ ۭ وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَآ اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ ﴿١٨٥﴾
لَتُبْلَوُنَّ فِيْٓ اَمْوَالِكُمْ وَاَنْفُسِكُمْ ۣ وَلَتَسْمَعُنَّ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا
الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَمِنَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْٓا اَذًى كَثِيْرًا ۭ وَاِنْ
تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ ذٰلِكَ مِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ﴿١٨٦﴾ وَاِذْ اَخَذَ اللّٰهُ
مِيْثَاقَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَتُبَيِّنُنَّهٗ لِلنَّاسِ وَلَا تَكْتُمُوْنَهٗ
فَنَبَذُوْهُ وَرَاۗءَ ظُهُوْرِھِمْ وَاشْتَرَوْا بِهٖ ثَمَنًا قَلِيْلًا ۭ فَبِئْسَ مَا
يَشْتَرُوْنَ ﴿١٨٧﴾ لَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ يَفْرَحُوْنَ بِمَآ اَتَوْا وَّيُحِبُّوْنَ
اَنْ يُّحْمَدُوْا بِمَا لَمْ يَفْعَلُوْا فَلَا تَحْسَبَنَّھُمْ بِمَفَازَةٍ مِّنَ
الْعَذَابِ ۚ وَلَھُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٨٨﴾ وَلِلّٰهِ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَ
الْاَرْضِ ۭ وَاللّٰهُ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿١٨٩﴾ اِنَّ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ لَاٰيٰتٍ لِّاُولِي الْاَلْبَابِ ﴿١٩٠﴾

منزل

अज़्मिल्-अुमूरि (१८६) व अिज़् अख़ज़ल्लाहु मीसाक़ल्लज़ीन अूतुल्किताब
ल तुबय्यिनुन्नहू लिन्नासि व ला तक्तुमूनहू ज फ़ नबज़ूहु वरा'अ ज़ुहूरिहिम्
वश्तरौ बिही समनन् क़लीलन् त फ़ बिअ्स मा यश्तरून (१८७) ला
तह्सबन्नल्लज़ीन यफ़्रहून बिमा' अतव्व युहिब्बून अंय्युहमदू बिमा लम् यफ़्अलू
फ़ ला तह्सबन्नहुम् बि मफ़ाज़तिम् - मिनल्-अज़ाबि ज व लहुम् अज़ाबुन्
★ अलीमुन् (१८८) व लिल्लाहि मुल्कुस्समावाति वल्अर्ज़ि त वल्लाहु अला
रु. १९ कुल्लि शैअिन् क़दीरुन् (१८९) ★ अिन्न फ़ी ख़ल्क़िस्समावाति वल्अर्ज़ि
१० वख़्तिलाफ़िल्लैलि वन्नहारि ल आयातिल्-लि अुलिल् - अल्बाबि ज ला (१९०)
आ ८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह उस (करतूत) की वजह से हुआ जो तुम आगे भेज चुके हो और इसलिए कि अल्लाह बन्दों
पर ज़रा भी ज़ुल्म करनेवाला नहीं[१८४]। (१८२) (यह वह लोग हैं) जो कहते हैं[१८५] कि
ख़ुदा ने हमें हुक्म दिया था कि हम किसी रसूल पर ईमान न लायें जब तक वह हमारे समक्ष
ऐसी नियाज़ न प्रस्तुत करे जिसे आग खा जाए[१८६]। आप कह दीजिए कि मुझसे पूर्व तुम्हारे
पास रसूल दलीलों के साथ और उस (मोजिज़े) के साथ भी आ चुके जिसे तुम कह रहे हो, तो
तुमने उन्हें क्यों मार डाला अगर तुम सच्चे हो[१८७]। (१८३) सो यदि यह आपको झुठला रहे
हैं, तो आपसे पहले भी पैग़म्बरों को झुठलाया गया है, जो गवाहियों और फ़िरिश्तों और रौशन
पुस्तकों के साथ आये थे[१८८]। (१८४) हर जानदार को मौत का मज़ा चखना है[१८९]। और
तुमको तुम्हारी पूरी मज़दूरी तो बस क़ियामत ही के दिन मिलेगी[१९०]। तो जो व्यक्ति दोज़ख़
से बचा लिया गया और जन्नत में प्रवेश पा गया सो वही सफल हुआ। और दुनिया का
जीवन तो कुछ भी नहीं सिवाय एक धोखे के सौदे के[१९१]। (१८५) यक़ीनन् तुम अपने माल
और जान से आज़माये जाओगे[१९२], और अवश्य तुम बहुत-सी दुःखद बातें उनसे (भी) सुनोगे
जिन्हें तुमसे पहले किताब मिल चुकी है और उनमें से भी जो मुश्रिक हैं[१९३]। और यदि तुम
सब्र करो और संयम को अपनाओ तो यह बलशाली आदेशों में से है[१९४]। (१८६) (और
वह समय वर्णन के योग्य है) जब अल्लाह ने किताबवालों से वादा लिया था कि किताब को पूर्ण
रूप से ज़ाहिर कर देना साधारण लोगों पर और उसे छुपाना नहीं[१९५], सो उन्होंने उस वादे को
पीठ के पीछे फेंक दिया और उसको एक तुच्छ मूल्य के बदले बेच डाला[१९६]। सो कैसी बुरी
चीज़ है जिसे वह ख़रीद रहे हैं। (१८७) कदापि ख़याल न करो कि जो लोग अपने करतूतों
पर प्रसन्न होते हैं, और चाहते हैं कि जो कार्य नहीं किये हैं उन पर भी उनकी प्रशंसा की
जाए[१९७], सो ऐसे लोगों के लिए कदापि ख़याल न करो कि वह अज़ाब से बचे रहेंगे; उनके ★ रु. १९
लिए तो दर्दनाक (अत्यन्त दुःखद) अज़ाब है[१९८]। (१८८) अल्लाह के लिए राज्य है —
आकाशों और पृथ्वी का और अल्लाह हर चीज़ पर अधिकार रखता है[१९९]। (१८९) ★ १०

निःसन्देह आकाशों और पृथ्वी की पैदाइश (उत्पत्ति) में और रात-दिन के आ ६
अदल-बदल में बुद्धिमानों के लिए (बड़ी) निशानियाँ हैं[२००]। (१९०)

---

१८४ यह ठीक उसके इन्साफ़ की सिफ़त का तक़ाज़ा होगा कि ऐसे अपराधियों को उनके अपराधों की सख़्त सज़ा दे। इसमें ज़ुल्म का कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे अत्याचारियों और अन्याइयों का सज़ा से बच निकलना स्वयं उन लोगों पर अत्याचार होगा जिन पर ज़ुल्म हुआ है। मुश्रिक जातियों ने अपनी देवी-देवताओं को ज़ालिम और ज़बर्दस्ती करनेवाला भी माना है, यहाँ ऐसे तमाम विश्वासों का खण्डन होता है। **'मा क़द्दमत् अदीकुम'**— हश्र में अज़ाब तो केवल एक रूप होकर सामने आयेगा, अन्यथा होगा तो वास्तव में उन अपराधियों के दुनियावी करतूतों का ही फल।

१८५ (और सारे का सारा झूठ कहते हैं।)

१८६ यानी नबूवत के दावेदार के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि जो बलिदान बलिदान-स्थल पर पेश की जाए उसे आग आसमान से आकर जला जाए। जलानेवाली क़ुर्बानी का वर्णन तौरेत में बराबर आया है। **"अहिद इलैना"**— यानी हमने इस्राईली नस्ल को हुक्म दिया था।

१८७ यानी अगर तुम्हारा यह दावा सही है कि नबूवत का मर्तबा और इस विशेष मोजिज़े का प्रकट होना दोनों चीज़ें एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, तो आख़िर तुम्हारी क़ौम के जिन नबियों ने यह मोजिज़ा दिखाया, तुमने उनका इन्कार क्यों किया? **"जा'अकुम् रुसुलु"**— यानी तुम्हारी ही नस्ल और जाति के पयम्बर जो तुम्हारे पास आ चुके हैं। **'बिल्लज़ी क़ुल्तुम्'**— तौरेत में इस प्रकार की अनेकों घटनाएँ अंकित हैं, जैसे— ऐलिया नबी निकट आया और बोला— "तब ख़ुदावन्द की ओर से आग उतरी और उसने उस जलनेवाली क़ुर्बानी और लकड़ियों और पत्थरों और पानी को जलाया।" (१-सलातीन, १८:३७-३८)। "और

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अ्ल्लज़ीन यज़्कुरूनल्लाह क़ियामंव्व क़ुअूदंव्व अ़ला जुनूबिहिम् व यतफ़क्करून फ़ी ख़ल्क़िस्समावाति वल्अर्ज़ि ज रब्बना मा ख़लक़्त हाज़ा बातिलन् ज सुब्हानक फ़ क़िना अ़ज़ाबन्नारि (१९१) रब्बना अिन्नक मन् तुद्ख़िलिन्नार फ़ क़द् अख़्ज़ैतहू त व मा लिज़्ज़ालिमीन मिन् अन्सारिन् (१९२) रब्बना अिन्नना समिअ़्ना मुनादियंय्युनादी लिल्ओमानि अन् आमिनू बि रब्बिकुम् फ़ आमन्ना क़ ऊला रब्बना फ़ग़्फ़िर्लना ज़ुनूबना व कफ़्फ़िर् अ़न्ना सय्यिआतिना व तवफ़्फ़ना मअ़ल्-अब्रारि ज (१९३) रब्बना व आतिना मा वअ़त्तना अ़ला रुसुलिक व ला तुख़्ज़िना यौमल्-क़ियामति त अिन्नक ला तुख़्लिफ़ुल्-मीआ़द (१९४) फ़स्तजाब लहुम् रब्बुहुम् अन्नी ला उज़ीअ़ु अ़मल आ़मिलिम्-मिन्कुम् मिन् ज़करिन् औ अुन्सा ज बअ़्ज़ुकुम् मिम्बअ़्ज़िन् ज फ़ल्लज़ीन हाजरू व उख़्रिजू मिन् दियारिहिम् व ऊज़ू फ़ी सबीली व क़ातलू व क़ुतिलू लअुकफ़्फ़िरन्न अ़न्हुम् सय्यिआतिहिम् व ल अुद्ख़िलन्न-हुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ज सवाबम्-मिन् अ़िन्दिल्लाहि त वल्लाहु अ़िन्दहू हुस्नुस्सवाबि (१९५) ला यग़ुर्रन्नक तक़ल्लुबुल्लज़ीन कफ़रू फ़िल्बिलादि त (१९६) मताअ़ुन् क़लीलुन् क़िफ़ सुम्म मअ्वाहुम् जहन्नमु त व बिअ्सल्मिहादु (१९७) लाकिनिल्-लज़ीनत्तक़ौ रब्बहुम् लहुम् जन्नातुन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदीन फ़ीहा नुज़ुलम्मिन् अ़िन्दिल्लाहि त व मा अ़िन्दल्लाहि ख़ैरुल्लिल् - अब्रारि (१९८) ● व अिन्न मिन् अह्लिल्किताबि लमंय्युअ्मिनु बिल्लाहि व मा उन्ज़िल अिलैकुम् व मा उन्ज़िल अिलैहिम् ख़ाशिअ़ीन लिल्लाहि ला ला यश्तरून बि आयातिल्लाहि समनन् क़लीलन् त अुलाअिक लहुम् अज्रुहुम् अ़िन्द रब्बिहिम् त अिन्नल्लाह सरीअ़ुल्हिसाबि (१९९)

रु. ३ / ४

الذين يذكرون الله قياما وقعودا وعلى جنوبهم ويتفكرون
في خلق السماوات والأرض ربنا ما خلقت هذا باطلا سبحانك
فقنا عذاب النار ۝ ربنا إنك من تدخل النار فقد أخزيته
وما للظالمين من أنصار ۝ ربنا إننا سمعنا مناديا ينادي
للإيمان أن آمنوا بربكم فآمنا ربنا فاغفر لنا ذنوبنا و
كفر عنا سيئاتنا وتوفنا مع الأبرار ۝ ربنا وآتنا ما وعدتنا
على رسلك ولا تخزنا يوم القيامة إنك لا تخلف الميعاد ۝
فاستجاب لهم ربهم أني لا أضيع عمل عامل منكم من
ذكر أو أنثى بعضكم من بعض فالذين هاجروا وأخرجوا
من ديارهم وأوذوا في سبيلي وقاتلوا وقتلوا لأكفرن عنهم
سيئاتهم ولأدخلنهم جنات تجري من تحتها الأنهار ثوابا
من عند الله والله عنده حسن الثواب ۝ لا يغرنك تقلب
الذين كفروا في البلاد ۝ متاع قليل ثم مأواهم جهنم
وبئس المهاد ۝ لكن الذين اتقوا ربهم لهم جنات تجري
من تحتها الأنهار خالدين فيها نزلا من عند الله وما عند
الله خير للأبرار ۝ وإن من أهل الكتاب لمن يؤمن بالله وما
أنزل إليكم وما أنزل إليهم خاشعين لله لا يشترون بآيات الله

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह वह लोग हैं जो अल्लाह को खड़े और बैठे और अपनी हर करवटों पर (बराबर) याद करते रहते हैं[२०१], और आकाशों और पृथ्वी की उत्पत्ति पर ग़ौर करते रहते हैं[२०२], ऐ परवरदिगार ! तूने यह (सब) निरर्थक नहीं पैदा किया है[२०३]। तू पाक है[२०४], सो बचाए रखियो हमको दोज़ख के अज़ाब से[२०५]। (१९१) ऐ हमारे परवरदिगार ! तूने जिसे दोज़ख में प्रविष्ट किया उसे वास्तव में रुस्वा ही कर दिया। और अत्याचारियों की कोई सहायता करनेवाला नहीं है[२०६]। (१९२) ऐ हमारे परवरदिगार ! हमने एक पुकारनेवाले को सुना ईमान की पुकार करते हुए कि अपने परवरदिगार पर ईमान ले आओ। सो हम ईमान ले आये[२०७]। ऐ हमारे परवरदिगार ! हमारे गुनाहों को बख़्श दे (क्षमा कर दे), और हमसे हमारी त्रुटियों को दूर कर दे, और हमें नेकों के तरीक़े पर मौत दे[२०८]। (१९३) ऐ परवरदिगार ! हमें प्रदान कर वह चीज़ जिसका तू हमसे अपने पैग़म्बरों के माध्यम से वादा कर चुका है। और हमको क़ियामत के दिन रुस्वा (निन्दित) न करना[२०९]। निःसन्देह तू तो वादे के विरुद्ध कार्य नहीं करता[२१०]। (१९४) सो उनकी दुआ को उनके परवरदिगार ने क़बूल कर लिया[२११], इसलिए कि मैं तुममें से किसी अमल करनेवाले के, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, अमल को नष्ट नहीं होने देता। तुम आपस में एक-दूसरे के अंश हो[२१२]। तो जिन लोगों ने हिज्रत (स्वदेश-त्याग) की (अल्लाह की राह में), और अपने नगरों से निकाले गये, और (और भी) कष्ट उन्हें मेरी राह में दिये गये, और वह लड़े और मारे गये, उनकी ख़ताएँ अवश्य उनसे क्षमा कर दी जाएँगी[२१३], और मैं अवश्य उन्हें ऐसे बाग़ों में प्रविष्ट करूँगा जिनके नीचे नदियाँ बह रही होंगी। (यह) अल्लाह के पास से पुण्य मिलेगा और अल्लाह ही के पास तो सबसे अच्छा पुण्य है[२१४]। (१९५) (यह) काफ़िरों का नगरों में चलना-फिरना कहीं तुझे धोखे में न डाल दे[२१५]। (१९६) यह थोड़े दिनों की बहार है[२१६], फिर तो इनका ठिकाना दोज़ख है। और वह कैसा बुरा विश्रामगृह है। (१९७) अल्बत्ता जो लोग अपने परवरदिगार से डरते रहते हैं, उनके लिए बाग़ होंगे जिनके नीचे नदियाँ बह रही होंगी, उनमें वह हमेशा (-हमेश) रहेंगे। यह तो मेहमानी (होगी) अल्लाह की ओर से। सु. ३/४
और जो कुछ अल्लाह के पास है वह नेकों के हक़ में कहीं बेहतर है[२१७]। (१९८) और किताबवालों में कुछ ऐसे भी अवश्य हैं, जो अल्लाह पर और तुम पर जो कुछ उतारा गया है और जो कुछ उन पर उतारा गया है उस पर ईमान रखते हैं, अल्लाह से डरनेवाले हैं। अल्लाह की आयतों का तुच्छ मूल्य पर सौदा नहीं करते[२१८]। उन्हें उनका बदला उनके परवरदिगार के पास अवश्य मिलेगा। बेशक अल्लाह हिसाब बहुत जल्द ले लेता है[२१९]। (१९९)

---

२०१ यानी ईश-स्मरण चाहे हृदय से हो या ज़बान से यह हर दशा और हर प्रकार से करते रहते हैं। उद्देश्य है बराबर अल्लाह की याद करने की बात ज़ाहिर करना।

२०२ सृष्टि की इन महान वस्तुओं के प्राकृतिक नियमों और उत्पत्ति के विधानों से उस महान कलाकार और महान उत्पादक की महान शक्ति, उसकी बुद्धिमत्ता तथा उसकी कला एवं कौशल पर तर्क-वितर्क करते रहना केवल उपासना और इबादत ही नहीं, अपितु श्रेष्ठ उपासना एवं तपस्या और इबादत है। काश ऐसा होता कि हमारे वैज्ञानिक, गणितशास्त्र, खगोलविज्ञान, विज्ञानशास्त्र, अंतरिक्षविज्ञान के शास्त्री इन विज्ञानों पर धार्मिक तथा ईमानी दृष्टिकोण से क़लम उठाते।

२०३ अर्थात् बिना उद्देश्य और अकारण नहीं पैदा किया है। बड़े-बड़े उद्देश्य एवं बुद्धिमानी उनके भीतर रखी हैं। जो लोग भौतिक एवं प्रकृति के ही माननेवाले हैं और यह विश्वास रखते हैं कि यह सारी चीज़ें केवल संयोग का परिणाम हैं, यहाँ उनके इस विचार का खण्डन होता है। और उन असत्य धर्मों का भी, जिनके यहाँ यह सृष्टि की व्यवस्था केवल किसी देवता की खेल-तमाशे की वस्तु या एक प्रकार का जादू और शाबदः (इन्द्रजाल) है।

२०४ (हर कार्य व्यर्थ एवं बेकार है।) (फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४१२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४१७ से)

भी दे रही है। "तुम इस वार्त्ता में जो मैं तुम्हें कह रहा हूँ, कुछ अधिक न कीजियो और न इसमें कम कीजियो।" (इस्तिस्ना, ४:२)। "तू यह बात अपने बेटों और पोतों को सिखला।" (इस्तिस्ना, ४:९)। "उसने ...... बनी इसराईल में एक शरीअत (धर्मविधान) रखी जिसके बारे में उसने हमारे बाप-दादों को आदेश दिया कि वह उसे अपनी सन्तान को सिखलावें, ताकि आनेवाली पीढ़ी वह पुत्र जो उत्पन्न होवें, सीखें और वह उठकर अपनी सन्तान को सिखलावें।" (ज़बूर–७८:५-६)। "जो कुछ मैं तुमसे अँधेरे में कहता हूँ, उजाले में कहो, और जो कुछ तुम कहते हो, कोठों पर उसकी घोषणा करो। (मत्ती, १०:२७)। **"ल तुबय्यिनुन्नहू"— 'तबय्यन'** के मानी हैं खूब खोलकर वर्णन करने के। "हे" का सर्वनाम किताब की ओर है अर्थात् जो किताब तुम्हें मिले उसको और उसके मज़मूनों को खूब फैलाओ और उसका प्रचार एवं प्रसार करो। **"व ला तक्तुमूनहू"**— अर्थात् उसके किसी भाग, किसी मज़मून को किसी मतलब से भी न छुपाओ।

१९६ यानी अल्लाह के निर्देशों को सस्ते दामों में बेचकर दुनिया खरीद ली। **"समनन् क़लीलन्"**— आखिरत की अपेक्षा दुनिया सदैव कम मूल्य की ही रहेगी। यह अर्थ नहीं है कि इन निर्देशों ने परिवर्तन और हेर-फेर का मूल्य हलका लिया, उन्हें इससे अधिक लेना चाहिए था।

१९७ आदेश तो साधारण रूप से सभी के लिए है परन्तु विशेष रूप से यहाँ उस समय के यहूद विद्वानों एवं मुनाफ़िक़ों की ओर संकेत है। **"बिमा' तव"**— चुनांचे अपनी इस कार्यवाही पर इतरा रहे हैं कि सत्य को छुपाया और अपने बुरे कार्यों को छुपाते रहे। **"मा लम् यफ़्अलू"**— चुनांचे उसे गौरव की बात समझते हैं कि सच्चे धर्म का प्रचार और प्रसार नहीं किया।

१९८ (आखिरत में) **"बि मफ़ाज़तिम्-मिनल-अज़ाबि"**— इस अज़ाब से मुराद इसी दुनिया में सज़ाएँ हैं, चुनांचे यहूद चन्द ही वर्षों में हताहत हुए, बन्दी बनाये गये और मुनाफ़िक़ यहूद असम्मानित हुए तथा उनका अपमान हुआ।

१९९ (चुनांचे अपराधियों की दुनियावी तथा आखिरत की सज़ाओं पर भी) यदि मनुष्य को अल्लाह के राज्य तथा उसकी अथाह शक्ति का खयाल मन में हर दम जमा रहे तो वह कदापि गुनाह न करे।

२०० आकाश के संघटन और व्यवस्था तथा उसके विस्तार, चन्द्रमा, सूर्य, सितारों आदि की संख्या, उनके मध्य के अन्तर, उनके पारस्परिक सम्बन्ध एवं प्रभाव, उनकी चाल की माप, ग्रहण के कारण तथा समय, उनके उदय होने तथा अस्त होने की बात, प्रकाश एवं गर्मी इत्यादि के नियम और विधान, इस प्रकार के विवरणों से वैज्ञानिक पुस्तकें भरी पड़ी हैं; रही हमारी पृथ्वी, उसकी लम्बाई, चौड़ाई, उसकी धातुएँ, खनिज-पदार्थ, आकर्षण, वायु, एवं मौसमों के परिवर्तन इत्यादि के लिए तो कोई एक पूरी कला भी पर्याप्त नहीं हुई बल्कि भूगोल, भौतिक भूगोल, जियालोजी, मैटिरियालोजी, आर्कियालोजी, खुदा जाने कितनी कलाएँ निकलती ही चली आ रही है, परन्तु खुदा की हिकमतों और उसकी कलाओं के अन्दाज़े और तखमीने समाप्त ही नहीं होने आते। आयत में उन मुशरिक जातियों का भी खण्डन आ गया, जिन्होंने आसमान या ज़मीन में या रात-दिन को देवी-देवता समझा है। पूजनीय क्षमता उनमें किसी में भी नहीं। यह सब के सब एक महान कारीगर के ही क़ब्ज़े में हैं और सब उसी की हैं।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४२१ से)

२०५ (और वह इस प्रकार कि हमें सच्ची राह पर चला और गुमराही के मार्ग के छाये से भी सुरक्षित रख।) यह अर्थ नहीं है कि हम तो अन्धाधुन्ध हर प्रकार के कुफ़्र और शिर्क में लीन रहें और तू हमें केवल उनके प्राकृतिक परिणाम से सुरक्षित कर दे।

२०६ (कि उन्हें मेरे अज़ाब से कुछ भी बचा सके।) **"अज़्ज़ालिमीन"**— से यहाँ स्पष्ट मुराद काफ़िर है। **"मन् तुद्खिलिन्नार"**— मुराद वह लोग हैं जो कुफ़्र एवं शिर्क की हालत में मरे और हमेशा-हमेश के अज़ाब के लिए दोज़ख में झोंके जायेंगे, वह गुनाहगार मुसलमान मुराद नहीं हैं जो गुनाहों से पाक तथा साफ़ होने के लिए और आत्मस्वच्छता की ग़रज़ से सामयिक रूप से अस्थायी ढंग में आग की भट्ठी में डाले जायेंगे। हकीमों एवं आलिमों की एक जमाअत का विचार है कि आत्मिक अज़ाब, भौतिक अज़ाब से भी बढ़कर कष्टदायक और भयंकर होगा इसलिए क़ुर्आन **"खिज़्य"** (रुस्वाई— बेइज़्ज़ती) का वर्णन दोज़ख के अज़ाब के पश्चात् करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२०७ (उस सच्चे दावत देनेवाले के निर्देशों के अनुसार) शरीअत में ईमान वही विश्वसनीय एवं प्रमाणित है जो नबी के निर्देशों के अनुकूल हो न कि अपने विचार एवं अन्दाज़े के अन्तर्गत। इमाम तिरमिज़ी से यहीं से निष्कर्ष निकाला है कि अपने ईमान को ''इन्शा अल्लाह'' (यदि अल्लाह ने चाहा) के साथ अनुबन्धित एवं शर्त के अन्तर्गत करना उचित नहीं है। 'मुनादिमंय्यु'— पुकारनेवाले से मुराद रसूल (स०) हैं। **''युनादी लिल्ईमानि''**— यह आवश्यक नहीं कि पयम्बर का निमन्त्रण सीधे पहुँचा हो, किसी माध्यम से भी पहुँचे, हर दशा में पयम्बर का निमन्त्रण होगा। **''रब्बना''**— आयत में इस शब्द की तकरार (बार-बार लाना) अत्यन्त ईश-भक्ति एवं इस भाव के प्रकट करने को हुई है कि ऐ हमारे पालने-वाले! तू ही हमारा पैदा करनेवाला, पालनेवाला और हमारा भला चाहनेवाला है और तेरे सिवा कोई कुछ नहीं है। **''फ़ग़्फ़िर्लना''**— इस आयत से अहले सुन्नत शोधकों ने यह तर्क किया है कि बिना तौबा के भी मोक्ष हो जायेगी और इस दृष्टिकोण का दोहरा आधार स्थापित किया है। एक यह कि यहाँ तौबा का कोई ज़िक्र नहीं है, केवल क्षमा करने और मोक्ष प्रदान करने का निवेदन है और दुआ स्वीकार हो गई जैसा कि अभी आता है **''फ़स्तजाब लहुम् रब्बहुम्''**। दूसरे यह कि उन लोगों ने अपने ईमान की सूचना देते ही तुरन्त बाद बख़्शिश (क्षमा) की माँग की है, जिससे प्रतीत होता है कि बख़्शिश का क्रम केवल ईमान पर हो जाता है यानी ईमान के बाद मोक्ष का नम्बर आ जाता है।

२०८ (और आख़िरत में उनका साथ नसीब कर।) **''ज़ुनूबिना''**— **'ज़ुनूब'** का अर्थ है बड़े गुनाह। **''सय्यिआतिना''**— **''सय्यिआत''** से अर्थ है छोटे गुनाह। एक व्याख्या यह भी दी गई है कि ज़ुनूब से मुराद वह गुनाह हैं जो बन्दे से अपने पालनेवाले (रब) एवं पैदा करनेवाले के मामले में हों तथा **'सय्यिआतिना''** से मुराद वह कमियाँ या त्रुटियाँ हैं जो बन्दे से बन्दों के मामलों में हों। ज़ुनूब की बख़्शिश यह है कि उनकी पकड़ न की जाए तथा **''सय्यिआत''** का प्रायश्चित्त यह है कि उन्हें भुला दिया जाए।

२०९ यानी हम पर आरम्भ से ही बराबर कृपादृष्टि एवं मेहरबानी रख। जहन्नम के जो सख़्त अज़ाब हैं वह तो ख़ैर बड़े भयंकर हैं ही, बाक़ी हश्र के मैदान में आम बेइज़्ज़ती और असम्मान, क्या यह कुछ कम है, ज़रा इस पर तो विचार किया जाए। **''आतिना मा व अत्तना''**— यानी वादा किया हुआ बदला अर्थात् जन्नत जिसका वादा किया गया है। **''अला रुसुलिक''**— अल्लाह के वादे सभी विश्वसनीय हैं जो पयम्बरों के माध्यम से हों, प्रमाण केवल उन्हीं का है न कि अपनी अक़्ल तथा समझदारी से फ़र्ज़ किये हुए वादे। **''रब्बना''**— दुआ में बार-बार इस शब्द का दोहराना, अल्लाह के पालनहार होने की सिफ़त को बार-बार सम्बोधित करना और गोया उसे इस सिफ़त का वास्ता देना, दुआ करनेवाले के भय, उसके लगाव तथा उसकी भावनाओं की गहराई की दलील है।

२१० अतः तेरे वादे पर तो बिलकुल भरोसा है, परन्तु यह सन्तोष तो नहीं कि यह वादे हमारे हक़ में ही सच्चे सिद्ध होंगे और हम स्वयं भी इन वादों से लाभान्वित होनेवालों में होंगे।

२११ (और उन्हें अपनी कृपा और मेहरबानी की जन्नत में प्रविष्ट कर दिया।)

२१२ (और तुम दोनों अलग-अलग प्रकार के लोग नहीं, एक ही प्रकार की दो शाखाएँ हो।) **''अन्नी ला'उज़ीअु''**— हर भाषा की एक विशेष वर्णन-विधि होती है और एक विशेष लेखन-शैली होती है। ऊपर से बराबर अनुपस्थित का सीग़ा चला आ रहा है। अब यकायक बोलनेवाले का सीग़ा आ गया। अरबी साहित्य एवं लेख में यह यकायक सीग़ा-परिवर्तन त्रुटि नहीं समझा जाता, बल्कि यह प्रशंसा योग्य है और अपने खास मौक़े पर, विशेष स्थिति में यह एक सुन्दरता है, इसको अरबी में **''सनअते इल्तिफ़ात''** कहते हैं। यहाँ बोलनेवाले का सीग़ा विशेषता एवं स्नेह का प्रतीक है। **''मिन् ज़करिन् औ अुन्सा''**— जाहिली धर्मों में बल्कि मसीहीयत में भी स्त्री होना स्वयं एक त्रुटि बल्कि अपराध था। बेचारी स्त्री, केवल इस कारण कि वह स्त्री है, बहुत से दर्जों (सम्मान) तथा पुण्य से वञ्चित थी। इस गुमराही को मिटाने हेतु स्पष्टता के साथ यह वर्णन करने की आवश्यकता थी कि जिस स्त्रीलिंग या पुंलिंग होने के कारण अमल तथा उस अमल के बदले पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। अमल के लिहाज से स्त्री हो या पुरुष, हर अमल करने वाला बराबर है, समान है। नमाज़ उसकी भी स्वीकार और इसकी भी, रोज़ा उसका भी क़बूल, इसका भी। पवित्रता उसकी भी मान और इसकी भी आदि आदि। **''ला' अुज़ीअु''**— बोलनेवाले का सीग़ा प्रयोग में लाकर यह भी बता दिया कि अमल (कर्म) के बदले का क्रम केवल अल्लाह के हाथ में है। यह नहीं कि बिना अल्लाह के इरादे के बदले का क्रम स्वयं मैकानिकी रूप से बन जाया करे। **'बअ्ज़ुकुम् मिम्बअ्ज़िन्''**— यह विस्तार है इस बात का कि मानवता दोनों जिंसों में संयुक्त और मुश्तरक है, अतः हुक्म भी दोनों का संयुक्त रहेगा। अमल एवं उसकी स्वीकृति के लिहाज़ से दोनों लिंगताएँ बिलकुल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक हैं। यह भी स्मरणीय है कि दोनों लिंगताओं के बीच मानवता की संयुक्ति की यह शिक्षा बीसवीं शताब्दी में नहीं, सातवीं शताब्दी ईसवी के आरम्भ में मिल रही है जबकि इंग्लैण्ड और भारत दोनों में स्त्री होना स्वयं एक अपराध था और औरत का अस्तित्व गन्दगी और अपवित्रता के समानार्थ था। इस शिक्षा की पूरी क़द्र इतिहास के सामने रखने पर ही हो सकेगी।

२१३ (और यह छोटे गुनाहों के प्रायश्चित्त वाला इन्आम उस बदले के अतिरिक्त होगा जो उन्हें उनकी नेकियों और कठोर आमाल के बदले में प्राप्त होगा।) "अल्लज़ीन हाजरू...व क़ुतिलू"— यह वर्णन हो रहा है हुज़ूर (स०) के साथियों और सहाबियों की जाँनिसारी (आत्म-बलिदान) का और बयान में चन्द आमाल का जो नाम लेकर ज़िक्र किया गया है, यह केवल उदाहरणार्थ एवं नमूना मात्र है। नेकियों की सूची के चन्द विषयों के शीर्षक लाकर यह बता दिया कि इन्हीं के आधार पर सारे नेक कार्यों का अन्दाज़ा लगा लिया जाए। इसका यह अर्थ नहीं है कि यही चन्द आमाल प्रायश्चित्त का काम दे सकेंगे। "लअकफ़्फ़िरन्न अन्हुम् सय्यिआतिहिम्"— इस विस्तार से साफ़ प्रकट हो गया कि यह महानुभाव इन मर्तबों के बावजूद सहाबी, मुहाजिर और अल्लाह को राह में ज़ुल्म सहनेवाले, ग़ाज़ी और शहीद होने के मासूम (वह व्यक्ति जो गुनाह करें ही नहीं और जिनको ख़ुदा स्वयं गुनाहों से दूर रखता है यानी नबी और पयम्बर) न होंगे, वह त्रुटियों और ख़ताओं से परे न होंगे, छोटे गुनाह करनेवाले होंगे। साधारण मानव-त्रुटियाँ उनसे भी हो सकेंगी। अल्बत्ता अल्लाह की मेहरबानी उनको ऐसी क्षमता देगी कि गुनाह उन पर क़ाबू न पा सकेंगे। आज जो हर "शेख़" और "बुज़ुर्ग" को अमली तौर पर पवित्र, मासूम और मानवीय कमज़ोरियों से परे समझा जाने लगा है, इस ग़लत अक़ीदे का खण्डन क़ुर्आन मजीद पग-पग पर कर रहा है।

२१४ यानी यह सबसे अच्छी और सबसे ऊँची नेमत केवल अल्लाह के हाथ में है और किसी के हाथ में नहीं।

२१५ यानी ऐ सम्बोधन किये जानेवालो! कुफ़्र वालों का दुनिया के आनन्दों से लाभान्वित होना, भौतिक नेमतों का भागीदार होना, कभी तुम्हें इस धोखे में न डाल दे कि उनकी दशा बड़ी सम्मानजनक एवं आदरणीय है —यह धोखा भी कितना आम है और आज दुनिया कितना इस धोखे में पड़ी हुई है और इसी फ़रेब पर मिटी हुई है।

२१६ आख़िरत की हमेशा वाली नेमतों और सम्मानों का इन दुनियावी आनन्दों से क्या सम्बन्ध है? रसूल (स०) की हदीस में आया है कि दुनिया को आख़िरत के मुक़ाबले में यदि कोई समझना चाहे तो मौजें मारते हुए समुद्र में उँगली की नोक डाले और निकाल ले और फिर देखे कि कितना पानी उसमें आया है। दुनियावी स्वादों की तुच्छता, अस्थायित्व एवं बेक़द्री का पाठ क़ुर्आन मजीद ने पग-पग पर दिया है और यदि यह बात हर समय दृष्टि के सामने रहे तो किसी गुनाह के घटित होने की नौबत ही न आये। "मताअ" के शब्द में स्वयं ही अस्थायित्व एवं मिट जाने की कल्पना आ गई। उस पर और बल देने की सिफ़त "क़लील" लाकर कर दी गई।

२१७ (हर दुनियावी स्वाद और नेमत से चाहे दशा में हो या मात्रा में, चाहे स्थायित्व में हो अर्थात् हर एतबार और हर दिशा से।) "व मा अिन्दल्लाहि"— यानी आख़िरत की नेमतों के क़िस्मों से। "अत्तक़ौ रब्बहुम्"— और इस ईश्वरीय संयम की प्रथम मञ्ज़िल इस्लाम का क़बूल करना है। "नुज़ुलम्मिन् अिन्दिल्लाहि"— अल्लाह ने जन्नत वालों को अपना मेहमान ठहराकर उनका दर्जा और सम्मान जितना ऊँचा कर दिया है, शब्दों से उसका वर्णन नहीं हो सकता।

२१८ यानी किसी भी लाभ या मस्लहत के विचार से अपनी आसमानी किताबों में परिवर्तन, संशोधन, परिवर्धन एवं धोखे को गवारा नहीं करते। "समनन् क़लीलन्"— पर हाशिये ऊपर गुज़र चुके हैं। हर दुनियावी बदला बड़ा हो या छोटा, आख़िरत की अपेक्षा बिलकुल ही तुच्छ मूल्य का कहा जायेगा। "युअमिनु बिल्लाहि"— यानी अल्लाह की ज़ात एवं उसकी सिफ़तों पर ईमान रखते हैं। यह प्रशंसा जैसा कि ज़ाहिर है उन किताबवालों की हो रही है, जिन्होंने रसूलुल्लाह (स०) की तस्दीक़ की और इस्लाम क़बूल कर लिया।

२१९ (सो वहाँ किसी की प्रतीक्षा का भी कष्ट न उठाना पड़ेगा।) हश्र की महान भीड़ और दुनिया की भीड़भाड़ की परेशानी और दुनियावी अदालतों के निर्णयों में जो विलम्ब और देर होती है, उसके आधार पर क़ियास न करना चाहिए। वहाँ क्षण भर में सारे हिसाब चुका दिये जायेंगे। और नाफ़र्मानों के जो वहाँ समय का कष्ट होगा वह अज़ाब का एक स्वरूप होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

1

(फ़ुटनोट सफ़ा ४२७ से)

के एक ही हैं और वह हज़रत आदम हैं। यह नहीं कि अमुक नस्ल के पूर्वज कोई और थे और अमुक के कोई अन्य और न यह कि ब्राह्मण जाति के लोग ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए और क्षत्री नस्ल वाले उनके सीने से और वैश्य जाति वाले पेट से और शूद्र उनकी टाँगों से। नहीं बल्कि सारे मानव एक ही नस्ल से हैं और सब एक ही हैं। **"ख़लक़कुम्"**— क़ुर्आन मजीद को इससे कोई सम्बन्ध नहीं है कि विकास का मसला किस हद तक और किस अर्थ में सही है। मानव हर दशा में और हर सूरत में उत्पन्न अवश्य हुआ है। क़ुर्आन बार-बार इस बात को स्पष्ट कर रहा है कि मानव की उत्पत्ति हुई है और हर उस दृष्टिकोण और अक़ीदे का खण्डन कर रहा है जो यह मानता है कि मानव उत्पन्न नहीं हुआ है। **"या' अय्युहन्नासु"** यहाँ सम्बोधन समस्त मानव-जाति से है चाहे कोई किसी भी नस्ल, रंग, क़ौम या किसी जिन्स, किसी देश का हो। ईमान और एक दर्जे में संयम के अन्तर्गत सभी हैं। क़ुर्आन का सन्देश समस्त मानव-मात्र के लिए है। जिन अर्थ करनेवालों ने उसे केवल मक्केवालों के लिए विशेष समझा है उनके पास इस विशेषता के लिए कोई तर्क नहीं है। खासकर जब सूरत 'मक्की' है भी नहीं बल्कि सबकी राय में 'मदनी' ही है और शब्द 'नास' है भी मानव-जाति के लिए। **"अत्तक़ू रब्बकुम्"**— परवरदिगार से डरना, उसके आदेशों के विरोध से डरना है। अन्यथा विश्व का पालनेवाला पालनहार कोई भयभीत होनेवाली चीज़ नहीं। वह तो पूर्णत: स्नेह और महानता वाली हस्ती है। शब्द "रब" में स्वयं यह संकेत पाया जाता है कि जिन आदेशों के विरोध करने से डराया और रोका जा रहा है, स्वयं उनका उद्देश्य भी बन्दे को पालना और उसकी परवरिश करना ही है।

२२२ यानी हज़रत हव्वा को। हज़रतें हव्वा के पैदा होने के विवरण से क़ुर्आन मजीद तो बिलकुल मौन है और लगभग यही हाल हदीस का भी है। जिस प्रसिद्ध हदीस के द्वारा हज़रत हव्वा का हज़रत आदम की पस्ली से पैदा होना बयान किया जाता है उसमें वर्णन न तो हज़रत हव्वा का है न हज़रत आदम का, बल्कि केवल स्त्री की उत्पत्ति और उसकी टेढ़ी मनोवृत्ति का वर्णन है। आसार में जो रिवायत मिलती है वह रिवायत तौरेत का ही प्रतिबिम्ब है और तौरेत का बयान यह है :— "खुदावन्द ख़ुदा ने आदम पर प्यारी नींद भेजी कि वह सो गया और उसने उसकी पस्लियों में से एक पस्ली निकाल ली और उसके बदले मांस भर दिया और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने उस पस्ली से, जो उसने आदम से निकाली थी, एक सूरत बनाकर आदम के पास भेजा।" (पैदाइश २: २२-२३)। नफ़्स (स्त्री-पुरुष सब) की उत्पत्ति एक ही जिन्स (ह० आदम) से हुई है, यह क़ुर्आन मजीद में बार-बार लाया गया जैसा कि साहिबुल्मनार.ने विवरण के साथ अपने यहाँ नक़्ल कर दिया है। यह भी हो सकता है कि स्त्री की उत्पत्ति टेढ़ी पस्ली से, केवल उपमा के रूप में फ़र्माया गया हो और उसका उद्देश्य ही उसकी अस्थिरता को प्रकट करना जैसा कि क़ुर्आन मजीद ही में है कि मानव की उत्पत्ति शीघ्रता में हुई। और इस अर्थ का समर्थन इस बात से भी होता है कि हदीस में ज़िक्र स्त्री-जाति का है, न कि व्यक्तिगत रूप में हज़रत 'हव्वा' का। और बाज़ अर्थ करनेवाले, जैसे कि किरमानी, उपर्युक्त हदीस के अर्थ में यही विचार रखते हैं कि यह स्त्री की टेढ़ी मनोवृत्ति की ओर केवल एक उपमा है। बुख़ारी की एक हदीस में तो बिलकुल स्पष्ट है कि स्त्री पस्ली की भाँति है। स्वयं **"ज़िलअ़"** का अर्थ पस्ली तो दूसरे दर्जे का है अस्ल अर्थ टेढ़ापन और हटे हुए होने के हैं।

२२३ सारे स्त्री-पुरुष उसी एक जोड़े अर्थात् आदम तथा हव्वा से ही दुनिया में चले हैं। **"मिन्हुमा"**— यह ध्यान रखने की बात है कि यह सारी मनुष्यों की आबादी केवल हज़रत आदम (अलै०) से नहीं उस जोड़ से मिलकर चली है। **"कसीरन्"** आदम के समय से लेकर आज तक जो आबादी हर देश और हर समय में रही है या जो क़ियामत तक होगी उसके योग पर भी यदि **"कसीर"** का शब्द लागू न होगा तो और किस पर होगा ?

२२४ (अपने अधिकार और रिआयतें) **"बिही"** यानी उसके नाम का वास्ता दिला-दिलाकर। आयत से अल्लाह के वास्ते से माँगने का उचित होना सिद्ध हो गया।

२२५ (और उस आदेश को हलका न जानो) **"अल्अरहाम"**— **'रहम'** का बहुवचन है। इसका फैलाव बड़ा विशाल है। इसमें सारे सगे सम्बन्धी, तथा परिवार के सभी सदस्य इसके भीतर आ जाते हैं। **"अल्अरहाम"** के जोड़े को आयत में ध्यानपूर्वक देखा जाए। यह अल्लाह से सम्बद्ध है। यह इस्लाम में सगे सम्बन्धियों या रिश्तेदारियों का महत्त्व है। वास्तव में शरीअत ने सामूहिक व्यवस्था की आधार-शिला ही रिश्तेदारी या 'रहम' को माना है। सगे सम्बन्धियों, अज़ीज़ों, परिवारवालों तथा बिरादरीवालों के साथ

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४२८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

★ रु. २० / ११ आ ११ या' अय्युहल्लज़ीन आमनुस्ब़िरू व स़ाबिरू व
राबितू क़िफ़ वत्तक़ुल्लाह लअ़ल्लकुम् तुफ़्लिहून (२००) ★

☪ ४ सूरतुन्निसा'अि ९२ ☪

(मदनी) इस सूरः में अ़रबी के १६६६७ अक्षर, ३७२० शब्द, १७६ आयतें और २४ रुकूअ़ हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रह़्मानिर्रह़ीमि ●

या' अय्युहन्नासुत्तक़ू रब्बकुमुल्लज़ी ख़लक़कुम् मिन् नफ़्सिंव्वाहि़दतिंव्व ख़लक़ मिन्हा ज़ौजहा व बस्स मिन्हुमा रिजालन् कसीरंव्व निसा'अन् ज वत्तक़ुल्लाहल्लज़ी तसा'अलून बिही वल्अर्ह़ाम त अिन्नल्लाह कान अ़लैकुम् रक़ीबन् (१) व आतुल्यतामा' अम्वालहुम् व ला ततबद्दलुल्ख़बीस बित्तय्यिबि ५ व ला तअ्कुलू' अम्वालहुम् अिला' अम्वालिकुम् त अिन्नहू कान ह़ूबन् कबीरन् (२) व अिन् ख़िफ़्तुम् अल्ला तुक़्सितू फ़िल्यतामा फ़न्किह़ू मा ताब लकुम् मिनन्निसा'अि मस्ना व सुलास व रुबाअ़ ज फ़ अिन् ख़िफ़्तुम् अल्ला तअ़्दिलू फ़ वाहि़दतन् औ मा मलकत् अैमानुकुम् त जालिक अद्ना' अल्ला तअ़ूलू त (३) व आतुन्निसा'अ स़दुक़ातिहिन्न निह़्लतन् त फ़ अिन् तिब्न लकुम् अ़न् शैअिम्-मिन्हु नफ़्सन् फ़ कुलूहु हनी'अम्-मरी'अन् (४) व ला तुअ्तुस्सुफ़हा'अ अम्वालकुमुल्लती जअ़लल्लाहु लकुम् क़ियामंव्वर्ज़ुक़ू-हुम् फ़ीहा वक्सूहुम् व क़ूलू लहुम् क़ौलम्मअ़रूफ़न् (५)

لن تنالوا ٤ ۔ النسآء ٤

اللهِ ثمنًا قليلًا ط اولٰئك لهم اجرهم عند ربهم ط ان الله سريع
الحساب ۝ يٰايها الذين اٰمنوا اصبروا و صابروا و رابطوا قف
و اتقوا الله لعلكم تفلحون ۝ ع

سورة النسآء مدنية وهي مائة وستّ وسبعون اٰية واربع وعشرون ركوعا

بسم الله الرحمٰن الرحيم

يٰايها الناس اتقوا ربكم الذي خلقكم من نفس واحدة
وخلق منها زوجها و بث منهما رجالًا كثيرًا و نسآء ج واتقوا
الله الذي تسآءلون به والارحام ط ان الله كان عليكم
رقيبًا ۝ و اٰتوا اليتٰمى اموالهم ولا تتبدلوا الخبيث بالطيب
ولا تاكلوا اموالهم الٰى اموالكم ط انه كان حوبًا كبيرًا ۝
وان خفتم الا تقسطوا في اليتٰمى فانكحوا ما طاب لكم
من النسآء مثنٰى وثلٰث وربٰع ج فان خفتم الا تعدلوا
فواحدة او ما ملكت ايمانكم ط ذٰلك ادنٰى الا تعولوا ۝ و
اٰتوا النسآء صدقٰتهن نحلة ط فان طبن لكم عن شيء منه
نفسًا فكلوه هنيـًٔا مريـًٔا ۝ ولا تؤتوا السفهآء اموالكم
التي جعل الله لكم قيٰمًا وارزقوهم فيها واكسوهم و
قولوا لهم قولًا معروفًا ۝ وابتلوا اليتٰمى حتى اذا بلغوا

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! (स्वयं) सब्र करो और मुक़ाबले में सब्र करते रहो; और अल्लाह से डरते रहो, अजब नहीं जो भलाई पा जाओ[२२०] । (२००) ★

★ रु. २०/११ आ ११

४ सूरतुन्निसा'अि ९२

(स्त्रियों का अध्याय)

बिस्मिल्लाहिर्रह्‌मानिर्रहीमि ।

(मदनी) इस सूरः में अरबी के १६६६७ अक्षर, ३७२० शब्द, १७६ आयतें और २४ रुकूअ हैं ।

आरम्भ अल्लाह अत्यन्त दयालु, बार-बार कृपा करनेवाले के नाम से ।

ऐ लोगो ! अपने परवरदिगार से संयम अपनाओ जिसने तुम (सब) को एक ही जान से पैदा किया[२२१] और उसी से उसका जोड़ा पैदा किया[२२२], और उन दोनों से भारी संख्या में स्त्री-पुरुष फैला दिये[२२३] । और अल्लाह से संयम अपनाओ जिसके माध्यम से एक-दूसरे से[२२४] माँगते हो, और सम्बन्धों के बारे में भी संयम इख़्तियार करो[२२५] । निःसन्देह अल्लाह तुम्हारा संरक्षक है[२२६] । (१) और अनाथों को उनका माल पहुँचा दो और पवित्र को गन्दी (वस्तु) से मत बदलो, और उनका माल मत खाओ अपने माल के साथ । बेशक यह बहुत बड़ा गुनाह है[२२७] । (२) और यदि तुमको अंदेशा हो कि तुम यतीमों के मामले में न्याय न कर सकोगे[२२८], तो जो स्त्रियाँ तुम्हें पसन्द हों[२२९] उनमें से दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से तो निकाह कर ही सकते हो[२३०] । और यदि तुमको अंदेशा हो कि तुम न्याय न कर सकोगे तो फिर एक ही पर बस करो[२३१], या जो बाँदी तुम्हारी मिल्कीयत हो[२३२] । उसमें ज़्यादती न होने की आशा निकटतम है[२३३] । (३) और तुम पत्नियों को उनके मिहर प्रसन्नतापूर्वक दे दिया करो[२३४] । परन्तु यदि वह प्रसन्नता के साथ तुम्हारे लिए उसमें का कोई अंश छोड़ दे तो तुम उसे हँसी-ख़ुशी खाओ (पिओ)[२३५] । (४) और मूर्खों को अपना वह माल न दे दो जिसको अल्लाह ने तुम्हारे लिए जीवन-धन बनाया है, और उस माल में से उन्हें खिलाते और पहनाते रहो, और उनसे भलाई की बात करते रहो[२३६] । (५)

---

२२० आयत में सारगर्भित एवं विस्तृत निर्देश सारी उम्मत की भलाई के लिए आ गये चाहे वह सामूहिक हो या व्यक्तिक या उम्मत की हो । **"अिस्बिरू"**— यानी ईश्वरीय मार्ग में जो कष्ट स्वयं उपस्थित हों उन पर सन्तोष किये जाओ चाहे उस सन्तोष का सम्बन्ध उस परिश्रम एवं कष्ट से हो जो इबादतों से होता है, चाहे आत्मा की उन इच्छाओं को रोकने से सम्बन्ध हो जो मनपसन्द है और उन पर प्रतिबन्ध लग जाए । **"साबिरू"**— यानी जो मुसीबतें दुश्मनों के द्वारा पेश आयें उन्हें भी झेल जाओ । **"राबितू"**— यानी बाहरी शत्रुओं और अपने भीतरी शत्रु नफ़्स (आत्मा), दोनों से मुक़ाबले के लिए तैयार रहो । **"मरातब"** के अर्थ हैं शत्रु से मुक़ाबले की तैयारी, इसके अन्तर्गत हर प्रकार की जंगी तैयारियाँ आ जाती हैं जो नये ज़माने के तक़ाज़ाओं के अधीन दीन के दुश्मनों के मुक़ाबले में की जाएँ । **"वत्तक़ुल्लाह···तुफ़्लिहून"**— **'सब्र'**, सारे नियम, संतोष, धैर्य का स्रोत और एकमात्र लक्ष्य ईश्वरीय संयम है । अन्त में इसी पर बल दिया गया है और इसी का परिणाम दुनिया और आख़िरत की भलाई है । अब जिन लोगों ने मुसीबतों और कष्टों को झेलने का अन्तिम उद्देश्य देशभक्ति इत्यादि किसी चीज़ को अल्लाह की रज़ामन्दी के सिवाय बना रखा है, वह अपनी दशा पर एक बार विचार कर लें ।

२२१ अर्थात् मानव-जाति के परमपिता हज़रत आदम (अलै०) से । मानव-जाति की एकता का यह पाठ अपने क्रियात्मक और दूरस्थ परिणामों के विचार से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । अन्तिम पूर्वज हर काले और प्रत्येक गोरे के, हर सभ्य और असभ्य के, हर हिन्दुस्तानी और हर चीनी के, हर हब्शी और हर फ़िरंगी

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४२५ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४२५ से)

सुन्दर व्योहार को इस्लाम में दूसरी श्रेणी की चीज़ नहीं समझा गया है। यह चीज़ प्रथम श्रेणी का महत्त्व रखती है। और इसी अर्थ में यह हदीस भी आई है। ('रहम'— अर्श इलाही से लगा हुआ दुआ करता है कि जो मुझे जोड़े रखे, अल्लाह उसे जोड़े रहे और जो मुझे काटे, अल्लाह उसे काटे।) फ़क़ीहों में इस बात पर सहमति है कि क़राबत (रिश्तेदारी) का ध्यान रखना वाजिब (अनिवार्य) है और इसे काटना जुर्म है।

२२६ (तुम्हारे निजी, घरेलू, सामूहिक, सारे ही मामलों में) यदि यह बात हर समय दृष्टिगोचर हो तो आज उम्मत के लोगों की घरेलू ज़िन्दगी किस क़दर सुखमयी हो जाए।

२२७ यतीम (अनाथ) अर्थात् बिन बाप के बच्चों और बच्चियों की समस्या हर क़ौम में बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं नाज़ुक रहा है। क़ुर्आन अब यहाँ इसी विषय में निर्देश दे रहा है। **"व आतुल्यतामा' अम्वालहुम्"** यानी उन यतीमों के बालिग़ होने पर उनकी जायदाद, उनका सामान, उनको सौंप दो और इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि अनाथ अपनी जायदाद की माँग करे भी। यहाँ सम्बोधन यतीमों के वली और उनके संरक्षकों से है। यतीमों को उनके बालिग़ हो जाने के बाद ही तथा उनके समझदार होने पर उनकी जायदाद सौंपनी चाहिए, इसके पहले नहीं। **"व ला ततबद्दलुल्ख़बीस बित्तय्यिबि"**— यानी ऐसा न होने पाये कि उन नाबालिग़ यतीमों की अच्छी चीज़ निकालकर अपने माल में मिला ली जाए और अपनी तरफ़ की कोई घटिया चीज़ उनके हिस्से में शामिल कर दी जाए। **"व ला तअ्कुलू' अम्वालहुम् अिला' अम्वालिकुम्"**— यानी अपने हिस्से के साथ यतीमों के हिस्से को भी मिला-जुला करके। **"ला तअ्कुलू"** में 'अक्ल' से मुराद खाना शाब्दिक अर्थ में नहीं है, बल्कि अपने प्रयोग में लाना विशाल अर्थ में आया है। उर्दू-हिन्दी मुहावरे में यही खाना अपने शाब्दिक अर्थ के मजाज़ी अर्थ में भी प्रयोग में आता है जैसे "दो रुपये खा गया"। **"अिन्नहू"**— यह सर्वनाम उसी दस्तदराज़ी और यतीमों के माल में गड़बड़ करने की ओर है। **"हूबन्"— 'हूब'** का अर्थ है बड़ा पाप। डॉ॰ राबर्ट्स् मुसलमान नहीं मुन्किर हैं, इस पर वह इस बात को मानते हैं कि क़ुर्आन तथा पयम्बर ने अनाथों के अधिकारों की सुरक्षा की अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था कर दी है। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित हो)।

२२८ अर्थात् जो यतीम लड़कियाँ तुम्हारी संरक्षता में हैं अगर उनके हक़्क़ें महर इत्यादि पूरी तरह अदा न कर सकोगे। सम्बोधन यतीम लड़कियों के संरक्षकों से है। जाहिलीयत में एक दस्तूर यह था कि यतीम लड़कियाँ, जो पुरुषों की सरपरस्ती में होतीं, तो उनके वही संरक्षक बहुधा यह देखकर कि कोई और उनकी ओर से महर इत्यादि की माँग करनेवाला और उनकी सहायता में खड़ा होनेवाला नहीं, उनके हक़ मार लेना आसान है, उन्हीं को अपने निकाह में ले लेते और उनकी जायदादें अपनी ओर परिवर्तित कर लेते थे और विभिन्न विधियों से उनके हक़ अदा करने से लापरवाही बरतते थे। यहाँ पर सम्बोधन इसी प्रकार के संरक्षकों तथा वलियों से है।

२२९ (उन यतीम, जायदाद वाली परन्तु बे-सहारा लड़कियों के अलावा।) **"मा ताब लकुम्"** से स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि सुन्दरता के स्तर से भी तबीयत के तक़ाज़ों पर अमल करने की इजाज़त शरीअत में मौजूद है। और यहाँ **"मन"** के बजाय **"मा"** इसलिए आया है क्योंकि उद्देश्य स्त्रियों की सिफ़तों के वर्णन का है, यानी जिस प्रकार की भी स्त्रियाँ पसन्द हों न कि उनकी ज़ात या व्यक्तित्व का वर्णन करना। चुनांचे जब किसी की ज़ात या व्यक्तित्व से सम्बद्ध प्रश्न करना होता है तो पूछते हैं, **"मन् हज़रंजुल"** और जब उसकी सिफ़त (गुण) से सम्बद्ध प्रश्न करना होता है तो कहते हैं, **"मा हज़रंजुल मिनन्निसा'अि"** इसमें बालिग़, नाबालिग़ सभी आ गयीं।

२३० यानी तुम पर निकाह के मामले में कोई तंगी नहीं। अपनी संरक्षता में यतीम लड़कियों को अक़्द में लाने में यदि हक़ मारे जाने का भय हो तो इस विचार को जाने दो और बजाय उनके बाहर वाली आज़ाद स्त्रियों में से अपनी इच्छानुसार चयन कर लो, एक ही नहीं, बल्कि एक से लेकर चार तक की गुंजाइश है। पत्नियों की इस संख्या की आज्ञा कदापि ऐसी चीज़ नहीं जिस पर किसी मुसलमान को शरमाने या उसके दूसरे अर्थ लगाने और कारण बताने की आवश्यकता प्रतीत हो। पुरुष के शरीर की बनावट और उसके मिज़ाज की बनावट ही ऐसी है कि पुरुषों की भारी संख्या ऐसी है कि एक स्त्री से उनकी सन्तुष्टि नहीं होती। जहाँ तक स्त्री-पुरुष के मिलने तथा नस्ली सिल्सिले का सम्बन्ध है पुरुष का अमल चन्द मिनट के अन्दर समाप्त हो जाता है और उनके पश्चात् जिस्मानी हैसियत से कोई ज़िम्मेदारी अवशेष नहीं रह जाती। इसके विपरीत स्त्री के लिए इस दो मिनट के अमल के परिणामों का सिल्सिला, हफ़्तों नहीं, गर्भ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा उसके बाद के समय इत्यादि को मिलाकर ढाई-ढाई वर्ष बल्कि इससे भी आगे फैला हुआ रहता है। गर्भावस्था के अतिरिक्त स्त्री के लिए जवानी के ज़माने में हर महीने एक सप्ताह का समय उसकी विवशता का एक क़ुदरती मामला होता है और वह क़ानूनी व्यवस्था मुकम्मल नहीं अधूरा है जो पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकताओं की ओर से आँख मूँद ले और स्त्री की प्राकृतिक विवशता का लिहाज़ करके पुरुष के लिए किसी सुविधा को उचित न समझे। इसके अतिरिक्त यूरोप के बड़े-बड़े डॉक्टरों और जीवविज्ञान के विशेषज्ञों के विचार इस आम अनुभव के समर्थन में हैं कि पुरुष की मनोवृत्ति काम-इच्छा के अतिरिक्त नयापन पसन्द करती है। अतः जो शरीअत पुरुष की इस आदत की कोई रिआयत अपनी व्यवस्था में नहीं रखती वह और कुछ भी हो वहरहाल ईश्वरीय और प्रकृति के अनुकूल नहीं कही जा सकती। यही कारण है कि इतिहास जबसे पता देता है, तौहीद की दावत देनेवाले तथा सच्चे पैग़म्बरों ने इस दस्तूर को न केवल जाइज़ रखा है बल्कि इस पर अमल करके इसको और बलशाली बनाया है। हज़रत इब्राहीम (अलै०), हज़रत याक़ूब (अलै०), हज़रत मूसा (अलै०), हज़रत दाऊद (अलै०) और हज़रत सुलैमान (अलै०) में से किसी के यहाँ भी एक पत्नी की रिवायत का प्रमाण नहीं मिलता। बल्कि बाज़ की हरमसरा (ज़नानाघर) तो इसी बात के लिए प्रसिद्ध है कि उसमें पत्नी-संख्या एक से अधिक थी। पुराने हिन्दुस्तान में भी महान हिन्दुओं के यहाँ एक पत्नी की रिवायतें नहीं हैं, बल्कि कई पत्नियों की रिवायतें हैं। योरोप और अमरीका में कई पत्नियों का रिवाज तो नहीं है, परन्तु उसके बिना खुले आम जो कामवासना का अन्धेर हो रहा उसका वर्णन भी इन पृष्ठों में करना सम्भव नहीं है। इस्लाम ने एक ओर तो एक पत्नी के प्रतिबन्ध को समाप्त करके कई पत्नियों को जाइज़ कर दिया और दूसरी ओर उचित सीमा भी निश्चित कर दी, यही उसकी हिकमत का कमाल है। **"फ़ अिन् ख़िफ़्तुम्"— 'अिन्'** के शब्द से यह परिणाम निकालना, कि कई पत्नियों को जाइज़ करने के लिए, यतीम लड़कियों के साथ अन्याय का भय आवश्यक शर्त के रूप में है, बिलकुल ग़लतफ़हमी और भ्रम है। क़ुर्आन मजीद में अनेकों ऐसी आयतें हैं जो **"अिन्"** से शुरू होती हैं परन्तु मुराद यह नहीं होती। अगर वह शर्त न पूरी न हुई, तो आदेश लागू भी न होगा, जैसे एक आयत सूरए **"अन्नूर"** की है— **"व ला तुकरिहू फ़तयातिकुम् अलल् बिग़ा'अि अिन् अरदन तहस्सुनन्"**— अपनी बाँदियों को बलात्कार के लिए विवश न करो यदि वह पवित्र रहना चाहती हैं। इसका अर्थ यह कौन ले सकता है कि यदि बाँदियाँ पवित्र न रहना चाहें तो उन्हें बलात्कार करने पर विवश कर दो? इसी प्रकार **"अिन् तुअज़्ज़िबहुम् फ़ अिन्नहुम् अिबादुक"**— 'अगर तू उन्हें अज़ाब दे तो यह तेरे ही बन्दे हैं' का अर्थ यह कौन ले सकता है कि 'अगर तू उन्हें अज़ाब न दे तो यह तेरे बन्दे नहीं हैं?' इसी प्रकार **"फ़ अिन् जनहू लिस्सलमि फ़जनह् लहा"**— 'अगर यह लोग शान्ति के लिए झुकें तो आप भी शान्ति के लिए झुक जाइए' से यह अर्थ कौन ले सकता है कि 'काफ़िरों से सुलह केवल उसी वक़्त हो सकती है जब वह पहले सुलह के लिए झुक लें और इसके सिवा अन्य कोई सूरत जाइज़ नहीं?' इसी प्रकार जहाँ **"क़स्रि सलात"** का हुक्म है, वहाँ शब्द यह हैं— **"व अिज़ा ज़रबतुम् फ़िल्अर्ज़ि फ़लैस अलैकुम् जुनाहुन् अिन् अक़्सुरू मिनस्सलाति अिन् ख़िफ़्तुम् अंय्यफ़तिनकुमुल्लज़ीन कफ़रू"**। गोया यह प्रतिबन्ध लगा हुआ है कि क़स्रे नमाज़ का हुक्म मुसाफ़िर को उस स्थिति में है जब काफ़िरों से सताये जाने का भय सामने हो। परन्तु किस अर्थ करनेवाले और किस फ़क़ीह ने आज तक यह अर्थ लिये हैं? किस नमाज़े क़स्र के आदेश को यात्रा में इस भय के साथ पाबन्द किया है? उम्मत के बहुमत तथा रसूल (स०) के तरीक़ों द्वारा, दोनों ही से क़स्रे सलात का हुक्म आम है। फिर यदि आयत का अर्थ वही हो जो बीसवीं शताब्दी के पश्चिम वालों से प्रभावित अर्थ करनेवालों ने निकाला है तो फिर रसूले करीम (स०) और सहाबा (रज़ि०) ने जो कई पत्नियों के तरीक़े को बरता है, तो क्या हर स्थान या अकसर स्थानों पर यही स्थिति, यतीम स्त्रियों से अन्याय के भय की, पेश आ रही थी? **"फ़न्किहू"** अम्र का सीग़ा (आदेश की क्रिया) यहाँ विवाह करने को जाइज़ (उचित) कहता है, अनिवार्य नहीं, यद्यपि ज़ाहिर में फ़िरक़ा इसी ओर गया है।

२३१ (जब कई पत्नियाँ ही न होंगी तो न्याय का प्रश्न ही न उठेगा।) **"अल्ला तअ्दिलू"**— (यानी पत्नियों के बीच न्याय न कर सकोगे और वाजिब हक़ अदा न कर पाओगे।) 'अद्ल' का यहाँ अर्थ है वाजिब अधिकारों में न्याय और बराबरी, जो मनुष्य के इरादे तथा इख़्तियार की चीज़ है, जैसे यह कि कोई पत्नी, खाने-कपड़े और रहने-सहने की सुविधा से वञ्चित न रहे। जहाँ तक प्राकृतिक स्नेह और दिली लगाव का सम्बन्ध है। उसमें बराबरी मानव-अधिकार से बाहर है। इस विषय पर शरीअत ने कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा है। इख़्तियारी न्याय का भी जहाँ तक प्रश्न है उसमें भी हर मामला संख्या के लिहाज़ से आवश्यक नहीं है। एक अफ़रीक़ी पत्नी दूसरी वस्तुओं की आदी होगी और अमरीकी बीवी दूसरी वस्तुओं की, अधिक आयु की पत्नी की आवश्यकताएँ, इच्छाएँ और रुचि एक कमसिन तथा नवयुवती पत्नी की आवश्यकताओं एवं रुचियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से भिन्न होंगी। उद्देश्य यह नहीं कि सभी भैंसें एक ही लाठी से हाँकी जायेंगी। उद्देश्य यह है कि जहाँ तक सम्भव हो उनकी पसन्द, आसानी और आराम का खयाल रखा जाए और आयु, स्वास्थ्य, वातावरण एवं आदतों की भिन्नता का ध्यान रखना आवश्यक है। फ़क़ीहों ने पत्नियों के बीच न्याय करने को फ़र्ज़ क़रार दिया है, परन्तु स्वयं न्याय का अर्थ है अत्याचार का न पाया जाना यानी किसी पर ज़्यादती न होने पाये। "फ़ वाहिदत"— कोई पति यदि अत्याचार और अन्याय के साथ दो या उससे अधिक पत्नियाँ रखेगा तो उसके ऊपर ज़ुल्म और अन्याय करने का पाप बराबर चढ़ता रहेगा। परन्तु यह नहीं कि दूसरी पत्नियों से निकाह होगा ही नहीं। अत्याचार और ज़्यादती क़ानूनी निकाह को रोकता नहीं। "फ़ अिन् खिफ़तुम् अल्ला तअ्दिलू"— ख़ूब विचार कर लिया जाए कि आयत में किसको सम्बोधन है? और एक शादी करने का अदेश किसको मिल रहा है? ज़ाहिर है कि स्वयं पतियों को, समय के हाकिमों को नहीं। अक़्ल से भी यह बात स्पष्ट है कि इन्साफ़ और समाजी न्याय का निर्णय पति स्वयं ही कर सकता है न कि अन्य कोई। इसलिए जो लोग इस सरासर निजी और ज़ाती मामले में शासन को बीच में लाने का निमन्त्रण देते हैं वह ग़लती ही पर हैं।

२३२ (जिसके हक़ की अदायगी की ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर एक आज़ाद घरेलू पत्नी की अपेक्षा हलकी है।) "मा मलकत् अैमानुकुम्" के शाब्दिक अर्थ हैं, "वह जिनके मालिक तुम्हारे दाहिने हाथ हैं"। मुहावरे में इसका अर्थ है शरई रूप से क़ब्ज़े में यानी दासियाँ और ग़ुलाम। जिनका अब एक बड़ी मुद्दत से हिन्दोस्तान क्या विश्व में ही रिवाज नहीं रह गया है। युद्ध में बन्दी बननेवालों का मामला हमेशा ही एक महत्त्वपूर्ण एवं कठिन समस्या रही है। यानी जो मर्द तथा औरतें शत्रु की ओर से बन्दी बनकर आयें, उनके साथ क्या व्योहार होना चाहिए, उन्हें कहाँ और कैसे रखा जाए। किसी ने इसका हल जबरी मज़दूरी या बेगार को निकाला, किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। हमारी शरीअत ने साफ़, आसान और सादा सा हुक्म यह दिया कि बजाय इसके कि एक बड़ी आबादी का बोझ हुकूमत पर डाला जाए इस संख्या को व्यक्तियों में बाँट दिया जाए। तथा हर व्यक्ति इस संख्या को अपने परिवार का एक अंश बना ले। उससे कामकाज अवश्य ले, परन्तु उसके आराम का भी ध्यान रखे और उनमें जो स्त्रियाँ हों उन पर पति-पत्नी सम्बन्ध का अधिकार भी प्राप्त रहे। उनका बन्दी होकर आना स्वयं निकाह के स्थान पर है। उनको निकाह तथा स्वीकृति आदि की आवश्यकता नहीं है। फिर यह लोग आसान शर्तों पर अपनी आज़ादी ख़रीद सकते हैं। (शर्तों का विवरण फ़िक़्ह की पुस्तकों में मिलेगा।) बल्कि उनको आज़ाद करने की श्रेष्ठता और उसके लिए नाना प्रकार की चाव दिलाने की बातें स्वयं क़ुर्आन मजीद में ही अंकित हैं। हदीस में तो और भी अधिक हैं। आश्चर्य है कि ऐसे साफ़, सीधे, शरीफ़ाना और हकीमाना क़ानून से शरमाने और उसे दूसरों से छुपाने की आवश्यकता बाज़ जदीद ज़ेह्न के मारे हुए मुसलमान भी महसूस करने लगे हैं। इसका मनोवैज्ञानिक कारण केवल यह है कि उनके ज़ेह्न में अंग्रेज़ी का शब्द 'Slave' है जिसके साथ उनको 'Slaves' के साथ की जानेवाली सख्तियों और अत्याचारों की ओर घूम जाता है जो इस शब्द के साथ सम्बद्ध हैं। हालाँकि हमारे यहाँ तो ग़ुलामों और ग़ुलामों की सन्तानों ने बादशाहतें की हैं और रईस तथा अमीर तो उनमें हज़ारों गुज़रे हैं। यह तो हुई दुनियावी हैसियत, दीनी हैसियत तो बड़े-बड़े आलिम, फ़ाज़िल, फ़क़ीह और इमाम, जो अपने फ़न के विशेषज्ञ रह चुके हैं, ग़ुलामों और उनकी सन्तानों में ताबेईन ही के समय से पैदा होने लगे थे। शरई बाँदी या कनीज़ के अधिकार बीवी से कम होते हैं अतः उनका अदा करना भी स्वाभाविक रूप में सहज ही है। जिन तफ़्सीर करनेवालों ने न्याय की शर्त के न पाये जाने की सूरत में केवल एक पत्नी ही के तरीक़े को जाइज़ माना है वह अपने लेखों में ख़ुदा जाने आयत के इस अंश को क्यों हज़म कर जाते हैं!

२३३ ज़ाहिर है कि जब एक ही के साथ निबाह करना होगा तो अत्याचार एवं ज़्यादती की सम्भावनाएँ भी बहुत घट जायेंगी। "ज़ालिक"— यानी एक पर सन्तोष। "अल्ला तअूलू"— 'अूल' के अर्थ हैं एक ओर झुक जाना और ज़्यादती करना, "ला तअूलू" के मानी हैं ज़ुल्म और ज़्यादती न करो।

२३४ (और उसके हक़ की अदायगी के सिल्सिले की एक कड़ी समझो।) "सदुक़ातिहिन्न"— 'सदाक़' या शरीअत की इस्लामी मह्र बीवी की वह क़ीमत नहीं जो शौहर उसके वलियों को देकर उनसे बीवी प्राप्त कर लेता है, बल्कि मह्र एक नज़राने के रूप में है जो शौहर सम्मान तथा स्नेह के साथ सीधे बीवी को पेश करना अपने ऊपर वाजिब कर लेता है। हमारे फ़क़ीहों ने इस मसले को काफ़ी स्पष्ट किया है। स्त्री का गुप्तस्थान निकाह हो जाने से पुरुष की मिल्कीयत नहीं हो जाता, वह है तो स्त्री की ही मिल्कीयत, पुरुष के लिए वह निकाह से केवल जाइज़ हो जाता है। "व आतुन्निसा'अ" शौहरों को आदेश मिल रहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि यह धन अपनी बीवियों को दो, न कि उनके वलियों अर्थात् माता-पिता को। मह्र का महत्त्व और उसके अदा करने की ताकीद शरीअत में बिलकुल स्पष्ट है। दुःख की बात है कि उम्मत का अमल उसके विपरीत है। मह्र को अमल में एक दिखावटी और फ़र्ज़ी चीज़ समझ लिया गया है। यहाँ सम्बोधन शौहरों से है और मह्र की अदायगी का फ़र्ज़ उन्हीं के ज़िम्मे है।

२३५ यानी इस इजाज़त के बाद निःसंकोच उसे अपने प्रयोग में ला सकते हो। **"फ़ अिन् तिब्न लकुम्"**— खूब याद रहे कि बीवियों की तरफ़ से यह छूट और दस्तबरदारी बिना किसी ज़बरदस्ती या दबाव के होनी चाहिए और इसमें पति की ओर से कोई फ़रेब, धोखा या मक्कारी नहीं होनी चाहिए। यदि पति ने किसी मक्कारी या फ़रेब से उस पर हक़ प्राप्त किया है तो क़ाज़ी या अदालत से जो निर्णय होगा उसे ख़ुदा का फ़ैसला मानकर स्वीकार करना होगा। **"अन् शैअिन्"**— चाहे वह अंश छोटा हो या बड़ा, यहाँ तक कि कुल का कुल भी। बीवी यदि शौहर से मह्र वसूल करके उसे पति को वापस लौटा दे तो उसे 'हिबा' कहेंगे और यदि लिये बिना ही माफ़ कर दे तो फ़िक़्ह की भाषा में इसे 'इब्राअ' कहेंगे। **'शरअ'** में दोनों सूरतें ठीक हैं। **"फ़ कुलूहु हनीअम्-मरीअन्"**— भाषा के मुहावरे में इसके शाब्दिक अर्थ मज़ेदार तथा अच्छा लगनेवाले भोजन के नहीं, बल्कि अर्थ यह है कि बीवी की आज्ञा के बाद इस माल को निःसंकोच अपने प्रयोग में ला सकते हो।

२३६ (स्नेह और भलाई की राह से) **"अस्सुफ़हाअ"**— 'सुफ़हा' से मुराद वह अनाथ हैं जो यद्यपि आयु के लिहाज़ से बालिग़ हो चुके हैं, परन्तु धन के प्रयोग का सलीक़ा तथा व्यवस्था करने का ढंग अभी उनमें उत्पन्न नहीं हुआ है, बल्कि वह बेतकान और बेतहाशा फ़ुज़ूलख़र्ची इत्यादि में लीन रहते हैं। **'सुफ़ह' या 'सुफ़ाहत'**— से यहाँ किसी गुनाह या नैतिक अपराध की ओर संकेत करना मुराद नहीं है, बल्कि केवल उन लोगों की इन्तिज़ामी अयोग्यता का स्पष्ट करना उद्देशित है। **'अम्वालकुम्'**— मुराद उस माल से है जो यतीमों की मिल्कीयत है, परन्तु इस समय संरक्षकों की विलायत (देखभाल के साथ ज़िम्मेदारी) में है। **"लकुम् क़ियामन्"**— सम्बोधित सर्वनाम से मुराद है मानवता जीवन यानी माल, जो मानव-जाति के लिए जीवनधन है, जिसके ऊपर मानव की भौतिक तथा सामाजिक ज़िन्दगी की निर्भरता है। इसका अर्थ यह है कि माल-दौलत अल्लाह की बड़ी नेमत है और बड़ी क़द्र की चीज़ है, अभी उसे कमसमझ अनाथों के हाथ में न दे दो, क्योंकि वह उसकी क़द्र और मर्तबे से अपरिचित हैं, वह नाक़द्री से उसे उड़ा देंगे। फ़क़ीहों ने माल की सुरक्षा तथा उसे बरबाद न करने की बात को वाजिब गरदाना है और इसी से तर्क किया है। **"वरज़ुक़ूहुम्……मअ्रूफ़न्"**— अर्थ यह हुआ कि उसी जायदाद से यतीमों की आवश्यकताओं को पूरी करते रहो, उनकी राहत और सुविधा की व्यवस्था करते रहो और उनके हाथों में जायदाद देने के बजाय उनसे तसल्ली की बातें करते रहो कि यह तुम्हारी ही मिल्कीयत है और तुम्हारी ही भलाई के विचार से तुम्हारे हाथ में नहीं दी जा रही है। यह प्रतीक्षा है कि तुममें पूरी समझ पैदा हो जाए। उनकी यह सुफ़ाहत उनके रोटी-कपड़े में बाधक नहीं हो सकती। यहीं से फ़क़ीहों ने नालायक़ सन्तान और नासमझ बीवी के रोटी-कपड़े के वाजिब होने पर तर्क किया है। **"मअ्रूफ़न्"**— 'मअ्रूफ़' में हर वह चीज़ आ जाती है जो जानकारी से या अमली तौर पर अक़्ल तथा शरीअत के विचार से पसन्दीदा हो। आयत की शिक्षा इस विषय में परिपूर्ण है कि अपनी देखभाल में पत्नी, परिवार के सदस्यों एवं सन्तानों के साथ सुन्दर व्योहार और अच्छा तौरतरीक़ा तथा खाने-पहनने इत्यादि में सुन्दर बर्ताव रहना चाहिए।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४३३ से)

२४० (अनाथ की जायदाद के प्रयोग से।) **"व मन् कान ग़निय्यन्"**— उन्हीं यतीमों के वलियों (संरक्षकों) को आदेश हो रहा है कि यदि वह सम्पन्न हैं, तो उन्हें फ़ीस, आनरेरियम इत्यादि के नाम से कोई रक़म भी यतीम के माल से न लेना चाहिए, बल्कि उसे केवल अल्लाह के वास्ते करते रहना चाहिए। इस्लाम में यतीम के माल के वली बनने की यह महत्ता है।

२४१ यानी अपनी आवश्यकतानुसार। यह रक़म हनफ़ीया शोधकों ने स्पष्ट कर दिया है कि पारिश्रमिक के रूप में न होगी, क्योंकि निगरानी तो वली के कर्तव्यों में से है और फ़र्ज़ अदा करने का पारिश्रमिक जाइज़ नहीं, बल्कि यह रक़म तो अल्लाह की नियत की हुई एक मद है। **"बिल्मअ्रूफ़"**— यानी यह नहीं कि उस आय से खूब आराम का जीवन व्यतीत करने लगे, बल्कि केवल इतना मुआवज़ा ले जितना उस समाज में उचित हो।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४३४ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वब्तलुल् - यतामा हत्ता' अिजा बलग़ुन्निकाहू ज फ़ अिन् आनस्तुम् मिन्हुम्
रुश्दन् फ़द्फ़अू' अिलैहिम् अम्वालहुम् ज व ला तअ्कुलूहा' अिस्‌राफ़ंव्व
बिदारन् अंय्यक्बरू त व मन् कान ग़निय्यन् फ़ल्यस्तऽफ़िफ़् ज व मन् कान
फ़क़ीरन् फ़ल्यअ्कुल् बिल्मऽरूफ़ि त फ़ अिजा दफ़ऽतुम् अिलैहिम्
अम्वालहुम् फ़ अश्हिदू अलैहिम् त व कफ़ा
बिल्लाहि हसीबन् (६) लिर्रिजालि नसीबुम्-
मिम्मा तरकल्-वालिदानि वल्अक़्रबून ः व
लिन्निसा'अि नसीबुम्मिम्मा तरकल्-वालिदानि
वल्अक़्रबून मिम्मा क़ल्ल मिन्हु औ कसुर त
नसीबम्-मफ़्रूज़न् (७) व अिजा हज़रल्-
क़िस्मत अुलुल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनु
फ़र्ज़ुक़ूहुम् मिन्हु व क़ूलू लहुम् क़ौलम्-
मऽरूफ़न् (८) वल्यख़्शल्लज़ीन लौ तरकू
मिन् ख़ल्फ़िहिम् ज़ुर्रिय्यतन् ज़िआफ़न् ख़ाफ़ू
अलैहिम् ः फ़ल्यत्तक़ुल्लाह वल्यक़ूलू
क़ौलन् सदीदन् (९) अिन्नल्लज़ीन यअ्कुलून
अम्वालल्-यतामा ज़ुल्मन् अिन्नमा यअ्कुलून
फ़ी बुतूनिहिम् नारन् त व सयस्लौन
★ रु. ११ — १२ आ १० सअीरन् (१०) ★ यूसी - कुमुल्लाहु फ़ी' औलादिकुम् क़ लिज़्ज़करि मिस्लु
हज़्ज़िल्-अुन्सयैनि ज फ़ अिन् कुन्न निसा'अन् फ़ौक़स्नतैनि फ़ लहुन्न सुलुसा मा
तरक ज व अिन् कानत् वाहिदतन् फ़ लहन्निस्फ़ु त व लि अबवैहि लि कुल्लि
वाहिदिम्मिन् - हुमस्सुदुसु मिम्मा तरक अिन् कान लहू वलदुन् ज फ़ अिल्लम्
यकुल्लहू वल्दुंव्व वरिसहू' अबवाहु फ़ लिअुम्-मिहिस्सुलुसु ज फ़ अिन् कान लहू'
अिख़्वतुन् फ़ लि अुम्-मिहिस्सुदुसु मिम्बऽदि वसिय्यतिंय्यूसी बिहा' औदैनिन् त
आबा'अुकुम् व अब्ना'अुकुम् ला तद्रून अय्युहुम् अक़्रबु लकुम् नफ़्अन् त
फ़रीज़तम् - मिनल्लाहि त अिन्नल्लाह कान अलीमन् हकीमन् (११)

لن تنالوا ٤ — ٩٣ — النساء ٤

النِّكَاحَ ۚ فَإِنْ آنَسْتُم مِّنْهُمْ رُشْدًا فَادْفَعُوا إِلَيْهِمْ أَمْوَالَهُمْ ۖ
وَلَا تَأْكُلُوهَا إِسْرَافًا وَبِدَارًا أَن يَكْبَرُوا ۚ وَمَن كَانَ غَنِيًّا
فَلْيَسْتَعْفِفْ ۖ وَمَن كَانَ فَقِيرًا فَلْيَأْكُلْ بِالْمَعْرُوفِ ۚ فَإِذَا
دَفَعْتُمْ إِلَيْهِمْ أَمْوَالَهُمْ فَأَشْهِدُوا عَلَيْهِمْ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ حَسِيبًا ۝
لِّلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدَانِ وَالْأَقْرَبُونَ وَلِلنِّسَاءِ نَصِيبٌ
مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدَانِ وَالْأَقْرَبُونَ مِمَّا قَلَّ مِنْهُ أَوْ كَثُرَ ۚ نَصِيبًا
مَّفْرُوضًا ۝ وَإِذَا حَضَرَ الْقِسْمَةَ أُولُو الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ وَالْمَسَاكِينُ
فَارْزُقُوهُم مِّنْهُ وَقُولُوا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوفًا ۝ وَلْيَخْشَ الَّذِينَ
لَوْ تَرَكُوا مِنْ خَلْفِهِمْ ذُرِّيَّةً ضِعَافًا خَافُوا عَلَيْهِمْ فَلْيَتَّقُوا اللَّهَ
وَلْيَقُولُوا قَوْلًا سَدِيدًا ۝ إِنَّ الَّذِينَ يَأْكُلُونَ أَمْوَالَ الْيَتَامَىٰ
ع ظُلْمًا إِنَّمَا يَأْكُلُونَ فِي بُطُونِهِمْ نَارًا ۖ وَسَيَصْلَوْنَ سَعِيرًا ۝ يُوصِيكُمُ
اللَّهُ فِي أَوْلَادِكُمْ ۖ لِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْأُنثَيَيْنِ ۚ فَإِن كُنَّ نِسَاءً
فَوْقَ اثْنَتَيْنِ فَلَهُنَّ ثُلُثَا مَا تَرَكَ ۖ وَإِن كَانَتْ وَاحِدَةً فَلَهَا النِّصْفُ ۚ
وَلِأَبَوَيْهِ لِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ مِمَّا تَرَكَ إِن كَانَ لَهُ
وَلَدٌ ۚ فَإِن لَّمْ يَكُن لَّهُ وَلَدٌ وَوَرِثَهُ أَبَوَاهُ فَلِأُمِّهِ الثُّلُثُ ۚ فَإِن
كَانَ لَهُ إِخْوَةٌ فَلِأُمِّهِ السُّدُسُ ۚ مِن بَعْدِ وَصِيَّةٍ يُوصِي بِهَا
أَوْ دَيْنٍ ۗ آبَاؤُكُمْ وَأَبْنَاؤُكُمْ لَا تَدْرُونَ أَيُّهُمْ أَقْرَبُ لَكُمْ نَفْعًا ۚ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और यतीमों की जाँच करते रहो यहाँ तक कि वह निकाह की अवस्था को पहुँच जाएँ[२३७]। तो यदि तुम उनमें होशियारी देख लो तो उनके हवाले उनका माल कर दो[२३८]। और माल को जल्द-जल्द फ़िज़ूलखर्ची से, और इस विचार से कि यह बड़े हो जाएँगे; मत खा डालो[२३९]। बल्कि जो व्यक्ति ख़ुशहाल हो वह तो अपने को बिलकुल रोके रखे[२४०]। अल्बत्ता जो व्यक्ति ग़रीब हो वह उचित मात्रा में खा सकता है[२४१]। और जब उनके माल उनके हवाले करने लगो तो उन पर गवाह भी कर लिया करो, और अल्लाह हिसाब करनेवाला काफ़ी है[२४२]। (६) पुरुषों के लिए भी उस चीज़ में हिस्सा है, जिसको माता-पिता और निकट के सम्बन्धी छोड़ जाएँ, और स्त्रियों के लिए भी उस चीज़ में हिस्सा है जिसको माता-पिता और निकट सम्बन्धी छोड़ जाएँ। उस (छोड़े हुए) में से थोड़ा या अधिक एक हिस्सा अवश्य है[२४३]। (७) और जब बाँट के समय सम्बन्धी और अनाथ और ग़रीब उपस्थित हों तो उन्हें भी उसमें से कुछ दे दो और उनसे सहानुभूति की बात करो[२४४]। (८) और ऐसे लोगों को डरना चाहिए कि अगर (ख़ुद) वह अपने पीछे छोटे बच्चे छोड़ जाएँ तो उनकी उन्हें (कैसी) चिन्ता रहे, अतः चाहिए कि अल्लाह से डरें और बात पक्की कहें[२४५]। (९) ★
निःसन्देह जो लोग यतीमों का माल अनायास खा लेते हैं, वह बस अपने पेट में आग ही भरते हैं[२४६]। और निकट भविष्य में वह दहकती हुई आग में झोंके जायेंगे (१०) ★ रु. १/१२ आ १०

अल्लाह तुम्हें तुम्हारी सन्तान (की मीरास) के विषय में आदेश देता है[२४७], पुरुष का हिस्सा दो स्त्रियों के बराबर है[२४८]। और यदि दो से अधिक स्त्रियाँ (ही) हों[२४९], तो उनके लिए दो तिहाई (हिस्सा) उस (माल) का है जो मूरिस (मरा हुआ) छोड़ गया है[२५०]। और अगर एक ही लड़की हो तो उसके लिए आधा हिस्सा है[२५१]। और मूरिस के माँ-बाप यानी उन दोनों में हर एक के लिए उस माल का छठवाँ हिस्सा है जो वह छोड़ गया है[२५२]। बशर्ते कि मूरिस के कोई सन्तान हो[२५३]। और यदि मूरिस के कोई सन्तान न हो और उसके माँ-बाप ही उसके वारिस हों तो उसकी माँ का एक तिहाई है[२५४]। परन्तु यदि मूरिस के भाई-बहिन हों तो उसकी माँ के लिए छठवाँ भाग है[२५५]। (लेकिन ये हिस्से) वसीयत के निकालने के बाद, कि मूरिस इसकी वसीयत कर जाए या क़र्ज़ अदा करने के बाद[२५६]। तुम्हारे बाप हों या तुम्हारे बेटे, तुम नहीं जानते हो कि उनमें से लाभ पहुँचाने में तुमसे निकटतम कौन है[२५७]! यह सब अल्लाह की ओर से नियत है। बेशक अल्लाह ही ज्ञानवाला है, हिकमतवाला है[२५८] (११)

---

२३७ यानी सामने तथा बालिग़ हो जाएँ। और बालिग़ होने के लिए हनफ़ीया के यहाँ लड़के के लिए १८ वर्ष तथा लड़की के लिए १७ वर्ष की आयु रखी गई है। **"वब्तलुल्-यतामा"**— यानी उनके बालिग़ होने के पूर्व उनकी जाँच इन्तिज़ामी मामलों में होशियारी और तमीज़दारी की कर लिया करो। सम्बोधन यतीमों के वलियों एवं संरक्षकों से ही है।

२३८ (बिना उनके बालिग़ होने की आयु की प्रतीक्षा किये।) **"फ़ अिन् आनस्तुम् रुश्दन्"**— यानी परीक्षण के पश्चात् बालिग़ होने के पूर्व ही, यदि उनमें इन्तिज़ाम और धन-प्रयोग का ढंग पाओ। यहाँ देखने की वस्तु केवल उनकी प्रबन्धकीय योग्यता एवं क्षमता होगी। **"रुश्दन्"**— 'रुश्द' यहाँ सलीक़ामन्दी और इन्तिज़ाम के मानी में है न कि संयम और हिदायत के अर्थ में। वह 'रुश्द', जो संयम तक़्वा), और हिदायत के अर्थ में है, इससे बहुत भिन्न है। फ़क़ीहों ने स्पष्ट कर दिया है कि पापी और बदचलन अनाथ अगर इन्तिज़ामी सलीक़ा रखता है तो उसका माल निःसंकोच उसके हवाले कर दिया जाएगा। उसकी बदचलनी उसकी राह में बाधक न होगी।

२३९ (और उस समय तो हर दशा में उनके हवाले-करना ही पड़ेगा।) बड़े होने की सीमा में प्रवेश पाते ही जायदाद हर दशा में सही होशो-हवास वाले असली मालिक को मिल जानी ही चाहिए, चाहे उसे समझदारी और इन्तिज़ामी क्षमता प्राप्त हो या न हो। जिसकी अक़्ल ही ख़राब हो उसके लिए अलग आदेश हैं। इमाम अबू हनीफ़ा के विचार में बड़े होने की सीमा में प्रवेश की आयु २५ वर्ष है, क्योंकि इस आयु में मनुष्य पूरी तरह होशियार हो सकता है। **"बिदारन्"**— का अर्थ है शीघ्रता करना। (फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४३१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४३१ से)

२४२ यानी यह गवाहों का हुक्म तो दुनियावी नियमों का पालन करना है, अन्यथा हर अमानत तथा खियानत का ज्ञान तो अल्लाह को है ही। "फ़ अिज़ा दफ़अ्तुम् अिलैहिम्"— यानी जब उपर्युक्त शर्तों के साथ यतीमों की इन्तिज़ामी क्षमता की जाँच के पश्चात् उनके बालिग़ हो जाने की दशा में, उनकी जायदाद उनको सौंपने लगो। "फ़ अश्हिदू अलैहिम्"— गवाह इस बात पर कि अनाथों का माल उनको सौंपा गया। आयत का खातमा क़ुर्आन मजीद आम दस्तूर के अनुसार आम ताकीद पर हुआ है यानी हर हक़ मारनेवाला यह जाने रहे कि अल्लाह तआ़ला हर सूरत में तथा हर दशा में हिसाब लेनेवाला है।

२४३ यानी पुरखों की राय और अधिकार पर निर्भर नहीं, हिस्से की हर तक़्सीम और तर्के का हर अधिकार शरीअ़ते इलाही का नियत किया हुआ नियम है। ऐसा नहीं है कि जो रौशन विचार के लोग जब चाहें नवीन परिस्थितियों का बहाना लेकर इस नियम में काट-छाँट करके धर दें। "लिर्रिजालि-नसीबुम्......व लिन्निसा'अि नसीब"— यानी मीरास का हक़ स्त्री और पुरुषों को यकसाँ पहुँचता है। इसमें उन धर्मों का खण्डन आ गया जिन्होंने स्त्री को केवल उसके स्त्री होने के कारण विरासत के अधिकार से वञ्चित कर दिया है। हिन्दुओं की तरह अरब जाहिलीयत में भी स्त्रियों को कोई हिस्सा नहीं मिलता था।

२४४ यानी नरमी और मीठे बोलों से काम लो, रुखाई का प्रदर्शन न करो। "अिज़ा हज़रल्-क़िस्मत"— यानी जिस समय वारिसों के मध्य में तर्कः तक़्सीम हो रहा हो। "अुलुल् क़ुर्बा"— ऐसे सम्बन्धी मुराद हैं जिनका मीरास में कोई हक़ नहीं। यह तक़्सीम केवल बालिग़ों के हिस्से में होगी, नाबालिग़ों के हिस्से में से खैर-खैरात या किसी को देना जाइज़ नहीं। "फ़र्ज़ुक़ूहुम् मिन्हु"— यानी उन्हें भी कुछ दे-दिलाकर प्रसन्न कर दो। इसमें बड़ी बहस और बातचीत हुई है कि यह उस समय उपस्थित होनेवालों को जो वारिसों में से नहीं हैं तर्के में से देने का आदेश वाजिब है या केवल मुस्तहब। जानकारी जाँच के बाद यह है कि यह केवल मुस्तहब है, वाजिब नहीं और यदि आरम्भ में था भी तो अब मन्सूख हो चुका है। इब्ने अब्बास सहाबी, इब्ने ज़ुबैर ताबिई, हसन बसरी ताबिई और हनफ़ीया शोधकों का यही मत है। शाफ़िई तथा मालिकी भी इसी विचार के हैं।

२४५ (और उन यतीमों की मस्लहतानुसार) यानी उनकी तालीम, तसल्ली, दिल की खुशी, हर पहलू का ध्यान रखा जाए। तफ़्सीर करनेवालों का एक गुट इस विचार का है कि यह सम्बोधन वलियों से नहीं है, बल्कि मरने के निकट व्यक्ति के सगे सम्बन्धियों से है कि वह उसे समझायें कि उसे हक़ एक तिहाई में सदक़े का है और अवशेष धन नियत वारिसों के लिए छोड़ जाए। "फ़ल्यत्तक़ुल्लाह"— यानी अल्लाह से डरते रहें कि कहीं स्वयं उनके छोटे यतीम बच्चों के साथ यही मामला न पेश आये। "ज़ुर्रिय्यतन् ज़िआफ़न्"— 'ज़ईफ़' से मुराद बूढ़ी नहीं, कमज़ोर और कमसिन सन्तान है। "क़ौलन् सदीदन्"— यानी सच्ची और सही बात जिसमें कोई पहलू बुराई और फ़साद और हक़ मारे जाने का न निकलता हो। और क़ौलिसदीद (पक्की खरी बात) की शिक्षा इस्लाम में इसी अवसर के लिए नहीं, बल्कि जीवन के हर पग के लिए है।

२४६ खियानत, हक़ मारना और बेईमानी करना हर दशा में बहुत बुरा है। यतीमों के माल में ऐसा करना तो और भी महापाप है। "यअ्कुलून अम्वालल्-यतामा"— 'यअ्कुलून'— से मुराद यतीम का माल किसी तरीक़े से भी बेजा प्रयोग में ले आना है, यह अर्थ नहीं है कि केवल खाने के काम में ही आये। "अिन्नमा......नारन्"— यानी इस हरामखोरी का परिणाम यही होता है। उर्दू व हिन्दी मुहावरे में भी रुपया खा जाना ऐसे अवसर पर विशाल अर्थ में आता है।

२४७ तर्के की तक़्सीम सामूहिक एवं सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण समस्याओं में से है और इसकी न्यायपूर्ण तक़्सीम में समाज का कल्याण बहुत कुछ निर्भर है। वह नामचार की आसमानी पुस्तकें विश्व की निर्देश-पत्रिका के रूप में सम्पूर्ण नहीं हैं, जो ऐसी समस्याओं के विस्तार से खाली हों। "यूसी-कुमुल्लाहु"— अब विवरण के साथ यह याद दिलाया कि यह आदेश किसी बन्दे द्वारा प्रस्ताविक नहीं है। यह उसके निर्देश हैं, जो महान हकीम है, गैब का जाननेवाला है और सच्चा शासक है। "फ़ी औलादिकुम्"— 'औलाद' का अर्थ भी समझने योग्य है। 'औलाद' बहुवचन है 'वल्द' का और 'वल्द' के मानी हैं जना हुआ। गोया तर्के के यह आदेश हक़ीक़ी (सगे) या सहोदर बेटों, बेटियों के हक़ में हैं और उनके होते हुए पोतों तथा पोतियों का कोई प्रश्न नहीं उठता और यदि सहोदर सन्तान न हो तो मुराद बेटों की सन्तान होगी, यानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पोते-पोतियाँ, बेटियों की सन्तान यानी नाती-नातिनियाँ मुराद न होगी, क्योंकि नसब लड़कों ही से चलता है, लड़की से नहीं।

२४८ यह एक आम जड़ की बात बयान कर दी कि हर लड़के को दोहरा और हर लड़की को इकहरा हिस्सा मिलेगा चाहे लड़का और लड़की एक-एक हों या कई-कई। **"हज़्ज़िल्-उन्सयैनि"**— दुनिया की बहुत से धार्मिक तथा ग़ैरधार्मिक 'शरीअतें' (धार्मिक-विधान) ऐसी हैं जिनमें सिरे से 'लड़की का कोई हिस्सा है ही नहीं और अरब जाहिलीयत में भी तर्के के हिस्सेदार केवल पुरुष (और उनमें भी केवल बालिग़ तथा युद्ध करने योग्य पुरुष थे। ऐसे क़ानून का ज़ालिमाना तथा प्रकृति के विपरीत होना बिलकुल स्पष्ट है, परन्तु अब उसकी प्रतिक्रिया के रूप में बाज़ क्षेत्रों में से जो यह आवाज़ उठी है कि स्त्री-पुरुष का हिस्सा बराबर होना चाहिए, यह दूसरी अनियमितता एवं असन्तुलन है और बढ़ाव के बजाय घटाव है। स्त्री की प्राकृतिक बनावट, भौतिक रचना और अंगों के कर्तव्यों ने उसे इस योग्य रखा ही नहीं है कि बच्चे उत्पन्न करने, दूध पिलाने और नस्ल को लालन-पालन करने के साथ उस पर रोटी-कपड़ा पैदा करने की ज़िम्मेदारियाँ भी डाल दी जाएँ। प्रकृति ने और इसीलिए सही और सच्ची शरीअत ने उसका ज़िम्मेदार पुरुष को ठहराया है। घर और खानदान का खर्च चलाना उसके ज़िम्मे रखा है, अतः यह ज़ुल्म नहीं बिलकुल न्याय है कि तर्के में पुरुष को भाग भी बड़ा मिले, फिर हर विवाहित स्त्री को मीरास के अवसर पर दोहरे हिस्से प्राप्त रहते हैं। एक इधर बाप के तर्के में से मैके में, दूसरा उधर सुसराल में पति के तर्के में से हिस्सा। इस प्रकार ज़ाहिरी और सूरत के विचार से भी स्त्री घाटे में नहीं रहती।

२४९ (या केवल दो ही हों) **"अिन् कुन्न निसा'अन्"**— यानी यदि वारिस केवल लड़कियाँ ही हों। **"फ़ौक़स्नतनि"**— 'फ़ौक़' के मानी यहाँ आवश्यक रूप में "अधिक" के नहीं। यह 'सिलः' बाज़ तफ़्सीर करने वालों के अरब मुहावरों में अक्सर 'ज़ाइद' भी आ जाता है और स्वयं क़ुर्आन मजीद में भी 'सिले' के ज़ाइद प्रयोग की मिसाल मौजूद है, जैसे **"फ़ज़्रिबू फ़ौक़ल् अ्अ्नाक़"**। इमाम राज़ी ने यहाँ यह प्रश्न पैदा किया है कि **"अिन्निसा'अ"** तो स्वयं बहुवचन का सीग़ा है फिर उसके साथ **"फ़ौक़स्नतैनि"** लाने की क्या आवश्यकता थी? और स्वयं ही जवाब दिया है कि यह 'ताकीदे कलाम' यानी बात पर बल देने के लिए है जैसा कि क़ुर्आन मजीद की बाज़ दूसरी आयतों में भी प्रयोग हुआ है, जैसे **"अिन्नमा यअ्कुलून फ़ी बुतूनिहिम् नारन्"** या **"ला तत्तख़िज़ून अिलाहैनिसनैन"**।

२५० लड़कियाँ यदि केवल दो हों तो उनका हिस्सा २/३ होना ज़ाहिर है हर एक को १/३ के हिसाब से, परन्तु यह शरह यहीं समाप्त हो जाती है। तीन को ३/३ यानी सब का सब नहीं मिल जाएगा, बल्कि लड़कियाँ जितनी भी हों उनका हिस्सा तर्के का २/३ ही रहेगा, बाक़ी १/३ में और निकट सम्बन्धी शरीक होंगे। (विवरण फ़राइज़ की पुस्तकों में मिलेगा)।

२५१ (कुल तर्के का) और शेष आधे भाग में दूसरे निर्धारित सम्बन्धी शरीक होंगे। परन्तु यदि वह न हों तो फिर वह आधा भी उसी लड़की की ओर लौटकर आयेगा।

२५२ और अवशेष ५/६ सन्तान और दूसरे वारिसों में बाँटा जाएगा।

२५३ चाहे वह लड़का हो या लड़की और चाहे संख्या एक हो या अधिक।

२५४ (और अवशेष दो तिहाई बाप का।) **"व वरिसहू अबवाहु"**— यानी अलावा सन्तान के भाई-बहिन न हों केवल माँ-बाप ही वारिस हों।

२५५ (और बक़िया ५/६ भाग बाप का) बाप के कारण भाई-बहिनों को हिस्सा न मिलेगा। **"फ़ अिन् कान लहू अिख़्वतुन्"**— यह भाई-बहिन चाहे सगे हों या सौतेले। यह वह स्थिति है कि मय्यित के सन्तान कोई नहीं, परन्तु माँ-बाप भी हैं और भाई-बहिन भी। **"अिख़्वतुन्"**— का शब्द यहाँ भाई-बहिन दोनों के लिए है। पुंलिंग का सीग़ा भाषा के नियमानुसार अधिकता के कारण प्रयोग हुआ है।

२५६ (यदि कुछ हो) वारिसों को हिस्सा उस समय मिलेगा जब पहले मूरिस का क़र्ज़ा अदा हो जाए और अगर वह एक तिहाई हिस्से के विषय में कुछ वसीयत कर गया है तो पहले उस वसीयत पर अमल हो जाए। फ़क़ीहों ने यहाँ दो क़ायदे और बयान किये हैं। एक यह कि क़र्ज़ और वसीयत में क़र्ज़ का अदा करना प्रथम है यद्यपि क़ुर्आने मजीद में शब्द 'वसीयत' पहले वर्णित है। दूसरे यह कि क़र्ज़ की अदायगी और वसीयत पर अमल, इन दोनों के पूर्व मूरिस के कफ़न-दफ़न का खर्च निकालना आवश्यक है। **'औ'**— शब्द **"औ"** लाने से संकेत इधर निकल रहा है कि अनिवार्यता के विचार से वसीयत पर अमल और क़र्ज़ की अदायगी बराबर ही हैं। और क़र्ज़े की अदायगी प्राथमिकता नबी (स॰) के आदेश के अधार पर है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२५७ यानी दुनियावी लाभ हो या आखिरत का, तुम्हें कौन पहुँचा सकेगा ! अतः इन आदेशों के
विषय में तुम्हें अक़्ली गद्दे लगाने का कोई मौक़ा ही नहीं है। **''आबा'अुकुम् व अबना'अुकुम्''**— **''आबा'-**
अुकुम्'' के अन्तर्गत केवल पिता ही नहीं बल्कि दादा, परदादा ऊपर के सारे नियम आ गये। इस प्रकार
''अबना'अुकुम्'' के अन्तर्गत न केवल सहोदर बल्कि सन्तान-दर-सन्तान, नीचे के सारे अंश आ गये। यहाँ
यह जता दिया है कि तर्के की तक़्सीम मूरिस की राय और उसकी अपनी समझ के अनुसार विधि पर नहीं
छोड़ी गई है। हकीम तथा सब कुछ जाननेवाले बिना साझे वाले हाकिम ने स्वयं ही सब नियम और क़ायदे
नियत कर दिये हैं। आयत से मामलों की सुन्दरता के साथ-साथ समाजी सुन्दरता की भी सीख निकल आई।
मनुष्य को चाहिए कि स्नेह और मेहरबानी का व्योहार अपने सारे छोटों और बड़ों के साथ रखे। उसको क्या
खबर कि कौन दुनिया में तथा आखिरत में उसके ज़्यादा काम आयेगा।

२५८ और अल्लाह के ज्ञान तथा हिकमत से भला किसी बन्दे की सूझ-बूझ तथा अक़्ल और ज्ञान की
क्या निस्बत हो सकती है? आयत से स्पष्ट होता है कि मीरास के आदेशों के विषय में क़ुर्आन मजीद को किस
दर्जा ताकीद और व्यवस्था मंज़ूर है। आरम्भ **''यूसीकुमुल्लाहु''** से किया और आयत के अन्त में
फिर दोहरी-तेहरी स्पष्टता, विवरण तथा ताकीद मौजूद है। इधर हम लोग भी ठीक उसके समक्ष
लापरवाही और ग़फ़लत में किस क़दर पड़े हुए हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि फ़िक़्ह में
मामलों के विषय में उम्मत के आलिमों की जितनी सहमति इस मीरास के मसल में पाई जाती है उतनी
शायद किसी दूसरे मसले में हो। **'कान'** यहाँ भूत के अर्थ में नहीं बल्कि सदैव के लिए और हमेशा जारी
रहने के विचार की प्रकट करने के लिए है। फ़क़ीहों ने कहा है कि कुछ हालात ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें
मीरास जारी न होगी, जैसे— (१) वारिस दीन से पलट जाए (मुर्तद हो जाए); (२) वारिस जान-बूझकर
अपने मूरिस की हत्या का अपराधी हो; (३) वारिस जाकर 'दारुल् हर्ब' में रहना शुरू कर दे। विवरण
इन मनाहियों का मीरास के विषय में फ़िक़्ह तथा फ़राइज़ की पुस्तकों में मिलेगा।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४३६ से)

२६५ यानी मूरिस किसी को हानि न पहुँचाये, न कर्म से, न इरादे से। कर्म की मिसाल यह कि
वसीयत $\frac{1}{3}$ से अधिक की कर दी, ऐसी वसीयत शरीअत के क़ानून के विरुद्ध होने के कारण लागू होने योग्य
न होगी। इरादतन् यह कि वसीयत रखे तो $\frac{1}{3}$ के अन्दर ही, परन्तु नीयत और उद्देश्य यह हो कि
वारिस का हिस्सा कट जाए। ऐसी वसीयत का लागू होना क़ानूनी तो हो जाएगी, परन्तु वसीयत करने
वाला खुदा की ओर से गुनहगार ठहरेगा। इस्लाम अपने अनुयाइयों से पग-पग पर अमल के साथ नीयत
की भी सच्चाई और निःस्वार्थता चाहता है। **'ज़रार'** यानी किसी वारिस को हानि पहुँचाने, उसे हिस्से के
कुल या अंश से वंचित रखने को शरीअत ने एक सख़्त गुनाह माना है।

२६६ अन्त के क़रीब फिर याद दिला दिया कि यह सारा मीरास का क़ानून शरीअत के हर दूसरे हुक्म
की भाँति सम्पूर्ण अधिकार रखनेवाले हाकिम और सच्चे हकीम का उतारा हुआ है। किसी इन्सानी अक़्ल
एवं दिमाग़ का सोचा हुआ, किसी कौंसिल, कमेटी या मज्लिस का सृजित किया हुआ नहीं है जो आज पास
हो और कल उसमें काट-छाँट होने लगे।

२६७ चुनांचे सम्पूर्ण ज्ञान होने के कारण वह खूब जानता है कि कौन इस क़ानून पर अमल कर
रहा है और कौन इससे मुँह मोड़ता है। चूँकि वह गम्भीर है, अतः उसके कारण वह अपराधियों की पकड़
तत्काल नहीं करता।

२६८ (जिन्हें हलका समझना स्वयं अपने को खुदाई अदालत में अपराधी बनना है।) **'तिलक'** का
इशारा उन तमाम आदेशों की जानिब है जो यतीमों और वसीयतों और तर्के के विषय में अभी गुज़र चुके हैं।

२६९ और यह बड़ी कामयाबी जिस महान आज्ञाकारिता (इताअत) के साथ सम्बद्ध है उसके
अन्दर इस मीरास के क़ानून की पाबन्दी भी आ गई। **''युतिअिल्लाह व रसूलहू''**— अल्लाह और रसूल की
आज्ञाकारिता से मुराद उस क़ानून की पाबन्दी है जो अल्लाह का उतारा हुआ और रसूल का लाया हुआ
है। खुदाई क़ानून का स्पष्टीकरण जो रसूल द्वारा हुआ, वह भी इसी आदेश के अन्तर्गत आता है।

२७० यह अज़ाब सदैव के लिए होगा और अज़ाब पानेवाले के लिए बेइज़्ज़ती का भी। इस अज़ाब
के पानेवाले काफ़िर ही होंगे। **''यतअद्द हुदूदहू''**— यानी हद से इतना बाहर निकल जाए कि उन आदेशों
को अल्लाह के आदेश मानने से ही नकार जाए। **''व मंय्यअ़सिल्लाह''**— में मासियत (गुनाह) से मुराद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुफ़ तथा शिर्क का गुनाह है। मीरास के विषय में जो आदेश आये उनके अन्त में ऐसी कड़ी चेतावनी का होना इस बात की दलील है कि उसके यहाँ इन आदेशों की कितनी महत्ता और बड़ाई है। हदीसें नबवी में और भी तम्बीहें आई हैं। फ़िक़्ह के आदेशों को कमतर समझनेवाले काश इन सच्चाइयों पर निगाह रखें।

२७१ यानी बलात्कार किये हों। **"अल्-फ़ाहिशत"**— **'फ़ाहिशः'** क्रियात्मक एवं ज़बानी हर बड़ी बुराई के लिए प्रयोग में यह शब्द आता है। इशारा बलात्कार की ओर भी है। यहाँ यही अर्थ लिया गया है। **"निसा'अिकुम्"**— **'निसा'** हर स्त्री के लिए आम है। यहाँ अर्थ पत्नियाँ हैं।

२७२ बलात्कार की एक सज़ा इस्लाम के आरम्भ में उम्र-क़ैद या हमेशा के लिए जेल थी। **"अर्बअतम्-मिनकुम्"**— अव्वल तो गवाही का पैमाना इस मामले में दो गुना है यानी जहाँ मुसलमान पुरुष या स्त्री की इज़्ज़त का प्रश्न है, गवाहों की संख्या बजाय दो के चार होना चाहिए और फिर यह चारों— (१) मुसलमान हों, ग़ैरमुस्लिम न हों; (२) आज़ाद हों, ग़ुलाम न हों; (३) सही अक़्ल के हों, पागल या नासमझ न हों; (४) बालिग़ हों, नाबालिग़ न हों; (५) गवाही आँख से देखी हुई दें, सुनी हुई या ख़याली गवाही को यहाँ दख़ल नहीं है। **"फ़ अमसिकू-हुन्न"**— यह क़ैद हाकिमों और अधिकारियों के हुक्म से होना चाहिए। **"फ़ अम्सिकू-हुन्न फ़िल्बुयूति"**— यानी घरों के अन्दर उन्हें क़ैद या नज़र बन्द कर दो, जिन लोगों ने इस पर्दे के मानी दिये हैं उन्होंने अपनी अक़्ल और समझ पर ज़ुल्म किया है।

२७३ (अपने रसूल पर वही के द्वारा) वाक्य स्वयं दलालत कर रहा है कि घरों के भीतर सदैव की नज़रबन्दी की सज़ा अस्थायी थी और भविष्य के लिए कोई दूसरी सज़ा प्रस्तावित होनेवाली है, चुनांचे कुछ रोज़ बाद सूरत **'अन्नूर'** में क़ुर्आन ही के द्वारा दूसरी सज़ा प्रस्तावित हुई यानी बलात्कार करनेवाले मर्द तथा औरत दोनों के लिए सौ-सौ कोड़े और रसूल की सुन्नत ने और अधिक विवरण दे दिया कि यह सज़ा केवल बलात्कार की है और जब इस हरकत से पति के अधिकार को भी बरबाद किया गया हो यानी स्त्री विवाहित हो तो ऐसे अपराध की सज़ा "संगसारी" है यानी पत्थरों से मारकर ख़त्म कर दिया जाए।

२७४ यानी इस अपराध की सज़ा सारे ही अपराधियों के लिए है, कोई वर्ग इससे छूटा हुआ नहीं है। बहुत सी जातियाँ अपने को सभ्य कहनेवाली आज भी मौजूद हैं जिनके यहाँ हरामकारी (जब तक ज़बरदस्ती से न हो) सरे से सज़ा के योग्य है ही नहीं। बहुत सी जातियों में हरामकारी विवाह के बाद अपराध है। बिन बियाहे या बिन बियाहियों के लिए यह कोई जुर्म ही नहीं है। आयत इन तमाम गुमराह करनेवाले दृष्टिकोण का खण्डन करती है। **"वल्लज़ानि यअ्तियानिहा"**— में **'हा'** सर्वनाम **'फ़ाहिश'** की ओर है यानी कोई भी जोड़ा, जिसने हरामकारी की हो, इस बात के अन्तर्गत हर प्रकार के अपराधी आ गये सिवाय अक़्ल से ख़ारिज लोगों के, परन्तु आम तौर पर यह एक मर्द और एक औरत के लिए भी आता है, चुनांचे हनफ़ीया ने इसको इसी अर्थ में लेकर इसका मतलब हरामकार मर्द और हरामकार स्त्री लिया है। दूसरे इमामों ने अलबत्ता इस शब्द के माने "दो मर्द" लेकर इसका सम्बन्ध हरामकारी से नहीं बल्कि "लिवातत" से समझा है (लिवातत— मर्द का मर्द से नजिस सम्बन्ध)। विवरण फ़िक़्ह की पुस्तकों में मिलेगा, प्रथम आयत का सम्बन्ध केवल हरामकार स्त्री से और दूसरी का दोनों से है। **"फ़ आज़ूहुमा"**— सज़ा जारी करने का यह आदेश आम जनता को नहीं, केवल हाकिमों को।

२७५ (सज़ा जारी करने के बाद) जिन जुर्मों की शर्ई हद मौजूद है, उनमें सज़ा का लागू होना इस्लामी हुकूमत में हर सूरत में आवश्यक है।

२७६ यानी अपराधी जब सज़ा भी भुगत चुका और अब तौबा भी कर रहा है तो अब और अधिक लान-तान और बुरा-भला कहना जाइज़ नहीं है।

२७७ इस्लाम का ख़ुदा सीमित और बन्दी प्रकार का ख़ुदा नहीं कि मोक्ष और गुनाहों को माफ़ करने का बल न रखता हो और सृष्टि को एक मशीन की भाँति चलाता हुआ क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप बैठा हुआ केवल देख रहा हो या अगर मोक्ष पर बल रखता है तब भी प्रायश्चित्त का मुहताज हो। हिन्दू-मत और मसीहीयत दोनों के ग़लत अक़ीदों का इस आयत से खण्डन हो गया।

२७८ जो तबीयतें सिद्ध नहीं हैं उनके लिए हर प्रकार की बुरी हरकतों की गुंजाइश पहले की आयत से निकल सकती थी और वह अपने मन में कह सकते थे कि जब तौबा स्वीकार हो ही जायेगी तो हम बड़े आराम से हर प्रकार के ख़राब अमल और गुनाहों में पड़े रह सकते हैं, जब मरने लगेंगे तो तौबा कर लेंगे। इस सन्देह को दूर करने के लिए आवश्यकता थी कि तौबा की स्वीकृति की शर्तें और प्रतिबन्धों को स्पष्ट

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४४० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व लकुम् निस्फ़ु मा तरक अज़्वाजुकुम् अिल्लम् यकुल्लहुन्न वलदुन् ज
फ़ अिन् कान लहुन्न वलदुन् फ़ लकुमुर्रुबुअु मिम्मा तरक्न मिम्बअ़्दि
वसिय्यतिंय्यूसीन बिहा' औदैनिन् त व लहुन्नर्रुबुअु मिम्मा तरक्तुम् अिल्लम्
यकुल्लकुम् वलदुन् ज फ़ अिन् कान लकुम् वलदुन् फ़ लहुन्नस्सुमुनु मिम्मा
तरक्तुम् मिम्बअ़्दि वसिय्यतिन् तूसून बिहा'
औदैनिन् त व अिन्कान रजुलुंय्यूरसु कलालतन्
अविम्रअतुंव्व लहू' अख़ुन् औ अुख़्तुन्
फ़ लि कुल्लि वाहिदिम् - मिन्हुमस्सुदुसु ज
फ़ अिन् कानू' अक्सर मिन् ज़ालिक फ़हुम्
शुरका'अु फ़िस्सुलुसि मिम्बअ़्दि वसिय्यतिंय्यूसा
बिहा' औदैनिन् ला ग़ैर मुज़ा'र्रिन् ज
वसिय्यतम् - मिनल्लाहि त वल्लाहु अ़लीमुन्
हलीमुन् त (१२) तिल्क हुदूदुल्लाहि त
व मंय्युतिअिल्लाह व रसूलहू युद्ख़िलहु
जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिहल् - अन्हारु
ख़ालिदीन फ़ीहा त व ज़ालिकल् - फ़ौज़ुल्-
अ़ज़ीमु (१३) व मंय्यअ़्सिल्लाह व रसूलहू
व यतअ़द्द हुदूदहू युद्ख़िलहु नारन् ख़ालिदन् फ़ीहा स व लहू अ़ज़ाबुम्-
★ रु. २/१३ आ ४ मुहीनुन् (१४) ★ वल्लाती यअ़्तीनल्-फ़ाहिशत मिन् निसा'अिकुम् फ़स्तश्हिदू
अ़लैहिन्न अर्बअ़तम्-मिन्कुम् ज फ़ अिन् शहिदू फ़ अम्सिकू-हुन्न फ़िल्बुयूति हत्ता
यतवफ़्फ़ा - हुन्नल्मौतु औ यज्अ़लल्लाहु लहुन्न सबीलन् (१५) वल्लज़ानि
यअ़्तियानिहा मिन्कुम् फ़ आज़ूहुमा ज फ़ अिन् ताबा व अस्लहा फ़ अअ़्रिज़ू
अ़न्हुमा त अिन्नल्लाह कान तव्वाबर्रहीमन् (१६) अिन्नमत्तौबतु अ़लल्लाहि
लिल्लज़ीन यअ़्मलूनस्सू'अ बि जहालतिन् सुम्म यतूबून मिन् क़रीबिन्
फ़ अुला'अिक यतूबुल्लाहु अ़लैहिम् त व कानल्लाहु अ़लीमन् हकीमन् (१७)

لن تنالوا ٤ — ٦٣ — النساء ٤

فريضة من الله ان الله كان عليما حكيما ⑪ ولكم نصف ما ترك
ازواجكم ان لم يكن لهن ولد فان كان لهن ولد فلكم الربع
مما تركن من بعد وصية يوصين بها او دين ولهن الربع
مما تركتم ان لم يكن لكم ولد فان كان لكم ولد فلهن
الثمن مما تركتم من بعد وصية توصون بها او دين وان
كان رجل يورث كللة او امراة وله اخ او اخت فلكل واحد
منهما السدس فان كانوا اكثر من ذلك فهم شركاء في الثلث
من بعد وصية يوصى بها او دين غير مضار وصية من الله
والله عليم حليم ⑫ تلك حدود الله ومن يطع الله ورسوله
يدخله جنت تجري من تحتها الانهر خلدين فيها وذلك
الفوز العظيم ⑬ ومن يعص الله ورسوله ويتعد حدوده
يدخله نارا خالدا فيها وله عذاب مهين ⑭ والتي ياتين
الفاحشة من نسائكم فاستشهدوا عليهن اربعة منكم فان
شهدوا فامسكوهن في البيوت حتى يتوفهن الموت او يجعل
الله لهن سبيلا ⑮ والذن ياتينها منكم فاذوهما فان تابا و
اصلحا فاعرضوا عنهما ان الله كان توابا رحيما ⑯ انما التوبة
على الله للذين يعملون السوء بجهالة ثم يتوبون من قريب

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और तुम्हारे लिए उस (माल) का आधा हिस्सा है जो तुम्हारी बीवियाँ छोड़ जाएँ बशर्ते कि उनके कोई सन्तान न हो[२५९]; और अगर उनके सन्तान हो तो तुम्हारे लिए बीवियों के तर्के की चौथाई है[२६०] वसीयत (निकालने) के बाद जिसकी वसीयत कर जायें या क़र्ज़ अदा करने के बाद[२६१]। और उन पत्नियों के लिए तुम्हारे तर्के की चौथाई है[२६२] बशर्ते कि तुम्हारे कोई सन्तान न हो; परन्तु यदि तुम्हारे कुछ सन्तान हो तो उन (पत्नियों) को तुम्हारे तर्के का आठवाँ हिस्सा मिलेगा[२६३] बाद वसीयत (निकालने) के जिसको तुम वसीयत कर जाओ या क़र्ज़ अदायगी के बाद। यदि कोई मूरिस पुरुष हो या स्त्री, ऐसा हो जिसके न कोई उसूल हो, न अन्य कोई सन्तान, या सन्तान की सन्तान, और उसके एक भाई या एक बहिन हो, तो दोनों में से प्रत्येक के लिए एक छठवाँ हिस्सा है। और यदि यह लोग इससे अधिक हों तो वह एक तिहाई में शरीक होंगे[२६४], बाद वसीयत (निकालते) के जिसकी वसीयत कर दी जाए या क़र्ज़ की अदायगी के बाद बिना किसी को हानि पहुँचाये[२६५]। यह हुक्म अल्लाह की ओर से है[२६६]। और अल्लाह बड़ा ज्ञानवाला है बड़ा गम्भीर है[२६७]। (१२) यह सब ख़ुदावन्दी नियम हैं[२६८]। और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की (पूरी) इताअत करेगा, अल्लाह उसे जन्नत के बाग़ों में प्रवेश देगा जिनके नीचे नदियाँ बह रही होंगी, उनमें वह हमेशा रहेंगे; और यह बड़ी सफलता है[२६९]। (१३) और जो
कोई अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करेगा और उस नियमों की सीमाओं से बाहर निकल जायेगा, उसे वह आग में दाखिल करेगा उसमें वह हमेशा पड़ा रहेगा। और उसे ज़िल्लत देनेवाला अज़ाब होगा[२७०]। (१४) ★

★ रु. २/१३ मा ४

और तुम्हारी औरतों में से जो बेहयाई का कार्य करें[२७१], उन पर चार (आदमी) अपने में से गवाह कर लो। सो अगर वह गवाही दे दें तो उन (औरतों) को घरों में बन्द रखो, यहाँ तक कि मौत उनका ख़ात्मा कर दे[२७२], या अल्लाह उनके लिए कोई अन्य मार्ग निकाल दे[२७३]। (१५) और तुममें से कोई दो जो वह काम करें उन्हें चोट दो[२७४], फिर यदि दोनों तौबः कर लें और अपना सुधार कर लें[२७५] तो उन पर आपत्ति न करो[२७६]। बेशक अल्लाह बड़ा तौबः स्वीकार करनेवाला है, बड़ा मेहरबान है[२७७]। (१६) तौबः, जिसको स्वीकार करना अल्लाह के ज़िम्मे है, वह तो बस उन्हीं लोगों की है जो बुरी हरकत नादानी से कर बैठते हैं[२७८]; और फिर निकट ही (समय में) तौबः कर लेते हैं[२७९]। ऐसे ही लोगों की तौबः अल्लाह तआला क़बूल करता है[२८०]। और अल्लाह बड़ा ज्ञानवाला है, बड़ा हिकमतवाला है[२८१]। (१७)

(न तुमसे न उनके किसी और पति से) ज़ाहिर है कि इस विषय में सम्बोधन पतियों ही से है।
२५९ (न तुमसे न उनके किसी और पति से) ज़ाहिर है कि इस विषय में सम्बोधन पतियों ही से है।
२६० (और शेष ३/४ दूसरे वारिसों का हिस्सा है।) **"अिन् कान लहुन्न वलदुन्"**— यह सन्तान चाहे तुमसे हो या मरनेवाली के दूसरे पति से।

२६१ अभी नोट गुज़र चुका है कि मीरास की तक़सीम हर दशा में वसीयत को निकालने के बाद और क़र्ज़ की अदायगी के बाद ही होगी और इन दोनों में भी क़र्ज़ की अदायगी को प्राथमिकता है।

२६२ और पत्नियाँ यदि कई हों तो पति के तर्के की वही चौथाई सबमें बाँटी जाएगी।

२६३ (और पति के तर्के का शेष ७/८ दूसरे वारिसों की ओर जाएगा।) पत्नियों को १/८ हर सूरत में मिलेगा चाहे सन्तान हो या न हो। **"अिन् कान लकुम् वलदुन्"**— यह सन्तान चाहे उन्हीं पत्नियों से हों या किसी और स्त्री से।

२६४ (और अवशेष २/३ भाग दूसरे वारिसों की ओर जाएगा।) **"फ़हुम् शुरका'अु"**— यह शिर्कत बराबरी की रहेगी यानी स्त्रीलिंग और पुंलिंग का हिस्सा बराबर रहेगा। **"कलालतन्"**— हिन्दी व उर्दू में इसके लिए कोई शब्द मौजूद नहीं है। **"कलालः"**— अरबी में ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जिसके न बाप-दादा में से कोई मौजूद हो और न औलाद-दर-औलाद में से कोई हो। (फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४३६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४३७ से)

कर दिया जाता। **"अस्सू'अ"** शब्द परिपूर्ण है बड़े और छोटे दोनों पापों के लिए। **'अत्तौबतु'** तौबा की हक़ीक़त शरीअत में यह है कि भूत पर लज्जित होना और भविष्य के लिए गुनाहों से बचने का दृढ़ निश्चय। यहाँ तौबा से मुराद है उसका स्वीकार होना। **"बि जहालतिन्"**— अर्थ यह है कि गुनाह करते समय उसके परिणामों की बात जेह्न से दूर हो गई और बुद्धि सामयिक रूप से भावों के जोश में नेत्रहीन हो गई। **"अ़लल्लाहि"**— 'मोतज़िला' (एक फ़िर्क़ः) के विपरीत अहले सुन्नत का मत है कि अल्लाह पर वास्तव में वाजिब तो कोई चीज़ नहीं है, यहाँ अरब मुहावरें के अनुसार वादे पर बल देना है।

२७९ गुनाहों पर शर्मिन्दा होना और उसको छोड़ने का इरादा, गुनाह के पश्चात् जितनी शीघ्रता से हो सके उसको दिल में रखना आवश्यक है। उसमें जिस क़दर बिलम्ब होता जाएगा, उसके स्वीकार होने की सम्भावनाएँ निर्बल होती जायेंगी। परन्तु शरीअत ने बड़े स्नेह से काम लेकर इस क़ुर्ब (मिन् क़रीब) की मीआद मौत की हाज़िरी के पूर्व तक फैला दी है। सहाबियों और ताबिईन ने यही रिवायत की है। दूसरे अर्थ यह किये गये हैं और यह अर्थ भी काफ़ी जी को लगनेवाले हैं कि पूर्व इसके कि बुराई आत्मा पर छा जाए और नेकियों को जलाकर रख दें।

२८० यानी मोक्ष या क्षमा का वादा ऐसे ही लोगों की तौबा पर सृजित होता है।

२८१ सो वह अपने ज्ञान की शान से भलीभाँति जानता है कि किस-किसने हृदय से तौबा की है और अपनी हिकमत की शान से हृदय से तौबा न करनेवालों को भी रुस्वा नहीं करता और तौबा करनेवाला निःस्वार्थ या स्वार्थी हर दशा में वह उसके लिए और अधिक मलामत उचित नहीं जानता।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४४३ से)

अधिक विवरण हो सकता है कि बल देने के लिए अधिक स्पष्टता के लिए दिया गया हो। **"तरिसुन्-निसा'अ"**— में पत्नियों के जिस्म का मालिक होना भी आ गया और उनके माल और जायदाद का भी। औरतों के माल के मालिक होने की तीन सूरतें मौलाना थानवी ने लिखी हैं जो अरब में प्रचलित थीं। एक यह कि औरत का जो शर्ई हक़ मीरास में निकल रहा हो उसे स्वयं ले लिया जाए, स्त्री को न दिया जाए। दूसरे यह कि औरत को दूसरा निकाह न करने दिया जाए और जब वह मर जाए तो उसके माल पर स्वयं क़ब्ज़ा कर लिया जाए। तीसरे यह कि पति अपनी पत्नी को मजबूर करे कि वह उसे कुछ माल दे जब वह उसे छोड़े। दुनिया दुर्व्यवहार और बदअमली की कितनी विभिन्न सूरतों में फँसी हुई थी और इस्लाम ने आकर किन-किन चीज़ों का सुधार किया है।

२८५ जाहिलीयत के समय में मृतक की जायदाद के साथ उसकी पत्नियाँ भी सौतेले लड़कों के वरसे में आ जाती थीं और यही दस्तूर रूमी सभ्यता एवं यूनानी समाज में भी किसी समय में रह चुका है। (अंग्रेज़ी तफ़्सीर का अवलोकन करें)। क़ुर्आन मजीद कितने दूरस्थ पहलुओं को भी सामने रखता है। तफ़्सीर करनेवाला यह हर चीज़ को देखनेवाली दृष्टि कहाँ से लाये? अरब जाहिलीयत में इन स्त्रियों से वारिस या तो स्वयं ज़बरदस्ती निकाह कर लेता था या दूसरों से करा देता था।

२८६ (क्योंकि इस दशा में स्त्रियों को बन्दी रखना या उनसे कुछ माल वसूल करना जाइज़ होगा।) एक दस्तूर अरब जाहिलीयत में यह भी था कि मालदार पत्नी को वारिस इस विचार से कहीं निकाह नहीं करने देते थे कि यह अपना माल अपने साथ ले जायेगी यहाँ तक कि वह विवश और बन्दी विधवा उसके घर में अपनी जान दे देती या फिर उसे अपना धनमाल देकर अपनी जान छुड़ाती थी। **"मा' आतैतुमूहुन्न"**— यानी जो चीज़ें स्वयं तुमने दी हों या तुम्हारे क़राबत वालों ने। **"फ़ाहिशतिम्-मुबय्यिन"**— इससे अर्थ बलात्कार करना तो स्पष्ट ही है। निर्णय यह है कि शब्द के भीतर बलात्कार और आज्ञा-उल्लंघन दोनों के ही अर्थ आ गये। सारांश यह है कि समाज की बुराई का कारण इन पत्नियों का उत्पन्न किया हुआ न हो।

२८७ क़ुर्आन मजीद की यह एक साधारण वर्णन शैली है कि आंशिक आदेशों के बीच एक सम्पूर्ण मसला भी बयान कर देता है और कुल के बयान में अंश भी ले आता है यहाँ भी यही है कि आंशिक आदेश बयान करते-करते उसने एक बुनियादी बात कह दी। स्त्रियों के साथ रहन-सहन की सुन्दरता का केन्द्रीय, बुनियादी, विशिष्ट आदेश सुहागिनों, विधवाओं, तलाक़ पानेवालियों, सबके मामलों में पालन योग्य है। यह निर्देश वह धर्म दे रहा है जिसे बहुत से आँख के अन्धों ने स्त्रियों के पक्ष में ज़ालिमाना कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२८८ (वर्तमान या भविष्यकाल में) शिकायत करनेवाले पतियों को दिली संतोष के लिए इस बात से अधिक और कौन सी वस्तु प्रभावित कर सकती हैं ? इस चीज़ का लाभ केवल पतियों तक क्यों सीमित रहे ? आयत के शब्दों में साधारणता है, हर व्यक्ति, जो तक़दीर का गिला-शिकवा करता रहता हो, इसी चीज़ से सन्तोष प्राप्त कर सकता है। अल्लाह जिस बन्दे को जिस स्थिति में रखना चाहता है, स्वयं बन्दे ही की कितनी मसलहतें उससे उद्देशित रहती हैं। **"ख़ैरन् कसीरन्"**— **'ख़ैर'** के भीतर दुनियावी और आख़िरत की हर भलाई और बेहतरी आ गई। और फिर केवल ख़ैर ही नहीं, बल्कि भलाइयों का ढेर और एक अम्बार। इससे बढ़कर कौन सा विचार सन्तोष दे सकता है ? **"फ़ अिन् करिह्तुमूहुन्न"**— अर्थ है वह कराहियत जो प्राकृतिक रूप में या अकारण हो, न कि ऐसी कोई शिकायत जो स्त्री की ओर से इरादा करके पैदा हुई हो।

२८९ बिना इसके कि इस पहली पत्नी का कोई क़ुसूर हो यानी केवल अपनी पसन्द तथा इच्छा से तुम एक पत्नी को छोड़कर दूसरी करना चाहते हो।

२९० (और इसी प्रकार माने हुए माल को रोक भी मत रखो।) **"अिह्दा-हुन्न"** यानी उस पहली बीवी की जिसे अब छोड़ रहे हो। **"क़िन्तारन्"**— माल के ढेर। इस पर एक प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि हदीस में तो महर की अधिकता की मनाही आई है परन्तु ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) ने एक बार मस्जिद में मिम्बर पर महर की ज़्यादती से रोका, परन्तु एक बुढ़िया के टोकने पर उसका जाइज़ होना भी मान लिया और स्वयं इस आयत से भी ढेरों माल का जाइज़ होना सिद्ध हो रहा है। प्रश्न का एक उत्तर तो इमाम राज़ी (रह०) के मस्तिष्क और क़लम से है यानी आयत से जाइज़ होना कहाँ सिद्ध होता है। आयत ने तो केवल एक शर्त और फ़र्ज़ की हुई दशा का वर्णन किया है। यानी यह कि यदि तुम ढेरों माल दे चुके हो तब भी उसकी वापसी की माँग ठीक नहीं, इससे इस शर्त या फ़र्ज़ की हुई बात का सही होना अनिवार्य नहीं परन्तु इससे भी स्पष्ट, दिल में बैठनेवाला और सादा उत्तर इस ज़माने के मौलाना थानवी की क़लम से निकला है। फ़र्माते हैं कि "यह जाइज़ होना क़ुर्आन के कानों में यह है कि इसका लागू होना सही है और हदीस में यह जाइज़ होना इस मानी में है कि तलाक़ देने की स्थिति में कराहियत तो अवश्य है। और हज़रत उमर (रज़ि०) का एक वाक़िआ में अधिक महर के जाइज़ होने को मान लेना इसलिए था कि सुननेवाले उसको हराम न समझने लगें। पर इससे कराहत न होना सिद्ध नहीं होता, न हज़रत उमर (रज़ि०) पर कोई आपत्ति लाज़िम होती है।"

२९१ यानी अकारण वापस लोगे तो या तो खुले हुए अत्याचारी होगे और या फिर बात बनाने के लिए स्त्री पर कोई झूठा संगीन आरोप बलात्कार या नाफ़र्मानी का लगा रखोगे।

२९२ (निकाह के समय) और वह पक्का वादा यही कि तुम महर अदा करोगे। **"मीसाक़न् ग़लीज़न्"** यानी वादा भी कैसा, पक्का और मज़बूत। **"व क़द् अफ़्ज़ा बअ्ज़ुकुम अिला बअ्ज़"** यानी जब उन्होंने अपना जिस्म आनन्द और लाभ हेतु तुम्हें सौंप दिया तो अब महर उनसे वापस लेना या उसे उन्हें अदा न करना बड़ी बेशर्मी तथा नीचता की बात है। **"अफ़्ज़ा"**— शब्दकोश में इसका अर्थ है सही एकान्त तथा साथ ही स्त्रीभोग। हनफ़ीया के यहाँ सही एकान्त के पश्चात् वाजिब हो जाता है।

२९३ यानी इस हुक्म के उतरने के पूर्व जो हो चुका अब उस पर पूछताछ नहीं। **"ला तन्किहू"** निकाह का अर्थ पत्नी बनाना तो स्पष्ट है ही, परन्तु यहाँ इससे भी विशाल अर्थ यानी स्त्रीभोग का अर्थ लिया गया है। **"मा नकह आबा'अुकुम्"**— अरब जाहिलीयत के इस दस्तूर की ओर संकेत है कि सौतेली माताओं से भी निकाह कर लिया जाता था और मदीने में यह दस्तूर अधिक था। **"आबा'अुकुम्"** इसके अन्तर्गत वह पत्नियाँ भी आ गईं जो दादा या नाना के निकाह में रह चुकी थीं।

२९४ क़ुर्आन मजीद में तीन शब्द प्रयोग हुए हैं और तीनों से अलग-अलग संकेत हैं। **"फ़ाहिशतन्"** यह दस्तूर स्वयं और अक़्ल से भी बड़ी निर्लज्जता की चीज था। **'मक़्तन्'** स्वच्छ मनोवृत्ति रखनेवालों के विचार में बड़ी बेशर्मी की चीज था। 'मक़्त' कहते हैं ऐसी बुरी चीज को जिसे देखकर ही तबीयत में घृणा या कराहियत पैदा हो। स्वयं जाहिलीयत वाले भी इस निकाह को बुरी निगाह से देखते थे और इसका नाम ही 'निकाहे मक़्त' पड़ गया था। **"सा'अ सबीलन्"** यानी इसके परिणाम भी बड़े घृणात्मक थे। इमाम राज़ी ने फ़र्माया कि 'क़ुब्ह' के तीन दर्जे होते हैं, एक क़ुब्ह अक़्ली, दूसरे क़ुब्ह शरई, तीसरे क़ुब्ह उर्फ़ी। **'फ़ाहिशतन्'** में इशारा प्रथम की ओर है, **'मक़्त'** में दूसरे की ओर और **'सा'अ सबीलन्'** में तीसरे की ओर (क़ुब्ह— घृणात्मक और गन्दा)।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४४६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व लैसतित्तौबतु लिल्लज़ीन यअ़मलूनस्-सय्यिआति ज हुत्ता' अिज़ा हूज़र
अहूद - हुमुलमौतु क़ाल अिन्नी तुब्तुलआन व लल्लज़ीन यमूतून व हुम्
कुफ़्फ़ारुन् त अुला'अिक अअ़्तद्ना लहुम् अ़ज़ाबन् अलीमन् (१८) या'
अय्युहल्लज़ीन आमनू ला यहि़ल्लु लकुम् अन् तरिसुन्निसा'अ कर्हन् त

فَاُولٰٓئِكَ يَتُوْبُ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝١٧ وَلَيْسَتِ التَّوْبَةُ
لِلَّذِيْنَ يَعْمَلُوْنَ السَّيِّاٰتِ ۚ حَتّٰٓى اِذَا حَضَرَ اَحَدَهُمُ الْمَوْتُ قَالَ اِنِّىْ
تُبْتُ الْـٰٔنَ وَلَا الَّذِيْنَ يَمُوْتُوْنَ وَهُمْ كُفَّارٌ ؕ اُولٰٓئِكَ اَعْتَدْنَا لَهُمْ
عَذَابًا اَلِيْمًا ۝١٨ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا النِّسَآءَ
كَرْهًا ؕ وَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ لِتَذْهَبُوْا بِبَعْضِ مَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اِلَّآ اَنْ
يَّاْتِيْنَ بِفَاحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ ۚ وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ
فَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا ۝١٩ وَاِنْ اَرَدْتُّمُ
اسْتِبْدَالَ زَوْجٍ مَّكَانَ زَوْجٍ ۙ وَّاٰتَيْتُمْ اِحْدٰىهُنَّ قِنْطَارًا فَلَا تَاْخُذُوْا
مِنْهُ شَيْـًٔا ؕ اَتَاْخُذُوْنَهٗ بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا ۝٢٠ وَكَيْفَ تَاْخُذُوْنَهٗ وَ
قَدْ اَفْضٰى بَعْضُكُمْ اِلٰى بَعْضٍ وَّاَخَذْنَ مِنْكُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ۝٢١ وَ
لَا تَنْكِحُوْا مَا نَكَحَ اٰبَآؤُكُمْ مِّنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ؕ اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً
وَّمَقْتًا ؕ وَسَآءَ سَبِيْلًا ۝٢٢ حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهٰتُكُمْ وَبَنٰتُكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ وَ ع
عَمّٰتُكُمْ وَخٰلٰتُكُمْ وَبَنٰتُ الْاَخِ وَبَنٰتُ الْاُخْتِ وَاُمَّهٰتُكُمُ الّٰتِىْٓ اَرْضَعْنَكُمْ
وَاَخَوٰتُكُمْ مِّنَ الرَّضَاعَةِ وَاُمَّهٰتُ نِسَآئِكُمْ وَرَبَآئِبُكُمُ الّٰتِىْ فِىْ حُجُوْرِكُمْ
مِّنْ نِّسَآئِكُمُ الّٰتِىْ دَخَلْتُمْ بِهِنَّ ۚ فَاِنْ لَّمْ تَكُوْنُوْا دَخَلْتُمْ بِهِنَّ فَلَا
جُنَاحَ عَلَيْكُمْ ۚ وَحَلَآئِلُ اَبْنَآئِكُمُ الَّذِيْنَ مِنْ اَصْلَابِكُمْ ۙ وَاَنْ
تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝٢٣

منزل

व ला तअ़्ज़ुलूहुन्न लि तज़्हबू बि बअ़्ज़ि
मा' आतैतुमूहुन्न अिल्ला' अंय्यअ्तीन
बि फ़ाहि़शतिम् - मुबय्यिनतिन् ज व आ़शिरू
हुन्न बिल्मअ़रूफ़ि ज फ़ अिन् करिह्तुमूहुन्न
फ़ अ़सा' अन् तक्रहू शैअंव्व यज्अ़लल्लाहु
फ़ीहि ख़ैरन् कसीरन् (१९) व अिन्
अरत्तुमुस्तिब्दाल ज़ौजिम्मकान ज़ौजिन् ला
ंव आतैतुम् अिह़्दा-हुन्न क़िन्तारन् फ़ ला
तअ्ख़ुज़ू मिन्हु शैअन् त अ तअ्ख़ुज़ूनहू
बुह्तानंव्व अिस्मम् - मुबीनन् (२०) व
कैफ़ तअ्ख़ुज़ूनहू व क़द् अफ़्ज़ा बअ़्ज़ुकुम्
अिला बअ़्ज़िंव्व अख़ज़्न मिन्कुम् मीसाक़न्
ग़लीज़न् (२१) व ला तन्किहू मा
★ ३/१४ आ ८ नकहू आबा'अुकुम् मिनन्निसा'अि अिल्ला मा क़द् सलफ़ त अिन्नहू कान
फ़ाहि़शतंव्व मक़्तन् त व सा'अ सबीलन् (२२) ★ हुर्रिमत् अ़लैकुम्
अुम्महातुकुम् व बनातुकुम् व अख़वातुकुम् व अ़म्मातुकुम् व ख़ालातुकुम् व
बनातुलअख़ि व बनातुल् - अुख़्ति व अुम्महातु-कुमुल्लाती' अर्ज़अ़्नकुम् व
अख़वातुकुम् मिनर्रज़ाअ़ति व अुम्महातु निसा'अिकुम् व रबा'अिबु-कुमुल्लाती
फ़ी हुजूरिकुम् मिन्-निसा'अिकुमुल्लाती दख़ल्तुम् बिहिन्न ज फ़ अिल्लम् तकूनू
दख़ल्तुम् बिहिन्न फ़ ला जुनाह़ अ़लैकुम् ज व ह़ला'अिलु अब्ना'अि-
कुमुल्लज़ीन मिन् अस़्लाबिकुम् ला ल अन् तज्मअ़ू बैनल्-अुख़्तैनि
अिल्ला मा क़द् सलफ़ त अिन्नल्लाह कान ग़फ़ूरर्रहीमन् ला (२३)

॥ इति चौथा पारः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और ऐसे लोगों की तौबः (क़बूल) नहीं है[२८२] जो बराबर गुनाह करते रहें यहाँ तक कि मौत उनमें से किसी के सामने आ खड़ी हो[२८३] (और तब) वह कहने लगे कि अब मैं तौबः करता हूँ। और न उन लोगों (की तौबः) जो इसी दशा में मरते हैं कि वह काफ़िर हैं[२८४]। यही वह लोग हैं जिनके लिए हमने दर्दनाक अज़ाब तैयार कर रखा है। (१८) ऐ ईमानवालो! तुम्हारे लिए जाइज़ नहीं कि तुम स्त्रियों के ज़बरदस्ती मालिक बन जाओ[२८५]। और न उन्हें इस ग़रज़ से क़ैद रखो कि तुमने उन्हें जो कुछ दे रखा है उसका कुछ भाग वसूल कर लो, सिवाय उस दशा में जब कि वह खुली हुई बदचलनी कर चुकी हों[२८६]। और पत्नियों के साथ राज़ी-ख़ुशी के साथ गुज़र-बसर किया करो[२८७], यदि वह तुम्हें नापसन्द हों तो क्या तअज्जुब कि तुम एक चीज़ को नापसन्द करो (और) अल्लाह उसके अन्दर कोई बड़ी भलाई रख दे[२८८]। (१९) और यदि तुम एक पत्नी के स्थान पर (दूसरी) पत्नी बदलना चाहो[२८९] और तुम उस पत्नी को माल का ढेर दे चुके हो तो तुम उसमें से कुछ भी वापस न लो[२९०]। क्या तुम इल्ज़ाम लगाकर और खुला हुआ पाप करके उसे (वापस) लोगे[२९१]? (२०) और तुम कैसे उसे वापस ले सकते हो ऐसी स्थिति में कि एक-दूसरे से एकान्त कर चुके हो और वह (पत्नियाँ) तुमसे एक मज़बूत वादा ले चुकी हैं[२९२]। (२१) और उन स्त्रियों से ★
निकाह मत करो जिनसे तुम्हारे बाप निकाह कर चुके हैं, परन्तु हाँ जो कुछ हो चुका रु. ३
(हो चुका)[२९३]। निःसन्देह यह बड़ी निर्लज्जता और घृणा की बात थी; और बहुत बुरा
तरीक़ा था[२९४]। (२२) ★ १४

तुम्हारे ऊपर हराम की गई हैं तुम्हारी माताएँ, और तुम्हारी बेटियाँ, और तुम्हारी आ ८
बहिनें, और तुम्हारी फूफियाँ, और तुम्हारी मौसियाँ, और भाई की बेटियाँ, और बहिन की बेटियाँ, और तुम्हारी वह माताएँ जिन्होंने तुम्हें दूध पिलाया, और तुम्हारी दूध-शरीक बहिनें, और तुम्हारी पत्नियों की माएँ, और तुम्हारी पत्नियों की बेटियाँ जो तुम्हारी परवरिश में रही हैं और जो तुम्हारी उन पत्नियों से हो जिनसे तुमने एकान्त किया हो। लेकिन अगर अभी तुमने उन बीवियों से एकान्त न किया हो तो तुम पर कोई पाप नहीं, और जो बेटे तुम्हारी नस्ल से हों उनकी पत्नियाँ, और यह भी हराम है कि तुम दो बहिनों को एक स्थान पर करो मगर हाँ जो हो चुका (हो चुका), निःसन्देह अल्लाह बख़्शनेवाला है, बड़ा दयालु है[२९५]। (२३)

॥ इति चौथा पारः ॥

---

२८२ यानी ऐसे लोगों की तौबा स्वीकार करने का वादा नहीं। परन्तु यदि वह किसी के साथ मेहरबानी करना चाहे तो उस मेहरबान और दयालु के आगे कौन सर उठा सकता है?

२८३ [और आलमें बर्ज़ख़ (मृत्यु के बाद की दुनिया) उस पर प्रकट होने लगे।] यानी मृत्यु की दशा आरम्भ होने लगे और अन्तिम समय आ जाए, क्योंकि अब अज़ाब तथा अज़ाब के फ़िरिश्तों को देखने के बाद जो तौबा होगी वह तो बेचारगी की तौबा है और अब उसकी स्वीकृति न हो सकेगी। **"लिल्लज़ीन यड़मलूनस्-सय्यिआति"**— फ़क़ीहों ने कहा है कि गुनाह यदि एक-आध बार ही हो जाए, परन्तु उससे तौबा न की जाए, तो इसका अर्थ यह मान लिया जाता है कि गुनाह फिर भी करता रहेगा। **"सय्यिआति"** बहुवचन का सीग़ा लाने से यह आवश्यक नहीं है गुनाहों की विभिन्न क़िस्में निकलती हैं और होती हैं, बल्कि एक ही गुनाह को काफ़ी समय तक बार-बार करते रहना इसको बहुवचन के सीग़े में लाने के लिए पर्याप्त है। इसके पूर्व की आयत में **"अस्सूअि"** एक वचन में आया है और यहाँ **"अस्-सय्यिआति"** बहुवचन में आया है। यह अन्तर ध्यान देने योग्य है। प्रथम आयत में जल्द ही तौबा करनेवालों का वर्णन है और इस दूसरी आयत में उन लोगों का वर्णन है जो लापरवाही, पापी मनोवृत्ति और हठ के कारण देर से तौबा करते हैं और अपने रोग को बढ़ाते जाते हैं।

२८४ काफ़िर के ईमान का मरते समय अस्वीकृत होना तो ऊपर के वाक्य में शामिल था, और

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४४० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाँचवाँ पारः वल्मुह्सनातु

☪ सूरतुन्निसा'अि आयत २४ से १४७ ☪

°वल्मुह्सनातु मिनन्निसा'अि अिल्ला मा मलकत् अैमानुकुम् ज किताबल्लाहि अलैकुम् ज व अुहिल्ल लकुम् मा वरा'अ जालिकुम् अन् तब्तग़ू बि अम्वालिकुम् मुह्सिनीन ग़ैर मुसाफ़िहीन त फ़ मस्तम्तऽतुम् बिहीं मिन्हुन्न फ़ आतूहुन्न अुजूरहुन्न फ़रीज़तन् त व ला जुनाह अलैकुम् फ़ी मा तराज़ैतुम् बिहीं मिम्बऽदिल्-फ़रीज़ति त अिन्नल्लाह कान अलीमन् हकीमन् (२४) व मल्लम् यस्ततिऽ मिन्कुम् तौलन् अंय्यन्किहल्-मुह्सनातिल्-मुअ्मिनाति फ़ मिम्मा मलकत् अैमानुकुम् मिन् फ़तयातिकुमुल्-मुअ्मिनाति त वल्लाहु अऽलमु बि अीमानिकुम् त बऽज़ुकुम् मिम्बऽज़िन् ज फ़न्किहूहुन्न बि अिज़्नि अह्लिहिन्न व आतूहुन्न अुजूरहुन्न बिलमऽरूफ़ि मुह्सनातिन् ग़ैर मुसाफ़िहातिंव्वला मुत्तख़िज़ाति अख़्दानिन् ज फ़ अिज़ा' अुह्सिन्न फ़ अिन् अतैन बि फ़ाहिशतिन् फ़ अलैहिन्न निस्फ़ु मा अलल्-मुह्सनाति मिनल्अज़ाबि त ज़ालिक लि मन् ख़शियल्-अनत मिन्कुम् त व अन् तस्बिरू ख़ैरुल्लकुम् त वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीमुन् (२५) ★ युरीदुल्लाहु लि युबय्यिन लकुम् व यह्दियकुम् सुननल्लज़ीन मिन् क़ब्लिकुम् व यतूब अलैकुम् त वल्लाहु अलीमुन् हकीमुन् (२६) वल्लाहु युरीदु अंय्यतूब अलैकुम् क़्रि व युरीदुल्लज़ीन यत्तबिअूनश्-शहवाति अन् तमीलू मैलन् अज़ीमन् (२७) युरीदुल्लाहु अंय्युख़फ़्फ़िफ़ अन्कुम् ज व ख़ुलिक़ल्-अिन्सानु ज़अीफ़न् (२८)

والمحصنت ٥ — ٦٥ — النساء ٤ — الجزء ٥

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۚ كِتٰبَ اللّٰهِ
عَلَيْكُمْ ۚ وَاُحِلَّ لَكُمْ مَّا وَرَآءَ ذٰلِكُمْ اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ مُّحْصِنِيْنَ
غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ ۚ فَمَا اسْتَمْتَعْتُمْ بِهٖ مِنْهُنَّ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ
فَرِيْضَةً ۚ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا تَرٰضَيْتُمْ بِهٖ مِنْۢ بَعْدِ الْفَرِيْضَةِ ۚ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝ وَمَنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ مِنْكُمْ طَوْلًا اَنْ
يَّنْكِحَ الْمُحْصَنٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ فَمِنْ مَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ مِّنْ فَتَيٰتِكُمُ
الْمُؤْمِنٰتِ ۚ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِاِيْمَانِكُمْ ۚ بَعْضُكُمْ مِّنْۢ بَعْضٍ ۚ
فَانْكِحُوْهُنَّ بِاِذْنِ اَهْلِهِنَّ وَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ
مُحْصَنٰتٍ غَيْرَ مُسٰفِحٰتٍ وَّلَا مُتَّخِذٰتِ اَخْدَانٍ ۚ فَاِذَآ اُحْصِنَّ
فَاِنْ اَتَيْنَ بِفَاحِشَةٍ فَعَلَيْهِنَّ نِصْفُ مَا عَلَى الْمُحْصَنٰتِ مِنَ
الْعَذَابِ ۚ ذٰلِكَ لِمَنْ خَشِيَ الْعَنَتَ مِنْكُمْ ۚ وَاَنْ تَصْبِرُوْا خَيْرٌ
لَّكُمْ ۚ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيُبَيِّنَ لَكُمْ وَيَهْدِيَكُمْ
سُنَنَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَيَتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۚ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝
وَاللّٰهُ يُرِيْدُ اَنْ يَّتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۚ وَيُرِيْدُ الَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ الشَّهَوٰتِ
اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ۝ يُرِيْدُ اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ
الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا ۝ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ
بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۚ وَ

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाँचवाँ पारः वल्मुह्सनातु

☪ सूरतुन्निसा'अि आयत २४ से १४७ ☪

और वह स्त्रियाँ भी (हराम की गई हैं) जो निकाह की बन्दिश में हों सिवाय उनके जो तुम्हारी मिल्क में आ जाएँ[1]। अल्लाह ने फ़र्ज़ कर दिया है (इन आदेशों को) तुम पर। और जो इनके अतिरिक्त हैं वह तुम्हारे लिए हलाल कर दी गई हैं[2] यानी तुम उन्हें अपने माल के द्वारा तलाश करो (इस प्रकार कि) निकाह में लानेवाले न कि मस्ती निकालनेवाले[3]। फिर जिस माल के बदले में तुमने बाज़ स्त्रियों से आनन्द लिया है सो उन्हें उनके निर्णीत मह्र दे दो और तुम पर उस मात्रा के विषय में कोई गुनाह नहीं जिस पर तुम आपस में मह्र तय हो जाने के बाद रज़ामन्द हो जाओ[4]। बेशक अल्लाह बड़ा ज्ञानवाला, बड़ी हिकमतवाला है[5]। (२४) और तुममें से जो क्षमता न रखता हो कि आज़ाद मोमिनात से निकाह कर सके[6] तो वह तुम्हारी (आपस की) मुसलमान कनीज़ों से, जो तुम्हारी (शर्ई) मिल्कीयत में हों (निकाह कर ले)[7]; और अल्लाह तुम्हारे ईमान (की हालत) से भलीभाँति परिचित है[8]। तुम (सब) आपस में एक हो[9], सो उनके मालिकों की आज्ञा से उनसे निकाह कर लिया करो[10] और उनके मह्र उन्हें दे दिया करो दस्तूर के अनुसार[11], इस प्रकार कि वह निकाह के बन्धन में लाई जाएँ न कि मस्ती निकालनेवालियाँ हों और न चोरी-छुपे आश्नाई करनेवालियाँ[12]। फिर जब वह कनीज़ें निकाह के बन्धन में आ जायें और फिर अगर वह (बड़ी) निर्लज्जता का अपराध करें तो उनके लिए उस दण्ड का आधा है[13] जो आज़ाद स्त्रियों के लिए है[14]। यह इसलिए है कि जो तुममें से बदकारी का अंदेशा रखता हो[15]। और यदि ज़ब्त से काम लो तो तुम्हारे हक़ में कहीं बेहतर है[16], और अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला है, बड़ा मेहरबान है[17]। (२५) ★ ★ रु. ४/१ आ ३

अल्लाह को मंज़ूर कि तुमसे (आदेशों) को खोलकर बयान कर दे और तुमको तुमसे पूर्ववालों के हालात बतला दे और तुम पर तवज्जुः फ़र्मायें[18], और अल्लाह बड़ा ज्ञानवाला है और बड़ा हिकमतवाला है[19]। (२६) और अल्लाह को मंज़ूर है कि तुम्हारे हाल पर तवज्जुः फ़र्माए[20], और जो लोग इच्छाओं के बन्दे हैं[21] उन्हें यह मंज़ूर है कि तुम बड़ी भारी कजी में (टेढ़े रास्ते पर) पड़ जाओ[22]। (२७) अल्लाह को मंज़ूर है कि तुम्हारे साथ कमी बरते, और मनुष्य तो कमज़ोर ही पैदा किया गया है[23]। (२८)

---

१ (शर्ई कनीज़ के रूप में) **"अिल्ला मा मलकत् अैमानुकुम्"**— यानी ऐसी ब्याहता स्त्रियाँ जो अब जिहाद के पश्चात् मुसलमानों की क़ैद में आ गई हैं, उनकी पत्नी बन सकती हैं बावजूद इसके कि उनके पति जीवित हों और शत्रु के इलाक़े में मौजूद हों। उनका वह निकाहें काफ़िराना दारुस्सलाम में उनके मुसलमानों की मिल्कीयत में जाने से बाधक नहीं हो सकता। शाब्दिक अर्थ हैं "वह, जिनके मालिक तुम्हारे दोनों हाथ हो जाएँ" मुराद है शर्ई कनीज़ें। **"अल्मुह्सनातु"**— एहसान के मानी हैं रोक में आ जाना, क़ैद में आ जाना। **"मुह्सनातु"** के मानी हुए क़ैद में आ जानेवालियाँ, यानी शादीशुदा स्त्रियाँ। निकाह को क़ैद बताने से इशारा यह निकला कि पत्नियाँ स्वयं अपनी लज्जा की संरक्षक हैं। आयत का अर्थ यह हुआ कि एक पति के होते हुए अब दूसरा निकाह हराम है। यह तो साधारण नियम हुआ। शर्ई कनीज़ें इससे मुस्तस्ना हैं। यह वह स्त्रियाँ हैं जो काफ़िर पतियों की पत्नियाँ थीं। अर्थात् हराम है निकाह अमुक-अमुक रिश्तेदार स्त्रियों से और हर उस स्त्री से जो किसी के निकाह में हो।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४४६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४४१ से)

२६५ (अतः जो ग़लतियाँ इस हुक्म के आने के पूर्व हो चुकीं उन पर वह पकड़ नहीं करता। उन पर वह क्षमा की लाइन खींच देता है।) क़ुर्आन मजीद ने यहाँ एक विस्तृत सूची देकर बता दिया कि इन स्त्रियों से बिलकुल या अमुक-अमुक स्थितियों में निकाह हराम है। और यह सूची क़ुर्आन मजीद की हराम की हुई चीज़ों की सूची की सम्पूर्णता के तर्कों में से एक बलशाली दलील है। वर्तमान इंजील और ख़ुदा जाने कितनी नामनिहाद आसमानी पुस्तकों में शिक्षा का यह पन्ना सादा ही छूट गया है और उनके माननेवाले इस विषय में स्पष्ट और साफ़ तौर शिक्षा से वंचित हैं। **"अुम्महातुकुम्"**— तुम्हारी माएँ और इसी प्रकार माँ की माएँ, दादियाँ और नानियाँ आदि। **"बनातुकुम्"**— तुम्हारी बेटियाँ और इसी प्रकार बेटियों की बेटियाँ, पोतियाँ तथा नवासियाँ आदि। **"अख़वातुकुम्"**— इसमें सगी के आलावा सौतेली बहिनें भी आ गईं। **"ख़ालातुकुम्"**— **"अम्मातुकुम्"**— इस सम्बन्ध में पिता की ओर पिता से ऊपर वालों की बहिनें आ गईं। **"बनातुल् अख़ि"**— यानी सगी और इसमें माता की और माता से ऊपर वालों की बहिनें आ गईं। **"बनातुल् अख़ि"**— यानी सगी और सौतेली भतीजियाँ। **"बनातुलअुख़्ति"**— यानी सगी और सौतेली भांजियाँ। **"अुम्महातुकुमुल्लाती अर्ज़अ्नकुम्"**— ख़याल करके देख लिया जाए कि क़ुर्आन मजीद दूधपिलाइयों को माँ के नाम से याद कर रहा है। क्या हद है हक़ के लिहाज़ की। **"अख़वातुकुम् मिनर्रज़ाअ़ति"**— दूध पिलाने के समय अगर विभिन्न हों, परन्तु दूध हो एक ही माँ का। **"अुम्महातु निसा'अिकुम्"** इसमें पत्नी की नानियाँ, परनानियाँ आदि सभी आ गईं, उनका हराम होना केवल निकाह से लाज़िम (अनिवार्य) आ जाता है। **"रबा'अि-बुकुम्"**— इसमें पत्नी की बेटियों के आलावा नातिनें भी आ गईं। **"फ़ी हुजूरिकुम्"**— शाब्दिक अर्थ हैं कि तुम्हारी गोदों में हों, आशय यह है कि तुम्हारी परवरिश में हों। यह केवल आम आदत का बयान है, कोई प्रतिबन्ध या शर्त नहीं। **"मिन् निसा'अिकुमुल्लाती दख़ल्तुम बिहिन्न"** यानी माँ से केवल निकाह उसकी पुत्री को हराम कर देने के लिए काफ़ी नहीं है। इसके लिए माँ से एकान्त होना आवश्यक है। **"दख़ल्तुम् बिहिन्न"** असल में इसका संकेत एकान्त होने की ओर है। परन्तु हनफ़ीया ने कामवासना के भावों के साथ छूना और चुम्बन आदि करने को भी इसी आदेश के अन्तर्गत माना है और इमाम शाफ़िई, इमाम मालिक आदि भी इसी मत के हैं। हनफ़ीया तथा मालिकीया ने वासना की दृष्टि से देखने को भी हराम कर देने के लिए कारण माना है। **"फ़ ला जुनाह अलैकुम्"** यानी ऐसी पत्नी की पुत्री से निकाह जाइज़ है जिसके साथ एकान्त न हुआ हो। **"मिन् अस्लाबिकुम्"**— सुल्ब या नस्ल का प्रतिबन्ध इसलिए लगा दिया गया कि गोद लिये हुए बेटों की पत्नियाँ इसमें सम्मिलित न हो जाएँ जैसा कि अरब जाहिलीयत में दस्तूर था। **"व अन् तज्मअ़ू बैनल-अुख़्तैनि"**— बहिनें चाहे सगी हों या सौतेली उनका निकाह में जमा करना हराम है। जिन आसमानी किताबों के पृष्ठ इन आवश्यक फ़िक़्ही निर्देशों से ख़ाली हैं वह स्वयं अपने स्थान पर न्याय करें कि क्या वह विश्वव्यापी और विश्व के धर्मों के स्रोत होने के कहाँ तक योग्य हैं।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४४५ से)

२ घरेलू व्यवस्था की ही दुरुस्ती पर सारे समाज के ढाँचे का सुधार निर्भर है और घरेलू व्यवस्था का सबसे अहम अंश यह है कि निकाह किस-किससे जाइज़ है और किसके साथ नाजाइज़। आवश्यक था कि इसके नियम क़ुर्आन मजीद ही में सुरक्षित कर दिये जाते। **"किताबल्लाहि अलैकुम्"**— बल देने तथा महत्त्व प्रकट करने के लिए है। **"अुहिल्ल लकुम् मा वरा'अ ज़ालिकुम्"**— हदीस तथा सुन्नत से जिन दूसरी स्त्रियों से निकाह का हराम होना सिद्ध है, जैसे सौतेली बहिनों के साथ या फूफी और भतीजी का एकत्र करना, या ख़ाला और भांजी का जमा करना, इशारों से तो यह सब भी क़ुर्आन मजीद की ऊपर की आयतों में आ गईं परन्तु हदीस ने उन्हें साफ़ करके बयान कर दिया है।

३ यानी व्यक्ति एवं समूह दोनों के निकट उद्देश्य यह है कि पति-पत्नी दोनों निकाह के बाद, पवित्र सूत्र में बँधकर पाक, साफ़ एवं स्वच्छ स्थायी जीवन व्यतीत करेंगे। और निकाह की शर्तें पूर्ण जानकारी में हैं जैसे पति-पत्नी दोनों की रज़ामन्दी की घोषणा कम-से-कम दो गवाहों के समक्ष या निकाह के बन्धन का सामयिक न होना इत्यादि। **"ग़ैर मुसाफ़िहीन"**— यानी इसका उद्देश्य पशुओं की भाँति एक भौतिक इच्छा-पूर्ति न हो, पत्नी के साथ स्थायी घरेलू जीवन, रहने-सहने, निबाह करने का इरादा और उसका सम्मान एवं स्नेह किसी दर्जे में तो होना चाहिए। **"तब्तग़ू बि अम्वालिकुम्"**— माल का अर्थ महर है या मिल्कीयत की क़ीमत। महर की बार-बार ताक़ीद से ज़ाहिर है कि इस्लामी शरीअत को महिलाओं के अधिकारों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कितना खयाल है। खर्चा निकाह दोनों में साझेदारी में रहता है, अन्तर केवल यह है कि निकाह से जीवन मनुष्यों की भाँति प्रतिबन्धित एवं पाबन्द हो जाता है और सिफ़ाह अर्थात् मस्ती निकालने में मनुष्य पशुओं की भाँति बे-लगाम छूटा हुआ रहता है। **'तब्तग़ू'**-- **'बग़ी'** के मानी तलाश करने या माँग करने के हैं और हुक्म का सम्बोधन पुरुषों से है गोया निकाह के लिए माँग करना या अंग्रेज़ी में Propose करना पुरुष का काम है, स्त्री का काम केवल स्वीकार करना या स्वीकृति देना है। नर एवं मादा के बीच यह कर्ता और क्रिया का अन्तर जीवन के हर विभाग में छाया हुआ है और उसे घेरे हुए हैं।

४ यानी महूर की संख्या ऐसी वस्तु नहीं जो एक मर्तबा बँध जाने के बाद फिर किसी प्रकार परिवर्तन-शील न हो। मियाँ-बीवी परस्पर रज़ामन्दी से उसे घटा-बढ़ा सकते हैं या बिलकुल क्षमा कर सकते हैं। **''फ़ मस्तम्तऽतुम्''**— अर्थात् उन स्त्रियों के मिलन से आनन्द लिया है, मज़ा लिया है। **'अजर'** से मुराद महूर। **''इस्तिम्ताअ''** का अर्थ है निकाही स्त्रियों से मज़ा उठाना तो ज़ाहिर ही है और इसमें कोई मत-भेद नहीं है, परन्तु इसी शब्द के मातहत एक विरोधी बहस **''मुतअ''** की भी छिड़ गई है और प्रश्न यह उठा है कि आया इससे मुराद मुताई पत्नियाँ भी हो सकती हैं या नहीं ? अहले सुन्नत के मत में **'मुतअ'** निकाह की कोई शर्ई क़िस्म नहीं है और इसलिए यह अमल बिलकुल नाजाइज़ है, अल्बत्ता फ़िक़ह इमामिया में जाइज़ है और कुछ बहुत पुराने लोगों में इसके समर्थन करनेवाले मिल जाते हैं। **'मुतअ'** एक प्रकार का अस्थायी निकाह है। पुरुष-स्त्री को अपनी पत्नी इस शर्त के साथ बनाता है कि अमुक रक़म के बदले में अमुक मुद्दत में यह सम्बन्ध स्वयं समाप्त हो जायेगा। न इसके लिए तलाक़ की आवश्यकता होगी और न कोई विरासत का हक़ स्थापित हो सकेगा। सही मुस्लिम में एक लम्बी हदीस सीरत बिन मुईद जहनी से नक़्ल हुई है जिसके अन्त में हुज़ूर (स०) का यह इर्शाद मौजूद है। ऐ लोगो ! मैंने तुम्हें आज्ञा दे रखी थी स्त्रियों से मुतअ कर लेने की, परन्तु अब अल्लाह तआला ने उसे क़ियामत तक के लिए हराम कर दिया है सो जिस किसी का अमल इस पर हो वह अब इससे बाज़ आ जाए और जो कुछ तुमने उन स्त्रियों को दे रखा है वह उनसे वापस न लो। दूसरी हदीसें भी बुखारी, मुस्लिम, निसाई इत्यादि में नक़्ल हुई हैं। उनका भी सारांश यही है कि मुतअ हराम है। तारीखी रिवायतों और हदीसों से ऐसा मालूम होता कि युद्ध या लम्बी यात्रा के अवसर पर 'अक़्दें मवक़्क़त' या अस्थायी निकाह की यह सूरत बिन बियाहे सिपाहियों के लिए आवश्यकता-नुसार और मस्लहतन् एक बार या चन्द मर्तबा जाइज़ कर दिया गया था और बाज़ सहाबा इसी विचार में एक समय तक रहे अन्यथा स्थायी रूप से वही आदेश जाइज़ न होने का ही है। इब्ने मसऊद, एक बड़े सहाबी की यह रिवायत 'बुखारी' तथा 'मुस्लिम' दोनों में नक़्ल हुई है। ''हम लोग रसूलुल्लाह (सल्लअम) के साथ जिहाद में थे और पत्नियाँ हमारे साथ नहीं थीं, तो हम लोगों ने कहा कि क्या अपने को हम अख़्ता (बधिया) कर डालें ? तो रसूल (स०) ने हमको इससे रोका फिर हमारे लिए 'मुतअ' की आज्ञा दे दी।'' और यह रिवायत भी मुस्लमा बिन उकूअ के हवाले से सहीहैन में नक़्ल हुई है— ''रसूलुल्लाह (स०) ने औतास की लड़ाई के वर्ष मुतअ की आज्ञा तीन बार दे दी थी, परन्तु उसके बाद मनाही कर दी थी।'' और सहीहैन ने और बाज़ सुन्नत वालों ने हज़रत अली (रज़ि०) से यह रिवायत नक़्ल की है— ''कि आपने हज़रत इब्ने अब्बास से फ़र्माया कि रसूल (स०) ने खैबर की लड़ाई के अवसर पर मुतअ की मनाही कर दी।'' चुनांचे अब इमामिया फ़िर्क़े के अतिरिक्त, सबकी सहमति इसके हराम होने पर है।

५ **'अलीम'** और **'हकीम'**— अल्लाह की यह सिफ़तें (गुण) क़ानूनी आदेशों के अवसरों पर अक्सर बयान हुई हैं। यहाँ भी उन्हें लाकर यह याद दिला दिया कि अल्लाह का ज्ञान सम्पूर्ण भी है और बन्दों की आवश्यकताओं और मस्लहतों पर हावी भी है और इसी कामिल ज्ञान और हावी इल्म से उसने नियम और क़ानून भी हकीमाना नियत किये हैं। कोई मनुष्य मानव सभ्यता के किस दौर में अपनी मूर्खता से यह अहम् न कर बैठे कि मैं अल्लाह की शरीअत के किसी अंश में कोई उचित संशोधन अपनी राय से कर सकता हूँ। हज़रत इब्ने अब्बास से तफ़्सीर यह वर्णित है कि वह ज्ञाता ऐसा है कि हमारी विवशता पर दृष्टि करके उसने मुतअ को हलाल कर दिया था और हकीम ऐसा कि अपनी हिकमतें कामिला के तक़ाज़े से उसे हराम भी क़रार दे दिया।

६ यानी आज़ाद शरीफ़ पत्नियों का महूर, खाना, कपड़ा आदि पूरी तरह अदा करने के योग्य न हो। **''अल्मुह्सनात''**— से यहाँ अर्थ है शरीफ़ पत्नियाँ जो आज़ाद हों। **''तौल''**— के मानी है क्षमता, हैसियत, स्थिति।

७ (और कनीज़ को पत्नी बना लेने में बेइज़्ज़ती न अनुभव करे।) यह सलाह इस मस्लहत से दी गई है कि बाँदी का महूर, खाना, कपड़ा इत्यादि आज़ाद की अपेक्षा हलका होता है। और यह भी है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि उनके मालिक उन्हें ग़रीब पतियों के निकाह में दे देने में शर्म न महसूस करेंगे। "फ़तयातिकुम्"-- 'फ़तात' का शब्द जब बाँदियों के लिए प्रयोग होता है तो इसमें जवान आयु का प्रतिबन्ध बाक़ी नहीं रहता, बूढ़ी, जवान, हर सिन एवं साल की बाँदियाँ 'फ़तयात' ही कही जायेंगी। "फ़तयातिकुमुल्-मुअ्मिनाति"-- हनफ़ीया के यहाँ कनीज़े किताबिया से भी निकाह जाइज़ है और आयत में मोमिनात का प्रतिबन्ध केवल मुस्तहब है।

८ (और ईमान ही फ़ज़ीलत का मेयार और दारोमदार है।) फिर कोई आज़ाद आवश्यकतानुसार किसी बाँदी से निकाह करने में लज्जा का अनुभव क्यों करें। फ़क़ीह तफ़्सीर करनेवालों ने आयत से प्रत्यक्ष ईमान के स्वीकार करने पर तर्क किया है साथ ही इस पर कि ईमान दिल से तस्दीक़ करने का नाम है न कि केवल ज़बानी इक़्रार करने का।

९ (चाहे आज़ाद हो चाहे ग़ुलाम मुसलमान होने की हैसियत से भी और आदम की सन्तान होने के लिहाज़ से भी।) अरब समाज में बाँदी से शादी करना बेइज़्ज़ती की बात मानी जाती थी, क्योंकि उनसे जो सन्तान होगी वह कनीज़ की सन्तान कहलायेगी। क़ुर्आन मजीद इस बाधा को मिटा रहा है और बता रहा है कि आवश्यकतानुसार इसमें ज़िल्लत न महसूस करना चाहिए।

१० केवल निकाह मिल्कीयत को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है, इसलिए मालिक की आज्ञा भी हर हाल में आवश्यक है। "ला हुन्न"-- अह्ल से इस सन्दर्भ में मुराद मालिक या मौला है। परन्तु स्वयं मौला से मुराद उससे ली गई है जो पति बनने या पत्नी बनने की इजाज़त देने का अधिकारी हो, चाहे मालिक हो या न हो। बहरहाल निकाह में रज़ामन्दी बाँदियों की विश्वसनीय होगी न कि उनके मालिकों की।

११ (और उनके कनीज़ होने के कारण मह्र की अदायगी को ग़ैरअहम या अनावश्यक न समझो।) फ़क़ीह तफ़्सीर करनेवालों ने लिखा है कि चूँकि मालिक अपनी बाँदियों की कमाई के मालिक होते थे इसलिए बाँदियों का मह्र भी उनके मालिकों को ही दिया जायेगा।

१२ यानी यह मह्र की अदायगी निकाह का मुआवज़ा हो, ज़नाना मज़दूरी न हो। आज़ाद शरीफ़ पत्नियों की अपेक्षा बाहर निकलनेवालियों को बदचलनी की सम्भावनाएँ यूँ भी अधिक होती हैं, न कि बाँदियाँ, जो स्थिति से ही कम दर्जे की और असम्मानित समझी जाती हैं, अतः उनके विषय में इन प्रतिबन्धों का वर्णन से विस्तार से करना आवश्यक हुआ। 'मुसाफ़िहातिन्"-- से मुराद खुली हुई और आम कसबियाँ और "मुत्तख़िज़ाति अख़्दानिन्" से मुराद हैं वह जिनका कोई एक-आध नियत आशना होता था। बदचलनी की दुनिया में वेश्याओं की दो क़िस्में लगभग हर स्थान पर क़ायम रही हैं। एक खुली हुई कसबियाँ, दूसरे छुपी हुई घरेलू वेश्याएँ। यही अन्तर जाहिलीयत के समय में भी उस सभ्यता एवं समाज में था।

१३ (जैसा कि निकाह के पूर्व भी था) बाँदियाँ चाहे कुँआरी हों या निकाही उनकी सज़ा बलात्कार की दशा में आज़ाद कुँआरी शरीफ़ स्त्रियों की सज़ा की आधी है। बाँदियाँ जिस प्रकार बहुधा अधिकारों में पत्नियों का आधा दर्जा रखती हैं, उसी प्रकार उनके अपराध की सज़ा भी उनके लिए आधी ही रखी गई है। सम्भवतः इसलिए कि अपराध का चाव दिलाने के अवसर उनके लिए अधिक हैं और रोक कम। बि फ़ाहिशतिन्"-- बेहयाई का अपराध यहाँ बलात्कार करने के मानी में है। "मिनलअज़ाबि"-- सज़ा से अर्थ यहाँ शरई हद है। "अलल् मुह्सनाति"-- यहाँ मुराद है बिना बियाही शरीफ़ स्त्रियाँ। एक आयत ऊपर "अय्यन किहल्मुह्सनाति"-- के अन्तर्गत "मुह्सनात" बिलकुल शरीफ़ स्त्रियों के अर्थ में आ चुका है।

१४ यानी बाँदी के बलात्कार की सज़ा ५० कोड़े हैं और शरीफ़ कुँआरी स्त्री की ज़िनाकारी की सज़ा सौ कोड़े हैं। इसके आधे पचास ही कोड़े होते हैं। शरीफ़ निकाही स्त्री के लिए पत्थरों से मारकर समाप्त कर देने की सज़ा है जिसका आधा हो ही नहीं सकता कि जो दूसरे की मिल्कीयत है उसकी सज़ा से तो हर हालत में वही पचास कोड़े हैं। ग़ुलामों की हरामकारी की सज़ा क़ुर्आन मजीद में वर्णित नहीं है। फ़क़ीहों ने इसी आयत से यही निष्कर्ष निकाला है कि उनकी सज़ा यही पचास कोड़े रखी है। आज के बाज़ नये पैदा फ़िर्क़ों के अलावा पुराने ज़माने के ख़ारिजियों का फ़िर्क़ः पत्थर मारने की सज़ा का बिलकुल इन्कारी रहा है और उसके सुबूत में यह आयत आई है।

१५ (चाहे उसके लिए मन का प्राकृतिक तक़ाज़ा विवश कर रहा हो। चाहे उसके लिए शरीफ़ पत्नी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध न हो रही हो।) **"जालिक"**— यानी बाँदी से निकाह। **"अल्-अनत"**— 'अनत' के शाब्दिक अर्थ हानि और नुक़सान के हैं। यहाँ मुराद है बलात्कार में पड़ जाना, क्योंकि उससे बढ़कर और कौन सी हानि मुसलमान के लिए हो सकता है। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि वह सख़्त बरदाश्त जिससे मनुष्य जिस्मानी बीमारियों में फँस जाए जैसे गर्भ की बीमारी हो जाए या पुरुषों को पीठ में सूजन की बीमारी। इमाम राज़ी, जो अपने ज़माने के नामी हकीम भी थे, इस बात को यूँ कहते हैं (जो ऊपर बयान हुआ)।

१६ यानी अगर अन्तरात्मा की इच्छा इतनी अधिक नहीं है जिससे हरामकारी में पड़ जाने की भारी सम्भावना एवं भय हो रहा हो तो फिर कनीज़ों से निकाह करने से यही बेहतर है कि स्वयं अपनी वासना पर क़ाबू पा लिया जाए।

१७ चुनांचे उसकी रहम और दया करने की सिफ़त इसी से ज़ाहिर है कि ऐसे निकाहों के हराम होने का आदेश नहीं दिया और माफ़ करने की शान यह है कि कनीज़ों से बिना सख़्त ज़रूरत के निकाह कर लेना, हलकी कराहियत के होते हुए भी मोक्ष की राह में रुकावट किसी प्रकार नहीं।

१८ (दया और क्षमा के साथ।) **"लि युबय्यिन लकुम्"**— चुनांचे आदेशों और मसलों की आयतें वह तुम्हारी ही भलाई और बेहतरी के विचार से उतारता है।

१६ चुनांचे बन्दों की कोई भी आवश्यकता और मस्लहत उसके सम्पूर्ण ज्ञान सीमा से बाहर नहीं और अपनी सम्पूर्ण हिकमत से उसने ऐसे आदेश रखे हैं जो हर मस्लहत का पूरा-पूरा खयाल रखनेवाले हैं।

२० (स्नेह और दया के साथ उन्हीं आदेशों और शिक्षाओं के द्वारा।)

२१ (और वासना को ही अपना धर्म बनाये हुए हैं।) यह कौन लोग हैं ? शब्दों से तो ऐसे लोग कुफ़्फ़ार तो ज़ाहिर ही हो रहे हैं, परन्तु बदचलन लोग भी इसी में आ जाते हैं। सहाबा और ताबिईन ने इसका अर्थ "अह्ले किताब" भी लिया है। यहूद भी और बलात्कारी लोग भी। निर्णायक बात यह है कि जो लोग भी दिलेरी से नाफ़र्मानी करते हैं वही वासना के बन्दे हैं और यह शब्द इन सारे अर्थों पर हावी हैं।

२२ (और सीधे रास्ते से हटकर उन्हीं जैसे हो जाओ।) **"मैलन् अज़ीमन्"**— इससे बढ़कर टेढ़ापन और क्या होगा कि मनुष्य हराम को हराम समझने ही से इन्कार कर दे और या बिना भय के हरामकारी करता रहे।

२३ (कमज़ोर इरादे के लिहाज़ से भी और जिस्म के लिहाज़ से भी।) **"अंय्युख़फ़्फ़िफ़ अन्कुम्"**— चुनांचे शरीअत के सारे आदेशों में मनुष्य की आसानियों का खयाल रखा गया है। **"ख़ुलिक़ल्-इन्सानु ज़ईफ़न्"**— चुनांचे जितने भी शरई आदेश हैं, वह मनुष्य के कमज़ोर जिस्म और कमज़ोर इरादों का पूरा लिहाज़ रखते हुए आये हैं।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४५१ से)

मौन धारण कर लिया। बाज़ धर्मों में आत्महत्या को एक इबादत के रूप में रखा है जैसे कि जापानियों में या बाज़ पुराने हिन्दू धर्मों में। एक रूप उसका स्वयं सती भी है।

२७ यह चेतावनी उन लोगों के लिए है जो इत्तिफ़ाक़ी तौर पर अल्लाह के आदेशों की अवहेलना नहीं करते, बल्कि जान-बूझकर ऐसा करते रहते हैं।

२८ **"अुद्वानन्"**— यानी शरई सीमाओं को तोड़ते हुए या दूसरों के साथ अत्याचार करते हुए। **"कान ज़ालिक अलल्लाहि यसीरन्"**— अल्लाह की असीमित एवं बे-अन्दाज़ा शक्ति को यह देवताओं की पूजा करनेवाले मुश्रिक कहीं मनुष्यों एवं देवताओं की सीमित शक्ति से विचार और अन्दाज़ा न करें।

२६ (और इसके परिणामस्वरूप तुम्हें अज़ाब से बचा लेंगे।) यह क़ानूने इलाही है जिसको क़ुर्आन में बार-बार दोहराया गया है और एक स्थान पर उसे पूरी तरह से और साधारण रूप में यूँ बयान किया गया है। **"अिन्नलह्सनाति युज़्हिब्नस्सय्यिहाति"**— इस प्रकार की आयतों से साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि औलिया और बड़े संयमित लोगों में भी कोई मासूम नहीं होता (मासूम— जो गुनाह कर ही नहीं सकता)। अल्लाह तआला उनकी इबादतों की बहुतायत पर ध्यान फ़र्माकर अपनी रहमत से उनकी त्रुटियों

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४५२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या' अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तअ्कुलू' अम्वालकुम् बैनकुम् बिल्बातिलि अिल्ला'
अन् तकून तिजारतन् अन् तराज़िम्-मिन्कुम् क़िफ़ व ला तक़्तुलू' अन्फ़ुसकुम् त
अिन्नल्लाह कान बिकुम् रह़ीमन् (२९) व मंय्यफ़्अल् ज़ालिक अुद्वानंव्व ज़ुल्मन्
फ़ सौफ़ नुस़्लीहि नारन् त व कान ज़ालिक अलल्लाहि यसीरन् (३०) अिन् तज्तनिबू
कबा'अिर मा तुन्हौन अन्हु नुकफ़्फ़िर् अन्कुम्
सय्यिआतिकुम् व नुद्ख़िल्कुम् मुद्ख़लन् करीमन्
(३१) व ला ततमन्नौ मा फ़ज़्ज़लल्लाहु
बिही बअ्ज़कुम् अला बअ्ज़िन् त लिर्रिजालि
नसीबुम् - मिम्मक्तसबू त व लिन्निसा'अि
नसीबुम्-मिम्मक्तसब्न त वस्अलुल्लाह मिन्
फ़ज़्लिही त अिन्नल्लाह कान बि कुल्लि शैअिन्
अलीमन् (३२) व लि कुल्लिन् जअल्ना
मवालिय मिम्मा तरकल् - वालिदानि वल्-
अक़्रबून त वल्लज़ीन अक़दत् अैमानुकुम् फ़ आतू-
हुम् नसीबहुम् त अिन्नल्लाह कान अला कुल्लि
शैअिन् शहीदन् (३३) ★ अर्रिजालु क़व्वामून
अलन्निसा'अि बिमा फ़ज़्ज़लल्लाहु बअ्ज़हुम् अला
बअ्ज़िंव्व बिमा' अन्फ़क़ू मिन् अम्वालिहिम् त

والمحصنٰت ٥ ٦٦ النسآء ٤

لَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيْمًا ﴿٢٩﴾ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ
عُدْوَانًا وَّظُلْمًا فَسَوْفَ نُصْلِيْهِ نَارًا ۭ وَكَانَ ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ
يَسِيْرًا ﴿٣٠﴾ اِنْ تَجْتَنِبُوْا كَبَاۗىِٕرَ مَا تُنْهَوْنَ عَنْهُ نُكَفِّرْ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ
وَنُدْخِلْكُمْ مُّدْخَلًا كَرِيْمًا ﴿٣١﴾ وَلَا تَتَمَنَّوْا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ
بَعْضَكُمْ عَلٰي بَعْضٍ ۭ لِلرِّجَالِ نَصِيْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبُوْا ۭ وَلِلنِّسَاۗءِ
نَصِيْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبْنَ ۭ وَسْـَٔـلُوا اللّٰهَ مِنْ فَضْلِهٖ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُلِّ
شَيْءٍ عَلِيْمًا ﴿٣٢﴾ وَلِكُلٍّ جَعَلْنَا مَوَالِيَ مِمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَ
الْاَقْرَبُوْنَ ۭ وَالَّذِيْنَ عَقَدَتْ اَيْمَانُكُمْ فَاٰتُوْھُمْ نَصِيْبَھُمْ ۭ اِنَّ
اللّٰهَ كَانَ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدًا ﴿٣٣﴾ اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَي النِّسَاۗءِ
بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَھُمْ عَلٰي بَعْضٍ وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ۭ
فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ ۭ وَالّٰتِيْ
تَخَافُوْنَ نُشُوْزَھُنَّ فَعِظُوْھُنَّ وَاهْجُرُوْھُنَّ فِي الْمَضَاجِعِ
وَاضْرِبُوْھُنَّ ۚ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا ۭ اِنَّ اللّٰهَ
كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا ﴿٣٤﴾ وَاِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوْا حَكَمًا
مِّنْ اَھْلِهٖ وَحَكَمًا مِّنْ اَھْلِھَا ۚ اِنْ يُّرِيْدَآ اِصْلَاحًا يُّوَفِّقِ اللّٰهُ
بَيْنَهُمَا ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا خَبِيْرًا ﴿٣٥﴾ وَاعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا
بِهٖ شَـيْـــًٔـا وَّبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّبِذِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ

ع٥

منزل ١

फ़स्सालिह़ातु क़ानितातुन् ह़ाफ़िज़ातुल् - लिल्ग़ैबि बिमा ह़फ़िज़ल्लाहु त वल्लाती
तख़ाफ़ून नुशूज़हुन्न फ़ अिज़ूहुन्न वह्जुरूहुन्न फ़िल्मज़ाजिअि वज़्रिबूहुन्न ज फ़ अिन्
अतअ्नकुम् फ़ला तब्ग़ू अलैहिन्न सबीलन् त अिन्नल्लाह कान अलिय्यन् कबीरन् (३४)
व अिन् ख़िफ़्तुम् शिक़ाक़ बैनिहिमा फ़ब्असू ह़कमम्-मिन् अह्लिही व ह़कमम्-
मिन् अह्लिहा ज अिंय्युरीदा' अिस्लाह़ंय्युवफ़्फ़िक़िल्लाहु बैनहुमा त अिन्नल्लाह
कान अलीमन् ख़बीरन् (३५) वअ्बुदुल्लाह व ला तुश्रिकू बिही शैअंव्व बिल्-
वालिदैनि अिह़्सानंव्व बि ज़िल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनि वल्जारि ज़िल्क़ुर्बा
वल्जारिल् - जुनुबि वस्साह़िबि बिल्जम्बि वब्निस्सबीलि ला व मा मलकत्
नि'
अैमानुकुम् त अिन्नल्लाह ला युह़िब्बु मन् कान मुख़्तालन् फ़ख़ूरन् ला (३६)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐ ईमानवालो ! आपस में एक-दूसरे का माल अनायास रूप से न खाओ[२४], हाँ ! अल्बत्ता कोई व्यापार आपसी रज़ामन्दी से हो[२५], और अपनी जानों की हत्या न करो[२६]। बेशक अल्लाह तुम्हारे हक़ में बड़ा मेहरबान है[२७]। (२९) और जो कोई ऐसा करेगा सरकशी और ज़ुल्म की राह से तो उसको हम शीघ्र ही आग में डालेंगे और यह अल्लाह के लिए आसान है[२८]। (३०) अगर तुम उन बुरे कामों से, जो तुम्हें मना किये गये हैं, बचते रहे तो हम तुमसे तुम्हारी साधारण बुराइयाँ दूर कर देंगे[२९] और तुम्हें एक सम्मानजनक स्थान पर दाख़िल कर देंगे[३०]। (३१) और तुम ऐसी बात की इच्छा न किया करो जिसमें अल्लाह ने तुममें से एक को दूसरे पर बड़ाई दे रखी है[३१]। पुरुषों के लिए उनके आमाल का हिस्सा (साबित) है और स्त्रियों के लिए उनके आमाल का हिस्सा (साबित) है[३२], और अल्लाह से उसकी दया की माँग करो[३३]। बेशक अल्लाह हर चीज़ को ख़ूब जानता है[३४]। (३२) और जो माल माँ-बाप और निकट सम्बन्धी छोड़ जाएँ, उसके लिए हमने वारिस ठहरा दिये हैं[३५], और जिन लोगों से तुम्हारे अहद (वादे) बँधे हुए हैं, उन्हें उनका हिस्सा दे दो[३६]। बेशक अल्लाह हर चीज़ से परिचित है। (३३) ★ ★ रु. ५/२ आ ८

पुरुष स्त्रियों के सिरधरे हैं[३७], क्योंकि अल्लाह ने उनमें से एक-दूसरे पर बड़ाई दे रखी है[३८] और इसलिए कि पुरुषों ने अपना माल ख़र्च किया है[३९]। सो नेक बीवियाँ आज्ञा माननेवाली और पीठ-पीछे अल्लाह की सुरक्षा से सुरक्षा करनेवाली होती हैं[४०]। और स्त्रियाँ ऐसी हों कि तुम उनकी उद्दण्डता का ज्ञान रखते हो[४१] तो उन्हें नसीहत करो[४२]। और उन्हें सोने के कमरों में अकेला छोड़ दो[४३] और उन्हें मारो[४४], फिर अगर वह तुम्हारा कहना मानने लगें तो उनके विरुद्ध बहाने न ढूँढ़ो[४५], बेशक अल्लाह बड़ी बलन्दी वाला, बड़ी ही महानता वाला है[४६]। (३४) और अगर तुम्हें दोनों के बीच खींचतान का ज्ञान हो[४७] तो तुम एक मध्यस्थ पुरुष के परिवार से और एक मध्यस्थ स्त्री के परिवार से नियत कर दो[४८]। यदि दोनों की नीयत स्थिति के सुधार की होगी तो अल्लाह दोनों के मध्य में सन्धि उत्पन्न कर देगा[४९], बेशक अल्लाह बड़ा ही जानकारी रखनेवाला है हर प्रकार से ख़बर रखनेवाला है[५०]। (३५) और सुन्दर अल्लाह की इबादत करो और किसी चीज़ को उसका साझीदार न करो[५१]। और सुन्दर व्योहार (रखो) माता-पिता के साथ और सगे सम्बन्धियों के साथ और यतीमों और ग़रीबों और पासवाले पड़ोसी और दूर वाले पड़ोसी और साथ बैठनेवालों और मुसाफ़िरों के साथ और जो तुम्हारी मिल्कीयत में हैं उनके साथ[५२]। क़तई अल्लाह ऐसों को दोस्त नहीं रखता जो स्वयं को बड़ा समझते हैं और घमण्डी हैं[५३]। (३६)

---

२४ यानी शरअ़ के खिलाफ़ तरीक़ों से। ख़ियानत और बेईमानी की समस्त सूरतों पर प्रतिबन्ध इस एक आदेश के अन्दर आ गया। यदि इस्लाम के एक इसी नियम पर अमल हो तो आज दुनिया की काया पलट हो जाए।

२५ अर्थ यह हुआ कि दूसरे के माल में से ख़र्च करना, किसी ग़लत तरीक़े यानी सूद-ब्याज, जुआ इत्यादि से तो सरे से मना है ही, केवल जाइज़ तरीक़ों से एक-दूसरे की रज़ामन्दी से व्यय कर सकते हैं जैसे कि मुश्तरक धन से तिजारत करना एक उचित विधि है और बरकत का कारण है।

२६ "अन्फ़ुसकुम"— के मानी यह लिये गये हैं कि एक-दूसरे को हताहत न करो। दूसरा अर्थ यह है कि आत्महत्या न करो। मुसनद अबू दाऊद और मुसनद अहमद दोनों में सहाबी अम्रव बिन अल्आस से रिवायत नक़्ल हुई है कि हालतें सफ़र में सर्दी की एक रात में उन्हें स्नान की आवश्यकता हो गई परन्तु सर्दी के मारे स्नान के स्थान पर उन्होंने केवल तयम्मुम् से काम लिया और उसी से अपने साथियों को नमाज़ पढ़ा दी। उसके बाद जब हुज़ूर (स०) का सामना हुआ और आपने इमामतें नमाज़ बिना स्नान पर जवाब-तलब किया तो उसी सख़्त सर्दी का उज़्र पेश करके यही आयत पढ़ दी। इस पर हुज़ूर (स०) ने मुस्कराकर

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४४६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४४६ से)

और खताओं को माफ़ कर देता है और उन्हें उच्च से उच्च दर्जों पर पहुँचा देता है। नबियों की पवित्रता का मसला एक दूसरे क़ानून से साबित है। **"कबा'अिर मा तुन्हौन अन्हु"— 'कबा'अिर'** यानी बड़े-बड़े गुनाह परन्तु स्वयं कबीरा किन कार्यों पर लागू होता है? इसके बहुत से उत्तर दिये गये हैं। सुफ़यान सूरी ताबिई का क़ौल नक़्ल हुआ है कि कबीरा नाम है बन्दों के अधिकारों के मारे जाने का और सग़ीरा केवल अल्लाह के हक़ों को बरबाद करना है। और हसन बिन फ़ज़ल का कथन है कि कबीरा वह अमल है जिस पर क़ुर्आन मजीद ने कबीर या अज़ीम लागू किया हो। यह कथन भी नक़्ल हुआ है कि कबीरा वह गुनाह है जिसे हलाल मानकर किया गया हो जैसे इब्लीस का सज्दे से इन्कार और सग़ीरा वह गुनाह है जिस पर तौबा की गई हो, जैसे आदम (अलै०) की शर्मिन्दगी मनाही वाले वृक्ष के फल खा लेने के बाद। इस पर मुझ नाचीज़ का विचार है कि कबीरा वह अमल है जिसकी मनाही स्पष्ट रूप से क़ुर्आन मजीद में आ चुकी हो और उसका गुनाह होना किसी गहरी तहक़ीक़ या तर्क का मुहताज न हो या कम-से-कम यह कि हदीस सही में स्पष्ट रूप से बल देकर उसकी मनाही आ चुकी हो। सम्मानित सहाबियों का ऐसा ही विचार है। और हज़रत अली ही की तफ़्सीर इब्ने जरीर ने अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास (रज़ि०) से भी नक़्ल की है। **"सय्यिआतिकुम्"— 'सय्यिआत'** का अर्थ है छोटी बुराइयाँ या गुनाहें सग़ीरा। सुद्दी ताबिई से नक़्ल है कि कबीरा वह गुनाह है जिससे अल्लाह ने रोका है और 'सय्यिआत' उस गुनाह के मुक़द्दमात हैं। एक क़ौल यह भी नक़्ल हुआ है कि कबीरा नाम है शिर्क और उसके मुक़द्दमात का और शेष जो गुनाह हैं वह 'सय्यिआत' हैं। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि कबीरा पर सज़ा के साथ मेहरबानी की सम्भावना और सग़ीरा पर क्षमा के साथ-साथ सज़ा की सम्भावना विशेषकर अहले सुन्नत का मत है। मोतज़िला के विपरीत जिनके निकट सग़ीरा अवश्य माफ़ हो जायेंगे और कबीरा माफ़ न होंगे।

३० यानी जन्नत में पहला वादा अज़ाब से सुरक्षित रखने का था अब शुभ सूचना जन्नत में प्रवेश करने की मिल रही है। यह बशारत अच्छी तरह विचार कर लें कि मासूमों को नहीं बल्कि उन लोगों को मिल रही है जो सय्यिआत वाले हैं और गुनाहों के बावजूद क्षमा किये गये।

३१ (यानी स्वयं अपने-आपसे जिसमें किसी अमल या प्रयास का दखल नहीं है।) जैसे पुरुषों को महिलाओं पर एक प्राकृतिक बड़ाई प्राप्त है या फिर पुरुषों ही में कोई धनवान है, कोई सुन्दर और सुशील है, कोई अच्छे स्वर वाला है, किसी के हाथ-पैर बड़े मज़बूत हैं। ऐसी बड़ाइयों को अल्लाह से निकटता का सम्बन्ध नहीं है। आयत में शिक्षा यह है कि इस प्रकार की बड़ाइयों या ख़ूबियों के कारण एक-दूसरे से जलन या हिसका न करो। जहाँ तक अल्लाह की निकटता का सम्बन्ध है, उसमें अमल और इबादत को दखल है। शाने नुज़ूल (यानी जब आयत उतरी उसके सन्दर्भ) की रिवायतों में आया है कि कुछ स्त्रियों ने अपने को कम आँकने के आधार पर पुरुषों पर रश्क (हिसका) प्रकट किया था। उसके उत्तर में यह आयत उतरी। और बताया गया कि नजात एवं माफ़ी और अल्लाह की नज़दीकी का दारोमदार तो अपने आमाल इरादे और इख़्तियार पर है और इस लिहाज़ से स्त्री एवं पुरुषों की हैसियत एक प्रकार है। स्त्रियों के लिए भी अच्छे आमाल का क़ानून वही है जो पुरुषों के लिए है, अतः उन्हें पुरुषों पर रश्क करने का कोई अवसर नहीं है। यह प्राकृतिक अन्तर तो केवल सृष्टि के नियमों के कारण रख दिये गये हैं।

३२ (यह न होगा कि पुरुष का अज्र या बदला और फल उसके पुरुष होने के कारण अधिक हो और स्त्री का उसके स्त्री होने के कारण घट जाए।) पुरुष मर्द होने ही के नाते कदापि अल्लाह के नज़दीक नजात का ज़्यादा हक़दार नहीं है और स्त्री अपने स्त्री होने के कारण कदापि किसी अज्र और अल्लाह की नज़दीकी से वञ्चित न होगी, जैसा कि बाज़ दूसरे धर्मों ने नियत कर रखा है। उसमें स्त्री के लिए यह शिक्षा है कि वह अपने को कम न समझे और समझ ले कि ख़ुदा की एक मख़्लूक़ होने की हैसियत से वह और पुरुष एक ही स्तर पर हैं और नजात-प्राप्ति और ख़ुदा की नज़दीकी को पा लेने में वह पुरुषों से कमतर और हलकी नहीं हैं। हिन्दुओं ने अपनी मनुस्मृति के पन्नों में और कैथोलिक कलीसा ने सदियों तक अपनी कौंसिलों में जो फ़ैसले स्त्री को नीचा रखने और उसके हौसिलों को दबाने के किये हैं, यह आयत उन सबका खण्डन कर रही है। **"मिम्मक्तसबू मिम्मक्तसबन्"— 'इक्तिसाब'** से मुराद दोनों स्थानों पर अच्छे अमल करना है।

३३ (आमाल के करने की स्वेच्छा) रश्क और तमन्ना करने के क़ाबिल और दुआओं में माँगने योग्य अस्ल वस्तु प्राकृतिक और ख़ुदा की ओर से स्वयं प्राप्त नेमतें नहीं हैं बल्कि अच्छे अमल करने की इच्छा होने की माँग है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३४ (चुनांचे अपने सम्पूर्ण ज्ञान और इल्म के अनुसार उसने हर मख़्लूक़ की क्षमता और गुण प्रदान किया है और वही हर एक के अमल के खाते से पूरी तरह जानकारी भी रखता है।) इस्लाम का खुदा आंशिक एवं पूर्ण हर वस्तु का ज्ञानी है, बाज यूनानी फ़लसफ़ियों के विपरीत जिन्होंने ख़ुदा को केवल पूर्ण वस्तु का ही ज्ञानी माना है।

३५ (विरासत के विधान के द्वारा) वारिसों का विवरण इसी सूरत में चन्द रुकूअ़ के पहले दिया जा चुका है। तरिके की तक़्सीम की कुछ अस्थायी सूरतें इस्लाम के आरम्भ में ही बता दी गई थीं। वह सम्पूर्ण विरासत विधान के अवतरित होने के पश्चात् अब स्वाभाविक रूप में मन्सूख हो गईं। यह मीरास का क़ानून अल्लाह की शरीअत का एक अहम और पुष्ट नियम है।

३६ यानी कुल तरिके का $\frac{1}{6}$ भाग। **"अल्लज़ीन अक़दत् अमानुकुम्"**— परिभाषा में यह लोग "मौलल् मवालात" कहलाते हैं। पुराने अरबों में दस्तूर था कि दो व्यक्ति परस्पर वादा करके एक-दूसरे के इस प्रकार मित्र एवं सहायक हो जाते कि अगर एक पर देय लाज़िम आये तो दूसरा उसे अदा करे और एक की मृत्यु पर दूसरा उसकी मीरास (जायदाद आदि) पाये। इसी वादे या अहद को 'अक़्दे मवालात' कहते। शरीअत ने आरम्भ में इस दस्तूर को थोड़ी-सी तरमीम (संशोधन) के बाद बनाये रखा और अन्सार तथा मुहाजिरों में भाईचारः स्थापित करके परस्पर मीरास जारी करा दी। फिर इस अहद वाले का हिस्सा $\frac{1}{6}$ नियत किया। फिर जब 'सूरतें अहज़ाब' की यह आयत उतरी **"व अुलुल्-अर्हामि बअ्ज़ुहुम् औला बिबअ्ज़"** तो सब वारिसों के भाग नियत हो गये और अब इसके लिए गुंजाइश न रही। शरीअत के किसी अंश के मन्सूख होने का अर्थ केवल इसी क़दर होता है।

३७ अभी यह मालूम हो चुका है कि दर्शन और रूहानियत की दुनिया में यानी खुदा से निकटता स्थापित करने और सुन्दर कर्मों के लिहाज़ से स्त्री और पुरुषों की हैसियत बिलकुल बराबर है। नमाज़ और रोज़ा, हज और ज़कात और दूसरी इबादतें जिस प्रकार पुरुष की क़बूल हो सकती हैं, वही राहें स्त्री के लिए भी खुली हैं। अब यहाँ यह बताया जा रहा है कि पुरुष और स्त्री की बराबरी दुनियावी मामलों और इन्तिज़ामी हैसियत से क़ायम नहीं। पिता एवं पुत्र दोनों बन्दे की हैसियत से बिलकुल एक हैं। खुदा की तरफ़ से कर्मों की स्वीकृति के स्तर से दोनों बिलकुल बराबर हैं, परन्तु दुनिया में शरीअत का ही आदेश है कि बाप अफ़्सर होकर रहे और बेटा उसके आधीन होकर। बाप आदेश दे और बेटा आदेश माने। अब बताया जा रहा है कि समाज की इन्तिज़ामी मशीन में पुरुष को स्त्री पर क़ाबू और बड़ाई मिली रहे। **"क़व्वामून"**— **'क़व्वाम'** का अर्थ है किसी चीज़ का संरक्षक, प्रबन्धक एवं व्यवस्थापक और यहाँ मुराद यह है कि पुरुष स्त्रियों के कार्यों की व्यवस्था करनेवाले, उनकी परवरिश करनेवाले तथा उन पर हुक्म चलाने वाले हैं। शब्दकोश वालों ने यही स्पष्टीकरण दिया है। इंजील ने स्त्री को क्या दर्जा दिया है, इसका अन्दाज़ा नीचे की इबारतों (लेखों) से होगा— "खुदावन्दे ख़ुदा ने स्त्री से कहा, अपने पति की ओर तेरा चाव होगा और वह तुझ पर हुकूमत करेगा।" (पैदाइश ३:१६)। "ऐ बीवियो, अपने पति की ऐसी तावे रहो जैसे ख़ुदावन्द की, क्योंकि शौहर बीवी का सर है जैसे कि मसीह कलीसा का सर है और वह स्वयं बचानेवाला है, परन्तु जैसे कलीसा मसीह के आधीन है ऐसे ही पत्नियाँ भी हर बात में अपने पति के ताबे (आधीन) हों।" (अफ़्सीयून ५:२२-२४)। क़ुर्आन अल्लाह का कलाम है और हमेशा हक़ ही कहता है। वह कलीसा की कौंसिलों और मनुस्मृति की भाँति स्त्री को अपमानित एवं तुच्छ सिद्ध करने का कदापि क़ायल नहीं, परन्तु साथ ही उसे नये ज़माने की स्त्री-पूजा से भी सहानुभूति नहीं है। वह स्त्री को ठीक वही स्थान एवं दर्जा देता है जो सृष्टि व्यवस्था में सृष्टि की रचना करनेवाले ने उसे दे रखा है। एक बन्दी और मख़्लूक़ के रूप में वह मर्द के बराबर दर्जा रखती है, परन्तु दुनिया के इन्तिज़ामी मामलों में पुरुष के मातहत और आधीन है।

३८ (प्राकृतिक और सृष्टि के रूप में) पुरुष की यह बड़ाई उसके जिस्मानी अंगों की मज़बूती और दिलोदिमाग़ की बरतरी दोनों से ज़ाहिर है। **"बअ्ज़ुहुम् अ़ला बअ्ज़"**— यानी स्त्रीलिंग को पुंलिंग पर।

३९ (स्त्रियों को उनके मह्र में और उनके रोटी-कपड़े में।) अर्थ यह हुआ कि पुरुष की बड़ाई स्त्री पर दुहरी हैसियत रखती है, एक तो प्राकृतिक यानी जिस्मानी तथा दिमाग़ी अंगों में पैदाइशी बरतरी (उच्चतर होना); दूसरी क़ानूनी या समाजी कि स्त्री आम तौर पर ख़र्चों में पुरुष के आधीन रहती है, यहीं से यह बात भी निकल आई कि क़ुर्आनी व्यवस्था की रू से कमाना या रोज़ी पैदा करना और पत्नी के ख़र्च का भार उठाना पुरुषों के ज़िम्मे है।

४० नेक पत्नियों यानी "मोमिनाति सालिहात" का चिह्न यह बताया जा रहा है कि वह पति की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुपस्थिति में उसकी इज़्ज़त एवं सम्मान और उसके माल तथा जायदाद की देखभाल करनेवालियाँ होती हैं। नये स्कूलों और कालेजों की पढ़ी हुई लड़कियाँ ध्यान दें कि उन्हें अब इस क़ुर्आनी मेयार से क्या सम्बन्ध अवशेष रह गया है ?

४१ सभ्य, शरीफ़ एवं सुशील स्त्रियों का वर्णन अभी ऊपर गुज़र चुका है, अब उसके मुक़ाबले में गन्दी मनोवृत्ति और बुरी प्रकृति की पत्नियों के विषय में कुछ आदेश बयान हो रहे हैं— वह विधान एवं व्यवस्था पूर्ण नहीं अधूरी है जो केवल अच्छों के इनआम और पुरस्कार का वर्णन करती है और बुरों तथा खराब चरित्र वालों का ज़िक्र छोड़ देती है। **"नुशूज़हुन्न"**— स्त्री के 'नुशूज़' का अस्ल अर्थ यह है कि पति की आज्ञा की अवहेलना करने पर कमर बाँध ले। तफ़्सीर करनेवालों के इमामों ने इस अर्थ की पुष्टि की है। गोया प्रसन्नतापूर्ण पति-पत्नी-जीवन के स्थान पर गृहयुद्ध एवं बग़ावत आरम्भ हो जाए। **"तख़ाफ़ून"— 'ख़ौफ़'** यानी भय यहाँ जानकारी के मानी में है यानी जब उनके विद्रोह तथा आज्ञा-उल्लंघन अनुभव में आ जाए, यह नहीं कि केवल बदगुमानियाँ दूर करके केवल सन्देह की सम्भावना को इसके लिए काफ़ी समझ लिया जाए। फ़ारसी अनुवादकों ने भी यहाँ 'ख़ौफ़' का अनुवाद इल्म (जानकारी) या दानिसतन् (जानना) से किया है। "आँ ज़नाँ कि मालूम कुनेद सरकशीये ईशाँ" (वलीयुल्लाह देहलवी), अनुवाद— वह स्त्रियाँ जिनकी सरकशी की जानकारी हो जाए। "आँ ज़नानें कि मीदानेद नाफ़र्मानीये इन्हा" (सादी शीराज़ी), अनुवाद— वह स्त्रियाँ जिनकी नाफ़र्मानी का ज्ञान तुमको हो जाए।

४२ अब उन्हीं उद्दण्ड और आज्ञा-उल्लंघन करनेवाली स्त्रियों का इलाज बयान हो रहा है। पहली मंज़िल यह है कि उन्हें नर्मी और मुरव्वत से समझाया जाए। यदि स्त्री नेक प्रकृति की होगी तो इतना ही उसके लिए काफ़ी हो जायेगा। इसी में शौहरों को यह शिक्षा दी गई है कि तुरन्त क्रोध में आकर कड़ी कार्यवाही न कर बैठें।

४३ यानी उनसे एकान्त का सम्बन्ध तोड़ लो और उसके पास लेटना छोड़ दो। यह सज़ा की दूसरी मंज़िल है। जब मौखिक वार्तालाप से समझाने-बुझाने से सुधार न हो और नाफ़र्मानी तथा आज्ञा-उल्लंघन उसी प्रकार जारी रहे तो अब पहला अमली क़दम यह उठाओ, परन्तु छान-पछोड़कर और जाँचने के पश्चात् केवल सन्देह एवं बदगुमानी के आधार पर नहीं। फ़क़ीहों ने विस्तार से बताया है कि केवल बदगुमानी पर दूसरी और तीसरी सज़ाओं का क़दम उठाना जाइज़ न होगा। **"वह्जुरूहुन्न"**— हिज्र के दूसरे माने बातचीत बन्द करने के भी लिये गये हैं यानी उनसे बातचीत करना छोड़ दो।

४४ (हलके-हलके) यह तीसरा इलाज उस समय के लिए है जब दूसरा इलाज भी व्यर्थ हो जाए। इस पर भी सब सहमत हैं कि मार बिलकुल हलकी हो। ऐसी न हो जिससे चोट ज़्यादा आ जाए या जिससे जीवन-साथी का अपमान हो। बल्कि इब्ने अब्बास (रज़ि०) ने तो यह लिखा है कि यह मार दतौन-जैसी हल्की-फुल्की चीज से हो। क़ुर्आन मजीद का सम्बोधन ज़ाहिर है (परन्तु बार-बार उसे याद कर लेने की भी आवश्यकता है) कि किसी एक वर्ग, किसी एक जाति या किसी एक समाज से नहीं। इसका सम्बोधन अरब, अजम, चीनी, हब्शी, अंग्रेज़ और हिन्दी, रूमी और जापानी, आला और अदना, शरीफ़ और रज़ील (अधम), अलिम और साधारण मनुष्य, ज़हीन और कौदन (मूर्ख) व्यक्ति, चमार और चूढ़े (भंगी), नाई और धोबी, शहरी और देहाती, नेक और बद हर वर्ग, हर स्तर, हर मनोवृत्ति के लोग, पहली हिजरी से लेकर क़ियामत तक हर ज़माने और हर दौर वालों से है और इसके आदेशों तथा मसलों में हर मानवीय आवश्यकता और हर इन्सानी वातावरण का ध्यान कर लिया गया है, चुनांचे यह बात देखने में आई है कि बहुत से समाज और वर्ग ऐसे हैं जहाँ स्त्री के लिए जिस्मानी सज़ाएँ आम हैं, इलाज की यह सूरत ज़ाहिर है कि उन्हीं वर्गों के लिए है फिर इतनी आज्ञा भी आवश्यकता पड़ने पर ही है अन्यथा इबारत का सन्दर्भ नर्मी की ही संस्तुति करता है। शोधकों का विचार है कि नर्म तर्कीब यदि काफ़ी हो जाए तो कड़ी तदबीर कदापि उचित नहीं। हज़रत अली (रज़ि०) का मत है कि पहले पति ज़बान से ही नसीहत करे और उससे उद्देश्य पूरा हो जाए तो बस आगे बढ़ने की गुंजाइश नहीं। हाँ यदि यह काफ़ी न हो तो ही अगला क़दम उठाये यानी साथ सोना छोड़ देना। यह भी बे-असर रहे तो मार से काम ले। योरोप में पत्नियों की मार-पीट का दस्तूर जहाँ-जहाँ रहा है उसके लिए अंग्रेज़ी तफ़्सीर देखिए। क़ुर्आन मजीद में यह आदेश मिलना उसके हक़ में ज़रा भी हानिकारक नहीं जैसा कि बाज़ योरोप के मारे हुए मुसलमान लोग समझ रहे हैं बल्कि यह तो खुली हुई दलील है इस बात की कि क़ुर्आन मजीद के आदेश हर वर्ग, हर मनोवृत्ति और हर मानव-स्तर के लिए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४५ (उन पर सख्ती और ज़्यादती करने के लिए।) ऊपर की तदबीर तो केवल आवश्यकता हेतु है। अकारण इसका प्रयोग पत्नी को सताने और उसे कष्ट देने के लिए कदापि सही नहीं।

४६ (और तुम ऐसी बलन्दी तथा महानता वाले परवरदिगार के हक़ों में कमी करने ही से स्वयं कब ऊपर हो।) यह याद दिलाकर पतियों को गोया चेतावनी दे दी कि पत्नी से फ़र्ज़ की अदायगी के मामलों में अपनी माँगें बहुत कठोर मत रखो।

४७ सम्बोधन आम इस्लामी उम्मत से है और हाकिमों तथा शासकों से विशेष रूप से है। **''बैनिहिमा''**— अर्थात् पति-पत्नी के बीच। **'शिक़ाक़'** यानी ऐसा विवाद जिसे वह आपस में सुलझा न सकें। उम्मत तथा उम्मत के सदस्यों का साथ चोली-दामन का साथ है। व्यक्तियों के परस्पर घरेलू झगड़ों से इस्लामी समाज का दामन बिलकुल अलग और बिना सम्बन्ध के रह ही नहीं सकता, क्योंकि व्यक्तियों के नेक होने पर ही तो उम्मत का नेक और सिद्ध होना निर्भर है। आयत में यह सीख दी गई है कि व्यक्तियों के घरेलू झगड़ों को उम्मत अपना ही मामला समझे।

४८ (जो निर्णय करने और मामले को सुलझाने की क्षमता रखते हों और जाकर छानबीन और जाँच कर सकें कि वस्तुस्थिति क्या है।) **'फ़ब्अ़सू'**— यानी मामले को सुलझाने हेतु इन दोनों मध्यस्थता करने वालों को उन पति-पत्नियों के पास भेजो। इस्लामी समाज में पति-पत्नी में झगड़ा हो जाने पर यह कदापि न होना चाहिए कि तत्काल तलाक़ और अलाहिदगी होने लग जाए या स्थिति किसी ऐसी कार्यवाही की आ जाए, बल्कि पहले सुलह सफ़ाई के लिए हर सम्भव प्रयास हो जाना चाहिए। पति-पत्नी का सम्बन्ध सबसे महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है, उस पर लापरवाही के साथ चोट नहीं पड़नी चाहिए।

४९ **'अिय्युरीदा' अिस्लाहन्'**— यानी निष्पक्षता एवं ईमानदारी के साथ यदि नीयत सुलह सफ़ाई की होगी तो अल्लाह तआ़ला नीयत में बरकत अवश्य देगा और दिल की सफ़ाई की कोई सूरत निकाल ही देगा। मौलाना थानवी फ़क़ीह ने लिखा है कि यह फ़ैसला करना हाकिमों के लिए आवश्यक है यदि पति-पत्नी उनके समक्ष यह मामला प्रस्तुत करें। दूसरों के लिए मुस्तहब हैं। **'मिन् अह्लिही'** व **'अह्लिहा'** का प्रतिबन्ध सबके लिए मुस्तहब है।

५० हर इन्सानी आवश्यकता तथा हर मानवीय मस्लहत पर उसका ज्ञान हावी है। कौन सा भेद उससे भेद रह सकता है और किस आंशिक से आंशिक सूचना से वह अनविज्ञ रह सकता है?

५१ (नजात में न सिफ़तों में।)

५२ ध्यान करके देख लिया जाए कि सुन्दर व्योहार की माँ-बाप से लेकर ग़ुलामों, बाँदियों तथा समाज के हर वर्ग के साथ ताकीद हो रही है। फिर इस हुक्म को ख़ुदा की अद्वैतता के साथ सम्बद्ध किया जा रहा है। विश्व की किसी आसमानी पुस्तक में इस बेमिसाल शिक्षा का जवाब मिलेगा? इसके साथ शोधकों का यह विवरण भी मिला लिया जाए कि ''हक़ वाले (जिनका हक़ पहुँचता हो) अगर काफ़िर हों तब भी उनके साथ एहसान करो। अल्बत्ता मुसलमान का हक़ इस्लाम के कारण उनसे अधिक होगा।'' (मौलाना थानवी)। **'वल्जारि'**— हदीस में आया है जैसा कि तफ़्सीर-लेखकों ने मुहद्दिस अबू नईम तथा मुहद्दिस बराअ़ के हवाले से लिखा है कि पड़ोसी तीन प्रकार के हैं— (१) एक वह जिन पर तिहरे हक़ सिद्ध हैं। पड़ोस का हक़, रिश्तेदारी का हक़, इस्लाम का हक़। (२) दूसरे वह जिन पर दोहरे हक़ सिद्ध है, पड़ोस का हक़ और इस्लाम का हक़। (३) तीसरे वह जिन पर एक ही हक़ सिद्ध है यानी पड़ोस का हक़ और वह पड़ोसी है जो मुश्रिक किताबी है। क़ुर्आन मजीद का यह विस्तार भी ज़ेह्न में रहे कि हक़ दोनों प्रकार के पड़ोसी रखते हैं। निकट वाले और रिश्तेदारी वाले भी और दूर वाले तथा अज्नबीयत वाले भी। मुसलमान यदि एक इसी शिक्षा की याद रखें तो कितने घरेलू झगड़ों का अन्त हो जाए बल्कि एक तफ़्सीर तो यह भी वर्णित है कि **''जारिज़िल् क़ुर्बा''** से मुराद मुसलमान पड़ोसी है और **''जारिल्-जुनुबि''** से यहूदी एवं ईसाई। **''वस्साहिबि बिल्जम्बि''**— इस साथ उठने-बैठने या साथ समय बिताने में समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं, मित्रता और साथ चाहे वर्षों का हो चाहे चन्द मिनटों का हर दशा में अपना अधिकार स्थापित कर देता है। इस परिभाषा के अन्तर्गत, सहपाठी, पाठशाला के साथी, साथ यात्रा करनेवाले, खेलकूद के साथी, रेल और जहाज़ के साथी, व्यपार के साझीदार, कारोबारी साथी एवं व्यवसाय के साथी आ जाते हैं। **''वब्निस्सबीलि''**— यह आवश्यक नहीं कि यात्री आगन्तुक बनकर आये। सत्कार एवं ख़ातिर अपनी हिम्मत तथा स्थिति-अनुसार हर आने-जानेवाले की आवश्यक है। **''अिब्निस्सबीलि''**— का

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४४८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अ़ल्लजीन यब्ख़लून व यअ्मुरूनन्नास बिल्बुख़्लि व यक्तुमून मा'
आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही ᴛ व अ़्तद्ना लिल्काफ़िरीन अ़जाबम्मुहीनन् ᴊ
(३७) वल्लजीन युन्फ़िक़ून अम्वालहुम् रिआ'अन्नासि व ला युअ्मिनून
बिल्लाहि व ला बिल् - यौमिल्-आख़िरि ᴛ व मंय्यकुनिश् - शैतानु लहू
क़रीनन् फ़ सा'अ क़रीनन् (३८) व
माज़ा अ़लैहिम् लौ आमनू बिल्लाहि वल्-
यौमिल् - आख़िरि व अन्फ़क़ू मिम्मा
रज़क़हुमुल्लाहु ᴛ व कानल्लाहु बिहिम्
अ़लीमन् (३९) अिन्नल्लाह ला यज़्लिमु
मिस्क़ाल ज़र्रतिन् ᴊ व अिन्तकु ह़सनतंय्युज़ा-
अ़िफ़्हा व युअ्ति मिल्लदुन्हु अज्रन्
अ़ज़ीमन् (४०) फ़ कैफ़ अिज़ा जिअ्ना
मिन् कुल्लि अुम्मतिम्-बि शहीदिंव्व जिअ्ना
बिक अ़ला हा'अुला'अि शहीदन् ᴛ ● (४१)
यौमअिज़िंय्यवद्दुल्-लज़ीन कफ़रू व अ़सवुर्रसूल
लौ तुसव्वा बिहिमुल्अर्ज़ु ᴛ व ला
यक्तुमूनल्लाह ह़दीसन् (४२) ★ या' अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तक़्रबुस्-
सलात व अन्तुम् सुकारा ह़त्ता तअ़्लमू मा तक़ूलून व ला जुनुबन्
अिल्ला आबिरी सबीलिन् ह़त्ता तग़्तसिलू ᴛ व अिन् कुन्तुम् मर्ज़ा'
औ अ़ला सफ़रिन् औ जा'अ अह़दुम् - मिन्कुम् मिनल्ग़ा'अिति औ
लामस्तुमुन्निसा'अ फ़ लम् तजिदू मा'अन् फ़ तयम्ममू सअ़ीदन् तय्यिबन् फ़म्सहू
बि वुजूहिकुम् व अैदीकुम् ᴛ अिन्नल्लाह कान अ़फ़ुव्वन् ग़फ़ूरन् (४३)

● व. नबी स. ★ रु. ६/३ आ ९

والمحصنت ٥ ٨٧ النساء ٤

وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبٰى وَالْجَارِ الْجُنُبِ وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْبِ وَابْنِ
السَّبِيْلِ وَمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا
فَخُوْرًا ﴿٣٦﴾ الَّذِيْنَ يَبْخَلُوْنَ وَيَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبُخْلِ وَيَكْتُمُوْنَ
مَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ وَاَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ﴿٣٧﴾
وَالَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ رِئَآءَ النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ
وَلَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَمَنْ يَّكُنِ الشَّيْطٰنُ لَهٗ قَرِيْنًا فَسَآءَ قَرِيْنًا ﴿٣٨﴾
وَمَاذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَاَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقَهُمُ
اللّٰهُ وَكَانَ اللّٰهُ بِهِمْ عَلِيْمًا ﴿٣٩﴾ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ
وَاِنْ تَكُ حَسَنَةً يُّضٰعِفْهَا وَيُؤْتِ مِنْ لَّدُنْهُ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٤٠﴾
فَكَيْفَ اِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍ بِشَهِيْدٍ وَّجِئْنَا بِكَ عَلٰى هٰٓؤُلَآءِ
شَهِيْدًا ﴿٤١﴾ يَوْمَئِذٍ يَّوَدُّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَعَصَوُا الرَّسُوْلَ لَوْ تُسَوّٰى
بِهِمُ الْاَرْضُ وَلَا يَكْتُمُوْنَ اللّٰهَ حَدِيْثًا ﴿٤٢﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَاَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا مَا تَقُوْلُوْنَ وَ
لَا جُنُبًا اِلَّا عَابِرِيْ سَبِيْلٍ حَتّٰى تَغْتَسِلُوْا وَاِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى
اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ
فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَ
اَيْدِيْكُمْ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُوْرًا ﴿٤٣﴾ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ اُوْتُوْا

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो कंजूसी करते रहते हैं और दूसरों को कंजूसी की शिक्षा देते हैं और जो कुछ उन्हें अल्लाह
ने अपनी कृपा से दे रखा है, उसे छुपाते हैं[५४]। और हमने काफ़िरों के लिए अपमानजनक
अज़ाब तैयार कर रखा है[५५]। (३७) और जो लोग अपना धन लोगों को दिखाने के लिए
ख़र्च करते रहते हैं और न अल्लाह पर ईमान रखते हैं न आख़िरत के दिन पर (तो यह सब
काफ़िरों के हुक्म में आते) हैं[५६]। और जिसका साथी शैतान हुआ सो बुरा साथी
हुआ[५७]। (३८) और उन्हें क्या ख़राबी पेश आती अगर यह अल्लाह और आखिरत के दिन
पर ईमान ले आते और जो कुछ अल्लाह ने उन्हें दे रखा है उसमें से ख़र्च करते रहते[५८] और
अल्लाह उनसे ख़ूब वाक़िफ़ है। (३९) बेशक अल्लाह एक कण के बराबर भी अत्याचार
न करेगा[५९]; और यदि नेकी होगी तो उसे दो गुना कर देगा और अपने पास से भारी बदला
देगा[६०]। (४०) सो उस समय क्या हाल होगा जब हम हर उम्मत से एक-एक गवाह हाज़िर
करेंगे[६१] और उन लोगों पर आपको गवाह के रूप में पेश करेंगे[६२]। (४१) ●
जिन लोगों ने कुफ़्र किया है और पयम्बर की नाफ़रमानी की है, वह उस दिन तमन्ना
करेंगे कि काश ज़मीन उन पर बराबर कर दी जाए। और अल्लाह से कोई बात न छुपा
सकेंगे[६३]! । (४२) ★

ऐ ईमानवालो! नमाज़ के निकट न जाओ इस हाल में कि तुम नशे में हो यहाँ तक कि
जो कुछ (मुँह से) कहते हो उसे समझने लगो[६४], और न जनाबत (स्त्री-मिलन) की दशा में जब
तक कि स्नान न कर लो[६५], सिवाय उस स्थिति में कि तुम मुसाफ़िर हो[६६]। और अगर तुम
बीमार हो या सफ़र में हो[६७] या तुममें से कोई इस्तिंजा (पेशाब-पाख़ाने से)
आया हो[६८], या तुमने पत्नियों से मिलन किया हो[६९], फिर तुमको पानी न
मिले तो तुम पवित्र मिट्टी से तयम्मुम् कर लिया करो यानी अपने चेहरों पर हाथ
फेर लिया करो[७०]। बेशक अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला है, बड़ा बख़्शनेवाला है[७१]। (४३)

● ब. न बी स. ★ ह. ६/३ आ ६

---

५४ (और यह तीनों प्रकार के लोग अल्लाह के यहाँ पसन्द न किये जानेवाली मख़्लूक़ हैं। हक़ अदा करने में घमण्ड और अहंकार के पश्चात् तीसरा बाधक यही कंजूसी होती है। **"मा' आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही"**— से मुराद धन-दौलत का होना तो ज़ाहिर ही है। दूसरा अर्थ दीन के इल्म की दौलत भी है और तम्बीह उनको भी की गई है जो दीन के मसलों को ज़ाहिर करने में कंजूसी से काम लेते हैं।

५५ मनुष्य साधारणत: कंजूसी इसीलिए करता है कि माल बचाकर उससे अपने धन-दौलत में बढ़ोतरी करे। इस दौलत की पूजा की सज़ा प्राकृतिक रूप से उसे यह मिलेगी कि भयंकर अज़ाब होने के अलावा उसे दुनियावालों की दृष्टि में अपमानित और रुसवा करनेवाला भी होगा।

५६ - यानी जिन लोगों का ईमान ख़ुदा और आख़िरत के दिन पर नहीं होता वह जिस अवसर और जिस उद्देश्य से भी ख़र्च करेंगे वह कोई न कोई सूरत दुनियावालों की रज़ामन्दी की ही होगी, हालांकि इस्लाम ने जान की ही भांति (यद्यपि अवश्य ही उससे कम दर्जे में) धन के व्यय की भी इजाज़त अल्लाह ही की रज़ामन्दी के अन्तर्गत दी है। **"रिआ' अन्नासि"**— यानी यह लोग हक़दारों पर व्यय नहीं करते बल्कि नुमाइश और दिखावे के अवसर पर ख़र्च करते हैं।

५७ (जो सदा बुराई ही का चाव दिलाता रहेगा।) **"मंय्यकुनिश्-शैतानु लहू क़रीनन्"**— यानी जिसके साथ बैठनेवाला शैतान हो जैसे कि उन सब लोगों का है।

५८ (दीन के मार्ग में निस्स्वार्थता के साथ) **"माजा अलैहिम्"**— अरबी मुहावरे में ऐसे अवसर पर आता है जैसे उर्दू-हिन्दी में कहते हैं, "क्या ग़ज़ब हो जाता या कौन सी बड़ी बात थी ?"

५९ (और उसके लिए इसकी सम्भावना ही क्या है जबकि उसका ज्ञान कण-कण पर हावी और उसको घेरे हुए है। यानी यह नहीं हो सकता कि किसी की कोई नेकी बिना बदले के रह जाए या कोई बदी किसी के हिसाब में अकारण लिख ली जाए। **"अिन्नल्लाह ला यज़्लिमु"**— अल्लाह जो सम्पूर्ण रूप से

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४५८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४५५ से)

वास्तविक अर्थ ऐसा मुसाफ़िर था जो अपने वतन, अपने अज़ीज़ों (सम्बन्धियों) सबसे इतनी दूर और बिना सम्बन्ध के हो कि गोया मुसाफ़िरत ही उसका घर-बार, परिवार और बाल-बच्चे बनकर रह जाए। और इसका अर्थ बिलकुल मुसाफ़िर का निकल आया। इस्लामी समाजी व्यवस्था शानदार होटलों बल्कि मेहमान-सरायों का भी मुहताज नहीं, वह अपने देश के भीतर मेहमानदारी तथा अतिथि-आगमन करना हैसियत के अनुसार हर-हर व्यक्ति पर अनिवार्य करता है।

५९ अब यहाँ से उन मनाहियों का वर्णन है जो हक़ों की अदायगी की राह में बाधक होती रहती है। उनमें से पहली चीज़ घमण्ड है और दूसरी चीज़ है दिखावा, नुमाइश, धन, दौलत और अधिकारों एवं सत्ता का लोभ एवं स्नेह। "मुख़्ताल"— वह है जो अपने को बड़ा समझने के घमण्ड में बन्दी बना रहता है। सगे सम्बन्धियों, पड़ोसियों की ओर ध्यान देने को अपनी शान के खिलाफ़ समझता है और अपने बड़प्पन का प्रदर्शन अपने कर्मों से करता रहता है। "फ़ख़ूर"— वह है जो दूसरों पर अपना घमण्ड और अपनी बड़ाई जतलाता रहता है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४५७ से)

हर चीज़ पर शक्ति रखता है, वास्तव में उसके किसी कार्य पर किसी दशा में अत्याचार का अर्थ लागू हो ही नहीं सकता, परन्तु यहाँ मुराद यह है कि वह ज़ाहिर में और अप्रत्यक्ष रूप में भी ज़ुल्म तो करता ही नहीं। आयत में दो पहलू और भी हैं। एक तो मुश्रिक क़ौमों ने अपने देवी-देवताओं को जो अत्याचारी, ज़ुल्म ढानेवाले और रक्तपाती माना है (जैसे दुर्गादेवी या काली माई को), हक़ तआला इस प्रकार की सिफ़तों से पाक है। दूसरे जिन आयतों में हक़ तआला की मुकम्मल शक्ति और सम्पूर्ण अधिकार को माना गया है, उनसे यह सम्भव था कि मुसलमानों को भी यह ख़याल हो जाता कि हर प्रकार का ज़ुल्म उस सम्पूर्ण सर्वशक्तिमान् के लिए रवा (उचित) है, इस बात का भी इस आयत से खण्डन हो गया।

६० (सो ऐसे परवरदिगार की रहमत और दया का क्या ठिकाना है?) 'मिल्लदुनहु" अपने पास से यानी हक़ से अधिक बल्कि बेहक़दारी पर भी। इस्लाम का ख़ुदा न कोई रक्तपात करनेवाला देवता है कि अकारण किसी पर ज़ुल्म करे, न ऐसा विवश, कि किसी पर दया करना चाहे भी तो अपने न्याय की सिफ़त को स्थायी रखने के लिए किसी और पर अत्याचार करना पड़े। शिर्क और मसीही शिर्क दोनों का खण्डन इस आयत से हो गया।

६१ (क़ियामत के दिन उस उम्मत से सम्बद्ध बातें बताने) यह गवाह हर उम्मत के समक्ष उस उम्मत के रसूल होंगे जो उसकी शहादत देंगे कि वह आदेशों का पूरा-पूरा प्रचार कर आये थे।

६२ (ऐ पैग़म्बर!) "हा'अुला'अि"— (उन लोगों का) संकेत किस ओर है। ज़ाहिर में वह लोग मुराद मालूम होते हैं जो क़ुर्आन के सीधे या माध्यम द्वारा सम्बोधित थे और जिनसे रसूलुल्लाह (स०) का वास्ता पड़ा हुआ था। दूसरी तफ़्सीर यह है कि इशारा उम्मत की ओर नहीं बल्कि गवाहों की ओर है यानी उन गवाहों के बयान की सच्चाई पर गवाह होकर। हर दशा में जब रसूलुल्ल ह (सल्लअम) इस आयत पर पहुँचते थे तो अपने उत्तरदायित्व के एहसास तथा डर की अधिकता से देखनेवालों का वर्णन है कि आँसू आपके शुभनेत्रों से बहने लगते थे। जिन बेदर्दों ने क़ुर्आन को कलामे मुहम्मदी ठहराया वह ग़ौर करें कि कहीं अपने गढ़े हुए कलाम से भी मनुष्य के आँसू निकल सकते हैं?

६३ (बल्कि हर गहरे से गहरा छुपा हुआ भेद उस दिन ज़ाहिर होकर रहेगा।) "यौमअिज़ित्"— उस दिन से ज़ाहिर है हश्र का दिन मुराद है। "लौ तुसव्वा बिहिमुल् अर्ज़ु"— ज़मीन उसके ऊपर बराबर कर दी जाए ताकि वह ज़मीन का पैवन्द होकर हश्र की रुस्वाई और अज़ाब से बच सकें।

६४ यानी नशा उतर जाए और ज़बान क़ाबू में आ जाए। आयत उस समय की है जब कि शराब के हराम होने का आदेश अभी अवतरित नहीं हुआ था। आयत का अर्थ यह है कि नमाज़ के समयों में तो शराब पीने से बाज़ रहो। यह अर्थ नहीं है कि शराब तो इसी तरह पीते रहो और नमाज़ नशे की हालत में छोड़े रहो।

६५ यानी स्त्री-स्पर्श के बाद स्नान करना फ़र्ज़ है। बिना इसके नमाज़ सही न होगी। पुरुष को अंज़ाल हो जाना (मनी का निकल जाना), स्त्री को मासिक-धर्म होना, स्त्री-पुरुष दोनों का मिलन होना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(चाहे अंज़ाल के बिना हो) यह सभी दशाएँ जनाबत (अपवित्रता) की हैं। ''अस्सलात''— से मुराद मस्जिदें भी ली गई हैं।

६६ यानी सिवाय सफ़र की हालत के जब पानी का मिलना और स्नान का प्रबन्ध होना कठिन हो, ऐसी दशा का हुक्म आगे भी आता है। जिन फ़क़ीहों ने ''अस्सलात'' से मुराद ''मवाज़िअुस्सलात'' लिया है उन्होंने ''अिल्ला आबिरी सबीलिन्'' से जनबी के लिए आवश्यकता के समय मस्जिद से गुज़रने का जाइज़ होना निकाला है।

६७ (और मरज़ तथा सफ़र दोनों स्थितियों में पानी का प्रयोग या हानिकर हो या उसका मिलना कठिन हो या स्नान की व्यवस्था न हो सकती हो।)

६८ (और इसलिए वज़ू बाक़ी न रहा हो।)

६९ 'लम्स' और 'मस' दोनों के शाब्दिक अर्थ छूने के हैं, इसलिए बाज़ फ़क़ीहों ने यहाँ भी केवल छूना मुराद लिया है और स्त्रियों को छूना वज़ू के वाजिब होने का कारण बताया है, परन्तु 'लम्स' के मजाज़ी अर्थ स्त्री-मिलन है। और 'मस' तो क़ुर्आन मजीद में भी इसी अर्थ में आया है। इसलिए हनफ़ीया फ़क़ीहों ने 'लम्स' से यहाँ स्त्री-मिलन का ही अर्थ लिया है और यही मत बलशाली है। हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास जैसे सहाबियों और मुजाहिद और ताउस, हसन बसरी, सईद बिन ज़ुबैर इत्यादि ताबिईन से भी यही वर्णित है।

७० यानी ऐसी मिट्टी हो, जो स्वयं नापाक या गन्दी न हो, दो-दो बार हाथ मारकर प्रथम बार पूरे चेहरे और दूसरी बार हाथों पर कुहनियों तक फेर लिया करो। ''फ़ लम् तजिदू मा'अन्''— यानी किसी कारण से सही पानी के प्रयोग की सकत न हो। ''मा'अ'' कि नकिर: (जातिवाचक संज्ञा) के सीग़े में आने से फ़क़ीहों ने तर्क दिया है कि पानी किसी प्रकार का हो वज़ू के लिए दुरुस्त है। इमाम अबू हनीफ़ा ने इसमें इतनी गुंजाइश यह रखी है कि रंग, मज़ा या गंध बदले हुए पानी तक की इजाज़त दे दी है। पानी का मौजूद न होना एक तो वास्तविक है वह यही कि पानी उपलब्ध न हो, दूसरी हुक्मी यानी पानी उपलब्ध हो परन्तु उसका प्रयोग बीमारी पैदा कर दे या उसे बढ़ा दे या किसी अन्य कारण से उसके प्रयोग से विवशता हो। फ़क़ीहों ने केवल चन्द चीज़ों के नाम गिनाये हैं। ''सओदन् तय्यिबन्''— सईद शब्दकोश में ज़मीन के ऊपरी रुख को कहते हैं, न कि मिट्टी को। अतः हनफ़ीया के यहाँ मिट्टी और उसकी जिन्स की हर चीज़ से तयम्मुम् जाइज़ है चाहे उन पर गर्द पड़ी हो या न पड़ी हो और इमाम मालिक और सूरी आदि दूसरे फ़िक़्ह के इमाम भी हनफ़ीया के मत से सहमत हैं। ज़मीन की जिंस में से होने की पहचान यह है कि वह आग में न जल जाए, न उससे पिघल जाए। चुनांचे हनफ़ीया के यहाँ गेरू, पत्थर, सुर्मा, याक़ूत (एक प्रसिद्ध रत्न), ज़बरजद (पुखराज) आदि पर इस क़ायदे के अनुसार और चूने पर इस क़ायदे के विरुद्ध तयम्मुम् जाइज़ है, अल्बत्ता राख पर जाइज़ नहीं। इमाम शाफ़िई के विचार में तयम्मुम् केवल मिट्टी ही पर जाइज़ है।

७१ (चुनांचे कठिन अवसरों के लिए उसने कैसे आसान आदेश दे रखे हैं। भूल-चूक तथा साधारण ग़लतियों को वह बराबर क्षमा करता ही रहता है।)

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६१ से)

था। प्रथम पारे में पूर्ण विवरण के साथ यह वर्णन आ चुका है। यहूद की इन गुस्ताखियों का दारोमदार चूँकि उच्चारण और शब्दों के ही बुरे प्रयोग पर हैं अतः अनुवाद में वास्तविक अर्थ पूरी तरह स्पष्ट हो ही नहीं सकता। अस्ल अरबी शब्दों को दृष्टिगत रखना पड़ेगा। ''समिअ्ना व असैना''— ज़ाहिरी अर्थ यह था कि हमने आपका संकेत सुन लिया और आपके गुमराह करनेवाले विरोधी और शत्रु की बात नहीं मानी परन्तु वास्तविक अर्थ यह होता था कि हमने तुम्हारी बात तो सुन ली परन्तु उसे स्वीकार नहीं किया। ''अस्मअ़् ग़ैर मुस्मअिन्''— ज़ाहिर में अर्थ यह था कि कोई विरोधी और दुःखदायक बात आपके कान में न जाए, परन्तु अस्ल अर्थ यह होता था कि तुम्हें कोई अच्छी बात सुनाई न दे। ''राअिना''— राअिना का ज़ाहिरी अर्थ यह था कि हमारी रिआयत से दुबारा कहिए परन्तु उच्चारण में ''अैन'' को ज़रा खींचकर पढ़ने से बिलकुल गुस्ताखी का अर्थ पैदा होता था। ''लय्यम्-बि-अल्सिनतिहिम''— यानी ज़ाहिरी बोलों से सम्मान एवं इज्ज़त दृष्टिगोचर होती थी, परन्तु ज़बानें ''तक़य्य'' से काम लेती थीं और दिल के

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४६२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलम् तर अिलल्लजीन अूतू नसीबम्मिनल् - किताबि यश्तरूनज़्ज़लालत व
युरीदून अन् तज़िल्लुस्सबील त (४४) वल्लाहु अअ्लमु बि अअ्दा'अिकुम् त
व कफ़ा बिल्लाहि वलिय्यन् क़ ज ०व कफ़ा बिल्लाहि नसीरन् (४५)
मिनल्लजीन हादू युहर्रिफ़ूनल्-कलिम अम्मवाज़िअिही व यक़ूलून समिअ्ना
व अससैना वस्मअ् ग़ैर मुस्मअिंव्व राअिना लय्यम्-
बि-अल्सिनति - हिम् व तअ्नन् फ़िद्दीनि त
व लौ अन्नहुम् क़ालू समिअ्ना व अतअ्ना
वस्मअ् वन्ज़ुर्ना ल कान खैरल्लहुम् व अक़्वम ला
व लाकिल्लअन - हुमुल्लाहु बि कुफ़्रिहिम्
फ़ ला युअ्मिनून अिल्ला क़लीलन् (४६)
या' अय्युहल्लजीन अूतुल्किताब आमिनू
बिमा नज़्ज़ल्ना मुसद्दिक़ल्लिमा मअकुम्
मिन् क़ब्लि अन्नत्मिस वुजूहन् फ़ नरुद्दहा
अला' अद्बारिहा' औ नल्अनहुम् कमा
लअन्ना' अस्हाबस्सब्ति त व कान
अम्रुल्लाहि मफ़्अूलन् (४७) अिन्नल्लाह
ला यग़्फ़िरु अंय्युश्रक बिही व यग़्फ़िरु

والمحصنت ٥ — ٦٨ — النساء ٤

نَصِيبًا مِّنَ الْكِتٰبِ يَشْتَرُوْنَ الضَّلٰلَةَ وَيُرِيْدُوْنَ اَنْ تَضِلُّوا
السَّبِيْلَ ۞ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِاَعْدَآئِكُمْ ۚ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَلِيًّا ۙ وَّكَفٰى
بِاللّٰهِ نَصِيْرًا ۞ مِنَ الَّذِيْنَ هَادُوْا يُحَرِّفُوْنَ الْكَلِمَ عَنْ مَّوَاضِعِهٖ
وَيَقُوْلُوْنَ سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا وَاسْمَعْ غَيْرَ مُسْمَعٍ وَّرَاعِنَا لَيًّا
بِاَلْسِنَتِهِمْ وَطَعْنًا فِى الدِّيْنِ ۚ وَلَوْ اَنَّهُمْ قَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا وَ
اسْمَعْ وَانْظُرْنَا لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَاَقْوَمَ ۙ وَلٰكِنْ لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ
بِكُفْرِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُوْنَ اِلَّا قَلِيْلًا ۞ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ
اٰمِنُوْا بِمَا نَزَّلْنَا مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ نَّطْمِسَ وُجُوْهًا
فَنَرُدَّهَا عَلٰۤى اَدْبَارِهَاۤ اَوْ نَلْعَنَهُمْ كَمَا لَعَنَّاۤ اَصْحٰبَ السَّبْتِ ۚ وَكَانَ
اَمْرُ اللّٰهِ مَفْعُوْلًا ۞ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَغْفِرُ اَنْ يُّشْرَكَ بِهٖ وَيَغْفِرُ مَا
دُوْنَ ذٰلِكَ لِمَنْ يَّشَآءُ ۚ وَمَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدِ افْتَرٰۤى اِثْمًا
عَظِيْمًا ۞ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ يُزَكُّوْنَ اَنْفُسَهُمْ ۚ بَلِ اللّٰهُ يُزَكِّيْ مَنْ
يَّشَآءُ وَلَا يُظْلَمُوْنَ فَتِيْلًا ۞ اُنْظُرْ كَيْفَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ
الْكَذِبَ ۚ وَكَفٰى بِهٖۤ اِثْمًا مُّبِيْنًا ۞ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ اُوْتُوْا نَصِيْبًا ع
مِّنَ الْكِتٰبِ يُؤْمِنُوْنَ بِالْجِبْتِ وَالطَّاغُوْتِ وَيَقُوْلُوْنَ لِلَّذِيْنَ كَفَرُوْا
هٰۤؤُلَآءِ اَهْدٰى مِنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا سَبِيْلًا ۞ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ لَعَنَهُمُ
اللّٰهُ ۚ وَمَنْ يَّلْعَنِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ نَصِيْرًا ۞ اَمْ لَهُمْ نَصِيْبٌ

منزل

मा दून जालिक लि मंय्यशा'अु ज व मंय्युश्रिक् बिल्लाहि फ़ क़दिफ़्तरा'
अिस्मन् अज़ीमन् (४८) अलम् तर अिलल्लजीन युज़क्कून अन्फ़ुसहुम् त
बलिल्लाहु युज़क्की मंय्यशा'अु व ला युज़्लमून फ़तीलन् (४९)
अुन्ज़ुर् कैफ़ यफ़्तरून अलल्लाहिल् - कज़िब त व कफ़ा बिही'
★ रु. ७/४ आ ८ अिस्मम् - मुबीनन् (५०) ★ अलम् तर अिलल्लजीन अूतू नसीबम्मिनल्-
किताबि युअ्मिनून बिल्जिब्ति वत्तागूति व यक़ूलून लिल्लजीन कफ़रू
हा'अुला'अि अह्दा मिनल्लजीन आमनू सबीलन् (५१) अुला'अिकल्लजीन
लअनहुमुल्लाहु त व मंय्यल्अनिल्लाहु फ़ लन् तजिद लहू नसीरन् त (५२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्या तूने नहीं देखा कि जिन्हें किताब से हिस्सा मिला था, वह गुमराही को मोल ले रहे हैं और
चाहते हैं कि तुम (भी) गुमराह हो जाओ[७२]। (४४) अल्लाह तुम्हारे शत्रुओं से भलीभाँति
परिचित है[७३]। और अल्लाह का हिमायती होना काफ़ी है[७४]। (४५) जो लोग यहूदी हो
गये हैं उनमें ऐसे भी हैं जो कलाम को उसके मौक़ों से फेरते रहते हैं[७५]। और कहते हैं कि
हमने सुना मगर हमने माना नहीं और (हमारी) सुनो और तुम्हें सुनवाया न जाए, और
"राअ़िना" में भाषाओं को तोड़-मोड़कर दीन में ताना देने की राह से, और यदि यह लोग
कहते हैं कि हमने सुना और हमने स्वीकार किया और (हमारी) सुनो और "उन्ज़ुर्ना", तो
उनके हक़ में कहीं बेहतर और ठीक होता[७६]। परन्तु अल्लाह ने तो उनके कुफ़्र के कारण
उन पर धिक्कार किया है[७७] सो वह ईमान न लावेंगे मगर थोड़े से[७८]। (४६) ऐ वह लोगो
जिन्हें किताब मिल चुकी है! इस (किताब) पर ईमान लाओ जिसे हमने उतारा है, तस्दीक़
करनेवाली उस (किताब) की जो तुम्हारे पास है[७९], इसके पूर्व कि हम चेहरों को उनके पीछे
की ओर उलटा दें[८०]; या हम उन पर इस प्रकार धिक्कार करें जिस प्रकार हमने सब्त
(शनीचर) वालों पर लानत की थी[८१], और अल्लाह का हुक्म पूरा होकर ही रहता है[८२]। (४७)
अल्लाह इसको तो बेशक न बख़्शेगा कि उसके साथ शिर्क किया जाए[८३], परन्तु इसके अलावा
जिस किसी को भी चाहेगा बख़्श देगा। और जो कोई (किसी को) अल्लाह का साझीदार
ठहराता है उसने अवश्य एक बड़ा गुनाह समेटा[८४]। (४८) क्या तूने उन पर दृष्टि नहीं
डाली जो अपने को पवित्र ठहराते हैं[८५], यद्यपि अल्लाह जिसे चाहे पाकीज़ा ठहराये[८६]। और
उन पर ज़रा भी ज़ुल्म नहीं किया जायेगा[८७]। (४९) देखो तो यह लोग अल्लाह पर कैसा
झूठा तूफ़ान बाँधते हैं और यही काफ़ी है खुले हुए अपराध के लिए[८८]। (५०) ★

रु. ७/४ आ ८

क्या तूने उन लोगों पर नज़र नहीं डाली जिन्हें किताब से लाभान्वित किया गया था[८९],
(इस पर भी) यह बुत और शैतान को माने हुए हैं[९०] और कुफ़्र करनेवालों के विषय में कहते
हैं कि ईमान लानेवाले लोगों से तो यही लोग अधिक हिदायत (तौहीद की शिक्षा)
पाये हुए हैं[९१]। (५१) यही वह लोग हैं जिन पर अल्लाह ने लानत की
है[९२], और जिस पर अल्लाह लानत करे, तो उसका कोई मददगार तू कदापि न पायेगा[९३]। (५२)

---

७२ (ऐ मुसलमानो!) यहूद स्वयं तो तौरत के ज्ञान के बावजूद कुफ़्र और गुमराही को अपनाये हुए थे ही, मुसलमानों को भी इस्लाम से फिर जाने की नाना प्रकार की तदबीरें करते रहते थे। यह संकेत उसी की ओर है। **'मिनल् किताब'**— किताब से मुराद किताब की जिंस यानी तौरत है। **'अलम् तर'** में आम सम्बोधन है हर व्यक्ति से जो मुख़ातिब हो जाए।

७३ (और उसने तुमको भी ख़बरदार कर दिया) 'अह्लें किताब' की ओर से मुसलमानों को गुमराह करने की कोशिशें, नये-नये नामों और किताबों से आज भी पूरी तरह जारी हैं।

७४ अल्लाह का हिमायती (वली) होना यह है कि वह मोमिन बन्दों की मस्लिहतों की रिआयत करता रहता है और उसका मददगार (नसीर) होना यह है कि वह उन्हें शत्रुओं के हानि पहुँचाने से सुरक्षित रखता है।

७५ (और शब्द एवं अर्थ में हर प्रकार की अदला-बदली करते रहते हैं।) **'अल्कलिम'**— कलाम से मुराद अल्लाह का कलाम है या तौरेत। **"अल्लज़ीन हादू"** यह वह लोग थे जो नस्ल से इस्राईली नहीं थे बल्कि अरब थे, परन्तु यहूद के साथ एक ज़माने से रहते-रहते उनसे प्रभावित होकर स्वयं भी यहूद के रीति-रिवाजों और उनके अक़ीदों को अपनाकर धीरे-धीरे उन्हीं में विलीन हो चुके थे। शरारतों और बुराइयों में भी वह यहूद से कुछ कम नहीं थे जिसका विवरण प्रथम पारे में गुज़र चुका है।

७६ (यानी उनके हक़ में लाभप्रद भी और घटना-अनुसार भी) अरब यहूद की लगातार शरारतों और बुराई करने में से एक यह भी बात थी कि रसूलुल्लाह (स०) को सम्बोधित करते समय ऐसे शब्द जान-बूझकर बोलते जिनसे बुराई का पहलू निकलता था। उससे अपमान और बददुआ का मिश्रण रहता

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४५६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४५६ से)

बुग़ज़ (जलन) तथा शत्रुता को छुपाये हुए रहती थीं। "तऽनन् फ़िद्दीनि" इस विवरण ने बता दिया कि यहूद-अरब की सारी हरकतें बेखयाली से नहीं थीं और न तफ़्रीहन् थीं, बल्कि अल्लाह के दीन पर ताना करना, उसे खराब करना ही उनका उद्देश्य था। "समिऽना व अतऽना अस्मऽ वन्ज़ुर्ना"— शिक्षा इन शब्दों के प्रयोग की हुई कि यह बुराई के पहलू से खाली हैं।

७७ "लअन-हुमुल्लाहु"— यानी अल्लाह ने अपनी विशिष्ट दया से उनके दिलों को दूर कर दिया। "लऽनत" पर हाशिया प्रथम पारे में गुज़र चुका। "बि कुफ़्रिहिम्"— इससे यह स्पष्ट हो गया कि विशिष्ट रहमत से भी यह दूरी और अलाहिदगी अपने-आप और शुरू में नहीं हुई बल्कि यह उन्हीं के करतूतों क फल था।

७८ और यह थोड़े से वही थे जो आगे चलकर मुसलमान हो गये। बाक़ी सबका खातमा अल्लाह के ज्ञानानुसार कुफ़्र ही पर हुआ।

७९ यानी तौरेत की उसकी असली और बिना अदला-बदली की दशा में। "ऊतुल् किताब" यहाँ किताब से मुराद तौरेत है। "बिमा नज़्ज़ल्ना" इस किताब पर ईमान लाओ जिसे अपने रसूल पर अब हमने उतारा है अर्थात् क़ुर्आन पर। "मुसद्दिक़ल्-लिमा मअकुम्" यानी क़ुर्आन तो अस्ल तौरेत की पुष्टि करनेवाला ही है न कि उसका खण्डन करनेवाला। कसौटी यह है कि तस्दीक़ एवं समर्थन उसी तौरेत का जो अपनी असली और अदल-बदल की हुई सूरत में मौजूद हो।

८० (या उसी प्रकार के किसी भी भयंकर एवं सख्त अज़ाब में डाल दें।) "नतमिस वुजूहन्"— 'तम्स वुजूह' से मुराद है चेहरे के नक़्शोनिगार और आँख, नाक, मुँह इत्यादि अंगों को मिटा देना। "फ़ नरुद्दहा अला' अद्बारिहा"— यानी उन लोगों के चेहरों को गुद्दियों की ओर पलट दें। 'फ़े' हमेशा बीच में लाने के लिए नहीं आता कभी संक्षिप्त के विवरण हेतु भी आता है चुनांचे यहाँ इसी ग़रज़ से है और यह दूसरा वाक्य प्रथम वाक्य का विवरण एवं स्पष्टीकरण कर रहा है। यह डरावे सब आखिरत के अज़ाब के हैं, परन्तु 'वुजूह' का अर्थ अप्रत्यक्ष रूप में सरदारों तथा रईसों का भी होता है। इसलिए फ़िक़रे के दूसरे अर्थ यह होंगे कि हम उनके सरदारों को अपमानित एवं ज़लील करें चुनांचे कश्शाफ़ और कबीर इत्यादि में यह अर्थ भी नक़्ल हुए हैं। इसी प्रकार इससे मिले हुए वाक्य के अर्थ यह होंगे कि हम उनकी शान और बड़ाई को समाप्त कर दें और उन पर ज़िल्लत, अपमान एवं तबाही उतार दें। जैसा कि कश्शाफ़, बैज़ावी आदि में यह क़ौल भी नक़्ल हुआ है। "मिन् क़ब्लि"— का सही अर्थ दृष्टि में न रहने से एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'तम्स' और 'मस्ख' की यह सज़ा मिली है कब ? ज़ाहिर है कि यह सज़ाएँ तो आखिरत में सामने आयेंगी और 'मिन् क़ब्लि' हमेशा किसी घटना के घटित हो जाने पर ही दलालत नहीं करता, बल्कि केवल उसके हो सकने पर भी तर्क करता है और चेतावनी के अवसर पर आता है तो इस अर्थ में इसका प्रयोग क़ुर्आने मजीद में बहुत बार हुआ है। 'क़ब्ल' के यहाँ कोई माने भी नहीं समझता कि बाद की घटना केवल ज़माने के लिहाज़ से आखिर में है और घटित होकर रहेगा बल्कि मतलब केवल इस क़दर है कि उसके घटित होने से स्वयं को बचाया जाए। उर्दू और हिन्दी मुहावरों में हम बराबर कहते रहते हैं कि इसके पूर्व कि दोज़ख में पड़ो, गुनाहों से तौबा कर लो। इसी प्रकार इस आयत का स्पष्ट अर्थ केवल इस क़दर है कि 'तम्स' एवं 'मस्ख' की सज़ाओं से बचने के लिए क़ुर्आन की तस्दीक़ कर लो।

८१ "अस्हाबस्सब्ति" पर हाशिया प्रथम पारे में गुज़र चुका है।

८२ (सो तम्स, मस्ख तथा लानत, जिस चीज़ का हुक्म हो चुका वह हर हाल में पूरा होकर रहेगा।)

८३ (सो मुश्रिक हमेशा के अज़ाब में पड़ा रहेगा।) मुश्रिक के मोक्ष की कोई सूरत ही नहीं। उसने जन्नत की नेमतों को स्वीकार करने की क्षमता एवं योग्यता ही अपने में बाक़ी नहीं रखी।

८४ (और इस अपराध के कारण वह मोक्ष के योग्य न होगा।) "अिफ़्तरा' अिस्मन् अज़ीमन्"— "गुनाह समेटा" का मुहावरा खास इस अर्थ को अदा करने के लिए है। "मा दून ज़ालिक" यानी और जितने भी गुनाह हो सकते हैं वह हर दशा में शिर्क से कम दर्जे के ही होंगे। "यग़्फ़िरु लि मंय्यशा'अु"— यानी शिर्क तो आसमानी हुकूमत से खुली हुई बग़ावत (विद्रोह) है। बस उसे छोड़कर शेष हर गुनाह से माफ़ी की गुंजाइश रहती है और जिस किसी के हक़ में अल्लाह की मर्ज़ी होगी उसे क्षमा मिल जायेगी चाहे उसने तौबा की हो या न की हो। आयत में खण्डन है 'खारिजियों (एक वर्ग)' इत्यादि के उन गुमराह वर्गों का जो समझते हैं कि हर गुनाह शिर्क है और हर गुनाह की सज़ा सदा के लिए अज़ाब है। "लि मंय्यशा'अु"— मशीयत यानी अल्लाह की मर्ज़ी का लागू होना बिना किसी प्रतिबन्ध और शर्त के है। यहीं से मोतज़िला (एक फ़िर्क़:) का खण्डन निकल आया जो कहते हैं कि मग़्फ़िरत उनकी होगी जो तौबा कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लें न कि उनकी जो तौबा न करेंगे। तौबा के बाद तो ज़ाहिर है कि अहलें कुफ़ और शिर्क वालों की भी मग़्फ़िरत (मोक्ष, माफ़ी) हो जाती है। तफ़्सीर कबीर में इमाम राज़ी ने नक़्ल किया है कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास फ़र्माते थे कि जिस प्रकार मुश्रिक के साथ कोई अमल लाभकर नहीं हो सकता, इसी प्रकार मेरा विचार है कि तौहीद के साथ कोई अमल हानि नहीं करता। हज़रत उमर के समक्ष यह कथन दोहराया गया तो आपने इस पर मौन धारण किया।

८५ (केवल अपनी उच्च पारिवारिक दशा के आधार पर और किसी ग़ैरशरई आधार पर।) **"अलम् तर अिलल्लज़ीन"**— यानी ऐसे लोगों की मूर्खता भी देखने योग्य है। **"अल्लज़ीन युज़क्कून अन्फ़ुसहुम्"**— यानी अल्लाह तआ़ला ने तौहीद और संयम को जो बड़ाई और मक़्बूलियत (ख़ुदा की दृष्टि में अच्छाई) को जो मेयार नियत कर दिया है उसे छोड़कर लोगों ने नस्ल इत्यादि के नाना प्रकार के मेयार, बड़ाई और बुज़ुर्गी के, अपनी ओर से गढ़ लिये हैं और इन आधारों पर स्वयं को पवित्र एवं बड़ा समझने लगते हैं। यह सारी बात मूर्खता और गुमराही है। आयत का सकेत विशेष रूप से यहूद की ओर है जो अपने को नबियों की नस्ल का होने के आधार पर पवित्र एवं पुनीत समझ रहे थे। बाक़ी भारत में ब्राह्मण और क्षत्री आदि अपने को केवल उच्च परिवारों में से होने के कारण पवित्र समझनेवाले, अपने चन्द्रवंशी, सूर्यबंशी होने पर घमण्ड और अभिमान करनेवाले या जापानियों की भाँति अपने को देवताओं के वंशज माननेवाले सभी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं और फिर इसी प्रकार किसी दर्जे में वह मुसलमान भी जो अपनी पीरज़ादगी, मख़्दूमज़ादगी, सय्यदज़ादगी के जामे में अपने को दूसरों से उच्च समझते रहते हैं।

८६ यानी विश्वसनीय पवित्रता तो उसी की है जिसे अल्लाह पाक़ीज़ा माने। अपने ज़ोम (गुमान) और अभिमान से स्वयं को पवित्र ठहरा लेने से क्या होता है?

८७ यानी जो सज़ा उन्हें मिलेगी वह उनके अपराध से कण भी अधिक न होगी। उनका अपराध है ही इसी कड़ी सज़ा के लाइक़। सज़ा अधिकार से अधिक नहीं। **'फ़तीलन्'**— 'फ़तील' के शाब्दिक अर्थ धागे के हैं। अरबी मुहावरे में छोटी-से-छोटी और तुच्छ चीज इसका अर्थ होता है। जैसे एक-दूसरे स्थान पर **"व ला युज़्लमून नक़ीरन्"** भी आया है। जैसे उर्दू व हिन्दी में ऐसे अवसर पर "ज़र्रा भर", "रत्ती भर" या "बाल भर" बोलते हैं।

८८ (तो ऐसे खुले हुए अपराध पर ऐसी सज़ा क्या कुछ अत्याचार या ज़्यादती है?)

८९ यानी यहूद और किताब से मुराद तौरेत है? **"अलम् तर"**— पर हाशिया अभी गुज़र चुका है यह फ़िक़रा आश्चर्य के अवसर पर आता है।

९० **'अल् जिब्ति'**— जिब्त अल्लाह के सिवा हर माबूद पर लागू होता है। (माबूद— पूजनीय, जिसकी इबादत एवं उपासना की जाए।) परन्तु विशेष रूप से इसका प्रयोग जादूगरों और काहिनों के लिए होता है। (काहिन— वह लोग जो भविष्यवाणी किया करते थे और अपने ज्ञान से ग़ैब की बातें बताने का दावा करते थे।) सहाबा और ताबिईन दोनों से यह अर्थ वर्णित हैं। यहूद में जंत्र-मंत्र, जादू, ज्योतिष, शकुन इत्यादि सिफ़्ली इल्मों का चाव आरम्भ से चला आ रहा है जैसा कि प्रथम पारे में आयत **"वत्तबिअू मा ततलुश-शयातीन"** के अन्तर्गत दिखाया जा चुका है। **"जिब्त"** का शब्द लाकर अजब नहीं कि संकेत उनकी इसी क़ौमी आदत की ओर करने का उद्देश्य हो। **"अत्ताग़ूतौ"**— पर हाशिया तीसरे पारे में गुज़र चुका है। **'ताग़ूत'** हर वह चीज़ है जो इन्सान में गुमराही और गुनाहगारी तथा अल्लाह से दूरी उत्पन्न कर दें। हो सकता है कि इस शब्द को लाकर यहूद की भौतिकता और भौतिक पूजा की ओर उनके झुकाव होने की तरफ़ ध्यानाकर्षण करना मंज़ूर हो।

९१ रिवायतों में आता है कि यहूद सरदार मक्के में आये तो क़ुरैश ने उनसे पूछा कि हमारा मज़हब बेहतर है या मुहम्मद (स०) के अनुयाइयों का और प्रश्न में अपने धार्मिक कार्यों— जैसे हाजियों की सेवा और काबे की सेवा का भी ज़िक्र कर दिया। सरदार यहूद बोले कि उनके दीन से तो तुम्हारा ही दीन बेहतर है और उनसे ज़्यादा हिदायत (सीख) पाये हुए तुम ही हो। **'लल्लज़ीन कफ़रू'** से मुराद क़ुरैश और मक्का के मुश्रिक हैं। 'ल' के माने 'बाबत' या 'सम्बन्ध' के हैं। **"अल्लज़ीन आमनू"**— से मुराद मुसलमान हैं।

९२ स्वयं तौहीद का दीन रखकर और नबियों के विधान से परिचित होकर तौहीद के दीन से इस क़दर अप्रसन्नता और रसूल (स०) की ज़ात से इतनी जलन कि शिर्क और मुश्रिकों तक को उनसे बेहतर बता रहे हैं। लानत एवं धिक्कार के अधिकारी उनसे बढ़कर और कौन होंगे?

९३ (जो अज़ाब से उसे बचा ले या उसमें कुछ कमी ही करा ले।) मुश्रिक क़ौमों ने और उनके क़बीलों ने ख़ुदा के साथ-साथ अपने और भी हिमायती, सिफ़ारिशी गढ़ रखे थे, यह उन्हीं पर लानत हो रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अम् लहुम् नसीबुम् - मिनल्मुल्कि फ़ अिज़ल्ला युअ्तूनन्नास नक़ीरन् ला (५३)
अम् यह्सुदूनन्नास अला मा' आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही ज फ़क़द् आतैना'
आल अिब्राहीमल् - किताब वल् - हिक्मत व आतैनाहुम् मुल्कन् अज़ीमन्
(५४) फ़ मिन्हुम् मन् आमन बिही व मिन्हुम् मन् सद्द अन्हु त व
कफ़ा बि जहन्नम सअीरन् (५५) अिन्नल्लज़ीन
कफ़रू बि आयातिना सौफ़ नुस्लीहिम्
नारन् त कुल्लमा नज़िजत् जुलूदुहुम् बद्दल्ना-
हुम् जुलूदन् ग़ैरहा लि यज़ूक़ुल् - अज़ाब त
अिन्नल्लाह कान अज़ीज़न् हकीमन् (५६)
रु ब/अ १/४ वल्लज़ीन आमनू व अमिलुस्-सालिहाति सनुद्-
ख़िलुहुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिहल्-
अन्हारु ख़ालिदीन फ़ीहा' अबदन् त
लहुम् फ़ीहा' अज़्वाजुम् - मुतह्हरतुन् ज
०व नुद्ख़िलुहुम् ज़िल्लन् ज़लीलन् (५७)
अिन्नल्लाह यअ्मुरुकुम् अन् तुअद्दुल्-
अमानाति अिला' अह्लिहा ला व अिज़ा
हकम्तुम् बैनन्नासि अन् तह्कुमू बिल्-
अद्लि त अिन्नल्लाह निअिम्मा यअिज़ुकुम् बिही त अिन्नल्लाह कान
समीअम् - बसीरन् (५८) या' अय्युहल्लज़ीन आमनू' अतीअुल्लाह व
अतीअुर्रसूल व अुलिल् - अम्रि मिन्कुम् ज फ़ अिन् तनाज़अ्तुम् फ़ी शैअिन्
फ़ रुद्दूहु अिलल्लाहि वर्रसूलि अिन् कुन्तुम् तुअ्मिनून बिल्लाहि वल्- यौमिल्-
★ रु. ८/५ आ ६ आख़िरि त ज़ालिक ख़ैरुंव्व अह्सनु तअ्वीलन् (५९) ★ अलम् तर
अिलल्लज़ीन यज़्अुमून अन्नहुम् आमनू बिमा' अुन्ज़िल अिलैक व मा'
अुन्ज़िल मिन् क़ब्लिक युरीदून अंय्यतहाकमू' अिलत्ताग़ूति व क़द् अुमिरू'
अंय्यक्फ़ुरू बिही त व युरीदुश्शैतानु अंय्युज़िल्लहुम् ज़लालम् - बअीदन् (६०)

والمحصنت ٥ — ٧٩ — النسآء

مِّنَ الْمُلْكِ فَإِذًا لَّا يُؤْتُونَ النَّاسَ نَقِيرًا ۝ أَمْ يَحْسُدُونَ النَّاسَ
عَلَىٰ مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِن فَضْلِهِ ۖ فَقَدْ آتَيْنَا آلَ إِبْرَاهِيمَ الْكِتَابَ
وَالْحِكْمَةَ وَآتَيْنَاهُم مُّلْكًا عَظِيمًا ۝ فَمِنْهُم مَّنْ آمَنَ بِهِ وَمِنْهُم
مَّن صَدَّ عَنْهُ ۚ وَكَفَىٰ بِجَهَنَّمَ سَعِيرًا ۝ إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا
بِآيَاتِنَا سَوْفَ نُصْلِيهِمْ نَارًا كُلَّمَا نَضِجَتْ جُلُودُهُم بَدَّلْنَاهُمْ
جُلُودًا غَيْرَهَا لِيَذُوقُوا الْعَذَابَ ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَزِيزًا حَكِيمًا ۝ ع
وَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنَّاتٍ تَجْرِي مِن
تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا ۖ لَّهُمْ فِيهَا أَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ ۖ
وَنُدْخِلُهُمْ ظِلًّا ظَلِيلًا ۝ إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تُؤَدُّوا الْأَمَانَاتِ
إِلَىٰ أَهْلِهَا وَإِذَا حَكَمْتُم بَيْنَ النَّاسِ أَن تَحْكُمُوا بِالْعَدْلِ ۚ إِنَّ
اللَّهَ نِعِمَّا يَعِظُكُم بِهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ سَمِيعًا بَصِيرًا ۝ يَا أَيُّهَا الَّذِينَ
آمَنُوا أَطِيعُوا اللَّهَ وَأَطِيعُوا الرَّسُولَ وَأُولِي الْأَمْرِ مِنكُمْ ۖ فَإِن
تَنَازَعْتُمْ فِي شَيْءٍ فَرُدُّوهُ إِلَى اللَّهِ وَالرَّسُولِ إِن كُنتُمْ تُؤْمِنُونَ
بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ ۚ ذَٰلِكَ خَيْرٌ وَأَحْسَنُ تَأْوِيلًا ۝ أَلَمْ تَرَ إِلَى
الَّذِينَ يَزْعُمُونَ أَنَّهُمْ آمَنُوا بِمَا أُنزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنزِلَ مِن
قَبْلِكَ يُرِيدُونَ أَن يَتَحَاكَمُوا إِلَى الطَّاغُوتِ وَقَدْ أُمِرُوا أَن
يَكْفُرُوا بِهِ وَيُرِيدُ الشَّيْطَانُ أَن يُضِلَّهُمْ ضَلَالًا بَعِيدًا ۝ وَ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्या उन्हें भी कुछ अधिकार नसीब है ? तो ऐसी दशा में तो यह लोगों को तिल भर भी न दें[९४]। (५३) क्या यह लोगों पर हसद कर रहे हैं उन चीज़ों के कारण जो उन्हें अल्लाह ने अपनी कृपा से दे रखी है[९५]; सो हमने तो आलि इब्राहीम को किताब एवं हिकमत दी है और उन्हें बड़ा अधिकार भी दिया है[९६]। (५४) और उनमें से कोई-कोई तो इस पर ईमान लाये और कोई-कोई इससे रुके रहे; और दहकता हुआ जहन्नम ही काफ़ी है[९७]। (५५) बेशक जिन लोगों ने हमारी निशानियों के साथ कुफ़्र किया, हम उन्हें शीघ्र ही (दोज़ख़ की) आग में झोंकेंगे। जब कभी उनकी खालें पक जायेंगी, हम उनकी खालों को दूसरी कर दिया करेंगे ताकि वह (बराबर ताज़ा) अज़ाब चखते रहें[९८]। बेशक अल्लाह ज़बरदस्त है, हिकमतवाला है[९९]। (५६) ● और जो लोग ईमान ले आये और उन्होंने नेक अमल भी किये, उन्हें हम शीघ्र ही बाग़ों में प्रवेश करेंगे जिनके नीचे नहरें पड़ी बह रही होंगी। उनमें वह हमेशा-हमेश रहेंगे। उनके लिए उन बाग़ों में साफ़-सुथरी बीवियाँ होंगी और हम उन्हें बहुत गुंजान छाया में ला उतारेंगे[१००]। (५७) अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि उत्तरदायित्व उनके योग्य को सौंपो[१०१], और जब लोगों के मध्य में फ़ैसला करो तो इन्साफ़ के साथ फ़ैसला करो[१०२]। बेशक अल्लाह तुमको बहुत अच्छी बात की नसीहत करता है[१०३]। बेशक अल्लाह बड़ा सुनने वाला है, बड़ा देखनेवाला है[१०४]। (५८) ऐ ईमानवालो ! अल्लाह की आज्ञा का पालन करो और रसूल की और अपने में जो अधिकार रखते हों[१०५]। फिर यदि तुममें परस्पर मतभेद हो जाए किसी मामले में, तो उसको अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ लौटा लिया करो[१०६] यदि तुम अल्लाह पर और आख़िरत पर ईमान रखते हो[१०७]। यही बेहतर है और अंजाम के लिहाज़ से भी यही अच्छा है[१०८]। (५९) ★

● रुब् १/४

★ रु. ८/५ आ ६

क्या आपने उन लोगों पर नज़र नहीं की जो दावा रखते हैं कि वह इस किताब पर ईमान ले आये हैं जो आप पर उतारी गई है और जो आपके पूर्व उतर चुकी है[१०९], परन्तु चाहते यह हैं कि अपने मुक़द्दमे ताग़ूत के पास ले जाएँ[११०]; हालांकि उन्हें हुक्म मिल चुका है कि इसके मुक़ाबले में कुफ़्र इख़्तियार करें[१११] और शैतान तो चाहता ही यह है कि उन्हें भटकाकर बहुत दूर-दराज़ ले जाए[११२]। (६०)

---

९४ यानी दीनी मक़्बूलियत और रूहानी बड़ाई अलग रही, यहूद को यदि दुनियावी अमारत और सत्ता नसीब होती तो यह इतने कंजूस और छोटी तबीयत के हैं कि उसमें किसी को शरीक न करते बल्कि लोगों को उनका हक़ भी न देते और शायद इसी बख़ीली और तंगदिली की क़ौमी आदत के कारण यहूद दुनियावी सत्ता से भी सदियों तक वञ्चित रखे गये। **'नक़ीरन्'** नक़ीर के माने शाब्दिक रूप में उस गढ़े के होते हैं जो खजूर की गुठली के बीच में होता है। अरबी मुहावरे में 'फ़तील' के मिसाल। इससे मुराद तुच्छ-से-तुच्छ और छोटी-से-छोटी चीज़ होती है, जैसे उर्दू-हिन्दी में "राई भर", "रती भर" आदि बोलते हैं; "तिल बराबर" अनुवाद शाह अब्दुल् क़ादिर देहलवी का है। **"फ़तीला"**— पर हाशिया अभी गुज़र चुका है। **'फ़तीला'**, **'नक़ीरा'** लगभग एक ही अर्थ अदा करने के लिए अरबी में आते हैं।

९५ (जैसे नबूवत की नेमत) **'अन्नास'** के शाब्दिक अर्थ तो "लोगों" के हैं, परन्तु क़ुर्आनी मुहावरे में इसका अर्थ एक निश्चित गिरोह भी होता है। यहाँ इसका संकेत अरब या बनी इस्माईल या स्वयं रसूलल्लाह और मोमिनों की ओर समझा गया है। यहूद को अस्ल जलन यही थी कि नबी तो हमेशा इस्राईलियों में हुए हैं, यह एक अरब को नबूवत कैसे मिल गई ! **"आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही"**— मुराद नबूवत है। क़तादा और इब्ने जुरैज ताबिईन से यही अर्थ वर्णित है।

९६ इस इब्राहीमी नस्ल की दो बड़ी शाखाएँ हैं, बनी इस्राईल और बनी इस्माईल। यहाँ बनी इस्राईल को याद दिलाया गया है कि हमारी नेमतों के वादे तो इब्राहीम (अलै०) की पूरी नस्ल से हैं, फिर तुम अकेले अपने को ही उन सभी नेमतों का हक़दार क्यों समझते हो ? और जब एक इस्माईली को यह नेमत मिल रही है तो तुम्हें जलन क्यों होती है ? आश्चर्य क्यों है ? **"अल्‌किताब वल्‌हिक्मत"**— यह दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूहानी नेमतें हैं। इनका एक साथ वर्णन किया है। "मुल्क अज़ीम"— दुनियावी नेमत है, उसका ज़िक्र अलग करके किया है।

९७ (इसीलिए दुनिया में सज़ा मिलना या न मिलना बहुत ध्यान देने की चीज़ नहीं।) "मन् आमन बिही" में सर्वनाम किस ओर है ? बाज़ ने इससे किताब को मुराद लिया है।

९८ आयत का उद्देश्य दोज़ख वालों के सदैव के लिए अज़ाब की घोषणा करना है। "नज़िजत्"— 'नज़िज' के शाब्दिक अर्थ 'पक जाने' के हैं। यहाँ मुराद 'जल चुकने' से है। उद्देश्य यहाँ यही है कि अज़ाब का सिलसिला कटेगा नहीं और अज़ाब का एहसास हमेशा ताज़ा होता रहेगा। 'बहर' के सम्पादक ने भी यही क़ौल नक़्ल किया है अगर्चे क़बूल नहीं किया है। यहाँ यह इर्शाद हो रहा है कि यह न समझना कि खाल जब जल जायेगी तो उसमें और अधिक दुःख का एहसास ही कहाँ बाक़ी रहेगा, नहीं बल्कि खाल का एहसास हर समय ताज़ा होता रहेगा। खाल बेहिस कभी न होने पायेगी। आख़िरत में चीज़ों के असर को दुनिया के असरों जैसा समझना बड़ी मूर्खता है।

९९ चुनांचे 'सिफ़ते अज़ीज़' का तक़ाज़ा यह है कि वह नये-पुराने हर प्रकार के अज़ाब पर हर समय शक्तिमान रहे और 'सिफ़ते हकीम' का तक़ाज़ा यह है कि अज़ाब हो या अज़ाब का नवीनीकरण, कोई भी चीज़ हिकमतों और मस्लहतों से खाली नहीं।

१०० अर्थात् उन्हें आराम और हर प्रकार की राहत सदैव उपलब्ध रहेगी। "अज़्वाजुम्-मुतह्हरतुन्" पर हाशिया प्रथम पारे में गुज़र चुका है।

१०१ (ऐ इन्सानो !) "अमानत"— अमानत का शब्द अरबी में बड़ा विशाल अर्थ रखता है। हर प्रकार की ज़िम्मेदारियाँ उसके अन्तर्गत आ जाती हैं। हर शब्द अल्लाह के अधिकारों और बन्दों के अधिकारों का अर्थ अदा करता है। और तफ़्सीर के इमाम भी इसी विशालता और सारगर्भिता की ओर गये हैं। चुनांचे इमाम राज़ी ने विवरण के साथ लिखा है कि उसके अन्तर्गत एतिक़ादात, व्योहार और मामलात सब ही आ गये। दूसरों ने भी ऐसा ही कुछ कहा है। इसी कारण इन हज़रात ने (महानुभावों ने) सम्बोधन इस आयत का केवल मुसलमानों से नहीं, समस्त आदम की सन्तान से समझा है। यह आयत आदेशों के सम्बन्ध में बड़ी महत्त्वपूर्ण आयतों में से है। अर्थ की यही विशालता सहाबा और ताबिईन से भी वर्णित है। इसके साथ ही यह बात भी निकल आई कि शरीअत की व्यवस्था में कोई स्थान सुफ़ारिश और प्रयास के लिए नहीं है। न वहाँ भाई-भतीजावाद और सगे-सम्बन्धीवाद आदि के लिए जगह है। हुकूमत में ओहदे केवल उन्हीं को मिलने चाहिए जो उन सेवाओं और मन्सबों के योग्य हों।

१०२ (उनके परस्पर हक़ों के विषय में) अब सम्बोधन हाकिमों और अधिकारियों से हो रहा है।

१०३ (कि इस न्याय-विधि से दुनिया के प्रबन्ध ठीक रहेंगे और आख़िरत में भी बदला उसी का है।) "यअ़िज़ुकुम् बिही"— से इशारा इसी न्याय-विधि की ओर है कि उससे सारे शासन और समाज की व्यवस्था टीक प्रकार से सृजित रहेगी।

१०४ चुनांचे वह हक़ों की अदायगी और न्याय की व्यवस्था, सबके विषय में तुम्हारे शब्दों और कथनों को भी सुनता रहता है और तुम्हारी नीयतों और कार्यों के पीछे जो इरादे हैं उन पर भी दृष्टि रखता है।

१०५ (कि उनके आदेश भी खुदा और रसूल के आदेशों पर ही आधारित और उन्हीं से लिये गये होंगे !) "अतीउल्लाह"— असली और सच्चा हाकिम तथा जिसकी आज्ञापालन की जाए वह केवल अल्लाह है। "अतीउर्रसूल"— रसूल 'मुताअ़ मुतलक़' (केवल जिनका कहना माना जाए) इस मानी में हैं कि अल्लाह के आदेश मनुष्य तक वही पहुँचाते हैं और उन आदेशों का अर्थ और विस्तार करते हैं। 'उलिल् अम्रि'— यह 'उलिल् अम्रि' कौन हैं ? इस पर काफ़ी तर्क-वितर्क हुआ है। आलिम और उम्मत के फ़क़ीहों को मुराद लिया गया है और हाकिम तथा अधिकारी भी। और अच्छा यह है कि दोनों ही मुराद लिये जाएँ, क्योंकि शरीअत के हुक्मों को लागू करनेवाले यह दोनों ही होते हैं। 'उलिल् अम्रि' चाहे आलिम और फ़क़ीह हों चाहे अमीर और हाकिम, बहर सूरत उनमें स्थायी रूप से यह योग्यता नहीं कि उनकी हमेशा ताबेदारी की जाए। वह इस योग्य केवल इस हैसियत से हैं कि शरीअत के हुक्मों को लागू करते हैं या बाज़ अंशों का अर्थ करते हैं। इस सीमा के आगे उनकी आज्ञापालन नहीं। 'मिनकुम्'— इस विस्तार के होते हुए, इस आयत से जिन साहिबों ने किसी ग़ैर-इस्लामी हुकूमत की आज्ञापालन पर तर्क दिया है, उन्होंने अपनी सुन्दर समझ के ऊपर बड़ा ज़ुल्म किया है। आज्ञापालन तो मुस्लिम अमीर की भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर दशा और हर स्थिति में जाइज़ नहीं है, न कि किसी ग़ैरमुस्लिम की। वह यदि जाइज़ है भी तो कम-से-कम इस आयत से तो उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

१०६ (और इसकी और अधिक जाँच कर लिया करो कि **'अुलिल् अम्रि'** का आदेश शरीअत के आदेशों के अनुसार कहाँ तक है! **"अिलल्लाहि"**— अल्लाह के आदेशों की ओर लौटना तो जाहिर है कि अल्लाह की किताब की ओर लौटने से हर समय सम्भव है, परन्तु 'अिलर्रसूल' की तामील की कोई सूरत रसूलुल्लाह (स०) की वफ़ात के पश्चात् इसके सिवा सम्भव नहीं है कि हदीसों और सुन्नतों के दफ़्तर की ओर लौटा जाए। हदीस एवं सुन्नत का तर्क इस प्रकार अहलें क़ुर्आन के फ़िर्क़े के अनुसार स्वयं क़ुर्आन से सिद्ध है। **"अिन् तनाज़अ्तुम्"**— सर्वनाम के बहुवचन सम्बोधन से मुराद **'अुलिल् अम्रि'** और उम्मत के साधारण सदस्य हैं। इस विवरण ने यह सत्य और स्पष्ट कर दिया कि हाकिमों और आलिमों से आम जनता का मतभेद बिलकुल जाइज़ है। अन्तिम अपील किताब एवं सुन्नत ही की अदालत में होनी चाहिए और वही सारी शरीअत का स्रोत है। यहीं से उस वर्ग की बात का भी खण्डन होता है जो रसूलें मासूम के अलावा स्थायी रूप से मासूम इमामों का भी वुजूद (अस्तित्व) माने हुए है। हर इमाम वक़्त अपनी सारी बुज़ुर्गी के बावजूद ग़ैरमासूम है।

१०७ (और इसलिए बे-नकेल के ऊँट न बनो बल्कि अपने उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी का एहसास रखते रहो।) यह प्रश्न आख़िरत को नज़र के सामने रखना ही तो है जो मोमिन को सीधी राह पर हर समय क़ायम रखता है। शेख रशीद रज़ा मिस्री ने कहा है कि क़ुर्आन मजीद की यही दो आयतें— **"अिन्नल्-लाह या मुरुकुम्"** और **"या अय्युहल्लज़ीन आ'मनू अतीअू"** (अन्त तक) इस्लामी हुकूमत की पूरी बुनियाद का काम दे सकती हैं और अगर इनके अलावा क़ुर्आन मजीद में इस विषय पर अन्य कुछ भी न होता तो सारे आदेशों को ढूँढ़ने के लिए यही दो आयतें काफ़ी थीं।

१०८ यानी दुनिया में भी यही शान्ति एवं राहत का साधन है और आख़िरत में भी मोक्ष और भलाई का माध्यम है। **"ज़ालिक"**— यानी यही कार्यविधि जिसका अभी वर्णन हो चुका। असल एवं किसी शर्त के बिना अल्लाह की आज्ञाओं का पालन और अल्लाह के नायबें मासूम की हैसियत से रसूल के आदेशों का पालन। फिर इन दोनों के माध्यम से और फिर इन्हीं की मर्ज़ी से और इनके मेल से शर्त के साथ इस्लाम के हाकिमों और आलिमों का आज्ञा-पालन।

१०९ यानी यहूद तथा मुनाफ़िक़ों को मुराद लिया गया है। **"मा' अुन्ज़िल मिन् क़ब्लिक"**— यानी तौरेत। **"यज़्अुमून"**— 'ज़ोम' के असली माने कथनानुसार के हैं, चाहे वह सत्य हो चाहे असत्य, परन्तु साधारणत: इसका प्रयोग झूठ या सन्देहजनक बात के लिए होता है। क़ुर्आनी मुहावरे में यह हमेशा बुराई का पहलू लिये हुए आया है। **'अलम् तर'** इस विषयक तर्कीब से ज़ाहिर हो गया कि आगे किसी महत्त्वपूर्ण या अजीब घटना का वर्णन आनेवाला है।

११० (बजाय इसके कि उसे शरीअत की अदालत में लायें।) **'ताग़ूत'** पर पूर्व ही हाशिया गुज़र चुका है। यहाँ मुराद हर ग़ैर-अल्लाह की हुकूमत और सत्ता है।

१११ यानी उसकी हाकिमीयत को मानने से इन्कार कर दें और ताग़ूत की सत्ता के आगे गरदन झुकायें।

११२ यानी बनी आदम के अज़ली शत्रु शैतान की तो इच्छा ही यह रहती है कि आदमज़ादों को सत्य के मार्ग से अधिक-से-अधिक दूर कर दें।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६६ से)

और उनकी घृणा काफ़िरों से अधिक बढ़ी हुई है और मैं ज़ाहिर में तो बहरहाल मुसलमान हूँ वहाँ मेरी ही चल जाएगी। आयतों में तल्मीह (किसी घटना का सन्दर्भ) इस घटना की ओर है। मुनाफ़िक़ अपना यह उज्र पेश करते थे कि हम किसी और के पास मुक़द्दमा कुछ इस विचार से थोड़े ही ले जाते हैं कि फ़ैसले का अधिकार रसूल के अलावा किसी अन्य को प्राप्त है बल्कि हम तो इसलिए जाते हैं कि वहाँ सत्य और न्याय तथा नियम से ज़्यादा भागीदारों की मस्लहत और उनकी प्रसन्नता पर दृष्टि रहेगी।

११६ (और उनके करतूतों को ख़ुदा के ज्ञान और उसकी पूछताछ के हवाले रखिए। **'मा फ़ी क़ुलूबिहिम्'** यानी जो कुछ यह अपने दिलों में कुफ़्र एवं निफ़ाक़ की क़िस्म से अपने दिलों में छुपाये हुए हैं।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४७० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व अिज़ा क़ील लहुम् तआलौ अिला मा' अन्ज़लल्लाहु व अिलर्रसूलि रअैतल्-मुनाफ़िक़ीन यसुद्दून अन्क सुदूदन् ज (६१) फ़ कैफ़ अिज़ा' असाबत्हुम् मुसीबतुम् - बिमा क़द्दमत् अैदीहिम् सुम्म जा'अूक यह्लिफ़ून क़ बिल्लाहि अिन् अरद्ना' अिल्ला' अिह्सानंव्व तौफ़ीक़न् (६२) अुला'अिकल्लज़ीन यअ्लमुल्लाहु मा फ़ी क़ुलूबिहिम् क़ फ़ अअ्रिज़् अन्हुम् व अिज़्हुम् व क़ुल्लहुम् फ़ी' अन्फ़ुसिहिम् क़ौलम् - बलीग़न् (६३) व मा' अर्सल्ना मिर्रसूलिन् अिल्ला लि युताअ बि अिज़्निल्लाहि त व लौ अन्नहुम् अिज़्ज़लमू' अन्फ़ुसहुम् जा'अूक फ़स्तग़्फ़रुल्लाह वस्तग़्फ़र लहुमुर्रसूलु ल वजदुल्लाह तव्वाबर्रहीमन् (६४) फ़ ला व रब्बिक ला युअ्मिनून हत्ता युहक्किमूक फ़ीमा शजर बैनहुम् सुम्म ला यजिदू फ़ी' अन्फ़ुसिहिम् हरजम्मिम्मा क़ज़ैत व युसल्लिमू तस्लीमन् (६५) व लौ अन्ना कतब्ना अलैहिम् अनिक़्तुलू' अन्फ़ुसकुम् अविख़्रुजू मिन् दियारिकुम् मा फ़अलूहु अिल्ला क़लीलुम् - मिन्हुम् त व लौ अन्नहुम् फ़अलू मा यूअज़ून बिही लकान खैरल्लहुम् व अशद्द तस्बीतन् ला (६६) ०व अिज़ल्ल - आतैनाहुम् मिल्लदुन्ना' अज्रन् अज़ीमन् ला (६७) ०व लहदैनाहुम् सिरातम् - मुस्तक़ीमन् (६८) व मंय्युतिअिल्लाह वर्रसूल फ़ अुला'अिक मअल्लज़ीन अन्अमल्लाहु अलैहिम् मिनन्नबिय्यीन वसिद्दीक़ीन वश्शुहदा'अि वस्सालिहीन ज व हसुन अुला'अिक रफ़ीक़न् त (६९) ज़ालिकल् - फ़ज़्लु मिनल्लाहि त व कफ़ा बिल्लाहि अलीमन् (७०) ★ या' अय्युहल्लज़ीन आमनू खुज़ू हिज़्रकुम् फ़न्फ़िरू सुबातिन् अविन्फ़िरू जमीअन् (७१)

إِذَا قِيلَ لَهُمْ تَعَالَوْا إِلَىٰ مَا أَنزَلَ اللَّهُ وَإِلَى الرَّسُولِ رَأَيْتَ الْمُنَافِقِينَ
يَصُدُّونَ عَنكَ صُدُودًا ﴿٦١﴾ فَكَيْفَ إِذَا أَصَابَتْهُم مُّصِيبَةٌ بِمَا
قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ثُمَّ جَاءُوكَ يَحْلِفُونَ بِاللَّهِ إِنْ أَرَدْنَا إِلَّا إِحْسَانًا
وَتَوْفِيقًا ﴿٦٢﴾ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ يَعْلَمُ اللَّهُ مَا فِي قُلُوبِهِمْ فَأَعْرِضْ
عَنْهُمْ وَعِظْهُمْ وَقُل لَّهُمْ فِي أَنفُسِهِمْ قَوْلًا بَلِيغًا ﴿٦٣﴾ وَمَا
أَرْسَلْنَا مِن رَّسُولٍ إِلَّا لِيُطَاعَ بِإِذْنِ اللَّهِ وَلَوْ أَنَّهُمْ إِذ ظَّلَمُوا
أَنفُسَهُمْ جَاءُوكَ فَاسْتَغْفَرُوا اللَّهَ وَاسْتَغْفَرَ لَهُمُ الرَّسُولُ لَوَجَدُوا
اللَّهَ تَوَّابًا رَّحِيمًا ﴿٦٤﴾ فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُونَ حَتَّىٰ يُحَكِّمُوكَ فِيمَا
شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوا فِي أَنفُسِهِمْ حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوا
تَسْلِيمًا ﴿٦٥﴾ وَلَوْ أَنَّا كَتَبْنَا عَلَيْهِمْ أَنِ اقْتُلُوا أَنفُسَكُمْ أَوِ اخْرُجُوا
مِن دِيَارِكُم مَّا فَعَلُوهُ إِلَّا قَلِيلٌ مِّنْهُمْ وَلَوْ أَنَّهُمْ فَعَلُوا مَا
يُوعَظُونَ بِهِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَأَشَدَّ تَثْبِيتًا ﴿٦٦﴾ وَإِذًا لَّآتَيْنَاهُم
مِّن لَّدُنَّا أَجْرًا عَظِيمًا ﴿٦٧﴾ وَلَهَدَيْنَاهُمْ صِرَاطًا مُّسْتَقِيمًا ﴿٦٨﴾ وَمَن
يُطِعِ اللَّهَ وَالرَّسُولَ فَأُولَٰئِكَ مَعَ الَّذِينَ أَنْعَمَ اللَّهُ عَلَيْهِم مِّنَ
النَّبِيِّينَ وَالصِّدِّيقِينَ وَالشُّهَدَاءِ وَالصَّالِحِينَ ۚ وَحَسُنَ أُولَٰئِكَ
رَفِيقًا ﴿٦٩﴾ ذَٰلِكَ الْفَضْلُ مِنَ اللَّهِ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ عَلِيمًا ﴿٧٠﴾ يَا أَيُّهَا الَّذِينَ
آمَنُوا خُذُوا حِذْرَكُمْ فَانفِرُوا ثُبَاتٍ أَوِ انفِرُوا جَمِيعًا ﴿٧١﴾ وَإِنَّ

★ रु. ८/६ आ ११

और जब उनसे कहा जाता है कि उस हुक्म की ओर आओ जिसे अल्लाह ने उतारा है और रसूल की ओर आओ, तो आप देखेंगे कि मुनाफ़िक़ आपकी ओर से बहुत अलग-थलग रह रहे हैं[११३]। (६१) फिर कैसी गुज़रती है जब उन पर कोई मुसीबत आ पड़ती है अपने ही हाथों[११४]? फिर आपके पास आते हैं अल्लाह की क़सम खाते हुए कि हमारा उद्देश्य तो केवल भलाई और मस्लहत था[११५]। (६२) यह वह लोग हैं कि जो कुछ उनके दिलों में है अल्लाह (उसे) सब जानता है। तो आप उनकी ओर नज़र बचा लिया करें[११६], और उन्हें नसीहत करते रहिए, और उन्हें उनके विषय में प्रभावकारी बात कहते रहिए[११७]। (६३) और हमने जो भी रसूल भेजा वह इस ग़रज़ से कि उसकी इताअत (आज्ञापालन) अल्लाह के हुक्म से की जाए[११८]। और काश कि जिस समय यह अपनी जानों पर ज़्यादती कर बैठे थे, आपके पास आ जाते फिर अल्लाह से क्षमायाचना करते और मग़्फ़िरत (मोक्ष) चाहते और रसूल भी उनके हक़ में मग़्फ़िरत (मोक्ष) चाहते तो यह अवश्य अल्लाह को तौबः क़ुबूल करनेवाला और मेहरबान पाते[११९]। (६४) सो आपके परवरदिगार की क़सम है कि यह लोग ईमानदार न होंगे[१२०] जब तक यह लोग इस झगड़े में, जो उनके आपस में हो, आपकी मध्यस्थ न बना लें, और फिर जो फ़ैसला आप कर दें उससे अपने दिलों में तंगी न पायें और उसको पूरा-पूरा मान लें[१२१]। (६५) और यदि हमने उन पर फ़र्ज़ कर दिया होता कि अपने-आपको मार डालो या यह कि अपने देश से निकल जाओ तो उसको उनमें से न करते कोई सिवाय थोड़े से लोगों के[१२२], और यदि यह (लोग) वह कर डालते जिसकी उन्हें नसीहत की जाती है तो उनके हक़ में यह बेहतर भी होता और उन्हें स्थिर रहनेवाला भी[१२३]। (६६) और उस समय हम उन्हें अवश्य अपने पास से भारी बदला देते[१२४]। (६७) और हम उन्हें सीधी शाहराह दिखा देते[१२५]। (६८) और जो कोई अल्लाह और रसूल की आज्ञा का पालन करेगा, तो ऐसे लोग उनके साथ होंगे जिन पर अल्लाह ने अपना विशेष इनाम किया है (यानी) पयम्बर और औलिया शहीद और नेक लोग (सिद्धपुरुष) ★
और यह कैसे अच्छे साथी हैं[१२६]। (६९) यह कृपा है अल्लाह की तरफ़ से और अल्लाह रु. ९।६
ही का ज्ञान काफ़ी है[१२७]। (७०) ★

ऐ ईमानवालो! अपना संरक्षण कर लो फिर गिरोह-गिरोह कूच करो या इकट्ठे[१२८]। (७१) आ ११

---

११३ मुनाफ़िक़ यूँ तो इस्लाम के दावेदार थे परन्तु जब कोई मामला मुक़द्दमा आ पड़ता तो निर्णय के लिए रसूल (स.०) की सेवा में उपस्थित होने से इसलिए घबराते थे कि यहाँ तो हर सूरत में बिना रू-रिआयत के दूध का दूध और पानी का पानी होकर रहेगा और किसी प्रकार के बात बनाना और ख़ियानत न चल सकेगी। **'तआलौ······अिलर्रसूलि'** रसूल की ओर आओ कि आप शरीअत के नियमों के अनुसार फ़ैसला कर दें।

११४ जैसे कि उनकी ख़ियानत या मुनाफ़िक़त का राज़ खुल गया और उस पर उनकी धर-पकड़ हो गयी।

११५ यानी जब उनकी दोरंगी खुल जाती है और पूछ-गछ आरम्भ हो जाती है तो क़स्में खा-खाकर यक़ीन दिलाते हैं कि हम भी तो मोमिन हैं और हमें तो रसूल की सत्ता और उनके हाकिम होने से इन्कार थोड़े ही है। हम तो केवल नेकनीयती और भागीदारों की भलाई के विचार से मुक़द्दमे को दूसरी जगह ले गये थे। आयतों के उतरने की स्थिति (शानें नुज़ूल) के वर्णन में आता है कि एक यहूदी और एक नामचार के मुसलमान यानी मुनाफ़िक़ के मध्य झगड़ा हुआ। यहूदी ने रसूलुल्लाह (स.०) की दियानत और ईमानदारी पर विश्वास करके कहा कि चलो वहीं निर्णय करायें। मुनाफ़िक़ का पहलू कमज़ोर था, बोला कि नहीं बल्कि सरदार यहूद कअब बिन अश्रफ़ के पास चलें। अन्त में मुक़द्दमा रसूल (स.०) के पास आया और यहाँ से निर्णय यहूदी के पक्ष में हुआ क्योंकि वही इस मामले में सत्य पर था। मुनाफ़िक़ ने कहा कि चलो अब उमर (रज़ि०) के पास चलें। वह सम्भवत: अपने मन में यह समझा कि उमर (रज़ि०) की सख़्ती

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४६७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६७ से)

११७ यानी विशेष रूप से उनके सुधार से सम्बद्ध उन पर काफ़ी मज़मूनों का प्रचार करते रहिए ताकि उन पर अल्लाह की हुज्जत क़ायम रहे। **"व अिज़्हुम्"** उन्हें नसीहत करते रहिए जैसा कि रिसालत के मन्सब और दर्जे का तक़ाज़ा है।

११८ यहाँ यह इर्शाद हो रहा है कि रसूल के भेजने का मक़सद ही यह होता है कि उसको उच्चतम हाकिम और पथ-प्रदर्शक माना जाए। और उम्मत उसी के लाये हुए क़ानून और बतलाई हुई शरीअत पर चलना सीखे अन्यथा केवल ज़बानी रसूल मान लेने से तो कोई लाभ नहीं। **"मिर्रसूलिन्"** में **'मिन्'** अधिक बल देने के लिए है। और यह तरकीब केवल **"रसूलन्"** से नकारने के लागू होने में कहीं अधिक बलशाली है। **"बि अिज़्निल्लाहि"** इस प्रतिबन्ध ने स्पष्ट कर दिया कि निजी तौर पर हक़ीक़त में रसूल भी 'मुताअ' (जिनका कहना माना जाए) नहीं होता, वह तो केवल अल्लाह तआला है। रसूल, 'मुताअ' उसके नायब होने की हैसियत से होता है।

११९ (और उनकी तौबा स्वीकार हो गई होती।) **"अिज़्-ज़लमू' अन्फ़ुसहुम्"**— अपनी जान पर ज़ुल्म इससे अधिक क्या होगा कि रसूल ज़िन्दा और सलामत अपने मध्य में मौजूद हों और उनकी अदालत से बचा जाए। **'फ़सतग़्फ़रु'**— अपने गुनाह और निफ़ाक़ के गुनाह की क्षमा चाहते। **'जा'ऊक'** आपके सामने शर्मिन्दगी के साथ उपस्थित होते। बात का अन्दाज़ यहाँ यूँ है। **"सुम्म जा'ऊक फ़आमनू व अस्तग़्फ़रु"**— इस्तिग़्फ़ार के शब्द में स्वयं ईमान का अर्थ भी सम्मिलित है। अतः **'आमनू'** के विवरण की आवश्यकता नहीं रही अन्यथा ज़ाहिर है कि केवल ईमान लाकर हाज़िरी प्रर्याप्त हरगिज़ नहीं हो सकती थी। **'वस्तग़्फ़र लहुमुर्रसूल'** रसूल की सेवा में ईमान के साथ हाज़िरी और फिर अल्लाह से मग़्फ़िरत की माँग, यह दोनों चीज़ें अवश्य ही आपके हृदय से जो कष्ट का प्रभाव था, उसको हटा देतीं और उसके स्थान पर आपके मन में दया उत्पन्न कर देतीं और आप अवश्य उनके हक़ में मग़्फ़िरत तलब करने लगते। एक नवजात **वर्ग का इस** आयत का यह अर्थ लगाना कि **'किताबल्लाह'** भी उन्हें माफ़ी दे देती, कोश और क़ुर्आन दोनों के **साथ हँसी करने के** बराबर है।

१२० (अल्लाह की ओर से) यानी अल्लाह के यहाँ उनका ईमान उस समय तक विश्वसनीय न माना जायेगा और उन लोगों से मुराद वही मुनाफ़िक़ और इस्लाम के दिखावटी और ज़बानी दावेदार हैं।

१२१ आयत ने इसे स्पष्ट कर दिया कि रसूल की अदालत में मुक़द्दमे केवल ले आना कदापि ईमान के लिए पर्याप्त नहीं। अक़्ली और एतिक़ादी रूप में सन्तोष भी रसूल के निर्णय पर होना चाहिए। हाँ यदि उसके बाद प्राकृतिक ढंग से कोई तंगी रह जाए तो वह अपने अधिकार की बात न होने के कारण क्षमा योग्य होगी। **"हत्ता युहक्किमूक फ़ीमा शजर बैनहुम"**— आपकी शुभ ज़िन्दगी में तो आपका हुक्म ज़ाहिर ही था, वफ़ात के पश्चात् आपकी शरीअत मध्यस्थ बनने के लिए काफ़ी है। फ़क़ीहों ने इस आयत से यह बात निकाली है कि जो कोई अल्लाह या उसके रसूल के किसी हुक्म में शक-शुबहा करेगा या उसे मानने से इन्कार करे वह इस्लाम के दायरे से पृथक् है। रसूल के यूँ 'मुताअ मुत्लक़' होने का सम्बन्ध केवल दीनी आदेशों से है बाक़ी दुनियावी मामलों में आपने स्वयं ही मतों की आज़ादी दे रखी थी, चुनांचे इस प्रकार की हदीसें अनेकों उपलब्ध हैं— "मैं भी एक मानव ही हूँ तो जब मैं कोई दीनी हुक्म दूँ तो तुम उसे स्वीकार करो और जब मैं कोई बात अपनी राय से कहूँ तो मैं भी एक बन्दा ही हूँ।" और इसी शिक्षा का यह प्रभाव था कि सहाबा बार-बार प्रश्न कर लिया करते थे कि फ़ुलाँ इर्शाद जो हुआ वह अल्लाह की है वही या निजी राय से है।

१२२ (और वही थोड़े कामिल मोमिन होते) **'अनिक़्तुलू' अन्फ़ुसकुम् अविख़्रुजू मिन् दियारिकुम्'** एक माने में तो दोनों हुक्म अब भी मौजूद हैं, जिहाद और युद्ध और देश छोड़ना या हिजरत अपने-अपने अवसर पर और शर्तों की जाँच पर अब भी वाजिब हैं। यहाँ मुराद यह है कि अगर यह आदेश अब भी स्वयं उद्देशित होते और हर दशा में हिजरत एवं युद्ध फ़र्ज़ होते।

१२३ (ईमान के मामले में) यानी अगर सन्देह, भ्रम और हिचकिचाहट का मार्ग छोड़कर अल्लाह की आज्ञापालन और रसूल की ताबेदारी में स्थिरता के साथ लग जाएँ तो उन्हें ईमान में स्थायित्व एवं पुष्टि और उसकी बरकतें अपने-आप नसीब होने लगें। ज़िक्र उन्हीं मुनाफ़िक़ों और कमज़ोर ईमानवालों का चल रहा है। **'फ़अलू मा यूअज़ून बिही'**— यानी अगर दिलोजान से अल्लाह और रसूल की आज्ञापालन किया होता। **'लकान ख़ैरल्लहुम् तस्बीतन्'**— यानी दुनिया और आख़िरत, व्यक्तिक एवं सामूहिक हर एतबार से उनके कल्याण की सूरत पैदा हो जाती। **'तस्बीतन्'**— पहले यह बताया कि दीन के आदेशों पर यदि अमल करते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तो यह चीज़ उन्हीं के काम आती और उन्हीं के हक़ में बेहतर होती। अब यह इर्शाद हो रहा है कि हुक्मों पर अमल करने से स्वयं ईमानी बल निर्बल से सबल और सबल से और सबल होता जाता है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया कि अनुभव से सिद्ध है कि दीन का काम करते रहने से एतिक़ाद और विश्वास की भीतरी तरक़्क़ी और विकास होता रहता है।

१२४ (आखिरत में) **'अिज़्न'**— यानी अगर उन्होंने खुदा और रसूल के हुक्मों का अनुसरण किया होता और उसके फलस्वरूप उन्हें भलाई और शान्ति भी मिल चुकी होती और दीन में स्थिरता और स्थायित्व भी नसीब हो चुकता।

१२५ (कि बिना रोक-टोक सीधे अल्लाह की रज़ामन्दी के स्थान जन्नत में दाखिल हों जाएँ।) अजब नहीं कि उसी की बरकत से दुनिया में भी प्रयास और अमल की सीधी राह उनके लिए प्रशस्त हो जाए।

१२६ दुनिया की भौतिक और महसूस होनेवाली नेमतें चाहे जितनी भी हों, इन्सान उनसे आनन्द और स्वाद लेने में कुछ कमी ही महसूस करता रहता है यदि साथ में महफ़िल के साथी और मज्लिसी मित्र और अपनी पसन्द के लोग भी न हों। यहाँ उसी महान नेमत की शुभ सूचना मिल रही है कि अहले जन्नत की भौतिक एवं आत्मिक हर प्रकार की नेमतों के अलावा साथ भी पुनीत एवं पवित्र और उच्चकोटि की मानवता के सबसे ऊँचे स्थान पानेवालों का नसीब होगा। **'हसुन अुला'अिक रफ़ीक़न्'**— में एक पहलू आश्चर्य का भी है और इसीलिए अनुवाद "कैसे अच्छे" से किया गया है। **'व मंय्युतिअिल्लाह वर्रसूल'**— इस आज्ञापालन का सम्बन्ध कर्तव्यों एवं वाजिबात से है। अन्यथा यदि कर्तव्यों और वाजिबात के अलावा मुस्तहब, नफ़्लों आदि की भी उसी क़दर व्यवस्था हो जाए तो फिर विलायत का दर्जा स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा और वलियों का साथ इन्आम के रूप में नसीब होने के कोई मानी न रहेंगे। **'अुला'अिक मअल्लज़ीन अन् अमल्लाहु अलैहिम्'**— यानी बावजूद अपने आमाल में कमी और कोताही रह जाने के और उन कामिलों से दर्जे में कम होने पर भी उन्हीं कामिलों का साथ नसीब होगा। **'अन् अमल्लाहु अलैहिम्'**— यह इन्आम कमाल की निकटता और प्राप्ति की सूरत में होगा। **'सिद्दीक़ीन'**— यानी बात के खरे और मामले के सच्चे, ऐसे कि सत्यता और सत्य को पसन्द करना गोया कि उनकी प्रकृति में रच गई और उनकी तबीयत का अंश बन गई है। ईमान के हर अंश से सम्बद्ध उनकी तस्दीक़ कामिल होती है जो सन्देह और भ्रम की सीमाओं से परे है। उर्दू में इन्हीं को 'औलिया अल्लाह' या केवल 'औलिया' कहते हैं। अल्लाह से निकटता में उनका नाम नबियों के पश्चात् ही होता है। **'शुहदा'अि'**— शहीद वह है जो दीन की मुहब्बत में अपनी जान तक से दरेग़ न करे (परवाह न करे) और कर्म से सिद्ध कर दे कि जिस चीज़ पर वह ईमान लाया था वह इस क़दर प्रिय थी कि उसके लिए अपनी जान तक क़ुर्बान कर दी, परन्तु क़ुर्आनी मुहावरे में यह पदवी अल्लाह की राह में हताहत होनेवालों तक ही सीमित नहीं है बल्कि हर वह व्यक्ति इस वर्ग में आ जाता है जो अपने क़ौल और अमल से अपने अत्यन्त स्नेह की गवाही और शहादत प्रस्तुत कर दे। हताहत हो जाना कोई अपने इख़्तियार की चीज़ है भी नहीं। **'अस्सालिहीन'**— **'सालिहीन'** उम्मत के वह सदस्य कहलाते हैं जो पूरे दीनदार और शरीअत के पाबन्द होते हैं और जिनकी सिद्धता उनके अधिकतर आमाल में रहती है, गो उनका व्यक्तित्व इस दर्जे का न हो जो दुनिया के सामने शहादत की हुज्जत के रूप में पेश हो सके।

१२७ और अल्लाह का ज्ञान उनकी नीयतों पर भी हावी है और उनको घेरे हुए है। उनके अमल और अमल के तक़ाज़ों को भी घेरे हुए है। **'ज़ालिकल्-फ़ज़्लु मिनल्लाहि'**— यानी तमाम मोमिनों को जो कामिलों का साथ तथा उनकी मित्रता नसीब होगी, यह केवल खुदा की दया है जो प्रकट होगी उनके आमाल का फल न होगा।

१२८ (जैसी स्थिति और जैसी मस्लहत हो।) क़ुर्आन मजीद की अकसर आयतों को समझने हेतु इन आयतों का परिपेक्ष सामने रखना आवश्यक है। उहद में हाल ही में मुसलमानों को आर्ज़ी पराजय हुई थी और स्वाभाविक रूप में मुश्रिकों का टूटा हुआ साहस फिर बँध गया था और अकेले मक्का के क़ुरैश ही नहीं आसपास के क़बीले भी मिलकर इस्लाम के विरुद्ध भारी मोर्चा बना रहे थे। मुसलमानों को हिम्मत, स्थिरता और साहस के पाठ ठीक ऐसे अवसर पर दिये जा रहे हैं। **"खुज़ू हिज़्रकुम्"**— **'हिज़्र'** का अर्थ बहुत विशाल तथा सारगर्भित है। हर वह चीज़ जो शत्रु से बचाव के काम में आई है, इसमें शामिल है चाहे अस्त्र-शस्त्र हों चाहे तदबीरें हों, गोया कहा यह जा रहा है कि शत्रु के मुक़ाबले में हर प्रकार से कील-काँटे से दुरुस्त हो जाओ और आमादा रहो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व अिन्न मिन्कुम् लमल्-लयुबत्तिअन्न ज फ़ अिन् असाबत्कुम् मुसीबतुन् क़ाल क़द् अन्अमल्लाहु अलय्य अिज् लम् अकुम्-मअहुम् शहीदन् (७२) व लअिन् असाबकुम् फ़ज़्लुम्-मिनल्लाहि लयक़ूलन्न कअल्लम् तकुम्बैनकुम् व बैनहू मवद्दतुंय्यालैतनी कुन्तु मअहुम् फ़ अफ़ूज़ फ़ौज़न् अज़ीमन् (७३) फ़ल्युक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहिल्लज़ीन यश्रूनल्-हूयातद्दुन्या बिल्आख़िरति त व मंय्युक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि फ़ युक़्तल् औ यग़्लिब् फ़ सौफ़ नुअ्तीहि अज्रन् अज़ीमन् (७४) व मा लकुम् ला तुक़ातिलून फ़ी सबीलिल्लाहि वल्-मुस्तज़्अफ़ीन मिनर्रिजालि वन्निसा'अि वल्-विल्दानिल्लज़ीन यक़ूलून रब्बना' अख़्रिज्ना मिन् हाज़िहिल् - क़र्यतिज़्ज़ालिमि अह्लुहा ज वज्अल्लना मिल्लदुन्क वलिय्यन् ज ला व'वज्अल्लना मिल्लदुन्क नसीरन् त (७५) अल्लज़ीन आमनू युक़ातिलून फ़ी सबीलिल्लाहि ज वल्लज़ीन कफ़रू युक़ातिलून

★ फ़ी सबीलित्ताग़ूति फ़ क़ातिलू' औलिया'अश्शैतानि ज अिन्न कैदश्शैतानि

रु. कान ज़ओफ़न् (७६) ★ अलम् तर अिलल्लज़ीन क़ील लहुम्

१०/७ कुफ़्फ़ू' अैदियकुम् व अक़ीमुस्सलात व आतुज़्ज़कात ज फ़ लम्मा कुतिब

आ ६ अलैहिमुल् - क़ितालु अिज़ा फ़रीक़ुम्मिन्हुम् यख़्शौनन्नास क ख़श्यतिल्लाहि औ अशद्द ख़श्यतन् ज व क़ालू रब्बना लिम कतब्त अलैनल्क़िताल ज लौला' अख़्ख़र्तना' अिला' अजलिन् क़रीबिन् त क़ुल् मताअुद्दुन्या क़लीलुन् ज वल् - आख़िरतु ख़ैरुल्लिमनित्तक़ा क़िफ़ व ला तुज़्लमून फ़तीलन् (७७)

والمحصنت ٥ — ٧١ — النساء ٤

مِنكُمْ لَمَن لَّيُبَطِّئَنَّ ۚ فَإِنْ أَصَابَتْكُم مُّصِيبَةٌ قَالَ قَدْ أَنْعَمَ
اللَّهُ عَلَيَّ إِذْ لَمْ أَكُن مَّعَهُمْ شَهِيدًا ۝ وَلَئِنْ أَصَابَكُمْ فَضْلٌ
مِّنَ اللَّهِ لَيَقُولَنَّ كَأَن لَّمْ تَكُن بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُ مَوَدَّةٌ يَا لَيْتَنِي كُنتُ
مَعَهُمْ فَأَفُوزَ فَوْزًا عَظِيمًا ۝ فَلْيُقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ
يَشْرُونَ الْحَيَاةَ الدُّنْيَا بِالْآخِرَةِ ۚ وَمَن يُقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ
فَيُقْتَلْ أَوْ يَغْلِبْ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا ۝ وَمَا لَكُمْ لَا
تُقَاتِلُونَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ وَالْمُسْتَضْعَفِينَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَاءِ
وَالْوِلْدَانِ الَّذِينَ يَقُولُونَ رَبَّنَا أَخْرِجْنَا مِنْ هَٰذِهِ الْقَرْيَةِ الظَّالِمِ
أَهْلُهَا وَاجْعَل لَّنَا مِن لَّدُنكَ وَلِيًّا وَاجْعَل لَّنَا مِن لَّدُنكَ
نَصِيرًا ۝ الَّذِينَ آمَنُوا يُقَاتِلُونَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ۖ وَالَّذِينَ كَفَرُوا
يُقَاتِلُونَ فِي سَبِيلِ الطَّاغُوتِ فَقَاتِلُوا أَوْلِيَاءَ الشَّيْطَانِ ۖ إِنَّ
كَيْدَ الشَّيْطَانِ كَانَ ضَعِيفًا ۝ أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ قِيلَ لَهُمْ كُفُّوا
أَيْدِيَكُمْ وَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ وَآتُوا الزَّكَاةَ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ
إِذَا فَرِيقٌ مِّنْهُمْ يَخْشَوْنَ النَّاسَ كَخَشْيَةِ اللَّهِ أَوْ أَشَدَّ خَشْيَةً ۚ
وَقَالُوا رَبَّنَا لِمَ كَتَبْتَ عَلَيْنَا الْقِتَالَ لَوْلَا أَخَّرْتَنَا إِلَىٰ أَجَلٍ
قَرِيبٍ ۗ قُلْ مَتَاعُ الدُّنْيَا قَلِيلٌ وَالْآخِرَةُ خَيْرٌ لِّمَنِ اتَّقَىٰ وَ
لَا تُظْلَمُونَ فَتِيلًا ۝ أَيْنَمَا تَكُونُوا يُدْرِككُّمُ الْمَوْتُ وَلَوْ كُنتُمْ

ع

منزل

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अवश्य तुममें कोई ऐसा भी है जो देर लगा देता है[१२९], और फिर तुम पर यदि कोई मुसीबत आ पड़ती है तो कहता है कि बेशक मुझ पर अल्लाह ने बड़ी दया की कि मैं उन लोगों के साथ शरीक न हुआ[१३०]। (७२) और अगर तुम्हें अल्लाह का फ़ज़्ल पेश आता है तो बोल उठता है (इस बे-तअल्लुक़ी के साथ) गोया तुम्हारे और उसके बीच कोई (सम्बन्ध) स्नेह का था ही नहीं कि काश मैं भी उनके साथ होता तो मैं भी बड़ी सफलता प्राप्त करता[१३१]। (७३) तो (यदि यह है तो) उसे चाहिए कि अल्लाह की राह में लड़े[१३२]। उन लोगों से जो दुनिया की ज़िन्दगी खरीदे हुए हैं आखिरत के बदले में[१३३]। और जो कोई अल्लाह की राह में लड़ता है तो मारा जाए या जीत जाए (हर दशा में) हम उसको शीघ्र ही भारी बदला देंगे[१३४]। (७४) और तुम्हें क्या (आपत्ति है) कि तुम जंग नहीं करते अल्लाह की राह में[१३५], और उन लोगों के लिए जो कमज़ोर हैं पुरुषों में से और स्त्रियों में से और लड़कों में से[१३६], जो यह कह रहे हैं कि ऐ परवरदिगार! हमको इस बस्ती में से निकाल जिसके निवासी सख्त ज़ालिम हैं[१३७]; और हमारे लिए अपनी क़ुदरत से कोई मित्र पैदा कर दे और हमारे लिए अपनी क़ुदरत से कोई हिमायती खड़ा कर दे[१३८]। (७५) जो ईमानवाले हैं वह तो अल्लाह की राह में लड़ते हैं[१३९] और जो काफ़िर हैं वह ताग़ूत की राह में लड़ते हैं[१४०], सो तुम लड़ो शैतान के साथियों से और शैतान की चाल तो बोदी ही होती है[१४१]। (७६) ★ ★ रु. १०/७ भा ६

क्या तूने उन लोगों के हाल पर नज़र नहीं की जिनसे कहा गया था कि अपने हाथों को रोके रहो और नमाज़ की पाबन्दी करो और ज़कात देते रहो[१४२]। फिर जब उन पर क़िताल (लड़ाई) फ़र्ज़ कर दिया गया तो उनमें से एक गिरोह इन्सानों से ऐसा डरने लगा, जैसे अल्लाह से (डरना) होता है या उससे भी बढ़कर डरना[१४३]; और वह लोग बोले कि ऐ हमारे परवरदिगार! तूने हम पर युद्ध क्यों फ़र्ज़ कर दिया, काश थोड़ी मुद्दत तू और हमको (जीने की) मुहलत दे देता[१४४]? आप कह दीजिए कि दुनिया का सामान (बहुत ही) थोड़ा है और आखिरत उसके लिए कहीं बेहतर है; जो संयम को अपनाये[१४५]। और तुम पर धागे के बराबर भी ज़ुल्म न किया जाएगा[१४६]। (७७)

---

१२९ (ऐसी कि जिहाद में सम्मिलित भी नहीं होता और पीछे रह जाता है।) **'मिन्कुम्'** यहाँ पर सम्बोधन मोमिनों और दिखावे के मोमिनों यानी मुनाफ़िक़ों के समूह से है और इस मज़मून की आयतों में क़ुर्आन मजीद का सम्बोधन करने का यही आम तरीक़ा है।

१३० (अन्यथा मैं भी इसी मुसीबत का शिकार होता।) **''असाबतकुम् मुसीबतुन्''**— मुसीबत, जैसे युद्ध में पराजय। **'क़ाल क़द् अन्अमल्लाहु'** यह गर्व एवं प्रसन्नता के साथ कहता है।

१३१ मुनाफ़िक़ों की दोरंगी और उनके मुनाफ़िक़ाना आचरण को प्रकट किया है कि मोमिनों को जब कोई मुसीबत पेश आती है तो मुनाफ़िक़ अपनी बेतअल्लुक़ी तथा अलाहिदगी पर तुरन्त अपनी प्रसन्नता तथा गर्व की घोषणा करने लगते हैं कि बड़ा अच्छा हुआ कि हम शरीक नहीं हुए वरना हम भी इस वबाल में फँसते। और मुसलमानों को जब विजय होती है तो रश्क करने लगते हैं कि काश माले ग़नीमत हमारे हिस्से में भी आता। **'फ़ज़्लुम्-मिनल्लाहि'** जैसे युद्ध में विजय और सफलता। **'कान''''''''मवद्दतुन्'** यानी ऐसी खुदगर्ज़ी और स्वार्थीपन के साथ कहता है गोया तुम मुसलमानों की खुशी से उस मुनाफ़िक़ को कोई भी सम्बन्ध न हो। उसे पछतावा तथा हार्दिक दुःख केवल अपने ही बल तथा धन, पर है। यहीं से यह मस्अला भी निकल आया कि उम्मतें इस्लामिया की खुशी से खुश होना ईमान की निशानी में से है। **'फ़ अफ़ूज़ फ़ौज़न अज़ीमन्'** मुनाफ़िक़ की ज़बान से इसका अर्थ यह होगा कि मैं भी खूब धन-दौलत प्राप्त करता, माले ग़नीमत में मेरा भी बड़ा सा हिस्सा होता।

१३२ (पूर्ण निःस्वार्थता और अल्लाह की रज़ामन्दी को प्राप्त करने की नीयत से।) **'फ़ल्युक़ातिल्'** में 'फ़े' का अर्थ है कि अगर वास्तव में उसे 'फ़ौज़ें अज़ीम' ही मंज़ूर है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१३३ यानी काफ़िरों से जंग करे जो दीन की सही शिक्षा को भुलाये हुए हैं और आख़िर को नकारने वाले हैं। **'यशरून'**— यानी इसका अर्थ ख़रीदना भी है और बेचना भी। कुछ इस कारण और कुछ आयत के शब्दों की तरकीब के आधार पर आयत के एक बिलकुल दूसरे अर्थ भी लगाये जा सकते हैं और लगाये गये हैं यानी "वह लोग अल्लाह की राह में लड़ें जो दुनिया का जीवन आख़िरत के बदले में बेच चुके हैं।" और इस दशा में आयत का सम्बन्ध पूरा-पूरा निःस्वार्थ मोमिनों से होगा जो अपनी दुनियावी ख़ुशहाली और सफलता को अल्लाह की मर्जी पर बलिदान करने की तैयार रहते हैं। तफ़सीर करनेवाले इमामों ने दोनों ही पहलू अपनाये हैं।

१३४ (आख़िरत में) यह आख़िरत का भारी बदला मुजाहिदों के लिए (दीन की लड़ाई लड़ने वालों के लिए) विजय और पराजय (क्योंकि उसकी अन्तिम सूरत को 'फ़ युक़तल्' का अर्थ दिया है) की हर सूरत में विद्यमान है। मौलाना थानवी ने लिखा है कि 'फ़ौज़ें अज़ाम' को अज्र मानना वादे की ताकीद, बलशाली बनाने और विश्वसनीय बनाने के लिए है।

१३५ (जब कि अल्लाह के कलिमे की घोषणा करना तो स्वयं जिहाद के लिए स्थायी रूप से प्रेरणा-दायक है और एक बलशाली निमन्त्रण है।) **'मालकुम्'** प्रश्नवाचक वाक्य का उद्देश्य चाव और लालच दिलाना है और सम्बोधन सच्चे मोमिनों से है।

१३६ यह दूसरा निमन्त्रण देनेवाला जिहाद के लिए इर्शाद हुआ। दुर्बलों का हाथ सँभालना, उनकी सहायता और जिन पर अत्याचार हो रहा हो उनको ज़ालिम काफ़िरों के पंजे से मुक्ति दिलाना स्वयं जिहाद के उद्देश्यों में से है।

१३७ (और हम उनके ज़ुल्म और अत्याचार के शिकार बने हुए हैं।) **"हाज़िहिल्-क़र्य:"**— मुराद है मक्के का नगर और मक्के की हुकूमत और इसमें कोई मतभेद नहीं है। **"अज़्ज़ालिमि अह्लुहा"**— मक्केवाले दोहरे माने में अत्याचारी थे। एक तो मुसलमानों पर नाना प्रकार के ज़ुल्म ढा रहे थे, दूसरी ओर शिर्क करके अपनी जानों पर अत्याचार कर रहे थे।

१३८ आयत से ज़ाहिर हो रहा है कि स्त्रियों, पुरुषों तथा लड़कों की एक अच्छी ख़ासी संख्या ईमान ला चुकी है, परन्तु यह लोग क़ुरैश के सरदारों के अत्याचारों के समक्ष अपने को विवश पा रहे हैं। न ज़ुल्म को दूर करने की शक्ति रखते हैं और न देश छोड़ने पर। यहाँ विनय और प्रार्थना उनकी ही भाषा में अदा हो रही है। आयत से यह भी ज़ाहिर हो रहा है कि ज़ुल्म तथा अत्याचारों से बच्चे, स्त्रियाँ और बूढ़े कोई भी सुरक्षित नहीं थे। **'मिल्लदुन्क'**— शाब्दिक अर्थ है "अपने पास से" उर्दू मुहावरे में ऐसे अवसर पर "अपनी क़ुदरत से" आता है। यानी ग़ैब से इसकी व्यवस्था कर दे। **'वलिय्यन्'**— ऐसा मित्र एवं सहानुभूति रखनेवाला जो इस मुसीबत में हमारे साथ रहे। हमसे हमदर्दी और सहानुभूति करे। **'नसीरन्'**— ऐसा हिमायती जो इन ज़ालिमों से हमें नजात दिलाए।

१३९ (और जैसा कि स्वयं अल्लाह तआ़ला हर प्रकार की नफ़सानी गन्दगी और मिलावट से पाक और साफ़ है। अल्लाह पाक की सेना भी कभी गुनाहों और गुमराहियों, ज़ुल्म और हक़ मारने के गुनाहों, शराबख़ोरी तथा बदकारी के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध कर ही नहीं सकती।) **"फ़ी सबीलिल्लाहि"** का प्रतिबन्ध, जो बार-बार लगाया जा रहा है, बहुत अर्थपूर्ण है। वास्तव में यह आयत जिहाद की आयतों की शृंखला में से एक महत्त्वपूर्ण आयत है। इसने साफ़-साफ़ इस्लामी जिहाद का अन्तर विश्व की समस्त जंगों और जाहिली लड़ाइयों से स्पष्ट कर दिया। इसे विस्तृत रूप से बता दिया कि सच्चा मुसलमान जब अपने ही जैसे इन्सानों पर हाथ उठायेगा तो मुल्क बढ़ाने के लिए नहीं, क़ौमी बरतरी के लिए नहीं, तिजारती मण्डियाँ स्थापित करने के लिए नहीं, दूसरे को नीचा दिखाने के लिए नहीं, दूसरों पर अपना सिक्का जमाने के लिए नहीं, जलन, लालच और भूमि की भूख और वैभव की पूजा की भावनाओं से प्रभावित होकर नहीं, बल्कि विश्व के सबसे ऊँचे उद्देश्य और मानवता के सबसे बड़े दृष्टिकोण, तौहीद के कलिमे को ऊँचा करने और उसकी शान बढ़ाने के लिए रंग और नस्ल, वतन और क़ौम तथा क़बीले की इज़्ज़त और सम्मान पर कट मरनेवाले, इस्लामी दृष्टिकोण की बलन्दी को नहीं समझ सकते। इस्लामी जिहाद जब तक इस्लामी जिहाद रहा, क्या वहाँ भी किसी सेना के लिए हज़ारों मन और सैकड़ों टन शराबों की आवश्यकता पड़ी? क्या उस सेना में भी सूज़ाक और आतशक के सैकड़ों रोगी सिपाहियों और अफ़सरों के लिए गन्दे रोगों के विशेष अस्पतालों की व्यवस्था करनी पड़ी? मुसलमान सिपाही के सीने में तो यह ज़िन्दा ईमान रहता है कि उसे एक-एक पग का हिसाब देना है। कभी उसके क़दम इन गन्दे रास्तों पर पड़ भी सकते हैं?

१४० (इसलिए उन लड़नेवालों की सिफ़तें और विशेषताएँ भी सब तागूतियों ही से मिलती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'तागूत' के शाब्दिक अर्थ पर हाशिया गुजर चुका है। यहाँ इस शब्द को लाने का अर्थ यह है कि तागूती जाहिली सिपाहियों के घमण्ड, खुदा को भुलाने, नफ़्सपरस्ती और हद से आगे बढ़ जानेवाले पहलू को स्पष्ट किया जाए। तागूत का अनुवाद यदि इस अवसर पर 'नफ़्स' से किया जाए तो उर्दू में अर्थ अदा हो जायेगा। तागूत और नफ़्स की राह में आज भी जो क़ौमें वतन-प्रेम, क़ौम के कल्याण और देश की आजादी के सुन्दर शब्दों और पदवियों के साथ युद्ध करती रहती हैं, उनकी नैतिक दशा का जायज़ा ले लिया जाए, कठोरता, अत्याचार, धोखा, फ़रेब, शराबखोरी और बदकारी ग़रज़ जिस स्तर से चाहे जाँच लें, जानवरों और दरिन्दों से भी बदतर और खराब निकलेगी —यह सब करिश्मे तागूत की राह में लड़ने के हैं, क्योंकि उन्हें आखिरत की जाँच तथा हिसाब का भय नहीं है और वह जंग में भाग लेते हैं। जंग दोनों स्थानों में मुश्तरक है, परन्तु अल्लाह वालों से तागूत वालों का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

१४१ (और शैतानी तथा तागूती शक्तियों को कभी भी स्थायी और मजबूत विजय सत्य के मुक़ाबले में नसीब नहीं हो सकती।) **"फ़ क़ातिलू' औलिया' अश्शैतानि"**— मुसलमानों को लड़ने का आदेश हो रहा है परन्तु किसके मुक़ाबले में? शैतानों और तागूतियों के मुक़ाबले में जो दुनिया में फ़साद और अशान्ति, झूठ और शिर्क ही की हुकूमत फैलाना चाहते हैं। **"अिन्न कैदश्शैतानि कान ज़अीफ़न्"** इससे मुसलमानों को हिम्मत दिखाई है कि शैतान कोई डरने और सहमने की चीज नहीं है। वह तुम पर हाकिम और हुक्म चलानेवाला नहीं है। तुम जरा साहस करो तो वह स्वयं तुमसे भागेगा और पनाह माँगेगा। उसमें जान तो है ही नहीं। युद्ध के जीवन को छोड़कर नैतिकता, समाजी जीवन, मामलों और उपासनाओं के मैदान में भी शैतान से मुक़ाबला करना कुछ कठिन नहीं। आवश्यकता केवल साहस की है। शैतान के कैद यानी मक्र और फ़रेब, जिसके कमजोर होने के यहाँ घोषणा है, अपनी घोषणा में आम हैं युद्ध और शान्ति दोनों जीवनों के लिए।

१४२ (क्योंकि शान्ति के जमाने में इस प्रकार की इबादतों पर अमल काफ़ी है।) **"कुफ़्फ़ू' अैदियकुम्"**— यानी बदला लेने के जोश और जंग से अभी बाज़ रहो। यह जिक्र किन लोगों का है? इसको समझने के लिए उस समय की स्थिति को नजर के सामने रखना आवश्यक है। मुसलमानों को मक्के में क़ुरैश के अत्याचार सहते-सहते एक जमाना हो गया था और यह स्वाभाविक ही था कि बदले की इच्छा उनके दिलों में उत्पन्न हो गई थी। यह जुल्म सहनेवाले भी आखिर उसी खून, उसी गोश्त, खाल, उसी हड्डी-चमड़े के थे और जोश में आकर बार-बार युद्ध की आज्ञा माँगने लगे थे। उधर वही के द्वारा उन्हें बराबर सब्र, बरदाश्त, क्षमा और माफ़ करने का सबक़ दिया जा रहा था, यहाँ तक कि देश छोड़ देने का (हिजरत करने का) आदेश आ गया और मुसलमान मदीने के शान्त वातावरण में आ गये। रसूल (स०) की तेरह-चौदह वर्ष की संगत और गम्भीर प्रशिक्षण के पश्चात् जब अल्लाह के ज्ञान में मुसलमानों की नैतिकता और उनके आचरण पुष्ट हो गये और इबारत एवं उपासना और निःस्वार्थता उनके चरित्र का अंश बन गया तो जंग करने का आदेश मिला, परन्तु इस मदीने के शान्त वातावरण में रहते-रहते मुसलमानों के बदले की भावना मंद हो गई थी और युद्ध के लिए वह जोश और उत्सुकता बाक़ी नहीं रह गई थी। अब प्राकृतिक तक़ाज़े से युद्धस्थल में जाने से हीले-बहाने ढूँढ़ने लगे। यहाँ जिक्र उन्हीं आराम की तलाश करनेवाले मुसलमानों का हो रहा है।

१४३ अल्लाह की ताड़ना का भय लाख दिल में हों, परन्तु यह विश्वास भी तो दिल में रहता है कि अल्लाह बड़ी दया करनेवाला बड़ा रहम करनेवाला है, क्षमा करनेवाला और सब रहम करनेवालों से अधिक रहम वाला है। क्या तअज्जुब कि वह बिलकुल दया और क्षमा से ही काम ले जिसके विपरीत शत्रुओं से सिवाय हलाकत और कष्ट के कोई अन्य व्योहार की आशा ही नहीं है। इमाम मतरीदी ने फ़र्माया कि यह एक स्वाभाविक भय था अत: इस पर कोई गुनाह नहीं हुआ। यह खौफ़ और घबराहट स्वाभाविक ही था। कोई एतिक़ाद का मामला नहीं था और इससे भी उन लोगों ने बाद में तौबा कर ली थी।

१४४ (और हम दुनिया में कुछ दिन और इत्मीनान के साथ जी लेते। **"क़ालू"**— अन्त तक। मुसलमानों की ज़बान से यह बात इच्छा के रूप में भी आपत्ति के रूप में नहीं। यह बात यदि इच्छा के रूप में थी और आपत्ति या इन्कार इसका उद्देश्य न था अत: स्पष्टीकरण योग्य और सजा के लायक़ तब भी नहीं थी, परन्तु स्वयं शब्द **'क़ालू'** से यह लाजिम नहीं आता कि जबान से कही ही गई हो। अरबी में क़ौल जबानी बात के लिए जिस प्रकार आता है, उसी प्रकार दिल की बात के लिए भी आता है। और खुद क़ुर्आन मजीद में **'यक़ूलून फ़ी अन्फ़ुसिहिम्'** आ चुका है और नफ़्स की बात या वस्वसे का गुनाह न होना जाहिर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। तफ़्सीर करनेवाले इमामों ने यहाँ "हदीसें नफ़्स" ही माना है। हर दशा में यह आयत उन ज़ालिम पादरियों का ज़ोरदार खण्डन कर रही है, जो यह कहते हैं कि मुसलमान तो माले ग़नीमत के लालच में जंग के लिए तुले बैठे थे, रसूल को केवल इशारा करने की देर थी। यहाँ उलटे उन्हें चाव दिलाने और आमादा करने की आवश्यकता थी।

१४५ (और अल्लाह के आदेश का खुशी-खुशी पालन किया।) जिहाद का फ़र्ज़ न होना और अधिक जीवन की मुहलत की इच्छा चूँकि दुनिया की मुहब्बत और उससे सम्बन्ध रखने के कारण पैदा हुई थी, अतः बड़े हकीमाना अन्दाज़ से असली चोट उसी पर लगाई गई और फ़र्माया गया कि इस दुनिया में रखा ही क्या है? जो कुछ है वह भी आर्ज़ी, अस्थायी और बिलकुल खत्म होनेवाला। इच्छा और माँग करने योग्य वस्तु तो वास्तव में आखिरत है और उसकी लज़्ज़तों, स्वादों और नेमतों की प्राप्ति का माध्यम संयम और अल्लाह के आदेशों का पालन करना है। **'मताअुद्दुन्या क़लीलुन्'** तो ऐसी तुच्छ और न रहनेवाली वस्तु के लिए जिहाद के आदेश को स्थगित कराने की तमन्ना क्यों की जाए? **"ख़ैरल्लिमनित्तक़ा"** और इस संयम (तक़्वा) ही की एक ज़र्द जिहाद है।

१४६ (सो यह कैसे मुमकिन है कि जिहाद के उच्च प्रकार के बदले से वञ्चित रह जाओ।) **'फ़तीलन्'** भी अरबी में **"नक़ीरन्"** ही की भाँति छोटेपन और तुच्छता को ज़ाहिर करने के लिए आता है, जैसे उर्दू या हिन्दी मुहावरे में "रत्ती भर", "राई बराबर", "ज़र्रा बराबर" इत्यादि।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४७६ से)

"कुल्लुम-मिन् अिन्दिल्लाह" यानी दुःख हो या सुख, रंज हो या राहत सबके कारणों को एकत्र करनेवाली ज़ात अल्लाह ही की है। सुख और राहत यदि है तो सीधे अल्लाह की दया और उसकी कृपा का प्रकट होना है और आमाल से इसका सम्बन्ध नहीं है और दुःख या रंज यदि पेश आता है तो यह उसके न्याय का फल है आमाल के माध्यम से।

१५० (ऐ इन्सान!) सम्बोधन समस्त मानव-जाति से है। **"फ़ मिनल्लाहि"** यानी उसकी कृपा और मेहरबानी का नतीजा। **'मिनल्लाहि व मिन अिन्दिल्लाहि'**— यह दो अलग-अलग मुहावरे हैं। भाषा और साहित्य के विशेषज्ञों ने यह बताया है कि दोनों में यह अन्तर है कि दूसरा बुरे-भले सारे सृष्टीय क्रियाओं के लिए प्रयोग होता है, इसके विपरीत प्रथम मुहावरा केवल ऐसे अवसर पर बोला जाता है जहाँ इच्छानुसार होने का अर्थ पैदा होता है! **'फ़ मिन् नफ़्सिक'** यानी ऐ बन्दे! तेरी ही बदआमाली के कारण और अल्लाह के न्याय के तक़ाज़े से। **'सय्यिअतुन्'** इस सन्दर्भ में इस शब्द का लागू होना केवल उन बुराइयों पर होता है, जो वास्तव में भी बुराई हों केवल सूरत से बुराई न हों। नेक बन्दों और अल्लाह वालों को जो कष्ट और मुसीबतें पेश आती हैं वह केवल सूरत से मुसीबतें होती हैं, वास्तव में उनकी उच्च कोटि एवं मर्तबों के लिए रहमत का साधन होती हैं, अतः उनके हक़ में बुरे कर्म के फल होने की बात का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

१५१ और अल्लाह की यह गवाही दुनिया में रसूल के कमालों से ज़ाहिर हो रही है। मोजिज़े और अनोखी बातों का उनसे ज़ाहिर होना भी उन्हीं कमालों का अंश है। **"व असंल्नाक लिन्नासि रसूलन्"**— यहाँ केवल **'लिन्नासि'** फ़र्माया है, 'लिल् अरब' नहीं कहा। आखिरी रसूल (स०) के सन्देश के विश्वव्यापी होने पर दूसरी आयतों के अतिरिक्त यह आयत भी अत्यन्त बड़ी तर्क है।

१५२ कि आम इन्सानों के पास अल्लाह के आदेशों को समझने का अन्य कोई माध्यम नहीं है सिवाय रसूल के माध्यम के। आयत से उन गुमराह क़ौमों की बातों का खण्डन होता है जो रसूल की आज्ञापालन को अल्लाह की आज्ञापालन से सम्बद्ध नहीं समझतीं। यह आयत रसूल (स०) की इस्मत यानी पवित्रता के विषय को भी स्पष्ट करती है, वह इस प्रकार कि यदि रसूल से भी त्रुटि एवं ग़लती की सम्भावना होती तो उनकी आज्ञापालन बिलकुल अल्लाह की आज्ञा का पालन कैसे मानी जा सकती। और अलावा हदीसें नबवी के जहाँ यह मज़मून विस्तृत रूप से आया है, फ़क़ीहों ने इस आयत से यह अर्थ भी निकाला है कि रसूल की नाफ़र्मानी अल्लाह की नाफ़र्मानी है।

१५३ (सो अगर कोई ईमान नहीं लाता तो उसकी ज़िम्मेदारी आप पर नहीं और न आप इसके लिए ज़्यादा चिन्ता और ग़म में पड़ें।) **"फ़ मन् तवल्ला"**— यानी जो आपका कहना न सुने और आपकी ओर से बेतवज्जुही करे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५४ मुनाफ़िक़ों का ज़िक्र चल रहा है । यह ज़बान से तो रसूलुल्लाह (स०) की सेवा में यही अर्ज़ करते थे कि आपके हुक्म सर-आँखों पर, आपके आदेशों का पालन हमें स्वीकार है । **'ताअतुन्'**— खबर है, खबर देनेवाला शब्द छुपा हुआ है ।

१५५ उसकी कार्यकारिता यह है कि वह दुनिया में आपको उनके शर-फ़साद और साज़िशों से सुरक्षित रखेगा और आख़िरत में उन्हें कड़ी सज़ाएँ देगा । **'ता'अिफ़तुम्-मिन्हुम्'** यानी उन मुनाफ़िक़ों के सरदार और सरगना । **''बय्यत''**— रात के अँधेरे में और छुप-छुपाकर इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम के विरुद्ध षड्यन्त्र किये जाते थे और मन्सूबे बनाये जाते थे । **''वल्लाहु यक्तुबु''**— यानी ख़ुदाई रिकार्ड में उनकी साज़िशें और मन्सूबे सब अंकित एवं सुरक्षित हैं । समय आने पर सारा दफ़्तर खुलेगा ।

१५६ (जो मानव-सृजन एवं लेख के साथ अनिवार्य है ।) **'अिख़्तिलाफ़न् कसीरन्'** इसके अर्थ में बहुत वाद-विवाद हुआ है । किसी ने कहा कि वर्णन में त्रुटि मुराद है और किसी ने कहा कि जाँच-परख में दर्जों का अन्तर और किसी ने बताया इबारत में यकसानी का न होना, परन्तु वास्तविकता यह है कि स्वयं **'अिख़्तिलाफ़ि कसीर'** का शब्द बड़ा विशाल और सारगर्भित है । अर्थ एवं साहित्यिक दोनों प्रकार से बेजोड़, हर प्रकार का झोल-झाल इसके अन्दर प्रविष्ट है । क़ुर्आन मजीद ने इस आयत से विश्व के समक्ष अपनी यकताई की एक स्थायी चुनौती प्रस्तुत कर दी कि हर प्रकार से ठोक-बजाकर देख लो, हर प्रकार से जाँच-पड़ताल कर लो, मज़मून और लेख स्तर का नीचा होना, इबारत का ऊँचा-नीचा होना एवं असमता, किसी प्रकार की कोई कमी या त्रुटि इसके अन्दर न पाओगे । यही दलील है इस बात की कि यह मानव या मख़्लूक़ की वाणी नहीं है । क़ुर्आन के समस्त इन्कार करनेवालों के विरुद्ध चाहे वह किसी कारण और किसी पहलू से हों यह क़ियामत तक के लिए सीमाबन्दी है । **''अफ़ला यतदब्बरूनल् क़ुर्आन''**— क़ुर्आन में ज्ञान-ध्यान करने का परिणाम यह होगा कि उसके शाब्दिक एवं अर्थ सम्बन्धी चमत्कार स्पष्ट हो जाएगा और इस स्पष्टता से आपकी रिसालत और नबी होने के सम्बन्ध में जो भ्रम और सन्देह हैं वह दूर हो जायेंगे । **''लौ कान मिन् अिन्दि ग़ैरिल्लाहि''**— जैसा कि आपके समय के एवं आख़िर के नकारनेवालों (मुन्किरों) का विचार था और जैसा कि आज भी बाज़ नई रोशनी के लोगों और नास्तिकों का विचार है । विश्व का नवीन एवं पुरातनकाल का कोई ज्ञान या कला हो, मनोविज्ञान, फ़लसफ़ा, भविज्ञान, अंतरिक्ष-विज्ञान, काव्य-विद्या, साहित्य, इतिहास, अर्थात् बुद्धि या लेखों से सम्बद्ध किसी प्रकार का भी, उसके किस बड़े से बड़े विशेषण एवं विद्वान् की वाणी में उसके समय के या बाद के लोगों ने त्रुटियाँ और बुराइयाँ निकालकर नहीं प्रस्तुत कर दिये हैं और यही तर्क इस वाणी के ग़ैरअल्लाह ही की ओर से होने का है । **''यतदब्बरूनल् क़ुर्आन''**— से आँकने के सही होने का तर्क भी निकल आया और उन फ़र्मों का खण्डन भी हो गया जो समझते हैं कि क़ुर्आन के अर्थ करने का अधिकार विशेष रूप से केवल रसूल (स०) तथा इमाम मासूम को ही है ।

१५७ (बिना इस सत्यापन एवं जाँच के कि वह खबर कहाँ तक सही है और बिना इस पर ध्यान दिये हुए कि यदि सही है भी तो उसका तत्काल प्रचार एवं प्रसार कहाँ तक उचित और मसलहत के अन्तर्गत होगा ।) यह इशारा मुनाफ़िक़ों और कमज़ोर ईमानवालों की ओर है । इस्लामी मिल्लत आरम्भ से ही एक सीमा तक सुगठित बल्कि अर्धसैनिक जमाअत थी और यह बात हर सामूहिक संगठन के विपरीत साधारणत: और सैनिक-संगठन के विपरीत विशेष रूप से है कि उम्मत के साधारण लोग जिस ख़बर को जहाँ और जब सुन पायें बिना अपने सरदारों और अधिकारियों की ओर ले जाए हुए, उसे ले दौड़ें और बिना सोचे-समझे उसे फैलाना शुरू कर दें । **'अम्रुम्-मिनल् अम्नि'** जैसे कि कहीं बाहर से इस्लाम की सेनाओं की विजय की खबर आई । **''अल्ख़ौफ़ि''** जैसे कहीं बाहर से मुसलमानों की पराजय की सूचना आई ।

१५८ (बजाय इसके उलटे ख़ुद उस ख़बर को फैलाने और मशहूर करने में लग गये ।) **'अुलिल् अम्रि मिन्हुम्'** यानी सद्बुद्धि वाले लोग ख़ासकर मुराद हैं बड़े सहाबा जैसे कि हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) वैसे इसके अन्तर्गत उम्मत के सभी अहम लोग आ जाते हैं ।

१५९ यानी उस सूचना की सही स्थिति ज्ञात कर लेते । **''अल्लज़ीन यस्तम्बितूनहू मिन्हुम्''** इससे एक बड़ी फ़िक़्ही सच्चाई रोशनी में आ गई । ज्ञात यह हुआ कि मसलों को खोजकर निकालना और दीनी आदेशों को परख और जाँचकर निर्णय देना हर एक का काम नहीं । इसके लिए एक विशेष समझ, सलीक़ा और शोध की श्रेणी की आवश्यकता है और उम्मत का हर व्यक्ति इस स्थिति को प्राप्त नहीं होता । **''मिन्हुम्''** आयत में दो स्थानों पर आया है । दोनों स्थानों पर इससे मुराद उम्मत का समूह है,

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४८० पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अैनमा तकूनू युद्‌रिक्कुमुल्-मौतु व लौ कुन्तुम् फ़ी बुरूजिम् - मुशय्यदतिन् त व अिन् तुसिब्हुम् ह़ूसनतुंय्यक़ूलू हाजिही मिन् अिन्‌दिल्लाहि ज व अिन् तुसिब्हुम् सय्यिअतुंय्यक़ूलू हाजिही मिन् अिन्‌दिक त क़ुल् कुल्लुम् - मिन् अिन्‌दिल्लाहि त फ़ मा लि हा'उला'अिल् - क़ौमि ला यकादून यफ़्क़हून ह़ूदीसन् (७८) मा' असाबक मिन् ह़ूसनतिन् फ़ मिनल्लाहि ज व मा' असाबक मिन् सय्यिअतिन् फ़ मिन्नफ़्सिक त व अर्सल्‌नाक लिन्नासि रसूलन् त व कफ़ा बिल्लाहि शहीदन् (७९) मंय्युतिअिर्रसूल फ़क़द् अताअल्लाह ज व मन् तवल्ला फ़ मा' अर्सल्नाक अलैहिम् ह़ूफ़ीजन् त (८०) व यक़ूलून ताअतुन् ज फ़ अिजा बरज़ू मिन् अिन्‌दिक बय्यत ता'अिफ़तुम्-मिन्‌हुम् ग़ैरल्लजी तक़ूलु त वल्लाहु यक्तुबु मा युबय्यितून ज फ़ अ़ऽरिज़् अन्‌हुम् व तवक्कल् अलल्लाहि त व कफ़ा बिल्लाहि वकीलन् (८१) अफ़ला यतदब्बरूनल्-क़ुर्आन त व लौ कान मिन् अिन्दि ग़ैरिल्लाहि लवजदू फ़ीहिख़्तिलाफ़न् कसीरन् (८२) व अिजा जा'अहुम् अम्‌रुम्मिनल् - अम्‌नि अविल्ख़ौफ़ि अजाअू बिही त व लौ रद्‌दूहु अिलर्रसूलि व अिला' अुलिल् - अम्‌रि मिन्‌हुम् ल अलिमहुल्लजीन यस्तम्बितूनहू मिन्‌हुम् त व लौ ला फ़ज़्लुल्लाहि अलैकुम् व रह़्मतुहू लत्तबऽतुमुश्शैतान अिल्ला क़लीलन् (८३) फ़ क़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि ज ला तुकल्लफ़ु अिल्ला नफ़्सक व ह़र्रिज़िल्-मुअ्मिनीन ज असल्लाहु अंय्यकुफ़्फ़ बअ्सल्लजीन कफ़रू त वल्लाहु अशद्‌दु बअ्संव्व अशद्‌दु तन्कीलन् (८४) मंय्यश्फ़ऽ शफ़ाअतन् ह़ूसनतंय्यकुल्लहू नसीबुम्मिन्‌हा ज व मंय्यश्फ़ऽ शफ़ाअतन् सय्यिअतंय्यकुल्लहू किफ़्लुम्मिन्‌हा त व कानल्लाहु अला कुल्लि शैअिम्मुक़ीतन् (८५)

والمحصنت ٥ — ٧٢ — النساء ٤

فِيْ بُرُوْجٍ مُّشَيَّدَةٍ ۭ وَاِنْ تُصِبْهُمْ حَسَنَةٌ يَّقُوْلُوْا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۚ وَاِنْ تُصِبْهُمْ سَيِّئَةٌ يَّقُوْلُوْا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِكَ ۭ قُلْ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۭ فَمَالِ هٰٓؤُلَاۗءِ الْقَوْمِ لَا يَكَادُوْنَ يَفْقَهُوْنَ حَدِيْثًا ۝ مَآ اَصَابَكَ مِنْ حَسَنَةٍ فَمِنَ اللّٰهِ ۡ وَمَآ اَصَابَكَ مِنْ سَيِّئَةٍ فَمِنْ نَّفْسِكَ ۭ وَاَرْسَلْنٰكَ لِلنَّاسِ رَسُوْلًا ۭ وَكَفٰى بِاللّٰهِ شَهِيْدًا ۝ مَنْ يُّطِعِ الرَّسُوْلَ فَقَدْ اَطَاعَ اللّٰهَ ۚ وَمَنْ تَوَلّٰى فَمَآ اَرْسَلْنٰكَ عَلَيْهِمْ حَفِيْظًا ۝ وَيَقُوْلُوْنَ طَاعَةٌ ۡ فَاِذَا بَرَزُوْا مِنْ عِنْدِكَ بَيَّتَ طَاۗىِٕفَةٌ مِّنْهُمْ غَيْرَ الَّذِيْ تَقُوْلُ ۭ وَاللّٰهُ يَكْتُبُ مَا يُبَيِّتُوْنَ ۚ فَاَعْرِضْ عَنْهُمْ وَتَوَكَّلْ عَلَي اللّٰهِ ۭ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ۝ اَفَلَا يَتَدَبَّرُوْنَ الْقُرْاٰنَ ۭ وَلَوْ كَانَ مِنْ عِنْدِ غَيْرِ اللّٰهِ لَوَجَدُوْا فِيْهِ اخْتِلَافًا كَثِيْرًا ۝ وَاِذَا جَاۗءَھُمْ اَمْرٌ مِّنَ الْاَمْنِ اَوِ الْخَوْفِ اَذَاعُوْا بِهٖ ۭ وَلَوْ رَدُّوْهُ اِلَى الرَّسُوْلِ وَاِلٰٓى اُولِي الْاَمْرِ مِنْھُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْۢبِطُوْنَهٗ مِنْھُمْ ۭ وَلَوْ لَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ لَاتَّبَعْتُمُ الشَّيْطٰنَ اِلَّا قَلِيْلًا ۝ فَقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ لَا تُكَلَّفُ اِلَّا نَفْسَكَ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ عَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّكُفَّ بَاْسَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۭ وَاللّٰهُ اَشَدُّ بَاْسًا وَّاَشَدُّ تَنْكِيْلًا ۝ مَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً حَسَنَةً يَّكُنْ لَّهٗ نَصِيْبٌ مِّنْھَا ۚ وَمَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً سَيِّئَةً يَّكُنْ لَّهٗ كِفْلٌ مِّنْھَا ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰي كُلِّ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम जहाँ कहीं भी होगे वहीं तुम्हारी मौत आ लेगी, चाहे तुम मज़बूत क़िलों में ही हो[१४७]।
और अगर उन्हें कोई सुख पहुँच जाता है तो कहते हैं कि यह तो ख़ुदा की ओर से है, और
अगर उन्हें कोई दुःख पेश आता है तो कहते हैं यह आपके कारण हुआ[१४८]। कह दीजिए
कि हर चीज़ अल्लाह ही की तरफ़ से है। सो इन लोगों को क्या हुआ है कि गोया यह बात
ही नहीं समझते[१४९]। (७८) तुझे जो भी सुख पेश आता है वह बस अल्लाह ही की तरफ़
से है और जो दुःख पहुँचता है वह तेरे अपने ही कारण से है[१५०]। और हमने आपको इन्सानों
की तरफ़ पयम्बर बनाकर भेजा है, और अल्लाह की गवाही काफ़ी है[१५१]। (७९) जिसने
रसूल का आदेश माना उसने अल्लाह ही की आज्ञा-पालन की[१५२], और जो कोई मुँह फेरे सो
हमने आपको उन पर देखभाल करनेवाला बनाकर नहीं भेजा है[१५३]। (८०) और यह लोग
कहते हैं कि आज्ञाकारिता स्वीकार है[१५४], परन्तु आपके पास से बाहर जाते हैं तो उनमें
से एक गुट रात्रि के समय उसके विपरीत मश्वरः करता है जो कुछ कि वह कह चुके थे।
और अल्लाह उनके रात वाले मश्वरों को लिखता जाता है; तो आप उनकी ओर से बेतवज्जुः
रहिए और अल्लाह पर भरोसा रखिए और अल्लाह ही काफ़ी कार्यकारी है[१५५] (८१)।
क्या यह लोग क़ुर्आन में ध्यान नहीं करते ? अगर यह (कलाम-बात) अल्लाह के सिवा (और)
की ओर से होता तो इसके भीतर बड़ा विरोधाभास पाते[१५६]। (८२) और उन्हें जब कोई
बात शान्ति या भय की पहुँचती है तो यह उसे फैला देते हैं[१५७]। और अगर यह लोग उसे
रसूल के या अपने में से अधिकार-प्राप्त लोगों को सौंप देते[१५८] तो उनमें से जो लोग निष्कर्ष
निकालने की योग्यता रखते हैं उसकी असलियत भी जान लेते[१५९]। और अगर तुम पर
अल्लाह की रहमत शामिल न होती तो तुम (सब) सिवाय थोड़े से लोगों के शैतान का
अनुसरण करने लग जाते[१६०]। (८३) तो अल्लाह की राह में युद्ध कीजिए[१६१] आप पर
ज़िम्मेदारी नहीं डाली जाती सिवाय आपकी अपनी ज़ात के[१६२]। और आप मुसलमानों को
भी आमादा करते रहिए[१६३], और अजब नहीं कि अल्लाह काफ़िरों का ज़ोर रोक दे[१६४]।
और अल्लाह बड़ा ही ज़ोर वाला है, बड़ा ही सज़ा देनेवाला है[१६५]। (८४) जो कोई
अच्छी सिफ़ारिश करेगा उसको उसमें हिस्सा मिलेगा[१६६]। और जो कोई बुरी सिफ़ारिश लायेगा
उस पर उसमें से बोझ रहेगा[१६७], और अल्लाह हर चीज़ पर शक्ति रखनेवाला है[१६८]। (८५)

---

१४७ और मौत का सम्बन्ध युद्धस्थल ही से नहीं है। कहीं भी आ सकती है। यहाँ यह समझाया जा रहा है कि जब मौत ऐसी अनिवार्य एवं बेपनाह चीज है तो आखिरत में जिहाद के बदले और मर्तबों से जिनकी कोई हद और हिसाब नहीं है, उनसे वञ्चित और खाली हाथ क्यों पहुँची, क्यों न जिहाद और जंग में भाग लेकर सम्मानपूर्वक वहाँ पहुँची।

१४८ अब मुनाफ़िक़ों का जिक्र हो रहा है उनका हाल यह था कि जब तक मुसलमानों की बात बनी रहती, यह लोग भी बराबर उनके साथ रहते और कहते कि यह तो बिलकुल ख़ुदा की मेहरबानी है जिसमें हम और तुम बराबर शरीक हैं और जब बात बिगड़ जाती तो सारा दोष मुसलमानों और उनके महान सरदार को देते कि यह जो कुछ पेश आया है सब आपकी ही ग़लत तदबीरों का परिणाम है। **"तुसिब्हुम् हसनतुन्"** जैसे कि जंग में मुसलमानों की विजय हुई और उसमें मुनाफ़िक़ों को भी सबकी भाँति हिस्सा मिला। **'तुसिब्हुम् सय्यिअतुन्'** जैसे कि जंग में मुसलमानों की पराजय हुई और उसका परिणाम मुनाफ़िक़ों को भी उनके अनुसार भोगना पड़ा। **'यक़ूलू हाजिही मिन् अिन्दिल्लाहि'** यानी यह सफलता तो भौतिक रूप में साधारणतः प्राकृतिक कारणवश मिल गई। इसमें मुसलमानों और उनके महान सरदार की अच्छी तदबीरों का क्या दख़ल है ? मुनाफ़िक़ों का यह अल्लाह की ओर से कहना उसकी हम्द और तारीफ़ के रूप में नहीं था और न अल्लाह की शक्ति को ही मानकर बल्कि यह तो भाषाई मुहावरे के अन्दाज में था जैसे लोग कह उठते हैं कि यह तो भाग्य का लिखा है।

१४९ यह ध्यानाकर्षण किया है मुनाफ़िक़ों की मूर्खता और ध्यान न देने की आदत की ओर।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४७६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४७७ से)

जिसमें अपने दावे के अनुसार मुनाफ़िक़ भी सम्मिलित थे। इमाम राज़ी ने लिखा है कि आयत से चार बातें सिद्ध होती हैं। (१) एक यह कि नये-नये मसले जो सामने आयेंगे उनके विषय में आदेश क़ुर्आन से स्पष्ट रूप से नहीं, ध्यान विचार करने के उपरान्त प्राप्त होंगे। (२) दूसरे यह कि यह ध्यान विचार भी एक शरई हुज्जत है। (३) तीसरे यह कि आदेशों के मामले में आम लोगों पर इल्म वाला का अनुसरण करना वाजिब है। (४) चौथे यह कि रसूल (स०) इस बात के लिए (ख़ुदा की ओर से) आदेशित थे कि वह आदेशों को क़ुर्आन से खोजबीन करके प्रस्तुत करते रहें। आयत से इमामत के अक़ीदे का खण्डन होता है। यदि किसी इमाम मासूम का अस्तित्व उम्मत में होता तो आदेशों के खोजबीन करने की आवश्यकता क्या थी, इमाम स्वयं 'इल्हाम' द्वारा उन आदेशों से परिचित होता।

१६० (ऐ उम्मतें मुहम्मदिया स०!) ऐ मुसलमानो! तुम यानी गुमराहियों में फँस जाते तो तुमको इन नेमतों की क़द्र विशेष रूप से करनी चाहिए कि अल्लाह ने तुम्हें क़ुर्आन दिया, शरीअत दी, शरीअत वाला रसूल दिया। **'अिल्ला क़लीलन्'** और यह थोड़े से जो बच जाते वह सद्बुद्धि के कारण बचते, क्योंकि वह भी अल्लाह की कृपा और उसकी रहमत का एक रूप ही है।

१६१ (ऐ पैग़म्बर!) ऊपर जिहाद और जंग का विषय चल रहा था, बीच में दूसरे विषय आवश्यक परिस्थितियों के कारण वर्णित हो गये, अब फिर उसी स्थायी विषय की ओर लौटा जा रहा है।

१६२ (न कि किसी दूसरे के अमल की) उद्देश्य यह है कि आप स्वयं जिहाद के लिए आमादा हो जाइए चाहे कोई दूसरा साथ दे या न दे। आप पर किसी दूसरे के अमल का उत्तरदायित्व नहीं है। इतिहास का बयान है कि उहद की लड़ाई जब शव्वाल में हो चुकी तो उसके तुरन्त बाद ज़ीक़ादा में आप मुशरिकों की धमकी का विचार करके बद्र की ओर फिर चलने पर आमादा हो गये। मुनाफ़िक़ तो अपने अक़ीदों की खराबी के कारण उस समय निकल ही गये। शेष मोमिन भी साथ देने में हिचकिचाहट का अनुभव करने लगे। कुछ तो इस कारण कि उहद के ज़ख्म अभी ताज़ा थे और कुछ इस कारण कि दुश्मन की असाधारण शक्ति की अफ़वाहों पर विश्वास कर बैठे थे। मुसलमानों के महान सेनानायक (स०) ने यह दशा देखकर अकेले ही चल पड़ने का इरादा कर लिया। क्या ठिकाना था कर्तव्यपरायणता और अल्लाह की सहायता पर विश्वास का। कमी या ज्यादती और इकाई तथा सैकड़ों की संख्या के विचार का गोया कोई ध्यान ही सामने न रहा।

१६३ (जिहाद पर) यानी दीन का चाव दिलाने का कार्य आपके रिसालत के कर्तव्यों में शामिल है। **"हरिज़"— 'तहरीज़'** के मानी हैं किसी चीज़ की प्रशंसा बार-बार करके उसके गुणों के वर्णन से उसकी ओर चाव दिलाना यानी सही और सच्चा प्रोपैगण्डा करना। आयत उन ज़ालिम पादरियों का पोल खोल रही है, जिन्होंने यह झूठ उछाल रखा है कि "मुहम्मद (स०) के अनुयायी लूटमार के चाव में जिहाद पर टूटे पड़ते थे।" क्या बार-बार चाव दिलाने की आवश्यकता लुटेरों को हुआ करती है?

१६४ (और उन्हें उनके बलशाली होने के बावजूद पराजित कर दे।) क़ुर्आन मजीद की भविष्य वाणी निकट भविष्य और बाद के समयों में पूरी होकर रही। विरोधियों और शत्रुओं में से क़ुरैश का ज़ोर तो उसी ज़माने में ख़त्म होकर रहा। रहीं दूरदराज़ की बलशाली और शानदार बादशाहतें और हुकूमतें सो वह भी धीरे-धीरे पराजित हो गईं। **'असा'** पूर्व भी हाशिए गुज़र चुके हैं कि इस कलिमे का प्रयोग जब अल्लाह तआला की किसी क़ौल में होता है तो उसमें केवल आशा या उम्मीद के बजाय वादा और विश्वास का अर्थ पैदा हो जाता है।

१६५ (दुनिया और आख़िरत में) **"अशद्दु बअसन्"** उस बल और शक्ति का प्रदर्शन इसी दुनिया में होता रहता है। **"अशद्दु तन्कीलन्"** सज़ा देने की इस सिफ़त का प्रदर्शन आख़िरत में होगा।

१६६ यानी जो कोई अच्छे और नेक आमाल में शरीअत के नियमानुसार प्रयास करेगा उसे उसका बदला मिलकर रहेगा, क्योंकि वह किसी श्रेणी में अच्छे अमल का कारण बना। हर प्रकार के निःस्वार्थ परामर्श और सलाह इसी वादे के अन्तर्गत आ जाते हैं।

१६७ (क्योंकि वह गुनाह और पाप का साधन एवं कारण बना।) **"शफ़ाअतन् सय्यिअतन्"** इसके अन्तर्गत बुरे आमाल के अलावा वह अच्छे अमल भी आ जाते हैं जो शरअ के बताये हुए तरीक़ों के विपरीत किये जाते हैं।

१६८ तो हर नेकी पर बदला और हर बदी पर सज़ा का क्रम उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं। छोटे-बड़े हर अमल पर कर्म का फल उसकी मुट्ठी में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४८३ से)

इस्लाम जाहिर किया। व्यापार का माल लेकर मक्का गये और फिर वापस न आये। मुश्रिकों में मिल-जुलकर वहीं दारुल्हर्ब में रह पड़े। क़ुर्आनी सन्दर्भ से यही बात सबसे अधिक बलशाली है। वह कोई भी हों, थे मुनाफ़िक़। यह लोग मुसलमानों के साथ न केवल युद्ध में भाग लेने से जी चुराते थे बल्कि उनके विरुद्ध नाना प्रकार की साज़िशें करने और मन्सूबे बनाने में लगे रहते थे, जैसा कि पूर्व वाले रुकूअ में ज़िक्र आ चुका है। बल्कि बाज़ तो ऐसे थे जो दारुस्सलाम की स्थापना, जो बिलकुल इस्लाम का चिह्न था, छोड़कर दारुल्हर्ब में काफ़िरों से जा मिले थे।

१७२ (उनके खुल्लमखुल्ला कुफ़्र की ओर।) काफ़िर तो वास्तव में वह पहले ही से थे। अब उनकी हिम्मतें इतनी बढ़ गई थीं कि खुलकर इस्लाम के शत्रुओं के साथ होकर मैदान में मुसलमानों के सामने गये। **'बिमा कसबू'** यह उनका अपना अमल था कि उन्होंने अधिकार होते हुए भी दारुस्सलाम छोड़ दिया था। उस समय जब कि इस्लाम को न मानने की भाँति यह भी कुफ़्र का एक चिह्न था।

१७ यानी जब उन्होंने गुमराही का इरादा कर लिया तो अल्लाह की सृष्टि का यह नियम है कि हर कर्म के इरादे पर कर्म उत्पन्न कर दिया जाता है तौर इसी नियम के अनुसार उत्पत्ति की मशीयत ने उन्हें गुमराही में डाल दिया तो अब उन्हें निकाल कौन सकता है? **'मन् अज़ल्लल्लाहु'**— अल्लाह की ओर से इस अज़लाल (गुमराह करने) की निस्बत मुनाफ़िक़ों के इख़्तियारी कुफ़्र के फलस्वरूप है। **"अतुरीदून··· ···अल्लाह"** क्या तुम उनके हृदयों और आत्माओं में ज़बरदस्ती ईमान डाल सकोगे जो सिरे से ईमान का इरादा ही नहीं रखते।

१७४ यानी उनके मोमिन होने का क्या ज़िक्र है, कुफ़्र में उनकी ज़्यादती का तो यह हाल है कि उलटे वह तुम्हीं को अपने रंग में रँग लेने और अपने में बिलय कर लेने की धुन में हैं।

१७५ (और दारुलहर्ब को छोड़कर दारुलइस्लाम में न आ जाएँ।) इस समय हिजरत भी इस्लाम के लिए शहादतों को मानने की भाँति अनिवार्य थी। **"ला तत्तख़िज़ू मिन्हुम् औलिया'अ"**— यानी उनके साथ मुसलमानों जैसा व्योहार मत करो, क्योंकि दोस्ती के जाइज़ होने के लिए शर्त है। **"फ़ी सबीलिल्लाहि"** यह प्रतिबन्ध बहुत आवश्यक था, अन्यथा यूँ व्यापार आदि की ज़रूरत से तो काफ़िर भी दारुल्हिजरत में आ सकते थे। दुनिया के क़ानून में इस्लाम का सुबूत इन्हीं ज़ाहिरी चीज़ों से मिलता है, रहा आत्म-सत्यापन तो वह तो केवल अल्लाह की ओर से है, बन्दों के ज़िम्मे उसकी जाँच और खोज नहीं है।

१७६ यानी किसी दशा में उनसे मुहब्बत का कोई सम्बन्ध न रखो, न शान्ति की दशा में मित्रता का, न भय की हालत में सहायता का। **"फ़ इन् तवल्लौ"** यानी यदि यह हिजरत और इस्लाम से मुँह मोड़े रखें और दारुल्हर्ब में पूर्व की भाँति काफ़िर ही बने रहें। **"फ़क़्तुलूहुम् हैसु वजत्तुमूहुम्"** इसलिए कि यह भी जंग करनेवाले मुश्रिकों की लाइन में माने जायेंगे और उनके साथ भी वही मामला होगा जो जंग करनेवाले मुश्रिकों के साथ होता है।

१७७ (और उनसे भी जाकर सन्धि कर लेते हैं तो गोया इस प्रकार तुम्हारे साथ भी शपथ ग्रहण कर लेते हैं और साथी बन जाते हैं।) सन्धि करनेवालों के साथ सन्धि करनेवाला भी एक माध्यम से अपना ही हलीफ़ (सहयोगी) हो जाता है और उससे शान्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसों को क़त्ल करने का आदेश उनका कुफ़्र नहीं, बल्कि उनका हानिकारक माद्दा है।

१७८ यानी न वह अपनी क़ौम के साथ होकर तुम्हारे साथ लड़ना चाहते हैं और न तुम्हारे साथ होकर अपनी क़ौम से लड़ना चाहते हैं, बल्कि दोनों से सुलह-शान्ति रखना चाहते हैं, दूसरे शब्दों में मुसलमान उनकी ओर से भी शान्ति में हैं। इन दोनों क़िस्म के मुनाफ़िक़ों को क़त्ल और क़ैद के हुक्म से मुस्तस्ना करके क़ुर्आन मजीद ने यह स्पष्ट कर दिया कि वास्तविक उद्देश्य मुसलमानों को कष्ट और हानि से सुरक्षित रखना है।

१७९ (परन्तु अल्लाह ने ऐसा नहीं होने दिया और तुम्हें कष्ट एवं परेशानी से बचा लिया।) **"लौ शा'अल्लाहु"**— यानी अगर सृष्टि सम्बन्धी बेहतरी इसी में होती।

१८० यानी ऐसों से जंग जाइज़ नहीं। इससे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग मुसलमानों से न लड़ें और उनके साथ सुलह और शान्ति से रहना चाहें अगर्चे वह मुसलमानों का साथ भी काफ़िरों के मुक़ाबले में न दें उनसे युद्ध और रक्तपात जाइज़ नहीं। (फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४८६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व अिजा हुय्यीतुम् बितहिय्यतिन् फ़हय्यू बिअह्सन मिन्हा' औरुद्दूहा त
नि. १/२ अिन्नल्लाह कान अला कुल्लि शैअिन् हसीबन् (८६) ● अल्लाहु ला' अिलाह
अिल्ला हुव त ल यज्मअन्नकुम् अिला यौमिल्क़ियामति ला रैब फ़ीहि त
★ रु. ११/८ आ ११ व मन् अस्दक़ु मिनल्लाहि हदीसन् (८७) ★ फ़ मा लकुम् फ़िल्मुनाफ़िक़ीन
फ़िअतैनि वल्लाहु अर्कसहुम् बिमा कसबू त
अतुरीदून अन् तह्दू मन् अज़ल्लल्लाहु त
व मंय्युज़्लिलिल्लाहु फ़ लन् तजिद लहू
सबीलन् (८८) वद्दू लौ तक्फ़ुरून कमा
कफ़रू फ़ तकूनून सवा'अन् फ़ ला तत्तख़िज़ू
मिन्हुम् औलिया'अ हत्ता युहाजिरू फ़ी
सबीलिल्लाहि त फ़ अिन् तवल्लौ
फ़ ख़ुज़ूहुम् वक़्तुलूहुम् हैसु वजत्तुमूहुम् त
व ला तत्तख़िज़ू मिन्हुम् वलिय्यंव्व ला
नसीरन् ला (८९) अिल्लल्लज़ीन यस़िलून
अिला क़ौमिम्-बैनकुम् व बैनहुम् मीसाक़ुन्
औ जा'ऊकुम् हसिरत् सुदूरुहुम्

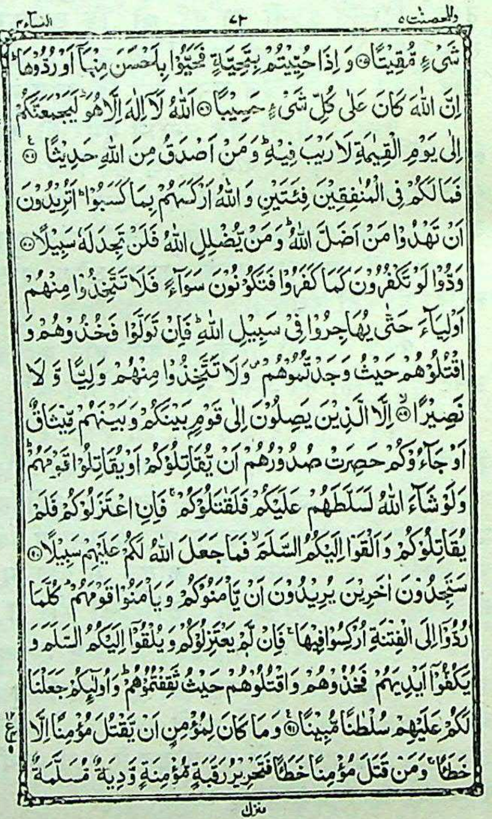

والمحصنت ٥ — ٤٢ — النسآء ٤

شَيْءٍ مُّقِيتًا ۝ وَإِذَا حُيِّيتُم بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوا بِأَحْسَنَ مِنْهَا أَوْ رُدُّوهَا
إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ حَسِيبًا ۝ اللَّهُ لَا إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ لَيَجْمَعَنَّكُمْ
إِلَىٰ يَوْمِ الْقِيَامَةِ لَا رَيْبَ فِيهِ وَمَنْ أَصْدَقُ مِنَ اللَّهِ حَدِيثًا ۝
فَمَا لَكُمْ فِي الْمُنَافِقِينَ فِئَتَيْنِ وَاللَّهُ أَرْكَسَهُم بِمَا كَسَبُوا أَتُرِيدُونَ
أَن تَهْدُوا مَنْ أَضَلَّ اللَّهُ وَمَن يُضْلِلِ اللَّهُ فَلَن تَجِدَ لَهُ سَبِيلًا ۝
وَدُّوا لَوْ تَكْفُرُونَ كَمَا كَفَرُوا فَتَكُونُونَ سَوَاءً فَلَا تَتَّخِذُوا مِنْهُمْ
أَوْلِيَاءَ حَتَّىٰ يُهَاجِرُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَإِن تَوَلَّوْا فَخُذُوهُمْ وَ
اقْتُلُوهُمْ حَيْثُ وَجَدتُّمُوهُمْ وَلَا تَتَّخِذُوا مِنْهُمْ وَلِيًّا وَلَا
نَصِيرًا ۝ إِلَّا الَّذِينَ يَصِلُونَ إِلَىٰ قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُم مِّيثَاقٌ
أَوْ جَاءُوكُمْ حَصِرَتْ صُدُورُهُمْ أَن يُقَاتِلُوكُمْ أَوْ يُقَاتِلُوا قَوْمَهُمْ
وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ لَسَلَّطَهُمْ عَلَيْكُمْ فَلَقَاتَلُوكُمْ فَإِنِ اعْتَزَلُوكُمْ فَلَمْ
يُقَاتِلُوكُمْ وَأَلْقَوْا إِلَيْكُمُ السَّلَمَ فَمَا جَعَلَ اللَّهُ لَكُمْ عَلَيْهِمْ سَبِيلًا ۝
سَتَجِدُونَ آخَرِينَ يُرِيدُونَ أَن يَأْمَنُوكُمْ وَيَأْمَنُوا قَوْمَهُمْ كُلَّمَا
رُدُّوا إِلَى الْفِتْنَةِ أُرْكِسُوا فِيهَا فَإِن لَّمْ يَعْتَزِلُوكُمْ وَيُلْقُوا إِلَيْكُمُ السَّلَمَ وَ
يَكُفُّوا أَيْدِيَهُمْ فَخُذُوهُمْ وَاقْتُلُوهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوهُمْ وَأُولَٰئِكُمْ جَعَلْنَا
لَكُمْ عَلَيْهِمْ سُلْطَانًا مُّبِينًا ۝ وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ أَن يَقْتُلَ مُؤْمِنًا إِلَّا
خَطَأً وَمَن قَتَلَ مُؤْمِنًا خَطَأً فَتَحْرِيرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ وَدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ

منزل ١

अंय्युक़ातिलूकुम् औ युक़ातिलू क़ौमहुम् त व लौ शा'अल्लाहु ल सल्लतहुम्
अलैकुम् फ़ ल क़ातलूकुम् ज फ़ अिनिऽतज़लूकुम् फ़ लम् युक़ातिलूकुम् व अल्क़ौ
अिलैकुमुस्सलम ला फ़ मा जअलल्लाहु लकुम् अलैहिम् सबीलन् (९०)
सतजिदून आख़रीन युरीदून अंय्यअ्मनूकुम् व यअ्मनू क़ौमहुम् त कुल्लमा
रुद्दू अिलल्फ़ित्नति उर्किसू फ़ीहा ज फ़ अिल्लम् यऽतज़िलूकुम् व युल्क़ू'
★ रु. १२/८ आ ४ अिलैकुमुस्सलम व यकुफ़्फ़ू' ऐदियहुम् फ़ ख़ुज़ूहुम् वक़्तुलूहुम् हैसु सक़िफ़्तुमूहुम् त
व उला'अिकुम् जअल्ना लकुम् अलैहिम् सुल्तानम्-मुबीनन् (९१) ★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और जब तुम्हें सलाम किया जाए तो तुम उससे बेहतर तरीक़े से सलाम करो या उसी को लौटा दो, बेशक अल्लाह हर चीज़ का हिसाब लेनेवाला है[१६९]। (८६) ● अल्लाह वह है कि कोई माबूद नहीं (पूजनीय नहीं) सिवाय उसके, वह अवश्य तुम सबको क़ियामत के दिन एकत्रित करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। और कौन अल्लाह से बढ़कर बात में सच्चा है[१७०]। (८७) ★

सो तुम्हें क्या हो गया है कि तुम मुनाफ़िक़ों के बारे में दो गिरोह हो गये हो[१७१], ऐसी दशा में कि अल्लाह ने उनके करतूतों के कारण उन्हें उलटा फेर दिया[१७२]? क्या तुम चाहते हो कि उन्हें राह दिखाओ जिन्हें अल्लाह ने गुमराह कर रखा है और जिसे अल्लाह गुमराह कर दे उनके लिए तू कदापि राह न पायेगा[१७३]। (८८) यह लोग तो दिल से चाहते हैं कि तुम भी कुफ़्र करो जैसे यह लोग कुफ़्र कर रहे हैं ताकि तुम (सब) बराबर हो जाओ[१७४]। सो तुम उनमें से (किसी को) दोस्त न बनाना जब तक अल्लाह की राह में हिजरत न करें[१७५]। और अगर वह मुँह मोड़ें तो उन्हें पकड़ो और जहाँ कहीं उन्हें पाओ उन्हें क़त्ल करो, और उनमें से (किसी को) दोस्त और मददगार न बनाओ[१७६]। (८९) सिवाय ऐसों के जो उन लोगों से जा मिलते हैं जिनके और तुम्हारे बीच सन्धि है[१७७], या तुम्हारे भी पास इस प्रकार आते हैं कि उनके सीने इससे तंग हो रहे हैं कि तुमसे लड़ें या अपनी ही क़ौम से लड़ें[१७८]। और यदि अल्लाह चाहता तो उन्हें तुम्हारे ऊपर क़ाबू दे देता तो तो वह तुमसे अवश्य लड़ते[१७९]। अब यदि वह तुम्हें छोड़ रहे हैं और तुमसे युद्ध न करें और तुम्हारे साथ शान्ति रखें तो अल्लाह ने उनके ख़िलाफ़ तुम्हारे लिए कोई रास्ता नहीं रखा है[१८०]। (९०) शीघ्र ही कुछ लोग और भी पाओगे जो चाहते हैं कि तुम से भी शान्ति में रहें और अपनी क़ौम से भी शान्ति में रहें[१८१] उन्हें जब कभी फ़साद की ओर लौटाया जाता है तो उसमें पलट पड़ते हैं[१८२]। तो अगर यह तुम्हें छोड़े न रहें और न तुम्हारे साथ शान्ति रखें और न अपने हाथों को (तुमसे) रोकें, तो तुम भी उन्हें पकड़ो और क़त्ल करो जहाँ कहीं भी उन्हें पाओ। यही लोग तो हैं जिनके ख़िलाफ़ हमने तुमको साफ़ पकड़ दे रखी है[१८३]। (९१) ★

नि. १/२ ★ रु. ११/८ आ ११ ★ रु. १२/६ आ ४

---

१६९ (अतः समाज की इन छोटी-छोटी बातों को तुच्छ समझकर दृष्टि से अलग न कर दिया जाए।) सलाम के उत्तर में सलाम तो हर दशा में वाजिब है। उसके बाद दो अधिकार दिये गये हैं। एक यह कि सलाम का उत्तर सलाम से बेहतर हो, दूसरे यह कि वैसा ही हो। सबसे अच्छा क़ौल यह है कि सलाम करनेवाला यदि मुसलमान है तो उसका जवाब बढ़ाकर दिया जाए और यदि ग़ैरमुस्लिम है तो उसके शब्दों को दोहराया जाए। **''अिज़ा हुय्यीतुम बितहिय्यतिन्''**— यानी जब तुम्हें सलाम किया जाए शरई तरीक़े से। सलाम के शरई तरीक़ों का विवरण फ़िक़्ह की पुस्तकों में मिलेगा। **'तहिय्यतिन्'**— **'हुय्याकल्लाह'** के वास्तविक अर्थ तो जिन्दगी से ख़बर देने के हैं, फिर जिन्दगी की दुआ का अर्थ हो गया। अरब के लोग जब आपस में मिलते थे तो दुआ के इन शब्दों का प्रयोग करते थे। इस्लाम ने इसे सलाम के अर्थ में कर दिया।

१७० उद्देश्य यह है कि अल्लाह के छोटे-बड़े सारे ही इर्शादों से सम्बद्ध हृदय में दृढ़ विश्वास और मुकम्मल भरोसा बना रहना चाहिए। यदि ज़रा भी भ्रम या सन्देह अवशेष रह गया तो अमल बल्कि अमल के इरादों में भी त्रुटि ही रह जायेगी। अर्थ हर दशा में यह है कि कोई शुबहा इस बयान की सच्चाई और इस ख़बर की सत्यता में नहीं।

१७१ (ऐ मुसलमानो! कि तुममें से बाज़ उनको अब भी मोमिन कहे जा रहे हैं।) यह आयत मुनाफ़िक़ों के किस गिरोह के बारे में है? इस विषय में विभिन्न रिवायतें हैं। हो सकता है कि यह वह मुनाफ़िक़ हों जो उहद की लड़ाई के अवसर पर अब्दुल्लाह बिन उब्बी की सरदारी में लड़ाई से पहले ही वापस चले आये थे। यह भी सम्भव है कि यह वह गिरोह हो जिन्होंने मदीने की चरागाह पर डाका डाला था। यह भी सम्भावना है कि यह वह लोग हों जो दारुलहर्ब मक्का से दारुलहिजरत मदीने में आये, अपना

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४८१ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व मा कान लि मुअ्मिनिन् अंय्यक़्तुल मुअ्मिनन् अिल्ला ख़तअन् ज व मन् क़तल
मुअ्मिनन् ख़तअन् फ़ तह्रीरु रक़बतिम् - मुअ्मिनतिंव्व दियतुम् - मुसल्लमतुन्
अिला' अह्लिही' अिल्ला' अंय्यस्सद्दक़ू त फ़ अिन् कान मिन् क़ौमिन् अदुव्विल्लकुम्
व हुव मुअ्मिनुन् फ़ तह्रीरु रक़बतिम् - मुअ्मिनतिन् त व अिन् कान मिन्
क़ौमिम्-बैनकुम् व बैनहुम् मीसाक़ुन् फ़ दियतुम्-
मुसल्लमतुन् अिला' अह्लिही' व तह्रीरु
रक़बतिम् - मुअ्मिनतिन् ज फ़ मल्लम् यजिद्
फ़ सियामु शह्रैनि मुतताबिअैनि ज
तौबतम्मिनल्लाहि त व कानल्लाहु अलीमन्
हकीमन् (९२) व मंय्यक़्तुल् मुअ्मिनम्-
मुतअम्मिदन् फ़ जज़ा'अुहू जहन्नमु ख़ालिदन्
फ़ीहा व ग़ज़िबल्लाहु अलैहि व लअनहू व
अअद्दलहू अज़ाबन् अज़ीमन् (९३) या'
अय्युहल्लज़ीन आमनू' अिज़ा ज़रब्तुम् फ़ी
सबीलिल्लाहि फ़ तबय्यनू व ला तक़ूलू
लि मन् अल्क़ा' अिलैकुमुस्सलाम लस्त
मुअ्मिनन् ज तब्तग़ून अरज़ल् - हयातिद् -
दुन्या ज फ़ अिन्दल्लाहि मग़ानिमु कसीरतुन् त कज़ालिक कुन्तुम् मिन्
क़ब्लु फ़ मन्नल्लाहु अलैकुम् फ़ तबय्यनू त अिन्नल्लाह कान बिमा तअ्मलून
ख़बीरन् (९४) ला यस्तविल्क़ाअिदून मिनल् - मुअ्मिनीन ग़ैरु अुलिज़्ज़ररि
वल्मुजाहिदून फ़ी सबीलिल्लाहि बि अम्वालिहिम् व अन्फ़ुसिहिम् त
फ़ज़्ज़लल्लाहुल् - मुजाहिदीन बि अम्वालिहिम् व अन्फ़ुसिहिम् अलल्क़ाअिदीन
★ दरजतन् त व कुल्लंव्वअदल्लाहुल् - हुस्ना त व फ़ज़्ज़लल्लाहुल् - मुजाहिदीन
रु. अलल्-क़ाअिदीन अज्रन् अज़ीमन् ला (९५) दरजातिम्मिन्हु व मग़्फ़िरतंव्व
१३/१० रह्मतन् त व कानल्लाहु ग़फ़ूरर्रहीमन् (९६) ★ अिन्नल्लज़ीन तवफ़्फ़ाहुमुल्-
आ मला'अिकतु ज़ालिमी' अन्फ़ुसिहिम् क़ालू फ़ीम कुन्तुम् त क़ालू कुन्ना मुस्तज़्-
५ अफ़ीन फ़िल्अर्ज़ि त क़ालू' अलम् तकुन् अर्ज़ुल्लाहि वासिअतन् फ़ तुहाजिरू
फ़ीहा त फ़ अुला'अिक मअ्वाहुम् जहन्नमु त व सा'अत् मसीरन् ला (९७)

والمحصنت ٥ ٤٢ النساء ٤

الى اهله الا ان يصدقوا فان كان من قوم عدو لكم وهو
مؤمن فتحرير رقبة مؤمنة وان كان من قوم بينكم وبينهم
ميثاق فدية مسلمة الى اهله وتحرير رقبة مؤمنة فمن لم
يجد فصيام شهرين متتابعين توبة من الله وكان الله عليما
حكيما ﴿٩٢﴾ ومن يقتل مؤمنا متعمدا فجزاؤه جهنم خلدا فيها
وغضب الله عليه ولعنه واعد له عذابا عظيما ﴿٩٣﴾ يايها الذين
امنوا اذا ضربتم في سبيل الله فتبينوا ولا تقولوا لمن القى
اليكم السلم لست مؤمنا تبتغون عرض الحيوة الدنيا فعند الله
مغانم كثيرة كذلك كنتم من قبل فمن الله عليكم فتبينوا
ان الله كان بما تعملون خبيرا ﴿٩٤﴾ لا يستوي القعدون من المؤمنين
غير اولي الضرر والمجهدون في سبيل الله باموالهم وانفسهم
فضل الله المجهدين باموالهم وانفسهم على القعدين درجة
وكلا وعد الله الحسنى وفضل الله المجهدين على القعدين
اجرا عظيما ﴿٩٥﴾ درجت منه ومغفرة ورحمة وكان الله غفورا
رحيما ﴿٩٦﴾ ان الذين توفهم الملئكة ظالمي انفسهم قالوا فيم
كنتم قالوا كنا مستضعفين في الارض قالوا الم تكن ارض
الله واسعة فتهاجروا فيها فاولئك ماوىهم جهنم وساءت

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यह किसी मोमिन के लिए उचित नहीं कि वह किसी मोमिन को क़त्ल कर दे सिवाय
इसके कि ग़लती से ऐसा हो जाए[१८४]। और जो कोई किसी मोमिन को ग़लती से क़त्ल कर
डाले तो एक मुसलमान ग़ुलाम का आज़ाद करना (उस पर वाजिब है) और ख़ूँबहा भी जो
उसके सम्बन्धियों के हवाले किया जाएगा[१८५] सिवाय इसके कि वह लोग (स्वयं ही) उसे
माफ़ कर दें[१८६]। तो यदि वह ऐसी क़ौम में हो जो तुम्हारी दुश्मन है ऐसी स्थिति में कि
(वह स्वयं) मोमिन है, तो एक मुसलमान ग़ुलाम का आज़ाद करना (वाजिब) है[१८७]। और
यदि ऐसी क़ौम से हो कि तुम्हारे और उनके बीच सन्धि है[१८८] तो ख़ूँबहा वाजिब है जो उसके
सम्बन्धियों के हवाले किया जाएगा और एक मुसलमान ग़ुलाम का आज़ाद करना (भी)[१८९]।
फिर जिसको यह उपलब्ध न हो, उस पर दो महीने के लगातार रोज़े रखना (वाजिब है) यह
तौब: अल्लाह की ओर से है और अल्लाह बड़ा ज्ञानवाला, बड़ा हिकमत वाला है[१९०]। (९२)
और जो कोई किसी मोमिन को जान-बूझकर क़त्ल कर दे तो उसकी सज़ा जहन्नम है जिसमें
वह हमेशा पड़ा रहेगा। और अल्लाह उस पर क्रोधित होगा और उस पर धिक्कार करेगा
और उसके लिए भयंकर अज़ाब तैयार रखेगा[१९१]। (९३) ऐ ईमानवालो! जब तुम सफ़र
करो अल्लाह की राह में तो ख़ूब जाँच कर लिया करो[१९२]। और जो तुम्हें सलाम करता
हो[१९३] उसे यह मत कह दिया करो कि तू तो मुसलमान ही नहीं[१९४]; तुम दुनियावी ज़िन्दगी
का सामान तलाश करते हो तो अल्लाह के पास तो (बहुत) अधिक मालें ग़नीमत है[१९५]। ऐसे
ही तुम भी तो पहले थे[१९६], फिर अल्लाह ने तुम पर कृपा की[१९७]। तो ख़ूब जाँच कर लिया
करो। बेशक तुम जो कुछ करते हो अल्लाह उसकी ख़ूब ख़बर रखता है[१९८]। (९४)
मुसलमानों में से बिना उज्र (घर) बैठ रहनेवाले और अल्लाह की राह में अपने माल और
अपनी जान से जिहाद करनेवाले बराबर नहीं हो सकते[१९९]। अल्लाह ने जानोमाल से जिहाद
करनेवालों को बैठ रहनेवालों पर दर्जे में फ़ज़ीलत दे रखी है। और भलाई का वादा तो
अल्लाह ने सब ही से कर रखा है[२००], अल्लाह ने जिहाद करनेवालों को बैठ रहनेवालों पर
भारी बदले के लिहाज़ से बड़ाई दे रखी है[२०१]। (९५) यानी अल्लाह की तरफ़ से (बहुत ★
से) दर्जे और बख़्शिश और रहमत और अल्लाह है ही बड़ा बख़्शिशवाला, बड़ा रु. १३
रहमतवाला[२०२]। (९६) ★ १०

बेशक उन लोगों की जान, जिन्होंने अपने ऊपर ज़ुल्म कर रखा है, (जब) फ़िरिश्ते आ
निकालते हैं तो उनसे कहेंगे कि तुम किस काम में थे[२०३]? वह बोलेंगे कि हम इस देश में विवश ५
थे[२०४]। फ़िरिश्ते कहेंगे कि अल्लाह की भूमि विशाल नहीं थी कि तुम उसमें हिजरत कर
जाते। तो यही लोग हैं जिनका ठिकाना दोज़ख़ है और वह बुरा स्थान है[२०५]। (९७)

---

१८४ (चाहे वह ग़लती ग़ुस्से में हुई हो या अमल के रूप में।) शिर्क, कुफ़्र आदि एतिक़ादी गुनाहों को अलग रखा जाए तो भी अमली गुनाहों में इन्सान के लिए सबसे बड़ा गुनाह मोमिन की हत्या है। इतने बड़े गुनाह का साहस किसी मोमिन से होशोहवास की सलामती के साथ बहुत ही असम्भव है। हाँ ग़लती और भूल से या धोखे में ऐसा हो जाए तो और बात है। **"अंय्यक़्तुल मुअ्मिनन्"** क़त्ल के जुर्म की फ़क़ीहों ने दो क़िस्में की हैं। एक जान-बूझकर क़त्ल करना, जिसमें क़त्ल के आले से काम लिया गया हो। दूसरे ऐसा क़त्ल जिसमें जान-बूझकर क़त्ल का सन्देह हो और क़त्ल के आले का प्रयोग न हुआ हो। जो क़त्ल किसी शर्ई हुज्जत की बिना पर जैसे बदले के रूप में हो। ज़ाहिर है यह क़त्ल नहीं हुआ। **"अिल्ला ख़तअन्"**— फ़क़ीहों ने 'क़त्लें ख़ता' की दो बड़ी क़िस्में की हैं। एक यह कि ग़लती इरादे और ख़याल में हुई जैसे दूर से आदमी को शिकार का जानवर समझ लिया या आदमी होना तो पहचाना, परन्तु मोमिन पर हरबी (लड़ाई करनेवाला) काफ़िर का धोखा हुआ, दूसरे यह कि ग़लती अमल में हो गई मसलन् निशाना किया जानवर पर परन्तु पड़ गया आदमी पर।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४८६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४८१ से)

१८१ और उनकी यह चाह मक्रोफ़रेब है। न इससे कि उसका दिल वास्तव में लड़ाई से दिल भर गया और वह सच्चे दिल से सुलह और शान्ति चाहते हैं। यह वह मुनाफ़िक़ थे जो अपने इस्लामी अक़ीदे की भाँति इस सुलह और शान्ति के मामले में भी मुनाफ़िक़त बरत रहे थे।

१८२ (और मौक़ा पाकर मुसलमानों से लड़ने पर नि:संकोच आमादा हो जाते हैं।) "अल्-फ़ित्नति" से मुराद कुफ़्र और शिर्क और अक़ीदों का फ़साद ही हो सकती है, परन्तु सन्दर्भ से खुला हुआ संकेत मुसलमानों के क़िताल की ओर है। अक़ीदों के फ़साद में तो पूर्व ही से फँसे हुए थे। अब मौक़ा पा जाने पर मुसलमानों पर भी टूट पड़ते हैं। "उर्किसू फ़ीहा"— यानी उसमें अन्धाधुन्ध उलटे मुँह गिर पड़ते हैं। यह उनके कुफ़्र की शान मुसलमानों से जलने की भावनाओं को प्रकट करने हेतु है। गोया उनके कुफ़्र और शरारत एवं शत्रुता, जो उन्हें मुसलमानों से है, उसका अमली सुबूत भी मिल जाता है।

१८३ यानी वह वास्तव में खुले हुए लड़ाई करनेवाले हैं और उनकी खुली हुई पकड़ उनकी वादा-खिलाफ़ी और अमली इस्लाम दुश्मनी की है। "सुल्तान" यह शब्द जहाँ कहीं क़ुर्आन मजीद में आया है, पकड़ और तर्क के अर्थ में ही आया है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४८५ से)

१८५ (जो क़त्ल होनेवाले के शरई वारिसों के बीच उनकी विरासत के हिस्से के अनुसार बाँटा जाएगा।) यदि कोई वारिस न हुआ तो उनका स्थान बैतुल्माल लेगा। (बैतुल्माल— सरकारी खज़ाना जो शरई हुकूमत में होता है।) "दियत"— इस पर हाशिया पहले गुज़र चुका है। 'दियत' की मात्रा सुन्नत से केवल १०० ऊँट साबित हैं। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने इसी पर आँक कर एक हज़ार दीनार शरई या दस हज़ार दिरहम शरई ठहरा दी है। परन्तु जिस प्रकार इराक़, मिस्र और शाम की स्थिति अरब से विभिन्न थी, उसी प्रकार हिन्दुस्तान इत्यादि के हालात स्वयं उन मुल्कों से भिन्न हैं, इसलिए दियत की मात्रा को हर देश की स्थिति के अनुसार उस देश के क़ाज़ी के अधिकार में छोड़ दिया गया है, परन्तु शर्त यह है कि क़ाज़ी शरई मात्रा से कम या ज़्यादा न करे, अलबत्ता क़त्ल होनेवाले के वारिसों को अधिकार है कि खूँबहा बिलकुल माफ़ कर दें या कम कर दें। "रक़बतिन्-मुअ्मिनतिन्"— इसके अन्तर्गत जिस प्रकार गुलाम है कनीज़ या बाँदी भी शामिल है।

१८६ (चाहे सब या कोई अंश) "अंय्यस्सद्दक़ू" खूँबहा की माफ़ी को शब्द 'तसद्दुक़' का अर्थ देने में स्वयं संकेत इस ओर हो गया कि बेहतर यही है।

१८७ (और दियत इस अवसर के लिए नहीं है।) जाहिर है कि क़त्ल होनेवाला जब काफ़िरों के मध्य रहता था तो उसकी दियत भी काफ़िरों ही के हाथों में जायेगी और काफ़िर के लिए मुसलमान की विरासत मना है। "मिन् क़ौमिन् अदुव्विल्लकुम् व हुव मुअ्मिनुन्"— यानी मारा जानेवाला था तो मोमिन परन्तु किसी कारणवश हरबी काफ़िरों के मध्य में रहता था। "अदुव्वुन्" शब्द एकवचन है, अर्थ में बहुवचन है दुश्मनों के मानी में। मोमिन यदि दारुलहर्ब में ही रह गया और हिजरत करके दारुल् इस्लाम में नहीं पहुँच सका तो उसकी जान तो हर दशा में उसके इस लाभ के आधार पर सुरक्षित समझी जायेगी और उसके लिए कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित्त) देना पड़ेगा। परन्तु दियत का सम्बन्ध उसके ईमान से नहीं बल्कि उसके स्थान से है और वह दारुल् इस्लाम है नहीं अत: यह वाजिब न आयेगी।

१८८ (सुलह का या उत्तरदायित्व का) यहाँ उस स्थिति का हुक्म बयान हो रहा है कि क़त्ल होने वाला गो ग़ैरमुस्लिम है, परन्तु ऐसा क़ौम का सदस्य है जो मुसलमानों से सुलह और मेल और सन्धि किये हुए या फ़क़ीहों की परिभाषा में 'ज़िम्मी या मुस्तामिन' है।

१८९ गोया कफ़्फ़ारा या दियत के लिहाज़ से ज़िम्मी और सन्धि वाला काफ़िर भी एक मुसलमान के समान हक़ रखता है। "फ़ दियतुन् मुसल्लमतुन् अिला' अह्लिही" यानी उस काफ़िर का भी खूँबहा उसके काफ़िर वारिसों को दिया जायेगा।

१९० बस ऐसे सम्पूर्ण ज्ञानी और सबसे बड़े ज्ञाता के क़ानून में किसी परिवर्तन एवं संशोधन करने की गुंजाइश किसी बन्दे को नहीं है। "तौबतम्-मिनल्लाहि" यह शब्द तो बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित है, शर्मसारी, नदामत, लज्जित होने और सुधार के सारे पहलू इसके अन्दर आ गये। 'मिनल्लाह' में इसकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ताकीद एवं विस्तार है कि कफ़्फ़ारा और दियत के यह तरीक़े अल्लाह की ओर से नियत हैं किसी बन्दे की ओर से नहीं है। **"फ़ मल्लम् यजिद"**— यानी जिसको बाँदी या ग़ुलाम की क्षमता ही न हो और यह स्थिति इस समय हिन्दुस्तान में बिलकुल लागू है जब कि शरई कनीज़ और ग़ुलाम का अस्तित्व है ही नहीं। **'मुततािबअेनि'** इन दो महीनों में अगर एक दिन का भी नाग़ा बिना शरई विवशता के हो जायेगा तो फिर से उन दो महीनों की गिनती करनी पड़ेगी।

१६१ एक साथ इतनी कड़ी तम्बीह और चेतावनी सिवाय कुफ़्र और शिर्क के किसी अन्य किसी अपराध की क़ुर्आन मजीद में नहीं आई और इसीलिए मोमिन का क़त्ल अंशा इरा और मोतज़िला सबके निकट सर्वसहमति से बड़े-से-बड़ा गुनाह है और यह डरने और काँप जाने की चीज़ है। **"मंय्यक़्तुल् मुअ्मिनम्-मुतअम्मिदन्"**— क़त्ले अमद (जान-बूझकर मार डालना) की जो सीधी और जानी-पहचानी शक्लें हैं वह तो हैं ही, परन्तु अजब नहीं कि इस चेतावनी के अन्तर्गत मुसलमान के क़त्ल में वह सारी शक्लें आ जायें जो किसी ग़ैर-शरई क़ानून के अनुसार और किसी काफ़िराना विधान या शासन के अधीन की जाती हैं जैसे किसी काफ़िर सरकार की फ़ौज या पुलिस में प्रविष्ट होकर उस शासन के बाग़ी और अपराधी मुसलमान पर गोली चला देना या किसी ग़ैर-इस्लामी अदालत की कुर्सी पर मैजिस्ट्रेट या जज के रूप में बैठकर किसी मुसलमान को मृत्युदण्ड का हुक्म सुना देना। **'मुतअम्मिदन्'— 'तअम्मुद'** की दो सूरतें हैं, एक यह कि क़त्ल होनेवाले के ईमान के ही कारण उसे क़त्ल किया जाए यह सूरत तो स्पष्ट कुफ़्र की है। दूसरी यह कि मुसलमान के क़त्ल को जाइज़ समझकर। यह स्थिति भी कुफ़्र ही की हुई। **"फ़ जज़ा'अुहू"**— आगे ऐसे क़ातिल की सज़ा का बयान है, जो ऐसे क़त्ल को जाइज़ समझे या बिना तौबा किये हुए मर जाए। फिर यह भी ध्यान रहे अपराध की गम्भीरता को विचार में लाते हुए अस्ल सज़ा यही है जो यहाँ वर्णित हुई, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि हर मोमिन को भी यह अन्तिम सज़ा मिलकर ही रहे और यह तफ़्सीर हदीसें नबवी से निष्कर्षित है और उसी पर आधारित है। दुनियावी क़ानून में भी अपराधों की एक अन्तिम सज़ा नियत होती है, परन्तु हाकिम के विवेक पर होगा कि उस सीमा के भीतर जितनी सज़ा उचित समझे दे। अहले सुन्नत के बहुमत की यह राय है कि क़ातिल अगर मुसलमान है तो उसकी तौबा भी अन्त में स्वीकार हो जायेगी और जहन्नम में दाखिल करने की सज़ा केवल काफ़िरों और मुश्रिकों के लिए रह जायेगी। इस अक़ीदे की दलीलें किताब एवं सुन्नत से निष्कर्षित वाणी एवं अक़ीदों की पुस्तकों में अपने स्थान पर विस्तृत रूप से अंकित मिलेंगी।

१६२ (हर बात की ओर विशेष रूप से क़त्ल के विषय में।) यह मुसलमानों को निर्देश हो रहे हैं कि जब तुम वतन से बाहर जिहाद की यात्रा में हो तो बिना अच्छी तरह से छानबीन किये केवल सन्देह और शुबहे में क़त्ल करने में जल्दीबाज़ी न कर दिया करो। **'फ़ तबय्यनू'** खूब सोच-विचार कर लो ऐसा न हो कि काफ़िर के खयाल में किसी कलमा-गो यानी मुसलमान को क़त्ल कर डालो। यह जाँच-पड़ताल सफ़र और बिना सफ़र दोनों स्थितियों में वाजिब है। जिहाद के सफ़र का प्रतिबन्ध आयत में केवल इस कारण से है कि आयत के उतरने के पूर्व ऐसी घटना जिहाद के ही सफ़र में इत्तिफ़ाक़ से घटी थी। अहादीसे नबवी में यह मज़मून बार-बार आये हैं कि एक मुसलमान को क़त्ल कर दिया जाना अल्लाह के यहाँ हज़ार काफ़िरों के ज़िन्दा बच जाने से बल्कि सारी दुनिया के फ़ना हो जाने से अधिक भयावह है। **'फ़ी सबीलिल्लाह'**— यानी जिहाद के मार्ग में।

१६३ (मुसलमानों के तरीक़े से या और किसी ऐसी ही निशानी से अपने इस्लाम को ज़ाहिर कर रहा हो।)

१६४ (बल्कि केवल जान बचाने को इस्लाम ज़ाहिर कर रहा है।) उद्देश्य यह है कि क़त्ल से हाथ उठा लेना उस व्यक्ति के केवल इस्लाम के ज़ाहिर करने से वाजिब हो जाता है। उसकी अन्तरात्मा की जाँच करना कदापि तुम्हारे ज़िम्मे नहीं है। फ़क़ीहों की सहमति इस बात पर है कि जान एवं माल को सुरक्षा देनेवाली चीज़ कलिमए शहादत है। सन्धि में रहनेवाला काफ़िर भी यदि उसे पढ़ देगा तो मुसलमान को उस पर तलवार उठाना हराम हो जाएगा। आयत से बाज़ फ़िर्क़ों ने यह तर्क दिया है कि अकेला ईमान वाणी का नाम है, परन्तु शोधकों का कहना है कि ईमान केवल ज़बान से मान लेने का नाम नहीं है, क्योंकि ज़बान से तो मुनाफ़िक़ भी इक़रार कर लेते थे, ईमान की हक़ीक़त में दिल से सत्यापन करना शामिल है। अलबत्ता बन्दों के पास इस ज्ञान का कोई माध्यम शब्द और वाणी के अलावा नहीं है।

१६५ यानी अगर माले ग़नीमत का लालच तुम्हें एक इस्लाम के शत्रु के क़त्ल में जल्दबाज़ी और लापरवाही की ओर ला रही है तो यह याद रखो कि माले ग़नीमत का स्रोत भी तो अल्लाह ही की ज़ात है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और उसे यह शक्ति है कि वह तुम्हें उसकी बड़ी-से-बड़ी मात्रा शरीअत के नियमों के अनुसरण के द्वारा ही प्रदान कर दे। **"अरज़ल् हयातिद्दुनया"**— **'अरज़'** वह वस्तु है जो स्वयं क़ायम न रह सके और इसीलिए भाषा के ज्ञाताओं ने जौहर यानी सारांश के सामने की परिभाषा रखी है। यहाँ **'अरज़'** का अर्थ है **'माल'** और 'माल' के बजाय **'अरज़'** इसीलिए लाया गया है कि इससे माल की अस्थिरता और जल्द मिट जाने की ओर भी संकेत हो जाए।

१९६ यह नौ मुस्लिम सहाबियों और दूसरों को याद दिलाया है कि आखिरत में तुम्हारे ऊपर भी तो यह दौर बीत चुका है कि तुम्हारे पास इस्लाम तथा ईमान का सुबूत सिवाय 'कलिमा' पढ़ लेने के और ज़बानी दावे के और क्या था। तुम्हारे हृदय की निःस्वार्थता और तुम्हारे आमाल की सुन्दरता की गवाही तो बहुत बाद को पेश हुई।

१९७ (कि तुम्हारे इस बताने और वादे को काफ़ी समझ लिया गया और तुम्हारे ईमान को विश्वसनीय मान लेने के लिए अन्तरात्मा की जाँच का आदेश नहीं दिया।) दूसरी सूरत अल्लाह की कृपा और उसकी दया की यह भी मानी जा सकती है कि उसने तुम्हारे प्रारम्भिक इस्लाम को अब मशहूर और मालूम करा दिया और तुम्हारे नेक अमाल और स्थिरता की इच्छा प्रदान की।

१९८ (सो अगर तुमने कोई भी असावधानी बरती तो उसके साथ तुम्हारा कौन सा उज़्र चल सकेगा?) **'फ़ तबय्यनू'** सावधानी और जाँच-पड़ताल के लिए यह बार-बार दोहराना आमन्त्रण का आदेश की महत्ता के कारण। एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आया 'ज़न्दीक़' की तौबा स्वीकार होगी? फ़क़ीहों ने इस आयत के आधार पर कहा है कि क़बूल होगी। (ज़न्दीक़— नास्तिक एवं अधर्मी लोग)। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने इस आयत से यह तर्क दिया है कि बच्चों का इस्लाम भी स्वीकार होगा, क्योंकि यह आयत आम है और इसमें बालिग़ और नाबालिग़ का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। बल्कि मुनाफ़िक़ स्वयं भी अपनी जान और अपने माल की मुसलमानों से बचाये हुए थे। वह कलिमए इस्लाम के उच्चारण से ही तो था जब कि अल्लाह की ओर से उनका कुफ़्र बिलकुल स्पष्ट था और रसूलुल्लाह (स०) पर भी बहुत यह बात खुली हुई थी।

१९९ (अल्लाह के यहाँ दर्जे और मर्तबे में।) **"ग़ुलिज़्ज़ररि"** के शाब्दिक तो हुए "बिना दुःख वाले" परन्तु यहाँ 'ज़रर' पीड़ा से अधिक विशाल अर्थ में है और हर प्रकार के उज़्र विवशता एवं बाधकों को शामिल है और 'ज़रर' वाले के मानी वही हैं जो उज़्र वाले के होते हैं। अर्थ स्पष्ट यह है— अल्लाह की राह में जानोमाल से जिहाद करनेवाले और बिना किसी उज़्र के घर बैठ रहनेवाले अल्लाह के यहाँ बड़ाई और उसकी सन्निकटता में बराबर नहीं हो सकते। यहीं से यह अर्थ भी साफ़ हो गया कि जिहाद **'फ़र्ज़ ऐन'** नहीं, **'फ़र्ज़ किफ़ायः'** है। यदि **'फ़र्ज़ ऐन'** होता अर्थात् हर व्यक्ति पर फ़र्ज़ होता तो उन बैठ रहनेवालों और शरीक न होनेवालों पर अवश्य प्रकोप और ताड़ना के शब्दों का अवतरण होता रहता। शीअः समुदाय ने इस आयत से यह तर्क किया है कि हज़रत अली (रज़ि०) की बड़ाई हज़रत अबू बक्र पर ज़ाहिर हो रही है, क्योंकि हज़रत अली (रज़ि०) ने जिहाद और युद्ध हज़रत अबू बक्र से कहीं ज़्यादा किया है और इसको आयत में फ़ज़ीलत या बड़ाई का मेयार माना गया है। यह दलील असत्य है। अगर केवल काफ़िरों को क़त्ल करना ही फ़ज़ीलत ही फ़ज़ीलत और बड़ाई का मेयार होता तो इमाम राज़ी (रह०) के कथनानुसार हज़रत अली स्वयं रसूलुल्लाह (स०) से भी अफ़्ज़ल और बड़े होते यद्यपि शीअः भी इसके मानने वाले नहीं हैं। मालूम हुआ कि सम्पूर्ण बड़ाई के और भी अंश और भाग हैं और यह अंश अनेकों हैं, जैसे दीन का प्रचार और प्रसार और उसी प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना। मज़हब की पुष्टी करना और उसके आदेशों की स्थिरता में व्यस्त रहना इत्यादि और इन सारे कार्यों में हज़रत सिद्दीक़े अक्बर अपने आक़ा एवं सरदार के पदचिह्न पर चलनेवाले थे। चुनांचे हज़रत उस्मान, हज़रत तल्हा, हज़रत ज़ुबैर, हज़रत सअ़द बिन अबी विक़ास (रज़ि०) जैसे उच्चकोटि के सहाबी बड़ी संख्या में आप ही की कोशिश एवं दीन के प्रचार से ईमान लाये और फिर यह भी है कि हज़रत अली के मुजाहिदाना गुणों का विकास मदीने में आकर हुआ जब कि इस्लाम को कुछ ग़ल्बा और क़ाबू मिल चुका था। इसके विपरीत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने दीन की अनमोल सेवा उस समय करनी आरम्भ की थी जब मिल्लत अत्यन्त निर्बल और गिरावट की दशा में थी और उम्मत हर तरफ़ से दुश्मनों के नर्ग़े (घेरे) में घिरी हुई थी। (कबीर)।

२०० (मुजाहिदों से उनके जिहाद के आधार पर और निर्देशकों को उनके अच्छे आमाल के कारण।) **"कुल्लन्"** यानी मुजाहिदों और पथप्रदर्शकों या निर्देशकों दोनों से। **'अलहुस्ना'**— यानी जन्नत और आख़िरत की नेमतें। **'अल्-मुजाहिदीन अलल्-क़ाइदीन'**— दोनों शब्दों में 'जिहाद' और 'क़ुऊद' के साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

अर्थ को दृष्टिगत रखना चाहिए। बयान अवश्य जिहाद के मैदान में जानेवालों और जिहाद-स्थल से रह जानेवालों का है, परन्तु शब्द 'जिहाद' को युद्ध के माने में विशिष्ट और सीमित कर देना सही नहीं, बल्कि दीन की सहायता की हर चिन्ता और प्रयास उसके भीतर आ जाता है। (जिसका एक भाग अवश्य ही युद्ध भी है।) इसी प्रकार 'क़ुअद' यानी घर में बैठ रहने के आधीन हर शरीअ़त के कार्य में सुस्ती करना आ जाता है। और इसी का एक अहम भाग लड़ाई से जी चुराना भी है। गोया बड़ाई या फ़ज़ीलत दीन के हर काम करनेवाले को न करनेवाले पर प्राप्त है और इससे तो यह सन्देह समाप्त हो गया कि जंग का एक-एक सैनिक हर जंग न करनेवाले से अफ़्ज़ल है चाहे वह असैनिक किसी श्रेणी और मर्तबे का, हदीसों का विशेषज्ञ (मुहद्दिस), तफ़्सीर करनेवाला (मुफ़स्सिर), फ़िक़ह का ज्ञाता (फ़क़ीह), भाषा का विशेषज्ञ (मुतकल्लिम) और सूफ़ी आदि दीन का सेवक हो।

२०१ हलकी-फुलकी बातों में मसलों को हल करनेवालों ने एक बिन्दु लिखा है, **'अल् मुजाहिदून बि अम्वालिहिम् व अन्फ़ुसिहिम्'** (जानोमाल से जिहाद करनेवालों) का, ज़िक्र तो ऊपर आ चुका है अब यहाँ ज़िक्र बिलकुल मुजाहिदों का बिना किसी प्रतिबन्ध के है। इससे मुराद वह लोग हैं जो अपनी ज़िन्दगी का रुख़ बिलकुल ग़ैरअल्लाह की ओर से फेर लें और यह मुजाहिदात सूफ़ियों का उच्च स्थान है।

२०२ चुनांचे अल्लाह तआ़ला अपनी क्षमा करने की शान और तक़ाज़े से उनकी हर मजबूरी और विवशता को मान लेगा और दया करने की शान के तक़ाज़े से उन्हें और बदला प्रदान करेगा।

२०३ यानी दारुल् कुफ़्र दारुल् हर्ब (कुफ़्र और जिहाद के स्थान) में रहकर दीन के किन-किन कार्यों में लगे हुए थे कि हिजरत को नहीं निकले। यह आपत्ति है उनके हिजरत न करने पर और दारुलहर्ब में रहने पर राज़ी होने और सन्तोष कर लेने पर। यह वह लोग थे जो मक्के में रसूल (स०) के साथ इस्लाम का इक़रार कर चुके थे, परन्तु जब हिजरत फ़र्ज़ हुई तो यह मुसलमानों के साथ नहीं आये, मक्के में ही रह गये, यहाँ तक कि फिर मुश्रिकों का साथ देने लगे। यह ताड़ना और क्रोध स्वयं इस बात का प्रमाण है कि हिजरत उस समम "फ़र्ज़ ऐन" थी (हर व्यक्ति पर फ़र्ज़ थी), फ़तह-मक्का के बाद हिजरत वाजिब नहीं रही। हदीसे नबवी में इर्शाद हुआ है। **"ला हिजरत बअ़दिल फ़तह"**— फ़क़ीहों ने लिखा है कि हिजरत उस समय इस कारण से वाजिब थी कि मुन्किरों (इस्लाम का इन्कार करनेवालों) की ओर से होनेवाली तकलीफ़ों और परेशानियों से सुरक्षित रहकर मुसलमान ख़ुदाई हुकूमत के भीतर रहें और अल्लाह के विधान का चलन अपने यहाँ कर सकें। जब इस्लाम की सेना को काफ़ी बल प्राप्त हो गया और मुन्किरों की बाधाओं का बल टूट गया तो हिजरत भी वाजिब नहीं रही। परन्तु फिर कहीं और जब कभी हिजरत के वही कारण पाये जाने लगें तो हिजरत वाजिब हो जायेगी। मुफ़स्सिर, मौलाना थानवी ने फ़र्माया कि अब तक जिहाद का ज़िक्र था, जिसका सारांश है काफ़िरों के शर और फ़साद को आम तौर से समाप्त करना। अब हिजरत का वर्णन आरम्भ हो रहा है जिसका सारांश है विशेष रूप से काफ़िरों के शर और फ़साद को समाप्त करना। पहला आदेश सामूहिक था, और यह दूसरा व्यक्तिगत है। दोनों में उद्देश्य दीन की स्थिरता एवं स्थायित्व देने की बात मुश्तरक है।

२०४ यानी अपने देश में हम आधीन और विवश थे। दीन के हुक्मों पर अमल करना हमारे बश में न था, इसलिए फ़र्ज़ों को अदा नहीं कर सके।

२०५ फ़क़ीहों ने लिखा है कि जब एक देश में रहकर दीन के फ़र्ज़ों को अदा करने में परेशानी हो और यह मालूम हो कि कोई दूसरा देश है जहाँ दीनी फ़र्ज़ों को अदा करना सम्भव हो तो पहले से दूसरे देश की ओर हिजरत वाजिब हो जाती है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६१ से)

जहाँ अल्लाह और उसके दीन को ज़ाहिर कर सके। तहक़ीक़ और शोध करनेवालों ने लिखा है कि हर ऐसा जो ख़ुदा की रज़ामन्दी के लिए हो जैसे हज के लिए या दीनी इल्म की प्राप्ति के लिए वह वतन छोड़ने के लिहाज़ से हिजरत के ही हुक्म में आता है।

२१० (तो उसके लिए क्या कठिन है कि वह असफलता के पश्चात् भी पूरा वही बदला प्रदान करे जिसका वादा सफलता पर हुआ था।)

२११ अन्त का यह वाक्य जैसा कि शारिअ़ (अ़लैहिस्सलाम) का अमल इस पर गवाह है और सारे

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४६२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अिल्लल् - मुस्तज़्अफ़ीन मिनर्रिजालि वन्निसा'अि वल्विल्दानि ला यस्ततीअून
हीलतंव्व ला यह्तदून सबीलन् ला (९८) फ़ अुला'अिक असल्लाहु अंय्यअ़्फ़ुव
अ़न्हुम् त व कानल्लाहु अ़फ़ुव्वन् ग़फ़ूरन् (९९) व मंय्युहाजिर् फ़ी
सबीलिल्लाहि यजिद् फ़िल्अर्ज़ि मुराग़मन् कसीरंव्व सअ़तन् त व मंय्यख़्रुज्
मिम्बैतिही मुहाजिरन् अिलल्लाहि व
रसूलिही सुम्म युद्रिक्हुल्मौतु फ़ क़द् वक़अ
अज्रुहू अ़लल्लाहि त व कानल्लाहु
★ रु. १४/११ पा ५ ग़फ़ूररंहीमन् (१००) ★ व अिज़ा
ज़रब्तुम् फ़िल्अर्ज़ि फ़ लैस अ़लैकुम् जुनाहुन्
अन् तक़्सुरू मिनस्सलाति क़ सला अिन्
ख़िफ़्तुम् अंय्यफ़्तिन - कुमुल्लज़ीन कफ़रू त
अिन्नल्काफ़िरीन कानू लकुम् अ़दुव्वम्-मुबीनन्
(१०१) व अिज़ा कुन्त फ़ीहिम्
फ़ अक़म्त लहुमुस्सलात फ़ल्तक़ुम् ता'अिफ़तुम्-
मिन्हुम् मअ़क वल्यअ्ख़ुज़ू अस्लिहतहुम् क़िफ़
फ़ अिज़ा सजदू फ़ल्यकूनू मिंव्वरा'अिकुम् स

مَصِيْرًا ۝ اِلَّا الْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَاۤءِ وَالْوِلْدَانِ لَا
يَسْتَطِيْعُوْنَ حِيْلَةً وَّلَا يَهْتَدُوْنَ سَبِيْلًا ۝ فَاُولٰۤىِٕكَ عَسَى اللّٰهُ
اَنْ يَّعْفُوَ عَنْهُمْ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَفُوًّا غَفُوْرًا ۝ وَمَنْ يُّهَاجِرْ فِيْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ يَجِدْ فِي الْاَرْضِ مُرٰغَمًا كَثِيْرًا وَّسَعَةً ۭ وَمَنْ يَّخْرُجْ
مِنْۢ بَيْتِهٖ مُهَاجِرًا اِلَى اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ثُمَّ يُدْرِكْهُ الْمَوْتُ فَقَدْ
وَقَعَ اَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝ ع وَاِذَا ضَرَبْتُمْ
فِي الْاَرْضِ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَقْصُرُوْا مِنَ الصَّلٰوةِ ۖ اِنْ
خِفْتُمْ اَنْ يَّفْتِنَكُمُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۭ اِنَّ الْكٰفِرِيْنَ كَانُوْا لَكُمْ عَدُوًّا
مُّبِيْنًا ۝ وَاِذَا كُنْتَ فِيْهِمْ فَاَقَمْتَ لَهُمُ الصَّلٰوةَ فَلْتَقُمْ طَاۤىِٕفَةٌ مِّنْهُمْ
مَّعَكَ وَلْيَاْخُذُوْٓا اَسْلِحَتَهُمْ ۣ فَاِذَا سَجَدُوْا فَلْيَكُوْنُوْا مِنْ وَّرَاۗىِٕكُمْ
وَلْتَاْتِ طَاۤىِٕفَةٌ اُخْرٰى لَمْ يُصَلُّوْا فَلْيُصَلُّوْا مَعَكَ وَلْيَاْخُذُوْا
حِذْرَهُمْ وَاَسْلِحَتَهُمْ ۚ وَدَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْ تَغْفُلُوْنَ عَنْ اَسْلِحَتِكُمْ
وَاَمْتِعَتِكُمْ فَيَمِيْلُوْنَ عَلَيْكُمْ مَّيْلَةً وَّاحِدَةً ۭ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ
اِنْ كَانَ بِكُمْ اَذًى مِّنْ مَّطَرٍ اَوْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَنْ تَضَعُوْٓا اَسْلِحَتَكُمْ ۚ
وَخُذُوْا حِذْرَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ اَعَدَّ لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ۝ فَاِذَا
قَضَيْتُمُ الصَّلٰوةَ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ قِيٰمًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰي جُنُوْبِكُمْ ۚ فَاِذَا
اطْمَاْنَنْتُمْ فَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ ۚ اِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَي الْمُؤْمِنِيْنَ كِتٰبًا

वल्तअ्ति ता'अिफ़तुन् अुख़्रा लम् युसल्लू फ़ल्युसल्लू मअ़क वल्-
यअ्ख़ुज़ू ह़िज़्रहुम् व अस्लिहतहुम् ज वद्दल्लज़ीन कफ़रू लौ तग़्फ़ुलून
अन् अस्लिहतिकुम् व अम्तिअतिकुम् फ़ यमीलून अ़लैकुम् मैलतंव्वाहिदतन् त
व ला जुनाह अ़लैकुम् अिन् कान बिकुम् अज़म् - मिम् - मतरिन् औ
कुन्तुम् मर्ज़ा' अन् तज़अू' अस्लिहतकुम् ज व ख़ुज़ू ह़िज़्रकुम् त
अिन्नल्लाह अअ़द्द लिल्काफ़िरीन अ़ज़ाबम्मुहीनन् (१०२) फ़ अिज़ा क़ज़ैतुमुस्सलात
फ़ज़्कुरुल्लाह क़ियामंव्व क़ुअूदंव्व अ़ला जुनूबिकुम् ज फ़ अिज़त्मअ्नन्तुम्
फ़ अक़ीमुस्सलात ज अिन्नस्सलात कानत् अ़लल्मुअ्मिनीन किताबम्-मौक़ूतन् (१०३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिवाय उन लोगों के जो पुरुषों, और स्त्रियों, बच्चों में से निर्बल हों कि न कोई तदबीर ही कर सकते हों और न कोई राह पाते हों[२०६], (९८) तो यह लोग ऐसे हैं कि अल्लाह् उन्हें माफ़ कर देगा। और अल्लाह् तो है ही बड़ा माफ़ करनेवाला, बड़ा बख़्शनेवाला[२०७]। (९९) और जो कोई अल्लाह् की राह में हिजरत करेगा वह ज़मीन पर जाने की बहुत जगह और गुंजाइश पायेगा[२०८]। और जो कोई अपने घर से अल्लाह् और उसके रसूल की ख़ातिर हिजरत करता हुआ निकले, और उसे फिर मौत आये[२०९], तो उसका बदला अवश्य अल्लाह् के ज़िम्मे साबित रहा और अल्लाह् तो है ही बड़ा बख़्शनेवाला, बड़ा मिहरबान[२१०]। (१००) ★ ★ रु. १४/११ आ ४

और जब तुम भूमि पर यात्रा करो तो तुम पर इस विषय में कोई आपत्ति नहीं कि नमाज़ में कमी करो या करो यदि तुम्हें भय हो कि काफ़िर लोग तुम्हें सतायेंगे[२११]। बेशक काफ़िर तो तुम्हारे खुले हुए दुश्मन ही हैं। (१०१) और जब आप उनके मध्य में हों और उनके लिए नमाज़ क़ायम करें तो चाहिए कि उनमें का एक गिरोह आपके साथ खड़ा हो जाए और वह लोग अपने हथियार लिये रहें[२१२]। फिर जब वह सज्दः कर चुकें तो अब चाहिए कि वह तुम लोगों के पीछे हो जाएँ और दूसरा गिरोह, जिसने अभी नमाज़ नहीं पढ़ी है, आ जाए और वह आपके साथ नमाज़ पढ़ ले, और यह लोग भी अपने बचाव का सामान और अपने हथियार (साथ) लिये रहें[२१३]। काफ़िरों की तो इच्छा ही यही है कि तुम अपने हथियारों और अपने सामान से (ज़रा) ग़ाफ़िल हो जाओ तो यह लोग तुम्हारे ऊपर एकबारगी टूट पड़ें[२१४]। और तुम्हारे लिए इसमें भी कोई आपत्ति नहीं कि यदि तुम्हें वर्षा से कष्ट हो रहा हो या तुम बीमार हो, तो अपने हथियार उतार रखो और अपने बचाव का सामान लिये रहो[२१५]। बेशक अल्लाह ने काफ़िरों के लिए एक रुस्वा करनेवाला अज़ाब तैयार कर रखा है। (१०२) फिर जब तुम (उस) नमाज़ को अदा कर चुको, तो अल्लाह की याद में लग जाना, खड़े और बैठे और लेटे[२१६]। और फिर जब तुम्हें सन्तोष प्राप्त हो तो नमाज़ को क़ायम करो[२१७]। बेशक नमाज़ तो ईमानवालों पर समय की पाबन्दी के साथ फ़र्ज़ है[२१८]। (१०३)

---

२०६ यानी ऐसे लोग जो वास्तव में अपनी जिस्मानी कमज़ोरी के कारण न तो हिजरत करने योग्य हों और न किसी दारुल् इस्लाम का उन्हें पता-निशान मिल रहा हो। **'ह़ीलतन्'**— तदबीर के लिए यह शब्द आम तौर पर लाया जाता है। यह शब्द "बहाना" के मानी नहीं रखता।

२०७ **'अफ़ुव'** का सम्बन्ध 'भूत' से है और 'ग़फ़र' का भविष्य से। अर्थात् उनकी पिछली त्रुटियों को क्षमा कर देनेवाला है और भविष्य उनके हक़ में मग़्फ़िरत करनेवाला है। **"अंय्यअ़्फ़ुव अन्हुम्"**— यानी उनसे हिजरत का फ़रीज़ः सरे से समाप्त कर दिया जाए। **"अ़सल्लाहु"**— **'अ़सा'** से मुराद जैसा कि ऊपर गुज़र चुका है केवल आशा या उम्मीद नहीं रह जाती बल्कि विश्वास पैदा हो जाता है उस समय जब उसकी कृपा का सम्बन्ध अल्लाह से होता है। मौलाना थानवी ने फ़र्माया है कि हिजरत न करने का गुनाह् वास्तव में इस क़दर सख़्त है कि **'ग़फ़ूरन्'** लाकर उधर इशारा कर दिया गया है कि उज़्र के बावजूद और इसी कारण गुनाह् न होने पर भी उसका रूप गुनाह् जैसा है यद्यपि माफ़ कर दिया गया।

२०८ (दीन को क़ायम रखने और सच्चे कलिमे को ज़ाहिर करने के लिए।) अर्थात् यह कि कोई हिजरत करके देखे तो, अल्लाह् की सरज़मीन तंग नहीं, इस भू पर उसे अनेकों स्थान मिल जायेंगे जहाँ वह आज़ादी के साथ अपने दीन को ज़ाहिर कर सकता है। बाज़ अह्ले लताइफ़ ने कहा कि **'मुराग़मन्'** और **'सअ़तन्'** दो अलग-अलग शब्द लाने में इशारा यह है कि इस दुनिया में दीन के ज़ाहिर करने के स्थान मिल जायेंगे और आख़िरत में चौड़ी-चकली जन्नतें प्राप्त होंगी।

२०९ इसके पूर्व कि अपनी मंज़िल या हिजरत के स्थान को पहुँच सके और इसलिए गोया ज़ाहिर में असफल रहे।) फ़क़ीहों एवं मुफ़स्सिरों ने लिखा है कि हर ऐसी मजबूरी, जो मनुष्य को विवश और मजबूर कर दे, मृत्यु के माने में होती है। **"मुहाजिरन् बिलल्लाहि व रसूलिही"**— अर्थात् ऐसे स्थान को चले

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४८६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४८६ से)

ज्ञानी सिवाय खारिजियों के इस पर सहमत हैं, शर्त के रूप में नहीं कि केवल उसी दशा में नमाज़ क़स्र की जाए बल्कि इस वाक्य में आयत के उतरने के समय की केवल वास्तविक स्थिति का वर्णन है अन्यथा नमाज़ के क़स्र करने का आदेश हर सफ़र के साथ आम है चाहे भय का अवसर हो या न हो। और यह शब्द हर सफ़र के लिए आम है चाहे वह दीनी हो जैसे जिहाद आदि चाहे केवल दुनियावी हो जैसे व्यापार या सैरो-सयाहत के लिए। रहा यह कि सफ़र कितनी दूर का हो जिस पर शर्ई यात्रा का लागू होना सिद्ध हो सके, तो क़ुर्आन मजीद और सही सुन्नत इसके उत्तर में मौन हैं। फ़क़ीहों (धर्म-शास्त्रियों) ने विभिन्न अन्दाज़े और तखमीने नियत किये हैं। हनफ़ीया के यहाँ यात्रा तीन मंज़िल की होनी चाहिए। शाफ़िईया एवं मालिकीया के यहाँ दो मंज़िल की और मंज़िल का अन्दाज़ा बीस मील का है, फ़ासिले के सम्बन्ध में और भी बहुत से क़ौल नक़्ल हुए हैं, चुनांचे बाज़ मुहद्दिसों ने ऐसे २० क़ौल से अधिक नक़्ल किये हैं। फ़क़ीहों के बहुमत की राय है कि जिस जाइज़ और सही उद्देश्य से भी हो वह शर्ई सफ़र कहा जायेगा। **'लैस अलैकुम् जुनाहुन्'** यानी ज़ाहिरी निगाह में नमाज़ की रक्अतों में कमी कर देना एक गुनाह की बात मालूम होती है और तुम्हें भी गुनाह का शक अवश्य हो रहा है, परन्तु इत्मीनान रखो कि इसमें आपत्ति नहीं। अल्लाह की ओर से यह जाइज़ किया जा रहा है। **'अस्सलाति'** (नमाज़) से मुराद फ़र्ज़ नमाज़ है। हनफ़ीया के यहाँ सफ़र में नमाज़ का क़स्र करना 'मुस्तहब' नहीं 'वाजिब' है। और यह क़स्र चार रक्अतों वाली तीनों नमाज़ों में होता है। जुहर, अस्र और इशा में फ़र्ज़ नमाज़ों में दो-दो रक्अतें रह जाती हैं। क़स्र के मसलों का विवरण फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) की किताबों में मिलेगा। **"फ़िल्अर्ज़ि"**— का यह अर्थ नहीं है कि यात्रा केवल भूमि पर ही हो। अर्ज़ का शब्द ज़मीन तथा समुद्र के लिए आम एवं मुश्तरक है और अर्थ यह है कि कोई भी यात्रा हो।

२१२ यानी नमाज़ की दशा में हथियारबन्द रहें। **'अिज़ा कुन्त फ़ीहिम्'**— सीग़ा एकवचन हाज़िर है। केवल रसूलुल्लाह ही मुराद नहीं, आप हों या आपकी जगह कोई स्थानापन्न। **'फ़ अक़म्त लहुमुस्सलात'** यानी जब नमाज़ का समय आ जाए और आप युद्धस्थल में नमाज़ की इमामत के लिए खड़े हो जाएँ और यह भय हो कि शत्रु मौक़ा पाकर आक्रमण कर देगा। **"फ़ल्तक़ुम् ता'अिफ़तुम्-मिनहुम् मअक"**— यानी ऐसे अवसर पर चाहिए कि सेना के दो गिरोह हो जाएँ। कुछ लोग नमाज़ आरम्भ कर दें और कुछ लोग देखभाल एवं सुरक्षा हेतु दुश्मन के सामने खड़े हो जाएँ। यह सारा वर्णन **"सलातुल् ख़ौफ़"** का हो रहा है। पूरा विवरण फ़िक़्ह की किताबों में देखें।

२१३ फ़क़ीहों ने यहाँ से यह बात निकाली है कि ठीक इबादत के समय प्रबन्ध एवं सामानों पर ध्यान रखना बेहतर है। **'फ़ अिज़ा सजदू'**— यानी प्रथम गिरोह पूर्ण कर ले। **"फ़ल्यकूनू मिंव्वरा'अिकुम्"**— यानी प्रथम गिरोह वाले तुम्हारे पास से हटकर दुश्मन के मुक़ाबले में आ जाएँ। **'वल्तअ्ति......लम् युसल्लू'**— यानी वह लोग जिन्होंने अभी नमाज़ शुरू भी नहीं की है और अभी तक वह दुश्मन का मुक़ाबला कर रहे थे, वह अब पहले गिरोह के स्थान पर आ जाएँ। **'फ़ल्युसल्लू मअक'** यानी नमाज़ की जो रक्अत अभी इमाम के लिए अवशेष है उसमें आकर शरीक हो जाएँ।

२१४ क्या ठिकाना है हमारी शरीअत की पैदा की हुई इस चुस्ती मुस्तैदी, हर चुस्ती और हर समय की जागृति का। शत्रु सामने है, रक्तपात का बाज़ार गर्म है, जान का सौदा हो रहा है। ठीक उसी समय नमाज़ भी हो जाए और हथियार भी बराबर साथ रहें। सुस्ती, काहिली, ग़फ़्लत, आरामतलबी कहीं भी शरीअतें इस्लामी के साथ जमा नहीं हो सकतीं।

२१५ **'नमाज़े ख़ौफ़'**— की सूरतें यहाँ इर्शाद हुई हैं वह सब उस समय के लिए हैं, जब सब सिपाही एक ही इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ना चाहें और हुज़ूर (स०) की उपस्थिति में सबका आपके पीछे नमाज़ पढ़ने का लालच करना बिलकुल स्वाभाविक था। जब इमाम ही दो या अधिक हों तो फिर इस व्यवस्था की आवश्यकता ही नहीं रहती। फ़क़ीहों ने लिखा है कि ख़ौफ़ की भी दो हालतें हैं और दोनों के हुक्म पृथक्-पृथक् हैं। (१) एक यह कि ठीक युद्ध हो रहा हो और जमाअत की व्यवस्था सरे से हो ही न सके, ऐसी दशा में नमाज़े जमाअत उड़ा दी जाए और उसका वर्णन सूरए बक़र: आयत २३६ में मौजूद है। भय की ज़्यादती की स्थिति में नमाज़ अलग-अलग पढ़ी जाए। सवार या पैदल, हर प्रकार से जाइज़ है। रुकूअ एवं सजदे के लिए इशारा पर्याप्त है। क़िब्ले की ओर मुँह रहना भी आवश्यक न रहेगा। (२) दूसरे यह कि हो तो युद्धस्थल में परन्तु जंग अभी आरम्भ न हुई हो और नमाज़ बाजमाअत का मौक़ा हो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैसा कि 'फ़ अक़ीमू लहुमुस्सलात' से संकेत हो रहा है। इन आयतों में जिन इन्तिज़ामों के निर्देश हुए हैं, वह इसी सूरत से सम्बद्ध हैं।

२१६ (ग़रज़ हर स्थिति के अनुसार) **'अला जुनूबिकुम्'** के शाब्दिक अर्थ हैं अपने पहलुओं पर या अपनी करवटों पर। उर्दू या हिन्दी मुहावरे में अर्थ है लेटना। **'फ़ज़्कुरुल्लाह'** अर्थ यह हुआ कि नमाज़ में तो यह कमी हो गई बाक़ी अल्लाह के ज़िक्र में कोई कमी नहीं। यहाँ तक कि जंग की हालत में भी अल्लाह का ज़िक्र मन में तो जारी रह ही सकता है। शोधकों ने कहा है कि शरीअत को मानना भी अल्लाह का ज़िक्र ही है। **'फ़ अिज़ा क़ज़ैतुमुस्सलात'**— **'अस्सलात'** से यहाँ मुराद ही सलातें ख़ौफ़ है जिसकी एक विशेष शक्ल है जो आम नमाज़ों से हटी हुई है। इस नमाज़ के लिए शब्द 'क़ज़ैतुमु' इर्शाद इस बात की दलील है कि यह बज़ाहिर अपूर्ण और अधूरी नमाज़ भी अल्लाह की तरफ़ से उसकी कृपा से अदा हो जाती है।

२१७ (असली क़ायदे के अनुसार और पूरी शर्तों के साथ।) **'अक़ीमुस्सलात'**— **'सलात'** असली के लिए यहाँ शब्द इक़ामत का प्रयोग इसकी दलील है कि **'इक़ामतें सलात'** से मुराद नमाज़ का उसकी पूरी शर्तों के साथ ही अदा करना होता है। **'फ़ अिज़त् मअ्नन्तुम्'**— यानी सफ़र और ख़ौफ़ की हालतें ख़त्म हो जाएँ।

२१८ यहाँ नमाज़ की सिफ़त यह बयान हुई है कि वह अलावा फ़र्ज़ होने के (किताबन्) समय की पाबन्दी के लिहाज़ से फ़र्ज़ है। **'मौक़ूतन्'**— इसलिए सिवाय माज़ूरी और विवशता के उसे समय से हटा देना उचित न होगा। मुफ़स्सिर थानवी ने फ़र्माया है फ़र्ज़ होने के कारण उसका अदा करना ज़रूरी है और समय-बद्ध होने के कारण समय पर ही अदा करना ज़रूरी है। अत: विशेष समयों में उसकी शक्ल कुछ-कुछ बदल दी गई थी। जब वह बात समाप्त हो गई तो उसकी वास्तविक दशा की सुरक्षा वाजिब हो गई।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६५ से)

और उनका एक भाई बुशैर मुनाफ़िक़ था। एक मर्तबा चोर हज़रत रिफ़ाआ बिन ज़ैद अन्सारी के घर में नक़ब लगाकर उनके हथियार और मैदे की एक बोरी ले गये। जाँच करने पर पता चला कि बुशैर मुनाफ़िक़ और उसके बदमाश साथियों ने चोरी की है। हज़रत रिफ़ाआ ने अपने भतीजे जनाब क़तादा बिन नोमान से कहा कि तुम नबीए करीम (स०) के दरबार में यह घटना बयान करो तो अजब नहीं कि हमारा माल मिल जाए। उन्होंने जाकर सारी घटना हुज़ूर (स०) से बयान की। जब बुशैर के रिश्तेदारों ने सुना कि नबी (अलैहिस्सलाम) के पास मुक़द्दमा पेश हुआ है तो वह आकर कहने लगे, "या रसूलल्लाह! क़तादा बिन नोमान और उनके चचा रिफ़ाआ हमारे आदमी पर, जो मुसलमान हो चुका है, नाहक़ चोरी की तुहमत लगाते हैं।" इसके बाद क़तादा उपस्थित हुए तो आपने उनसे फ़र्माया, "तुम ऐसे व्यक्ति पर बिना सुबूत के चोरी का आरोप लगाते हो जो इस्लाम के दायरे में दाखिल हो चुका है?" यह सुनकर क़तादा के मन में इच्छा हुई कि काश मैंने आपसे चोरी की शिकायत न की होती। थोड़ी देर गुज़री थी कि अल्लाह तआला ने अपने रसूल पर यह 'वही' उतारी (आयत उतारी)। (तिर्मिज़ी अबवाब-तफ़्सीरुल् क़ुर्आन)।

२२३ ख़ियानत करनेवालों से बनू उबैरक़ मुराद हैं। जब यह आयतें उतरीं तो बनू उबैरक़ ने बुशैर और उसके साथियों को विवश करके चोरी का माल बरामद कर लिया और तमाम हथियार नबी (स०) के पास भेजवा दिये। बुशैर निफ़ाक़ का वस्त्र उतारकर खुल्लमखुल्ला मुश्रिकों से जा मिला।

२२४ यह इस्तिग़्फ़ार का आदेश रसूल को किसलिए मिल रहा है? अपने हक़ में था कि उम्मत के हक़ में। ज़ाहिर में यह आदेश इस्तिग़्फ़ार का उन लोगों के हक़ में मालूम होता है जो बिरादरी के विचार से उस मुनाफ़िक़ अपराधी के हक़ में प्रयास एवं सुफ़ारिश कर रहे थे। क़ुर्आन मजीद में इस बयानी की शैली की मिसालें अन्य स्थानों पर भी मिलती हैं, जैसे **'या अय्युहन्नबिय्युत्तक़िल्लाह या व अिन् कुन्त फ़ी शक्किन्'**— इत्यादि चुनांचे अह्लें तफ़्सीर का एक गिरोह इसी मत का है। परन्तु यदि दूसरे मुफ़स्सिरों के रुचि-अनुसार यह अर्थ लिये जाएँ कि ऐ पयम्बर! आप अपने हक़ में मग़्फ़िरत तलब कीजिए। तो इससे इशारा आपकी तबीयत की रुचि की ओर है कि आपने बनू उबैरक़ की शिकायत पर हज़रत क़तादा बिन नोमान से नाराज़ी प्रकट की। तबीयत की यह रुचि ज़ाहिर है कि गुनाहें क़बीरा क्या, गुनाहें सग़ीरा का

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४६६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व ला तहिनू फ़िब्तिग़ा'अिल् - क़ौमि त अिन् तकूनू तअ्लमून
फ़ अिन्नहुम् यअ्लमून कमा तअ्लमून ज व तर्जून मिनल्लाहि
★ रु. १५ मा ला यर्जून त व कानल्लाहु अ़लीमन् ह़कीमन् (१०४) ★ अिन्ना'
१२ अन्ज़ल्ना' अिलैकल् - किताब बिल्ह़क़्क़ि लि तह़्कुम् बैनन्नासि बिमा'
आ ४ अराकल्लाहु त व ला तकुल्लिल्ख़ा'अिनीन
ख़सीमन् ला (१०५) ‍व्वस्तग़्फ़िरिल्लाह त
अिन्नल्लाह कान ग़फ़ूरर्रह़ीमन् ज (१०६)
व ला तुजादिल् अ़निल्लज़ीन यख़्तानून
अन्फ़ुसहुम् त अिन्नल्लाह ला युहि़ब्बु
मन् कान ख़व्वानन् असीमन् ज ला
(१०७) य्यस्तख़्फ़ून मिनन्नासि व ला
यस्तख़्फ़ून मिनल्लाहि व हुव मअ़हुम् अिज़्
युबय्यितून मा ला यर्ज़ा मिनल्क़ौलि त
व कानल्लाहु बिमा यअ़्मलून मुहीतन्
(१०८) हा'अन्तुम् हा'अुला'अि जादल्तुम्
अ़न्हुम् फ़िल् - ह़यातिद् - दुन्या ज़िफ़
फ़ मंय्युजादिलुल्लाह अ़न्हुम् यौमल् - क़ियामति अम्मंय्यकूनु अ़लैहिम् वकीलन्
(१०९) व मंय्यअ़्मल् सू'अन् औ यज़्लिम् नफ़्सहू सुम्म यस्तग़्फ़िरिल्लाह
यजिदिल्लाह ग़फ़ूरर्रह़ीमन् (११०) व मंय्यक्सिब् अिस्मन् फ़ अिन्नमा
यक्सिबुहू अ़ला नफ़्सिही त व कानल्लाहु अ़लीमन् ह़कीमन् (१११) व
★ रु. मंय्यक्सिब् ख़ती'अतन् औ अिस्मन् सुम्म यर्मि बिही बरी'अन् फ़ क़दिह़्तमल
१६ बुहतानंव्व अिस्मम् - मुबीनन् (११२) ★ व लौला फ़ज़्लुल्लाहि अ़लैक
१३ व रह़्मतुहू ल हम्मत्ता'अिफ़तुम् - मिन्हुम् अंय्युज़िल्लूक त व मा
आ ८ युज़िल्लून अिल्ला' अन्फ़ुसहुम् व मा यज़ुर्रुनक मिन् शैअिन् त व
● सु. अन्ज़लल्लाहु अ़लैकल् - किताब वल्ह़िक्मत व अ़ल्लमक मा लम्
३ / ४ तकुन् तअ़्लमु त व कान फ़ज़्लुल्लाहि अ़लैक अ़ज़ीमन् (११३) ●

والمحصنت ٥ — ٦٩ — النسآء ٤

مَوْقُوتًا ﴿١٠٣﴾ وَلَا تَهِنُوا فِي ابْتِغَاءِ الْقَوْمِ ۖ إِنْ تَكُونُوا تَأْلَمُونَ فَإِنَّهُمْ
يَأْلَمُونَ كَمَا تَأْلَمُونَ ۖ وَتَرْجُونَ مِنَ اللَّهِ مَا لَا يَرْجُونَ ۗ وَكَانَ اللَّهُ
عَلِيمًا حَكِيمًا ﴿١٠٤﴾ إِنَّا أَنْزَلْنَا إِلَيْكَ الْكِتَابَ بِالْحَقِّ لِتَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ
بِمَا أَرَاكَ اللَّهُ ۚ وَلَا تَكُنْ لِلْخَائِنِينَ خَصِيمًا ﴿١٠٥﴾ وَاسْتَغْفِرِ اللَّهَ ۖ إِنَّ
اللَّهَ كَانَ غَفُورًا رَحِيمًا ﴿١٠٦﴾ وَلَا تُجَادِلْ عَنِ الَّذِينَ يَخْتَانُونَ أَنْفُسَهُمْ ۚ
إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ خَوَّانًا أَثِيمًا ﴿١٠٧﴾ يَسْتَخْفُونَ مِنَ النَّاسِ وَ
لَا يَسْتَخْفُونَ مِنَ اللَّهِ وَهُوَ مَعَهُمْ إِذْ يُبَيِّتُونَ مَا لَا يَرْضَىٰ مِنَ
الْقَوْلِ ۚ وَكَانَ اللَّهُ بِمَا يَعْمَلُونَ مُحِيطًا ﴿١٠٨﴾ هَا أَنْتُمْ هَٰؤُلَاءِ جَادَلْتُمْ
عَنْهُمْ فِي الْحَيَاةِ الدُّنْيَا فَمَنْ يُجَادِلُ اللَّهَ عَنْهُمْ يَوْمَ الْقِيَامَةِ
أَمْ مَنْ يَكُونُ عَلَيْهِمْ وَكِيلًا ﴿١٠٩﴾ وَمَنْ يَعْمَلْ سُوءًا أَوْ يَظْلِمْ نَفْسَهُ
ثُمَّ يَسْتَغْفِرِ اللَّهَ يَجِدِ اللَّهَ غَفُورًا رَحِيمًا ﴿١١٠﴾ وَمَنْ يَكْسِبْ إِثْمًا فَإِنَّمَا
يَكْسِبُهُ عَلَىٰ نَفْسِهِ ۚ وَكَانَ اللَّهُ عَلِيمًا حَكِيمًا ﴿١١١﴾ وَمَنْ يَكْسِبْ
خَطِيئَةً أَوْ إِثْمًا ثُمَّ يَرْمِ بِهِ بَرِيئًا فَقَدِ احْتَمَلَ بُهْتَانًا وَإِثْمًا
مُبِينًا ﴿١١٢﴾ وَلَوْلَا فَضْلُ اللَّهِ عَلَيْكَ وَرَحْمَتُهُ لَهَمَّتْ طَائِفَةٌ مِنْهُمْ
أَنْ يُضِلُّوكَ وَمَا يُضِلُّونَ إِلَّا أَنْفُسَهُمْ ۖ وَمَا يَضُرُّونَكَ مِنْ شَيْءٍ ۚ
وَأَنْزَلَ اللَّهُ عَلَيْكَ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَكَ مَا لَمْ تَكُنْ تَعْلَمُ ۚ
وَكَانَ فَضْلُ اللَّهِ عَلَيْكَ عَظِيمًا ﴿١١٣﴾ لَا خَيْرَ فِي كَثِيرٍ مِنْ نَجْوَاهُمْ

منزل ١

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और विरोधी क़ौम के पीछा करने में हिम्मत न हारो[२१९]। अगर तुमको दुःख पहुँचा तो
वह भी दुःख उठाये हुए हैं जैसे तुम दुःख उठाये हुए हो। और तुम अल्लाह से वह उम्मीद ★
लगाये हुए हो जो वह नहीं रखते[२२०] और अल्लाह तो है ही बड़ा इल्मवाला, बड़ा हिक्मत रु. १५/१२
वाला[२२१]। (१०४) ★ आ ४

अवश्य हमने आप पर किताब हक़ के साथ उतारी है ताकि आप लोगों के बीच फ़ैसला
उसके अनुसार करें जो अल्लाह ने आपको समझा दिया है[२२२], और इन ख़ियानत करनेवालों के
तरफ़दार न हो जाइए[२२३]। (१०५) और आप अल्लाह से मग़फ़िरत चाहो। बेशक अल्लाह बड़ा
ही माफ़ करनेवाला है, बड़ा ही दयालु है[२२४]। (१०६) और उन लोगों की तरफ़ से वकालत
न कीजिए जो अपने हक़ में ख़ियानत करते रहे हैं[२२५], अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं चाहता
जो बड़ा ख़ियानत करनेवाला और गुनहगार हो[२२६]। (१०७) यह लोग मनुष्यों से शरमाते हैं,
और अल्लाह से नहीं शरमाते। जब कि वह उनके साथ उस समय भी रहता है जब वह रात में
इस बात का मशविरा करते हैं, जो उसे पसन्द नहीं, और वह जो कुछ भी करते हैं अल्लाह
उसको घेरे हुए है[२२७]। (१०८) तुम लोगों ने दुनियावी ज़िन्दगी में तो उनकी तरफ़ से
वकालत कर ली, परन्तु क़ियामत के दिन उनकी ओर से अल्लाह के सामने कौन वकालत करेगा
या कौन उनका काम बनानेवाला होगा[२२८]? (१०९) और जो कोई भी बुराई करे या अपनी
जान पर ज़्यादती करे, फिर अल्लाह से क्षमायाचक हो, तो वह अल्लाह को बड़ा क्षमा करनेवाला,
बड़ा कृपालु पायेगा[२२९]। (११०) और जो कोई किसी गुनाह का करनेवाला बनता है, तो वह
अपनी ही जान के ख़िलाफ़ करता है और अल्लाह बड़ा ज्ञानवाला, बड़ा हिक्मतवाला ★
है[२३०]। (१११) और जो कोई किसी अपराध या गुनाह का अमल करे, फिर उसका आरोप रु. १६/१३
किसी निर्दोष पर लगा दे, तो वास्तव में उसने एक बड़ा आरोप और खुला हुआ पाप अपने सर
ले लिया[२३१]। (११२) ★ आ ८

और अगर आप पर अल्लाह की विशेष (कृपा) और रहमत न होती तो उनमें से एक
गिरोह ने तो इरादा ही कर लिया था कि आपको भटकाकर रहेंगे, यद्यपि यह अपने ही आपको
भटका रहे हैं और आपको किसी चीज़ में भी हानि नहीं पहुँचा सकते[२३२]। और अल्लाह ●
ने आप पर किताब और हिक्मत उतारी है, और आपको वह सिखा दिया है जो आप सु. ३/४
नहीं जानते थे[२३३]। और आप पर अल्लाह की बड़ी ही कृपा है[२३४]। (११३) ●

---

२१९ (जब पीछा करने की आवश्यकता पड़ जाए।) रिवायतों में आया है कि यह आयत हमराउल् असद की जंग के विषय में उतरी थी। इसका वर्णन उहद की जंग के सिल्सिले में सूरए आलि इम्रान रुकूअ़ १८ में आ चुका है। आयत, 'अल्लज़ीनस्तजाबू लिल्लाहि वर्रसूलि' के अन्तर्गत।

२२० यानी आख़िर का बदला, जिसके मुक़ाबले में मुन्किरों के पास कोई चीज़ नहीं। इस प्रकार आत्मबल के लिहाज़ से तुम उनसे कहीं बढ़े-चढ़े रहे। दुनियावी विजयों और सफलताओं की भविष्यवाणी भी इसके अन्तर्गत आ सकती है।

२२१ अतः सर्वज्ञानी होने के आधार पर उस पर दीन के शत्रुओं की जिस्मानी दुर्बलता, आत्मिक दुर्बलता से वह ख़ूब परिचित है और सबसे बड़े ज्ञानी होने के आधार पर उसने तुम्हारी सहनशक्ति से अधिक का आदेश तुम्हें नहीं दिया।

२२२ (इसी क़ुर्आन के माध्यम से) 'अराक' यहाँ बता दिया, समझा दिया और सिखा दिया के अर्थ में है। 'बिलहक़्क़'— यानी न्याय के क़ानूनानुसार। आयत इस विषय में स्पष्ट है कि जो भी निर्णय किये जायें वह क़ुर्आन ही के अनुसार और इसी के अन्तर्गत किये जायें न कि अपनी निजी इच्छाओं के अनुसार या किसी इन्सानी दिमाग़ के गढ़े हुए आईन, विधान और दस्तूर के आधीन। आयत की पृष्ठभूमि यह है कि अन्सार के क़बीले बनी उबैरक़ के एक घराने में तीन भाई बुशैर, बशर और मुबश्शिर मुसलमान थे

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४६३ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४९३ से)

भी दर्जा नहीं रखता। परन्तु पयम्बर, संयम, पवित्रता और आत्मपुनीतता के जिस उच्च स्थान पर होते हैं, उस लिहाज़ से इस क़दर इरादा और तबीयत की रुचि भी इस्तिग़्फ़ार के योग्य मानी गयी।

२२५ (यह निर्देश भविष्य के लिए है जैसा कि अब तक भी आपने पेश किया है।)

२२६ **'खव्वान'** और **'असीम'** के लाने से यह उद्देश्य नहीं है कि जो कम दर्जे के खियानत करनेवाले हैं, वह अल्लाह की दृष्टि में अप्रिय नहीं हैं, बल्कि मक़सद केवल यह ज़ाहिर करना है कि मुनाफ़िक़ की बिरादरी के जिन लोगों ने उसे अपराधी जानकर भी अकारण सत्य छुपाने और असत्य के लिए प्रयास किया वह खियानत करनेवाले और गुनहगार बड़े स्तर के थे। **'अल्लज़ीन यख़्तानन अन्फ़ुसहुम्'**— खियानत का नुक़सान और वबाल अन्त में स्वयं खियानत करनेवाले को ही भुगतना पड़ता है, इसलिए खियानत को आत्मिक खियानत कहा गया।

२२७ (उसके ज्ञान के घेरे से कौन सी छुपी हुई कार्यवाही भी छुपी रह सकती है?) यह बात अगर याद रहे और हर समय नजर के समक्ष रहे तो हर गुनाह एवं अपराध से मनुष्य बचा रहे। **'यस्तख़्फ़ून मिनन्नासि'**— यानी जनमानस के सामने बेइज़्ज़ती और अपमान से घबराते हैं और लज्जा महसूस करते हैं। **'ला यस्तख़्फ़ून मिनल्लाहि'**— अर्थात् अल्लाह के सामने अपराधी के रूप में हाज़िर होने से नहीं शर्माते हैं। **'अिज़युबय्यितून……अल्क़ौलि'**— इशारा है इस ओर कि इस खास मामले में रात को परस्पर बहुत गुप्त रूप मे परामर्श हुआ था कि प्रातः रसूलुल्लाह (स०) की सेवा में बात इसी तरीक़े पर की जायेगी। **'व हुव मअ़हुम्'**— मोतज़िला, क़द्रिया, जहमिया इत्यादि मतों वालों ने इस प्रकार की आयतों से हक़ तआ़ला के हर स्थान पर मौजूद रहने का तर्क प्रस्तुत किया है। परन्तु अहलें सुन्नत उसे अल्लाह तआ़ला की पाकी और पवित्रता की शान के विपरीत समझते हैं और उन्होंने इससे यह मुराद ली है कि अल्लाह तआ़ला के इल्म और उसकी जानकारी में हर चीज़ होती है और उपस्थिति से यह माने समझे जायें।

२२८ इस महान सत्य को स्मरण कराया है कि अस्ल पेशी और स्पष्टीकरण तो आखिरत की अदालत में होगा। यहाँ किसी प्रकार यदि बात बना भी ली गई तो क्या होता है, मोमिन के लिए अस्ल भय की चीज़ तो वही आखिरत की अदालत है जहाँ किसी प्रकार के धोखे और फ़रेब की गुंजाइश नहीं। **'हा'अन्तुम्'** सम्बोधन है अपराधी की बिरादरी और मुहल्लेवालों की ओर जिन्होंने षड्यन्त्र करके मुज्रिम को बचाने के लिए उसकी तरफ़दारी की थी।

२२९ ऊपर की ताड़ना एवं चेतावनीदायक आयतों के पश्चात् गुनहगारों एवं कमज़ोर ईमानवालों के लिए यह कैसी ज्ञानवर्धक एवं दशा-अनुकूल सान्त्वना है। **'मंय्यअ्मल् सू'अन्'** फैलनेवाली बुराई मुराद है यानी किसी दूसरे के साथ बुराई की जाए जैसे अत्याचार, धोखा, ब्याज खाना, घूस खाना इत्यादि। **'यस्तग़्फ़िरिल्लाह'**— यह इस्तिग़्फ़ार शरई नियमानुसार होनी चाहिए।

२३० सर्वज्ञानी होने के कारण वह सबके छोटे-बड़े गुनाहों से बाखबर है। हकीम होने के नाते वह बदले और दण्ड सबके हाल के अनुकूल ही प्रस्तावित करता है। **''अिन्नमा यक्सिबुहू अ़ला नफ़्सिही''**— यानी गुनाह की चोट और हानि एवं वबाल स्वयं उसी को भुगतना होगा अतः तौबा, इस्तिग़्फ़ार (क्षमा-याचना) भविष्य के गुनाहों से रोक और पश्चात्ताप अनिवार्य है।

२३१ (और अपने अपराध को कई गुना बढ़ा दिया।) तौबा न करना, अपने स्थान पर शर्मिन्दा न होना, पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्त और अपने सुधार की ओर ध्यान न करना, यह अपराध स्वयं क्या कम है कि उलटे अपना गुनाह किसी बेगुनाह के सिर थोप दिया जाए। क़ुर्आनी नैतिकता में यह अपराध अन्तरात्मा एवं शिष्टता की अत्यन्त नीचता का परिचय है और इसलिए अनिवार्य रूप से इसकी पकड़ भी सख्त रखी गई है। **''ख़ती'अतन्''**— वह छोटा गुनाह है जिसमें इरादा और जान-बूझकर करना ज़रूरी नहीं या वह गुनाह है जो केवल अल्लाह और बन्दे के बीच हो। **'अिस्मन्'**— वह बड़ा गुनाह जिसमें इरादा और जान-बूझकर करना ज़रूरी हो, या जो बन्दों का गुनाह हो।

२३२ यानी अपनी इस नापाक कोशिश में सफल होना तो उनके लिए सम्भव ही नहीं, अलबत्ता इस प्रयास से अपने ही को यह ताड़ना और दण्ड का भागी बना रहें हैं। **'लौला फ़ज़्लुल्लाहि अ़लैक व रह्मतुहू'**— अल्लाह की कृपा और मेहरबानी तो आप पर हर दशा में थी, परन्तु इस विशेष मामले में विशेषता के साथ यह प्रकट हुई। **'अंय्युज़िल्लूक'**— यानी आपको ग़लती और धोखे में डालकर आपसे ग़लत निर्णय प्राप्त करें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२३३ (दीन के निर्देशों और समस्याओं के विषय में।) ' यानी शैतान और उसके चेलों (मुनाफ़िक़) को यह शक्ति नहीं दी गई कि वह आपको दीन की किसी भी शाखा में भुलावे में डाल सकें।

२३४ यह किताब का उतारना, हिकमत का उतारना, विशेष शिक्षा देना, यह सब उसी महान कृपा की गवाहियां हैं। और अल्लाह की कृपा जिस पर महान हो उस पर किसका क़ाबू चल सकता है? **'अन्ज़लल्लकिताब'**— और इस किताब के ही माध्यम से मुनाफ़िक़ों की शत्रुता का पर्दा चाक किया गया। **'अल्लमक मा लम् तकुन् तअ्लमु'** यानी जो उच्च कोटि का इल्म आप पर नबूवत तथा क़ुर्आन के उतरने के पूर्व ज़ाहिर हो गये।

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६६ से)

२३८ (ऐसा कि अब हक़ की ओर उसका लौटना सम्भव नहीं।) **''अंय्युश्रक बिही व मंय्युश्रिक बिल्लाहि''**— शिर्क (अल्लाह का साझीदार बनाना) विपरीत है तौहीद का, और जिस प्रकार तौहीद वास्तविक नियम है तमाम सम्भव भलाइयों और नेकियों का, उसी प्रकार शिर्क असली बुनियाद है सारी बुराइयों और फ़सादों की, अतः और किसी गुनाह से शिर्क का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। पथिक का मुँह यदि मन्ज़िल की ओर हो तो किसी प्रकार गिरता पड़ता, समय नष्ट करता कभी न कभी मन्ज़िल तक पहुँच ही जायेगा, परन्तु यदि दिशा ही ग़लत हो तो ज़ाहिर है कि उसका हर क़दम उसे मन्ज़िल से दूर ही करता जायेगा और क़ियामत तक भी यदि उसी प्रकार चलता रहा तो मन्ज़िल तक न पहुँचेगा। मुश्रिक (शिर्क करनेवाला) सारी अच्छाइयों, क्षमताओं और ख़ूबियों को जला देता है अतः वह आख़िरत की किसी नेमत, स्वाद या राहत के योग्य ही नहीं रह जाता। इस सूरत की आयत ४८ के हाशिया संख्या ५७७ अवलोकित हों। आयत में ख़ारिजियों के इस अक़ीदे का भी खण्डन आ गया कि बड़े गुनाह का गुनाहगार काफ़िर हो जाता है।

२३९ मुश्रिक क़ौमों की देवमाला (माइथालोजी) में हमेशा देवियों, देवताओं की एक बड़ी संख्या रही है। हिन्दुओं में दुर्गादेवी, काली माई, लक्ष्मी जी, सरस्वती देवी के नाम एक एक की जबान पर हैं। अरब जाहिलीयत में यह देवियों की पूजा और अधिक ज़ोरों पर थी। चुनांचे क़ुर्आन मजीद में भी जाहिली माबूदों की श्रृंखलाएँ विस्तार के साथ जिन नामों का ज़िक्र आया है वह देवियों के ही नाम हैं। यानी लात, मनात और अुज़्ज़ा। (अवलोकित हो हाशिया अंग्रेज़ी तफ़्सीर)। **'अिनास'** लुग़त में इसके एक माने देवी, कमज़ोर और दुर्बल चीज़ों के भी हैं। फिर चूँकि जमादात (जड़ चीज़ें) सब-के-सब बेजान होते हैं और पत्थर के बुत एवं मूर्तियां आदि उन्हीं की बनी हुई होती हैं, जिनमें न जान होती है और न कोई अमल करने और हरकत करने की शक्ति, अतः शब्दकोश ने शब्द 'उनास' का मजाज़ी प्रयोग उनके लिए भी जाइज़ रखा है।

२४० यह मुश्रिकों की मूर्खता को स्पष्ट किया है कि उन बुतों और मूर्तियों को पुकारना गोया ठीक शैतान को पुकारना है।

२४१ और लानत का कारण उसकी यही सरकशी (आज्ञा-निरादर) और बेहुक्मी हुई है।

२४२ यह मानव मात्र को विस्तृत रूप से बता दिया है कि शैतान तो उनका पुराना शत्रु और बुरा चाहनेवाला है। **''ल अत्तख़िज़न्न मफ़्रूज़न्''** यानी अपनी राह पर लगाकर रहूँगा।

२४३ यानी उनके अक़ीदों और बुनियादी विचारों को भी डगमगा दूंगा और उनकी बुरी इच्छाओं और काम, लोभ को भी उभारूँगा। गुमराहियां दो ही तरीक़ों से आ सकती हैं और मनुष्य शैतानी प्रभाव में दो ही शक्लों में आ सकता है। एक बुद्धि और चिन्तन के मार्ग से, दूसरे भावनाओं और इन्द्रियों के प्रभाव से। क़ुर्आन मजीद के दो अर्थपूर्ण शब्दों ने सबको घेरे में ले लिया। **'ज़लाल'** के अन्तर्गत हर प्रकार की बौद्धिक, चिन्तन और दृष्टिगत गुमराहियां आ गयीं -और तमन्ना के अधीन गुनाह, बदचलनी, दुराचार की ओर चाव और नज़र से उनकी हानियों का ग़ायब हो जाना आ गया।

२४४ (बुतों के नाम पर) अरब जाहिलीयत के एक विशेष दस्तूर की ओर संकेत है। कान के पीछे जो ग़ुद्द होते हैं वह ग़ुद्द बन्दरों के काट-काटकर इन्सान के जिस्म में उनकी क़लम लगाने की जो हवा उस ज़माने में चलना शुरू हुई है और अजब नहीं कि कल बन्दरों से गुज़रकर दूसरे पशुओं और चौपायों तक पहुँच जाए। इधर यदि सृष्टि की रचना करनेवाले की बाणी में संकेत हो तो कुछ अजब नहीं।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ५०२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ला ख़ैर फ़ी कसीरिम्-मिन्नज्वाहुम् अिल्ला मन् अमर बि सदक़तिन् औ
मऽरूफ़िन् औ अिस्लाहिम्-बैनन्नासि त व मंय्यफ़्अल् ज़ालिकब्तिग़ाअ
मर्ज़ातिल्लाहि फ़ सौफ़ नुअ्तीहि अज्रन् अज़ीमन् (११४) व मंय्युशाक़िक़िर्रसूल
मिम्बड़दि मा तबय्यन लहुल्हुदा व यत्तबिड़ ग़ैर सबीलिल्-मुअ्मिनीन नुवल्लिही
मा तवल्ला व नुस्लिही जहन्नम त व साअत्
★ रु. १७/१४ आ ३ मसीरन् (११५) ★ अिन्नल्लाह ला
यग़्फ़िरु अंय्युश्रक बिही व यग़्फ़िरु मा
दून ज़ालिक लि मंय्यशाअु त व मंय्युश्रिक्
बिल्लाहि फ़क़द् ज़ल्ल ज़लालम्-बअीदन् (११६)
अिंय्यद्अून मिन्दूनिही अिल्ला अिनासन् ज
व अिंय्यद्अून अिल्ला शैतानम्-मरीदन् ला
● व. ला जि म (११७) ल्लअनहुल्लाहु म ● व क़ाल
ल अत्तख़िज़न्न मिन् अिबादिक नसीबम्-
मफ़्रूज़न् ला (११८) व्व लअुज़िल्लन्नहुम् व
ल अुमन्नियन्नहुम् व आमुरन्नहुम् फ़ ल युबत्तिकुन्न
आज़ानल्-अन्आमि व ल आमुरन्नहुम् फ़
ल युग़य्यिरुन्न ख़ल्क़ल्लाहि त व मंय्यत्तख़िज़िश्-
शैतान वलिय्यम्-मिन् दूनिल्लाहि फ़क़द् ख़सिर ख़ुस्रानम्-मुबीनन् त
(११९) यअिदुहुम् व युमन्नीहिम् त व मा यअिदुहुमुश्शैतानु अिल्ला ग़ुरूरन्
(१२०) अुलाअिक मअ्वाहुम् जहन्नमु ज व ला यजिदून अन्हा महीसन्
(१२१) वल्लज़ीन आमनू व अमिलुस्सालिहाति सनुद्ख़िलुहुम् जन्नातिन्
तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदीन फ़ीहा अबदन् त वऽदल्लाहि
हक़्क़न् त व मन् अस्दक़ु मिनल्लाहि क़ीलन् (१२२) लैस बि अमानिय्यिकुम्
व ला अमानिय्यि अह्लिल्-किताबि त मंय्यऽमल् सूअंय्युज्ज़ बिही ला
व ला यजिद् लहू मिन् दूनिल्लाहि वलिय्यंव्व ला नसीरन् (१२३)
व मंय्यऽमल् मिनस्सालिहाति मिन् ज़करिन् औ अुन्सा व हुव मुअ्मिनुन्
फ़ अुलाअिक यद्ख़ुलूनल्-जन्नत व ला युज़्लमून नक़ीरन् (१२४)

إِلَّا مَنْ أَمَرَ بِصَدَقَةٍ أَوْ مَعْرُوفٍ أَوْ إِصْلَاحٍ بَيْنَ النَّاسِ ۚ وَمَن
يَفْعَلْ ذَٰلِكَ ابْتِغَاءَ مَرْضَاتِ اللَّهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا ﴿١١٤﴾
وَمَن يُشَاقِقِ الرَّسُولَ مِن بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدَىٰ وَيَتَّبِعْ غَيْرَ
سَبِيلِ الْمُؤْمِنِينَ نُوَلِّهِ مَا تَوَلَّىٰ وَنُصْلِهِ جَهَنَّمَ ۖ وَسَاءَتْ مَصِيرًا ﴿١١٥﴾
إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَن يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ ۚ
وَمَن يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلَالًا بَعِيدًا ﴿١١٦﴾ إِن يَدْعُونَ مِن
دُونِهِ إِلَّا إِنَاثًا وَإِن يَدْعُونَ إِلَّا شَيْطَانًا مَّرِيدًا ﴿١١٧﴾ لَّعَنَهُ اللَّهُ ۘ
وَقَالَ لَأَتَّخِذَنَّ مِنْ عِبَادِكَ نَصِيبًا مَّفْرُوضًا ﴿١١٨﴾ وَلَأُضِلَّنَّهُمْ وَ
لَأُمَنِّيَنَّهُمْ وَلَآمُرَنَّهُمْ فَلَيُبَتِّكُنَّ آذَانَ الْأَنْعَامِ وَلَآمُرَنَّهُمْ
فَلَيُغَيِّرُنَّ خَلْقَ اللَّهِ ۚ وَمَن يَتَّخِذِ الشَّيْطَانَ وَلِيًّا مِّن دُونِ اللَّهِ
فَقَدْ خَسِرَ خُسْرَانًا مُّبِينًا ﴿١١٩﴾ يَعِدُهُمْ وَيُمَنِّيهِمْ ۖ وَمَا يَعِدُهُمُ
الشَّيْطَانُ إِلَّا غُرُورًا ﴿١٢٠﴾ أُولَٰئِكَ مَأْوَاهُمْ جَهَنَّمُ وَلَا يَجِدُونَ عَنْهَا
مَحِيصًا ﴿١٢١﴾ وَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنَّاتٍ
تَجْرِي مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا ۖ وَعْدَ اللَّهِ حَقًّا ۚ وَ
مَنْ أَصْدَقُ مِنَ اللَّهِ قِيلًا ﴿١٢٢﴾ لَّيْسَ بِأَمَانِيِّكُمْ وَلَا أَمَانِيِّ أَهْلِ الْكِتَابِ ۗ
مَن يَعْمَلْ سُوءًا يُجْزَ بِهِ وَلَا يَجِدْ لَهُ مِن دُونِ اللَّهِ وَلِيًّا وَلَا
نَصِيرًا ﴿١٢٣﴾ وَمَن يَعْمَلْ مِنَ الصَّالِحَاتِ مِن ذَكَرٍ أَوْ أُنثَىٰ وَهُوَ مُؤْمِنٌ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरगोशियाँ (कानाफूसी) बहुत सी ऐसी हैं, जिनमें कोई भलाई नहीं, हाँ अल्बत्ता भलाई यह है कि कोई सदक़ा (दान) का चाव दिलाये या किसी और नेक काम का या लोगों के बीच सुधार का[२३५] और जो कोई अल्लाह की रज़ामन्दी हासिल करने को ऐसा करेगा[२३६] सो उसको हम शीघ्र ही बहुत बड़ा बदला देंगे। (११४) और जो कोई बाद उसके कि उस पर हिदायत की राह खुल चुकी, रसूल का विरोध करेगा और मोमिनों के रास्ते के अलावा (किसी रास्ते का) अनुसरण करेगा, हम उसे करने देंगे जो कुछ वह करता है और फिर हम उसे जहन्नम में झोंकेंगे[२३७]। और वह बुरा ठिकाना है। (११५) ★

★ रु. १७/१४ आ ३

अवश्य अल्लाह उसको नहीं बख़्शेगा कि उसके साथ शिर्क किया जाए, और उसके सिवाय (और गुनाहों को) बख़्श देगा जिसके लिए मंज़ूर होगा। और जो कोई अल्लाह के साथ शिर्क करता है, वह अवश्य ही बड़ी दूर की गुमराही में पड़ गया[२३८]। (११६) यह लोग अल्लाह को छोड़कर पुकारते भी हैं तो बस ज़नानी चीज़ों को[२३९]। और यह लोग पुकारते भी हैं तो बस शैतान विद्रोही को,[२४०] (११७) उस पर लानत की है अल्लाह ने[२४१] ●। और वह कह चुका है कि मैं तेरे बन्दों में अपना निर्धारित हिस्सा लेकर रहूँगा[२४२]। (११८) और मैं उन्हें गुमराह करके रहूँगा और उनमें हवस पैदा करके और उन्हें हुक्म दूँगा[२४३] चुनांचे वह पशुओं के कानों को तराशेंगे[२४४], और उन्हें हुक्म दूँगा तो वह अल्लाह की बनावट में परिवर्तन करेंगे[२४५]। और जो कोई अल्लाह को छोड़कर शैतान को दोस्त बनाएगा वह अवश्य ही खुले हुए घाटे में रहेगा[२४६]। (११९) (शैतान) उनसे वादे ही करता और हवसें दिलाता रहता है, और शैतान उनसे वादा केवल धोखे की राह से करता है[२४७]। (१२०) यही लोग हैं जिनका ठिकाना जहन्नम है, और यह लोग उससे बचने का कोई स्थान न पायेंगे। (१२१) और जो लोग ईमान लाये और उन्होंने नेक अमल किये, हम उन्हें शीघ्र ही जन्नत के बागों में प्रविष्ट करेंगे कि उनके नीचे नहरें बह रही होंगी, उनमें हमेशा-हमेश को रहेंगे। अल्लाह का वादा सच्चा है और अल्लाह से बढ़कर कौन सच्चा है?[२४८]। (१२२) न तुम्हारी इच्छाओं पर है न अहले किताब की तमन्नाओं पर, (बल्कि) जो कोई भी बुराई करेगा उसे उसका बदला दिया जाएगा[२४९] और वह अल्लाह को छोड़कर अपने लिए न कोई दोस्त पायेगा न मददगार। (१२३) और जो कोई नेकियों पर अमल करेगा (चाहे) पुरुष हो या स्त्री, और वह ईमानवाला हो, तो ऐसे (सब) लोग जन्नत में दाखिल होंगे और उन पर ज़रा भी ज़ुल्म न होगा[२५०]। (१२४)

● व. ला जि म

---

२३५ (और इन आवश्यकताओं हेतु गुप्त वार्त्ता एवं कानाफूसी की ज़रूरत पड़ जाए तो उसमें अलबत्ता कोई हरज नहीं है। बल्कि ऐसे अवसरों पर भलाई और बरकत होगी।)

२३६ (न कि अपने निजी और दुनियावी स्वार्थ हेतु) निःस्वार्थता नीयत की और ख़ुदा की रज़ामन्दी की शर्त हर अहम अवसर के लिए यहाँ भी लगी हुई है।

२३७ **'मिम्बअ्दि मा तबय्यना लहुल्हुदा'**— उसे स्पष्ट कर दिया कि आयत में दीन से फिर जाने वालों की गन्दी आदतों का वर्णन हो रहा है। **''नुवल्लिही मा तवल्ला''** यानी हम उसे उसी तरीक़े पर छोड़े रखते हैं अपनी सृष्टि की मशीयत के अनुसार। उद्देश्य यह है कि ज़बरदस्ती और कराहियत से किसी को सत्य के रास्ते को स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता बल्कि सत्य के स्पष्ट करने के बाद जो बदनसीब अपनी टेढ़ी चाल पर ही क़ायम रहना चाहता है, उसी पर उसे छोड़ दिया जाता है। **''व मंय्यत्तबिअ़् ग़ैर सबीलिल्-मुअ्मिनीन''**— इस स्वीकृति एवं मानने का सम्बन्ध दोनों कार्यों से है। **''यत्तबिअ़्······जहन्नम''**— आयत के इस भाग से फ़क़ीहों को एक बड़ी वास्तविक बात हाथ आ गई है और उसको उन्होंने उम्मत के समूह की शरई हुज्जत होने की बुनियाद मान लिया है और दलील की विधि यह है कि मोमिनों के तरीक़े से अलग होना अब हराम और जहन्नम जाने का कार्य होता है, तो आवश्यक है कि उसके प्रतिबिम्ब यानी मोमिनों के तरीक़ों पर चलना वाजिब हो। और उसका विरोध भी किताब एवं सुन्नत का विरोध करने के बाद नाजाइज़ ठहरे और यहाँ क़ुर्आन मजीद ने मोमिनों के तरीक़े पर न चलने को रसूल की मुख़ालिफ़त के साथ जमा करके फ़र्माया है। (फ़ुटनोट देखें सफ़ा ४६७ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व मन् अह्सनु दीनम्मिम्मन् अस्लम वज्हहू लिल्लाहि व हुव मुह्सिनुंव्वत्तबअ
मिल्लत अिब्राहीम ह्नीफ़न् त वत्तख़ज़ल्लाहु अिब्राहीम ख़लीलन् (१२५)
व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि त व कानल्लाहु बि कुल्लि
★ रु. १८ — १५ आ ११ शैअिम्मुहीतन् (१२६) ★ व यस्तफ़्तूनक फ़िन्निसा'अि त क़ुलिल्लाहु युफ़्तीकुम्
फ़ीहिन्न ला व मा युत्ला अ़लैकुम्
फ़िल्किताबि फ़ी यतामन्निसा'अिल्लाती ला
तुअ्तूनहुन्न मा कुतिब लहुन्न व तर्ग़बून
अन् तन्किहूहुन्न वल्-मुस्तज़्अफ़ीन मिनल्-
विल्दानि ला व अन् तक़ूमू लिल्यतामा
बिल्क़िस्ति त व मा तफ़्अ़लू मिन् ख़ैरिन्
फ़ अिन्नल्लाह कान बिही अ़लीमन् (१२७)
व अिनिम्रअतुन् ख़ाफ़त् मिम्बअ़्लिहा
नुशूज़न् औ अिअ़्राज़न् फ़ ला जुनाह अ़लैहिमा'
अंय्युस्लिहा बैनहुमा सुल्हन् त वस्सुल्हु
ख़ैरुन् त व अुह्ज़िरतिल् - अन्फ़ुसुश्शुह्ह त
व अिन् तुह्सिनू व तत्तक़ू फ़ अिन्नल्लाह

والمحصنت ٥ — ٨٨ — النسآء ٤

فأولئك يدخلون الجنة ولا يظلمون نقيرا ﴿١٢٤﴾ ومن أحسن
دينا ممن أسلم وجهه لله وهو محسن واتبع ملة إبرهيم
حنيفا واتخذ الله إبرهيم خليلا ﴿١٢٥﴾ ولله ما في السموت
وما في الأرض وكان الله بكل شيء محيطا ﴿١٢٦﴾ ويستفتونك
في النساء قل الله يفتيكم فيهن وما يتلى عليكم في
الكتب في يتمى النساء التي لا تؤتونهن ما كتب لهن
وترغبون أن تنكحوهن والمستضعفين من الولدان و
أن تقوموا لليتمى بالقسط وما تفعلوا من خير فإن الله
كان به عليما ﴿١٢٧﴾ وإن امرأة خافت من بعلها نشوزا أو
إعراضا فلا جناح عليهما أن يصلحا بينهما صلحا والصلح
خير وأحضرت الأنفس الشح وإن تحسنوا وتتقوا فإن
الله كان بما تعملون خبيرا ﴿١٢٨﴾ ولن تستطيعوا أن تعدلوا
بين النساء ولو حرصتم فلا تميلوا كل الميل فتذروها
كالمعلقة وإن تصلحوا وتتقوا فإن الله كان غفورا رحيما ﴿١٢٩﴾
وإن يتفرقا يغن الله كلا من سعته وكان الله واسعا
حكيما ﴿١٣٠﴾ ولله ما في السموت وما في الأرض ولقد وصينا
الذين أوتوا الكتب من قبلكم وإياكم أن اتقوا الله وإن

منزل

كान बिमा तअ़्मलून ख़बीरन् (१२८) व लन् तस्ततीअ़ू' अन् तअ़्दिलू बैनन्निसा'अि
व लौ ह्रस्तुम् फ़ ला तमीलू कुल्लल्मैलि फ़ तज़रूहा कल्मुअ़ल्लक़ति त व अिन्
तुस्लिहू व तत्तक़ू फ़ अिन्नल्लाह कान ग़फ़ूरर्रहीमन् (१२९) व अिंय्यतफ़र्रक़ा
युग़्निल्लाहु कुल्लम्मिन् सअ़तिही त व कानल्लाहु वासिअ़न् ह्कीमन्
(१३०) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि त व
लक़द् वस्सैनल्लज़ीन अूतुल्किताब मिन् क़ब्लिकुम् व अिय्याकुम्
अनित्तक़ुल्लाह त व अिन् तक्फ़ुरू फ़ अिन्न लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति
व मा फ़िल्अर्ज़ि त व कानल्लाहु ग़निय्यन् ह्मीदन् (१३१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और दीन में उससे बेहतर कौन है, जो अपना रुख़ अल्लाह की ओर झुका दे, और वह नि:स्वार्थ
भी हो[२५१] और इब्राहीम सीधे रास्ते पर चलनेवाले के मज़हब का अनुसरण करे[२५२]। और
अल्लाह ने तो इब्राहीम को अपना दोस्त बना लिया[२५३]। (१२५) और अल्लाह की ही ★
सम्पत्ति है जो कुछ आसमानों में है और ज़मीन में है और अल्लाह ही हर चीज़ को घेरे रु. १८
हुए है[२५४]। (१२६) ★ —
लोग आपसे स्त्रियों के विषय में फ़त्वा माँगते हैं[२५५], आप कह दीजिए कि अल्लाह तुम्हें १५ आ
उनके विषय में वही फ़त्वा देता है[२५६]। वह (आयतें भी) जो तुम्हें किताब के अन्दर उन यतीम ११
स्त्रियों के विषय में पढ़कर सुनाई जाती हैं, जिन्हें वह नहीं देते हो जो उनके लिए नियत हो चुका
है[२५७]। और इससे बचते हो कि उनसे निकाह करो[२५८], और जो (आयतें) कमज़ोर बच्चों के
विषय में हैं और जो (आयतें इस विषय में हैं) कि यतीमों के मामलों में न्याय बरतो[२५९]।
और तुम जो कुछ भी नेकी करोगे सो अल्लाह उसकी ख़ूब जानकारी रखता है[२६०]। (१२७)
और यदि किसी स्त्री को अपने पति की ओर से ज़्यादती या उपेक्षा का भय हो, तो उसमें उनके
लिए कोई आपत्ति नहीं कि दोनों परस्पर एक विशेष ढंग से सुलह कर लें[२६१] और सुलह हर
सूरत में बेहतर है[२६२]। और तबीअतों में तो कंजूसी होती ही है[२६३], और यदि तुम अच्छा
व्योहार रखो और संयम से रहो तो जो कुछ तुम करते हो अल्लाह बेशक उसकी पूरी ख़बर
रखता है[२६४]। (१२८) और तुमसे यह तो हो ही नहीं सकता कि तुम पत्नियों के बीच (पूरा-
पूरा) न्याय करो चाहे तुम उसकी (कैसी ही) इच्छा रखते हो[२६५], तुम तो बिलकुल एक ही
ओर न ढुलक जाओ[२६६] और उसे अधर में लटकी हुई की तरह छोड़ दो[२६७] और अगर तुम
(अपनी) इस्लाह कर लो और संयम अपना लो तो अल्लाह बेशक बड़ा बख़्शनेवाला है, बड़ा
मेहरबान है[२६८]। (१२९) और अगर दोनों अलग ही हो जायें, तो अल्लाह हर एक को अपने
(फ़ज़्ल— कृपा) की विशालता से निश्चिन्त कर देगा[२६९]। (१३०) और अल्लाह है ही बड़े
फैलाव वाला, बड़ी हिकमत वाला[२७०], और जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है,
(सब) अल्लाह की ही मिल्कीयत है[२७१]। और हमने उन लोगों को जिन्हें तुमसे पहले किताब
मिल चुकी है और स्वयं तुम्हें भी हुक्म दिया है कि अल्लाह से डरते रहो[२७२]। और अगर
नाशुक्री करोगे तो (याद रहे कि) जो कुछ भी आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है, अल्लाह
ही की मिल्कीयत है[२७३]। और अल्लाह बड़ा बेपरवाह है और सर्वगुणसम्पन्न है[२७४]। (१३१)

---

२५१ यानी आज्ञापालन दृश्य से हो मुनाफ़िक़ाना न हो। **''अस्लम वज्हहू''** यानी आज्ञाकारिता अपना अक़ीदे और अमल दोनों में।

२५२ (क्योंकि इसी मिल्लतें इब्राहीमी का दूसरा नाम दीनें इस्लाम है।)

२५३ तौरेत में भी हज़रत इब्राहीम की पदवी ''ख़ुदा का दोस्त'' है। ''क्या तू हमारा ख़ुदा नहीं जिसने इस सरज़मीन के बासियों को अपने गिरोह इस्राईल के आगे से ख़ारिज किया और उसे अपने दोस्त इब्राहीम की नस्ल को हमेशा के लिए दिया।'' (२–इतिहास–७:२०)। ''ऐ इस्राईल! मेरे बन्दे, ऐ याक़ूब! जिसे मैंने पसन्द किया, जो मेरे दोस्त इब्राहम के वंश से है।'' (यसीइयाह–८:४-५)। **''ख़लीलन्''**— 'ख़लन' कहते हैं ख़ालिस मुहब्बत को और 'ख़लील' ख़ालिस या सच्चे दोस्त को। ख़लतें इलाही से मुराद है अल्लाह की निगाह में सिद्धता एवं उससे निकट होने का उच्चस्थान। क़ुर्आन करीम ने एक ओर तो मिल्लतें इब्राहीमी का अनुसरण अनिवार्य बनाया और दूसरी ओर इब्राहीम को अपना दोस्त बनाया। इसमें स्पष्ट संकेत यह निकल आया कि इसी मिल्लत की पैरवी से कोई न कोई श्रेणी नि:स्वार्थ मित्रता की प्राप्त हो सकती है।

२५४ (अपने ज्ञान एवं शक्ति से) **''लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि''**— में अल्लाह की सम्पूर्ण शक्ति एवं उसकी सल्तनत की विशालता का वर्णन किया गया है और **''कानल्लाहु बिकुल्लि**

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ५०२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ४६७ से)

२४५ **'तग़ीरि ख़ल्क़ल्लाह'** की दो बड़ी तक़सीमें हो सकती हैं। एक उत्पत्ति में नयी बात पैदा करना, दूसरे शरीअत में हुई बातें पैदा करना। पुराने मुफ़स्सिरों ने प्रथम स्थिति की मिसाल में डाढ़ी मुँड़ाना और गुदना गुदाना आदि बातों को पेश किया है, परन्तु नये ज़माने की 'जाहिलीयत' ने उनसे कहीं ज़्यादा बढ़-चढ़कर मिसालें न केवल आविष्कार कर ली हैं, बल्कि उन्हें फैलाकर फ़ैशन में दाखिल कर लिया है जैसे पुरुषों के चेहरे के बाल बिलकुल साफ़ करके और अधिक से अधिक नज़ाकतें पैदा करके स्त्री का रूप धारण करना और स्त्रियों का बाल कटाकर पुरुषों का तौर-तरीक़ा अपना लेना और पुरुषों की भाँति बन जाना, ऐसे आप्रेशन कराना कि जिससे लिंग-परिवर्तन हो जाए। द्वितीय का अर्थ होता है दीन के आदेशों में परिवर्तन एवं संशोधन करना। यह भी कहा गया है कि सूर्यपूजा, अग्निपूजा, वृक्षपूजा, पशुपूजा इत्यादि सब अल्लाह की पैदा की हुई चीज़ों के परिवर्तन की सूरतें हैं कि मुश्रिक उनसे वह काम ले रहा है जिसके लिए उनकी उत्पत्ति हुई ही नहीं थी।

२४६ शैतान का दोस्त बनाना यही है कि शरीअत के आदेशों को छोड़कर अपने बनाये हुए तौर-तरीक़े अपनाये जाएँ और मख्लूक़ के चलाये हुए रिवाजों, परम्पराओं आदि को अपने मार्ग का तर्क बनायें।

२४७ अतः इन वादों की असत्यता और उनका निरर्थक होना इसी दुनिया में ज़ाहिर होकर रहता है, अन्यथा मृत्यु के समय तो हर हाल में ज़ाहिर हो जाता है। **'यअिदुहुम्'**— शैतानी वादे, जैसे यह कि हश्र, नश्र (क़ियामत), हिसाब-किताब आदि की कोई हक़ीक़त नहीं, जो कुछ है यही भौतिक दुनिया है। जो आंशिक ज्ञान है वही सबसे बड़ा मेयार और अन्तिम मेयार है, अल्लाह की 'वही' केवल भ्रम है, वहम है, भौतिक शक्तियाँ और नियम ही सब कुछ हैं। उनके ऊपर अन्य कोई उच्च मशीयत वाला हाकिम नहीं, इत्यादि इत्यादि। **''युमन्नीहिम्''**— शैतानी भावनाएँ जैसे कि फ़ुह्शकारी और बदकारी में कोई बुराई नहीं, मदिरा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं, शर्म और हिजाब (लज्जा) यह सब प्रगति की राह में बाधाएँ हैं।

२४८ सदैव की राहत का जीवन केवल शरीअत और क़ुर्आन की आज्ञापालन में सम्भव है।

२४९ (उस बुराई के अनुपात में और व्यक्ति के हाल के अनुसार।) यह इस सच्चाई का वर्णन है कि अस्ल दारोमदार आज्ञापालन पर है, केवल आर्ज़ूएँ और सुन्दर विचार व्यर्थ हैं यदि वह किसी के भी हों। **'सू'अन्'** के अर्थ यहाँ शिर्क के भी किये गये हैं, परन्तु मुफ़स्सिरों का बहुमत इसे आम ही अर्थ में मानता है।

२५० (कि उनकी नेकी लिखने से आंशिक या सामूहिक रूप में रह जाए।) **''व हुव मुअ्मिनुन्''** ईमान का प्रतिबन्ध बहुत आवश्यक है। हर कर्म के वास्तव में सिद्ध होने के लिए अनिवार्य है कि उस कर्म के पीछे भावना भी सिद्ध हो, दिखावा, नुमाइश या वहम की पूजा उसका उद्देश्य न हो। इसी नीयत की निःस्वार्थता का नाम परिभाषा में ईमान है और बिना नीयत की निःस्वार्थता के कोई कर्म स्वीकार नहीं। इसके बिना सिद्ध कर्म केवल शक्ल से सिद्ध होगा, सिद्धता की वास्तविकता से खाली। यहीं से इस बहस की समाप्त हुई जाती है जो बाज़ ऊपरी समझवालों ने आजकल पैदा कर रखी है यानी यह कि क्या काफ़िरों के सिद्ध कर्म स्वीकार होंगे? जवाब यह है कि नीयत की निःस्वार्थता के बिना या ईमान के बग़ैर कोई कर्म सिद्ध किर्म नहीं माना जा सकता, तो उसके बदले का प्रश्न कैसे उठता है। **''यअ्मल् मिनस्सालिहाति''** के बाद **''हुव मुअ्मिनुन्''** की ज़्यादती ने इस मसले को स्पष्ट कर दिया कि ईमान और सिद्ध कर्म दो अलग-अलग चीज़ें हैं, यह परस्पर एक अर्थ नहीं रखते। **''मिन् ज़करिन् औ अुन्सा''**— इसमें खण्डन आ गया उन समस्त जाहिली मज़हबों का जो सुन्दर कर्म के बावजूद स्त्री को केवल उसके स्त्री होने के कारण सुन्दर कर्म के फल से वञ्चित रखते हैं। इस्लाम ने स्त्री को उसके लिंग के कारण कदापि किसी बदले से वञ्चित नहीं किया है। **'नक़ीर'** पर हाशिया ऊपर गुज़र चुका है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ५०१ से)

शैअिम्मुहीतन्''— में बयान आ गया उसके कमाल का यानी छोटी-बड़ी, सृष्टि की कोई चीज़ न उसके क़ब्ज़े और सल्तनत से बाहर है और न उसके ज्ञान के घेरे से बाहर है। मुश्रिकों को साधारणतः इन्हीं दोनों ख़ुदा की सिफ़तों (यानी ज्ञान और क़ब्ज़ा तथा शक्ति) के विषय में ठोकर लगी है अतः इन्हीं सिफ़तों के विषय में क़ुर्आन मजीद बार-बार वर्णन करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२५५ यानी उनके मह्र, मीरास इत्यादि के बारे में और उनके अधिकार तथा कर्तव्यों के सम्बन्ध में। यह प्रश्न करनेवाले सहाबी हज़रात थे। आयत के मज़मून का सम्बन्ध सूरत की प्रारम्भिक आयतों के मज़मून से है।

२५६ (जो पहले मिल चुका है) उदाहरणार्थ यह कि स्त्रियों को तरिके से वञ्चित करो। एक बँधा हुआ हिस्सा उन्हें दो, जो यतीम स्त्रियाँ तुम्हारी परवरिश में है उनका निकाह अच्छी जगह देखकर कर दो। अगर अपने ही से करते हो तो उनका मह्र पूरा अदा करो इत्यादि।

२५७ यानी उनका मह्र और तरिके में उनका हिस्सा इत्यादि। **"मायुत्ला अलैकुम् फ़िल्किताबि"**— यानी वह आयतें जो इसके पूर्व उतर चुकी हैं। संकेत जाहिलीयत के ज़ालिमाना दस्तूरों की ओर है कि जैसे यतीम स्त्रियों के साथ मामला यह रखते हो कि यदि वह सुन्दर और मालदार हुईं तो उनसे निकाह कर लेते हो, परन्तु जो उनको हक़ नियत हैं उनको अदा नहीं करते हो। यतीमों के हक़ और स्त्रियों के अधिकार आज मामूली बात महसूस होती हैं, परन्तु यह तो आज इस्लाम के प्रकट होने के चौदह सौ वर्ष बाद। बाक़ी अगर इन आदेशों की अहमीयत का पूरा अंदाज़ा लगाना है तो इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञात किया जाए कि छठी शताब्दी ईसवी में अरब की विशेषता और हिन्दुस्तान, ईरान, चीन और योरोप तथा समस्त विश्व की साधारणतः स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में क्या दशा थी।

२५८ यानी चूँकि वह सुन्दर नहीं इसलिए उनसे निकाह करने से भागते हो और साथ ही चूँकि मालदार हैं, इसलिए दूसरी जगह भी उन्हें निकाह नहीं करने देते हो क्योंकि इस प्रकार माल हाथ से निकल जाएगा। **'तर्ग़बून'** के साथ उसका 'सिलः' **'अन'** यहाँ वर्णित नहीं है परन्तु अक्सर तफ़्सीर के ईमानों ने उसे ज़रूरी और प्रथम माना है और इसीलिए अर्थ 'बेज़ारी' किया है यानी बचना, भागना, हज़रत आयशा (रज़ि०) की रिवायत से भी इसकी पुष्टि होती है।

२५९ यहाँ यह बताया है कि वह सारी आयतें जो आदेशों के साथ पहले गुज़र चुकी हैं, वह उसी प्रकार अमल करने के लिए आवश्यक हैं। उन आदेशों में कोई संशोधन या काट-छाँट नहीं हुई है। यतीमों के हक़ों की सुरक्षा, यतीमों के साथ अच्छा व्योहार, स्त्रियों और पुरुषों में बराबरी के कारणों इत्यादि के विषय में कुछ आयतें पहले गुज़र चुकी हैं।

२६० (और उसी सम्पूर्ण ज्ञान के आधार पर अच्छा बदला भी देगा।) **"व मा तफ़्अलू मिन् ख़ैरिन्"** इसी अच्छे अमल में यतीमों और स्त्रियों के साथ अच्छा व्योहार और शिष्ट रहन-सहन भी आ गया।

२६१ (शर्त यह है कि सुलह की शर्तें वास्तव में जाइज़ हों, हराम और अनुचित न हों, न ऐसी हों जिनकी मनाही है।) फ़क़ीहों ने विस्तार दे दिया है कि सुलह अगर किसी हराम शर्त के साथ होगी तो ग़लत और नाजाइज़ होगी जैसे कि पति ने यह शर्त लगा दी कि वह पत्नी के साथ उसकी बहिन को भी पत्नी बनाये और पत्नी ने उसे स्वीकार कर लिया। चूँकि यह अमल हराम है अतः यह सुलह नाजाइज़ होगी। **"अंय्युस्लिहा बैनहुमा सुल्हन्"**— जैसे इस प्रकार कि पत्नी अपने पति को रज़ामन्द रखने के लिए अपने अधिकारों में से कुछ छोड़ दे, अपना मह्र माफ़ कर दे या उसमें कमी कर दे। अपनी बारी का दिन दूसरी पत्नी को दे दे या अपने व्यय-भार को हलका कर दे। फ़क़ीहों ने लिखा है कि पत्नी के हक़ पति पर दो प्रकार के होते हैं। एक स्थायी जैसे मह्र की रक़म, दूसरे वह जो समय-समय पर पैदा होते रहते हैं जैसे रोटी-कपड़ा या मिलन करना। सुलह के लिए स्त्री दोनों प्रकार के हक़ों से हाथ उठा सकती है। अन्तर यह है कि प्रथम प्रकार के हक़ों में सुलह के टूटने का इख़्तियार न रहेगा यानी जो छोड़ा बस वह ख़त्म हो गया। परन्तु दूसरी क़िस्म के हक़ों में पत्नी को यह इख़्तियार बाक़ी रहेगा कि वह जब चाहे किसी छोड़े हुए हक़ की माँग सरे नौ से कर दे। **"फ़ ला जुनाह अलैहिमा"**— पत्नी की ओर से यह हाथ उठा लेना देखने में एक रिश्वत मालूम होती है। यहाँ यह भ्रम दूर किया गया है और कह दिया गया है कि नहीं इसमें कोई बुराई नहीं बल्कि यह जाइज़ और ठीक है। **'नुशूज़न्'**— के माने पर हाशिया ऊपर दिया है। **"अिनिम्-रअतुन् ख़ाफ़त्"**— पत्नी की ओर से जो 'नुशूज़' हो उसका इलाज ऊपर बताया जा चुका है, अब यहाँ यह बताया जा रहा है 'नुशूज़' यदि पति की ओर से हो तो वह भी ऐसी चीज़ नहीं जिसका इलाज न हो। उसकी भी तरकीबें हैं। **"ख़ाफ़त"**— यहाँ ख़ौफ़ आशा के अर्थ में आया है।

२६२ (हर झगड़ और फ़साद तथा दुश्मनी से) यूँ भी झगड़ा-लड़ाई अक़्ल एवं शरीअत के निकट अप्रिय है, न कि घरेलू जीवन में और पति-पत्नी में जो इतना निकट का सम्बन्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२६३ पत्नी के लिए इन शब्दों में स्पष्ट चाव दिलाया गया है कि वह अपने हक़ों में से कुछ को छोड़ ही दे। पति-पत्नी का सम्बन्ध तो बना रहेगा। जब पति देखेगा कि उसके अपने हक़ों और मज़ों में कुछ अन्तर नहीं पैदा हुआ और बीवी ही अपने बाज़ हक़ों को छोड़े दे रही है तो अजब नहीं कि जल्द सुलह करने पर तैयार हो जाए। "अश्शुह्ह"—'शुह्ह' ऐसी कंजूसी को कहते हैं जिसके साथ लालच का मिश्रण हो। मुराद यह है कि स्वार्थ और आराम की इच्छा से कोई भी खाली नहीं है। यह अपना आराम ढूँढ़ता है, वह अपना।

२६४ (और उसकी ओर से वादा हर संयम और अच्छे अमल पर बदले का।) इसमें अन्दर से शौहरों की नसीहत है कि झगड़ा और अलाहिदगी तो बहुत दूर की चीज़ है, उन्हें तो संयम तथा अच्छे व्योहार के रास्ते पर बने रहकर पत्नियों से किसी हक़ से हाथ उठा लेने की भी अपेक्षा न करनी चाहिए। "व अिन् तुह्सिनू व तत्तक़ू" यहाँ पर शौहरों के 'नुशूज़' और एराज़ यानी उनकी तरफ़ से ज़्यादती और उपेक्षा का वर्णन हो रहा है, इसलिए यह सम्बोधन भी उन्हीं से हो रहा है। "तुह्सिनू" तो पति जब पत्नी से अच्छे व्योहार का आदी हो जायेगा तो उससे इसकी भी अपेक्षा न करेगा कि वह अपने किसी हक़ से हाथ उठा ले। 'व तत्तक़ू' और जब तक़्वा इख़्तियार करेगा तो ज़्यादती और उपेक्षा ख़ुद ही समाप्त हो जायेंगे। ख़ूब ध्यान करके देख लिया जाए कि क़ुर्आन मजीद में जहाँ-जहाँ पति-पत्नी के बीच सुन्दर व्योहार का ज़िक्र आया है या दोनों में से किसी को हक़ों की अदायगी की ओर ध्यान दिलाया है तो एक अर्थ से भरपूर शब्द 'तक़्वा' लाया गया है और इस घरेलू सुन्दर रहन-सहन को तक़्वा का ही एक भाग बताया है और हक़ यह है कि इससे बेहतर और प्रभावकारी तदबीर कोई और है भी नहीं।

२६५ सो यह हद तुम्हारे इख़्तियार से बाहर है, इसलिए तुम इस हद के ज़िम्मेदार भी नहीं। "अन् तअ्दिलू बैनन्निसा'अि"— बराबरी हर चीज़ में, यहाँ तक उन मामलों में भी जिन पर इख़्तियार और क़ाबू नहीं है और दिल के रुजहान पर भी। शुरू की सूरत में जहाँ चार पत्नियों तक की आज्ञा विस्तार के साथ प्रदान हुई थी, वहाँ अर्थ में यह भी इर्शाद हुआ था कि उनके बीच न्याय करना और अगर न्याय न कर सको तो एक ही पर सन्तोष रखना। उस अवसर पर न्याय से मुराद थी मामलों में न्याय यानी उन मामलों में न्याय जो अपने इख़्तियार में हों। यानी हर पत्नी की आवश्यकताओं का, मिज़ाज और पसन्द का ख़याल रखना। उसके विपरीत यहाँ जिस न्याय को नकारा जा रहा है और कहा जा रहा है कि ऐसे न्याय पर तुमको इख़्तियार ही नहीं चाहे लाख उसकी इच्छा करो। इस न्याय से मुराद है ग़ैरइख़्तियारी मामलों में बराबरी। तबीयत की दशाओं और भावनाओं में जैसे मुहब्बत और चाव में, और ऐसी बराबरी। तो माँ-बाप आदत से अपनी सारी सन्तानों के बीच नहीं रख सकते। शब्द न्याय दोनों जगह मुश्तरक है, परन्तु अर्थ अलग-अलग हैं। क़ुर्आन मजीद में बयान की यह शैली बहुत स्थानों पर मिलेगी। अतः बाज़ नये लेखकों ने इस आयत से जो यह बात निकालनी चाही है कि क़ुर्आन मजीद ने पत्नियों के बीच न्याय को असम्भव बताया है और कई पत्नियों की आज्ञा न्याय के साथ दी है तो इस प्रकार इस आज्ञा को एक बार देकर फिर वापस ले लिया है, तो ऐसे लोगों ने अनजाने में सही परन्तु बहरहाल क़ुर्आन मजीद के साथ बड़ा अन्याय किया है और उस पर निःसंकोच यह आरोप लगा दिया है कि वह जिस चीज़ को रोकना चाहता है सीधे मना नहीं कर देता बल्कि उसके लिए अकारण एक पेचदार रास्ता इख़्तियार करता है।

२६६ (कि मुकम्मल बराबरी और हृदय के चाव की बे-इख़्तियारी को बहाना बनाकर पत्नी के ज़ाहिरी और अपने अधिकार में होनेवाले हक़ों को भी बरबाद करने लगो।)

२६७ (कि वह बेचारी न तो साधारण पतिवालियों की भाँति अपने अधिकारों का लाभ उठा सके और न तलाक़ पाई हुई स्त्रियों की भाँति स्वयं को आज़ाद और स्वतन्त्र पाये।) शरीअत ने इस अधर (बीच) में पड़ी रहनेवालियों को सबसे बुरी दशावालियों में माना है। पति को चाहिए कि वह भरसक प्रयत्न करे कि सुन्दर सम्बन्ध और व्योहार अपनी पत्नी से रखे और उसके हक़ों को अदा करता रहे, परन्तु जब देखे कि उसमें किसी प्रकार सफलता नहीं मिलती तो फिर स्पष्ट रूप से शरई नियमानुसार तलाक़ दे दे। यह ज़ालिमाना स्थिति कभी न पैदा करे कि स्त्री देखने में सुहागिन और पतिवाली हो, परन्तु वास्तव में अपने पति से कोई लाभ न उठा रही हो।

२६८ (सो उसके यहाँ भूतकाल की दशा का सुधार, एहतियात और भविष्य के लिए एहतियात के इरादे के बाद तमाम क्षमा और दया ही दया है।) 'अन् तुस्लिहू'— यानी अपनी पिछली त्रुटियों का सुधार शरई नियमों के अनुसार कर लो। 'व तत्तक़ू'—इस तक़्वे और संयम का सम्बन्ध वर्तमानकाल और भविष्य से है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२६९ (एक को दूसरे से) यानी यदि सुलह और मेल-जोल की हर तदबीर निष्फल रहे और अलग हो जाने की नौबत आ ही जाए तो ज़ियादती और उपेक्षा करनेवाला व्यक्ति यह न समझे रहे कि अल्लाह किसी के काम को किसी से अटकाये नहीं रखता, वह बिना किसी बन्दे की शिरकत और सहायता के हर एक का काम चला देने के लिए काफ़ी है।

२७० (उसे हर एक के लिए उचित साधन पैदा कर लेना क्या मुश्किल है ?)

२७१ अतः उस मुल्कों के मालिक तथा मालिकों के मालिक की रज़ामन्दी के स्थान पर किसी अन्य की रज़ामन्दी की इच्छा करना कितनी बड़ी मूर्खता है। वह भूमि एवं आकाश के सारे खज़ानों का मालिक है। उसे दूसरों को धनवान बना देने में कितनी देर लगती है !

२७२ (कि यही अल्लाह का खौफ़ और संयम बुनियाद ही समस्त खुदाई हुक्मों को मानने की है और उसे सरल और रोचक बना देनेवाली भी।) मानव-जीवन की सारी की सारी बुनियाद का शिलः यही संयम है और इसलिए यह ठीक हिकमत का तक़ाज़ा है कि क़ुर्आन मजीद उसको ताकीद से परिपूर्ण है। मसीहियों का दावा है कि उनके मज़हब का आधार भय पर नहीं, बल्कि ईश-प्रेम पर है और उनके पादरी उसे बड़े गर्व से पेश करते हैं, यद्यपि उनकी इन्जील ऐसी ताकीदों से खाली नहीं है, जैसे— "उसी से डरो जो आत्मा और बदन दोनों को जहन्नम में हलाक कर सकता है।" (मती, १:२८)। "उससे डरो जिसको क़त्ल करने के बाद अधिकार है कि जहन्नम में डाले। हाँ मैं तुमसे कहता हूँ कि उसी से डरो।" (लूक़ा १२:५)। रही तौरेत तो उसके लिए अंग्रेज़ी तफ़्सीर अवलोकित हो।

२७३ (सो ऐसे की नाशुक्री और नाफ़र्मानी से उसका क्या, हानि तो स्वयं तुम्हारी है।) "अिन् तक्फ़ुरू" अल्लाह के हुक्मों का न मानना और उसका विरोध करना ही नाशुक्री है।

२७४ मुश्रिक जाहिली क़ौमों के देवी, देवता, अपनी सिफ़तों में अधूरे और अपनी जात के विचार से सीमित होते हैं। उनके पूजा करनेवाले जो मन्त्रों से जाप करते रहते हैं, उससे उनकी त्रुटियों की पूर्ति होती रहती है। इस प्रकार वह अपनी खुदाई और पूजनीयता के लिए भोजन प्राप्त करते रहते हैं। क़ुर्आन मजीद ने यहाँ उन दो सिफ़तों का वर्णन करके इन खुराफ़ात का खण्डन कर दिया। अल्लाह स्वयं पूर्ण और मुकम्मल है। किसी की उपासना से उसकी पूर्ति का विचार ही निरर्थक है। उसकी सिफ़तें सब उच्च और पूर्ण हैं उनमें त्रुटि का प्रश्न ही नहीं है।

(फ़ुटनोट सफ़ा ५०७ से)

यह भी हो सकते हैं कि "अल्लाह के गवाह बन जाओ" यानी तुम्हारी गवाही गोया अल्लाह की गवाही का स्थान प्राप्त कर ले। फ़क़ीहों ने यही अर्थ लगाकर यह बात निकाली है कि जो बात गवाहों से साबित हो जाए वही पक्की है और उसको विरोध जाइज़ नहीं। चुनांचे क़ाज़ी यदि विश्वसनीय व्यक्तियों की गवाही पर मुद्दई (वादी) को डिग्री दे दे और प्रतिवादी भली प्रकार जानता हो कि हक़ वादी का नहीं हैं और निर्णय ग़लत है और अन्याय हुआ है, फिर भी यदि वह आदेश का पालन न करेगा तो इस्लाम के क़ाज़ी के विरोध और गवाहों को झुठलाने का अपराधी होगा।

२८१ यानी मुरव्वत और छूट न स्वयं अपनी करे न अपने किसी बड़े की, न किसी सगे सम्बन्धी की बल्कि केवल अल्लाह की ओर सत्य एवं सत्यता की। क़ुर्आन मजीद पर कार्यरत मुसलमान, शपथपूर्ण गवाही का ज़िक्र नहीं, बिना शपथ भी कभी झूठी गवाही का भागी हो सकता है ? साधारण आदेश है हर प्रकार की गवाही के लिए, केवल माली और अदालती मामलों की सीमा तक ही सीमित नहीं। शोध करनेवाले लिखते हैं कि इसके पूरे मानने आनेवाले तो मुहद्दिस हज़रात हुए हैं कि उन्होंने हदीसों के मामले में किसी की ज़रा भी रिआयत नहीं की, इसीलिए वह अल्लाह के गवाह बन गये और उनकी रिवायतों पर दीन के एक भाग का दारोमदार स्थापित हो गया।

२८२ यानी जिसके विरुद्ध आकर तुम्हारी सच्ची गवाही पड़ रही है और उसकी खातिर से तुम सच को प्रकट करने से बचना चाहते हो, उस पर जितना तुम्हारा हक़ है उससे कहीं अधिक अल्लाह का हक़ है। झूठी गवाही के प्रेम साधारणतः दो ही होते हैं। भागीदार यदि धनवान है तो उसका दबाव, लिहाज़, मुरव्वत और यदि ग़रीब है तो उसके साथ सहानुभूति। यहाँ दोनों की जड़ काट दी है और बताया है कि दोनों सूरतों में जितना तुम्हारा सम्बन्ध उसके साथ है उससे कहीं बढ़-चढ़कर अल्लाह का सम्बन्ध उसके साथ है।

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ५०८ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि त व कफ़ा बिल्लाहि
वकीलन् (१३२) अिंय्यशअ् - युज़्हिब्कुम् अय्युहन्नासु व यअ्ति
बि आख़रीन त व कानल्लाहु अ़ला ज़ालिक क़दीरन् (१३३) मन् कान
युरीदु सवाबद्दुन्या फ़ अिन्दल्लाहि सवाबुद्दुन्या वल्आख़िरति त व

★ रु. १९/१६ मा ८ कानल्लाहु समीअम् - बसीरन् (१३४) ★
या' अय्युहल्लज़ीन आमनू कूनू क़व्वामीन
बिल्क़िस्ति शुहदा'अ लिल्लाहि व लौ अ़ला'
अन्फ़ुसिकुम् अविल्-वालिदैनि वल्अक़्रबीन ज
अिंय्यकुन् ग़निय्यन् औ फ़क़ीरन् फ़ल्लाहु
औला बिहिमा क़िफ़ फ़ ला तत्तबिअुल्-हवा'
अन् तअ़्दिलू ज व अिन् तल्वू' औ
तुअ़्रिज़ू फ़ अिन्नल्लाह कान बिमा तअ़्मलून
ख़बीरन् (१३५) या' अय्युहल्लज़ीन
आमनू' आमिनू बिल्लाहि व रसूलिही
वल् - किताबिल्लज़ी नज़्ज़ल अ़ला रसूलिही
वल् - किताबिल्लज़ी' अन्ज़ल मिन् क़ब्लु त

والمحصنت ٥ — ٧٩ — النساء ٤

تَكْفُرُوا فَإِنَّ لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْأَرْضِ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ
غَنِيًّا حَمِيدًا ۝ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْأَرْضِ ۚ وَكَفٰى
بِاللّٰهِ وَكِيلًا ۝ إِنْ يَشَأْ يُذْهِبْكُمْ أَيُّهَا النَّاسُ وَيَأْتِ بِآخَرِينَ ۚ
وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰى ذٰلِكَ قَدِيرًا ۝ مَنْ كَانَ يُرِيدُ ثَوَابَ الدُّنْيَا
فَعِنْدَ اللّٰهِ ثَوَابُ الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ سَمِيعًا بَصِيرًا ۝
يٰأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا كُونُوا قَوّٰمِينَ بِالْقِسْطِ شُهَدَاءَ لِلّٰهِ
وَلَوْ عَلٰى أَنْفُسِكُمْ أَوِ الْوٰلِدَيْنِ وَالْأَقْرَبِينَ ۚ إِنْ يَكُنْ غَنِيًّا
أَوْ فَقِيرًا فَاللّٰهُ أَوْلٰى بِهِمَا ۖ فَلَا تَتَّبِعُوا الْهَوٰى أَنْ تَعْدِلُوا ۚ
وَإِنْ تَلْوُوا أَوْ تُعْرِضُوا فَإِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُونَ خَبِيرًا ۝
يٰأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا آمِنُوا بِاللّٰهِ وَرَسُولِهِ وَالْكِتٰبِ الَّذِي
نَزَّلَ عَلٰى رَسُولِهِ وَالْكِتٰبِ الَّذِي أَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ ۚ وَمَنْ
يَكْفُرْ بِاللّٰهِ وَمَلٰئِكَتِهِ وَكُتُبِهِ وَرُسُلِهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ فَقَدْ
ضَلَّ ضَلٰلًا بَعِيدًا ۝ إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا ثُمَّ كَفَرُوا ثُمَّ
آمَنُوا ثُمَّ كَفَرُوا ثُمَّ ازْدَادُوا كُفْرًا لَمْ يَكُنِ اللّٰهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ
وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ سَبِيلًا ۝ بَشِّرِ الْمُنٰفِقِينَ بِأَنَّ لَهُمْ عَذَابًا
أَلِيمًا ۝ الَّذِينَ يَتَّخِذُونَ الْكٰفِرِينَ أَوْلِيَاءَ مِنْ دُونِ الْمُؤْمِنِينَ ۚ
أَيَبْتَغُونَ عِنْدَهُمُ الْعِزَّةَ فَإِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيعًا ۝ وَقَدْ نَزَّلَ

منزل ١

व मंय्यक्फ़ुर् बिल्लाहि व मला'अिकतिही व कुतुबिही व रुसुलिही
वल् - यौमिल् - आख़िरि फ़क़द् ज़ल्ल ज़लालम् - बअीदन् (१३६) अिन्नल्लज़ीन
आमनू सुम्म कफ़रू सुम्म आमनू सुम्म कफ़रू सुम्मज़्दादू कुफ़्रल्लम्
यकुनिल्लाहु लि यग़्फ़िर लहुम् व ला लि यह्दियहुम् सबीलन् त (१३७)
नि'
बश्शिरिल्-मुनाफ़िक़ीन बि अन्न लहुम् अ़ज़ाबन् अलीमन् ला (१३८) अल्लज़ीन
यत्तख़िज़ूनल् - काफ़िरीन औलिया'अ मिन् दूनिल् - मुअ्मिनीन त अ यब्तग़ून
अिन्दहुमुल् - अिज़्ज़त फ़ अिन्नल् - अिज़्ज़त लिल्लाहि जमीअ़न् त (१३९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और जो कुछ भी आसमानों में और जो कुछ ज़मीन में है (सब) अल्लाह की ही मिल्कीयत है;
और अल्लाह काफ़ी काम बनानेवाला है[२७५] (१३२) और अगर चाहे तो ऐ लोगो ! तुम (सब) ★
को ले जाए और दूसरों को भी ले जाए[२७६] और अल्लाह इस पर क़ाबू रखता है[२७७]। (१३३) रु. १९/१६
जो कोई दुनिया का इन्आम चाहता है तो अल्लाह के पास तो दुनिया और आख़िरत (दोनों) का आ ८
ही इन्आम मौजूद है[२७८] और अल्लाह बड़ा सुननेवाला है, बड़ा देखनेवाला है[२७९]। (१३४) ★

ऐ ईमानवालो ! न्याय पर ख़ूब बने रहनेवाले और अल्लाह के लिए गवाही देनेवाले रहो[२८०]। चाहे वह तुम्हारे या (तुम्हारे) माता-पिता और सगे सम्बन्धियों के ख़िलाफ़ ही हो[२८१], वह धनी हो या ग़रीब अल्लाह (हर दशा में) दोनों से अधिक हक़दार है[२८२]। तो काम-वासना का अनुकरण न करना[२८३] कि (सत्य से) हट जाओ[२८४]। और अगर तुम ग़लत चलोगे, या जी चुराओगे, तो जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उससे ख़ूब ख़बरदार है[२८५]। (१३५) ऐ ईमानवालो ! अल्लाह और उसके रसूल और (उस) किताब पर ईमान लाओ जो उसने अपने रसूल पर उतारी है और उस किताब पर भी जो वह उसके पूर्व उतार चुका है[२८६]। और जो कोई अल्लाह और उसके फ़िरिश्तों और उसकी किताबों और उसके पयम्बरों और क़ियामत के दिन से कुफ़्र करता है, वह गुमराही में बहुत दूर जा पड़ा है[२८७]। (१३६) बेशक जो लोग ईमान लाये, फिर काफ़िर हो गये, फिर ईमान लाये, फिर काफ़िर हो गये, फिर कुफ़्र में तरक्की करते गये, अल्लाह कदापि न उनकी मग़्फ़िरत करेगा और न उन्हें सीधी राह दिखाएगा[२८८]। (१३७) आप मुनाफ़िक़ों को सुना दीजिए कि उनके लिए भयंकर अज़ाब है[२८९]। (१३८) (यानी वह लोग) जो मोमिनों को छोड़कर काफ़िरों को दोस्त बनाये हुए हैं, क्या उनके पास इज़्ज़त की तलाश कर रहे हो सो इज़्ज़त तो सारी अल्लाह ही की है[२९०]। (१३९)

---

२७५ (उसके काम करने की शक्ति को दुनिया के लिए ना-काफ़ी समझकर किसी मख़लूक़ की ओर ध्यान करना और उससे काम बनाने की आशा करना कैसी मूर्खता की बात है।) सृष्टि की रचना और उसकी व्यवस्था करना सब उसके लिए आसान है।

२७६ (और जो काम उसे लेने हैं वह उसी नई मख़लूक़ से ले ले।) यह बयान उसकी क़ुद्रत के कमाल का है। 'आख़िरीन' यानी मानव-जाति के अलावा कोई और ही मख़लूक़।

२७७ (सो इस क़ुद्रत और शक्ति के होते हुए भी यदि वह ऐसा नहीं करता और तुम्हारे सिवा किसी नवीन जाति को नहीं ला रहा है तो इसका एहसान तुम्हारे ही ऊपर है, वह इस प्रकार अज्र और बदला कमाने का अवसर दे रहा है।) 'कान' लाने से भूत का अर्थ नहीं है बल्कि उसकी क़ुद्रत या शक्ति की सिफ़त का हमेशा से होना और हमेशा से न होना बताने का उद्देश्य है। माज़ी (भूत) का सीग़ा लाने में बिन्दु यह है कि सिफ़त के क़दीम या शुरू से होने की ओर संकेत हो जाए कोई ख़ुदा की ज़ात और उसकी सिफ़तों को 'हादिस' न समझ ले यानी कि यह चीज़ें परिवर्तित होनेवाली या कभी मिटनेवाली हैं, किसी को यह भ्रम न हो जाए।

२७८ [तो ऐसी हमेशा रहनेवाली लज़्ज़त (स्वाद और आनन्द) तथा इनाम को छोड़कर केवल अस्थायी और मिट जानेवाले आनन्दों पर ही बस कर लेना कितनी बड़ी मूर्खता और नासमझी है।]

२७९ सो वह सबकी दुआओं और प्रार्थनाओं को ख़ूब सुनता रहता है, चाहे वह दुनियावी बदले के विषय में हों या आख़िरत के फल से सम्बद्ध हो और सबकी नीयतों के स्वार्थ और निःस्वार्थता को देखता रहता है।

२८० (अपने समस्त मामलों में) आदेशों के पालन में और जीवन के विभिन्न मामलों में बार-बार हक़ के मार्ग और ईमानदारी से हटने का चाव होता रहता है और कहीं अपने ज़ाती नुक़सान के विचार से, कहीं बुज़ुर्गों और सगे सम्बन्धियों की मुरव्वत से क़दम को बार-बार डगमगाहट होने लगती है। यहाँ यह ताकीद है कि ऐसे तमाम अवसरों पर सत्य और ईमानदारी पर बने रहो। "शुहदा'अ लिल्लाहि"— उसके एक माने तो यही हैं कि गवाही से उद्देश्य अल्लाह की रज़ामन्दी की तलाश है। और दूसरे माने

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ५०५ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ५०५ से)

२८३ (शहादत देने में) ताकीद की है कि गवाही बिलकुल स्थिति के अनुसार होनी चाहिए, उसमें गवाह के निजी झुकाव का कोई दखल न हो।

२८४ यानी निजी झुकाव के दखल का परिणाम यही होता है कि क़दम सत्य के मार्ग से या इधर या उधर हो जाएगा।

२८५ हर गुनाह और हर कूटनीति की भाँति गवाही देने की भी हर बद-उन्वानी से रोकने का सबसे प्रभावकारी तरीक़ा भी अल्लाह के सर्वज्ञान एवं सर्वदृष्टि की बात को हमेशा नज़र के सामने रखना है। यह विश्वास जितना मज़बूत, जीवित और ताज़ा होगा उसी क़दर कड़ा पहरा इन्सान की आत्मा पर बना रहेगा। **''अिन् तल्वू''**— यानी गवाही तो दी जाए, परन्तु बेईमानी, खियानत एवं एच-पेच के साथ। **''तुऽरिज़ू''**— यानी सिरे से गवाही ही न दी जाए।

२८६ **'या' अय्युहल्लज़ीन आमनू'**— आयत में सम्बोधन उन लोगों से है जो कलिमए इस्लाम पढ़कर सरसरी तौर पर ईमान तो ला चुके हैं और इसीलिए मोमिन की पदवी भी पा चुके हैं, उन्हीं की ताकीद हो रही है कि विस्तार के साथ ईमान के एक-एक अंश पर अपना अक़ीदा दृढ़ करें। **'आमिनू' बिल्लाहि'**— रसूल पर ईमान लाने के माने यह हैं कि उसकी शरीअत के हर अंश को बिना किसी आपत्ति के मान लिया जाए। **'अल्किताबिल्लज़ी अन्ज़ल मिन् क़ब्लु'**— मुराद यहाँ किताब की जिंस है यानी उन किताबों पर ईमान लाया जाए, जो क़ुर्आन से पूर्व उतारी जा चुकी हैं।

२८७ उनमें से हर-हर अक़ीदे पर अलग-अलग ईमान लाना ज़रूरी है और उनमें से किसी एक अक़ीदे से भी इन्कार इस्लाम के दायरे से हटा देने के लिए काफ़ी है। 'वाव' यहाँ चारों स्थानों पर 'और' के मानी में है। **'यक्फ़ुर् बिल्लाहि'**—अल्लाह की ज़ात की भाँति उसकी सिफ़तों से इन्कार करना कुफ़्र करने के बराबर है। **'व मला'अिकतिही'**—बजाय फ़िरिश्तों के जाहिली जातियों की भाँति देवताओं को मानना फ़िरिश्तों ही से कुफ़्र का एक रूप है। **'व कुतुबिही'**—जाहिल मुश्‌रिक क़ौमें चूँकि 'वही' के अक़ीदे से वञ्चित हैं, अतः आसमानी पुस्तकों की भी क़ायल नहीं हैं। **'व रुसुलिही'**—बजाय पयम्बरों के अवतारों या खुदा की शक्तियों के प्रदर्शनों को मानना रसूलों से कुफ़्र करना है।

२८८ (जन्नत तथा हिदायत की) यहाँ उन लोगों का वर्णन हो रहा है जो इस्लाम पर स्थिर न रहे बल्कि मुर्तद हो गये यानी इस्लाम से फिर गये और दुबारा ईमान लाकर फिर भी ईमान पर क़ायम नहीं रहे और तौबः नहीं की बल्कि उसी कुफ़्र की हालत में मर गये। परन्तु निश्चित रूप से कौन सा गिरोह मुराद हैं ? एक क़ौल है कि यहूद मुराद हैं। पहले हज़रत मूसा पर ईमान लाये फिर उन्हीं के जीवन में गोशाला-पूजन किया और काफ़िर हो गये। तौबः की और उनकी सन्तान हज़रत ईसा से इन्कार करके फिर काफ़िर हो गयी और अन्त में रसूलल्लाह (स०) से इन्कार करके अपना कुफ़्र बढ़ाया। दूसरा क़ौल है कि मुर्तदों का कोई विशेष गिरोह मुराद है जो बार-बार मुर्तद हुआ और अन्त तक मुर्तद रहा। तीसरा क़ौल और यह सबसे ज़ियादा लगता हुआ है, वह यह है कि मुराद मुनाफ़िक़ और मुर्तद और वह लोग हैं जो हिचकिचाहट में ही हैं और यहाँ उद्देश्य यह है कि उनके मुज़ब्ज़ब (दुबिधाग्रस्त) रहने को प्रकट किया जाए न कि उनके बार-बार मुर्तद होने को ज़ाहिर किया जाए। सन्दर्भ भी मुनाफ़िक़ों को ही मुराद लेता है।

२८९ **'बश्शिर' का** अर्थ हमेशा शुभ सूचना ही नहीं होता। शब्दकोश में यह हर ऐसी सूचना को कहते हैं जिसका असर चेहरे से ज़ाहिर होने लगे। यह भी हो सकता है कि 'बशारत' यहाँ व्यंग्य और बुराई के अर्थ में हो। अरब ऐसे अवसर पर ऐसा ही प्रयोग करते हैं।

२९० यानी इज़्ज़त देना तो सभी अल्लाह के क़ब्ज़े में है। वह जिसे चाहे सम्मानित बना दे। मुन्किरों के बड़े-बड़े अमीर और रईस सच्ची इज़्ज़त से महरूम हैं। **''यत्तख़िज़ूनल् काफ़िरीन''**— यानी यह मुनाफ़िक़ ईमानवालों के जैसे अक़ीदे तो क्या रखते ज़ाहिरी सम्बन्ध भी उनसे न बनाये रख सके और बजाय इसके उलटे काफ़िरों से लगे-लिपटे हुए हैं। फ़क़ीहों ने इस आयत से यह बात निकाली है कि मुन्किरों से बिना ज़रूरत ज़्यादा मेलजोल, खलामला, उनकी-सी वज़ाक़त, बिना ज़रूरत बनाना, उनका फ़ैशन अपनाना, उनके वस्त्र और उनके रहन-सहन को गौरव और शान की चीज़ समझना यह सब निफ़ाक़ में दाखिल हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ५११ से)

हाल था। जब जंग छिड़ती तो मुनाफ़िक़ों का गिरोह-दर-गिरोह मुसलमानों के साथ होता अगर्चे काफ़िरों से लड़ाई न करता था या नामचार को करता था। यदि मुसलमानों को विजय होती तो, यह मुसलमानों के पास आकर अपनी शिरकत, साथ और मित्रता का हक़ जताते और माले ग़नीमत आदि में अपना हिस्सा माँग लेते, परन्तु इसके विपरीत कभी यदि इत्तिफ़ाक़ से काफ़िरों के हाथ मैदान रहता तो यह झट उनके पास जाकर उन पर अपना एहसान जताते कि देखो अमुक अवसर पर मुसलमानों का पल्ला भारी पड़ रहा था और तुम हारने को ही थे कि हम आड़े आ गये। हमने अपने प्रयास से तुम्हारा पल्ला भारी करा दिया और हारी हुई लड़ाई जिता दी तो अब हमारा हिस्सा दिलाओ। लड़ाई लड़नेवाले काफ़िरों से मुसलमानों की मुखबिरी करना, जासूसी करना सब इसी के अन्तर्गत आ जाता है। **"यतरब्बसून बिकुम्"**— यानी तुम्हारे लिए आफ़त और मुसीबत की प्रतीक्षा में रहते हैं। **"अलम् नकुम्-मअकुम्"**—साथ का सम्बन्ध जिहाद यात्रा से है। **"अलम् नस्तहूविज़् अलैकुम्"** यहाँ मुनाफ़िक़ अपने को इस्लामी सेना में सम्मिलित कर रहे हैं। आयत से ज़ाहिर होता है कि मुनाफ़िक़ों को माले ग़नीमत में हिस्सा नहीं मिलता था जब ही वह उसे माँगते और उसके लिए माँग करते ते। 'फ़तह' के शब्द में शान और बड़ाई है अतः मुसलमानों की सफलता को इससे सम्बद्ध किया गया और नसीब में तिरस्कार और नीचता है अतः काफ़िरों की सफलता के लिए यह शब्द दिया गया है।

२६४ यानी आज तो इस्लाम ज़ाहिर करके हर क़ानून की पकड़ से बच जाते हैं और मुसलमानों में मिले-जुले रहते हैं, परन्तु क़ियामत में क्या करेंगे? वहाँ तो उनका कुफ़्र खुला हुआ दिखाई देगा और यह मुसलमानों से पृथक् होकर रहेंगे।

२६५ (अपने उसी अन्तिम और आखिरत के निर्णय में।) आखिरत बदले का स्थान है। वहाँ इस कर्मस्थल की भाँति किसी सृष्टि वाली परीक्षा, सन्देह और भ्रम की गुंजाइश नहीं। वहाँ दूध का दूध और पानी का पानी हर हाल में अलग होकर रहेगा। दूसरा अर्थ यह भी होता है कि इसी दुनिया में काफ़िरों को मोमिनों पर क़ाबू न पाने दिया जायेगा। अक़्ली और शर्ई हुज्जत के आधार से। काफ़िरों के ग़ल्बे को न मानते हुए बाज़ फ़क़ीहों ने इससे निम्न बातें निकाली हैः— (१) काफ़िर की गवाही यदि मुसलमान को नुक़सान दे रही है तो स्वीकार न की जायेगी। (२) काफ़िर की विलायत किसी मुसलमान नाबालिग़ के निकाह में जाइज़ न होगी। (३) काफ़िर को किसी मुसलमान की विरासत न पहुँचेगी।

२६६ (उनकी चालों को नाकाम देखकर, उसकी सज़ा उनको दे-देकर।) **"युख़ादिऊनल्लाह"** यानी अपने इस्लाम का झूठा इक़रार कर-करके अल्लाह को भी धोखा देना चाहते हैं और अपनी मूर्खता से यह समझे हुए हैं कि जिस प्रकार दुनिया में उनके साथ मामला हो रहा है उसी तरह आखिरत में भी होगा। **"व हुव ख़ादिउहुम्"**— **'ख़दाअ'** का सम्बन्ध जब अल्लाह से होता है, तो उससे मुराद 'मजाज़ाति ख़दाअ' होती है। (चाल चलने के माने 'मजाज़ी' होते हैं।)

२६७ यानी यह मुनाफ़िक़ अव्वल तो नमाज़ पढ़ते ही कहाँ हैं और जब मुसलमानों के मज्मे में शर्मा-शर्मी पढ़ना ही पड़े तो केवल दिखाने के लिए उठक-बैठक कर लेते हैं। **"क़ामू कुसाला"**— इबादत में आनन्द, चुस्ती और सतर्कता तो केवल ईमान और एतिक़ाद के बल से उत्पन्न होती है। जब सिरे से यही चीज़ मौजूद नहीं है तो ज़ाहिर है कि काहिली और दुःसाहस क्यों न पैदा हो। उनका उद्देश्य तो केवल ज़ाहिरी दिखावा था यानी दुनियावालों की दृष्टि में अपने को मुसलमान दिखाना। **"अिल्ला क़लीलन्"** आरिफ़ों ने (अल्लाहवालों ने) कहा है कि यह थोड़ा अमल भी यदि अल्लाह ही के लिए होता तो अल्लाह उसे बहुत दिखाता। **"युरा'ऊनन्नास"**— केवल लोगों को दिखाने के लिए ताकि यह भी मुसलमान ही समझे जायें और उनको भी वही सुविधाएँ मिलें जो मुसलमानों को प्राप्त थीं। **"रिया"** के माने हैं कि किसी अच्छे अमल को ख़ुदा की रज़ामन्दी के लिए नहीं बल्कि दिखावे के लिए करना। **"अिज़ा क़ामू अिलस्सलाति"** जब नमाज़ जैसी महत्त्वपूर्ण चीज़ के साथ, जो इस्लाम का खम्ब है, यह मामला है तो दूसरी इबादतों के साथ जो मामला होगा, ज़ाहिर है। नमाज़ का ज़िक्र विशेष रूप से इसलिए किया गया है कि अन्य आमाल में नमाज़ ही ईमान तथा इस्लाम का ज़ाहिरी मेयार है। फ़क़ीहों ने कहा है कि जिस दिखावे की नमाज़ का यहाँ वर्णन है और जो गुनाह के दर्जे में है और जिस नमाज़ का दुहराना आवश्यक है, वह वह है जो अक़ीदों के बिना लोगों को धोखे में डालने के लिए पढ़ी जाए कि उससे उसे लोग मुसलमान कहने लगें। बाक़ी जो नमाज़ इस इरादे से पढ़ी जाए कि लोग उसे देखकर उसके मोमिन होने

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ५१२ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व क़द् नज़्ज़ल अ़लैकुम् फ़िल्किताबि अन् अिज़ा समिऽतुम् आयातिल्लाहि युक्फ़रु
बिहा व युस्तह्ज़अु बिहा फ़ ला तक़्अुदू मअ़हुम् ह़त्ता यख़ूज़ू फ़ी ह़दीसिन्
ग़ैरिही ज़ ला अिन्नकुम् अिज़म्मिस्लुहुम् त अिन्नल्लाह जामिअुल्-मुनाफ़िक़ीन वल्-
काफ़िरीन फ़ी जहन्नम जमीअ़न् ला (१४०) अल्लज़ीन यतरब्बसून बिकुम् ज
फ़ अिन् कान लकुम् फ़त्हुम् - मिनल्लाहि
क़ालू अलम् नकुम्मअ़कुम् ज़ ला व
अिन् कान लिल्काफ़िरीन नसीबुन् ला
क़ालू अलम् नस्तह्विज् अ़लैकुम् व
नम्नऽकुम् मिनल् - मुअ्मिनीन त फ़ल्लाहु
यह्कुमु बैनकुम् यौमल् - क़ियामति त
★ ६. २०/१७ आ ७ व लंय्यज्अलल्लाहु लिल्-काफ़िरीन अ़लल्-
मुअ्मिनीन सबीलन् (१४१) ★ अिन्नल्-
मुनाफ़िक़ीन युख़ादिअूनल्लाह व हुव
ख़ादिअुहुम् ज व अिज़ा क़ामू अिलस्सलाति
क़ामू कुसाला ला युरा'अूनन्नास व ला
यज़्कुरूनल्लाह अिल्ला क़लीलन् ज़ ला (१४२)
म'मुज़ब्ज़बीन बैन ज़ालिक क़ ला ला
अिला हा'अुला'अि व ला अिला
हा'अुला'अि त व मंय्युज़्लिलिल्लाहु फ़ लन् तजिद लहू सबीलन् (१४३) या
अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तत्तख़िज़ुल् - काफ़िरीन औलिया'अ मिन् दूनिल्-
मुअ्मिनीन त अ तुरीदून अन् तज्अलू लिल्लाहि अ़लैकुम् सुल्तानम् -
मुबीनन् (१४४) अिन्नल् - मुनाफ़िक़ीन - फ़िद्दर्किल् - अस्फ़लि मिनन्नारि ज
व लन् तजिद लहुम् नसीरन् ला (१४५) अिल्लल्लज़ीन ताबू व
अस्लहू वअ्तसमू बिल्लाहि व अख़्लसू दीनहुम् लिल्लाहि फ़ अुला'अिक
मअ़ल् - मुअ्मिनीन त व सौफ़ युअ्तिल्लाहुल् - मुअ्मिनीन अज्रन्
अ़ज़ीमन् (१४६) मा यफ़्अलुल्लाहु बि अ़ज़ाबिकुम् अिन् शकर्तुम्
व आमन्तुम् त व कानल्लाहु शाकिरन् अ़लीमन् (१४७)

वالمحصنت ٥ — ٨٠ — النساء ٤

عَلَيْكُمْ فِى الْكِتٰبِ اَنْ اِذَا سَمِعْتُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ يُكْفَرُ بِهَا وَيُسْتَهْزَاُ
بِهَا فَلَا تَقْعُدُوْا مَعَهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِىْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖٓ ۖ اِنَّكُمْ
اِذًا مِّثْلُهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ جَامِعُ الْمُنٰفِقِيْنَ وَالْكٰفِرِيْنَ فِىْ جَهَنَّمَ
جَمِيْعَا ۙ﴿١٤٠﴾ الَّذِيْنَ يَتَرَبَّصُوْنَ بِكُمْ ۚ فَاِنْ كَانَ لَكُمْ فَتْحٌ مِّنَ اللّٰهِ
قَالُوْٓا اَلَمْ نَكُنْ مَّعَكُمْ ۖ وَاِنْ كَانَ لِلْكٰفِرِيْنَ نَصِيْبٌ ۙ قَالُوْٓا اَلَمْ
نَسْتَحْوِذْ عَلَيْكُمْ وَنَمْنَعْكُمْ مِّنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ
يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ وَلَنْ يَّجْعَلَ اللّٰهُ لِلْكٰفِرِيْنَ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ سَبِيْلًا ﴿١٤١﴾ ع
اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَهُوَ خَادِعُهُمْ ۚ وَاِذَا قَامُوْٓا
اِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۙ يُرَآءُوْنَ النَّاسَ وَلَا يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ
اِلَّا قَلِيْلًا ۙ﴿١٤٢﴾ مُّذَبْذَبِيْنَ بَيْنَ ذٰلِكَ ۖ لَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ وَلَآ اِلٰى
هٰٓؤُلَآءِ ؕ وَمَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ سَبِيْلًا ﴿١٤٣﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ
اَتُرِيْدُوْنَ اَنْ تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ عَلَيْكُمْ سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ﴿١٤٤﴾ اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ
فِى الدَّرْكِ الْاَسْفَلِ مِنَ النَّارِ ۚ وَلَنْ تَجِدَ لَهُمْ نَصِيْرًا ۙ﴿١٤٥﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ
تَابُوْا وَاَصْلَحُوْا وَاعْتَصَمُوْا بِاللّٰهِ وَاَخْلَصُوْا دِيْنَهُمْ لِلّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ
مَعَ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ وَسَوْفَ يُؤْتِ اللّٰهُ الْمُؤْمِنِيْنَ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿١٤٦﴾ مَا
يَفْعَلُ اللّٰهُ بِعَذَابِكُمْ اِنْ شَكَرْتُمْ وَاٰمَنْتُمْ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ شَاكِرًا عَلِيْمًا ﴿١٤٧﴾

منزل ١

॥ इति पाँचवाँ पारः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और वह तुम्हारे ऊपर यह (फ़र्मान) किताब में नाज़िल ही कर चुका है कि जब तुम अल्लाह की निशानियों के साथ कुफ़्र और हँसी होती हुई सुनो, तो उन लोगों के साथ मत बैठो, यहाँ तक कि वह किसी और बात में लग जायें, क्योंकि उस दशा में अवश्य तुम भी उन्हीं जैसे हो जाओगे[२९१]। बेशक अल्लाह दोज़ख में मुन्किरों और काफ़िरों को एकत्रित करेगा[२९२]। (१४०) यह वह लोग हैं जो तुम्हारे लिए मुसीबत की प्रतीक्षा करते हैं; तो यदि तुम्हें अल्लाह की ओर से विजय प्राप्त हो गई तो यह कहने लगते हैं कि क्या हम तुम्हारे साथ नहीं थे ? और अगर काफ़िरों को हिस्सा मिल गया तो (उनसे) कहने लगते हैं कि क्या हम तुम पर विजयी नहीं होने लगे थे और हमने तुम्हें मुसलमानों से बचा नहीं लिया[२९३] ? तो अल्लाह ही तुम (सब) लोगों के बीच क़ियामत के दिन फ़ैसला करेगा[२९४]। और अल्लाह काफ़िरों को कदापि मोमिनों पर क़ाबू न पाने देगा[२९५]। (१४१) ★ रु. २० — १७ आ ७

नि:सन्देह मुनाफ़िक़ तो अल्लाह से चाल चल रहे हैं, यद्यपि अल्लाह उन्हीं की चालों को उन पर उलट रहा है[२९६]। और यह लोग जब नमाज़ के लिए खड़े होते हैं तो बहुत ही काहिली से खड़े होते हैं (केवल) लोगों को दिखाते हैं और अल्लाह की याद कुछ यूँ ही सी करते हैं[२९७] (१४२) मध्य में ही अटके हुए न (पूरे) इधर ही के हैं न (पूरे) उधर ही के। और जिसे अल्लाह गुमराह रखे तो उसके लिए तो कोई राह न पायेगा[२९८]। (१४३) ऐ ईमानवालो ! मोमिनों को छोड़कर, काफ़िरों को दोस्त मत बनाओ। क्या तुम चाहते हो कि अपने ऊपर अल्लाह की स्पष्ट दलील बना लो[२९९] ? (१४४) यानी मुनाफ़िक़ दोज़ख के सबसे निचले भाग में होंगे, और तू उनका कोई मददगार न पायेगा[३००]। (१४५) अल्बत्ता जो लोग तौबः कर लें और (अपनी) इस्लाह (सुधार) कर लें और अल्लाह का सहारा पकड़े रहें और अपने दीन को अल्लाह के लिए शुद्ध कर लें तो यह लोग मोमिनों के साथ होंगे[३०१]। और अल्लाह मोमिनों को भारी बदला देगा[३०२]। (१४६) अल्लाह को तुम्हारे अज़ाब से क्या करना है ? अगर तुम शुक्र-गुज़ारी करो और ईमान ले आओ तो अल्लाह बड़ा क़द्रदान है, बड़ा ज्ञानवाला है[३०३]। (१४७)

॥ इति पाँचवाँ पारः ॥

---

२९१ (गुनाह में) यह मिलना-जुलना और यकसानी गुनाह होगा वरना मुन्किरों की हँसी ज़ाहिर है कि अक़ीदे के कुफ़्र से पैदा होती है। उनके जलसों, महफ़िलों आदि में मुसलमानों का शरीक होना केवल बदआमाली का ही नतीजा होता है। **"फ़िल्किताबि"**— हवाला इसी किताब यानी क़ुर्आन का है। यह सूरए निसाअ मदनी है और सूरए इन्आम इससे बहुत पूर्व की मक्की है। **'आयातिल्लाह'** अल्लाह की निशानियों का शब्द आम है। क़ुर्आन मजीद की आयतें भी उन्हीं में सम्मिलित हैं। हुक्म दोहरा दिया गया है यानी एक बार मक्के में उतरा और दुबारा मदीने में।..............मसीही या हिन्दुवाना, तालीमी, सभ्यता सम्बन्धी, रहन-सहन, राजनैतिक वातावरण के जो गहरे प्रभाव प्राकृतिक रूप से मुसलमानों पर पड़ रहे हैं, वह सब इस चेतावनी के अन्तर्गत आ जाते हैं। अपने तौर-तरीक़ों और दीन के नियमों पर मज़ाक़ सुनते रहना चाहे वह स्कूलों-कालेजों में हो या बाज़ारों, मेलों, थियेटरों और सिनेमाओं में, यूँ भी हर सूरत में बड़ी लज्जाप्रद बात है। **"हत्ता यख़ूज़ू फ़ी हदीसिन् ग़ैरिही"**—फ़क़ीहों ने लिखा है कि बदचलन लोगों की मज्लिस में शरीक होना, जिस समय वह बदचलनी में मशग़ूल न हों, जाइज़ है परन्तु कराहत के साथ। लेकिन इस प्रकार के फ़िक़्ही आदेशों का वाजिब होना इस्लामी हुकूमत के साथ शर्तबद्ध है।

२९२ (क्योंकि आखिरत में एक का छुपा हुआ और ढका हुआ कुफ़्र और दूसरे का खुला हुआ कुफ़्र दोनों साफ़ ज़ाहिर होंगे।) इसी से यह तालीम भी निकलती है कि असली जोड़ और साथ तो काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों का है। वास्तव में मेल तो उन्हीं दोनों में परस्पर है। पवित्र और नेक इन्सानों यानी मुसलमानों का उन लोगों के साथ मज्लिसी मित्रता ही कैसी ?

२९३ मुनाफ़िक़ों की पूरी मनोवृत्ति स्पष्ट और खोलकर रखी जा रही है। उन लोगों का भी अजीब

(फ़ुटनोट देखें सफ़ा ५०६ पर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(फ़ुटनोट सफ़ा ५०६ से)

और उसकी गवाही को विश्वसनीय होने की और उसकी अमानत को जाइज़ होने की गवाही दें तो ऐसी नमाज़ इस चेतावनी के अन्तर्गत नहीं आती।

२६८ (ईमान और सत्य के मार्ग की।) **"मुज़ब्ज़बीन बैन ज़ालिक"**— यानी काफ़िरों और मोमिनों के बीच। **"ला' अिला हा'अुला'अि व ला' अिला हा'अुला'अि"**— यानी ज़ाहिर और सूरत के लिहाज़ से मोमिन और माने तथा सच्चाई के विचार से काफ़िर। **"व मंय्युज़्लि लिल्लाहु"**— अल्लाह का यह कार्य गुमराह करने का उसकी सृष्टि सम्बन्धी सुन्नत के अनुसार है जिसके अन्तर्गत वह क्रम के इरादे पर कर्म का क्रम बना देता है (यानी उसे ज्ञान है कि कर्म करनेवाले का इरादा क्या है)।

२६६ (अपने अपराधी और दण्ड के अधिकारी होने की) इतनी खुली हुई चेतावनी के बाद भी हम लोग जो अकारण हर प्रकार के ग़ैरमुस्लिमों, बेदीनों, बददीनों से मित्रता और उठने-बैठने का सम्बन्ध स्थापित किए हुए हैं तो हमारा अंजाम क्या होना है? **"ला तत्तख़िज़ुल् काफ़िरीन औलिया'अ"**— काफ़िरों के साथ वह पूरी तरह छुपे हुए काफ़िर भी दाखिल हैं जिन्हें मुनाफ़िक़ कहा गया है। हनफ़ी फ़क़ीहों ने ज़िम्मियों को माल का वकील बनाना और उनसे व्यापार की शिरकत में भी कराहत की है।

३०० (कि उन्हें बचा सके या उनकी सज़ा कुछ हलकी ही करा सके।) **"फ़िद्दर्किल्-अस्फ़लि"** हर मुनाफ़िक़ वास्तव में काफ़िर ही होता है। मुनाफ़िक़ के माने यह हैं कि वह अपने कुफ़्र के अपराध पर एक और अपराध यानी मक्र और फ़रेब की बढ़ोतरी कर लेता है, अतः यदि उसे खुले हुए काफ़िर से और कड़ी सज़ा मिले तो यह बुद्धि-अनुसार और ठीक ही है। **"व लन् तजिद लहुम् नसीरन्"** से फ़क़ीहों ने केवल गुनहगारों की शफ़ाअत की दलील दी है और इस दलील का अर्थ यह है कि सहायता न होने की चेतावनी मुनाफ़िक़ीन के लिए है और यह बात स्पष्ट हुई कि जो मुनाफ़िक़ न होंगे उनकी सहायता और सुफ़ारिश हो सकेगी।

३०१ (जन्नत और जन्नत के दर्जों में) मोमिनों के साथ इन नये तौबः करनेवालों का ज़िक्र लाने से मोमिनों ही की इज़्ज़त और उनके ही दर्जों की उच्चता का पहलू निकलता है। **"मअल्-मुअ्मिनीन"**— का अर्थ **'मिनल्मुअ्मिनीन'** भी किया गया है। **'ताबू'** यानी अपने शिर्क और कुफ़्र के अक़ीदों से तौबः कर लें। **"अस्लहू"** यानी अपने कर्म एवं दशाओं को शरीअत के अनुसार तथा आधीन कर लें। **'अख़्लसू दीनहुम् लिल्लाहि'**— अल्लाह के साथ शुद्धता की यह शर्त मुनाफ़िक़त की जड़ काट रही है। फ़क़ीहों ने आयत के इस अंश से यह निकाला है कि इबादत और ख़ुदा के निकट होने के हर कर्म से दिखावा और दुनियावी बदले की भावनाओं से ख़ाली होना चाहिए। यह भी निकाला है कि नमाज़, अज़ान, हज इत्यादि इबादतों की आमालों पर मुआविज़ा लेना जाइज़ नहीं है। पूरी आयत के मज़मून का सारांश यह है कि मुनाफ़िक़ जो इस क़दर चेतावनी के अधिकारी हैं वह भी अल्लाह की कृपा और दया से हमेशा के लिए निराश न हो जाएँ। तौबः और अपना सुधार कर लेना तो उनके अपने अधिकार की चीज़ है। जब और जिस समय चाहें सीधा रास्ता अपनाकर मोमिनों का साथ पा सकते हैं। कोई बड़े से बड़ा गुनाह भी ऐसा नहीं जो पैत्रिक या पैदाइशी हो या जिसका अब सुधार सम्भव न हो और जिसकी तलाफ़ी क्षतिपूर्ति न हो सकती हो।

३०२ (और जब यह तौबः करनेवाले और नौ मुस्लिम मोमिनों के साथ हुए तो ज़ाहिर है कि भारी बदला उनको अवश्य प्राप्त होगा।) इसमें सबक़ है ख़ानदानी और पुश्तैनी मुसलमानों के लिए जो आज नौ मुस्लिमों या नये सुधरे हुए लोगों को तिरस्कृत दृष्टि से देखते हैं। यह ईमानी और इस्लामी बिरादरी में शामिल होनेवाले भाई हैं जो और अधिक सम्मान और स्नेह के अधिकारी हैं।

३०३ सम्बोधन मुनाफ़िक़ों से है। उन्हें बताया है कि तुम्हारी सज़ा में अल्लाह तआला का कोई काम तो अटका नहीं है, यह तो केवल तुम्हारा कुफ़्र और अल्लाह की नेमतों की नाक़द्री है जो तुम्हें जन्नत की नेमतों से लाभान्वित होने के योग्य नहीं बनने देती। अगर अपने उन अक़ीदों को छोड़ दो तो अल्लाह की कृपा तो स्वयं तुम पर हो जायेगी। इसी में यह भी शिक्षा आ गयी कि इस्लाम का ख़ुदा जाहिली क़ौमों की देवी-देवताओं की भाँति रक्तपाती और ज़ालिम नहीं है, जिसको बन्दों के कष्टों में ही मज़ा आता है। **'शाकिरन्'**— यानी सेवा, बन्दगी और शुद्धता का क़द्र करनेवाला। **'अलीमन्'**— यानी हर एक की शुद्धता के दर्जे से वाक़िफ़। आयत से यह अन्दाज़ा हो रहा है कि शुक्र करनेवाला ममिन अल्लाह के अज़ाब से सुरक्षित रहेगा। मुफ़स्सिरों ने यह भी बात निकाली है कि बड़े गुनाह करनेवालों, परन्तु तौबः करनेवालों, पर अज़ाब न होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी में इस्लामी ग्रन्थ

क़ुर्आन शरीफ़ हिन्दी सटीक (मुतर्जमः)—बीस साल की मुसल्सल अिल्मी मिहनत के बाद तैयारकर्दः, नागरी रस्मुल्ख़त में आयतों के साथ, क़ुर्आन शरीफ़ छपकर अवाम की पेशेनज़र है। इसमें मिलते-जुलते हुरूफ़ मसलन् जाल, जे, ज़ाद, ज़ो, वग़ैरः को अलाहदः मुमताज़ करते हुए रुमूज़ औक़ाफ़ (विरामाविराम चिह्न), आयत संख्या, वक़्फ़ नबी स०, व० मंज़िल, व० ग़ुफ़रान, वक़्फ़ लाज़िम, हर पारे के रुबअ, निस्फ़, सुल्स, रुकूअ, सज्दः, मद्द, हम्ज़ः साकिन, हम्ज़ए वस्ल, हम्ज़ः ख़ामोश, मुआनक़ः, हर सफ़े पर आयत ख़त्म, शुमार मंज़िल, पारः और सूरः, ग़रज़ कि शास्त्रीय अरबी पद्धति पर इमकानी सूरत में सही तिलावत का पूरा इहतियात मुहय्या किया गया है। हिन्दी रस्मुल्ख़त में आयतें लिखने के साथ-साथ हर सफ़े पर अरबी ख़त में इन्तहाई सही ब्लाक भी देकर नक़्स की गुन्जाइश ही ख़त्म कर दी गई है। साथ-साथ आसान आमफ़हम ज़बान में मुस्तनद उर्दू तर्जुमों की बुनियाद पर, आलिमों की नज़रसानी के बाद, हिन्दी तर्जुमा व तफ़्सीरी नोट्स को भी मत्न (मूलपाठ) के मुक़ाबिल दिया गया है।

हिन्दी रस्मुल्ख़त में क़ुर्आन शरीफ़ को पढ़ने-लिखने के क़वायद, तलफ़्फ़ुज़, इदग़ाम, वस्ल-फ़स्ल व अनेक याद-दहानियों का एक वसीअ चार्ट, और मज़ामीन की फ़िहरिस्तों ने हिन्दी में तरीक़े तिलावत को निहायत आसान कर दिया है। अलावा, मौलाना सय्यद अबुल हसन अली अल्हसनी अल्नदवी जनाब अली मियाँ साहब ने इस हिन्दी क़ुर्आन शरीफ़ पर 'पेशलफ़्ज़' लिख कर इस मिहनत को ज़ीनत बख़्शी है। काग़ज़ वग़ैरः की इन्तिहा महँगाई के बावजूद जदीद एडिशन का हद्यः महज़् ४६·००। डाक ख़र्च ७·५० अलाहदः।

क़ुर्आन शरीफ़ मुअर्रा (सिर्फ़ मूल)—ऊपर दी हुई रविश पर सम्पूर्ण क़ुर्आन शरीफ़ का सिर्फ़ मत्न (मूल पाठ)। हद्यः २३·००। पारः अम्म मअ क़ायदः २·००। पहला पारः हद्यः १·००।

क़ुर्आन शरीफ़ महज़ तर्जुमा—प्रामाणिक उर्दू अनुवादों के आधार पर—हद्यः २३·००।

क़ुर्आन शरीफ़ नागरी व अरबी रस्मुल्ख़तों में मअ तर्जुमः व **तफ़्सीर माजिदी** अज़् मौलाना अब्दुल् माजिद साहिब दर्याबादी—

जिल्द अव्वल— १ से ५ पारः तक। हद्यः ४०·००।
आगे पारः ६ से ३० तक छापे जा रहे हैं।

ज़ादे सफ़र—(रियाज़ुस्सालिहीन) अरबी हदीस का प्रामाणिक अनुवाद (भु०वा०ट्र०) १५·००।

अरब एक संक्षिप्त इतिहास—प्रो० हिट्टी हिन्दी अनुवाद, मूल्य १५·००।

जीवन चरित्र—पैग़म्बरे इस्लाम १·००; हज़्रत अबूबकर १·००; हज़्रत उमर १·००; हज़्रत उस्मान १·००; हज़्रत अली १·००।

क़ौरानिक कोश (लुग़ातुल्-क़ुर्आन)—[तिलावत (पठनक्रम) के सिल्सिले से] १०·००।

सहीह् बुख़ारी शरीफ़—कामिल हिन्दी में (सानुवाद सटिप्पण)— छः जिल्दों में (फ़ी जिल्द पाँच पारः)।

बेशबहा लुग़ात (कोश) जो छप रहे हैं :—

क़ौरानिक कोश—(रदीफ़वार—वर्णानुक्रम से)।

बिश्वनागरी उर्दू-हिन्दी कोश—जिसमें अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी के आम फ़हम शब्द, उर्दू व हिन्दी—दोनों रस्मुल्ख़तों में देकर आसान मआने (अर्थ) दिये गये हैं। नागरी अक्षरों में भी ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़ाद; सीन, से, साद; छोटी हे, बड़ी हे; तो, ते वग़ैरः का प्रयोग करके हाजी-हाजी और अलीम-अलीम जैसे मुश्तबहुस्सौत (मिलते-जुलते) शब्दों के मआने में भ्रम पड़ने की गुन्जाइश ख़त्म की गई है।

लखनऊ किताबघर—'प्रभाकर निलयम्', ४० [illegible], चौपटियाँ रोड, लखनऊ—२२६००३